शरत्-समग्र

[उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध एवं संस्मरण]

पंचम खण्ड

अमर कथाकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की सम्पूर्ण रचनाएं पाच खण्डो मे

संपादन—विश्वनाथ मुखर्जी

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो. बा. ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी २२१००१

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना : ४

प्रस्तुति सहायक कन्हैयालाल 'राज'

सितम्बर, १९९०

मूल्य : ४०.०० प्रति खण्ड

प्रकाशक :
विजय प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो०बा० ११०६, पिशाचमोचन
वाराणसी-२२१०१०

मुद्रक :
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

फोटो कम्पोजिंग
विशिष्टा रिप्रोग्राफिक्स (प्रा०) लि०
एच-७४, सेक्टर-९
नोएडा, गाजियाबाद

SARAT SAMAGRA · Edited By Vishwanath Mukherjee

प्रकाशकीय

शरत् बाबू की रचनाएं आज हिन्दी पाठको को समर्पित करते हुए हमे अपार हर्ष हो रहा है। हिन्दी मे यह प्रथम प्रयास है। शरत् बाबू के सभी उपन्यासो, कहानियो, लेखो के अलावा उनके संस्मरण, अनेक अज्ञात रचनाएं, अधूरी कहानिया और उपन्यासो के अशो को प्रकाशित किया गया है। उनके महत्वपूर्ण पत्र एव उनकी प्रामाणिक जीवनी प्रकाशित किये गये है। इस ग्रंथावली की सबसे बडी विशेषता यह है कि समग्र रचनाएं बिना काट-छांट के प्रकाशित की गयी हैं।

हमे खेद है कि इस समग्र के लिए पाठकों को लम्बे अर्से तक प्रतीक्षा करनी पडी और हम अपने वायदे के अनुसार समय पर इसका प्रकाशन नही कर सके। कई हजार पाठको के उलाहने निरन्तर प्राप्त होते रहे। सच तो यह है कि यह एक महायज्ञ था जो आज पाच खण्डो मे सपूर्ण किया गया। अगर पाठको का इसी प्रकार स्नेह मिलता रहा तो हम सस्ती कीमत मे अन्य लेखको की रचनाएं प्रस्तुत करने मे सफल हो सकेगे। शीघ्र ही हम सर्वश्री वृन्दावन लाल वर्मा और रामेश्वर समग्र पाठको को समर्पित करने जा रहे है।

— प्रकाशक

कृतज्ञता ज्ञापन

शरत् –समग्र का प्रकाशन हिन्दी –जगत के लिए एक क्रान्तिकारी कदम है। आज के युग मे जहा जीवनोपयोगी सारी सामग्रियो की कीमते बढ रही है, वही ज्ञान पिपासुओ की प्यास बुझाने के लिए सस्ती कीमत मे पुस्तके देने के लिए 'प्रचारक ग्रथावली' के सयोजकगण सर्वश्री विजय प्रकाश बेरी, राजेन्द्र प्रसाद बेरी एव अनिल बेरी कटिबद्ध है। शरत् बाबू की सपूर्ण कृतियो का मूल्य दो हजार रुपये लगभग होगा और प्रकाशक उसे दो सौ रुपये मे दे रहा है। इसके लिए वे साधुवाद के पात्र है।

इस ग्रथावली मे उनके सभी उपन्यास, कहानी, निबध, अप्रकाशित तथा अज्ञात रचनाओं के अलावा अनेक महत्वपूर्ण पत्रो का प्रकाशन किया गया है। केवल यही नहीं, शरत् बाबू की प्रामाणिक जीवनी अनेक दस्तावेजो के साथ, प्रथम बार प्रकाशित हो रही है जिससे ज्ञात हो सकेगा कि उनके बारे मे अब तक जो कुछ लिखा गया है, वह भ्रमपूर्ण है।

शरत् ग्रथावली का प्रकाशन वृहत–यज्ञ के बराबर रहा है। इस कार्य के पुरोधा है –सर्वश्री (स्व०) निहालचन्द्र बेरी, डा० महादेव साहा, डा० बदरीनाथ कपूर, सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय, रसिक बिहारी, छेदीलाल गुप्त, कुलदीप कौल, कन्हैयालाल 'राज', वशिष्ठ मुनि ओझा, वीरेश्वर भट्टाचार्य तथा सूर्यकान्त तिवारी। अगर इन सभी बधुओ का सहयोग न मिलता तो इसके प्रकाशन मे और विलम्ब होता। मै इन सभी आदरणीय सहयोगियो का आभारी हू। विशेष रूप से उन पाठको का आभारी हू जो पिछले वर्ष से ग्रथावली पाने को उत्सुक रहे है। अब इतजार की घडिया समाप्त हो गयी।

—संपादक

विषय-सूची

হিরণ্ময়ী দেবীর হস্তাক্ষর

हिरण्मयी देवी का हस्ताक्षर तथा पाण्डुलिपि

शरत्चन्द्र बसु ः

बग माता के नयनो की मणि आज खो गयी। वे उदार, कोमल-हृदय के थे। उनके हृदय मे हर तरह के अत्याचारो के प्रति अपरिसीम घृणा थी।

♥ ♥ ♥

श्री सी० एफ० एण्ड्रूज ः

शरत्चन्द्र जैसे अन्यतम साहित्यिक के निधन से सारा बगाल दुखित है, अपना शोक इन लोगो के साथ युक्त कर रहा हूं। समग्र भारत बगाल के इस दु ख से दुखी है।

♥ ♥ ♥

शरत् के उपन्यास

- चरित्रहीन
- विराज बहू
- मझली दीदी

शरत्- समग्र

चरित्रहीन

पछाँह जैसे बडे नगर मे इन दिनो जाडे का मौसम आ गया था। रामकृष्ण परमहस के एक शिष्य किसी एक शुभ कार्य के लिए धन सग्रह करने इस शहर मे आये थे। उनके भाषणो की सभा मे उपेन्द्र को सभापति बनना होगा, और उस पद की मर्यादा के अनुकूल जो कुछ कर्तव्य हैं, उनका भी अनुष्ठान पूरा करना होगा, इसी प्रस्ताव को लेकर एक दिन सबेरे कॉलिज के विद्यार्थियो का दल उपेन्द्र के पास पहुँच गया।

उपेन्द्र ने पूछा,—"शुभ कार्य क्या है, जरा मैं भी तो सुनूं।"

उन लोगो ने बताया कि अभी तक इस बात को वे भी नही जान पाये। स्वामीजी ने कहा है, इसी बात को वे सभा मे ठीक तरह से समझाकर बतायेगे और सभा बुलाने की तैयारी और आवश्यकता बहुत अशो मे इसी के लिए है।

उपेन्द्र आगे कोई प्रश्न बिना पूछे इस बात पर सहमत हो गये। ऐसी थी उनकी आदत। विश्वविद्यालय की परीक्षाओ को उन्होने इतनी अच्छी तरह उत्तीर्ण कर लिया था कि छात्रो की मण्डली मे उनकी प्रतिष्ठा की कोई सीमा नही थी। इसे वे जानते थे इसलिए, काम-काज, आपद-विपद मे वे लोग जब कभी आ जाते थे, तब वे उनके निवेदन और अनुरोधो की उपेक्षा, उनके प्रति ममता के कारण नही कर सकते थे। विश्वविद्यालय की सरस्वती को पार करके अदालत की लक्ष्मी की सेवा मे नियुक्त हो जाने के पश्चात् भी, लडको के जिमनास्टिक के अखाडे से लेकर फुटबॉल, क्रिकेट और डिबेटिंग क्लब तक के ऊँचे स्थान पर उनको ही बैठना होता था।

लेकिन इस स्थान पर सिर्फ चुपचाप बैठे रहना ही नही था, कुछ बोलना आवश्यक था। एक लडके की ओर देखकर उन्होने कहा, "कुछ बोलना तो अवश्य पडेगा। सभापति बनकर सभा के उद्देश्य के सम्बन्ध मे एकदम ही अनभिज्ञ रहना तो मुझे अच्छा नही लगता, क्या कहते हैं आप लोग?"

बात तो ठीक थी। लेकिन उनमें से किसी को भी कुछ मालूम नही था। बाहर के आगन मे, फूलो से लदे एक पुराने अडहुल के पेड के नीचे, लडको का यह दल जब उपेन्द्र को बीच मे बैठाकर दुनिया के सभी सम्भव-असम्भव अच्छे कामो की सूची तैयार करने मे व्यस्त हो उठा था, उसी समय दिवाकर के कमरे से एक आदमी सबकी नजरो से बचकर बाहर चला आया। दिवाकर उपेन्द्र का ममेरा भाई है। बचपन मे मातृ-पितृहीन होकर मामा के घर रहकर गुजारा कर रहा था। बाहर की एक छोटी-सी कोठरी मे पढना-लिखना और रात को सोना था। अवस्था प्राय. उन्नीस की थी। एफ० ए० उत्तीर्ण करके वह बी० ए० मे पढ रहा था।

इस भगोडे पर उपेन्द्र की ज्यो ही नज़र पडी, त्यो ही उन्होने पुकारकर कहा, "सतीश, तू भागा कहा जा रहा है? इधर आ।"

पकड मे आ जाने पर सतीश भयभीत-सा पास आकर खडा हो गया। उपेन्द्र ने पूछा, "इतने दिन तुम थे कहा?"

अपने अप्रतिभ भाव को छोड सतीश हसकर बोला, "इतने दिन मैं यहा था ही नही, उपेन भैया। अपने चाचा को यहा इलाहाबाद गया हुआ था।"

बात ठीक तरह पूरी भी न हो सकी थी कि एक युवक, जिसकी दाढी-मूछ सफाचट थी, टेढी माग, चश्माधारी था, आखो को तनिक दबाकर दात निकालकर बोल उठा, "मन के दु ख के कारण ही क्या सतीश?"

हाईस्कूल की परीक्षा मे इस बार भी उसे भेजा नही गया, इस बात को सभी जानते थे। इसलिए यह बात ऐसी भद्दी सुनाई पडी कि सभी उपस्थित लोगो ने लज्जा से मुह नीचे झुका कर मन ही मन छी छी करने लगे। अपने परिहास का उत्तर न पाने के कारण युवक की हसी गायब हो गयी। लेकिन सतीश अपना हसता हुआ चेहरा लेकर बोला, "भूपति बाबू, मन रहने से ही मन मे दु ख होता है। पास करने की आशा कहिए या इच्छा ही कहिए, मैंने ठीक तरह होश सभालते ही छोड दी थी। केवल बाबूजी ही छोड नही सके थे। इस कारण मन के दु ख से किसी को यदि घर छोडना पडे तो उसका ही छोडना उचित होता, फिर भी वे अटल रह अपनी वकालत करते रहे है। लेकिन तुम कुछ भी क्यो न कहो, उपेन भैया, इस बार उनकी आखे खुल गयी हैं।"

सब लोग हस पडे। इसमे हँसने की कोई बात नही थी। लेकिन भूपति बाबू के अभद्र परिहास मे सतीश नाराज नही हुआ। इससे सभी को सतोष हुआ।

उपेन्द्र ने पूछा, "क्या इस बार तूने पढना-लिखना छोड दिया?"

सतीश ने कहा, "मैंने उसे कब पकड रखा था कि आज छोड देता? मैंने नही उपेन भैया, लिखने-पढने के धन्धे ने ही मुझे पकड रखा था। इस बार मैं आत्मरक्षा करूगा। ऐसे देश मे जाकर रहूगा जहा स्कूल ही न हो।"

उपेन्द्र ने कहा, "लेकिन कुछ करना तो आवश्यक है, मनुष्य एकदम चुपचाप रह भी नही सकता। यह भी ठीक नही है।"

सतीश बोला, "नही, चुपचाप नही बैठूगा। इलाहाबाद से एक नया मतलब प्राप्त कर आया हू। इस बार अच्छी तरह प्रयत्न करके देखूगा कि उसका मैं क्या कर सकता हू।"

विस्तारित विवरण सुनने के लिए सभी उत्सुक हो रहे हैं देखकर वह लज्जायुक्त हसी के साथ बोला,—"मेरे गाव मे जिस तरह मलेरिया है, उसी तरह हैजा भी है। पाच-सात गावो मे ठीक वक्त पर शायद एक भी डाक्टर नही मिलता। मैं उसी स्थान पर जाकर होमियोपैथी चिकित्सा शुरू कर दूगा। मा अपनी मृत्यु के पहले मुझे कई हजार रुपये दे गयी हैं। वह रकम मेरे पास है। उन्ही से अपने गाव के घर पर बैठकखाने मे एक चिकित्सालय खोल दूगा। हसो मत, उपेन भैया, तुम देख लेना, इस काम को मैं अवश्य करूगा। बाबूजी को मैंने राजी कर लिया है। एक महीना बीत जाने के बाद ही मैं कलकत्ता जाकर होमियोपैथी स्कूल मे दाखिल हो जाऊँगा।"

उपेन्द्र ने पूछा, "एक महीने के बाद ही क्यो?"

सतीश ने कहा, "कुछ काम है। दक्खिन टोले मे नवनाट्य समाज को तोडकर एक लफडा निकल पडा है। हमारे विपिन बाबू उस दल के नायक हैं। तार पर तार भेजकर उन्होने ही मुझे बुलाया है। मैंने कह दिया है कि उनकी कन्सर्ट पार्टी को ठीक करके ही किसी दूसरे कार्य मे जुटूगा।"

यह सुनकर सभी ठहाका मारकर हसने लगे। सतीस भी हसने लगा। थोडी देर मे हसी का वेग जब कुछ शान्त पड गया तब सतीश बोला, "एक बसीवादक का अभाव था, इसलिए मैं आज दिवाकर के पास आया था। अगर नाटक की रात को वह मेरा उद्धार कर दे तो और अधिक दौड-धूप नही करनी पडेगी।"

उपेन्द्र ने पूछा, "वह कहता क्या है?"

सतीश ने कहा, "वह कहेगा ही क्या? कहता है कि परीक्षा नजदीक है। यह बात मेरे दिमाग मे घुसती नही उपेन भैया, कि दो साल तक पढने-लिखने के बाद दी जाने वाली परीक्षा किस तरह लोगो की एक ही रात की अवहेलना से नष्ट हो जाती है। मैं कहता हू, जिनकी सचमुच ही नष्ट हो जाती है, उनकी वह नष्ट हो जाये तो उचित ही है। इस तरह पास करने की मर्यादा जिनके लिए हो उनको ही रहे, मेरे लिए तो नही है। तुम इस बात से रुष्ट न हो सकोगे उपेन भैया, मैं तुम को जितना जानता हू ये लोग उसका चौथाई भी नही जानते। जिमनास्टिक अखाडे से लेकर फुटबॉल, क्रिकेट तक बहुत दिन मैंने तुम्हारी

शागिर्दी की है, साथ-साथ घूमकर बहुत दिन, बहुत तरह से, तुम्हारा समय नष्ट होते मैंने देखा है, अनेक परीक्षाओ मे भाग लेते भी तुम को देखा है और विधिपूर्वक स्कॉलरशिप के साथ तुम्हे पास करते भी देखा, लेकिन किसी दिन तुम को परीक्षा ही दुहाई देते नही सुना।"

इस बात को यही दबा देने के उद्देश्य से उपेन्द्र ने कहा, "मुझे तो बासुरी बजाना नही आता।"

सतीश ने कहा, "मै भी अक्सर यही बात सोचता हू। ससार की यह चीज तुमने क्यो नही जाना, मुझे इस पर आश्चर्य होता है। "लेकिन छोडो इस बात को—दुपहरिया की धूल मे तुम लोगो की यह बैठक किस लिए?"

जाडे की धूप की तरफ पीठ किये माथे पर चादर लपेटकर इन लोगो की यह बैठक खूब ही जम गयी थी। दिन इतना चढ आया है इस ओर किसी ने भी लक्ष्य नही किया था। सतीश की बात से समय का ध्यान आते ही सभी चौंककर खडे हो गये। सभा भग होते भूपति ने पूछा, "उपेन्द्र बाबू, तब क्या होगा?"

उपेन्द्र ने कहा, "मैंने तो कह दिया है, मुझे कोई आपत्ति नही है। लेकिन तुम लोगो के स्वामीजी का उद्देश्य अगर पहले ही कुछ मालूम हो जाता तो अच्छा होता। एकदम मूर्ख की तरह जाने मे सकोच लगता है।"

भूपति ने कहा, "लेकिन एक भी बात वे नही बताते। बल्कि ऐसा कहते हैं जो जटिल और दुर्बोध्य है, उसको विशद रूप से साफ तौर से समझाकर बताने का अवसर और सुविधा न मिलने तक बिलकुल ही न बताना अच्छा है। इससे अधिकाश समय सुफल के बदले कुफल ही होता है।"

चलते-चलते बातचीत हो रही थी। इतनी देर मे सभी बाहर आ खडे हुए।

सतीश ने कहा, "क्या बात है उपेन भैया?"

उपेन्द्र को बाधा देकर भूपति बीच में बोल पडा, "सतीश बाबू, आपको भी चन्दे के खाते मे दस्तखत करना पडेगा। इसका कारण इस समय हम लोग ठीक तौर से बता न सकेगे। परसो अपराह्न मे कॉलिज के हॉल मे स्वामीजी खुद ही समझाकर बतायेगे।"

सतीश ने कहा, "तब तो मेरा समझना नही होगा भूपति बाबू। परसो हम लोगो का रिहर्सल होगा। मेरे अनुपस्थित रहने से काम न चलेगा।"

आश्चर्य मे पडकर भूपति ने कहा, "यह कैसी बात आप कह रहे हैं सतीश बाबू! थियेटर की मामूली हानि होने के डर से ऐसे महान् कार्य मे आप सम्मिलित न होगे। लोग सुनेगे तो क्या कहेगे?"

सतीश बोला, "लोग न सुनने पर भी बहुत सी बाते कहते हैं। बात यह नही है। बात आप लोगो को लेकर है। कुछ भी जानकारी न रहने पर भी आप लोग सन्देह छोड इस अनुष्ठान को जितना महान् कहकर विश्वास कर सके हैं यदि मैं उतना न कर सकू तो मुझे आप लोग दोष मत दीजिएगा। बल्कि, जिसको मैं जानता हूँ, जिस काम की भलाई-बुराई को समझता हू, उसकी उपेक्षा करके, उसको हानि पहुचाकर, एक अनिश्चित महत्त्व के पीछे-पीछे दौडना मुझे अच्छा नही मालूम देता।"

उपस्थित छात्र-मण्डली मे आयु और शिक्षा की दृष्टि से भूपति ही सबसे अधिक श्रेष्ठ थे, इसलिए वे ही बातचीत कर रहे थे। सतीश की बात सुषकर उन्होने हसकर कहा, "सतीश बाबू, स्वामीजी की तरह महान् व्यक्ति अच्छी ही बात कहेगे, उसका उद्देश्य अच्छा ही होगा, इस पर विश्वास करना तो कठिन नही है।"

सतीश ने कहा, "व्यक्ति विशेष के लिए यह कठिन नही है, यह मैं मानता हू। यही देखिए न, हाईस्कूल पास कर लेना कोई कठिन काम नही है, फिर भी पास करना तो दूर की बात; तीन-चार वर्षो मे मैं उसके पास तक भी पहुच न सका! अच्छा, बताइए तो स्वामीजी नामक मनुष्य को पहले कभी आपने देखा है, या इनके सम्बन्ध मे किसी दिन आपने कुछ सुना है।"

किसी को भी कुछ मालूम नही है, यह बात सभी ने स्वीकार किया।

सतीश बोला, "यह देखिए, एक गेरुआ कपडे के अलावा उनका और कोई सर्टिफिकेट नही है, फिर भी आप लोग पागल-से हो उठे हैं, और स्वय अपने काम का नुकसान कर उनका भाषण सुनना नही चाहता, इसके लिए आप नाराज हो रहे हैं।"

भूपति ने कहा, "पागल क्या यो ही हो रहे हैं। ये गेरुआ वस्त्रधारी ससार को बहुत कुछ दे गये हैं। जो

कुछ भी हो, मैं नाराज नही होता, दु ख अनुभव करता हू। ससार की सभी वस्तुए सफाई और गवाही साथ लेकर हाजिर नही हो सकती, इस कारण अगर उन्हे झूठ समझकर छोड देना पडे तो बहुत-सी अच्छी चीजो से ही हम लोगो को वंचित रह जाना पडेगा। आप ही बताइए, जिस समय आप सगीत मे सा-रे-गा-मा साधते थे, उस समय आपको कितने रस का स्वाद मिलता था? उसकी कितनी अच्छाई-बुराई आपकी समझ मे आयी थी?''

सतीश बोला, ''मैं भी यही बात कह रहा हू। सगीत का एक आदर्श यदि मेरे सामने न रहता, मीठे रस का स्वाद पीने की आशा यदि मैं न करता, तो उस दशा में इतना कष्ट उठाकर मै सा-रे-गा-मा को साधने नही जाता। वकालत के पेशे मे रुपये की गन्ध अगर आप इतने अधिक परिमाण मे नही पाते, तो एक बार फेल होते ही, रुक जाते, बार-बार इस तरह जी-तोड मेहनत करके कानून की किताबो को कठस्थ नही करते। उपेन भैया भी शायद किसी स्कूल मे अध्यापकी पाकर ही इतने दिनो मे सन्तुष्ट हो गये होते।''

उपेन्द्र हसने लगे, लेकिन भूपति का मुह लाल हो गया। एक खोंचे का जवाब दस गुना करके दिया था। यह बात वे सभी समझ गये।

क्रोध दबाकर भूपति ने कहा, ''आपके साथ बहस करना बेकार है। एक ही वस्तु की अच्छाई-बुराई कितने तरह से हो सकती है, शायद इसे आप नही जानते।''

सब लोग रास्ते के किनारे उकडू बैठ गये थे। सतीश उठ खडा हुआ और हाथ जोडकर बोला, ''क्षमा कीजिए भूपति बाबू! छ तरह के प्रमाणो और छत्तीस प्रकार के प्रत्यक्षो की आलोचना इतनी धूप मे सही नहीं जा सकती। इससे तो अच्छा यही है कि, सन्ध्या के बाद आप बाबूजी की बैठक मे आइएगा, जहा आधी रात तक तर्क-वितर्क चल सकेगे। प्रोफेसर नवीन बाबू, सदरआला गोविन्द बाबू, और घर के भट्टाचार्यजी तक ऐसे ही विषयों पर आधी रात तक बहस किया करते हैं। उनके पास वाले कमरे में मै रहता हू। हेरफेर के दाव-पेच की बातो से मेरे कान अभी तब पूरे पके तो नही हैं, लेकिन मुझ पर रग चढ़ने लगा है। लेकिन असमय मे पेडो के नीचे गिरकर, सियार-कुत्तो के पेट मे जाना मैं नहीं चाहता। इसलिए इस विषय को छोडकर अगर और कुछ कहना हो तो कहिए, नहीं तो आज्ञा दे, चलू।''

सतीश का हाथ जोडकर बाते करने का तरीका देखकर सभी हसने लगे। नाराज भूपति दोगुने उत्तेजित हो उठे। क्रोध के आवेश मे तर्क का सूत्र खो गया, और ऐसी दशा मे जो मुह से निकलता है उसी की गर्जना करके वे कह उठे, ''मैं देख रहा हू आप ईश्वर को भी नही मानते।''

यह बात बहुत ही असम्बद्ध और बच्चो की सी निकल पडी। स्वय भूपति बाबू के भी कानो मे यह बात खटके बिना न रह सकी।

भूपति के लाल चेहरे पर एक बार तीक्ष्ण दृष्टि डालकर फिर उपेन्द्र के चेहरे की तरफ देख सतीश खिलखिला कर हस पडा और भूपति की तरफ देखकर वह बोला, ''आपने ठीक ही किया है भूपति बाबू, 'चोर-चोर' के खेल मे दौडने मे लाचार होने पर 'खड्डो' को छू देना ही अच्छा होता है।''

इस अपवाद से आग-बबूला होकर भूपति ज्यो ही उठ खडे हुए त्यो ही उपेन्द्र ने हाथ पकडकर कहा, ''तुम चुप रहो भूपति, मैं अभी इस मनुष्य को ठीक करता हू। 'खड्डो' को छू देना, ठिकाने जा पहुचना, ये सब कैसी बाते हैं रे सतीश! वास्तव मे मेरा तेरा जैसा सशयी स्वभाव है, इससे सन्देह हो सकता है कि तू ईश्वर तक को भी नही मानता।''

सतीश ने आश्चर्य प्रकट कर कहा, ''हाय रे मेरा भाग्य! मैं ईश्वर को नही मानता! खूब मानता हू। थियेटर का खेल समाप्त होने के बाद आधी रात को कब्रिस्तान के पास लौटता हू। कोई भी आदमी नही रहता, विश्वास के जोर से छाती का खून बर्फ बन जाता है। तुम लोग अच्छे आदमी हो इसका खबर नही रखते। हस रहे हो उपेन भैया, भूत-प्रेत मानता हू, और ईश्वर को मैं नही मानता?''

उसकी बात सुनकर क्रुद्ध भूपति भी हसने लगे। बोले, ''सतीश बाबू, भूत का भय करने से ही ईश्वर को स्वीकार करना होता है ये दोनो बाते क्या आपके विचार से एक ही हैं?''

सतीश ने कहा, ''हा, बिलकुल एक ही हैं। आसपास रख देने से पहचानने का उपाय नही है। केवल मेरे निकट ही नही, आपके निकट भी यही बात लागू है, उपेन भैया के निकट भी बल्कि, जो भी लोग

शास्त्र लिखते हैं, उनके निकट भी। वह एक ही बात है। नही मानते तो अलग बात है, लेकिन मान लेने के बाद जान नही बचती है। चोट-चोट मे, आफत, विपद मे, बहुत तरह से मैंने सोचकर देख लिया है, वाग्वितण्डा भी खूब सुन लिया है, लेकिन जो अन्धकार था, वही अन्धकार है। छोटा-सा एक निराकार ब्रह्म मानो, या हाथ-पाव धारी तैंतीस करोड देवताओ को ही स्वीकार करे—कोई युक्ति नही लगती। सभी एक ही जंजीर मे बधी हुई है। एक को खीचने से सभी आकर उपस्थित हो जाते हैं। स्वर्ग-नरक आ जायेगे, इहकाल परकाल आ जायेगे, अमर आत्मा आ जायेगी, तब कब्रिस्तान के देवताओ को किस चीज से रोकोगे? कालीघाट के कगालो की तरह। चुपके-चुपके तुम किसी एक आदमी को कुछ देकर क्या छुटकारा पा जाओगे? पल भर मे जो जहा था, वही से आकर तुमको घेर लेगे? ईश्वर को मानू और भूत से डरू नही ?" ऐसा नही हो सकता भूपति बाबू।"

जिस ढग से उसने बाते की उससे सभी ठठाकर हसने लगे। दो छोटे बच्चो के हास्य कोलाहल से रविवार का अलस दोपहर चचल हो उठा।

उपेन्द्र की पत्नी सुरबाला से प्रेरित दूर खडा अपने मन मे भुनभुना रहा था। वह भी हल्के भाव से हसने लगा।

झगडे के जो बादल घिर आये थे, इस सब हसी की आधी से न जाने कहा विलीन हो गये।

किसी को होश नही आ रहा कि दुपहरिया बहुत पहले बीत चुकी है और इतनी देर हो जाने से घर के भीतर भूख-प्यास से बेचैन नौकरानिया आगन मे चिल्लाहट मचा रही थी और रसोईघर मे रसोइया काम छोड देने के दृढ सकल्प की बार-बार घोषणा कर रहा था।

दो

तीन महीने के बाद कलकत्ता के एक मकान मे एक दिन सवेरे नीद टूटने पर सतीश ने करवटे बदलते हुए अचानक यह निश्चय कर लिया कि आज स्कूल न जाऊगा। वह होमियोपैथिक स्कूल मे पढ रहा था। गैरहाजिर रहने की इस प्रतिज्ञा ने उसके तन मे अमृत की वर्षा कर दी और दमभर मे उसने अपने विकल मन को सबल बना डाला। वह प्रसन्नचित्त बैठ गया और तम्बाकू के लिए चीख-पुकार करने लगा।

सावित्री कमरे मे आकर पास ही फर्श पर बैठ गयी। हसते हुए उसने पूछा, "नीद खुल गयी बाबू?"

सावित्री इस बासा की नौकरानी और गृहिणी दोनो है। चोरी नही करती थी इसलिए खर्च के रुपये-पैसे सब उसी के पास रहते थे। एकहरा बदन अत्यन्त सुन्दर गठन। उम्र इक्कीस-बाईस की होगी, लेकिन चेहरा देखने से और भी कम उम्र की मालूम होती थी। सावित्री सफेद वस्त्र पहनती थी, और दोनो होठ पान और तम्बाकू के रस से दिन-रात लाल बनाये रहती थी। वह हसकर बातचीत करना तो जानती ही थी, उस हसी का मूल्य भी ठीक उसी तरह समझती थी। गृहसुख से वचित डेरे के सभी लोगो पर उसके मन मे आन्तरिक स्नेह-ममता थी। फिर भी, कोई उसकी प्रशसा करता तो वह कहती कि आदर न करने की दशा मे आप लोग मुझे रखेगे क्यो बाबू! इसके अलावा घर जाकर स्त्रियो से निन्दा करके कहेगे, डेरे पर ऐसी नौकरानी है जो भर पेट दोनो वक्त खाने को भी नही देती। उस अपयश की अपेक्षा थोडी-सी मेहनत अच्छी है। यह कहकर वह हंसती हुई अपने काम को चली जाती थी। डेरे मे एक सतीश ही ऐसा था, जो उसका नाम लेकर पुकारता था। जब तब उसके साथ हसी-मजाक करता या और कभी इनाम भी दे देता था। उसका भी सतीश पर स्नेह कुछ अधिक मात्रा मे था। सारा दिन सभी काम-काजो मे व्यस्त रहने पर भी इसीलिए सदा एक आख और एक कान सुगठित सुन्दर युवक की तरफ लगाये रहती थी। बासा के सभी लोग इस बात को जानते थे और कोई-कोई कौतुक के साथ इसका इशारा करने से भी बाज नही आते थे। सावित्री जवाब न देकर, मुसकराती हुई काम पर चली जाती थी।

सतीश ने कहा, "हा नीद खुल गयी।" इतना कहकर तकिये के नीचे से उसने एक रुपया निकालकर उसके सामने फेक दिया।

सावित्री ने रुपया उठाकर कहा, "सबेरे फिर क्या ले आने की जरूरत हो गयी?"

सतीश ने कहा, "सदेश। लेकिन मेरे लिए नही। अभी तुम रख लो, रात को अपने बाबू के लिए

खरीदकर ले जाना।"

सावित्री ने नाराज होकर रुपये को बिछौने पर फेककर कहा, "रख लीजिए अपने रुपये को। मेरा बाबू सन्देश नही खाता।"

रुपये को फिर फेककर अनुरोध के स्वर मे सतीश ने कहा, "मेरे सिर की सौगन्ध सावित्री, इस रुपये को तुम किसी प्रकार भी वापस न कर सकोगी। मैंने सचमुच ही तुम्हारे बाबू को सन्देश खाने के लिए दिया है।"

सावित्री ने मुह उदास बनाकर कहा, "जब-तब आप स्त्रियो की तरह सिर की सौगन्ध दिलाते रहते हैं, यह बडा अन्याय है। बाबू-बाबू मेरे नही हैं। मेरे बाबू आप लोग हैं।"

सतीश ने हसकर कहा, "अच्छा दे दो रुपया। लेकिन बताओ, मेरे सिवा अगर और कोई बाबू हो तो मैं उसका सिर खाऊ।"

सावित्री हसकर बोली, "मेरा बाबू क्या आप का सौत है जो सिर खा रहे हैं?"

सतीश ने कहा, "मैं उनका सिर खा रहा हू, या वे ही मेरे सिर खा रहे हैं? बल्कि मैं तो उनको सन्देश खिला रहा हू।"

सावित्री ने अपनी हँसी को रोककर कहा, "नौकर-नौकरानियो के साथ इस तरह बातचीत करने से छोटे आदमियो को प्रश्रय मिल जाता है, फिर वे मुह लग जाते हैं, जरा समझ-बूझकर बाते करनी होती हैं, बाबू नही तो लोग निन्दा करते हैं।" यह कहकर रुपया उठा लिया और फिर कमरे से बाहर चली गयी। थोडी ही देर बाद फिर लौटकर बोली,—"इस समय क्या बनेगा?"

भोजन सम्बन्धी सभी बातो मे सतीश एक गुणवान आदमी है, इसका परिचय सावित्री पहले ही पा चुकी थी। इसी के लिए प्रतिदिन प्रात काल वह एक बार आ जाती थी और सतीश की आज्ञा लेकर चली जाती थी, और खुद ही खडी रहकर महराज से सभी कामो को खूब अच्छी तरह पूरा करा लेती थी। इसी समय नौकर तम्बाकू दे गया था, सतीश फिर एक बार करवट लेकर बोला, "जो मन हो वही बनवाओ।"

सावित्री बोली, "क्रोध भी है, देखती हू।"

दीवाल की तरफ मुह फेरकर तम्बाकू खीचते हुए सतीश बोला, "पुरुष ही ठहरा, क्रोध क्यो नही रहेगा? आज मैं भोजन भी नही करूगा।"

सावित्री बोली, "शायद और कही ठिकाना लग गया है। किन्तु कुछ भी हो, सतीश बाबू, स्कूल आपको जाना पडेगा, यह कहे देती हू।"

इतने थोडे समय के बीच ही नियमित रूप से स्कूल जाने की बात फिर सतीश को भार-सा बन कर दबाता जा रहा था, और तरह-तरह के बहाने, नरह-तरह के कारण निकालकर उसने अनुपस्थित होना शुरू कर दिया था। आज उस बहानेबाजी की पुनरावृत्ति का सूत्रपात होते ही वह समझ गयी।

सतीश हडबडाकर उठ बैठा और बनावटी क्रोध के स्वर मे बोला, "शुभ कार्य के शुरू मे ही टोको मत।"

सावित्री ने कहा, "यह तो आप कहेगे ही। लेकिन एन्ट्रेन्स पास करने मे चौबीस साल बीत गये, यह डाक्टरी पास करने मे चौंसठ साल बीत जायेगे।"

सतीश ने क्रोध भाव से कहा, "झूठी बात मत कहो सावित्री। मैंने एन्ट्रेन्स पास नही किया?"

सावित्री हसने लगी। बोली, "इसको भी पास नही किया?"

सतीश ने गरदन हिलाकर कहा, "नही। ईर्ष्यालु मास्टरो ने मुझे पास करने के लिए परीक्षा मे बैठने ही नही दिया।"

सावित्री कपडे से मुह को दबाकर हसती हुई बोली—"तो क्या इसकी भी वही हालत होगी?"

"किसकी?"

"इस डाक्टरी की?"

सतीश ने कहा, "अच्छा सावित्री, गधों की तरह जितने लोग हैं, वे परीक्षा पास करके क्या करते हैं, तुम बता सकती हो?"

सावित्री हसी के वेग को दबाकर बोली, "गधो की तरह लेकिन गधे हैं नही। जो लोग वास्तव में गधे हैं, वे पास ही नही कर सकते।"

सतीश ने दरवाजे के बाहर झाककर एक बार देख लिया। फिर स्थिर भाव से बैठ गया और गम्भीर होकर बोला, "अगर कोई सुन लेगा तो वह सचमुच ही निंदा करेगा। मेरे मुह पर ही मुझे गधा कह रही हो। इसकी सफाई नही दी जा सकती।"

हाय रे! कर्मो के दोष से आज सावित्री घर की सेविका है। इसी कारण वह इस आघात को सहकर बोली, "ठीक ही तो है।" यह कहकर वह चली गयी।

सतीश फिर आलसी की भाँति बिछौने पर लेट गया। उसके मन मे कर्मविहीन समूचे दिन का जो चित्र उज्ज्वल होकर उठ रहा था, सावित्री की बातो की चोट से उसका अधिकांश मलीन हो गया, और मन की जिस व्यथा को लेकर सावित्री स्वय चली गयी, वह भी उनकी छुट्टी के आनन्द को बढाकर नही गया। यद्यपि वह मन ही मन समझ गया, आज फिर नागा करने से लाभ नही होगा, तो भी कुछ न करने का लोभ भी वह छोड न सकने पर आलस्य भरे विरक्त चेहरे से बिछौने पर ही लेट रहा। लेकिन ठीक समय पर स्नान के लिए तकाजा आ पडा, सतीश उठा नही, बोला—"जल्दी क्या है? आज मैं बाहर जाऊगा नही।"

सावित्री ने कमरे मे घुसकर कहा, "यह नही हो सकता। आपको स्कूल जाना ही पडेगा। जाइए, स्नान करके भोजन कीजिए।"

सतीश ने कहा, "तुमको क्या मेरा सरक्षक नियुक्त किया गया है जो तग कर रही हो। आज मैं पादमेकं न गच्छामि।"

सावित्री तनिक हसकर बोली, "नही जाना है तो स्नान तो कर लीजिए। आपके आलस्य से नौकर-नौकरानियो को दु ख होता है, इसे क्या आप नही देखते?"

सतीश ने कहा, "ये कैसे नौकर-नौकरानिया हैं जो नौ बजते न बजते ही दु ख पाने लगते हैं। अब इस डेरे को मुझे भी बदल देना पडेगा। अन्यथा यह शरीर ठीक नही रहेगा।"

सावित्री ने हसकर कहा, "तब तो मुझे बदल ही देना पडेगा।" लेकिन तुरन्त ही वह बात को दबाकर बोल उठी, "तब तक आप को इसी डेरे का नियम मानकर चलना पडेगा, स्कूल मे भी जाना पडेगा। उठिए, दिन चढता जा रहा है।" इतना कहकर सतीश की धोती और अगौछा स्नानघर मे रख आने के लिए चल गडी।

सतीश नियमित संध्या-वन्दन किया करता था। आज वह स्नान करके आया और पूजा के आसन पर बैठकर देर करने लगा। सावित्री दो-तीन बार आकर देख गयी और दरवाजे के बाहर से पुकारती हुई बोली,—"अब देर क्यो, परोसा हुआ भात ठण्डा होकर पानी हो रहा है। स्कूल जाना नही पडेगा। दो कौर खाकर हम लोगो को जरा रिहाई तो दीजिए।"

सतीश और भी पाच मिनट चुपचाप बैठा रहा, फिर खडा होकर बोला, "सध्या-पूजा के समय गडबडी मचाने से जानती हो, क्या होता है?"

सावित्री ने कहा, "गगाजली और पचपात्र सामने रखकर ढोग रचाने से क्या होता है, जानते हैं?"

सतीश ने आँखे फैलाकर कहा, "मैं ढोग रच रहा था! कदापि नही।"

सावित्री कुछ कहने जा रही थी, फिर रुक गयी। उसके बाद बोली, "यह तो आप ही जानते हैं। लेकिन आपको भी तो किसी दिन इतनी देरी नही होती थी। जाइए, भात परोस दिया गया है।" यह कहकर चल दी।

आज जाडे के मधुर मध्याह्न मे डेरा निर्जन और निस्तब्ध था। इस डेरे मे रहने वाले सभी नौकरी करते हैं। वे लोग दफ्तर गये हैं। रसोइया घूमने गया है, बिहारी बाजार से सौदा लाने गया है, सावित्री की भी कोई आहट-आवाज नहीं सुनाई पडती। सतीश ने अपने कमरे मे पहले दिवा-निद्रा की मिथ्या चेष्टा की। फिर उठकर बैठ गया और कुछ सोचने लगा। सिरहाने की खिडकी बन्द थी। उसको खोलकर सामने की खुली छत की तरफ देखते ही इसी क्षण उसने उसको बन्द कर लिया। छत के एक छोर पर बैठकर सावित्री अपने बाल सुखा रही थी और झुककर कोई पुस्तक देख रही थी। खिडकी खोलने, बन्द

करने की आवाज से उसने चौंककर माथे पर आचल डालकर खडी होकर देखा, खिडकी बन्द हो गयी थी। थोडी देर बाद उसने कमरे मे प्रवेश कर कहा, "बाबू, आप मुझे बुला रहे थे?"

सतीश ने कहा, "नही। नही बुलाया।"

"आपके लिए पान और जल ले आऊ?"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "ले आओ।"

सावित्री ने पान और जल लाकर बिछौने पर रख दिया और फर्श पर बैठते हुए कहा, "जाऊ, आपके लिए तम्बाकू लाऊ।"

सतीश ने पूछा, "बिहारी कहा है?"

"बाजार गया है।" कहकर सावित्री चली गयी और थोडी देर के बाद तम्बाकू भरकर ले आयी। बोली, "आज झूठ-मूठ आपने नागा कर दिया।"

सतीश ने कहा, "यही सत्य है। मेरा स्वभाव कुछ स्वतन्त्र है, इसलिए बीच-बीच मे ऐसा न करने से बीमारी पकड लेती है। इसके सिवा मैं विधिवत् डाक्टर बनना भी नही चाहता। इधर-उधर की कुछ बाते सीखकर अपने गांव के मकान पर एक बिना पैसे वाला मुफ्त दवाखाना खोल दूगा। चिकित्सा के अभाव से देश-गाव के गरीब दु खी हैजे की बीमारी से उजडते जाते है, उन लोगो की चिकित्सा करना ही मेरा उद्देश्य है।"

सावित्री ने कहा, "बिना पैसे की चिकित्सा मे शायद अच्छी तरह सीखने की आवश्यकता नही है! अच्छे डाक्टर केवल बडे आदमियो के लिए होते हैं, और गरीबो के लिए गवार? लेकिन ऐसा भी होगा कैसे? आपके चले जाने से विपिन बाबू भारी कठिनाई मे पड जायेंगे?"

विपिन बाबू का जिक्र होने से सतीश लज्जित होकर बोला, "मेरे जैसे मित्र उनको बहुत मिल जायेंगे। इसके अलावा अब मैं वहा जाता भी नही।"

सावित्री ने आश्चर्य के साथ पूछा, "जाते नहीं? तो फिर उनको गाना-बजाना सिखाता कौन है?"

सतीश ने चिढकर कहा, "गाना-बजाना क्या मैं सिखाता हू?"

सावित्री बोली, "क्या मालूम बाबू, लोग यही कहते हैं।"

"कोई नही कहता, यह तुम्हारी मनगढन्त बात है।"

"आपको विपिन बाबू का मुसाहिब कहते हैं। यह भी क्या मेरी मनगढन्त बात है?"

यह बात सुनकर सतीश आपे के बाहर हो उठा। विपिन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध का बाहर के लोगो की चर्चा का विषय होने पर उसका फल साधारण क्या होता, इसकी जानकारी उसको थी। कलकत्तावासी विपिन की सासारिक अवस्था और उसके आमोद-प्रमोद की अपर्याप्त साज सरजाम के बीच प्रवासी सतीश का स्थान लोगो की दृष्टि से नीचे ही उतर आयेगा, सतीश के दिल का यह सदेह सावित्री की तीक्ष्ण प्रहार से बिलकुल ही उग्र मूर्ति धारण करके बाहर निकल आया। वह दोनों नेत्रो को सतेज बनाकर गरज उठा, "मैं मुसाहिब हू? कौन कहता है, बताओ तो?"

मन ही मन मुस्कराकर सावित्री बोला,—"किसका नाम बताऊ? जाऊ, राखाल बाबू का बिछौना धूप मे डाल आऊ।"

"बिछौना छोडो, नाम बताओ।"

"कुमुदिनी।" सावित्री ने हस कर कहा।

सतीश ने आश्चर्य मे पडकर कहा, "उसको तुम किस तरह जान गयी?"

सावित्री बोली, "उन्होने मुझे काम करने के लिए बुला भेजा था।"

"तुमको? साहस तो कम नही है। तुमने क्या कहा?"

"अभी तक मैंने कुछ कहा नही है, सोच रही हू, वेतन ज्यादा है, काम कम है, इसीलिए लोभ हो रहा है।"

सतीश की आखो से आग की चिनगारिया निकलने लगी। उसने कहा, "यह है विपिन की करतूत। तुम्हारा नाम वह अकसर लेता रहता है।"

सावित्री ने हसी को दबाकर कहा, "लेते हैं? तब तो मालूम पडता है मेरे ऊपर दिल लग गया है?"

सावित्री की ओर क्रूर दृष्टि से देखने के बाद सतीश ने कहा—"लगवाता हू। सौ रुपये जुर्माना देने के बाद से किसी को आज तक पीटा नही "अच्छा तुम जाओ।"

सावित्री चली गयी। राखाल ने बिछौने को धूप मे डालकर झटपट वापस आकर खिडकी के सूराख से झाककर उसने देखा, सतीश कुरता पहन चुका है और बक्स मे से एक बण्डल नोट जेब मे रख रहा है। सावित्री दोनो चौखटो पर हाथ रखकर रास्ता रोककर खडी हो गयी। बोली, "कहा जाइएगा?"

"काम है, रास्ता छोड दो।"

"क्या काम है, सुनू तो।"

सतीश ने नाराज होकर कहा, "हटो!"

सावित्री हटी नही। हसकर बोली, "भगवान ने आप को किसी गुण से वचित नही रखा है। इसके पहले आप जुर्माना भी दे चुके हैं।"

सतीश ने आँखे तरेर ली, कुछ बोला नही।

सावित्री बोली, "यह आपका भारी अन्याय है। कहा मैं काम करू, कहा न करू, यह मेरी इच्छा पर है, आप क्यो झगडा करना चाहते हैं।"

सतीश बोला, "मैं झगडा करू या न करू यह मेरी इच्छा की बात है, तुम क्यो रास्ता रोक रही हो?"

सावित्री ने हाथ जोडकर कहा, "जरा इतजार कीजिए मेरे आने पर जाइएगा।"

सतीश ज्यो ही लौटकर खटिया पर बैठ गया, त्यो ही सावित्री ने बाहर जाकर दरवाजे की जजीर चढ़ा दी। धीरे-धीरे कहती गयी, "जब तक आप शात न होइएगा, दरवाजा न खोलूगी। नीचे जा रही हूँ।" यह कहकर वह नीचे चली गयी। बाहर न जा सकने के कारण सतीश अपने कुरते को जमीन पर फेककर चित लेट गया।

विपिन के साथ उसका परिचय इलाहाबाद मे हुआ था। कलकत्ता जाकर यथेष्ट घनिष्ठ हो जाने पर भी इस डेरे मे उसका जब-तब आना-जाना बढता चला जा रहा था। इसे वह अनुभव कर रहा था। सावित्री की बातो मे वह कारण बिलकुल ही सुस्पष्ट हो उठा। सतीश का मित्र और बडा आदमी होने से इस डेरे मे उसका बहुत सम्मान था। सतीश की अनुपस्थिति में भी उसके प्रति आदर-सत्कार की जिससे त्रुटि न होने पाए, इसका भार सतीश ने सावित्री को सौंप दिया था। इस आदर-सत्कार को विपिन बाबू पूरी मात्रा मे वसूल करते जा रहे थे, यह खबर डेरे पर लौट आने पर सतीश जब-तब पा रहा था। अपने मन की इस सरल उदारता की तुलना मे विपिन की उस भद्दी क्षुद्रता ने भारी कृतघ्नता की भांति आज उसको बाध दिया और सभी निमत्रण-आमत्रण, सौन्दर्य, घनिष्ठता एक ही पल मे उनके लिए विष के समान बन गये। बाहरी तौर से वह चुपचाप बना रहा, लेकिन मर्मान्तक क्रोध, पिंजडे मे बन्द सिंह पशु की भांति उसके हृदय मे इस कोने से उस कोने तक घूमने लगा।

एक घण्टे के बाद वापस आने पर सावित्री ने खिडकी के बाहर से धीरे-धीरे पूछा, "क्रोध शान्त हो गया बाबू?"

सतीश चुप रहा।

दरवाजा खोलकर सावित्री कमरे मे आकर बोली, "अच्छा, यह कैसा अत्याचार है, बताइए न?"

सतीश ने किसी तरफ न देखकर पूछा, "कैसा अत्याचार?"

सावित्री ने कहा, "सभी अपनी भलाई खोजते हैं, मैं भी अगर कही कोई अच्छा काम पाऊ, तो उसमे आप नाराज क्यो होते हैं?"

सतीश ने उदास भाव से कहा, "नाराज क्यो होऊगा? तुम्हारी इच्छा होगी तो जरूर जाओगी।"

सावित्री ने कहा, "फिर मेरे नये मालिक को मारने-पीटने की तैयारी आप क्यो कर रहे हैं?"

सतीश बोला, "यदि तुम्हारी चीज को कोई भुलावा देकर ले जाय, तुम क्या करोगी?"

"लेकिन मैं क्या आपकी चीज हू?" कहकर सावित्री हस पडी।

सतीश ने लजाकर कहा, "धत्! यह बात नही है, लेकिन ।"

सावित्री ने कहा, "लेकिन की अब जरूरत नही है, मैं जाऊगी नही।"

सतीश का कुरता धरती पर पडा था, सावित्री ने उसको उठा लिया और जेब से नोटो का बण्डल

निकाल लिया। बक्स मे चाबी लगी हुई थी, नोटो को अन्दर रखकर ताला बन्द करके चाभी अपने रिंग मे पहिनाते हुए बोली, "मेरे ही पास रहेगी। रुपये की जरूरत पडने पर माग लेना।"

सतीश ने कहा, "अगर तुम चोरी करो तो?"

सावित्री हस पडी, आचल मे बधे हुए चाभियो के गुच्छे को पीठ पर फेककर बोली, "मैं चोरी करूगी तो आपको कोई चोट न पहुचेगी।"

सतीश सावित्री के चेहरे की तरफ थोडी देर तक ताकता रहा। उस क्षणकाल की दृष्टि से उसने क्या देख लिया, वही जानता है, चौंककर वह बोल उठा, "सावित्री, तुम्हारा घर कहा है?"

"बगाल मे।"

"इससे ज्यादा और कुछ न बताओगी?"

"नही।"

"घर कहा है, भले ही न बताओ, जाति क्या है, यह तो बताओ।"

सावित्री ने तनिक हसकर कहा, "यह जान लेने से भी क्या होगा? मेरे हाथ का पकाया भात तो आप खाएगे नही।"

थोडी देर तक सोचकर सतीश बोला, "सम्भव नही है। लेकिन जोर के साथ निश्चय ही 'नही' भी मैं नही कह सकता।"

अपनी चमकीली आखो को सतीश के चेहरे पर डालकर क्षण-भर बाद ही वह हस पडी। बालिका की तरह सिर हिलाकर अपने कण्ठ-स्वर मे अनिर्वचनीय प्यार घोलकर बोली, "नही कह नही सकते, क्यो, बताइए न?"

सतीश के सिर पर मानो भूत सवार हो गया। उसकी छाती का रक्त उथल-पुथल करने लगा। वह बोल उठा, "क्यो, मैं नही जानता सावित्री, लेकिन तुम पकाकर दोगी तो मैं खाऊगा नही, यह कह देना कठिन है।"

"कठिन है? अच्छा, यह एक दिन देख लिया जायेगा। ओह! राखाल बाबू का तकिया धूप मे डालना भूल गयी।" कहकर चल पडी।

"एक बात सुनती जाओ।" कहकर सतीश एकाएक सामने की ओर झुक पडा और हाथ बढाकर उसके आचल का छोर उसने थाम लिया। अपनी आखो मे बिजली की वर्षा करती सावित्री बोली "छि! आ रही हू।" और झटके से आचल छुडा लेने के बाद ओझल हो गयी।

अचानक मानो कोई एक काण्ड हो गया। उसका यह अकस्मात त्रासयुक्त पलायन, यह दबे हुए कण्ठ की 'आ रही हू' की आवाज और इस आख की बिजली ने वज्राग्नि की तरह सतीश की समस्त दुर्बुद्धि को एक ही पल मे जलाकर राख बना डाला। कुत्सित लज्जा के धिक्कार से उसका सारा शरीर शूल से बिधे हुए साप की भाति मरोड-मरोडकर उठने लगा। उसके मन मे यह खयाल आया कि इस जन्म मे वह फिर सावित्री को अपना मुह न दिखा सकेगा। किसी जरूरत से वह फिर आ न जाय इस आशका से वह उसी क्षण एक शाल खीचकर तूफान के वेग से बाहर निकल गया। तीन-चार सीढिया बाकी ही थी कि उसी समय सतीश ने सावित्री के कण्ठ की आवाज फिर सुन ली। वह रसोईघर से दौडकर चली आयी थी और पुकारकर कह रही थी, 'खाना खाकर घूमने जाइए बाबू, वर्ना वापस आने मे देर होने से सब नष्ट हो जाएगा।

मानो सुनाई ही नही पडा, इस भाव से सतीश बाहर चला गया।

दूसरे दिन प्रात काल जिस समय सावित्री रसोई के बारे मे पूछने के लिए गयी, सतीश ने धीरे-धीरे कहा, "मन मे कुछ खयाल मत करना।"

सावित्री ने आश्चर्य के साथ पूछा, "क्या खयाल मन मे न लाऊगी?"

सतीश सिर झुकाकर चुप हो रहा।

मीठी हसी हसकर सावित्री ने कहा, "अच्छा, जो कुछ भी हो, मेरे पास समय नही है—क्या रसोई बनेगी, बताइए न?"

"मैं नही जानता—तुम्हारी जो इच्छा हो।"

"अच्छा।" कहकर सावित्री चली गयी, उसने द्वितीय प्रश्न नही पूछा।

दो घण्टे के बाद लौटकर बोली, "कैसा काण्ड मचा रखा है, बताइए तो। आज भी 'पादमेक न गच्छामि' ही रहेगा?"

सतीश फिर भी चुप रहा।

सावित्री ने कहा, "नौ बज चुके हैं।"

समय बीत जाने की खबर से सतीश रत्तीभर भी घबराहट न दिखाकर बोला, "बज जाये, मुझे और कुछ अच्छा नही लग रहा है।"

आलस्य मे बेकार समय नष्ट करना सावित्री बिलकुल ही सह नही सकती थी। इसी कारण वह कुछ दिनो से भीतर ही भीतर कुपित असहिष्णु होती जा रही थी। जरा रूखे कण्ठ से उसने पूछा, "क्या अच्छा नही लग रहा है? पढने जाना?"

सतीश भी स्वय मन ही मन चिढता जा रहा था। जवाब नही दिया। उसके चेहरे की तरफ देखकर सावित्री यह समझ गयी, और एक क्षण चुप रहकर अपने कण्ठ के स्वर को कोमल बनाकर बोली, "लिखना-पढना अच्छा नही लग रहा है। अब शायद औरतो का आचल पकडकर खीचातानी करना अच्छा लग रहा है। स्कूल जाइए। बेकार उपद्रव मत कीजिए।"

उसके तिरस्कार मे यद्यपि हार्दिक स्नेह और एकान्त कल्याणेच्छा के अतिरिक्त और कुछ भी नही था किन्तु बातो के तरीके ने सतीश के सर्वांग मे मानो केवाँच पोत दिया। देखते-देखते उसकी आखे और चेहरा क्रोध से लाल हो उठा। वह बोला, "जो भी बात मुह मे आती है, तुम वह कह डालती हो। प्रश्रय पा लेने पर केवल कुत्ते ही सिर नही चढ जाते, मनुष्य को भी वह बात याद दिलानी पडती है।"

"यह तो है गाली-गलौज।" सावित्री पल भर चुप रही, फिर कण्ठ-स्वर को और धीमा कर बोली, "पडता तो है जरूर। नही तो आपको ही याद दिलाने की क्यो जरूरत पडेगी कि यह है भले आदमियो का मकान, वृन्दावन नही है।"

इतना कहकर वह तेज कदम बढाये चली गयी। आश्चर्य से सतीश स्तम्भित हो रहा। सावित्री उसको इस तरह बीध सकती है, इस बात को तो वह अपने मन मे स्थान भी नही दे सकता था। कुछ देर तक एक ही दशा मे बैठा रहकर वह हठात् उठ खडा हुआ और किसी तरह स्नान-भोजन करके पढने के बहाने बाहर निकल गया।

उस दिन उसका अपमान से आहत चित्त उसकी प्रवृत्तियो पर शासन करने लगा और वह जितना ही अपने अचिन्तनीय अद्भुत व्यवहार का तात्पर्य खोजकर भी न पा सका, उतना ही उसके मन मे एक बात बार-बार चक्कर काटने लगी। किसलिए उसने आचल पकड लिया था, कौन-सी बात उसको कहने की आवश्यकता पड़ी थी और सावित्री इस तरह भागकर न चली जाती तो वह क्या कहता? क्या करता? उसका अपदस्थ क्रुद्ध अन्त करण निरन्तर इस तिक्त प्रश्न को लेकर सावित्री से अधिक निष्ठुर भाव से उसे बीधने लगा। इसी प्रकार सारा दिन वह अपने ही हथियार से स्वय-क्षतविक्षत होकर सन्ध्या समय गगाजी के किनारे जाकर निर्जीव की भाति एक पत्थर पर बैठ गया।

कल जिस समय सावित्री के सामने मन की दुर्बलता अचानक प्रकट हो जाने पर वह लज्जा के मारे मकान से लम्बी सास भरता हुआ भाग गया था, इस समय उस लज्जा मे मानो कुछ मिठास मिली हुई थी। मानो आड मे रहकर किसी ने उसमे भाग ले लिया था लेकिन आज सावित्री के व्यग्य-वचन की आग से उस रस की अन्तिम बूद तक सूख गयी और निस्सग लज्जा बिलकुल ही शुष्क कठिन होकर उसके हृदय मे बद्धमूल होकर बैठ गयी। उस दिन उसके आत्म-सम्मान ने केवल सिर झुका दिया था, आज वह उसके कन्धे पर टूट पडा, फिर सबसे बढकर यह दु ख चोट पहुँचाने लगा कि इस स्त्री से उसने इतने दिन जितने परिहास किये हैं, उन सभी का आज एक गन्दा अर्थ निकाला जायेगा। कल प्रात काल तक सचमुच ही उसके परिहास मे व्यग्य के अलावा कोई दूसरा अर्थ नही था, निर्जन मध्याह्न के इतने ही असमय के बाद उस बात को तो जबान पर लाने का भी अब मार्ग नही रहा। आसक्ति बहुत दिनो से छिपी हुई दशा मे प्रतीक्षा नही कर सकती थी, यह बात तो सावित्री किसी तरह भी विश्वास न करेगी। वह कहेगी, इसके मन मे यही बात थी। लेकिन उसके मन मे तो कुछ भी नही था। इस सत्य को समझाकर

मन हो, करे लेकिन अच्छे रहे।" मकान पर पहुचने पर पुकारने के बाद विहारी ने दरवाजा खोलने के साथ ही कहा, "सतीश बाबू बडी रात को आये और मालूम नहीं कहा से खाना खाकर आये।" यह खबर पहले देने की जरूरत है, यह बात इस बूढे मे छिपी नही थी। सावित्री ऊपर जा रही थी, ठिठककर खडी हो गई। भौंहो को सिकोडकर उसने कहा, "शायद बाबू ने खाया नही?"

"नही, उनका खाना तो ढका हुआ रखा है।"

सावित्री 'हू' कहकर ऊपर चली गयी। उसका दुश्चिन्ता से ग्रस्त मन निर्भय होने के साथ फिर ईर्ष्या से जल उठा।

प्रात दिन चढ आने पर जब सतीश की नीद टूटी, ठीक उस समय सावित्री आ खडी हुई। उसके मुह की तरफ देख लेने के साथ ही सतीश ने सिर झुका लिया। कुछ देर बाद सावित्री ने कहा, "क्या रसोई बनेगी, यह जान लेने के लिए आयी हू।"

सतीश ने किसी ओर बिना देखे कहा—"रोज जो बनती है वही बनने दो।"

"अच्छा।"कहकर सावित्री जाने को तैयार होते ही फिर खडी हो गयी। बोली, "लिखने-पढने की तरह बाबू को क्या खाना-पीना भी अब अच्छा नही लगता?"

सतीश ने धीरे से कहा, "मैं खा आया था।"

उसने डर से झूठी बात कह दी। लेकिन कहा, इस बात को भी सावित्री ने घृणा के कारण नही पूछा। थोडी देर चुप रहकर बोली, "आज दो दिन से आप भागते हुए घूम रहे हैं किस बात के डर से, सुनू तो? मेरे कारण अगर असुविधा होती हो तो आप जवाब दे सकते हैं।"

सतीश ने मुह ऊपर उठाकर कहा, "तुम्हारा अपराध क्या है? इसके अलावा मै तो जवाब देने का मालिक भी नही हू, यह बासा तो केवल मेरा अकेले का नही है।"

सावित्री ने कहा, "अकेले का होता तो शायद जवाब दे देते। अच्छा, तो मै खुद ही चली जा रही हू।"

सतीश चुप ही रहा। यह देखकर सावित्री मन ही मन और भी जल उठी, बोली, "मेरे जाने से आप खुश होते हैं? आपके पैरो पर गिरती हू सतीश बाबू हा या नही एक जवाब दीजिए।"

फिर भी सतीश चुप ही रहा। सावित्री इस बासे पर अपना कितना हक रखती है, इस बात को वह जानता था और इस प्रकार उसके चले जाने से कोई भी बात छिपी न रहेगी, तब सभी बाते एक मुह से दूसरे मुह मे बढते-बढते कैसी घृणित आकृति धारण कर लेगी, इसका निश्चित अनुमान करके वह डर गया। क्षणभर चुप रहकर उसने मीठे स्वर से कहा, "मुझे क्षमा करो सावित्री! जब तक मैं यहा हू, कम से कम तब तक तो कभी मत जाओ।"

कोई दूसरा समय होता तो वह तुरन्त क्षमा कर देती, लेकिन सतीश के सम्बन्ध मे वह शायद एक निराधार सन्देह का मन ही मन पोषण कर रही थी, इसलिए इस मृदु कण्ठ-स्वर को कपटाचरण समझकर वह निर्दय हो उठी, और उसके ही गले को अनुकरण करके वह उसी क्षण बोल उठी, "आप इतना आडम्बर करके क्षमा मागकर साधु बनने जा रहे हैं, किसलिए? मुझ जैसी नीच स्त्री का आचल पकडकर ऐसा क्या आपने नया काम किया है कि लज्जा से बिलकुल ही मरे जा रहे हैं! इससे अच्छा यह है कि आप अपने घर चले जाइए। लिखना-पढना आप का काम नही है।"

जो सतीश अपने उग्र स्वभाव के कारण किसी की भी परवाह नही करता था, बातो को सह लेना जिसका स्वभाव नही था, वह इस समय इतने बडे अपमान की बात से चुप हो रहा। उसका अपराधी मन भारी बोझ से दबे हुए बोझ ढोने वाले पशु की तरह इस प्रकार निरुपाय दशा मे राह मे सकोच से पडा हुआ था, कि सावित्री के इस बार के निष्ठुर आघात से भी वह किसी तरह अपना मस्तक ऊपर उठाकर खडा न हो सका। किन्तु सावित्री भी चौक उठी। उसकी स्पर्धा क्रोध को भी पार कर गयी, यह बात उसके अपने कानो मे भी जा लगी। बडी देर तक वह चुपचाप खडी रही, फिर धीरे-धीरे बाहर निकल गयी।

तीन

सावित्री आज भी काम-धन्धो मे व्यस्त रहती हुई दिन-भर उत्कण्ठित बनी रही। सतीश यदि कल की तरह आज भी क्रोध करता अथवा एक भी बात का जवाब देता तो अच्छा होता, लेकिन उसने कुछ भी

नही किया। उदास मुख मे नियमानुसार भोजन करके पढने चला गया और ठीक समय पर लौट आकर चुपचाप अपने कमरे मे बैठा रहा। आड मे रहकर सावित्री सब कुछ लक्ष्य करने लगी, लेकिन किसी तरह का बहाना करके भी आज उसके कमरे मे घुसने का उसने साहस नही किया। प्रतिदिन सन्ध्या के बाद वह उसके कमरे मे झाडू लगा आती थी, आज बिहारी को भेज दिया और सन्ध्या के बाद वही बत्ती जला आया।

नित्य इसी समय राखाल बाबू के कमरे मे शतरज का अड्डा जमता था, आज भी जम गया। सामने की खुली छत पर कोई भी नही था। सावित्री इधर-उधर देखकर अपने सारे सकोच को बलपूर्वक हटाकर चुपके-चुपके पैर बढाती हुई सतीश के कमरे मे जा पहुची। सतीश बिछौने पर चित लेटा हुआ शायद छत की कडियो को गिन रहा था। अब उठकर बैठ गया। सावित्री ने कहा, "आपके लिए सन्ध्या-पूजा का स्थान ठीक कर दू।"

सतीश ने कहा, "अच्छा, कर दो।"

फिर सावित्री को चुप हो जाना पडा। लेकिन कुछ देर बाद ही वह बोल उठी, "अच्छा, लोग क्या कहेगे बताइए तो?"

सतीश ने कुछ जवाब न दिया।

सावित्री बोली, "आपने मुझे रहने को कहा, "लेकिन स्वय कैसा उत्पात मचा रहे हैं, बताइए तो?"

सतीश ने गम्भीर भाव से कहा, "मैंने कोई भी उत्पात नही मचाया, केवल चुपचाप पडा हुआ हू।"

सावित्री बोली, "यही चुपचाप पडा रहना तो सबसे अधिक बुरा है। जब सभी चुपचाप पडे नही हैं तब आपके चुपचाप पडे रहने से ही चर्चा होने लगेगी, यही क्या आपकी इच्छा है?" थोडी देर चुप रहकर वह फिर बोली, "वही जो चुभोकर घाव कर देने की कहावत है, आप ठीक वही कर रहे हैं। दोष नही है, फिर भी दोषी बनकर बैठे हुए हैं। इस बात को लेकर पाच आदमी कानाफूसी करेगे, हसी-मजाक करेगे, यह आप सह सकेगे, मुझसे तो सहा न जायेगा। मुझे यहा से चला जाना पडेगा।"

सतीश ने मन मे सोचा, "दोष क्या, मैंने तो कुछ भी नही किया?"

सावित्री ने कहा, "नही। अच्छी तरह विचार कर देखिए तो, मन आप ही आप साफ हो जाएगा। मेरे सम्बन्ध मे आपकी तरह दोष ।" सावित्री फिर कुछ बोल न सकी। दौडता हुआ घोडा अचानक गहरे खन्दक के किनारे जाकर अपने दोनो पैरो को गडाकर जिस तरह जी-जान से रुककर खडा हो जाता है, सावित्री की चलती हुई जबान ठीक उसी तरह रुक गयी। उसकी इस आकस्मिक निस्तब्धता से आश्चर्य मे पडा हुआ सतीश ज्यो ही मुह ऊपर उठाकर देखने लगा त्यो ही आपस मे आखे लड गयी। अपनी लज्जा से सावित्री आप ही मर गयी। वह जो यही बात कहने गयी थी कि उसकी तरह नारी के सम्बन्ध मे इस प्रकार के अपराध मे लज्जा का कारण नही है, इस लज्जा से उसके केश तक काप उठे।

सतीश कोई बात कहने जा रहा था, लेकिन सावित्री ने उसको रोककर कहा, "चुप रहिए, आप भी समझ ले। झूठ-मूठ तिल का ताड बनाकर कष्ट मत भोगिए। ऐ बिहारी, बाबू के लिए सन्ध्या-पूजा का स्थान जरा जल्दी से धो डालो, मैं देर से आसन लिए खडी हू।"

बिहारी किसी काम से इसी तरफ आ रहा था, तुरत जल लाने के लिए जब वह लौट गया, तब सावित्री ने लाछित अपमान के स्वर मे कहा, "आपके बर्ताव से आज दो दिनो से मैं कितनी परेशान हो उठी हू, इसको क्या आप आखे उठाकर एक बार देख भी नही पा रहे हैं? आश्चर्य है।"

उसकी इतनी शीघ्रता मे कही हुई बातो को ठीक से समझ लेने का अवकाश सतीश को मिला नही, तो भी उसके अन्दर की ग्लानि मानो स्वच्छ होकर चली आयी और दूसरे ही क्षण क्षमा पाये हुए अपराधी की भाति पछतावे के स्वर मे उसने कहा, "लेकिन मैंने क्या तुम्हारा अपमान नही किया?"

सावित्री ने कहा, "न समझने से मैं आपको समझाऊगी कैसे? सौ बार, हजार बार कहती हू, उससे मेरी तरह की स्त्रियो का कोई अपमान नही होता। कृपा करके शात हो जाइए, केवल इतनी ही विनती आपसे आपके चरणो मे कर रही हू।"

सतीश कुछ कहने जा रहा था, लेकिन सावित्री अपनी दोनो भौहो को सिकोडकर सकेत मे मना करके बोली, "बिहारी आ गया।"

बिहारी लोटे मे पानी लेकर आ गया था। सावित्री ने इसके हाथ से लोटा लेकर, कमरे के एक कोने को, अच्छी तरह धोकर आचल से पोछकर सतीश से कहा, "आप जाइए, हाथ-पांव धोकर सन्ध्या करने के लिए बैठ जाइए। पूजा की सामग्री आदि उस ताख मे है।" इतना कहकर सतीश के दुर्विष पूर्ण हृदय-भार को चुपचाप दूर करती हुई बिहारी को साथ लेकर वह धीरे-धीरे बाहर चली गयी।।

ध्यान लगाकर साध्यकृत्य समाप्त करके उठने के साथ ही सतीश ने देखा, इस बीच कोई चुपके से बाहर आकर आसन बिछाकर उसके लिए भोजन रख गया है। यद्यपि कमरे मे कोई नही था, तो भी वह निश्चित रूप से समझ गया कि वह अकेला नही है। आसन पर बैठकर उसने कहा, "अभी इतना अधिक खा लेने से फिर तो रात को न खा सकूगा।"

बाहर से उत्तर आया, "खाना भी न पडेगा, विपिन बाबू के यहा से आदमी निमन्त्रण दे गया है।"

सतीश हस पडा। बोला, "जाओ, जलाओ मत, मैं कही भी जा न सकूगा।"

सावित्री आड से ही बोली, "ऐसा कैसे होगा। कह गये हैं, शायद कही जाना होगा, आप जानते ही होगे और न जाने उन लोगो का सब कुछ पण्ड हो जायेगा। गाना-बजाना।"

"होने दो।" इतना कहकर सतीश इस विषय की चर्चा बन्द करके चुपचाप भोजन करने लगा और समाप्त हो जाने पर बिछौने के सिरहाने बत्ती लाकर भले लडके की भाति एक डाक्टरी की किताब खोलकर लेट गया। लेकिन उस तरफ किसी भी दशा मे मन न लग सका। उसका व्याकुल मन बन्धन से छूटे हुए घोडे की तरह बेकार सर्वत्र दौडने लगा।

रसोई को ढककर रसोइया महाराज बिहारी से गाजा मगवा रहा था और राखाल बाबू के कमरे मे शतरज खेल का कोलाहल बढता ही जा रहा था।

सतीश ने पुकारा, "सावित्री।"

सावित्री उस समय भी चौखट के बाहर बैठी थी, बोली, "कहिए।"

सतीश बोला, "विपिन बाबू के निमन्त्रण मे जाना महापाप है। बिना समझे पाप कर डाला है अवश्य, लेकिन समझकर न करूगा।"

सावित्री ने बाहर से पूछा, "पाप क्यो?"

सतीश ने कहा, "मैं जानता हू किस स्थान पर उनके गाने-बजाने की तैयारी चल रही है। केवल उस स्थान पर जाना ही पाप का काम है।"

"ठीक बात है। ऐसे स्थान पर न जायें।"

सतीश उत्तेजित होकर बोला, "सचमुच ही न जाऊगा। लेकिन वे लोग सहज ही मे मुझे छुटकारा देगे, ऐसा मालूम नही होता। इसीलिए तुम्हे पहले से सावधान कर दे रहा हू, अगर कोई आये तो कह देना मैं घर पर नही हू, रात को भी न जाऊगा। समझ गयी न।"

सावित्री बोली, "समझ गयी।"

सतीश ने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया सोचकर एक गहरी सास ली। क्षण भर चुप रहकर सतीश ने कहा, "कहा से तेज हवा आ रही है सावित्री, खिडकिया बन्द कर दो।"

सावित्री आकर खिडकिया बन्द करने लगी। सतीश एकटक देखता रहा। देखते-देखते अकस्मात् कृतज्ञता से उसका हृदय भर गया। बोला, "अच्छा, सावित्री, तुम अपने को नीच स्त्री क्यो कहा करती हो?"

सावित्री बोली, "जो बात सच है, वह क्या कहूगी नही?"

सतीश ने कहा, "यह बात किसी तरह भी सच नही है, तुम गले तक गगाजल मे खडी होकर बोलोगी तो भी मैं विश्वास न करूगा।"

सावित्री मुसकराकर बोली, "क्यो नही करोगे?"

"यह नही मालूम। शायद सच नही है, इसीलिए। नीच की तरह तुम्हारा व्यवहार नही है, बातचीत की तरीका नही है, आकृति नही है, इतना लिखना-पढना भी तुमने कहा सीखा?"

वह फर्श पर दूर बैठी थी। सावित्री हसकर बोली, "इतना, कितना सुनू तो?"

सतीश कुछ कहने ही जा रहा था कि खुली पुस्तक को एक ओर रख थमक गया। बाहर से जूतो की

आवाज आ रही थी। दूसरे ही क्षण उन्मत्त कण्ठ से पुकार आयी, "सतीश बाबू!"

सतीश जान गया, यह विपिन का दल है उसको ही पकड़ने आया है। और कोई बात उसने नहीं सोची। बत्ती बुझाकर झट सो रहा। पास ही फर्श पर बैठी हुई सावित्री व्याकुल भाव से बोली, "यह क्या कर डाला?"

दूसरे ही क्षण अधेरे दरवाजे के सामने दो मूर्तिया आकर खडी हो गयी। एक ने कहा, "यही तो कमरा है सतीश बाबू का।"

दूसरे ने कहा, "नौकर ने कहा कि बाबू कमरे मे हैं।"

पहले व्यक्ति ने क्रोध करके कहा, "कमरे मे तो अधेरा है। कोई भला आदमी क्या कभी शाम को डेरे पर रहता है? तुम्हारा जितना ।"

दूसरा व्यक्ति उसके उत्तर मे धीमी आवाज मे कुछ कहकर जेब टटोल कर दियासलाई निकाल कर बत्ती जलाने को तैयार हुआ।

इधर बिछौने के भीतर सतीश के शरीर का खून पानी हो गया। वह विलायती कम्बल ओढ़कर पसीने से तरबतर होने लगा, और फर्श के ऊपर सावित्री लज्जा और घृणा से काठ-सी बनकर बैठ रही।

दीपशलाका जल उठी। 'यहा यह कौन बैठा हुआ है?' पहले व्यक्ति ने ज्यों ही कमरे मे घुसकर ढूढकर बत्ती जलाई त्यो ही उठ खडी हुई।

दूसरे व्यक्ति ने कुछ हटकर खडे होकर पूछा, "कहा हैं सतीश बाबू।"

सावित्री इशारे से बिछौना दिखाकर चली गयी। उसके चले जाने के साथ ही दोनो मतवालो ने ठठाकर हसना शुरू किया। उस हसी की आवाज और उसका अर्थ सावित्री के कानो मे जा पहुचा, और कम्बल मे पडा हुआ सतीश बार-बार अपनी मृत्यु की कामना करने लगा।

उन लोगो ने सतीश को खीचकर उठा लिया, और बलपूर्वक पकडकर उसे ले चले और जब तक इन लोगो की विकट हास्य-ध्वनि मकान के बाहर पूर्णरूप से विलीन न हो गयी तब तक सावित्री एक अधेरे कोने मे दिवाल पर माथा धरकर वज्राहत की भाँति कठोर होकर खडी रही।

लेकिन उस मकान का कोई भी कुछ न जान सका। रसोईघर मे रसोइया महाराज अभी गाजे की चिलम खत्म करके इसमे मोक्ष प्रदान करने की आश्चर्यजनक शक्ति वेद मे किस तरह लिखी हुई है, यही बात भक्त बिहारी को समझाकर कह रहा था, और उस कमरे मे राखाल बाबू का दल हड्डी का पासा मनुष्य की चिल्लाहट सुन सकता है या नही इसकी ही मीमासा मे लगा था।

बाहर आकर तीनो एक गाडी पर बैठ गये। इन लोगो की उन्मत्त हसी को सहन न कर सकने के कारण सतीश ने तीखे स्वर से कहा, "या तो आप लोग चुप हो रहिए, या माफ कीजिए, मैं उतर जाऊ।"

पहला व्यक्ति "अच्छा" कहकर भयकर रूप से हस पडा और उसका साथी उसको धमकाकर रूक जाने को कहकर उससे भी अधिक जोर लगाकर हस उठा। इन दोनों शराबियों के साथ बात करना बेकार समझकर सतीश निष्फल क्रोध से खिडकी से बाहर झाकने लगा।

रात मे अधेरे मे सावित्री चुपचाप बैठी हुई थी शायद कल की लज्जाजनक घटना की वह मन ही मन आलोचना कर रही थी। उसी समय बिहारी आकर बोला, "माजी सबका खाना हो चुका, महाराजजी आपको जलखावा के लिए बुला रहे हैं।"

सावित्री ने उदास भाव से कहा, "आज मैं खाऊगी नही, बिहारी।"

बिहारी सावित्री को स्नेह करता था, सम्मान करता था। चिन्तित होकर उसने पूछा, "खाओगी क्यो नही मा, क्या तबीयत ठीक नही है?"

"ठीक है, किन्तु खाने की इच्छा नही है। तुम लोग जाकर खा लो।"

बिहारी ने कहा, "तो चलो, तुम को पहुचा आऊ।"

सावित्री ने कहा, "अच्छा चलो। लेकिन एक बात है बिहारी, सतीश बाबू अभी तक लौटकर आये नही हैं, तुम लोग जागते रह सकोगे न?"

बिहारी घबराकर बोला, "मैं। लेकिन मेरी कमर मे तो वह गठिया का दर्द ।"

"तब क्या होगा बिहारी?"

बिहारी ने तनिक सोचकर कहा, ''रसोइया महाराज को हुकुम देकर ।''
सावित्री ने झटपट कहा, ''यह नही होगा बिहारी। ब्राह्मण आदमी को मैं जाडे मे कष्ट न दे सकूगी।''
इच्छा न रहने पर भी बिहारी कुछ देर चुप रहकर बोला, ''अच्छा, तो मैं ही रह जाऊंगा। चलो, तुमको पहुचा आऊ।''
सावित्री उठ खडी हुई। दो-एक कदम आगे वढकर रुककर वह वोली, ''जरूरत नही है बिहारी, तुम जाओ, खा लो, मैं उसके बाद ही जाऊगी।''
बिहारी के चले जाने पर सावित्री उसी स्थान पर वापस बैठ गयी, और अधेरे आकाश की तरफ देखकर चुप हो रही। आज सतीश के सम्बन्ध मे उसके मन मे यथेष्ट आशका थी। वह शराबियो के हाथ मे पड गया है, इस घटना को अपनी आंखो से देखकर उसको किसी तरह भी घर वापस जाने की इच्छा नही हो रही थी। यद्यपि उसकी ही बुद्धिहीनता से घोर लांछित होकर जलन से छटपटाते हुए उसने खूब भोर मे ही काम छोड देने का दृढ निश्चय कर लिया था, तथापि आज रात भर के लिए इस आदमी को मन ही मन क्षमा न करके, उसकी अवश्यम्भावी दुर्दशा का कोई एक उपाय किये बिना वह किसी प्रकार भी अपने घर जाने को तैयार न हो सकी। बिहारी खाकर आया तो उसने कहा, ''तुम सोने के लिए चले जाओ बिहारी, मैं ही यहां रहती हूं।''
बिहारी ने आश्चर्य से कहा, ''तुम क्या अपने घर जाओगी नही?''
''बाबू को लौट आने दो। उसके बाद क्या तुम मुझे पहुचाने न जा सकोगे?''
''पहुचा क्यो न सकूगा? अवश्य ही पहुचा सकूगा।''
''तो फिर वही अच्छा है। मैं ही यहा हू, तुम जाकर सो जाओ।''
बिहारी के खुश होकर चले जाने पर सावित्री वहा ही एक रैपर ओढकर बैठ गयी। दोनो शराबी जो कुछ देख गये हैं, उसे वे लोग खोलकर कह देगे ही इसमे भी उसको लेशमात्र भी सदेह नही रहा। विपिन बाबू कैसा आदमी है, यह बात सावित्री जानती थी। वह इस बात को अवश्य सुनेगा और इस मकान मे जबकि उसका आना-जाना है, तब कोई भी जाने बिना न रहेगा। उसके बाद फिर किस मुह से सतीश एक क्षण भी रहेगा। इस निन्दा की लज्जा वह किस तरह सहेगा। सयोगवश, जो कुछ हो गया, वह तो हो ही गया। अपने सम्बन्ध मे वह यही तक सोचकर रुक गयी जरूर, लेकिन बार-बार आलोचना करके भी सतीश के सम्बन्ध मे कोई उपाय खोजने पर उसे नही मिला।
धीरे-धीरे रात वढने लगी, लेकिन सतीश दिखाई नही पडा। किसी पडोसी के मकान की घडी मे टन्-टन् करके दो बज गये। निस्तब्ध गम्भीर रात्रि मे वह आवाज साफ सुनाई पडी। अस्तव्यस्त बहने वाली ठण्डी हवा खुली छत के ऊपर से आकर उसकी दोनो आखो को नीद से दबाने लगी, तो वह जागती रह कर बाहर दरवाजे पर कान लगाये रही। इस तरह लेटकर, बैठकर, समय विताने पर जब रात अधिक नही रही तब एक गाडी की आवाज से वह चौंककर ज्यो ही उठ बैठी, त्यो ही समझ गयी कि गाडी उसी मकान के सामने खडी हुई है। सावित्री चुपचाप नीचे उतर गयी और दरवाजे के पास जाकर सावधान होकर खडी हो गयी। पीछे कोई दूसरा आदमी न हो, इस भय से एकाएक द्वार खोल देने का उसको साहस नही हुआ। देर होने लगी, किसी ने दरवाजा खटखटाया नही। जो गाडी आयी थी वह भी लौट गयी। अकस्मात् आशका से परिपूर्ण होकर सावित्री ने तेजी से सिटकनी खोल दी। सतीश बाहर की चौखट पर ओठंग कर पीले मुख, बन्द किये बैठा हुआ था। उसके कपडे और चादर पर कीचड भरा था, माथे पर लहू की रेखा के पास ही गैस के प्रकाश से देख लेने पर सावित्री रोने लगी। सामने आकर घुटने टेककर वह बैठ गयी। अपने हाथो से सतीश के मुह को ऊपर उठाकर बोली, ''बाबू, चलिए ऊपर।''
सतीश ने सिर हिलाकर कहा, ''नही, मैं अच्छी तरह हू।''
सावित्री ने आख पोछकर कहा, ''कही चोट तो नही लगी?
''नही लगी है, ठीक हू।''
''यह तो रास्ता है, घर चलिए।''
सतीश ने पहले की तरह सिर हिलाकर कहा, ''नही, जाऊगा नही, अच्छी तरह हूं।''

सावित्री ने डाटकर कहा, "उठिए, कह रही हू।"
डाट खाकर सतीश विह्वल लाल आखो मे थोडी देर तक देखता रहा, उसकी तरफ अपने दोनो हाथ बढाकर बोला, "अच्छा चलो।"
तब उसके कन्धे पर हाथ टेककर सतीश उठ खडा हुआ और बहुत काप मे हिलते-डुलते अधेरे मे सीढियो से चढकर कमरे मे जाकर लेट गया। भर्राई आवाज मे वह बोला, "सावित्री, मै तुम्हारा ऋण किसी जन्म मे भी न चुका पाऊगा।"
सावित्री ने कहा, "अच्छा, आप सो रहिए।"
सतीश उठकर बोला, "क्या? मैं सोऊगा? कभी नही।"
सावित्री पुन धमकाती हुई बोली, "फिर?"
थोडी देर लेटे रहने के बाद बोला, "लेकिन तुम्हारा ऋण ।"
सावित्री "अच्छा" कहकर उठ गयी और चिराग उसके पास लाकर जख्म की जाच करके उसको धोकर उसने पूछा, "गिर कहा गये थे।"
सतीश सिर हिलाकर बोला, "नही, गिरा तो नही।"
सावित्री ने व्यथित कण्ठ से कहा, "फिर कभी शराब न पीजिएगा तो आपके पैरो पर सिर पटककर मर जाऊगी।"
सतीश ने तुरत कहा, "अब कभी न पीऊगा।"
"मुझे छूकर शपथ लीजिए।" कहकर अपना दाया हाथ बढा दिया।
सतीश ने अपने दोनो हाथो से उसके शीतल हाथ को खीचकर कहा, "शपथ ले रहा हू।"
सावित्री अपना हाथ खीचकर बोली, "याद रहेगी न यह बात?"
"याद न रहने पर तुम दिला देना।"
"अच्छा, मैं जा रही हू, आप सो रहिए।" इतना कहकर सावित्री धीरे से किवाड बन्द करके बाहर जा खडी हुई। शुक्रतारे की तरफ देखकर सावित्री अपने दोनो हाथ जोडकर रोती हुई बोली, "देवता! तुम साक्षी रहना।"
उस समय अन्धकार स्वच्छ होता जा रहा था। उसे भेदकर बैलगाडियो तथा पडोस के मैदा-कारखाने की सीटी की आवाजे आ रही थी। सावित्री नीचे उतरकर रसोईघर मे एक कोने मे रैपर ओढकर सो रही। थोडी ही देर मे गहरी नीद मे खो गयी।

चार

दिन के दस बजने के बाद किसी तरह स्नान-पूजा समाप्त करके दिवाकर रसोईघर के सामने खडा होकर पुकारने लगा—"ऐ महाराजजी, जल्दी भात परोसिए, काफी दिन चढ आया है।"
पास ही भण्डारघर था। उसकी आवाज सुनकर उसकी ममेरी बडी बहन महेश्वरी बाहर आकर बोली, "ऐ दीवू, मैं तेरी ही प्रतीक्षा कर रही हू, भैया, ठाकुरजी की पूजा तो कर आओ। सारा इन्तजाम कर आयी हू, मेरे राजा भइया।"
महेश्वरी इस घर की बडी लडकी है और मालकिन है। चार वर्ष पहले विधवा होकर पिता के घर आ गयी है।
दिवाकर स्तम्भित हो गया। कुछ देर चुप होकर बोला, "मैं यह काम न कर सकूगा। मेरे कॉलिज का पहला घण्टा खराब हो जायगा।"
महेश्वरी हसकर बोली, "तेरा पहला घण्टा खराब हो जायगा, इसलिए क्या ठाकुरजी की पूजा नही होगी?"
दिवाकर ने पूछा, "भट्टाचार्यजी कहा हैं? उनको क्या हो गया है?"
महेश्वरी बोली, "वह बाबूजी के साथ चौसर खेलने के लिए बैठे हुए हैं। अब कितना दिन चढने पर वे उठेगे, इसका ठिकाना क्या है?"
दिवाकर ने कहा, "मझले भैया से कह दो, आज उनकी कचहरी बन्द हैं।"

महेश्वरी ने कहा, "कल से धीरेन्द्र की तबीयत ठीक नही है। वह स्नान करेगा नही, पूजा करेगा तो किस तरह?"

"तब तुम छोटे भइया से कहो। वह बारह बजने के बाद कचहरी के लिए निकलते हैं, अभी उनको बहुत देर है।"

महेश्वरी ने दु खी होकर कहा, "तू कैसा तर्क करने लगता है, इसका कोई ठिकाना ही नही। कल रात को उपेन थियेटर देखने गया था, अभी तक वह सोकर नही उठा। अभी तक न मुह धोया और न चाय पी। रात भर जागने से क्या उसकी तबीयत ठीक है? इसके सिवा वह किसी दिन पूजा करता है जो आज पूजा करेगा?"

इधर रसोइया भात परोसकर पुकार रहा था। दिवाकर ने कहा, "किसी काम मे एक न एक बाधा आ पडने मे प्राय मेरा पहला घण्टा जाता रहता है, मैं परीक्षा दूगा तो कैसे?"

महेश्वरी का क्रोध बढता जा रहा था, वह बोली, "परीक्षा न देने से भी काम चल सकता है, देवता की पूजा न होने से चल नही सकता। तुम्हारे साथ तर्क करने का वक्त मेरे पास नही है, और भी काम है।"

रसोइया चिल्लाकर बोला, "दिवाकर बाबू, भात परोसकर मैं खडा हू जल्दी आइए।"

महेश्वरी ने झिडककर कहा, "तुमको कुछ भी समझ नही है महाराज! मैं इसको पूजा के लिए भेज रही हू तुम इसे पुकार रहे हो। भात ले जाओ, पूजा करके आने पर देना।" कह कर भण्डारघर मे चली गयी।

दिवाकर कुछ देर चुप रहा, फिर धीरे-धीरे ऊपर चला गया। वहा पूजा की सामग्री थी। घर मे शालिग्राम शिला की प्रतिष्ठा हुई थी। उसकी नित्य पूजा के लिए एक पुजारी नियुक्त हैं। वह इसी घर मे रहते हैं। मालिक शिवप्रसाद की तरह उनकी भी चौसर की तरफ दिलचस्पी है। कुछ दिन हुए शिवप्रसाद सरकारी नौकरी से पेंशन लेकर अपने पछाह वाले के मकान पर आकर रहने लगे हैं। सबेरे चाय पी लेने के बाद ही पुजारीजी की बुलाहट होती है, 'भूतो, भट्टाचार्यजी को एक बार बुलाओ। एक बाजी हो जाए।" बाद को एक बाजी, दो बाजी करते-करते दिन चढ जाता है, पुजारीजी को पूजा करने का समय नही मिलता। महेश्वरी नौकर को भेजा करती थी, लेकिन उठता हू, उठता हू, करते-करते भी उठना नही होता था—पूजा का समय बहुत बीत जाता था, किसी को होश नही रहता था। इन दिनो पिता की तबीयत ठीक नही है, फिर भी खेल की धुन मे लगे रहते हैं इस खयाल से अब महेश्वरी पुजारीजी को नही बुलाती—इनसे-उनसे जिस किसी से, अर्थात् दिवाकर से पूजा करा लेती है।

प्रात चाय पीने का अभ्यास और अवकाश दिवाकर को नही था। क्योंकि इस समय उसको नौकर के साथ बाजार जाना पडता था। आज बाजार मे लौटकर नित्यकर्म पूरा करके वह भात खाने के लिए आया था।

दिवाकर पूजा के लिए चला गया। लेकिन आसन पर बैठकर सोचने लगा, दूसरे के घर मे रहने का यही सुख है। यद्यपि अच्छी तरह होश सभालने के बाद ही दूसरे के घर मे रहता आया है, और उसे अनेक दु खो को सह लेने की आदत भी पड गयी है, लेकिन मनुष्य की जो वस्तु किसी दु.ख से भी नही मरती—वही भविष्य की आशा—आघात खाकर उसके हृदय से बाहर निकल सिर उठाकर खडी हो गयी। क्रोध से उसकी सारी देह जल रही थी, सिंहासन से ठाकुरजी को उतारकर उसने ताम्रकुड के ऊपर फेक दिया, और मत्र पढे बिना शरीर पर जल डालकर भीगे हुए देवता को उठाकर रख दिया। फूल चढाने, तुलसीपत्र सजाकर रखने, घटी बजाने आदि हाथ के काम अभ्यास के अनुसार होने लगे अवश्य, कितु विद्वेष की जलन से उसके कण्ठ से एक भी मत्र नही निकला।

इस तरह पूजा का तमाशा खत्म करके जब उठ खडा हुआ, तब यह ध्यान आया कि पूजा बिलकुल नही हुई, फिर से पूजा करने बैठ जाऊ या नही, यह दुविधा एक बार उसके मन मे जाग उठी, कितु उसके साथ ही उसको यह बात याद पड गयी कि कॉलिज का पहला घण्टा बीत रहा है, वह तेज कदमो से सीढियो से नीचे उतरकर सीधे बाहर जा रहा था, महेश्वरी ने भण्डारघर से उसे देखा तो बुलाकर कहा, "बिना भोजन किये जा रहा है?"

"भोजन का समय नही है।"

महेश्वरी ने कहा, "तो कॉलिज से कुछ समय पहले ही लौट आना। ब्राह्मण ठाकुरजी, दिवा बाबू के लिए सब ठीक रहे।"

दिवाकर ने कोई उत्तर न दिया। वह अपनी बाहरी कोठरी मे आकर कपडे पहनने लगा तो नेत्रों में जल भर आया।

सामने के बैठक मे उस वक्त तक शतरज खेलने की हुकार आ रही थी अचानक पीछे मे दरवाजा खुलने की आवाज आयी।

दिवाकर ने पीछे घूमकर देखा—नौकरानी खडी है। नेत्र पोछकर उसने पूछा, "क्या बात है?"

नौकरानी बोली, "छोटी बहू ने आपको बुलाया है।"

"चलो, मैं आ रहा हू।"

सुरबाला अपने कमरे के सामने ही दिवाकर की प्रतीक्षा कर रही थी। दिवाकर ने आकर कहा, "क्या बात है?"

सुरबाला प्रकट रूप से नही, आड मे रहकर बाते करती थी। सिर के कपडे को जरा खींचकर बोली, "जरा कमरे मे आओ।"

इतना कहकर कमरे मे आकर उसने दिखा दिया—फर्श पर आसन बिछा हुआ था, एक कटोरा दूध, तश्तरी मे दो-चार सन्देश रखे हुए थे। सुरबाला ने कहा, "खाकर ही कॉलिज जाना।"

दिवाकर चुपचाप खाने के लिए बैठ गया।

पास ही बिछौने पर उसके छोटे भाई उपेन्द्रनाथ उस समय भी निद्रित मनुष्य की भांति लेटे हुए थे। दिवाकर के खाना खाकर चले जाने के बाद ही सिर ऊपर उठाकर पत्नी को बुलाकर कहा, "यह फिर क्या?"

सुरबाला भोजन किये स्थान को साफ कर रही थी, चौंककर बोली, "क्या तुम जाग रहे हो?"

"दो घण्टे से जाग रहा हू, ग्यारह बजे तक कोई मनुष्य सो सकता है?"

सुरबाला हसकर बोली, "तुम सब कर सकते हो। परन्तु कोई मनुष्य क्या ग्यारह बजे तक पडा रह सकता है?"

उपेन्द्र के कहा, "सभी नहीं कर सकते, लेकिन मैं कर सकता हू। इस का कारण यह है कि लेटकर पडे रहने जैसी अच्छी वस्तु में कुछ भी जगत मे नही देख पाता। कुछ भी हो, दिवाकर के !"

सुरबाला ने कहा, "बबुआजी नाराज होकर बिना खाये कॉलिज जा रहे थे, इसी से मैंने उनको बुलाया था।"

"इसका कारण?"

सुरबाला ने कहा, "क्रोध होता ही है। उस बेचारे को पाठ पढने का समय नही है—बाजार जाना लौटकर ठाकुरजी की पूजा करनी पडती है। किसी दिन ग्यारह-बारह बजे आना है। बताओ तो किस समय वह खाना खाये और किस समय पढने जाये?"

"बात ठीक समझ मे नही आयी? भट्टाचार्य को बुखार है क्या?"

सुरबाला ने कहा, "बुखार क्यो होगा। बाबूजी के साथ चौसर पर बैठे हैं! और उनका भी क्या दोष है? बाबूजी के बुलाने पर वह ना तो कर सकते नही।"

उपेन्द्र ने कहा, "यह तो वह नही कर सकते, लेकिन पहले वह नौकर के साथ सबेरे बाजार जाया करते थे न?"

सुरबाला बोली, "कुछ दिनो तक शौक करके जाया करते थे। नही तो बबुआजी को ही रोज जाना पडता है।"

उस दिन ठाकुरजी की पूजा नही हुई, यही सोचते-सोचते दिवाकर अप्रसन्न रूप से धीरे-धीरे कॉलिज जा रहा था। मकान मे अभी-अभी जो सब घटनाए हो गयी, उस आलोचना को छोड़कर उसे बडी चिन्ता यह थी कि ठाकुरजी की पूजा आज नही हुई। बहुत दिनो की बहुत असुविधाओ के रहते हुए भी इस काम की अवहेलना नहीं की थी, करने की बात भी मन मे किसी दिन उठी नही थी। खासकर आज की बात सोचकर मन मे पीडा अनुभव करने लगा। यद्यपि युक्ति तर्कों से वह बारम्बार अपने मन को सान्त्वना

देने लगा कि भगवान केवल एक ही स्थाम मे आबद्ध नही है, इसलिए एक स्थाने से भोग न लगा तो भी अन्यत्र लगा होगा। लेकिन वही जो उनके बिना खाये हुए गृहदेवता अपनी नित्यपूजा और भोग से वंचित होकर क्रोधायुक्त मुख सिंहासन पर बैठे रह गये, उसकी प्रतिहिंसा की आशका उसके मन से किसी प्रकार भी हटना नही चाहती थी।

कालेज आने पर पता लगा कि प्रोफेसर की तबीयत खराब हो जाने के कारण पहले घण्टे मे क्लास नही लगी—सुनकर दिवाकर को खुशी हुई। परीक्षा निकट आ रही है इस कारण छात्रों ने हाजिरी के हिसाब के लिए कॉलिज के क्लर्क को तग कर डाला है। आज दूसरे छात्र जब इसी उद्देश्य से ऑफिस के कमरे की तरफ जाने की तैयारी कर रहे थे, तब दिवाकर भी तैयार हो गया। लेकिन ऑफिस के सामने आकर ठाकुरजी की पूजा न करने की बात याद करके वह ठिठककर खडा हो गया।

एक ने उससे पूछा, "खड़े क्यो हो गये?"

दिवाकर ने उत्तर दिया, "आज रहने दो।"

"रहेगा क्यो, चलो आज देख ले।"

"नही, रहने दो।"—कहकर वह लौट गया। हाजिरी के सम्बन्ध मे उसके मन मे बहुत सन्देह था, उस सन्देह की मीमासा करने का साहस आज उसे नही हुआ।

भोजन न करके आने पर भी उसको घर लौटने की कोई जल्दी नही थी। छुट्टी के बाद कॉलिज के फाटक के पास आकर उसने देखा, बी० ए० क्लास के छात्रो का दल दूर खडा तर्क-कोलाहल कर रहा है, दिवाकर दूसरी ओर मुह फेरकर हट गया, और जो रास्ता सीधा गगाजी की तरफ गया है, उसी तरफ चल दिया। टूटा हुआ पक्का घाट, मुर्दे के ककाल की भाँति पडा हुआ है। किसी दिन इसका शरीर था, सौन्दर्य था, प्राण था, जगह-जगह पडी हुई टूटी-फूटी ईंटो के ढेर यही बात कह रहे थे। और कुछ नही कहते। तब किसने बनवाया था, कौन लोग आकर बैठते थे, कौन लोग स्नान करते थे, कही भी कोई साक्षी मौजूद नही है। जाडे के दिनो की पतली गगा उसी के किनारे से अविराम समुद्र की ओर चली जा रही है। किनारे पर खेतो मे जौ के बाल सिर उठाकर धूप की गरमी और गगाजी की वायु सेवन कर रहे हैं। उसके ही एक तरफ रेतीला तग रास्ता पकडकर चलता हुआ दिवाकर घाट पर आ पहुचा। ईंटो के ढेर के पास जूता खोलकर रख दिया। उसके बाद पंजाबी कुरते को उतारकर भारी जिल्ददार किताबो से दबा दिया। फिर जल में उतरकर हाथ-मुह धोकर सिर पर गगाजी का जल छिडककर उसने बिना खाये हुए गृह देवता, को स्मरण किया। आदि से अन्त तक सभी मत्रो को सावधानी से उच्चारण करके गगाजी मे जलाजलि प्रवाहित करके प्रणाम करके जब वह उठा, तब उसके हृदय का बोझ बहुत हलका हो गया था। कुरता पहनकर, किताब लेकर जब वह चला तब दिन ढल रहा था। उस वक्त भी हिन्दुस्तानी स्त्रिया घाट के एक किनारे पर बैठकर सिर पर सज्जी मिट्टी मल रही थी।

पांच

छोटी बहू सुरबाला के पिता ने ठेकेदारी के काम मे काफी दौलत पैदा करके आजकल बक्सर वाले मकान मे रहने लगे। उनकी दो लडकिया थी। सुरबाला बडी थी, और शची छोटी। शची की अभी तक शादी नही हुई थी, बक्सर मे पिता के घर पर ही रहती थी।

पिता के घर मे सुरबाला को पशुराज के नाम से पुकारते थे। यह नाम उसके पितामह ने रखा था। मुहल्ले के अन्धे-लगडे, बिल्ली-कुत्ते,विलायती चूहे, कबूतर, गौरैया मिलकर प्रायः सौ से अधिक प्राणी उसके आश्रय मे पलते थे। उनमे से किसी को भी किसी दिन ममतावश वह छोड न सकी। अभी तक वे शची की कृपा से पल रहे हैं। सुरबाला के नाम का विवरण महेश्वरी जानती थी, उसके द्वारा यहा भी वह नाम प्रचलित हो गया था। जो लोग बडे थे, वे सक्षेप मे पशु कहकर पुकारते थे, नौकर-नौकरानी भी कोई तो पशु बहू, कोई छोटी बहूजी कहकर पुकारती थी।

काफी रात को काम-काज हो चुकने पर सुरबाला जब कमरे मे आयी तो उपेन्द्र ने कहा, "पशु, बाबूजी ने शची के लिए वर खोजकर ठीक करने के लिए फिर तकाजे का पत्र लिखा है। शची आयु मे तुमसे कितनी छोटी है, मालूम है?"

सुरबाला ने कहा, "मालूम क्यो नही है। मेरे बाद एक भाई होकर सौरी में ही चल बसा, उसके बाद ही शची का जन्म हुआ। इस प्रकार वह मुझसे आयु में छः-सात वर्ष छोटी है?"

"इस हिसाब से तो उसकी आयु बारह-तेरह वर्ष की होगी।"

"इतनी तो होगी ही। दुबली-पतली होने के कारण ही केवल इतने दिनो तक बचारी रही गयी। मेरी तरह बडे-बडे हाथ-पाव वाली होती तो भारी कठिनाई होती।"

उपेन्द्र हँसकर बोला, "कठिनाई किस लिए? तुम्हारे बाबूजी को तो रुपये की कमी नहीं है, रुपये रहने से सभी वस्तुए सुलभ हो जाती हैं। तुम्हारे समय में मैं जिस तरह हडबडाकर जा पहुचा था, उस तरह हडबडाकर जाने वाले आदमियो की संसार मे कमी नही है।"

सुरबाला ने कहा, "क्या तुम बाबूजी के रुपये देखकर गये थे?"

"तुम्हारे सामने 'नही' कहने से ही प्रतिष्ठा है, लेकिन झूठी बात ही कैसे कहूं?"

"लेकिन यह झूठ है।"

"झूठी बात क्यो?"

"असत्य होने के कारण ही असत्य बात है। तुम जब-तब कहते रहते हो अवश्य, लेकिन तुम बाबूजी का रुपया देखकर नही गये थे। बाबूजी के पास रुपये रहते या नही रहते, तुमको जाना ही पडता। मैं जिस जगह, जिस घर जन्म लेती, मुझे लाने के लिए तुमको वहा जाना ही पडता, समझे?"

उपेन्द्र ने गभीरता धारण कर कहा, "कुछ-कुछ समझ रहा हू। लेकिन मान लो, अगर तुमने कायस्थ के घर मे जन्म लिया होता तो?"

सुरबाला हसकर बोली, "वाह, खूब कहा तुमने। ब्राह्मण के घर की कन्या क्या कभी कायस्थ के घर जन्म लेती है? इसी दिमाग को लेकर तुम वकालत करते हो?"

उपेन्द्र ने गम्भीर होकर कहा, "यह भी ठीक है। शायद इस कारण उन्नति नही हो रही है।"

सुरबाला अपनी बातो से व्यथित होकर सान्त्वना के स्वर मे जल्द बोली, "उन्नति क्यो नही होगी, खूब उन्नति होगी। लेकिन कुछ देर हो सकती है, यही न। लेकिन मैं यह भी कहती हू, तुम्हारी उन्नति की जरूरत ही क्या है।" हसकर बोली, "बारह से चार बजे तक मेरे सामने हाजिर रहने से मैं तुमको पाच सौ रुपये के हिसाब से दे सकती हू। बाबूजी मुझे हर महीने ढाई सौ रुपये भेजते हैं और ढाई सौ उनसे माग लूगी।"

उपेन्द्र ने कहा, "मान लिया कि तुम ले लोगी, लेकिन मुझको क्या करना पड़ेगा? बारह बजे से चार बजे तक तुम्हारे सामने खडा रहना पडेगा?"

सुरबाला बोली, "हा, यदि तुम खडे न रह सके तो बैठ भी सकते हो।"

"और बैठ न सकने से लेट नही जाऊंगा? क्या कहती हो?"

सुरबाला मुसकराकर बोली, "सो नही कर सकोगे। बैठ न सकने पर फिर खडा हो जाना पडेगा। हाकिम के सामने बेअदबी करने से तुमको फाइन देना पडेगा।"

"फाइन न दे सकने पर?"

"नजरबन्द रहना पडेगा। चार बजने के बाद भी तुम बाहर न जा सकोगे, समझ गये?"

उपेन्द्र ने सिर हिलाकर कहा, "समझ गया, हाकिम कुछ सख्त है, नौकरी बची रह सके तो यही गनीमत।"

सुरबाला ने अपनी दोनो कोमल भुजाओ से पति के गले को घेरकर कहा, "हाकिम सख्त नही है। तुम्हारी नौकरी सुरक्षित रहेगी, एक दिन केवल परीक्षा करके ही देख लो न।" कुछ देर बाद सुरबाला ने अपने को मुक्त कर लेने के बाद पूछा, "बाबूजी के पत्र का उत्तर दोगे?"

उपेन्द्र ने कहा, "खोजने की आवश्यकता नही है। पात्र खुद ही हाजिर हो जायेगा, यही उत्तर दूगा।"

"छि। यह कैसी बात। उनके साथ परिहास करना उचित है?"

"इतनी देर से क्या तुम मेरे साथ परिहास कर रही थी।"

सुरबाला घबराकर बोली, "देखो, मैंने परिहास नहीं किया। लेकिन बाबूजी को यह बात लिखने की आवश्यकता नही है, सचमुच ही मैं विश्वास करती हू कि शची के लिए वर ठीक हो ही चुका है इसके

अलावा अन्य कोई मार्ग नही है। लेकिन तुम्हारे ही मुह से यह बात सुन लेने से बाबूजी नाराज होंगे।"

उपेन्द्र हसकर बोला, "वास्तव मे शची के लिए वर ठीक हो चुका है। उन को मैं भी जानता हू और तुम भी जानती हो।"

सुरबाला ने उत्सुक होकर पूछा, "कौन है, बताओ तो।"

उपेन्द्र बोला, "अभी नही। सब ठीक-ठाक करने के बाद बताऊगा।"

सुरबाला ने थोडी देर चुप रहकर कहा, "अच्छा! लेकिन एक बात तुमको मै बता दू, शची के दोष को छिपाकर वर ठीक करना उचित नही है। उससे फल अच्छा न होगा।"

उपेन्द्र ने घबराकर पूछा, "दोष क्या है?"

सुरबाला ने कहा, "बताती हू। शायद बाबूजी की इच्छा उस दोष को गुप्त रखने की है। नही तो वह खुद ही तुमको बता देते। शची देखने-सुनने मे लिखने-पढने मे अच्छी ही है, बाबूजी के पास रुपये भी हैं। लेकिन क्या तुमने शची को ठीक तरह देखा नही है?"

उपेन्द्र बोला, "देखा है, लेकिन अच्छी तरह देख लेने का साहस ।"

"तुम्हारे पैरो पडती हू। पहले मेरी बात सुन लो। उसके बाद जैसी खुशी हो, जवाब देना। तुम तो जानते ही हो, शची बचपन मे ही दुबली-पतली है। दो-तीन बार भारी बीमारियो से मरते-मरते बची है। एक बार उसकी बीमारी तो अच्छी हो गयी लेकिन दाया पैर नीचे से ऊपर तक फूलकर पक गया। डाक्टर ने शल्योपचार करके उसको बचा लिया अवश्य, लेकिन पैर सीधा नही हुआ। उसी समय से वह जरा लगडाकर चलती है। डाक्टर ने कहा था, 'उम्र बढ जाने पर वह अच्छी हो सकती है।' लेकिन इस आश्वासन पर विश्वास करके कौन विवाह करने को तैयार होगा। जो सचमुच ही अच्छा लडका है, उसके लिए अच्छी लडकी भी मिल जायेगी, जान-बूझकर वह शची जैसी लडकी से शादी न करेगा। और जो लडका धन के लोभ मे राजी होगा वह कुपात्र होगा।"

उपेन्द्र ने ध्यानपर्वक सुनकर कहा, "मैंने तो शची को कई बार देखा है, लेकिन किसी दिन लगडाकर चलते नही देखा।"

सुरबाला हसकर बोली, "पुरुषो को कौन-सी चीज दिखाई पडती है। लेकिन स्त्रियो की आखो को धोखा देना चल नही सकता, वे तो एक ही क्षण मे दोष जान लेती हैं।"

उपेन्द्र ने कहा, "लेकिन उसको तो स्त्रियो के साथ शादी न करनी पडेगी कि स्त्रियो की आखो से डरना पडेगा।"

"यह कैसी बात! धोखा देकर शादी कराने की इच्छा रहने पर तो अन्धी लडकी की भी शादी की जा सकती है लेकिन बाद को।"

उपेन्द्र कुछ सोच रहे थे, बोले नही।

सुरबाला फिर बोली, "पिछली दुर्गापूजा के समय हमारे बक्सर के मकान पर ठीक उसी तरह की बाते हुई थीं। बुआजी और मा दोनो ने ही कहा था कि शादी के पहले इन सब आलोचनाओं की आवश्यकता नही है। हो जाने के बाद दामाद को बता देने से ही काम चल जायगा।"

उपेन्द्र ने कहा, "ठीक ही तो है।"

"नही, ठीक नही है। मैं कहती हू कि सास-ननद को छोड अकेले दामाद को विश्वास मे लेने से काम नही चलता। शची को जो पति मिलेगा वह उसको प्रेम करेगा ही। लेकिन एक तुच्छ त्रुटि के कारण पहले ही यदि वह उसकी विद्वेषभरी दृष्टि मे पड जायेगी तो किसी दिन सुख से घर-गृहस्थी न कर सकेगी।"

उपेन्द्र ने कहा, "कर सकेगी। क्योंकि दिवाकर तुम्हारी बहिन को लापरवाही मे न रखेगा, तुम अथवा बहिन भी शची को झिडकिया न सुनावेगी।"

यह बात सुनकर सुरबाला चुप हो गयी। बहुत देर तक स्थिर भाव से बैठी रहकर वह बोली, "तुम क्या बबुआ के साथ शादी ।"

उपेन्द्र ने कहा, "हा।"

"लेकिन बाबूजी तो सहमत न होंगे।"

"क्यो?"

"उसके मां-बाप नहीं ?, घर-द्वार नहीं है कुछ भी नहीं है।"

उपेन्द्र ने संक्षेप में कहा, "सब है क्योंकि मैं हूं।"

सुरबाला ने कहा, "ना भी बाबजी राजी न होंगे।"

उपेन्द्र ने कहा "तुम भी राजी नहीं होगी, असल बात शायद यही है।"

उपेन्द्र चुप रहकर दूसरी तरफ करवट बदलकर अत्यन्त नीरस कण्ठ से बोले " अच्छा रात बहुत हो गयी अब तुम सो जाओ।"

उस रात को सुरबाला बड़ी देर तक जागती रही। एकाएक जब उसको निश्चित रूप से मालूम हो गया कि पतिदेव निर्विघ्न सो रहे हैं तब उसके दोनों नेत्रों में गर्म जल भर उठा। पति के स्नेह पर वह सन्देह नहीं रखती, लेकिन रोते-रोते वह यही बात सोचने लगी कि इन सात-आठ वर्षों के घनिष्ठ मिलन के बाद भी क्यों वह इस मनुष्य का स्वभाव समझ न सकी। पहले पहल उसने अनेक बार मन में विचार किया था कि इस मनमौजी मनुष्य के मिजाज का कुछ भी ठीक नहीं है। किस समय किस कारण से इसका क्रोध उमड पड़ेगा, वह जान लेने या समझ लेने का उपाय नहीं है। लेकिन अन्त में एक बार पूछताछ कर इतनी ही बात वह समझ सकी थी कि इसको पूरे तौर से समझने की शक्ति मुझे किसी दिन हो या न हो, इसका कोई काम या इसकी कोई भी बात अकारण या अनिश्चित प्रकृति के मनुष्यों की-सी नहीं है। विशेष रूप से इसी कारण इस दुर्बोध पति को लेकर उसके मन में भय और चिंता की कोई सीमा नहीं थी। मन में चोट खाकर वह जब-तब यही दुःख किया करती थी कि भगवान ने उसके भाग्य को यदि ऐसा अच्छा ही बना डाला तो उस समय के अनुसार चलने योग्य बुद्धि, उन्होंने उसको क्यों नहीं दी? आज भी वह मन ही मन इस बात की आलोचना कर अन्दर ही अन्दर इसका कारण खोजने लगी। इतना ही अपना कोई दोष न पाकर हताश हो गयी। बहन के बारे में बहन का यह स्वाभाविक आशंका किस वजह से दोषपूर्ण है, इसका जवाब वह किसी प्रकार खोज नहीं सकी।

बाहर जाड़े की लम्बी अँधियारी रात स्तब्ध थी और कचहरी का घण्टा एक के बाद एक क्रम से बजता गया।

छः

अगले दिन दोपहर के बाद महेश्वरी भोजन करने के लिए बैठी तो उपेन्द्र कमरे में घुसकर पास ही फर्श पर बैठ गया। महेश्वरी ने उसकी तरफ ध्यान से देखकर कहा, "मझली बहू, उपेन के लिए आसन बिछा दो।"

उपेन्द्र ने कहा, "आसन रहने दो दीदी तुमसे एक बात पूछने आया हूं।"

बात सुनने के लिए महेश्वरी उसके मुंह की ओर ताकने लगी।

उपेन्द्र ने कहा, "ससुरजी ने शची के लिए वर ठीक करने के लिए परसों एक पत्र लिखा है। तुम लोगों की सारी बातें जानती हो, इसलिए मैं पूछ रहा हूं कि शची के शरीर में क्या कोई दोष है?"

महेश्वरी के पति ने स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर अन्त से करीब चार-पांच साल बक्सर में प्रैक्टिस की थी। वहां रहते समय सुरबाला के पिता का ही एक मकान किराये पर लेकर आस-पास रहती थी, इसलिए दोनों परिवारों में अत्यन्त घनिष्ठता हो गयी थी। सुरबाला के विवाह का सम्बन्ध महेश्वरी ने ही ठीक किया था। महेश्वरी एक क्षण उपेन्द्र के मुंह की ओर ताकती ही रहकर बोली, "पशु क्या कहती है?"

"वह कहती है, शची कुछ लंगड़ी है।"

महेश्वरी ने तनिक हंसकर कहा, "लंगड़ी नहीं है। बचपन में शल्योपचार होने से वह बायें पैर से कुछ खींचकर चलती थी—इतने दिनों में शायद वह ठीक हो गया हो।"

"और कोई दोष नहीं है?"

"नहीं।"

"सुनता हूं कि ससुरजी की विपुल सम्पत्ति है। तुमको क्या जान पड़ता है दीदी?"

"मुझे भी यही जान पड़ता है।"

तब उपेन्द्र और कुछ पास खिसककर आ गया और अपने कठ का स्वर कुछ धीमा
"तो मैं तुमको एक बात कहता हू दीदी। शची और उसकी बहिन दोनो ही जब भविष्य मे
उत्तराधिकरिणी होगी, तब इतनी बडी सम्पत्ति हाथ से निकल जाने देना बुद्धिमानी का काम नहीं,
महेश्वरी ने हसकर कहा, "बात तो ठीक ही है, लेकिन उपाय ही क्या है सुनू तो?" इतना कहकर
हस पडी।

उपेन्द्र बोला, "हसने की बात नही है। पशु के चिढ़ने के लिए यह बात मैंने नही कही। मैंने दिवा के बारे मे सोच लिया है।"

सुनते ही महेश्वरी का चेहरा उतर गया। वह दिवाकर को सह नही सकती थी। उपेन्द्र ने कहा, "क्या कहती हो बहिन?"

महेश्वरी मुह झुकाए किसी चिन्ता मे रहने का स्वाग दिखाकर भात परोस रही थी, मुह ऊपर उठाकर हसकर बोली, "अच्छी बात तो है।"

उपेन्द्र ने कहा, "केवल अच्छी बात कह देने से तो काम नही चलेगा बहिन, यह काम तुम्हारा ही है। पशु की शादी तुमने ही की थी, अब वह कहती है उसकी तरह सौभाग्यवती सभी हो। मेरा विश्वास है, तुम जिसमे हाथ डालोगी, उसमे ही सोना फलेगा।"

महेश्वरी ने कहा, "लेकिन शची मे जरा-सा दोष तो है?"

उपेन्द्र ने कहा, ' है, इसलिए तुमसे हाथ डालने के लिए कह रहा हू। तुम्हारे पुण्य से सब दोष मिट जायेगे।"

उपेन्द्र की बातो से महेश्वरी की दिल पसीजता जा रहा था। उसने कहा, "लेकिन उपेन, दिवाकर का मिजाज मेरी समझ मे नही आता। घर मे रहते हुए भी वह मानो घर छोडने वाला पराया है। इसी कारण डर लगता है, पीछे कही इतनी ही त्रुटि को लेकर अन्त मे एक भारी अशान्ति न खडी हो जाये, फिर एक बात और हैं, क्या दिवाकर राजी होगा?"

"होगा क्यो नहीं दीदी। इस ससार मे उसका अपना तो कोई भी नही है। यह सुविधा छोड देना केवल मूर्खता ही नही, पाप भी है।"

महेश्वरी हसकर बोली, "यह क्या तुम्हारा वकालत का पेशा है उपेन कि केवल मुवक्किल के रुपयो पर दृष्टि रखकर और सब तरह से मुह फेर लोगे, पसन्द-नापसन्द भी तो कुछ है।"

उपेन्द्र बोला, "है तो रहने दो, दीदी। जो लोग इसी को लेकर उलट-फेर करना चाहते हैं वे भले ही करे, लेकिन हम लोग उस दल मे जाना नही चाहते। और शची जैसी लडकी जिसे पसन्द न हो उसका तो विवाह करना चल ही नही सकता।"

उपेन्द्र की व्यग्रता को देखकर महेश्वरी ने कहा, "शायद वह आज कॉलिज नही गया। एक बार उससे ही पूछकर देख लो न, उसकी क्या राय है? शायद वह अपनी कोठरी मे ही है।"

"है? अरे कौन है वहा? भूतो? एक बार दिवाकर बाबू को बुला दे, कहना कि जीजी बुला रही है।"

थोडी ही देर बाद दिवाकर के कमरे मे घुसते ही उपेन्द्र बोल उठे, "तेरी शादी की बात मैंने ठीक कर दी है दिवा। परीक्षा के बाद तिथि निश्चित की जायगी। बहिन, भट्टाचार्यजी से पत्रा देखने को कह देना, और बाबूजी से पूछकर एक बार उनकी राय भी तो जान लेना। शची के साथ व्याह होगा, सुनकर वे बहुत खुश होगे। तू मुह बाये क्या देख रहा है? तेरी छोटी भाभी की छोटी बहिन है शची—उसको तूने देखा नहीं है? देखा नही है तो शची को देखने की आवश्यकता भी नही है। अभी थोडी ही देर पहले मैं बहिन से कह रहा था कि वैसी लड़की को जो पसन्द नही करता, उसे शादी ही नही करनी चाहिए। बचपन मे बाये पैर मे घाव की चीरफाड हुई थी, इसलिए उस पैर को जरा खीचकर चलती थी। उस बात पर अभी-अभी मैं बहिन से कहने जा रहा था कि जरा-सा दोष, थोडी सी त्रुटि, यदि आत्मीय होकर दिवाकर क्षमा नही कर सकता तो, दूसरा कोई कैसे करेगा? इसके अलावा छोटे-मोटे दोष को लेकर हल्ला-गुल्ला मचाना तो उच्च शिक्षा का फल नही है, यह तो नीचता है। निर्दोष त्रुटिहीन इस जगत मे कोई चीज मिलती ही नही, ऐसी चीज की आशा करके बैठे रहना और पागलपन एक ही बात है, दिवा इस को समझता है। और तुमसे कहता ही क्या है बहिन, दिवाकर के साथ शादी होगी, सुन लेने पर

क आनन्द की सीमा ही नही रहेगी। ओह! शायद तेरा समय नष्ट हो रहा है। तो इस समय तू न भी ससुरजी को पत्र लिखता हूँ।" इतना कहकर उपेन्द्र उठे और महेश्वरी को इशारा करके चले गये।

महेश्वरी मुह नीचा किये भात चलाने लगी और दिवाकर अवाक् होकर खडा रहा। वडा तूफान जैसे खर-पतवार, धूल-बालू सब उडाकर ले जाता है, उपेन्द्र वैसे ही विघ्नबाधा, आपत्ति अस्वीकृति को अपनी इच्छा के अनुसार उडाकर लेते गये। मौन होकर दोनो यही सोचने लगे। बहुत देर तक भी जब कोई बात नही उठी, तब दिवाकर बोला, "यह सब क्या है जीजी?"

महेश्वरी ने विना मुह ऊपर उठाये कहा, "सब तो तूने सुन ही लिया?"

दिवाकर ने पूछा, "इतनी हडबडी क्यो?"

महेश्वरी ने कहा, "शची के विवाह की उमर बीत रही है और अगले वर्ष एकदम ही लगन नही है।"

इसके बाद दिवाकर के दिमाग मे कोई भी बात नही आयी, किन्तु उसको याद आया कि उपेन्द्र इस समय पत्र लिख रहे हैं। थोडी देर बाद ही आवश्यक पत्र को लेकर नौकर डाकखाने दौड जायेगा। वह किसी दिन भी विवाह न करेगा यही उसके जीवन का सकल्प रहा है। वह सकल्प इस तरह एकाएक एक लहमे मे उडता चला जा रहा है। यह स्मरण आते ही वह घबराकर उपेन्द्र के कमरे की ओर चला गया। कमरे मे घुसते ही सुरबाला अपने अप्रसन्न मुह पर सिर का कपडा खीचकर आलमारी के किनारे हट गयी। उपेन्द्र मेज के पास कागज-कलम लेकर बैठे हुए थे। मुह उठाकर उन्होंने पूछा, "फिर क्या?" दिवाकर जो कुछ कहने आया था, उसको अच्छी तरह सोचने-विचारने का समय भी उसे नहीं मिला और आचल का एक छोर आलमारी के एक तरफ दिखाई देने लगा। वह चुपचाप खडा रहा।

उपेन्द्र ने पूछा, "क्या है रे?"

दिवाकर ने कुछ कहकर आलमारी की तरफ दृष्टि फेरी।

उपेन्द्र ने उस सकेत को देखते हुए भी नही देखा, बोले, "मेरे पास वक्त नही हैं दिवा ..।"

दिवाकर ने पास आकर कहा, "इतनी जल्दबाजी किसलिए?"

उपेन्द्र बोले, "नही, जल्दीबाजी तो नही है। अब भी जैसे ही हो, करीब दो महीने का वक्त है, तेरा इम्तहान हो जाने पर ।"

"तो फिर आज ही पत्र लिखने की क्या आवश्यकता है?" कुछ दिन बाद लिखने से भी तो काम चल सकता है।"

"चल सकता है। लेकिन कुछ दिन बाद लिखने से क्या सुविधा होगी?"

दिवाकर ने धीरे से कहा, "सोच-विचार कर देख लेना उचित है।"

उपेन्द्र ने कहा, "उचित तो है ही। तुम व्याह की चिन्ता मे सोच-विचार करो, तुम्हारे इम्तहान की चिन्ता मैं करू ।"

"लेकिन ऐसा दायित्व ग्रहण करने के पहले ।"

"विज्ञ व्यक्ति की भाँति कुछ कहना आवश्यक है, अच्छा तुम कुर्सी पर बैठ जाओ। सोच-विचार करके क्या देखना चाहते हो, मैं भी तो सुनू?"

दिवाकर चुप हो रहा।

उपेन्द्र ने कहा, "देखो दिवाकर, कोई भी बात क्यो न ली जाय, अन्त तक सोच-विचार करना मनुष्य की शक्ति मे नही है। कितने ही बडे विद्वान् पण्डित क्यों न हो, अन्तिम फल भगवान के हाथ से ही लेना पडता है। फिर भी, पहले से जो कुछ सोच-विचार करके देख लिया जा सकता है उसके लिए तो आधा घण्टा से अधिक समय नही लगता, कुछ दिनो का समय चाहते हो न?"

दिवाकर बोला, "सभी क्या इतनी जल्दी सोच-विचार कर सकते हैं?"

"कर सकते है, लेकिन यह याद रखने की आवश्यकता है, बिखरी हुई इधर-उधर की चिन्ताओं का अन्त भी नही है और उसकी मीमासा भी नही होती। दो-चार दिनो मे ही क्यो, दो-चार वर्षो मे भी निश्चय नही होता। फिर भी इस सबध मे मोटे तौर से जो कुछ लोग विचार करके देखते हैं, वह यही है कि प्रतिपादन कर सकूगा या नही। लेकिन शची से व्याह कर लेने पर यह चिन्ता तो तुमको किसी दिन भी

करनी न पड़ेगी। दूसरी बात है नापसन्द की, गोकि निर्णय एक की ओर से दू
क्या तू यही बात सोच रहा है।"

शची की सुन्दरता का सकेत होने से दिवाकर को बहुत ही लज्जा मालूम हुई। वह बो र सकता।
बिल्कुल नही।"

"तब तो ठीक ही हुआ। क्योकि वह बात कितनी ही अन्त सार-शून्य क्यो न हो, बाह्य आड
तो है। पहले ही सुन्दरता की जो बात आ जाती है, वह मनुष्य के अन्दर और बाहर ऐसा जादू लगा दे
कि उसकी अच्छाई-बुराई का अत्यन्त सावधानी से निर्णय करना ही मुख्य वस्तु हो जाती है। असल मे
वह तो कुछ भी नही। जिस वस्तु को न पाकर लोग सारा जीवन हाय-हाय करते हैं वह आड मे ही रह
जाता है। पसन्द करने की जो सारी सामग्री है, उस वस्तु को प्राप्त न करने से ससार विफल हो जाता है,
उसके ऊपर तो जोर नही चल सकता, इसके लिए बिना परीक्षा के ही बिना विचार के ही भगवान की
दुहाई देकर लोग ग्रहण करते हैं, और जो कुछ भी नही है, दो-चार दिनो मे ही जो वस्तु नष्ट हो सकती है,
नेत्र उठाकर देखने से ही जिसके दोष-गुण पकडे जा सकते हैं उसकी परीक्षा का फिर कोई अन्त ही नही
रहता। दिवाकर साढे पन्द्रह आना की ओर से यदि आँखे बन्द कर सकते हो, तो शेष दो पैसे के लिए
गुरुजनो का अबाध्य होकर विरोध मत करो। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि, तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल से
उज्जवलतर हो। किसी दिन तुम इस बात को मत भूलना कि सुन्दरता ही मनुष्य के लिए सब कुछ नही है,
या सिर्फ सुन्दरता का जिक्र करना ही विवाह का उद्देश्य नहीं है।"

दिवाकर सिर झुकाकर चुप हो रहा। उपेन्द्र भी बडी देर तक चुप रहकर अन्त मे बोले, "तो अब तू
यहाँ से जा।"

दिवाकर ने सिर झुकाकर धीरे-धीरे कहा, "मेरी रुचि नही है छोटे भैया, मुझे क्षमा करो। खासकर
बडे आदमी की लडकी ।"

इस तरह के उत्तर ने पलभर के लिए उपेन्द्र को अभिभूत कर दिया। वह अल्पभाषी दिवाकर की
बातो का गुरुत्व समझते थे। लेकिन किसी विषय मे असफल होना भी उनका स्वभाव नही है। सामने के
कागज-कलम को एक तरफ हटाकर बोले, "रुचि नही है। वह भी नही रह सकती है, लेकिन बडे आदमी
की लडकी का क्या अपराध है?"

दिवाकर ने कहा, "अपराध नही है, लेकिन मैं गरीब हूँ।"

उपेन्द्र ने कहा, "इसका मतलब तो यह है कि गरीब के घर की लडकी तुम्हारा जैसा सम्मान या
भक्ति करेगी, धनवान की लडकी वैसा न करेगी। लेकिन मैं पूछता हूँ, स्त्री के सम्मान या भक्ति पाने को
कितनी धारणा तुमको है? यह जिद पकड लोगे कि ब्याह करोगे ही नही, तो वह दूसरी बात है, लेकिन
दोष का भार दूसरे के कधे पर रखकर अपनी गरीबी को जिम्मेदार मत ठहराओ। पुराण-इतिहास तो पढ
चुके हो। उनमे सीता-सावित्री प्रभृति साध्वी स्त्रियो का जो उल्लेख है, वे राजा-महाराजा के घरो की
लडकिया होते हुए भी किसी दरिद्र घर की लडकी की अपेक्षा गुणो मे कम नही थी। बडे लोगो के घरो की
लडकियो के विरुद्ध एक कहावत प्रचलित है, इसलिए उसके बिना विचार के ही मान लेना पडेगा इसका
कोई कारण मुझे दिखाई नही देता।"

दिवाकर के अलावा एक और श्रोता अत्यन्त ध्यान लगाकर आड मे रहकर सुन रही थी। उसके
आचल के छोर पर दृष्टि पडने के साथ ही उपेन्द्र बोल बैठे, "बडे आदमी के घर की एक और लडकी इस
मकान मे ही है, इसका आधा रूप-गुण लेकर भी यदि शची आ जाएगी, तो किसी भी पति को अपना
सौभाग्य ही मान लेना चाहिए।" कुछ देर चुप रहकर वह फिर बोले, "रुचि नही है। तूने कहा था।"
बचपन मे पाठशाला जाने की रुचि तुममे नही थी, यह देख चुका हूँ। धर्म-कर्म मे किसी-किसी की रुचि
नही रहती। जन्मभूमि पर किसी को अरुचि रहती है। इसका यह अर्थ नही कि इन्हे प्रश्रय दिया जाय।"

अचानक उसी समय आलमारी के पीछे से चूडियो की आवाज सुनकर चकित होकर दिवाकर उठ
खडा हुआ। क्षण भर मे उसने क्या निश्चय किया, यह वही जाने। सुरबाला के पास जाकर बोला,
"भाभी, तुम कहो तो मैं छोटे भैया को पत्र लिखने को कह दूँ?"

सुरबाला ध्यान से पति की बाते सुन रही थी। एक अनिर्वचनीय शांति और तृप्ति की तरग उसकी

र्ग, समस्त कामनाओ और समस्त स्वतत्रताओ को बहाकर पति की इच्छाओ के चरणों के समर्पण करती जा रही थी। उसने कुछ भी निश्चय नही किया था, लेकिन आचल से नेत्र ...कर पति को लक्ष्य करके एकान्त चित्त से कहा—"वह कभी झूठ नही बोलते।" मैं कह रही हूँ बबुआ, तुम लोगो का भला होगा और मैं भी सुखी होऊँगी।"

दिवाकर ने उपेन्द्र के मुँह की ओर ध्यान से देखा। खुली खिडकी से काफी प्रकाश उसके मुह पर आ रहा था। उनके चेहरे पर न उद्वेग है और न दुश्चिन्ता। अत्यन्त पवित्र और मगलमय प्रतीत हुआ।

दिवाकर ने कहा, "तुम जो अच्छा समझो, वही करो। मेरा समय नष्ट हो रहा है, मैं जा रहा हूँ।" इतना कहकर वह धीरे-धीरे बाहर चला गया। उसके चले जाने पर सामने की आराम कुर्सी पर आकर सुरबाला बैठ गयी। दोनों सजल नेत्रों को पति के मुँह पर रखकर बोली, "तुम क्षमा करो। मैंने गलत समझ लिया था, तुम जो कुछ करना चाहते हो उससे शची की भलाई होगी।" इस बार तुम मुझे माफ कर दो।"

उपेन्द्र ने पत्र समाप्त करते हुए हसकर कहा, "अच्छा।"

सात

उसके बाद से दिवाकर सिर्फ विवाह की बात सोचने लगा। शची कैसी है, क्या करती है, क्या सोचती है, क्या पढती है, उसके साथ विवाह होने से कैसा व्यवहार करेगी, यही सब। रात के समय पढने-लिखने में बहुत ही बाधाए पडने लगी। आज उसका मन मतवाला हो उठा। स्पष्ट रूप से कुछ उपलब्ध न कर सका। केवल आकाश-कुसुम की तरह मन उछलता रहा। किसी काम मे मन न लगा।

परीक्षा के भय ने चाबुक की तरह जितनी बार उसको वापस लाकर पढने मे नियुक्त किया, उतनी बार ही वह उससे भागकर और दूसरी तरफ स्वप्नो की रचना करने लगा। बहुत देर तक इस विद्रोही मन के पीछे-पीछे दौड-धूप करके कुछ भी न पा सकने पर दिवाकर अनुमान करने लगा कि उसका समय व्यर्थ नष्ट होता जा रहा है। लेकिन क्या ही अभूतपूर्व परिवर्तन था। किस चीज के नशे ने उसको एकाएक ऐसा मतवाला बना दिया। उसका कारण ढूढे जाने पर जो बात उसे याद पड गई, अत्यन्त लज्जा के साथ दिवाकर ने उसका प्रतिवाद करके दृढ भाव से यही बात कही कि इसमे मेरी इच्छा नही है, अत्यन्त घृणा और अरुचि है। यदि पूजनीय किसी की मान की रक्षा करनी पडे तो अत्यन्त उदास भाव से करूँगा।

इतना कहकर उसने दोगुने आग्रह के साथ ऊँचे स्वर मे पढना आरम्भ कर दिया। लेकिन आज मन को सयम मे रखना कठिन हो गया। जिस खेल के बीच से चला आ रहा है, जिस आकाश-कुसुम की आधी माला गूथकर फेंक रखी है और बेबसी मे सबक याद कर रहा है, उसको खत्म करने का अवसर वह प्रतिक्षण खोजता हुआ घूमने लगा। इसके अलावा यह जो कल्पना की बसती हवा अभी-अभी उसके शरीर को स्पर्श कर गयी है—वह कितना मधुर है। उसके चारो ओर सौन्दर्य की सृष्टि हो रही थी, वह कितना सुन्दर है। सूर्य की ओर मुँह उठाकर आँखे बन्द कर लेने पर जिस प्रकार प्रकाश का सचार विचित्र वर्णों मे अनुभव होता है, पढ़ने की तैयारी के बीच अस्पष्ट माधुर्य धीरे-धीरे उसके शरीर मे व्याप्त होता गया। कण्ठ स्वर मन्द से मन्दतर और दृष्टि क्षीण से क्षीणतर होता गया। यह धड-पकड, वादा-विवाद के बीच वह एक नये खेल मे मशगूल हो गया। उसकी आंखो के सामने असख्य प्रकाश, कानो के पास अगणित वाद्य और मन के बीच विवाह का विराट समारोह अवतीर्ण हो गया। इसके केन्द्रस्थल मे अपने को दुल्हा के रूप में कल्पना कर रोमाँचित हो उठा। इसके बाद जो कुछ सुना था, जो कुछ देखा था, वह सब जादू की तरह मन के भीतर से विभिन्न रगो मे, बहुत तेजी से उड गया। कही भी वह स्थिर न रह सका, कुछ ठीक तौर से हृदयगम न कर सका, केवल आश्चर्य-भरे पुलक से स्वप्नाविष्ट की भाँति स्तब्ध होकर बैठ गया।

आठ

विपिन के निमत्रण से लौटकर आने के बाद दूसरे दिन आकण्ठ प्यास लिए सतीश नीद टूटने पर जब बिछौने पर उठ बैठा, तब दिन के दस बज चुके थे। तब भी उसका कमरा बन्द था। आज प्रात.काल से ही

मेघशून्य आकाश में धूप अत्यन्त प्रखर होकर उग चुकी थी. उस तेज गरमी में जगले ... जाने से इस बन्द कमरे का भीतरी भाग कैसा असहयनीय हो उठा था, इसका पता स्वयं पर भी उसका सारा शरीर इसका प्रमाण दे रहा था। पूरा बिछौना पसीने से भीग चुका था। ...स हो बैठा, और घबराकर सिरहाने की खिड़की खोल देने के साथ ही एक झलक धूप उसके चेहरे और पर पड़कर उसको एक क्षण में तपाकर चली गयी।

रात भर नशे में मतवाला रहने के बाद सवेरे दस बजे नींद टूटने की ग्लानि शराबी ही समझ पाते हैं। इस ग्लानि को दूर करने के लिए सतीश ने पुकारा, "बिहारी।"

बिहारी दौड़कर हाजिर हुआ।

सतीश बोला, "जल्दी से एक गिलास पानी तो ले आ।"

बिहारी ने पूछा, "तम्बाकू देने की आवश्यकता न पड़ेगी?"

"नहीं, पानी ले आ।"

"स्नान नहीं कीजिएगा?"

"अभी नहीं, तू पानी ले आ।"

फिर भी बिहारी नहीं गया, बोला, "सन्ध्या-उपासना का?"

सन्ध्या-उपासना के संकेत से सतीश आग-बबूला होकर बोला, "बदमाश कहीं का। जा, पानी ले आ।"

डांट खाकर बिहारी पानी लाने के लिए नीचे चला गया। रसोईघर के बरामदे में बैठकर सावित्री सुपारी काट रही थी, मुसकराहट के साथ उसने पूछा, "सतीश बाबू ने तम्बाकू देने को कहा है?"

बिहारी ने मुंह बनाकर कहा, "नहीं, पानी चाहिए।"

"स्नान किया नहीं, सन्ध्या की नहीं, फिर पानी क्या होगा।"

बिहारी ने व्यथित होकर कहा, "मैं क्या जानूं। हुक्म हुआ कि पानी चाहिए, ले जा रहा हूं।"

सावित्री सरौता रखकर उठ खड़ी हुई। बोली, "अच्छा, मैं ही ले जा रही हूं, तुम थोड़ी सी बर्फ ले आओ।"

बिहारी पैसे लेकर बर्फ लेने चला गया।

सावित्री ने ऊपर जाकर कहा, "जाइए, स्नान कर आइए, मैं तब तक सन्ध्या का स्थान ठीक कर रखती हूं।"

सतीश मन ही मन झुंझलाकर बोला, "कहां है बिहारी।"

सावित्री हंसी रोककर बोली, "वह बर्फ लेने गया है। बाबू, अपराध करके सजा भोगना अच्छा है, उससे प्रायश्चित्त हो जाता है। आप क्या सन्ध्या-पूजा किए बिना किसी दिन पानी पीते हैं कि आज ही पानी के लिए हल्ला कर रहे हैं! जाइए, देर न कीजिए।"

सावित्री के सामने प्रतिवाद करना निरर्थक समझकर सतीश उठ पड़ा और तौलिया कंधे पर रखकर स्नान करने के लिए चल दिया।

भोजन के बाद सतीश फिर एक बार ज्यों ही सो रहने की तैयारी करने लगा त्यों ही सावित्री आकर दरवाजे के बाहर खड़ी हो गयी। उसको जैसे देखा ही नहीं है, ऐसा रुख दिखाकर सतीश दीवार की ओर मुंह फेरकर सो रहा।

सावित्री ने मन ही मन हंसकर कहा, "रात की सारी बातें बाबू को याद हैं या नहीं, यह जान लेने के लिए मैं आयी हूं।"

सतीश चुप रहा।

सावित्री ने कहा, "नींद टूटने पर एक बार बुला लीजिएगा, उन सबको एक बार याद करा जाऊंगी।" इतना कहकर वह चली गयी।

पिछली रात की सारी घटनाएं याद रखना सतीश के लिए संभव भी नहीं है, वे याद भी नहीं थीं। विपिन बाबू के जलसे से वह किस तरह आया था, किसके साथ आया था, आकर क्या किया था, वे सारी बातें उसके मन में इधर-उधर बिखर गयी थीं, और अस्पष्ट हो गयी थीं। इस अस्पष्टता को स्पष्ट कर

था, उसको बिल्कुल ही न रही हो, ऐसी बात नही है लेकिन एक अनिश्चित लज्जा उसको किसी प्रकार भी कदम बढाने नही दे रही थी। उसको सध्याकाल की घटना ही याद थी। यही अब उसकी मदाच्छन्न स्मृति के आकाश में शुक्रतारा की भांति चमक रही थी, लेकिन अधिकतर ज्योतिष्मान दुष्ट ग्रह भी उस बादल की ओट मे ही उगा हुआ है, उसकी ओर सावित्री के इंगित ने अगली का स्पर्श करने के साथ ही उसकी नींद मरुभूमि की भाप की तरह उड गयी। कल सध्या को हतबुद्धि होकर उसने चिराग बुझा दिया था इसका फल अन्त तक किस तरह प्रकट होगा, उस सबध में उसके मन मे यथेष्ट उत्कण्ठा बनी हुई थी, फिर भी उसमे उसका दोष कुछ भी नही था, इस कारण उसको दुर्भाग्य कहकर वह एक तरह सात्वना प्राप्त कर रहा था और अपराध न करने में जो एक सच्ची शक्ति छिपी रहती है वह शक्ति उसके अनजाने मे भी उसको प्रश्रय दे रही थी, लेकिन सावित्री इस समय जो बात कह गयी, जिस अन्धकार के बीच रास्ता दिखा गयी, उसके बीच प्रवेश करने का साहस उसको कहा था? उसका मतवाला बन जाने की अभिज्ञता थी जरूर, पर बेहोश हो जाने की अभिजना वह कहाँ से लाता? वह किस तरह अनुमान करे कि उसने क्या किया था, क्या नही किया था। कितने ही मतवालों को कितने ही विचित्र कार्य करते हुए उसने अपने नेत्रों से देखा है, अब अपने बारे में किस काम को वह किस साहस से असभव कहकर दूर हटा देगा। इसीलिए सभव-असभव समस्या उसके लिए जितनी जटिल बनती गयी, उसका दुःखी मन उतना ही सभव-असभव के बीच रेखा खीच देने के लिए प्रयत्न करने लगा। फिर उसके दिमाग से आग जल उठी। वह फिर एक बार उठ बैठा और जीवन मे शराब न छूने की प्रतिज्ञा पुनः एक बार करके उसने प्रायश्चित्त किया।

खिडकी में से सतीश ने पुकारा, "बिहारी।"

बिहारी गखाल बाबू के बिछौने को धूप मे डाल रहा था, आवाज सुनकर वह पास आकर खडा हो गया।

सतीश ने कहा, "अच्छा, तू जो काम कर रहा है, कर। सावित्री से कह दे, एक गिलास पानी दे जाए।"

बिहारी ने कहा, "मैं ही ला देता हूं, वह अभी सध्या-पूजा कर रही हैं।"

सतीश ने आश्चर्य में पडकर पूछा, "क्या, सध्या कर रही है।"

"जी हाँ, वह तो नित्य करती है। एकादशी के दिन एक बूंद पानी भी नही पीती, मछली भी नही खाती। भले घर की लडकी है न।"

सतीश ने आश्चर्य के साथ पूछा, "भले घर की? क्या कह रहा है?"

"हाँ बाबू, भले घर की।" इतना कहकर बिहारी पानी लाने जा ही रहा था कि सतीश ने पुकारकर पूछा, "सावित्री यदि रात को भात नही खाती तो क्या खाती है?"

"और क्या खाएगी बाबू, कुछ रहने से किसी दिन थोडा-सा जल भी पी लेती हैं—न रहने पर कुछ भी नही खाती-पीती।"

"बासा का और कोई यह बात जानता है?"

बिहारी ने कहा, "रसोइया महाराज जानता है, मैं जानता हूँ, और कोई नही जानता। उन्होने बताने को मनाही कर रखी है।"

सतीश ने कहा, "अच्छा तू जाकर पानी ले आ।"

बिहारी के दो-एक कदम जाते ही सतीश ने फिर पुकारा, "बिहारी।"

"जी।"

"भले घर की हैं, तूने यह बात कैसे जानी?"

"जानता हूं बाबू। भले घर की लडकी है। केवल किस्मत के चक्कर से—"

"अच्छा, अच्छा, तू जा पानी ले आ।"

बिहारी के चले जाने पर सतीश बिछौने पर औंधा होकर लेट रहा। सावित्री को साधारण दासी की श्रेणी मे मानने से उसके मन मे एक तरह की व्यथा पहुँची थी। किसलिए उसका मन हीनता और गुप्त लाछना के दबाव से चुपचाप सिर झुका लेता था, उसको वह कुछ भी समझने मे समर्थ नही हो रहा था।

आज विहारी के मुह से केवल इतना ही परिचय पाकर आनन्दपूर्ण आश्चर्य से हो
समूचा मन मानो किसी अपरिचित के बाहुपाश से अकस्मात् मुक्ति पाकर पवित्र होकर
विहारी की बात को सम्पूर्ण सत्य कहकर ग्रहण करने मे एक क्षण की दुविधा भी नहीं , उसका

पानी लाने मे विलम्ब हो रहा है सोच कर वह थोडी देर तक चुप हो रहा तो भी विहारी ने
पडा। प्यास के मारे उसे कष्ट मालूम होने लगा। फिर एक बार विहारी को बुलाने की इच्छा करे
जैसे ही उठ बैठा, वैसे ही उसने देखा कि पानी का गिलास लिये सावित्री आ रही है। इस आचार-परा
अभागिनी को उसने आज नयी आँखो से देखा और उस क्षणभर के दृष्टिपात मे ही उसका हृदय करुणा
और श्रद्धा से भर उठा। जो बात किसी दूसरे समय उसके मुह से निकलने मे रुकावट पडती, इस समय
रुकावट नही पडी। पानी पीकर वह बोला, "बहुत बाते हैं।"

सावित्री चुपचाप देखती रही।

सतीश ने कहा, "पहली बात है, मुझे क्षमा करना पडेगा।"

सावित्री ने शात स्वर से पूछा, "दूसरी बात?"

सतीश ने कहा, "कल कब किस तरह मैं आया था, बताना पडेगा।"

सावित्री ने जवाब दिया, "रात के अन्तिम प्रहर मे गाडी पर चढकर।"

"उसके बाद?"

"रास्ते पर ही सो रहने का प्रबन्ध किया था।"

"अच्छा काम नही किया। उठाकर कौन ले आया?"

"मैं।"

"और कौन था? इतने बडे जड पदार्थ को किसी तरह ऊपर उठाया गया?"

सावित्री ने हसकर कहा, "आप डरे नही, बासा मे किसी को कुछ मालूम नही।"

सतीश ने गहरी सास लेकर कहा, "मैं बच गया। लेकिन तुम्हारे साथ मैंने किसी तरह का दुर्व्यवहार तो नही किया?"

"नही।"

"सतीश ने खुश होकर कहा, "तो फिर किस बात की याद दिला देना चाहती थी?"

"आपकी शपथ। आपने शराब न छूने की शपथ ली थी।"

"शपथ मैं क्यो लेने गया? इस तरह दुर्बुद्धि तो मुझे होने की बात नही है।"

"शायद मेरी बात से हो गयी थी।"

सतीश ने अपने कण्ठ-स्वर को धीमा करके कहा, "मुझे याद आ रही है सावित्री, मैंने तुमको छूकर शपथ ली थी न?"

सावित्री निरुत्तर रही।

सतीश ने कहा, "यही होगा। लेकिन कल सध्या की बाते याद हैं।"

इस बार सावित्री हस पडी। गर्दन हिलाकर बोली, "हा, हैं।"

"लोग जान लेगे शायद, फिर क्या उपाय होगा?"

सावित्री ने सहसा गभीर होकर कहा, "होगा फिर क्या। किसी दूसरे बासा पर, या अपने घर चले जाइए।"

"तुम?"

सावित्री के मुख पर किसी प्रकार की घबराहट नही दिखाई पडी। शांत भाव से वह बोली, "मुझे चिन्ता नही। इस बासे के बाबू लोग रखे तो अच्छा ही है, न रखेगे तो और कही काम की चेष्टा करके चली जाऊँगी। जहा मेहनत करूगी, वही दो कौर खाना पा जाऊगी। और कुछ कहना है?"

सतीश का समस्त मन जैसे पहाड से लुढककर नीचे जड मे गिर कर बिल्कुल ही चूर-चूर हो गया। उसके यहा रहने न रहने से सावित्री का कुछ बनता-बिगडता नही। इस संबध मे वह बिल्कुल ही उदासीन है। उसने गरदन हिलाकर बताया और उसको कोई बात कहनी नही है; क्योंकि सावित्री के इस नि शक संक्षिप्त उत्तर के बाद और कोई प्रश्न ही उसके मुह मे नहीं आया। जबकि, कितनी ही बाते

ती थी। सावित्री खाली गिलास लेकर चली गयी। सतीश चुपचाप बैठा रहा।

अरे मनुष्य का मन! यह किस चीज से टूट जाता है, किससे बन जाता है, इसका कोई तत्त्व खोजने नही मिलता। यह कितने आघात से बिल्कुल ही धरती पर लोट जाता है, फिर कितने प्रचण्ड आघात को भी हँसते हुए सह लेता है, इसका कोई हिसाब ही नही मिलता। फिर भी, इसी मन को लेकर मनुष्य के अहकार की सीमा नही है। जिसको वश मे नही किया जाता, जिसको पहचाना तक नही जाता, किस तरह अपना कहकर उसके मन को खुश रखा जा सकता है! कैसे उसे लेकर घर सभालने का काम चल सकता है।

सावित्री के चले जाने पर भी सतीश वैसे ही बैठा रहा। उसका हृदय दु ख-कष्ट से नही, किसी प्रकार की एक जलन से मानो जलने लगा। जिसको प्यार करता हू, वह यदि प्यार न करे, यहा तक कि घृणा भी करे तो वह घृणा भी सही जा सकती है, लेकिन जिसका प्यार मुझको मिल गया है, ऐसा बिश्वास हो जाने पर फिर उस विश्वास का टूट जाना ही सबसे शोचनीय अवस्था होती है। पूर्व स्थिति व्यथा ही देती है, लेकिन दूसरी स्थिति व्यथा भी देती है अपमान भी करती है। फिर इस व्यथा का प्रतिकार नही है, इस अपमान की शिकायत नही है। वेदना का कारण खोजने पर जब मिलता ही नही है तभी व्यथा ऐसी असहनीय हो जाती है।

बहरहाल, सावित्री के इस निश्चित और सरल कर्तव्य-निर्धारण ने सिर्फ एक बार उसके ही हृदय के चित्र को खोल नही दिया, उसने सतीश के हृदय के चित्र को भी खीचकर बाहर के प्रकाश मे पहुचा दिया। इन दोनो चित्रो को आसपास रखकर वह स्तंभित हो रहा। उसने निश्चित रूप से जान लिया था, सावित्री प्यार करती है, वह प्यार नही करता। अब उसने देखा, ठीक उसका उलटा, वह प्यार करता है, सावित्री नही करती। इस घृणित बात को स्वीकार करने मे केवल लज्जा से ही उसका सिर नीचा नही हुआ, बल्कि अपने मन की इस नीच प्रवृत्ति से उसको अपने ऊपर घृणा उत्पन्न हो गयी। उसकी पिछली रात के सब काम लज्जाजनक थे इसमे सदेह नही है, उसके जीवन मे ऐसी अनेक रातो की अनेक लज्जाए जमा होकर पडी हुई हैं यह सच है। लेकिन इस नीचता की तुलना मे वे सभी तुच्छ हो गयी।

इस बासे मे तो एक दिन ही रहना चल नही सकता। यहा रहने न रहने के सबध मे वह बिल्कुल ही उदासीन नही है, यह बात तो वह किसी तरह भी स्वीकार न कर सकेगा। वह कठोर प्रतिज्ञा कर बैठा कि वेदना के भारी बोझ से अगर उसका मन टूटकर टुकडे-टुकडे भी हो जाये तो भी नही। किसी प्रकार भी इस नीचता को प्रश्रय देकर वह नीचे के पथ मे नही जाएगा।

दिन ढलता जा रहा था, लेकिन कमरे के अन्दर सतीश को इसका होश नही था। एकाएक बासे पर लौटने वाले केरानियो तथा पास-पडोस की आहट से वह चकित-सा होकर खिडकी के बाहर झाक लेने के लिए बिछौना छोडकर उठ पडा और उसी दम एक कुरता पहनकर चादर कधे पर डालकर नजर बचाये चुपके से बाहर निकल गया। अभी तुरन्त ही हाथ-मुह धोने का आग्रह लेकर सावित्री आ जाएगी और जलपान के लिए हठ करने लगेगी। आज उसको जरा-सी भी भूख नही थी लेकिन सावित्री इस बात पर किसी तरह भी विश्वास न करेगी, अनुरोध करेगी, परेशान करेगी, हो सकता है कि अन्त मे क्रोध करके चली जायगी। यह सब मौखिक स्नेह के बागुवितण्डा से आज पहली बार अपने को अकृत्रिम घृणा के साथ दूर हटा ले गया।

रास्ते मे घूमते-घूमते सध्या के ठीक पहले एक गली के मोड पर एकाएक पीछे से उसने परिचित कण्ठ की पुकार सुनी, "छोटे बाबू हैं क्या?"

सतीश खडा हो गया, बोला, "हा, मोक्षदा हो क्या?"

बहुत दिन पहले मोक्षदा उसके पछाह के मकान मे दासी का काम करती थी, छुट्टी लेकर कलकत्ता आने पर फिर वापस न जा सकी। उसने कहा, "हा बाबू, मैं हू। मेरा एक पत्र आप पढ देगे?"

सतीश हसकर बोला, "इतने बडे शहर मे एक पत्र पढ़वाने के लिए तुझे और कोई आदमी नही मिला दाई? पत्र कहा है?"

मोक्षदा ने कहा, "पत्र मेरे घर पर ही है बाबू। किसी अनजान आदमी से पढवाने का साहस नही हुआ। न जाने इसमे क्या लिखा हो। यो तो हमारे घर मे ही एक लडकी है, वह पढना-लिखना जानती है,

लेकिन उसको भी आज दो दिन से नही देखा, इतनी अधिक रात को वह घर लौटता नही मिलता।"

सतीश ने पूछा, "कितनी दूर है तुम्हारा मकान?"

दासी ने कहा, "यहा से थोडी ही दूर है। वडे रास्ते के उस तरफ एक गली मे है। अगर पता-ठिकाना बता दे, तो किसी को साथ लेकर कल मैं ही चली आऊ और पत्र पढवा जाऊ।"

सतीश ने 'अच्छा' कहकर अपना शोभा बाजार वाला पता बता दिया और कहां से किस तरफ जाना पडता है, समझाकर बताते-बताते राह चलने लगा। कुछ देर चलने के बाद दासी एक जगह अचानक खडी हो गयी और बोली, "कहने का साहस मुझे नही होता बाबू, अगर एक बार चरणो की धूलि आप दे दे, घर यहा से और अधिक दूर नही है।"

सतीश ने थोडी देर कुछ सोचकर कहा, "अच्छा, चलो।"

आज डेरे पर लौट जाने का उसका बिल्कुल ही मन नही था। रास्ते मे घूमते-घूमते रात अधिक हो जाने पर सावित्री अपने घर चली जाएगी तो अपने डेरे पर लौट जाऊगा, यह निश्चय करके ही वह बाहर निकला था। इसीलिए, सहज ही मे सम्मति देकर, दो गलियो को पार करके वे दोनो मिट्टी के बने दुमंजिले मकान के सामने जा खडे हुए।

"तनिक खडे रहिए।" कहकर मोक्षदा अन्दर घुसी और शीघ्र ही एक मिट्टी के तेल की डिबिया हाथ मे लिये लौट आयी और रास्ता दिखाती हुई सतीश को अपने साथ ले गयी। उस तरफ के कोने के कमरे मे एक छोटे स्टूल पर डिबिया मे बत्ती जल रही थी, उसी कमरे को दिखाकर उसने कहा, "जरा बैठिए, मैं तम्बाकू चढा लाऊ।"

इस छोटे से कमरे की सफाई देखकर सतीश ने आराम अनुभव किया। एक तरफ छोटी-सी चौकी पर मजे-घिसे कितने ही पीतल-कासे के बर्तन चमक रहे थे और उसके पास ही एक रस्सी पर कुछ कपडे व्यवस्थित टगे हुए थे। ताख पर एक टाइमपीस रखी थी, जिसमे आठ बजे थे। सतीश ने चौखट के बाहर जूते खोलकर रख दिये, चौकी पर बिछे हुए सफेद बिछौने पर जाकर बैठ गया और कमरे के दूसरे असबाबो की मन ही मन जॉच करने लगा। पहले ही दृष्टि पड गई एक छोटी सी आलमारी पर। उसमे कुछ पुस्तके सजाकर रक्खी हुई थी। सतीश उठकर गया और एक पुस्तक ले आया, और पहला पन्ना उलटने के साथ ही उसने देख लिया कि अग्रेजी मे भुवनचन्द्र मुखोपाध्याय लिखा हुआ है, उस पुस्तक को रखकर और तीन-चार पुस्तके, वही एक नाम देखकर पुस्तके यथास्थान रखकर वह फिर बैठ गया।

मोक्षदा हुक्के पर तम्बाकू चढाकर ले आयी।

सतीश ने हुक्का थामकर कहा, "तुम्हारा कमरा बहुत साफ-सुथरा है, उठने का मन नही होता।"

मोक्षदा ने मुसकराकर कहा, "उठिएगा क्यो बाबू, बैठिए। यह कमरा मेरा नही है, यह एक दूसरी लडकी का है।"

सतीश ने पूछा, "वह कहा हैं?"

मोक्षदा ने कहा, "वह बाबू लोगो के एक डेरे पर काम करती है। लौटने मे प्राय ही रात हो जाती है, इसीलिए कमरे की चाबी मेरे ही पास रहती है। मुझे मौसी कहकर पुकारती है।"

सतीश ने कहा, "भले ही पुकारती हो, लेकिन भुवन बाबू कब आयेगे?"

दासी ने आश्चर्य मे पडकर पूछा, "कौन भुवन बाबू?"

"भुवन मुखर्जी—पहचानती नही हो?"

सहसा दासी ने दोनो भौंहे चढाकर कहा, "ओह! हमारे मुखर्जी? नही, नही, उनको आना नही पडेगा।"

"क्यो? क्या मर गये हैं?"

दोनो ऑखें चमकाकर मोक्षदा ने कहा, "नही, मर नही गये, लेकिन मर जाने से ही अच्छा होता। ठहरे ब्राह्मण, वर्णों के गुरु, हम लोगो के मस्तक के मणि हैं। नारायण तुल्य हैं, उनके प्रति अभक्ति नही करती, उनके चरणो की धूलि लेती हूँ, लेकिन किसी दिन भेट होने पर तीन झाडू गिनकर मुह पर मारूंगी, तभी मेरा नाम मोक्षदा है।"

हंसकर बोला, "क्रोध के आवेश में ब्राह्मण आदमी की अभक्ति करके कहीं मार मत बैठना। ... के साथ गिनकर मारोगी तो पाप न लगेगा। लेकिन वह है कौन?"

मोक्षदा ने कहा, "उस आदमी का परिचय क्या दूं बाबू, वह आदमी नहीं जानवर है। उस लड़की को जिस राह में वह बिठा गए, बाबू, यह कोई अपने आदमी का काम है? छि! छि! गले में डालने को रस्सी नहीं मिली?"

सतीश ने कौतूहल के साथ पूछा, "वह हैं कौन? उन्होंने क्या किया है?"

सहसा कमरे के बाहर से जवाब आया, "उस आदमी को आप नहीं पहचानते, आपको उनके विषय में सिर्फ जान लेने में क्या लाभ होगा?"

सतीश चौंक पडा।

मोक्षदा ने मुंह फेरकर कहा, "आयी है क्या? कब आयी तू?"

सावित्री ने कमरे में घुसकर कहा, "अभी आयी हूं, बाबू को तुम कहां पा गयी मौसी?"

मोक्षदा ने कहा, "ये ही हमारे छोटे बाबू हैं, सावित्री? आज दो दिन हुए बहूजी का एक पत्र मुझे मिला है, उसको पढ़वा नहीं सकी, इसलिए कहा—अगर बाबू दया करके चरण-रज दे दें . ।"

सावित्री ने कहा, "तो चरण-रज तुम्हारे कमरे में न देकर मेरे कमरे में क्यों?"

मोक्षदा ने नाराज होकर कहा, "तो फिर क्रोध क्यों करती हो सावित्री। मेरे कमरे में तो भले आदमी को बैठाया नहीं जा सकता, इसीलिए तेरे कमरे में बैठाया है। कितने बड़े घराने के ये लोग हैं, यह तो खुशी की बात है, नाराज क्यों हो रही है?"

सावित्री ने हंसकर कहा, "क्यों नाराज होऊंगी मौसी। लेकिन खाली चरण-रज लेने से तो पाप होता है। जलपान कराना उचित है—हां ब्राह्मण महाराज, क्या आपको भूख लगी है?"

सतीश संकुचित हुआ बैठा था, सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

सावित्री के अशिष्ट प्रश्न से विरक्त होकर मोक्षदा ने कहा, "यह बात करने का कैसा तरीका है सावित्री? भले आदमी के साथ क्या इस तरह बातें की जाती हैं?"

सावित्री ने बलपूर्वक हंसी दबाकर कहा, "यह कौन-सी खराब बात है मौसी? अच्छा, अब उनकी भूख के बारे में कुछ पूछूंगी ही नहीं, तुम दुकान से कुछ जलपान खरीद लाओ, तब तक मैं जगह ठीक कर रखती हूँ।"

मोक्षदा भुनभुनाती हुई बकते-बकते तेज कदम बढ़ाकर चली गयी तो सावित्री ने कहा, "कल रात से ही तो एक तरह उपवास ही चल रहा है। शाम को किस तरह आप भागकर चले आये, उसका भी पता मुझे नहीं चला। अब उठिए, संध्या-पूजा करके कुछ खा लीजिए। इस अरगनी पर धुले कपड़े हैं, पहनकर मेरे साथ आइए, देर न करें, उठिये।"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "मुझे भूख नहीं है।"

सावित्री ने कहा, "न रहने पर भी खाना पड़ेगा। इसका पहला कारण है कि, भूख नहीं है, इस बात पर मैंने विश्वास नहीं किया, दूसरा कारण?"

सतीश ने अपने मुंह का भाव अत्यन्त कड़ा बनाकर कहा, "दूसरा कारण तो झूठ ही है, वही पहला सब कुछ है। सभी बातों में तुम्हारी जिद और जबर्दस्ती रहती है। इस जिद के सामने किसी का उपाय नहीं चलता।"

सावित्री ने मुंह ऊपर उठाकर जरा हंसकर कहा, "तो फिर झूठ-मूठ की चेष्टा क्यों कर रहे हैं?"

सतीश ने और भी गंभीर होकर कहा, "यह बात नहीं है सावित्री। आज मेरी चेष्टा किसी तरह भी झूठ न होगी। या तो, अपना दूसरा कारण बताओ, नहीं तो सच कह रहा हूं तुमसे, मैं किसी तरह भी यहां कुछ न खाऊंगा।"

सतीश की जिद देखकर सावित्री चुपचाप हंसने लगी। कुछ देर बाद धीरे-धीरे बोली, "मैं सोच रही हूं, आज आप आ कैसे गये? आज है मेरा जन्मदिवस। जबकि आपने दासी के घर में चरण-रज दी है तब खाली-खाली आपको मैं नहीं छोड़ सकती।" इतना कहकर सावित्री सहसा रुक गयी, लेकिन उसके हृदय की गुप्त व्यथा उसी के कण्ठ-स्वर के मुक्त मार्ग से इस तरह अचानक सतीश के सामने आकर

खडी हो गयी कि कुछ देर के लिए सतीश की बोधशक्ति अचल हो गई। बुद्धिमती से क्षणभर मे अनुभव करके सभी बातो का सहज परिहास करके हसकर बोली, "भगवान ने आपको मेरा अतिथि बनाकर भेजा है, इसलिए खाना भी पडेगा और दक्षिणा भी लेनी पडेगी। देखती हूं, बिल्कुल ही जात नष्ट हो जाएगी।"

इतनी देर मे सतीश की स्वाभाविक शक्ति लौट आयी थी। उसने पूछा, "सचमुच ही क्या आज तुम्हारा जन्मदिन है?"

सावित्री ने कहा, "सचमुच।"

सतीश ने कहा, "तो ऐसे दिन अगर मैं आ ही पडा हू तो दूकान की कुछ बासी मिठाइया खाकर पेट न भराऊगा। इसके अलावा ये सब चीजे तो मैं कभी खाता नही।"

सावित्री भी यह बात जानती थी। मन ही मन लज्जित होकर उसने कहा, "लेकिन अब तो रात हो गयी है।"

सतीश ने कहा, "हो जाए रात। आज डेरे पर वापस जाकर झिडकियाँ तो खानी न पडेगी। फिर आज ज्यादा रात होने से डरू क्यों? कुछ भी क्यो न कहो, किसी प्रकार भी मैं नही खाऊगा।"

"तुमसे पार पाने का कोई रास्ता नही है।" कहकर सावित्री उठकर चली गयी।

सतीश बैठा हुआ था, अब लेट गया। यह सुन्दर कुटी और यह निर्मल सफेद शय्या छोडकर किसी तरह भी जाने की उसे इच्छा नही हो रही थी, फिर भी आत्मसम्मान को अक्षुण्ण रखकर बैठ रहने का भी कोई अच्छा-सा कारण नही मिल रहा था। अब खाना तैयार होने की देर की सभावना उसको भावी आसन्न कठिन उत्तरदायित्व मे मानो छुटकारा दे गयी। चलते समय सावित्री बाहर से जंजीर चढा गयी थी, इसको भी जैसे वह जान गया था, उसके 'तुम' सभाषण को भी उसने उसी तरह लक्ष्य किया था। निर्जन कमरे में ये नवलब्ध दो तथ्य, जादूगर और उसकी जादू की लकडी की तरह अपूर्व इन्द्रजाल की रचना करने लगे। आज ही दुपहरिया को जो सब प्यार के कूडा-कर्कट उसके मन के भीतर से भाटे के खिचाव से बाहर की तरफ बह गए थे, ज्वार के उलटे स्रोत से फिर वे एक-एक करके वापस आकर प्रकट होने लगे। आज ही दोपहर को आत्माभिमान के आघात की तीखी ज्वाला ने अपने मन की नीच प्रवृत्तियो की तरफ उसके नेत्रों को खोल दिया था, ज्वाला के ठडा होने के साथ ही साथ वे नेत्र आप ही आप बन्द हो गये। इसी तरह अपने को लेकर खिलवाड करते-करते किसी समय शायद वह जरा-सा सो गया था। एकाएक द्वार खुल जाने की आवाज से वह जाग उठा और देखा कि सावित्री मोक्षदा को साथ लिये कमरे मे घुस रही है। मोक्षदा ने पत्र सतीश के हाथ मे देकर कहा, "देखिए तो बाबू, बहू ने लिखा क्या है।"

सतीश ने पढकर कहा, "उन लोगो के लौटने मे अभी दो महीने की देर है।"

मोक्षदा ने पूछा, "और कोई बात नही है?"

सतीश ने पत्र लौटाकर कहा, "नही, विशेष कुछ बात नहीं है।"

"मेरी तनखा के बारे में बाबू?"

"नही, वह बात नही लिखी है।"

रुपये की बात नही लिखी है सुनकर मोक्षदा ने मन ही मन अत्यन्त कुढकर पत्र के लिए हाथ बढाते हुए कहा, "यह बात रहेगी क्यों? रहेगी जितनी सब बेकार की बाते। दीजिए पत्र। सावित्री कल पत्र का उत्तर लिख देना तो। हा, बाबू को खाना कब दोगी? रात नही हुई है क्या?" सावित्री ने कहा, "यह ठहरे, ब्राह्मण महाराज, सध्या-पूजा करेगे या यो ही खा लेगे?"

मोक्षदा ने कहा, "यह क्या अपने पुरोहित महाराज हैं, या बाबाजी हैं कि पूजा-आह्निक करके खाएंगे?"

सतीश हसकर बोला, "क्या दाई, तुम सब भूल गयी। मैं तो सदा ही सध्या-पूजा करता हू।"

मोक्षदा को शायद एकाएक बात याद पड गयी। झेपकर बोली, "हा-हा, ठीक बात है।" सावित्री की तरफ घूमकर बोली, "देख तो बेटी, जल्दी बाबू के लिए जगह ठीक कर दे। तेरे घर मे तो सब ही ठीक-ठाक है।" कहकर मोक्षदा चली गयी।

एक घटे के बाद सतीश के भोजन के वक्त कमरे में कोई भी मौजूद नही था—अधेरे बरामदे से यह

...दा एकदम जल उठी। रसोईघर मे जाकर देखा, सावित्री चुपचाप बैठी हुई है।

...कण्ठ से उसने कहा, "यह तेरी कैसी बुद्धि है सावित्री? यह क्या कगाली भोजन हो रहा है कि जो ...भी है, खाने के लिए सामने डालकर निश्चित होकर बैठी हुई हो?"

सावित्री कुछ सोच रही थी, चौंककर बोली, "आवश्यकता पडने पर वह खुद ही माग लेगे।"

"ऐसी बुद्धि न रहती तो फिर तू दासी का काम करने जाती। तू तो खुद ही नौकर-नौकरानी रख लेती।"

सावित्री ने हसकर कहा, "खुद ही नौकरानी बनी हुई हू। इसमे भी क्या दोष है मौसी, मेहनत करके खाने मे तो शर्म नही है।"

मोक्षदा ने कुपित होकर कहा, "कौन कहता है कि है। मेरी उम्र मे भले ही न रहे, लेकिन तेरी उम्र मे तो जरूर ही है। अच्छा रहे या न रहे, बाबू को जबकि खाने को कह दिया है तब बैठकर खिलाओ। मनुष्य का भाग्य बदलने मे अधिक देर नही लगती।'

सावित्री जाने को तैयार होते-होते ठिठककर खडी हो गई बोली, "क्या बक रही हो मौसी। वह सुन लेगे तो?"

मोक्षदा ने तुरन्त ही अपना कण्ठ धीमा करके कहा, "नही-नही, सुन लेगे क्यो। और एक बात तुझसे कहे रखती हू बेटी। भगवान ने जो दो आखे दी हैं, उन दोनो को जरा खोल रखना, घडी की चेन हीरे की अगूठी न रहने से ही किसी आदमी को छोटा मत समझ लेना।"

"अच्छा।" कहकर सावित्री हसती हुई चली जा रही थी। मोक्षदा ने फिर पीछे से पुकारकर कहा, "सुनो तो सावित्री।"

सावित्री घूमकर खडी हो गई, बोली, "क्या है?"

"मेरे कमरे मे चल, एक ढाका की साडी निकाल दू, पहनकर जा।'

सावित्री ने हसी रोककर कहा, "तुम निकाल लाओ मौसी, मैं अभी आ रही हू। '

सतीश का खाना प्राय समाप्त हो आया था, सावित्री ने कमरे मे घुसकर कहा, "आखे बन्द करके खा रहे हो क्या?"

सतीश ने मुह ऊपर उठाकर कहा, "नही।"

"लेकिन देखती हू दोनो आखें तो नीद से ढलती जा रही हैं।"

असल मे उसे कडी नीद आ रही थी। पिछली रात का उच्छृखल अत्याचार आज असमय मे ही उसकी आखो की दोनो पलको को भारी बनाता जा रहा था, सलज्ज हसी स्वीकार करके उसने कहा, "हा, बडी नीद आ रही है।"

सावित्री ने पूछा, "और कुछ चाहिए?"

सतीश तुरन्त बोल उठा, "कुछ नही, कुछ नही, मैं खा चुका।"

बाहर पैरो की आहट सुनकर सावित्री जान गयी कि मोक्षदा आकर खडी है, बोली, ' बाबू, मुझे एक ढाका की साडी खरीद देनी पडेगी।"

वह कभी कुछ नही मागती, इसलिए इस बात का मतलब न समझ सकने के कारण सतीश आश्चर्य मे पड गया। मोक्षदा के आने का उसे पता नही था। उसने पूछा, "सचमुच ही चाहिए?"

"सचमुच ही तो।"

"कब पहनोगी?"

"आज पहनने की स्थिति नही है, इसलिए किसी दिन भी वह स्थिति नही होगी, ऐसी क्या बात है। इसके अलावा एक और बात है। मैं मेहनत करके खाती हू, इसके लिए मौसी दुख कर रही थी। इसलिए सोच रही हू अब मेहनत करके न खाऊगी—अब से बैठी-बैठी खाऊगी।"

सतीश ने हसकर कहा, "अच्छी बात तो है।"

"सिर्फ अच्छी बात होने से ही तो न होगा, उसके साथ एक नौकरानी न रहने से भी तो मान नही रहता—उसको भी आपको रख देना पडेगा। '

अपनी बात को वह खत्म भी न कर सकी—मुह मे आचल ठूसकर हसी का वेग रोकने लगी।

मोक्षदा कोई कच्ची औरत नही थी। एक ही क्षण मे सब कुछ समझकर कमरे में घु[illegible]
"बाबू, शायद सावित्री को पहचानते हैं?"

सावित्री की तरफ घूमकर बोली, "मौसी के साथ अब तक शायद मजाक हो रहा था? यह [illegible], बात है, खुशी की बात है। पहले कहने से ही तो काम हो जाता।" कहकर हसकर वह चली ग[illegible]

भोजन के बाद सतीश फिर एक बार बिछौने पर आकर बैठ गया। सावित्री डिब्बे मे भरकर पा[illegible] लाई और बधे हुक्के पर तम्बाकू चढाकर सतीश के हाथ मे दे दिया, पैरो के पास धरती पर बैठकर एकाएक मुसकराकर सिर झुका लिया। सतीश के दिल मे आंधी बहने लगी। सारे शरीर में रोगटे खड़े होकर मानो जाड़ा लगने लगा। क्षणकाल के लिए उसको हुक्का खीचने की शक्ति तक नही रही। दो मिनट के बाद सावित्री ने मुह ऊपर उठाकर कहा, "रात हो गयी, बासे पर नही जाओगे?"

सतीश ने सूखे कण्ठ मे कहा, "नही जाऊगा तो रहूगा कहा?"

"यही रहोगे। न जा सको तो जरूरत नही है—मौसी अभी तक जाग रही है। मैं उनके बिछौने पर ही सो जाऊंगी।"

एक क्षण के लिए सतीश चुप ही रहा लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सभालकर बिल्कुल ही खडा होकर कहा, "नही जा रहा हू।"

"अच्छा, और जरा बैठो।" कहकर सावित्री उठकर चली गई और सतीश के जूते बाहर से उठा लाई और आचल से पैर पोछकर जूतो का फीता बाधते-बाधते धीरे-धीरे बोली, "बासा के लोग अगर जान जाए तो?"

"जानेगे कैसे?"

"मैं अगर बता दू?"

"तुम क्या बताओगी? बताने की कोई बात ही नही है।"

सावित्री ने हसकर कहा, "कुछ भी नही है सच कहते हो?"

सतीश निरुत्तर हो रहा।

सावित्री ने धीमे स्वर मे कहा, "बताने की बात न रहने से कौन जाने आज मैं तुमको छोड सकती थी या नही।" यह कहकर वह एकाएक चुप हो गई। लेकिन दूसरे ही क्षण प्रबल वेग से सिर हिलाकर बोल उठी, "नही, तुम बासे पर चले जाओ। अगर दुर्बुद्धि न छोडोगे तो एक दिन सब ही खोल दूगी, बताये देती हू।"

यह कैसा रहस्य है। इसके अन्दर की बात ठीक न समझ सकने के कारण सतीश क्षणभर चुप रहकर खडा रहा। बोला, "भले ही बता दोगी बासे के लोग तो मेरे सरक्षक हैं नही।"

सावित्री ने कहा, "जानती हू, नही हैं। लेकिन मेरी मौसी यह काम भी अनायास ही ले सकेगी। उसकी जबान को कैसे रोक रखोगे?"

मोक्षदा का नाम सुनकर सतीश मन ही मन डर गया, पर बोला, "रुपये देकर।"

सावित्री ने कहा, "उससे केवल रुपया बरबाद होगा, काम नही होगा। इसके सिवा, मौसी को न हो रुपये से वश मे कर लोगे, लेकिन मुझे क्या देकर वश मे करोगे?'

सतीश तुरन्त बोल उठा, "प्रेम देकर।"

सावित्री के ओठो पर हसी की रेखा दिखाई पडी, बोली, "इसको लेकर चार बार हो गये।"

"यानी?"

"यानी इसके पहले और भी तीन आदमियो ने इसी चीज को देना चाहा था।"

'तुमने लिया नही? '

' नही। कूडा-करकट जमा करके रखने के लिए मेरे पास जगह नही।"

सतीश स्थिर होकर बैठा रहा। सावित्री की व्यग्य-भगी [illegible] और उसके कण्ठ का स्वर कुछ भी उसके लक्ष्य मे बच नही सका। इसीलिए उसकी दोपहर की [illegible] गयी और याद आने के साथ ही प्रेम की नदी मे ज्वार खत्म होकर भाटे का खिचाव शुरू हो [illegible], [illegible] की बातो को उसने व्यग्य समझ लेने की गलती नही की। कडे स्वर मे बोल उठा ' [illegible] ऐसी चीज देने

...रना उचित था जिसको वक्स मे उठा रखना किसी को कूडा-करकट न मालूम हो। मैं भी ...नही हू, क्योंकि, मैं भी भूल गया था कि वह चीज तुम लोगों के लिए कितनी अवहेलना की चीज इतनी उम्र में इतनी वडी भूल हो जाना मेरे लिए उचित नहीं था। अच्छा मै चलता हू।"

यह वात सावित्री को शूल की तरह वीध गया, "तुम लोगो के लिए" कहकर सतीश ने उसको किन लोगों के साथ अभिन्न वनाकर देखा, इसे समझना सावित्री को वाकी नही रहा। किन्तु परिहास को झगडे मे परिणत होते देखकर वह चुप रह गयी। सतीश रुक नही सका, वोला, "शिकारी वंसी में मछली को गूँथकर -नचाकर जैसे आनन्द मानता है, संभवतः इतने दिनो से मुझे लेकर तुम वही मजाक कर रही थी न?"

सावित्री और सहन न कर सकी। विजली की-सी गति से वह उठ खडी हुई, वोली, "वंसी में गूथकर तुमको ही खीचकर उठाया जा सकता है—नचाकर उठाने लायक वडी मछली तुम नही हो।"

सतीश ने निष्ठुर भाव से व्यग्य करके कहा, "नहीं हू मैं?"

सावित्री ने कहा, "नही हो।" उसके होंठ सिकुड़ गये।

सतीश के चेहरे की तरफ तीव्र दृष्टिपात करके वह कहने लगी, "दुश्चरित्र, मेरी तरह एक स्त्री को प्यार करके प्रेम की वडाई करने मे तुमको लज्जा नही मालूम होती? जाओ तुम .. मेरे घर मे खडे होकर झूठमूठ मेरा अपमान मत करो।"

इस अपमान से सतीश और भी निर्दयी हो उठा। इस वार अक्षम्य कुत्सित व्यग्य करके उसने कहा, "मैं दुश्चरित्र हू! किन्तु जो कुछ भी कहो सावित्री! तुम्हारा नाम तुम्हारे मा-वाप ने सार्थक रखा था।"

सावित्री हटकर चली गयी, चौखट पकडकर क्षणकाल स्थिर भाव से खडी रहकर वोली, "जाओ!" उसका चेहरा पीला वदरंग हो गया था।

अपमान और क्रोध की असहनीय जलन से उस तरफ नजर तक भी न डालकर सतीश वोला, "किन्तु जाने के पहले एक वार फिर आचल मे पैर पोछ न दोगी? अथवा और कोई खेल और कोई नाटक।"

एकाएक दोनो की आखें लड गयी।

सावित्री ने एक कदम आगे वढकर कहा, "तुम कसाई मे भी निष्ठुर हो—तुम जाओ! तुम जाओ! तुम्हारे पैरो पर गिरती हू, न जाओगे तो सिर पटक कर मर जाऊगी—तुम जाओ।"

उसके कठ-स्वर की उत्तरोत्तर और अस्वाभाविक तीव्रता से अकस्मात् सतीश डर गया, फिर एक भी वात न कहकर वाहर चला गया। किंतु अंधेरे वरामदे मे अन्त तक आकर उसे रुक जाना पडा। किस तरफ सीढ़ी है, किस तरफ रास्ता है, अंधेरे मे कुछ भी दिखाई नही पडता था। जेव मे हाथ डालकर उसने देखा, दियासलाई नही थी। इस निरुपाय अवस्था मे पडकर वह पाच मिनट चुपचाप खडा रहा। फिर उसे सावित्री के कमरे की तरफ लौट आना पडा। वाहर से उसने देखा, सावित्री फर्श पर औंधी पडी हुई है, धीरे-धीरे उसने पुकारा, "सावित्री! सावित्री ने उत्तर नही दिया, फिर पुकारने पर उत्तर न मिलने पर सतीश ने कमरे मे जाकर सावित्री के माथे पर हाथ रखा। झुककर देखा, आखें मुदी हुई हैं और उसके मुह मे अगुली डालकर समझ गया, सावित्री मूर्च्छित हो गयी है। क्षणभर के लिए मन में एक भय और संकोच का उदय हो गया जरूर, किंतु दूसरे क्षण सावित्री का अचेतन शरीर उठाकर विछौने पर उसने लिटा दिया और चादर का एक हिस्सा गगरी के जल से भिगोकर मुह पर, आखो पर छिडकने लगा। फिर पखा हाथ मे लेकर हवा झलने लगा। दो-तीन मिनट के वाद ही सावित्री ने आखे खोलकर माथे पर का कपडा खीचकर करवट वदलकर कहा, "तुम गये नही?"

सतीश चुप रहकर हवा झलने लगा।

सावित्री विछौने से उठकर चिराग हाथ मे लेकर वाहर जा खडी हुई। वोली, "चलो, चलो, तुम्हारे लिए दरवाजा खोल आऊ।"

उसके वाद चुपचाप रास्ता दिखाती हुई वह नीचे उतर गयी और दरवाजा खोलकर किनारे खडी हो गयी।

मूर्च्छित सावित्री को विछौने पर ले जाकर लिटाने के लिए उसके अचेतन शरीर को जो गोद मे लेना

पडा था, उसी समय से सतीश मानो अन्यमनस्क-सा हो गया था। अब दरवाजे के अपने मे आ गया और कोई बात कहने के लिए मुह ऊचा उठा ही रहा था कि सावित्री बो और एक बात भी नही, अपने शरीर को तुमने पहले ही नष्ट कर डाला है किंतु वह तो किसी दिन खाक भी हो जायगा, किंतु एक अस्पृश्य कुलटा को प्यार करके भगवान के दिये हुए मन के गाले स्याही मत पोत देना। या तो, तुम कल ही उस डेरे को छोडकर चले जाओ या मैं वहा अब नही जाऊंगी। इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा न करके सावित्री ने दरवाजा बन्द कर दिया।

नौ

सतीश हतबुद्धि सा हो गया था। क्यो सावित्री अविश्राम आकर्षित करती है और क्यो पास आने पर इस तरह निष्ठुर आघात करके दूर हटा देती है? उस दिन सारी रात बराबर सोचते रहने पर भी, इसका कोई स्पष्ट कारण खोजकर वह न पा सका। पिछली रात की एक बात अब तक उसकी हड्डियो मे झनझनाती हुई बज रही थी। इस कारण वह भोर मे बाहर निकल पडा, और किराये का एक मकान ठीक करके आकर मजदूर बुलाकर अपना सामान लदवाने लगा। यह काम देखकर बासा के सभी लोग आश्चर्य मे पड गये। अधिक आश्चर्य मे पडा बिहारी। उसने पास आकर धीरे-धीरे पूछा, "बाबू क्या घर जा रहे हैं?"

सतीश ने उसके हाथ मे पाँच रुपये देकर कहा, "नही बिहारी, घर पर नही स्कूल के पास ही एक मकान पा गया हू, इसलिए जा रहा हू।"

बिहारी ने कहा, "किंतु वह तो अभी तक आयी नही है बाबू?"

सतीश ने मुह ऊपर उठाये बिना ही कहा, "आयी नही है? अच्छा तू मेरे बिछौने को बाध दे, मैं तब तक राखाल बाबू के कमरे से आ रहा हू।" यह कह कर बासे का देना-पावना चुका देने के लिए वह राखाल बाबू के कमरे मे चला गया। उस कमरे मे बहुत से लोग उपस्थित थे। शायद यही आलोचना चल रही थी क्योंकि उसको देखते ही सभी निस्तब्ध हो गये। राखाल ने जरा हसने की चेष्टा करके कहा, "सतीश बाबू, इस तरह अचानक कैसे?"

सतीश ने हाथ के रुपयो को मेज के एक किनारे रखकर कहा, "अचानक एक दिन मैं आया भी था, अचानक एक दिन जा रहा हूँ। इन्ही रुपयो से शायद आपका हिसाब चुकता हो जायगा, यदि न हो, तो हिसाब हो जाने पर मुझे खबर दीजिएगा, बाकी रुपये भेज दूगा।"

राखाल ने कहा, "खबर कहा दूगा?"

"मेरे स्कूल के पते से एक कार्ड लिखकर भेज दीजिएगा, मुझे मिल जाएगा।" यह कहकर सतीश और किसी सवाल-जवाब की प्रतीक्षा न करके बाहर चला गया। कमरे के अन्दर एक दबी हुई हंसी की आवाज सतीश के कानों मे आ पहुची। बिहारी निकट ही खडा था। कमरे मे घुसकर हाथ की छोटी-सी गठरी किवाड की आड में उतारकर रख देने के बाद राखाल को लक्ष्य करके बोला, "बाबू, मेरा सत्रह दिन का वेतन हिसाब करके दे दीजिए, मुझे इसी दम बाबू के साथ जाना पडेगा।"

राखाल ने विस्मित और क्रुद्ध होकर कहा, "तू जायगा, यहा काम करेगा कौन? जाऊंगा कह देने से ही तो जाना नही होता।"

बिहारी ने कहा, "होगा क्यो नहीं बाबू? मुझे तो जाना ही पडेगा।"

राखाल ने अग्नि की तरह जलकर कहा, "जाना पड़ेगा कह देने से ही हो जायगा? नियमानुसार नोटिस देना चाहिए, मालूम है?"

बिहारी ने कहा, "वह एक दिन समयानुसार आकर दे जाऊंगा। अभी वेतन दे दीजिए, मुझे माल-असबाब जुटाना पडेगा।"

राखाल और कुछ न कहकर तूफान की गति से बाहर आया और सतीश के कमरे मे घुसते ही बोल उठा, "सतीश बाबू, ये सब कैसे काम हैं?"

सतीश बिछौना बांधते हुए बोला, "कौन सब?"

न उद्दण्ड भाव से कहा, "नौकरानी नहीं आयी, वह तो पहले ही चली गयी है। देख रहा हू, को भी ले जाना चाहते हैं, क्यों? अपराध किया आपने, दण्ड हम लोग भोगेंगे?"

सतीश ने कहा, "आपकी बात मेरी समझ में नही आयी।"

राखाल ने कण्ठ का स्वर ऊंचा करके कहा, "समझेंगे क्यों? न समझने में ही तो सुविधा है। खुद न जाने से तो आपको निकाल बाहर करना ही पडता, लेकिन जो कुछ भी हो, एक सहज शिष्टता का बोध भी क्या नही रहना चाहिए?"

सतीश की दोनो आखे जल उठीं। पास आकर वह बोला, "आप यह सब क्या कह रहे हैं, राखाल बाबू?"

ईर्ष्या की आग राखाल को जला रही थी। बोला, "ठीक कह रहा हूं, आप भी ठीक समझ रहे हैं! सतीश बाबू, कोई भी बात हम लोगों से छिपी नही है। अच्छा, जाइए आप—क्या ही काला सांप मकान मे लाया गया था। ऐसे बासे को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

सतीश ने राखाल का एक हाथ थामकर कहा, "आप क्या कह रहे हैं, राखाल बाबू?"

राखाल जबरदस्ती अपना हाथ छुड़ाकर गरज उठा, "जाइए, ढोंग मत रचिए। जाइए आप, दूर हट जाइए!"

बिहारी ने कमरे मे आकर कहा, "सतीश बाबू, जाने दें उनको, उनका मोह कहा है और कहा है उनकी जलन, यह बात मैं एक दिन आपको बताऊंगा। मैं सब जानता हूं। आइए, हम लोग चीज-सामान ठीक कर डाले।"

राखाल अपने पैरो की आवाज से मकान कपा कर बाहर चला गया। सतीश ने चौकी पर बैठकर कहा, "यह सब क्या हे बिहारी?"

बिहारी ने कहा, "मैं आपके साथ जाऊंगा, यहा रह न सकूगा।"

सतीश ने आश्चर्य मे पडकर कहा, "मेरे साथ? यहां काम कौन करेगा?"

बिहारी ने अविचलित दृढता के साथ कहा, "जिसकी इच्छा हो वह करे, मैं साथ ही जाऊंगा। नौकर के बिना तो आपका काम चलेगा नही।"

इतनी देर मे मामला समझ सकने पर सतीश पल भर चुप रहकर बोला, "यह बात पहले कह देने से ही तो ठीक रहता बिहारी।"

बिहारी कुछ नही बोला, चुपचाप चीज-सामान बाध-बटोरकर मजदूर के सिर पर उठाने लगा। वह जायेगा ही इसमे और सदेह नही रहा।

सतीश नये बासे पर आकर सोच रहा था, मैं कैसा हो गया हूं? किस तरह ऐरा-गैरा कोई भी मेरा अपमान करने का साहस करता है। यही नही, अपमान करके स्वच्छंदता से परित्राण पा जाता है, क्यों? मेरी असाधारण शारीरिक शक्ति एक तिल भी कम नही हुई है, फिर भी मैं क्यों मुंह ऊपर उठाकर जोर लगाकर बात नही कह सकता? क्यों मैं सिर झुकाए ही सब सह लेता हूं। अपने मन की यह शोचनीय दुर्बलता आज उसको बडी चोट पहुचाने लगी और उससे भी अधिक चोट लगी इस दुःख की कि प्रतिकार करने की सामर्थ्य भी मानो आज उसके हाथ से निकल गयी। राखाल की क्रोध भरी भाषा ने उस रात की घटना का ही उल्लेख किया हे। इसमें सदेह मात्र नही है कि इसी को याद करके सतीश लज्जा से गड गया। विपिन के आदमियो ने उसको किस तरह किस भाव से पकड लिया था। अंधेरे कमरे में किस तरह वह डर से मुर्दे की तरह पडा हुआ था, वे लोग बुद्धिमान थे और किस तरह सारी चालाकी समझ लेने पर ओढ़ने के अन्दर से उसे खीचकर ले गये थे इत्यादि चित्तग्राही दुर्लभ विवरण का सत्य-मिथ्या के अलकार-आडम्बर से लपेटकर जो वर्णन किया गया होगा, उपस्थित सब लोगो ने किस प्रकार उत्कट आनन्द, आग्रह और ऊची हसी के साथ उसका उपभोग किया होगा, उसकी आदि से अन्त तक कल्पना करके उसका चेहरा इतना ज्यादा मर्मान्तक और वीभत्स हो कर दिखाई पडा कि अकेले कमरे के अन्दर भी सतीश का पूरा चेहरा वेदना से विकृत हो उठा। फिर उन्ही लोगों के सामने ही राखाल ने उसका अपमान करके विदा कर दिया, वह एक बात भी कह नही सका, यह सुनकर सावित्री क्या सोचेगी।

वह कुछ न कहेगी। सब सह लेगी, एक जवाब भी न देगी। उसका आत्मसम्मान-बोध कितना बढ़ा

है, इसको भी वह जैसे असंदिग्ध भाव से समझ गया था, उसके व्यथित चेहरे की आकृ
आज स्पष्ट देखने लगा। सतीश ने मन ही मन कहा कि जरूर मेरी निर्बुद्धिता से जो आज दु
है असहाय सावित्री को उसके बीच छोडकर चला आना उचित नही हुआ। लेकिन उचित क्या मे
था, यह किसी तरह सोचने पर भी वह समझ नही सका। लेकिन सावित्री ने क्या खुद ही उसको चे
को नही कहा? उसने क्या गर्व के साथ ही नही कहा, इसमें वह कोई अपमान नही समझती।

बिहारी ने आकर कहा, "बाबू आपके स्नान का समय हो गया है।" आज उसके कण्ठस्वर मे विशेष अर्थ था।

सतीश लज्जित होकर झटपट उठा और तौलिया कंधे पर रखकर स्नान करने चला गया।

हाय रे, जब हृदय चूर-चूर हो रहा था तब भी नित्य के काम मे लापरवाही करने का उपाय नही था। उस दिन वह स्कूल गया, लेकिन क्लास मे न जा सका। बाहर घूम-घूमकर ही बासे पर लौट आया और कमरे मे घुसते ही किसी तरह की निराशा से मानो उसका पूरा हृदय परिपूर्ण हो उठा। इस नये कमरे को सजाकर, सरियाकर ठीक-ठाक करने मे बिहारी ने खूब परिश्रम किया है, यह बात समझ मे आ गयी। लेकिन अपटु हाथ की प्रथम चेष्टा कही भी छिपी नही है, यह भी उसी तरह दृष्टि मे पड गयी। बिहारी शरबत ले आया, तम्बाकू चढ़ाकर दिया और दुकान से पान का दोना खरीदकर ले आया। वृद्ध की अनभ्यस्त इन सब सेवाओं की चेष्टा से सतीश मन ही मन हसने जा रहा था, पर रुलाई आ गयी और उसने नेत्र पोछ डाले। रात को बिछौने पर लेटकर सतीश सोचने लगा, 'जो कुछ होना था हो गया, इन सब बातो को वह अब मन मे भी न लायेगा। लिखने-पढ़ने के लिए वह कलकत्ता आया था। तो इसी को लेकर रहेगा या घर लौट जायेगा।' लेकिन उस दिन मूर्च्छिता नारी के गरम शरीर के स्पर्श को लेकर वह घर लौट आया था, वह गरमी उसके समस्त सयम की चेष्टा को गलाकर खतम करने लगी। बिहारी मन ही मन सब समझ रहा था, लेकिन सात्वना देने का साहस उसको नही था। इसी कारण वह उदास चेहरे से चुपचाप दरवाजे के बाहर बैठा रहा। प्राय. दस बज रहे थे। उसने धीरे-धीरे मुह बढ़ाकर कहा, "बाबू बत्ती बुझा दूं?"

सतीश ने कहा, "बुझा दे, लेकिन तू सोयेगा कहा बिहारी?"

"मैं यही हू बाबू! मैंने अपनी चटाई दरवाजे पर ही बिछा दी है।"

सतीश ने पूछा, "क्या इस मकान मे नौकरो के लिए सोने की जगह नही है?"

बिहारी ने कहा, "नीचे एक कमरा खाली है, शायद आपको कोई जरूरत पड जाय इसीलिए यही रहूगा।"

सतीश ने व्यग्र होकर कहा, "यह कैसी बात?" तू वही सोने चला जा। बूढा आदमी है, ओस मे मत रहो।"

"ओस कहा बाबू!" कहकर बिहारी वही पर चादर ओढ़कर सो रहा।

कुछ क्षण चुप रहकर सतीश ने पूछा, "रात कितनी हो गयी रे?"

"ज्यादा नही हुई है बाबू, शायद दस बजे हैं।"

सतीश फिर चुप सो रहा। कुछ क्षण बाद मृदु कंठ से उसने पूछा, "अच्छा, तू सावित्री का घर जानता है बिहारी?"

बिहारी उठकर बैठ गया। बोला, "जानता तो हू बाबू!" "काफी दिनो तक उसे घर तक पहुचा आया हूँ।"

सतीश और कुछ न बोला। बिहारी ने कहा, "एक बार जाकर देख आऊं क्या?"

इस बार सतीश घबराकर बोल उठा, "नही, नही, तू जाएगा कहा? वह तो बहुत ही दूर है।"

बिहारी ने कहा, "दूर बिल्कुल नहीं है बाबू।"

सतीश कुछ सोचने लगा, बोला नही।

बिहारी ने धीरे-धीरे कहा, "बाबू, यदि एक घटे की छुट्टी दे तो देख आऊ। सवेरे वह काम पर आयी नही थी, शायद बीमार पड गयीं है।"

फिर भी सतीश कुछ नही बोला।

मन ही मन घबरा उठा। आज सारा दिन वह अपनी आदत के अनुसार बातें नहीं कह सका . पर से कहने के लिए विषय इतने अधिक जमा हो चुके थे कि वह एक बार फिर बोला, "एक नयी .ह मे नींद नही लग रही हैं बाबू, फिर एक बार तम्बाकू चढ़ा दूं?"

वह अन्यमनस्क हो गया था, इसलिए उत्तर नही दिया। तो भी बिहारी कुछ देर तक उत्सुक होकर प्रतीक्षा करता रहा, अन्त मे वह वहीं सो गया।

दूसरे दिन ठीक वक्त पर सतीश स्कूल गया। दोपहर को बिहारी सब काम-काज पूरा करके हाल में ही रखे गये पाडे महाराज के ऊपर डेरे की देखभाल करने का भार देकर बाहर चला गया, और सत्रह दिन का वेतन वसूल करने के बहाने पुराने डेरे पर जा पहुचा। फिर भी, उसको यह भय था कि राखाल बाबू कहीं ऑफिस न चले गये हो। इसीलिए मकान मे घुसते ही नये नौकर से खबर जान लेने पर वह निर्भय होकर रसोईघर के सामने चला गया, उसने कण्ठ का स्वर ऊंचा करके कहा, "महाराजजी, प्रणाम!"

महाराजजी गाजा पीकर दीवाल पर ओठग कर नेत्र बन्द किये ध्यान कर रहे थे। चौंक उठे और बोले, "कल्याण हो!" उसके बाद माथा सीधा करके नेत्र खोलकर बोले, "कौन है, बिहारी, आ बैठ जा।"

बिहारी पास आकर पैरो की धूलि को सिर पर चढ़ाकर बैठ गया। चक्रवर्ती ने अगोछे की खूट खोलकर थोडा-सा गाजा निकाल बिहारी के हाथ में देकर कहा, "उस मकान मे अब रसोई कौन बनाता है?"

बिहारी उठकर चला गया, हथेली मे दो-चार बूद पानी लेकर लौट आया और बोला, "एक गवार ब्राह्मण! एकदम जानवर है!"

चक्रवर्ती ने खुश होकर सिर हिलाकर कहा, "भगवान उन लोगों को पूंछ देना भूल गये हैं, यही आश्चर्य की बात है। इसके बाद डेरे के नये नौकर को लक्ष्य करके बोले, "हमारे यहा कल ही एक भूत को पकड लाया गया है, उसकी समझ कैसी है उनको तो भला देखो बिहारी, आज सवेरे एक चिलम निकालकर मैंने उसे दी और कहा—'तैयार करके लाओ तो भैया!' मैंने सोचा इसकी विद्या एक बार देख लेने से ही ठीक होगा। कहने से तू विश्वास न करेगा बिहारी, उल्लू ने चीज को मिट्टी में मिला दिया। पर तुम लोगो को वहां कष्ट न होगा। मेरी सावित्री चतुर लडकी है, दो ही दिन में सिखा-पढ़ाकर पक्का बना देगी।"

उसकी अपनी पन्द्रह आना विद्या भी उसी गुरु से सीखी हुई थी। उस बात को दबाकर वह झट बोला, "लेकिन मैं यह भी कहता हू बिहारी, पकड बैठने से ही कुछ नही होता, भैया बाबू लोगो को खुश करना, उनकी थाली मे परोस देना बहुत साधारण विद्या नहीं है। इसमे बभनई का जोर चाहिए, ऐरे-गैरे क्या करेंगे लेकिन मेरा यहा काम करना अब हो नही सकता, यह तुझे पहले ही कहे देता हूं, तू कह देना तो भला, मेरा नाम लेकर सावित्री से। वह उसी क्षण कहेगी, जाओ बिहारी, चक्रवर्ती को बुला लाओ, भले ही वह रुपया वेतन अधिक लेगा। सतीश बाबू भी कभी 'नही' न कहेंगे। मैं उनका मिजाज जानता हू। लेकिन बड़ी बात यह है कि ब्राह्मणपास्य ब्राह्मण गतिं। मैं दो रुपया अधिक पाऊंगा तो वह कुपात्र मे नही पडेगा।" इतना कह कर चक्रवर्ती महाराज हंसने लगे।

बिहारी अवाक् होकर बोला, "महाराजजी सावित्री तो वहा नही है।"

चक्रवर्ती ने अविश्वास की हंसी हंसकर कहा, "अच्छा, नहीं है। तू मेरा नाम लेकर कह देना, उसके बाद जो कुछ होना होगा, मैं देख लूंगा।"

बिहारी बाये हाथ के पदार्थ को दायें हाथ में लेकर बोला, "तुम्हें छू कर शपथ ले रहा हूं देवता, वह नही जाती वहां।"

इतनी बड़ी शपथ के बाद चक्रवर्ती फिर सदेह न कर सके। आश्चर्य में पडकर कहा, "तू कहता क्या है बिहारी! वह तो यहा भी नहीं आती। फिर चौबीसो घटे राखाल बाबू, बेचारे सतीश बाबू को जो अच्छा, तू जा, एक बार उसको देख तो आ उसके बाद मैं हूँ और राखाल बाबू हैं। मुझे जैसा-तैसा ब्राह्मण मत समझ लेना बिहारी!"

उसके ब्राह्मणत्व में बिहारी की अगाध श्रद्धा थी। उसने चक्रवर्ती के हाथ में चिलम देकर पूछा,

"अच्छा, सतीश बाबू ही क्यो चले गये? कहते हैं स्कूल दूर पडता है, लेकिन यह बात

चक्रवर्ती ने कहा, "नही, इसके अन्दर कोई बात है।" इसके बाद दोनो ने मिलकर चिलम दी। बिहारी उठ पडा और उद्विग्न मुख से सावित्री के घर की तरफ चला। उसको विश्वास हो सावित्री बीमार हो गयी है।

सावित्री के घर का सदर दरवाजा खुला हुआ था। बिहारी चुपचाप अन्दर चला गया। प्राय- सभी कमरो के दरवाजे बन्द थे, किरायेदार दिवानिद्रा मे पडे हुए थे। बिहारी धीरे-धीरे सावित्री के कमरे के सामने जाकर वज्राहत की भाति स्तब्ध हो गया। किवाड का एक पल्ला बन्द था। बिहारी ने देखा उसकी आड मे सावित्री धरती पर चुपचाप बैठी हुई है, और पास ही चौकी पर बिछौने पर विपिन शराब पीकर मतवाला बना हुआ सो रहा है। पाव की आवाज से सावित्री मुह बढाकर अचानक बिहारी को देखकर एक ही क्षण मे मानो बदहवास हो गयी। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सभालकर बाहर आकर जोर से हसकर बोली, "आओ, बिहारी, बैठो।" उसको अपने साथ ले जाकर रसोईघर के बरामदे में उसने चटाई बिछा दी, और बडे आदर से बिठाकर खुद पास ही फर्श पर बैठकर उसने पूछा, "समाचार सब अच्छा है बिहारी।" बिहारी ने सिर हिलाकर बतलाया कि अच्छा है। उसके बाद सावित्री के मुंह से फिर बात नही निकली। दोनो ही चुपचाप बैठे रहे। कुछ देर बाद बिहारी एकाएक उठ जाने को तैयार होकर बोला, "मैं जा रहा हू मुझे बहुत काम करने हैं।"

सावित्री ने पूछा, "अभी ही जाओगे। बैठो न।"

बिहारी ने सिर उठाकर कहा, "नही, जा रहा हू।"

सावित्री साथ ही साथ सदर दरवाजे तक जाकर बोली, "हा बिहारी, बाबू लोग तो बहुत नाराज हो गये हैं।"

बिहारी ने चलते-चलते कहा, "मैं तो जानता नही हू, हम लोग वहा अब नही रहते।"

सावित्री ने व्यग्र होकर प्रश्न किया, "नहीं रहते! वह मेस क्या टूट गया है?"

बिहारी ने कहा, "नही टूटा तो नही है। सिर्फ सतीश बाबू उसे छोडकर चले गये और मैं उनके साथ आया हू।"

"तुम लोग क्यो चले गये बिहारी!"

"ये सब बहुत बाते हैं।" कहकर फिर बिहारी चलने को तैयार हुआ तो सावित्री ने दोनो हाथो से उसका हाथ पकडकर अनुनय के स्वर मे कहा, "और एक बार चलकर बैठना पडेगा बिहारी।"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "नही, मुझे समय नहीं है।"

"कल एक बार फिर आओगे, वचन दो।"

बिहारी ने पहले की भाति कहा, "नही, मुझे समय न मिलेगा।"

क्षणभर सावित्री ने उसके चेहरे की ओर तीक्ष्ण दृष्टिपात करके हाथ छोड दिया। अभिमान से समस्त छाती को भरकर शात भाव से वह बोली, "अच्छा तो जाओ। यह बात उनसे कह देना।"

इस बात से बिहारी को ठेस लगी। उसने मुह ऊपर उठाकर कहा, "उन्होने तो तुम्हारे सबध मे जानना नही चाहा।"

"नही चाहा।"

"नही।"

सावित्री स्थिर भाव से प्रतिघात सहकर रूखे स्वर से बोली, "किसी दिन जान लेना चाहेगे तो शायद कह दोगे।"

बिहारी ने कहा, "नहीं, मैं औरत नही हू, मेरे शरीर मे दया-माया है।" कहकर और किसी प्रश्न की प्रतीक्षा न करके तेजी से छोटी गली को पार करके वह चला गया।

सावित्री उसी जगह चौखट पर स्तब्ध होकर बैठ गयी। उसके अन्दर-बाहर फिर एक बार आग धधक उठी।

आज वह सबेरे घर मे नही थी। कालीजी के दर्शन के लिए काली घाट गयी थी। इसी अवकाश मे विपिन यार-दोस्तो को साथ लिए शराब पीये मतवाला बना आ गया और मोक्षदा के हाथ मे दो नोट देकर

कमरे का ताला खोलकर बिस्तर पर बैठ गया। और शराब मंगाकर घर भर के सभी लोगों को पलाई, पीकर सभी मतवाले हो गये। इन बातों को सावित्री कुछ भी जानती नहीं थी। दिन में रह बजे उसने अपने मकान में घुसकर देखा, इस मकान की दो पुरानी किरायेदारिन शराब के नशे में गाली-गलौज कर रही हैं, और उसकी मौसी मोक्षदा सामने के बरामदे में पडी हुई टूटी-फूटी आवाज में मौज से 'विद्या सुन्दर' पद गा रही है। सारे मकान में कही फरुही, कही उरद का दाना, कही बत्तख के अण्डो के छिलके, कही मछलियों के कांटे, कही केकडों की हड्डी बिखरी पडी हैं—पैर रखने तक का स्थान भी नही है। मोक्षदा सावित्री को देखते ही अपने ढीले कपडों को कमर पर लपेटती उठ खडी हुई और उसका गला पकडकर रोने लगी, "बेटी, ऐसे-ऐसे बाबू जिसके हैं, उसको फिर कष्ट कैसा? उसको फिर दूसरो की नौकरी करनी चाहिए? पर मैं तेरी गरीब मौसी हूं, सावित्री।" उसके मुँह से शराब की गध आ रही थी, गालो पर, माथे पर कपडो पर समूचे अग पर हल्दी के पीले दाग पडे थे, श्वास में कच्ची प्याज की तीव्र गध थी। असहनीय घृणा से सावित्री उसको जोर मे ढकेलकर बोल पडी, "मौसी, तुम शराब पीती हो? तुम भी मतवाली हो रही हो?"

धक्का खाकर मोक्षदा रोना बन्द कर और आखे लाल कर चिल्लाई, "मतवाली? जरूर मतवाली। मुहल्ले के लोगों से जाकर पूछ ले, वे कहेगे मतवाली है। मेरा भी एक दिन था रे, मेरा भी एक दिन था। मेरा भी एक दिन था जब कि चौबीसो घटे शराब मे डूबी रहती थी? तू इसका हाल क्या जानेगी, कल की छोकरी है तू!"

उनके गर्जन-तर्जन मे कुण्ठित होकर सावित्री ने शात करने के अभिप्राय से कहा, "लेकिन तुम पीती नही हो, आज एकाएक पीने क्यों गयी।"

मोक्षदा ने और भी व्यथित होकर कहा, "एकाएक फिर क्या। मैं एकाएक पीने वाली नही हूँ। जाकर पूछ ले अपने बाबू से, जो एक गिलास पीकर औंधा पडा हुआ है। अरे, मर जाऊंगी तो भी अपनी मान-मर्यादा न खोऊगी, 'आँचल मे दो नोट बाध दिये हैं, तभी मैंने गिलास पकडा है।" यह कहकर गर्व के साथ आचल को उठाकर कहा, "जरा-सा कह देने से ही दौडकर पी जाऊगी, वैसी मोक्षदा मैं नही हू।"

सावित्री ने चौंककर पूछा, "क्या बाबू आ गये हैं।"

मोक्षदा ने कहा, "नही तो इतना काण्ड करता कौन। यह भी कहती हू, पी लो कह देने से ही क्यों पीऊगी। मान-इज्जत क्या नही है।"

इसके पहले बरामदे के उस किनारे की औरतें आपस मे लड-झगड रही थी, गले की ऊची आवाज सुनकर झगडे का आभास पाकर वे पास ही आ खडी हुईं। विधु ने कहा, "अजी, मान-इज्जत हम लोगो की भी है, ताने की बात हम लोग भी समझती हैं। फिर सावित्री तो लडकी की तरह है, उसका बाबू, मेरा हाथ पकडकर अनुनय करने लगा, इसीलिए पीना पडा नहीं तो...।"

उसकी बात पूरी भी नहीं हो पाई कि मोक्षदा गरज उठी, "भले ही हो सावित्री का बाबू। भले ही हो दामाद। बीस रुपये आचल मे बाध लिए हैं, तभी हाथ से गिलास छुआ है।"

ये बातें सुनकर सावित्री लज्जा और घृणा से मरती जा रही थी। बोल उठी, "चुप रहो मौसी!"

मोक्षदा ने कहा, "चुप क्यो रहूगी। जो कुछ कहूगी सामने ही कहूंगी। सब जानते हैं, साफ कहने वाली यदि कोई है, तो वह है मुकी।"

इस बार विधु ने भी कण्ठ का स्वर ऊंचा बनाकर कहा, "साफ कहना केवल तू ही जानती है, ऐसी बात नही है, हम भी जानती हैं, दामाद से दो नोट लेकर शराब पी गयी हो, तीन पा लेने से न जाने ।"

मोक्षदा उछल पडी। बोली, "छोटे मुह बडी बात!" और बोल न सकी। सावित्री ने हाथ से उसका मुह बन्द कर दिया और जबर्दस्ती उसे घसीट कर अपने कमरे मे ढकेलकर जजीर चढ़ा दी। वही से मोक्षदा न सुनने योग्य भाषा लगातार बरसाने लगी।

लौट आने पर सावित्री विधु के दोनों हाथ पकडकर बोली, "मौसी, मुझे क्षमा करो। सब दोष मेरा है।"

उसकी नम्र बातों से शात होकर विधु ने कहा, "तेरा दोष क्या है साबी? मोक्षदा को सदा से जानती हूँ, जरा सी पी लेने के साथ ही फिर रक्षा नही, कमर कसकर झगडा करने लगती है, यही उसका स्वभाव

है। जा, तू अपने कमरे मे जा।" यह कहकर वह चली गयी।

सावित्री काठ की तरह खड़ी रही। रोष और क्षोभ से आत्मघात करने की उसकी इ
सतीश इतना निर्लज्ज हो सकता है, खुले तौर पर दिन दहाड़े ऐसा उन्मत्त आचरण कर सक
वह सपने मे भी सोच नही सकती थी। इसलिए काल्पनिक नहीं, एक सच्ची वेदना उसके हृद
विशाल तरंग की भांति लुढ़कती हुई घूमने लगी। उसको मालूम होने लगा मानो उसका
अकस्मात् उसी के नेत्रो के सामने मर गया, जिसको केवल दो ही दिन पहले वह कडी बातो से अपमा
करके विदा करने को बाध्य हुई थी। वही जब कि इतना शीघ्र, इतने सहज भाव से अपने समस्त
आत्मसम्मान को विसर्जित करके ऐसा हीन, ऐसा वीभत्स होकर वापस आ गया, तब भरोसा करने का,
विश्वास करने का उसको और कुछ भी नही रह गया। उसकी दोनों आंखें जलने लगी लेकिन एक बूद भी
आसू की नहीं निकली। उसका सर्वस्व, उसका देवता, उसकी कल्पना का स्वर्ग, उसका भ्रष्ट जीवन का
ध्रुवतारा, उसका इहकाल परकाल सब कुछ एक ही क्षण में उस इधर-उधर बिखरी हुई गदी चीजो,
जूठन के ढेरो के बीच लोटने लगे। सावित्री स्थिर होकर खडी रही, कमरे की तरफ जाने के लिए किसी
तरह भी उसके पैर नही उठे। उसे याद पड गया कि अभी उस दिन रात को उसको छूकर सतीश ने शपथ
ली थी। आज ही इतनी जल्दी जब कि सब भूलकर मतवाला बनकर उसके बिछौने पर पडा हुआ है तब
उसके मुह की तरफ वह और देखेगी कैसे?

उसी समय नीचे मकान मालकिन के कंठ की आवाज सुनाई पड़ी। वह भी आज मकान मे नही थी।
आते ही एक के मुंह से मोक्षदा और विधु का विवरण उसके साथ ही और जो कुछ भी रहा सब सुन लेने पर
क्रोध के साथ ऊपर चढ रही थी, कि एकाएक सामने जूठे कांटे देखकर स्थिर होकर खडी हो गयी। हाल
मे प्रयाग से सिर मुडा आने के बाद से उनके आचार-विचार का अन्त नही था। सावित्री को उस अवस्था
मे देखकर वह बोली, "साबी, तुझे तो मैं अच्छी लडकी ही जानती थी—यह सब कैसा अनर्थ का काम है,
बता तो बच्ची!"

सावित्री ने संक्षेप मे कहा, "मैं घर में नहीं थी।"

मकान मालकिन ने कहा, "इस समय तो तू है। अब सफाई करे कौन? मैं? नही बच्ची, मेरे मकान मे
यह सब दुराचार नही चलेगा। अपने-अपने कमरे में बैठकर जिसकी जो इच्छा हो करो, मैं कहने न
जाऊगी। लेकिन बाहर बैठाकर यह सब काण्ड नही होगा। मैं इस पर से पैर रखकर चलूगी, छूआछूत
करके जाति जन्म बिगाडूगी, यह मैं न कर सकूंगी।" यह कहकर वह दीवाल से सट-सटकर
लाघ-लाघकर किसी तरह अपने उस तरफ के कमरे में चली गयीं। सावित्री फिर खडी नही रही, जूठन
साफ कर सारी जगह धो-पोंछकर फिर स्नान करके आ गयी, और एक सूखे कपडे के लिए कमरे मे चली
गयी। अन्दर जाकर बिछौने की तरफ देखते ही वह भय से, आश्चर्य से चिल्ला उठी, "मा रे, यह तो
विपिन बाबू हैं!"

शराबी गहरी नीद मे डूबा हुआ था। वह जागा नहीं। बाहर का कोई यह आवाज सुन नही सका।
सावित्री दो कदम पीछे हट आयी, उसका सारा शरीर कांपने लगा और माथे मे हठात् मूर्च्छा का लक्षण
अनुभव करके दरवाजे की आड मे माथा रखकर निर्जीव की भांति बैठ गयी।

कुछ देर बाद उसकी वह दशा बीत जरूर गयी लेकिन सिर ऊपर उठाकर सीधी होकर वह बैठ न
सकी। इसके पहले जिस क्षोभ से, जिस दुःख से उसका हृदय टुकड़े-टुकडे होता जा रहा था, जिसके
निर्लज्ज आचरण की लज्जा से उसको मर जाने की इच्छा हो रही थी वह लज्जा सच नही है। यह सतीश
नही है, दूसरा ही है, यह आंखों से देख लेने पर भी उसका वह क्षोभ, वह दु ख मानो तिल मात्र भी डिगा
नही वरन् छाती और भारी हो गयी, हृदय में मानो और अन्धकार हो उठा। बिछौने की ओर वह फिर देख
न सकी। उसकी दोनों आंखो से आंसू टपकने लगे।

हाय रे स्त्री का प्रेम! इतने दुःख मे, इसी बीच किस समय गुप्त रूप से चुपचाप सतीश के सब अपराध
उसने क्षमा कर दिये थे, उसकी सेवा करने के लिए स्वस्थ बना देने की प्यास से वह आर्त हो उठी थी और
उसको देखने, उससे बातचीत करने की असह्य क्षुधा से उन्मत्त हो उठी थी—इसकी खबर शायद उसके
अन्तर्यामी को भी नहीं लगती थी, अब उस ओर की समस्त आशाओं के एकाएक झूठ में विलीन हो जाने

- का अस्तित्व ही मानो दिशाविहीन शून्यता के बीच डूब गया। ठीक उसी समय उसके द्वार हारी आकर खड़ा हो गया।

दस

सतीश के दिल मे एक अग्निशिखा दिन-रात जलने लगी, इस बात को उसका मन अस्वीकार न कर सका। उस आग मे जलता हुआ उसका इतना बड़ा सबल शरीर भी निस्तेज होता जा रहा है इसका स्पष्ट अनुभव करके वह उद्विग्न हो उठा। बिहारी को बुलाकर कहा, "माल-असबाब एक बार फिर बांधना पड़ेगा, आज शाम की ट्रेन से घर जाना चाहता हू।"

बिहारी ने पूछा, "गांव के घर या पछाह के घर पर?"

"पछाह के घर पर।" कहकर सतीश जरूरी चीज-सामान खरीदने का रुपया उसके हाथ मे देकर स्कूल चला गया।

बिहारी के आनन्द की सीमा ही नही थी। उसका मकान मेदिनीपुर जिले मे है, पश्चिम का मुह उसने आज तक देखा नही था। उस पश्चिम की ओर आज रवाना होना पडेगा। उसी क्षण शोरगुल मचाकर बाधना-छानना शुरू किया। पाडे ने आकर भोजन के लिए बुलाया। बिहारी ने हंसकर कहा, "महाराज जी, तुम नहाओ, खाओ। मेरा खाना एक तरफ ढककर रख दो, यदि समय मिला तो देखा जायेगा, अभी तो मुझे मरने की भी फुरसत नही है।" पाडेजी पहले वाली बात समझकर चले गये। बाद वाली बात समझ नही सके और समझने का प्रयत्न भी नही किया।

हाथ का काम सम्पन्न करके बिहारी बाहर चला गया। बाजार जाना है। इसके अलावा बामा के चक्रवर्ती को समाचार देना है। सावित्री से घृणा हो गयी थी, आज उसे मन मे जगह नही दिया।

आज सबेरे से ही सतीश के सिर में दर्द होने लगा था। दिन मे बारह बजे के बाद विधिवत् ज्वर लेकर वह लोट आया। बिहारी मकान में नही था। वह दिन के तीन बजे के लगभग एक बोझ चीजें सिर पर लिए आकर बिल्कुल ही बैठ गया। इन दिनो प्राय चारो तरफ बीमारी फैल रही थी। यह बात याद करके सतीश भी डर गया। दूसरे दिन ज्वर और दर्द दोनों ही बढ गये। संध्या के बाद सतीश ने चिन्तित मुह से बिहारी से कहा, "ज्वर यदि शीघ्र न छोडे तो तू अकेला सेवा कर सकेगा न?"

बिहारी ने डबडबाये हुए नेत्रों से कहा, "भय क्या है बाबू?"

सतीश क्षणभर चुप रहकर बोला, "एक बार उसको—यही सोच रहा हू बिहारी, एक बार सावित्री को खबर देना ठीक नही होगा?" शायद डाक्टर भी बुलाना पड़े।"

किसी कारण से भी सावित्री को बुलाने की जरा भी इच्छा बिहारी की नही थी। लेकिन मन के भाव को रोककर उसने मृदु स्वर मे कहा, "अच्छा, जा रहा हू।"

उसी समय सतीश उन्मुख हो गया। उसके ज्वर की वेदना मानो आप ही आप घट गयी। दो घटे के बाद बिहारी के अकेले लौट आने पर सतीश भय के साथ ताकता रह गया।

बिहारी ने कहा, "वह घर पर नही है बाबू।"

"घर पर नही है। उस डेरे पर एक बार जाकर देख आ।"

बिहारी ने कहा, "उस डेरे पर वह अब नही जाती। तीन-चार दिन से घर भी नही जाती, कहा चली गयी किसी को नही मालूम।"

"उसकी मौसी को भी नही मालूम?"

"नही, उसको भी बताकर नही गयी।"

सतीश चुप हो रहा। बिहारी किसी तरह आसू पीकर बाहर आ खडा हुआ। सावित्री का जो इतिहास वह उसकी मौसी से सुन आया था, किसी प्रकार वह समाचार आज इस रोगी आदमी के सामने न कह सका।

अगले दिन डाक्टर आकर दवा दे गये। सतीश ने दवा की शीशी हाथ में लेकर खिडकी के पास बाहर फेंक दी। यह देखकर बिहारी फिर एक बार आसू रोककर सावित्री की खोज में चला। मोक्षदा रसोई बना

रही थी, बिहारी ने पूछा, "क्या आज भी वह नही आयी?"
मोक्षदा ने कहा, "कितनी बार बताऊ कि वह नही आयेगी। जब बुरे दिन थे तब थी। उसके अच्छे दिन हैं।"
डेरे पर वापस आकर बिहारी ने बताया, "आज भी सावित्री लौटकर नही आयी।"
दो दिन के बाद दवा न लेने पर भी सतीश का बुखार उतर गया। वह भात खाकर स्वस्थ होकर उठ बैठा। बिहारी से कहा, "अब नही, आज ही रवाना होना होगा।"
उसी दिन सतीश कलकत्ता से चला गया।

ग्यारह

सतीश के दुर्बल रूखे-सूखे मुख की तरफ देखकर उपेन्द्र बोला, "भैया का डाक्टरी सीखने का नमूना यही है क्या?"
सतीश ने हसकर कहा, "मुझसे हो नही सका, उपेन भैया!"
उपेन्द्र ने विस्मित होकर पूछा, "क्या न हो सका रे?"
सतीश ने लज्जित होकर कहा, "डाक्टरी मुझसे सही नहीं गयी।"
उपेन्द्र ने सतीश के सुन्दर शरीर की ओर देखकर कहा, "अच्छा ही हुआ। गांव-देहात मे जाकर बेकार जीवहत्या करता, उसके पाप से ईश्वर ने तुझे बचा लिया।"
एक महीने के बाद एक दिन उपेन्द्र ने सतीश को बुलाकर कहा, "मेरे साथ कलकत्ता चलना होगा सतीश।"
सतीश हाथ जोडकर बोला, "यह हुक्म तो तुम मत दो उपेन भैया। कलकत्ता अच्छा शहर है, सुन्दर देश है, सब अच्छा है, लेकिन मुझे जाने के लिए न कहो।"
यह बात सतीश ने व्यग्य के ही रूप मे कही थी, लेकिन उसका वह छल उस की दबी हुई व्यथा को छिपा न रख सका। उसकी कृत्रिम हसी वेदना की विकृति से ऐसी ही रूपान्तरित होकर दिखाई पडी कि उपेन्द्र आश्चर्य मे पडकर उसके मुख की ओर देखते रह गये। उन्होने जान लिया कि सतीश जरूर वहा कोई ऐसा काम कर आया है जिसको वह उनसे छिपा रहा है। कुछ देर बाद उन्होने कहा, "तो रहने दे सतीश। तेरा स्वास्थ्य भी ठीक नही है, मैं अकेला ही जा रहा हू।"
उपेन्द्र के मन का भाव अनुमान से जानकर सतीश ने व्यथित होकर पूछा, "तुम कब जाओगे उपेन भैया?"
"आज ही।"
"अच्छा, चलो मैं भी चलू।" कहकर हठात् राजी होकर सतीश घर लौट आया और क्षणभर मे ही कलकत्ता जाने के लिए अधीर हो उठा। उसने बिहारी से कहा, "एक बार फिर बण्डल बाध दे बिहारी, कलकत्ता जाना होगा।"
बिहारी ने चिन्तित मुख से पूछा, "कब जाओगे बाबू?"
सतीश ने हसकर कहा, "आज ही रात की ट्रेन से।"
"अच्छा।" कह बिहारी मुह भारी बनाकर चल दिया।
सतीश ने उसका बिगडा चेहरा देखकर सोचा, "बिहारी को यहां तो काम-काज नही है, इसलिए मेहनत के डर से वहा जाना नही चाहता।" लेकिन अन्तर्यामी जानते हैं कि वृद्ध के मन की बात वह बिल्कुल समझ नही सका था।
इसके एक दिन पहले सतीश ने बात ही बात मे बिहारी से कहा था, "अच्छा बिहारी, इतने दिनो मे सावित्री तो अवश्य ही लौट आयी होगी, लेकिन उसी समय वह कहा चली गयी थी, तुझे मालूम है?"
बिहारी ने कहा, "नही बाबू!" चाहता तो वह बहुत-सी बातें कह सकता था, लेकिन एक दिन सावित्री के मुह पर अपने पुरुषत्व का गर्व दिखा आया था, किसी तरह भी उस गर्व को न गवा सका।
जिस दिन कलकत्ता से घर वापस आकर सतीश ने अपने कमरे मे घुसते ही हाथ जोडकर भावुक

"भगवान्, जो कुछ करते हो, तुम भला ही करते हो।" उस दिन सृष्टिकर्ता के विशेष
थॉ, "भगवान्, जो कुछ करते हो, उच्चारण किया था, पूछने से वह शायद वता नही
याद करके उसने इतना बड़ा धन्यवाद के मुह मे वह वापस आ सका है, कितने वडे अभेद्य जाल के फाम को
.।। फिर भी कितने बड़े सकट के मुह मे खडा हो सका है, इसको वह निश्चित रूप से जानता था और इस
।छन्न-भिन्न करके वह बाहर आकर साथ ग्रहण करना चाहा था, लेकिन उसके अन्तरशायी अवोध मन ने उस
सौभाग्य को उसने कृतज्ञता के साथ ग्रहण किया, वह तो औंधा पडा हुआ दिन-रात एक ही तरह रोता हुआ समय विता
तरफ दृष्टिपात तक भी नही किया, वह पहले की ही तरह अपने लडकपन के इष्ट-मित्र, थियेटर, गाने-वजाने
रहा था। फिर भी चेष्टा करके वह पहले की ही तरह भी पहले की तरह मिल-जुल न सका। इसी
के अड्डे आदि में शामिल हो रहा था, लेकिन किसी तरह भी पहले की तरह मिल-जुल न सका। इसी
तरह दिन बिताते रहने के बीच ही हठात् आज कलकत्ता जाने का आह्वान सुनते ही उसकी विद्रोही
गृहलक्ष्मी धूलि शय्या छोडकर उठा वैठी। भविष्य के अच्छे-बुरे की ओर विना ध्यान दिये यात्रा की ओर
कदम बढ़ा दिये।

उसी रात को उपेन्द्र और सतीश मेल ट्रेन से सेकेण्ड क्लास में कलकत्ता चल दिये।

सीटी बजाकर गाडी चल पडी। उपेन्द्र सो गये और सतीश खिडकी के बाहर झाँकता रहा।

मेल ट्रेन छोटे स्टेशनो पर नही रुकती। मैदान, नदी, गाव-रास्तों को पार करती हुई दौडती चली जा रही है और उसकी उस तेज दौड का अनुकरण कर के ही शायद पास के पेड-पौधे पल भर में अदृश्य होते जा रहे हैं। दिगंत मे वृक्ष श्रेणियो और वास झाडियों ने अधेरा कर रखा है और उसके ही नीचे नदी के टेढ़े-मेढ़े भाग मे सफेद जल-रेखा खिडकी के नीले काच के भीतर से दिखाई पड रही है। वाहर वृक्षों, खेतों और लाइन के किनारे के जगलो और सूखे गड्ढ़ों मे सर्वत्र म्लान चादनी विखरी हुई है। सतीश की आखों मे आंसू आ गये। इस रास्ते से वह कितनी ही वार आया है, इस निस्तब्ध शात प्रकृति को कितनी ही वार वह म्लान चादनी के प्रकाश में देख गया है, लेकिन किसी दिन इस तरह वे उसकी दृष्टि में पकडी नही गयी थी। उसे जान पडा मानो सभी विच्छिन्न हैं, निर्लिप्त हैं, मृत हैं। कोई भी किसी के लिए व्याकुल नहीं है, कोई भी किसी का मुह देखता हुआ प्रतीक्षा नहीं कर रहा है। सभी स्थिर हैं, सभी उद्वेग-रहित हैं, सभी आप ही आप सपूर्ण हैं। उस निर्विकार उदासीन धरती की तरफ देखने मे उसे क्लेश-सा मालूम होने लगा। वह अपनी आखे पोंछकर बेंच पर लेट गया। कुछ देर वाद वक्स खोलकर एक वासुरी निकालकर उपेन्द्र को लक्ष्य करके धीरे-से कहा—"गाडी के शोर से जव तुम्हे परेशानी नही होती तव वांसुरी की आवाज से भी नही होगी। मैं तो सो नही पाता। कहने के पश्चात् वह पास आकर बैठ गया और वाहर की तरफ झाककर वांसुरी बजाने लगा।"

उपेन्द्र की ओर से कोई जवाव नही मिला। भगवान् ने सतीश को गाने के लिए गला और बजाने के लिए हाथ दिये हैं। इस ओर से वे कृपण नही रहे। वचपन से ही वह इसकी शिक्षा प्राप्त करता रहा। सतीश वासुरी वजाता रहा। इस अनिर्वचनीय सगीत को सुननेवाला कोई नही था। वाहर खंडित चन्द्रमा उसका अनुसरण कर दौड रहा था। मिट्टी पर सुप्त ज्योत्सना की नीद टूट गयी। गाड़ी की गति जव धीमी पड गई और समझ मे आया कि स्टेशन नजदीक आ गया है, तव उसने वासुरी रख दी।

अगले दिन गाडी हावडा जाकर रुकी तो उपेन्द्र ने पूछा, "तू कहा जायगा रे?"

सतीश ने विस्मित होकर कहा, "यह कैसी वात! तुम्हारे साथ।"

"तेरे जाने के लिए जगह नही है?"

"तुम तो खूव रहे!"

इस सवध में फिर कोई बात नही हुई।

स्टेशन पर उतरते ही एक विलायती पोशाक पहने बगाली साहव ने उपेन्द्र से हाथ मिलाया। ये उपेन्द्र के वाल्य-मित्र ज्योतिषराय वैरिस्टर थे। तार पाकर लेने आये थे। उनकी गाडी वाहर खडी थी। थोडी-वहुत जो भी चीजें साथ थी, कुली ने उन्हे गाडी पर रख दिया। फिर तीनो ही अन्दर जा बैठे। विहारी कोच बक्स पर बैठा। कोचवान ने गाडी चला दी। बहुत से रास्तों और गलियों को पार करके एक वडे मकान के सामने आकर गाडी रुक गयी। तीनों उतर गये।

बारह

शाम होने मे अब देर नही थी। उपेन्द्र और सतीश पाथुरिया घाटा मे एक तग गली के खडे हुए।

उपेन्द्र ने कहा, "मैं समझता हू, अवश्य यही गली है।"

सतीश ने सदेह प्रकट किया, इस गली मे वह रह नही सकता, यह कदापि नही है।

टूटी दीवाल पर वह जो टीन खडा हुआ है, सभव है कि इसी पर किसी दिन गली का नाम लिखा हुआ था, वह अब पढा नही जाता। सतीश बोला, "अच्छी तरह जाने बिना जाया नही जा सकता। यह गली पाताल प्रवेश की सुरग हो सकती है।"

उपेन्द्र हसते हुए बोले, "तो तू पहरेदार बनकर रह, मैं अन्दर जाकर देख आता हू।"

सतीश ने पहले बाधा देने की चेष्टा की बाद को उपेन्द्र के पीछे चलते-चलते बोला, "उपेन भैया, मेरी तरह डाकू आदमी भी इन सब जगहो मे शाम के बाद आने का साहस नही करते, तुम्हारा साहस तो खूब है।"

उपेन्द्र हसकर बोले, "बम्बबाजो का साहस भले आदमी के साहस से अधिक होता है सतीश? दुष्कर्म कर सकने को ही साहस नही कहते।"

सतीश उस बात का प्रतिवाद न करके अत्यन्त सावधानी से रास्ता देख-देखकर चलने लगा। पैरो के नीचे ही दुर्गन्ध कीचड से भरा खुला पनाला था, क्षीण दृष्टि वाले सतीश के उसमे गिर जाने की पूरी आशका थी। एक जगह पर छोटी गली बहुत ही तग और अधेरी हो गयी थी। सतीश ने पीछे से उपेन्द्र के कुरते का खूट खीचकर पकड लिया और कहा, "उपेन भैया, करते क्या हो, इसी रात को जान देना है क्या?"

उपेन्द्र ने हसकर कहा, "इतनी देर मे मुझे ठीक याद आ गया। और एक मकान के बाद ही तेरह नम्बर का मकान है। लगभग आठ साल पहले केवल एक दिन मैं यहा आया था, इसीलिए पहले मैं पहचान न सका। अब पहचान गया। जरूर यही रास्ता है।"

सतीश ने विश्वास नही किया। कहा, "रास्ता तो है जरूर, लेकिन तुम्हारे-हमारे लिए नही। जिन लोगो के लिए विशेष रूप से इस पथ की सृष्टि है, उनमे से किसी के साथ शरीर छू गया तो इस रात को स्नान करके मरना पडेगा, इस वक्त चलो, लौट चले।"

उपेन्द्र जवाब न देकर सतीश का हाथ पकडकर खीचते हुए ले गये और कुछ दूर आगे जाकर एक मकान के सामने खडे होकर बोले, "तू सिगरेट पीता है, तेरी जेब मे दियासलाई होगी। एक बार जलाकर देख, यह कितने नम्बर का मकान है।"

सतीश ने माचिस जलाकर अच्छी तरह मकान का नम्बर जॉचकर कहा, अच्छी तरह पढा नही गया, किन्तु चौखट के ऊपर खडिया से १३ न० लिखा हुआ है। शायद तुम्हारी बात ही ठीक है। किन्तु मैं पूछता हूँ, मकान नम्बर तेरह हो या तिरपन, यहा तुमको जरूरत ही क्या हो सकती है?"

उपेन्द्र उत्तर न देकर पुकारने लगे, "हारान भैया! ए हारान भैया!"

ऊपर, नीचे, निकट, दूरी पर सर्वत्र अधेरा था, शब्दमात्र नही था। सतीश डर गया। उपेन्द्र फिर पुकारने लगे।

बहुत देर मे ऊपर की खिडकी खुली और साथ ही स्त्री-कण्ठ से आवाज आई, "कौन है?"

उपेन्द्र ने कहा, "दरवाजा खोलने को कह दे। हारान भैया कहा हैं?"

"आती हू, जरा ठहरिए।"

पलभर के बाद दरवाजा खुलने की आवाज के साथ ही क्षीण प्रकाश की रेखा रास्ते के ऊपर आ पडी। उपेन्द्र दरवाजा ठेलकर चौखट पर खडे होकर स्तम्भित हो गये। वह स्त्री मिट्टी के तेल की डिबिया हाथ मे लिए निकट ही खड़ी है। माथे पर थोडे से आचल के बीच से जूडे का एक हिस्सा दिखाई दे रहा था। उसका एक भी केश स्थान-भ्रष्ट नही हुआ है। स्वच्छ सुन्दर मुह पर दीप का प्रकाश पड जाने से दोनो भौंहो के बीच एक बिदी जगमगा उठी और जरा-सी झुकी हुई दोनो आखो मे से जो विद्युत् प्रवाह बह

थाँ, "भगवान्, जो कुछ करते हो, तुम भला ही करते हो!" उस दिन सृष्टिकर्ता के विशेष याद करके उसने इतना बडा धन्यवाद उच्चारण किया था, पूछने से वह शायद बता नही ता। फिर भी कितने बडे सकट के मुह से वह वापस आ सका है, कितने वडे अभेद्य जाल के फाम को छिन्न-भिन्न करके वह बाहर आकर खडा हो सका है, इसको वह निश्चित रूप मे जानता था और इस सौभाग्य को उसने कृतज्ञता के साथ ग्रहण करना चाहा था, लेकिन उसके अन्तरशायी अबोध मन ने उस तरफ दृष्टिपात तक भी नही किया, वह तो औंधा पडा हुआ दिन-रात एक ही तरह रोता हुआ समय बिता रहा था। फिर भी चेष्टा करके वह पहले की ही तरह अपने लडकपन के इष्ट-मित्र, थियेटर, गाने-बजाने के अड्डे आदि मे शामिल हो रहा था, लेकिन किसी तरह भी पहले की तरह मिल-जुल न सका। इसी तरह दिन बिताते रहने के बीच ही हठात् आज कलकत्ता जाने का आह्वान सुनते ही उसकी विद्रोही गृहलक्ष्मी धूलि शय्या छोडकर उठा बैठी। भविष्य के अच्छे-बुरे की ओर बिना ध्यान दिये यात्रा की ओर कदम बढ़ा दिये।

उसी रात को उपेन्द्र और सतीश मेल ट्रेन से सेकेण्ड क्लास में कलकत्ता चल दिये।

सीटी बजाकर गाडी चल पडी। उपेन्द्र सो गये और सतीश खिडकी के बाहर झाँकता रहा।

मेल ट्रेन छोटे स्टेशनो पर नही रुकती। मैदान, नदी, गाव-रास्तों को पार करती हुई दौडती चली जा रही है और उसकी उस तेज दौड का अनुकरण कर के ही शायद पास के पेड-पौधे पल भर में अदृश्य होते जा रहे हैं। दिगत मे वृक्ष श्रेणियो और घास झाडियों ने अधेरा कर रखा है और उसके ही नीचे नदी के टेढ़े-मेढे भाग मे सफेद जल-रेखा खिडकी के नीले काच के भीतर से दिखाई पड रही है। बाहर वृक्षों, खेतों और लाइन के किनारे के जगलो और सूखे गड्ढों में सर्वत्र म्लान चादनी बिखरी हुई है। सतीश की आखों मे आंसू आ गये। इस रास्ते से वह कितनी ही बार आया है, इस निस्तब्ध शात प्रकृति को कितनी ही बार वह म्लान चांदनी के प्रकाश में देख गया है, लेकिन किसी दिन इस तरह वे उसकी दृष्टि में पकडी नहीं गयी थी। उसे जान पडा मानो सभी विच्छिन्न हैं, निर्लिप्त हैं, मृत हैं। कोई भी किसी के लिए व्याकुल नहीं है, कोई भी किसी का मुह देखता हुआ प्रतीक्षा नही कर रहा है। सभी स्थिर हैं, सभी उद्वेग-रहित हैं, सभी आप ही आप सपूर्ण हैं। उस निर्विकार उदासीन धरती की तरफ देखने मे उसे क्लेश-सा मालूम होने लगा। वह अपनी आखे पोछकर बेच पर लेट गया। कुछ देर बाद बक्स खोलकर एक बासुरी निकालकर उपेन्द्र को लक्ष्य करके धीरे-से कहा—"गाडी के शोर से जब तुम्हे परेशानी नहीं होती तब बांसुरी की आवाज से भी नही होगी। मैं तो सो नही पाता। कहने के पश्चात् वह पास आकर बैठ गया और बाहर की तरफ झाककर बासुरी बजाने लगा।"

उपेन्द्र की ओर से कोई जवाब नही मिला। भगवान् ने सतीश को गाने के लिए गला और बजाने के लिए हाथ दिये हैं। इस ओर से वे कृपण नही रहे। बचपन से ही वह इसकी शिक्षा प्राप्त करता रहा। सतीश बासुरी बजाता रहा। इस अनिर्वचनीय सगीत को सुननेवाला कोई नही था। बाहर खंडित चन्द्रमा उसका अनुसरण कर दौड रहा था। मिट्टी पर सुप्त ज्योत्सना की नीद टूट गयी। गाडी की गति जब धीमी पड गई और समझ मे आया कि स्टेशन नजदीक आ गया है, तब उसने बासुरी रख दी।

अगले दिन गाडी हावडा जाकर रुकी तो उपेन्द्र ने पूछा, "तू कहा जायगा रे?"

सतीश ने विस्मित होकर कहा, "यह कैसी बात! तुम्हारे साथ।"

"तेरे जाने के लिए जगह नही है?"

"तुम तो खूब रहे!"

इस सबंध में फिर कोई बात नही हुई।

स्टेशन पर उतरते ही एक विलायती पोशाक पहने बगाली साहब ने उपेन्द्र से हाथ मिलाया। ये उपेन्द्र के बाल्य-मित्र ज्योतिषराय बैरिस्टर थे। तार पाकर लेने आये थे। उनकी गाडी बाहर खडी थी। थोडी-बहुत जो भी चीजें साथ थी, कुली ने उन्हे गाडी पर रख दिया। फिर तीनो ही अन्दर जा बैठे। बिहारी कोच बक्स पर बैठा। कोचवान ने गाडी चला दी। बहुत से रास्तों और गलियों को पार करके एक बडे मकान के सामने आकर गाडी रुक गयी। तीनों उतर गये।

देखकर मुसकुराकर बोले, ''प्रजाजन आपके सामने कभी उसके ऊपर अत्याचा
करेगे। अब वह आदमी नीचे उतर आ सकता है।''

''जरूर।'' कहकर चिराग हाथ मे उठाकर वधू सतीश की ओर देखकर मधुर हसी हसकर
''अब निर्भयता के साथ राज-दर्शन के लिए चलिए।''

थोडे से हास-परिहास से, अपरिचित होने की दूरी जैसे एकदम घट गयी और तीनो प्रफुल्ल
कमरे से बाहर चले गये।

राजदर्शनेच्छु उपेन्द्र और सतीश हसी से भरे चेहरे से एक कमरे मे घुसते ही अवाक् होकर खडे हो गये। क्रुद्ध गुरुजी का अचानक ही थप्पड खाकर हास्यनिरत शिशु छात्र का मनोभाव जिस तरह बदल जाता है, इन दोनो आदमियो के मुंह की हंसी भी उसी तरह एक क्षण मे गायब हो गयी और चेहरे पर स्याही फैल गयी।

लांछित भाव दूर होते ही उपेन्द्र के बिछौने के पास जाकर पुकारा, ''हारान भैया!''

हारान निर्जीव की भांति पडे हुए थे, वह धीरे से बोले, ''आओ, भाई आओ। अब मैं उठ-बैठ नही सकता, तुमको मैंने कष्ट दिया।'' इतना कहकर वे हाफने लगे।

उपेन्द्र धप से बिछौने के एक तरफ बैठ गये। उनके दोनो नेत्र आसू से भर गये और समूची छाती से पसली तक को हिलाकर, एक अदम्य वाष्पोच्छ्वास उन के कण्ठ की अन्तिम सीमा तक व्याप्त हो गया। बात कहने का उन्होने साहस नही किया। दातो पर दात दबा खडे होकर बैठे रहे। उधर सतीश एक बडे काठ के सदूक पर सूखे चेहरे से बैठ गया।

सैंकडो जगह से कटी-फटी खटिया के सिरहाने एक मिट्टी का चिराग टिमटिमा रहा था। अन्य कोई रोशनी नही है। इतना ही प्रकाश रक्तशून्य विवर्ण शीतल चेहरे पर लेकर हारान का मृतप्राय शरीर पडा हुआ था। सूर्य की रोशनी, आकाश की वायु से हमेशा के लिए विच्छिन्न होकर इस गृह की अस्थिमज्जा मे जो जीर्णता और अधकार लालित और पुष्ट हो रहा है, वह इस कडाके की सर्दी मे, अत्यन्त क्षीण प्रकाश मे, कुष्ठ रोगी की तरह समस्त दीवालो पर प्रकट हो रहा है। दिन-रात बन्द रहने वाले घर की दूषित अवरुद्ध वायु, आत्महत्याकारी के मुह से निकलने वाले जहरीले फेन की तरह निकलकर मानो गृहवासी की कण्ठ-नली प्रतिक्षण रुधती चली आ रही थी। दरवाजे पर मृत्युदूत का पहरा पड़ रहा था। चारो तरफ देख-देखकर सतीश बार-बार सिहर उठा। उसे मालूम होने लगा कि यदि वह चिल्लाकर दौडकर बिल्कुल रास्ते पर भाग न जायेगा तो जान न बचेगी। यहा किसी आदमी का जीवन बचेगा कैसे? निकट ही वह खडी थी उसी तरफ एक बार देखते ही वह डर गया। कहा चला गया वह अतुलनीय रूप! कहा है वह हंसी! उनकी दृष्टि के सामने मानो किसी एक प्रेतलोक की पिशाचिनी उठ आयी। वह सोचने लगा, जिसके पति की ऐसी दशा है वह हंसती है कैसे, हसी-मजाक मे भाग कैसे लेती है, जूड़ा क्यो बांधती है, बाल क्यो सवारती है और बिन्दी क्यो लगाती है? पलभर के लिए उसके सामने समस्त नारी जाति के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी।

ऐसे ही समय मे हारान ने पुकारा, ''किरण, उपेन आया है, यह बात मा जानती हैं?''

वधू निकट आकर झुक पडी और धीरे-धीरे बोली, ''मां सो रही हैं, डाक्टर कह गये हैं, सो जाने पर जगाया न जाये।''

हारान ने मुह बनाकर कहा, ''चूल्हे में जाय वह डाक्टर, तुम जाओ, उनको बता दो।''

उपेन्द्र पास ही बैठे सब कुछ सुन रहे थे। वह बोल उठे, ''आज रात को खबर देने की जरूरत नहीं है हारान भैया! कल सवेरे खबर देने से ही काम चल जायगा।''

उपेन्द्र समझ गये कि रोग के कष्ट भोगते रहने से हारान बहुत चिड़चिड़ा हो गया है। इसलिए इस निरपराधिनी सेवापरायण वधू का अकारण ही तिरस्कार होने से व्यथा अनुभव कर जरा-सी सात्वना इंगित करने के लिए एक बार उन्होने मुह की तरफ ध्यान से देखा। लेकिन कुछ भी दिखाई नही दिया। किरणमयी के झुके हुए मुह पर दीपक का प्रकाश नही पड रहा था।

कुछ देर यो ही रहकर दूसरे ही क्षण तेजी से वह बाहर चली गयी।

उपेन्द्र उदास-चित्त बैठे रहे, और हारान पहले की तरह हाफने लगे। निस्तब्ध कमरा सतीश के

भीषण हो उठा। थोडी ही देर बाद हारान ने हाथ बढाकर उपेन्द्र को छूकर पास आने का करके अति क्षीण कंठ से पूछा, "सात-आठ वर्ष बाद मुलाकात हुई है। इस बीच क्या एक बार भी तुम्हारा यहा आना नही हुआ?"

इसी बीच उपेन्द्र को अनेक बार इस तरफ आना पडा था, लेकिन उसको वह स्वीकार न कर सके। बोले, "क्या बीमारी है हारान भैया?"

हारान ने कहा, "ज्वर-खासी आदि। इस समय उस प्रसग को उठाने की आवश्यकता नही है। सब कुछ खत्म हो चुका है।"

उधर संदूक पर बैठा उपेन्द्र मन ही मन सिर हिलाने लगा।

हारान ने फिर कहा, "मुझे भी तुम्हारी बात याद नही पडी, ठीक समय पर याद पडने से शायद काम बनता।"

पलभर चुप रहकर खुद ही बोले, "काम और क्या बनता, खैर छोडो इन सब बातो को। एक काम करो भाई, मेरा दो हजार रुपये का जीवन बीमा है, और यह टूटा-फूटा मकान। तुम ठहरे वकील, एक लिखा-पढ़ी कर दो जिससे कि सभी चीजों पर तुम्हारा ही पूरा हाथ रहे। इसके बाद रह गये तुम और मेरी बुढिया मां।"

उपेन्द्र ने कहा, "और तुम्हारी स्त्री?"

"मेरी स्त्री किरण? हां, वह तो है ही। उसके मा-बाप कोई भी जीवित नही हैं, उसको भी तुम देखना।"

उपेन्द्र निर्निमेष दृष्टि से इस मुमुर्षु की ओर देखते हुए कुछ सोचने लगे।

सतीश जेब से घडी निकालकर उठ खडा हुआ और बोला, "उपेन्द्र भैया, रात के दस बज गये, वहां वे लोग शायद घबरा रहे हैं।"

हारान ने ध्यान से देखते हुए कहा, "यह कौन हैं उपेन?"

"मेरे मित्र हैं, मेरे साथ ही कलकत्ता आये हैं। अब मैं जा रहा हू, हारान भैया, कल फिर आऊगा।"

"नही, कल नही, एकदम कागज तैयार करके परसों आना। जो कुछ मेरे पास है, और जो कुछ मुझे कहना है, उसी दिन कह दूंगा, यहा कहा ठहरे हो?"

"शहर ही में एक जगह अपने मित्र के घर ठहरा हुआ हूं।"

जाने को तैयार होने पर हारान ने पुकारा, "किरण!"

उपेन्द्र ने तुरन्त रोककर कहा, "हारान भैया, सतीश की जेब में दियासलाई है, आराम से उतरकर जा सकूंगा। वह शायद काम में लगी हुई हैं।"

उसके जवाब मे हारान ने क्या कहा, समझ में नही आया।

सतीश ने ज्योंही किवाड खोले, त्योंही मालूम हुआ मानो कोई तेज कदमों से हट गया। वह डरकर पीछे खडा हो गया।

उपेन्द्र ने पूछा, "क्या हुआ सतीश?"

"कुछ नही, तुम आओ।" कहकर वह उपेन्द्र का हाथ पकडकर बाहर आ खडा हुआ। कैसा निविड अन्धकार था। एक तो कृष्णपक्ष की रात और दूसरी ओर ऊंचे-ऊंचे मकानो ने अंधेरे को ढकेलकर आगन मे ला रखा है। इस टूटे मकान को अंधेरे ने घेर लिया है। दोनो ने टटोलते हुए सीढियो के निकट आते ही देखा, नीचे चिराग लिए किरणमयी स्थिर होकर बैठी हुई है। इनके आने के साथ ही वह उठ खडी हुई, बोली, "चिराग दिखा रही हू, सावधानी से उतर आइए। आप लोगो के लिए ही मैं बैठी हुई हू।"

इस अंधेरी ठण्डी रात मे, इस प्रचण्ड जाडे मे, सील से भरी भीगी धरती पर एकाकिनी वधू को अपनी प्रतीक्षा में बैठी देखकर और आसन्न वैधव्य की बात याद करके उपेन्द्र के नेत्रो मे जल भर आया।

सदर दरवाजा तब भी बन्द नही हुआ था। नीचे उतरते ही सतीश बिल्कुल ही गली मे आकर खडा हुआ, लेकिन उपेन्द्र पीछे से बाधा पाकर घूमकर खडे हो गये।

किरणमयी अपने सकरुण तीव्र दोनों नेत्र उनके मुह पर रखकर एक विशेष रुख बनाए खडी है। पल भर के लिए उपेन्द्र हतबुद्धि की भांति स्थिर हो रहे।

किरण ने पूछा, "उपेन बाबू, आप हमारे कौन हैं?"

इस अद्भुत प्रश्न का क्या उत्तर होना चाहिए उपेन्द्र समझ न सके। उसने फिर सम... "आप मेरे पति के कोई आत्मीय हैं? इतने दिनो से मैं इस मकान मे आई हू लेकिन किसी दि... नाम उनसे सुना नही, मा से भी नही सुना। केवल जिस दिन आपको पत्र लिखा गया, उस... सुना—इसीलिए पूछ रही हू।"

वाहर से सतीश ने पुकारा, "उपेन भैया, आओ न।"

उपेन्द्र ने कहा, "नही, आत्मीय नही हू—लेकिन विशिष्ट मित्र हू। बाबूजी जब नोआखली मे थे, तब हारान भैया के पिता भी सरकारी स्कूल मे मास्टरी करते थे, मुझे भी घर पर पढ़ाते थे, हारान भैया और मैं दोनो साथ-साथ बहुत दिन पढते रहे।"

किरणमयी ने हसकर कहा, "ओह यह बात है? इसी के लिए लिखा-पढ़ी करना? अच्छा उपेन बाबू, आप सब कुछ अपने नाम लिख लेगे न?"

यह देखकर सतीश ने मुह बढा दिया था, उसने झट ही जवाब दे दिया, "ऐसी ही बात तो पक्की हुई है।"

हारान के कमरे से बाहर निकलते समय कौन तेजी से बाहर चली गयी थी, इस बात को वह पहले ही समझ गया था।

वधू ने उसकी तरफ घूमकर कहा, "अच्छा तो आप भी हैं। अच्छी बात है। इतने दिनो तक इतने कष्ट उठाकर जैसे भी हो, दो वक्त दो मुट्ठी अन्न जुट जाता था—अब राह मे खडी रहने की आवश्यकता पडेगी। ऐसा ही हो, आप लोग ही सब बटवारा कर ले।"

उपेन्द्र आश्चर्यचकित हो गये।

सतीश ने उत्तर दिया, "जिसकी चीज है, यदि वही दे जाए तो किसी को कुछ कहने की गुजाइश नही है।"

किरणमयी के दोनो नेत्र आग की तरह जल उठे। बोली, "मुझे है। मरने के समय मनुष्य की मति बिगड जाती है, मेरे पति को यही हुआ है। लेकिन आप लोग लिखकर लेने वाले होते कौन हैं?"

सतीश बोल उठा, "यह तो मैं नही जानता लेकिन हारान बाबू मे आज भी बुद्धि है इस बात की सम्मति मेरी आत्मा दें रही है।"

किरणमयी ने विद्रूप के स्वर मे उत्तर दिया, "बडा अच्छा सुझाव है। लोग बात-बात मे कहा करते हैं—जाने दीजिए लोगो की बात, उपेन्द्र को लक्ष्य करके वह बोली, "लेकिन यह बात मैं पूछती हू, मैं कैसे जानूगी कि अन्तिम समय मे वह राह की भिखारिनी न बना देगे, कैसे विश्वास करूगी वह धोखा नही देगे।"

इतना बडा आघात उपेन्द्र को मानो असह्य मालूम हुआ। कुछ कहने भी जा रहे थे, लेकिन न कहकर अपने को सभाल लिया।

सतीश ने कहा, "भाभी? जानने की आवश्यकता आपको नही है।"

किरणमयी भी उसी दम उत्तर न दे सकी। इस व्यग्यात्मक आत्मीय संबोधन स्पर्धा से वह अवाक् हो गयी थी। पलभर देखती रहने पर केवल बोली, "भाभीजी। आवश्यकता नही है।"

सतीश ने कहा, "नही। अगर आप अपना अधिकार आप ही नष्ट न करती तो हारान बाबू को इस सतर्कता की आवश्यकता नही थी। इतनी रात को बेकार झगडा न कीजिए, जरा समझकर विचार कीजिए तो।"

तेज कार्बोलिक की गध से जैसे सांप अपने उठाये हुए फण को पलभर मे सभालकर आघात के बदले मे आत्मरक्षा का उपाय खोजने लगता है, यह निरुपमा, यह लीला, कौशलमयी तेजँस्विनी पलभर मे उसी प्रकार से कुपित होकर बोली, "मेरे विषय में कैसी बात उन्होने कही है, सुनू तो?"

उपेन्द्र से अब चुप न रहा गया। इस गर्विता नारी का संदिग्ध तिरस्कार उनको उत्तप्त शूल की तरह बिंधते रहने पर भी उनका उच्च शिक्षित भद्र अन्त करण सतीश की इस जासूसी के विरुद्ध विद्रोह कर उठा। वह अनुचित उत्तेजना से कुछ गुप्त रहस्य खीच निकालने की चेष्टा कर रहा था, इसको वह समझ

...ाश को वाधा देकर उन्होने किरणमयी से कहा, "क्यो आप सतीश के पागलपन पर ध्यान ...पने आपको उद्विग्न कर रही हैं। पति की सम्पत्ति से वंचित करने का अधिकार किसी को नही है। ...प निश्चिन्त रहिए। मैं तो समझता हू, आपको विशेष सुविधा होगी, यह समझकर ही हारान भैया ने लिखा-पढी की बात उठाई है। लेकिन आपकी राय के विना तो वह किसी तरह भी न हो सकेगी। रात वहुत हो गयी है। किवाड वन्द कर दीजिए। चल, सतीश, अव देर मत कर।" सतीश को ठेलकर गली मे खडे होकर मुसकराकर वे वोले, "कल-परसो फिर भेट होगी—अच्छा, नमस्कार।"

तेरह

उस सुनसान गली से निकलकर दोनो एक किराये की गाडी पर चढ़ गये और खुली खिडकी से रास्ते मे मन्दीभूत जनस्रोत की ओर चुपचाप देखते रहे। वाते करने योग्य मन की अवस्था किसी की नही थी। उपेन्द्र व्यथित चित्त से सोचने लगे, 'कल ही घर लौट आऊगा। भला हो, वुरा हो, मुझे हाथ डालने की आवश्यकता नही है। केवल लौट जाने के पहले यही देखता जाऊगा कि हारान भैया की चिकित्सा हो रही है—उसके वाद? उसके वाद और कुछ भी नही—आठ साल जो आदमी मन के वाहर पडा हुआ था, वह वाहर ही पडा रहेगा।" यह सोचकर शरीर पर लगे कीडे-मकोडो की तरह इस विरक्तिकर चिता को शरीर से झाड-फेककर उपेन्द्र गाडी मे ही हर वार हिल-डुलकर वैठ गये। सतीश को पुकारकर वोले, "एक चुरुट दे तो, वहुत सर्दी है।"

सतीश ने जेव से चुरुट निकालकर दी और वैसे ही वाहर की तरफ देखता रहा, कोई वात उसने नही कही।

उपेन्द्र चुरुट सुलगाकर धुआ उडाते हुए सतीश को सुनाकर वोले, "अन्दर का अन्धकार इसी तरह धुए की तरह वाहर निकल जाना चाहिए।"

सतीश ने हुकारी तक भी नही भरी।

घडधडाती हुई किराए की गाडी परिचित-अपरिचित रास्तो, गलियो, घरो और दूकानो को पार करती हुई चलने लगी। चुरुट जल गया, उसका धुआं कहा आकाश में विलीन हो गया तव भी दोनो रास्ते के दोनो तरफ वैसे ही चुपचाप ताकते रहे। उपेन्द्र ने मन ही मन सोचा, 'सतीश अवश्य ही ये सव लेकर सोच रहा है, और जो भी हो, कुछ-न-कुछ निश्चय कर रहा है, नही तो वह इतनी देर तक चुप रहने वाला आदमी नही है' और उसका आलोच्य विषय क्या है यह अनुमान करने पर उपेन्द्र को आदि से अन्त तक सव ही स्मरण हो गया। छिपे तौर से सिहर उठने पर वह मन ही मन वोले—क्या कुछ घटना घट गयी और जो घटना हो गयी है, वह कितनी ही शोचनीय क्यो न हो सभी का एक सही कारण उन्होंने इस बीच अनुमान कर लिया, लेकिन सतीश क्या सोचकर इस असहाया, अपरिचिता के साथ झगडा करने को तैयार हो गया था, इसी को वह किसी तरह समझ न सके। घर की वहू अपने ऊपर तत्काल आने वाली विपत्ति की आशका से केवल आत्मरक्षा के निमित्त दो कड़ी वातें कह सकती है, ऐसी सीधी-सी वात भी सतीश समझ न सका, इसी को वह विश्वास करने मे असमर्थ हो रहे थे। सतीश पढ़ा-लिखा आदमी भले ही न हो, नासमझ तो नहीं है। उपेन्द्र इस वात को जानते थे इसीलिए उन्होंने इतना अधिक दु:ख अनुभव किया। हारान के वसीयतनामे के प्रस्ताव मे एक विशेषता रहने के कारण ही उपेन्द्र थोडे से समय मे ही वहुत सी वाते सोच चुके थे। वाल्य-सखा के मृतप्राय शरीर के पास ही वैठकर उन्होंने सोच लिया था कि इन अनाथा दोनों रमणियों का आजीवन भरण-पोषण और रक्षणवेक्षण करूगा। किसी स्वास्थ्यकर तीर्थस्थान मे एक छोटा-सा मकान खरीद लूगा। वह पेड-पौधों मे, भले और भद्र पडोसियों से शांत तथा सुदृढ़ भाव से घिरा रहेगा। गृहपालित गाय-वछडों की सेवा करके, अतिथियो, व्राह्मणो की पूजा करके, शुद्ध व्रतों का पालन करके इन दोनों स्त्रियो के दिन जिस प्रकार वीतने लगेगे, इसका काल्पनिक चित्र कल्पना मे मधुर हो उठा था। इस चित्र के एक तरफ पेड-पौधों की आड मे सभी जरूरी चीजो के पीछे अपने लिए थोडा-सा स्थान भी शायद अपनी गैर जानकारी में ही चिन्हित करने का प्रयास कर रहे थे, उसी समय किरणमयी के भद्दे अभियोग, सशयक्षुब्ध क्रुद्ध व्यवहार ने ववण्डर की तरह उस चित्र तक को

भी लुप्त कर दिया। उपेन्द्र फिर चुप न रह सके। पुकारकर बोले, "सतीश, तू क्यो
सतीश बाहर की ओर से दृष्टि हटाकर उपेन्द्र की ओर देखते हुए बोला, "क्या सोच ?"
उपेन भैया, लडकपन मे एक बगला उपन्यास पढा था, उसी को सोच रहा हू।"

उपेन्द्र ने पूछा, "कौन-सा उपन्यास?"

सतीश ने कहा, "नाम याद नही है। लेखक का नाम भी ठीक याद नही है। लेकिन वह कहानी मुझे याद है—ऐसी ही सुन्दर है।"

उपेन्द्र उत्सुक होकर उसकी तरफ देखते रहे।

सतीश ने शिकायत के स्वर मे कहा, "चिरकाल तक अग्रेजी पढकर ही तुमने दिन बिताये उपेन भैया। किसी दिन बगला की तरफ तुमने देखा नही। लेकिन हमारे देश मे ऐसी-ऐसी पुस्तके हैं कि एक बार पढने से ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।" इतना कहकर वह एक लम्बी सास लेकर चुप हो गया।

उपेन्द्र ने विरक्त होकर कहा, "पहले उपन्यास की कहानी कहो तो सुनू, उसके बाद देखा जायेगा कि कितना ज्ञान उत्पन्न होता है।"

सतीश हसकर बोला, "पहले वचन दो गुस्सा तो न होगे।"

"नही, तू कह।"

सतीश ने कहा, "बहुत ही सुन्दर कहानी है। उस किताब मे लिखा है एक धनी जमीदार नाव पर बैठकर कही जा रहे थे। एक दिन सध्या को एकाएक बादल घिर आने पर भयकर आधी-वर्षा शुरू हुई। वे तो डर के मारे उतरकर किनारे चले गये। सामने एक बहुत टूटा-फूटा मकान था, वर्षा के भय से उसी मे घुस पडे। उस मकान के सभी कमरो मे अधेरा था—कही भी कोई आदमी नही था। मकान मे सब जगह घूम-घूमकर अन्त मे ऊपर के एक कमरे मे उन्होने देखा, टिमटिमाता हुआ चिराग जल रहा है और फटे बिछौने पर एक आदमी मरणासन्न पडा हुआ है और उसकी पद्म पलासी, रूपवती स्त्री लोट-पोट कर रो रही है। उस रात को उसने कोई एक भयानक सपना देखा था। अच्छा उपेन भैया, क्या तुम सपने मे विश्वास करते हो?"

उपेन्द्र ने कहा, "नही। उसके बाद।"

सतीश ने कहा, "उसके बाद उसी रात को वह आदमी चल बसा। जमीदार साहब ने उस सुन्दरी विधवा को अपने घर लाकर उससे बलपूर्वक विवाह कर लिया। चारो तरफ छि.! छि। होने लगी और उस दु ख से उनकी पहली स्त्री ने विष खाकर आत्महत्या कर डाली।"

बार-बार पद्मपलाशाक्षी का जिक्र होने से उपेन्द्र समझ गये कि सतीश विषवृक्ष का पकोद्धार कर रहा है और सतीश की इस अद्भुत स्मृति-शक्ति के परिचय से किसी दूसरे समय शायद वह खूब हसते। लेकिन इस समय हसी नही आयी। इस इधर-उधर बिखरे हुए आख्यान के भीतर से एक इंगित तीर की तरह आकर उनकी छाती मे बिध गया। उन्होने मन मे सोचा—यह तो सतीश की स्मृति नही है, यह उनकी आशका है। यह आशका क्या है, और जिसको आश्रय करके 'विषवृक्ष' की डाल-पत्तियो को तोडकर उन्हे अपने ही साचे मे इसने गढ़ डाला है, उसी बात को याद करके उपेन्द्र गभीर लज्जा से सिकुड गये।

सतीश ने अधेरे मे यह नही देखा कि पलभर के लिए उपेन्द्र का मुख पीला पड़ गया है। सतीश व्यथा पर व्यथा पहुंचाकर फिर बोला, "तालाब-खोदकर घडियाल मत बुलाओ उपेन भैया।"

उपेन्द्र उत्तर न दे सके। बहुत देर बाद बोले, "बगला उपन्यास की बात छोडो। लेकिन कैसा उपदेश तुम देना चाहते हो, सुनू तो?"

सतीश हसकर बोला, "यही देखो उपेन भैया, तुम गुस्सा हो गये। तुमको मैं उपदेश नही दे सकता—लेकिन पाव पकडकर अनुरोध कर सकता हू। वहा जाने की जरूरत नही है, वे अच्छे आदमी नही हैं।"

"कौन हैं वे लोग, सुनू तो?"

सतीश ने कहा, "तुम गुस्सा मत होना उपेन भैया, बहुवचन का प्रयोग तो भद्रता मात्र है। मैं हारान बाबू की बात नही कहता—वह भले-बुरे के बाहर चले गये हैं। उनकी मा को भी मैंने आखो से देखा नही

.र व्यक्ति का जिक्र किया है।"

..सरे व्यक्ति का अपराध? देखो सतीश, तुम्हारे बाबूजी अगर किसी दूसरे आदमी को अपना स्व लिख देने का सकल्प कर ले, तो शायद तुम खुशी न मनाओगे?"

"नही, तुम आशीर्वाद दो उपेन भैया, बाबूजी को उसकी आवश्यकता ही न पडे। वह मुझे अपना भला लडका कहकर खुशी नही मानते यह मैं जानता हू। मैं उनका खराब लडका हू, लेकिन यह खराब उनकी मृत्यु के समय मे सजावट-श्रृगार करके माथे पर बिन्दी लगाकर घूमता न फिरेगा। आज मेरी वाचालता को तुम क्षमा करो उपेन भैया, लेकिन तुम्हारी जरा भी आख रहती तो तुम देख पाते, हारान बाबू का ऐसा प्रस्ताव केवल मन का ख्याल ही नही हैं बल्कि अनेक दिनो की अनेक चिन्ताओ का फल है।"

सतीश ने फिर कहा, "तुम यह ख्याल मत करना कि हारान बाबू तुमको समस्त भार सौंप देते समय अपनी स्त्री की ही बात भूल गये थे, या लज्जा से कहने मे असमर्थ हो रहे थे। बल्कि, मुझे विश्वास है, तुम यदि स्वय ही उल्लेख न करते तो वह स्वेच्छा से कोई बात न कहते।"

उपेन्द्र मन ही मन विरक्त होते रहने पर भी इतनी देर तक मौन होकर सुन रहे थे, लेकिन पर-स्त्री के सबध मे यह सब संदिग्ध इगित उनको असह्य हो उठा। वह कठोर स्वर मे बोल उठे, "सतीश, तुम इतने नीच हो गये हो, यह मेरी धारणा नही थी, शायद तुम आलाप-परिचय के नीचे उतर गये हो।"

सतीश हस पडा। बोला, "नीच कैसे? बुरे को बुरा कहना ह इसलिए?"

"भला हो या बुरा हो, इस तरह बोलने का तुम्हारा क्या अधिकार है?"

"अधिकार? वह है अंग्रेजी ढाचे की बात, बगला से उसका अर्थ नही होता। हमारे समाज मे इतना सूक्ष्म विचार नही चलता। जेलखाने के कैदी को चोर कहने मे भी बहुत लोग आपत्ति करते हैं लेकिन उस बात को तो साधारण पाच आदमी मानकर नही चल सकते।"

"यह दूसरी बात है। चोरी साबित हो जाने पर उसको चोर कहते हैं चोर जेल में जाता है, लेकिन इनके बारे मे तुमको क्या सबूत मिला है?"

"सबूत न मिलने पर भी बहुत से लोग जेल में जाते हैं, वह है जज साहब के हाथ मे। हम लोग जिन बात को समझ नही सकते वे उसको समझ जाते हैं। फिर हम जिसको जेल की भाति स्वच्छ देखते हैं—इतने बडे जज साहब के सामने वह पहाड-पर्वत-सा हो सकता है। आज तुम्हारे संबंध मे भी यह बात लागू होती हे। कुछ ख्याल मत करना उपेन भैया, इतनी बडी दुनिया को आंखो के सामने रखकर भी बहुत से लोगों को ईश्वर का प्रमाण खोजने से नहीं मिलता। मैं जानता हू कि तुम नाराज होगे क्योंकि सदा से ही तुम भलो के साथ मिल-जुलकर, भला देखकर, भले ही बने हुए हो, लेकिन मेरी तरह बुरे-भले को देखकर यदि तुम पक्के हो गये होते, तो तुम्हे इतनी बाते कहने की आवश्यकता न पडती। तुम्हारी अपनी ही आखो मे बहुत-सी चीजे पकड मे आ जाती।"

उपेन्द्र पलभर चुप रहकर बोले, "सभी चीजो के आंखो मे पडने की आवश्यकता मुझे नहीं है लेकिन पक्का हो जाने के लिए तेरी ही तरह नीच भी मैं न बन सकूगा। तू इस प्रसग को बन्द कर दे। गाडी फाटक के भीतर प्रवेश कर रही है। लेकिन एक बात तू याद रख सतीश, कच्चे का दाम क्या है, उसको केवल, तभी समझ सकेगा जब कि तू और भी पक्का हो जायगा।"

अगले दिन उपेन्द्र को उठने मे देर हो गयी। बहुत देर पहले सूर्योदय हो चुका है, यह खिडकी के सूराख से आने वाली किरणो से ही समझ में आ गया। उपेन्द्र व्यस्त हो उठे। सतीश कमरे मे नही था। वह कहा चला गया? बाहर बिहारी खडा था, आकर उसने खबर दी, सतीश बाबू सामने के बगीचे मे कुश्ती लड रहे हैं और नीचे चाय दी जा चुकी है, वहा साहब वगैरह आपकी प्रतीक्षा मे हैं।"

उपेन्द्र चटपट तैयार होकर ज्योही नीचे उतर पडे ज्योतिष त्योंही हाथ पकडकर चाय की मेज पर उनको ले गया। वहा उनकी बहन सरोजिनी प्रतीक्षा कर रही थी। वह अखबार फेंककर हसते हुए मुख से बोली, "कल रात को दस बजे तक हम आप लोगो की बाट देखते रहे। अन्त में मझले भैया ने कहा—अवश्य ही कोई निर्दय मित्र रास्ते से पकडकर ले गये हैं और आप लोग शायद रात को लौट ही न सकेंगे। लौटने मे कल कितनी रात हो गयी थी उपेन-बाबू?"

उपेन्द्र ने हसकर कहा, ''बारह। विशेष काम से आबद्ध हो जाने से मैने सबको
ज्योतिष ने कहा, ''इसे हम लोग समझते हैं। हमने यह ख्याल नही किया था कि तुम ''
राह मे घूमते हुए चक्कर काट रहे होगे। सतीश बाबू कहा चले गये?''

बिहारी ने आकर निवेदन किया, ''सतीश बाबू बगीचे के उस तरफ कुश्ती लड़ रहे हैं और उ
खबर दे दी गयी है।''

बिहारी के चले जाने पर ज्योतिष की तरफ देखकर बोले, ''कुश्ती क्या जी! और भी कोई है क्या?''

उपेन्द्र ने कहा, ''मैं जानता तो नही। कुश्ती शायद नही, लडकपन से व्यायाम करने की आदत है, वही कर रहा है शायद।''

सरोजिनी कल दोपहर के समय म्यूजियम देखने गयी थी। सध्या के बाद घर लौटने पर उन्होने सुना कि उपेन्द्र और उनके मित्र आ गये हैं। लेकिन उस समय वे लोग पाथुरिया घाटा चले गये थे। उन्होने पूछा, ''सतीश बाबू कौन है उपेन बाबू? मैंने तो देखा नही।''

''कल जिस समय हम लोग आये आप मौजूद नही थी। सतीश मेरा बचपन का मित्र है, यद्यपि आयु मे बहुत छोटा है यह—लो, आ तो गया।''

सतीश ने कमरे मे प्रवेश किया। क्या ही सुन्दर भरा-पूरा शरीर है। माथे पर तब भी बूद-बूद पसीना चमक रहा था, सुन्दर गोल चेहरे पर लाल आभा पडकर और सुन्दर दिखाई पड रहा था।

सरोजिनी ने पलभर देखकर ही आखे झुका ली।

ज्योतिष ने कहा, ''बिहारी कह रहा था, आप कुश्ती लड रहे थे। लेकिन कुश्ती ही लडे या जो कुछ भी करे, आपके शरीर की तरफ देखने से ईर्ष्या होती हैं, हम लोगो की तरह चार-पाच आदमी भी शायद आपके पास तक पहुच नही सकते।''

सतीश तनिक हसकर बोला, ''बिना परीक्षा के इतना बडा सर्टीफिकेट मत दीजिएगा। इसके सिवा केवल शरीर का बल लेकर ही क्या होगा, मेरे पास और कोई ताकत ही नही।''

बात के अन्तिम अश मे दु ख का आभास दिखाई पडा। सरोजिनी ने चाय डालते-डालते मन ही मन अनुमान किया कि सतीश बाबू की सासारिक अवस्था शायद अच्छी नही है। ज्योतिष पहले ही उपेन्द्र से सुन चुके थे। वह चुप ही रहे। इसके बीच चाय की कटोरिया परिपूर्ण हो उठी। सतीश उस तरफ नजर तक न डालकर, दीवाल पर टगे एक चित्र की तरफ ताकता रहा।

ज्योतिष ने कहा, ''आइए, सतीश बाबू, सब कुछ तैयार है।''

सतीश वहा से चला आया, तनिक हसकर बोला, ''आप लोग शुरू कर दे, मैं बिना स्नान किए कुछ भी नहीं खाता-पीता।''

''विलक्षण! मैं तो यह बात नही जानता था। तो जाइए, अब देर मत कीजिएगा—बेहरा ।''

'नही-नही आप घबराइए मत! मेरा स्नान यथासमय ही होगा, इसके अलावा प्रात काल खाने-पीने की मेरी आदत नही है। मध्याह्न का भोजन मेरा साधारण पाच आदमियो से कुछ अधिक है, उसको असमय मे चाय आदि बेकार की चीजे खा-पीकर मैं नष्ट कर देना पसन्द नही करता। इससे तो अच्छा है कि मैं उस हारमोनियम को खोलकर दो भजन ही गाऊँ। आप लोगो के दोनो ही काम चले।

भजन गाने के प्रस्ताव से सरोजिनी अत्यन्त प्रफुल्ल हो उठी। सिर उठाकर वह एकाएक बोल उठी, ''अच्छा।'' लेकिन दूसरे ही क्षण घबराकर उसने मुह झुका लिया। वह बात उसके अपने ही कानो मे कैसी सुनाई पडी। ज्योतिष हसकर बोले, ''मेरी बहिन गाना पा जाने से और कुछ भी नही चाहती। नही, नही, सतीश बाबू, आप कुछ ।''

उपेन्द्र इतनी देर से चुप रहकर मन ही मन कुढते जा रहे थे, बोल उठे, ''नही, नही, फिर क्या? वह स्नान किए बिना खाना-पीता नही, सबेरे कुछ भी नही खाता। हम लोग लगातार कोशिश-पैरवी करते रहे और इधर चाय की कटोरिया ठण्डी हो जाए! ले सतीश, तुझे क्या भजन-वजन करना है, कर ले, मुझे और भी काम है। ' कहकर चाय की कटोरी उन्होने मुह से लगा ली।

ज्योतिष मन ही मन सतोष अनुभव कर मुस्कराने लगा।

सतीश दूर तक कुर्सी पर बैठ गया। इसके बाद उसमे गाने का उत्साह नही रहा।

उपेन्द्र ने हसकर कहा, "बारह। विशेष काम से आबद्ध हो जाने से मैंने सबको
ज्योतिष ने कहा, "इसे हम लोग समझते हैं। हमने यह ख्याल नही किया था कि तुम
म घूमते हुए चक्कर काट रहे होगे। सतीश बाबू कहा चले गये?"
बिहारी ने आकर निवेदन किया, "सतीश बाबू बगीचे के उस तरफ कुश्ती लड रहे हैं और उ
दे दी गयी है।"
बिहारी के चले जाने पर ज्योतिष की तरफ देखकर बोले, "कुश्ती क्या जी! और भी कोई है क्या?"
उपेंद्र ने कहा, "मैं जानता तो नही। कुश्ती शायद नही, लडकपन से व्यायाम करने की आदत है,
रहा है शायद।"
सरोजिनी कल दोपहर के समय म्यूजियम देखने गयी थी। सध्या के बाद घर लौटने पर उन्होंने सुना
पेन्द्र और उनके मित्र आ गये हैं। लेकिन उस समय वे लोग पाथुरिया घाटा चले गये थे। उन्होंने
"सतीश बाबू कौन है उपेन बाबू? मैंने तो देखा नही।"
"कल जिस समय हम लोग आये आप मौजूद नही थी। सतीश मेरा बचपन का मित्र है, यद्यपि आयु
त छोटा है यह—लो, आ तो गया।"
तीश ने कमरे मे प्रवेश किया। क्या ही सुन्दर भरा-पूरा शरीर है। माथे पर तब भी बूद-बूद
मक रहा था, सुन्दर गोल चेहरे पर लाल आभा पडकर और सुन्दर दिखाई पड रहा था।
नी ने पलभर देखकर ही आखे झुका ली।
ने कहा, "बिहारी कह रहा था, आप कुश्ती लड रहे थे। लेकिन कुश्ती ही लडे या जो कुछ
पके शरीर की तरफ देखने से ईर्ष्या होती है, हम लोगो की तरह चार-पाच आदमी भी शायद
प तक पहुच नही सकते।"
तनिक हसकर बोला, "बिना परीक्षा के इतना बडा सर्टीफिकेट मत दीजिएगा। इसके सिवा
बल लेकर ही क्या होगा, मेरे पास और कोई ताकत ही नही।"
अवश्य ... अश मे दु ख का आभास दिखाई पडा। सरोजिनी ने चाय डालते-डालते मन ही मन
से समझ ... बाबू की सासारिक अवस्था शायद अच्छी नही है। ज्योतिष पहले ही उपेन्द्र से
समझाया था कि ...। इसके बीच चाय की कटोरिया परिपूर्ण हो उठी। सतीश उस तरफ नजर
क्यो उसने विश्वास कि... एक चित्र की तरफ ताकता रहा।
तरफ खडी रहकर यह क्रोधोन्म... बाबू, सब कुछ तैयार है।"
ही आरोप लगाकर भी तृप्ति न पा सकी ... बोला, "आप लोग शुरू कर दे, मैं बिना स्नान किए कुछ
उसका कणमात्र व्यक्त कर देने की भाषा ... जाइए, अब देर मत कीजिएगा—बेहरा, ..."
लगी कि वह अर्धमृत आज ही रात को से... ...गा, इसके अलावा प्रात...
दो दिन के बाद सवेरे रसोईघर मे बैठी किरण ... महरानी ने आकर खबर दी, "डाक्टर साहब आये हैं।"

किरण ने कहा, "जाकर उनसे कह दे, मा आज अच्छी हैं।"

दासी कुछ आश्चर्य मे पड गयी। कुछ देर तक देखती रहकर बोली, "वह उसी कमरे मे बैठे हुए हैं।"

उसकी बात के विशेष अर्थ की ओर तनिक भी ध्यान न देकर किरण ने सहज भाव से कहा, "उसकी दवा तो कोई खाता नही फिर भी वह क्यो आता है मैं नही जानती। तू अपने काम पर जा, वह स्वय ही चला जायगा।"

इस डाक्टर की दवा काम मे नही आती, दासी के लिए यह कोई नयी बात नही थी। इसलिए इसके उल्लेख की कोई आवश्यकता नही थी, किंतु क्यो वह आता है यह प्रश्न पूर्ण रूप से नया था। वह आश्चर्य मे पडकर सोचने लगी, कल सध्या को मैं घर चली गयी थी, इसी बीच हठात् कौन-सी ऐसी घटना हो गयी कि डाक्टर का इस मकान मे आना तक अनावश्यक हो गया। फिर भी साहस करके वह एक बार बोली, "अच्छा, मैं तरकारी काट देती हू, तुम एक बार हो आओ न।"

किरणमयी अत्यन्त रूखे भाव से बोली, "तू जा। अपना कुछ काम-काज हो तो जाकर कर।"

इस आकस्मिक तथा अत्यन्त अनावश्यक उग्रता से दासी एकदम सहम गयी। इस घर मे वह बिल्कुल ही पुरानी न होने पर भी नयी ...। इसके पूर्व भी ऐसे अकारण रूखेपन का परिचय वह पा

नही म"

...ती है, किन्तु ठीक इस प्रकार की बात स्मरण न कर सकी। कोई और समय होता तो वह भी शायद क्रोध करती, किन्तु आज उसने नही किया। अति आश्चर्य से स्तब्ध रह गयी। थोड़ी देर चुप रहकर धीरे-धीरे उस कमरे के दरवाजे के पास जाकर बोली, "वह काम मे लगी हुई हैं, इस समय आप जायें।"

डाक्टर पैरो के पास बैग रखकर उसी चौकी के पास बैठा हुआ था, बोला, "काम में लगी हुई है, काम तो मुझे भी है।"

दासी ने कहा, "तो जाओ न बाबू।"

डाक्टर अवाक् रह गया। बोला, "एक बार जाकर कह दो, मुझे एक विशेष काम है।"

दासी ने कहा, "आप समझते क्यो नही हो बाबू, मैंने सब कहा है, और अधिक न कह सकूगी। वह सब मैं कुछ नही जानती। आज आप जाये।" यह कहकर वह चली गयी।

इस अवहेलना और लाछना ने पहले तो डाक्टर को गभीर आघात पहुचाया, किन्तु दूसरे ही क्षण एक लज्जाजनक दुर्घटना की सभावना उसके मन मे उठने के साथ ही वह भीतरी बात क्या है सुनने के लिए व्याकुल हो उठा। उसको प्रतीक्षा करने मे आपत्ति नही थी और प्रतीक्षा करता ही रहा किंतु कोई भी लौटकर नही आया। तब खडा-खड़ा कितना क्या सोचकर चले जाने का विचार करके बैग उठाकर जब खडा हुआ और निगाह उठाई तो देखा कि दरवाजे के सामने ही किरणमयी है। डाक्टर ने अपने उद्धत अभिमान को रोककर कहा, "जरा हटो, बड़ी देर हो गयी, और भी बहुत से रोगी राह देख रहे हैं, मा जी अच्छी हैं न?"

"अच्छी है।" कहकर किरणमयी एक ओर हटकर खडी हो गयी।

किन्तु डाक्टर के पैर उठे नही। फिर भी जाने का प्रस्ताव स्वय ही करके खडा रहना भी कठिन हो गया।

किरणमयी मुसकराने लगी, बोली, "जाओ न।"

डाक्टर ने मुह ऊपर उठाकर भौंहे सिकोडकर कहा, "तुम क्या समझती हो कि मैं जाना नहीं जानता?"

"मैं क्या पागल हू कि समझूँगी कि तुम जाना नही जानते! हा, डाक्टर कितने रोगी तुम्हारी राह देखते होगे सुनू तो?" कहकर और मुह घुमाकर वह हसने लगी।

कुपित डाक्टर की पहले यही इच्छा हुई कि उस मुह पर थप्पड मारकर बद कर दे, किन्तु यह काम तो सम्भव नही था, केवल बोला, "तुम जाओ।"

"मैं कहा जाऊगी? मकान है मेरा, जाना तो तुमको ही होगा।"

"मैं जा रहा हू।" कहकर ज्योही वह जाने को तैयार हुआ त्योंही किरणमयी ने दोनों चौखटो पर हाथ रखकर मार्ग रोककर कहा, "जा रहे हो, किन्तु यह जानकर जाओ कि यही जाना अन्तिम जाना है।"

उसके कण्ठ-स्वर और चेहरे के आकस्मिक परिवर्तन से डाक्टर शंकित हो उठा, लेकिन मुह से बोला, "अच्छी बात है, यही हो, यही अन्तिम जाना है।"

किरणमयी बोली, "सचमुच ही अन्तिम जाना है। जबकि तुम आ गये हो, तब स्पष्ट रूप से ही सब जान जाओ। अच्छा, वहा उसी जगह बैठ जाओ, अब खोलकर कहती हू।" यह कहकर डाक्टर का बैग लेकर उसने स्वय भूमि पर रख दिया और कुर्सी दिखाकर बोली, "रसोई बन रही है। समय नही है, सक्षेप मे कहती हू . ।"

इसी समय दासी ने आकर खबर दी, दो बाबू आ रहे हैं। उसके साथ ही जूते की आवाज सुनकर किरणमयी व्याघ्रभय से भीत हरिणी की भांति दासी को जोर से ठेलकर कमरे से दौडकर भाग गयी। डाक्टर और नौकरानी आश्चर्य मे पडकर एक-दूसरे के मुह को ताकने लगे।

थोडी ही देर के बाद जूते की आवाज द्वार के निकट आकर रुक गयी। डाक्टर ने देखा, दो अपरिचित भले आदमी हैं। दोनो भले आदमियों ने देखा, डाक्टर हैं, उनके कोट के पॉकेट से हृदयपरीक्षा के चोंगे ने अपनी गरदन बढाकर परिचय दे दिया। उपेन्द्र और सतीश ने देखा डाक्टर का चेहरा अत्यन्त सूखा है। दुर्घटना की आशका करके पूछा, "आपने कैसा देखा डाक्टर साहब?"

डाक्टर मौन रहा। उसका चेहरा और भी काला हो गया।
उपेन्द्र ने और अधिक शंकित होकर प्रश्न किया, "अब कैसा देखा?"
तो भी डाक्टर ने बात नही कही, विह्वल की भांति वह ताकता रहा।
दासी ने कहा, "तुम जाओ न डाक्टर साहब, "अभी खडे क्यो हो?"
डाक्टर व्यग्र होकर बैग उठाकर बोला, "मैं जाता हू, मुझे बहुत काम है।" कहकर उपेन्द्र और सतीश के बीच से ही वह तेजी से नीचे उतर गया। और इस महाजन का पदानुसरण करके दासी कहा विलीन हो गयी यह बात जानी भी नही गयी।
उस सुनसान टूटे मकान के टूटे बरामदे मे दिन के नौ बजे उपेन्द्र और सतीश चुपचाप आश्चर्य से एक-दूसरे का मुह देखने लगे।
कुछ देर बाद सतीश बोला, "उपेन्द्र भैया, हारान बाबू की मा क्या पागल हैं?"
उपेन्द्र बोले, "वह हारान भैया की मा नही हैं, ओर कोई है, सभवत दासी है। किन्तु मैं सोचता हू, डाक्टर उस तरह क्यो चला गया?"
सतीश बोला, "ठीक चोर की भांति मानो पकडे जाने के भय से भाग गया।"
उपेन्द्र अन्यमनस्क भाव से बोले, "प्राय कही कोई भी दिखाई नही पडता, वह कमरा हारान भैया का है न?"
सतीश बोला, "हा, चलो उसमे।"
किन्तु हठात् घुसने का साहस नही हो रहा है। "मुझे डर लग रहा है, शायद कोई घटना हुई है।"
सतीश बोला, "ऐसी बात होने से रोने-धोने के लिए आदमी जुट जाते—ऐसी बात नही है।"
ऐसे ही समय मे दिखाई पडा, उस ओर बरामदे से घुसकर किरणमयी आ रही है। जान पडता था मानो अभी-अभी वह रो रही थी, आखे पोछकर चली आ रही है। कल दीपक के प्रकाश मे जो मुह सुन्दर दिखाई पड रहा था, आज दिन के समय, सूर्य के प्रकाश मे स्पष्ट समझ मे आ गया, ऐसा सौंदर्य पहले कभी दिखाई नही पडा जीवित भी नही, चित्रो मे भी नही।
बहू ने कहा, "आज हम लोग तैयार नही थे। मैंने सोचा था कह जाने पर भी शायद न आ सकेगे।" सतीश की ओर देखकर सहसा मुसकराकर बोली, "बबुआजी भी हैं।"
आज सतीश ने सिर झुका लिया।
उपेन्द्र ने पूछा, "हारान भैया कैसे हैं?"
बहू ने उत्तर दिया, "वैसे ही। चलिए, उस कमरे मे चले।"
हारान के कमरे मे उनकी मा अघोरमयी बिछौने के पास बैठी हुई थी। उपेन्द्र के प्रणाम करते ही ऊचे स्वर से रो पडी।
हारान थके गले से मना करके बोला, "चुप भी रहो मा।"
उपेन्द्र लज्जा से, दु ख से एक ओर बैठ गये।
सतीश इस तरह उस ओर देखकर मुह को यथासाध्य भारी बनाकर उस काठ के सदूक पर जाकर बैठ गया।
बहू पलभर खडी रहकर सतीश की तरफ विद्युत् कटाक्ष फेककर बाहर चली गयी, मानो स्पष्ट धमका गयी, तुम लोग यह काम अच्छा नही कर रहे हो।

पन्द्रह

सतीश ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह डाक्टरी पढ़ना नही छोडेगा इसीलिए दूसरे दिन सध्या समय किसी से भी कुछ न कहकर वह बिहारी को साथ लिए अपने पुराने डेरे पर जा पहुचा। वह मकान उस समय भी खाली पडा था। मकान मालिक से मिलकर उसने छ महीने का बन्दोबस्त कर लिया और निकट ही के हिन्दू आश्रम मे जाकर पता लगाकर एक रसोईदार नियुक्त कर लिया और प्रसन्न होकर बाहर निकल पडा। बिहारी से उसने कहा, "हम लोग कल ही चले आएंगे। क्या कहते हो बिहारी?"

बिहारी फिर भी चुप रहा।
सतीश चिल्लाकर बोला, "तेरे पैरो पर गिरता हू हरामजादे, जल्दी बता।"
बिहारी उसी क्षण भूमि पर सिर टेककर जूते की धूलि सिर पर चढाकर सिसकते हुए बोला, "बाबू मुझे आपने नरक मे डुबा दिया। तनिक आड मे चलिए, कहता हू।" यह कहकर अधेरी गली मे घुसकर एक ओर खडा हो गया।
सतीश सामने खडा होकर बोला, "क्या है?"
बिहारी ने गला साफ करके कहा, "सावित्री की मौसी का विचार है कि वह आपके पास है। लेकिन मैं जानता हू ऐसी बात नही है।"
सतीश अधीर होकर बोला, "तू खूब पण्डित है? यह मैं भी जानता हू—उसके बाद क्या है बता?"
"रुकिए बाबू, बता रहा हू।" कहकर बिहारी फिर एक बार गला साफ करके बोला, "मुझे खूब आशा हो रही है कि ..।"
"क्या आशा हो रही है?"
बिहारी विवश होकर बोल उठा, "वह कही चली गयी है, उसी विपिन बाबू के पास ही।"
"कौन। हमारा विपिन।"
"हा बाबू, वे ही—हा, हा—वहा बैठिएगा मत, स्नान करना पडेगा। दुनिया भर के लोग वहा ही . ।"
सतीश ने उस बात को कानो मे ही जाने नही दिया। उस ओर की दीवाल पर पीठ टेककर सीधा होकर बैठकर सूखे गले से उसने पूछा, "तो फिर उसकी मौसी ने कैसे समझा कि वह मेरे पास है?"
बिहारी ने कहा, "सावित्री ने जिस दिन विपिन बाबू को अपमानित करके बिदा किया, उस दिन स्पष्ट रूप से उसने कहा था, वह सतीश बाबू के सिवा और किसी के पास न जायेगी—मकान के लोग आड मे रहकर उन लोगो का झगडा सुन रहे थे।"
सतीश ने उठकर पूछा, "तो तुझे किस तरह पता लगा कि वह विपिन बाबू के पास गयी है?"
बिहारी चुप हो रहा।
सतीश ने कहा, "बता।"
बिहारी फिर एक बार हिचकिचा गया। सावित्री के आगे वही जो "न बताएगा" कहकर घमण्ड दिखा आया था, वह बात याद पड गयी। बोला, "मैं अपनी ही आखो से देख आया हू।"
सतीश चुपचाप सुनने लगा।
बिहारी ने कहा, "घर बदलने के दूसरे दिन दोपहर को मैं आया था, तब विपिन बाबू सावित्री के बिछौने पर सो रहे थे।"
सतीश ने डाटकर कहा, "झूठी बात है।"
बिहारी ने पूछा, "सावित्री कहा थी?"
सावित्री उस कमरे मे थी। बाहर निकलकर उसने मुझे चटाई बिछाकर बैठाया। पूछने लगी, "बाबू लोग नाराज हुए या नही, हम लोगो ने घर बदल क्यो दिया? यही सब।"
"फिर-उसके बाद?"
"मैं बिगडकर लौट आया। तब वह बाबू के साथ चली गयी।"
"इतने दिनो तक तूने क्यो नही बताया?"
बिहारी मौन रहा।
सतीश ने पूछा, "तूने स्वय अपनी आखो से देखा है या सुना है?"
"नही बाबू, अपनी ही आखो से देखी हुई यह घटना है। बहुत ध्यान से देखा है।"
"मेरे पैर छूकर शपथ ले, तेरी आखों से देखी हुई बात है! ब्राह्मण के पैरो पर हाथ रख रहा है, याद रहे।"
बिहारी सतीश के पैरो पर हाथ रखकर बोला,"यह बात मुझे दिन-रात याद रहती है बाबू! मेरी अपनी ही आखो की देखी हुई घटना है।

सतीश ने पलभर चुप रहकर कहा, "तू डेरे पर चला जा, उपेन भैया से कहना, आज रात को मैं भवानीपुर जाऊगा, लौटूगा नही।"

बिहारी को विश्वास नही हुआ, वह रोने लगा।

सतीश ने आश्चर्य मे पडकर कहा, "यह क्या रे, रोता क्यों है?"

बिहारी ने आखे पोछते-पोछते कहा, "बाबू, मैं आपके लडके की तरह हू, मुझसे छिपाइएगा मत। मैं भी साथ चलूगा।"

सतीश ने पूछा, "क्यो?"

बिहारी ने कहा, "बूढ़ा तो हो गया हू जरूर, लेकिन जाति का अहीर हू। एक लाठी मिल जाने पर अब भी पाच-छ. आदमियो का सामना कर सकता हू। हम दगा भी कर सकते हैं और जरूरत पडने पर मरना भी जानते हैं।"

सतीश ने शात स्वर से कहा, "मैं क्या दगा करने जा रहा हूं? मूर्ख कही का।" यह कहकर वह चला गया।

बिहारी अब जान गया, बात झूठी नही है। तब आखे पोंछकर वह भी चला गया।

सतीश मैदान की तरफ तेजी से जा रहा था। कहा जाना होगा इसका निश्चय उसने नही किया, लेकिन कही उसको मानो शीघ्र ही जाना पडेगा। इस बात को वह निस्सदेह अनुभव कर रहा था कि एक ही क्षण मे उसके चेहरे पर एक ऐसा भद्दा परिवर्तन हो गया है, जिसे किसी जाने-पहचाने आदमी को दिखाना उचित नही।

मैदान के एक सुनसान भाग के नीचे बेच पडी हुई थी। सतीश उस के ऊपर जाकर बैठ गया और निर्जन स्थान को देखकर शांति मिली। अधेरे मे वृक्ष के नीचे बैठकर पहले ही उसके मुह से निकल पडा, "अब क्या करना चाहिए?" यह प्रश्न कुछ देर तक उसके कानों मे अर्थहीन प्रलाप की भांति घूमता रहा। अन्त मे उसको उत्तर मिला, "कुछ भी नही किया जा सकता।"

उसने प्रश्न किया, "सावित्री ने ऐसा काम क्यो किया?"

उत्तर मिला, "ऐसा तो कुछ भी नही किया है, जिससे नये सिरे से उसको दोष दिया जा सके।"

उसने प्रश्न किया, "इतना बडा अविश्वास का काम उसने क्यो किया?"

उत्तर मिला, "कौन सा विश्वास उसने तुमको दिया था, यह पहले बताओ?"

सतीश कुछ भी बता न सका। वस्तुत उसने तो कोई झूठी आशा दी नही थी। एक दिन के लिए भी उसने छलना नही की। बल्कि वह बार-बार सतर्क करती रही है, शुभ कामना प्रकट करती रही है बहिन से भी अधिक स्नेह करती रही है, उस रात की बाते उसने याद की। उस दिन निष्ठुर होकर उसको घर से निकालकर उसने बचाया था। कौन ऐसा कर सकता था। कौन अपनी छाती पर वज्र रखकर उसको सुरक्षित रख सकता था? सतीश की आखो की पलके भीग गई, किन्तु यह सशय उसका किसी प्रकार भी दूर नही हो सका कि इस उत्तर मे कही मानो एक भूल हो रही है।

उसने फिर प्रश्न किया, "किन्तु उसको तो मैंने प्यार किया है।"

उत्तर मिला, "क्यो प्यार किया? क्यो जान-बूझकर तुम कीचड मे उतर गये?"

उसने प्रश्न किया, "यह मैं नही जानता। कमल लेने जाने पर भी तो कीचड लगता है?"

उसे उत्तर मिला, "यह है पुरानी उपमा—काम मे नही आती। मनुष्य अपने घर मे आते समय कीचड धोकर कमल ले आते हैं। तुम्हारा कमल ही कहा और यह कीचड तुम कहा धोकर अपने घर आते?"

उसने प्रश्न किया, "अच्छा भले ही मैं घर नही आता?"

उत्तर मिला, "छि। उस बात को मुह पर भी मत लाना।

इसके बाद कुछ देर तक मौन होकर नक्षत्र भरे काले आकाश की तरफ देखकर एकाएक बोल उठा, "मैंने तो उसकी आशा छोड ही दी थी। उसे मैं पाना भी नही चाहता था किन्तु मुझे उसने इस प्रकार अपमानित क्यो किया? एक बार पूछ क्यो नही लिया? किस दु ख से वह यह काम करने गयी? रुपये के लोभ से किया है, यह बात तो किसी प्रकार मैं सोच नहीं सकता। विपिन की तरह आचरणभ्रष्ट शराबी को मन ही मन में उसने प्यार किया था, इस बात पर विश्वास करू किस तरह? तो फिर क्यों?"

गगाजी की शीतल वायु लगने से उसे जाडा लगने लगा। वह ज्योही चादर नीचे से ऊपर तक ओढ़कर आखे बन्द करके बेंच पर लेट गया, त्योही सावित्री का चेहरा उज्ज्वल होकर स्पष्ट हो उठा। कलक की कोई भी कालिमा उस चेहरे पर नही है। गर्व से दीप्त, बुद्धि स्थिर, स्नेह से स्निग्ध, परिणत यौवन के भार से गभीर, तो भी, रसो से, लीलाओ से चचल--वही चेहरा, वही हसी, वही दृष्टि संयत, परिहास, सबसे ऊपर उसकी वह अकृत्रिम सेवा! इस प्रकार स्नेह उसे इतनी उम्र मे कब कहा मिला था! भस्माच्छादित अग्नि की भांति उसके आवरण को लेकर खेल मचाते समय जो अग्नि बाहर निकल पडी है, उस की जलन से किस तरह, किस रास्ते से भागकर आज वह मुक्ति पावेगा! मुक्ति पा लेने से भी क्या हो जायगा। उसकी दोनो आंखो से आसू झर-झर गिरने लगे। आसू को उसने रोकना नही चाहा--''आसू को पोछ डालने की इच्छा भी नही की। आसू इतना मधुर है, आसू मे इतना रस है, आज वह अपने परम दु ख मे यह प्रथम उपलब्धि करके सुखी हो गया और जिसको उपलक्ष्य करके इतने बड़े सुख का आस्वाद वह जीवन मे पहलेपहल प्राप्त कर सका, उसी को लक्ष्य कर दोनो हाथ जोडकर उसने नमस्कार किया।

सतीश चाहे जैसा भी क्यो न हो, भगवान हैं, उन्हे धोखा नही दिया जा सकता, छोटे-बडे सभी को एक दिन उनके सामने उत्तरदायी के रूप मे विवरण देना पड़ता है, इन बातों पर वह निस्संदेह विश्वास करता था। आखे पोछकर वह उठ बैठा और मन ही मन बोला, ''भगवान किसके हाथ से तुम किस समय किसको क्या देते हो, कोई बता नही सकता! आज तुम्हारी ही आज्ञा से सावित्री है दाता, मैं हू भिखारी। इसीलिए वह भली हो, बुरी हो, यह विचार और ज़ो कोई भी करे मैं न करूं। मेरे हृदय मे सब जलन, विद्वेष तुम पोछ डालो, उस के विरुद्ध मैं कृतघ्न न बनू।''

उधर ज्योतिष साहब के मकान मे संध्या के पश्चात्, बैठकखाने में सरोजिनी, ज्योतिष, उपेन्द्र और दूसरे एक नाटे कद के दाढ़ी-मूछ साफ किये हुए हृष्ट-पुष्ट भले आदमी बैठे हुए हैं। इनका शुभ नाम है शशाकमोहन। ये विलायत हो आये हैं--इसीलिए साहब हैं। थोडे ही दिनो मे सरोजिनी के प्रति आकृष्ट हो गये हैं और इसे प्राणपण से व्यक्त कर देने का पूर्ण प्रयास कर रहे हैं। वह प्रयास कहा तक सफलता की ओर अग्रसर होता जा रहा था, इसे केवल विधाता ही जान रहे थे। आज सतीश का प्रसग छिड गया था। उपेन्द्र उसके असाधारण शारीरिक बल तथा अलौकिक साहस का इतिहास समाप्त करके, आश्चर्यजनक कण्ठ-स्वर और उसकी अपेक्षा आश्चर्यजनक शिक्षा की बात उठा चुके थे। निकट ही सोफे पर बैठी हुई सरोजिनी दोनो हाथों पर अपनी ठुड्डी रखकर झुकी पडी हुई उदासीन चित्त से सुन रही थी। उसी समय बिहारी ने भग्न दूत की भांति कमरे में प्रवेश करके सतीश के भवानीपुर चले जाने का समाचार घोषित कर दिया।

उपेन्द्र ने आश्चर्य मे पडकर प्रश्न किया, ''उसके कौन हैं वहा?''

बिहारी सक्षेप मे 'नही जानता' कहकर चला गया।

सतीश के लिए सभी प्रतीक्षा कर रहे थे, अतएव सभी निराश हो गये।

सरोजिनी सीधी होकर बैठ गयी और हठात् लम्बी सांस लेकर बोली, ''तो अब क्या होगा?''

ज्योतिष उनके मुख की ओर देखकर स्नेह के साथ धीरे से हस पडे।

लेकिन केवल शशाकमोहन निराश न हुए। बल्कि प्रसन्न होकर प्रस्ताव किया, अब सरोजिनी ही कर्णधार बन जाये। संगीत से कितने परिमाण मे आनंद प्राप्त करने की शक्ति उनमे थी इसे वही जानते थे। लेकिन सरोजिनी के आपत्ति प्रकट करते ही वे बोल उठे, ''वरन् मैं तो कहता हू, पुरुषो के गीत गाना उनके लिए भूल है, उनका गला स्वभावत' ही मोटा और भारी होता है, इसीलिए उनकी शिक्षा कितनी ही क्यो न हो, और कितनी ही अच्छी तरह गाने का प्रयत्न क्यो न करें, किसी तरह सुनने योग्य नही हो सकता।''

इस कथन का और किसी ने यद्यपि कुछ विरोध नही किया, लेकिन सरोजिनी ने किया। वह बोली, ''आपके लिए अवश्य ही योग्य नही है। हारमोनियम पियानो के नीचे भारी मोटे परदो को तैयार करना सम्भवत भूल है, लेकिन फिर भी वे सब तैयार हो रहे हैं, लोग खरीद भी रहे हैं।''

शशांकमोहन के पास इस बात का उत्तर नही था। वह अपने गोरे चेहरे को जरा लाल बनाकर कोई बात करने जा रहे थे, लेकिन सरोजिनी एकाएक उठ खडी हुई, बोली, ''मां को खबर दे आऊ--नही तो वे

खाना लेकर वैठी रहेगी।"

उपेन्द्र चौंककर बोले, "ओ हो! उसका खाना-पीना सभवत उधर ही हो रहा होगा—हमवग।"

उपेन्द्र के कथन मे आन्तरिक स्नेह के सिवा और कुछ भी नही था और सतीश उनका अत्यन्त स्नेह-पात्र यदि न रहता तो वे यह वात मुह से निकाल भी नही सकते थे, इस वात को सरोजिनी ने भलीभांति समझकर हसकर कहा, "यह आपका भारी अन्याय है। उनकी रुचि यदि आपकी कुरुचि के साथ न मिले तो दोष आपका ही है, उनका नही। अच्छा, मा को वताकर आती हूं।" कहकर सरोजिनी शीघ्रता से वाहर चली गयी।

उसके चले जाने पर तुरन्त ही शशाकमोहन उपेन्द्र की ओर घूमकर वोले, "आपके मित्र सभवत वडे कट्टर सनातनी हैं।"

उपेन्द्र जरा हसकर वोले, "कम नही। पूजा-आह्निक भी करता है।"

सतीश कभी-कभी छिपकर शराव पीता था, यह वात वह जानते नही थे, शायद सपने मे भी सोच नही सकते थे।

शशाकमोहन ने पूछा, "वह करते क्या हैं?"

उपेन्द्र वोले, "कुछ भी नही। कभी वह कुछ करेगा, ऐसी आशा भी किसी को नही है।"

इस समाचार से शशाकमोहन के मन के ऊपर से मानो एक पत्थर उतर गया। प्रसन्न होकर वोले, "इसी पर?"

ज्योतिष इतनी देर तक मौन रहकर सुन रहे थे। उपेन्द्र को लक्ष्य कर वोले, "यह वात तो उचित नही है उपेन। शारीरिक उत्कर्ष क्या कुछ भी नही है? इसके सिवा मैं तो उनकी गान-विद्या पर मुग्ध हो गया हू। जो कुछ उन्होंने किया है, हमारे देश मे उसके योग्य सम्मान यदि उसको न मिला, तो दु ख की वात है इसमे सदेह नही। लेकिन वह दोष तो हम लोगो का ही है, उसका नही और सच वात तो यह है कि मुझे तो तुम्हारे मित्र को देखकर सचमुच ही ईर्ष्या होती है। अच्छी वात है, वूढे की आमदनी कितनी है जी?"

उसी समय सरोजिनी ने चुपचाप कमरे मे प्रवेश करके अपने भैया की कुर्सी की पीठ पर हाथ टेककर खडी होकर पूछा, "किसकी भैया?"

ज्योतिष ने कहा, "सतीश वावू के पिता की।"

उपेन्द्र वोले, "ठीक नही जानता, सभवत लगभग दो लाख।"

ज्योतिष दोनो आखें फाडकर वोला, "राजा है क्या जी?"

उपेन्द्र वोले, "नही राजा नही किन्तु सदा से ही वे वडे जमीदार हैं। उस पर वृद्ध ने विशेष रूप से आमदनी वढा ली है।"

ज्योतिष कुर्सी पर ओठग कर एक लम्वी सास लेकर वोले, "विल्कुल ही सौभाग्य के प्रिय पुत्र। स्वास्थ्य, शक्ति रूप, ऐश्वर्य! मनुष्य जिन सव की कामना करता है, एक पात्र मे सभी विद्यमान हैं।"

उपेन्द्र हसने लगे। अन्त मे वोले, "एक भयकर दोष भी है। दूसरो का दोष अपने ऊपर ले लेता है, असमय मे अपने सिर विपत्ति ढोकर यदि मर न जाये, तो तुम जो कह रहे हो वह सव ठीक ही है।"

ज्योतिष सीधे हो उठ वैठे, वोले, "विपत्ति ढोकर मर जाएगा क्यों?"

उपेन्द्र वोले, "असभव नही है, और पहले हो भी चुका है। क्रोध नाम की वस्तु उसके शरीर मे जैसी भयकर है, प्राणो का मोह भी ठीक उसी परिमाण मे कम है। इस कलियुग मे रहते हुए भी जिनकी न्याय-अन्याय सवधी धारणा सतयुग की भांति रहती है और क्रोध मे आ जाने से जिसको हिताहित का ज्ञान नही रहता, उनके वचे रहने या न रहने पर मैं तो अधिक विश्वास नही रखता। सह सकना भी एक शक्ति है, विन मागी सहायता करने का लोभ रोक रखना भी विशेष अवस्था में आवश्यक होता है, इसको तो वह समझता ही नही। वह मानो उस युग के यूरोप का नाइट है, इस युग में वगाल में आकर जन्म ग्रहण किया है।"

ज्योतिष हसकर वोले, "लेकिन कुछ भी कहो, सुनकर श्रद्धा उत्पन्न होती है।"

उपेन्द्र वोले, "नही भी होती। ससार मे रहना है तो वहुत सी छोटी-मोटी वुरी वस्तुओ को तुच्छ मान

लेना पडता है—यह शिक्षा आज तक उसे नही मिली है। किसी दिन होगी या नही मैं नही जानता, लेकिन यदि नही हुई तो अन्तिम परिणाम अच्छा न होगा। उसका भी नही, उसके आत्मीय मित्रो का भी नही।

ज्योतिष बोले, "लेकिन तुम उसके आत्मीय-मित्र हो, तुम क्यो नही सिखाते?"

उपेन्द्र के मुह पर हसी फूट उठी, बोले, "मैं उसका मित्र हू अवश्य, लेकिन इस शिक्षा का भार ऐसे मित्र पर नही है जो सब मित्रो से बडे होगे, जो सभी आत्मीयो के ऊपर आत्मीय होगे, इस विद्या को या तो वे ही सिखायेगे या चिरकाल तक उसको अशिक्षित ही रहना होगा।"

सरोजिनी इतनी देर तक मौन होकर सुन रही थी। अब मुह घुमाकर शायद उसने जरा हसी छिपा ली।

उपेन्द्र बोले, "किन्तु सतीश की बात आज यही तक। मुझे उठना पडेगा, दो चिट्ठिया लिखनी हैं।"

ज्योतिष को भी आवश्यक कागज-पत्र देखने थे, उनका भी बैठना सभव नही था, इसीलिए वे भी उठने-उठने की कह रहे थे। किन्तु सबके पहले उठ पडी सरोजिनी। इस बार जान पडा मानो उसने उपेन्द्र को कुछ कहना चाहा, किन्तु अन्त मे कुछ भी नही कहा, किसी को भी एक छोटा नमस्कार तक भी नही किया। अन्यमनस्क की भांति वह धीरे-धीरे बाहर चली गयी। आज की सभा जैसी जमने की बात थी, उस तरह वह जम नही सकी। किन्तु भग हो गयी और वह भी बुरी तरह।

उपेन्द्र न तो कुछ जानते ही थे, न वे कुछ जान सके।

सोलह

तीक्ष्ण बुद्धि किरणमयी पति की बीमारी के समय इन इने-गिने कई दिनो मे उपेन्द्र को आत्मीय भाव से अपने पास पाकर पहचान गयी। इससे उसकी स्वार्थ हानि की व्याकुल आशका ही समाप्त हो गयी, ऐसी बात नही, इस अपरिचित के प्रति एक गहरी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी जिसके भार से सारा हृदय जलभाराक्रान्त मेघ की तरह बरसने को प्रस्तुत हो गया। ऐसा आदमी उसने कभी देखा नही था। ऐसे आदमी के सम्पर्क मे आने के सौभाग्य की किसी दिन वह कल्पना भी न कर सकी थी। इसीलिए इस थोडे समय के परिचय से ही उसने अपने भविष्य के सभी सुख-दु:खो को इनके ही हाथ मे नि:शक होकर सौंप दिया, और निर्भय होकर निर्भर कर सकना किसे कहते हैं, इसको यही पहले-पहल अनुभव कर के उसका चिरकारारुद्ध प्राण मानो मुक्त-मार्ग का प्रकाश देख सका।

उपेन्द्र प्रात: से लेकर रात्रि तक मुमूर्षु की सेवा कर रहे थे। आवश्यकता की दृष्टि से इस सेवा का मूल्य नही था। क्योंकि हारान के जीवन की आशा तनिक भी नही थी—किन्तु इस सेवा ने किरणमयी की दृष्टि मे अपने पति के सूखे शरीर को भी बहुमूल्य बना दिया। इस अर्धमृत शरीर के लोभ से ही वह अकस्मात् व्याकुल हो उठी। इसके आचार-व्यवहार मे यह अचिन्तनीय परिवर्तन मृत्यु के किनारे खडे हारान ने भी लक्ष्य किया। बचपन मे किरण आत्मीय के घर मे पाली-पोसी गयी और बचपन मे ही उससे भी अधिक अनात्मीय पति के घर आयी थी। सास अघोरमयी ने उसका किसी दिन आदर-सत्कार नही किया, बल्कि जितना सभव हो सका, उतना ही कष्ट पहुचाती रही है। पति ने भी उसको एक दिन के लिए भी प्यार नही किया। वे दिन के समय स्कूल पढाते थे, रात को स्वय अध्ययन करते थे, और अपनी पत्नी को पढाया करते थे। विद्योपार्जन करने के नशे ने उनको ऐसा ग्रसित कर लिया था कि दोनो मे गुरु-शिष्य के कठोर सबध के अलावा पति-पत्नी के मधुर सबध का अवकाश ही नही मिला। इस प्रकार यह प्रखर बुद्धिशालिनी रमणी शैशव को पार कर के परिपूर्ण यौवन के बीच आ खडी हुई थी—इस प्रकार ससार के सौंदर्य-माधुर्य से निर्वासिता शुष्क तथा कठोर हो उठी थी, और ऐसे ही स्नेह से वचित होकर ही वह नारी के श्रेष्ठ धर्म को भी तिलाजलि देने को तैयार बैठी थी। अघोरमयी सब कुछ जानती थी। उनकी रूपवती वधू इन दिनो सती धर्म की भी पूरी मर्यादा पालन करके नही चलती, इस बात को वे जानती थी। किन्तु उनका पुत्र मृत्यु के मुख मे था, दु:ख के दिन प्राय: निकट थे, उसको ध्यान मे रखकर ही सभवत: वह वधू के आचार-व्यवहार की उपेक्षा करती रहती थी। जो डाक्टर हारान की चिकित्सा कर रहा था, वह किस

आज्ञा से दाम लिए बिना दवा-पथ्य जुटा रहा था, और क्यों उनकी गृहस्थी का आधा खर्च दे रहा था, यह बात उनसे छिपी नही थी। किन्तु मृत्यु पथ के राही पुत्र की चिकित्सा के सामने किसी अन्याय को ही बड़ा करके देखने का साहस उनको नहीं था, ऐसी शिक्षा भी उनकी नही थी। इसके अतिरिक्त वे पुत्रवधू को प्यार नही करती थीं। उपेन्द्र भी इसी जाल मे धीरे-धीरे बधता जा रहा है, उसका मुक्तहस्त अर्थव्यय और अक्लान्त सेवा का गुप्त रहस्य बाल्यावस्था की मित्रता को अतिक्रम करके चुपके मे एक-दूसरे स्थान मे मूल विस्तार कर रहा है, इस सबध मे उनको कोई शका नहीं थी। आपत्ति भी नही थी। कल से उपेन्द्र आया नही, यही बात अघोरमयी अपनी कोठरी की चौखट के बाहर बैठकर एक जीर्ण-शीर्ण मैला लिहाफ ओढे सोच रही थी।

जाडे का सूर्य तब तक भी अस्त नही था, लेकिन इस मकान के अन्दर अन्धकार की छाया पड चुकी थी। सूर्यदेव कब उगते हैं, कब अस्त हो जाते हैं अच्छे दिनो मे भी इसकी खबर इस मकान के लोग नही रखते थे, अब दु ख के दिनो मे उनके साथ प्राय समस्त सबध ही टूट गया था।

अघोरमयी ने पुकारा, "सध्या का दीया जलाकर एक बार यहा तो आओ बेटी। एक बात है।"

किरणमयी उन्ही के कमरे मे काम कर रही थी, बोली, "अभी तक सध्या नही हुई है मां, तुम्हारा बिछौना बिछाकर आती हू।"

अघोरमयी बोली, "मेरा और बिस्तर बिछाना। सोते समय मैं ही बिछा लूगी। नही, नही, तुम जाओ बेटी, दीया जलाकर जरा ठण्डी होकर बैठो। दिन-रात काम करते-करते तुम्हारा शरीर आधा हो गया, उस ओर भी जरा नजर रखना जरूरी है बेटी।" यह कहकर लम्बी सास लेकर वे चुप हो रही। थोडी ही देर बाद बहू निकट आकर बैठने लगी, तो वे रोककर बोली, "पहले दियाबत्ती. ।"

बहू ने शात भाव से कहा, "तुम क्यो घबरा रही हो मा, सध्या होने मे अभी बहुत देर है।"

अघोरमयी बोली, "होने दो—नीचे तो अधेरा है—जरा दिन रहते ही सीढी की बत्ती जला देना अच्छा है। इसी समय शायद उपेन आ जाएगा, कल से वह आया नही—क्यो बहू, अभी तक तुम्हारा शरीर धोना, बाल बाधना तक भी हुआ नही है, देख रही हू—क्या कर रही है इतनी देर तक?"

सास के कण्ठ-स्वर मे अकस्मात् विरक्ति का आभास देखकर आश्चर्य मे पडी बहू क्षणभर उनके मुह की तरफ देखती रही, फिर जरा हसकर बोली, "मै रोज इस समय किसी दिन हाथ-मुह धोती हू या कपड़ा बदलती हू मा? अभी तो मेरा रसोईघर का काम ही नही खतम हो पाता। उसके बाद. ।"

सास कुछ नाराज होकर बोल उठीं, "बाद का काम उसके बाद होगा बेटी, अभी मैं जो कहती हू उसे करो।"

बहू ने जाने को तैयार होकर कहा, "जा रही हू, दीया जलाकर तुम्हारे पास ही आकर बैठती हू।"

अघोरमयी खीझ उठी, बोली, "मेरे पास अभी झूठ-मूठ बैठने से क्या होगा बेटी! काम पहले है, या बैठना पहले है? दिन पर दिन तुम कैसी होती जा रही हो बहू?"

उसका स्नेह हठात् तिरस्कार का आकार धारण करने के साथ ही ये बाते अत्यन्त कठोर और रूखी होकर सभी के कानो मे जाकर बिंध गयी। उसने भी क्रोध करके उत्तर दिया, "तुम लोग ही मुझे कैसी बनाती जा रही हो, मा! हर समय उलटी-सीधी बाते कहते रहने से मानना तो चूल्हे मे जाए, समझी भी तो नही जाती। क्या कहना चाहती हो तुम स्पष्ट ही कहो न!" यह कहकर उत्तर के लिए क्षणभर भी प्रतीक्षा न करके वह शीघ्रता से चली गयी। बहू का तेजी से चला जाना क्या है, इसे इस घर के सभी समझते थे। अघोरमयी भी समझ गयी।

किरणमयी नीचे-ऊपर दीपक जलाकर अपनी सास के कमरे मे जब दीया जलाने आयी, तब सास रो रही थी। उनको रुलाई जब जैसे-तैसे कारणो मे ही फूट पडती थी।

किरणमयी ठिठककर खडी होकर बोली, "तुम्हारी हरिनाम की माला ला दू मा।"

सास लिहाफ के कोने से आखे पोछकर रुआसे स्वर मे बोली, 'ले आओ।"

वह कमरे मे जाकर दीवाल पर टगी माला की झोली उतारकर ले आई और सास के हाथ मे देने लगी तो उन्होने झोली न लेकर बहू का हाथ पकड लिया। "जरा बैठो बेटी," कहकर खीचकर अपने पास

बैठाकर उसके मुह पर, ललाट पर, माथे पर सहला दिया। ठोडी छूकर चुम्बन किया और बडी देर तक
कुछ भी न कहकर रोने लगी। किरणमयी खडी होकर बैठी यह सब स्नेहाभिनय सहती रही।
थोडी ही देर बाद अघोरमयी ने फिर एक बार लिहाफ के कोने ले आंखो के आसू पोछकर कहा,
''शोक मे तप्त मैं पागल हो गयी हू, मेरी एक साधारण सी बात पर तुमने क्रोध क्यो किया, बताओ तो
बेटी?''
किरण ने अविचलित भाव से कहा, ''शोक-ताप तुम्हारे अकेले का नही है मा। हम लोग भी मनुष्य
हैं, उसे भूलकर एक ही बात कह देना ही तो यथेष्ट है, नहीं तो हजार बातो से क्रोध नही होता।''
अघोरमयी ने आखे पोछते-पोछते कहा, ''इस बात को क्या मैं नहीं जानती बेटी, जानती हू किन्तु
मेरा एक-एक करके सब कुछ ही चला गया। अब तुम ही सब हो, तुम ही मेरी लडके-लडकी हो। हारान
के शोक से यदि छाती कडी रख सकूंगी तो तुम्हारा मुह देखकर ही रख सकूगी।'' यह कहकर फिर एक
बार लिहाफ आखो पर रखकर वे रोने लगी। किन्तु इस छलना से किरण भुलावे मे नही पडी। वह मन ही
मन जल उठने पर भी शात भाव से बोली, ''तुम किस तरह छाती कडी करोगी, इसको तुमने अभी से
ठीक कर रखा है, किन्तु मैं कैसे छाती कडी करूगी, इस पर तो तुमने सोचा नही है मा! फिर यह भी कहती
हू ये सब बाते इस समय क्यो? जब सचमुच ही छाती कडी करने का दिन आएगा तब समय की
खींचा-तानी नही होगी, वह समय इतना थोडा सा नही आता मा, कि पहले से तैयार न होने से समय ही
नही मिलता।

बहू की बाते मधुर न लगने पर भी इनके भीतर कितना व्यंग्य छिपा हुआ था, अघोरमयी यह न जान
सकी। बल्कि वे बोली, ''समय आने मे देर ही क्या है बेटी, उपेन उस दिन जिस डाक्टर को ले आये थे, वे
अच्छी बाते कुछ भी नही कह गये। मैं केवल यही कहती हू बेटी, उपेन यदि उस समय न आ जाता, तो
उस दशा मे हम लोगो की कैसी दुर्दशा होती।''

वह चुप रहकर सुन रही है देखकर वे उत्साहित होकर कहने लगी, ''उस को लडकपन से ही मैं
जानती हू। नोआखाली में वे दोनो भाइयो की तरह मेरे पास आते-जाते थे—तभी से मौसी कहकर
पुकारता है। जैसे बडे आदमी का लडका है वैसे स्वय भी यह बडा उदार हो गया है। उस दिन मुझे रोते
देखकर बोला—'मौसी, मुझे हारान भैया का छोटा भाई ही समझ रखना, इससे अधिक कहने की बात मेरे
पास कुछ भी नही है।' मैंने कहा, 'बेटा मुझे किसी तीर्थस्थान मे छोड आना। जो इने-गिने दिन जीवित
रहूगी, मैं गगा स्नान करते-करते गगा माई की गोद मे जाकर अपने हारान के पास रह सकू।''

फिर वह बोल न सकी। इस बार वह व्याकुल होकर रो पडी। बहू चुप हो गई थी, चुप ही रह गई। वे
कुछ देर तक रोकर छाती का भार हलका करके अन्त मे आखे पोछकर गीले स्वर से बोली, ''रह-रहकर
यही बात मन मे उठ जाती है कि वह याद नही आता तो—नीचे कोई पुकार रहा है क्या बेटी?''

बहू ने कहा, ''नीचे दासी बरतन माज रही है, किसी के बुलाने पर दरवाजा खोल देगी।''

सास ने घबराकर कहा, ''नही नही बहू, तुम भी जाओ। जब दासी काम मे लगी रहती है तब वह
कुछ भी नही सुनती।''

किरण कुछ भी उद्वेग प्रकट न करके धीरे से बोली, ''मुझे भी काम है मा, रसोई पकाना . .।''

अघोरमयी अकस्मात् भडक उठी, बोली, ''रसोई तो कही भागी नही जा रही है बेटी। तुम क्यो नही
समझती?''

किरण उठ खडी हुई, बोली, ''मुझे समझने की जरूरत भी नही है। अपने सभी लोगो के चले जाने
पर भी यदि हमारे दिन बीते हैं तो उपेन बाबू के न रहने पर भी काम न रुकेगा।'' कहकर रसोईघर की
ओर वह चली गयी।

अघोरमयी क्रोध से बाते न कह सकी और जितनी देर तक बहू दिखाई पडती रही, उतनी देर तक
उनके जलते हुए दोनो नेत्र मानो उसे ठेलकर विदा करते रहे। इसके बाद अत्यन्त क्रोध के साथ दासी को
पुकारने लगी। उसकी भी आहट नही मिली। वह शीत के भय से सध्या के पहले खन्-खन्, झन्-झन्
शब्द करके बरतन माजने-धोने का काम समाप्त कर रही थी, उसका क्रुद्ध आह्वान उसे सुनाई नही

पडा। तव अपने कमरे का दीपक हाथ में लेकर बरामदे के पास आकर चिल्लाकर वे बोलीं, "तूने क्या अपने कानो मे रूई ठूस ली है? क्या तुझे सुनाई नही पडता कि उपेन बाबू एक घंटे मे खड़े बाहर पुकार रहे हैं।"

यह भयकर आरोप दासी ने सुन लिया और उपेन का नाम सुनकर उठ पड़ी। दौडती हुई जाकर उसने किवाड खोल दिया, लेकिन कोई भी नही था। बाहर गर्दन बढ़ाकर अन्धकार मे जितनी दूर दिखाई पडा अच्छी प्रकार देखने पर भी किसी को न देख पाने पर वापस आकर बोली, "कोई भी तो नही है मा।"

अघोरमयी दीपक हाथ मे लिए उद्विग्न होकर प्रतीक्षा कर रही थीं। अविश्वास करके बोलीं, "नही क्या रे! मैंने तो अपने ही कानों से उनकी पुकार सुनी है, तूने गली में जाकर एक बार देखा क्यों नहीं?"

दासी ने कहा, "मैंने देखा है, कोई नही है।"

यह बात विश्वास करने के योग्य नहीं थी। उपेन कल आया नही तो क्या आज भी नही आएगा? इसीलिए खीझकर बोली, तू जा, फिर एक बार अच्छी तरह देख आ, कोई है या नही?"

बाहर अंधेरी गली में दासी को जाने मे आपत्ति थी। उसने भी खीझकर उत्तर दिया, "तुम्हारी यह कैसी बात है मा! वह क्या आखमिचौनी खेल रहे हैं कि अंधेरी गली मे जाकर हाथ से टटोलना पडेगा?" यह कहकर वह काम मे लग गयी।

अघोरमयी अपने कमरे मे वापस आकर निर्जीव की भांति बिछौने पर लेट गयी। बीमार लडके का समाचार जानने का उत्साह भी उनको नही रहा। उन को बार-बार केवल यही ख्याल होने लगा कि, वह कल आया ही नही, आज भी नही आया। संभव-असभव तरह-तरह के कारणो को ढूढ़ने में यह बात उनके मन मे एक भी नही आयी कि वह कलकत्तावासी नही है, अन्यत्र उसका घर-बार और आत्मीय स्वजन हैं, वहा लौट जाना भी सभव है। सोचते-सोचते एकाएक उनको ख्याल आया कि अप्रसन्न तो नही हो गया। इस बात को दुहराने के साथ ही उनका हृदय आशका से भर गया, और बहू के पलभर पहले के आचरण के साथ मन ही मन मिलाकर देखते ही उसका सदेह दृढ़ हो गया—"ऐसी ही तो बात है। बहू यदि अव . वह फिर लेटी न रह सकी, उठकर रसोईघर की तरफ चली गयी।"

किरणमयी जलते हुए चूल्हे की ओर निहारती हुई चुपचाप बैठी हुई थी। जलते हुए अगारे की लाल आभा का अत्यधिक प्रकाश उसके मुख पर पड रहा था। माथे पर कपडा नही था। आज उसने बाल भी बाधे नही थे, इधर-उधर बिखरे हुए केशों को किसी तरह ठीक कर रखा था।

अघोरमयी दरवाजे के सामने अवाक् होकर खडी रही। आज जो वस्तु उनकी दृष्टि मे पडी, उसको सम्पूर्ण रूप से हृदयगम करने की सामर्थ्य उनकी नही थी। जिस स्तब्ध मुखमण्डल पर चूल्हे की लाल आभा से युक्त प्रकाश विचित्र तरगो की भांति खेलता हुआ घूम रहा था, वह मुह उनकी समस्त अभिज्ञता के बाहर था, इस मुख मे कोई त्रुटि है या नही इसकी आलोचना नही चल सकती। निर्दोष भी इसे नही कहा जा सकता। यह तो आश्चर्यजनक है। इसको पहले कभी नही देखा है—यह आश्चर्य है। निर्निमेष दृष्टि से बडी देरतक देखते रहने पर भी हठात् उनके मुह से लम्बी सांस निकल पडी।

उस शब्द से चौंककर बहू ने देखा, सास खडी हैं। गिरे हुए आचल को माथे पर खीचकर उसने कहा, "तुम यहा क्यों मा?"

कण्ठस्वर सुनकर वे और भी चौंक पडी। ऐसा शात, ऐसा करूण कण्ठ-स्वर उन्होने पहले कभी नही सुना था। झट बोल उठी, "तुम अकेली ही रसोई पका रही हो बेटी, इसीलिए जरा बैठने के लिए आयी हू।"

बहू उनकी ओर पीढ़ा ठेलकर चूल्हे की तरफ देखती हुई चुप हो रही। उसके मन मे फिर झुझलाहट सिर उठाकर खडी हो गयी। गध जिस तरह हवा का आश्रय ग्रहण करके फूल के बाहर चली आती है, किन्तु आधी मे उड जाती है, किरणमयी का तत्कालीन मनोभाव सास के आकस्मिक आगमन से उसी तरह क्षणभर मे बाहर आने के साथ ही इस पद्म स्नेह के तूफान से उड गया। यह सत्य नही है—भद्दी प्रतारणा मात्र है। किन्तु झगडा करना उसको अच्छा नही लग रहा था। निरन्तर झगडा करके वह सचमुच ही थक गयी थी।

कुछ देर तक स्थिर रहकर अघोरमयी बोली, "दासी को बुला दू?"

किरणमयी अन्दर के समस्त विद्रोह को रोककर शात भाव से बोली, "क्या आवश्यकता है मा। मैं नित्य ही अकेली रसोई पकाती हू—अकेली रहने का मेरा स्वभाव हो गया है, बल्कि वह कमरे मे अकेले पडे हैं—उनके पास जा कर कोई बैठता तो अच्छा होता।"

बीमार सतान का उल्लेख होने से जननी आघात पाकर व्यग्र होकर बोली—"तो मैं जाती हू, तुम भी जल्दी ही काम पूरा करके आ जाना बेटी।"

इस बीच ही उपेन्द्र अपने घर चले गये थे, सतीश भी केवल एक ही दिन उपेन्द्र के साथ हारान को देखने आया था—फिर नही आया—वह अपनी व्यथा लेकर ही घबराहट मे पडा था। उपेन्द्र ने उसका अन्यमनस्क भाव तथा इस घर मे न आने की इच्छा जानकर उस को फिर नहीं बुलाया, चिकित्सा और अन्यान्या व्यवस्थाए वह स्वयं ही कर रहे थे। केवल कलकत्ता छोडकर घर लौट जाने के दिन सतीश को बुलाकर बीच-बीच मे खबर लेते रहने और उनको पत्र लिखकर समाचार भेजने का अनुरोध करके चले गये थे। आज स्कूल मे लौटते ही सतीश को उपेन्द्र का पत्र मिला। उन्होने लिखा है, "मुझे आशा है, तुम्हारी पढाई अच्छी तरह चल रही है। कई दिनो से हारान भैया का समाचार न मिलने से चिन्तित हू। यद्यपि मैं जानता हू, समाचार देने की आवश्यकता ही नही हुई, इसलिए तुमने नही दिया, तथापि उनकी चिकित्सा कैसी हो रही है, लिखना।"

सतीश की पीठ पर मानो कोडे की मार पडी। उसने एक दिन भी जाकर खोज-खबर नही ली। इस बीच उस घर मे कितनी ही घटनाएं घटित हो सकती हैं, तो भी उसके ही ऊपर निर्भर रहकर उपेन भैया घर चले गये हैं। वह शीघ्रता से नीचे उतर गया। बिहारी जलपान ला रहा था, धक्का खाकर उसकी थाली और गिलास गिर पड़ा। सतीश ने घूमकर देखा ही नही। मार्ग में आकर एक खाली गाडी पर चढ़ बैठा और तेज चलाने का अनुरोध करके मार्ग की ओर सर्तक होकर देखता रहा। उसको भय था कि कही पहचान मे न आने से गली छूट न जाय। बीस मिनट के बाद, जब छोटी सी गली मे पहुँचा, तब तक भी दिन का प्रकाश शेष था, पैरो के नीचे खुला पनाला और चलने का रास्ता था और ऊपर आकाश और प्रकाश तब तक भी मिलकर एक नहीं हुए थे। तेज कदम बढ़ाकर १३ नम्बर के मकान के सामने पहुचते ही किवाड खुल गये। कोई मानो उसके ही लिए प्रतीक्षा कर रहा था।

सतीश का हृदय काप उठा, एकाएक वह प्रवेश न कर सका।

द्वार के निकट ही किरणमयी खडी थी। उसने अपना हसता हुआ मुख जरा बाहर निकालकर अत्यन्त आदर से कहा, "आओ बबुआजी, खड़े क्यो हो?"

फिर वही बबुआजी। लज्जा से सतीश का मुख लाल हो गया। लेकिन उसी क्षण सभलकर वह विनीत भाव से बोला, "लगता है, आपने अभी तक मुझे क्षमा नही किया।"

किरणमयी ने कहा, "नही, तुमने तो क्षमा मागी नही। मागने के पहले ही अपनी ही इच्छा से देने से मानो लोगो को मानहानि होती है। मानहानि करने योग्य कम दाम की वस्तु तो तुम हो नही बबुआजी।"

उसके इस प्रसन्न रहस्यपूर्ण वार्तालाप के बीच भी ऐसी एक गभीर करुणा स्पष्ट हो उठी कि, सतीश ने मुह झुका गभीर कण्ठ से कहा, "मेरा कुछ भी दाम नही है भाभीजी। मेरी कोई मानहानि न होगी—मुझे आप क्षमा करे।"

किरणमयी हंसकर बोली, "ऐसी बहुत-सी बाते हैं बबुआजी, जिनको क्षमा करने से ही वे समाप्त हो जाती हैं। आज तुमको माफ करने पर यदि फिर सतीश बाबू कहकर पुकारना पडे तो उस दशा मे यह मैं कहे देती हू बबुआजी, वह क्षमा तुम पाओगे नही। अपने को पकड़ रखने की वही जो थोडी-सी जजीर तुममें स्वय अपने हाथो से उठाकर दे दी है, उसको अपनी मीठी-मीठी बातो से भुलावे मे डालकर वापस ले लोगे, उतनी मूर्ख यह भाभी नही है।" यह कहकर उस ने विशेष रूप से गरदन हिला दी। लेकिन सतीश चौंक उठा। यह जजीर बाधने कसने की उपमा उसे जची नही। वरन् हठात्, उसे मालूम हुआ,

उसको असावधान पाकर यह लडकी सचमुच ही कोई कडी जजीर उनके पैरो मे बाँध रही है और क्षणभर मे उसकी समस्त सहज बुद्धि आत्मरक्षा के लिए सजधज कर खडी हो गयी। घर मे प्रवेश करते समय उसकी आखो मे जो दृष्टि कर्तव्यभ्रष्टता के धिक्कार से कुण्ठित और लज्जा से विनम्र दिखाई पडी थी, धक्का खाकर वह सन्दिग्ध और तीव्र हो उठी।

किरणमयी ने कहा, "तुम्हारा मुह सूख गया है बबुआजी, शायद अभी तक तुमने जलपान भी नही किया है? आओ, ऊपर चलो, कुछ खा लो।"

सतीश कुछ भी न कहकर निमत्रण खाने को तैयार हो गया। इस सारे रहस्य-कौतुक मे कितना रहस्य है और कितना नही, इस पर मन ही मन विचार करते हुए वह किरणमयी के पीछे चल पडा।

ऊपर चढकर बहू ने इधर-उधर देखकर कहा, "आज दासी को साथ लेकर मा काली घाट गयी है। रसोईघर मे बैठकर तुम मेरी पूडिया बेल देना, मैं छान लूगी। बेल सकोगे तो?" यह कहकर वह हस पडी। बोली, बेल सकोगे, यह तो तुमको देखने से ही ज्ञात होता है--आओ।"

सतीश ने अपने हृदय के द्वन्द्व को रोककर भले आदमी की तरह प्रश्न किया, "पूडी बेल सकता हू, यह बात क्या मेरे शरीर पर लिखी है, भाभीजी?"

किरणमयी बोली, "लिखावट पढने की जानकारी रहनी चाहिए। उस रात मेरे शरीर पर ही क्या कुछ लिखा था—जिसे तुम पढ गये थे।"

सतीश ने फिर मुह झुका लिया। उसके बाद दोनो मिलकर जब भोजन बनाने लग गये और इस सघर्ष की गरमी बहुत कुछ ठण्डी हो चली तब किरणमयी ने पूछा, "तुम्हारे बारे मे बहुत-सी बाते तुम्हारे उपेन भैया के मुह से मैं सुन चुकी हू। अच्छा, बबुआजी, वह इस समय यहा नही है, शायद घर लौट गये हैं?"

सतीश के हा कहने पर किरणमयी ने कहा, 'वह यहा नहीं है, लेकिन मा विश्वास करना नही चाहती। मा कहती हैं, उनको बिना बताये उपेन बाबू न जायेगे—उनको शायद एकाएक चला जाना पडा है।"

सतीश को इस बात की ठीक-ठीक जानकारी नही थी। वस्तुत उसे कुछ भी ज्ञात नही था। इस बीच इन लोगो के कारण ही दोनो मित्रो मे जो अप्रिय बाते हो चुकी है, वे भी कही नही जा सकती--सतीश चुप हो रहा। न कहकर चले जाने का कारण क्या है, इसका वह किसी तरह भी अनुमान न कर सका। लेकिन किरणमयी ने बात को दबाने नही दिया, बोली, "यह काम तुम्हारे भैया का अच्छा नही हुआ बबुआजी। कहकर जाने से कोई उनको पकडकर नही रखता, फिर भी मा इस तरह चिन्तित होकर विकल नही होती। मैं किसी भी तरह उनको समझा नही सकती कि उपेन बाबू बराबर यहा नही रहते, अन्यत्र उनका घर-द्वार है, काम-काज है, यह सब छोडकर कोई मनुष्य कितने दिन दूसरे का दुर्भाग्य लेकर रुका रह सकता है? लेकिन बूढी मा के सामने युक्ति नही चलती। अपनी आवश्यकता के सामने ससार मे वह कुछ देख नही सकती।"

सतीश उस बात का ठीक-ठीक उत्तर न देकर बोला, "उपेन भैया इतने दिन बाहर थे, यही तो आश्चर्य है। कही भी अधिक दिन रहने का उनका स्वभाव नही है। विशेषत ब्याह के बाद से एक रात भी कही रखने के लिए हमे सिर पटकना-फोडना पडता है। पहले सभी विषयो मे वह हम लोगो के स्वामी थे, अब एक-एक करके सब छोडकर घर के कोने मे जा छिपे हैं—कचहरी मे बिल्कुल ही न जाने से काम नही चलता, इसीलिए शायद, एक बार चले जाते हैं। यही एक बार देखिए न—।

बहू ने बाधा देकर कहा, "बैठो बबुआजी, तुम्हारे लिए खाने की जगह ठीक कर दू तो बैठू। तुम खाते-खाते बाते करोगे, वह अच्छा होगा।" यह कहकर आसन बिछाकर थाली मे खाने की चीजे सजाकर वह पास बैठ गयी और अत्यन्त आग्रह के साथ बोली, "उसके बाद?"

सतीश पूडी का एक टुकडा मुह मे डालकर बोला, "वह एक विवाह कराने के लिए बारात मे जाने की बात है भाभीजी। उपेन भैया बडे अगुआ हैं--कितने लोगो के ब्याह उन्होने कराये हैं, इसका ठिकाना नही है। हम लोगो के दल के ही एक लडके का ब्याह था, अगुआई से आरम्भ करके सारा

उद्योग-आयोजन उपेन भैया ने अपने हाथो किया। फिर भी, व्याह की रात को भैया को देखा नही गया। 'छोटी बहू की तबीयत ठीक नही है' कहकर किसी तरह भी घर से बाहर नही निकले। ओह! हम सभी लोगो ने मिलकर कितना अनुरोध किया भाभीजी! लेकिन कुछ भी फल नही हुआ। पत्थर के देवता से वरदान मिल गया होता, लेकिन अपने भैया को सहमत नही किया जा सका। 'मै अच्छी तरह हू' कहकर छोटी बहू ने स्वय अनुरोध किया तो बोले, तुम्हारे भले-बुरे का विचार करने का भार मेरे ऊपर है, तुम्हारे ऊपर नही, तुम चुप रहो।"

किरणमयी मौन होकर बैठी रही। उसका समस्त अतीत जीवन उसके ही अधकार अन्तस्तल मे उतरकर टटोलकर न जाने किसको ढूढता हुआ घूमने लगा। लेकिन सतीश कुछ न समझ सका। कौन कहानी कहा किस तरह जा लगती है, उसकी खबर क्या वह रखता है! वह कहने लगा, "इस अनुपस्थिति से किसने किस तरह निन्दा की, किसने क्या कहकर उपहास किया था, कितना आनन्द चौपट हो गया था, यह सब।"

लेकिन श्रोता कहा था? इस तुच्छ कहानी मे तो किरणमयी तब बहुत दूर चली गयी थी।

एकाएक सतीश ने पूडी खाना और कहानी सुनाना बन्द करके पूछा, "आप सुन रही हैं या कुछ सोच रही हैं?"

किरणमयी चकित होकर हसकर बोली, "सुनती तो अवश्य हू बबुआ। लेकिन मै कहती हू, बीमारी-तकलीफ मे सेवा करना ही तो अच्छा है।"

सतीश ने उत्तेजित होकर कहा, "अच्छा है, लेकिन यह ज्यादती करना क्या अच्छा है? उस बार जब छोटी बहू को छोटी माता निकल पडी थी, उपेन भैया आठ-दस दिन उनके सिरहाने से न उठे। घर मे इतने लोग हैं, उनको नहाना-खाना बन्द करने की क्या आवश्यकता थी?"

किरणमयी ने क्षणभर उसके मुख की ओर चुपचाप देखते रहकर पूछा, "अच्छा बबुआजी, तुम्हारे उपेन भैया क्या छोटी बहू को बहुत ही प्यार करते हैं?"

सतीश बोला "ओह! बहुत अधिक प्यार करते हैं।"

किरणमयी फिर कुछ देर तक चुप रहकर ताकती रही, बोली, "छोटी बहू देखने मे कैसी हैं बबुआजी? अत्यन्त सुन्दरी हैं?"

"हा, अत्यन्त सुन्दरी।"

किरणमयी ने मुसकराकर कहा, "मेरी तरह?"

सतीश मुह झुकाये रहा। क्षणभर बाद कुछ सोचकर मुह ऊपर उठाकर उसने पूछा, "आप क्या यह बात सचमुच ही जान लेना चाहती हैं?"

"सचमुच ही बबुआजी।"

सतीश बोला, "देखिए, मेरे मतामत का अधिक मूल्य नही है, लेकिन अगर कहना ही हो तो उस दशा मे मैं यही कह सकता हू, आपकी तरह सुन्दरता शायद इस ससार में नही है।"

किरणमयी कोई एक उत्तर देने जा रही थी, लेकिन ठीक उसी समय नीचे चिल्लाहट की आवाज से उठ पडी। मा वापस आ गयी थी।

सतीश अपना जलपान समाप्त कर ज्योही बाहर आया, त्योही अघोरमयी के सामने पड गया। उन्होने सतीश के मुह की ओर देखकर बहू से पूछा, "यह उपेन के भाई हैं न बहू? वह कहा है?"

किरणमयी बोली, "वह अपने घर चले गये।"

अघोरमयी सक्षेप मे 'अच्छा' कहकर अपना सिन्दूर-चन्दन चर्चित मुह स्याह बनाकर अपने लडके के कमरे मे चली गयी।

सतीश ने कहा, "तो मैं अब जाता हू भाभीजी।"

किरणमयी अन्यमनस्क भाव से बोली, "जाओ।"

सतीश दो-एक कदम जाकर ही लौटकर बोला, "उपेन भैया ने पत्र भेजा है। उन्होने पूछा है, हारान भैया की चिकित्सा कैसी चल रही है?"

किरणमयी बोली, "चिकित्सा बन्द है। जो डाक्टर चिकित्सा कर रहा था, उनसे कराने की राय नही है, लेकिन, राय क्या है, यह भी बताकर नही गये हैं।"

सतीश आश्चर्य मे पडकर बोला, "यह कैसी बात! चिकित्सा बिल्कुल ही बन्द करके बैठी हुई हैं—यह कैसी व्यवस्था है?"

"व्यवस्था न करके ही वह चले गये। मुझे मालूम हो रहा है, मानो एक बार उन्होने कहा था, सतीश यही रहता है, वही व्यवस्था करेगा—पर तुम भी तो नही आते बबुआजी!"

सतीश क्षणभर अवाक् होकर खडा रहा, बोला, "कल सवेरे ही आऊगा।" कहकर वह शीघ्रता से बाहर चला गया।

सतीश के जाने के बाद किरणमयी पति के कमरे के दरवाजे को जरा-सा खोलकर भीतर की ओर देखा—वे एक मोटी तकिया के सहारे लेटे मा से बाते कर रहे हैं। आज भी उन्हे बुखार नही आया है, यह समाचार लेकर वह वापस आ गयी। बाहर अधेरे मे बैठकर अपूर्व ममता के साथ इस बात को लेकर आत्ममग्न हो गयी। आज सतीश की जबानी उपेन्द्र के अध पतन का इतिहास ने उसके हृदय मे माधुर्य भर दिया था, इसीलिए आज जो कुछ यहा आ गया, वही मधुर बनकर किरणमयी को अनिवर्चनीय रस में स्निग्ध करने लगा।

सत्रह

उस रात सतीश के चले जाने पर बडी देर तक किरणमयी अधेरे बरामदे में चुपचाप बैठी रही। अन्त मे उठकर रसोईघर मे जाकर, रसोई चढाकर फिर स्तब्ध होकर बैठी रही।

उसके हृदय मे आज सतीश अपने अनजाने मे सुरबाला आदि अपरिचित नर-नारियो का दल लाकर यह जो एक अद्भुत नाटक का अस्पष्ट नाटक आरम्भ करके चला गया,सूने कमरे मे अकेली बैठकर उसको स्पष्ट रूप से देखने का लोभ एक ओर किरणमयी को जैसा प्रबल हो उठा दूसरी ओर कोई अनिश्चित आशका उसके हाथ-पैर, नेत्रो की दृष्टि को उसी प्रकार भारी बनाने लगा। उसे ऐसा जान पडा मानो अधेरी रात के भूत की कहानी की भाति यह सस्मरण उसको लगातार एक हाथ से खीचने और दूसरे हाथ से ठेलने लगा। इसी प्रकार विचित्र स्वप्नजाल मे पडी हुई वह जब अत्यन्त अभिभूत हो रही थी, उसी समय जूते की आवाज सुनकर चौंककर निगाह दौडाते ही उसने देखा, दरवाजे के बाहर ही डाक्टर अनगमोहन खडे हैं।

किरणमयी माथे के कपडे को थोडा-सा खीचकर उठ खडी हुई। डाक्टर ने यह देखकर भौंहे तान ली।

इसके पूर्व यह डाक्टर ठीक इसी स्थान पर अनेक बार आकर खडे हुए हैं और उसके कर-कमलो की बनी रसोई के लोभ से अतिथि बनने का आवेदन करके कई बार हसी-मजाक कर गये हैं। उसी पुरातन इतिहास की पुनरावृत्ति की कल्पना करके ही किरणमयी का चित्त तिक्त हो उठा। वह कठोर बनकर उसी की प्रतीक्षा करके खडी रही। लेकिन डाक्टर ने मजाक नही किया, क्रुद्ध गभीर मुह से कुछ देर तक चुप रहकर कहा, "दस-बारह दिन मुझे बाहर रहना पडा, इसलिए हारान बाबू के लिए मै बहुत ही चिन्तित हो गया था, लेकिन आकर देख रहा हू, उद्वेग का कुछ भी कारण नही था।"

किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, "नही, वह अच्छी तरह ही थे।"

"अच्छी तरह रहे वही अच्छा है। अब तो मेरी कोई आवश्यकता है नही? क्या राय है?"

किरणमयी ने इसके उत्तर मे गरदन हिलाकर कहा, "नही।"

डाक्टर ने कहा, "तुम लोगो को मेरी आवश्यकता न रहने पर भी मेरी आवश्यकता अभी तक समाप्त नही हुई। यही बात कहने के लिए मुझे इतनी दूर आना पडा है।"

किरणमयी ने मुह न उठाकर ही धीरे-धीरे कहा, "अच्छी बात तो है, मा अभी तक जाग रही हैं,

उनसे कह देना जरूरी है—मुझसे कहना बेकार है।"

डाक्टर ने अपने मुह को अत्यन्त गभीर बनाकर कहा, "मैं उनके पास से ही आ रहा हू, उनका भी कहना है, जरूरत नही है। जरूरत खत्म हो गयी है, यह मैं भी समझ गया हू, लेकिन 'डाक्टर की बिदाई' एक कहावत है, उसको भूल जाने से काम नही चलना।"

किरणमयी चुप हो रही।

डाक्टर व्यग्य करके कहने लगे, "आज पाच-छ महीने के बाद यह भार तुम ही लोगी, अथवा तुम्हारी सास ही लेगी, यह तुम लोगो की आपसी बात है। किन्तु 'जाओ' कह देने से ही तो डाक्टर नही चला जाता किरण।"

डाक्टर के मुह से अपना नाम सुनकर आज वह मानो उसको तीर की भाति बीध गया। वह इस तरह सिहर उठी कि उस क्षीण प्रकाश मे भी डाक्टर ने उसे देख लिया।

किरणमयी ने मधुर कण्ठ से पूछा, "क्या चाहते हैं आप, रुपया?"

डाक्टर ने हसी का बहाना दिखाकर कहा, "'आप' क्यो कहती हो? यहा और कोई उपस्थित नही है, 'तुम' कहने में भी दोष नही होगा। लेकिन इतने दिनो तक मैं क्या मागता रहा हू, सुनू? क्या वह रुपया था?"

पुन किरणमयी का समूचा शरीर कण्टकित हो उठा।

डाक्टर बोले, "रुपया नही चाहता यह बात कहना बहुत कठिन है। अब तुमको जबकि उसका अभाव नही है, तब रुपया देकर ही विदा कर दो। मैं दोनो ही ओर से ठगे जाने को राजी नही हू। लेकिन तुमको इतने दिनो मे मेरे मन की बात ज्ञात हो गयी है, इसके लिए मैं तुमको धन्यवाद देता हू। आज अब मैं ज्यादा तग न करूगा। क्या मैं कल एक बार आ सकता हू?"

यह मनुष्य भीतर ही भीतर किस तरह जल रहा था और यह सब उसका ही फेका उत्तप्त भस्मावशेष है, इसे निश्चित समझकर भी किरणमयी ने शान्त दृढ स्वर में मुह ऊपर उठाकर कहा, "नही। आप ठहरिए, मैं इसी समय ला देती हू।" कहकर पास का दरवाजा खोलकर वह शीघ्रता से चली गयी।

इस बार डाक्टर शकित हो उठे। किरण को वे पहचानते थे। कहा क्या लेने के लिए गयी है, हठात् इतनी रात को कैसा एक असभव काण्ड कर कहा का हगामा कहा खीच लाएगी! वह चोट खाकर गयी है, लौटकर निर्दय प्रतिघात अवश्य करेगी। उसके सुनिश्चित प्रतिशोध की कठोरता की कल्पना कर अनगमोहन आशका से स्तम्भित हो रहा।

किरणमयी को लौट आने मे विलम्ब नही हुआ। उसने चुपचाप मुह झुकाए आचल मे बधे हुए कुछ आभूषण डाक्टर के पैरो के निकट बिखेरकर धीरे-धीरे कहा, "यह ले लीजिए, आपका पावना कितना है, उसका हिसाब इतने दिनो के बाद करना व्यर्थ है। इतना समय भी मेरे पास नही है, धीरज भी न रहेगा-जो कुछ मेरे पास था, सब ही आपको लाकर मैंने दे दिया है, इसी को लेकर हमे छुटकारा दीजिए—आप जाइए।"

अनग चुप हो रहे। किरण ने कहा, "देर कर रहे हैं किसलिए? विश्वास कीजिए, मेरे पास और कुछ भी नही है। जो कुछ था, सब लाकर मैंने दे दिया है—रात हो रही है, आप विदा होकर जाइए।"

अनग भयग्रस्त होकर बोले, "मैंने तो तुम्हारे शरीर के गहने मागे नही—केवल रुपया मागा था। वह भी "

किरण अत्यन्त उग्र भाव से बोली, "गहने भी रुपये हैं, यह बात समझने की उमर आपकी हो गयी हैं। व्यर्थ ही बहाना करके क्यो झूठमूठ देर कर रहे हैं!"

इस बार अनग जोर से सिर हिलाकर बोल उठे, "नही, मैं किसी तरह भी यह सब न ले सकूगा।"

किरणमयी निकट ही बैठ गयी थी, विद्युत वेग से उठ खडी हुई और बोली, "क्या? क्यो न ले सकेगे? आप दया कर रहे हैं किस पर? आपको जो कुछ मैंने दिया, उसे किसी तरह भी मैं वापस न ले सकूगी, यह बात मैं निश्चित रूप से कहे देती हू।" एक क्षण मौन रहकर उसने कहा, "आप यदि न भी लेंगे तो कल यह सब ही गरीबो मे बाट दूगी, लेकिन घर मे रखकर किसी तरह भी पति का अकल्याण न करूगी।" यह

कहकर पैरो से उन सब को जरा ठेलकर उसने कहा, "लीजिए, उठाइए इन सबको।" अन्तिम बात इतनी कडी सुनाई पडी कि हतबुद्धि अनगमोहन झुककर उन सबको बटोरने लगा।

किरणमयी क्षणभर उस ओर ताकती रही, फिर अपनी उग्रता को सभालकर घृणा के साथ उसने कहा, "ले जाइए, ये सब चिन्ह इस मकान मे जब तक रहेगे, तब तक मेरे मुह मे अन्न न रुचेगा, न आखो मे नींद आएगी।"

डाक्टर सबको समेटकर उठ खडा हुआ। किरणमयी ने अधीर भाव से कहा, "रात तो बहुत हो गयी!"

डाक्टर ने कहा, "जा रहा हू। लेकिन तुमने भी भूल की। ये गहने मैंने तो दिये नही, सब ही तुम्हारे अपने हैं। तो भी, क्यो मेरे न मिलने मे तुम गरीब-दुखियो मे बाट दोगी, यह मैं समझ न सका। मुझे तुम क्षमा करो किरण।"

किरण धमकाकर बोली, "फिर मेरा नाम लेते हैं! हा, वे सब मेरी ही वस्तुए हैं अवश्य, लेकिन उन सबके मोह से ही मैंने आपसे सहायता ली थी। रात बहुत हो गयी है। डाक्टर साहब।"

- डाक्टर ने अपने नाम का छपा कार्ड निकालकर कहा, "मेरे मकान का यह पता ।"

"दीजिए!" कहकर किरणमयी ने हाथ बढाकर ले लिया, और पीछे की ओर जाकर जलते हुए चूल्हे मे उसे फेककर कहा, "इससे अधिक मुझे जरूरत न पडेगी। आप अभी-अभी मुझसे क्षमा माग रहे थे न? आपको पूर्णरूप से क्षमा कर सकूगी, इसीलिए मैंने आपका सब ऋण, सब सबध समाप्त कर डाला। किसी दिन किसी कारण से भी आपकी कोई बात मेरे मन में न आये, जाते समय केवल यही बात आप कहते जाइये।" और किसी तरह के प्रश्नोत्तर की प्रतीक्षा न करके किवाड बन्द करके वह अपनी रसोई की जगह पर वापस जाकर बैठ गयी।

बाहर डाक्टर का पैरों का शब्द जब उसके कानो के बाहर चला गया, तब उसने एक लम्बी सास लेकर देखा, चूल्हा बुझ गया है। फूककर उसे जलाकर और एक लम्बी सास लेकर वह फिर चुपचाप बैठ गयी।

प्यास से गला सूख गया था, तब भी वह उठ न सकी। उसको ख्याल होने लगा, मानो बाहर के अधकार मे तब भी कोई एक आतक उसके लिए हाथ बढा कर प्रतीक्षा कर रहा है। छाती के अन्दर ऐसा ही कुछ अशात हो उठा कि दोनो बाहुओ से जोर लगाकर उसने उसे दबा रखा। विदाई के इस कार्य को एक दिन उसको पूरा करना ही पडेगा, यह बात वह निश्चित रूप से जानती थी। कारण एक आकाश बेल उसके सर्वांग को घेरता जा रहा था, यह बात जितनी याद करती, उतना ही उसका मन विषाक्त होता जा रहा था, फिर भी इस वीभत्स बन्धन से छुटकारा पाने का साहस अपने आप मे जुटा नही पा रही थी। ऐसे ही दिन गुजर रहे थे, अनुक्षण सहती रही, पर कुछ कर नही सकी। इतना बडा कठिन कार्य आज सहज ही सम्पन्न हो गया। यही बात आज अपने अन्तर मे अनुभव कर रही थी। प्रयोजन आ पडने से उसने जिस पाप को अपने घर मे बुलाकर पाल-पोसकर बड़ा किया था वह आज 'जाओ' कह देने से ही चला गया, असभव काम कैसे हो गया। मान-भिक्षा, मान-मनौवल, रोना-धोना, अनुनय-विनय आदि असभव घटनाए तप्त शलाको की तरह बिधते रहे, वह सब बाकी रह गये। वह क्या एक दिन के लिए या हमेशा के लिए समाप्त हो गये?

हठात् दरवाजा खुलने की आवाज मे किरण ने चकित होकर मुह ऊपर उठा कर देखा, दासी कह रही है, "चूल्हा बुझकर तो पानी हो गया बहू! रात भी कम नही हुई है।"

किरणमयी झटपट उठ पडी, उसके पास जाकर चुपके-चुपके उसने पूछा, "डाक्टर है या चला गया रे?"

हाथ के दीये को तेज करते-करते वह बोली, "उनको तो गये लगभग दो घटे हो गये। लेकिन तुमको कहे देती हू बहूजी।" अकस्मात् उसकी जीभ रुक गयी। दीये को ऊपर उठाकर आभूषणहीन बहू का सर्वांग बार-बार निरीक्षण करके फर्श के ऊपर दीपक को रखकर वह बैठ गयी और बोली, "यह सब कैसा काण्ड है बहू!"

अठारह

दिवाकर के बडे दु ख की रात बीत गयी और सवेरा हो गया। कल सवेरे उसे गुप्त रूप से बी० ए० की परीक्षा मे फेल होने की खबर मिली थी और सध्या को अपने ही विवाह के बारे मे, अपने ही कमरे के सामने खडे होकर उपेन भैया को प्रसन्नचित्त से, परम उत्साह के साथ भट्टाचार्यजी के साथ बातचीत करते सुनकर वास्तव मे ही उसने निश्छल हृदय से अपनी मृत्यु-कामना की थी। सद्य पुत्रहारा जननी जिस प्रकार दु ख से सोती है, दु.ख से जागती हैं, उसी अभागिन की तरह वह भी दु ख से जाग उठा। आखे खोलकर उसने देखा कि पूर्व दिशा के शीशे मे प्रकाश झलमला रहा है। आज इस प्रकाश से अपना कोई सबध है, इसे अनुभव नही कर सका। नित्य दिवस के इस किरण को सवेरे उठते ही अभिवादन करना चाहिए—इसका भी ज्ञान नही रहा। पाथशाला के सपूर्ण अपरिचित अतिथि की तरह इन किरणो को उसने उदास भाव से देखते हुए बिस्तर पर पडा रहा। स्वच्छ काच के बाहर असीम नीलाकाश दिखाई पड रहा था। एकाएक उसके मन मे यह ख्याल उठा कि इस विराट् सृष्टि के किसी कोने मे भी उसके लिए जरा भी स्थान है या नही। उसके बाद जितनी दूर तक दिखाई पडा, ध्यान से उसने देखा, नही, कही भी नही है। सृष्टिकर्ता ने इतना सृजन किया है जरूर, लेकिन ऊपर, नीचे, आसपास, जल मे, थल मे, सूई की नोक बराबर स्थान भी उनके लिए नही रखा है। उसकी मा नही है, उसका बाप नही है, घर नही है, सभवत जन्मभूमि भी नही है। वास्तव मे अपना कहलाने वाला कही भी कोई नही है। यही जो अत्यन्त छोटा-सा कमरा है, शत-सहस्र बन्धनो से जिसके साथ वह जकडा हुआ है, होश होने के बाद से जिसने उसको मातृस्नेह की भांति आश्रय दे रखा है, वह भी उसका अपना नही है—यह उसके मामा का घर है। यह आश्रय उसकी जननी का नही है—विमाता का है।

इस तरह दु ख की चिन्ताए जब क्रमश जटिल और विस्तृत होती जा रही थी, अकस्मात् उपेन्द्र का कण्ठ-स्वर सुनकर एक ही क्षण मे वह सीधे मार्ग को लौट गया। वह झटपट उठ बैठा, खिडकी खोलकर मुह बढाकर उसने देखा, उपेन्द्र नौकर को कुछ उपदेश देकर बाहर चले गये, वे तो किसी तरफ न देखकर सीधे चले गये, लेकिन दिवाकर ने अपनी उन दोनो आखो मे व्यथा अनुभव करके मुह घुमा लिया। उसको ज्ञात हुआ, मानो छोटे भैया के उन्नत ललाट पर कुछ-कुछ सूर्य-किरणे धक्का खाकर उसके नेत्रो पर आकर पछाड खाकर गिर पडी। वह फिर एक बार शय्या का आश्रय लेकर निर्जीव की भांति आखे बन्द करके लेट गया और दुश्चिन्ताओ ने उसी क्षण उसको फिर दबा दिया।

आज भी आदत की तरह भोर मे नीद खुल गयी थी, पर पिछली रात को वह सो नही सका था। सारी रात दु स्वप्न मे भूत-प्रेतो के दल इस शरीर को लेकर खीचातानी कर रहे थे। उनके सासो की बदबू अभी तक इस कमरे मे मौजूद है, आख बन्द कर लेने पर भी वह इसे अनुभव कर रहा था। फिर याद आया कि वह फेल हो गया है। इतनी मेहनत से की गयी पढाई-लिखाई व्यर्थ हो गयी है। आज इस बात की जानकारी सभी को हो जायगी। इसके बाद? इसके बाद जिस प्रकार धुआ रसोईवाले कमरे मे फैल जाती है, ठीक उसी प्रकार एक निष्फलता ने छोटे द्वार से प्रवेश कर निराशा के अधकार में उसके मन को आच्छादित कर ली है।

दिन के लगभग आठ बज गये हैं। दोनो हाथो की मुट्ठी बाधकर वह उठ बैठा और बोला, "नही, किसी भी तरह नही। छोटे भैया भले ही रुष्ट हो या भाभी ही दु.ख माने, यह काम मैं किसी भी प्रकार न कर सकूगा। जो गृहलक्ष्मी होगी वे या तो मेरे ही घर मे आयेगी, या किसी दिन भी न आयेगी। रख सकूगा तो आने पर मैं सम्मान के साथ रखूगा, न रखूंगा तो कम से कम असम्मान के बीच मे खीचकर न लाऊगा। इस सकल्प से कोई भी मुझे विचलित न कर सकेगा।"

दिवाकर ने धीरे पद से अन्त पुर मे प्रवेश करके पुकारा, "भाभी!"

अन्दर से मृदु कण्ठ की आवाज आयी, "आओ!"

दिवाकर ने प्रवेश करके देखा, आलमारी खोलकर उसका सामान निकालकर सुरबाला मुह झुकाए सदूक में सजा रही है। उसने पूछा, "छोटे भैया कही बाहर गाव में जाएगे?"

सुरवाला ने उसी दशा में कहा, "नही, कलकत्ता जाएंगे।"

इसके बाद फिर दिवाकर के मुह से कोई बात न निकली। अपने कमरे से जो शक्ति उसको ठेलकर ले आयी थी, आवश्यकता के समय वह शक्ति लुप्त हो गयी। वह मौन होकर सोचने लगा, किस तरह आरंभ किया जाए।

ऐसे ही समय में जूते की आवाज सुनाई पडी और दूसरे ही क्षण उपेन्द्र परदा हटाकर कमरे में चले आये। दिवाकर अत्यत सकुचित होकर भाग जाने की तैयारी कर रहा था कि, उपेन्द्र "खडा रह" कहकर आराम से खटिया पर बैठ गये और कुरता उतारते-उतारते उन्होने पूछा, "तू फेल हो गया कैसे? रोज रात का एक बजे तक जाग-जागकर इतने दिन तू क्या कर रहा था?"

इस बात का और उत्तर ही क्या था? दिवाकर मुह झुकाये खडा रहा।

उपेन्द्र कहने लगे, "इस घर में रहने से तेरा कुछ भी न होगा, देखता हू। जा, कलकत्ता जाकर पढ, तभी तू आदमी बन सकेगा।"

उसके बाद हसकर बोले, "भाभीजी के पास तू क्या दरबार करने के लिए आया था? व्याह न करेगा, यही तो?"

बात सुनकर दिवाकर बच गया। उसका समस्त दु ख मानो धुल-पुछ गया, उसने एकाएक मुसकराकर मुह ऊपर उठाकर देखा।

उपेन्द्र हस पडे। यद्यपि उस हसी का मर्म किसी ने नही समझा। उसके बाद वह बोले, "अच्छा, अब तू जाकर मन लगाकर पढ, अगले अगहन तक तेरी छुट्टी है, उसमें अभी बहुत देर है।" पत्नी की ओर देखकर बोले, "सतीश ने तार भेजा है, हारान भैया की हालत बहुत खराब है—मैं रात की गाडी तक प्रतीक्षा न कर सकूगा, इसी ग्यारह बजे की गाडी से जाऊगा। जरा थरमामीटर मुझे दो तो देखू। ज्वर छूट गया या नही—यह क्या इतना बडा ट्रंक क्या होगा? एक छोटी पेटी दो न।"

सुरवाला कपडे तहियाकर सदूक मे भर रही थी। काम करते-करते मृदु स्वर मे बोली, "छोटी पेटी में दो आदमियो के कपडे न अटेंगे। मैं भी साथ चलूंगी।"

उपेन्द्र ने अवाक् होकर कहा, "तुम जाओगी! पागल हो क्या?"

सुरबाला ने मुह ऊपर न उठाकर ही कहा, "नही।" फिर दिवाकर को लक्ष्य करके कहा, "बबुआजी, जरा जल्दी ही स्नान करके खा लो, तुमको मेरे साथ चलना पडेगा।"

दिवाकर ज्योही आश्चर्य के साथ उपेन्द्र के मुह की तरफ देखने लगा, त्यो ही वे हस पडे, बोले, "तू भी पागल हो गया? हारान भैया सख्त बीमार हैं, शायद दिन पूरे हो चुके हैं। मैं जा रहा हू उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करने, तुम लोग इसके बीच जाओगे कहां? जा, तू अपने काम पर जा।"

सुरबाला ने इस बार मुह ऊपर उठाया। दिवाकर की ओर देखकर शांत लेकिन दृढ़ स्वर से बोली, "मैं आदेश देती हू बबुआजी, तुम जाकर तैयार हो जाओ। तुम्हारे छोटे भैया तीन दिन से ज्वर मे पडे रहे, आज भी ज्वर छूटा नही है। इसीलिए मैं साथ जाऊंगी, तुमको भी चलना पडेगा। जाओ, देर मत करो।"

उपेन्द्र मन ही मन आश्चर्य में पड गये। इसके पहले किसी दिन उन्होने सुरबाला का इस तरह कण्ठस्वर नही सुना था। वह स्वच्छन्द भाव से किसी पुरुष को ऐसे छोटे लडके की तरह आज्ञा दे सकती है, यह अपने ही कानों से सुनने से शायद वह विश्वास ही न कर सकते थे। तिरस्कार के स्वर मे बोले, "मैं जा रहा हू विपत्ति के बीच। तुम लोग क्यों साथ जाकर मेरी उस विपत्ति को बढाना चाहते हो? तुम्हारा जाना नही होगा।" उनकी अन्तिम बात कुछ कडी सुनाई पडी।

सुरबाला उठ खडी हुई, पति के मुंह की तरफ देखकर पूर्ववत् दृढ कण्ठ से बोली, "तुम सबके सामने सभी बातों में मुझे क्या डाटते हो? तुम बीमारी की हालत में बाहर जाओगे तो मैं साथ चलूगी ही। नौ बज रहे हैं, तुम खडे मत रहो बबुआजी, जाओ।"

दिवाकर के सामने अपनी रूढ़ता से उपेन ने अत्यत लज्जित होकर कहा, "डाटूगा क्यो तुमको, मैं कुछ डाट नही रहा हू। लेकिन बाबूजी सुनेंगे तो क्या सोचेंगे बताओ तो? जा दिवाकर, खा ले।"

सुरवाला ने कहा, "वाबूजी ने मुझे जाने को कहा है।"
"इसके बीच तुम उनके पास भी गयी थी?"
"हा। जाऊं, तुम्हारा दूध ले आऊ।" वह कहकर सुरबाला कमरा छोडकर चली गयी, उपेन्द्र ने अरगनी को ताककर चादर उसी पर फेक दी और चित होकर लेट रहे। सुरबाला साथ जाएगी ही, पति के बीमार शरीर को किसी तरह भी अपनी दृष्टि के बाहर न छोडेगी इसमे किसी को सदेह नही रहा। दिवाकर तैयार होने के लिए धीरे-धीरे बाहर चला गया।

उपेन्द्र सोचने लगे—जिद करके सुरवाला ने यह जो एक नयी समस्या उत्पन्न कर दी, इसका कौनसा समाधान कलकत्ता पहुचकर किया जाएगा। कहा चलकर ठहरा जाएगा! हारान भैया के यहा तो असम्भव है क्योंकि, वहां स्थानाभाव है, यही बात नही है, वहा किरणमयी का पति मर रहा है और उसकी ही आखो के सामने सुरबाला अपने पति की रत्तीभर बीमारी के प्रति भी उपेक्षा न करेगी। शोभन-अशोभन कुछ भी न मानेगी। पति के स्वास्थ्य पर प्रतिक्षण पहरा देती हुई घूमती रहेगी। इस बात का ख्याल आते ही उनको लज्जा मालूम हुई। ज्योतिष के घर पर जाना भी उसी तरह की बात है। सुरवाला कट्टर हिंदू है, इसी उम्र मे विधिपूर्वक जप-तप इसने आरम्भ कर दिया है, उस घर से तनिक-सा भी अहिंदू आचार आखो से देखने से शायद पानी पीना भी छोड देगी। इसके सिवा जहा सरोजिनी प्राय इसकी समवयस्का है, उसके ही घर मे ठहरकर उसी को वार-बार यह मत छूना, वह मत छूना करते रहना न तो सुख की बात होगी और न उचित ही। बाकी रहा सतीश। उपेन्द्र ने सुना था, अपने नये डेरे मे यह अकेला रहता है। स्थान भी यथेष्ट है। विशेषत वह भी जप-तप के इस दल के अतर्गत है। सतीश और दिवाकर—आचार-परायण इन दोनो देवरो के साथ सुरबाला अच्छी तरह ही रहेगी।

उपेन्द्र ने तुरन्त सतीश को तार दिया कि हम आ रहे हैं।

खबर मिलने पर सतीश स्टेशन की ओर रवाना हो गया।

भगवान ने सचमुच ही सतीश को तन-मन से खूब ही बलिष्ठ बनाया था। इसीलिए उस दिन मुमुर्षु हारान के अभागे परिवार का भारी वोझ सिर पर लेकर जैसे वह ढो रहा था, सावित्री विपिन के इतिहास को भी उसी प्रकार बरदाश्त कर लिया था।

इस इतिहास को जानता था केवल बिहारी और उसके परम पूज्यवाद रसोइया महाराज। बिहारी का ख्याल था, कि वह सावित्री को अत्यत घृणा करता है। इसीलिए कल दोपहर को भी महाराज का प्रसाद पाकर छोटी-सी चिलम को उलटकर लम्बी सास लेकर उसने कहा, "छि। छि। देवताजी, इस स्त्री ने यह क्या कर डाला! मेरे बाबू को उसने पहचाना नही, इसलिए सोना फेककर आचल मे मिट्टी बाध ली। अन्त मे सुनता हू विपिन बाबू के साथ चली गयी।"

चक्रवर्ती ने सिर हिलाकर उत्तर दिया, "बिहारी, निमाई-सन्यास मे लिखा है—"मुनीनाच मतिभ्रम" नही तो सावित्री की तरह की स्त्री ऐसी बेवकूफी क्यो करती? लेकिन यही बात मैं तुमको कहे देता हूं, उसको पछताना पडेगा ही। वह स्त्री देखने-सुनने मे भी कोई बुरी नही थी, मेरे साथ बैठकर, खडी रहकर, सुनते-सुनते, वह बाबू भैया लोगो के साथ दो-चार बाते करना भी सीख गयी थी, युवावस्था मे सतीश बाबू की निगाह मे भी पड गयी थी। टिकी रह सकती तो अन्त मे अच्छा ही होता लेकिन मेरा एक भी परामर्श तो उसने माना नही। अरे भाई, घोडा हटाकर घास खाने से कही काम चलता है? दुनिया भर के लोग ही आफत में पडकर दौडते हुए आकर इन्ही चक्रवर्ती जी के पैर पकड लेते हैं, ऐसा क्यो? अभी उसी दिन सदी की मां . ।"

सदी की मा भलाई-बुराई के लिए बिहारी को कौतूहल नही था। वह वातचीत के वीच मे ही बोल उठा, "लेकिन कुछ भी कहो, देवता बाबू यदि किसी को कहा जाय तो मेरे मालिक को ही। बडे लोगो को कलकत्ता मे मैंने बहुत देखा है, लेकिन ऐसा युवक, ऐसी चौडी छाती वाला तो मैंने किसी को नही देखा है, जैसे हाथी के दांत मरद की बात। वही जो मैंने उस दिन कह दिया था, बाबू अब नही, बस रहने दें। उसी दिन से घृणा से एक दिन भी उन्होंने उसका नाम तक मुह से नही निकाला, फिर भी कितना अधिक उसे प्यार करते थे—समझे महाराज जी?"

चक्रवर्ती ने सिर हिलाकर उत्तर दिया, ''यह बात तो आरम्भ मे ही मैंने कह दी थी। इसी मे तो खून-खराबिया, जेल-फांसिया होती हैं। एक बार आखे लड जाने से फिर क्या बच सकती है बिहारी।''

बिहारी सिहर उठा। पीले चेहरे से भयग्रस्त होकर बोला, ''नही-नही, महाराजजी, मेरे बाबू ऐसे स्वभाव के मनुष्य नही हैं। किन्तु कहा पर वह इस समय हैं क्या तुम जानते हो? इसके बीच कही घाट-बाट मे ।''

चक्रवर्ती ठठाकर हस पडे। बोले, ''मूर्ख कहते हैं किसको? वह क्या विपिन बाबू के यहा दासीवृत्ति करने गयी है, बिहारी को राह मे घाट मे भेट हो जाएगी? उसने स्वय ही इस समय कितने ही नौकर-नौकरानियो को रख लिया होगा, जाकर देख ले।''

बिहारी निरुद्विग्न हो गया। मुसकराकर सिर हिलाते हुए बोला, ''यही बात है। इसीलिए तो मैंने सोचा, चलू तो एक बार महाराजजी के पास। देखूँ वे क्या कहते हैं। यही कहो देवता, आशीर्वाद दो, वह राजरानी हो जाये, गाडी पालकी पर चढकर घूमे, दोनो की भेट फिर आम्ने-सामने न होने पाये।'' यह कहकर वह आनन्दमन से चक्रवर्ती की पदधूलि माथे पर चढाकर बाहर चला गया।

इस बार कलकत्ता आने के बाद सतीश डेरे से निकलकर जबतक घर वापस नही आ जाता था तबतक बिहारी को इस बात का बराबर भय बना रहता था कि कही दोनो का सामना न हो जाय। सतीश बहुत ही क्रोधी, कडे स्वभाव का है, यह खबर वह मकान के पुराने नौकर-नौकरानियो के मुह से सुनता आ रहा था, और सावित्री ने जितना बडा निन्दनीय कार्य किया है, उसमे खून-खराबी, मारपीट तक की भी नौबत आ सकती है यह बात भी उसे इतनी उम्र मे अविदित नही थी। केवल यही सभावना किसी दिन उसके दिमाग मे घुसती नही थी कि सावित्री किसी दिन दास-दासियो को लेकर मोटर आदि सवारियो पर घूमने-फिरने निकल सकती है। आज चक्रवर्ती के मुह से आश्वासन पाकर वह निर्भय हो गया। सावित्री पर उसे बडा क्रोध हो आया। वह शांतिपूर्वक रास्ता चलते-चलते प्रतिक्षण आशा करने लगा कि शायद किसी बडी-सी बग्घी पर रानी के वेश मे वह सावित्री को देख लेगा। सावित्री को बिहारी सचमुच ही प्यार करता था वह कैसे, किस मार्ग से रानी बनना सभव होगा, यह सब वह नहीं सोचता था। हमेशा उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखता आया है। वह दुखिया है, वह हम जैसे लोगो के साथ एक आसन पर खडे होकर दासीवृत्ति करने मे सकोच नही करती थी, लज्जित नही होती थी, तथापि उसी दिन से हृदय मे बडा दु ख, बडी यातना पाकर बिहारी उसके ऊपर रुष्ट हो गया था। लेकिन आज ज्योही उसने सुना, सावित्री उसके मालिक के रास्ते का कण्टक नही है, सुख मे विघ्न नही है, वह पूरे हृदय से आशीर्वाद देने लगा—सावित्री सुखी हो, निर्विघ्न हो, राजेश्वरी बने।

उन्नीस

हारान के जीवन-मरण की लडाई ने क्रमश. मानो एक करुण तमाशे का रूप धारण कर लिया था। भूखे साप की भांति मृत्यु उसको जितने ही अविच्छिन्न आकर्षण से अपने जठर मे खीच रही थी, मेढक की भांति उतना ही वह अपने पैरो से उसके जबडे को रोककर किसी एक अद्भुत कौशल से दिन पर दिन मृत्यु से बचता चला जा रहा था। वस्तुत अशेष दु.खपूर्ण उसका प्राण किसी तरह भी समाप्त न होगा, ऐसा ही ज्ञात हो रहा था।

इस विपत्ति मे सतीश सहायता करने आया था। किरणमयी की पति-सेवा देखकर वह आश्चर्य से हतबुद्धि हो गया। स्त्रियो के लिए पति से बढकर कोई नही है, यह भी वह जानता था, किन्तु कुछ भी कारण क्यो न हो, सब कुछ जान बूझकर इतना बडा निरर्थक परिश्रम कोई मनुष्य इस तरह प्राणो की बाजी लगाकर कर सकता है, इसकी तो वह कल्पना भी न कर सकता था।

यह कैसी आश्चर्यजनक सेवा है। प्रतिदिन सारी रात एक ही दिशा मे बिछौने के पास बैठकर जागते रहना, सारा दिन अक्लान्त परिश्रम करते रहना फिर भी मुख पर थकावट या विषाद का चिन्ह तक नही। मुख देखकर समझा नही जा सकता कि उसके माथे पर कितनी बडी विपत्ति लटक रही है।

सतीश अपनी इस भाभी को सचमुच ही बडी बहिन की तरह प्यार करने लगा था। उसकी इस अत्यन्त उद्वेग रहित पति-सेवा को देखकर अत्यन्त व्यथा के साथ केवल यही सोचता था कि जिस कारण से ही हो, भाभी को यह आशा है कि उनके पति बच जायेगे। अत अन्त तक उनके मन को वेदना कैसी चोट पहुचायेगी इसी की कल्पना करके वह व्याकुल हो उठता था। और किस उपाय से इस अप्रिय सत्य की जानकारी करा दी जाय, यही उसके लिए प्रतिक्षण की चिन्ता का कारण हो उठा था।

एक दिन था, जब अपने विषय मे सतीश को भारी विश्वास था कि वह बुद्धिमान है। मानव-चरित्र समझने मे यह विशेष पारगत है। लेकिन सावित्री से चोट खाने के बाद से उसका यह दर्प टूट गया था। सावित्री उसको छोड़कर विपिन के पास चली गयी, ससार मे यह भी जब सभव हो सका, तभी उसको पता चल गया कि वह मानव-चरित्र कुछ भी नही समझता। मनुष्य के मन के भीतर क्या है, क्या नही इसके बारे मे जिसको जैसी रुचि हो उसकी आलोचना करता हुआ घूमता रहे, लेकिन अब वह कम से कम नही करेगा। इस विषय को याद आने पर उसकी लज्जा और उसके अनुताप का अन्त नही रहता कि अपनी इस बुद्धि के गर्व से ही उसने इस भाभी के विषय मे बहुत-सी बाते सोची थी, और उपेन भैया को सिखाने गया था।

आज सवेरे सतीश ने उस घर मे उपस्थित होकर देखा, किरणमयी वैसे ही प्रसन्न चेहरे से अकेली गृहकार्य कर रही है। दो-तीन दिनो से मासजी फिर बीमार पड गयी हैं। पिछली रात ज्वर कुछ बढ जाने से अभी तक बिछौने से उठी नही हैं। किरणमयी का मुख देखकर किसी बात का अनुमान करना कठिन था। इसी से प्रतिदिन सतीश को सभी बाते पूछकर ही जान लेनी पडती थी। आज प्रश्न करते ही उसने काम छोडकर मुह ऊपर उठाकर क्षणभर देखकर कहा, ''बबुआजी, अब देर करने की जरूरत नहीं है। अपने भैया को एक बार आ जाने के लिए लिख दो।''

सतीश ने डरकर पूछा, ''क्यो भाभी?''

किरणमयी के मुखमण्डल पर से मानो शरत् के बादल का टुकडा उड गया। एक लम्बी सास लेकर वह बोली, ''इस बार शायद यत्रणा का अन्त हो गया है—तुम एक तार भेज दो।''

सतीश क्षणभर चुपचाप देखते रहकर बोला, ''मैं जानता था भाभी। लेकिन यह सोचकर कि कही तुम डर न जाओ, मैंने कहने का साहस नही किया।''

किरणमयी ने सहज भाव से कहा, ''डरने की बात ही है। उनकी सांस का लक्षण परसो मुझे मालूम हो गया, कल रात को कुछ और बढ गयी है। यह घटेगी नही इसीलिए एक बार उनको आ जाने को कहती हू।''

सतीश यह खबर जानता नही था। चौंककर बोला, ''इसका तो मुझे पता चला ही नही। तुमने भी बताया नही।''

किरणमयी ने कहा, ''नही, इतना धीरे-धीरे बढती गयी है कि दूसरो को पता लगने की बात ही नहीं। लेकिन आज विशेष भय नही है। फिर विपत्ति के ऊपर विपत्ति, कल से मा की बीमारी ने भी टेढा-मेढा मार्ग पकड़ लिया है। अभी-अभी मैंने देखा. खूब ज्वर है, बीच-बीच मे अनाप-शनाप भी बक रही हैं।'' यह कहकर वह जरा हस पडी, लेकिन यह हसी देखने से रुलाई आती है।

सतीश की आखो मे आसू आ गये। उसने सजल कण्ठ से धीरे-धीरे कहा, ''उपेन भैया आ जाये।''

किरणमयी ने कहा, ''और एक खबर सुनोगे बबुआजी?''

सतीश मौन रहकर ताकता रहा। किरणमयी बोली, ''चौथे दिन तीसरे पहर को एक वकील की मुझे चिट्ठी मिली, उससे मालूम हुआ दो साल पहले उन्होने एक मित्र को अपनी जमानत पर तीन हजार रुपये कर्ज मे दिलाये थे। मित्र व्यवसाय मे फेल होकर प्राय चार हजार रुपये इनके सिर पर चढाकर, विष खाकर मर गये हैं। वह रुपया इस टूटे-फूटे मकान की ईंट लकडी बेचकर चुकाया जा सकेगा या नही, इस खबर को वकील साहब ने अवश्य जान लेना चाहा है।'' यह कहकर वह उसी तरह हस पडी।

सतीश मुह को नीचे झुकाकर भूमि की ओर निहारता रहा। उसने आखे ऊपर उठाकर देखने का साहस नही किया, प्रश्न का उत्तर देने का भी प्रयास नही किया।

सतीश उपेन्द्र के पास तार भेजकर जब लौट आया, तब दिन के दस बजे थे। धीरे-धीरे वह रसोईघर मे जा पहुचा। किरणमयी सास के लिए साबूदाना बना रही थी, मुह ऊपर उठाकर बोली, "बैठो बबुआजी।" उसका स्वर जरा भारी था। सतीश ने ध्यान के साथ देखा आखो मे आसू तो नही थे, लेकिन दोनो पलके भीगी थी। वह पास ही फर्श पर बैठ गया। आज किरणमयी ने आसन देने की बात भी नही उठायी। वह कहा बैठ गया, उसने क्या किया, शायद उसने देखा ही नही। किसी साधारण बात मे भी जरा-सी उसकी त्रुटि सतीश ने अब तक देखी नही थी। इतने दिनो से उसका आना-जाना चल रहा है, इतना मेलजोल बढ गया है, पर एक दिन के लिए भी उसको भाभी के सहज-सरल व्यवहार मे सौजन्य का, घनिष्ठता का, थोडा-सा भी अभाव, बिन्दु मात्र भी ढूढने पर नही मिला था। इसीलिए आज इतनी थोडी-सी ही अवहेलना ने मानो उसकी आखो मे उगली डालकर उसको दिखा दिया। किसी भारी बोझ से भाभी का समूचा मन आच्छन्न हो गया है।

बडी देर तक दोनो ही चुप रहे। एकाएक किरणमयी अपने आप ही तीव्र व्यग्य करके हस पडी। शायद इतनी देर तक वह इसी चिन्ता मे ही मग्न थी, बोली, "अच्छा बताओ तो बबुआजी, यमराज के साथ वह यह सब देना-पावना का झमेला मिट जाने के बाद, मेरे लिए नौकरी करना उचित होगा या भीख मागना?"

यह बात सतीश समझ गया। बोला, "उपेन भैया से पूछो, वही उत्तर देगे।"

किरणमयी ने कहा, "पूछे बिना ही समझ रही हू। हो सकता है कि कृपा करके वह मुझे दो कौर खाने को देगे, लेकिन दूसरे पर निर्भर रहना ही तो भीख मागना हुआ बबुआजी।"

सतीश शायद एकाएक इसका प्रतिवाद करने चला, लेकिन बात ढूढने पर नही मिली, मुह पर नही आयी तो चुप रहकर ताकने लगा।

किरणमयी ने उसके मन का भाव समझकर जरा हसकर कहा, "मुह खोलकर साफ कह देने मे ही बात जरा कडी हो जाती है, यह मैं जानती हू बबुआजी, लेकिन यह बात तो सत्य है।" थोडी देर तक रुकी रहकर बोली, "यह ख्याल मत करना कि तुम्हारे भैया को मैं पहचानती नही। मैं समझ गयी हू, अनाथ को देना वह जानते हैं। लेकिन केवल देना ही तो नही है, लेना भी तो है। देकर कभी मैंने देखा नही है, लेकिन सारा जीवन दूसरे का मन प्रसन्न रखकर निभा सकना भी कम कठिन नही है, यह मैं समझ चुकी हू।"

सतीश को इस बार भी ढूढने कर उत्तर नही मिला। किरणमयी का झक मानो बढ गया था, प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा बिना किये बोली, "इस दुनिया के साथ कारोबार अधिक दिनो का नही है, देना-पावना चुका लेने मे अभी बहुत बाकी है। इस दीर्घ जीवन के हिसाब-किताब मे दोष-त्रुटि, भूल-भ्रान्ति रह भी सकती है। तब वह भी क्या कहकर देगे और मैं भी किस मुह से हाथ फैलाऊगी। उस समय मुझे फिर अपनी ही राह पर आप ही चलना पडेगा।"

इतनी देर तक सतीश श्रद्धा के साथ, व्यथा के साथ उसकी भावी आशका की बातो को सुन रहा था, लेकिन अन्तिम बात से मानो ठोकर खाकर चौंक उठा। उसने कहा, "यह कैसी बात है भाभी? दोष-त्रुटि तो होती ही है, सभी से होती है, पर तुमसे भूल-भ्रांति होगी क्यो?"

किरणमयी सतीश का उत्कण्ठित आश्चर्य देखकर हस पडी। एक क्षण मे अपने व्यग्र सतप्त कण्ठ-स्वर को कोमल बनाकर उसने कहा, "कौन जाने बबुआजी, मैं भी तो मनुष्य ही हू।"

सतीश अपनी भूल समझ गया। क्षणभर की उत्तेजना से उसका मन कुत्सित अर्थ ग्रहण करने चला गया था। उसी लज्जा से सिर झुकाकर बोला, "मुझे क्षमा करो भाभी, मैं जैसा नासमझ हू, वैसा ही अपवित्र भी।"

किरणमयी ने जवाब नही दिया, केवल जरा-सी हस पडी।

अकस्मात् सतीश का अनुतप्त अपराधी मन उत्तेजित हो उठा, वह जोर लगा कर बोल उठा, "किन्तु केवल उपेन भैया की बात ही होगी क्यो? क्या वे ही सब कुछ हैं, मैं कोई नही? तुमको उनका आश्रय लेने न दूगा।"

किरणमयी ने हंसकर कहा, ''वह तो एक ही बात है बबुआजी, तुम और तुम्हारे भैया तो पराये नही हो। तुम्हारे आश्रय मे रहकर भी तो तुम्हारे मन को प्रसन्न रखकर तुमसे भीख लेनी पडेगी।''

सतीश बोला, ''नही, नही पडेगी, इसका कारण यह है कि मैं हू तुम्हारा छोटा भाई, किन्तु उपेन तुम्हारे पति के मित्र हैं। आवश्यकता पडेगी तो अपनी बहिन का भार मैं लूगा।''

''लेकिन यदि तुम्हारा मन प्रसन्न रखकर न चल सकूं?''

''मैं भी तुम्हारा मन प्रसन्न रखकर न चलूगा।''

किरणमयी ने प्रश्न किया, ''यदि मैं कोई अपराध करू?''

सतीश ने उत्तर दिया, ''तब तो भाई-बहिन मे झगडा होगा।''

किरणमयी ने फिर प्रश्न किया, ''जीवन मे यदि भूल-भ्रांति हो जाए तो उसे क्या मेरा यह छोटा भाई क्षमा कर सकेगा?''

सतीश मुह ऊपर उठाकर क्षणभर ताकता रहा फिर सहसा अत्यन्त व्यथित स्वर से बोला, ''इस भूल-भ्राति के अर्थ मैं समझ नही सकता भाभी। छोटे भाई को अर्थ समझाकर कहना आवश्यक समझो तो वताओ, आवश्यक न समझो तो मत वताओ, लेकिन तुम्हारा अर्थ जो भी हो, जो अपराध मन मे लाया भी नही जाता, वह भी यदि सभव हो जाए तो भी मैं भूल न सकूगा वहिन, कि मैं तुम्हारा छोटा भाई हू।''

उसे सावित्री की वात याद आ गयी। उसने कहा, ''भाभी, आज अपने इस छोटे भाई के अहकार को क्षमा करो, लेकिन जिस अपराध को जीवन मे क्षमा कर सका हूँ, उस अपराध को क्षमा करने मे स्वय भगवान की छाती मे भी आघात पहुचता।''

यह कहकर उसने देखा, किरणमयी की दोनो आखो से आसू लुढ़ककर गिर रहे हैं। सतीश अच्छी तरह बैठ गया। फिर भरे स्वर से बोला, ''आज मुझे अच्छी तरह तुम एक बार देखो तो बहिन, जिस सतीश ने अपनी दुर्बुद्धि से तुमको भाभी कहकर व्यग्य किया था, वह तुम्हारा भाई नही था। कहते-कहते उसका समूचा मुखमण्डल प्रदीप्त हो उठा। उसने प्रबल वेग से सिर हिलाकर कहा, ''नही, नही, वह मैं नही था। वह कभी तुमको पहचान नही सका, उसने कभी तुम्हारी पूजा करना नही सीखा, इसीलिए उसने जगन्नाथ को काठ का पुतला कहकर उपहास किया था। अपने महापाप का बोझ लेकर वह डूब गया है भाभी, वह अब नही है।'' यह कहकर वह गरदन झुकाकर अपने हृदय के अन्दर टटोलकर देखने लगा।

किरणमयी अनिमेष दृष्टि से उसकी ओर देखती रही। उसके बाद धीरे-धीरे अति मृदु स्वर से उसने प्रश्न किया, ''किस प्रकार मुझे तुम पहचान गये भाई?''

सतीश ने गरदन झुकाये ही कहा, ''वह बात गुरुजनो के सामने कहने योग्य नही भाभी।''

''कहने योग्य नही है? यह कैसी बात।'' अकस्मात् सदेह से, भय से किरणमयी का मुख बदरग हो गया। उसने पुकारा, ''बबुआजी।''

''क्यो भाभी?''

''मुह ऊपर उठाओ तो देखू''

सतीश ने क्षणभर चुप रहकर मुह ऊपर उठाया।

किरणमयी कुछ देर देखती रही, फिर बोली, ''बबुआजी, तुम एक बडी व्यथा लेकर आते-जाते हो, इसका पता मुझे बहुत दिनो से लग गया था। लेकिन पूछने का अधिकार नही था इसलिए मैंने नही पूछा। लेकिन, आज तुम मेरे भाई हो—क्या हो गया है बताओ?''

सतीश सिर झुकाकर बोला, ''वह तो बडी लज्जा की वात है भाभी।''

किरणमयी ने कहा, ''भले ही लज्जा की बात हो। तो भी, अपनी इस बहिन को उसका हिस्सा देना पडेगा। तुमको अकेले मे व्यथा ढोते हुए घूमने न दूगी।''

इसके बाद थोडा-थोडा करके उसके दु ख का इतिहास बहुत कुछ सग्रह करके किरणमयी ने कहा, ''लेकिन क्यों तुमने ऐसा कार्य किया?''

सतीश चुप हो रहा।

किरणमयी ने प्रश्न किया, "कौन है वह?"
सतीश मुंह झुकाकर अस्पष्ट स्वर से बोला, "अभागिनी।"
"लेकिन कहां है वह?"
"नहीं जानता।"
"पता नहीं लगाया?"
सतीश ने मृदुस्वर से कहा, "नहीं। उसकी आवश्यकता नहीं है। मैंने सुना है वह अच्छी तरह है।"
किरणमयी ने व्यथित होकर कहा, "अच्छी तरह है? छि। छि। क्यों इस प्रकार तुमने अपने को धोखे में डाल दिया।"
इस बार सतीश ने फिर एक बार मुंह ऊपर उठाया। अस्पष्ट कण्ठ से उसने उत्तर दिया, "मैंने धोखा नहीं खाया भाभी, क्योंकि मैं प्यार कर सका था। लेकिन धोखा खा गयी वह—वह प्यार नहीं कर सकी है।"
"उसके बाद?"
सतीश ने कहा, "पहले वह अपना मन समझ नहीं सकी। लेकिन जब समझ सकी, तब वह चली गयी।"
"बिना बताये वह चली गयी?"
सतीश सिर हिलाकर बोला, "नहीं, यह बात भी नहीं है जाने के पहले वह कह गयी, 'एक अस्पृश्य कुलटा को प्यार करके भगवान के दिये इस मन के ऊपर कालिख न पोतो।'"
गंभीर आश्चर्य से सीधी हो बैठकर किरणमयी बोली, "क्या कहकर गयी?"
सतीश के फिर बात कहने पर किरणमयी कुछ देर तक उन बातों को धीरे-धीरे बार-बार दोहराकर हठात् बोली, "लेकिन फिर जब उससे भेंट हो, बबुआजी, तो मुझे एक बार दिखलाना।"
सतीश विपिन की बात याद करके बोला, "अब तो भेंट न होगी भाभी।"
किरणमयी के होंठों पर म्लान हंसी दिखाई पड़ी। उन्होंने कहा, "फिर भेंट हो जायगी।"
"कब होगी? न हो तो ही कुशल है।"
किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, "कब होगी, यह मैं नहीं जानती, लेकिन यदि कभी दुःख पड़ जाय, विपत्ति पड़ जाय, तभी भेंट होगी। उस भेंट से कल्याण के सिवा अकल्याण न होगा। बबुआजी, वह चाहे जहां भी क्यों न रहे, तुम्हारी अधिक शुभाकांक्षिणी है, इस बात को तुम किसी दिन भी मत भूलना।"
उसी दिन संध्या के ठीक पहले किरणमयी मुमुर्षु पति की उत्तम शय्या से उठकर क्षण भर के लिए बाहर आ खड़ी हुई। दरवाजे के पास दीवाल पर ओठंग कर सतीश चुपचाप बैठा हुआ था। थकावट के कारण संभवतः वह सो गया था। किरणमयी ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "क्यों बबुआजी, इस तरह बैठे हुए हो? डेरे पर गये नहीं?"
सतीश तन्द्रा टूट जाने पर घबराते हुए उठकर बोला, "नहीं भाभी।"
"कहां थे इतनी देर तक?"
"इधर-उधर घूमता रहा, आज अब डेरे पर न जाऊंगा।"
किरणमयी ने आपत्ति प्रकट करके कहा, "छि। छि। यह कैसी बात? न खाना होगा, न सोना। नहीं, डेरे पर चले जाओ, आज तुमको कोई डर नहीं है।"
सतीश ने गरदन हिलाकर कहा, "डर रहे या न रहे, आज मैं तुमको अकेली छोड़कर न जा सकूंगा। इसके सिवा मैं दूकान से खा आया हूं।"
किरणमयी ने कहा, "यह तो हो न सकेगा। मैं जानती हूं, दूकान के खाने से तुम्हारा पेट नहीं भरता। मुझे तो इस दशा में फिर रसोई बनानी पड़ेगी। रसोई बना सकती हूं लेकिन इधर कई दिनों से तुम्हारा ठीक समय पर नहाना-खाना नहीं हुआ। कल-परसों तुम अच्छी तरह सो नहीं सके। शरीर पर काफी अत्याचार हो गया है बबुआजी, अब नहीं। आज रात को यहां रहोगे तो बीमार पड़ जाओगे यह मैं किसी

तरह भी न होने दूगी।"

सतीश ने क्रोध करके कहा, "दो दिन आहार-निद्रा जरा कम होने से मैं बीमार पड जाऊगा, और तुम तो इधर एक महीने से सो नही सकी? जो खाकर दिन-भर बिता रही हो, उसे किसी मनुष्य को देखने नही देती हो, लेकिन भगवान तो देख रहे हैं। उसके बाद लगातार यह मेहनत . इतने से भी तुम खडी हो, और इतने से ही मैं मर जाऊगा?"

किरणमयी ने कहा, "इसका अर्थ क्या यह है कि तुम भी एक महीने तक खाये-सोये बिना रह सकते हो?"

सतीश ने कहा, "यह बात मैं नही कहता लेकिन. ।"

किरणमयी ने हसकर कहा, "इसमे फिर लेकिन है किस जगह पर? बबुआजी, मैं तो स्त्री ठहरी। स्त्रियो को क्या कभी बीमारी होती है, या स्त्री मरती है? क्या तुमने कभी सुना है, देख-भाल के बिना, अत्याचार से स्त्रिया मर गयी हैं?"

सतीश ने कहा, "नही, नही, वरन् सुना है स्त्रिया अमर हैं।"

किरणमयी ने हसकर कहा, "सचमुच ही यही बात है। प्राण रहने से ही जाता है। न रहने से नही जाता। भगवान ने स्त्रियो के शरीर मे उसे क्या दिया है कि वह चला जायगा। मुझे तो ज्ञात होता है कि इस जाति को गले मे रस्सी बाधकर यदि दस-बीस वर्ष तक लटकाकर रखा जाय तब भी यह नही मरेगी।"

सतीश ने क्रुद्ध होकर कहा, "तुम्हारा यह परिहास मैं सुनना नही चाहता भाभी। सुनने से भी पाप लगता है।"

किरणमयी ने इस बार गभीर होकर कहा, "अच्छा बबुआजी, अचानक स्त्रियो के प्रति इतने हमदर्द क्यो हो गये हो, बताओ तो?"

सतीश बोला, "भाभी, मैं खूब समझता हू। जब-तब तुम स्त्रियो का नाम लेकर अपने ही ऊपर कठोर, व्यग्य करती हो, मैं नही जानता। लेकिन तुम्हारे सबध मे व्यग्य तुम्हारे अपने मुह से भी सुनकर मैं नही सह सकता। इससे मुझे भारी चोट लगती है। अच्छा, मैं जा रहा हू।"

"सुनो बबुआजी।"

सतीश घूमकर खडा हो गया। बोला, "क्या है?"

"तुम सचमुच ही क्या रुष्ट हो गये?"

"क्रोध आ जाता है भाभी। ससार मे दो आदमियो को मैं देवता की तरह श्रद्धा करता हू—उपेन भैया को और तुमको। एक को स्मरण करने से ही मैं तुम दोनो को देखता हू। यह निम्नकोटि का परिहास मुझसे सहा नही जाता। मैं जाता हूं, शायद भोजन करके फिर आऊगा।" यह कहकर सतीश झटपट नीचे उतर गया।

किरणमयी आखे बन्द कर चौखट पर सिर रखे निस्पन्द की भांति खडी रह गयी। उसके कानो मे रह-रहकर यही प्रतिध्वनि होनेलगी—एक को स्मरण करने पर तुम दोनो को देखता हू।

बीस

बोलचाल से हो, इशारे से हो, कभी किसी के सामने सतीश ने सावित्री का जिक्र नही किया। इसी कारण जब यह बात किरणमयी के सामने प्रकट हो गयी, तभी से उसके सारे शरीर से अमृत का स्रोत बह चला। किरणमयी को सतीश देवी समझता था, उसकी सभी बातो की अत्यन्त श्रद्धा करता था। उसने कहा, "दु:ख के दिनो मे फिर भेट होगी।" तभी से उसके निभृत हृदय मे रहने वाला शोकार्त्त विच्छेद उस परम इच्छित दु:ख के दिनो की आशा मे उन्मुख हो उठा था। कोई दु:ख किस तरह कितने दिनो मे उसके दर्शन देकर दया करेगा, इसी चिन्ता को लेकर वह धीरे-धीरे रास्ता चलते-चलते रात के आठ बजे अपने डेरे पर पहुचा। कमरे में घुसकर जिस ओर, जिस वस्तु की ओर उसने देखा, उसी ने आज विशेष रूप से उसकी दृष्टि को आकर्षित कर लिया। कुरते को उतारकर अरगनी पर रखने गया तो उसने देखा, कपड़े

ठीक करके रखे हुए हैं—तह लगाये हुए हैं। हरिण की सीगा पर सध्या-पूजा का जो कपडा धोकर टाग दिया गया था वह चुन दिया गया है। बैठने लगा तो उसने देखा, कुर्सी पर गन्दे कपडों का जो ढेर रखा रहता था वह आज नही है। दो हफ्तो से धोवी नही आता, इस लिए गदे कपडो का ढेर प्रतिदिन बैठने की चौकी पर धीरे-धीरे जमा होता जा रहा था। बैठते समय सतीश उन सबको भूमि पर फेंक कर बैठता था। उठकर चले जाने पर बिहारी फिर यथास्थान उठाकर रख देता था। सात दिनो से मालिक और नौकर यह कार्य कर रहे थे। एकाएक वे सब गठरी बाधे जाकर अरगनी की ओट मे हटा दिये गये हैं। बिछौने की चादर, तकिये का गिलाफ बहुत मैला हो गया था, आज वह धुला सफेद है। मसहरी सदा ही अशिष्ट ऊट की तरह मुह ऊपर को किये टंगी रहती थी, वह भी आज चारो कोनो मे सीधे तौर से शिष्टता के साथ खडी हो गयी। बत्ती के कोने मे बराबर ही कालिख जमा रहती थी, आज उसकी कोई बला नही है—खूब साफ जल रही है। सभी तरह यह सफाई—यह सजावट का लक्षण देखकर अत्यन्त बूढ़े बिहारी के इस आकस्मिक रुचि-परिवर्तन का कोई कारण ढूढने पर उसे नही मिला। उसने पुकारा, "बिहारी!"

बिहारी आड मे खडा था, सामने आकर बोला, "जी आज्ञा?"

सतीश बोला, "बहुत अच्छा! यदि यह सब तू कर सकता है तो क्यों घर-द्वार इतना गदा क्यों छोड रखता है! मैं बहुत ही प्रसन्न हो गया हू।"

बिहारी ने विनयपूर्वक अपना मुह जरा झुकाकर कहा, "जी सरकार! आपके नाम एक तार आया है।"

"कहा रे?" कहकर इधर-उधर दृष्टि डालते ही मेज पर रखा हुआ पीला लिफाफा उसकी निगाह मे पड गया। खोलकर उसने देखा, उपेन भैया का समाचार है। वे साढे नौ बजे की ट्रेन से हावडा स्टेशन पर पहुचेगे। घडी मे लगभग साढ़े आठ बज गये थे। व्यस्त होकर उसने कहा, "जल्द ही एक गाडी ले आ बिहारी, उपेन भैया आ रहे हैं!"

पाच मिनट के अन्दर बिहारी गाडी ठीक करके ले आया। खबर देकर और किवाड की आड में खडा रहकर पूछा, "बाबू को साथ लिए डेरे पर लौटिएगा तो!"

सतीश ने सोचकर कहा, "नही, आज रात को फिर लौटूगा नही।"

उपेन भैया सीधे हारान बाबू के यहा ही चले जायेगे, इसमे सतीश को तनिक भी सदेह नही था। क्योंकि उनके सपत्नीक आने की खबर टेलिग्राम मे नही थी।

सतीश इसी बीच दो पूडिया खा रहा था। बिहारी ने आड से कहा, "बाबू एक निवेदन है।"

प्रार्थना करने की आवश्यकता पडने पर बिहारी पंडिती-भाषा का प्रयोग करता था।

सतीश ने मुह ऊपर उठाकर कहा, "कैसा निवेदन?"

"आज्ञा" कहकर बिहारी चुप हो रहा।

सतीश ने प्रश्न किया, "क्या आज्ञा है सूनू तो?"

बिहारी ने कहा, "सरकार, तीस रुपये मिल जाते तो ..।"

सतीश ने आश्चर्य मे पडकर कहा, "परसो तो तुमने तीस रुपये लेकर घर भेज दिये थे?"

बिहारी ने मृदु स्वर से कहा, "सरकार, इच्छा तो यही थी जरूर, लेकिन चक्रवर्ती महाराज के घर ..।"

चक्रवर्ती के नाम से सतीश जल उठा, बोला, "वह रुपया चक्रवर्ती को दे दिया—यह रुपया किसको दान दिया जायगा, सुनू?"

"सरकार, दान नही, आदमी बडे ही दु ख मे पडकर ..।"

"उधार माग रहा है?"

"सरकार, उधार और उसको क्या दूगा।"

सतीश धीरज खोकर उठ खडा हुआ। बोला, "तुम्हारे पास हो, तो तुम दे दो बिहारी, मैं इतना बडा आदमी नही हू कि रोज रुपया नष्ट कर सकू। मैं दे न सकूगा।"

इस बार बिहारी जिद करके बोला, "न देने से काम चल ही नही सकता बाबू। न हो तो मेरे वेतन से

ही दे दीजिए।"

वेतन के नाम से सतीश चौंक उठा और बोला, "वेतन का रुपया? अब तक कितने रुपये लिये हैं बता तो बिहारी?"

बिहारी बोला, "जैसे लिया, वैसे ही लडको के लिए गाव पर तीन बीघे जमीन, एक जोडी बैल खरीद दिये हैं। इसके सिवा एक नया घर भी बनवा दिया है। यह क्या मेरे वेतन से? मेरा रुपया आपके पास ही जमा है—आज उसी मे से दीजिए।"

सतीश हस पडा, बोला, "लडको के लिए खरीदकर तुमने मेरा भारी उपकार किया है। आज मेरे पास रुपया नही है।" यह कहकर चादर कन्धे पर रखकर वह स्टेशन के लिए रवाना हो गया।

बिहारी ने अपनी कोठरी मे आकर कहा, "बेटी, सध्या-पूजा करके अब जरा पानी पी लो। कल सवेरे जिस तरह भी मुझसे हो सकेगा, मैं दूगा।"

सावित्री कोठरी के फर्श पर आचल बिछाकर सोई हुई थी। वह उठकर बैठ गयी पूछा, "बाबू ने नही दिये?"

बिहारी ने कहा, "जानती तो हो बेटी, दूसरे के दु ख का नाम लेकर जब कि मैंने मागा है, तब पाऊगा ही। मेरे मालिक दानी कर्ण हैं! इस समय न देकर स्टेशन चले गये, लेकिन कल सबेरे जब लौट आएगे, तब मुझे बुलाकर देगे। तुमको कोई चिता नही है बेटी, अब उठकर जरा पानी-वानी पी लो, सारा दिन मे वैसी ही पडी हो।"

सावित्री के सूखे पीले चेहरे पर हंसी फूट पडी। उसने कहा, "अच्छा ही हुआ आज रात को अब लौटेगे नही। तब तो कल दोपहर की गाडी से ही काशी चली जा सकूगी, क्या कहते हो बिहारी?"

बिहारी ने कहा, "अवश्य ही बेटी।" फिर लम्बी सास लेकर कहा, "मेरे मालिक भी मालिक हैं, तुम्हारे मालिक भी मालिक हैं। गाव से बुढिया ने दु ख की बाते बताकर एक पत्र भेजा था—बाबू से पढवाने गया, पढकर वह बोले, 'तेरे घर मे क्या कुछ भी नही है रे?" मैंने कहा, 'गरीब-दुखियो के पास और रहता ही क्या है बाबू!' फिर उन्होने कोई बात नही कही। चार दिनो के बाद छ सौ रुपये हाथ में देकर मुझे गाव भेज दिया, 'जगह-जमीन मैंने खरीद डाली—गाय बछडे खरीदे, घर-द्वार बनवाया—लडको के हाथ मे देकर महीने के अन्दर मालिक के पैरो के पास लौट आया। बुढिया ने रोकर कहा, 'मुझे अपने साथ ले चलो, एक बार दर्शन तो कर आऊँ।' मैंने कहा, 'नही रे अब और ऋण मत बढा। तेरे जाते ही दो-एक सौ रुपये तेरे हाथ मे दे देगे। और एक तुम्हारे मालिक हैं! बीमार पड जाने से पाच-सात रुपये की दवा खर्च हो गयी है इसीलिए उन्होंने तुमसे बेधडक कह दिया उधार का रुपया चुकता करके ही जाना। नौकरी करते समय तुम कितना दु ख पा रही थी बेटी, और हम लोग कुछ भी न जानकर विपिन बाबू के नाम पर तुम्हारी कितनी निन्दा करते रहे। क्षमा करो बेटी, नही तो मेरी जीभ गल जाएगी।'

विपिन का नाम सुनकर सावित्री घृणा से रोमांचित हो गयी और स्पष्ट शब्दो मे छि ! छि. कर उठी। लेकिन उसी क्षण उसे दबाकर हसकर बोली, "स्नान करूगी बिहारी, एक कपडा दे सकोगे?"

"कपडा?" बिहारी ने उदास होकर कहा, "तुम्हारे आशीर्वाद से एक क्यो, पाच दे सकता हू। कोई दु ख ही नही बेटी! लेकिन शूद्र का पहना हुआ कपडा कैसे तुमको दे सकूगा बेटी! वरन् चलो, बाबू का एक धुला कपडा ही निकाल कर तुमको दे दू।"

बिहारी देवद्विजो पर अत्यन्त भक्तिभाव रखता था। अतएव प्रतिवाद निष्फल समझकर सहमत होकर उसका अनुसरण करके कमरे से बाहर चली गयी।

स्नान करके सावित्री सतीश का धुला हुआ देशी कपड़ा पहिनकर मन ही मन हस पड़ी। उसके ही कमरे मे, उसकी ही आचमनी अर्घी से सध्या-पूजा बिहारी द्वारा यत्नपूर्वक सग्रह की हुई विलायती चीनी से बनी परम पवित्र मिठाई सारे दिन के अनाहार के बाद खाकर उसने आराम अनुभव किया।

पान-सुर्ती खाने की उसकी बुरी आदत थी। दूकान का तैयार पान वह खाती नहीं थी यह जानकर बिहारी इसके बीच ही पान-सुपारी आदि जुटाकर ले आया था। उनको एक तश्तरी में लाकर रखते ही

सावित्री ने हसकर कहा, "विहारी, देखती हू मुझे जरा भी तुम भूले नही हो।"

विहारी ने उत्तर दिया, "आखिर मैं भी तो मनुष्य ही हू। बेटी, तुमको एक बार देखने से पशु-पक्षी तो भूल नही सकते।" यह कहकर टेबिल पर से वत्ती लाकर दरवाजे के सामने उसने रख दी, और थाली उसके पास रखकर पान लगाने को कहकर रसोइये से सूखी खैनी माग लाने के लिए रसोईघर की तरफ चला गया।

मिट्टी के तेल के उज्ज्वल प्रकाश को सामने रखकर फर्श पर सावित्री पान लगाने बैठी। माथे पर कपडा नही, भीगी केशराशि समूची पीठ के ऊपर से नीचे फर्श पर बिखरी पडी थी। दो-एक लटे आचल की काली किनारी के साथ मिलकर कन्धे से गोद पर झूल रही थी। नारी के रोगक्लिष्ट शीर्ण-पीले चेहरे पर जो स्वाभाविक और गुप्त माधुर्य रहता है, वह कृशागी के सद्य स्नात मुखमण्डल पर शोभित हो रहा था। वह कुछ अन्यमनस्क और चिन्तामग्न थी। सहसा दूर से जूते की आवाज निकट आने लगी, तो भी वह उसके कानो मे नही पहुची। जब उसने सुनी तब उपेन्द्र और सतीश बिल्कुल दरवाजे पर आ खडे हुए थे। सावित्री ने ध्यान भग होने पर मुह ऊपर उठाकर देखा। वह बदरग होकर अपने आपको भूल गयी और क्षण-मात्र के असतर्क अवसर पर बग रमणी के जन्म जन्मार्जित अध-सस्कार ने उनको लज्जा से अभिभूत कर दिया और दूसरे ही क्षण उसने दोनो हाथ बढाकर अपने लाल चेहरे पर छाती तक लम्बा घूघट खीच लिया।

सतीश हतबुद्धि की तरह बोल उठा, "सावित्री! तुम!"

सुरबाला अभी वत्ती के प्रकाश मे विहारी और दिवाकर के साथ ऊपर चढ रही थी। उपेन्द्र ने घूमकर कहा, "बस, अब मत आओ सुरबाला, वही खडी रहो।"

सुरबाला ने आश्चर्य मे पडकर कहा, "क्यो?"

उपेन्द्र ने इस प्रश्न का उत्तर न देकर कहा, "दिवाकर, अपनी भाभी को गाडी पर वापस ले जा। सतीश, मैं भी जाता हू।" यह कहकर वह धीरे-धीरे चल दिये।

इक्कीस

उपेन्द्र की पदध्वनि क्षीण से क्षीणतर होकर सीढियो पर लुप्त हो गयी। थके हुए, निराहार, सपत्नीक—यह अधेरी रात—तथापि, जरा-सा सदेह पैदा हो जाने से बिन्दुमात्र प्रमाण के लिए वे ठहर न सके। सतीश के कमरे मे बैठी हुई जिस युवती ने घोर लज्जा से, भय से इस प्रकार मुह ढक लिया था, उसके सबध मे एक प्रश्न तक भी करने की आवश्यकता उन्होने नही समझी। घृणा के मारे वही जो विमुख हो गये, फिर मुह घुमाकर उन्होने नही देखा।

लेकिन यह कैसी घटना हो गयी। क्षणभर के बाद ही अवस्था पूर्णरूप से समझकर सावित्री सिहर उठी। हजारो पुरुषो की दृष्टि के सम्मुख भी अब उसको लज्जा करने का अधिकार न था लेकिन अनजान में वह यह कैसी भूल कर बैठी। उसको ऐसा ज्ञात होने लगा, मानो उसकी लज्जा के इस छोटे से अवगुण्ठन ने पलभर मे दिगन्त विस्तृत होकर कुत्सित लज्जा स उसे पदनख से लेकर सिर के बालो तक कसकर जकड दिया। इस थोडी-सी लज्जा को बचाने मे लज्जा का पहाड उसके माथे पर टूट पडेगा, क्षणभर पहले यह बात किसने सोची थी।

सास रुक जाने की नौबत आ जाने से जैसे मनुष्य जी-जान से मुह बाहर निकालने की चेष्टा करता है, सावित्री ठीक उसी प्रकार घूघट जोर से हटाकर सीधी होकर बैठ गयी। उसने प्रश्न किया, "वे कौन हैं?"

सतीश अभिभूत की भाति द्वार के निकट खडा था। अभिभूत की ही भाति उसने उत्तर दिया, "उपेन भैया और भाभी।"

"ऐ, वही उपेन भैया? वही बहूजी?" सावित्री तीर की भाति उठ खडी हुई, चिल्लाकर बोली, "तब तो हटो, लौटा लाऊ। छि! छि! मैं तो कोई नही हू—डेरे की एक साधारण दासी मात्र हू। हटो-हटो—"

उपेन कौन हैं, सावित्री यह बात अच्छी तरह जानती थी। सतीश की बातो से अनेक बार उनका बहुत कुछ परिचय वह पा चुकी थी।

इतनी देर मे सतीश की नीद मानो टूट गयी। इस चीख-चिल्लाहट, इस घबराहट-भरे भय के भाव ने उसकी समस्त विह्वलता को क्षणभर में दूर करके बिल्कुल ही जागरूक बना डाला। इस बार उसने सीधे खडे होकर दोनो हाथ फैला दरवाजा रोककर कहा, "नही।"

सावित्री हाथ जोडकर बोली, "नही क्या जी? सत्यनाश मत करो सतीश बाबू, रास्ता छोडो। मेरा सच्चा परिचय उन लोगो को जान लेने दो।"

सतीश ने रास्ता नही छोडा। लेकिन उसके दृढ निबद्ध होठो पर सर्प-जिह्वा की भाति दो भागो मे विभक्त जहरीली हसी का अति सूक्ष्म आभास ही दिखाई पडा? शायद दिखाई पडा। उसने कहा, "ओह! तुम्हारा सत्यानाश! नही, इस सबध मे तुम निश्चित रहो। लेकिन तुम्हारा सच्चा परिचय क्या है, मैं स्वय तो पहले सुन लू?"

सावित्री एकाएक उत्तर न दे सकी, केवल ताकती रही। ऐसी ही निरुत्तर दृष्टि सतीश ने पहले भी देखी थी, लेकिन यह तो वह नही है। इस दृष्टि मे इतने बडे आघात से भी आज आग क्यो नही जल गयी? यह कैसी आश्चर्य-स्निग्ध करुण आखे थी! ये क्या उसी सावित्री की है?"

पलभर बाद वह धीरे-धीरे बोली, "मेरा परिचय? वही तो बता दिया—घर की दासी। दया कीजिए, सतीश बाबू, मैं उन लोगों को लौटा लाऊ। इस अन्धकार, अनजान शहर मे वे लोग क्या राह-घाट मे घूमते फिरेंगे? यह क्या अच्छा होगा?"

सतीश ने तिलभर विचलित न होकर उत्तर दिया, "उनको अपने भले-बुरे को समझने का भार उनके ही ऊपर रहने दो। लेकिन राह-घाट मे घूमना भी बहुत अच्छा है—लेकिन, मैं किसी तरह भी भाभी को अब इस घर मे पैर न धरने दूगा।"

"क्यो न धरने दोगे? मैंने इस घर मे पैर रखा है इसलिए? सतीश बाबू, पृथ्वी माता क्या मेरे स्पर्श से अपवित्र हो जाती है?"

सतीश ने पलभर चुप रहकर प्रश्न किया, "तुम इस घर मे घुस क्यो आयी?"

सावित्री मुह ऊपर उठाकर देख न सकी। भूमि की ओर देखकर अश्रुपूरित स्वर से बोली, "आप मेरे पुराने मालिक हैं। इसीलिए असमय में कुछ भीख मागने आयी थी।"

सतीश व्यग्य की हसी हसकर बोला, "असमय मे भीख मागने! लेकिन मालिक तो तुम्हारे एक नही है सावित्री। इतने दिनो मे एक-एक करके सभी मालिको के घरो मे तुम घूम आयी हो शायद!"

सतीश का निष्ठुरतम आघात उसके हृदय के भीतरी भाग को टुकडे-टुकड़े कर काटने लगा, लेकिन उसने फिर मुह ऊपर नही उठाया। कोई बात भी नही कही।

सतीश ने फिर कहा, "विपिन बाबू ने तुमको क्यो निकाल बाहर किया? शायद उनका शौक मिट गया?"

सावित्री उसी तरह चुप रही।

एकाएक सतीश को बिहारी का निवेदन याद पड गया। उसने पूछा, "क्या भीख मागती हो! तीस रुपये न?"

सावित्री ने सिर झुकाए ही उसे हिलाकर अपनी सहमति दी, मुह से कुछ बोली नही।

"अच्छा।" कहकर सतीश दराज के पास जा खडा हुआ, और पलभर मे कमरे के चारो तरफ दृष्टि निक्षेप करके रुक गया।

इस घर की नयी सजावट ने कुछ क्षण पहले उसको इतना आनन्द दिया था, अब वही मानो उसको काटने दौडी। पास ही वह जो शय्या है, वह भी तो इसी स्त्री की हाथ की रचना है। स्टेशन जाने के पहले इसी पर लेटकर पलभर के लिए वह विश्राम कर गया था, इसे याद करके उसका सर्वांग सकुचित हो गया। आखे घुमाकर झटपट दराज खोलकर कई नोट निकालकर सावित्री के पैरों के पास फेककर बोला, "जाओ, लेकर विदा हो जाओ—फिर कभी मत आना।"

सावित्री सिर्फ तीन नोट गिनकर उठ खडी हुई, इतनी देर तक सतीश चुपचाप देख रहा था। सावित्री के खडे होते ही उसको कोई बात कहने को उद्यत होने पर भी उसका गला रुध गया।

एकाएक प्रबल चेष्टा से अपने आपको मुक्त करके उसने पुकारा, "सावित्री!"

"जी आज्ञा!"

"कहानियों में मैं सुना करता था—इतना मनुष्य किसी को घृणा कर सकता है। मुझे विश्वास नहीं होता था। कभी सोचकर मैं समझ नहीं सका मनुष्य कैसे किसी मनुष्य को घृणा कर सकता है। पर आज देखता हू, कर सकता है, मनुष्य मनुष्य को घृणा कर सकता है। सावित्री, मैं शपथ खाकर कहता हू, मैं मृत्यु से बचने के लिए भी तुमको स्पर्श नहीं कर सकता।"

सावित्री चुप रही।

"अच्छा सावित्री, संसार में तुम लोगों के लिए रुपये से बड़ी वस्तु और कुछ भी नहीं है—नहीं तो वे तीनों नोट किसी तरह भी हाथ में न उठा सकती। आज मेरे पास जो कुछ भी है, तुम्हें सब ही दे दूगा, एक बात मुझे सचमुच बताकर जाओ।"

"पूछिए।"

"पूछ रहा हू।" कहकर सतीश पलभर चुप रहकर बोला, "पूछने में लज्जा मालूम होती है, तो भी जान लेने की इच्छा होती है। सावित्री, कभी किसी दिन क्या किसी को तुमने प्यार नहीं किया?"

सावित्री केवल पलभर मौन रहकर मृदु लेकिन सुस्पष्ट कण्ठ से बोली, "मेरी बात जान लेने से आपको क्या मिलेगा?"

सतीश को इस बात का उत्तर खोजने पर नहीं मिला।

सावित्री दरवाजे की ओर अग्रसर होकर बोली, "संसार में बहुत-सी बातें हैं जिन्हें आप नहीं जानते, फिर भी तो, दिन बीत ही जाते है यह बात न जानने से भी आपकी हानि न होगी।"

"शायद नहीं होगी।" कहकर सतीश ने लम्बी सास ली। लेकिन वह सावित्री के कानों तक पहुच ही गयी। वह ज्योंही मुह फेरकर खड़ी हुई त्योंही उसके रोग से पीले पड़े दुबले चेहरे पर सतीश की दृष्टि पड़ गई। चौंककर उसने पूछा, "तुम बीमार हो क्या सावित्री?"

सावित्री ने पलभर मे आखें झुकाकर कहा, "नहीं।"

"बहुत ही दुबली देख रहा हू।"

"कुछ भी नहीं है।" सावित्री उत्तर न देकर दरवाजे के बाहर जा पहुची। कमरे के भीतर से रुधे कण्ठ से एक आवाज आयी, "सावित्री, तुमने सचमुच ही क्या एक दिन के लिए भी मुझे प्यार नहीं किया?"

सावित्री चौखट पर टिककर खड़ी हो गयी, फिर उसने मुह नहीं घुमाया।

अन्दर का सजल कण्ठ इस बार रुलाई से टूट गया। वह बोला, "सावित्री एक ही बार बताती जाओ, इतने दिनों तक क्या मैं नींद के ही नशे मे इस दु:ख के बोझ को ढोता रहा हू? मेरे भाग्य में क्या सब ही भूल है, सब ही मिथ्या है? यह असीम दु:ख भी क्या मेरे भाग्य मे आदि से अन्त तक केवल धोखाधड़ी है?"

सावित्री क्षणभर सोचती रही। फिर खड़ी हो गयी। बोली, "बाबू मैं विवश होकर ही बिहारी से रुपया उधार मागने आयी थी, मगर सच कहती हू आपसे, ऐसे झझट में पड़ जाऊगी, जानती तो मैं आती ही नहीं।"

सतीश अवाक् हो रहा। यह कण्ठ-स्वर शात और मृदु था, लेकिन इसमें कोमलता का लेशमात्र भी नहीं था। क्षणभर पहले उसने ऐसे स्वर मे उससे भीख नहीं मागी थी।

उसने फिर कहा, "आपने शपथ करके कहा, मुझे घृणा करते है, आपकी खुशी होगी तो प्यार भी कर सकते हैं, क्रोध होने से घृणा भी कर सकते हैं—आप लोग यही करते भी है। लेकिन हमारे तो हाथ-पैर बधे हुए हैं। इस मार्ग मे जबकि कदम रख चुकी हू तब सुमार्ग-कुमार्ग जो भी हो, इसको पकड़कर न चलने से उपाय भी नहीं है।"

सतीश विह्वल विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर टकटकी बाधे देखता रहा।

सावित्री इस दृश्य को सह नहीं सकी, दूसरी ओर मुह घुमाकर वह जरा रुक गयी। उसकी अपनी बात अपनी ही छाती मे बाण मार रही थी, तथापि मरणाहत सैनिक की भांति अन्तिम बार के लिए

सतीश पर खड्ग प्रहार किया। कहा, "आपने पूछा था, किसी दिन आपको मैंने प्यार किया था या नहीं? नहीं, प्यार नहीं किया। वह सब ही थी मेरी छलना। किसको प्यार करती हू वह खबर तो आप जान गये हैं।"

सुनकर सतीश को ज्ञात हुआ मानो उसकी गृह-प्रतिमा को नदी के जल मे डुबाकर, रौंद-पीसकर, घासफूस का पिण्ड-सा बनाकर कोई उसी की आखो पर फेक रहा हो। उसने आखे घुमाकर कहा, "चली जाओ मेरे सामने से।"

सावित्री चोखट पर सिर टेककर प्रणाम करके चुपचाप चली गयी। सतीश ने उधर देखा तक नही, केवल अति मृदु एक पदचाप उसको सुनाई पडा।

नीचे विहारी के कमरे मे टिमटिमाता हुआ चिराग जल रहा था। उसी कमरे मे अधमुदी आखो से लुढकते-लुढकते प्रवेश करके सावित्री ने दोनो हाथ बढाकर मानो किसी एक वस्तु को पकडना चाहा, और दूसरे ही क्षण पृथ्वी पर मुह के बल मूर्च्छित होकर गिर पडी।

बिहारी उपेन्द्र आदि को ज्योतिष साहब के मकान की तरफ कुछ देर तक रास्ते मे आगे तक पहुँचाकर पाच मिनट पहले लौट आया था और अधेरे मे छिपकर सावित्री की अन्तिम बाते सुन रहा था। आज सारा दिन लगातार उसके साथ कितनी ही बाते की थी, निष्ठुर गृहस्थ के घर मे काम करने जाकर उसे जितना कष्ट उठाना पड़ा था, बीमार हो जाने पर कितनी पीडा सहनी पडी थी, सुनते-सुनते बिहारी रो पडा था। फिर भी अभी बाबू के सामने किसलिए सावित्री आदि से अन्त तक झूठी बात कह गयी, इसका कोई भी अर्थ बूढे की समझ मे नहीं आया। सावित्री के उतर जाने पर भी वह अंधेरे मे बाबू की दृष्टि से बचकर नीचे उतर आया। नीचे उसको न देख पाने पर रास्ते पर दौड गया। इधर-उधर कही भी न पाकर फिर मकान मे घुसकर झटपट वह अपने कमरे मे ढूढने लगा तो ठिठककर खडा हो गया। उसके बाद सावधानी से उसकी ओर जाकर बत्ती को तेज करके उसने पुकारा, "इस तरह जमीन पर क्यो पडी हो बेटी?" आहट मिलने पर स्नेहपूर्ण कण्ठ से बोला, "तबीयत ठीक नही है, ठण्डक मे बीमारी पकडेगी बेटी! उठो, मैं चटाई बिछाये देता हू।"

सावित्री निर्वाक् स्थिर रही।

बिहारी आश्चर्य मे पड गया। अच्छी तरह दिखाई नही पड रहा था, चिराग मुंह के सामने लाकर जरा झुककर देखते ही बूढा चिल्ला उठा, "बेटी, तुमने यह क्या कर डाला, बेटी!"

सावित्री की आखे बन्द थी, समूचा चेहरा पीला हो गया था। बडे चीत्कार से भी उसने उत्तर नहीं दिया—उसी तरह मृतवत् पडी रही।

ऊपर के कमरे मे सतीश उसी तरह मूर्तिवत् बैठा हुआ था। बिहारी के रोने की आवाज से चौंक उठा।

सतीश बिहारी के कमरे मे पहुचा और सावित्री के सिर के पास घुटने टेक कर बैठ गया। बत्ती लेकर उसके मुह की ओर देखते ही वह समझ गया कि वह मूर्च्छित हो गयी है। उसने कहा, "चिल्ला मत बिहारी, उसके मुह पर पानी छिडक। रसोइये को कह दे, एक पखा लेकर हवा करे।" साहस पाकर बिहारी जोरो से पानी के छीटे देने लगा, और हिन्दुस्तानी रसोइया जी-जान से पंखा झलने लगा।

थोड़ी देर बाद सावित्री ने लम्बी सास ली और दूसरे ही क्षण आखे खोलकर माथे का कपड़ा खीचकर उठ बैठी।

सतीश ने कहा, "महाराज, गरम-गरम थोड़ा-सा दूध ले आओ, कुछ अधिक ही लाना, भीगा कपडा जल्दी ही छोड देने को कह दे बिहारी।"

महाराज दूध लाने चला गया। मृदु स्वर मे बिहारी ने शायद यही कहा।

कुछ देर बाद चुप खडे सतीश ने फिर कहा, "आराम मालूम होने पर वह कहां जायगी, पूछकर एक गाडी ठीक कर देना बिहारी, इस दशा में पैदल न जाने पाये।"

सावित्री का समूचा अग कांप उठा, लेकिन क्षीण प्रकाश में किसी ने इसे लक्ष्य नही किया। वह अपने को सभालकर निश्चल हो रही।

सतीश और भी एक मिनट स्थिर रहकर बोला, "और यदि इसको आराम न मालूम हो, तो फिर—मेरे ही कमरे मे सो रहने को कह देना, मैं किसी दूसरी जगह जाता हू।"

सावित्री सिहर उठी, मानो वह किसी तरह भी अब अपने को सभाल रखने मे असमर्थ हो गयी।

सतीश ने एक छोटी-सी चाभी विहारी के आगे फेंककर कहा, "और देखो, दराज की चाभी तेरे पास ही रही, जितने रुपयो की आवश्यकता हो, जाते समय लेती जाये।" रोगी शरीर के साथ—सतीश की बातो ने विष और अमृत मिलाकर सावित्री के गले तक को फेनमय बना डाला।

सतीश ने कहा, "मैं पाथुरियाघाटा जा रहा हू विहारी, कल लौटने मे शायद कुछ दिन चढ जायगा।" एक कदम आगे बढकर बोला, "सावित्री, कोई सकोच मत करना, जो जरूरत पडे, ले जाना मैं जा रहा हू।"

सतीश चला गया।

सावित्री फिर एक बार जमीन पर गिर पडी। छाती फाड डालने वाले कण्ठ से रोकर बोली, "अजी, क्यो तुमने उस पापिष्ठा को इतना प्यार किया था? यही जो तुमने शपथ कर ली कि मुझे घृणा करते हो, यही क्या घृणा करना है? तुमको मेरा यह दु ख देना, इतना झूठ बोलना, सब ही तुम्हारे स्नेह की आग मे जलकर क्या राख हो गया? कौन मुझे बता देगा कि क्या करने से तुम्हारी घृणा पाऊगी?"

विहारी इस रुलाई का जरा भी अर्थ न समझ सका। निकट आकर सान्त्वना के स्वर में बोला, "अच्छा बेटी, बाबू के सामने इतनी झूठ बाते तुमने क्यों कही? जहा तुम गयी नही, जो अपराध तुमने किया नही, किसलिए उन सबको अपने कधे पर लेकर इतनी अपराधिनी बन गयी।

सावित्री ने रोते-रोते कहा, "विहारी, मेरी सभी बातें झूठी हैं। कहने मे छाती फट गयी है तो भी कहनी पडी हैं। लेकिन वे किसी काम मे तो नही आयी।"

विहारी मूढ की तरह उसके मुह की ओर निहारता हुआ बोला, "झूठी बाते फिर किस काम मे आती हैं बेटी?"

सावित्री ने बैठकर आखे पोंछ डाली। उसके मुह की ओर देखकर बोली, 'ठीक जानते हो विहारी, क्या वे किसी काम मे ही नही आती?"

विहारी ने क्षणभर सोचकर कहा, "वे आती तो हैं जरूर। अदालत मे झूठी बातों मे ही तो काम बन जाता है—वहा झूठी बातो का ही तो जय-जयकार है।"

सावित्री ने फिर उत्तर नही दिया। बडी देर तक स्थिर भाव से बैठी रहकर बोली, "क्यो मैंने इतनी झूठी बाते कही? हो सकता है एक दिन तुम समझ सकोगे। लेकिन उस बात को छोडो विहारी, मेरी दो बातें मानोगे?"

"मानूगा तो अवश्य ही बेटी! क्या बात है?"

"एक बात यह है कि मेरे चले जाने पर भी किसी दिन बाबू को मत बताना कि मैंने आदि से अन्त तक झूठी बातें कही थी।"

विहारी चुप हो रहा। सावित्री ने कहा, "और भी एक बात है, मैं अपना पता-ठिकाना तुमको लिख भेजूगी। यदि कभी समझो कि मेरा आना आवश्यक है तो मुझे लिख देना। तुमको बताने में मुझे लज्जा नही है विहारी, मेरे सिवा उनको कोई नियत्रण मे न रख सकेगा और विपत्ति के दिनो मे उनकी कोई मुझसे अधिक सेवा भी न कर सकेगा।"

विहारी रोने लगा। आखें पोछकर बोला, "मैं सब जानता हू बेटी।"

सावित्री उठ खडी हुई। बोली, "तो मैं जा रही हू। उनको तुम्हारे हाथो में सौंपकर जा रही हू। देखो विहारी, मेरी दो बातें मान लेना। भगवान् करे, तुम लोग सुखी रहो, मुझे यह अपना काला मुह लेकर फिर तुम लोगो के सामने न आना पडे।" यह कहकर सावित्री आखें पोंछकर आगे बढ गयी।

सडक पर आकर गाडी किराये पर ठीक करके सावित्री को चढाकर विहारी ने पृथ्वी पर माथा टेककर प्रणाम किया। आखें पोछकर गला साफ करके बोला, "बेटी, मेरी भी एक प्रार्थना है। आज जैसे लडके की तरह अपना समझकर तुमने प्यार किया था, आवश्यकता पडने पर फिर याद करना।"

' अवश्य करूगी।''

गाडी चली गयी। विहारी फिर एक वार रास्ते पर माथा टेककर प्रणाम करके धोती मे आखे पोछकर डेरे पर लौट आया।

बाईस

''पाथुरियाघाटा जा रहा हूँ''—कहकर सतीश रात के ग्यारह वजे डेरे के वाहर आ खडा हुआ। थोडा-सा मार्ग तय करते ही समझ गया कि थकावट की कोई हद नही है। पैर अचल है, प्रत्येक अग पत्थर की तरह भारी है। कितना बडा गभीर अवसाद उसके तन-मन मे आज व्याप्त हो रहा है।

कुछ दिन पूर्व की ऐसी ही एक रात की वात उसे स्मरण आ गयी जव विहारी ने सावित्री और मोक्षदा के घर से वापस लौटकर कहा था, ''वह नही है, विपिन वावू के पास चली गयी है।'' उस दिन उस समाचार ने कुछ क्षण के लिए उसको विमूढ कर दिया था। लेकिन दूसरे ही क्षण अभिमान तथा अपमान की जो भयकर ज्वाला प्रज्वलित हो उठी थी वह किले के निर्जन मैदान मे स्तब्ध आकाश के नीचे आखो के आसू मे वुझ न जाती तो जितने ही दिनो मे क्यो न हो सावित्री को विना दग्ध किये शात न होती। वैसी ही रात तो आज भी आयी थी, फिर वैसी ही भयकर ज्वाला क्यो नही भडक उठी?

एक खाली गाडी जा रही थी, वुलाकर वोला, ''पाथुरियाघाटा चलेगा?''

गाडीवान ने गाडी रोककर मार्ग के प्रकाश मे सतीश की ओर देखते ही सोचकर कि कोई शराबी मनवाला है, उसने कहा, ''वह तो वहुत दूर है, तीन रुपया लगेगा वावू। रुपये है न?''

''हा हैं।'' कहकर सतीश चढ वैठा, और गाडी के एक कोने मे सिर टेककर आखे मूद ली। थकावट ने उसको इस तरह घेर लिया था कि इससे अधिक वाते कहने की शक्ति उसमे नही थी।

बहुत देर वाद बहुत-सी गलियो मे घूमकर गाडीवान ने विरक्त होकर पूछा, ''किस जगह जाइएगा वावू, ठीक तौर से वता दे। मैं व्यर्थ ही नही घूम सकता।'' सतीश ने अपने डेरे का पता वता दिया। कुछ देर वाद गाडी आकर दरवाजे पर पहुच गयी। कई वार पुकारने पर विहारी ने आकर किवाड खोल दिया तो सतीश ने चुपके से पूछा, ''विहारी, सावित्री क्या कमरे मे है?''

विहारी ने विह्वल की भाति निहारते हुए कहा, ''नही वावू, वह तो नही है। वह उसी समय चली गयी।''

''चली गयी?''

''हा वावू। वह नही है।''

सतीश लम्वी सास छोडकर विहारी के विछौने के छोर पर वैठ गया। उसका यह न रहना सुख की वात है या दु:ख की, इसकी ठीक उपलब्धि वह नही कर सका।

विहारी ने पलभर रुककर मीठे स्वर से कहा, ''मैंने गाडी ठीक कर दी थी। चलिए, आपके कमरे मे बत्ती जला आऊ।''

''नही रहने दो, मैं ही जला लूगा।'' कहकर सतीश उठकर चला गया।

दूसरे दिन प्रात काल जव उसकी कच्ची नीद टूटी, तब दिन काफी चढ आया था।

एक प्रचण्ड आधी की भाति सब कुछ उलट-पुलटकर इस एक रात मे कितनी ही घटनाए हो गयी हैं। उन्ही इधर-उधर फेके हुए विखरे हुए चिन्हो के वीच से बडी देर तक उसका मन विरक्त रहा। विहारी तम्वाकू देकर बाहर चला जा रहा था। सतीश ने पुकारकर कहा, ''सुनो विहारी, कल किस समय वह यहां आयी थी रे?''

सावित्री के चले जाने के वाद उसके सब तरह से दुर्भाग्य याद करके विहारी का व्यथित मन भीतर-ही-भीतर बहुत रो रहा था। उसने मुह झुकाये ही मृदु स्वर से कहा, ''दोपहर को।''

''उसको किस तरह इस मकान का पता लगा?''

''यह तो मैं नही जानता बाबू।''

सतीश उसके मुह की ओर कठोर दृष्टि से देखकर बोला, "क्यो रे बिहारी, तू क्या सचमुच ही मुझे इतना बडा बैल पा गया है कि यह भी मैं नही समझ सकता? सच्ची बात बता?"

बिहारी आश्चर्य मे दोनो आखे फाड स्वामी के मुह की ओर देखता रहा।

सतीश ने कहा, "देख क्या रहा हे? क्या तू विपिन के यहा नही जाता? सावित्री के साथ तेरी भेट-मुलाकात, बातचीत नही होती?"

"नही बाबू!" कहकर बिहारी के बाहर चले जाने को तैयार होते ही सतीश क्रुद्ध कण्ठ मे बोला, "खडा रह, जाना मत। क्या तूने उसको यहा आने के लिए सिखाया नही था?"

बिहारी ने चुपचाप सिर हिलाकर बताया कि वह नही जानता।

सतीश धमकाकर बोला, "फिर नही।"

बिहारी सिर झुकाये ही था, चौंककर उसने मुह ऊपर उठाकर देखा।

सतीश कहने लगा, "फिर नही? तो फिर किस तरह उस हरामजादी को इस डेरे का पता लगा? जा, तू भी उसी के पास जाकर रह, मुझे आवश्यकता नही है। मैं घर मे शत्रु का पालन नही कर सकता? आज ही तुम जाओ—तुमको मैंने जवाब दे दिया।"

बिहारी ने एक बात भी नही कही। केवल उसके आश्चर्य से भरी दोनो आखो के कोने से आसुओं की लडी लुढक पडी।

इस आसू को सतीश ने देखा। क्षणभर मौन रहकर उसने प्रश्न किया, "रात को वह कहा चली गयी?"

बिहारी आखे पोछकर बोला, "चिट्ठी लिखकर अपना पता-ठिकाना बताने को कह गयी है।"

सतीश फिर क्षणभर चुप रहकर कोमल होकर बोला, "बहुत दुबली दिखाई पडी। बहुत बीमार थी शायद?"

बिहारी सिर हिलाकर बोला, "हा।"

"इसीलिए तो वहा जगह नही मिली?"

बिहारी ने फिर सिर हिलाकर सम्मति प्रकट की।

सतीश फिर कुछ क्षण चुप रहकर बोला, "लेकिन, इस बार तुमको मे सावधान कर देता हू बिहारी, मेरे डेरे मे वह फिर न घुसने पाए। या किसी प्रकार बहाना बनाकर मेरे साथ भेट करने की चेष्टा न करे। मेरी चाभी कहा है? जाते समय कितने रुपये तूने दिये?"

बिहारी चाभी निकालकर बोला, "रुपये नही दिये।"

"दिये नही? क्यो नही दिये? तुझे तो मैंने देने को कहा था?"

"उसने लेना नही चाहा।" कहकर बिहारी बाहर चला गया। सतीश ने उसको फिर पुकारकर लौटा लिया। सावित्री उपस्थित नही थी, बिहारी उसे प्यार करता है—इसलिए इस बिहारी को चोट पहुचा सकने पर भी मानो कुछ क्षोभ मिट जाता है। उसके आगे आते ही सतीश ने पूछा, "उसके बाद तुम लोगो मे क्या परामर्श हुआ?"

बिहारी फिर अपने को रोके न रख सका। रुद्ध कण्ठ से बोला, "बाबू, सावित्री क्या परामर्श करेगी मेरे जैसे आदमी के साथ? आपके चरणो मे मैंने अपराध किये हो, तो सिर झुका देता हू, जो इच्छा हो दण्ड दीजिए, बूढे मनुष्य को इस प्रकार सताइये मत।" यह कहकर वह फूट-फूटकर रो पडा।

सतीश के नेत्र भी एकाएक मानो गीले हो उठे। "अच्छा, तू जा।" कहकर उसको विदा करके फिर एक बार लेट रहा और नेत्र बन्द करके तम्बाकू पीने लगा। बडी जलन से जलकर उसके मुह से जो भी भाषा सावित्री के प्रति क्यो न निकली हो, किन्तु उसके उस रोग पीडित चेहरे की स्मृति भीतर-ही-भीतर उसको बहुत ही व्यथित कर रही थी। अब बिहारी की बातो से यद्यपि कुछ स्पष्ट नही हुआ फिर भी रुख से जान पड़ा मानो सचमुच ही वह और कही चली गयी है। कहा चली गयी है? दो वर्ष पहले सतीश के नवनाट्य समाज में बिल्वमगल का अभिनय हुआ था। हठात् उसे वही बात स्मरण हो आयी। उसको क्यो भूल नही सकता? यह कैसा आश्चर्य है। जो सावित्री दुष्टग्रह की भांति उसको केवल लगातार पीडा

पहुचा रही है, जो अभी केवल कुछ ही घटे पूर्व अपने मुह से स्वीकार कर गयी है, वह उसकी कोई नही है—दोनो का कोई सबध ही नही है—जिसके विरुद्ध आज उसकी घृणा का अन्त नही है, तो भी उसी के लिए क्यो सम्पूर्ण मन मे हाहाकार उठ रहा है? यह कैसी विचित्र बात है। ऐसा भीषण विद्वेष और इतना वडा आकर्षण एक ही साथ किस तरह उसके हृदय के अन्दर स्थान पा रहे हैं। हाय रे! यह यदि वह एक बार भी देख पाता, उसके एकान्त मे रहने वाला हृदय जरा उसके नेत्रो, कानो को वन्द करके अब भी उसी एक विश्वास से अटल होकर पडा है—कि सावित्री केवल मेरी ही है—मुझसे बढकर उसके लिए ससार मे और कोई नही है—यहा तक कि सावित्री के विरुद्ध उसके अपने मुह की बाते तिलभर भी उसे इस विश्वास से विचलित न कर सकी—तो उस दशा मे सभवत सतीश इस परम आश्चर्य का अर्थ समझ सकता।

तेईस

दो घटे बाद सतीश ने पाथुरियाघाटा जाने के लिए बाहर निकलकर मन ही मन कहा—ओह कैसी मूर्खता है। जाने दो, मैं भी वच गया। मेरे सर से भी भूत उतर गया। मार्ग मे चलते-चलत वह सोचने लगा, 'लेकिन उपेन भैया को आज कैसे मुह दिखाऊगा?' क्योंकि आग मे हाथ डालने से क्या होता है, इसको जैसे वह निश्चित रूप से जानता था, अपने बाल्यकाल के स्नेही उपेन भैया को ठीक वैसे ही पहचानता था। उनके सामने इन सब अपराधो की क्षमा नही है, आजन्म स्नेह के बदले भी उपेन भैया से तनिक भी प्रश्रय पाने की आशा नही है, इस बात को उससे अधिक और कोई नही जानता था।

किरणमयी के मकान का मुख्य द्वार खुला था। उसी स्थान पर सतीश चुपचाप खडा हो गया और अन्दर प्रवेश करने के पहले सभी बातो पर एक बार अच्छी तरह विचार करने लगा।

उसके ध्यान में आया कि केवल उपेन भैया ही उसके मित्र, गुरु और आदर्श हैं। उससे बढकर अपना कौन है? उसी उपेन भैया के पास जाकर सर उठाकर खडे होने का अब कोई उपाय नही रह गया है। कल्पना से वह स्पष्ट देखने लगा, आज भेट होने के साथ ही अत्यन्त कठोर शुद्ध आखो की दृष्टि उनके बन्धुत्व स्नेह, प्रेम सभी को बिल्कुल ही जला डालेगी। तनिक भी क्षमा न करेगी।"

यही क्या सब कुछ है? इस मकान का द्वार भी इसके लिए सदा के लिए बन्द हो जायेगा। फिर यहा वह कौन मुह लेकर प्रवेश करेगा?

लेकिन इतनी हानि, इतनी लाञ्छना जिसके कारण हुई, इतना बडा सत्यानाश जो कर गयी, वह उसकी कौन थी? जो स्वय पकड मे नही आयी, लेकिन मुझे बाध गयी। उसने स्वयं तो दु ख भोग नही किया, लेकिन मुझे दु ख के सागर मे डुबा गयी। जिस बात को सत्य कहकर मैं स्वीकार नही कर सकता, उसे झूठ कहकर उडा देना सभव है। एक लम्बी सास छोडकर सतीश ने मन ही मन कहा, "सावित्री तुमने दु ख दिया है, इसके लिए अब दु ख नही है—लेकिन सच और झूठ को एक साथ मिलाकर यह कैसी विडम्बना मे तुम मुझे बाधकर रख गयी हो।"

दासी ने एकाएक आकर कहा, "आपको बहूजी बुला रही हैं।"

सतीश ने चौंककर प्रश्न किया, "उपेन्द्र आ गये हैं?"

"हा, कल वडी रात को आये हैं।"

"उनका छोटा भाई! छोटी बहूजी?"

दासी ने सर हिलाकर कहा, "कहा? नही तो, वह अकेले ही आये हैं। आने के बाद से ही हमारे बाबू के पास बैठे हुए हैं।"

"बाबू कैसे हैं?"

दासी ने लम्बी सास लेकर कहा, "और बाबू! समाप्त होने में देर नही है।"

सतीश ने एक क्षण चुप रहकर प्रश्न किया, "भाभी कहा हैं?"

"वह अभी स्नान कर रसोईघर गयी हैं।"

सतीश और कोई प्रश्न न करके धीरे-धीरे दबे पाव सीधे रसोईघर मे चला गया। किरणमयी संभवत: प्रतीक्षा ही कर रही थी, सतीश के द्वार के निकट आते ही उसने उत्सुकता से पूछा, "मकान मे प्रवेश न करके बाहर खडे रहे—यह क्या बबुआजी, आखें धस गयी हैं, चेहरा इतना उदास है—रात को क्या नीद नही आयी?"

सतीश के कानो मे प्रश्न के प्रवेश करते ही उसका क्रोध आग की तरह लाल होकर फिर उसी क्षण बुझकर राख बन गया। बोला, "हा, सारी रात जागकर उसको लेकर आमोद-प्रमोद करता रहा। सुनकर संतुष्ट हो गयी न? फिर यहा मैं न आऊ यही न? किन्तु उस छोटे मनुष्य उपेन बाबू से कहना, मुझसे पूछते तो मैं सच्ची बात ही बता देता। ससार मे उसके सिवा और भी मनुष्य हैं जो सत्य बोल सकते हैं। इसके सिवा, मेरा ऐसा कोई सबध भी नही है कि डरकर मुझे असत्य बोलना पडता। कह दो उससे—समझ गयी न भाभी। यह कहकर वह वापस घूम पडा।

अचानक सतीश का यह मनोभाव देखकर, ऐसा कण्ठ-स्वर सुनकर, किरणमयी किंकर्तव्यविमूढ-सी हो गयी। किरणमयी ने घबराकर बाहर आकर पुकारा, "जाओ मत बबुआजी, सुनो तो ।"

सतीश चिल्लाकर बोला, "क्या होगा सुनकर। सच कहता हू भाभी, वह इतना नीच मनुष्य है, यह मैंने भी नही सोचा था। जहा वह रहता है वहा मैं नही रहता। आज मैं समझ रहा हूं क्यो बाबूजी ने उस दिन चिट्ठी लिखी थी। लेकिन उस नीच से जाकर कह देना मैं उसकी परवाह नही करता।"

किरणमयी ने व्याकुल होकर पूछा, "किससे? क्या कह रहे हो बबुआजी?"

"ठीक कह रहा हू भाभी, ठीक कह रहा हू। उससे कह देने से वह समझ जाएगा। लेकिन आज तुमसे भी कह जाता हू। बिना अपराध के ही अपने घर का द्वार मेरे मुह के सामने तुमने बन्द कर दिया है। लेकिन एक दिन समझोगी, सतीश कितना ही बुरा क्यो न हो, उस पर विश्वास करके किसी ने किसी दिन धोखा नही खाया है। और एक बात उससे कह देना, उसकी जितनी इच्छा हो—जहा तक हो सके सर्वनाश का पयत्न करे, लेकिन मैं भी उसको अब अपना मुह न दिखाऊगा, वह भी मुझको. ." एकाएक सतीश दरवाजे की ओर देखकर रुक गया, और दूसरे ही क्षण मुह फेरकर आधी की तरह शीघ्रता से चला गया। उसकी दृष्टि का अनुसरण करके किरणमयी की भी दोनो आखें पत्थर की मूर्ति की भांति स्तब्ध उपेन्द्र के मुह पर जा पडी। वह चिल्लाहट सुनकर रोगी की शय्या के पास से उठकर चले गये थे और कमरे का द्वार थोडा-सा खोलकर खडे सुन रहे थे।

किरणमयी को एक बार ख्याल हुआ—बात क्या है, उपेन्द्र इसे जान लेना चाहेंगे। लेकिन वह कुछ भी न पूछकर—चुपचाप किवाड बन्द करके अन्दर चले गये।

किरणमयी के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। यह कैसी घटना घट गयी? सतीश अपने उपेन भैया का उसके मुह पर कैसा अपमान कर गया, किसलिए? वह रसोईघर मे वापस जाकर हाथ के कामों को मानो स्वप्नाविष्ट की तरह करने लगी, लेकिन मन मे एक गभीर क्षुब्ध आश्चर्य सहस्रों रूप धारण करके निरन्तर चक्कर लगाने लगा। उसके घर में ही जो बहुत बडी विपत्ति शीघ्र ही आने वाली थी, क्षणभर के लिए वह उसे भी भूल गयी। केवल सोचने लगी, कल सध्या के बाद सतीश अपने डेरे पर वापस चला गया था, उसके बाद इसी एक ही रात मे ऐसी क्या घटना घटी है जिससे वह ऐसा उन्मत्त आचरण करके चला गया।

फिर भी, उपेन्द्र ने एक बात भी जान लेने की इच्छा प्रकट नही की। उसको ऐसा मालूम हुआ, क्षणभर के लिए उपेन्द्र के सूखे कठोर मुख पर मानो असहनीय आश्चर्य फूट उठा, लेकिन यह सच है या केवल उसके ही मन की कल्पना है इसका भी वह निश्चय न कर सकी।

उपेन्द्र वापस चले गये और रोगी के बिछौने के एक छोर पर अपने पहले के स्थान पर जा बैठे। वह स्वाभावत ही शात प्रकृति के थे। एकाएक किसी पक्ष मे या विपक्ष मे मतामत प्रकट नही करते थे। लेकिन वह सहज निर्मल विचार शक्ति उनमे उस समय किसी तरह न रह सकी जब सुरबाला आदि को ज्योतिष के घर पहुचा कर बडी रात को अकेले हारान के घर मे आये थे। उस समय हारान का श्वास-कष्ट भयकर रूप से बढ़ गया था। भीतर होश था या नही, यह भी अनुमान करना कठिन था।

चारो ओर देखकर उनकी अवस्था बड़ी भीषण मालूम होती थी। फिर भी कही मानो जरा भी व्याकुलता नही थी। इसके पहले, उन्होंने जो दो-चार मृत्यु-शय्याए देखी थी, उनका इसके साथ कितना अधिक अन्तर था। रोगी के सिरहाने उसी तरह एक तेल का दीपक अत्यन्त धीमे जल रहा था, मा कमरे के एक कोने मे चटाई बिछाकर सो रही थी—केवल किरणमयी जागती हुई बैठी थी, लेकिन उसके भी आचरण मे घबराहट का कोई भी लक्षण ढूंढ़कर न पाने से उनको ऐसा ज्ञात हुआ मानो वह परम उदासीनता से पति की मृत्यु की प्रतीक्षा मे बैठी हुई है। मा का भी कैसा निर्लिप्त भाव है, अपनी बीमारी से व्याकुल हैं।

कल रात को उपेन ने जो कुछ देखा था, उससे उन्हे स्पष्ट जान पडा था कि केवल मृत्यु की विभीषिका ही इन दोनो स्त्रियो के भीतर है, यह बात नही अपितु हारान का जीवित रहना ही मानो एक बाध की तरह बन गया और वह इस छोटे से परिवार के सुख-दु:ख के प्रवाह को रोककर कूडा-करकट से पीडित कर रहा है। जिस प्रकार भी हो, इस अवरोध से मुक्ति पा लेने से ही ये लोग मानो भारी संकट मे बच जायेगी।"

उपेन्द्र अभी तक किरणमयी को पहचान नही सके, यह सुअवसर ही उनको प्राप्त नही हुआ। लेकिन सतीश ने पहचान लिया था। इसीलिए पहले-पहल जिस दिन हारान के बुलाने से इन लोगो ने इस घर मे प्रवेश किया था, किरणमयी का उस रात का आचरण सतीश तो भूल गया ही था, उससे अधिक, अपनी कठोरता का सहस्र अपराध स्वीकार करके, उनकी क्षमा पाकर उसने भाई का स्थान ले लिया था, लेकिन उपेन को वह सुअवसर नही मिला। इसीलिए कल रात्रि को कमरे मे घुसकर एक ही क्षण मे उनका अप्रसन्न चित्त मा के विरुद्ध विमुखता और स्त्री के प्रति घृणा से परिपूर्ण हो गया था। इसीलिए सवेरे किरणमयी जब चाय दे गयी, तो उन्होने उसे स्पर्श तक नही किया।

सतीश के आने-जाने का पता अघोरमयी को नही चला। उस समय वह नीचे अपने काम मे लगी हुई थी, अब धीरे-धीरे कमरे में घुसकर लडके को देखकर रोने लगी। किसी ने उनको सान्त्वना नही दी, मना भी नही किया। एकाएक उनकी चाय की कटोरी पर नजर पड जाने से रोने के सुर से उन्होने प्रश्न किया, "क्यो बेटा, चाय नही पी?"

उपेन्द्र संक्षेप में बोले, "नही ।"

अघोरमयी अत्यन्त व्यग्र हो उठी, "नही, नही, यह नही होगा बेटा, सारी रात जागते रहे हो—इस पर यदि तुम बीमार पड जाओगे तो मैं फिर नही बचूंगी उपेन।"

उपेन कुछ बोले नही, केवल अघोरमयी के मुंह पर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर दूसरी ओर ताकने लगे। इसका अर्थ समझने की शक्ति अघोरमयी मे नहीं थी। बार-बार जिद करने लगीं, किन्तु इस उस दृष्टि का अर्थ समझ गयी किरणमयी। इस कमरे मे इस मृतप्राय सन्तान के निकट बैठकर दूसरे के लडके के लिए जननी की यह व्याकुलता कितनी असंगत और अशोभनीय जान पडी यह उसकी तीक्ष्ण बुद्धि से छिपी नही रही। लेकिन यह जो कुछ भी हो, उपेन्द्र भी किसलिए इस एक तुच्छ अनुरोध के विरुद्ध इस तरह दृढ प्रतिज्ञा करके कडे बनकर बैठे रहे, इसका भी कोई कारण किरणमयी न समझ सकी। उनका यह व्यवहार किरणमयी की दृष्टि मे कम अशोभनीय नही जान पडा।

दोनो ओर की यह जिद डाक्टर के आ जाने से स्थगित हो गयी। अंग्रेज डाक्टर दो-तीन मिनट तक परीक्षा कर चुकने पर अपना अन्तिम उत्तर देकर चले गये और उसके साथ यह भरोसा भी दे गये कि अगली शेष रात्रि के पहले मृत्यु की सम्भावना नही है।

उस समय दस बजे थे। किरणमयी ने तनिक निकट आकर मृदु स्वर से कहा, "आपको एक बार वहा जाकर उन लोगों से भेंट कर आना भी तो आवश्यक है।"

उपेन्द्र ने किसी ओर न देखकर कहा, "वैसी आवश्यकता नहीं है। वे लोग सब बाते जानते हैं।"

किरणमयी ने कहा, "तो भी एक बार जाइए। अभी तो कोई भय नहीं... तब तक स्नान करके जरा विश्राम करके लौट आ सकेंगे।"

उपेन्द्र चुप रहे। किरणमयी मृदु और दृढ़ स्वर से बोली, "जरा सोचकर देखिए, स्नान-भोजन न करके उपवास करके अब आमने-सामने बैठे रहने से तो कोई फल नहीं है। गाडी का सफर करके आये हैं,

कल सारी रात यहा बैठे रहे, उसके बाद आज। दिन-रात बराबर इस तरह बैठे रहने से बीमार पड़ सकते हैं। सतीश बबुआ भी नहीं हैं—इस समय आप सचमुच ही बहुत थके जान पडते हैं। मैं बैठी हुई हूँ तब तक आप घूमकर आइये। बात मानिए—उठिए।"

एकाएक मुह ऊपर उठाकर देखते ही उपेन्द्र ने दृष्टि झुका ली। इस प्रकार इतनी बाते किरणमयी ने पहले कभी उनके सामने नही कही थी। इस कण्ठ-स्वर में शुभाकाक्षा की अधिकता नही थी, फिर भी एक दृढ़ता थी, कोमलता थी। उपेन्द्र के कानो मे किरणमयी का यह स्नेह-भरा प्रथम अनुरोध बहुत ही सुन्दर जान पडा। बहुत दिन पहले एक रात के समय जो तीव्र कण्ठ, जो कठिन भाषा इसके मुँह से ही वह सुन चुके थे, उसके साथ इसका बडा ही आश्चर्यजनक अन्तर जान पडा।

उपेन्द्र ने किसी ओर न देखकर प्रश्न किया, "आप लोगों का दिन आज कैसे बीतेगा?"

किरणमयी ने कहा, "यह बात क्यो पूछ रहे हैं। हम लोगो पर आज जो दु ख आने वाला है, उसमें कोई भाग ले न सकेगा। लेकिन आप अब देर न करें, इसी वक्त उठिए।"

सच्ची बात कहने का यह कितना अद्भुत शान्तिपूर्ण ढग था। क्षणभर के लिए उपेन्द्र ने सब कुछ भूलकर अपनी आश्चर्य-भरी दोनों आखो की परिपूर्ण दृष्टि किरणमयी के मुह पर लगा दी। पहले ही उनकी दृष्टि में उसकी माग में सिन्दूर की चमकती हुई रेखा पड गयी जो नारी-सौभाग्य का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन है। प्रबल उच्छ्‌वास से उपेन्द्र का सारा शरीर एक बार काप उठा।

किरणमयी ने उसे देख लिया, लेकिन उसका आभास मात्र भी उसके मुख पर प्रकट नहीं हुआ। उसने कहा, "आप उठिए, मैं उनको जरा दूध पिला दूँ।"

उपेन्द्र उठकर बैठ गए। बोले, "दवा?"

किरणमयी व्यथित स्वर से बाधा देकर बोल उठी, "नहीं नहीं, अब उसकी आवश्यकता नहीं है। बहुत-सी दवाइया बरबस मैंने पिलायी हैं। अब पिलाना नहीं चाहती।"

उपेन्द्र ने प्रतिवाद नही किया। दवा की आवश्यकता वह स्वय भी नही जानते थे। पति को दूध पिलाकर उसने ज्यो ही पुन अनुरोध किया त्यों ही उपेन्द्र उठ खडे हुए और अति शीघ्र स्नान-भोजन करके लौट आयेंगे कहकर दरवाजे की ओर बढ़ चले। उसी समय किरण ने मृदु स्वर से प्रश्न किया, "आते समय सतीश बबुआ के घर से होते आयेंगे क्या?"

उपेन्द्र घूमकर खडे हो गये, बोले, "क्यो?"

किरणमयी ने कहा, "मेरे पास तो कोई आदमी नही है कि उनके डेरे पर एक बार किसी को भेजूंगी, इसीलिए कह रही थी आप यदि एक बार ..।"

उपेन्द्र को एकाएक ज्ञात हुआ, इस बुला लाने के प्रस्ताव से उन्ही को मानो विशेष रूप से ठोकर लगायी गयी है। इसीलिए तीखे स्वर से उन्होने पूछा, "उससे आपको विशेष कुछ आवश्यकता है?"

यह कण्ठ-स्वर और उसका तात्पर्य किरणमयी से छिपा नही रहा। लेकिन इसीलिए अपने कण्ठ-स्वर से उसने उसे और बढ़ा नही दिया। केवल कहा, "इस दुर्दिन मे तो मुझे सभी की आवश्यकता है उपेन बाबू? उसके अतिरिक्त, किस कारण वह आप पर इतना क्रोध करके चले गये, यह भी नही जानती। इसीलिए मैं सोचती हूँ, एक बार उनको बुला लाने का प्रयत्न करना क्या अच्छा नही है?"

उपेन्द्र ने मन ही मन और चिढ़कर कहा, "आप उनके लिए उद्विग्न मत होइए। वह तो मेरा ही मित्र है। अपना भला-बुरा हम लोग ही ठीक कर सकेंगे। फिर भी आपको यदि विशेष कार्य हो तो उसके पास आदमी भेज सकता हूँ—स्वयं जाने का समय मेरे पास नही है।"

किरणमयी ने मृदु स्वर मे कहा, "यही अच्छा है। आदमी भेज दीजिएगा। उनका आना आवश्यक है। मित्र के साथ मित्र का मेल-समझौता जब भी हो, लेकिन मैं उनकी बहन हूँ। अपनी बड़ी विपत्ति के दिनो मे अपने को दण्ड देने का अवसर आप लोगो को न दूँगी।"

"नही-नही, इसकी आवश्यकता ही क्या है—मैं खबर भेज दूगा।" कहकर उपेन्द्र बाहर चले गये।

गोकि भाई-बहन के नये रिश्ते कहा, किस रूप में स्थापित होगा, इसकी कोई जिम्मेदारी उस पर नही, इस बात को वह मन ही मन स्वीकार कर लिया। फिर भी जिस आत्मीयता की धारा एक दिन उसके

बीच से प्रवाहित हो रही थी, वह आज उसे अतिक्रम कर प्रवाहित होने लगी है, इस समाचार से उसे चोट पहुँची। मित्र के प्रति वह जो मन मे आये कर सकता है, पर भाई-बहन के निकटतम सम्बन्ध मे किरणमयी किसी मित्र को हस्तक्षेप नही करने देगी, इसे समझाने के लिए अस्पष्टता का किंचित अश बाकी नही रखा गया है।

छोटी गली को शीघ्रता से पार करके उपेन्द्र मुख्य सडक पर पहुँचे और एक गाडी किराये पर ठीक करके उस पर सवार हो गये। अन्धकार, शीतल मृत्युपुरी से बाहर आकर शहर के इस प्रखर सूर्यालोकदीप्त, जीवन्त, कर्मचचल राजपथ पर खडे होने पर भी उसने आराम अनुभव नही किया। भीतर ही भीतर वह न जाने कैसी जलन अनुभव करने लगा।

आवश्यकता पडने पर किरणमयी किस प्रकार उग्र भाव से कठोर हो जा सकती है, इसे उन्होने एक दिन देखा था, लेकिन उसका शान्तिपूर्ण विरोध भी उससे कम कठोर नही है, इसे उन्होने आज की इन थोड़ी सी बातो से ही स्पष्ट अनुभव कर लिया। सतीश के साथ उसका एक विवाद उपस्थित हो गया है, किरणमयी को इसका पता चल गया है, यह बात भी उनकी समझ मे आ गयी। लेकिन, झगडे का कारण चाहे जो कुछ भी हो, दोष-गुण का विचार यह स्वय ही करेगी, और किसी को हाथ डालने न देगी, यह बात घूम-फिरकर उनके मन मे आने-जाने लगी।

चौबीस

स्त्रियो के सबंध मे उपेन्द्र को अपना मत परिवर्तन करने का समय आ गया। आज उनको मन ही मन स्वीकार करना पडा, स्त्रियो के विषय मे उनकी जो भी धारणा थी, उसमे बहुत बडी भूल थी। ऐसी नारी भी है, जिसके सामने पुरुष का आकाशभेदी मस्तक आप ही झुक पडता है। शक्ति काम नही करती, सिर झुका देना ही पडता है। ऐसी ही नारी है किरणमयी। उस रात्रि को जब प्रथम परिचय हुआ था, इसी के सबध मे उपेन्द्र ने सतीश के सामने मुह से दूसरी तरह की बाते कही थी, पर हृदय मे सकरुण अवज्ञा के साथ सोचा था कि वह उसी प्रकार की उग्र स्वभाव की स्त्री है—जो अत्यन्त साधारण कारण से ही होश-हवास खोकर विक्षिप्त की भांति विष खाकर या गले मे फासी लगाकर भयकर काण्ड कर बैठती है पर आज उन्होने देख लिया और समझ लिया कि नही, ऐसी बात नही है। यह अत्यन्त सकट के बीच भी बुद्धि ठीक रखना जानती है और जरा भी उग्र न होकर सरलता से अपनी इच्छा का प्रयोग कर सकती है। इस घर में सतीश का आना-जाना उचित-अनुचित जो भी हो, किरणमयी ने बुलाया है, वह खबर सतीश को देनी ही पडेगी।

इस बात की राह मे जाते-जाते वह जितना मन्थन करने लगे, उनका मन उतना ही दु ख से भर उठा। क्योंकि सतीश को उपेन्द्र बहुत अधिक स्नेह करते थे इसीलिए उसके ऊपर आज क्रोध की भी मानो सीमा नही थी। उसने जो अपराध किया है, उसका विचार किसी दूसरे दिन होगा, लेकिन आज जो सतीश खुले तौर से, उनके मुह के सामने उसके सदा के अधिकृत अग्रज के आसन को दर्प के साथ पैरो से रौंद गया, उसने तनिक भी सकोच नही किया, सब दु खों से बढ़कर यही दु ख उपेन्द्र के कलेजे पर बिध गया था।

कुछ दिन पहले उपेन्द्र को घर मे बैठकर एक गुमनाम पत्र के द्वारा सतीश के विषय मे बाते ज्ञात हुई थी। यह पत्र राखाल ने लिखा था। जब दोनों मे प्रेम था, तब सतीश के मुह से ही राखाल ने उसके इस परम मित्र की बहुत-सी असाधारण कहानिया सुनी थी। उपेन्द्र भैया की असाधारण विद्या-बुद्धि और उनके शुभ निष्कलक चरित्र की ख्याति कैसी थी। सतीश को बडा गर्व था अपने उपेन भैया का, और उनके असीम स्नेह ने उसी स्थान पर चोट पहुंचाने के समान भयकर आघात, सतीश के लिए और कुछ भी नहीं हो सकता, धूर्त राखाल इस बात को भली प्रकार समझ गया था।

लेकिन इस पत्र ने उस समय कुछ भी कार्य नही किया था। उपेन्द्र ने पत्र पढ़कर फेंक दिया था और पत्र-लेखक को लक्ष्य करके मुसकराते हुए कहा था, "तुम चाहे जो भी हो और सतीश की जितनी ही गुप्त बातों की जानकारी तुमको क्यो न हो गयी हो, मैं तुमसे भी अधिक उसको जानता हू।" और दो दिनो के बाद पिता के प्रश्न के उत्तर मे हसकर कहा था, "सतीश अच्छी तरह ही है। किन्तु जान पडता है कि किसी से झगडा करके पुराना डेरा छोडकर अन्यत्र चला गया है। उसी मनुष्य ने एक गुमनाम पत्र लिखकर उसके सबध मे अनाप-शनाप बाते लिख भेजी है।"

बूढ़े ने उद्विग्न मुह से पूछा था, "कैसी अनाप-शनाप बाते उपेन्द्र?"

उपेन्द्र ने उत्तर दिया था, "उन सब झूठी कहानियों को सुनकर आपको समय नष्ट करने की आवश्यकता नही है। मैंने तो स्वयं ही उसे पाला-पोसा है—मैं जानता हू वह ऐसा कुछ भी न करेगा जिससे किसी आत्मीय का सिर झुक जाये। आप निश्चिन्त रहिए।"

उनके उस विश्वास पर वज्रपात हो गया सावित्री को अपनी ही आखो से देखकर। सतीश के निर्जन कमरे मे श्रृगार करने मे निमग्न अकेली रमणी। उसमे कैसी सुगभीर लज्जा थी। और लज्जा से भी बढ़कर उन दोनों बडी आखो की व्यथित व्याकुल दृष्टि मे क्या ही आग फूट उठी थी? इसमे भूल करने की गुजाइश नही थी। एक क्षण मे ही उपेन्द्र के मन मे राखाल की उस पाप भरी हुई चिट्ठी का अक्षर अक्षर मानो आग के अक्षरो की भाति जल उठा था। प्रश्न करने या सदेह करने की और कुछ भी आवश्यकता नही थी।

उस चिट्ठी को विश्वास योग्य बना देने की चेष्टा मे राखाल ने कुछ भी कमी नहीं की थी। उसमे सावित्री का नाम तो था ही, तरह-तरह के विवरणों के बीच उसकी भौंहों के ऊपर एक छोटे तिल रहने की बात का जिक्र करने मे भी उसने गलती नही की थी। बस, चिन्ह इतना ही सुस्पष्ट था कि क्षणभर के दृष्टिपात से ही उपेन्द्र ने देख लिया था।

सतीश को बुला देने का अप्रिय कार्य मार्ग में ही खत्म करने चले या नहीं इसका निश्चय करते-करते ही भाडे की गाडी ज्योतिष साहब के घर के सामने पहुच गयी और फाटक मे प्रवेश करते ही उनकी उत्सुक दृष्टि को किसी ने मानो दुमंजिले की ओर खींच लिया।

उपेन्द्र ने गरदन बढ़ाकर देखा, उन्होने जिसकी निस्सदेह आशा की थी ठीक वही मौजूद थी। खुली बडी खिडकी पर एक स्थिर प्रतिमा इसी रास्ते से ऊपर ही मानो समूचा प्राणमन उडेल कर खडी थी। इतनी दूर से अच्छी तरह देख लेना सभव नही था, तो भी उनके प्रसन्न नेत्रो से खिडकी पर खडी होने वाली के होठो की कुछ कपकपी से लेकर आखो की पलकों के ऊपर की जलरेखा तक भी छिपी नहीं रही। उसकी इतनी देर की चिन्ता-ज्वाला अभिमान और अपमान के घात-प्रतिघात की वेदना मिट गयी, केवल यही एक बात मन मे जाग उठी कि सुरबाला की सारी रात और समूचा प्रात काल न मालूम किस तरह बीता है। जो ऐसी है, शक्ति रहने की हालत मे शायद उसको घर से बाहर निकलने भी नही देती। उसने इस अपरिचित शहर के बीच इस गभीर रात्रि मे अपने बीमार पति को अकेले घर से बाहर जाने देकर इतने समय तक कैसे बिताया, इसे सोचकर एक तरफ उनको हसी आ गयी, दूसरी तरफ वैसे ही आखो के कोने मे जल भी आ गया।

सरोजिनी शायद खबर मिलने पर ठीक उसी समय अन्दर से दौडती हुई बाहर के बरामदे मे पहुच गयी। उपेन्द्र को देखते ही उसके मुह पर और उसके नेत्रो पर हसी की छटा भर गयी। गाडी से उतरते न उतरते ही वह बोल उठी, "बाहर अब एक पल भी नही, एकदम ऊपर चले चलिए।"

उपेन्द्र यथासभव गभीर मुह से इसका कारण पूछते समय स्वय भी हस पडे। तब सरोजिनी ने हसकर कहा, "अच्छी स्त्री को कल रात को आपने मेरे जिम्मे कर दिया था—न तो स्वय सो सकी, न तो मुझे ही सोने दिया। सारी रात गाडी की आवाज सुनती रही और खिडकी खोलकर देखती रही—यह क्या। पत्र लिखने क्यो बैठ गये। नही-नही, यह नही होगा—एक बार दर्शन तो दे दीजिए उसके बाद जो इच्छा हो कीजिए—अभी नही।"

बाहर के बरामदे मे एक छोटी-सी मेज पर लिखने की सामग्री तैयार थी। उपेन्द्र ने एक कागज खीचकर कहा, "पत्र लिख लू उसके बाद जो कहिए, मैं कर सकता हू, लेकिन इसके पहले नही, पांच मिनट से ज्यादा न लगेगा—इच्छा हो तो जाकर खबर दे सकती हैं।"

सरोजिनी ने उसी तरह हसते हुए चेहरे से कहा, "मुझे खबर देने की आवश्यकता नही है—उन्होंने ही मुझे खबर देने के लिए बाहर भेजा है। अच्छा, मैं पाच मिनट खडी रहती हू, आपको साथ लेकर ही चलूगी।"

उपेन्द्र फिर उत्तर न देकर पत्र लिखने लगे। लिखते-लिखते उनके चेहरे पर व्यथा और विरक्ति के जो सुस्पष्ट चिन्ह पड रहे थे, उन्हे निकट ही खडी रहकर सरोजिनी निरीक्षण कर रही थी, इसको वह जान भी न सके।

पत्र समाप्त करके, उसको लिफाफे मे भरकर पता लिखकर उपेन्द्र ने मुह ऊपर उठाकर देखा। कोचवान ने आकर सरोजिनी को लक्ष्य करके कहा, "गाडी तैयार है।"

उपेन्द्र ने पूछा, "क्या आप बाहर जाएगी?"

सरोजिनी ने कहा, "हा, अपना छोटा पियानो मरम्मत करने को दे आयी हू, उसे एक बार देख आऊगी।"

उपेन्द्र ने खुश होकर कहा, "पता लिखा है, थोडा कष्ट उठाकर यह पत्र साईस के हाथ घर मे भेजवा दीजिएगा।" यह कहकर उपेन्द्र ने सरोजिनी के फैलाए हुए हाथ पर पत्र रख दिया।

सरोजिनी कुछ देर तक उसके सिरनामे की तरफ देखती रही। नाम और पते की दो लाइनो को पढने मे अधिक समय नही लगा। उसके बाद उसने मुह ऊपर उठाकर कहा, "सतीश बाबू इस बार हम लोगो के घर पर क्यो नही आये?"

"हम लोगो के साथ आया नही—सतीश बराबर यही रहता है।"

यह समाचार सुनकर सरोजिनी चौंक पडी। उपेन्द्र के मन की अवस्था यह सब देखने योग्य नही थी। अगर रहती तो वे चकित रह जाते।

सरोजिनी ने अपनी लज्जा को दबाकर सहज भाव से बोलने की चेष्टा की, "वह कभी इस ओर कदम नहीं रखते, लेकिन इतने दिनो से इतने पास रह रहे हैं।"

उपेन्द अन्यमनस्क होकर कोई दूसरी ही बात सोच रहे थे। बोले, "मालूम पडता है, आप लोगो की बाते उसे याद नही हैं।" यह बात कितनी सहज थी लेकिन कैसी कठिन होकर सुनने वाली के कानो मे जा लगी।

उपेन्द्र ने कहा, "एक बात है, दिवाकर कहा है?"

"वह भैया के साथ हाईकोर्ट घूमने गये है। चलिए, आपको साथ लेकर पहले अन्दर पहुचा आऊ।" कहकर सरोजिनी घर मे चली गयी।

बीस मिनट के बाद वह लौटकर जब गाडी पर सवार हो गयी और आदेशानुसार गाडी जब सतीश के डेरे की तरफ रवाना हो गयी, तब अन्दर बैठी हुई सरोजिनी का हृदय कापने लगा, और गाडी जितना ही अग्रसर होने लगी, हृदय का स्पन्दन मानो उतना ही प्रबल होने लगा।

उसे लगा, मानो वह ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण काम का भार लेकर जा रही है—जिसकी सिद्धि पर उसके अपने ही भविष्य का भला-बुरा मानो सब कुछ निर्भर कर रहा है।

थोडी ही देर मे गाडी सतीश के डेरे के सामने आकर ठहर गयी और साईस पत्र हाथ से लिए उतरा। सरोजिनी ने गाडी के एक कोने से सटकर सिकुडकर बैठी रहकर कान लगाये दरवाजे पर साईस का कराघात सुना। कुछ देर बाद उसके दरवाजा खुलने का शब्द और उसके अन्दर जाने की आवाज उसे मालूम हुई और उसके बाद प्रतिक्षण किसी सुपरिचित गभीर कण्ठ-स्वर कानो मे पहुचने की आशका और आकाक्षा से स्तब्ध रोमाचित होकर वह बैठी रही। वह अवश्य जानती थी, गाडी और गाडी के

अन्दर जो बैठी हुई है, साईस के मुह से उसका परिचय पाकर सतीश स्वय ही आ जाएगा। उसको एक बार भी यह ख्याल नही आया कि जो व्यक्ति इतने दिनो मे इतना निकट रहकर भी इस तरह भूलकर रह सकता है, उसको यह समाचार तनिक भी विचलित नही कर सकता।

फिर साईस का कण्ठ-स्वर दरवाजे के पास सुनाई पडा—वह दरवाजा बन्द भी हो गया, और क्षणभर बाद ही वह पत्र हाथ मे लिए अकेले लौट आया। उसने कहा, "बाबू घर मे नही हैं।"

"घर मे नही हैं?" पलभर के लिए सरोजिनी स्वस्थ होकर बच गयी। मुह बढ़ाकर उसने कहा, "पत्र लौटाकर क्यो लाया, जा रख आ।"

साईस ने कहा, "बाबू कलकत्ता मे नही हैं, दिन के दस बजे की गाडी मे घर चले गये।"

यह बात सुनकर न मालूम क्यो उसको यह घर अपनी ही आँखो मे देख लेने की अदम्य इच्छा हो गयी, उसका ठीक कारण वह स्वय भी न समझ सकी और दूसरे ही क्षण वह उतर आयी फिर किवाड खोलकर अन्दर चली गयी। हिन्दुस्तानी रसोइया चीजो के पहरे पर तैनात था, उसकी सहायता से सभी कमरों में घूम-फिरकर देखकर नीचे उतरने के रास्ते मे रस्सी की अरगनी पर लटकती हुई एक अधमैली चौडी पाट की साडी पर सरोजिनी की निगाह पड गयी। कौतूहली होकर प्रश्न करने पर ब्राह्मण ने अपनी बोली मे बताया, "यह माजी का कपडा है।"

तीसरे पहर स्नान कर सावित्री ने अपने पहिनने की भीगी साडी सूखने के लिए डाल दी थी, वह उस समय तक टगी हुई थी। आश्चर्य में पड़कर पूछताछ करने पर इस माई जी के बारे मे सरोजिनी को जो बाते मालूम हुई, उससे वह और भी आश्चर्य मे पड गयी। जो सब घटनाए सहज भाव से घटित नही होती, और जिनके अन्दर पाप रहता है, उन्हे छान-बीनकर समझ न सकने पर भी सभी लोग अपनी बुद्धि के अनुसार एक प्रकार समझ सकते हैं, यह हिन्दुस्तानी भी सपत्नीक उपेन्द्र के आने और उस तरह उसी क्षण चले जाने से लेकर आज सवेरे मालिक के अचानक प्रस्थान कर देने के बीच माई जी का जो सम्पर्क रहा, उसको अनुमान से समझ गया था। विशेष रूप से सतीश का उद्भ्रान्त आचरण किसी भी आदमी की दृष्टि से छिपा रहना सभव नही था इसीलिए उसने सावित्री की बीमारी आदि की बहुत-सी बाते कह दीं और उसकी देखभाल करने के लिए उसके मालिक को इस तरह व्यस्त और व्याकुल होकर अकस्मात् प्रस्थान, करना पडा है, यह बात भी उसने एक तरह समझा दी। सरोजिनी यही एक नया तथ्य जान गयी कि उपेन्द्र वगैरह सबसे पहले इसी घर मे आये थे, सामान तक गाडी से उतार लिया गया था, लेकिन उसी दम सब उठाकर उसी गाडी पर सवार होकर चले गये। फिर भी उन लोगो मे से किसी ने सतीश के नाम का भी जिक्र नही किया—उसके बाद आज यह पत्र आया है, स्पष्ट ही समझ मे आ गया, उपेन्द्र को अपने मित्र के अकस्मात् चले जाने की बात मालूम नही है। अधीर उत्सुकता से लगातार इस स्त्री के सबध मे तरह-तरह के प्रश्न करके उसकी अवस्था और सुन्दरता के सबध मे उसको जो तालिका मिली, वह सत्य लाघकर भी बहुत ऊचाई पर चली गयी। आखिर मे लौट आने पर जब वह गाडी मे बैठ गयी, तब उसको पियानो की मरम्मत कराने का शौक दूर हो गया था, और अज्ञात भारी बोझ से हृदय के अन्दर भाराक्रान्त हो उठा था।

यह रहस्यमयी कौन है और किस कार्य के सिलसिले मे आयी थी यह बात जानी नही गयी। लेकिन एकाएक छिपाने-चुराने का अस्तित्व उसके मन मे दृढ़ता से अंकित हो रहा।

सतीश और किरणमयी पर उपेन्द्र की रंजिश और अभिमान जितना बडा ही क्यो न हो, उसको प्रधानता देकर कर्तव्य की अवहेलना करना उनकी आदत नहीं है। इसीलिए भोजन आदि के बाद पाथुरियाघाटा के घर पर लौट जाने की ही उनकी इच्छा थी अवश्य, लेकिन घोर थकावट ने आज उनको परास्त कर दिया। इसके अलावा सुरबाला ऐसी जिद पकडे रही कि उसकी अवहेलना करके जाना भी कठिन हो गया।

कई घटे बाद जब उनकी नीद टूटी, तब दिन शेष नही था। हडबडाकर उठकर बैठ जाने के साथ ही

पास की तिपाई पर रखे हुए पत्र पर उनकी दृष्टि पड गयी। उसे उठाकर हाथ मे लेकर उन्होने देखा—पत्र उसी तरह बन्द है—जिस कारण ही क्यो न हो वह सतीश के हाथ मे नही पडा है। आहट पाकर सुरबाला ने कमरे मे प्रवेश कर कहा, "सतीश बबुआ यहा नही हैं, दिन के दस बजे की गाड़ी से घर चले गये हैं।"

यह समाचार सुनकर उपेन्द्र का मुख स्याह हो गया। पहले ही ख्याल हुआ, इस अपरिचित शहर मे हारान की आसन्न मृत्यु-सबधी जितने कर्तव्य हैं, अब अकेले उन्ही को सम्पन्न करने पडेगे। ओह, कितने काम हैं! और कितने भयकर कष्टकर हैं! लोगो को बुलाना, चीज-सामान जुटा देना, सद्य विधवा और जननी की गोद से उसके एकमात्र सतान का मृत शरीर खीचकर ढो ले जाना, इस मर्मान्तक शोक के दृश्य की कल्पना करके ही उनका सर्वांग पत्थर की तरह भारी और समस्त चित्त पाथुरिया घाटा के विरुद्ध वक्र होकर खडा हो गया। अपनी जानकारी मे वे मन ही मन सतीश के ऊपर निर्भर थे, अब वही सकट, अभिमान और अपमान के आभरण को भेदकर सामने प्रकट हो गया।

यह सब काम उपेन्द्र की प्रकृति के विरुद्ध है। यथाशक्ति वह इसमे पडना नही चाहते थे लेकिन सतीश के लिए यह सब काम कितने सहज थे। गाव मे ऐसा कोई भी आदमी नही मरा जहा वह अपना कर्मठ बलवान शरीर लेकर सबसे पहले हाजिर न हुआ हो, और सभी अप्रिय काम चुपचाप आडम्बर के बिना सम्पन्न न कर दिये हो। दुर्दिन मे सभी उसको खोजते थे और उसके आगमन से शोकार्त्त और विपत्तिग्रस्त गृहस्थ इस दु ख के भी बीच सान्त्वना और साहस पाता था। वही जब कलकत्ता छोडकर चला गया, तब क्षणभर के लिए उपेन्द्र को किसी ओर फिर रास्ता नही दिखाई पडा।

सुरबाला ने पति के मुख का भाव देखकर हारान की अवस्था के बारे मे पूछा, लेकिन सतीश का प्रसग नही उठाया। सरोजिनी ने वापस आकर बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए बातचीत के बहाने जो जिक्र किया था, उसी से उसने कल रात की घटना का अनुमान कर लिया था, सतीश उसके पति का कितना बडा मित्र है, इसको वह जानती थी इसीलिए इस व्यथा को उसने छिपा दिया।

सुरबाला की सासारिक बुद्धि पर कुछ भी आस्था न रहने के कारण ही उपेन्द्र किसी दिन भी स्त्री के सामने किसी समस्या का जिक्र नही करते थे, लेकिन अभी-अभी वह अपने को इतना विपत्तिग्रस्त समझ रहे थे कि उसी क्षण सारी स्थिति खोलकर प्रकट करके व्याकुल भाव से बोले, "वह मुझे इस विपत्ति मे छोडकर चला जाएगा सुरो, यह मैंने सपने मे भी नही सोचा था। अकेला इस अनजान स्थान मे क्या उपाय करू।" यह कहकर उपेन्द्र मानो असहाय शिशु की भांति स्त्री के मुह की ओर ताकने लगे।

लेकिन आश्चर्य की बात है कि पति की इतनी बडी विपत्ति का समाचार पाकर भी सुरबाला के मुख पर तनिक भी घबराहट न दिखाई दी। वह निकट चली आयी और उनका एक हाथ पकडकर बिछौने पर बैठाकर धीरे से बोली, "तो क्यो इतना सोचते हो, इस कलकत्ता मे किसी के लिए भी काम नही रुकता, चाय तैयार है, हाथ-मुह धोकर तुम चाय पी लो, छोटे बबुआजी को साथ लेकर मैं भी चल रही हू, चलो।"

उपेन्द्र ने अवाक् होकर कहा, "तुम चलोगी?"

सुरबाला ने अविचलित भाव से कहा, "अवश्य ही जाऊगी। किसी स्त्री के दुर्दिन मे उसके पास रहना स्त्री का ही काम है।" यह कहकर उसने अनुमति के लिए प्रतीक्षा भी न करके पास के कमरे से चाय लाकर हाजिर कर दी, और दिवाकर को खबर देकर बाहर चली गयी।

गृहस्थो के घर-घर मे जब सध्या के दीपक जलाये जा चुके थे, ठीक उसी समय उन लोगो ने पाथुरियाघाटा के घर मे प्रवेश किया। सदर दरवाजा खुला था, लेकिन नीचे कही भी कोई नही था। अधेरा टूटा-फूटा घर श्मशान की तरह खामोश था। दोनो को सावधानी से अनुसरण करने का सकेत करके उपेन्द्र ऊपर चढ़कर हारान के बन्द किवाड के सामने आकर क्षणभर के लिए स्तब्ध होकर खडे हो गए। अन्दर से केवल एक मर्मभेदी लम्बी सास कानो मे आकर पहुंची। कापते हुए हाथ से किवाड़ ठेलकर देखते ही अधकार मे बिछौने पर आपादमस्तक वस्त्राच्छादित हारान का मृत शरीर दिखाई

पडा। उसके दोनों पेरो के वीच मुह छिपाकर सद्य· विधवा औंधी होकर पडी हुई थी—उसने एक बार सिर हिलाकर उठाकर देखा, और दूसरे ही क्षण विद्युद्वेग से उठकर खडी होकर आर्त्तस्वर से मा कहकर चीत्कार करके तुरन्त ही उपेन्द्र के पैरो के नीचे मूर्च्छित होकर गिर पडी और उसी क्षण पलभर में सुरबाला ने उद्‌भ्रान्त, हतबुद्धि पति को एक ओर ठेलकर कमरे मे घुसकर किरणमयी के मुह को अपनी गोद मे ले लिया।

पच्चीस

अस्थि-मास-मेद-मज्जा-रक्त से निर्मित इस मानव शरीर मे सभी चीजो की एक सीमा निर्धारित है। मातृ-स्नेह भी असीम नही है, उसका भी परिमाण है। भारी बोझ दिन-रात खीचकर घूमते रहने से रक्त-सचार जव वन्द होने लगता है, तव उस सीमा-रेखा के एक छोर पर खडी रहकर जननी भी फिर सतान को ढोकर एक कदम भी आगे नही बढ़ सकती। यह स्नेह के अभाव से होता है या सामर्थ्य के अभाव से, इसकी मीमासा का भार अन्तर्यामी के हाथ मे है, मां के हाथ मे नही। उस दिन जब हारान का मृत शरीर माता की गोद से अलग होकर श्मशान मे चला गया, तव अघोरमयी की छाती को चीरकर जो लम्बी सास उसी असीम के पदप्रान्त मे इस मृत्युवार्ता को ढोकर ले गयी, वह अपने साथ और कुछ ले गयी या नही, इसका अनुमान करने की सामर्थ्य मनुष्य मे नही है।

उनकी अत्यन्त ज्वर की दशा में ही हारान की मृत्यु हुई। उसके वाद आठ-दस दिन किस तरह कहा से चले गये, वे जान न सकी।

श्राद्ध के किसी प्रकार समाप्त हो जाने पर उन्होने उपेन्द्र को पकड लिया, कहा, "बेटा, पास के घर से मल्लिक घराने की वडी वहू काशी, वृन्दावन, प्रयाग घूमने जाएंगी, क्या उनके साथ जाना नही हो सकता?"

"क्यो नही मौसी, अच्छी तरह से हो सकता है। लेकिन ." कहंकर उसने एक बार किरणमयी की ओर देखा।

किरणमयी ने समझकर कहा, "मेरे लिए चिन्ता न करो बबुआ, मैं दासी को लेकर अच्छी तरह रह सकूंगी।"

लेकिन उपेन्द्र इस पर तुरन्त ही सम्मति न दे सके, चुप ही रहे।

किरणमयी उनके मुँह की ओर क्षणभर देखती रही। फिर बोली, "या यह भी तो हो सकता है, दिवाकर बबुआ तो कलकत्ता मे रहकर ही पढेंगे ऐसा निश्चय हो चुका है, उनको मेरे ही पास क्यो नही रख देते! एक अनजान घर मे रहने की अपेक्षा मेरी आखों के आगे तो अधिक अच्छा है। देखभाल भी होगी, कलकत्ता में अकेला रखने से जो सब भय है, वह भय भी न रहेगा।" यह कहकर उसने उपेन्द्र के मुह पर अपनी दृष्टि स्थिर कर दी।

अघोरमयी अपनी पूरी सम्मति देकर बोल उठी, "इससे अच्छी और कौन बात हो सकती है उपेन—यही करो। उस लडके की देखभाल भी होगी, यह अभागिनी भी जो कुछ हो, जरा हिल-डोलकर बचेगी। ये किसी प्रकार जरा बाहर निकल सकने से ही बच जाएगी।" इतनी आसानी से ऐसा सीधा मार्ग आविष्कृत होते देख उन्होने निश्चित भाव से एक लम्बी सास ली। लेकिन उपेन्द्र किरणमयी का साहस देखकर एकदम स्तम्भित हो गये। ऐसा एक अचिन्तनीय प्रस्ताव उनके मुह से निकला ही कैसे यह तो वह सोचने पर भी समझ न सका। दिवाकर जो कुछ भी हो, वह बच्चा नही है—वह भी यौवन-प्राप्त पुरुष है। फिर भी इस परम रूपवती रमणी को अकेले इस निर्जन घर मे ठीक मानो बच्चे की ही तरह उसका लालन-पालन करने और सुयोग्य बना देने का हर प्रकार का दायित्व नि.सकोच ग्रहण करने को तैयार देखकर उपेन्द्र के मुह से भली-बुरी कोई बात नही निकली। यह रमणी कैसी असाधारण बुद्धिमती है,

यह जानना उनके लिए शेष नही था। उसने सगत-असगत, सासारिक और सामाजिक, विधि-व्यवस्था विशेष रूप से जान-बूझकर ही यह प्रसग उठाया है इसमे भी सदेह नही है—फिर भी, यह कैसी बात? किस तरह उसने कही?

पलभर मे उसने अपनी समस्त पर्यवेक्षण शक्तियो को जाग्रत और एकत्र करके इस अनन्त सौन्दर्यमयी के हृदय मे भेज देना चाहा, लेकिन कही भी उनको प्रवेश का मार्ग नही मिला। अपितु कही मानो जोरो से टकराकर उसी क्षण वापस आ गयी।

लेकिन यह जो पलभर के लिए दोनो एक-दुसरे के मुह की ओर चुपचाप ताकते रहे, इसी से दोनो के बीच मानो एक नये प्रकार से जान-पहचान हो गयी। उसको ख्याल हुआ, ऐसी शुद्ध, शात और आत्मसयमपूर्ण वैराग्य की मूर्ति उसने और कभी नही देखी थी। उस दिन, रात के समय इसके वेष की सजावट देखकर सद्य समागत उसकी और सतीश की दृष्टि झुलस गयी थी, ख्याल हुआ था, इसकी तुलना नही है—इस तरह सजावट न कर सकने से किसी की सजावट ही नही होती। आज फिर उसकी यह रूखी, शिथिल असम्बद्ध केशराशि और विधवा की सजावट देखकर ज्ञात हुआ ऐसी सभवत किसी दिन यह दिखाई नही पडी। अत्यन्त अकस्मात् नवलब्ध चेतना की तरह यही एक बात उनकी नस-नस मे प्रवाहित हो गया कि सौन्दर्य का यह जो अपरिसीम समावेश है, यह ठीक अग्निशिखा की तरह तरंगित होकर ऊर्ध्व की ओर उठ रहा है—इसे जी भरकर देखना चाहिए, स्पर्श नही करना चाहिए—जो करता है, वह मरता है। यह तीव्र शिखारूपिणी विधवा जिस असकोच और निर्भय रूप मे दिवाकर को ग्रहण करना चाहती है वह वास्तव मे अधिकार के गर्व मे कर रही है। इसमे दुस्साहस या स्पर्द्धा नही है।

उपेन्द्र उस समय बात न कर सके। लेकिन उनके मानस नेत्रो की दृष्टि से इस विधवा के सामने दिवाकर बिल्कुल ही छोटे बच्चे की भांति तुच्छ हो गया, और उस दिन क्यो सतीश को छोटे भाई की तरह अपने पास भेज देने का इनसे अनुरोध किया था, यह बात भी आज बिल्कुल ही स्पष्ट हो गयी। उनके परितृप्त मन ने चुपचाप हाथ जोडे इस महामयी के सम्मुख अपना अपराध बार-बार स्वीकार करके मन ही मन क्षमा-याचना कर ली। तीनो ही चुप थे। किरणमयी ने पहले बात कही। अपनी दोनो आखो की करुण दृष्टि पहले की ही तरह उपेन्द्र के मुह पर स्थिर रखकर अनुनय के स्वर से उसने कहा, "दिवाकर को मेरे पास क्या रख न सकोगे बबुआजी?"

उपेन्द्र मन्त्रमुग्ध की भांति बोले, "क्यो न रख सकूगा भाभी! आप यदि उस का भार लें ले, तो यह परम सौभाग्य होगा।" इतने दिनो के बाद उपेन्द्र ने आज पहले-पहल उसको आत्मीय की तरह सबोधन किया। कहा, "दिवाकर मेरे साथ ही तो आया था, कब अकेले चला गया है शायद, नही तो बुलाकर कह देता।"

यह बात सुनकर किरणमयी चकित हो उठी। इस बार उसके मुह से बात नही निकली। अकस्मात् आनन्द की बाढ़ ने मानो उसके दोनो किनारो को बहा देने की तैयारी कर दी। इसीलिए वह क्षणभर के लिए दूसरी ओर मुह फेरकर अपने को सभालने लगी। इतना थोडा-सा आत्मीय सबोधन! यह कितना है? किन्तु इसी के लिए वह मानो कितने युगो से प्यासी थी, ऐसा उसे ज्ञात हुआ। सतीश ने यही कहकर पुकारा है, दिवाकर यही कहकर पुकारा करता है, लेकिन उसमे और इसमे कितना अन्तर है। इस आह्वान से इतने दिनो के बाद उपेन्द्र ने उसको जो अपने समीप खीच लिया, एकाएक उसे आशका हुई इसके प्रचण्ड वेग को वह संभवत सभाल न सकेगी।

लेकिन इन लोगो की इस आकस्मिक मौनता से अघोरमयी शंकित हो उठी। बोली, "बेटा उपेन, तब तो मेरे जाने मे कोई विघ्न नही है, लेकिन उस काम मे तो अब देर नही है, मैं क्या इसी समय जाकर मल्लिक जी की बडी बहू को कह न आऊ।"

उपेन्द्र किरणमयी की ओर एक बार दृष्टिपात करके बोले, "मैंने तो कह दिया है मौसी, इमसे मुझे कोई आपत्ति नही है। तुम्हारी-बहूजी के सहमत होने से हो जायगा। जब उनका भी मत है तब तुम्हारी तीर्थयात्रा मे तो कोई बाधा ही मैं नही देखता।"

"तो जाऊ बेटा, मैं इसी समय जाकर उससे कह आऊ। यह भी जान आऊं कब उन लोगो का जाना

होगा।" इतना कहकर अघोरमयी दासी को बुलाकर पफुल्ल मुह ने नीचे उतर गयी।

उनकी इस शीघ्रता से उपेन्द्र ने मन ही मन सतोष का अनुभव करके कहा, "अच्छा ही हुआ। जिस तरह भी हो, अब कुछ दिनो के लिए उनका बाहर जाना अत्यन्त आवश्यक है।"

किरणमयी कुछ भी नही बोली। इस समय वह किसी कारण मानो अनमन-सी हो गयी थी। उत्तर न पाकर उपेन्द्र ने फिर कहा, "आपकी सम्मति है न भाभी?"

उपेन्द्र के कण्ठ-स्वर से वह क्षणभर अबोध की भांति उनके मुह की ओर देखती रहकर एकाएक मानो सचेत हो उठी। उसने कहा, "अवश्य ही, बबुआजी अवश्य। यह कैसा अन्धकूप है, इसे केवल हम लोग ही जानती हैं। चली जाये चली जाये, कुछ दिनों तक इस दु ख के घेरे से छुटकारा पाकर बच जाये।"

उसकी ये बाते इस प्रकार उसके मुह से बाहर निकली कि उपेन्द्र ने कष्ट अनुभव किया। पीड़ित चित्त से कुछ देर तक मौन रहकर बोले, "बस दु ख के घेरे से केवल उनका ही नही भाभी, आपका भी बाहर निकल जाना उचित है।"

किरणमयी ने कातर दृष्टि से कहा, "मेरा कौन है बबुआजी, किसके पास मैं जाऊगी?"

उपेन्द्र ने प्रश्न किया, "आपके पिता के घर क्या कोई नही है?"

किरणमयी हस पडी। बोली, "पिता का घर कहा है, यही तो मैं नही जानती। मामा के घर पाली-पोसी गयी थी। उन लोगों की खबर भी आठ-दस वर्षों से मैं नही जानती। दस वर्ष की आयु में ब्याह हो जाने पर वही जो इस मकान मे मैं आ गयी, मृत्यु न होने से सभवत अब इसमे से निकल ही न सकूगी।"

उपेन्द्र अत्यन्त व्यथित हो गये। फिर सोचकर बोले, "तो आप भी क्यो मौसी के साथ पश्चिम को नही चली जाती। घूमना भी होगा, तीर्थयात्रा भी होगी।" कहकर वह किरणमयी का मनोभाव देखकर आश्चर्य मे पड गये। क्योंकि, ऐसे प्रस्ताव से उसने जरा भी आनन्द प्रकट नही किया। वैसे ही निरुत्साह से नीचे को ताकती रही।

उपेन्द्र को तुरन्त ही यह ध्यान आ गया कि यह घर छोडकर जाने मे असमर्थ हो रही है। उन्होंने कहा, "आप इस घर के लिए सोच रही हैं? कोई चिंता मत कीजिएगा। मैं इसकी देखभाल का प्रबन्ध कर न दूगा। कोई वस्तु नष्ट न होगी।"

इस बार किरणमयी मुसकरा उठी। बोली "तुमने सभवत. मेरी उस प्रथम रात्रि का पागलपन स्मरण करके यह बात कही है बबुआजी?"

उपेन्द्र घबराकर बोल उठे, "नही, ऐसी बात नही है। लेकिन वह भी यदि हो तो उसको पागलपन क्यो कह रही हैं। उस दशा मे सतर्क होना तो सभी के लिए उचित है।"

किरणमयी ने हसी के साथ कहा, "इतना सतर्क होना चाहिए था, बबुआजी?"

उपेन्द्र ने कहा, "नही क्यो। अपने घर-द्वार, धन-दौलत पर ममता किसकी नही है? भविष्य की दुश्चिन्ता किसको नही होती? नही-नही, ऐसी बात आप मत कहिए। उसमे असगति या अस्वाभाविकता कुछ भी नही था।"

"न रहने मे ही अच्छा है। लेकिन मैं तो अब उसको शुद्ध पागलपन के अतिरिक्त और कुछ भी सोच नही सकती।" और एकाएक गभीर होकर बोली, "तुमको भी सदेह! छि। छि। कैसी कडी बात मैंने कह दी थी। स्मरण होने से अब स्वय ही लज्जा से मरने लगी हू।" यह कहते-कहते उसका सहज सुन्दर मुख अनुताप से मानो पिघल गया। उपेन्द्र ने प्रतिवाद नही किया, वह चुपचाप ताकते रहे। पलभर मौन रहकर उसने फिर कहा, "किन्तु वह ममता अब कहा है बबुआजी? एक बार भी तो यह विचार नहीं आता कि, यह घर मेरा रहेगा या हाथ से निकल जाएगा। रहे तो रहे, न रहे तो चला जाये। सोचती हू, मार्ग के वृक्षो के नीचे का स्थान तो कोई रोक न सकेगा, मुझे वही काफी होगा।"

उपेन्द्र ने इसका भी पत्युत्तर नही दिया। सद्य विधवा के वैराग्य की इन थोडी-सी बातो से उनका हृदय श्रद्धा तथा करुणा से लबालब भर उठा।

किरणमयी ने कहा, "मकान के लिए नही बबुआजी, लेकिन मा के साथ तीर्थ मे जाने मे भी क्या मैं शांति पाऊगी? सुनती हू उन सब स्थानो मे सर्वत्र ही तो बहुत से लोगो की भीड होती है।"

उपेन्द्र ने गरदन हिलाकर कहा, "तीर्थस्थानो मे तो लोगो की भीड होती ही है भाभी। लेकिन आपका और कुछ भले ही न हो, तीर्थ करना तो हो जाएगा। वह भी तो एक काम है।"

फिर किरणमयी उपेन्द्र के मुह की ओर देखकर मुसकरा पडी, लेकिन बोली नही। वह किसलिए हस पडी उसका तात्पर्य समझ न सकने के कारण उपेन्द्र सभवत कुछ कहने जा रहे थे, लेकिन एकाएक आश्चर्य मे पडकर उन्होने देखा पास के कमरे से दिवाकर निकल आया।

"तू क्या इतनी देर से उसी कमरे मे था रे।"

किरणमयी ने कहा, "दिवाकर बबुआ कृपा करके मेरी पुस्तके ठीक से रख रहे थे। मैं तुमको बताना भूल गयी थी।"

दिवाकर ने निकट आकर कहा, "कितनी पुस्तके कैसी दशा मे हो गयी हैं भाभी, लेकिन खोलकर देखने से ज्ञात होता है, वह कितने यत्न से उन सबको पढते थे।"

किरणमयी ने सम्मति देकर कहा, "सचमुच ही यही बात है। जिसको पढना कहते हैं, वह उसी तरह पढते थे। तुम्हारे हाथ मे वह कौन पुस्तक है बबुआजी?"

दिवाकर ने लज्जित भाव से कहा, "में सरकृत नही जानता, फिर भी पढने का प्रयत्न करूगा। यह कठोपनिषद् है।"

—इतनी किताबे रहते पसद आयी भी तो कठोपनिषद्?

किरणमयी का प्रश्न समझ मे नही आया दिवाकर के। उसकी ओर जिज्ञासु दृष्टि मे देखकर बोला, क्यो! इससे भी अच्छी कोई और किताब है क्या भाभी? शायद मेरे लिये अनधिकार चर्चा है, समझ नही पाऊंगा, लेकिन यथासाध्य प्रयत्न तो करना चाहिये।

—जो समझ रहे हो, वह बात नही है देवर जी। लेकिन इस तरह प्रयत्न करने लायक यह किताब नही है। हा, कही-कही बुरी भी नही लगती। कोई कामकाज न हो तो आत्मा-वात्मा के नानारूपो की नयी-नयी कहानिया पढने से समय कट जाता है बस और कुछ नही।

सुनकर दिवाकर का चेहरा पीला पड गया। बोला, यह क्या कह रही हैं भाभी आप, कहते हैं उपनिषद् वेद हैं, इसका हर अक्षर अभ्रात सत्य है।

उसका विस्मय देखकर किरणमयी को हसी आ गयी। बोली, 'कोई धर्मग्रन्थ अभ्रात सत्य नही हो सकता। वेद भी धर्म ग्रथ हैं, उनमें भी मिथ्या का अभाव नहीं है।'

दोनो कानो में उँगली डालकर जोर से सिर हिलाते हुए बोला, 'वेद मिथ्या!बस-बस, आगे मत बोलियेगा। सुनना भी पाप है। कहावत है वेद वाक्य! ये क्या मनुष्य रचित हैं जो मिथ्या होगे? ये तो वेद हैं वेद!'

उसकी यह हालत देखकर किरणमयी खिलखिला कर हस पडी। कानो से उगली निकालकर अपनी उत्तेजना पर लज्जित होते हुए दिवाकर ने कहा, 'सचमुच पाप है भाभी। वेद भी कभी मिथ्या हो सकते हैं? ये क्या बेकार के धर्मग्रथ हैं जिनमे लोग शिवोक्ति कहकर अपनी तरफ से दो-चार श्लोक और गढी हुई दस कहानियां जोड देते हैं। वेद का मतलब ही साक्षात् सत्य है।'

सहसा एकदम गभीर हो गयी किरणमयी भी। बोली, 'क्या मालूम देवर जी, मैंने तो जो उनसे सुना था, वही कहा। लेकिन तुमने भी तो अभी-अभी स्वीकार किया कि धर्मग्रथो मे शिवोक्ति कहकर बहुत कुछ झूठ जोड़ा गया है।'

कुछ दिन पहले दिवाकर ने एक मासिक पत्रिका मे पुराण सबधी समालोचना पढी थी। अत. मानते हुए बोला, 'बहुत बुरी बात हैं, परन्तु धर्मग्रंथो मे प्रक्षिप्त अंश काफी हैं, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। लेकिन झूठ ज्यादा दिन नही चलता भाभी, पकडा जाता है।'

—कैसे पकडा जाता है? किरणमयी ने पूछा।

—यह तो मुझे अच्छी तरह नही मालूम। पर जो मिथ्या है. उसकी बारीकी से आलोचना करते ही

पंडितो को पता चल जाता है कि कौन सा सत्य है, कौन सा मिथ्या, क्या असल है और क्या प्रक्षिप्त। लेकिन इस कारण आप वेद को सत्य न माने, यह ठीक नही है।

उपेन्द्र अब तक एक शब्द भी नही बोले थे। किरणमयी के क्रूर परिहासो का तात्पर्य न समझ पाकर चुप बैठे तर्क-वितर्क सुन रहे थे। उनकी ओर कटाक्ष फेककर हसी रोकते हुए गभीर बनकर किरणमयी ने दिवाकर से कहा, 'देवर जी, मैंने एक धर्मशास्त्र मे पढा था कि एक ब्राह्मण का लडका यम से मिलने गया। जब वह पहुचा, यम घर पर नही थे, शायद ससुराल गये हुए थे। तीन दिन बाद लौटे तो घर के लोगो से पता चला कि लडके ने तीन दिन से कुछ नही खाया-पिया था, उपवास था। एक तो ब्राह्मण और फिर अतिथि। यम बडे दु खी हुए। आखिर मे उससे बोले कि तुम तीन दिन के उपवास के बदले तीन वर ले लो। अच्छा—

बात पूरी करने मे पहले ही दिवाकर हो-हो करके हस पडा। बोला, 'यह कौन-सा उपन्यास शुरू कर दिया भाभी?'

सहज भाव से किरणमयी बोली, 'मैंने तो जो पढा था, वही बताया है। अच्छा, तुम्हे विश्वास है कि ऐसा हो सकता है?'

—कभी नही, असम्भव। जोर देकर दिवाकर ने कहा।

—असभव क्यो है? यह भी तो धर्मशास्त्र मे ही लिखा है।

—यह प्रक्षिप्त है, गढी हुई कहानी है।

—कैसे जाना कि कहानी है?

—भाभी थोडी-बहुत बुद्धि तो सभी मे होती है। ठीक है, मैं ज्यादा नही जानता, पर यह झूठी कहानी है, इसमे मुझे कोई सदेह नही है। ऐसा हो ही नही सकता।

—देवर जी, इसी प्रकार हर व्यक्ति अपनी विद्या-बुद्धि एव अभिज्ञता द्वारा सत्य और मिथ्या तौलते हैं। इसके अलावा और कोई मानदड नही है। परन्तु यह वस्तु सबके पास समान नही होती—तुम जिसे सत्य समझते हो मैं न मान पाऊ तो मुझे दोष नही दिया जा सकता।

—बिल्कुल नही दिया जा सकता, तत्क्षण दिवाकर ने कहा।

आगे किरणमयी ने कहा—अब जब एक दूसरे से मेल न खाने पर किसी को दोष नही दिया जा सकता तो फिर जो चीज दोनो की बुद्धि व अभिज्ञता से बाहर की है, उसके सबध मे तो न जाने कितनी राय हो सकती है। लेकिन इसको लेकर हम लोगो मे विरोध नही है। हम दोनो का ही ख्याल है कि यह घटना हमारी समझ से बाहर है, इसलिये कहानी हैं, क्यो देवर जी?

किरणमयी उसे कहा ले जाना चाहती है, ठीक से न समझ पाकर दिवाकर ने सक्षेप मे मात्र 'हाँ' कहा। फिर से हस पडी किरणमयी। बोली, ठीक है, ठीक है। पर मेरी इस कहानी का अंतिम भाग तुम्हे अपने हाथ की उस किताब मे ही मिलेगा।

—इस उपनिषद् मे? आश्चर्य से दिवाकर ने पूछा?

उसी प्रकार कौतुक भरे स्वर मे किरणमयी ने जवाब दिया, 'तब तो तुम्हे इसका हर अक्षर अभा[illegible] सत्य नही लगेगा न?'

जवाब नही दे पाया दिवाकर। हतबुद्धि-सा बैठा रहा।

उपेन्द्र की ओर नजरे उठाकर किरणमयी ने पूछा, 'तुम्हारी क्या राय है देवर जी?'

मुस्कुरा दिये उपेन्द्र, 'बोले नही कुछ।'

अपने को सभालकर दिवाकर बोला, 'लेकिन यह रूपक भी तो हो सकता है।'

—हो सकता है। पर रूपक तो सच्ची घटना नही होता। हो सकता है वह किताब आरभ से अंत तक पूरी मिथ्या न हो, किन्तु कितनी सत्य है, यह तो बुद्धि के तारतम्य के हिसाब से लेगा न हर कोई। इसलिये अगर तुम्हारी बुद्धि के अनुसार इसका बारह आना सत्य है तो मेरी बुद्धि के हिसाब से पद्रह आने झूठ हो सकता है। इसमे भी मेरा तो कोई कसूर नही होगा देवर जी।

—दिवाकर हाथ की किताब को नीरव देखता रहा। किरणमयी की बातो से उसे दु ख हो रहा था। कुछ देर चुप रहकर बोला, 'भाभी, आप जिसे मिथ्या बता रही हैं, हो सकता है उसका कोई गूढ़ उद्देश्य

रहा हो। इसलिये—'

इसलिए—मिथ्या की अवतारणा? तुम जो अनुमान कर रहे हो, वह हो सकता है, यह मैं मान लेती हू। लेकिन तो भी वह अनुमान के सिवा और कुछ भी नही है। और अर्थ जो कुछ भी हो, मार्ग सन्मार्ग नही है। यह बात मान लेनी चाहिए कि मिथ्या से भुलावा डालकर सत्य का प्रचार नही होता। सत्य को सत्य की तरह बताना ही पडता है तभी मनुष्य बुद्धि के परिमाण मे समझ पायेगा—आज नही तो कल समझ पायेगा। एक की समझ मे न आये तो दूसरे की समझ मे आयेगा। अगर समझ मे न आये तो झूठ का सहारा लेकर रोचक बनाने के प्रयत्न से बढकर गलत और कुछ नही हो सकता। देवरजी, झूठ पाप है, लेकिन सच को झूठ मे जडकर कहने जैसा पाप ससार मे कम ही है।

दिवाकर का मुह उतर गया। वह चुपचाप बैठा रहा। उसके चेहरे को देखकर किरणमयी मन की बात समझ गयी। कोमल स्वर मे बोली—इसमें दु:खी होने की बात नही है देवरजी। जो सत्य है, उसे हमेशा हर परिस्थिति मे ग्रहण करने का प्रयत्न करना, फिर उसमे वेद मिथ्या हो या शास्त्र। ये सत्य से बडे नही हैं। जिद के कारण हो या ममता के कारण हो अथवा दीर्घकाल के सस्कार के कारण हो, आंख बद करके असत्य को सत्य मान कर विश्वास कर लेने मे कोई पौरुष नही है।' एक क्षण चुप रहकर फिर बोली, 'लेकिन ऐसा भी मत सोच लेना कि मैंने मिथ्या समझा है, इसीलिए वह मिथ्या हो गया। मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि, सत्य मिथ्या जो भी हो, उसे बुद्धिपूर्वक सोच समझकर ग्रहण करना चाहिये। आख बद करके किसी बात को मान लेने मे कोई सार्थकता नही है। उससे न तो उसका गौरव बढता है और न ही तुम्हारा।'

कुछ सोचकर दिवाकर ने पूछा, 'अच्छा भाभी, जो वस्तु बुद्धि के बाहर हो, उसके सबध मे सत्य मिथ्या का निर्णय कैसे करेगी?'

तुरन्त उत्तर देते हुए किरणमयी ने कहा, 'कोई निर्णय नही करूगी। जो बुद्धि के बाहर होगी उसका त्याग कर दूंगी। मुह से अव्यक्त, अबोध, अज्ञेय कहकर, व्यवहार मे उसी को जानने, कहने की चेष्टा कभी नही करूगी और जो करेगे, उन्हे भी बर्दाशत नही करूंगी। तुमने यह सारी किताबे नही पढी देवर जी, पढ़ोगे तो देखोगे कि सर्वत्र यही चेष्टा और यही जिद है। जहा देखो जोर जबर्दस्ती। जिस मुंह से एक बार कहा कि समझा नही जा सकता, उसी मुह से जरा आगे ऐसी बाते कही हैं जैसे अभी सब कुछ अपनी आखो से देखकर आ रहे हो। जिसकी किसी भी तरह उपलब्धि न हो पाने की बात कही है, उसी की उपलब्धि के लिए पन्ने पर पन्ने रग डाले हैं, पोथी पर पोथी लिख डाली हैं। क्यो? जिस मनुष्य ने जीवन मे कभी लाल रंग नही देखा, उसे क्या मुह से समझाया जा सकता है कि लाल क्या है? और न समझने पर, न मानने पर, क्रोध, शाप और भय दिखाने की सीमा नहीं रहती। बस बडी-बडी बातो के दॉव-पेंच। निर्गुण निराकार, निर्लिप्त, निर्विकार, कोरी बाते है सब, कोई मतलब नही है इनका। और अगर कोई अर्थ है तो बस इतना कि जिन्होंने यह सारी बाते आविष्कृत की है, प्रकारान्तर मे उन्होने ही कहा है कि इस विषय में किसी को रचमात्र चिन्ता नही करनी चाहिये—सब निष्फल है, निरर्थक श्रम है।'

दिवाकर बडी देर तक मौन रहा। उसके बाद उसने धीरे-धीरे कहा, "भाभी, आप आत्मा को नही मानती?"

"नही।"

"क्यो?"

"झूठी बात होने के कारण। इसके अतिरिक्त ऐसा दम्भ मुझे नही है कि सब कुछ का नाश हो जाएगा, केवल मेरे इस महामूल्य 'मैं' का किसी दिन ध्वस न होगा, ऐसी कामना भी मैं नही करती कि मेरा यह 'मैं' बचा रहे।"

"अच्छा, ईश्वर! उनको भी क्या आप स्वीकार नही करती?"

किरणमयी ने हसकर कहा, "इतना डरकर क्यों कह रहे हो बबुआजी? इसमे डर की बात कुछ भी नही है। नही, मैं अस्वीकार भी नही करती।"

प्रगाढ़ अंधकार में प्रकाश की क्षीण रेखा दिखाई पडी। उसने पूछा—आप उस बारे मे क्या सोचती

है?"

किरणमयी ने कहा—जिस वस्तु को अज्ञेय मान लिया, उसके बारे मे सोचा नही जाता। मैं सोचती भी नहीं। वस्तुत तो अचिन्तनीय की चिन्ता कैसे कर सकती हू? इसलिए असभव को सभव बनाने का कभी प्रयत्न नही करती। किसी चीज को बढाकर बडा बनाया जा सकता है, बढाने मे वह और बडा बन सकता है— यह भी जानती हू—लेकिन उसे खींचतानकर अनन्त बनाया जा सकता है—ऐसी गलती मैं नही करती।"

"तो क्या उनको सोचा भी नही जाता?"

"सोचा जाता है बबुआजी, छोटा बनाकर सोचा जाता है। मनुष्य के दोष-गुण को एक मे मिलाकर, छोटा-मोटा देवता मानकर, निरक्षर लोग जिस तरह भक्ति-भाव मे सोचते हैं, उसी तरह केवल सोचा जाता है। नही तो ज्ञान के अभिमान से ब्रह्म बनाकर जो लोग सोचना चाहते हैं वे केवल अपने को धोखा देते हैं। लेकिन आज और नही, ये सब बाते किसी दूसरे दिन होंगी।" उपेन्द्र के मुंह की ओर देखकर हसते हुए मुख मे बोली, "लेकिन बबुआजी, बडे सयाने हो। हम लोगों ने झोक में आकर तर्क-वितर्क किया और तुमने अपने को बिल्कुल ही बचा रखा। मैं जानती हूं, तुम सब कुछ जानते हो, लेकिन मन की एक बात भी तुमने किसी को जानने न दी।"

उपेन्द्र हस पडे। उन्होने कहा, "नही भाभी, मैं इस सबध मे बिल्कुल ही महामूर्ख हू। मैं स्तम्भित होकर केवल आप ही की बाते सुन रहा था।"

किरणमयी ने हसकर कहा, "व्यग्य कर रहे हो बबुआजी?"

"नही भाभी, सच्ची बात ही कह रहा हू। लेकिन सोचता हू अपनी इस थोडी-सी उम्र मे आप इतना कब पढ़ गई, इतना सोचा भी कब।"

प्रशसा सुनकर किरणमयी का अन्त करण, आनन्द से, गर्व से उच्छ्वसित हो उठा। लेकिन उसका दमन करके विनय के साथ उसने कहा, "नही-नही, यह बात मत कहो बबुआजी, मैं भी महामूर्ख हू, कुछ भी नही जानती। केवल इतना ही अवश्य जान गयी हू कि, कुछ जान लेने का उपाय नही है, इसीलिए इन सब शास्त्रों की दम्भपूर्ण युक्ति देखने से ही मेरे शरीर मे आग लग जाती है—किसी प्रकार भी अपने-आपको फिर सभालकर नही रख सकती। बस यही ख्याल रहता है कि तुम भी नही जानते, मैं भी नही जानती। फिर इतना विधि-निषेध इतना झूठ क्यों? सारी बातो में भगवान उनके माध्यम से काम करते हैं, यह दभ भरा अनुशासन? सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते भगवान की दुहाई और धर्म का डर। क्यो कोई तुम कहो वैसे उठे, वैसे बैठे। और उस पर हिम्मत यह कि कहीं किसी चीज का कारण तक बताने की जरूरत नही समझी। बस केवल जबर्दस्ती। ऐसा करोगे तो हत्या का पाप लगेगा, वैसा करोगे तो ब्रह्महत्या का पाप लगेगा, तुम नष्ट हो जाओगे, तुम्हारी चौदह पीढ़ी नरक मे जायेंगी। अरे भई, क्यों जायेगी? किसने कहा है तुमसे? श्रुति, स्मृति, तत्र, पुराण हर एक में यही भय और जबर्दस्ती। इतना सब कैसे सहा जा सकता है, बबुआजी?"

उपेन्द्र मौन रहे लेकिन दिवाकर ने अपनी अन्तिम चेष्टा करके कहा, "लेकिन यह जोर सभवत. हमारे कल्याण के ही निमित्त उन्होंने प्रकट किया है।"

किरणमयी जल उठी, बोली, "इतनी भलाई की आवश्यकता नही है बबुआजी। मानो वे ही लोग केवल मनुष्य बनकर देशभर के पशु-दल को लाठी की ठोकर से अच्छे मार्ग मे खदेड देने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। अपनी भलाई कौन नही चाहता। समझाकर कहो, भाई इसमें तुम्हारी भलाई है, इसलिए यह सब विधि-निषेध बना दिया है। मुझे भी तो समझने देना चाहिए, क्यो इस मार्ग से ही मेरा मंगल है, इससे तो इतना आख लाल करने, इतने झूठे उपन्यास लिखने की आवश्यकता नही पडती।" कहते-कहते उसके भीतर का क्रोध स्पष्ट हो उठा।

उपेन्द्र को अचानक प्रथम रात्रि की बात स्मरण हो गयी। यह है वही मूर्ति। पिंजरे मे बन्द जगली पशु का वह मर्मभेदी गर्जन। लेकिन क्या चाहती है यह? किसके विरुद्ध इसका इतना रोष है? शास्त्र और शास्त्रकार की किस जजीर को तोड कर यह विधवा मुक्ति-प्रार्थना कर रही है?

उसको शात करने के अभिप्राय से उपेन्द्र ने सविनय हंसी के साथ कहा, "हम दोनों तो आपकी बातों का उत्तर न दे सके भाभी, लेकिन एक व्यक्ति है—जिसके सामने आपको भी तर्क में हारकर आना पडेगा, यह मैं कहे देता हू।"

किरणमयी अपनी उत्तेजना स्वय ही समझकर अन्त में मन ही मन लज्जित हो गई। उसने भी हंसकर कहा, "ऐसा कौन है, बताओ तो बबुआजी?"

उपेन्द्र ने गभीर होकर कहा, "आप परिहास मत समझिएगा। सच ही कहता हूं, उसको जीत पाना कठिन है। उसका पढ़ना-लिखना ज्यादा हुआ हो ऐसी बात नही लेकिन उसकी तर्क-बुद्धि अति सूक्ष्म है। वह भी इन सब पर विश्वास रखती है—उसको निरुत्तर बनाकर आप आ सकें तभी समझूंगा।"

किरणमयी ने उत्साहित होकर कहा, "भले ही मैं न कर सकू, लेकिन सीख कर भी तो आ सकूंगी?" हंसकर उसने कहा, "वह कौन हैं बबुआजी, हमारी छोटी बहू तो नही।"

उपेन्द्र हंसने लगे। बोले, "वही वास्तव मे भाभी, उसकी विचारशक्ति अद्भुत है। तर्क-बुद्धि देखकर समय-असमय पर मैं सचमुच ही मुग्ध हो जाता हू। मैं क्या उत्तर दूगा, क्या प्रश्न करूंगा, यह मानो मैं ढूढ़कर पाता ही नही। हतबुद्धि होकर बैठा रहता हू।"

उपेन्द्र के मुह से सुरबाला की इस प्रशसा से किरणमयी के मुख की दीप्ति बुझ गयी। फिर भी, इसमे भाग लेने की उसने इच्छा की। लेकिन इसी की वेदना से समूचे अग को घेरकर मानो गले को जकड़कर पकड लिया। एकाएक वह बात न कह सकी।

लेकिन, उपेन्द्र ने इसे लक्ष्य नही किया। उन्होने पूछा, "उसके साथ संभवत· किसी दिन इस विषय पर आपकी आलोचना नही हुई है?"

किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, "नही। केवल दो ही दिन तो वह यहा आयी थी। वह भी ऐसे समय मे नही कि कोई बातचीत हो सकती। चलो न, बबुआजी, आज एक बार तुम्हारे तर्कवीर को देख आऊं।"

उपेन्द्र हसने लगे। उन्होने कहा, "नही भाभी, वह तार्किक बिल्कुल ही नही है। वस्तुत· इस विषय के सिवा वह तर्क करती ही नही—जो आप कहेंगी उसी को वह मान लेगी। तीन दिन के बाद वह घर लौट जाएगी—अनुमति दे तो यही उसे ले आऊ।"

किरणमयी ने त्रस्त होकर कहा, "नही बबुआजी, नही। यहां लाकर उसको मैं कष्ट देना नही चाहती। वह जिस दिन कष्ट स्वीकार करके आयी थी, वह मेरे लिए अहोभाग्य था। मुझे तुम ले चलो, मैं चलूगी। अच्छा, एक बात मैं पूछती हू बबुआजी, इतना बडा तार्किक गुरु रहते हुए भी तुम दोनो भाई मेरी बातो का उत्तर क्यो न दे सके?"

इन बातों को किरणमयी ने सरल परिहास के रूप मे ही कहना चाहा, लेकिन वेदना के बोझ से अन्तिम बाते भारी होकर प्रकट हो गयी।

दिवाकर चुप हो रहा। उपेन्द्र ने कहा, "नही भाभी, उसकी वे सब युक्तिया सीखी नही जाती। कितनी ही बार तो उन्हे सुन चुका हू, किसी प्रकार भी उनको समझ नहीं सका। जो लोग भगवान को मानते हैं, वे कहेगे, उनके ही दाहिने हाथ का सर्वश्रेष्ठ दान हैं। सच कहता हू भाभी, अनेक बार मुझे ईर्ष्या हुई है कि इसके सहस्र भागो का एक भाग भी यदि मैं पा जाता, तो उस दशा मे धन्य हो जाता।"

किरणमयी ठीक समझ न सकी कि वह क्या है! तो भी उसका सम्पूर्ण मुख काला पड गया और इसको उसने स्वय ही स्पष्ट करके किसी तरह एक छोटी-सी सूखी हसी से सामने के इन दो पुरुषो के दृष्टिमार्ग से अपने आपको ढक लेना चाहा। लेकिन किसी प्रकार भी उसके मुह पर हसी नही फूटी।

एकाएक वह सीधी होकर खडी हो गयी। बोली, "चलो बबुआजी, आज ही मैं उसके साथ भेट करके आऊगी। तुमको भी जिसके लिए ईर्ष्या होती है, वह दुर्लभ वस्तु क्या है उसको देखे बिना मैं किसी प्रकार भी चैन न पाऊगी।"

उसके आग्रह की अधिकता देखकर उपेन्द्र किसी प्रकार भी फिर हसी को दबाकर न रख सके। किरणमयी ईर्ष्या से इतनी आच्छन्न न हो गयी होती तो उसकी इतनी देर की छिपी हुई गभीरता पलभर मे

पकड ले सकती। लेकिन उस ओर उसकी दृष्टि ही नही थी। उसने कहा, "नही बबुआजी, तुम्हारे पैरो पडती हूं, मुझे ले चलो।"

उपेन्द्र घबराकर दोनो हाथो से माथा छूकर कहा, "छिः! छिः! ऐसी बात मुह से आप मत निकालिए, भाभी। आप उम्र मे छोटी होने पर भी मेरी पूजनीया हैं। अच्छी बात तो है, मौसी वापस आ जाये, चलिए, आज ही आपको ले चलूगा।"

छब्बीस

प्राय अपराह्न मे किरणमयी ज्योतिष बाबू के घर मे जाकर उपस्थित हुई। मोटी साडी पहिने हुए थी। शरीर पर गहनो का चिन्ह भी नही था। लम्बी रूखी केशराशि बिखरी हुई सिर पर लपेट दी गयी थी। उसके नेत्रो मे शात उदास दृष्टि थी। मानो वैधव्य का अलौकिक ऐश्वर्य उसके सर्वांग को घेरकर मूर्तिमान हो रहा था। उस मुह की ओर देखने से ही आखें मानो आप ही उसके पैरो मे बिछ जाती थी। सरोजिनी बाहर के बरामदे मे एक कुर्सी पर बैठकर पुस्तक पढ़ रही थी, दृष्टि उठाकर अकस्मात् यह आश्चर्यजनक रूप देखकर बिल्कुल ही विस्वल हो उठी। उसने किरणमयी को कभी देखा नही था। उसका नाम और उसके सौंदर्य के विषय मे सुरबाला के मुह से सुन भर लिया था। लेकिन वह सौन्दर्य ऐसा है, इसकी कल्पना भी उसने नहीं की थी।

उपेन्द्र ने उसका परिचय दिया, "यह हम लोगो की भाभीजी—सरोजिनी।"

सरोजिनी ने निकट आकर नमस्ते किया।

किरणमयी ने उसका हाथ पकडकर हसकर कहा, "तुम्हारा नाम मैंने सबके मुख से सुना है बहिन, इसलिए आज एक बार नेत्रो से देख लेने के लिए चली आयी हू।"

प्रत्युत्तर में सरोजिनी को क्या कहना चाहिए यह समझ न सकी। अपरिचित नर-नारियों के साथ मिलने-जुलने, वार्तालाप करने मे बचपन से वह शिक्षित और अभ्यस्त है, लेकिन इस आश्चर्यजनक विधवा नारी के सामने वह चकित रह गयी।

किरणमयी ने उपेन्द्र की ओर एक बार घूमकर देखा। बोली, "लेकिन आज तो समय नही है। अधिक देर तक ठहरने का समय न होगा—बबुआजी, एक बार छोटी बहू के कमरे में चलकर बैठें।" यह कहकर उसने सरोजिनी की हथेली को जरा-सा दबाकर सकेत किया।

लेकिन जिस आवेश में पडकर किरणमयी आज इस असमय मे सुरबाला से भेंट करने आयी थी, उस उत्तेजना का कारण उससे अब छिपा नही रहा था। मार्ग मे आते उसे अनेक बार यह ध्यान आया था, उसके साथ केवल दो ही दिनो का परिचय है, इस सुरबाला का विश्वास, और उसकी विद्या-बुद्धि जो भी हो, अकारण ही उसके घर पर धावा बोल देने जैसा अद्भुत हास्यास्पद कार्य और कुछ भी हो नही सकता। इसीलिए लौट जाना ही उचित है, इसमें भी उसे सदेह नही था। फिर भी किसी तरह लौट न सकी। किसी ने मानो खीचकर उसे उपस्थित कर दिया। अन्याय! असगत। यह बात भी उसने मन ही मन बार-बार कही। लेकिन अपनी भार्या के जिस अमूल्य ऐश्वर्य को उपेन्द्र ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ वरदान कहकर स्वीकार करने में लज्जित नही हुए, वह कुछ भी नही है, उसको वह क्षणभर मे परास्त और टुकडे-टुकडे करके उसी के नेत्रो के आगे तिनके की भांति उडा दे सकती है, इसको प्रमाणित करने की अदम्य आकांक्षा उसकी छाती के अन्दर प्रतिहिंसा की भांति सुलग रही थी। किसी प्रकार भी वह इसको रोक नही सकी। फिर भी, आरम्भ से ही उसको यह खटका लगा हुआ था कि सतीश से उपेन्द्र का जो परिचय उसे मिला था, उससे उसका मन बार-बार कह रहा था, इच्छा करने से उपेन्द्र उत्तर दे सकते थे। लेकिन उन्होने बात नही कही, वह केवल मुसकराते रहे। क्यो? किसलिए? यह क्या केवल सुरबाला के पास ले जाकर उसको एकदम तुच्छ-हीन बना देने के लिए? लेकिन सुरबाला यदि कोई उत्तर न दे? पति की भांति यो ही मुह दबाकर हस कर चुप रह जाए? किस प्रकार वह अपनी विजय-पताका फहरा सकेगी?

इस प्रकार विचार करते-करते जब उसने सरोजिनी के पीछे-पीछे सुरबाला के कमरे में प्रवेश किया, तब फर्श पर बैठकर काशीदासी महाभारत मे भीष्म जी की शरशय्या पढ़कर सुरबाला रो-रोकर

व्याकुल हो उठी थी। एकाएक किरणमयी को देखकर उसने घबराहट के साथ पुस्तक वन्द करके आखे पोछ डाली और उठकर खडी होकर उसके दोनो हाथ पकडकर परम आदर से कहा, "आओ बहिन।"

वही चटाई पर उसे बिठाकर बोली, "मैंने कल तुम्हारे यहा जाने का विचार किया था वहिन।"

किरणमयी ने कहा, "मैं भी इसीलिए आज आ गयी बहन।"

उपेन्द्र निकट ही एक कुर्सी खीचकर वैठते हुए बोले, "रोना चल रहा था—सभवत: वह महा भारत है?"

सुरबाला लज्जा से आचल के छोर से अपनी दोनो आखे लगातार पोछने लगी।

उपेन्द्र ने कहा, "क्यो तुम उस झूठी रद्दी पुस्तक को लेकर प्राय समय नष्ट करती हो, यह मैं समझ नही पाता। ऊपर से रोना-धोना आखो के आसू ।" बात समाप्त नही हुई। सुरबाला आखे पोछना भूलकर क्रुद्ध होकर वोल उठी, "सैकडो बार तुम यह क्या कहते रहते हो कि ।"

उपेन्द्र ने कहा, "कहता हू कि यह एकदम झूठ है। और कुछ नही कहता।"

इन सब विषयों मे उसको रुष्ट करने मे अधिक देर न लगती थी। उसने अपने रुष्ट लाल दोनो नेत्रो को पति के मुंह की ओर स्थिर करके कहा, "महाभारत झूठ है? ऐसी बात तुम कभी मुह से मत निकालो। यह तमाशा नही है—इससे पाप होता है, यह जानते हो?"

उपेन्द्र ने कहा, "जानता हू, कुछ भी नही होता। अच्छा इनसे पूछो, ये भी विश्वास नही करती।"

इस वार सुरबाला किरणमयी के मुह की ओर देखकर हस पडी। बोली, "सुनती हो बहिन! कहते हैं, तुम महाभारत मे विश्वास नही करती? इनकी ऐसी ही बाते होती हैं! कुछ भी कहते रहते हैं।"

किरणमयी मौन रही। पति-पत्नी के इस अद्‌भुत वितण्डावाद का अर्थ वह समझ न सकी। उसको लगा कि यह एक अभिनय है, और उसी को लक्ष्य करके आड मे कोई एक रहस्य छिपा हुआ है।

उपेन्द्र ने सरोजिनी से पूछा, 'अच्छा आप महाभारत की कहानिया सच्ची समझती हैं?'

सरलभाव से सरोजिनी ने जवाब दिया—'कुछ सच्चाई तो अवश्य होगी। पूरी की पूरी तो कोई भी सच नही मानता, मैं भी नही मानती।'

शुरू मे तो सुरबाला यह सुनकर आश्चर्य मे पड गयी, फिर मजाक समझ उडा दी। लेकिन सरोजिनी की ओर दो-चार बातो तथा उपेन्द्र के व्यग्य-विद्रूप भरे तानो से और भी विस्मित व क्रुद्ध हो उठी। देखते-देखते तीनों मे जोर की बहस छिड गयी। लेकिन किरणमयी एक शब्द भी नही बोली थी। लेकिन सब वाद-विवाद परिहास के अतिरिक्त और भी कुछ हो सकता है, यह वह सोच न सकी। जिसके साथ दर्शन पर वह तर्क करने आई है, वह जब समस्त महाभारत को ही अखण्ड सत्य कहकर प्रमाणित करने को कमर बाधकर वैठी हुई है, तब ऐसी अचिन्तनीय वात को सत्य कहकर वह किस प्रकार अपने मन मे ग्रहण करेगी। इधर तर्क और बातो की काट-छाट लगातार चलने लगी? लेकिन किरणमयी केवल तीक्ष्ण दृष्टि से सुरबाला की ओर मौन होकर निहारती रही। देखते-देखते उसके सदेह का नशा भाप की तरह लुप्त हो गया। उसने देखा, सुरबाला के कण्ठ-स्वर, नेत्रो की दृष्टि, समूचे चेहरे, यहा तक कि सर्वांग से सशयहीन दृढ़ विश्वास मानो फूट रहा है। वह विपुल विराट् ग्रथ उसके लिए प्रत्यक्ष सत्य है। यह तो परिहास नही है यह मानो सजीव विश्वास है। उसके बाद कुछ क्षण के लिए कौन क्या कहता है, उस ओर उसका ध्यान नही रहा। वह मानो अभिभूत की भांति इस सुरबाला के अन्दर अपरिचित भाव की धुधली आकृति देखने लगी। यह एक अपूर्व दृश्य था।

लेकिन, इस तरह वह कब तक रहती कहा नही जा सकता। सहसा वह उपेन्द्र और सरोजिनी की सम्मिलित ऊची हसी के स्वर से अपने मे लौट आयी। उसने देखा हसी से सुरबाला चकरा गयी है। वह बेचारी अकेली थी। इसीलिए किरणमयी को हठात् मध्यस्थ मानकर क्षुब्ध स्वर से कहा, "अच्छा बहिन, यह क्या कभी असत्य हो सकता है?"

उपेन्द्र ने किरणमयी से कहा, "भाभी, तर्क यह है कि भीष्म की शरशय्या के समय अर्जुन बाणो से पृथ्वी को विदीर्ण करके गंगाजी को ले आये थे, यह बात झूठ है। वे कभी नही लाये।"

सुरबाला ने पति के मुह की ओर तीव्र दृष्टिपात करके कहा, "यदि नही लाये तो सुनो। कहती हू, भीष्म जी ने शरशय्या पर लेटकर पानी पीना चाहा, दुर्योधन सोने के पात्र मे जल ले आये, उन्होने नही

पिया यह तो असत्य नही है। गगा यदि नही आयी तो उनकी प्यास मिटी कैसे?"

सरोजिनी यह सुनकर चुप न रह सकी। बोली, "कैसे। यदि प्यास मिट गयी तो वह उनके उसी सुवर्ण पात्र के जल से ही। उन्होने दुर्योधन के उसी सुवर्णपात्र का जल पिया था।"

इस बार सुरबाला ने अत्यन्त उत्तेजित और रुष्ट होकर कहा, "तो क्यो लिखा है कि पिया नही? और यदि सोने के पात्र का जल ही उन्हे पीना था, तो उस दशा में अर्जुन को इतना कष्ट उठाकर बाण द्वारा पृथ्वी को विदीर्ण करके गगा लाने की क्या आवश्यकता पडी थी। यह बताओ, बहिन तुम ही बताओ, यह तो किसी प्रकार भी असत्य नही हो सकता?" यह कहकर उसने क्रुद्ध लेकिन करुण नेत्रो से किरणमयी को देखा। क्षणभर उपेन्द्र की ऊची हसी से कमरा भर गया। सरोजिनी खिलखिलाकर हंस पडी।

उपेन्द्र ने कहा, "लीजिए भाभी, उत्तर दीजिए। गगाजी यदि नही आयी तो प्यास मिटी कैसे? और जब प्यास मिट गयी तब गगाजी आयेंगी क्यों नही?" यह कहकर फिर एक बार ठहाका मारकर हस पडे।

लेकिन आश्चर्य की बात यह हुई कि किरणमयी इस हसी मे सम्मिलित न हो सकी। वह विस्मित नेत्रों से सुरबाला के मुह की ओर देखती हुई स्थिर हो रही। उसके बाद अकस्मात् विपुल आवेग से उसको छाती में खीचकर चुपके से बोली, "झूठ नही है बहिन, कही भी, इसमे तनिक भी झूठ नही है। गगाजी तो आयी थीं। तुमने जो समझा है, जो पढा है, सब सत्य है। सत्य को तो सभी पहचान नहीं सकते बहिन, इसलिए परिहास करते हैं।" यह कहते-कहते उसकी दोनो आखे आसुओं से भर गयीं।

सरोजिनी और उपेन्द्र दोनों ही आश्चर्य से उसके मुह की ओर ताकते रहे। पर किरणमयी ने उस ओर एक बार भी न देखा। उसको उसी तरह छाती में दबाये आसू पोछकर धीरे-धीरे बोली, "बहिन, जो लोग अनेक धर्म-ग्रंथ पढ चुके हैं, वे जानते हैं, आज तुमने जिस तरह सिद्ध कर दिया, इससे अधिक विचार किसी धर्म-ग्रंथ मे कोई पंडित किसी दिन कर नही सके हैं—उन सभी लोगो को इसी प्रकार अपने मन की बाते कहनी पडी हैं। यह बात जो जानता है, उसमे सामर्थ्य नही है कि आज तुम्हारे मुंह की इन थोडी-सी बातों को सुनकर हसे। यह कहकर उसको छोडकर सरोजिनी की ओर देखकर बोली, "क्यों बहिन, तुम क्या मेरा विचार-व्यवहार देखकर आश्चर्य मे पड गयी हो। पडने की बात ही है।" कहकर वह मुसकरा उठी।

लेकिन सबसे अधिक आश्चर्यचकित हो गया था उपेन्द्र। वस्तुत: किरणमयी के इस अद्भुत भाव-परिवर्तन का कारण वह बिल्कुल ही समझ न सका था। जिसने, अभी कुछ ही क्षण पहले स्पष्ट रूप से कहा था—बुद्धि के अतिरिक्त किसी दूसरे तुलादण्ड की वह परवाह नहीं करती और जो वस्तु इसके बाहर है उन्हे अन्दर प्रवेश कराने की कुछ भी आवश्यकता अनुभव नही करती, वह इस अत्यन्त सरलता और लडकपन से किस तरह विचलित हो गयी। उसको छाती में खीचकर जो बाते इसने अभी कही हैं, यह तो मन रखने की बात नही है। इसके अतिरिक्त किरणमयी अवश्य ही जानती है कि उसने जो कुछ कहा है, उसका यथार्थ तात्पर्य हृदयंगम करना सुरबाला की सामर्थ्य मे नहीं है। फिर उसकी आखों में अकस्मात् आसू उमड आना सबसे आश्चर्यजनक है। वे कैसे आ गये? इसके अतिरिक्त एक बात और थी, उपेन्द्र नि सदेह जानता था कि इस प्रकार तीक्ष्ण बुद्धि के स्त्री-पुरुष किसी भी अवस्था मे आवेग प्रकट करना पसद नहीं करते। किसी तरह प्रकट हो जाने पर उसकी लज्जा की सीमा नहीं रहती। लेकिन, तनिक-सी लज्जा भी उसने अपने व्यवहार से अनुभव की हो, यह लक्षण तो सम्पूर्ण अपरिचिता सरोजिनी को भी दिखाई नही पडा।

सध्या हो गयी। किरणमयी सबसे विदा होकर धीरे-धीरे गाडी पर जा बैठी।

दिवाकर घर में नही था, सध्या को घूमने के लिए बाहर चला गया था। इसलिए इधर-उधर देखकर उपेन्द्र को अकेले ही अन्दर जा बैठना पडा। लेकिन किरणमयी ने फिर मानो उसको देखा ही नहीं। गाडी के एक कोने में माथा रखकर वह मौन हो रही।

कुछ समय बीत गया। इस तरह चुपचाप बैठा रहना भी अरुचिकर था। इसके अतिरिक्त उपेन्द्र अवश्य ही समझ रहे थे कि किरणमयी कुछ सोच रही है। लेकिन क्या सोच रही है, इसी की परीक्षा करने के लिए उन्होंने कहा, "देख आयी न। इसी बुद्धिमती को लेकर मुझे गृहस्थी चलानी पड़ती है। लेकिन यो

सभाल लेता था कि अपनी मा की अपेक्षा तो बाबू को मैं अधिक प्यार नही करता, वह स्वय ही जबकि यह दु ख दे गयी तो मैं क्यो बाधा पहुचाऊ! वह बिना समझे ही तो मुझे सिर की सौगन्ध दिलाकर मना नही कर गयी हैं।

इसी प्रकार इन लोगो के एकान्तवास की अवधि बीत रही थी। संभवत. कुछ समय और भी बीत जाता, लेकिन एकाएक एक दिन बाधा पड गयी।

जिसे काल वैशाखी कहते हैं, उस दिन वही समय था। समस्त दिन मन मे यद्यपि दुर्दिन का कोई लक्षण नही था, लेकिन लगभग तीसरे पहर बीस मिनट के अन्दर ही आकाश मे प्रबल तूफान छा गया। पलभर मे सतीश ने घोडे के पैरों की आवाज सुनकर देखा, एक अच्छा घोडा पीठ पर साज लिये तूफान के साथ उन्मत्त वेग से भागता चला जा रहा है। सतीश ने पुकारकर कहा, "बिहारी, वह किसका घोडा दौडता हुआ भाग गया, जानता है?"

बिहारी ने कमरे मे बत्ती साफ करते-करते कहा, "किसी बाबू-वाबू का होगा।"

सतीश ने पूछा, "इस तरफ बाबू और कौन है रे यहा?"

बिहारी ने कहा, "इस तरफ भले ही न हो, देवघर से प्राय. बाबू-भैया लोग गाड़ी पर सवार होकर त्रिकूट देखने, तपोवन देखने के लिए आते हैं। उन्ही लोगों मे से किसी का होगा। तूफान के डर से दौड रहा है।"

"तब तो बडी मुश्किल है।" यह कहकर सतीश फिर अपनी आरामकुर्सी पर लेट गया। लेकिन उस बात को वह अपने मन से निकाल न सका। उसके मन मे विचार उठने लगा, कुछ भी हो स्त्री के साथ रहने से विपत्ति तो साधारण नही हो सकती। इस स्थान मे गाडी-पालकी तो दूर की बात है, एक आदमी की सहायता पाना भी कठिन है। इसके अतिरिक्त सध्या होने मे तो देर नही है। संभवतः वर्षा होने लगेगी। सतीश बैठा न रह सका, बरामदे के कोने से लाठी उठाकर बाहर निकल पड़ा। मार्ग मे आकर उसने देखा, पत्थरो का चूरा आधी के वेग से छर्रों की भांति शरीर में बिंध रहा है और सम्पूर्ण मार्ग में धूल और बालू से अधेरा हो गया है। एकाएक उस अंधकार से तूफान की ओर से एक हो-हो की चिल्लाहट आने लगी। होली की छुट्टी पाकर हिन्दुस्तानी दरबानों का दल जिस प्रकार की चिल्लाहट-भरी आवाज करते हुए रास्ते मे निकल पड़ता है—यह उसी प्रकार की आवाज थी। बात क्या है यह देखने के लिए सतीश ने उस धूलि में कुछ मार्ग तय करते ही देखा, मार्ग पर एक टमटम है, और उसी को घेरकर आठ-दस आदमी आनन्द-ध्वनि कर रहे हैं। किसी के सिर पर टोपी है, किसी के सिर पर पगडी है—सभी का पहनावा हिन्दुस्तानी है।

यह आनन्द किस बात का है, यह बात जानने के लिए सतीश ने और कई कदम आगे बढ़ते ही देखा, टमटम की एक बाह पकडकर एक स्त्री माथा झुकाये अत्यन्त सिमटी हुई खडी हुई है और उसी को लक्ष्य करके जमा हुए लोग जिस भाषा का प्रयोग कर रहे हैं, उसे उच्चारण कर पाना किसी सभ्य आदमी के लिए सभव नही है। सतीश को पहले यह ध्यान आया कि ये लोग इस ओर कही इस स्त्री को लेकर आनद मनाने आये थे और अब घोडा भाग जाने से एक प्रकार की खुशी मना रहे हैं। एक बार उसने सोचा कि लौट जाये लेकिन मालूम नही वह क्यो आज किसी पकार भी कौतूहल रोक न सका। ठीक उसी समय आश्चर्य के साथ उसकी निगाह पड़ गयी उस स्त्री के पहनावे पर। संध्या और बालू के अन्धकार मे भी जान पडा कि, उसका पहनावा मानो बगाली स्त्रियो की तरह का है। पैरो मे लखनऊ के बने जूते नहीं हैं, बल्कि अगरेज स्त्रिया जो पहनती हैं वे ही हैं।

अकस्मात्! उस स्त्री ने ऊंचे स्वर से पुकारकर कहा, "महाशय! मुझे बचाइए!"

"बचाइए!" एक ही क्षण में सतीश के वैराग्य का नशा हवा हो गया। कामिनी अत्यंत घृणित है, इस तत्त्व को वह भूल गया—बाघ की तरह कूदकर वह एकदम ही उस औरत के निकट जा खडा हुआ। उसने कहा, "क्या हुआ है?"

उस स्त्री ने इतनी देर तक अकेले बहुत ही कष्ट सहन किया था। इस बार मुंह ढककर बैठ गयी और रोने लगी।

सतीश ने व्यग्र होकर पूछा, "क्या बात है? क्या हो गया है?"
"ये लोग मेरा बहुत अपमान कर रहे हैं।"
"अपमान कर रहे हैं? कौन हैं ये लोग?"
"मैं नहीं जानती।"
"जानती नहीं हो?" सतीश एक ही साथ बहुत से प्रश्न कर बैठा, "तुम कौन हो? कहां से आयी हो? तुम्हारे घर के लोग कहा हैं? यह गाडी किसकी है?"
उस स्त्री ने आखे पोंछकर रुधे कण्ठ से कहा, "मेरा साईस घोडा पकडने के लिए साथ-साथ दौडता गया है—और कोई नहीं है। मैं निकुट देखने के लिए आयी थी—प्राय. आती हूँ—वहाँ से ही ये लोग मुझे तग करते आ रहे हैं।"
सतीश ने क्रुद्ध होकर कहा, "अच्छा किया है। आप क्या मेम साहब हैं कि टमटम हाककर इतनी दूर तक आयी हैं? आप क्या अग्रेज की स्त्री हैं कि जहा भी इच्छा हो अकेले जाने पर कोई भय नहीं है? हमारे देशी आदमी असहाय देशी स्त्रियों को पाने से उसका अपमान करेंगे, उनके ऊपर अत्याचार करेंगे यही है इस देश का नियम, इसे क्या आपके मा-बाप नहीं जानते?" यह कहकर हिन्दुस्तानियो में जो सबसे बडा था, उसके ऊपर अग्निदृष्टि डालकर उसने कहा, "तुम लोग यहा खडे क्यों हो?'
उसने कहा, "हमारी खुशी।"
उन लोगो की आखो की ओर देखने से ही समझ मे आता था कि उन्होंने या तो भाग, गाजा अथवा दोनो ही वस्तुओं का सेवन किया है। सतीश ने हाथ से सीधा मार्ग दिखाकर सक्षेप मे कहा, "जाओ।"
उत्तर में उस व्यक्ति ने अपने मुह को अत्यन्त विकृत बनाकर कहा, "अरे, जाओ रे।"
प्रत्युत्तर में सतीश ने उसके गाल पर ऐसा एक थप्पड लगा दिया कि वह उस 'रे' शब्द को ही और जरा-सा खीच लेने का अवसर भर पा गया, उसके बाद बेहोश होकर मार्ग पर चक्कर खाकर गिर पडा और उसके पास निरीह की भांति जो छोकडा खडा था, वह बिना अपराध के ही सतीश के बाये हाथ का चपेटा खाकर टमटम के साईस के बैठने के स्थान पर और उसके बाद पहिए के नीचे आखे बन्द करके बैठ गया। बाकी जो कई आदमी थे, उनमे से कुछ तो नशे के गुण से हतबुद्धि की भांति देखते खडे रहे। सतीश ने सामने के आदमी को बुलाकर कहा, "अब तुम जाओ।"
प्रत्युत्तर मे वह बिजली की भांति तेजी से सबके पीछे जा खडा हुआ।
सतीश ने उस स्त्री से कहा, "उठिए ।"
वह चुपचाप उठ खडी हुई। सतीश ने कहा, "पानी आने मे देर नहीं है—आइये मेरे साथ।"
स्त्री ने डरते-डरते कहा, "मैं क्या शहर तक पैदल चल सकूगी?"
सतीश ने कहा, "शहर मे नही, मेरे घर पर। उसी बगीचे मे। पानी आ रहा है, अब खड़ी रहकर सोचने से काम न चलेगा। न चलेगी तो यही खडी रहकर भीगिए, मैं जा रहा हू।"
स्त्री ने कहा, "चलिए। आपके साथ चलने मे हर्ज क्या है?"
बूद-बूद पानी गिरना आरम्भ हो गया और आधी का वेग शिथिल होने पर भी रुका नही था। दोनो कुछ देर तक चुपचाप चलते रहे, बगीचे के फाटक के सामने एकाएक सतीश बोला, "लेकिन घर पर कोई स्त्री नही है—मैं अकेला रहता हू।"
स्त्री ने पूछा, "तो फिर आपकी रसोई पकाने, घर-गृहस्थी का काम कौन करता है? स्वय करते हैं?"
"नही, नौकर है। लेकिन वह भी कोई स्त्री नही है।"
"भले ही न हो। लेकिन आप खड़े क्यो हो गये? चलते-चलते बताइए न।"
सतीश ने कुण्ठित होकर कहा, "यही कहता हू कि मेरे यहा कोई स्त्री नही है। इस रात्रि को अन्दर जाने से पहले आपको बता देना उचित है।"
स्त्री ने कहा, "यदि उचित है तो वही क्यो नही बता दिया। लेकिन मैं अब खड़ी नही रह सकती—मेरे हाथ-पैर काप रहे हैं। इसके अतिरिक्त मुझे बडी प्यास लगी है।"
"आइए, आइए!" कहकर सतीश घबडाकर अधेरे बगीचे मे मार्ग दिखाता हुआ चलने लगा। इन सब भद्दी घटनाओ के बाद यह कैसे थक गयी है, यह मन ही मन अनुभव करके सतीश लज्जित हो उठा।

थोड़ी देर के बाद ही उसने धीरे-धीरे कहा, "आपकी आवाज मैंने कहीं सुनी है ऐसा ज्ञात हो रहा है।" स्त्री ने इसका उत्तर नही दिया। लेकिन वह समझ गयी कि अधकार मे सतीश उसका मुह नही देख सका। बरामदे मे जाकर सतीश की टूटी आरामकुर्सी पर बैठकर उसने कहा, "साथ मे बिहारी है न?"

यह कहकर उसने ऊचे स्वर से पुकारा, "बिहारी, मेरे लिए एक गिलास पानी तो लाओ।"

बिहारी उधर के बरामदे मे था। पुकार सुनकर पानी लेकर उपस्थित हुआ। बरामदे की दीवाल पर टिमटिमाती हुई एक मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी, उसी क्षीण प्रकाश मे उसने उस स्त्री को देखते ही पहिचानकर आश्चर्य के साथ कहा, "बहिनजी, आप हैं!"

"वह तो लम्बी कहानी है।" कहकर स्वय उठकर बिहारी के हाथ से पानी का गिलास लेकर सारा का सारा एक सास मे पीकर बिहारी के हाथ में लौटाकर उसने कहा, "भैया को खबर देनी पडेगी बिहारी। पता बता देने से इस रात को तुम मकान का पता लगा सकोगे न?"

बिहारी ने गरदन हिलाकर कहा, "नही बहिनजी, मैं तो शहर का कुछ भी नही जानता। इसके अतिरिक्त बूढ़ा आदमी ठहरा, इस आधी-पानी मे अधेरे मार्ग मे क्या चल सकूगा?"

"तब क्या होगा बिहारी? यदि घोड़ा जाकर अस्तबल मे घुस गया होगा, तो भैया सोच मे पडकर व्याकुल हो जायेगे। किसी भी उपाय से उनको खबर देनी होगी कि कोई भय नही है, मैं निरापद हू।"

बिहारी ने सोचकर कहा, "हमारा रसोइया ब्राह्मण इसी देश का आदमी है, राह-घाट सब पहचानता है। ज्योतिष बाबू का डेरा बताने से वह अवश्य ही जा सकेगा।"

सतीश यह जान गया कि वह स्त्री कौन है। उसने कहा, "भैया को एक पत्र लिख दीजिए।"

उस स्त्री ने कहा, "वह तो लिखना पडेगा ही।"

सतीश बोला, "इस प्रकार लिख दीजिएगा कि बहिन को मेम साहब बना देने का फल आज क्या हुआ। साहब आदमी सुन लेने पर सभवत प्रसन्न ही होगे।"

व्यग्य सुनकर सरोजिनी क्रुद्ध हो गयी। उसका आज का आचरण दुर्भाग्यवश अत्यन्त भद्दा हो गया था, यह सच है। इसके लिए उसे स्वय भी कम पछतावा नही हुआ, लेकिन दूसरा कोई आदमी इसीलिए बार-बार मेमसाहब के साथ तुलना करके व्यग्य बोलेगा तो वह सहा नहीं जा सकता। उसने कडे स्वर से उत्तर दिया, "भैया को आप ही लिख दीजिए, उनकी बहिन को कैसी विपत्ति से आज आपने बचा लिया है!"

उसकी खीझ का कारण सतीश समझ गया। लेकिन स्वय वह यह सब साहबी चाल सह नही सकता था। उसने कहा, "लिख देना ही उचित है। इस पर भी यदि आप लोगो के समाज को होश आये।"

सरोजिनी ने कहा, "हमारे समाज के प्रति आपको बडी घृणा है न? आप की धारणा यह है कि हम लोग मनुष्य नही हैं?"

—मेरी धारणा जो भी हो। आप लोगों की खुद की धारणा क्या है? कि आप लोगो के अलावा बगाल मे मनुष्य ही नही होते, यही न?

—हम लोगो मे जिनकी यह धारणा है, कम-से-कम मैं उन्हे इसके लिये दोष नही देती।

—मालूम है। इसीलिये आज आपको और अधिक सज़ा मिलनी चाहिये थी। वहां आपको पहचान जाता तो चुपचाप वापस चला आता, मुंह से एक शब्द भी नही निकालता।

—क्या सजा मिलती, जरा मैं भी तो सुनूं? अपमान और अत्याचार—यही न?

—हा यही, सतीश ने जोर से कहा।

—अच्छा अब समझ में आया कि असहाय औरत का अपमान करना ही देशी लोगो का चरित्र होने की बात आपने क्यों कही थी। आपको चाहिये था कि बाकी का अपमान घर लाकर खुद करते। अब पहचान निकल आने के कारण बाधा पड जाने का गुस्सा है आपको।

सरोजिनी की बात मे कटुता देखकर क्रोधित होते हुए भी सतीश को हसी आ गई। बोला, 'हा, बिल्कुल यही बात है। आपका अपमान न कर पाने के कारण ही यह गुस्सा है। हमारे यहा कृतज्ञता नाम का एक शब्द है, लेकिन लगता है कि आप साहब-मेमसाहबों के अभिधान में वह शब्द ही नही है।"

बादलो मे छिपी बिजली की तरह सरोजिनी के ओठों पर हसी दौड गयी; तब भी क्रोध प्रकट करते हुए बोली, 'हा, नहीं है। ये साहब-मेमसाहब जितने अकृतज्ञ होते हैं, उतने ही पाखण्डी। आप जब तक उनके दल मे शामिल नहीं होंगे उनके परित्राण का कोई उपाय ही नही है। कहिये शामिल होंगे उनके दल मे।'

प्रत्युत्तर मे सतीश भी हसी को दबाकर कुछ कहने जा रहा था। ऐसे ही समय बिहारी ने हनुमान पाण्डेजी को लाकर उपस्थित किया। सरोजिनी ने हैंड बेग खोलकर पाच रुपये निकालकर कुर्ती की बाह पर रखकर कहा, "यह है तुम्हारा इनाम पाण्डेजी, यदि इसी शहर में जाकर यह चिट्ठी दे आ सको।" यह कहकर उसने पूरा पता बता दिया।

पाण्डेजी ने अपनी एक महीने की आमदनी पर ललचाई दृष्टि डालकर एक क्षण में ही राजी होकर हाथ बढ़ा दिया। उसके पसारे हुए हाथ मे सरोजिनी उन थोडे से रुपयो को रखकर चिट्ठी लिखने के लिए कमरे के अन्दर चली गयी। लिखने की मेज सामने ही थी। थोडी ही देर के बाद उसने पत्र लाकर पाण्डेजी के हाथ मे दे दिया। पाण्डेजी सावधानी से अपनी मिरजई मे रखकर बायें हाथ में छोटी लालटेन और हाथ मे खूब लम्बी ओर मोटी बास की लाठी लेकर बाहर की मूसलाधार वर्षा में ही पलभर मे अन्तर्धान हो गये।

बिहारी ने कुण्ठित भाव से कहा, "बाबू, महाराज कब लौटेगा इसका ठिकाना नहीं—रसोई का क्या होगा?"

सतीश सरोजिनी के मुह की ओर एक बार देखकर, बात को दबा रखने के लिए लापरवाही के साथ बोला, "अरे, छोडो भी! वह पीछे हो जाएगी।"

बिहारी की घबराहट उससे कुछ भी कम नहीं हुई। उसने कहा, "किस प्रकार हो जायेगी, मैं तो समझ नही पाता बाबू!"

सतीश ने रुष्ट होकर कहा, "तुझे समझना न पडेगा बिहारी, तू जा। यह सब मैं ठीक कर लूगा। इसके अतिरिक्त आज मुझे भूख भी नही है।"

बिहारी एक कदम भी नही डिगा। क्योंकि इस बात पर उसने तनिक भी विश्वास नही किया। क्योंकि पहले तो साधारण लोगों की अपेक्षा मालिक की भूख की मात्रा अधिक है, इसके अतिरिक्त इतने दिनों की नौकरी में उसने उन में इस वस्तु की कमी एक दिन भी नही देखी। संकोच से उसने कहा, "यह क्या हो सकता है बाबू!"

सतीश ने तिरस्कारपूर्वक कहा, "यही तो तेरा दोष है बिहारी, तू सभी बातो में तर्क करता है। कह रहा हू कि यह सब मैं ठीक कर लूगा, जाने के लिए कह रहा हूं, जाता नही, मुह के आगे खडा रहकर बराबरी का जवाब दे रहा है।"

बिहारी क्षुब्ध चित्त से चला जा रहा था। सरोजिनी ने पुकारकर वापस बुलाकर कहा, "आज मेरे ही कारण तुम लोगों पर इतनी विपत्ति आ पडी है बिहारी। रसोई की तैयारी क्या कुछ भी नही हुई है?"

बिहारी ने कहा, "हुई क्यों नही है बहिनजी, किन्तु रसोई बनाएगा कौन? महाराज के लौट आने मे कितनी देर होगी इसका तो कोई ठिकाना नहीं है।" यह कहकर वह अप्रसन्न मुंह से जाने लगा।

सरोजिनी ने कहा, "मेम साहब या जो भी हू, तो भी आपके साथ एक ही जाति की तो हू। उसके हाथ का तैयार खाना खाने से क्या किसी की जाति जायेगी?"

प्रश्न सुनकर सतीश हस पडा। बोला, "जाति जायेगी या नही, मैं कह नही सकता, किन्तु मेम साहब के हाथों की बनी रसोई गले से नीचे उतरेगी या नही, यही असली बात है।"

"ऐसी बात है। मेम साहब के हाथ की बनी रसोई खाने से वे भूल न सकेंगे।" यह कहकर सरोजिनी हसी और इत्र की गध से समूचे कमरे को मानो तरंगित करके तेज कदम से उठकर दूसरे कमरे मे चली गयी। पाच-छ मिनट के बाद जब वह बाहर आयी तब उसकी ओर देखकर सतीश क्षणभर के लिए मुग्ध हो गया।

जूता-मोजा के बदले दोनों पैर खाली थे। रेशम की कुर्ती साडी के बदले केवल कमीज पर एक सादी

लाल पाड की धोती पहिने थी। देखकर सतीश की दोनो आंखे शीतल हो गयी। उच्छ्वसित कण्ठ से बोला, "क्या ही सुन्दर आप दिखाई पड रही हैं! मानो लक्ष्मी देवी ही हैं।"

सुनकर सरोजिनी की शिराओ में आनन्द की बाढ आ गयी लेकिन अत्यन्त लज्जा से सिर झुकाकर उसने कहा, "जाइए, परिहास करने से पकाऊंगी नही, कहे देती हू। तब उपवास करना पड़ेगा।"

लेकिन इस लज्जा को उसने उसी क्षण दबा दिया। क्योंकि वह जानती थी, लज्जा को प्रश्रय देने से वह उत्कट हो उठती है। इसीलिए सिर ऊपर उठाकर उसने हंसते हुए कहा, "प्रशसा बाद मे होगी। अब रसोईघर किस मुहल्ले मे है, दिखा देने को कह दीजिए।" कहकर वह स्वय ही आगे बढ़ गयी।

उन्तीस

भोजन करने के बाद बरामदे में दो कुर्सियो पर दोनो ही आमने-सामने बैठे थे।

सरोजिनी ने कहा, "एक बात हम लोगो में से किसी के ध्यान मे नही आयी कि भैया के मकान का पता यदि महाराज ढूंढने पर न लगा सका तो स्वय ही एक गाडी बुला लावेगा। लेकिन यह यदि न हो सका तो क्या होगा सतीश बाबू?"

सतीश ने कहा, "यह बात ध्यान में आने पर भी विशेष कोई लाभ न होता। इतनी रात को इतनी दूर कोई गाडी वाला भी सभवत आना नही चाहता। या तो आपको यही रात्रिवास करना पडेगा, या फिर पैदल चलना पडेगा। इसके अतिरिक्त तीसरा उपाय नहीं है।"

"मैं पैदल चल सकती हू, लेकिन आपके अतिरिक्त किसी अन्य के साथ नही।"

"इसका अर्थ? मेरे साथ जाने से ही क्या विपत्ति की सभावना नही है?"

"क्यो नही।" लेकिन उसकी पूरी जिम्मेदारी आपके ऊपर है। जवाबदेही आपको करनी पडेगी, मुझे नही।"

सतीश ने कहा, "मुझे क्यो जवाबदेही करनी पडेगी? मेरा अपराध?"

"और किसी के सामने आप भले ही न करे, अपने सामने तो करनी ही पडेगी।" यह कहकर एकाएक सरोजिनी चुप हो गयी।

सतीश ने फिर उसका प्रतिवाद नही किया। लेकिन उसने स्पष्ट अनुभव किया, दोनों की क्षणिक नीरवता के बीच से लज्जा की हवा का एक झोंका बह गया।

"कोई आ रहा है न?" यह कहकर सरोजिनी कुर्सी छोडकर उठ पडी और कुछ देर तक बरामदे की रेलिंग पर टिककर अधेरे बगीचे की ओर देखती हुई खडी रही।

थोडी ही देर के बाद जब 'कोई नही है' कहकर वह अपने स्थान पर लौट आई और अपने कपड़े-लत्ते एक बार फिर अच्छी तरह सभालकर बैठ गयी, तब सतीश कोई बात ही न कह सका।

इसके बाद दोनों ही चुप होकर बैठे रहे। तब तक बाहर तूफान बन्द हो जाने पर भी वर्षा रुकी नही थी। एकान्त स्थान मे स्वल्प प्रकाशयुक्त बरामदे मे ये दोनो तरुणावस्था के नर-नारी एक-दूसरे के आमने-सामने जब नीरव हो बैठे रहे, तब एक और अन्धे देवता अन्तरिक्ष मे अवश्य ही मुंह दबाकर हसे होंगे। यह हंसी काले मेघो के भीतर छिपा खेल खेलता रह गया।

बाह्य प्रकृति आकाश-बातास, प्रकाश-अन्धकार के माध्यम से कैसे मनुष्य के मनोभावों व चित्तवृत्ति को आकर्षित करती है, इसकी खबर सतीश को कुछ दिन पहले पता लगी थी। जिस दिन बिहारी के मुंह से सावित्री के विपिन के साथ चले जाने की बात सुनकर, अपने भविष्य को दुःख के सागर में डूबा हुआ समझकर बिल्कुल ज्ञानशून्य हो गया था और अकेला निर्जन स्थान में जाकर पड गया था, उस दिन ऐसे ही काले आकाश ने अपने शीतल हस्त से उसके हृदय की ज्वाला शांत करके सावित्री को क्षमा करना सिखाया था। और आज की यह उद्दाम चचल प्रकृति अपनी सजीवता के स्पर्श से उसके निराशा पीडित चित्त को दुर्निवार वेग से किसी दूसरे ही रास्ते की ओर ठेल रही थी।

सरोजिनी ने एकाएक प्रश्न किया, "आपके इस वनवास का अर्थ क्या है?"

का भाव न समझ सकी, अथवा समझकर भी, सतीश का कौतूहल दूर करने की आवश्यकता उसने नही समझी। उसने भैया को आगे चलने के लिए हलका धक्का लगाकर मृदु स्वर मे कहा, "अब देर मत करो भैया, चलो. ।"

"हा बहिन, चल।" कहकर सतीश को नमस्कार करके वह बोले, "फिर एक बार आपको असख्य धन्यवाद सतीश बाबू! कल-परसो एक दिन गरीब के यहा भी चरण-धूलि पड जाती तो अच्छा होता।"

सतीश ने प्रतिनमस्कार करके अस्पष्ट स्वर से जो कुछ कहा, वह समझ मे नही आया। सरोजिनी लौटकर खडी हो गयी और सतीश को एक छोटा-सा नमस्कार करके चली गयी।

वही खडे-खडे सतीश की आखे भर आयी। क्यों वह स्वय कारण समझ नही सका। जाने क्यों मन बार-बार कहने लगा कि उसकी सावित्री, उसकी भाभी, उसके उपीन, सब ने उसे एक साथ छोड दिया है। इस निर्जन कुटिया को छोडकर उसका अन्यत्र कही स्थान नही है।

तीस

दो महीने पूर्व हारान की मृत्यु के समय केवल दो-चार दिनो के ही लिए कलकत्ता मे रहकर दिवाकर वापस चले जाने को बाध्य हो गया, इस बार यह निश्चय हो जाने से कि वह किरणमयी के सरक्षण मे रहकर कलकत्ता के कॉलिज मे बी० ए० पढेगा, वह अपने नये खरीदे हुए स्टील के बक्स में किताबे, कागज और कपडे आदि भरकर एक दिन शाम को हारान बाबू के पाथुरियाघाटा के मकान पर जा पहुचा।

किरणमयी ने उसको अल्पवयस्क छोटे भाई की तरह स्नेह के साथ ग्रहण किया।

मामा के घर मे सुरबाला के अतिरिक्त दिवाकर की देखभाल करने वाला कोई नहीं था। फिर उस देखभाल मे भी महेश्वरी की कडी दृष्टि, शनि की दृष्टि की भाति अधिकाश समय में ही बहुत-सा रस सुखा डालती थी। लेकिन यहा इन सब उपद्रवो मे से एक भी नही था।

उपेक्षा से लगाया हुआ गमले का पौधा सयोगवश पृथ्वी की गोद मे आश्रय पाकर काफी रस मिलने से जिस प्रकार उसकी सूखी पतली जडे मिट्टी के भीतर सहस्रो भुजाए बढाने लगती हैं, किरणमयी के आश्रय मे भी दिवाकर की ठीक वही दशा हुई।

महानगरी के विस्तृत और विचित्र वातावरण मे पडकर देखते-देखते उसकी सकुचित आशा तथा अन्धकारपूर्ण भविष्य फडक उठा। अपने को उसने बडे रूप मे अनुभव किया। बी० ए० फेल करके विद्याभ्यास का उसका पुराना बन्धन छिन्न हो गया है फिर भी नये बन्धन मे अभी देर है, इस मधुर अवकाश काल मे वह निरन्तर सर्वत्र घूम-घूमकर ज्ञान सग्रह करने लगा।

थियेटर देखकर कल्पना लोक मे पहुच गया, जू देखा तो दातो तले उगली दबा ली, म्यूजियम देखकर स्तम्भित हो गया, शिवपुर का कम्पनी बाग देखकर एक निबन्ध लिख डाला, गगनचुम्बी अट्टालिकाओ की ऊचाई को सिर उठाकर मुह बाये देखता ही रह गया, और फिर अत मे एक दिन गाडी के नीचे आकर पैर मे चोट लेकर लौट गया।

चोट बहुत ज्यादा नही थी। किरणमयी ने जल्दी से चूना-हल्दी गरम करके लेप लगाते हुए मुस्कुराकर पूछा, किसके नीचे आ गये छोटे देवर? घोडागाडी थी या बैलगाडी?

गुस्से से दिवाकर ने कहा, घोडागाडी।

—चलो बच गये। नही तो लॅंगडे पैर थाने मे जुर्माना भरने जाना पडता।

लज्जित स्वर मे दिवाकर ने कहा, कुछ नही है, कल सवेरे तक ठीक हो जायेगी।

किरणमयी बोली, वो तो हो ही जायेगी। पर ज्यादा दूर मत जाना। सुना है बच्चे पकडने वालों का दल आया हुआ है यहा।

इसी प्रकार दिन बीत रहे थे। अघोरमयी विभिन्न तीर्थस्थानों मे घूमकर एक दिन घर लौट आयी। इसके पहले दो-एक दिन जो उन्होंने दिवाकर को देखा था तब पुत्र-शोक से मन इतना दुःखी था कि इसके चेहरे की ओर नजर ही नही पडी। आज इस दाढ़ी-मूछ विहीन सुन्दर कान्तिवाले मनोहर लडके

की ओर देखते ही उनका मातृ-हृदय स्नेह मे पिघल गया। उन्होने कहा, "दिबू,मैं रिश्ते मे तुम्हारी मौसी लगती हू, मुझे मौसी कहकर पुकारना बेटा।"

इसके भी मा-बाप जीवित नही हैं, सुनकर उनकी दोनो आखे छलछला आई और बडे-बडे दो बूद अश्रुकण आचल के छोर से उन्होने पोछ डाले। उन्होने कहा, "भगवान ने मेरे हारान को छीन लेने पर भी यदि मुझ अभागिनी को बचा रखा है तो अब इने-गिने दिन जीवित रहू, तू बेटा मुझे छोडकर कही मत जाना।" यह कहकर हाथ से उसका मस्तक छूकर उन्होने अपनी अगुलियो का छोर चूम लिया। उनकी बाते सुनकर और आखो के आसू देखकर दिवाकर आखो के आसू छिपाकर सामने से हट गया। इसके बाद कुछ ही दिनो मे उनका दिवाकर के प्रति पुत्र-प्रेम जादूगर के माया-वृक्ष की भाति बढता ही चला गया।

इसी मकान मे कई माह पूर्व उनका पुत्र मर गया था, उस निष्ठुर शोक के मातृत्व के खुराक में जगा रही थी। इन दिनो वही शोक अपेक्षाकृत शांत हो जाने से उनका क्षुधातुर मातृहृदय सतान के अभाव मे टुकडे-टुकडे होकर बिल्कुल ही बिखर पडता इससे पहले ही उन्होने सतान परित्यक्त उस शून्य सिहासन पर दिवाकर को बडे लाड से बैठा लिया था।

सच बात यह है कि इस पुत्रहीना जननी ने कुछ दिन प्रवास मे बिताकर घर लौट आने पर पुत्र का अभाव समूचे हृदय से पूरा कर लेना चाहा।

एक ओर वह थी और दूसरी ओर थी किरणमयी, आदर-यत्न की कोई सीमा नही रही।

भूख न होने पर, जरा सा सर्दी-जुखाम हो जाने पर जवाबदेही देनी पडती है। स्नेह के इस रहस्य को नहीं जानता था। जीवन के इस आकस्मिक परिवर्तन के प्रथम कुछ दिन उसको कुछ अटपटे से जान पडे, चिरभ्यस्त अनधिकार का सकोच बिल्कुल कट जाना नही चाहता था, तो भी थोडे ही दिनो मे उसका सकीर्ण मन इन दोनो नारियो के अपरिमित स्नेह मे अपरिमित रूप से फैला गया। अन्त मे एक दिन उसके बहुक्लेशार्जित दु ख सहने के अभ्यास सूखे चमडे की भाति शरीर मे अज्ञात रूप से झर गये, इसको वह जान भी न सका।

क्रमश देखने की सारी जगहें एक-एक कर देख डाली उसने। कलकत्ते की सडको से अच्छी तरह परिचित व अभ्यस्त हो जाने के कारण गाडी-वाडी के नीचे आने की सभावना भी अब खत्म हो गई थी, अत दिवाकर ने सभा समिति मे योगदान देना, थोडा-बहुत लिखना शुरू किया। अल्पावधि मे ही वह एक मासिक पत्रिका का उत्साही व मान्य लेखक हो गया था। बचपन मे ही गाने-बजाने व साहित्य के प्रति अनुराग था, थोडी बहुत तुकबन्दी भी कर लेता था। अब दिवाकर बदोपाध्याय के नाम से कहानिया लिखने लगा। कॉलेज के कुछ लडको ने मिलकर 'चन्द्रोदय' नाम की मासिक पत्रिका निकाली थी, उसी को लेकर दिवाकर पागल हो उठा था।

अब वह जब|तब घर से बाहर नही निकलता, उसको बहुत काम रहता है। टूटी छत के निर्जन कोने मे पेंसिल-कापी लेकर गभीर मुह से वह बैठा रहता है, स्नान-भोजन की बात उसे स्मरण ही नही रहती—बहुत बुलाहट के बाद उसको नीचे उतारा जा सकता है। उसके मानस राज्य के इन नवीन उपद्रवो को भय के साथ लक्ष्य करके अघोरमयी कहने लगी, "इसी घर का दोष है। मेरे हारान ने लिख-पढ़कर प्राण दे दिया, इसको भी देखती हू उसी रोग ने पकड लिया है—नही बाबू, पराया लडका।"

किरणमयी सब कुछ ही लक्ष्य कर रही थी। उसने हसकर कहा, "इसकी चिन्ता तुम मत करो मा, उन्होने जो लिखने-पढ़ने मे मन लगाया है, उससे परमायु घटती नही, बल्कि बढ़ती है।"

इसके कुछ ही दिन बाद 'चन्द्रोदय' में दिवाकर की 'जहर की छुरी' नामक कहानी प्रकाशित हुई। 'सूर्योदय' पत्र ने उसकी समालोचना करके कहा, 'बंगाल के गौरव, सुप्रसिद्ध नवीन लेखक श्रीयुत दिवाकर बन्धोपाध्याय लिखित प्रेम का एक सच्चा चित्र।'

इस निर्लज्ज चापलूसी को एक अकाट्य सत्य मानकर ग्रहण करने में दिवाकर ने तनिक भी सकोच नहीं किया। प्रथम यौवनावस्था। इसके बीच ही उसने दो-चार भक्त इष्ट-मित्रो की सहायता से सुनहली टोपी माथे पर पहन ली थी, 'सूर्योदय' के सम्पादक ने उसके ही चारो तरफ पोथियो की एक माला लपेट दी।

अपरूप साहित्य का वह किरीट माथे पर धारण कर दिवाकर एक दिन सबेरे गर्वोन्नत मुख से

रसोईघर में आ पहुचा। उसके हाथ मे वही 'सूर्योदय' पत्र था।

किरणमयी रसोई पका रही थी, बोली, "तुम्हारे हाथ मे यह कैसी पत्रिका है बबुआ?"

"ओह! यह एक मासिक पत्र 'सूर्योदय' है—नया निकला है। लेकिन कुछ भी कहो भाभी, खूब लिखता है।"

किरणमयी 'सूर्योदय' पत्रिका के बारे मे कुछ नही जानती थी। आग्रह के साथ बोली—"सच? तब एक बार देखूगी।"

"अभी देखोगी?"

"अभी नही, मेरे बिछौने पर रख दो। दोपहर को देखूगी।"

दोपहर को काम-काज मे छुट्टी पाकर किरणमयी 'सूर्योदय'-खोलकर बैठ गई।

इधर-उधर देखते-देखते ठीक जगह पर ही उसकी दृष्टि पड गई। दिवाकर पास वाले कमरे में ही था। उठकर उसके पास जाकर उसने कहा, "कहो बबुआ, 'जहर की छुरी' कहा है? समालोचना तो तुमने दिखा दी, अब असल चीज निकालो।"

दिवाकर लज्जित होकर विनयपूर्वक कहने लगा, "ओह! वह कहानी? वह तो कुछ भी नही है—वह तो हडबडी मे लिखी हुई है।"

किरणमयी हसकर बोली, "भले ही हो, तुम मुझे दो।" यह कहकर उसने आप ही ढूढकर 'चन्द्रोदय' का वह अक निकाल लिया, वही उसे खोलकर वह कुर्सी पर बैठ गयी। वह मौन होकर पढने लगी, लेकिन दिवाकर आशा और आकाक्षा की तीव्र उत्तेजना छिपाकर झूठमूठ एक पुस्तक के पन्ने उलटने लगा। उसकी 'जहर की छुरी' नामक कहानी की नायिका असाधारण सुन्दरी है और षोडशी है। धनवान जमीदार की लडकी होकर भी उसने दैवयोग स एक दरिद्र रूपवान युवक को प्रेम किया है। जमीदार को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होने विजयकुमार को देश निकाला दे दिया। लेकिन नगेन्द्रनन्दिनी को कुछ भी ज्ञात नही था, बसन्त के मालती कुज मे बैठकर वह माला गूथ रही थी। उधर रूप मे मुग्ध पूर्णचन्द्र पेड की ओट मे झाक रहा था, लेकिन आकाश मे आने का साहस नही करता। प्रभात की कल्पना करके बीच-बीच मे कोयल कूकती है, ऊपर लुब्ध भृंग गुनगुनाता हुआ निद्रालसा मालती की नीद तोड रहा है। उस समय धीरे-धीरे वह कौन आ रहा है? हा, वही तो है! लेकिन यह कैसा वेश है? गेरुआ कपडा, अग पर विभूति, गले मे रुद्राक्ष की माला। नगेन्द्रनन्दिनी के हाथ से मालती की-माला गिर पडी। विजयेन्द्र ने निकट आकर गीले कण्ठ मे कहा "विदाई दो, जा रहा हू।"

नगेन्द्रनन्दिनी के सिर पर, मानो सहसा वज्रपात हो गया। हृदय मे लाखो बिच्छुओ ने डस दिया। जान पडा, मानो हृदय के सैकडो टुकडे हो रहे हैं। उसकी आखो मे चन्द्रमा का प्रकाश काला पड गया, कानो मे कोयल की कूक उल्लू की चिल्लाहट मे बदल गयी। युवती फिर खडी न रह सकी—मूर्च्छित होकर गिर पडी।

यहा तक पढकर किरणमयी ने सहसा मुह उठाकर कहा, "छोटे बबुआ, तुम अवश्य ही किसी को प्यार करते हो? ठीक है?"

दिवाकर ने आश्चर्य मे पडकर कहा, "मैं?"

"जी हा, तुम। अवश्य ही छिपे तौर से तुम किसी को प्यार करते हो।"

इस आकस्मिक अपवाद की प्रबल लज्जा मे दिवाकर हतबुद्धि हो गया। क्षणभर बाद कुण्ठित और व्यग्र होकर बोला, "मै? छि! राम कहो कभी नही किसी तरह भी नही।"

"नही? बबुआ को किसी दिन बिच्छू ने डक नही मारा?"

"नही, किसी दिन नही।"

किरणमयी ने कहा, "आश्चर्य है! क्या किसी को डक मारते भी नही देखा है?"

"नही, यह भी मैंने नही देखा है।"

किरणमयी ने और भी आश्चर्य मे पडकर कहा, "तुम्हारा हृदय भी किसी दिन सैकडो टुकडो मे फट गया हो, यह भी तो नही मालूम होता, किसी दिन तुमने किसी को प्यार नही किया, छोटा-सा बिच्छू भी

तुमने नहीं देखा, वज्राघात की व्यथा भी कैसी होती है, यह भी नहीं जानते, तो फिर विरह कैसा भयानक होता है, उसका पता तुमको कैसे लगा?'

किरणमयी उसे किस ओर ठेल रही है, यह दिवाकर की समझ में आ गया था—क्रुद्ध होकर बोला, 'बिना भुगते क्या यह जाना नहीं जा सकता?'

—कैसे जाना जा सकता है, मुझे तो नहीं मालूम—हाँ, यह जरूर है कि दूसरों या किसी किताब से चोरी करके लिखा जा सकता है।

दिवाकर उत्तेजित हो उठा। बोला, 'तुम कहना चाहती हो कि मैंने चोरी की है?'

मुस्कराकर किरणमयी ने कहा, 'हाँ, यही कहना चाहती हूँ। चोरी तो की ही है, उस पर चोरी करने का पता भी नहीं लगा, ऐसे अनाड़ी हो तुम। गुस्सा मत करो देवर जी, लेकिन एक वाक्चातुर्य और वज्राघात के अलावा कोई संबल नहीं है तुम्हारे हाथ में। इतनी-सी पूँजी लेकर यह समुद्र पार करोगे? नावेल लिखना इतना आसान काम नहीं है। और अगर एक छलांग में समुद्र लांघना चाहते हो तो भी भगवान की कृपा चाहिये—पूँछ ही नहीं हो जाना।

इस अप्रत्याशित घटना से दिवाकर स्तंभित हो गया। आज तक जिससे मीठी-मीठी बातें ही सुनता आया था, उसी की अवहेलना और व्यंग्यपूर्ण बातों का क्या जवाब दे, सूझा ही नहीं।

कुछ क्षण चुप रहकर उसने धीरे-धीरे कहा, 'तो इतने मनुष्य जो लिख रहे हैं, उन सभी ने क्या प्यार किया है, या स्वयं विरह की ज्वाला सह चुके हैं? कब ज्वाला सहने का अवसर पाऊँगा इस आशा में बैठे रहने से तो देखता हूँ साहित्यचर्चा भी छोड़ देनी पड़ेगी।'

उसकी उत्तेजना देखकर किरणमयी ने हँसकर कहा, "इसी को साहित्यचर्चा कहते हैं? इसको कहते हैं अनधिकार चर्चा।" कहते-कहते उसके मुँह की हँसी अकस्मात् अत्यन्त कठोर हो उठी और अपनी ही बातें मानो हृदय के अन्तस्तल को हिलाकर रक्त में भीगकर भारी और लाल हो गईं। म्लानस्वर से बोली, 'मेरी बात आज तुम्हारी समझ में नहीं आयेगी देवर जी, और कभी समझ में आये भी नहीं, यही भगवान से प्रार्थना करती हूँ, लेकिन उम्र में मैं तुमसे बड़ी हूँ अतः एक बात मान लो मेरी—वह यह है कि जिस बात को या चीज को खुद न समझो, उसे दूसरे को समझाने की चेष्टा मत करना। जिसे स्वयं न पहचाना, उसका उल्टा-सीधा परिचय मत देना किसी और को।'

दिवाकर ने कोई बात नहीं कही। किरणमयी थोड़ी देर तक चुप रही। उसने भारी गले को साफ करके कहा, 'यह क्रोध-अभिमान की बात नहीं है बबुआ, यह भाग्य की बात है, यह बहुत बड़े अभाग्य की बात है। इस संसार में जिन दो-चार अभागों को उस निगूढ़ रहस्य का सच्चा परिचय देने का सच्चा अधिकार प्राप्त होता है, इस गुरुभार को उन्हीं के हाथों में छोड़कर दूसरे कामों में मन लगाओ, उससे नाम भी होगा, नुकसान भी कम होगा। व्यर्थ छत के कोने में मुँह भारी बनाकर बैठे-बैठे कल्पना करने से कोई लाभ नहीं होगा, यह बात मैं तुमको निश्चित रूप से कहे देती हूँ।'

दिवाकर ने नरम होकर कहा, "कल्पना क्या कोई वस्तु ही नहीं है?"

किरणमयी ने कहा, "कुछ भी नहीं है यह बात मैं नहीं कहती, लेकिन कोरी कल्पना जो वस्तु गढ़ सकती है, वह प्राण नहीं डाल सकती। ढो सकती है, मार्ग नहीं दिखा सकती। उसी राह दिखाने के प्रकाश का पता जब तक तुम नहीं पाते, तब तक तुम्हारा बिच्छू केवल तुम्हीं को डंक मारेगा, और किसी के शरीर पर डंक गड़ा न सकेगा।"

उसकी अन्तिम बात पर दिवाकर मन ही मन जल उठा और मुँह उदास बनाकर बैठा है देखकर किरणमयी ने फिर मुसकराकर कहा, 'लेकिन मैं सोचती हूँ बबुआ, कि तुम्हारे इस 'सूर्योदय' महाशय के आँसू न रुकने का कारण क्या है? अन्त में नगेन्द्रनन्दिनी विष खाकर मर तो नहीं गयी?"

तथापि दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया।

किरणमयी कहानी के अन्तिम भाग पर दृष्टि डालकर बोल उठी, "यही तो है!" यह कहकर ऊँचे स्वर से वह पढ़ने लगी—लेकिन श्मशान में वह किसका शव लोग लिए जा रहे थे? किसके पीछे वे असंख्य मनुष्य छाती पीटते-पीटते चले जा रहे हैं? किसके शोक में नृपति तुल्य परम प्रतापी जमींदार

पागल की भांति हो गये हैं? ओह! यह क्या ही हृदयविदारक दृश्य है! विजयेन्द्र धीरे-धीरे उसी ओर अग्रसर होने लगा--इसके आगे किरणमयी और न पढ सकी। हसकर पत्रिका दिवाकर के ऊपर फेंककर उसने कहा, "बहुत देर हो गयी, जाऊ।" यह कहकर हसती हुई वह चली गयी।

इकत्तीस

पाच-छ दिन बाद एक दिन मध्याह्न मे दिवाकर ने किरणमयी के कमरे मे जाकर आश्चर्य के साथ देखा, वह अत्यन्त ध्यान लगाकर **एकाग्रचित्त** मे भूमि पर बैठी हुई एक हस्तलिखित मूल सस्कृत रामायण पढ रही है। किरणमयी साधारण गृहस्थ घर की स्त्रियो की अपेक्षा अधिक पढी-लिखी है और बगला, अग्रेजी दोनो भाषाए अच्छी तरह जानती है, यह बात दिवाकर जानता था। लेकिन इस कारण ही हाथ की लिखी सस्कृत पोथी पढने की योग्यता भी अच्छी तरह है, ऐसी बात दिवाकर ने स्वप्न मे भी नही सोची थी। पलभर मे आश्चर्य और श्रद्धा से झुककर वह वही बैठ गया।

किरणमयी ने हाथ के पन्ने को ठीक स्थान पर रोककर मुह ऊपर उठाकर कहा, "अचानक ऐसे असमय मे कैसे आये?"

दिवाकर ने जरा कुण्ठित होकर कहा, "तुम पढ रही हो यह मैंने नही सोचा था भाभी। मैं समझता था सभवत ।"

"सो रही हू। इसीलिए एकान्त सोचकर मुझे जगाने आये हो?"

दिवाकर ने लज्जा से लाल होकर कहा, "जब-तब इस तरह परिहास करती रहोगी तो मैं घर छोडकर भाग जाऊगा कहे देता हू भाभी।"

किरणमयी ने हसकर कहा, "भाग जाऊगा, कहने से ही क्या भागा जा सकता है? भूलभुलैया का मार्ग मालूम रहना चाहिए। अच्छा, बैठो, बैठो। क्रोध करके उठना न पडेगा। मैं सोचती थी बबुआ, द्वार बन्द करके बैठे-बैठे 'जहर की छुरी' के बाद तलवार-कटार की तरह कोई बडी चीज तैयार कर रहे हो। इसीलिए मैंने भी बुलाया नही। नही तो, मुझे ही क्या दोपहर को रामायण पढ़ना अच्छा लगता है?"

दिवाकर ने पूछा, "रामायण मे तुम विश्वास करती हो?"

किरणमयी ने कहा, "करती हू।"

दिवाकर ने अत्यन्त आश्चर्य मे पडकर कहा, "किन्तु बहुत से लोग नही करते। वास्तव मे इसमे इतने झूठ, इतने असभव, इतने प्रक्षिप्त अश हैं कि उन पर विश्वास नही किया जा सकता।"

किरणमयी ने जरा हसकर पोथी को हाथ से ठेलकर कहा, "यही तो मूल ग्रथ है। इसमे से प्रक्षिप्त विषयो को निकाल दो तो देखू?"

दिवाकर ने सहमकर कहा, "मैं किस तरह निकालूगा भाभी, मैं तो सस्कृत नही जानता।"

किरणमयी ने कहा, "जानते नही हो, इसीलिए इस प्रकार झट से ऐसी बात तुम्हारे मुह से निकल गयी। विद्या न रहने से ही अविद्या आ घुटती है। उसके ही फलस्वरूप मनुष्य जिस बात को नही जानता, वही दूसरो को बता देना चाहता है, जो समझता नही, वही अधिक समझना चाहता है। बुरी आदत को छोड दो।"

दिवाकर अत्यन्त लज्जित हो गया। यह बात कहने का उसका कोई विशेष उद्देश्य नही था। उसने सोचा था धर्मग्रथ मे अश्रद्धा या अविश्वास दिखाने से भाभी प्रसन्न होगी।

किरणमयी ने जरा हसकर कहा, "लिखना कैसा हो रहा है?"

दिवाकर ने कहा, "मैं तो अब लिखता नही हू।"

किरणमयी आश्चर्य से बोली, "लिखते नही हो! कहते क्या हो बबुआ? लेकिन तुमने जो कुछ लिखा था, वह बुरा नही था। छोड क्यो दिया बताओ तो?"

दिवाकर बोला, "क्यो लज्जित कर रही हो भाभी, मैंने उसके बाद बहुत विचार करके देखा है, तुम्हारी बात सत्य है। मेरा यह लेख दूसरे की चोरी भले ही न हो, दूसरे का अनुकरण है तो अवश्य।

वास्तव मे मैं प्रेम का क्या जानता हू, कि इतनी वाते लिखने लगा। इसीलिए अव मैं लिखता नही—केवल मोचता हू।"

"मोचते हो, दिन-रात मोचते हो वताओ तो? मुझे ही तो नही?"

दिवाकर ने इस वात पर ध्यान न देकर कहा, "फिर भी, मुझे लगता है कि उपन्याम लिखने की झक को भी मैं किसी दिन छोड न मकूगा। आज इसी लिए यही मोचकर मैं यहा आया हू कि तुमसे कुछ मीखूगा।"

किरणमयी ने कहा, "मुझसे तुम क्या मीखोगे ववुआ, प्रेम?"

दिवाकर ने प्रवल लज्जा को किसी प्रकार रोककर गभीर होकर कहा—"सब कुछ मीखूगा। आवश्यकता पडेगी तो वह भी मीखूगा।"

किरणमयी ने भी मुह को कृत्रिम गभीरता मे परिपूर्ण करके कहा, "लेकिन इसमे एक बखेडा है ववुआ! मुझे पकडकर प्रेम मीखने लगोगे तो लोग क्या कहेगे!"

दिवाकर झट मे उठ खडा हुआ। बोला, "जाओ, मैं जा रहा हू, तुम तो केवल मजाक करती हो।"

किरणमयी ने लपककर उसका हाथ पकडकर मुसकराकर कहा, "तो स्पष्ट कहो न भाई, कि परिहास नही चाहते, सच्ची वात चाहते हो।"

दिवाकर अपना हाथ तेजी से खीचकर शीघ्रतापूर्वक बाहर चला गया।

किरणमयी ने मन ही मन हसकर अपनी पोथी वन्द कर दी। उसके बाद उचित स्थान पर उसे रखकर वह धीरे-धीरे दिवाकर के कमरे मे चली गयी।

दिवाकर मुह उदास वनाये खिडकी के बाहर देखता हुआ चुपचाप बैठा था, किरणमयी ने कहा, "क्रोध करके क्यो चले आये, बताओ तो?"

दिवाकर ने विना मुह घुमाये ही कहा, "यह मव हसी-मजाक मुझे अच्छी नही लगती।"

किरणमयी क्षणभर चुप रहकर मीठे स्वर से बोली, "तुम तो मेरे देवर लगते हो ववुआ! तुम्हारे साथ तो हमी-मजाक चलनी ही चाहिए। यह सब न करने से मैं कैसे जिन्दी रह सकूगी, वताओ तो!"

इस स्नेह-भरे कोमल स्वर से दिवाकर का क्रोध शात हो गया। आज महसा पहले-पहल उसे ज्ञात हो गया कि यह तो सत्य ही है। मुझे लज्जित होने की तो कोई बात ही नही है। हम लोगो का सबध ही तो हास-परिहास का है।

यह बात झूठी भी नही कि वगाली समाज मे देवर-भौजाई में एक मधुर हास-परिहास का सबध प्रचलित है और ठीक कहा पर इसकी सीमा-रेखा है, यह भी बहुतो की दृष्टि मे नही पडती, पडने की आवश्यकता भी वे नही समझते। लेकिन इस निर्दोष हास-परिहास की अधिकता से कभी-कभी कितने विषवीज झर पडते हैं और अदृश्य में, वे ही बीज अकुरित होकर विषवृक्ष मे परिणत हो जाते हैं और किसी समय समूचे पारिवारिक बन्धन को कलुषित कर देते हैं, इसका हिसाब-किताब लोग रखते हैं?"

दिवाकर ने मुह फेरकर अभिमान के स्वर मे कहा, "मैं सीखने गया और तुमने परिहास करके मुझे भगा दिया।"

किरणमयी ने बिछौने के एक छोर पर बैठकर कहा, "क्या सीखने गये थे?"

दिवाकर ने कहा, "वही जो मैंने कहा था कि कहानी लिखने का झक मैं किसी प्रकार भी छोड न सकूगा। इसीलिए मैंने सोचा है कि तुम सिखा दोगी, वोलती जाओगी, मैं लिखता जाऊगा।"

किरणमयी ने हसकर कहा, "वह तो फिर मेरा ही लिखना होगा ववुआ।"

"होगा तो होने दो, लेकिन मेरा तो सीखना होगा। केवल जानने से ही तो नही होता, व्यक्त करने की शक्ति भी तो होनी चाहिए।"

"वह तो चाहिए ही। लेकिन व्यक्त करोगे क्या, सुनू तो?"

"वही तो तुम वता दोगी भाभी!"

हसी आ गयी फिर किरणमयी को। वोली, 'तब तो किसी और को पकडो जाकर देवर जी, यह काम मेरा नही है। जल की मछली अगर यह समझना चाहे कि मरुभूमि मे मनुष्य प्यास से कैसे मरता है तो

फिर कोई दूसरा ढूंढ़ना पड़ेगा, मेरी बुद्धि से बाहर है यह।

ज़रा चुप रहकर दिवाकर बोला, 'भाभी, यह सच है कि मरुभूमि की तृष्णा से मैं अभिज्ञ नही हू परन्तु मैं जलचर भी नही हू। तुम्हारी तरह जब मेरा बाग भी डाल पर है तो पिपासा की धारणा भी है। तुम कहकर तो देखो एक बार, मैं समझ पाता हू कि नही।'

किरणमयी चुप हो रही। केवल हंसते हुए मुख से ताकती रही।

दिवाकर भी कुछ क्षण स्थिर रहकर बोला, 'यहां जो इतनी देर तक तुम रामायण पढ़ रही थी भाभी, मैं उसी की बात कहता हू। सीता के जिस रूप की अग्नि मे रावण सपरिवार भस्म हो गया, नारी का वह रूप क्या है? और अकेला रावण ही तो नही, ऐसे अनेक रावणों का इतिहास मौजूद है। कवि लोग कहते है रूप की प्यास। तुमने भी उसी तरह की उपमा दी है। तुम यह मत सोचना भाभी, कि मैं तुमसे तर्क कर रहा हू। मैं जानता हू कि तुम्हारे पैरों के पास बैठकर मैं बहुत दिनों तक सीख सकता हू। मैं तो केवल यही जानना चाहता हू कि इसे प्यास कहते है क्यों? पानी देखने से ही तो मनुष्य को प्यास नही लग जाती। तो फिर रूप देखने से ही उसको प्यास क्यों लगेगी?'

किरणमयी ने मुह ऊपर उठाकर एकाएक हसकर कहा, 'प्यास लगती है क्या बबुआ?'

इस हसी और प्रश्न का यथार्थ अर्थ समझकर दिवाकर पलभर के लिए हतबुद्धि-सा हो रहा। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सभालकर बोल उठा, 'अवश्य लगती है।'

उसका संकोचन और दबा हुआ साहस इतनी देर मे किस हद तक जाग गया था, इसे वह स्वय भी नही जानता था। उसने कहा, 'न लगने से ससार मे बडे-बडे कवि लोग शकुन्तला भी नही लिखते, रोमिओ जूलिएट भी नही लिखते। इसीलिए मैं जानना चाहता हू। भाभी, नारी का यह रूप वास्तव मे क्या वस्तु है? और प्रेम भी उसके साथ इस प्रकार घनिष्ठ रूप से लिपटा क्यो रहता है?''

किरणमयी ने गभीर होकर कहा, ''तब तो तुम्हारी अवस्था अभी उतनी बिगडी नही है।''

दिवाकर व्यथित होकर बोला, 'सभी बातो को यदि तुम हसकर उडा दोगी भाभी, तो रहने दो। मै अब कुछ न पूछूगा।''

उसकी ओर देखकर किरणमयी ने विषाद का ढोग रचकर कहा, ''मैं मूर्ख स्त्री हू बबुआ, मै इन सब बडी-बडी बातो का हाल क्या जानू, जो तुम क्रोध कर रहे हो?''

दिवाकर को उस दिन की बात याद आ गयी जिस दिन वेद के प्रति भी अवहेलना भरी उक्ति सुनकर उसने कानो मे अगुली डाल ली थी। उसने कहा, 'मैं जानता हू भाभी, तुम भारी पण्डित हो। तुम चाहो तो सभी विषय मुझे समझा सकती हो।''

किरणमयी ने कहा, ''समझा सकती हू? अच्छा यदि मैं कहू कि स्त्री का रूप एक भ्रम मात्र है, वास्तव मे यह कुछ भी नही है, मृग-मरीचिका की भांति मिथ्या है। क्या तुम विश्वास करोगे?''

दिवाकर ने कहा, ''नही। इसका कारण यह है कि मरीचिका भी मिथ्या नही है, चाहे वह कुछ भी हो, दर्पण मे मनुष्य का प्रतिबिम्ब पडता है। वह प्रतिबिम्ब है, आदमी नही है, यह तो मानी हुई बात है। प्रतिबिम्ब को मनुष्य कहकर पकडने की चेष्टा करना मूर्खता है। लेकिन रूप तो उस प्रकार किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब नही है। साप को रस्सी समझकर पकडने जाना भूल है, मरीचिका को भी पानी समझकर पकडने जाना भूल है। लेकिन रूप के पीछे तो मनुष्य केवल रूप की ही तृष्णा से दौड जाता है भाभी।''

किरणमयी ने कहा, ''बबुआ, अभी तुमने दर्पण मे प्रतिबिम्ब देखने की उपमा दी है। जिस दिन तुम समझ जाओगे कि रूप भी मनुष्य का प्रतिबिम्ब ही है, मनुष्य नही है, उसी दिन प्रेम का पता पाओगे। लेकिन छोडो इस बात को मैं पूछती हू कि रूप के ही पीछे मनुष्य क्यो दौडता हुआ जाता है?'

''यह मैं नही जानता। भ्रमर जैसी स्त्री को छोडकर भी गोविन्दलाल रोहिणी के पीछे दौड गया था। यह बात मुझे बहुत ही अद्भुत ज्ञात होती है।''

''लेकिन उसका फल क्या हुआ?''

''फल जो कुछ भी हो भाभी, इस पर विचार करने का भार मनुष्य के हाथ मे नही है। रोहिणी मे रूप था, गुण नही था। किन्तु रूप के साथ गुण रहने से गोविन्दलाल की क्या दशा होती, कहा नही जा सकता।''

किरणमयी मौन ही रही। बी० ए० फेल हुए इस लडके पर मन ही मन उसकी श्रद्धा नही थी। केवल फेल हो जाने के ही कारण नहीं, पास हो जाने पर भी, वह सोचती कि ये लोग केवल पाठो को कण्ठस्थ करके केवल पास भर कर सकते हैं, और कुछ नही कर सकते। किन्तु आवश्यकता पडने पर इनका शिक्षित मन तर्क भी कर सकता है, यह धारणा ही उसकी नही थी। उसने कहा, "रूप प्रतिबिम्ब नही है इस बात को इतने असंदिग्ध रूप मे स्थिर मत रखो। जो भी हो, मैं तुमसे पूछती हू बबुआ, ये सब बाते तुमने स्वय ही सोची हैं या किसी की सोची हुई बात सुनकर कह रहे हो?"

दिवाकर ने मुसकराकर कहा, "नही भाभी, मेरी अपनी ही बाते हैं। बचपन मे ही भगवान ने मुझे सोचने की सुविधा दी थी।"

किरणमयी ने क्षणभर मौन रहकर कहा, "फिर इतनी सुविधा रहने पर भी रूप का तत्त्व ढूढकर तुम न पा सके। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि मनीश बबुआ ने भी मुझसे ठीक यही बात एक दिन पूछी थी, और भी एक व्यक्ति ने पूछी थी, और आज तुम भी पूछ रहे हो। मै सोचती हू मेरा रूप देखकर ही क्या तुम लोगो के मन मे यह प्रश्न नही आता?"

दिवाकर एकाएक चौंक पडा। लज्जा से उसका मस्तक फट जाने लगा। उसने अपना मुह झुकाकर कहा, "मुझे क्षमा करो भाभी, मैं जानता नही था।"

किरणमयी ने हसते हुए कहा, "एकाध बार नही भाई, तुमको तो मैं सौ बार क्षमा करती हू।" यह कहकर और पलभर मौन रहकर उसने मानो मन मे आने वाली एक दुविधा को जोर से धकेलकर निकाल दिया और अपनी अत्यन्त सुन्दर ग्रीवा जरा ऊची कर एक प्रकार के कोमल करुण स्वर से बोली, "बबुआ, आज तुमने जितनी बाते मुझसे पूछी हैं, उनका यदि स्पष्ट उत्तर देने लगू, तो मेरी बाते दम्भ की तरह होगी। उसे तुमको भूल जाना पडेगा। नही तो, अपनी भूल से मुझे गलत समझकर सब ही बातो को तुम गडबड कर दोगे। मेरी बात तुम्हारी समझ मे आती है न?"

दिवाकर ने चुपचाप सिर हिला दिया।

किरणमयी क्षणभर स्थिर रहकर कहने लगी, "मेरे शरीर का यह रूप केवल पुरुषो की ही दृष्टि मे नही, मेरी अपनी भी दृष्टि मे एक अद्भुत वस्तु है। इसी से इसकी बात मैंने बहुत सोची है। जो कुछ मैंने सोचा है, सभवत वही ठीक भी है। हो सकता है नही भी हो, लेकिन वह जो कुछ भी हो, अपनी इस भावना को जब एक देवर से कहने मे मैंने सकोच नही किया, तब तुमसे कहने मे भी मैं न हिचकूगी। अपने आपको देखकर मुझे कैसा जान पडता है जानते हो? ज्ञात होता है सतान धारण करने के लिए जो सब लक्षण सबसे अधिक उपयोगी हैं वह नारी का रूप है। सारे विश्व के साहित्य में, काव्य मे, यही वर्णन उसके रूप का वास्तविक वर्णन है।"

दिवाकर मौन होकर निहारता रहा। किरणमयी उसके स्तब्ध मुख पर नवीन यौवन की सद्य जाग्रत क्षुधा की मूर्ति अकस्मात् अनुभव करके सकोच से एकाएक रुक गयी। लेकिन पल भर मे, दूसरे ही क्षण उस भाव को बलपूर्वक दबाकर बोली, "वास्तव मे बबुआ, इसी स्थान पर मानो रूप का एक छोर दिखाई पडता है, इसीलिए नारी का बाल्य रूप मनुष्य को आकर्षित करने पर भी उसे उन्मत्त नही करता। फिर जबकि वह सतान धारण करने की उम्र पार कर जाती है तब भी ठीक यही दशा हो जाती है। सोचकर देखो बबुआ, केवल नारी की ही नही, पुरुष की भी यही दशा है। तभी एक नारी का रूप रहता है, जब तक कि वह सतानोत्पादन कर सकती है। यह सृष्टि करने का सामर्थ्य ही उनका रूप है, यौवन है, सृष्टि करने की इच्छा ही उसका प्रेम है।"

दिवाकर ने धीरे से कहा, "लेकिन ।"

किरणमयी बीच ही मे रोककर बोल उठी, "नही, लेकिन के लिए इसमे स्थान नही है। विश्व चराचर मे जिस ओर इच्छा हो, आखे उठाकर देखो, वही एक बात मिलेगी बबुआ, सृष्टितत्त्व की मूल बात तुम्हारे सृष्टिकर्ता के ही लिए रहे, लेकिन इसके काम की ओर एक बार ध्यान से देखो। तुम देखोगे इसका प्रत्येक अणु-परमाणु निरन्तर अपने को नये रूपो मे सृजन करना चाहता है। किस प्रकार वह अपने को विकसित करेगा, कहा जाने से, किसके साथ मिलने-जुलने से, क्या करने से यह और भी सबल तथा उन्नत होगा, यही उसका अविराम उद्यम है। दृश्य हो, अदृश्य हो, अन्दर हो, बाहर हो, इसी से

प्रकृति का नित्य परिवर्तन होता रहता है। और इसीलिए नारी में पुरुष जब ऐसा कुछ देख पाता है, ज्ञान में हो या अज्ञान में हो, जहा वह अपने को अधिक सुन्दर और सार्थक बना सकेगा, तो उस लोभ को वह किसी प्रकार भी रोक नही पाता।"

दिवाकर ने धीरे से कहा, "तब तो इस दशा मे चारो ओर ही मारकाट मच जाती?"

किरणमयी ने कहा, "कभी-कभी मच जाती है अवश्य। लेकिन मनुष्य में लोभ दमन करने की शक्ति, स्वार्थत्याग करने की शक्ति, समझ तथा शासन की शक्ति, कितनी ऐसी शक्तिया हैं, जिनके कारण चारो ओर एक ही साथ आग नही लग सकती। फिर भी इस सामाजिक मनुष्य का ही एक दिन ऐसा था जब कि प्रवृत्ति के अतिरिक्त और किसी का शासन नही मानता था। रूप का आकर्षण ही उसकी दुर्दमनीय प्रवृत्ति का सचालक था। वही था उसका प्रेम, बबुआ, इसको ही सस्कृति तथा सभ्यता के वस्त्र पहनाकर सजावट सिगार से तैयार कर देने से उपन्यास का निर्दोष प्रेम हो जाता है।"

दिवाकर ने चकित होकर कहा, "कहा तो पाशविक प्रवृत्ति की ताडना और कहा स्वर्गीय प्रेम का आकर्षण। जो मनुष्य पशु की प्रवृत्ति से भरा हुआ है, वह शुद्ध, निर्मल, पवित्र प्रेम की मर्यादा क्या समझेगा? उस वस्तु को वह पायेगा कहा? तुम किसके साथ किसकी तुलना करने चली हो भाभी?"

"मैं तुलना नही करती भाई। केवल यही बता रही हू कि दोनो हैं एक ही वस्तु। इजिन की जो वस्तु उसको आगे की ओर ढकेलकर ले जाती है, वही वस्तु उसे पीछे को भी ठेल सकती है, दूसरी नही। जो प्रेम कर सकता है, वही केवल सुन्दर-असुन्दर सभी प्रेमो मे अपने को डुबा सकता है, दूसरा नही। उसकी जिस वस्तु ने भ्रमर को प्रेम किया था, ठीक वही वस्तु उसको रोहिणी की ओर भी खीच ले गई थी। लेकिन हरलाल जो वह कर नही सका। उसने सासारिक भले-बुरे, कर्तव्य-अकर्तव्य, सुविधा-असुविधा पर सोच-विचार करके आत्मसयम किया था, लेकिन गोविन्दलाल यह नही कर सका। फिर भी हरलाल गोविन्दलाल से अच्छा मनुष्य नही था, बहुत बुरा था। तो भी उसने जिसे घृणा से त्याग दिया था दूसरे ने उसी को सिर पर चढा लिया।"

"यह सिर पर चढा लेना तरह-तरह के कारणो से व्यर्थ हो सकता है। लेकिन समस्त दु ख-ग्लानि-लज्जा के अतिरिक्त, एक वृहत्तर सार्थकता का सकेत एक व्यक्ति को खीचकर एक-दूसरे के पास ले जाता हो, ऐसी बात भी तो कोई बलपूर्वक कह नही सकता भाई!"

दिवाकर क्षोभ के साथ बोला, "तुम्हारी सभी बातो को यद्यपि मैं समझ नही सका, लेकिन पवित्र प्रेम स्वर्गीय नही है, ऐसी अद्भुत बात को मैं किसी प्रकार भी मान नही सकता, भाभी।"

किरणमयी ने कहा, "तुम्हारे मानने पर तो कुछ भी निर्भर करता बबुआ। हम लोगो का यह शरीर भी तो अत्यन्त नश्वर है, बिल्कुल ही पार्थिव वस्तु है, लेकिन इसमे तो मैं कोई दु ख का कारण नही देखती। शिशु जन्म लेने के बाद जब तक अपने जड शरीर मे सृष्टि-शक्ति का संचय नही करता, तब तक प्रेम का सिहद्वार उसके लिए बन्द ही रहता है। प्रवृत्ति की ही ताडना से वह उस सिहद्वार को पार कर आता है। उसके पहले वह अपने माता-पिता को, भाई-बहिन को प्यार करता है, इष्ट-मित्रो को भी प्यार करता है, किन्तु जब तक उसका पचभूत का शरीर बडा नही हो जाता तब तक तुम्हारे पवित्र प्रेम की कोई भी खबर का अधिकार उसको नही मिलता। तब तक स्वर्गीय आकर्षण उसे तिल भर भी नही हिला पाता। पृथ्वी का आकर्षण तो सदा से ही उपस्थित है, लेकिन उस आकर्षण से वृक्ष का पका फल ही आत्मसमर्पण करता है कच्चा फल नही कर सकता। उसका रेशा-गूदा पृथ्वी के रस से ही पकता है, स्वर्गीय रस मे नही पकता। सुन्दर पुष्प रूप से, गध से, मधुमक्खियो को खीचकर फल पर परिणत हो जाता है। वही फल फिर समय पर भूमि पर गिरकर अकुर मे परणित हो जाता है—यही है प्रवृत्ति, यही है उसका स्वर्गीय प्रेम। सारे विश्व मे यह जो अविच्छिन्न सृष्टि-नाटक चल रहा है, रूप का खेल चल रहा है, वह स्वर्गीय नही है इसलिए दु ख मानने या लज्जित होने का तो कोई कारण ही मैं नही देखती।"

कुछ रुककर किरणमयी बोली, "अंधकार मे भूतो के भय से यदि नेत्र बन्द करके ही तुम आराम पाते हो, तो मैं तुमको नेत्र खोलकर देखने को नही कहती। लेकिन मैं प्रवृत्ति की ताड़ना नही चाहती, स्वर्गीय प्रेम का ही उपभोग करूगी—प्रेम ऐसी साधारण वस्तु नही है।"

सतीश ने तनिक हसने का प्रयास करके कहा, "नही।"

किसी ने फिर भी बात नही कही, यह देखकर सतीश मन-ही-मन अत्यन्त आश्चर्य मे पड गया। वह सोचते-सोचते आ रहा था कि आज वहा पहुंचने के साथ ही अभियोग शिकायत का अन्त न रहेगा। इसीलिए उसने घर के अन्दर जाने को तत्पर होकर स्वय ही कहा, "कल के अपराध के लिए पहले मा से क्षमा माग आऊ, उसके बाद दूसरा काम होगा।"

शशांक अब तक तीखी दृष्टि से सतीश की ओर देख रहा था। उसी ने कहा, "माँ अभी सो रही हैं, उनको जगाकर अभी क्षमा मागने के लिए जल्दी ही क्या है? बैठिए, आपके साथ कुछ बाते करनी हैं।"

उसकी बातो के ढग से सतीश अत्यन्त आश्चर्य मे पडकर बोला, "मेरे साथ?"

शशांक बोला, "जी हाँ, दुर्भाग्यवश करने की आवश्यकता ही तो है।" फिर ज्योषित को दिखाकर बोला, "आप तो जानते ही हैं, मैं उनका एक परम मित्र हूँ, नही-नही, ज्योतिष बाबू, आप उठिएगा मत—आपके भाग जाने से कैसे काम चलेगा? अपनी नालिश आप लोगो के सामने ही करना चाहता हू। आप दोनो ही बैठिए।" यह कहकर उसने सरोजिनी की ओर तिरछी दृष्टि से देखा। लेकिन सरोजिनी इस प्रकार गरदन झुकाये रही कि उसने कुछ देखा ही नही।

शशांक ने सामने की मेज पर हाथ पटककर कहा, "बचपन से मेरा यही स्बभाव है कि जिन लोगो को प्यार करता हू, उनके सम्बन्ध मे किसी प्रकार भी मैं उदासीन नही रह सकता। इसीलिए कल यह बात सुनते ही मैंने मन ही मन कहा, यह तो अच्छी बात नही है, सतीश बाबू के इस निर्जनवास की खबर लेनी चाहिए। आप सम्भवत रुष्ट होगे सतीश बाबू! लेकिन मैं तो अपने स्वभाव के विरुद्ध चल नही सकता। आपका क्या विचार है ज्योतिष बाबू?"

ज्योतिष चुपचाप सिर झुकाये बैठा रहा। सतीश भी चुपचाप निहारता रहा।

इन श्रोताओ की अटूट नीरवता के बीच शशाक की उत्तेजना का वेग अपने आप ही ढीला पड गया। उसने पहले की अपेक्षा सयत कण्ठ से कहा, "ज्योतिष मेरे परम मित्र हैं, इसीलिए आपसे कुछ प्रश्न करने को मुझे अधिकार है। आप तो जानते हैं . ।"

उसी बात के बीच मे ही सतीश ने गरदन हिलाकर कहा, "नही, मैं मित्रता की बात कुछ भी नही जानता, लेकिन आपका प्रश्न ज्या है, सुनू तो।"

शशाक ने गले को साफ करके कहा, "मैं जान लेना चाहता हूँ कि आप यहाँ आकर क्यो ठहरे हैं?"

सतीश ने कहा, "मेरी इच्छा। आपका दूसरा प्रश्न?"

कुछ घबराहट मे पडकर ज्योतिष के मुह की ओर देखकर शशाक कहने लगा, "राखाल बाबू को कलकत्ता का डेरा खोजने में बडी कठिनाई हुई है।

सतीश बाबू को वे पहचानते हैं, उन्होने ही कहा. ।"

सतीश के दोनो नेत्र अगारे की तरह जलने लगे, उसने कहा, "चूल्हे मे जाये राखाल बाबू। आप अपनी बात कहिए।"

इस बार ज्योतिष ने मुह ऊपर उठाकर कहा, "सतीश बाबू, शशाक मेरे अनुरोध से ही आपसे पूछ रहा है। आपकी इच्छा हो तो उत्तर नही भी दे सकते हैं, लेकिन उसका अपमान आप मत कीजिए। हम लोगो के साथ आपने जो व्यवहार किया है, उसको ध्यान मे रखने से आपसे कोई भी प्रश्न करना उचित नही था, केवल अपनी मा के कारण ही मुझे आपके अपने ही मुह से एक बार सुन लेने की आवश्यकता है। अच्छी बात है, मैं ही प्रश्न करता हू—सावित्री कौन है? और उसके साथ आपका क्या सम्बन्ध है?"

सतीश पलभर मौन होकर निहारता रहा, फिर बोला, "सावित्री कौन है, यह मैं नही जानता ज्योतिष बाबू। लेकिन उसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है, इसका उत्तर देने की मैं आवशकयता नही समझता।"

"क्यो?"

"क्योंकि कहने से भी आप लोग समझ न सकेगे।"

"लेकिन जिस प्रकार भी हो, हम लोगो को समझ लेना आवश्यक है। उसको लाकर आपने कहा रखा है, यह बता देने से ही सम्भवत हम समझ जाएगे।"

गयी।

ये सब बाते मन ही मन बोलकर वह चौंक पडा और तुरन्त ही मुह ऊपर उठाकर उसने देखा कि सभी उसी तरह सिर नीचा किये हुए चुपचाप बैठे हुए हैं। सरोजिनी के मुह की ओर उसने देखा, लेकिन प्राय कुछ भी उसे दिखाई नही पडा। तब उसी को सम्बोधन करके उसने कहा, "तुम-आप मेरे पुराने डेरे पर एक दिन जिसकी साडी सुखाने के लिए टगी हालत मे देख आयी थी, उसी का नाम है सावित्री। मैंने सोचा था, एक दिन खुद ही आपको सभी बाते बताऊगा लेकिन किसी दिन वह सुयोग मुझे नही मिला, वह साहस भी मुझमे नही था।"

इतना कहकर वह उठ खडा हुआ और बोला, "ज्योतिष बाबू, दोष मेरा है, यह मैं अनुभव कर रहा था, इसीलिए मेरे मन मे सुख नही था।" यह कहकर वह थोडी देर तक चुप रहकर बोला, "फिर भी किसी दिन मैंने किसी को धोखा नही दिया, सब बाते मैं जानता भी नही हू फिर मुझे अब कुछ कहना नही है।"

ज्योतिष ने मुह ऊपर उठाकर कुछ कहना चाहा, लेकिन गले से आवाज नही निकली।

सतीश ने शायद एक लम्बी सास को रोककर कहा, "मैं जा रहा हू। मेरा एक अनुरोध है, मेरी बातो की आलोचना करके आप लोग मन खराब मत कीजिएगा। मैं किसी बहाने से आप लोगो के सामने न आऊगा—मुझे आप लोग भूल जाइएगा।" यह कहकर वह धीरे-धीरे बाहर चला गया।

ज्योतिष ने बगल की ओर निगाह उठाई तो डरते हुए देखा कि सरोजिनी का सिर बिलकुल ही इसके घुटनो के पास झुक पडा है, "अरे सरोजिनी! सरोजिनी!" कहकर उसके चिल्ला उठते ही सरोजिनी की शिथिल मुट्ठिया कुर्सी की बाहो से खिसक गयी और वह नीचे दूरी पर मूर्च्छित होकर गिर पडी। अभिमान और अपमान के क्रोध से ज्योतिष की बुद्धि आच्छन्न को गयी थी कि सतीश के विदा हो जाने का यह काण्ड सरोजिनी को कितना बडा आघात पहुचाएगा, इसका खयाल ही उसे नही था।

इसीलिए बडी शुश्रूषा के बाद सरोजिनी को जब होश आ गया और वह जब रोते-रोते हिलते-डोलते उस कमरे को छोडकर चली गयी तब ज्योतिष के सिर पर मानो बिलकुल ही वज्र गिर पड़ा।

बहिन को वह केवल प्राणाधिक प्यार ही नही करता था, बल्कि अपनी सर्वांगसुन्दरी लावण्यवती शिक्षित बहिन के उज्ज्वल आत्म-मर्यादा ज्ञान पर भी उसको अगाध विश्वास था। लेकिन भीतर-ही भीतर वह इतना अधिक प्यार भी कर सकती है और यह सब किसी काम मे भी न लगेगा यह सब जानते हुए भी एक चरित्रहीन लम्पट के पैरो मे सब कुछ न्यौछावर कर, होश गवाकर सूखी घास की तरह गिर पडेगी, यह आशका कल्पना मे भी उसने नही की थी और उसके चेहरे पर वेदना का जो चित्र उसने अभी अंकित होते देख लिया, वह कितना बडा है इसका निरूपण करने की शक्ति उसमे न थी, तो भी वह बहुत देर तक जडवत् बैठा रह गया, फिर शशाकमोहन की तरफ देखकर बोला, "आप शायद आज रात की गाडी से कलकत्ता लौट जाएगे?"

शशाकमोहन ने कहा, "नही, वहा ऐसा कोई जरूरी काम नही है।"

ज्योतिष और कुछ प्रश्न न करके अन्दर चला गया और अपने कमरे मे जाकर दरवाजा बन्द करके लेट रहा। उस रात को शशांकमोहन को अकेले ही भोजन करना पडा, क्योंकि ज्योतिष की आहट बिलकुल ही नही मिली।

जगत्तारिणी एक-एक करके लडके से सब कुछ सुनकर सास छोडकर बडी देर तक स्तब्ध ही रही। उसके बाद बोली, "यह सब मेरे ही दुर्भाग्य का फल है।" परलोकगत पति को याद करके उन्होने कहा, "मैं खुद तो सारा जीवन इसी तरह जलती-भुनती-मरती रही हू, अब जो दिन आगे बाकी हैं, उनमे भी यदि लडके-लडकी के कारण न जलना पडा तो मेरे पापो का पूरा प्रायश्चित्त कैसे होगा। अच्छा बेटा, तुमको जो पसन्द हो उसी के साथ बहिन का ब्याह कर दो, मैं अब कुछ न बोलूंगी।"

फिर एक लम्बी सास लेकर उन्होंने कहा, "मन अन्तर्यामी है—इसीलिए अचानक उसका आना सुनकर ही उस दिन मेरी छाती धडक उठी थी ज्योतिष।"

लेकिन ज्योतिष ने कोई बात नही कही। वह मन ही मन समझ रहा था कि काम इतना सहज नही है।

शाप से पृथ्वी पर जन्म लेकर कष्ट पा रही है। आहा, बेटी तो मानो लक्ष्मी की प्रतिमा है।"

बहुत दिन हो गये, बिहारी को सावित्री का नाम तक मुंह से निकालने का अवसर नही मिला था। उसका कण्ठ-स्वर गीला हो गया और नेत्रो की दृष्टि धुंधली हो गयी।

सावित्री का उल्लेख होते ही बूढ़े का मनोभाव इस प्रकार बदलते देखकर सरोजिनी आश्चर्य में पड़ गयी।

बिहारी ने धीरे से आंखे पोछकर कहा, "जिस दिन वह मेरी बेटी राखाल बाबू के मेस मे दासी-वृत्ति करने के लिए आयी, उस दिन उसको देखकर सब लोग अवाक् हो गये? उसके मुख पर बराबर ही हंसी खिली रहती थी। राखाल बाबू थे मैनेजर और मैं था नौकर, लेकिन उसकी दृष्टि मे सभी समान थे—सभी का समान आदर-यत्न करती थी। एकादशी की व्रतनिर्जला करते हुए कभी मैंने उसे उदास नहीं देखा बहिनजी।"

बूढ़ा मानो अपना सम्पूर्ण हृदय खोलकर बाते कर रहा था। इसीलिए उसके स्वाभाविक भक्तिउच्छ्वास से सरोजिनी मुग्ध हो गयी और उसके विद्वेष की ज्वाला भी मानो पिघलकर आधी हो गयी। बिहारी कहने लगा, "बहिनजी, शास्त्र में लिखा है लक्ष्मीजी ने एक बार किसी अपराध के कारण विष्णु की आज्ञा से दासीवृत्ति की थी, मेरी बेटी भी मानो वैसे ही किसी दोष से नौकरी करने आयी थी और तरह-तरह के दु.ख पाकर अन्त मे चली गयी। जिस दिन वह चली गयी, वह दिन मानो अब तक भी मेरे हृदय मे गुथा हुआ है बहिनजी।"

सरोजिनी ने धीरे से पूछा, "वह अब कहा है बिहारी?"

बिहारी ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया, उसके मुह की ओर देखकर वह चुप हो रहा।

सरोजिनी ने फिर से पूछा, "क्या तुम नही जानते बिहारी?"

बिहारी इस बार सिर हिलाकर बोला, "ठीक-ठीक मैं नही जानता लेकिन फिर भी कुछ जानता हू। लेकिन वह बात बताने को तो वह मना कर गयी है, मैं तो बता न सकूंगा।"

सरोजिनी ने पूछा, "मना क्यो कर गयी है?"

क्यो कर गयी, यह तो बिहारी स्वय भी समझ नही सका था। फिर भी, इस निषेध को बहुत दिन तक मानकर चलना, वह किस प्रकार है यह जान न सकना, उसको इस जीवन मे फिर एक बार आंखो से न देख सकना, यह सब बिहारी के लिए कितना असह्य था, इसे वह स्वयं ही जानता था। विशेषत जब भी किसी बातचीत मे सतीश की तीखी कड़ी व्यग्य-भरी बाते सावित्री के विरुद्ध सुनता, तब सभी बाते खोलकर बता देने के लिए उसके मन मे आधी-सी बहने लगती थी, लेकिन इस पर भी बूढ़े ने आज तक अपनी शपथ को भग नही किया। यदि किसी दिन असह्य जान पडा तो उसी क्षण इसी बात का स्मरण किया है कि इसके भीतर कोई विशेष बात है जो उसकी बुद्धि के परे है। सावित्री के प्रति उसकी श्रद्धा और विश्वास का अन्त नही था।

लेकिन अब एक दूसरी लडकी उस बात को जान लेने के लिए उत्सुकता प्रकट करने लगी, तब सारी बाते कह देने के लिए उसके हृदय मे भी उथल-पुथल-सी मच गयी। कुछ देर चुप रहकर उसने कहा, "मैं बता सकता हू बहिनजी, यदि तुम मेरे बाबू से न कहो।"

सरोजिनी मन ही मन बडे आश्चर्य मे पड गयी। बिहारी जानता है, लेकिन सतीश नही जानता और उसी को बताने की विशेष रूप से सावित्री ने मनाही की है—इसका क्या कारण है, वह सोचने पर भी समझ न सकी। उसने कहा, "नही, बिहारी, मैं किसी से न बताऊंगी, तुम कहो।"

बिहारी पलभर मौन रहा, फिर सम्भवत. यह सोचकर कि इस काम के असत्य का पाप उसको स्पर्श करेगा या नही वह धीरे-धीरे कहने लगा।

सावित्री सतीश को प्राणो से अधिक स्नेह करती थी और इसी कारण राखाल बाबू ने डाह से झगडा करके सतीश को डेरा छोड देने को बाध्य किया था और सतीश बाबू कभी-कभी शराब भी पीते थे इत्यादि कोई भी बात उसने नही छिपाई।

सरोजिनी मन्त्रमुग्ध की भांति सारी बाते सुनती रही। सम्भवत ऐसे एकाग्रचित्त से इतने ध्यान से

और किसी ने भी किसी की बाते नहीं सुनी होगी। जिस राखाल बाबू से शशांकमोहन को खबर मालूम हुई थी, संयोगवश उस मनुष्य का इतिहास भी सरोजिनी से छिपा न रहा।

सावित्री का घर कहा है, या उसके नैहर या ससुराल का परिचय क्या है, इन सबका पता तो बिहारी न दे सका, फिर भी उसने बार-बार यह बात कही कि वह ब्राह्मण की लडकी है, विधवा है, सुन्दरी है, लिखना-पढना जानती है—केवल भाग्य के फेर मे वह दासीवृत्ति करने के लिए आयी थी। बिहारी ने कहा, "इतना अधिक वह प्यार करती थी, लेकिन बाबू मेरी बेटी से बाघ की तरह डरते थे बहिनजी। शराब पीकर डेरे मे आने का साहस तक उनको नही होता था। विपिन बाबू नामक बाबू का एक बदचलन मित्र था। उनके साथ मिलकर गाने-बजाने के लिए बाबू बुरी जगहों मे जाया करते थे, ज्यो ही यह खबर मेरी बेटी के कानो में पहुंची उनका जाना एकदम बन्द हो गया। फिर तो उनमे यह साहस नही रहा कि सावित्री की बात टालकर कहा जाते।" यह कहकर बिहारी ने गर्व से सरोजिनी के मुख पर दृष्टिपात किया।

सतीश के ऊपर एक और नारी के इतने बडे अधिकार की बात ने सरोजिनी की छाती मे बर्छी-सी चुभी, फिर भी उसने धीरे-धीरे पूछा, "अच्छा बिहारी, उनसे इतना डरने की सतीश बाबू को क्या आवश्यकता थी?"

बिहारी ने जैसा समझा था वैसा ही उसने बताया। बोला, "सावित्री बहुत ही तेजस्वी थी बहिनजी, हमारे बाबू ही नही, डेरे भर के सभी लोग मन ही मन उससे डरते थे। एक दिन की बात मैं बता रहा हू। उस दिन बडी रात को कही से शराब पीकर और शराब की एक बोतल अपने साथ लिए बाबू डेरे पर लौटे। उन्होंने सोचा था कि इतनी रात को सावित्री अवश्य ही अपने डेरे पर चली गयी होगी। मैं जाग रहा था, मैंने दरवाजा खोल दिया। उन्होने पूछा, 'सावित्री चली गयी है न बिहारी?' मैंने कहा, 'नही बाबू, आज वह नही गयी—यही है।' यह सुनते ही शराब की बोतल रास्ते मे फेककर वह धीरे-धीरे चोर की तरह मकान के अन्दर गये। डर के मारे उनका नशा पल भर मे समाप्त हो गया। बताओ तो बहिनजी, उनके सिवा बाबू पर और कोई क्या शासन कर सकेगा?"

सरोजिनी चुपचाप कुछ देर तक बैठी रही, फिर बोली, "सतीश बाबू क्या अब भी शराब पीते हैं बिहारी?"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "नही। लेकिन फिर आरम्भ कर देने मे कितनी देर लगेगी बहिनजी? इसीलिए तो आज दो दिनो से केवल यही सोच रहा हू कि इस दुस्समय में यदि सावित्री बेटी एक बार आ जाती।"

सरोजिनी ने उत्सुक होकर पूछा, "क्यो बिहारी?"

बिहारी ने कहा, "मैं सदा से ही देखता आ रहा हूँ कि मन खराब होने पर ही बाबू शराब पीना शुरू कर देते हैं। एक उपेन बाबू से डरते हैं पर कौन जाने उनके साथ भी क्या हो गया है। उस रात को वह मकान मे घुसे तो उस क्षण उनकी दृष्टि सावित्री पर पड गयी, देखते ही जो वह चले गये, उसके बाद से कोई भी किसी का नाम नही लेता। अब तुम ही बताओ बहिनजी, उनके सिवा बाबू को और कौन संभाल सकता है?"

फिर थोडा रुककर कहने लगा, "बीमारी की खबर पाने के बाद से ये पाच-छ दिन बाबू के किस कार नीते हैं, यह मैंने अपनी आंखों से देखा हैं। परसो नीद से उठकर तार से खबर पाकर वे मुंह ढककर लटे रहे, फिर सारा दिन उठे ही नही। उसके बाद रात की गाडी से घर चले गये। मुख से केवल यही बात कह गये, "बिहारी, तुम सब सामान घर ले आना।"

सरोजिनी ने घबराकर पूछा, "कौन बीमार है बिहारी?"

बिहारी ने आश्चर्य में पडकर कहा, "यहा से जाते समय क्या बाबू तुम लोगो को कुछ भी नही बता गये बहिनजी?"

सरोजिनी ने सिर हिलाकर कहा, "नही, कौन बीमार है?"

बिहारी ने लम्बी सास लेकर कहा, "तो भूलकर सीधे चले गये हैं इस मकान मे नही आये? जिस दिन

सबेरे यहा से उनके पास भोजन के लिए निमन्त्रण गया था, उसी दिन चिट्ठी आयी थी कि बूढे बाबू बीमार हैं। इसीलिए वह खाने के लिए न आ सके। तार भेजकर स्वय ही सारा दिन डाकघर मे खडे रहे। लेकिन कोई खबर नही मिली। उसके बाद परसों सबेरे एकदम अन्तिम खबर आयी। रात की गाडी से बाबू घर चले गये।"

सरोजिनी चौंक पडी, "सतीश बाबू के पिताजी मर गये?"

बिहारी ने कहा, "हा, बहिनजी।"

"उनको क्या हो गया था?"

"उमर बहुत हो गयी थी। केवल किसी बहाने से प्राण निकल गये।" यह कहकर बिहारी ने भीगी आखो को पोछकर कहा, "और किसी बात के लिए मैं दु ख नही करता लेकिन उस बूढ़े के अलावा बाबू को अपना कहने के लिए और कोई नही रह गया। इसीलिए इधर दो दिनो से मैं केवल यही सोच रहा हूँ कि अब से वह क्या करने लगेंगे, इसे मा दुर्गा ही जानती हैं।" यह कहकर बूढ़े ने चादर के छोर से अपनी दोनों आखो को एक बार फिर अच्छी तरह पोछ डाला।

सरोजिनी की आखो से आंसू गिरने लगे। उसने कहा, "इस समय से सतीश बाबू अच्छे भी तो हो जा सकते हैं। बुरे ही हो जायेगे यह भय तुमको क्यो हो रहा है बिहारी?"

बिहारी अन्यमनस्क होकर बोला, "न जाने क्यो?" उसके बाद मुँह ऊपर उठाकर बोला, "बाबू अच्छे हो जाये, उनकी मति उस ओर न जाये यही मेरी कामना है, लेकिन जाते समय गाडी पर चढकर उन्होने जो यह कहा था, जाने दो, एक तरह से रक्षा ही हुई, संसार मे अब किसी के लिए चिन्ता न करनी पडेगी। तुमसे मैं सच कह रहा हूँ बहिनजी, उसी समय से जब भी वह बात स्मरण आती है, त्योही छाती के भीतर आग-सी धधकने लगती है। उनके हाथ मैं अब रुपयों के बडे ढेर आ जायेगे। बाबू के सगी-साथी भी अच्छे नही हैं, बुरे मार्ग से चलने पर अब उनको कौन रोकेगा?" यह कहकर बिहारी ने अनजान मे ही फिर एक बार सुनने वाले की छाती मे गरम तीर भोककर अपने दोनो हाथ माथे पर रख लिये।

सरोजिनी ने आघात सहकर मृदु स्वर से कहा, "अच्छी बात तो है बिहारी, उनको ही आने के लिए तुम चिट्ठी क्यो नही लिख देते?"

बिहारी ने कहा, "पता मैं नही जानता। यदि मैं स्वयं ही एक बार काशी जा सकता तो जिस तरह भी होता खोजकर ढूढ़कर उसको लौटा लाता, लेकिन मेरे लिए तो यह उपाय नही है। बाबू को अकेले छोड जाने की भी इच्छा नही होती। इसके अतिरिक्त मैं तो कभी काशी नही गया, वहां की जानकारी मुझे नही है।" यह कहकर उसने निरुपाय की भाति सरोजिनी के मुंह की ओर देखा। स्पष्ट रूप से ही यह बात समझ मे आ गयी कि सतीश का यह परम हितैषी बूढ़ा नौकर स्वामी के अवश्यम्भावी अमगल की आशंका से घबराकर उससे चुपचाप आश्वासन पाने की प्रतीक्षा कर रहा है। लेकिन सरोजिनी ने उसे कोई सान्त्वना नही दी, केवल चुपचाप निहारती रही।

"तो अब मैं जा रहा हूँ बहिनजी।" कहकर बिहारी उठ पड़ा और सरोजिनी के पैरों पर झुककर प्रणाम करके फिर पदधूलि लेकर कमरे से बाहर चला गया। लेकिन दूसरे ही क्षण वह अकस्मात् लौट आया और हाथ जोडकर सामने खडा हो गया।

"क्या है बिहारी?"

"एक बात की विनती करूगा बहिनजी।"

सरोजिनी ने बडे कष्ट से म्लान हसी हंसकर कहा, "कौन-सी बात?"

बिहारी ने वैसे ही हाथ जोडे करुण स्वर से कहा, "मैं जात का ग्वाला, देहाती गवार और बूढ़ा आदमी हूं। बातें कहने में यदि कुछ भूल हो गयी हो तो आप ख्याल मत कीजिएगा।"

सरोजिनी की आखो में आंसू भर आये। लेकिन प्राणपण से उन्हे रोककर गर्दन हिलाकर उसने कहा, "नहीं।"

उसके मुँह से यही एक 'नही' शब्द सुनकर बिहारी मानो निर्भय हो गया। उसने अपने को देहाती

गवार कहकर अपनी बुद्धिहीनता का परिचय दिया, फिर भी वास्तव में वह नासमझ नही था। इसीलिए सरोजिनी ने क्यो सावित्री की बाते सुनने के लिए उसे रास्ते से बुलाया था, क्यो वह इतने ध्यानपूर्वक उसकी कहानी सुन रही थी, इन सभी बातो का अर्थ उसके सामने अकस्मात् सूर्य के प्रकाश की भाँति स्पष्ट हो उठा। अनजान दशा मे उसने इतनी देर तक इस तरुणी को इतनी वेदना दी, इसके लिए उसके हृदय मे पश्चात्ताप की कोई सीमा नही रही। तब बिहारी ने अत्यन्त करुण स्वर मे कहा, "मैं जानता हूँ, तुम्हारी बातो की बाबू कभी अवहेलना न कर सकेंगे, तुम इच्छा करने से बाबू को इस बुरे समय मे रक्षा कर सकती हो, लेकिन मेरा मन कहता है कि तुमने मानो उनको त्याग दिया है मां।" बिहारी ने यही पहली बार सरोजिनी को 'मा' सम्बोधन किया। 'मा' कहकर अपना काम बनाने की युक्ति बूढ़ा खूब जानता था।

सरोजिनी के आसू रोकने पर भी अब न रुके, दोनो आखो से बडी-बडी बूदें बूढ़े के सामने ही झर पड़ी। लेकिन झटपट उन्हें पोछकर उसने कहा, "नही बिहारी, मुझसे कुछ भी न होगा, मैं अब उनकी किसी बात में नही हूं।"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "मा कहकर पुकारा है, मैं आपके लडके की जगह हूं। उनसे जो कुछ भी गलती हुई हो, मैं अपना कसूर मानता हूँ।" यह कहकर बिहारी झुककर सरोजिनी के पैरों की धूलि सिर पर चढ़ाकर बोला, "लेकिन तुम तो मेरे बाबू को पहचानती ही हो? इस विपत्ति के दिन में अभिमान करके तुम उनको मार डालोगी, यह तो मैं कभी न होने दूंगा।"

सरोजिनी का घोर अभिमान पिघल गया। सतीश को क्षमा करने के लिए वह एक बार उन्मुख हो उठी, लेकिन उसके साथ ही बूढ़े के मुह से सावित्री का सारा प्रसग सुनना स्मरण हो जाने से उसका पिघला हुआ चित्त पल भर मे फिर सूखकर काठ बन गया। उसने गर्दन हिलाकर शान्त कठोर स्वर मे कहा, "बिहारी तुम डरो मत। सावित्री के आ जाने से ही फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा। लेकिन तुम लोगों का कुछ भी उपकार न होगा।"

यह निष्ठुर प्रत्युत्तर सुनने के लिए बिहारी बिलकुल तैयार नही था। अपने सर्वविजयी प्रेम के सामने यह सूखा कण्ठ-स्वर ऐसा कठोर होकर सुनाई पडा कि वह कुछ क्षण के लिए विह्वल की भाँति केवल देखता रहा। उसके बाद फिर एक भी बात न कहकर, फिर एक बार प्रणाम कर वह बाहर निकल गया।

उनतालीस

क्षय रोग से ग्रस्त पत्नी को लेकर उपेन्द्र पाच-छ: महीने तक नैनीताल में रहकर अभी कुछ दिन हुए बक्सर आये हैं। यह है सुरबाला की अन्तिम इच्छा। उस दिन, सन्ध्या के बाद स्निग्ध दीपक के प्रकाश मे बडी देर तक मौन देखते रहने के बाद यह परलोक की यात्री धीरे-धीरे पति के हाथ पर अपना दाया हाथ रखकर बोली, "तुम्हारी बातों पर अब किसी दिन सन्देह नही होगा। आज मुझे एक बात सच्चाई के साथ बता दोगे? भुलावे मे नही डालोगे?"

उपेन्द्र ने स्त्री के मुह पर झुककर कहा, "कौन बात पशु?"

सुरबाला पलभर चुप रहकर बोली, "तुमको मैं फिर पाऊगी तो?"

उपेन्द्र ने स्त्री के माथे पर से रूखे बालो को हटाकर शान्त दृढ स्वर से कहा, "अवश्य पाओगी।"

"अच्छा, कितने दिनों मे पाऊगी? मैं तो शीघ्र ही जा रही हूं, लेकिन उतने दिनो तक कहा तुम्हारे लिए बैठी रहूंगी?"

"स्वर्ग में रहोगी। वहां से मुझे बराबर देख सकोगी।"

"लेकिन मैं अकेली किस तरह रहूगी? अच्छा, सभी डाक्टर जवाब दे चुके हैं? ऐसी कोई दवा नही है जिसमे मैं बचू? मेरे चले जाने से तुमको बहुत कष्ट होगा।"

एक बूद आसू का जल किसी प्रकार भी उपेन्द्र सभाल न सके, टप करके सुरबाला के ललाट पर चू पडा।

उसके सम्पूर्ण हृदय को मथित करके शिकवा फूट निकली—भगवान् पति के हृदय में तुमने केवल

इतना प्यार ही दिया, लेकिन इतनी भी शक्ति नही दी कि स्नेहास्पद को एक दिन भी अधिक पकड रखे।

सुरबाला अपने दुबले हाथ को उठाकर पति की आखे पोंछकर बोली, "तुम्हारी रुलाई मैं सह नही सकती, मेरी और एक बात मानोगे?"

उपेन्द्र ने गर्दन हिलाकर कहा, "मानूगा।"

सुरबाला ने कहा, "तब तो मेरी छोटी बहन शची के साथ छोटे बाबूजी का ब्याह कर देना। मैं बहुत दिनो से उनको देखा नहीं है, दो-चार दिनो में पढ़ाई मे कौन बडी हानि हो जाएगी, एक बार कलकत्ता से आने के लिए तार दे दो न।"

उपेन्द्र की छाती मे फिर एक बाण विध गया। दिवाकर को सुरबाला कितना प्यार करती थी, इसे वह जानते थे। पर उसकी अन्तिम इच्छा पूरी करने का कोई उपाय नही है, दिवाकर की परम कीर्ति को बहुत दिन तक उन्होंने अपनी स्त्री से छिपा रखा था, आज भी उसको प्रकट नही किया। तार देने का अनुरोध बातों से बहलाकर बोले, "लेकिन उसके साथ शची का ब्याह करने की राय तो पहले तो तुम्हारी नही थी पशु। केवल मेरी सम्मति से ही अन्त मे तुमने अपनी राय दी थी। अब मेरा अपना विचार भी बदल गया है। शची के लिए बहुत अच्छे विवाह सम्बन्ध मैं ठीक कर दूंगा, लेकिन इस ब्याह की आवश्यकता नही है सुरो।"

सुरबाला ने कहा, "नहीं, यह नही होगा, छोटे बबुआजी के साथ ही शची का ब्याह कर देना।"

उपेन्द्र आश्चर्य में पडकर बोले, "क्यों बताओ तो?"

सुरबाला ने कहा, "उसका मुँह देखकर तुम किसी दिन फिर हमारे लिए पराये न हो सकोगे, इसके अतिरिक्त वह मकान में रहेगी तो तुमको भी देख सकेगी।"

उपेन्द्र ने अन्यमनस्क होकर कहा, "अच्छा, यदि असम्भव न हुआ तो कर दूंगा।"

इसके तीन दिन बाद खबर पाकर उपेन्द्र के मना करते रहने पर भी महेश्वरी आ गयी। सुरबाला ने उनकी गोद में सिर रखकर कहा, "मेरे चले जाने पर उनके ऊपर जरा निगाह रखना बहिन, मैं तो जाती हूँ, वह फिर भी ब्याह न करेंगे, लेकिन भारी कष्ट होगा। तुम सभी लोग उनको देखना, तुम लोगों से यही मेरी अन्तिम विनती है।" यह कहकर उसकी आंखों से आंसू झरने लगे।

महेश्वरी उसकी छाती पर औंधी गिरकर रो उठी, मुँह से एक भी बात न निकाल सकी।

इसी प्रकार और भी तीन-चार दिन बीत गये। उसके बाद एक दिन सबेरे पति की गोद मे माथा रखकर, समूचे मुहल्ले को शोक-समुद्र में निमग्न करके वह पति-साध्वी स्वर्ग को चली गयी।

उपेन्द्र शान्त और स्थिर भाव से पत्नी का अन्तिम संस्कार पूरा करके महेश्वरी को साथ लेकर अपने घर लौट आये। उपेन्द्र के पिता शिवप्रसाद बाबू पुत्र के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये थे। लेकिन अब लड़के का मुह देखकर बहुत कुछ आश्वस्त हुए। मन ही मन बोले, "नहीं, जितना मैं डर गया था, उतना नहीं है।" यहां तक कि उन्होंने निकट भविष्य में एक और सुन्दर बहू घर में लाने की आशा को भी हृदय में स्थान दिया। लेकिन अन्तर्यामी ने संभवतः छिपे रहकर बूढ़े के लिएउस दिन लम्बी सांस ले ली।

कुछ ही दिनो के बाद उपेन्द्र को कोर्ट के लिए घर से निकलते देखकर शिवप्रसाद ने अत्यन्त सन्तोष का अनुभव किया, यहां तक कि आनन्द की अधिकता से पुत्र को कुछ क्षण के लिए अपने पास बुलाकर संसार की अनित्यता के विषय में बहुत-सी हितकर बाते कहकर अन्त में बोले, "उपेन्द्र, तुमको और क्या समझाऊं बेटा, तुम स्वयं ही सब कुछ जानते हो, सब समझते हो। इस संसार मे कुछ भी चिरस्थायी नहीं है, आज जो है कल वह नहीं रहेगा, सब ही माया है। इस बात को सदा स्मरण रखना बेटा, कभी भविष्य को नष्ट मत करना। प्राणपण से उन्नति करने का यही तो समय है। कौन किसका है? शास्त्रो मे लिखा है, 'चलाचलमिदं सर्वं कीर्तिर्यस्य स जीवति!' अर्थात् सम्मान कहो, प्रतिष्ठा कहो, सब कुछ है रुपया। रुपया कमाने पर ही सब कुछ निर्भर है। देखो न सतीश के बाबूजी किस प्रकार रुपया रख गये हैं बताओ तो?" यह कहकर गम्भीर भाव से वह सिर हिलाने लगे। उपेन्द्र मुंह झुकाये चुपचाप सब सुनकर 'जैसी आज्ञा' कहकर कचहरी चले गये।

कचहरी में सतीश के भैया से भेंट हो गयी। उन्होंने इस दुर्घटना के लिए अत्यन्त दुःख प्रकट करके अन्त में सतीश की चर्चा छेड दी। उपेन्द्र की धारणा थी कि सतीश पिता की मृत्यु के बाद से घर पर ही है,

लेकिन अब उसने सुन लिया कि वह घर पर तो है अवश्य, लेकिन यहा नही, गाव के घर पर है। टुनू बाबू सतीश के सौतेले बडे भाई हैं। किसी दिन भी उन्होंने सतीश को अच्छी दृष्टि से नही देखा, एक घर मे रहते हुए भी कभी उसका समाचार तक भी लेने की आवयश्कता उन्होंने नही समझी। वस्तुतः सतीश के साथ उनका सम्बन्ध नही था, यह कहना भी अनुचित नही है। पिता की मृत्यु होने से आधे का हिस्सेदार बनकर वह भैया की और भी विषदृष्टि मे पड गया है। वह बोले, "इसके बीच ही प्रायःतीसहजार रुपया खर्च करके उसने खूब बडी दो डिस्पेसरिया खोल दी हैं, सौ रुपये मासिक वेतन पर डाक्टर रख लिया। इसके अतिरिक्त मकान तक को भी अस्पताल मे परिणत कर दिया है।"

उपेन्द्र ने सहज भाव से कहा, "हा यह उसकी इच्छा बहुत दिनों से थी, केवल रुपये के अभाव से ही वह इतने दिनो तक यह काम न कर सका था।"

टुनू बाबू ने व्यग्य करके तनिक हसकर कहा, "ऐसा तो मुझे भी जान पडता है उपेन। लेकिन केवल डिस्पेसरी खोलने की इच्छा ही तो तुम जानते थे, उसके साधन-भजन का अर्थ तो तुम नही जानते थे भैया।"

उपेन्द्र ने आश्चर्य मे पडकर पूछा, "साधन-भजन कैसा?"

टुनू बाबू बोले, "यही जैसे चक्र, कारण, पचमकार इत्यादि। केवल फिलानथ्रपिस्ट नही है जी, 'सतीश स्वामी' अब एक उच्चकोटि के साधक हैं, गेरुआ वस्त्र पहनते हैं, बडी-बडी दाढ़ी-मूंछ है, रुद्राक्ष की माला, ललाट पर सिन्दूर का तिलक, सदा ही घूमते हुए नेत्र। उसका एक हस्ताक्षर लेने के लिए रासबिहारी को मैंने भेजा था, वह तो डर के मारे दो दिन पास तक जा नहीं सका था, और इस चिट्ठी को पढ़कर देखो, उसके नौकर बिहारी ने मेरे पास लिख भेजी है, अभी तक उत्तर नहीं दिया गया है, इसलिए पॉकेट मे ही यह घूम रही है।" यह कहकर उन्होंने एक पीले रग का मुडा हुआ कागज निकालकर उपेन्द्र के सामने रख दिया।

निरुपाय होकर बिहारी ने सतीश के बडे भाई के पास उपाय करने की याचना करके चिट्ठी लिखवा ली है। आदि से अन्त तक चिट्ठी पढ़ी न जा सकी लेकिन जितनी पढ़ी गई, उतनी ही ने उपेन्द्र को बडी देर तक स्तम्भित कर रखा।

उसके बचपन का सुहृद्, उसका दाया हाथ, उसका छोटा भाई, वही सतीश आज अध पतन के इतने निम्नस्तर पर उतर गया है कि गाव में खुले रूप से यह सब वीभत्स कीर्तियां करके घूमते रहने मे लज्जा अनुभव न कर बल्कि इस बात पर गर्व कर रहा है कि धर्म-साधना कर रहा है। सम्भवत. उस कुलटा दासी से भी सहयोग कर लिया है। इसके अतिरिक्त बिहारी की चिट्ठी के भाव से यह भी समझने मे आता है कि गांव के कुछ निकम्मे लोग भी उसके साथ जुट गये है।

उपेन्द्र अन्यमनस्क होकर चिट्ठी पॉकेट मे डालकर कचहरी से घर लौट आये। टुनू बाबू को लौटा देने की बात उसको स्मरण न रही।

बिहारी ने चिट्ठी डाक में छोड़ दी। आरम्भ में कई दिनों तक यह स्वयं टुनू बाबू की पत्याशा में उतावला हो रहा था। बाद को एक उत्तर के लिए अधीर होकर दिन बिताने लगा। लेकिन दिन पर दिन बीत गये, नही आये बडे बाबू, नही आया उनका उत्तर।

विशेषतः 'थाको बाबा' के अत्याचार से ही बिहारी परेशान हो उठा है। ये हैं तान्त्रिक साधु सिद्ध पुरुष, सतीश के मन्त्रगुरु हैं। आठो पहर मदिरा और गाजा सेवन करने से स्वभाव दुर्वासा से भी उग्र हो चला है। मुंह इतना खराब है कि केवल क्रोध करने की दशा मे ही नही, उनकी स्वाभाविक मानसिक अवस्था की बातचीत में भी कानो में अगुली देनी पडती है।

लेकिन यही है सम्भवत तान्त्रिक सिद्ध का लक्ष्य। इसके अतिरिक्त सतीश के गुरु भी तो हैं।

बिहारी अपनी ओर से इनके प्रति कम श्रद्धा-भक्ति नही रखता था। लेकिन पहले ही बताया जा चुका है कि सतीश के किसी प्रकार के अनिष्ट की गन्ध पाते ही बिहारी हिताहित का ज्ञान खो बैठता है।

गुरु बाबा के प्रशिक्षण मे सतीश और उसके दल के निशीथ की निभृत चक्रराधना और उससे भी निभृत अनुसार्गिक अनुष्ठान इतने दिनो तक बिहारी ने किसी प्रकार सहन कर लिया था, लेकिन जिस दिन मदिरा और गाजा बाबा का प्रसाद पा गया, उस दृश्य को यह बूढ़ा नौकर किसी तरह भी सह न सका।

सतीश की अनुपस्थिति में वह कमरे मे घुसकर उनकी पदधूलि लेकर हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक बोला, "बाबा, आप दिन के समय फिर कभी बाबू को गांजा-शराब मत पिलाइएगा।"

आग मे घृताहुति पड गयी। बाबा एक क्षण मे सातवे सुर पर चढ़कर चिल्ला उठे, "तू साला मदिरा कहता है!"

बिहारी ने विनीत स्वर से कहा, "क्या जानू बाबा, हमारे देश मे तो उसे मदिरा ही कहते हैं।"

बाबा ने कहा, "मदिरा! लेकिन साले, इससे तेरा क्या बनता-बिगडता है? तू बोलने वाला कौन है!"

बिहारी भी असहिष्णु हो उठा था, उसने भी दृढ़-स्वर से कहा, "मैं हू बाबू का नौकर।"

"वाह रे मेरे नौकर!" कहकर बाबाजी अश्लील गाली-गलौज सुनाकर दांत कटकटाकर बोल उठे, "लेकिन मैं हू तेरे बाबू का भी बाबा, यह तू जानता है?"

बिहारी बैठा हुआ था। झटपट उठा और चिल्लाकर बोला, "खबरदार! मेरे सामने तुम ये सब बातें मत कहो, बताये देता हू।"

थाको बाबा तो यो ही दिन-रात प्राय बदहवास ही रहा करते थे, बिहारी के तिरस्कार से बिलकुल ही कर्तव्य-ज्ञान से शून्य हो गये। बोले, "तू क्या करेगा रे साले!" यह कहकर सामने की खड़ाऊ उठाकर बिहारी का सिर ताककर उन्होने जोर से फेक दिया। बिहारी की नाक से रक्त की धारा बहने लगी, और क्षणमात्र मे ही उसके हृदय के किसी अज्ञात स्थान से चालीस साल पहले का गरम खून बिलकुल ही मस्तिष्क में चढ़ गया। पलभर में उसने कमरे के कोने से बाबा का हाथ लम्बा त्रिशूल बाबा के माथे पर तान दिया। डरकर अपने दोनों हाथ सामने रखकर बाबा कुत्ते की तरह चिल्ला उठे और उस अमानुषिक चिल्लाहट से बिहारी भी सभल गया। वह हाथ का त्रिशूल यथास्थान रखकर नाक का खून पोछते-पोंछते चला गया।

एक घण्टा बीत जाने पर सतीश ने पूछा, "क्या यह सच है?"

बिहारी ने कहा, "हां!" लेकिन उसने अपने रक्तपात का उल्लेख नहीं किया।

सतीश क्षणभर चुप रहकर बोला, "तुझे अब मैं इस घर मे न रहने दूंगा। दो सौ रुपये लेकर तू अपने घर चला जा, मैं तेरा वेतन हर महीने तेरे घर भेज दिया करूंगा।"

बिहारी ने सिर झुकाकर कहा, "जो आज्ञा!"

उसने दु:ख प्रकट नही किया, क्षमा-याचना नही की, दो सौ रुपये चादर के छोर मे बांधकर, मालिक के चरणों की धूलि माथे पर चढ़ाकर सध्या के पहले ही गांव छोडकर चला गया।

जब तक वह दिखाई पड़ता रहा, सतीश ऊपर के बरामदे से उसकी ओर निहारता रहा। क्रमशः विधुपाल की दूकान की ओट में जब वह ओझल हो गया तब वह लम्बी साँस लेकर बोला, "जाने दो, इतने दिनों बाद बिहारी भी चला गया!"

इस बार आश्विन के प्रथम सप्ताह में ही महामाया की पूजा है। अबी उसमें विलम्ब है, लेकिन सतीश की मित्र-मण्डली मे अभी से ही आलोचना चल रही है कि इस बार देवी की पूजा में क्या-क्या करना चाहिए। महाअष्टमी के लिए अभी से तैयार हो जाना चाहिए। लेकिन भादों के मध्य में मलेरिया का प्रकोप अत्यन्त बढ़ गया। यहाँ तक कि दो-चार सान्निपातिक ज्वर के कारण भी डाक्टर की दौड़-धूप आरम्भ हो गयी।

आज कई दिनों से सतीश की तबीयत अच्छी नही है। बिहारी जिस दिन चला गया, उसी रात को उसने ज्वर का लक्षण स्पष्ट अनुभव किया। सम्भवत एकादशी के कारण ऐसा हो गया है सोचकर उसने दूसरे दिन सबेरे उसे उडा देना चाहा, लेकिन जो यथार्थ में है, जिसका भार है, उसे इस तरह सहज मे उड़ाया नही जा सकता। सारा दिन उसको मानना ही पडा कि वह स्वस्थ नहीं है।

तीनो दिनों के बाद पूर्व प्रथानुसार चतुर्दशी की रात को ही धूम-धाम से पूजा की तैयारी हुई थी, लेकिन सतीश ने स्वय सम्मिलित होना अस्वीकार किया। तीसरे पहर गुरु बाबा ने आकर सतीश के माथे पर शान्ति का जल छिडककर कमण्डल दिखाकर हंसते हुए कहा, "बेटा, इस पर यम का भी अधिकार नही है। इसके अतिरिक्त तुम्ही तो मूलाधार हो, तुम्हारे न रहने से तो सब ही चौपट है।"

गुरुजी की बात को सतीश टालता नही था। इसीलिए अपनी इच्छा के विरुद्ध ही वह सहमत हो गया। वास्तव मे बिहारी को विदा करने के बाद से कुछ भी उसे अच्छा नही लग रहा था। यद्यपि किसी प्रकार उसको विश्वास नही होता था कि बिहारी बिलकुल ही चला गया है, फिर न आयेगा, तथापि जितना शीघ्र हो सके, उसको फिर पाने के लिए उसका हृदय व्याकुल हो उठा। इसके अतिरिक्त एक और चिन्ता उसको भीतर-ही-भीतर कष्ट दे रही थी। कौन जाने, बिहारी अपने घर ही गया है या हम लोगो के पश्चिम वाले मकान पर गया है। कही ऐसा न हो कि सारी बातो का प्रचार करके कोई बखेडा मचाने की चेष्टा करता हो या और कोई चाल चल रहा हो। जो भी हो, उसे फिर एक बार आखो से देखे बिना सतीश किसी प्रकार भी चैन नही पा रहा था।

सन्ध्या के पूर्व ही दुमंजिले के कमरे मे एकत्र होकर दो-एक प्याले पी लेने पर सतीश का वह निर्जीव भाव कट गया था। लेकिन फिर भी हृदय की ग्लानि उसे भीतर-ही-भीतर पीडा दे रही थी। ठीक उसी समय पास के कमरे मे बिहारी की आवाज सुनकर सतीश पुलकित हो उठा और आश्चर्य से चौंक पडा।

उसने पुकारा, "बिहारी है क्या रे?"

बिहारी दरवाजे के निकट आकर श्रद्धा के साथ बोला, "जी हा, क्या आज्ञा है?"

गुरु बाबा का चेहरा काला पड गया। उन्होने कहा, "यह कमबख्त फिर आ गया बेटा? साला इस कमरे मे घुस क्यो आया?"

इसी कमरे मे उनके निथीशचक्र का आयोजन हो रहा था।

सतीश ने इन सब प्रश्नो का उत्तर न देकर बिहारी से पूछा, "क्या तू अपने घर नही गया था रे?"

"जी नही, मैं काशी गया था।"

"काशी? काशी क्यो गया था?"

"माजी को लाने।"

सतीश चौंक उठा। बिहारी किसको 'मा' कहता है, सतीश यह जानता था। उसने कहा, "वह क्या काशी मे रहती है?"

"जी हा।"

"तू उसका पता-ठिकाना जानता था?"

बिहारी ने कहा, "नही। लेकिन मैं जानता था, माजी जहा कही भी क्यो न हो, विश्वनाथ बाबा के मन्दिर मे किसी दिन भेट हो ही जायेगी।"

"भेट हुई थी?"

"जी हा।"

सतीश के हृदय के अन्दर हलचल-सी मचने लगी। कुछ क्षण शान्त रहकर अपने को संभालकर रूखे स्वर से उसने कहा, लेकिन मुझे खबर न देकर वहा जाना तेरा अच्छा काम नही हुआ। उन स्त्रियो मे मान-सम्मान, लज्जा-शरम कुछ भी नही है। तेरे जैसे अहमक को पाकर यदि वह तेरे साथ चली आती, तो आज तू किस विपत्ति मे पड जाता, बता तो?"

बिहारी चुपचाप खड़ा रहा।

सतीश तब आप ही आप फिर कहने लगा, "घर मे घुसने तो देता ही नही फाटक के बाहर से ही दरबान ने निकलवा देता। उसको लेकर इतनी रात को तू कैसी विपत्ति में पड जाता, सोच तो ले भला, क्या अकारण ही लोग मुझे गवार ग्वाला कहते हैं। कालीचरण, जरा ठीक से एक प्याला दे देना भैया।"

आज्ञा मिलते ही कालीचरण ने मूलसाधक के हाथ में एक प्याला दे दिया।

बिहारी ने कहा, "बाबू, माजी आपको बुलाती हैं।"

सतीश प्याला मुह में लगाने जा रहा था। चौंककर बोला, "कौन बुला रही है? तूने क्या कहा है?"

बिहारी बोला, "माजी।"

सतीश हतबुद्धि की भांति हाथ की प्याली को पिकदानी मे उँडेलकर बोला, "तेरे साथ आयी है क्या? तो तूने पहले क्यो नही बताया?"

बिहारी ने उसका उत्तर न देकर फिर कहा, "वह इसी क्षण आपको बुला रही हैं।"

सतीश ने धीमे स्वर मे कहा, "तू जाकर कह दे बिहारी, बाबू को बुखार हो आया है, इसीलिए बाहर के कई इष्ट-मित्र उनको देखने आये हैं। आध घण्टे बाद आऊँगा, जा कह दे।"

बिहारी ने अपने हाथ से दरवाजे की ओर सकेत से दिखाकर धीरे से कहा, "माजी यही तो खडी हैं, एक बार बाहर चले आइए।"

सतीश ने चौंककर अगुली के सकेत से पूछा, "इसी कमरे मे?"

बिहारी ने गर्दन हिलाकर कहा, "हा, यही तो हैं।"

सतीश झटपट दो-चार लौंग-इलायची मुह मे डाल उठ पडा। धीरे-धीरे बाहर जाकर उसने देखा कि उसके पास के दरवाजे की आड मे ही सावित्री के आंचल का छोर दिखाई पड रहा है। वह अपने कानो से सब बाते सुन चुकी है, इसमे कुछ भी सदेह उसे नही रहा। उसकी इच्छा हो रही थी कि मूर्ख बिहारी के गाल पर अच्छी तरह दो थप्पड जमा दे। सावित्री ने झाककर धीरे के कहा, "भीतर आओ।"

इस कण्ठ-स्वर के सुर मे मानो उसके हृदय के सब तार बधे थे। सभी एक ही साथ बज उठे। उसके कमरे मे घुसते ही सावित्री ने कहा, "तुम कह रहे थे कि बुखार हो आया है?"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "बुखार तो आ ही गया है।"

"कहा, देखू?" कहकर सतीश के पास आकर हाथ बढाकर उसके ललाट का ताप अनुभव करके वह चौंक पडी। बोली, "हा सचमुच ही बुखार है। शरीर मानो जल रहा है। आओ, मैं बिछौना बिछा देती हू, चलो, कमरे मे सो रहो। बिहारी, बाबू के कमरे मे जाकर बत्ती जला दे।" यह कहकर तिमंजिले की सीढियों की ओर बढ चली। उसने इस घर मे आते ही बाबू का शयन-गृह बिहारी से पूछ लिया था।

पलग पर बिछौना तैयार ही था। केवल आचल से जरा झाडते ही सतीश शान्त बालक की भांति नेत्र बन्द करके लेट गया। सिरहाने और पैरो की ओर की दोनो खिडकिया बन्द करके उसने बिहारी से पूछा, "साधु बाबा किस कमरे मे रहते हैं?"

बिहारी के पास का कमरा दिखा देने पर सावित्री ने कहा, "उनकी क्या-क्या वस्तुए हैं, वहा नीचे रख आओ बिहारी। बाहर तो कितने ही कमरे खाली पडे हैं, उनमे से किसी एक मे वह खूब अच्छी तरह रह सकते हैं।" बिहारी चला जा रहा था। सावित्री ने पुकारकर कहा, "और बाबू को जो लोग देखने आये थे, उनको भी जाने को कह देना। कहना, बाबू को खूब ज्वर आया है, अब नीचे उतर न सकेगे।"

सतीश किसी बात मे भी सम्मिलित नही हुआ। मुह छिपाये लेटा रहा।

बिहारी वीर की भांति दर्प दिखाता हुआ आदेश का पालन करने चल पडा। उसके चले जाने पर सावित्री ने कहा, "अब तुम उठना मत। मैं खाने-पीने की व्यवस्था ठीक करके आती हू।" यह कहकर द्वार बन्द करके वह दबे पाव चली गयी। उसे भय था कि साधू बाबा विद्रोह कर बैठेगें। इसीलिए वह छिपे तोर से दरवाजे की आड मे जा खडी हुई थी।

दूसरे ही क्षण उस ओर के दरवाजे से प्रवेश करके बिहारी ने जोर से कहा, "माजी ने कहा है, आप लोग घर चले जाइए। बाबू का ज्वर बढ गया है, आज वह नीचे न उतरेगे।" फिर बाबाजी को लक्ष्य करके बोला, "महाराजजी, तुम्हारी चीज-वस्तु, नीचे निवारण के कमरे के पास वाले कमरे मे रख देने की आज्ञा माजी ने दे दी है। तुमको वही रहना पडेगा।"

बाबा ने उग्रता नही दिखाई। उन्होने शान्त भाव से पूछा, "माजी कौन हैं बिहारी?"

बिहारी ने कडे स्वर से उत्तर दिया, "इस पूछताछ की तुम्हे क्या आवश्यकता है, महाराजजी? जो कह रहा हूं, वही करो।" मन-ही-मन बोला, 'कौन है, इसका पता तुमको लग जायगा। बिना पैसा खर्च किये ही शराब-गाजा पीकर खडाऊ मारने की कसर कल मैं निकालूगा।'

सभी हतबुद्धि की भांति एक-दूसरे के मुंह की ओर ताकने लगे और उठने की तैयारी करने लगे। कोई भी समझ न सका कि क्या बात है। लेकिन आदेश जब सच्चे आदेश के रूप मे अकुण्ठित रूप से निकल आता है, तो वह किसी के ही मुह से क्यो न आया हो, लोग निश्चित रूप से समझ जाते हैं कि उसको न मान लेने से काम नही चलेगा।

बिहारी ने रसोईघर मे जाकर देखा सावित्री रसोइया महाराज से दूध गरम कराने का उद्योग कर रही

रात हो गयी, अभी तक तो तुमने स्नान-सन्ध्या पूजा नही की। दिनभर गाडी में एक बूद तक तुमने नही पिया। चलो, पहले तुमको स्नान की जगह दिखा दू तब तक बाबू का दूध गरम हो ।।" यह कहकर वह सावित्री को एक प्रकार बलपूर्वक ही ले गया।

उसको भेजकर बिहारी ने बाबू के लिए तम्बाकू चढाया। हाथ मे गुडगुडी लेकर चुपके से किवाड [illegible]कर बाबू केकमरे मे चला गया। सतीश चुपचाप पडा हुआ था। आखे खोलकर बोला, "कौन? [illegible] है क्या?"

"हा बाबू, तम्बाकू चढाकर लाया हू।"

"यहा आ। [illegible] कहा है रे?"

बिहारी ने कहा, "अभी तक एक बूद पानी उनके मुह मे नही गया है। इसीलिए जबरन स्नान करने के लिए भेजकर तब आया हू बाबू!"

सतीश ने कहा, "अच्छा किया है लेकिन तुझे मैं ढूँढ़ रहा था बिहारी।"

बिहारी घबरा उठा, "क्यों बाबू, इस समय तबीयत कैसी है?"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "अच्छी नही बिहारी। इसलिए मैं तझे ढूँढ़ रहा था। दरवाजे मे सिटकनी लगाकर मेरे पास आकर जरा बैठ।"

बिहारी दरवाजा बन्द करके शंकित चित्त से मालिक के पैरो के पास आकर भूमि पर घुटने के बल बैठ गया।

सतीश ने पूछा, "अच्छा बिहारी, तू ग्रहकोप मानता है?"

बिहारी ने आश्चर्य से कहा, "ग्रहकोप? ग्रहो का कोप भला मैं न मानूगा? पोथी-पत्रा का लिखा क्या कभी झूठ हो सकता है बाबू?"

सतीश जरा चुप रहकर बोला, "इस बार मेरा एक बहुत बडा ग्रहकोप है बिहारी।'

बिहारी सिहर उठा, बोला, "नही, नही, ऐसी बात आप मत कहिए बाबू।"

सतीश ने दो बार सिर हिलाकर कहा, "मुझे पता लग गया है बिहारी, यह ज्वर मेरा अन्तिम ज्वर है, इस बार मैं बचूगा नही।"

पलभर मे बिहारी मालिक के दोनों पैर पकडकर बोल उठा, "इस बात को मुह से मत निकालिए बाबू, आपकी सारी विपत्ति लेकर मैं ही मर जाऊं तो ठीक हो। मेरी परमायु लेकर आप जीवित रहिए बाबू, नही तो हम सभी लोग मर जायेगे।" यह कहते-कहते बिहारी जोर से रोने लगा।

सतीश ने गम्भीर होकर कहा, "मरने-जीने की बात तो ठीक बताई नही जा सकती बिहारी, यदि मैं न भी बचूं, तुझसे मैं जो कुछ पूछता हू, सच-सच बतायेगा तो?"

बिहारी ने रोते-रोते कहा, "मैं आपके पांव छूकर, शपथ खा रहा हू बाबू, एक भी बात मैं झूठ न बोलूंगा।"

"कुछ भी तू छिपाएगा नही, बता।"

"नही बाबू, कुछ भी नही।"

तब सतीश ने कहा, "अच्छा बैठ जा।"

बिहारी आंखे पोंछकर अपनी जगह पर बैठ गया। सतीश ने पूछा, "सावित्री तुझे कहा मिली, बता तो?"

"यह तो मैं कह चुका हू, काशी मे।"

"वहा विपिन बाबू के साथ तेरी भेंट हुई थी?"

बिहारी जीभ काटकर घृणा के साथ बोल उठा, "राम! राम! वह हरामजादा हम लोगों का कौन है कि उससे भेंट होती बाबू।"

सतीश ने कहा, "लेकिन तूने तो अपनी आखो से उनको उसके बिछौने पर ।"

बिहारी ने दोनों हाथ उठाकर सतीश की बात पूरी भी न होने दी। एकाएक अत्यन्त उत्तेजित होकर अपने गालों पर, मुह पर कई चपतें जड़कर कहने लगा, "उसका दण्ड यही है! यही! यही! तो भी बिना जाने ही कह दिया था इसलिए अब पाच आदमियो के सामने मुँह दिखा सकता हूँ, नही तो मेरी यह जीभ

इतने दिनों मे सडकर गिर गयी होती।"

सतीश ने आश्चर्य मे पडकर कहा, "क्या हो गया रे तुझे!"

बिहारी तब लज्जित होकर स्थिर भाव से बैठ गया और एक-एक करके सारी बातें कहने लगा। कुछ भी उसने बढाया नही। एक बात भी छिपायी नहीं।

स्वय जो कुछ जानता था, मोक्षदा के मुह से, चक्रवर्ती से जो कुछ सुन चुका था, सावित्री से जो-जो बाते जान सका था, सब एक-एक करके उसने स्पष्ट रूप से सुना दी।

सतीश पत्थर की मूर्ति की भांति स्तब्ध होकर बैठ रहा। बिहारी के मुह मे भी अब कोई बात नही रही।

बहुत देर के बाद सतीश ने एक लम्बी सॉस लेकर कहा, "इतने दिनो से ये सब बाते तूने बताईं क्यो नही बिहारी?"

बिहारी ने कहा, "कितने ही दिनो से बताने के लिए मेरी छाती मानो फटती जा रही थी बाबू, लेकिन किसी तरह मुह खोल नही सकता था।"

"क्यो, सुनू तो?"

"मांजी ने ही सिर की शपथ दिलाकर मना कर दिया था बाबू।"

सतीश फिर कुछ देर चुप रहकर बोला, "अच्छा, मान लेता हू कि यही बात है, लेकिन उस दिन रात को सावित्री अपने ही मुह से कह गयी थी कि वह विपिन के अतिरिक्त और किसी को नही चाहती, उनके ही साथ वह चली जा रही है। उसका क्या अर्थ है बताओ तो?"

बिहारी बोला, "यह बात मैं स्वय भी समझ नही सकता बाबू। फिर भी मैं ठीक जानता हूं यह झूठ है। झूठ! बिलकुल झूठ है! यदि यह झूठ न हो तो मेरा एक भी लडका न बचे बाबू। माजी के जाते समय रोकर मैंने कहा था—क्यों इस मिथ्या कलक के बोझ को तुमने स्वय ही अपने सिर पर उठा रखा मा? तो भी माजी ने मुझे बता देने की आज्ञा नही दी स्वय भी रोते-रोते उन्होने मुझसे कहा—बिहारी, मेरे सिर की शपथ है भैया, ये सब बाते बाबू से तुम मत कहना। वे मुझसे घृणा करे, और कभी मेरा मुह न देखे वही मेरे लिए अच्छा होगा, तो भी उनसे मत बताना कि मैं अपने ही पावो पर कुल्हाडी मारकर चली जा रही हू।"

यह कहकर उस रात की करुण स्मृति की पीडा से बिहारी टपटप आसू गिराकर रोने लगा।

लेकिन स्वामी की आंखो से भी आंसू की धारा वह रही थी, बूढ़ा नौकर यह देख न सका।

बहुत देर बाद सतीश ने धीरे से आंसू पोंछकर कहा, "तू समझ नही सकता बिहारी, लेकिन मैं समझ गया हू कि किसलिए उसने अपने ही पावो पर कुल्हाडी मार दी थी। लेकिन असत्य की तो जीत नही होती बिहारी।"

तभी द्वार पर हाथ का आघात पडा, "यह क्या! दरवाजा बन्द करके सो गये क्या? सिटकनी खोल दो।"

बिहारी ने स्वामी के मुख की ओर देखा। लेकिन स्वामी नेत्र बन्द करके चुपचाप लेटे रहे।

बाहर से फिर आवाज आयी, "दरवाजा खोल न। हाथ जल गया है।"

बिहारी ने उठकर दरवाजा खोल दिया और वहा से चुपचाप चला गया।

चालीस

कटोरी में गरम दूध लिए सावित्री ने कमरे मे आकर तिपाई पर झट से रख दिया। वह सफेद चमकती हुई रेशमी साडी पहिने थी, स्नान करने से लम्बे भीगे बाल पीठ पर लहराकर नीचे लटक रहे थे, कई छोटी-छोटी लटे मुंह पर ललाट पर आ पडी थीं। सतीश ने कनखियो से उसको देखा। उसको एकाएक जान पडा मानो उसने सावित्री को आज ही पहले-पहल देखा हो।

लेकिन वह सतीश के भीगे नेत्रो को उस दीपक के क्षीण प्रकाश मे देख न सकी। तनिक और भी निकट आकर मुसकराकर बोली, "दरवाजा बन्द करके मालिक-नौकरो मे क्या परामर्श हो रहा, सुनू तो! इस बेहया आफत को किस प्रकार बाहर निकाल दिया जाय, यही न?"

सतीश कुछ नही बोला। कही बाते कहने से भीतर की दुर्बलता पकड मे न आ जाए, इस भय से वह चुप ही रहा।

सावित्री ने कहा, "बचपन मे बिल्ली के गले मे घण्टी बांधने की कहानी तुम पढ चुके हो न? मैं भी देखना चाहती हू कि घण्टी बाधने के लिए कौन आगे आता है। तुम स्वय या तुम्हारे वड़ साधूजी?"

इस पर भी सतीश ने कोई बात नही कही, जैसे चुप पडा था वैसे ही पडा रहा।

एक कुर्सी खीचकर सावित्री पास ही बैठ गयी। लेकिन इस बार उसका परिहासयुक्त स्वर गम्भीर हो उठा। बोली, "तमाशा छोडो। बात क्या है मुझे समझा सकते हो, उपेन भैया के साथ तुमने झगडा किया, अन्त मे सुनती हू कि सरोजिनी के साथ भी झगडा करके तुम चले आये। वह तो किसी दिन मिट ही जायेगा, मैं जानती हू। लेकिन यह क्या हो रहा है! मेरा शरीर छूकर तुमने शपथ खायी थी, शराब न छुओगे। शराब तो भाड मे जाये, गाजा भी पीने लगे हो। वह भी लुक-छिपकर साधारण रूप से नही, कितने ही अभागो के झुण्ड बटोरकर गेरुआ वस्त्र पहिनकर तन्त्र-मन्त्र का ढोल पीटकर खुल्लम खुल्ला छाती फुलाकर पीना चल रहा है।"

सावित्री के मुह से सरोजिनी का नाम सुनकर सतीश का शरीर जल उठा। वह समझ गया कि बिहारी ने कुछ भी बताना शेष नहीं छोडा है। एक बार उसके होंठों पर यह बात आयी कि—तुम्हारे ही कारण मेरा यह सर्वनाश हुआ है। तुम ही मेरे शनिग्रह हो! लेकिन उस बात को दबाकर गम्भीर स्वर से उसने सक्षेप मे कहा "छाती फुलाकर शराब-गाजा पीने मे दोष क्या है?"

"दोष क्या है, तुम नही जानते?"

"नही।"

"अच्छा, यदि नही जानते, तो यह तुम जानते हो कि मेरा शरीर छूकर तुमने प्रतिज्ञा की थी कि नही पिओगे?"

"तुम मेरी कौन हो कि कभी बरबस मुझे शपथ खिला ली थी तो वही एक बडी बाधा हो गयी।"

सावित्री ने किसी प्रकार हसी दबाकर सिर हिलाकर कहा, "कोई नही हू मैं? बिलकुल ही कोई नही?"

सतीश ने भी सिर हिलाकर कहा, "नही।

"फिर शराब का गिलास पीकदानी मे उँडेलकर इलायचीदाने चबाते-चबाते क्यो चले आये थे?"

"केवल तुम बकने-झकने लगोगी, इसी भय से।"

सावित्री ने हसकर कहा, "फिर भी सावित्री कोई नही है। अच्छा, अब तनिक दूध पीकर सो जाओ।" यह कहकर वह उठ पडी और दूध की कटोरी हाथ मे लेकर सतीश के सामने आ खडी हुई। सतीश ने आपत्ति नही की। वह उठ बैठा और सब दूध पीकर सो रहा।

सावित्री कटोरी हाथ मे लिए चली जा रही थी। सतीश ने पुकारकर पूछा, "तुम्हारी सन्ध्या-पूजा हो चुकी?"

सावित्री ने घूमकर कहा, "हा।'

"क्या खाया?"

"अभी तक खाया नही। अब जाकर खा लूगी।"

"सोओगी कहा?"

"देखती हू, फाटक के बाहर कोई स्थान है या नही, न होगा तो पेड के नीचे सो रहूगी।" यह कहकर वह आप ही आप हसकर बोली, "अच्छा, यह बात मुह से निकालते तुम्हें तनिक भी कष्ट नही होता? धन्य हो तुम!" यह कहकर अत्यन्त स्नेह से सतीश के ललाट पर लटके हुए बालो को हाथ से हटाते समय उसके ललाट का ताप अनुभव कर वह चौंक पडी। बिहारी ने कमरे में घुसते ही पूछा, "माजी, तुम्हारा

बिछौना ।"

सावित्री ने पास के कमरे को दिखाकर कहा, "इसी कमरे मे मेरा बिछौना ठीक कर दो बिहारी, बाबू का ज्वर कुछ अधिक जान पड रहा है। मैं इसी पास वाली कोठरी मे सोऊंगी। बीच का दरवाजा खुला रहेगा—तुमको भी आज इस कमरे के फर्श पर सोना होगा।"

सतीश से उसने कहा, "अब रात को जागते मत रहो तनिक सोने की चेष्टा करो।" यह कहकर वह धीरे-धीरे द्वार बन्द करके चली गयी।

थोडी देर बाद साधारण-सा कुछ खा-पीकर सावित्री लौट आयी। वह पास वाली कोठरी मे ही एक चटाई बिछाकर लेट रही और उसकी दोनो थकी आखे देखते-देखते गाढी नीद से मुद गयी।

बडे तडके ही नीद टूट जाने पर हडबडाकर सावित्री उठ पडी और उस कमरे मे जाकर उसने देखा कि सतीश पीडा से छटपटा रहा है। ललाट पर हाथ रखकर उसने देखा ज्वर के ताप से जल रहा है। उसके शीतल स्पर्श से सतीश ने आखे खोल दी। उसकी दोनो आखे अडहुल के फूल की तरह लाल हो उठी थी।

ज्वर की दशा देखकर सावित्री भय के मारे उसी बिछौने पर झट से बैठ गयी, पूछने की शक्ति उसमे नही रह गयी थी।

सतीश ने उसका हाथ खीचकर अपने जलते हुए ललाट पर रखकर कहा, "मैं कल ही जान गया था। कल ही मैंने बिहारी से कहा था—यही ज्वर मेरा अन्तिम ज्वर है—इस बार न बचूगा।"

ज्वर की पीडा से उसने इस प्रकार ये बाते हाफते-हाफते कही कि उसे सान्त्वना देने की बात तो दूर रही, रुलाई न रोक सकने के कारण सावित्री का ही गला रुध गया। वह सारी रात निश्चिन्त होकर सोती रही इसी कारण मन ही मन सिर पीट लेने की इच्छा हुई।

सतीश ने कहा, "मुझे यही एक भरोसा है कि तुम मेरे पास हो।" यह कहकर वह करवट बदलकर लेट रहा।

कल रात को उसने जिसको अभिमान और स्पर्द्धावश कहा था, "तुम मेरी कौन हो?" वह आज उसका सबसे बडा अवलम्ब है।

लेकिन थोडी देर बाद सावित्री मे इतनी भी सामर्थ्य नही रही कि बिहारी को डाक्टर बुलाने के लिए कह दे। केवल सतीश की बांह पर हाथ रखकर वह पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी ही रह गयी।

थोडी ही देर बाद सतीश ने फिर करवट बदली। फिर सावित्री का हाथ खीचकर अपनी छाती पर रखकर बोला, "मैंने भी तो कुछ डाक्टरी पढ़ी है। मैं निश्चित जानता हूं कि उस समय तक मुझे यह ज्ञान न रहेगा, लेकिन अभी तक मुझे खूब होश है, लेकिन इतना ज्ञान फिर मुझे न हो जाए तो उपेन भैया से कहना, उस दराज मे मेरा वसीयतनामा है। मैं जानता हू वह मेरा मुह न देखेगे, लेकिन यह भी जानता हू कि मेरी मृत्यु के बाद वह मेरी अन्तिम इच्छा का अपमान भी न करेगे। सावित्री, ससार मे तुम्हारे अतिरिक्त उनसे बढ़कर मेरा और कोई स्वजन सम्भवत. नही है।"

वसीयतनामे का नाम सुनकर सावित्री आत्मविस्मृत-सी हो गयी। इतने दिनो के उसके संयम का बांध क्षणभर के आवेश मे ही टूट गया। सतीश की छाती पर माथा रखकर वह बच्चे की तरह रोने लगी।

बिहारी लगभग सारी रात जागता रहा और भोर मे सो गया था। वह चौंककर उठ बैठा और हतबुद्धि की भाति निहारता रहा।

तब सतीश ने दोनो हाथों से बलपूर्वक सावित्री का मुह ऊपर उठाया और क्षणभर टकटकी बांधे निहारता रहा और उसकी दोनो आंखो से बहते हुए आंसू के स्रोत को अपने आग की तरह जलते हुए होठो से पोंछकर चुपचाप पडा रहा।

उसका मुह, उसकी ठुड्डी दोनो सावित्री के अश्रुप्रवाह से डूब जाने लगे। उस प्रवाह ने उसके प्रचण्ड ज्वर के ताप को भी कितना शीतल कर दिया, यह अन्तर्यामी से छिपा नही रहा, लेकिन ससार में उस बूढ़े बिहारी के विस्मय-विमुग्ध नेत्रो के अतिरिक्त उसका अन्य कोई साक्षी नही रहा।

बाहर शरत् का स्निग्ध प्रवाह उस समय प्रकाश से खिलखिला रहा था। सावित्री अपने को

सभालकर उठ बैठी और आचल से अपने नेत्र पोंछकर प्रियतम के मुह से आसू के चिन्ह यत्नपूर्वक पोछ डालने के बाद उठकर उसने कमरे के सब दरवाजे और खिडकिया खोल दी। खोलते ही सुनहरी किरणों सारा कमरा भर उठा।

विहारी के नेत्रों से उस समय आसू की बडी-बडी बूंदे झर रही थी। सावित्री अपने मुह का भाव सभालकर सहज कण्ठ से बोली, "डर क्या है विहारी, मेरे रहते उनको कोई भय नही है, बाबू अच्छे हो जायेगे। मैं बाबू के कपडे बदलकर विछौना बदल दू, तब तक तुम डाक्टर साहब को बुला लाओ।" यह कहकर वह फिर लौट गयी।

डिस्पेन्सरी के डाक्टर साहब आकर भली प्रकार सतीश की जांच करके मुह बिगाडकर बोले, "यह तो निमोनिया के लक्षण देख रहा हू। डर नही है, रोग अभी तक बढ़ा नही है।"

सान्त्वना देकर डाक्टर साहब अपने हाथो से दवा तैयार करने के लिए नीचे चले गये। सतीश ने पीडा से तनिक हसकर सावित्री को मुह की ओर देखकर कहा, "मैं तिलभर भी नहीं डरता।" यह कहकर तकिये के नीचे से चाभियों का गुच्छा निकालकर, दिखाकर उसने कहा, "इसे पहचान सकती हो सावित्री? अपनी इच्छा से किसी दिन जिसे तुमने आचल से बाधा था, आज मैं ही तुम्हारे आचल मे बाध देता हू।" यह कहकर सावित्री के आसू से भीगे आचल को खीचकर धीरे-धीरे चाभियों का गुच्छा उसने बाध दिया। फिर सतोष की सास लेकर करवट बदलकर वह लेटा रहा।

सावित्री पर विहारी का दृढ़ विश्वास था। उससे सान्त्वना पाकर पहले वह प्रफुल्ल हो उठा, लेकिन वह तो कोई लडका था नही। कुछ ही दिनो के बाद सावित्री का मुख देखकर वह मन ही मन डर गया। वह स्पष्ट देख रहा था इस कर्मनिष्ठ सहनशील रमणी के शान्त मुख पर एक पीली छाया क्रमश. गाढ़ी होती जा रही है।

आठ-दस दिनो के बाद एक दिन सन्ध्या को सावित्री को एकान्त मे पाकर उसने स्वाभाविक कण्ठ से पूछा, "माजी, इस बूढ़े को भुलावे मे डालकर क्या होगा? तुम्हारा वह कोमल हृदय जो कुछ सह लेगा, उसको क्या इस बूढ़े की हड्डी न सह पाएगी? इससे तो यही अच्छा है कि सब बातें मुझसे खोलकर कह दो, मैं देखू यदि कुछ उपाय कर सकू।"

सावित्री ने स्थिर रहकर कहा, "तुमको अभी तक मैंने बताया नही विहारी, लेकिन तुम्हारे नाम से उपेन बाबू के पास आज सवेरे मैं चिट्ठी लिख दी है। दो दिन प्रतीक्षा करके देखती हूं, यदि वह न आवें तो तुमको स्वय एक बार उनके पास जाना होगा विहारी।"

विहारी ने उत्कण्ठित होकर कहा, "मुझसे पूछे बिना यह काम तुमने क्यों किया मा?"

"क्यो विहारी, क्या वह न आवेगे?"

विहारी ने सिर हिलाकर धीरे से कहा, "वह आ भी सकते हैं, लेकिन एक बार मुझसे क्यों नही बता दिया मा?"

"क्यों विहारी?"

विहारी सकोच से चुप रह गया। बात कहना आवश्यक था, लेकिन वह अत्यन्त अपमानजनक बात उसके मुह से सहसा बाहर न निकल सकी।

सावित्री ने कहा, "इस समय उनका आना बहुत जरूरी है विहारी।"

विहारी ने बडे कष्ट से संकोच दूर करके कहा, "यह तो मैं जानता हू मा, लेकिन तुम्हारे उनके पास न रहने पर ससार के सब लोग यदि बाबू का विछौना घेरे रहें तो भी उनको बचाया न जा सकेगा, इस बात पर तुम विचार क्यों नही करती मां?"

सावित्री ने कहा, "मैंने सोचा है विहारी। मैं घर मे जहा ही हो, छिपी रहकर अपना काम करती रहूंगी, उपेन बाबू के आये बिना काम न चलेगा। इस विपत्ति मे भला-बुरा भी क्या मैं नही समझती हू? नही, विहारी, उनको आने दो।"

विहारी ने सिर हिलाते हुए कहा, "उपेन बाबू की बात तो मैं नही जानता लेकिन बाबू की बात जानता हूं। मैं मूर्ख अवश्य हू, लेकिन इन साठ वर्षों से तो संसार देख रहा हूं! कितने पुरुष तुमसे अधिक

बली-बुरी बात समझते हैं मा? इसे जाने दो, तुम्हारे उनके पास से इस बार बाबू को अच्छा न कर सकूंगा, यह बात मैं तुम्हारे पाव छूकर शपथ खाकर कह सकता हूं। ऐसा कार्य तुम मत करो, तुम मेरे बाबू को छोडकर और कही भाग न जाना।"

यह बात बिहारी की अपेक्षा सावित्री कुछ कम जानती थी, ऐसी बात नहीं है, लेकिन वह मौन रही। उसको अपने पास न पाने पर सतीश की विकलता कितनी बढ जाएगी इसे सतीश ही जाने, लेकिन इस भयकर रोगशय्या पर पडे रहने की दशा में सतीश को नेत्रों से ओझल करके सावित्री स्वय भी कैसे जीवित रह सकेगी? उससे और सतीश से, उपेन की उसके प्रति घृणा छिपी नही थी। उनके आने को छिपा ही रखना होगा, इसमे तनिक भी सन्देह नही है। इन सभी बातो पर उसने मन ही मन विचार करके देख लिया था। लेकिन जिसके कारण इतने दिन उसने इतना कष्ट सहन किया है, उसके कारण यह दु ख भी सहेगी, यह सोचकर ही उसने सतीश की बीमारी का पूरा विवरण उपेन्द्र के पास लिख भेजा था, आने के लिए अनुरोध भी किया था।

सावित्री ने दृढ कण्ठ से कहा, "नही बिहारी, यह मैं न होने दूगी। यदि वे परसो तक न आयेगे तो तुमको स्वय जाकर उनको लाना होगा।"

बिहारी ने मलिन मुख से कहा, "यह बात तुम क्यो कह रही हो मा। मैं हू नौकर, जो आज्ञा होगी, मुझे करना पडेगा। लेकिन मैं भी तो मनुष्य हू। चोर की भाति तुम्हारा छिपा रहना यदि मैं किसी दिन सह सकू तो तुम मुझे गाली न दे सकोगी मा, यह मैं पहले ही बता देता हूं।" यह कहकर वह उदास चित्त से चला गया।

लेकिन सावित्री की वह चिट्ठी उपेन्द्र को मिली ही नही। पिता और माहेश्वरी के बार-बार के अनुरोध से वह एक महीना पहले अपनी इच्छा के बिलकुल ही विरुद्ध हवा-पानी बदलने के लिए पुरी जाने को बाध्य हुए थे। वहा किसी से परिचय न रहने के कारण प्रथम रात्रि तो उन्हे एक छोटे से होटल मे काटनी पडी थी। इच्छा थी कि दूसरे दिन सबेरे कोई अच्छा स्थान ढूढ़ लेगे। लेकिन होटल के मालिक भुवन मुखर्जी ने उनकी पूरी आवभगत की, अलग कोठरी मे बिछौना ठीक करा दिया और विश्वास दिलाया कि जितने दिन चाहे यहा रहने पर भी, सेवा मे कोई त्रुटि न होगी।

सबेरे एक प्रौढ़ा स्त्री कमरे मे झाडू देने आयी। उपेन्द्र का बार-बार निरीक्षण करके अन्त मे उसने झाडू एक ओर फेंक दी और बोली, "बाबू को क्या कोई बीमारी हुई थी? बहुत ही निर्बल देख रही हू। पहले का वह चेहरा नही है, शरीर का वह रग भी नही है।"

उपेन्द्र ने आश्चर्य के साथ पूछा, "तुम क्या मुझे पहचानती हो?"

उस स्त्री ने कहा, "मैं तो मोक्षदा हू, आपको नही पहचानती?"

उपेन्द्र को स्मरण आ गया कि यह वही मोक्षदा है जो बहुत दिन पहले सतीश के मकान मे नौकरी करती थी, उन्होने कहा, "तुम यहा नौकरी करती हो?"

मोक्षदा ने लज्जित होकर कहा, "नही...हा...हा. एक तरह की नौकरी ही तो है। मुखर्जी ने कहा था अब कलकत्ता में रहने से क्या लाभ? चलो, किसी तीर्थस्थान मे चलकर रहो। जो भी हो एक होटल खोलकर . ।"

उपेन्द्र ने बीच मे रोककर कहा, "होटल अच्छी तरह चल रहा है न?"

उनकी विरक्ति मोक्षदा से छिपी न रही। उसने कहा, "यो ही चल रहा है। बाबू, इस उम्र मे मुझे नौकरी क्यो करनी होगी, और मुखर्जी का आश्रय ही कैसे छोड देती। सच कहा जाय तो एक तरह से मैंने ही लडकी को पाला-पोसा था। वह मुझे मौसी कहकर पुकारती थी, सच्ची मौसी की तरह मैंने उसे गोद मे सदा रखा था, इस बात को कौन नही जानता। सावित्री ने कहा, "मौसी, मुझसे यह सब न होगा।' यही सही। मैंने बाबू लोगों के मेस मे नौकरी लगा दी। वे लोग उसे नौकरानी नही समझते थे। घर की मालकिन की तरह मानते थे। न वह जाती, और न मुझे यह सब करना पडता। लेकिन जो कुछ भी कहो, हम लोगों के छोटे बाबू के ही कारण आज मुझे इतना दु ख है।"

उपेन्द्र ने उत्सुक होकर पूछा, "छोटे बाबू कौन? सतीश?"

मोक्षदा ने सिर हिलाकर कहा, "हां, छोकरी ने किस दृष्टि से छोटे बाबू को देखा कि उसके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग दिया? और इतना ही नहीं, छोटे बाबू को उसने अपना शरीर छूने भी नहीं दिया। विपिन बाबू लखपती जमींदार हैं। मेरे डेरे पर दिन-रात दौड़-धूप मचाकर पांवों में तलवे तक घिसते रहे। सोना-चांदी के जड़ाऊ गहनों के लिए दस हजार रुपये रख देना चाहा, लेकिन छोकरी ने उनका मुंह तक भी नहीं देखा। कैसा तेज उस लड़की के चेहरे पर दिखाई पड़ रहा भैया, दस हजार रुपये की माया को फेंककर घर-द्वार , आवश्यक सामान वस्त्र तक छोड़कर एक साड़ी पहिने चली गयी, और चेतला के किसी एक ब्राह्मण के घर छः महीने तक नौकरी करती रही। वहां काम करते-करते हड्डी पसली तक निकल आयी। अन्त में वह कहां चली गयी, दुर्गा माता ही जानती हैं, अभागिनी मर गयी या जीती है!" यह कहकर मोक्षदा ने अपने पहले की स्मृति के आवेग से आंचल से आंखें पोंछ डालीं।

उपेन्द्र मौन होकर उसकी ओर निहारते रहे।

मोक्षदा ने आंखें पोंछकर रोने के स्वर से पूछा, "हां बाबू, छोटे बाबू अब कहां हैं? एक बार भेंट हो जाती तो मैं उनसे पूछती, उसका कोई समाचार जानते हैं या नहीं?"

उपेन्द्र ने मृदु स्वर से कहा, "सतीश इस समय कहां है यह मैं भी नहीं जानता। सुना है अपने गांव के मकान पर है। अच्छा, यह सावित्री नाम की औरत कौन है मोक्षदा?"

मोक्षदा एक ही क्षण जल-भुनकर बोली, "कौन है? कुलीन ब्राह्मण की लड़की है। बाबू! असल कुलीन लड़की है। नौ वर्ष की उम्र में विधवा होकर घर में ही रहती थी। वही मुंहजला तुझसे ब्याह करूंगा, राजरानी बनाऊंगा, कहकर फुसलाकर निकाल लाया, अन्त में हाथी की तरह उसे फेंककर भाग गया। मैं ही ऐसी हूं कि इसका मुंह देखती हूं— नहीं तो वह ब्राह्मण नहीं चमार है। चमार के हाथ का पानी हम पी सकते हैं, पर उसके हाथ का नहीं।"

उपेन्द्र समझ न सके कि वह क्या कह रही है। पूछा, "किसकी बात कह रही हो मोक्षदा?"

मोक्षदा ने उद्धत भाव से कहा, "मुंहजला भुवन मुखर्जी। नहीं तो तीनों लोक में ऐसा चमार दूसरा कौन है? यही उसकी बड़ी बहिन का पति है, इसी का ऐसा काम!"

उपेन्द्र ने अत्यन्त आश्चर्य में पड़कर पूछा, "जिनका यह होटल है वे ही?"

मोक्षदा ने कहा, "हां बाबू, यही दरिद्र बदमाश आदमी।" इसके बाद अनुपस्थित मुखर्जी को सम्बोधन कर कहने लगी, "लेकिन तू उसका क्या कर सका। अथाह सागर में तूने उसे डुबो दिया, उसके अतिरिक्त किसी दिन उसका शरीर क्या तू छू सका? ले आकर, आज नहीं, कल करके एक महीना बिताकर जिस दिन तूने कहा कि ब्याह नहीं होगा, उसी दिन मुंह पर लात मारकर उसने तुझे दूर किया। नादान लड़की थी, बुद्धि कम थी, तो भी क्या, फिर कभी उसके घर की चौखट तक भी तू लांघ सका। वह तो कोई मोक्षदा नहीं थी कि दो-चार प्रेम की बातें कहकर भुलावे में डाल देता, दस हजार रुपये के जड़ाऊ गहनों को लात मारकर चली गयी।"

उपेन्द्र बड़ी देर तक मौन रहकर बोले, "अपने मुखर्जी को एक बार बुला सकती हो, दो बातें उनसे पूछूंगा?"

मोक्षदा ने कहा, "वह बाजार गया है।" फिर ठहरकर बोली, "बीच में एक दिन रास्ते में चक्रवर्ती महाराज से भेंट हो गयी। वह रोता था और कहता था, उस मेरी बेटी को सभी प्यार करते थे। जैसा रूप था, वैसा ही गुण था, वैसी दया-माया भी उसमें थी!"

उपेन्द्र ने पूछा, "चक्रवर्ती महाराज कौन हैं?"

मोक्षदा ने कहा, "वह बाबू लोगों के डेरे पर रसोई बनाते थे। सभी बातें जानते थे। बिहारी के मुंह से सुनकर सब बातें उन्होंने मुझसे कहीं। चेतला के एक ब्राह्मण के घर में काम करते समय बीमार पड़कर उसने छुट्टी मांगी। बाबू क्या सभी ब्राह्मण ऐसे निष्ठुर होते हैं? उसने कहा, 'तुम्हारी दवा में सात रुपये खर्च हुए हैं। तुम देकर जाओ।' उन रुपयों को चुकाने के लिए सावित्री पैदल ही सतीश बाबू के डेरे पर आयी। छोटे बाबू का स्वभाव सुन ऊंचा है। रुपया-पैसा मांगने पर वह जितना ही क्यों न हो, वह कभी 'नहीं' तो कहते ही नहीं। लेकिन उनका भाग्य ऐसा ही फूटा था कि उसी रात को कोई एक उनका

मुँहजला मित्र अपने परिवार के साथ आ गया। दिनभर के बाद स्नान करके मेरी बेटी ज्यो ही घर मे गयी, त्यों ही वे लोग आ पहुचे। इष्टमित्र आ गये थे, तो रातभर रह जाते! सो नही, क्रोध करके अपनी स्त्री का हाथ पकडकर वापस चले गये। छोटे बाबू तो स्तम्भित हो गये। लेकिन मेरी सावित्री बडी अभिमानिनी लडकी है। क्या वह अपमान सह सकती थी? पानी तक न पीकर बेटी जो चली गयी, फिर तो कोई उसकी खबर नही मिली।''

उपेन्द्र स्तब्ध होकर बैठे रहे। उस रात का निष्ठुर इतिहास नेत्रो के आगे स्पष्ट हो उठा और बार-बार यही ध्यान आने लगा, मोक्षदा की कही यदि आधी भी सच हो तो जिसके नाम से वह घृणा करते आये हैं, वह कैसी अद्भुत नारी है।

मोक्षदा अपने काम पर चली गयी, लेकिन उपेन्द्र वही चुपचाप गूंगे की तरह बैठे रहे। छः महीने पहले वह सब बातें सुनते भी नही थे। जो असत्य है, जो मिथ्या है, लेशमात्र भी कलंक के पास से कलुषित हैं, वह सर्वदा ही उनके लिए विषवत् त्याज्य है। सतीश को जो छोड़ सका है, मोक्षदा की बातो से उसकी आखों की पलके भारी हो गयी और दृष्टि धुधली हो गयी। उसका संगमरमर-सा शुभ्र हृदय पत्थर की तरह कठोर था, फिर क्यो आज एक अज्ञात नारी की कलंकित प्रणय-वेदना की कथा सुनकर उस निष्कलक शुभ्रता पर छाया आ पडी, इस पर विचार कर देखने से ज्ञात हो जाता है कि यह दुर्बलता उसी पत्थर के बीच दबी हुई थी। केवल सुरबाला जब उनकी आधी शक्ति हरण करके चली गयी, तब सुयोग पाकर ये ही सब विशाल झरने की भांति उसकी पत्थर सदृश छाती को भेदकर बाहर निकल आये हैं। सुरबाला उनको कितना शक्तिहीन बना गयी है, यह बात जाने लेने पर उपेन्द्र आज भयभीत हो जाते हैं।

लेकिन उस ओर उनका लक्ष्य नही था। वह केवल शून्य दृष्टि से सामने की ओर निहारते हुए बैठे रहे और किसी अनजान सावित्री के प्रेम का इतिहास उनकी सुरबाला की उन अनिर्वचनीय करुण दोनो आखों की भांति उनकी आखो पर आखे रखकर स्थिर हो गया।

उनको चेत हुआ भुवन मुखर्जी का कण्ठ-स्वर सुनकर। उसने आहट देकर कमरे में घुसकर कहा, ''बाबू, आपने क्या मुझे बुलाया था?''

उपेन्द्र ने कहा, ''बैठो। तुम सावित्री को जानते हो?''

मुखर्जी ने सिर झुकाकर कहा, ''हां, जानता हूं।''

''उसके सम्बन्ध में तुम जो कुछ जानते हो, मुझे बता सकते हो?''

''जी हा, बता सकूगा।'' यह कहकर इस निर्लज्ज मनुष्य ने अपने गम्भीर अपराध का इतिहास एक-एक करके बता दिया। अन्त मे बोला, ''मैं भी भले आदमी का लडका हू बाबू, लेकिन पहले यदि मैं उसे पहचान सकता, तो इस मार्ग में कदम रखकर रसोईदार ब्राह्मण का काम करके दिन बिताने न पडते। केवल मेरी यही धारणा है कि शरीर में प्राण रहते कोई भी उसका बिगाड न कर सकेगा।''

उपेन्द्र ने पूछा, ''उसके प्रति तुम्हारा क्या विचार है?''

मुखर्जी ने कहा, ''फिर भी मैं यह कह सकता हूं कि वह भ्रष्ट नही हुई है।''

उसको विदा कर उपेन्द्र पूर्ववत् निर्जीव मूर्ति की भांति बैठे रहे। केवल उनका मन लगातार यह कहकर उन्हें कोसने लगा, तुमने अच्छा नही किया उपेन, अच्छा नही किया। निरुपाय नारी इतने बड़े प्रलोभनों को अनायास ही जीतकर चली जा सकती है, उसका अपमान करने का तुम्हे अधिकार नही था।

उसी दिन अपराह्न में उपेन्द्र भुवन मुखर्जी के यहा से चले गये।

लेकिन किसी प्रकार भी समुद्र की जलवायु उन्हे खडा न कर सकी। ज्यो-ज्यों दिन चढ़ता जाता था आख-मुंह में जलन होने लगती थी, और ज्वर भी आ जाता था। और प्रतिदिन उन्हें तिल-तिल करके परलोकवासिनी पतिहीन सुरबाला के निकट ही ले जाने को बढ़ा जा रहा है. यही मानो वह अपने हृदय मे स्पष्ट अनुभव करने लगे।

इस प्रकार समुद्र-तट के इस निर्जन स्थान मे उनकी इस लोक की अवधि जब प्रतिदिन समाप्त होने लगी तब एक दिन प्रातः की डाक से बिहारी की चिट्ठी घर के पते से पुनः भेजी जाने पर उपेन्द्र के हाथ में आ पहुची।

जिसका स्मरण आते ही उनकी छाती में सूई चुभ जाने की भांति पीड़ा होने लगती थी, अपने उसी चिरकाल के मित्र का अपमान, उसके त्याग देने का दु ख उनके हृदय मे दिन-पर-दिन कितना बढ़ता जा रहा था, इसे केवल अन्तर्यामी ही जान रहे थे, लेकिन जब उसी मित्र की बीमारी का समाचार लेकर बिहारी के पत्र ने चिकित्सा और शुश्रूषाकी अभावपूर्ति का निवेदन किया, तब अनेक दिनों बाद उपेन्द्र के सूखे होंठों पर हंसी आ गयी। वह बेचारा तो जानता नही है कि जिसके जीवन के दिन अब गिने जाने की दशा पर आ पहुचे हैं, उसी के हाथ में एक और मनुष्य की सेवा का भार सौंपना चाहता है! फिर भी उपेन्द्र उसी दिन अपना सामान बाधकर पुरी से रवाना हो गये।

इकतालीस

ज्योतिष ने हाईकोर्ट से वापस लौटकर घर मे पाव रखते ही देखा कि सामने के बरामदे मे दो आरामकुर्सियो पर शशाक और सरोजिनी दोनो आमने-सामने बैठकर बातचीत कर रहे हैं।

शशाक उठ खडा हुआ और हसकर लापरवाही से बोला, "आज काम-काज कुछ जल्दी पूरा हो गया। मैंने सोचा कि यहा ही चाय पीकर एक साथ ही क्लब चले जायेंगे।"

"अच्छा, अच्छा!" कहकर ज्योतिष अपनी हसी को दबाकर घर के अन्दर चला गया।

सरोजिनी भैया के साथ अन्दर जाने की तैयारी करने लगी तो ज्योतिष घूमकर खडा हो गया और बनावटी भर्त्सना के स्वर मे बोला, "अतिथि को अकेला छोडकर, यह तेरी बुद्धि कैसी हो गयी है सरोजिनी?"

सरोजिनी लाल मुह किये फिर कुर्सी पर बैठ गयी। बहिन की यह लज्जा ज्योतिष की आखों से छिपी न रही।

मा के आदेश से उसे कचहरी से लौट आने पर कपडे बदलकर हाथ-मुंह धोकर जलपान करना पडता था। मां से भेंट होते ही उसने कहा, "शशाक आये हैं, आज जलपान की वस्तुए बाहर ही भेज दो ना।"

मा ने कहा, "अच्छा! सरोजिनी सम्भवत बाहर है?"

ज्योतिष ने सिर हिलाकर बताया। फिर कुछ चुप रहकर बोला, "अच्छा मा, ऐसा आदमी तुम्हारी समझ मे कही है, जिसमे कोई दोष न हो, केवल गुण ही गुण हो?"

इस प्रश्न को जगत्तारिणी प्रसन्नचित्त से ग्रहण न कर सकी। बोली, "क्यो तू मुझसे बार-बार यही बात पूछता रहता है ज्योतिष? मैं तो अनेक बार कह चुकी हू, अब मुझे कोई आपत्ति नही। तू अच्छा समझे तो उसके ही हाथ मे सरोजिनी को सौंप दे न।"

ज्योतिष ने कहा, "दोष के बिना कोई मनुष्य नही है मा। मैंने अनेक प्रकार से विचार करके देख लिया है, सरोजिनी दु खी न रहेगी। इसके अतिरिक्त वह बडी भी हो चुकी है। उसकी सम्मति के बिना काम करना भी उचित नही है।" यह कहकर उसने देखा कि सरोजिनी आकर धीरे-धीरे भैया की पीठ के पास खडी हो गयी है।

मा भण्डारघर के भीतर से ही बातें कर रही थी, इसीलिए कन्या के आने का उन्हे पता न चला। ज्योतिष की बात के उत्तर मे उन्होने विरक्ति के स्वर मे कहा, "यह बात तो मैंने कभी नही कही ज्योतिष, कि इस लडकी का ब्याह उसकी सम्मति के बिना ही हो। मेरी जो इच्छा थी, उसे जब तुम दोनों भाई-बहिनों ने मिलकर पूरा न होने दिया, तभी क्या लडकी के मन का भाव मैं नही समझ गयी बेटी। मैं सब समझती हू। समझकर ही तो मुह बन्द किये बैठी हू। अब मुझे झूठमूठ का उलाहना देना व्यर्थ है ज्योतिष।" यह कहकर वह जल-पान की वस्तुए सजाने लगी। सकोच से, लज्जा से सरोजिनी गड-सी गयी लेकिन मा को कुछ भी ज्ञात न हुआ। ज्योतिष के उत्तर देने के पूर्व ही वह अपनी बात की पुनरावृत्ति के रूप मे फिर कहने लगी, "जिसको देने से तुम्हारी बहिन सुखी रहे उसे ही दे दो बेटा। मेरी सम्मति अब बार-बार जानने की आवश्यकता नही है। मेरा मत है, तुमसे कहे देती हूं।"

बहिन के अत्यन्त सकोच से ज्योतिष स्वय बडा ही संकुचित हो रहा था। फिर जबरन मुसकराकर

बोला, "लेकिन मत प्रसन्न मन से देना चाहिए मा।"

जगत्तारिणी ने कहा, "प्रसन्न मन से ही दे रही हू बेटी, प्रसन्न मन से ही दे रही हू। मुझे अब तुम लोग तग मत करो।"

ज्योतिष ने क्षणभर मौन रहकर सोचकर स्थिर किया कि बात जब यहा तक पहुच गयी है तब मा की विरक्ति रहते भी आज ही इसका निर्णय कर लेना ठीक है। क्योंकि, उनके क्लब में लाइब्रेरी मे आजकल प्राय ही इस बात की चर्चा हो रही हे। पर उचित क्या होगा यह बात भी समझ मे नही आ रही है। घर मे यह बात प्राय ही उठ जाती है, लेकिन इसी प्रकार रुक जाती है—आगे बढने नही पाती। शशाक को भी इस तरह अनिश्चित अवस्था मे बहुत दिनो तक छोडकर रखा नही जा सकता। इसीलिए वर-कन्या को सुनिश्चित इच्छा के विरुद्ध मा की स्पष्ट अनिच्छा को ज्योतिष ने सिर पर धारण करके जो कुछ भी हो, इसी क्षण निश्चय कर डालने के लिए कहा, "तो मैंने सोच लिया है मा कि दो-चार इष्ट मित्रो के सामने तक रविवार को ही यह बात पक्की हो जाए। क्या कहती हो?"

मा ने कहा, "अच्छा तो है।"

सरोजिनी धीरे-धीरे अपने कमरे मे चली गयी।

रविवार को सवेरे से ही ज्योतिष का बैठकखाना इष्टमित्रो से भरता जा रहा था। नवदम्पती का विवाह-सम्बन्धी बात पक्की हो जाने पर वही दोपहर के भोजन का भी आयोजन किया गया था। आज शशाक की वेश-भूषा में ही केवल विशेष सजावट नही दिखाई पड रही थी, बल्कि उसके अग-अंग से ऐसी कुछ श्री फूट उठी थी, जिससे वह अत्यन्त सुन्दर दिखाई दे रहा था। कई स्त्रियाँ भी उपस्थित थी, लेकिन उपस्थित नही थी केवल सरोजिनी। बेयरे से बुलवाने के बाद ज्योतिष स्वय जाकर उसके कमरे के दरवाजे पर कराघात करके शीघ्र आने के लिए अनुरोध कर आया था। किसी दूसरे दिन उसके इस व्यवहार की गणना अपराध मे की जा सकती थी, लेकिन आज उसे क्षमा पाने का अधिकार है, जानकर भी अतिथिगण केवल स्नेहपूर्ण कौतुक से ज्योतिष को डाट रहे थे।

उसके बाद अनेक बुलाहट-पुकार आने पर लगभग दस बजे जब सरोजिनी उपस्थित हुई तब उसका मुख देखकर सभी आश्चर्य मे पड गये। उसका मुह पीला पड गया था, नेत्रो के नीचे स्याही छा गयी थी, मानो सारी रात वह एक क्षण भी नही सोयी। ज्योतिष निर्वाक् होकर केवल बहिन के मुख की ओर निहारता हुआ बैठा रहा। बहिन की आकृति देखकर वह मानो हतबुद्धि हो गया। लेकिन इसकी अपेक्षा भी सौ गुना बडा विस्मय क्षणभर बाद ही उसके भाग्य मे बदा था, इसे वह जानता नहीं था। वह विस्मय मानो उपेन्द्र की छाया लेकर घर के अन्दर आ गया। ज्योतिष ने चौंककर कहा, "उपेन्द्र हो क्या?"

सरोजिनी ने कहा, "उपेन्द्र बाबू!"

वस्तुतः दिन का समय न रहता तो सम्भवत. ये लोग पहचान ही न सकते। सहसा अपनी आंखों को मानो विश्वास नही होता, मानो सोचा ही नही जाता कि मनुष्य का चेहरा इतना बदल सकता है। उपेन्द्र एक कुर्सी पर बैठकर बोले, "शरीर अच्छा नहीं है, पुरी से आ रहा हू। आज यहा क्या है?"

सरोजिनी ने आकर उपेन्द्र का हाथ अपने हाथ में लेकर उन के मुंह की ओर देखकर कहा, "क्या कोई बीमारी हो गयी है उपेन बाबू?" कहते ही उसकीदोनों आंखें अश्रुपूर्ण हो गयीं। उपेन्द्र ने अपने मुरझाए हुए होंठों पर हँसी लाकर कहा, "बीमारी तो कोई नही है बहिन।"

उपेन्द्र ने आज यही पहले-पहल सरोजिनी को बहिन कहकर सम्बोधित किया। सरोजिनी ने झटपट आंखों के आंसू पोंछकर कहा, "चलिए, उस कमरे में चलकर बैठें।" यह कहकर उनका हाथ पकडकर उस जनाकीर्ण कमरे से वह धीरे-धीरे बाहर चली गयी और उसके साथ ही इस कमरे का आनन्दोत्सव मानो बुझ-सा गया। ज्योतिष ने आकर जब सरोजिनी से कहा, "उपेन्द्र थोड़ी देर तक विश्राम करे, तुम एक बार उस कमरे मे तो चलो।"

सरोजिनी ने सिर हिलाकर उसी क्षण कहा, "नही, आज रहने दो।"

जगत्तारिणी ने समाचार पाकर कमरे में घुसकर रोने के स्वर में कहा, "कैसे इतना दुबला हो गया।

लेकिन और कही तुम्हारा रहना न होगा उपेन, मेरे ही यहां रहकर डाक्टर को दिखाना पडेगा। नही तो यह बीमारी अच्छी न होगी।"

सरोजिनी ने जोर देकर कहा, "हां उपेन भैया, तुमको हम लोगों के यहा ही रहना होगा।" उनने भी आज ही पहले-पहल उपेन्द्र को भैया कहकर पुकारा। उपेन्द्र चिकित्सा कराने के लिए पुरी से चले गये हैं, यह बात पूछे विना ही सब लोग समझ गये थे।

उपेन्द्र ने हसकर कहा, "वापस लौटकर हो सका तो आप लोगों के ही यहा रहूंगा, लेकिन आज मुझे एक घण्टे के भीतर ही छोड देना होगा।"

जगत्तारिणी ने आश्चर्य से कहा, "आज ही, इसी क्षण? क्यों उपेन?"

उपेन ने सतीश की बीमारी का उल्लेख करके उसके दातव्य का, चिकित्सालय आदि का समाचार जितना जानता था, सुनाकर जेब से बिहारी की चिट्ठी को निकालकर सरोजिनी के हाथ में देकर कहा, "साढ़े ग्यारह बजे ट्रेन है, जो कुछ भी हो थोडा-सा खा-पीकर उसी से मुझे जाना पडेगा। यदि लौटकर आ सका तो आप लोगो के ही आश्रय में रहूंगा।"

जगत्तारिणी का मातृ-हृदय पिघल उठा। उनके नेत्रों में फिर आसू दिखाई पडे। सतीश को वह मन ही मन अत्यन्त स्नेह करती थी। वही सतीश आज बीमार पडा है लेकिन उपेन्द्र यह शरीर लेकर उनकी सेवा करने चला है सुनकर उनकी छाती फटने लगी। वह आखे पोंछते-पोंछते उपेन्द्र के खाने की व्यवस्था करने के लिए कमरे से बाहर चली गयी।

सरोजिनी ने चिट्ठी को आदि से अन्त तक दो बार पढ़ डाला, फिर उसे लौटाकर वह कुछ क्षण तक स्तब्ध होकर बैठी रही। उसके बाद बोली, "तुम्हारे साथ मैं भी चलूंगी उपेन भैया।"

उपेन्द्र ने कहा, "इतना दिन चढ़ आने पर व्यर्थ ही स्टेशन जाकर क्या करोगी बहिन?"

सरोजिनी ने कहा, "स्टेशन नही, सतीश बाबू के घर। मुझे तुम अपने साथ ले चलो।"

उपेन्द्र ने अवाक् होकर कहा, "पागल हो गयी हो क्या? तुम वहा कैसे जाओगी?"

"तुम्हारे साथ।"

उपेन्द्र ने कहा, "छि.! यह क्या हो सकता है? ये लोग तुमको क्या जाने देंगे? और तुम भी वहा क्यो जाओगी?"

सरोजिनी ने दृढता से सिर हिलाकर केवल कहा, "नही, मैं जाऊंगी अवश्य।" यह कहकर वह चली गयी

ऑफिस के कमरे मे कोच पर बैठे ज्योतिष एकान्त मे शशांक से बातचीत कर रहा था, सम्भवत इसी विषय पर आलोचना हो रही थी। सरोजिनी ने धीरे-धीरे जाकर भैया की पीठ के पास खडी होकर उनके कन्धे पर हाथ रखा। ज्योतिष चौंक उठे, मुह फेरकर बोले, "क्या है रे सरोजिनी?"

सरोजिनी ने भैया के कानो के पास मुंह ले जाकर धीरे से कहा, "सतीश बाबू बहुत बीमार हैं।"

ज्योतिष ने सिर हिलाकर दु खित होकर कहा, "यही तो मैंने भी सुना है। उपेन इसी ग्यारह बजे की गाडी से जा रहा है क्या?"

सरोजिनी ने कहा, "हां, मैं भी उनके साथ जाऊंगी।"

ज्योतिष ने चौंककर कहा, "तुम जाओगी? कहा जाओगी?"

सरोजिनी ने कहा, "वही।"

ज्योतिष उसकी ओर घूमकर बैठ गया, बोला, "वहां कहां? सतीश के घर पर क्या?"

सरोजिनी ने कहा, "हा।"

शशाक दोनो आखें विस्फारित करके निहारता रह गया। ज्योतिष ने उत्तेजित स्वर से कहा, "तू पागल हो गयी क्या रे? तू क्यों जाएगी?"

सरोजिनी ने शान्त दृढ़ कण्ठ से कहा, "मैं न जाऊंगी तो कौन जाएगा? नही भैया, वे बहुत बीमार हैं। मुझे जाना ही होगा।" और कुछ वह बोल न सकी, रुलाई से गला रुंध जाने के कारण वह भैया के कन्धे पर मुह छिपाकर सिसक-सिसककर रोने लगी।

ज्योतिष के नेत्रो पर [illegible] बहुत दिनो का एक काला परदा [illegible] प्रचण्ड आंधी के आ जाने से पलभर मे फटकर उड गया। कुछ क्षण वह मौन बैठा रहा, [illegible] बहिन के माथे पर हाथ रखकर [illegible] सहलाते हुए बोला, "अच्छा, जा। साथ मे दासी और दरबान जाये। वह [illegible] दशा मे रहता है पहुचकर तुरन्त ही तार भेज देना। कल-परसों तक मैं भी डाक्टर को साथ लेकर आ जाऊंगा।" यह [illegible] कर उसने ज्योही उसको सामने खीच लाने की चेष्टा की त्योंही सरोजिनी दोनो हाथो से मुह ढककर कमरे से दौडता [illegible] भाग गयी।

शशाक ने मूढ़ की भांति निहारते रहने के वाद वही प्रश्न किया, "सतीश बाबू बीमार हैं तो वह क्यो जाएगी, यह तो मैं समझ नही सका ज्योतिष बाबू? यह सब क्या वात है, बताइए तो?"

ज्योतिष के कानों मे यह प्रश्न पहुचा या नहीं, बताना कठिन है। वह मानो स्पष्ट देखकर आवेश मे उठने वाले मनुष्य की भांति कहते-कहते बाहर चला गया, "उसके लिए यह इतनी व्याकुल हो उठेगी यह तो मैंने स्वप्न मे भी नहीं सोचा था। वह कहती है एक तरह, करती है कुछ दूसरी तरह—ये सब कैसी बाते हैं।"

स्टेशन से उतरकर उपेन्द्र ने जिस भद्र युवक से सतीश के गांव का मार्ग पूछा—भाग्य से यह उसी की डिस्पेन्सरी का कम्पाउण्डर था। उसके किसी काम से स्टेशन आया था। अपने बाबू के ही मकान पर ये लोग जाने वाले हैं, सुनकर, वह दौड-धूप करके केवल एक पालकी सरोजिनी के लिए ठीक कर सका और उपेन्द्र से बोला, "वह महेशपुरी दिखाई पड रहा है, चलिए न बातचीत करते-करते पैदल ही चले! जाने मे आध घण्टा भी न लगेगा। नही तो बैलगाडी से जाने मे बहुत देर लगेगी।"

उपेन्द्र की अवस्था पैदल चलने की नहीं थी। लेकिन बैलगाडी के भय से उन्होने पैदल चलना ही स्वीकार कर लिया।

सरोजिनी को पालकी मे बैठाकर और दरबान तथा दासी को उसके साथ करके उपेन्द्र उसके साथ रवाना हो गये। उसकी अवस्था सत्रह—अठारह वर्ष से अधिक नही थी—खूब चतुर और फुर्तीला था। नाम एककौडी था। उसे आशा थी, अपने पास दिखे डाक्टर साहब के साथ और एक साल तक रहने से वह भी अलग प्रैक्टिस कर सकेगा। उसके मत से डाक्टरी कोई विद्या नही है, केवल हाथ मे थोडा-सा यश रहना चाहिए। नहीं तो जिसे बचना है, वह बचता है जिसको मरना है, वह किसी प्रकार भी नही बचता।

उपेन्द्र ने उससे कहा कि इस विषय मे उसके साथ उसका कोई मतभेद नही है, इसके बाद उन्होने पूछा, "तुम्हारे बाबू अब कैसे हैं?"

एककौडी ने कहा, "बाबू? आज बाईस दिन हुए, वह तो अच्छे हो गये हैं। महाशय, सभी दवाइया मैंने ही दी है।" कहकर उसने कई बार अपनी छाती आप ही ठोकी।

उपेन्द्र ने बहुत कुछ निश्चिन्त होकर पूछा, "बीमारी क्या बहुत बढ़ गयी थी एककौडी बाबू?"
एककौडी ने कहा, "बहुत। वह तो मर ही गये थे। मांजी आ नहीं जाती तो वह शिवजी के लिए भी असाध्य रोग था। होगा नही महाशयजी, दिन-रात थाको बाबा के साथ रहकर शराब और गाजा। कालीजी को सिद्ध कर रहे थे न? इन सब बातो पर क्या हम डाक्टर लोग विश्वास करते हैं महाशय! हम लोग हैं साइण्टिफिक मैन। लेकिन माजी ने आते ही थाको बाबा की बावागिरी खतम कर दी, खीचकर उनका त्रिशूल फेंक दिया। उस कमबख्त ने कई दिनो तक क्या कम उपद्रव किया? विश्वास कीजिए, सबको बाबू मारने-खदेडने दौडता था। एक दिन साधारण-सी बात पर मेरे ऊपर ऐसा दांत कटकटा दिया महाशय! लेकिन मैं तो बहुत भला आदमी हू, किसी से मैं झगडा-विवाद करना नही चाहता। नही तो दूसरा कोई होता तो उस बदमाश का सिर काट लेता।" कहकर एककौडी ने अपना छाता आकाश मे उछाल दिया।

उपेन्द्र ने आश्चर्य में पडकर कहा, "मांजी कौन हैं?"

एककौडी ने कहा, "यह क्या मैं जानता हूं महाशय! सभी लोग कहते हैं मांजी, मैं भी कहता हू माजी।"

उपेन्द्र ने कहा, "उनको तुमने देखा है?"
एककौडी ने कहा, "हा, मै एक प्रकार से देखता ही तो हू!"
उपेन्द्र ने पूछा, "उनकी उम्र क्या होगी बता सकते हो?"
एककौडी ने सोचकर कहा, "सम्भवत: चालीस-पचास की होंगी नही तो दूसरा कोई क्या बाबू को नियन्त्रण मे रख सकता था महाशय? डाक्टर साहब तो कहते हैं कि वह न आती तो सब समाप्त हो चुका था।"

एककौडी के साथ उपेन्द्र जब सतीश के घर पहुचे तब दिन डूब ही रहा था। सरोजिनी पहले ही पहुच गयी थी। फाटक के बाहर बरगद के पेड के नीचे उनकी पालकी रखवाकर दरबान प्रतीक्षा कर रहा था। सामने ही दातव्य चिकित्सालय था, वहा लोगो की बहुत भीड लगी हुई थी।

एककौडी सबको साथ लिए नीचे के बैठकखाने में बिठाकर बिहारी को बुलाने गया, लेकिन उससे भेट नही हुई। डाक्टर साहब भी बाहर रोगी देखने के लिए गये हुए थे। सभी लोग भीड लगाकर उसके लिए प्रतीक्षा कर रहे थे।

उपेन्द्र को इन माजी के विषय में अत्यन्त सन्देह था, इसीलिए सरोजिनी को वहीं रुकने के लिए कहकर वह सीधे सीढ़ियो से ऊपर चढ़ गये।

सतीश बिछौने पर सो रहा था। उसके सिरहाने बैठकर सावित्री ध्यान से कागज देख रही थी। उस ओर से खुली खिडकी से सूर्यास्त की लाल आभा फर्श पर बिखर रही थी।

ऐसे ही समय में दरवाजे का भारी परदा हटाने की आवाज सुनकर सावित्री ने मुह ऊपर उठाकर देखा एक अपरिचित भले आदमी आ गये हैं।

घबराहट के साथ माथे का घूघट ऊपर खींचकर उठकर खडी होने की चेष्टा करते ही आगन्तुक ने निकट आकर कहा, "आप उठिए मत, मैं हू उपेन। आप सावित्री हैं न!"

सावित्री ने सिर हिलाकर जताया, "हा।" लेकिन भय से, लज्जा से, संकोच से वह मानो मर-सी गयी।

उपेन्द्र ने पूछा, "सतीश सो रहा है? अब कैसा है?"
सावित्री ने पहले की ही तरह सिर हिलाकर बताया, "अच्छा है।"

उपेन्द्र तब धीरे-धीरे आकर पलग के कोने पर बैठ गये। अपना कर्तव्य उन्होने पहले ही निश्चित कर लिया था। बोले, "मुझे वह चिट्ठी आपने ही लिखी थी, यह मैं अब समझ गया हूं। मुझे आने के लिए लिखकर अपने सुख-दु ख , अपने भले-बुरे को आपने कितना तुच्छ बना दिया था, आप यह मत समझिए कि इन बातो को मैं समझता नही हू। यह तो अपना परिचय है।"

सावित्री को ऐसा जान पडा मानो वह स्वप्न देख रही हो। यह मानो कोई दूसरा ही व्यक्ति है, सतीश का वह उपेन भैया नही है।

उपेन्द्र ने थोडी देर तक मौन रहकर कहा, "तुमसे मैं उम्र मे बडा हू। तुमको मैं सावित्री कहकर पुकारूगा। तुम मुझे भैया कहकर पुकारना। आज से तुम मेरी छोटी बहिन हो।"

सावित्री ने चुपचाप उठकर उपेन्द्र के पांवो के पास झुककर प्रणाम किया और दोनों हाथ बढ़ाकर उपेन्द्र के जूते का फीता खोलते-खोलते सिर झुकाये हुए पूछा, "आने में इतनी देर क्यो हुई? चिट्ठी क्या ठीक समय पर नही मिली?"

उपेन्द्र ने सावित्री के काम मे बाधा नहीं दी। सहज भाव से बोले, "नही बहिन, मिली नहीं। परसों पुरी में तुम्हारी चिट्ठी पाकर चला आ रहा हू लेकिन तुमको एक बहुत ही कठिन काम करना है बहिन ..!" "यहीं पर उपेन्द्र के मुह की बात रुक गयी।

सावित्री ने जूते खोलकर एक ओर रख दिये। मोजा खोलते-खोलते उसने पूछा, "कौन काम है भैया?"

फिर भी उपेन्द्र चुप ही रहे। इसके बाद मानो जोर लगाकर भीतर का संकोच दूर करके बोले, "लेकिन तुम्हारे अतिरिक्त और किसी मे यह काम करने की शक्ति नही है। इस काम को एक और कर

सकती थी, वह थी सुखाला।"

सावित्री चुपचाप प्रतीक्षा कर रही है, देखकर उपेन्द्र ने कहा, "सरोजिनी का नाम सुना है?"

सावित्री ने सिर हिलाकर कहा, "सुना है।"

"सम्भवत: सब कुछ सुन चुकी हो?"

सावित्री ने उसी प्रकार सिर हिलाकर बताया, उसे सब कुछ मालूम है।

तब उपेन्द्र ने धीरे-धीरे कहा, "सतीश की बीमारी की बात सुनकर उसे किसी प्रकार भी रोका नही जा सका। मेरे साथ वह भी चली आयी है। नीचे के कमरे मे बैठी हुई है। उसका कोई उपाय करो बहिन।"

सावित्री शीघ्रता से उठ खडी हुई। बोली, "वह आयी हैं। मैं अभी जाकर... लेकिन मैं क्या उसके पास जा सकती हू भैया?"

इस सकेत को उपेन्द्र समझ गये। दोनो आखे फैलाकर मुक्त कण्ठ से बोल उठे, "तुम जा नही सकती? मेरी छोटी बहिन क्या ससार मे किसी भी स्त्री से छोटी है कि कही भी उसे सिर ऊचा करके खडी रहने मे सकोच होगा? मेरी बहिन होना क्या संसार में साधारण परिचय है बहिन?"

सावित्री और न रुकी। पलभर मे उसका सिर उपेन्द्र के दोनो पावो पर गिर पडा। बार-बार उन दुबले-पतले दोनो पावो की धूल सिर पर चढ़ाकर जब वह उठ खडी हुई तब उसके मुह पर आवरण नहीं था, दोनो आखो से आंसू झर रहे थे। आसू से भीगे हुए उस मुख पर नारी चरित्र की वृहत् महिमा उपेन्द्र टकटकी बाधे निहारने लगे।

आखे पोछकर जब सावित्री कमरे से बाहर आयी तब उपेन्द्र ने पीछे से कहा, "जिसको बहिन कहकर अपना परिचय दोगी, उससे कहना कि हम दोनों भाई-बहिन ने आज तक कभी ससार मे छोटा काम नही किया है।"

सावित्री के चले जाने पर उन्होने सोए हुए सतीश की ओर देखकर पुकारा, सत्तू! ओ सतीश!"

सतीश की नीद टूट गयी। हडबडाकर वह उठ बैठा। आखे मलकर निहारता रहा।

"तेरा उपेन भैया हू, मुझे तू पहचान नही रहा है?"

"उपेन भैया!" सतीश विह्वल नेत्रो से निर्वाक् होकर निहारता रहा।

"क्यों रे, अभी तक तू मुझे पहचान न सका?"

सतीश ने मानो नीद के नशे मे बात कही। मानो अभी तक उसका नशा टूटा नही था—इस प्रकार के रुख से बोला, "पहचान गया। तुम आ गये उपेन भैया!"

"हा भाई, मैं आ गया हू।"

"तो अपने पावो को एक बार ऊपर उठाओ न उपेन भैया। बहुत दिनो से तुम्हारे पावो की धूल सिर पर मैं चढ़ा नही सका हूं।"

उपेन्द्र ने दोनो हाथ बढ़ाकर अपने मित्र को छाती से लगा लिया। कुछ देर तक अचेतन मूर्ति की भांति दोनो एक-दूसरे की छाती से लगे रहे। फिर उपेन्द्र ने धीरे-धीरे कहा, "अब और देरी मत कर सतीश, जरा जल्द रोगमुक्त हो जा भाई, मेरे बहुत से काम तेरे लिए पड़े हुए हैं।"

"कौन काम उपेन भैया?" कहकर सतीश ने किसी के पावो की आहट सुनकर पीछे की ओर देखा तो स्तम्भित हो गया। सावित्री का हाथ पकडे सरोजिनी चली आ रही थी।

वह एक बार उपेन्द्र की ओर देखकर फिर एक बार अच्छी तरह आखें मलकर इन दोनो रमणियों के मुह को चुपचाप निहारता रहा। वह अपनी आखो पर विश्वास नही कर पा रहा है, यह बात उपेन्द्र और सावित्री दोनो ही समझ गये।

सरोजिनी क्षणभर सतीश के ककाल जैसे पीले मुख की ओर देखकर जल्दी से आगे बढ़कर उसके पावो के पास बिछौने पर औंधी पडकर अपनी रुलाई के वेग को रोकने लगी। किसी ने कोई बात नही कही। लेकिन इस रुलाई के भीतर बडी वेदना और क्षमा-याचना थी, वह किसी को समझना शेष नही रहा। सतीश चुपचाप मूर्ति की भांति बैठा रहा। उसके हृदय का एक अंश अव्यक्त आनन्द की बाढ़ से

जिस प्रकार तरंगित हो उठने लगा, दूसरा अंश उसी प्रकार कठिन समस्या के घात-प्रतिघात से भीत और क्षुब्ध हो उठा। बहुत देर किसी के मुह से कोई बात नही निकली। सन्ध्या के अन्धकारपूर्ण शान्त कमरे में केवल सरोजिनी की दुर्निवार रुलाई का वेग उसके प्राणपण के दबा रखने के कारण रह-रहकर और भी उच्छ्वसित हो उठने लगा। वह नीरवता भग हुई उपेन्द्र के कण्ठ-स्वर से। उन्होने सरोजिनी के माथे पर धीरे-धीरे अपना दाहिना हाथ फेरकर कहा, "अपराध चाहे जिससे भी क्यो न हुआ हो सतीश, मेरी इस बहिन को तू आज क्षमा कर दे। उसके हृदय के भीतर के अनेक दिनो से सञ्चित दु खो ने आज तेरी सेवा के लिए ही मेरे साथ उसे भेज दिया है। लेकिन सावित्री बहिन, इस प्रकार मुह उदास बनाये खडी रहने से तो काम ही न चलेगा। तुम्हारे इस मरणोन्मुख भाई के अनेक उत्पातो और बोझो को आज से तुमको ही सहन करना पड़ेगा बहिन। आओ, मेरे पास आकर बैठो।'

सावित्री का नाम सुनकर सरोजिनी लज्जा, पीड़ा, वेदना सब कुछ भूलकर मुह ऊपर उठाकर खडी हो गयी, इतनी देर तक वह उपेन्द्र की कोई आत्मीय ही समझ रही थी। सावित्री चुपचाप आकर उपेन्द्र के निकट भूमि पर बैठ गयी। उपेन्द्र ने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा, "तुम यह खयाल मत करना बहिन कि तुमसे क्षमा मागकर मैं तुम्हारी अमर्यादा करूगा। लेकिन सतीश, तू मुझे क्षमा कर दे। तेरा जितना अपमान, जितना अनिष्ट मैंने किया है, सब भूल जा भाई।"

सतीश क्या कहता। वह अवाक् होकर टकटकी लगाये निहारता रहा।

उपेन्द्र ने म्लान हसी हंसकर कहा, "मैं समझ गया हू सतीश, तुम लोग क्या सोच रहे हो। सोच रहो हो कि गम्भीर उपेन भैया बच्चो की तरह इतना बक क्यों रहा है! लेकिन तुम लोग तो जानते नही हो भाई, कितने दिनों तक तुम लोगों के उपेन भैया का मुख एकदम ही मूक हो गया था। इसीलिए जितनी बाते इकट्ठी हो गयी थीं, सभी आज मतवाले की तरह बाहर निकल रही हैं।"

उपेन्द्र के वार्तालाप के ढंग से सतीश का हृदय एक प्रकार की अज्ञात आशंका के उथल-पुथल मचाने लगा, कोई एक बात उसने जान भी लेनी चाही, लेकिन न तो उसे प्रश्न ही स्मरण पडा, न तो उसके मुह से बात ही निकली वह जैसे निहार रहा था वैसे ही निहारता रहा।

दूसरे ही क्षण सरोजिनी के मुंह की ओर देखकर उपेन्द्र ने सतीश से कहा, "तुम अच्छे हो जाओ। आर्शीवाद देता हूँ तुम सुखी बनो—मैं अपनी इस बहिन को लेकर चला जाऊँगा।" यह कहकर उपेन्द्र ने धीरे-धीरे सावित्री के सिर पर अंगुली से थपथपाकर कहा, "तुम्हारे अतिरिक्त मेरा भार लेने वाला कोई नही है बहिन। और जैसी बीमारी है और किसी को अपने पास बुलाने का साहस भी नहीं होता। होना उचित भी नही। केवल तुम्हारी तरह जिसका जीवित रहना दूसरों की भलाई के ही लिए है, अपनी बहिन को ही अपने को सौंप दे सकता हूँ। चलोगी बहिन, मेरे साथ? सतीश को छोड जाने में कष्ट होगा। होने दो। उसकी अपेक्षा भी कितना अधिक दुःख कष्ट भगवान मनुष्य से सहाते हैं तब उसे सही मनुष्य बना देते हैं।"

सतीश के मन मे इतनी देर का वही भूला हुआ प्रश्न मानो बिजली की भांति नाच उठा। वह सहसा बोल पडा, "उपेन भैया, हमारी भाभी कैसी हैं? उनकी बीमारी सुनकर ही मैं चला आया था।"

उपेन्द्र ने एक क्षण के लिए दातो से होठो को जोर से दबाया। उसके बाद अपने अभ्यास के अनुसार ऊपर की ओर देखकर बोले, "पशु अब नही है, चली गयी।"

सरोजिनी चिल्ला उठी, "सुरबाला भी नही है?"

"नही।"

सतीश मोटे तकिये पर कुहनी टेककर मूर्च्छा से आहत हुए की भांति शून्य दृष्टि से बैठा देखता रहा।

"सुरबाला नही है, वह चली गयी।" यह बात उपेन्द्र के मुह से सहज ही में निकल पडी। लेकिन यह 'नही' रहना कैसा है। यह 'जाना' कैसा जाना है सतीश से अधिक कौन जानता है। सरोजिनी की अपेक्षा किसने अधिक देखा है। सावित्री की अपेक्षा किसने अधिक सुना है।"

फिर भी सुरबाला नही है, वह मर गयी है। सतीश के मुह की ओर देखकर उपेन्द्र ने हंसकर कहा, "भगवान ने ले लिया, उसकी फिर नालिश क्या। लेकिन इस समय यदि दिवाकर पास रहता। मां-बाप नही हैं, बचपन से पाल-पोसकर इतना बडा किया, वह भी जाने कहा चला गया। मालूम नही, मरने से

पूर्व एक बार उसे देख पाऊगा या नही।''

सतीश ने उसी प्रकार मूर्च्छाहत की भाति पूछा, ''दिवा का क्या हुआ उपेन भैया?''

उपेन ने कहा, ''क्या जाने उसका क्या हुआ। कलकत्ता मे हारान बाबू के घर मे रहकर पढने को ठीक कर दिया था। यह अत्यन्त लज्जा की बात किसी से कही भी नही जाती, कहने की इच्छा भी नही होती। घर के लोग आज तक जानते हैं कि वह कलकत्ता मे पढ रहा है, सुरबाला उसको बहुत स्नेह करती थी, उस बेचारी ने मरने के पूर्व उसे देखना चाहा था, लेकिन उसकी यह साध भी मैं पूरी न कर सका। हारान बाबू की स्त्री के साथ वह कहा चला गया, इसका कुछ पता नही है।''

तीनो श्रोता एक ही साथ अव्यक्त कण्ठ से ''क्या!'' कहकर चिल्ला उठे, स्पष्ट रूप से कुछ भी समझ मे नही आया।

इसके बाद सभी चुप हो रहे। समूचा कमरा एक शून्य श्मशान की भाति नीरव हो गया।

कोई भी उपेन्द्र के मुह की ओर निहार भी न सका। लेकिन प्रत्येक को ही यह ज्ञात होने लगा कि उन लोगो का इतने दिनो का दु ख-कष्ट मान-अभिमान मानो इस आकाशभेदी वेदना के सामने अत्यन्त तुच्छ हो गया है।

सावित्री, सतीश से सभी बाते सुन चुकी थी। सभी बातें वह जानती थी। वह सोचने लगी, इस विपुल शून्यता को इस मनुष्य के किस वस्तु से भर रखा है। इस व्यथा को वह किस तरह अपने प्रतिदिन की जीवन यात्रा मे ढोता फिरता है। कलेजे के भीतर इतनी हाहाकार, पर बाहर से कोई शिकायत नही। किसने इनका सुख-दु ख इतना सहज और सुसह बना दिया है?''

उसने पावो पर धीरे-धीरे हाथ फेरते-फेरते कहा, ''भैया, इन सब बीमारियो मे तुम्हारे लिए पहाड की हवा खूब अच्छी होगी, ठीक है न?''

उपेन्द्र ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा, ''हा बहिन, यही बात तो डाक्टर भी कहते हैं, लेकिन भगवान जिसको बुलाते हैं, उसको कुछ भी फायदा नही करता। जाना ही पडता है।''

सावित्री ने कहा, ''कुछ भी हो भैया, लेकिन हम लोग पहाड पर ही जाकर रहे।''

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, ''अच्छा, ऐसा ही करना।''

महामाया की पूजा निकट आ गयी और सतीश के स्वस्थ होने के पूर्व ही बगालियो के सर्वश्रेष्ठ आनन्दोत्सव के दिन सुख-स्वप्न की भाति बीत गये। और भी कुछ दिन यहा रहने की बात थी, लेकिन उपेन्द्र के शरीर की अवस्था देखकर सावित्री ने त्रयोदशी के दिन यात्रा करने का दिन निश्चित कर लिया। उपेन्द्र की आपत्ति के विरुद्ध उसने हठ करके कहा, ''यह नही होगा भैया। सतीश बाबू की बीमारी अब नही है। उनका शरीर सबल हो जाने तक प्रतीक्षा करने से तुमको मैं ढूढकर न पाऊगी। परसो हम लोगो को यहा से जाना होगा। तुम बाधा मत दो भैया।''

उपेन्द्र ने मुसकराकर कहा, ''अच्छा, देखा जाएगा। लेकिन ऐसा होने से क्या तुम मुझे ढूढकर पा जाओगी बहिन?''

सावित्री तर्क न करके चली गयी। उपेन्द्र के दिन यहां शान्ति से बीत रहे थे, इसलिए जाने के लिए उनको कोई शीघ्रता नही थी। यात्रा का दिन इतना निकट है, यह भी सम्भवत उन्होने विश्वास नही किया, लेकिन सतीश का मुंह सूख गया, क्योंकि इस हठ के साथ उसका घनिष्ठ परिचय था। इसे वह भली प्रकार जानता था कि यह कोई बाधा नही मानती। जो कोई उसके सम्पर्क मे है, उसी को अब तक दबकर रहना पडता है। इसीलिए त्रयोदशी किसी प्रकार भी न टलेगी। इसमे उसके मन मे तनिक भी सन्देह नही रहा, लेकिन सामने ही बिहारी ने जब सजल नेत्रो से पूछा, ''अब कितने दिनो मे दर्शन दोगी मा, ''तब भी सतीश चुप रहा।

सावित्री ने सतीश के मुह की ओर कनखियो से देखकर गम्भीरता से कहा, ''तुम्हारे बाबू का जिस दिन विवाह होगा बिहारी, उसी दिन फिर भेट होगी। अवश्य तुम्हारे बाबू यदि कृपा करके बुलाएगे तब।''

लगभग दस दिन पूर्व सरोजिनी को ले जाने के लिए जब ज्योतिष स्वय आये थे, तभी उपेन्द्र की

मध्यस्थता मे विवाह की बात पक्की हो गयी थी।

सतीश ने कुछ भी आपत्ति नही की। स्थिर हो गया था कि उसका समयाशौच बीत जाने पर ही विवाह हो जाएगा। सावित्री ने उसी बात की ओर सकेत किया और सतीश ने मौन रहकर सुन लिया।

जाने के दिन उपेन्द्र ने चिन्ता मे पूछा, "तेरी तबीयत क्या अच्छी नही है सतीश? कल से क्यों तू बहुत ही उदास दिखाई पड रहा है।"

सतीश ने उदास कण्ठ से कहा, "नही, खूब अच्छी तरह तो हू।"

उपेन्द्र के चले जाने पर सावित्री कमरे मे आयी। उसकी दोनो आखे लाल थी, पलके भीगकर भारी हो गयी थी, उसकी ओर देखने से ही ज्ञात हो गया। सिर की शपथ की बात बार-बार स्मरण दिलाकर उसने कहा, "बात रखोगे?"

सतीश ने कहा, "रखूगा।"

"शराब-गाजा हाथ से भी न छुओगे?"

"नही।"

"मुझसे पूछे बिना तन्त्र-मन्त्र की ओर भी नही जाओगे?"

"नही।"

"जितने दिनो मे शरीर एकदम ठीक न हो जाएगा, तब तक दो दिन के अन्तर से चिट्ठी लिखते रहोगे?"

"लिखूगा।"

"उसमे कोई बात नही छिपाओगे?"

"नही।"

"तो अब मैं जा रही हू।" कहकर सावित्री शीघ्रता से नमस्कार करके बाहर चली गयी।

सतीश बिछौने पर बैठा हुआ था, लेट गया। विदा करने के लिए नीचे उतरने की चेष्टा नही की।

बाहर दो पालकिया तैयार थी। पास खडे रहकर उपेन्द्र डाक्टर साहब के साथ धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे। मोटी चादर से सारा शरीर ढककर सावित्री धीरे-धीरे ज्योही दूसरी पालकी मे जाने लगी, त्योही बिहारी ने दौडते हुए आकर चुपके से कहा, "एक बार लौट चलो मा, बाबू विशेष काम से बुला रहे हैं।"

सावित्री लौट गयी। उपेन्द्र ने बातें करते-करते उस पर लक्ष्य किया।

सावित्री को ठीक इसी बात का भय था। कमरे मे प्रवेश करके उसने देखा, सतीश दूसरी ओर मुह किये लेटा है। बिछौने के निकट जाकर हसी का मन करके उसने कहा, "बात क्या है? हम लोगो की ट्रेन छुडवा दोगे क्या?"

सतीश ने मुह फेरकर हाथ बढाकर सावित्री की चादर को जोर से पकडकर कहा, "बैठो। तुमको जाने न दूगा। यह मेरा गाव है, मेरा मकान है, मेरी इच्छा के विरुद्ध तुमको जबरदस्ती कोई ले जा सके, यह सामर्थ्य दस उपेन्द्रो मे भी नही है।"

सावित्री अवाक् हो गयी। उसने देखा, सतीश की आखो मे एक ऐसी तीव्र हिंस्र दृष्टि है जो किसी प्रकार भी स्वाभाविक नही कही जा सकती।

सावित्री समझ गयी, जबरदस्ती करने से काम न चलेगा। बिछौने के एक छोर पर बैठकर भर्त्सना के स्वर में उसने कहा, "छि! छि! यह कैसी बात तुम कह रहे हो, वह तो मुझे बरबस नही ले जा रहे हैं। उनकी स्त्री नही है, भाई नही है, तुम नही हो—इतनी बडी भयकर बीमारी मे सेवा करने वाला कोई नही है, इसीलिए तो वह तुमसे मागकर मुझे ले जा रहे हैं। इसको क्या जबरन् ले जाना कहते हैं?"

सतीश ने जोर से सिर हिलाकर कहा, "यह झूठी बात है, बहलाना है। वह अपने मित्र ज्योतिष बाबू का मुह देखकर ही केवल तुमको मेरे पास से हटा लेना चाहते हैं। इधर दो दिनो से दिन-रात भली प्रकार सोच-विचारकर मैंने देख लिया है, जो मौन रहकर सहता रहता है, सभी उसके ऊपर अत्याचार करते हैं। इसका कोई कारण क्यो न हो, मैं तुमको जाने न दूगा। कुछ भी हो, इस बात को लेकर तर्क-वितर्क

करके मैं माथा खपाना नही चाहता। बिहारी से कहलवा दो कि तुम्हारा जाना न होगा। बिहारी. ।"

सावित्री ने अपने हाथ से उसका मुह दबाकर कहा, "तुम क्या पागल हो गये हो? अच्छा, मान लेती हू कि उनका मतलव अच्छा नही है, लेकिन तुम ही मुझे लेकर आज क्या करोगे, बताओ तो भला?"

सतीश ने क्षणभर मौन रहकर कहा, "यदि मैं कहू कि तुमसे ब्याह करूगा?"

सावित्री ने कहा, "यदि मैं कहू कि इस काम मे मेरा मत नही है।"

सतीश ने कहा, "तुम्हारे मतामत से कुछ नही होता।"

सावित्री ने भयभीत होकर हसकर कहा, "क्या तुम जवरन मुझसे ब्याह करोगे?" यह कहकर अपने मुह की हसी को गम्भीरता मे परिणत करके ललाट पर से रूखे बालो को स्नेह से धीरे-धीरे हटाती हुई बोली, "छि। ऐसी बात कभी भ्रम से भी विचार मे मत लाना। मैं हू विधवा, मैं हू कुलत्यागिनी, मैं हू समाज मे लांछिता, मुझसे ब्याह करने का दु ख कितना वडा है, इसे तुम तो समझते ही नही हो, लेकिन जो जन्म से ही शुद्ध है, शोक की आग ने जिन्हे जलाकर हीरे की तरह निर्मल बना दिया है, वह समझ गये हैं इसीलिए इस हतभागिनी को आश्रय देने के लिए ही अपने साथ लिये जा रहे हैं। उनकी मगल-कामना को आज तुम आवेग मे रहने के कारण देख न सकोगे, लेकिन इसी कारण उन पर झूठ-मूठ दोषारोपण करके तुम अपराधी न वनो।" यह कहते-कहते आखो से आंसू लुढक पडे।

आखो के ये आसू आज सतीश को शान्त न कर सके। वह और भी उत्तेजित होकर बोला, "झूठ है। तुमने इसी प्रकार अपने को मुझसे अलग रखकर मेरा सर्वनाश किया है। उपेन भैया ने ही कहा है, तुम ससार मे किसी की अपेक्षा छोटी नही हो, यह सच है।"

सावित्री ने कहा, "नही, यह बात नही है। भैया अब समाज से परे हैं, इस लोक से परे हैं, उनके मुह की जो वात सच है, दूसरे के मुह दूसरे की आवश्यकता के अनुसार सच नही है। तुम कहोगे, सच हो या झूठ, मैं समाज को नही चाहता, मैं तुमको चाहता हू। लेकिन मैं तो यह नही कह सकती। समाज मुझे नही चाहता, यह मैं जानती हू, श्रद्धा के अतिरिक्त प्रेम टिक नही सकता। समाज जिस स्त्री को उसके सम्मान का आसन नही देता, किसी भी स्वामी की सामर्थ्य नही कि अपने बल से उसके उस आसन को बचाकर रख सके। अजी, इस असाध्य साधना की चेष्टा मत करो।"

सतीश दोनो हाथ से सावित्री के दोनों हाथ जोर से दबाकर बोल उठा, "सावित्री, इन सब बातो को सुनने का धैर्य आज मुझमे नही है, समझने की शक्ति भी नही है। आज केवल मुझे छूकर तुम यह सच बात सीधे तौर से कह दो कि तुम मुझे प्यार करती हो या नही?" यह कहकर वह मानो समस्त इन्द्रियो को, समूचे शरीर तक को, उन्मत्त करके सावित्री के मुंह की ओर निहारता रहा।

इन अत्यन्त व्यग्र व्यथित दोनो नेत्रो की ओर देखकर सावित्री की आखो से फिर आसू झरने लगे। उसने कहा, "प्यार करती हू या नही, नहीं तो किस बल से तुम्हारे ऊपर मेरा इतना जोर है? जिसके लिए मेरा इतना सुख है, मेरा इतना वडा दु ख है? अजी, इसीलिए तो तुमको मैंने इतना दु.ख दिया, लेकिन किसी प्रकार अपना यह शरीर तुमको दे न सकी।" यह कहकर आचल से अपनी आंखे पोछकर बोली, "आज मैं तुमसे कोई वात न छिपाऊगी। यह मेरा शरीर आज तक नष्ट अवश्य नही हुआ है, लेकिन तुम्हारे पावो मे सौंप देने की योग्यता भी तो इसमे नही है। इस शरीर से जो मैंने इच्छापूर्वक बहुतो का मन मोहित किया है, यह बात मैं किसी प्रकार भी भूल न सकूगी। इससे चाहे जिसकी सेवा हो, पर तुम्हारी पूजा न हो सकेगी। आज किस प्रकार तुमको वह बात समझाऊ। इतना प्यार यदि तुम्हे न करती तो इस प्रकार तुमको छोडकर आज मुझे जाना न पडता।" यह कहकर सावित्री ने बार-बार आखे पोछी।

सतीश स्तब्ध भाव से कुछ पडा रहा फिर एकाएक बोल उठा, "तो मैं और कुछ नही चाहता लेकिन तुम्हारा मन? इससे तो तुमने किसी को कभी मोहित नही किया, यह तो मेरा है।"

"नही। इससे किसी दिन किसी को मैंने मोहित करना नही चाहा, यह तुम्हारा ही है। यहा तुम ही चिरकाल से प्रभु हो।" यह कहकर उसने छाती पर हाथ रखकर कहा, "अन्तर्यामी जानते हैं, जितने दिन मे जीवित रहूगी, जहा, जिस दशा मे रहूगी, चिर दिन तुम्हारी ही दासी बनी रहूंगी।"

सतीश ने तुरन्त उसका हाथ अपने दाये हाथ मे लेकर कहा, "भगवान का नाम लेकर तुमने यह जो

स्वीकृति दे दी है, यही मेरे लिए यथेष्ट है, इससे अधिक मैं कुछ नही चाहता।"

उसकी बातों के ढग से सावित्री मन ही मन फिर शंकित हो उठी।

ऐसे ही समय मे विहारी ने दरवाजे के बाहर से पुकारकर कहा, "मांजी, बाबू ने कहा है—अब तो देर हो रही है।"

"चलो, आ रही हू।" कहकर सावित्री उठ रही थी, सतीश ने उसे जोर से पकडकर कहा, "कभी तुमसे मैंने कुछ नही मांगा। आज जाते समय मुझे एक भिक्षा देती जाओ।"

"मेरे पास क्या है जो मैं तुमको दूगी? लेकिन क्या चाहिए, बताओ।"

सतीश ने कहा, "मैं यह भिक्षा चाहता हू, यदि कोई कभी हम दोनो के सम्बन्ध की बात पूछे तो मेरा स्वामित्व स्वीकार करोगी, बताओगी?"

सावित्री को इसी बात का डर था, फिर भी इस अद्भुत अनुरोध से हस पडी। बोली, "क्यो, बताओ तो गवाहो के बल से अन्त मे मुझे घर मे डाल तो नहीं दोगे?"

सतीश ने कहा, "तुम्हारे हृदय मे रहने वाले अन्तर्यामी ही मेरे साक्षी हैं, दूसरे साक्षी की मुझे आवश्यकता नही है। और बाहर के बल से अन्त मे तुमको घर मे डाल लूगा यही डर तुमको है? लेकिन अपने जोर से आज ही यदि मैं तुमको घर मे डाल लू तो कौन मुझे रोकने वाला है, बताओ तो?"

सावित्री ने फिर कुछ नही कहा।

सतीश ने कहा, "तुम्हारा जहा-तहां अपनी ही इच्छा के अनुसार रहना मुझे पसन्द नही है।"

सावित्री का मुख उत्तरोत्तर पीला पडता जा रहा था, लेकिन इस अवस्था में सतीश को उत्तेजित करने के भय से वह मौन ही रही। सतीश बोला, "उपेन भैया है, पत्थर के देवता। अगर रक्त-मास के देवता होते तो मैं साथ न भेजता। अच्छा, आज जा रही हो तो जाओ, लेकिन जान पडता है कि वहा अधिक दिनो तक तुम्हारे रहने से मुझे सुविधा न होगी।"

"तुम्हारी जैसी इच्छा।" कहकर सावित्री नमस्कार करके चली गयी।

बयालीस

सध्या को साढे पाच बजे लकडी के कारखाने से छुट्टी पाने पर दिवाकर अराकान की एक सडक पर जा रहा है। धूल से, धुए से, लकडी के बुरादे से उसका सम्पूर्ण शरीर भर उठा है। गले पर चादर नही है, कुर्ता फटा और मैला है। धोती की भी वही दशा है। दाये पाव के जूते की एडी घिस जाने से चट्टी-सी बन गयी है, बाये पाव का अगूठा जूता के बाहर से दिखाई पड रहा है। सारा दिन पेट मे अन्न नही गया है। इसी दशा मे हाफते-हाफते वह मकान वाली के मकान मे आ पहुचा। चार रुपये मासिक किराये पर वह निचले तल्ले की एक कोठरी मे रहता है। पतले बरामदे के एक कोने में रसोई बनती है। एक ओर लकडी, उपलो, पानी की बाल्टी आदि आस-पास रखी हुई हैं।

दिवाकर के पावो की आहट पाकर पास की एक कोठरी से मकान वाली ने निकलकर कड़े स्वर से कहा, "आ गये, अच्छा हुआ। यह सब तुम लोग क्या कर रहे हो बाबू! रसोई-पानी नही, नहाना-खाना नही, रात-दिन केवल झगडा, लडाई, दात पीसना। यह तो हमारे घर की लक्ष्मी को हटाने का उपाय कर रहे हो तुम लोग।"

दिवाकर उदास मुख से सिर झुकाये रहा। वह दोपहर को खाना खाने आया था, पर किरणमयी के साथ झगडा करके बिना नहाये-खाये अपने काम पर चला गया था। लेकिन उसकी अवस्था देखकर मकान वाली का क्रोध ठण्डा नही हुआ। उसने फिर कहा, "यह तो तुम्हारी ब्याही हुई स्त्री भी नही है बाबू कि इस पर इतना जोर-जुलुम चला रहे हो। जैसे निकालकर ले आये थे, वैसे ही उसने भी अपना धर्म रखा है। अब तो तुम्हारी भी नौकरी लग गयी है। अब तुम अलग हो जाओ। अब इसको दु ख क्यो देते हो बाबू? ऐसी जवान औरत खाये-पिये बिना सूखकर काटा बन गयी।" थोडी देर तक मौन रहकर

वह बोली, "नही तो इसको चिन्ता ही क्या है। वही मोड पर जो मारवाडी बाबू है, वह रोज ही मेरे पास आदमी भेजता है। कहता है, सोने से सारा शरीर मढ दूगा। और तुमको भी औरत के लिए चिन्ता क्या है बाबू? भात बिखेर देने से क्या कौए का अभाव रहता है? जाओ। हट जाओ, मेरी बात मानो। कई दिनो से कह रही हू तुम लोगो मे मेल-जोल अब नही होगा।"

दिवाकर ने बीच ही मे रोककर कहा, "रहने दो। मेरी बात उठाने की आवश्यकता नही है। लेकिन उनका भी क्या यही मत है? तुम ही उनकी मन्त्राणी हो क्या?"

ठीक उसी समय किरणमयी अपनी कोठरी से बाहर निकल आयी। अवस्था के परिवर्तन से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक सब प्रकार का परिवर्तन कितना शीघ्र हो जाता है यह देखने से अवाक् रह जाना पडता है।

आज उसकी ओर देखकर कौन कहेगा यह वही सौन्दर्य की प्रतिमा किरणमयी है। छ मास पूर्व वही एक दिन समाज के धर्म को व्यग्य करके मनुष्यत्व को पददलित करके, एक नासमझ युवक को सौन्दर्य और प्रेम के मोह से फास कर उसे सब प्रकार की सार्थकताओं से दूर करके ले आयी थी, वही धोखाधड़ी की रस्सी स्वय किरणमयी के ही गले मे लग गयी है।

पाप के साथ निष्फल क्रीडा करते रहने के कारण दिवाकर के हृदय से जो वासना का राक्षस निकल पडा है, उससे आत्मरक्षा करने के लिए दिन-रात लडाई करती हुई किरणमयी आज घायल हो चुकी है।

उसके सिर के बाल रूखे, इधर-उधर बिखरे हुए हैं, वस्त्र मैला है, फटा-पुराना है। मुह पर एक प्रकार की सूखी हुई क्षुधा मानो निराशा की चरम सीमा को पहुच गयी है। सम्पूर्ण शरीर की श्रीहीनता देखने से दुःख होता है। मूर्तिमती अलक्ष्मी की भांति वह धीरे-धीरे आकर बरामदे मे एक खम्भे पर टिककर दोनो की ओर देखती हुई चुपचाप खडी हो गयी।

उसे देखते ही भूख से व्याकुल दिवाकर गरज उठा।

निर्लज्जता की सीमा नही रही। वह मुहजोर दिवाकर आज घर भर के लोगो के सामने ऐसी भाषा मे चिल्ला-चिल्लाकर बोल सकता है, इस पर विश्वास करना सरल नही है, लेकिन वास्तव मे उसने यह जो कहा, "क्या भाभी, यही बात है? अब मारवाडी, मुसलमान, बर्मी, मद्रासी, इनकी ही आवश्यकता है क्या? ओह, इसीलिए दिन-रात झगडा हो रहा है, इसीलिए मैं आंखो का जहर हो गया हू?"

किरणमयी पहले तो जैसे कुछ समझी ही नही, इसी भाव से केवल उसकी ओर निहारती रही। लेकिन उसका उत्तर दिया मकान वाली ने। वह थोडा-सा और आगे बढ़कर हाथ हिलाकर आख-मुह मटकाकर बोली, "वह क्यो न चाहेगी, बताओ। हम लोग तो गृहस्थी की कुलवधू हैं नहीं कि एक आदमी को पकडकर बैठी रहेगी। हम लोग हैं सुख के कबूतर, एकदम स्वतन्त्र। जहां जिसके पास सुख मिलेगा, सोना-दाना मिलेगा, उसके पास चली जाएगी। इसमे लज्जा ही क्या, और छिपाना क्यो?"

दिवाकर ने क्रोध से जलकर उसको धमकाकर कहा, "तू चुप रह मौगी। जिससे पूछ रहा हूं वही बोले।"

इस बार मकान वाली बारूद की तरह भभक उठी। मरने को तैयार-सी होकर बोली, "मेरे ही मकान मे रहकर मुझे ही मौगी कह रहा है। निकल जा मेरे मकान से।"

दिवाकर भी क्रुद्ध हो उठा। छ. महीने पूर्व अपने बहुत बडे दु.स्वप्न में भी सम्भवत. यह कल्पना करना सम्भव न होता कि वह एक अछूत गणिका द्वारा इतना अपमानित होने के बाद भी कमर कसकर तू-तू मैं-मैं कहकर झगडा कर सकता है? लेकिन वह तो अब उपेन्द्र सुरबाला के स्नेहपूर्ण आदर-प्यार से पोषित होने वाला दिवाकर रह नही गया है। इसीलिए वह भी नेत्र लाल करके गरज उठा, "क्या! मुझे निकल जाने को कहती है? क्या तू किराया नही लेती?"

मकान वाली ने भी वैसे ही गरजकर कहा, "वाह! बड़ा आया है किराया देने वाला! तुझे धिक्कार है, तुझे तो गले मे डालने को भी रस्सी नहीं जुटती रे! कहती हूं, निकल, नही तो झाड़ू मारकर निकाल दूंगी।"

"अच्छा, निकलवा रहा हू!" कहकर दिवाकर ने दांत पीसकर पागल की भांति दौड़कर किरणमयी को धक्का लगा दिया। सारा दिन भूख-प्यास से थकी किरणमयी उस धक्के को संभाल न सकी। पहले

उसको भी तो तुम प्यार नही करती, सम्भवत उसे तुम पहचानती भी नही। तो भी मुझे छोडकर तुम वहा क्यो जाना चाहती हो? मैंने तो किसी दिन तुम्हारा कोई अनिष्ट नही किया। लेकिन सचमुच ही क्या तुम जाओगी।"

किरणमयी ने सिर हिलाकर कहा, "सचमुच ही जाऊगी।" इसके बाद वह बडी देर तक भूमि की ओर निहारती रही, फिर मुह ऊपर उठाकर बोली, "नही, आज मैं कुछ भी छिपाऊगी नही। मैं भगवान को नही मानती, न आत्मा को मानती हू। यह सब मेरे लिए व्यर्थ हैं। एकदम असत्य हैं। मैं मानती हू केवल इहकाल को और इस शरीर को। जीवन में केवल एक व्यक्ति के सामने मैंने हार मानी थी, वह थी सुरबाला। लेकिन जाने दो इस बात को, सच कहती हूँ बबुआजी. मैं मानती हू केवल इहकाल को और इस सुन्दर शरीर को। लेकिन मेरा ऐसा फूटा भाग्य है, इसी से अनग की भाति पतग को भी मैंने मोहित करना चाहा था।" यह कहकर लम्बी सास छोडकर किरणमयी चुप हो गयी।

दो क्षण चुप रहकर उसने मानो सहसा जागकर कहा, "उसके बाद एक दिन, जिस दिन सचमुच ही मैंने प्यार किया बबुआ, उसी दिन मैं जान गयी, क्यो मेरा सारा शरीर इतने दिनो तक इसके लिए उत्कंठित होकर प्रतीक्षा कर रहा था।"

दिवाकर ने व्यग्र होकर कहा, "किसके लिए भाभी?"

किरणमयी हसकर मानो अपने मन मे ही कहने लगी, "मैंने सोचा था, मेरे इस प्रेम की तुलना सम्भवत तुम्हारे स्वर्ग मे भी नही है, लेकिन वह स्वर्ग टिक न सका। उस दिन महाभारत की कहानियो के विषय मे जिस स्त्री से मैं हार आयी थी, फिर उसी से हार मान लेनी पडी। प्रेम के द्वद्व मे भी सिर झुकाकर मैं चली आयी। मोह का नशा हट गया, मैंने स्पष्ट देख लिया कि उसको सौन्दर्य के भुलावे में टालने की सामर्थ्य मुझमे नही है।"

दिवाकर को एक बार ऐसा जान पडा कि उसका निविड अन्धकार मानो स्वच्छ होता चला जा रहा है।

किरणमयी कहने लगी, "उस स्त्री से एक विषय सीखने का मुझे लोभ हुआ था, वह था अपने पति को प्यार करना, सम्भवत मैं सीख भी सकती थी, लेकिन ऐसा फूटा भाग्य है कि वह मार्ग भी दो दिनो मे बन्द हो गया। अच्छी बात है, तुमने क्या पूछा था बबुआ, तुमको मैं प्यार क्यो नही करती? प्यार तो किया था अवश्य। लेकिन मैं उम्र मे बडी हू इसीलिए जिस दिन तुम्हारे उपेन भैया मेरे हाथ मे तुमको सौंप गये थे, उसी दिन से मैंने तुमको छोटे भाई की तरह प्यार किया था। इसीलिए तो छ महीने से अपनी ही छलना से मैं क्षत-विक्षत हो रही ह। तुम्हारी आखों की भूख से, तुम्हारे मुह की प्रार्थना मे मेरा सारा शरीर घृणा से, लज्जा से काप उठता है, इसे क्या तुम एक दिन भी समझ न सके बबुआ? जाओ, अब तुम हट जाओ। मुझे पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक कुछ भी न रहे, लेकिन इस शरीर पर तुम्हारी लोलुप दृष्टि मैं अब सह नही सकती।" यह कहकर उसने बिछौना उठाकर दिवाकर के सामने फेक दिया, और बोली, "अब तुम पर मेरा विश्वास नही रहा। मेरा एक और छोटा भाई आज भी जीवित है। उसी सतीश का मुह देखकर मुझे तुमसे आत्मरक्षा करनी पडेगी। तुम जाओ।"

दिवाकर फिर दुबारा कुछ न कहकर बिछौना उठाकर बाहर के अन्धकार में विलीन हो गया।

तैंतालीस

सबेरे किरणमयी थके अलसाये शरीर से काम कर रही थी। कामिनी मकान वाली आकर दरवाजे के सामने खडी होकर खूब हसकर बोली, "चला गया छोकरा? आफत दूर हुई। कल तो मुझे मारने को ही तैयार हो गया था। अरे तेरा काम है औरत रखना? बकरो से यदि जौ पर दवरी चल सकती तो लोग बैल क्यों पालते?"

किरणमयी ने पूछा, "किसने कहा कि वह चला गया?"

मकान वाली ने हसकर आखे मटकाकर कहा, "लो, अब नखरा करने की आवश्यकता नही है।

किसने कहा? मैं हूं मकान वाली, मुझसे कहेगा कौन? मैंने अपने कानों से सुना है। नहीं तो क्या इतने दिनों तक मैं यह मकान रख सकती थी? किस समय इसे पांच भूत मिलकर खा गये होते, यह क्या तुम जानती हो?"

किरणमयी चुपचाप घर का काम करने लगी। उत्तर न पाकर मकान वाली स्वय कहने लगी, "मैं तो इतने दिनो से कह रही थी वहू कि निकाल बाहर करो इस आफत को। यह नही, रहने दो, कहा जाएगा? अरे कहा जाएगा, यह मैं क्या जानू इतना सोचते रहने से तो काम नही चलता। खाओ-पहनो, सुगन्धित तेल लगाओ, सोना-दाना शरीर पर चढाओ, साथ ही साथ मौज उडाओ, ऐसा करोगी नही, तो देश की दुनिया से बाहर आकर यह कैसा दलिद्दर प्रेम करना है बेटी?"

किरणमयी ने केवल एक बार मुह ऊपर उठाकर अपनी आखे झुका ली। मकान वाली ने समझा कि उसकी बहुदर्शिता की उपदेशावाली काम कर रही है। "और यह क्या बेटी, तुम्हारा प्रेम करने का समय है? अभी तो चढी जवानी है, इस समय तो दोनो हाथो से लूटोगी। इसके बाद दो पैसे हाथ मे रखकर चैन से बैठना, उमर चढ जाने पर प्रेम करना। तुमको मना कौन करता है? हाथ मे पैसे रहने पर क्या छोकडो का अभाव रहेगा? कितने चाहिए? तब तो दोनो पाव एकत्र करके उठ न सकोगी।"

किरणमयी अन्यमनस्क थी। क्या पता सभी बाते उनके कानो मे पहुची या नही। लेकिन उसने कोई बात नही कही।

मकान वाली को अपने घर का काम-धन्धा करना था। इसीलिए वह देर न कर सकने के कारण दोपहर को फिर आने को कहकर चली गयी।

इस मकान मे रहने वाले प्राय सभी कारखाने मे नौकरी करते हैं। सबेरे काम पर जाते हैं, दोपहर को खाने की छुट्टी मिलने पर घर चले जाते हैं, और स्नान-भोजन करके फिर काम पर चले जाते हैं। संध्या के कुछ ही पूर्व उन्हे छुट्टी मिलती है।

आज भी सबेरे उनके काम पर चले जाने पर दो-ढाई बजे के बाद मकान वाली आकर फिर दरवाजे के पास खडी हो गयी। मधुर कण्ठ से उसने कहा, "खाना-पीना हो गया बहू! क्या रसोई बनी थी?"

किरणमयी ने आज चूल्हे मे आग तक नही जलायी थी। मकान वाली के पूछने पर बोली, "हा हो गया है। आओ, बैठो।"

मकान वाली दरवाजे के पास ही बैठ गयी। वह कमरे मे घुसते ही समझ गयी थी कि किरणमयी का मन ठीक नही है। इसलिए सहानभूति के स्वर से बोली, "यह तो होगा ही बेटी, दो दिन मन खराब रहेगा। एक पशु-पक्षी को पालने-पोसने से मन कैसा उदास हो जाता है और यह तो आदमी है। जैसे भी हो, छ -सात महीने तक उसके साथ घर-गृहस्थी भी तो चलानी पडी। यह दशा दो-चार दिन ही रहेगी, फिर तो कोई नाम तक नही लेता बहू, आखो से बहुत-सी ऐसी घटनाए मैंने देखी हैं।"

किरणमयी ने बरबस हसकर कहा, "यह तो सच ही है।"

मकान वाली ने आखे मुह नचाकर कहा, "सच नही है? तुम ही बताओ न बेटी, क्या सच नही है? फिर नया आदमी आये, नये ढग से आमोद-प्रमोद करो। बस, सब ठीक हो जाएगा। क्या कहती हो, यही बात है न?"

किरणमयी ने सिर हिलाकर सम्मति तो अवश्य प्रकट कर दी लेकिन इस प्रकार इच्छा के विरुद्ध उसके वार्तालाप से उसका चित्त उद्भ्रान्त होता जा रहा था।

एकाएक मकान वाली ने आखे-मुह सिकोडकर कण्ठ-स्वर को धीमा करके कहा, "अच्छी बात स्मरण पड गयी बहू, उस गवार मनुष्य के पास तो मैंने सबेरे ही खबर भेज दी थी। उससे तो अब सहा नही जाता, कहता है लोग काम पर चले जाएंगे तो दोपहर को ही आऊंगा। कौन जाने, वह इसी समय न आ जा ।"

किरणमयी ने भयभीत होकर कहा, "यहां क्यो?"

मकान वाली ने इस बात को अत्यन्त कौतुकजनक समझकर बनावटी क्रोध दिखाकर कहा, "मर जा छोकरी, वह न आयेगा तो क्या तू वहा जाएगी? तेरी बाते सुनने से तो हंसते-हंसते पेट की अतडी तक टूट

जाती हैं।" यह कहकर सूखी हसी की छटा से लुढककर बिलकुल ही किरणमयी के ऊपर जा गिरी।

किरणमयी ने कोई बात नही कही, केवल थोडा-सा सरककर बैठ गयी। मकान वाली ने आत्मीयता के आवेश मे आज पहले पहल उसे 'तू' कहकर सम्बोधन किया था।

लेकिन सखीत्व का यह अत्यन्त घनिष्ठता बढ़ाने वाला सम्भाषण इस नीच औरत के मुह से निकलकर किरणमयी के हृदय के भीतर जाकर एकदम तीर की भाति बिध गया। उसके हृदय मे आज भी जो महिमा मूर्च्छाहत की भांति पडी हुई थी, इस एक ही शब्द के आघात से उसकी नीद टूट गयी। और क्षणभर मे भद्र कुलवधू की लुप्त मर्यादा उसके मन मे प्रदीप्त हो उठी। लेकिन फिर भी, अपने को सभालकर चुप हो रही।

मकान वाली ने इस पर कुछ भी ध्यान नही दिया। वह अपनी ही झक मे कहने लगी, "तू देख लेना बहू, छ महीने मे यदि मैं तेरा भाग्य न पलट दू, तो मेरा नाम कामिनी मकान वाली नही। तू केवल मेरे कहने के अनुसार चलना। मैं और कुछ भी नही चाहती।"

किरणमयी को ज्ञात हुआ, मानो यह वह स्त्री उसके कानो की समस्त स्नायुशिराओं को जलती हुई सडसी से खीचकर निकाल रही है। लेकिन मना करने की बात उसके मुह से नही निकली। केवल चुपचाप वह सुनती रही।

मकान वाली ने कहा, "गवार मारवाडी है, दो पैसे पास हैं, जोश मे आ गया है, दोनो हाथो से दुह ले। उसके बाद वह कमबख्त चला जाये भाड मे। और कितने ही आ फसेंगे। तूने इस प्रकार अपने को बना रखा है, नही तो तेरा रूप क्या साधारण रूप है बहू!"

उस समय बाहरी बरामदे से किसी के टूटे गले से पुकार आई, "मकान वाली!"

"अब तो जाती हू," कहकर मकान वाली जाने लगी, लेकिन किरणमयी ने दोनो हाथ बढाकर उसका आचल जोर से पकडकर कहा, "नही-नही, यहा किसी प्रकार भी नही, इस कमरे मे कोई भी आने न पाये।"

मकान वाली ने हतबुद्धि होकर कहा, "क्यो, कोई है यहा?"

किरणमयी ने कहा, "कोई रहे या न रहे, यहा नही, किसी प्रकार भी नही ।"

आगन्तुक का पद-शब्द क्रमश निकट आने लगा।

मकानवाली ने कहा, "तू तो अब किसी की कुलवन्ती बहू नही है। लोग तेरे घर मे आयेंगे, बैठेंगे इसमे डर किसका है, सुनू तो? तू है वेश्या।"

किरणमयी चिल्ला उठी, "क्या हू मै? मैं वेश्या हू?"

उसको जान पडा जैसे आग की धारा उसके पैरों के तलवे से उठकर उसके मस्तक को छेदती हुई बाहर निकल गयी।

उसकी लाल आखे और तीव्र कण्ठ-स्वर से मकान वाली ने विस्मित हो चिढकर कहा, "वह नही तो और क्या? नखरा देखने से शरीर जलने लगता है। अब हम लोग जो हैं, तुम भी वही हो। भला आदमी आ रहा है। ले, घर मे बैठा।"

इस भले आदमी से मकान वाली पहले ही रुपया ले चुकी थी और भी कुछ पाने की आशा कर रही थी। भला आदमी दरवाजे के निकट खडा हो गया और दात निकालकर हसकर बोला, "क्यों मकान वाली, सब ठीक है?'

मकान वाली ने अपना आचल खीचकर विनय के साथ कहा, "सब तुम लोगो की मेहरबानी है। जाओ, कमरे मे जाकर बैठो। मैं पान लगाकर ला रही हू।" जरा हसकर बोली, "अब तो यह घर-द्वार सब तुम्हारा ही है बाबूजी, इसे अच्छी तरह सजाना पडेगा, यह मैं बताये देती हू।"

"अच्छा-अच्छा, यह सब हो जायेगा।" यह कहकर वह आदमी जरा भी सकोच न करके कमरे मे घुसकर खटिया पर बैठने लगा।

किरणमयी की स्नायु-शिराओ मे लोहे से भी कडी दृढ़ता थी, इसीलिए इतनी देर तक वह सहन कर सकी थी, लेकिन अब न कर सकी। उसके रूप-यौवन पर लुब्ध इस अपरिचित हिन्दुस्तानी ग्राहक के

कमरे मे घुसते ही वह बेहोश होकर वायु झोके से उखडे हुए केले के वृक्ष की भांति भूमि पर गिर पड़ी।

वह मनुष्य चौंककर देखने लगा और इस आकस्मिक विपत्ति के आने से हतबुद्धि-सा हो गया। मकान वाली की चिल्लाहट से मकान की सभी स्त्रियो की कच्ची नीद टूट गयी, तुरन्त ही वे दौडकर चली आयी और कोई जल लाकर, कोई पखा लाकर उस अभागिनी की शुश्रूषा करने मे लग गयी।

और मकान वाली दरवाजे पर बैठकर ऊचे स्वर से लगातार घोषणा करने लगी कि इस काम मे उसने अपने बाल पका दिये, लेकिन आज तक इस तरह के नखरे और ढोग न सीख सकी। आज तक भी नागर को देखकर दात लगाने की युक्ति उसने नही सीखी।

एकाएक इस दुर्घटना के बीच फिर एक नयी गडबडी सुनाई पडी। खबर मिली कि मुख्य द्वार पर कोई एक नया बाबू आया है, और दिवाकर तथा भाभी कहकर बडा शोर-गुल मच रहा है। नौकर से मकान वाली इस आगन्तुक बाबू का विशेष परिचय पूछ रही थी कि उसी समय एक लम्बे शरीर का पुरुष एक बहुत बडा चमडे का बैग हाथ मे लिए सामने आकर गम्भीर स्वर मे पुकार उठा, "भाभी!"

उसके दाये हाथ की अगुली मे एक हीरे की अंगूठी सूर्य की किरणो से चमक उठी। मकान वाली ने आदर के साथ खडी होकर पूछा, ' किसको खोज रहे हैं?"

"दिवाकर यहा रहता है?"

मकान वाली ने कहा, "नही।"

"मेरी भाभी? किरणमयी किस कमरे मे रहती हैं?'

मकान वाली के साथ ही साथ और भी दो-चार स्त्रिया गरदन बढाकर देख रही थी। उनमे से किसी ने कहा, "वही तो मूर्च्छित होकर पडी हुई है जी।"

"मूर्च्छित हुई है? कहा? देखू!" कहकर आगन्तुक सज्जन भीड को ठेलकर कमरे मे जा पहुचा।

बेहोश किरणमयी उस समय भी भूमि पर पडी हुई थी। सारा शरीर पसीने से तर हो रहा है—आखे मुदी हैं, चेहरा पीला पड गया है, बाल भीगे बिखरे हुए हैं, शरीर का कपडा खिसक गया है ।

आगन्तुक था सतीश। उसकी दृष्टि उस हिन्दुस्तानी पर जा पडी। इस समय वह पास आकर टकटकी लगाये किरणमयी को देख रहा था। सतीश ने विस्मित और अत्यन्त क्रुद्ध होकर पूछा, "ऐ तू कौन है?"

उसकी ओर से मकान वाली ने उत्तर दिया, "अहा! ये तो हमारे मारवाडी बाबू हैं। वही तो ।"

लेकिन परिचय देना समाप्त होने के पूर्व ही सतीश ने उस व्यक्ति को दरवाजा दिखाकर कहा, "बाहर जाओ।"

मारवाडी के पास रुपये हैं, यह है नवीन प्रेमिक, विशेषत इतनी स्त्रियो के सामने वह हीन भी नहीं हो सकता। इसलिए साहस के साथ उसने कहा, "क्यो?"

असहिष्णु सतीश ने तख्ते की फर्श पर जोर से पैर पटककर धमकाकर कहा, "बाहर जाओ, उल्लू!"

सब लोगो के साथ मकान वाली तक चौंक उठी। और फिर कुछ न कहकर मारवाडी बाहर चला गया।

सतीश किरणमयी के शरीर को उसके खिसके हुए कपडे से ढककर एक पखा लेकर जोर से हवा करने लगा और दोनो को घेरकर उपस्थित स्त्रिया विचित्र कलरव करने लगीं। इन लोगो की तरह-तरह की आलोचना से थोडी ही देर मे सतीश बहुत-सी बाते जान गया। मकान वाली क्षोभ और अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करके बार-बार कहने लगी, "इतनी बडी उमर बीत जाने पर भी ऐसी औरत मैंने कभी नहीं देखी कि वेश्या कहने से वह आखे उलटकर दात लगाकर बेहोश हो जाये।"

कुछ देर के बाद होश आने पर किरणमयी माथे का कपडा सभालकर उठ बैठी। क्षणभर देखती रहकर क्षीण स्वर से बोली, "बबुआजी!"

सतीश ने प्रणाम करके पावो की धूल सिर पर चढाकर कहा, "हा भाभी, मैं ही हू। लेकिन बात क्या है, बताओ तो। जैसा पहनावा है वैसा ही घर-द्वार है, वैसी ही शरीर की शोभा है—कौन कहेगा कि यही हैं सतीश की दीदी! मानो कही की एक अनाथ पगली है। लडकपन तो बहुत किया, अब कल के जहाज से

घर चलो।" स्त्रियो की ओर देखकर कहा, "अब तुम लोग जाओ।"

किरणमयी निश्चल पत्थर की मूर्ति की भांति मुह झुकाये निहारती रही। उसके हृदय की बात अन्तर्यामी ही जाने। लेकिन बाहर से कुछ भी प्रकट नही हुआ। स्त्रियो के बाहर चले जाने पर सतीश ने कहा, "वह सुअर कहां है भाभी!"

किरणमयी ने मुह ऊपर उठाये विना ही कहा, "इतने दिनो तक तो यही था, कल रात को दूसरी जगह चला गया है।"

"क्यो?"

"मैंने चले जाने को कहा था, इसलिए।"

"लेकिन वुलाने से क्या एक वार आयेगा नही?"

"वुलाकर देखती हू।" यह कहकर किरणमयी वाहर जाकर घर के नौकर को कालीवाडी भेजकर फिर लौट आयी। बोली, "तुम आओगे, यह बात मेरे लिए स्वप्न म भी वाहर की वात थी बबुआ।"

सतीश ने कहा, "मेरा आना क्या मेरे लिए भी स्वप्न से अतीत की बात नही है भाभी?"

"यह तो है ही।" कहकर किरणमयी फिर गरदन झुकाये बैठी रही। उसको बहुत सी बाते जानने की आवश्यकता थी। सतीश अपने घर की दासी से पता लगाकर आया है, यह समझना कठिन नही है, लेकिन एकाएक इतने दिनो के बाद पता लगाकर लौटा ले जाने के लिए इतनी दूर आने का यथार्थ कारण अनुमान करना सचमुच ही कठिन था। लेकिन आने का कारण सतीश ने स्वय ही प्रकट कर दिया। वोला, "कल जहाज छूटेगा। मैं तुम लोगो को लिवा ले जाने के लिए आया हू, भाभी।"

किरणमयी ने मुह ऊपर उठाकर कहा, "उपेन बबुआ ने भेजा है? बहुत अच्छा, दिवाकर को ले जाओ। मैं प्रार्थना करती हू वह चला जाये तो अच्छा है।"

सतीश ने कहा, "केवल दूसरो की आज्ञा पूरी करने के लिए ही इतनी दूर नही आया हू, अपनी ओर से भी मुझे इसकी आवश्यकता है। सोचती हो तो फिर इतने दिनो के बाद क्यो? मुझे कोई पता ही नही मिलता था। उसके वाद बाबूजी मर गये, स्वय मैं भी जाने वाला ही था, सम्भवत कभी भेट ही न होती।"

किरणमयी ने मुह ऊपर उठाकर देखा। उसकी दोनो आखो से ससार का समस्त स्नेह मानो सतीश के शरीर पर बरस पडा। क्षणभर के बाद वह करुण कण्ठ से बोली, "मैं किसके पास जाऊगी बबुआ, मेरा अपना कौन है?"

"मेरे पास चलोगी भाभी, मैं हू।"

"लेकिन मुझे आश्रय देना क्या अच्छा होगा?"

सतीश ने कहा, "तुमको स्मरण नही है भाभी? बहुत दिन पूर्व इस भले-बुरे का सदा के लिए निश्चय हो चुका था, जिस दिन तुमने छोटा भाई कहकर पुकारा था। यदि तुमने कोई अन्याय किया होगा तो उसका उत्तर तुम दोगी, लेकिन मेरी जवाबदेही यही है कि मैं तुम्हारा छोटा भाई हू—तुम्हारा विचार करने का मुझे अधिकार नही है।"

ये बाते सुनकर किरणमयी का मन करने लगा कि कही भागकर एक वार जी भरकर रो ले, लेकिन अपने को संभालकर कहा, "लेकिन बबुआ, समाज तो है?"

सतीश ने बीच मे रोककर कहा, "नही, नही है। जिसके पास रुपया है, जिसके शरीर मे वल है, उसके विरुद्ध समाज नही रह सकता। ये दोनो वस्तुए मुझे कुछ परिमाण मे मिल गयी हैं भाभी।"

उसके बाते कहने के ढग से किरणमयी को हसी आ गयी। फिर कुछ मौन रहकर बोली, "बबुआ, रुपया और शरीर के बल से तुम समाज को भले ही न मानो, लेकिन अपनी अश्रद्धा के साथ से इस पापिष्ठा को बचाओगे किस प्रकार?"

सतीश आवेश के साथ बोल उठा, "मैंने लिखना-पढना नही सीखा है, मैं हू गवार, मूर्ख आदमी भाभी, इतने तर्को का उत्तर भी मैं नही दे सकता। इतनी छान-बीन करके भले-बुरे का हिसाब भी मैं करना नही जानता। और यह क्या सतयुग है कि दुनिया भर के लोग उपेन भैया की भांति युधिष्ठिर बन

जायेगे? यह तो है कलिकाल, अन्याय, कुकर्म तो लोग करेगे ही, इनका लेखा-जोखा लिखकर कौन बैठा हुआ है? मेरा विचार उलटा है, उसे चाहे तुम अच्छा कहो या बुरा कहो भाभी, मैं देखता हू कि कौन क्या काम करता है, हारान भैया की मृत्यु के समय तुम्हारी वह पति-सेवा तो मैंने अपनी आखो से देखी थी। वही तुम अब असती हो जाओगी, इस बात पर मैं मर जाने पर भी विश्वास न कर सकूगा। चाहे जो कुछ भी हो, मैं तुमको लेकर ही जाऊगा। बीमारी ने मुझे जरा सुस्त तो अवश्य बना दिया है, फिर भी इस मुहल्ले के लोगो मे सामर्थ्य नही है कि तुमको सहायता देकर मेरे हाथ से तुम्हे छीन ले। कल तुमको कन्धे पर उठाकर मैं जहाज पर अवश्य चढाऊगा चाहे तुम कितनी ही आपत्ति क्यो न करो।"

किरणमयी हस पडी। अपराध की समस्त कालिमा धुल के मिट गयी। सरल स्निग्ध हसी की छटा से समूचा मुह खिल उठा। क्षणभर के लिए जान पडा, मानो कोई भी निन्दनीय कार्य उसने नही किया, केवल रुष्ट होकर दो दिन के लिए ससुराल से अपने मैके चली आयी थी। स्नेहमय देवर लौटा ले जाने के लिए प्रार्थना कर रहा है।

उसी समय किवाड के बाहर से पुकारकर दिवाकर कमरे मे आया। उसने कहा, "मुझे तुमने बुलवाया था?" यह कहने के साथ ही खटिया पर उसकी दृष्टि पडी। वह इस प्रकार चौंक पडा मानो भूत देखने से कोई चौंक पडता है। बाहर के उजाले से कमरे के अन्धकार मे प्रवेश करकेउसने पहले सतीश को नही देखा था। अब पहचानकर उसका चेहरा पीला पड गया।

सतीश ने हँसकर कहा, "मैं उपेन भैया नही हूँ, सतीश भैया हूँ—कुकर्मों का राजा। बैठ, उपेन भैया का परवाना लेकर आया हूँ, कल प्रात ही साढ़े छ बजे के पहले पहला जहाज छूटेगा, स्मरण रखना।"

दिवाकर वही बैठ गया दोनो घुटनो के बीच मुह छिपाकर बडी देर के बाद उसने कहा, "मैं न जाऊगा, सतीश भैया!"

सतीश ने कहा, "तेरी मिट्टी जायेगी। उपेन भैया की आज्ञा है-जीवित या मृत विद्रोही दिवाकर का सिर चाहिए ही।"

दिवाकर ने कहा, "तो उसका सिर ही ले जाना सतीश भैया। उसे मैं सबेरे छ. बजे के भीतर ही लाकर दे दूगा।"

सतीश ने एक प्रकार की आवाज निकालकर कहा, "अरे बाप रे! लडके का क्रोध तो देखो! लेकिन तू जाएगा क्यो नही?"

दिवाकर ने कहा, "तुम क्या पागल हो सतीश भैया? ससार मे क्या मेरा कोई हक है जिसके पास मैं अब जाकर सिर ऊचा करके खडा हो सकू?"

सतीश ने कहा, "ठीक है। सिर ऊचा करने मे आपत्ति हो तो झुकाकर ही खडा रहना। लेकिन तुझे जाना तो होगा ही। अरे तूने ऐसा कौन-सा बहुत बुरा काम किया है कि लज्जा से मरता जा रहा है? इतने ही दिनो मे जो सब विचित्र कर्म मैंने कर डाले है, वहा चलकर, उन सबका हाल सुन लेना। पञ्चमकार तब सब। भूतसिद्धि, बैताल सिद्धि—इन सबका नाम तुमने सुना है कभी? ले, चल, उपेन भैया अब वही उपेन भैया नही हैं। हम पाच आदमियो ने मिलकर उनको एक तरह से ठीक बना दिया है। भाभी, जो कुछ ले चलना है, ले लो मैं टिकट खरीदने जा रहा हूं।"

उसकी अन्तिम बात किरणमयी के कानो मे खटक गयी। उसने पूछा, "ठीक बना देने का क्या अर्थ है बबुआ?"

सतीश ने हसकर कहा, "चलने पर ही तुम देख सकोगी भाभी।"

उसकी सूखी हसी को लक्ष्य करक्षणभर मौन रहकर किरणमयी ने कहा, "लेकिन मैंने तो तुमको कह दिया बबुआ, मैं न जा सकूगी।"

दिवाकर ने भी दृढ स्वर से कहा, "मैं भी किसी प्रकार नही जाऊगा सतीश भैया, तुम झूठमूठ मेरे लिए रुपया नष्ट मत करो।"

सतीश उठने जा रहा था, हताश भाव से बैठ गया। उपेन्द्र की बीमारी की बात अब तक उसने छिपा रखी थी, लेकिन अब छिपा रखना सम्भव नही रहा। उसने कहा, "मैं बडे गर्व से साथ कह आया हू कि

उन लोगो को लाऊगा ही। मेरी बात तुम लोग भले ही न रखो, लेकिन उन्होने क्या तुम लोगो के प्रति कोई ऐसा बडा अपराध किया है, कि उनको यह कष्ट तुम लोगो को देना पडेगा? मेरे अकेले लौट जाने से उनको कितना दु ख होगा, यह तो मैं अपनी आखे से ही देख आया हू। दिवाकर, ऐसा अधर्म मत कर रे। तुझे देखने के लिए ही उनका प्राण अभी अटका हुआ है, नही तो बहुत पहले ही चला गया होता।"

दोनो सुनने वाले एक ही साथ धीरे से चीख उठे।

सतीश कहने लगा, "इसी माघ के अन्त मे यक्ष्मा रोग से जब पशु भाभी स्वर्ग को सिधार गयी, तभी समझ गया कि उपेन भैया भी चले जायेगे। लेकिन उनके जाने की इतनी शीघ्रता है यह बात हम लोगो मे मे कोई भी नही जानता था। वे बराबर से ही कम बाते करते हैं, स्वर्ग का रथ बिलकुल ही दरवाजे पर न आने तक उन्होने एक भी खबर नही दी कि उनका सब कुछ तैयार है। तुझे डर नही है रे दिवाकर, निर्भय होकर तू चल। हमारे वह उपेन भैया अब नही हैं। अब सहस्रो अपराधो को भी वह अपराध नही मानते, केवल मुसकराते रहते हैं। छि ! छि इस धूल-बालू पर इस प्रकार तुम मत लेटो भाभी। अच्छा, हम लोग बाहर जा रहे हैं, तुम लेटो, उठो मत।" यह कहकर झटपट उठकर सतीश उसके पावो को जोर से छूकर ही समझ गया कि किरणमयी बेहाश होकर पडी हुई है, स्वेच्छा से भूमि पर लेटी हुई नही है।

सतीश और दिवाकर दोनो ही एक-दूसरे के मुह की ओर निहारते स्तब्ध भाव से खडे रहे। कुछ देर बाद सतीश ने धीरे से कहा, "ठीक यही भय था मुझे दिवाकर! मैं जानता था कि यह खबर वे सह न सकेगी। दिवाकर ने चकित होकर सतीश के मुह की ओर देखा। सतीश ने आश्चर्य मे पडकर कहा, "इतने निकट रहकर भी मुझे मालूम नही हुआ दिवाकर? और भय होता है कि सम्भवत भाभी को मार डालने के लिए ही ले जा रहा हू। लेकिन तो भी ले जाना ही पडेगा। इस ससार मे दो आदमी इस शोक को सह न सकेगे। लेकिन एक तो स्वर्ग मे हैं, और दूसरी लेकिन जा, तू पानी ले आ दिवाकर। मैं हवा करता हू, यह क्या रे! तू कुछ बोलता क्यो नही?"

एकाएक दिवाकर सिर से पैर तक काप उठा। दूसरे क्षण वह अचेतन किरणमयी के पैरो पर औंधा होकर कहने लगा, "मैं सब समझ गया हू भाभी, तुम मेरी पूजनीया गुरुजन हो। तो फिर क्यो इतने दिन छिपाकर तुमने मुझे नरक मे डुबोया। मैं इस महापाप से कैसे छुटकारा पाऊगा भाभी!"

चौवालीस

उपेन्द्र ने कहा था, "सावित्री, मेरी इन थोडी-सी हड्डियो को गगाजी मे डाल देना बहिन, बहुत-सी ज्वालाओ से जल रहा हू, कुछ भी तो ठण्डा हो सकूगा।"

सावित्री को वह आजकल कभी तो 'तुम' कभी 'तू' जो भी मुह से निकलता था, वही कहकर पुकारते थे। सावित्री ने उनकी इस अन्तिम इच्छा और अन्तिम चिकित्सा के लिए कुछ दिन हुए, कलकत्ता के जोडासाको मुहल्ले मे एक मकान किराये पर ले रखा था। आज सन्ध्या के बाद वर्षा की एक झडी हो गयी थी, पर आकाश के बादल फटे नही थे। उपेन्द्र ने बहुत देर के बाद अपनी थकी हुई दोनो आंखे खोलकर कहा, "सामने की खिडकी तू जरा खोल दे बहिन, उस बडे तारे को एक बार देख लू।"

सावित्री ने उसके माथे पर से रूखे बालो को धीरे-धीरे हटाते हुए मृदु स्वर से कहा, "शरीर मे ठण्डी हवा लगेगी भैया।"

"लगने दो न बहिन! अब उससे मुझे भय क्या है?"

आज ही केवल उसको भय नही है ऐसा नही, जिस दिन सुरबाला चली गयी, उसी दिन से नही है, लेकिन इसीलिए सावित्री का भय तो दूर नही हुआ है। 'जब तक सासा तब तक आशा' सम्भवत यही उसे मान्य है। इसी करण जबकि मृत्यु सिरहाने के पास उसके साथ समान आसन जमाकर बैठ गयी है, तब भी वह तुच्छ हवा नाक के अन्दर आने देने का साहस नही कर पा रही है। अनिच्छुक कण्ठ से उसने

कहा, लेकिन तारा तो दिखाई नही पडता भैया, आकाश मे तो बादल छाये हुए हैं।''

उपेन्द्र ने दोनो मलिन नेत्रो को उत्साह से विस्फारित करके कहा, ''बादल? आह! असमय का बादल वहिन, खोल दे, खोल दे एक बार देख लू, फिर तो देख न सकूगा।''

बाहर ठण्डी हवा बडे वेग से बह रही थी। सावित्री ने ललाट पर, छाती पर हाथ रखकर देखा, ज्वर बढ रहा है। प्रार्थना करके वह बोली, ''अच्छे हो जाओ, बादल तो कितने ही देखोगे भैया। बाहर आधी चल रही है, आज मैं खिडकी न खोल सकूगी।''

उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उपेन्द्र ने रुष्ट होकर कहा, ''भला चाहती है तो खोल दे सावित्री, नही तो बरसात के दिनो मे जब बादल उठेगे, तब तू रो-रोकर मरेगी यह मैं कहकर ही जा रहा हू। मैं अब देखने का समय न पाऊगा।''

सावित्री ने फिर कोई प्रतिवाद नही किया। उसने एक बूद आखो का आसू पोछकर उठकर खिडकी खोल दी।

उस खुली खिडकी के बाहर उपेन्द्र टकटकी बाँधे देखते रहे। आकाश के किसी अदृश्य छोर से रह-रहकर बिजली चमक उठती थी। उसकी चमक की छटा से सामने के गाढ़े काले बादल झलक उठते थे। उन्हे देखते-देखते उपेन्द्र की साध किसी प्रकार भी मिट नही रही है, ऐसा जान पड रहा था।

सावित्री स्वय भी एक छड पकडकर उसी ओर देखती हुई मौन खडी थी। उपेन्द्र की दृष्टि एकाएक उस पर पड गयी तो मन ही मन हसकर वह बोले, ''बन्द कर दे, बन्द कर दे, खिडकी बन्द करके मेरे पास आकर बैठ। लेकिन इतनी माया तो अच्छी नही है बहिन! तनिक भी हवा शरीर पर तू लगने देना नही चाहती, लेकिन मेरे चले जाने पर तू क्या करेगी बता तो?''

सावित्री खिडकी बन्द करके पास आकर बैठ गयी। बोली, ''तुम तो कह चुके हो कि मुझे काम देकर जाओगे। मैं जीवनभर उसी को करती रहूगी। तुम मेरी आखो के सामने ही दिन-रात रहोगे?''

''कर सकोगी?''

सावित्री ने धीरे से कहा, ''कर क्यो न सकूगी भैया। तुम्हारी बात के लिए तो वह 'नही' न कहेगे।''

उपेन्द्र ने हसते हुए कहा, ''वह कौन? सतीश?''

सावित्री सिर झुकाये मौन ही रही।

उपेन्द्र ने उसके सलज्ज मौन मुख की ओर देखकर लम्बी सास लेकर कहा, ''सावित्री, सतीश मेरा कौन है, यह दूसरो के लिए समझना कठिन है। बाहर से जो दिखाई पडता है, उससे तो वह मेरा साथी है, मेरा आजन्म का सखा है। लेकिन जो सम्बन्ध दिखाई नही पडता, उससे सतीश मेरा छोटा भाई है, मेरा शिष्य है, मेरा सदा का सेवक है। उसी रात को बहिन, यदि तू अपना पूरा परिचय देकर हम लोगो को लौटा ले जाती तो सम्भव है, मेरा अन्तिम जीवन इतने दिन दु ख मे न बीतता। दिवाकर भी सम्भवत मुझे इतनी व्यथा देने का सुयोग न पा सकता।''

अश्रुभरे नेत्रो से सावित्री ने कहा, ''मैंने तुम लोगो को लौटाना चाहा था भैया, लेकिन किसी प्रकार भी उन्होने मुझे जाने नही दिया, दोनो चौखटो पर हाथ रखकर मेरा मार्ग उन्होने रोक दिया। कहा, ''उनके सामने जाने से उनका अपमान करना होगा।''

''उनकी इच्छा।'' कहकर उपेन्द्र चुप हो गये।

घर पर उपेन्द्र के पिता शिवप्रसाद गठिया रोग से शय्या पर पडे हुए थे। गृहस्थी का काम-धन्धा छोडकर माहेश्वरी उनके साथ न आ सकी थी। लेकिन मझले भाई अभिभावक बनकर कलकत्ता के डेरे पर थे। उनके और एक-दूसरे मनुष्य के पैरो की आहट सीढी पर सुनाई पडी।

दूसरे ही क्षण वह कविराज को साथ लिए कमरे मे आ गये। कविराज ने उपेन्द्र की नाडी देखकर ज्वर की परीक्षा करके ज्यो ही दवा बदलने का प्रस्ताव किया, त्यो ही उपेन्द्र ने हाथ जोडकर कहा, ''इसके लिए तो मुझे क्षमा करे वैद्यजी। आपसे छिपा तो कुछ नही है। तो फिर जाते समय और क्या दु.ख दीजिएगा?''

बूढ़े चिकित्सक के नेत्र भर आये। बोले, ''हम लोग हैं चिकित्सक, अन्तिम क्षण तक हमे निराश न

उपेन्द्र कोई बात कहने ही जा रहे थे, लेकिन मुह की बात मुह मे ही रह गयी। अघोरमयी किसी प्रकार बीमारी की खबर पाकर उपेन्द्र के गुणो की प्रशसा करते हुए रोते-रोते कमरे मे आ गयी।

इस बीमारी की भयकरता की उनको विशेष कुछ धारणा नही थी। फिर भी, यह कहकर वह विलाप करने लगी, "इस मुझ महजली का जबकि भीख मागते फिरने का समय आ गया है, और जबकि बिना खायें सूखकर मर जाना ही अनिवार्य हो गया है तब उपेन्द्र की सभी विपत्तियो को लेकर मैं ही क्यो नही मर जाती!"

उपेन्द्र ने इतने द ख मे भी हसकर कहा, "तुमको खाना क्यो न मिलेगा मौसी?" सावित्री को दिखाकर कहा, "मेरे जाने पर भी, अपनी इस बहिन को रख जाता हू, यह तुम लोगो को कष्ट न देगी।"

अभी तक सावित्री पर नजर नही पडी थी अघोरमयी की। उपेन्द्र के कहने पर कठोर परिश्रम और मानसिक पीडा के कारण म्लान, श्रीहीन अपरिचित बहिन की ओर देखकर उसके कौतूहल व विस्मय की सीमा नही रही, लेकिन निवृत्ति के लिये उन्होने मुह खोला ही था कि काम के बहाने सावित्री कमरे से चली गयी।

वृहस्पतिवार को दिन मे दस-ग्यारह बजे सतीश जहाजघाट पर उतरकर गाडी किराये पर ले रहा था। उसने देखा कि बिहारी खडा है। मालिक को देखकर उसने पास आकर प्रणाम किया। किरणमयी पास ही खडी थी। बिहारी को सन्देह हुआ कि यह वह ही हैं! उसने इसके पहले कभी देखा नही था, केवल सुना था कि वह असाधारण सुन्दरी हैं! लेकिन मैले-कुचैले कपडे पहिने इस साधारण स्त्री मे सौन्दर्य का विशेष कुछ भी न देखकर उसने समझा कि यह कोई दूसरी ही स्त्री है। उसने धीरे-धीरे कहा, "माजी, बाबू ने कहा है, यदि वह बहू आ गयी हो तो उसे और कही रखकर दो आदमी डेरे पर आयें, उसको साथ लेकर न आयें।"

सतीश भूख-प्यास और थकावट से यो ही द खी हो रहा था। बिहारी का यह अपमानजनक प्रस्ताव किरणमयी के मुह पर ही सुनकर वह जल उठा, बोला, "क्यो? उनको पेड़ के नीचे छोडकर हम लोग उनके घर जायेगे? जाकर कह दे, हम लोग वहा जाना नही चाहते।"

बिहारी का मुख उदास हो गया। किरणमयी ने निकट आकर रूखी हसी हँसकर कहा, "यह तो ठीक बात है बबुआ। इसमे रुष्ट होने की तो कोई बात ही नही है। अब बाबू कैसे हैं बिहारी?'

बिहारी के उत्तर देने के पूर्व ही सतीश ने और भी रुष्ट होकर कहा, "तुझे किसने यह बात कहने के लिए भेजा है? सावित्री ने? देखता हू, उसका दिमाग बहुत चढ गया है।"

सावित्री के प्रति इस कडी बात को सुनकर बिहारी ने व्यथित होकर किरणमयी के मुह की ओर देखकर कहा "आप ठीक कह रही हैं माजी। बाबू बिना समझे ही क्रोध कर रहे हैं' इस सब बीमारियो मे कोई भी क्या वहा जाना चाहेगा? उपेन्द्र बाबू ने कल रात को सावित्री को बुलाकर स्वय ही कहा था, डरने की बात नही है, किरणमयी मेरी बीमारी का नाम सुनकर इस मकान मे ही क्यो, इन मुहल्ले मे भी न आयेगी। सावित्री की तरह सभी को मरने जीने ।"

किरणमयी का मुख वेदना से एकदम विकृत हो गया। उसने कहा, "यह बात क्या बाबू ने कही थी बिहारी?"

बिहारी सिर हिलाकर उत्साह से कोई बात कहने ही जा रहा था कि सतीश ने धमकाकर कहा, "तू चुप रह। अभागा कही का।"

धमकी खाकर बिहारी सहम गया। किरणमयी ने कहा, "उस पर रुष्ट होने से क्या होगा बबुआ?" उसके बाद बिहारी की ओर देखकर कहा,-'अपने बाबू से कहो, भय की बात नही है। उसकी आज्ञा पाये बिना मैं वहां न जाऊगी।" सतीश से कहा, "बबुआ, आज मुझे किसी होटल मे रखकर क्या कोई छोटा-सा मकान किराये पर नही मिल सकता?"

सतीश ने उत्तेजित होकर कहा, "कलकत्ता शहर मे मकान की क्या चिन्ता है भाभी! एक घण्टे मे सब ठीक कर दूगा। आ रे दिवाकर, जरा जल्दी-जल्दी चल।" यह कहकर उसने किरणमयी को गाडी पर चढ़ा दिया और स्वय कोचबक्स पर चढ बैठा।

गाडी के चले जाने पर क्षुब्ध और लज्जित विहारी उदास मुख से धीरे-धीरे मकान की ओर चला गया।

सुविधा मिलते ही सावित्री भोर में झटपट गगाजी मे जाकर डुबकी लगा आती थी। सतीश के लौट आने के बाद, इधर लगाकर कई दिनो से वह प्रतिदिन ही गगा स्नान करने जाती है।

चार-पाच दिन बाद, एक दिन सबेरे स्नान-पूजा करके उठते ही उसने देखा, फाटक पर कुछ हल्ला-गुल्ला मचा हुआ है। एक बूढे ब्राह्मण स्नान करने के बाद नामावली ओढे मन्त्र जपते-जपते घर जा रहे थे, कही से एक पगली ने आकर उनका मार्ग रोक लिया। कही छूकर गगा-स्नान का सब पुण्य वह मिट्टी मे न मिला दे, इस भय से बूढे घबरा गये। पगली विनय के साथ अद्भुत प्रश्न कर रही थी, "महाराज, आप भगवान पर विश्वास करते हैं? उनको पुकारने से वे आते हैं? कैसे आप लोग उन्हे पुकारते हैं? मै पुकार नही सकती? मुझे विश्वास क्यो नही होता?"

प्रत्युत्तर मे ब्राह्मण छूतछात के भय से सकुचित होकर कह रहे थे, "देख, अभी पहरेदार को पुकारता हू। राह छोड दे।"

दो-चार प्रौढ़ा स्त्रिया भी खडी होकर कौतुक देख रही थी। उनमे से किसी ने कहा, "यह पागल नही है। इसने रातभर शराब पी है।"

यह सुनकर पगली ने कातर होकर कहा, "मैं भले घर की लडकी हूं, मैं शराब नही पीती। वही तो मेरा घर है। मैं केवल तुम लोगो से हाथ जोडकर पूछती हू, क्या सचमुच ही भगवान हैं? तुम लोग क्या उनका चिन्तन कर सकती हो, उनकी भक्ति कर सकती हो? मैं क्यों नहीं कर सकती? मैं परसो से उनको कितना पुकार रही हू।" यह कहते-कहते उसकी दोनों आखो से झर-झर आंसू बहने लगे।

सावित्री ने भी उसे पागल समझा, लेकिन फिर भी, इस अपरिचिता उन्मादिनी के अश्रुजल से भीगी हुई व्याकुल प्रार्थना उसके सैकडों दु खो को वेदना से परिपूर्ण हृदय पर मानो हाहाकार करके जा पडी और पलभर मे उसकी भी दोनो आखें आसू से भर गयी। पगली की दृष्टि एकाएक इस ओर पडते ही बूढे को छोडकर सावित्री के सामने आकर वह बोली, "तुम भी तो सन्ध्या-वन्दना करती हो, तुम मुझे बता सकती हो?"

चारों ओर भीड हो रही है, देखकर सावित्री ने झट से उसका हाथ पकड लिया। ज्यों ही उसने हाथ पकड लिया त्यों ही उसने चौंककर कहा, "आपने मुझे छू दिया।"

सावित्री ने कहा, "इसमें कोई दोष नही है। आप मेरे घर चलिए, मार्ग में चलते-चलते आपका उत्तर दूगी।" यह कहकर उस अभागिनी का हाथ पकडे वह सडक तक चली गयी।

दो-एक बात कहते ही समझ गयी कि यह स्त्री पागल नही है, लेकिन किसी ओर मन लगाने योग्य, मन की अवस्था भी इसकी नही है। बातचीत के बीच में ही वह एकाएक बोल उठी, "मैं भगवान से दिन-रात प्रार्थना करती हू कि उनके प्रति मैंने अपराध किये हैं इसीलिए उनकी बीमारी मुझे देकर उनको अच्छा कर दो। अच्छा बहिन, ऐसा क्या हो सकता है? उपवास करके दिन-रात पुकारते रहने से क्या वास्तव मे ही उनको दया आती है? तुम जानती हो?" कहकर उसने तीव्र दृष्टि से सावित्री के मुह की ओर देखा।

सावित्री की समझ मे नही आया कि इसका क्या उत्तर देना चाहिए। उसने कहा, "जाती हूं, गगास्नान करके आती हू। गगा-स्नान करने से बहुत पाप कट जाते हैं।" कहकर उत्तर के लिए प्रतीक्षा न कर चली गयी।

पैंतालीस

सावित्री के नेत्रो से सावन की धारा की भांति आसू की धारा बह रही है। आज उसकी ही गोद पर उपेन्द्र ने मृत्युशय्या बिछा दी है। दुबले-पतले ठण्डे पावों पर मुह रखकर दिवाकर चुपचाप भीतर ही भीतर रोता हुआ अपने हृदय का असह्य दु ख प्रकट कर रहा है। उसका परिताप, उसकी व्यथा

अन्तर्यामी के अतिरिक्त और कौन जानेगा? उस ओर कौन जानेगा? उस ओर कमरे मे माहेश्वरी भूमि पर पडी हुई करुण कण्ठ से रो रही हैं। इस घोर दु ख से भरे शोक मे केवल सतीश ही अकेला स्थिर भाव से बैठा हुआ है।

आज प्रात काल से ही उपेन्द्र के मुह से रह-रहकर रक्त गिर रहा है। हजार प्रयत्न करने पर भी उसे रोका न जा सका। सास क्रमश भारी और तीव्र होती जा रही थी। उसी का दुस्सह क्लेश सहकर उपेन्द्र नेत्र बन्द किए चुपचाप पडे हुए थे। एक बार नेत्र खोलकर सावित्री के मुह की ओर देखकर उन्होने अस्फुट स्वर से पूछा, "रात कितनी है बहिन, यह क्या बीतेगी नही?"

सावित्री ने आचल से उनके होठो पर से रक्तरेखा को पोछकर झुककर कहा, "अब अधिक नही है भैया! क्या बहुत कष्ट हो रहा है?"

उपेन्द्र ने कहा, "नही बहिन, सबको जैसा होता है वैसा ही हो रहा है, अधिक क्यो होगा?"

जरा चुप रहकर उन्होने इसी प्रकार कहा, "सतीश, भाभी का क्या पता नही लगा?"

आज चार दिनो से किरणमयी एकदम लापता है। कलकत्ता पहुचने के दिन ही सतीश पास ही एक मकान किराये पर लेकर एक नौकरानी रखकर सब आवश्यक प्रबन्ध ठीक कर आया था। लेकिन उपेन्द्र की बीमारी बहुत बढ जाने से वह दो-तीन दिनो तक स्वयं आकर खोज-खबर ने ले सका था। तीन दिनो के बाद जाकर उसने देखा कि, किरणमयी ने किसी वस्तु को छुआ तक नही है। नयी हाड़ी खरीदकर वह जहा रख आया था, वहा उसी अवस्था मे पडी हुई है। चूल्हे मे कालिख का दाग भी नही है।

नौकरानी ने आकर कहा, "काम किसका करूं बाबू? बहू उस दिन जो आयी, खिडकी की छड पकडे राह की ओर निहारती हुई बैठी रही, फिर तो वह उठी ही नही, स्नान भी नही किया, मुह मे पानी तक भी नही डाला। बिछाया बिछौना पडा रहा, सोई भी नही। उसके बाद कल सवेरे से तो उसे देख भी नही रही हूं। साज-सामान को जो कुछ करना हो करो बाबू, मैं सूने घर मे पहरा न दे सकूगी।"

यह सुनकर सतीश माथे पर हाथ रखकर थोडी देर तक बैठा रहा। अन्त मे दासी के हाथ मे और पांच रुपये देकर लौट आया। तभी से आदमी भेजकर पता लगाने मे उसने त्रुटि नही की, लेकिन कुछ भी फल नही हुआ।

सभी बाते उपेन्द्र के कानो तक पहुच चुकी थी।

अत्यन्त व्यथा के साथ बीच-बीच मे सावित्री के मन मे यह बात उठ खडी होती थी कि उस दिन प्रात.काल गगाघाट पर उसने जिसे देखा था, कही वही किरणमयी तो नही है? लेकिन किरणमयी तो असाधारण सुन्दरी है! उस पगली में भी सुन्दरता थी, लेकिन उसे सुन्दरी तो कहा नही जा सकता। लेकिन वह क्यो चली गयी, कहां गयी, किसलिए गयी?

उपेन्द्र के उत्तर में सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "नही।"

फिर उन्होने कोई प्रश्न नही किया और दूसरे ही क्षण वह तन्द्रा से आच्छन्न हो गये। इस प्रकार शेष रात बीत गयी।

दिन मे दस बजे के लगभग फिर एक बार नेत्र खोलकर, गौर से देखकर, मानो पहचानकर वह क्षीण कण्ठ से बोले, "यह कौन है, सरोजिनी है?"

सरोजिनी भूमि पर घुटनो के बल बैठकर बिछौने मे मुह छिपाकर रोने लगी। उपेन्द्र ने धीरे-धीरे दाया हाथ उठाकर उसके माथे पर रखकर कहा, "तुम आ गयी बहिन? तुमको ही मैं मन ही मन ढूढ रहा था, लेकिन किसी प्रकार भी स्मरण नही कर पा रहा था—आज न आने से सम्भवत. भेट भी न होती।" यह कहकर वह मानो कुछ देर तक कोई चिन्ता करने लगे। स्पष्ट ही ज्ञात हो गया कि अब सभी बाते स्मरण करने की शक्ति ही नही है। एकाएक मानो स्मरण पडते ही उन्होंने पुकारा, "सतीश कहा है रे?"

सतीश उस ओर की खिडकी पकडे बाहर की ओर देखता हुआ चुपचाप खडा था। पास आने पर उपेन्द्र ने कहा, "तुम लोगो का ब्याह आखो से देख जाने का समय नही मिला सतीश, लेकिन मेरी इस लक्ष्मी रूपिणी बहिन को तू कभी दु ख नही देना। अपना हाथ एक बार दे तो रे।" यह कहकर उन्होने कंकाल सदृश हाथ को ऊपर उठाया। सावित्री के झुके मुंह की ओर देखकर क्षणभर के लिए सतीश की

छाती धडक उठी। लेकिन दूसरे ही क्षण उपेन्द्र के कापते हुए हाथ को अपने वलिष्ठ दायें हाथ से पकड लिया।

उपेन्द्र ने मन ही मन जगत्तारिणी की बात स्मरण करके कहा, "तू सरोजिनी को तो जानता है। उनको मैंने वचन दिया था कि अपने सतीश भाई को मैं तुमको दूगा। देखना रे, मेरे मर जाने के बाद कोई यह बात न कह सके कि तूने मेरी बात नही मानी।"

सतीश अपने आसू रोक न सका। रोकर बोला, "नही उपेन भैया, कोई भी यह बात न कहेगा कि तुम्हारी बातो की अवज्ञा मैंने की है, लेकिन फिर भी छिपाने से तो काम न चलेगा—सभी बातें खोलकर बता देने की तो मुझे आवश्यकता है। मैं अच्छा नही हू, मुझमे बहुत से दोष हैं, मैं बहुत से अपराधी से अपराधी हू—इस पर भी किस प्रकार सरोजिनी ग्रहण करेगी। बल्कि तुम मुझे यह अधिकार देकर जाओ कि किसी के भय से, किसी लोभ से, किसी दुर्बलता से उसको मैं अस्वीकार न करू जिसने मुझे प्यार करना सिखाया है।" यह कहकर उसने ज्योंही सावित्री के मुह की ओर मुह घुमाया, चारो आखे मिल गयी। लेकिन उसी क्षण दोनो ने आँखे झुका ली।

उपेन्द्र हस पडे, बोले, "आज भी क्या वह बात मुझे जान लेने को शेष है सतीश? मैं सब जानता हू। सब जानकर ही मैं तुम लोगो को एक करके जाना चाहता हू।"

सतीश बोला, "लेकिन मुझे लेकर सरोजिनी सुखी हो सकेंगी?"

उत्तर देने की इच्छा से उपेन्द्र ने सतीश के मुह की ओर देखा। देखते ही सावित्री उच्छ्वसित आवेग से बोल उठी, "यह भार तो मैंने अपने ऊपर ले लिया भैया। तुम निश्चिन्त रहो।"

उपेन्द्र चुप रहे। वह केवल उसके मुह की ओर ताकते रहे।

कुछ देर बाद बोले, "आसक्ति का बधन अब तुम्हारे लिए नही है सावित्री। दुर्भाग्य ने यदि तुमको कुल के बाहर ही निकाल दिया है बहिन, तो तुम फिर उसके भीतर जाने की चाह मत करना, मेरा अनुरोध है।"

सुनकर सावित्री पत्थर की मूर्ति की भांति नेत्र झुकाए बैठी रही। आज सतीश एक और का है, उस पर उसका तनिक भी अधिकार नही रहा। उसकी भावनाओ को, उसकी वासनाओ की उसके परम सुख की, चरम दुःख की, उसकी दुस्सह वेदना की आज उसके नेत्रों के सामने ही समाप्ति हो गयी, लेकिन उसने लम्बी सास तक भी न निकलने दी। व्यथा से छाती के अन्दर गठन पैदा होने लगी। लेकिन सब सहने वाली वसुमती जैसे अपने हृदय की दुर्गम अग्नि ज्वाला को सहती है ठीक उसी प्रकार सावित्री शांत मुख से सब सहकर स्थिर बैठी रही।

उपेन्द ने कहा, "मैं समझ रहा हू बहिन, लेकिन भार सभाल न सकती तो क्या मैं तुझे यह भार दे जाता?"

प्रत्युत्तर मे सावित्री ने केवल उनके माथे के ऊपर पडे हुए बालो को हटा दिया।

एकाएक सतीश चिल्ला उठा, "ऐ, यह तो भाभी हैं।"

सावित्री ने चौंककर मुह उठाकर देखा, "यह तो वही गगाघाट की पगली है, बहुत धीरे धीरे कदम बढ़ाती हुई अत्यत सावधानी से कमरे मे आ रही है। पलभर मे कमरे के लोग चकित हो गये।

किरणमयी के रूखे बाल मुह पर, ललाट पर, पीठ पर, सर्वत्र बिखरे पडे थे। साडी फटी हुई मैली थी, चितवन शून्य थी—यह मानो उन्माद शोक-मूर्ति धारण करके एकाएक कमरे मे आ खडी हुई है।

सतीश की ओर देखकर धीरे-धीरे कहा, "खोजते-खोजते मुझे मकान मिलता ही नही था बबुआ। कितने ही लोगो से मैंने पूछा—कोई भी न बता सका कि मकान कहा है। आज मैं कालीबाडी से आ रही थी, भाग्य से बिहारी से भेट हो गयी—इसी से उसके पीछे आ सकी?"

उपेन्द्र की ओर घूमकर उसने पूछा, "आज कैसे हो बबुआजी?"

उपेन्द्र ने हाथ हिलाकर बताया, "अच्छा नही हू।"

किरणमयी ने अत्यन्त वेदना के साथ कहा, "आह! मैं मर जाऊ। सुरबाला अब नही है, सुनकर रोते-रोते मैं मर रही हू। वही तो मेरी गुरुआनी थी। उसी ने तो मुझसे कहा था, भगवान हैं।'

एकाएक उसकी आखे दिवाकर के पीले चेहरे पर जा पडी। तुरत ही बोल उठी, "अहा! तुम ऐसे लज्जित क्यो हो रहे हो बबुआ, तुमको क्या इन लोगो ने लज्जित किया है?" यह कहकर उसने उपेन्द्र की ओर तीव्र दृष्टि निक्षेप करके कहा, "इसको तुम लोग दु ख मत देना बचुआ, मेरे हाथ मे जैसे तुमने इसे सौप दिया था, उस सत्य को मैंने एक दिन के लिए भी नही तोडा—उसकी प्राणपण से रक्षा करती आई हू। लेकिन, अब मेरे पास समय नही है—फिर तुम लोग इनको वापस ले लो।"

फिर एकाएक शांत होकर स्निग्ध होकर कण्ठ से बोली, "मेरे आंचल में काली माई का प्रसाद बंधा हुआ है बबुआ, थोडा-सा खाओगे? सम्भवत अच्छे हो जाओगे। सुना है, इस तरह कितने ही लोग अच्छे हो गए हैं।"

एक दिन, जिस रमणी के रूप की सीमा नही थी, विद्याबुद्धि का बी अंत नहीं था, यह क्या वही किरणमयी है। आज वह क्या कह रही है, वह स्वयं भी नही जानती!

सतीश और सह न सका 'ओह!' कहकर कमरे से चला गया और इतने दिन बाद उपेन्द्र के नेत्रों से किरणमयी के लिए आसू लुढ़क पडे।

किरणमयी ने झुककर आचल से उन आंसुओ को पोछकर कहा, "ओह! भाभीजी, अच्छी ओ जाओगे।"

सावित्री पर उसकी दृष्टि पडी। उसे अच्छी प्रकार क्षणभर देखकर कहा, "उस दिन गंगाघाट पर तुम्ही से भेट हुई थी न! जरा हट न जाना कि तुम्हारी ही तरह मैं भी बबुआ के पास बैठू!"

सरोजिनी ने उसका हाथ पकडकर कहा, "मुझे तो पहचानती हो?"

किरणमयी ने कहा, "पहचानती क्यो नहीं, तुम तो सरोजिनी हो।"

किरणमयी ने कहा, "चलो भाभी, हम लोग उस कमरे मे चलकर जरा बातचीत करें।" यह कहक वह उसे पास के कमरे मे खीच ले गयी।

कमरे के बाहर जाते ही उपेन्द्र अचेत हो गये। सम्भवत: वेदना और चोट उन्हे असह्य हो गयी थी। किरणमयी वैसे ही उनको गोद मे लिए बैठी रही । पानी तक मुह मे डालने तक वह न उठी।

दोपहर का सारा समय बेहोशी की ही दशा मे बीत गया। लेकिन संध्या के बाद ज्वर बढ़ जाने केसाथ ही साथ उनकी चेतना लौट आयी।

नेत्र खोलते ही उनकी दृष्टि पडी सावित्री पर। क्षीण स्वर से बोले, "तू बैठी हुई है बहिन! तुझे छोडकर जाने की बात स्मरण आते ही मेरी आंखो मे आसू आ जाते हैं सावित्री!"

सावित्री ने रोककर कहा, "मुझे भी अपने साथ-साथ ले चले भैया!"

उपेन्द्र ने उसका उत्तर न देकर सतीश से कहा, "भाभी कहा हैं?"

सतीश ने कहा, "नीचे सो रही हैं। मेरी नजर मे ही हैं।"

"दृष्टि मे ही बराबर रखना भाई, जितने दिनो मे फिर उनका स्वभाव ठीक न हो जाये। लेकिन तुझे कोई भय नही है सतीश। उनके हृदय में कितना बडा आघात दुस्सह हो उठा है, उसे समझने की शक्ति हम लोगों मे नही है, लेकिन वह आघात जितना ही प्रचण्ड क्यो न हो, वह इतनी बडी बुद्धि को चिर दिन आच्छन्न करके न रख सकेगा।"

सतीश बोला, 'यह तो मैं जानता हूँ, उपेन भैया। फिर तुम्हारे दिवाकर का भी भार मैं ही लेता हूँ यदि विश्वास करके तुम दे जाओ?"

प्रत्युत्तर मे उपेन्द्र हसने की चेष्टा करके करवट बदलकर लेट रहे। बहुत-सी बातों ने, बहुत-सी उत्तेजनाओ ने जीवन-दीप के अंतिम बचे-खुचे तेल को भी जलाकर समाप्त कर दिया। थोडी देर में देखा गया मुह से रक्त बह रहा है, सांस है या नही, सदेह की बात है।

सब लोगों ने पकडकर उनको नीचे उतार दिया। उपेन्द्र के निष्छल जर्जर प्राण अपनी सुरबाला की खोज मे निकल पडे।

तभी सभी गला फाड-फाड़कर रो पडे। उनके गगनभेदी श्रेणी से घर कांप उठा। लेकिन नीचे के कमरे में किरणमयी उद्वेग-रहित अपमान से सो रही थी।

❀❀

विराज बहू

हुगली जिले के सप्तग्राम मे नीलाबर और पीताबर नाम के दो भाई रहते थे। उस ओर मुर्दे जलाने, कीर्तन करने, ढोल बजाने और गाजा पीने मे नीलाबर जैसा आदमी कोई नही था। उसके लम्बे और गोरे बदन मे असाधारण शक्ति थी। परोपकार करने के लिए वह गाव मे जितना मशहूर था, अपने गवारूपन के लिए भी उतना ही बदनाम था। किन्तु छोटा भाई पीताबर बिल्कुल दूसरी तरह का आदमी था। वह था दुबला-पतला और नाटे कद का। किसी के घर मरने की खबर सुनते ही शाम के बाद उसका शरीर भय से झनझनाने लगता था। वह अपने भाई जैसा मूर्ख नही था और गवारूपन को पास नही फटकने देता था। सबेरे ही खा-पीकर बगल मे बस्ता दबाकर घर से बाहर निकल जाता और हुगली की कचहरी के पश्चिम की तरफ एक आम के पेड के नीचे आसन जमा देता। दरख्वास्ते लिखकर दिनभर में जो कुछ कमाता, उसे शाम होते ही घर आकर बक्स मे बन्द कर देता। रात को घर के दरवाजे-खिड़किया स्वय बन्द कर देता और स्त्री से बार-बार उसकी जाच कराकर ही सोता था।

चण्डीमण्डप के एक ओर बैठा हुआ नीलांबर आज सबेरे तमाखू पी रहा था। इसी समय उसकी अविवाहित बहिन धीरे-से आकर उसके पीछे घुटने टेककर बैठ गयी और उसकी पीठ मे मुँह छिपाकर रोने लगी। हुक्का नीलांबर ने दीवार के सहारे रख दिया और एक हाथ अन्दाज से बहिन के सिर पर रखकर प्यार से कहा—"सबेरे-सबेरे रो क्यो रही है बहिन?"

हरिमती ने मुँह रगडकर भाई की पीठ पर आसू पोतकर कहा—"भाभी ने मेरे गाल मल दिये और कानी कहकर गाली दी है!"

नीलांबर हसने लगा—"वाह, तुम्हे कानी कहती है? ऐसी सुन्दर दो आँखे रहने पर भी जो कानी कहे, वही कानी है! परन्तु तुम्हारा गाल क्यो मल दिया?"

हरिमती ने रोते-रोते कहा—झूठमूठ।

"झूठमूठ? चलो, पूछू तो"—कहकर हरिमती का हाथ पकडे नीलाबर अदर गये और पुकारा—"विराज बहू!"

बडी बहू का नाम है विराज! नौ साल की उम्र में ही उसकी शादी हुई थी। तब से सभी उसे विराज बहू कहते हैं। इन दिनों उसकी उम्र उन्नीस-बीस साल की होगी। सास के मरने के बाद से इस घर की मालकिन वही है। विराज बहुत ही सुन्दर है। चार-पांच साल पहले उसे एक लडका हुआ था, जो दो-चार दिन बाद सौरी मे ही मर गया। तब से वह नि सन्तान है। वह रसोई बना रही थी। पति की आवाज सुनकर बाहर निकली और भाई-बहिन को एक साथ देखकर जल उठी। कहा—"मुँहजली, उल्टे शिकायत करने गयी थी?"

नीलाबर ने कहा—"क्यों न करे? तुमने झूठ-मूठ ही इसे कानी कह दिया! किन्तु इसका गाल क्यो मल दिया?"

विराज ने कहा—"इतनी बडी हो गयी और सोकर उठी तो न मुँह धोया, न कपडा बदला और जाकर बछडा खोलकर, मुँह बाये खडी-खड़ी देखती रही। एक बूद भी दूध आज नही मिला! इसने तो मार खाने का काम किया है!"

नीलाबर ने कहा—"नही, दूध लाने के लिए दासी को भेज देना चाहिए! अच्छा बहिन, तुमने बछडा क्यो खोला? यह तो तुम्हारा काम नही है!"

भाई के पीछे ही खडी हरिमती ने धीरे से कहा—"मैंने समझा कि दूध दुहा जा चुका है!"

"फिर कभी ऐसा समझा तो दुरुस्त कर दूगी!"—कहकर विराज चौके मे जाने लगी कि नीलाबर ने हसते हुए कहा—"इस अवस्था मे, एक दिन तुमने भी मां का पाला हुआ पक्षी उडा दिया था। यह समझ कर कि पिजडे का पक्षी उड नही सकता है, तुमने पिजडे की खिडकी खोल दी थी। याद है न?"

वह खडी हो गयी। हसकर कहा—"याद है! किन्तु इस उम्र मे नही,—इससे छोटी थी!" और यह कहकर वह काम करने चली गयी।

हरिमती ने कहा—"चलो दादा, बगीचे मे चलकर देखे कि आम पक रहे हैं या नही!"

नीलाबर ने कहा—"चलो, बहिन।"

नौकर ने अन्दर आकर कहा—"नरायन बाबा बैठे हैं!"

नीलाबर झेप गया, धीरे-से कहा—"अभी से आकर बैठ गये?"

विराज ने सुन लिया। जल्दी से बाहर आयी और चिल्लाकर कहा—"चाचा से कह दे, चले जाये!" फिर पति को लक्ष्य करके कहा—"सवेरे ही से यह सब पीना अगर तुमने शुरू कर दिया तो मैं सिर पटक कर प्राण दे दूगी! क्या कर रहे हो आजकल यह सब?" नीलाबर कुछ नही बोले, बहिन का हाथ पकडकर चुपचाप बगीचे मे चले गये।

बगीचे मे एक तरफ—किसी मृतप्राय जीव की अन्तिम सास की तरह, सरस्वती नदी की पतली धारा बहती थी। उसमे सेवार भरा पड़ा था। बीच-बीच मे, पानी के लिए गाव वालो ने कुओ की तरह गड्ढे खोद रक्खे थे। उसके आस-पास सेवार से भरा हुआ छिछला पानी था। तेज धूप के कारण, स्वच्छ पानी के भीतर से वहाँ की जमीन पर ढेरो सीप और घोघे, मणियो की तरह चमक रहे थे। बहुत दिनो पहले, बरसात के पानी के तेज बहाव के कारण, पास ही के समाधि-स्तूप की दीवार से एक काला पत्थर टूटकर वहा जा गिरा था। रोज शाम को इस घर की बहुए उसके एक सिरे पर मृत आत्मा के लिए चिराग जलाकर रख जाती हैं। बहिन का हाथ पकडे हुए नीलाबर उसी पत्थर पर एक ओर आकर बैठ गया। नदी के दोनो किनारो पर आम के घने-बाग और बसवारिया थी। वहाँ बरगद और पीपल के दो-एक पुराने पेड थे, जिनकी शाखाए पानी की सतह तक लटकी हुई थी। न मालूम कब से, कितनी ही चिडियों ने इन डालियो पर अपना घोसला बना रखा है और कितने बच्चो को पाल-पोसकर बडा किया होगा। न मालूम कितने पक्षियो ने इन पेडो के फल खाये होगे और गीत गाये होगे! इन्ही वृक्षो की छाया मे दोनों भाई-बहिन कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे।

हरिमती ने सहसा अपने भाई की गोद की ओर नजदीक खिसककर पूछा—"दादा, भाभी तुम्हें बोष्टम ठाकुर कहकर क्यो बुलाती हैं?"

नीलाबर ने अपने गले की तुलसी-माला दिखलाते हुए हसकर कहा—"मैं बोष्टम हूँ, इसलिए बोष्टम ठाकुर कहती हैं!"

हरिमती को विश्वास नही हुआ। बोली—"वाह, तुम बोष्टम क्यो हो? बोष्टम तो भीख मागते हैं! अच्छा दादा, वे भीख क्यो मागते हैं?"

नीलाबर ने कहा—"उनके पास कुछ नही रहता है, इसीलिए भीख मांगते हैं।"

हरिमती ने भाई की ओर देखते हुए कहा—"बगीचा, तालाब, धान रखने का गोला—कुछ भी नही रहता?"

नीलाबर ने बडे प्यार से, बहिन के सिर के बाल जरा हिला दिये। कहा—"कुछ भी नही! बोष्टम होकर अपने पास कुछ नही रखना चाहिए!"

हरिमती ने पूछा—"तो सभी लोग मिलकर थोडा-थोडा उन्हे क्यो नही दे देते?"

नीलाबर ने कहा—"तुम्हारे दादा ने ही क्या दिया है?"

हरिमती ने कहा—"तो देते क्यो नही, दादा? हम लोगो के पास तो बहुत कुछ है!"

नीलाबर ने हसते हुए कहा—"फिर भी तेरा दादा कभी नही दे सकता है। किन्तु तुम जब राजा की बहू बनोगी तो दे देना!"

छोटी होने पर भी, यह बात सुनकर हरिमती शरमा गयी। अपने भाई की छाती में मुँह छिपाकर

बोली—"जाओ!"

दोनों हाथों से उसे चिपकाकर नीलाम्बर ने उसका माथा चूम लिया। मातृ-पितृहीना इस छोटी बच्ची को वह बहुत प्यार करता था। सात साल पहले, जब यह तीन साल की थी, तभी इसकी विधवा मां इसे बड़ी बहू और बेटे को सौंपकर चल बसी। नीलाम्बर ने ही पाल-पोसकर उसे बड़ा किया है। आवश्यकता पड़ने पर नीलाम्बर ने गांव भर के रोगियों की सेवा की है, मुर्दे जलाये हैं, कीर्तन किया है और गांजा पिया है, किन्तु मां की अन्तिम आज्ञा की अवहेलना उसने कभी नहीं की। ऐसे ही कलेजे से लगाकर उसने हरिमती का लालन-पालन किया है। इसी से मा की तरह अपने दादा की छाती में मुँह छिपाकर हरिमती चुप हो रही।

तभी कहीं से पुरानी दासी ने पुकारा—"पूटी! भाभी दूध पीने के लिए बुला रही हैं आओ।"

पूटी यानी हरिमती ने सिर उठाकर विनती के स्वरों में कहा—"कह दो न दादा कि अभी मैं दूध नहीं पीऊंगी!"

"क्यों नहीं पीओगी बहिन?"

हरिमती ने कहा—"अभी मुझे बिल्कुल भूख नहीं मालूम हो रही है!"

नीलाम्बर ने हसकर कहा—"यह तो मैं समझ गया किन्तु गाल मल देने वाली नहीं समझेगी!"

नौकरानी ने फिर आवाज दी—"पूटी!"

नीलाम्बर ने बहिन को झटपट खड़ा करके कहा—"चली जा बहिन, कपड़े बदलकर जल्दी से दूध पी आ, मैं यहीं हूँ!"

अप्रसन्न भाव से हरिमती धीरे-धीरे चली गयी।

उस दिन दोपहर को, पति के आगे भोजन की थाली रखकर विराज कुछ हटकर बैठ गयी और बोली—"तो तुम्हीं बताओ कि भात के साथ कौन-सी चीज तुम्हें रोज-रोज परसा करूं? तुम यह नहीं खाऊंगा, वह नहीं खाऊंगा, वह भी नहीं खाउंगा और आखिरकार मछली खाना भी छोड़ दिया?"

नीलाम्बर ने कहा—"इतनी सारी तरकारी तो है ही?"

विराज ने कहा—"इतनी सारी कहाँ है? घुमा-फिराकर थोड़-बड़ी और चच्चड़ी* इनसे क्या मर्दों का खाना होता है? शहर तो यह है नहीं कि सभी चीजें मिल जायें। देहात है, यहाँ तो बस तालाब की मछली मिलती है और वह खाना तुमने छोड़ दिया · · अरे पूटी कहाँ गयी? ·· ·चल, पंखा झल! देखो, थाली में अगर आज कुछ छूटा, तो मैं तुम्हारे पैरों पर सिर पटककर प्राण दे दूंगी!"

नीलाम्बर हँसते हुए चुपचाप भोजन करते रहे। बोले नहीं।

विराज झल्ला गयी—"हसते हो? मेरे शरीर मे आग लग जाती है। दिनोंदिन तुम्हारी खुराक घटती जा रही है, कुछ पता है? देखो तो जरा, गले की हड्डी दिखाई देने लगी है।"

नीलाम्बर ने कहा—"मैं सब कुछ देख चुका हूं। यह तुम्हारे मन का वहम है।"

विराज ने कहा—"वहम है? हो नहीं सकता। पता है, एक दाना भी तुम कम खाओ तो मैं बता सकती हूँ। रत्तीभर भी अगर रोग हो, तो बदन पर हाथ रखते ही मैं पहचान सकती हूँ, कुछ पता है? पंखा रखकर जा तो पूटी, चौके मे से अपने दादा के लिए पीने को दूध लेती आ।"

एक ओर खड़ी हरिमती भाई को पंखा झल रही थी। पंखा रखकर वह दूध लेने चली गयी।

विराज फिर कहने लगी—"देखो, नेम-धरम करने के लिए बहुत दिन बाकी हैं। उस घर की मौसी आज आयी थी। उन्होंने कहा कि इतनी छोटी उमर मे मछली खाना छोड़ देने से, आंखो की जोत चली जाती है और देह की शक्ति कम हो जाती है। न, न, यह नहीं होगा। पता नहीं, अन्त मे क्या से क्या हो जाये। मैं तुम्हे मछली खाना न छोड़ने दूंगी।"

नीलाम्बर हसकर । बोले—'अच्छा, अब मेरे बदले में तू ही खूब मछली खाया कर, सब ठीक हो जायेगा।'

---

*बंगाली व्यंजन

विराज चिढ गयी—"भगी-चमारो की तरह फिर वही तू-तकार?"

नीलाबर अप्रतिभ होकर बोले—"याद नही रहता। विराज! बचपन की आदत है, छूटती नही। याद है, कितनी बार मैंने तुम्हारा कान गरम किया?"

विराज ने मुस्कराते हुए कहा—"याद क्यो नही है? मुझे छोटी पाकर तुमने क्या कम अत्याचार किया है? बाबूजी और मा की नजर बचाकर तुम मुझसे कितनी चिलमे चढवाया करते थे। तुम कितने बडे शैतान हो।"

नीलाबर ठहाका मारकर हस पडे। कहा—"आज भी वे सब बाते मुझे याद हैं, किन्तु तभी मैं तुम्हे प्यार भी करने लगा था।"

विराज ने हसी दबाकर कहा—"अब रहने दो, पूटी आ रही है।"

हरिमती ने दूध का कटोरा भाई की थाली के पास रख दिया और फिर पखा झलने लगी। उठकर हाथ धोकर विराज फिर पति के पास आकर बैठ गयी। कहा—"पूटी, पखा मुझे दो। जा, तू खेल।"

पूटी चली गयी। विराज ने पखा झलते-झलते कहा—"सच कहती हूँ, इतनी कम उम्र मे शादी करना ठीक नही।"

नीलाबर ने पूछा—"क्यो? मैं तो कहता हूँ कि लडकियो की शादी बहुत कम उम्र मे ही हो जानी चाहिए।"

विराज ने सिर हिलाकर कहा—"नही। मेरी बात कुछ और है, क्योंकि मैं तुम्हारे हाथ पडी थी। इसके अलावा, मेरे कोई शरारती या दुष्ट नद या जिठानी नही थी। मैं दस साल की थी, तभी मालकिन बन गयी थी। किन्तु औरो का घर भी मैं देखती हूँ। छोटी उम्र मे ही जो बक-झक और मारपीट शुरू हो जाती है, वह बडे होने पर भी यह दोष दूर नही होता। बक-झक होती रहती है, इसीलिए तो अपनी पूटी की शादी की मैं बात ही नही चलाती। नही तो अभी परसो ही राजेश्वरीतल्ला के घोषाल बाबू के घर से, पूटी की शादी के लिए घटकी* आयी थी। वे एक हजार नकद देगे और लडकी जेवरो से लाद दी जायेगी। फिर भी मैं कहती हूँ कि नही, अभी दो साल रहने दो।"

नीलाबर ने विस्मित होकर सिर उठाकर कहा—"रुपये लेकर क्या तुम लडकी बेचोगी?"

विराज ने कहा—"रुपये क्यो लूगी? मेरे घर मे अगर कोई लडका होता तो रुपया देकर हमे भी बहू लानी पडती या नही? मुझे क्या तुम लोगो ने तीन-सो रुपये देकर खरीदा नही था? देवर की शादी मे क्या पाच-सौ रुपया नही देना पडा था? न, न, इन सब बातो मे तुम दखल मत दो। हम लोगो की जो रीति है, वही करूँगी।"

नीलाम्बर ने और भी विस्मित होकर कहा—"यह तुमसे किसने कहा कि हमारी रीति लडकी बेचना है? यह ठीक है कि लड़की वाले को हम देते हैं, किन्तु अपनी लडकी की शादी मे हम एक पैसा भी नही लेते। मैं पूटी का दान करूगा।"

पति के चेहरे का भाव देखकर विराज हस पडी। कहा—"अच्छा, अच्छा, वही करना। अब खा लो, कोई बहाना करके उठ मत जाना।"

नीलाबर भी हसने लगे—"मैं क्या बहाना करके उठ जाता हूँ?"

विराज ने कहा—"उहू, एक दिन भी नही। ऐसा आरोप तो तुम्हारे दुश्मन भी नही लगा सकेगे। इसके लिए मुझे कितने दिन उपवास करना पडा है, यह तो छोटी बहू जानती है। अरे, यह क्या, बस खा लिया?"

पखा फेककर विराज ने दूध का कटोरा जोर से पकडकर कहा—"मेरे सिर की कसम है तुमको, उठो मत। जल्दी जा पूटी, छोटी बहू से दो सदेश तो माग ला। न, न, गर्दन हिलाने से काम नही चलेगा। अभी तुम्हारा पेट नही भरा है। मैया री, मैं कहती हूँ कि अगर उठ गये तो मैं खाना नही खाऊगी! कल रात को एक बजे तक जागकर मैंने सदेश बनाये हैं।।"

---

* शादी तय करने वाली।

दौडती हुई हरिमती गयी और एक तश्तरी मे बहुत से संदेश लाकर नीलाबर के सामने रख दिये।

नीलाबर ने हसते हुए कहा—"अच्छा बताओ, इतने सदेश क्या मैं अकेला खा सकता हूँ?"

तश्तरी की ओर देखने के बाद विराज ने सिर झुकाकर कहा—"बातचीत करते-करते धीरे-धीरे खाओ, खा सकोगे।"

"तो खाना ही पडेगा?"

विराज ने कहा—"हा। अगर मछली खाना छोड दोगे तो ये चीजे कुछ अधिक मात्रा मे खानी ही पडेगी।"

तश्तरी करीब खीचकर नीलाबर ने कहा—"तुम्हारे जुल्म के कारण तो जी चाहता है कि किसी वन मे चला जाऊ।"

पूटी बोल पडी—"दादा, मुझे भी ।"

विराज ने धमकाते हुए कहा—"चुप रह मुँहजली। खायेगे नही तो कैसे जिन्दा रहेगे। तुझे इस शिकायत का पता चलेगा ससुराल जाने पर।"

दो

करीब डेढ़ महीने बाद। पाँच दिनो के बाद आज सवेरे नीलाबर का बुखार टूटा। विराज ने स्वय उसे साफ और धुले हुए कपडे पहनाकर, फर्श पर बिस्तर बिछाकर लिटा दिया। वही पडा-पडा वह खिडकी के पास एक नारियल के पेड को चुपचाप देख रहा था। पास ही छोटी बहिन हरिमती धीरे-धीरे हवा कर रही थी। कुछ देर बाद स्नान करके विराज भीगे बाल पीठ पर फैलाए और एक रेशमी साडी पहने हुए अन्दर आयी। सारा कमरा जैसे चमक उठा। नीलाबर ने उसकी ओर देखकर कहा—"यह क्या?"

विराज ने कहा—"जाऊ, पचानन्द बाबा की पूजन-सामग्री भिजवा दूँ।" यह कहकर पति के सिरहाने घुटनो के बल बैठकर उसने उसके माथे का स्पर्श करते हुए कहा—"न बुखार नही है। पता नही, शीतला मइया के मन मे इस साल क्या है। घर-घर क्या हाल है। आज सवेरे ही सुना कि यहा के मोती मोडल के लडके की सारी देह मे माता की कृपा हुई हे। शरीर में तिलभर भी जगह बाकी नही रह गयी।"

नीलाबर ने व्यग्र होकर पूछा—"मोती के किस लडके को शीतला निकली है?",

विराज ने कहा—"बडे लडके को! शीतला माता, गाव को शीतल करो मा! ओह, उसका यही लडका तो कमाता-धमाता है! पिछले शनिवार की रात के पिछले पहर मे अचानक मेरी नीद टूट गयी। तुम्हारे शरीर पर हाथ रखा, तो लगा जैसे बदन जल रहा है। मारे डर के छाती का खून जम गया! उठकर बडी देर तक रोती रही। इसके बाद मा शीतला से मनौती की कि जब ये अच्छे हो जाए, तो तुम्हें पूजा चढाऊगी और तभी अन्न-जल स्पर्श करूगी और नही तो जान दे दूगी!" कहते-कहते विराज की आखें छलछला आयी और दो बूद आसू गिर पडे।

नीलाबर ने चकित होकर कहा—"तुम उपवास कर रही हो?"

पूटी ने कहा—"हा दादा, भाभी कुछ भी नही खाती! बस, शाम को मुट्ठीभर कच्चा चावल चबाकर एक लोटा पानी पिया था। किसी का कहा नहीं मानती।"

नीलाबर ने बहुत असन्तुष्ट होकर कहा—"यह क्या तुम्हारा पागलपन नही है?"

साडी के छोर से अपने आसू पोंछते हुए विराज ने कहा—"पागलपन? असली पागलपन है! तुम अगर नारी होते तो जानते कि पति क्या चीज है? तब तुम जानते कि ऐसे दिनों में बुखार आने पर छाती के भीतर क्या होता है!" कहकर वह जा रही थी कि रुक कर फिर बोली—"मन्दिर पूजा करने जा रही है पूटी, अगर जाना चाहो तो जाओ, जल्दी नहा लो।"

पूटी उठ बैठी। प्रसन्नता से बोली—"जाऊगी भाभी!"

"तो देर मत कर! जा, देवता से अपने दादा के लिए ठीक से वरदान मांगना।"

पूटी जल्दी से चली गयी।

नीलांबर ने हंसते हुए पूछा—"उससे होगा? तुम ठीक से मांग सकोगी।"

विराज ने हंसकर गर्दन हिलाते हुए कहा—"यह मत कहो! भाई हो चाहे मां-बाप, परन्तु स्त्रियो के लिए पति से बढ़कर और कोई नही है! भाई या मां-बाप के न रहने से कुछ दुःख अवश्य होता है, किन्तु पति के न रहने पर तो सब कुछ चला जाता है! मैं ही आज पांच दिनों से बिना खाये-पिये हूँ, किन्तु चिन्ता और दुर्भावना के कारण कभी भी इसकी याद नहीं आयी कि मैं उपवास कर रही हूं। मगर बुलाओ तो जरा अपनी बहिन को, देखूं कैसे····!"

नीलाबर ने जल्दी से बाधा देते हुए कहा—"फिर!"

विराज ने कहा—"तो कहते क्यों हो? जो पागलपन मैंने किया है, उसे मैं ही जानती हूँ या देवता जानते हैं—जिन्होंने मेरी यह प्रार्थना रखी है! यदि तुम्हें कुछ हो जाता तो एक दिन भी मैं जिन्दा नही रहती! माग का सिन्दूर धुलने से पहले ही मैं पत्थर से माथा फोड़ डालती। शुभ-यात्रा में कोई मेरा मुँह नही देखता, शुभ-कार्य में कोई मुझे बुलाकर कुछ पूछता नहीं। लोगों के सामने इन दोनो खाली हाथों को निकाल नही सकूंगी, लज्जा के कारण माथे से आंचल नही हटा सकूंगी। छिः छिः, इस तरह की जिन्दगी भी क्या कोई जिन्दगी है? जिस जमाने में लोग जलाकर मारते थे, वही ठीक था! तभी पुरुष स्त्रियों के दुःख-तकलीफ को जानते-समझते थे, अब नही समझते!"

नीलांबर ने कहा—"नहीं समझते तो जाकर समझा दो!"

विराज ने कहा—"हां, मैं समझा सकती हूं! और मैं ही क्यों—तुम्हें पाकर जो खो देगी, वही समझा सकेगी, अकेली केवल मैं ही नहीं छोडो भी, यह सब क्या बक-बक किये जा रही हूँ!"—कहकर विराज हंस पड़ी। इसके बाद एक बार फिर झुककर पति की छाती और माथा का उत्ताप अनुभव कर पूछा—"बदन में कहीं दर्द तो नहीं है?"

नीलांबर ने गरदन हिलाकर कहा—"नही!"

विराज ने कहा—"तो चिन्ता की कोई बात नही! मुझे भूख लगी है, जाऊं कुछ बनाने की तैयारी करू। सच कहती हूँ, आज कोई मेरा एक हाथ भी काट देता तो मुझे गुस्सा नहीं आता।"

तभी यदु नौकर ने बाहर से आवाज दी—मांजी, वैद्यजी को बुलाकर लाना होगा?"

नीलाबर ने कहा—"न-न, अब जरूरत नहीं है!"

फिर भी मालकिन की आज्ञा के लिए नौकर खड़ा रहा। यह देखकर विराज ने कहा—"अच्छा, बुला ला! एक बार फिर आकर ठीक से देख जायें!"

तीन-चार दिन बाद अच्छे होकर नीलांबर चंडी-मडप में बैठे थे। तब तक मोती मोड़ल आकर रोने लगा—"दादा ठाकुर! चलकर एक बार अगर तुमने नहीं देखा, तो मेरा छीमन्त अब नही बचेगा! एक बार अगर पैरों की धूलि दे दो, देवता, शायद वह उठकर खड़ा हो जाये!" इसके आगे वह कुछ कह नही सका, पबड़ाकर रोने लगा!

नीलांबर ने पूछा—"बदन मे क्या बहुत दानें निकल आये हैं?"

मोती ने आंसू पोंछते हुए कहा—"क्या बताऊं! माता जैसे बिल्कुल मर गयी है। नीची जाति मे पैदा हुआ हूँ बाबा, कुछ भी तो नही जानता कि क्या किया जाता है! जरा चलिए!!" कहकर उसने दोनों पैर पकड़ लिये।"

नीलांबर ने धीरे-से पांव छुडाकर नरम स्वर में कहा—"चिन्ता की कोई बात नहीं है; तू चल, मैं बाद में आऊंगा।"

उसके रोने-गिड़गिड़ाने के कारण नीलांबर अपनी अस्वस्थता की बात नहीं कह सका। हर तरह के रोगियों की सेवा करके, इस मामले में वह इतना दक्ष हो गया था कि पास-पड़ोस के गांवों में भी अगर किसी को कोई कठिन रोग हो जाता; तो उसे एक बार दिखलाकर, उसके मुंह से सांत्वना और आश्वासन की बात एक बार सुने बिना, रोगी के आत्मीय स्वजनों को किसी तरह चैन नही मिलता था। नीलांबर भी यह जानता था। उसे मालूम था कि यहाँ के अनपढ़ और गंवार लोग, डाक्टर-वैद्य की दवा की अपेक्षा उसके पांवों की धूलि और मन्त्र पढ़कर हाथ से दिये गये पानी में कहीं अधिक श्रद्धा रखते हैं, इसीलिए वह कभी किसी को निराश नहीं करता था। एक बार फिर रोते हुए उसने पांवों की धूलि देने की प्रार्थना की,

मोती मोडल आखे पोछता हुआ चला गया। नीलाबर बैचेन होकर सोचने लगा। अब भी उसे कुछ कमजोरी थी। सोचने लगा कि बाहर केसे निकले। विराज से वह बहुत डरता था। कैसे उससे वह यह बात कहे!

ठीक इसी समय अन्दर के आगन मे हरिमती ने जोर से पुकारा—"दादा, भाभी अन्दर आकर सोने के लिए कह रही है!"

नीलाबर ने कोई उत्तर नही दिया।

थोडी देर बाद हरिमती ने पास आकर कहा—"सुनाई नही पड़ा, दादा?"

नीलाबर ने गर्दन हिलाकर कहा—"नही!"

हरिमती ने कहा—"जब से थोडा-सा खाया तब से यही बैठे हो! भाभी कहती हैं, बैठने की जरूरत नही, चलकर जरा सो लो!"

नीलाबर ने धीरे से पूछा—"पूटी तेरी भाभी क्या कर रही है?"

हरिमती ने कहा—"तुरन्त ही भोजन करने बैठी हैं।"

नीलाबर ने दुलराते हुए कहा—"मेरी अच्छी-सी बहिन, एक काम करेगी?"

हरिमती ने सिर हिलाकर कहा—"हा!"

नीलाबर ने और भी कोमल स्वर मे कहा—"जाकर चुपके से मेरी चादर और छाता उठा ला?"

"चादर और छाता?"

नीलाबर ने कहा—"हाँ!"

हरिमती ने आखे फैलाकर कहा—"बाप रे! ठीक इधर ही मुंह करके भाभी खाने बैठी हैं।"

नीलाबर ने अन्तिम चेष्टा करते हुए कहा—"तो नही ला सकती?"

हरिमती ने मुह फैलाकर दो-तीन बार सिर हिलाकर कहा—"न दादा, भाभी देख लेगी, तुम चलकर लेटो!"

उस वक्त दिन के दो बज रहे थे। तेज धूप के कारण बिना छाते के बाहर निकलने का साहस नही हुआ। इसलिए हताश होकर, बहिन का हाथ पकडे वह अन्दर आकर लेट रहा। कुछ देर तक इधर-उधर की बाते करते हुए हरिमती सो गयी। नीलाम्बर चुपचाप यही सोचता रहा कि कैसे यह बात कहू कि विराज का मन पसीज जाये।

दिन करीब-करीब ढल चुका था। विराज अपने घर के चिकने और सीमेंट के फर्श पर अपनी छाती के नीचे एक तकिया दबाए पडी हुई, तन्मय के साथ अपने मामा-मामी को वह चार पेज का लम्बा पत्र लिख रही थी। इस साल कैसे उसके गाव मे शीतला माता का प्रकोप हुआ और कैसे केवल उसी का घर मौत से बच सका है और कैसे उसके माग का सिन्दूर और हाथ की चूडिया बच सकी। यह लम्बी कहानी लिखने से खत्म नही होती थी। तभी लेटे-लेटे सहसा नीलाम्बर ने पुकारकर कहा—"मेरी एक बात मानोगी विराज?"

दवात में कलम रखकर विराज ने सिर उठाकर पूछा—"मानने लायक होगी तो मानूगी ही! कहो, क्या बात है?"

नीलाबर ने क्षणभर सोचकर कहा—"कहने से कोई लाभ नही, विराज तुम मेरी बात मानोगी नही!"

विराज ने कुछ नही कहा। कलम लेकर चिट्ठी समाप्त करने के लिए फिर झुक गयी किन्तु लिखने मे तबीयत नही लगी। अन्दर-ही-अन्दर उत्सुकता बढती गयी, वह उठकर बैठ गयी और बोली"अच्छा बताओ, मैं मानूगी!"

नीलांबर ने मुस्कराते हुए और कुछ हिचकते हुए कहा—"आज दोपहर को मोती आया था और मेरे पाव पकडकर रोने लगा। उसका विश्वास है कि उसके घर मे जब तक मेरी पद-धूलि नही पडेगी, तब तक उसका छीमन्त बच नही सकेगा। एक बार मुझे जाना ही पडेगा!"

विराज उसका मुह देखती रह गयी। थोड़ी देर बाद बोली—"यह रोगी शरीर लेकर जाओगे?"

"क्या करू विराज, वायदा कर चुका हूँ! एक बार मुझे जाना ही होगा!"

"वायदा क्यों किया?"

नीलांबर चुप हो रहे।

विराज ने रुखाई से कहा—"तुम क्या समझते हो कि तुम्हारी जिंदगी बस तुम्हारे ही लिए है—और किसी को बोलने का हक उसमें नही है? तुम्हारी जो मर्जी होगी, वही करोगे?"

बात आगे बढाने के लिए नीलांबर ने हसने की कोशिश की, परन्तु पत्नी का रुख देखकर हस न सका। किसी तरह बोला—"उसका रोना देखकर ।"

विराज ने बात काटकर कहा—"ठीक ही तो है! उसका रोना तो तुमने देखा, किन्तु मेरा रोना देखने वाला इस ससार में कोई नही है?" कहकर उसने चार पेज की लम्बी चिट्ठी को टुकडे-टुकडे करते हुए कहा—"उफ्, ये मर्द भी कैसे होते हैं! बिना खाये-पिये चार दिन और चार राते गुजार दी उसी का यह बदला मिल रहा है? घर-घर बुखार और घर-घर मे शीतला फैली है—और यह कमजोर और रुग्ण शरीर लेकर रोगी देखेगे और छुयेगे! अच्छा जाओ, मेरे भी भगवान है!" कहकर फिर छाती के नीचे तकिया दबाकर वह पड रही।

नीलांबर के होठो पर एक मन्द दबी-सी मुस्कान आ गयी। उसने धीरे से कहा—"तुम स्त्रियो का क्या ठिकाना, जो हर बात में भगवान की ही दुहाई दिया करती हो!'

विराज जल्दी से उठ बैठी और गुस्से मे बोली—"नही, भगवान पर तो केवल तुम्हे ही विश्वास है, हम लोगो को नहीं! हम कीर्तन नही करती, तुलसी की माला नही पहनती और मुर्दे जलाने नही जातीं, इसलिए भगवान हम लोगो के नही हैं, बस अकेले तुम्हीं लोगो के हैं?"

विराज का गुस्सा देखकर नीलांबर को हसी आ गयी। कहा—"गुस्सा मत करो विराज, सचमुच ऐसी ही बात है! केवल तुम्ही ऐसी नहीं हो, सभी हैं! भगवान पर विश्वास करने के लिए जितनी शक्ति होनी चाहिए, उतनी शक्ति स्त्रियो में नही होती। फिर इसमे तुम्हारा दोष क्या है?"

विराज ने जरा रुककर कहा—"नही दोष नहीं, स्त्रियों का यह गुण है! किन्तु अगर शरीर को शक्ति की ही इतनी आवश्यकता है तो शेर और भालू के शरीर मे तो कही ज्यादा शक्ति होती है! शक्ति रहे तो अच्छा है, न रहे तो अच्छा है, परन्तु यह रोगी शरीर लेकर मैं तुम्हे बाहर नही निकलने दे सकती!" भले ही तुम चाहे जितना भी तर्क करो।

नीलांबर बिना कुछ बोले चुपचाप लेट गया। विराज भी थोडी देर तक चुपचाप पडी रहने के बाद यह कहकर कि शाम हो गयी, चलू—उठ खडी हुई। करीब एक घटे बाद चिराग-बत्ती करके अन्दर आयी तो देखा कि स्वामी पलंग पर नही हैं। तुरन्त ही पूटी को आवाज दी—"पूंटी, तेरे दादा कहाँ गये! जरा बाहर देख तो!"

पूंटी दौड पडी, चार-पांच मिनट बाद वह हांफती हुई आई और बोली—"कहीं नही हैं, नदिया के किनारे भी नही!"

"हूं"—विराज ने गरदन हिलाकर कहा और रसोईघर की चौखट पर गुमसुम बैठ गयी।

तीन

तीन साल बाद की बात है। हरिमती को ससुराल गये दो महीने हो गये। छोटा भाई पीतांबर रहता है उसी घर मे, मगर उसका चूल्हा-चौका अलग हो गया है। गोधूलि बेला है। बाहर चण्डी-मण्डप के बरामदे में एक टूटी-सी चारपाई पर नीलांबर बैठा है। विराज नजदीक आकर चुपचाप खडी हो गयी। नीलांबर ने उसे देखकर कहा—"अरे, एकाएक तुम कहाँ?"

विराज ने एक तरफ बैठते हुए कहा—"तुमसे एक बात पूछने आयी हूं।"

"क्या?"

विराज ने कहा—"बता सकते हो" क्या खाने से मौत हो सकती है?

नीलांबर चुप रहा।

विराज ने कहा—"या तो बतला दो या साफ बताओ कि दिनोंदिन तुम सूखते क्यों जा रहे हो?"

"कौन कहता है कि सूखता जा रहा हूं?"

क्षणभर पति को गौर से देखकर विराज ने कहा—"कोई कहेगा, तभी जानूगी? सचमुच यह तुम अपने मन की बात कह रहे हो?"

नीलाबर कुछ हस पडा। सभलते हुए कहा—"नही रे, ऐसी बात नहीं! मगर तुम बहुत भूल करती हो, इसी से पूछता हूँ कि तुमसे किसी और ने कह दिया, या तुम खुद ही ऐसा समझ रही हो?"

विराज ने इस बात का जवाब न देकर कहा—"तुमसे इतना कहा कि ऐसी जगह मे मेरी पूटी की शादी मत करो, परन्तु तुमने कुछ भी ख्याल नही किया! जो कुछ नगद था, वह तो गया ही, साथ ही मेरे शरीर के सभी गहने भी चले गये। यदु चाण्डाल के लिए जमीन गिरवी रख दी और दो बाग भी बेच दिये। फिर दो साल से यह अकाल पड रहा है। तुम्ही बतलाओ तो कि दामाद की पढ़ाई का खर्च महीने-महीने कहा से दोगे? जरा भी देर हुई तो पूटी को भला-बुरा सुनना पडेगा। वह है स्वाभिमानिनी, तुम्हारी शिकायत किसी तरह सुन नही सकेगी। ईश्वर जाने, आखिर मे क्या-मे-क्या हो जाये! तुमने क्यो किया ऐसा काम?"

नीलाबर मौन रहा।

विराज कहने लगी—"इसके अलावा, दिन-रात पूटी की चिता में घुल-घुलकर तुम मेरा सर्वनाश करोगे, ऐसा काम होने नही दूगी। इससे अच्छा तो यह होगा कि दो-चार बीघा जमीन बेचकर चार-पाच सौ रुपये इकट्ठा कर लो और गले मे कपडा डालकर दामाद के बाप से कहो कि यह लेकर जान छोड दे। हम गरीब आदमी इससे ज्यादा नहीं दे सकेंगे! इसके बाद पूटी की किस्मत मे भला-बुरा जो लिखा होगा, वह होगा ही!"

फिर भी नीलाबर चुप रहा।

उसी की ओर देखते हुए विराज ने कहा—"नही कह सकोगे?"

एक दीर्घ नि.श्वास छोडकर नीलाबर ने कहा—"कह सकता हूँ! परन्तु विराज, अगर हम सब कुछ बेच डालेगे तो हमारा क्या होगा?"

विराज ने कहा—"होगा क्या, जायदाद गिरवी रखने ओर महाजन का सूद और अकड बर्दाश्त करने से यह कही ज्यादा अच्छा है। मेरे कोई बाल-बच्चा तो है नही, जिसके लिए चिन्ता की जाये! हम दोनो प्राणियो का किसी तरह गुजारा हो ही जायगा और अगर न भी हुआ, तो तुम बोष्टम ठाकुर हो ही! दोनो ही वृन्दावन चलेगे।"

नीलाबर जरा हसकर बोला—"तू क्या करेगी, मजीरा बजायेगी?"

"हॉ बजाऊगी। अगर न बजा सकी तो तुम्हारी झोली ढोती रहूगी। तुम्हारे मुँह से कृष्ण नाम सुनकर पशु-पक्षी भी मुग्ध हो उठेगे। क्या हम दोनो का पेट नही भरेगा? चलो, घर के भीतर चलो। अधेरे मे तुम्हारा मुह दिखाई नही दे रहा है।

घर के भीतर आकर विराज पति के चेहरे के पास दीपक उठाकर क्षण भर देखने के बाद, अपनी हसी रोकती हुई बोली—"नही, साहस नही होता। ऐसे बोष्टम को अन्य पाच बोष्टमियो के सामने जाने नही दे सकती। इससे अच्छा है कि यही भूखो मर जाये।"

नीलाबर हस पडा। कहा—"वहा केवल बोष्टमिया नही रहती, बोष्टम भी रहते हैं।"

विराज ने कहा—"रहने दो। एक-दो नही, हजार-लाख भी रहें—"इतना कहकर दीपक यथास्थान रखने के बाद पुन. गभीर होकर बोली—"सुना है, ससुर मे सती-असती दोनो रहते हैं। असती महिला को कभी देखा नही। बडी इच्छा होती है, उन्हे देखने की। वे कैसी होती हैं? क्या मेरी तरह या दूसरी तरह। वे क्या करती हैं, क्या सोचती हैं, क्या खाती हैं, कैसे सोती हैं—यह सब देखने की इच्छा होती है। अच्छा, तुमने कभी देखा है?"

नीलाबर ने कहा—"देखा है।"

"देखा है? अच्छा, जैसे मैं तुम्हारे पास बेठी बाते कर रही हूँ, क्या वे सब भी इसके-उसके साथ बाते करती हैं?"

नीलाबर ने हसकर कहा—"यह नही कह सकता। इतना नही देखा है।"

विराज क्षण भर अपने पति की ओर गौर से देखती रही। अचानक न जाने क्यों उसका सारा बदन

सिहर उठा।

नीलाबर यह दृश्य देखकर बोल उठा—"यह क्या रे?"

विराज ने कहा—"यह क्या? तारा, दुर्गा, शाम के समय यह कैसी चर्चा चल पडी। तुमने अभी तक सध्या नही की?"

नीलांबर ने कहा—"उठ रहा हूँ।"

"हाँ, जाओ। हाथ-पैर धो आओ। मैं इसी कमरे मे आसन बिछाकर सारा इतजाम कर देती हूँ।"

पाच-छ. दिनो की बात है। रात के करीब दस बज रहे थे। बिछौने पर लेटा हुआ नीलाबर, आखें मूदे हुए, हुक्के की नली मुह मे लगाये तम्बाकू पी रहा था। घर का काम-धाम खत्म करके विराज, सोने के पहले फर्श पर बैठी हुई अपने लिए एक बहुत बडा-सा पान लगा रही थी। एकाएक कह पडी—"क्यों जी, क्या शास्त्र की सभी बाते सच होती हैं?"

हुक्के की नली एक ओर रखकर, नीलाबर ने अपनी पत्नी की ओर मुखातिब होकर कहा—"सच नही तो क्या झूठी बात है?" विराज ने कहा—"मैं झूठी नही कहती, परन्तु आजकल भी क्या वे पहले की तरह ही सच निकलती है?"

नीलाबर ने क्षणभर सोचकर कहा—"मैं पंडित नही हूँ विराज, सारी बाते नही जानता, मैं तो यही जानता हूँ कि सत्य हमेशा सत्य ही होता है! सत्य पहले भी सत्य था, अब भी सत्य है और आगे भी सत्य ही रहेगा।"

विराज ने कहा—"सावित्री और सत्यवान की कहानी ही ले लो! सावित्री ने पति का प्राण यमराज के हाथों से लौटा लिया, यह क्या सत्य हो सकता है?"

नीलाबर ने कहा—"क्यो नही? जो सावित्री की तरह सती है, वह पति का प्राण अवश्य ही लौटा सकती है।"

"तब तो मैं भी लौटा सकती हूँ!"

नीलाबर ने हसते हुए कहा—"तुम भी उन्ही की तरह सती हो क्या? वे तो देवता ठहरे!"

पान का डिब्बा एक ओर खिसकाकर विराज ने कहा—"होने दो देवता, सतीत्व मे मैं उनसे किस बात में कम हूँ? ससार में मेरी जैसी सती और भी हो सकती हैं, किन्तु यह मैं नही मानती कि मन और ज्ञान मे हमसे बढ़कर सती और कोई है! चाहे सावित्री हो या सीता, परन्तु मैं उनसे किसी माने मे तिल भर कम नही हूँ!"

नीलाबर ने कोई जवाब नही दिया। चुपचाप वह पत्नी के मुँह की ओर देखता रहा। सामने चिराग रखकर विराज पान लगाने बैठी थी। रोशनी में विराज की आखो मे एक अद्भुत पवित्र ज्योति-सी फूटती नीलाबर को साफ दिखाई पडी। नीलांबर ने डरते-डरते कह ही दिया—"तब तो लगता है, तुम भी कर सकोगी!"

विराज ने उठकर पति के चरणो मे माथा रखकर कहा—"तुम यही आशीर्वाद दो मुझे कि होश संभालने के बाद से, इन युगल चरणो के अतिरिक्त अगर मैंने और कुछ नही जाना हो और अगर मैं सचमुच ही सती हूँ तो दुर्दिन मे उन्ही की तरह मैं भी तुम्हे लौटा ला सकूं—इन्ही चरणो मे सिर रखकर मर सकू—माथे मे सिन्दूर और हाथो मे चूडिया पहने हुए ही चिता पर सो सकूं!"

नीलाबर घबराकर उठ बैठे। कहा—"आज तुम्हे क्या हो गया है, विराज?"

विराज की दोनों आखे छलछला उठीं। उसके होठों पर एक अत्यन्त मधुर मुस्कान झलक गयी। उसने कहा—"यह फिर कभी सुनना, आज तो बस, मुझे यही आशीर्वाद दो कि मरते समय तुम्हारी गोद में सिर रखकर, तुम्हारा यह मुँह देखती हुई मर सकू!"

वह इससे अधिक बोल नही सकी। अब उसका गला रुंध आया।

नीलाबर ने डरते हुए उसे खीचकर अपनी छाती से चिपटा लिया। कहा—"आज क्या हो गया है तुम्हें? किसी ने कुछ कहा है?"

पति की छाती में मुँह छिपाकर विराज रोने लगी, कोई जवाब नही दिया।

नीलांबर ने कहा—"ऐसा तो तुम कभी नही कहती थी, विराज! आज क्या हो गया है तुम्हें?"

विराज ने अपनी आखें छिपाकर पोछ ली। सिर उठाकर उसने केवल यही कहा—"फिर कभी सुन लेना।"

नीलाम्बर ने फिर कुछ नही पूछा। उसी तरह बैठे-बैठे, उसके बालो मे अगुलिया डालकर चुपचाप सात्वना देने लगा। बहिन की शादी मे कुछ अधिक खर्च कर डालने के कारण वह उलझन मे फंस गया था और गृहस्थी का काम अब पहले की तरह चल नही पाता था। दो साल से अकाल पडने के कारण, कोठी मे न तो धान रह गया था और न तालाब मे मछली और न पानी। कदली-बागान सूखता जा रहा था। बगीचे के कच्चे नीबू सूखकर झडे जा रहे थे, और ऊपर से महाजनो ने तकाजा करना शुरू कर दिया था। उधर लडके की पढाई के खर्च के लिए, पूंटी के ससुर ने भी मीठी-कड़ुई चिट्ठी लिखना शुरू कर दिया था। विराज को यह सब मालूम नही। बहुत-सा कटु समाचार नीलाबर ने बडी मुश्किल से छिपा रक्खा था, इस समय घबडाकर वह सोचने लगा—"मालूम होता है, किसी ने यह सब बाते विराज से कह दी हैं!"

सहसा मुँह ऊपर करके विराज मुस्कराई और पूछा—"अच्छा, एक बात पूछू, सच बताओगे?"

नीलाबर ने मन-ही-मन डरते हुए कहा—"क्या?"

विराज की सबसे बडी सुन्दरता थी—उसके मुँह की मनोहारिणी हसी। एक बार फिर हसकर उसने पूछा—"अच्छा, मैं काली-कलूटी तो नही हूँ?"

नीलाबर ने सिर हिलाकर कहा—"न!"

विराज ने पूछा—"अगर मैं काली-कलूटी होती, तो भी तुम मुझे इतना प्यार करते?"

यह अजीब सवाल सुनकर वह कुछ विस्मित तो हुआ, लेकिन छाती पर से एक भारी बोझ-सा उतर गया।

उसने प्रसन्न भाव से कहा—"छुटपन से ही मैं एक परम सुन्दरी को प्यार करता आ रहा हूँ। अब कैसे बतलाऊ कि वह अगर काली-कलूटी होती तो मैं क्या करता?"

विराज ने पति के गलबहिया देकर तथा अपना मुँह और भी नजदीक करके कहा—"मैं बताऊ, क्या करते? तब भी मुझे ऐसे ही प्यार करते!"

नीलाबर चुपचाप उसके मुँह की ओर देखता रहा।

विराज ने कहा—"क्यो, तुम यही सोच रहे हो न कि मैं कैसे जान गयी, है न?"

अबकी बार नीलाबर ने धीरे-धीरे कहा—"हाँ, यही सोच रहा हूँ कि तुम कैसे जान गयीं!"

विराज ने पति का गला छोड दिया और उसकी छाती पर सिर रखकर लेट गयी। फिर देखती हुई धीरे-धीरे बोली—"मेरा मन मुझे बतला देता है। जितना मैं तुम्हें जानती हूँ, उतना तुम खुद भी अपने को नही जानते और इसीलिए कहती हूँ कि तब भी तुम मुझे ऐसे ही प्यार करते। तुम अन्याय या पाप नही कर सकते। अपनी पत्नी को प्यार न करना अन्याय है—पाप है! इसी से मैं जानती हूँ कि अगर मैं काली-कुबड़ी होती तो भी तुम मुझे इतना ही प्यार करते, दुलार करते!"

नीलाबर ने कुछ जवाब नही दिया।

क्षणभर स्थिर रहकर विराज ने एकाएक उसी तरह लेटे-लेटे, हाथ बढ़ाकर अनुमान से, पति की आंखो के कोनो को स्पर्श करके कहा—"आंखों में ये आंसू क्यो?"

नीलाबर ने प्रेम से उसका हाथ हटाकर पूछा—"कैसे जाना?"

विराज ने कहा—"भूल क्यों जाते हो कि नौ साल की उम्र में मेरी शादी हुई थी? भूल क्यों जाते हो कि तुम्हे मैंने पाकर ही पाया है? अपने शरीर पर हाथ रखकर भी क्या तुम्हे नही मालूम होता कि मैं भी उसमें घुल-मिल गयी हूँ?"

नीलाबर कुछ बोला नही। उसकी बन्द आखो के कोनों से बूंद-बूंद करके आसू टपकने लगे।

विराज उठ गयी और अपने आचल से, बडे प्रेम और सावधानी के साथ पति के आसू पोछती हुई गम्भीर स्वर में बोली—"तुम चिता न करो! मरते समय सासजी पूंटी को तुम्हे सौंप गयी हैं। तुमने जिस बात मे पूटी की भलाई समझी वही किया। मा हमे स्वर्ग मे आशीर्वाद देंगी। तुम अच्छे और स्वस्थ हो जाओ और कर्ज से छुटकारा पा जाओ, भले ही तुम्हारा सब कुछ चला जाये!"

आसू पोंछते हुए नीलांबर ने रुधे कण्ठ से कहा—"तुम्हे नहीं मालूम विराज मैंने क्या किया है? मैंने

तुम्हारा· ·।''

विराज ने पति के मुँह पर अपना हाथ रखते हुए कहा—''मुझे सब मालूम है! चाहे और कुछ जानूँ या न जानूँ, परन्तु इतना निश्चित रूप से जानती हूँ कि तुम्हे बीमार नही पडने दूगी। न, यह नही होगा! जिसका जो बाकी है, वह देकर निश्चिन्त हो जाओ। इसके बाद सिर पर ईश्वर है और चरणो तले मैं।

एक दीर्घ नि.श्वास छोडकर नीलाबर चुप रह गया।

चार

छ महीने बीत गये। हरिमती की शादी के पहले ही, छोटा, भाई जमीन-जायदाद लेकर अलग हो गया था। नीलाबर को उसी समय अपना कुछ भाग बन्धक रखकर ऋण लेना पडा था। पीताबर ने एक पैसे की भी मदद नही की। जो कुछ बच गया, उसी ही बारी-बारी मे गिरवी रखकर नीलाबर बहनोई की पढाई और गृहस्थी का खर्च चलाता रहा। इस तरह कर्ज का बोझ दिनोदिन बढता गया, किन्तु मोह के कारण, अपने बाप-दादो की जमीन वह किसी तरह बेच नही सका। मोहल्ले के भोलानाथ मुकर्जी आज तीसरे पहर, बाकी सूद के लिए उसे कुछ बुरा-भला सुना गये थे। ओट मे खडी विराज ने सब कुछ सुन लिया। नीलाबर जैसे ही अन्दर आया, रसोईघर से निकलकर चुपचाप वह उसके सामने आकर खडी हो गयी। उसका चेहरा देखते ही नीलाबर घबरा गया। अपमान और क्षोभ से विराज जल-सी रही थी। किन्तु अपने को सयत कर अगुली से पलग की ओर सकेत करते हुए, अत्यन्त शान्त और गभीर स्वर से बोली—'बैठो यहा।'

नीलांबर पलग पर बैठ गया। विराज भी उसके पैरो के पास बैठ गयी और बोली—'ऋण चुकाकर आज मुझे उऋण कर दो, वरना तुम्हारे पाव छूकर आज मैं कसम खा लूगी।'

नीलाबर जान गया कि विराज सब कुछ सुन चुकी है। इसीसे बहुत डरते हुए, झुककर तुरन्त उसके मुँह पर अपना हाथ रख दिया और खीचकर उसे अपने पास बैठाते हुए नम्रता से बोला—'छि विराज, मामूली-सी बात तुम इतनी बदहवास हो जाती हो।'

अपने मुह पर से पति का हाथ हटाकर विराज ने कहा—'इस पर भी आदमी अगर बदहवास नही होगा तो कब होगा—'जरा सुनू।'

नीलाबर सहसा कोई उत्तर नही दे सका, चुपचाप बैठा रहा।

विराज ने कहा—'चुप क्यो हो गये? जवाब दो।'

नीलांबर ने धीरे से कहा—'क्या जवाब दूँ, विराज! किंतु ।'

विराज ने बात काटकर कहा—'किन्तु-परन्तु से काम नही चलने का! यह कभी मत सोचना कि मेरे ही घर मे आकर लोग तुम्हारा अपमान कर जायेगे और मैं चुपचाप सुन लूगी। आज ही इसका कोई इन्तजाम करो, नही तो मैं जान दे दूगी।'

नीलाबर ने डरते-डरते कहा—'एक ही दिन मे क्या इन्तजाम करू, विराज?'

विराज ने कहा—'दो दिन बाद ही क्या इन्तजाम करोगे, जरा सुनू?'

नीलाबर पुन मौन हो गया।

विराज ने कहा—'न पूरी होने वाली उम्मीद से अपने को बहलाने की कोशिश करके, मेरा सर्वनाश मत करो! जितने दिन बीतेगे, कर्ज का बोझ बढ़ता ही जायेगा। तुम्हारे पैरो पडती हूँ, भीख मांगती हूँ तुमसे, अभी इसी वक्त इसका इन्तजाम करो, किसी तरह गला छुडाओ!' कहते-कहते उसका गला भर आया। भोला मुकर्जी की बाते उसकी छाती मे चुभ रही थी।

अपने हाथ से उसके आसू पोछते हुए नीलाबर ने धीरे से कहा—'इस तरह घबराने से क्या होगा, विराज! एक साल भी अगर पूरी फसल हो गयी तो मैं अपनी सारी जायदाद छुडा सकूगा, किन्तु सोचो तो सही कि बेच डालने से तो ऐसा न होगा?'

विराज ने भर्राई हुई आवाज मे कहा—'सोच रही हूँ! एक तो अगले साल अच्छी फसल होने का कोई ठिकाना नही, दूसरे महाजनो का कडा तकाजा है। सब कुछ मैं बर्दाश्त कर सकती हूँ, परन्तु तुम्हारा अपमान नही बर्दाश्त कर सकती!'

नीलांबर भी यह जानता था, इसलिए कोई जवाब न दे सका।

विराज कहने लगी—'मुझे क्या, बस एक ही दु.ख है? रात-दिन चिन्ता करने के कारण तुम मेरी आखो के सामने ही, सूखते जा रहे हो। सोने-सी यह देह काली पडती जा रही है। अच्छा, मेरे शरीर पर हाथ रखकर तुम्ही कहो, क्या यह सब बर्दाश्त करने की शक्ति मुझमे है? योगीन की पढाई का खर्च कब तक देना पडेगा?'

नीलाबर ने कहा—'केवल साल भर तक और, इसके बाद वह डॉक्टर हो जायेगा।'

क्षणभर चुप रहकर विराज ने कहा—'पूटी को पाल-पोसकर हमने बडा किया है कि वह राजरानी बन सके। अगर जानती होती कि उसके कारण इतना दु ख उठाना पडेगा तो बचपन में ही उसे नदी मे बहा देती, अपने सिर पर गाज नही गिरने देती। हे ईश्वर। वे बडे आदमी हैं, उन्हें कोई तकलीफ नही, न किसी चीज की कमी है, फिर भी जोक की तरह हमारे कलेजे का खून चूसते हुए उन्हें तनिक भी दया-माया नही आती?'

एक दीर्घ नि श्वास छोड़कर स्तब्ध हो गयी। काफी देर बाद वह फिर बडबडाने लगी—'चारों तरफ अकाल की छाया है। अभी से कितनों को बस एक ही बेला खाना मिल रहा है—और कितनों को बिल्कुल फांकाकशी करनी पड रही है। ऐसे दुर्दिनों मे दूसरे लडके को पढा-लिखाकर हम क्यो आदमी बनायें? पूटी के श्वसुर को किसी चीज की कमी नही, वे बडे आदमी है। अगर वे अपने लडको को नही पढा सकते तो हम क्यो पढाये? जो हुआ सो हुआ, अब इसके लिए तुम कर्ज नही ले सकोगे।'

बडी तकलीफ मे होठो पर सूखी हंसी लाते हुए नीलाबर ने कहा—'सब समझता हूँ, विराज। किन्तु शालग्राम के सामने जो कसम खायी है, उसका क्या होगा?'

विराज तुरन्त कह उठी—'कुछ भी नही होगा, शालग्राम अगर सच्चे देवता हैं, तो वे हमारा कष्ट अवश्य समझेगे। ऐसा करने से अगर तुम पर कोई पाप पडेगा, तो मैं तुम्हारी अर्द्धांगिनी हूँ, तुम्हारे सारे पापो को सिर-आखो पर लेकर मैं जन्म-जन्मान्तर तक नरक भोग लूगी। तुम्हे डरने की जरूरत नही। अब तुम कर्ज मत लो।'

नीलाबर ने कातर भाव से एक बार पत्नी की ओर देखा और तुरत निरुपायों की तरह सिर झुका लिया। विराज से यह बात छिपी नही थी कि उसके धर्मात्मा पति बहुत ही दु खी थे। किन्तु, इससे अधिक अब वह बर्दाश्त नही कर सकती थी। वास्तव मे स्वामी ही उसके सर्वस्व थे। रात-दिन चिन्ता करने के कारण उसके स्वामी का चेहरा सूखकर उदास हो गया था—और उसे देखकर उसकी छाती फटी जा रही थी। अब तक वह अपने आपको सम्हाले थी, परन्तु अब नही सम्भाल सकी। जल्दी से पति की छाती मे मुह छिपाकर फूट-फूटकर रोने लगी।

नीलाबर ने अपना दाहिना हाथ विराज के सिर पर रख दिया और चुपचाप प्रस्तुर-मूर्ति-सा बैठा रहा। बडी देर तक रोती रहने के कारण विराज की पीडा कम होने लगी। पति की छाती मे मुँह छिपाए ही उसने रोते-रोते कहा—'बचपन से लेकर अब तक मैंने कभी भी तुम्हारा चेहरा उदास या लटका हुआ नही देखा। किन्तु अब तुम्हारा चेहरा देखते ही मरी छाती में रावण की चिता-सी जलने लगती है। अपनी चिता तुम्हे नही है तो मेरी ही ओर एक बार देखो! अन्त मे क्या मुझे सचमुच ही राह की भिखारिन बना दोगे? और यह क्या तुम बर्दाश्त कर सकोगे?'

तो भी नीलाबर कुछ नहीं कह सका। अनमने भाव से पत्नी का सिर सहलाने लगा और उसके बालो में अगुलिया चलाने लगा। तभी दरवाजे के बाहर से ही उसकी पुरानी दासी सुन्दरी ने आवाज दी—'चूल्हा जला दूँ, बहूरानी?'

विराज अचकचाकर उठ बैठी और आंचल से आंख तथा मुह पोंछ कर बाहर निकल आयी।

सुन्दरी ने फिर पूछा—'चूल्हा जला दूँ?'

विराज ने अस्पष्ट आवाज में कहा—'जला दो, तुम लोगो के लिए रसोई बनानी ही पडेगी। मैं तो नही खाऊंगी।'

दासी ने नीलाबर को सुनाने की गरज से जोर से कहा—'बहू, तो रात का खाना क्या तुमने एकदम छोड ही दिया? आधा शरीर भी तो नहीं रह गया है।'

विराज उसका हाथ पकड़कर रसोईघर की ओर ले गयी।

चूल्हे की रोशनी विराज के चेहरे पर पड रही थीं। थोडी ही दूर पर बैठी सुन्दरी उसे गौर से देख रही थी। सहसा कह उठी—'सच कहती हूँ वहू रानी, तुम जैसा रूप मैंने कभी नही देखा। वडे-बडे राजा-महाराजाओ के घर की भी खबर रखती है?'

सुन्दरी करीव ३५-३६ साल की थी। किसी जमाने मे उसके रूप की भी धूम थी, और आज भी वह धूम विल्कुल खत्म नही हो गयी है।

वह कहा करती थी कब उसकी शादी हुई और कब वह विधवा हो गयी यह याद नही है। किन्तु सुहागिनो के सौभाग्य से वह एकदम वची नही रही। उसकी यह सुकीर्ति उसके गाव कृष्णपुर मे फैली हुई है। उसने हसते हुए कहा—'राजा-महाराजाओ की भी थोडी-वहुत खबर रखती हूँ बहूरानी, नही तो उस दिन-उस दिन झाडू से पूजा नही कर देती?'

अब की सचमुच ही विराज ने गुस्सा होकर कहा—'तू अकसर ऐसी ही बाते क्यो किया करती है, सुन्दरी? उसने जो चाहा, कहा। इसके लिए तू क्यों झाडू मारेगी? और वेकार ही मुझे तू क्यो सुनाया करती है? वे क्रोधी आदमी ठहरे, सुनेगे तो क्या कहेगे—वता तो!'

सुन्दरी ने झेपते हुए कहा—'वे सुनेगे ही कैसे बहूरानी? यह भी कोई बात है?'

विराज ने कहा—'तू मुझे वात सिखलाने चली है? और इसके अलावा जो वात खत्म हो चुकी हैं, उसे फिर उठाने से क्या फायदा?'

सुन्दरी तुरन्त कह उठी—'खत्म कहा हो गयी? कल भी मुझे बुलाकर . ।'

विराज ने गुस्सा होकर कहा—'तू गयी क्यो? काम करती है मेरे यहा, तो दूसरे के बुलाने पर चली क्यो जाती है? तूने तो कहा था कि उस दिन वे कलकत्ते चले गये?'

सुन्दरी ने कहा—'सच कहा था। दो महीने पहले वे सचमुच ही चले गये थे बहूरानी, किन्तु देखती हूँ कि सब-के-सब फिर आ गये हैं। और मेरे जाने की जो बात कह रही हो बहूरानी, तो सिपाही बुलाने आता है तो—'नही' कैसे कह दूँ? वेठहरे इस गाव के जमीदार और हम उनकी गरीब रिआया। किस बल पर हुकुमउदूली करूँ?'

क्षणभर सुन्दरी की ओर देखते रहने के बाद विराज ने कहा—'वे इस गाव के जमीदार हैं?'

सुन्दरी ने हसकर कहा—'हा, बहूरानी। यह हल्का उन्होने ही खरीदा है और तम्बू डालकर ठहरे हैं। सच कहती हूँ वहूरानी, सचमुच राजकुमार हैं। आह, क्या सुन्दर नाक-नक्शा है। आंखे, चेहरा .।'

विराज ने एकाएक टोकते हुए कहा—'चुप रह। यह तो मैं तुझसे पूछती नही! यह बता कि तुझसे कहा क्या था?'

अब सुन्दरी कुछ खीझ उठी, किन्तु उस भावना को छिपाकर क्षोभ भरी आवाज मे वह बोली, 'और क्या कहते बहू। बस तुम्हारी ही बात।

'हूँ'—कहकर विराज चुप हो रही।

अब बात को समझाकर कहू। दो साल पहले यह हल्का कलकत्ते के एक जमीदार को मिला था। जमीदार को छोटा लडका राजेन्द्रकुमार बहुत दुश्चरित्र और उद्दण्ड है। जमीदार का काम-काज सिखलाने और उसे सयत करने के लिए, खासकर कलकत्ते से बाहर रखने के खयाल से, उसके पिता उसे नजदीक ही किसी इलाके मे भेजना चाहते थे। पिछले साल वह यहा आया, किन्तु कचहरी की इमारत न होने के कारण, सप्तग्राम के उस पार ग्रैंड-ट्रंक रोड के किनारे, एक आम के बाग मे तम्बू डालकर रहता था। किन्तु जिस दिन से वह यहा आया, उसने जमीदारी का कोई काम नही किया। विह्स्की की बोतल पीठ पर बांधे और कन्धे पर बन्दूक रक्खे, चार-पाच शिकारी कुत्तो के साथ वह दिन-दिनभर नदी के किनारे जगल मे घूमा करता और चिडियो का शिकार करता। छ महीने पहले, गोधूलि बेला की सुनहरी आभा से अनुरंजित, गीली धोती पहने विराज पर उसकी नजर पडी। चारों ओर बडे-बडे और घने पेड़ होने के कारण, विराज के घर के नजदीक का वह घाट किसी ओर से दिखाई नही देता। बेखटके नहा-धोकर, पानी का घडा उठाकर ज्योंही विराज खडी हुई, उसकी आखें सामने खडे एक अजनबी आदमी पर पडी। चिडियो की टोह मे राजेन्द्र यहां तक आ गया था। नजदीक ही के समाधि-स्तूप पर खड़े

होकर उसने विराज को देखा। एकाएक उसे विश्वास नही हुआ कि कोई मानव भी इतना सुन्दर हो सकता है। मन्त्रमुग्ध-सा वह इस अतुल, असीम रूप-राशि को देखता रह गया। किसी तरह अपनी गीली धोती से अपना शरीर ढकते हुए, विराज जल्दी मे वहा से चल दी। थोडी देर तक खडे रहने के बाद राजेन्द्र धीरे-धीरे लौट गया। वह सोचने लगा कि कैसे यह सभव हुआ। भद्र-समाज परित्यक्त जगल के बीच इस छोटे-से गाव मे, जहा एक भी भला आदमी नही रहता, इतना रूप कहा से आ गया? उसी रात को पता लगाकर इस अलौकिक रूपराशि का परिचय भी वह पा गया और हर घडी उसी की बात सोचता रहा। इसके बाद दो बार फिर देखा-देखी हुई।

उस दिन विराज ने घर जाकर सुन्दरी को बुलाकर कहा—'सुन्दरी, घाट पर पीर साहब की मजार पर जो आदमी खडा है, उसे जाकर मना कर दे कि फिर कभी वह हमारे बाग मे पैर न रक्खे।'

सुन्दरी मना करने गयी, किन्तु पास पहुँचकर हतबुद्धि-सी खडी रह गयी। कहा—'बाबू आप?'

राजेन्द्र ने सुन्दरी की ओर देखते हुए कहा—'तू मुझे पहचानती है, क्या?'

सुन्दरी ने कहा—'कौन आपको नही पहचानता, बाबूजी?'

'जानती हो, कहा रहता हूँ।'

सुन्दरी ने कहा—'जानती हूँ।'

राजेन्द्र ने कहा—'तुम एक बार वहा आ सकती हो?'

सुन्दरी ने सलज्ज हसी से सिर झुकाकर पूछा—'किसलिए बाबूजी।'

कुछ काम है, जरा आना!" कहकर बन्दूक कन्धे पर रखकर वह चला गया।

तब से कितनी ही बार लुक-छिपकर सुन्दरी उस जमीदार की कचहरी में गयी है, किंतु लौटकर विराज के सामने एक-आध इशारे के अलावा और कोई बात उठाने की हिम्मत नही हुई। सुन्दरी अच्छी तरह जानती थी कि यह बहू बाहर से चाहे कितनी ही मधुर और कोमल क्यो न दिखाई पडे, किन्तु अन्दर से यह बडी उग्र और कडे स्वभाव की है। विराज में एक गुण और था, और वह था उसका कठिन साहस। आदमी हो या भूत-प्रेत या सांप-बिच्छू, भय नाम की चीज वह जानती ही नहीं थी। इस कारण से भी उससे कोई बात कहने का साहस सुन्दरी को नही होता था।

चूल्हे की लकड़ी सरकाकर विराज ने सुन्दरी की ओर मुखातिब होकर कहा—"क्यो सुन्दरी, तुम तो कितनी ही बार वहां गयी-आयी हो, कितनी ही बातें भी की हैं, किन्तु, मुझे तो तुमने कभी भी कुछ नही बतलाया?"

पहले तो सुन्दरी कुछ अप्रतिभ हुई, किन्तु तुरन्त ही अपने आपको सम्भालकर बोली—"तुमसे किसने कहा बहू कि मैं कितनी बार वहा बातचीत कर आयी हूँ?"

विराज ने कहा—"किसी ने कुछ कहा नही, मैं खुद ही जान जाती हूँ। मेरे सिर के पीछे और भी दो आख-कान हैं, बता, इनाम मे कल तुझे कितने रुपये मिले, दस?"

सुन्दरी कुछ बोल नही सकी। उसका चेहरा पीला पड़ गया। चूल्हे के धुधले प्रकाश में भी विराज ने यह देख लिया, और समझ गयी कि उसे कोई जवाब नही सूझ रहा है।

विराज ने मुस्कराकर कहा—"सुन्दरी! तेरा कलेजा इतना बडा नही है कि मेरे सामने तू कुछ कह सके। वहां जा-आकर, और रुपये लेकर, क्यों तू किसी बडे आदमी के क्रोध का शिकार बनना चाहती है?" चली जा, कल से इस घर में कदम मत रखना, तेरा छुआ पानी पैरों पर डालने से भी मुझे नफरत होती है। अब तक मुझे तेरी सभी बाते मालूम नही थी, किन्तु अब सब सुन चुकी हूं। तेरे आचल मे जो दस रुपये का नोट बंधा है, इसे जाकर लौटा आ। तू गरीब है तो काम-धन्धा करके अपना पेट पाल! जवानी मे जो कर चुकी है, वह अब नही कर सकती, परन्तु अब बेकार ही चार भले आदमियों का सर्वनाश मत कर।"

सुन्दरी कुछ कहना चाहती थी, किन्तु उसकी जुबान खुली ही नही।

विराज ने यह भी देख लिया, कहा—"झूठ बोलने से अब क्या होगा? यह सब बातें मैं किसी से कहूंगी नहीं! पहले मैं नहीं जानती थी कि तेरे आंचल में बंधा हुआ नोट कहां से आया है, परन्तु अब सब कुछ समझ चुकी हू। चली जा, कल से मेरे घर की चौखट मत लाघना!"

सुन्दरी अवाक् रह गयी। उसको विश्वास ही नही होता था कि इस घर से उसका दाना-पानी उठ गया। वह इस घर की पुरानी दासी है। उसने विराज की शादी देखी है, पूंटी को पाल-पोसकर बड़ा किया है और घर की मालकिन के साथ तीर्थ-यात्रा भी कर आयी है। वह भी इस परिवार की एक सदस्या-सी है, और उसी को विराज ने आज चौखट लाघने को मना कर दिया। क्रोध और अभिमान से उसका गला रुंध गया। कितनी ही बातें उसकी जुबान पर आयी, किन्तु उसकी जुबान ही नही हिली। विह्वल-सी वह देखती रह गयी।

विराज सब कुछ समझ गयी, लेकिन कुछ बोली नही। मुँह फेरकर देखा—पतीली का पानी ठण्डा हो गया था। लोटा लेकर, पास ही रखी हुई एक पीतल की कलसी तक वह गयी, किन्तु क्षणभर स्थिर, न मालूम क्या सोचकर उसने लोटा रख दिया और कहा—"नही, तेरे हाथ का पानी छूने से भी अनिष्ट होगा। इसी हाथ से तुमने रुपया लिया है।"

सुन्दरी इस तिरस्कार का कोई उत्तर न दे सकी।

विराज ने दूसरी लालटेन जलाई और घनघोर अंधेरी रात मे वह अकेली ही कलसी लेकर आम के बगीचे के भीतर से होकर नदी से पानी लेने चल दी।

सुन्दरी के मन में एक बार आया कि उसके पीछे-पीछे जाये, किन्तु जंगल का वह अन्धकारपूर्ण, तंग रास्ता, चारों तरफ की प्राचीर, सप्तग्राम के जाने-अनजाने समाधि-स्तूप, बरगद का वह पुराना वृक्ष, सब उसकी आँखो के सामने फिर गया। मारे डर के उसके सिर के बाल तक कांप गये। धीमी आवाज में—"अरी मइया" कहकर वह स्तब्ध रह गयी।

पाँच

दो दिन बाद नीलांबर ने पूछा—"विराज, सुन्दरी नही दिखलाई पड़ती है!"

विराज ने कहा—"मैंने उसे जवाब दे दिया।"

मजाक समझकर नीलांबर ने कहा—"अच्छा किया? मगर यह तो बताओ, उसे हुआ क्या?"

विराज ने कहा—"होगा क्या? सचमुच ही मैंने छुड़ा दिया!"

फिर भी नीलांबर को विश्वास नहीं हुआ। विस्मित होकर उसकी ओर देखते हुए बोला—"उसे कैसे छुड़ा दोगी? वह लाख कसूर करे, परन्तु यह भी तो सोचो कि कितने दिनों से वह काम करती आ रही है। क्या किया उसने?"

विराज ने कहा—"सोच-समझकर ही मैंने छुड़ाया है।"

नीलांबर ने कुछ चिढ़कर कहा—"यही पूछता हूँ कि क्या सोच-समझकर ?"

विराज पति के मनोभाव को समझ गयी। क्षणभर उसकी ओर देखती रहने के बाद बोली—"मैंने अच्छा समझा, छुड़ा दिया। अब तुम अच्छा समझो, तो बुला लाओ।" जवाब की प्रतीक्षा किये बिना ही वह वहां से रसोईघर में चली गयी।

नीलांबर ने समझा कि विराज चिढ़ गयी है, इसलिए कुछ बोला नही। मगर घण्टे भर बाद लौटकर, दरवाजे के बाहर ही खड़े होकर धीरे से बोला—"छुड़ा तो दिया, लेकिन काम कौन करेगा?"

मुँह फेरकर विराज ने हस दिया। कहा—"तुम!"

नीलांबर ने भी हंसते हुए कहा—"तो लाओ, जूठे बर्तन साफ कर लाऊं!"

हाथ का पौना उसने झट-से फेंक दी और नजदीक जाकर पति की पदधूलि माथे से लगाकर कहा—"तुम यहां से जाओ। जरा-सा मजाक करना भी मुश्किल है। सुनते ही ऐसी बातें कहने लगते हो, जिसे कान से सुनना भी महापाप है!"

नीलांबर ने झेंपकर कहा—"यह भी सुनना महापाप है? समझ में नही आता कि किस बात से तुम्हें पाप नहीं लगता, विराज?"

तिराज ने कहा—"तुम जब समझते ही नही तो इतने कहने पर भी जूठे बर्तनों की ही बात क्यों चलाते हो? देर मत करो। जाओ, स्नान कर आओ—खाना तैयार है।"

नीलांबर चौखट पर बैठ गया और कहा—"सचमुच विराज, घर का काम-धन्धा कौन करेगा?"

विराज ने सिर उठाकर कहा—"काम ही कहा है? न तो पूटी है, न लालाजी ही। बिना काम के तो मैं ही दिनभर बैठी रहती हूँ। खैर, जब काम नही चलेगा तो तुमसे कह दूंगी।"

नीलांबर ने कहा—"नहीं विराज, यह नही हो सकेगा। नौकर-दासी का काम मैं तुम्हें नहीं करने दूंगा। सुन्दरी ने कोई गलती नहीं की है, बस खर्च कम करने के लिए तुमने उसे जवाब दे दिया। क्यों यही बात है न?"

विराज ने कहा—"नही। सचमुच ही उसने अपराध किया है!!"

नीलांबर ने पूछा—"क्या?"

विराज ने कहा—"यह मैं नही बतलाऊंगी। जाओ, नहा आओ, बैठे मत रहो!" यह कहकर विराज भी बाहर चली आयी। थोड़ी देर बाद नीलांबर को उसी तरह बैठे देखकर उसने कहा—"अभी तक बैठे ही हो, गये नही?"

नीलांबर ने नम्रता से कहा—"जा रहा हूँ विराज, मगर यह मुझसे नहीं होगा। दासी का काम तुम्हें कैसे करने दू?"

इससे उसे प्रसन्नता नही हुई। क्षणभर पति की ओर देखकर बोली—"क्या करोगे, जरा सुनू तो?"

नीलांबर ने कहा—"सुन्दरी को नही रखना चाहती तो किसी और को रख लो। अकेली कैसे रहोगी तुम घर में?"

विराज ने कहा—"जैसे भी रहू, परन्तु अब किसी को भी नही रखूगी।"

नीलांबर ने फिर कहा—"यह कैसे होगा? जब तक जिन्दा हूँ, तब तक मान-अपमान भी है। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे!"

थोड़ी दूर पर विराज बैठ गयी। कहा—"दरअसल, तुम्हें इसी बात का डर है कि लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे! यह सब तो बस एक छलना है कि मैं कैसे रहूगी और मुझे तकलीफ होगी।"

क्षोभ और आश्चर्य से सिर उठाकर नीलांबर ने कहा—"छलना है?"

विराज ने कहा—"हा, छलना है, मैं सब समझ गयी हूँ। अगर तुम मेरी ओर देखते, मेरे दु.खों पर ध्यान देते और मेरी एक भी बात मानते तो आज मेरी ऐसी हालत नही हुई होती!"

नीलांबर ने कहा—"मैं तुम्हारी एक भी बातें नही मानता?"

विराज ने जोर देकर कहा—"नही, एक भी नही। जब कुछ कहती हूँ, कोई-न-कोई बहाना करके टाल देते हो। तुम्हें बस यही रहता है कि तुम्हें पाप लगेगा, तुम्हारी बात नहीं रहेगी और लोग तुम्हारी शिकायत करेंगे। एक बार भी यह सोचा है कि मेरा क्या होगा?"

नीलांबर ने कहा—"मेरा पाप क्या तुम्हारा पाप नहीं है। मेरा अपयश तुम्हारा अपयश नही होगा?"

अब विराज क्रुद्ध हो उठी और बोली—"यह सब बेकार की बातें हैं। इससे मैं प्रभावित नही होती। पुनः क्षणभर चुप रहकर विराज कहने लगी—"बड़े दु.ख से यह बात आज मुझे मुँह से निकालनी पड़ रही है कि तुम केवल अपनी ही सोचते हो और मेरी कुछ नहीं। आज तो अपने ही घर में मुझे दासी का काम करते देख शर्म मालूम हो रही है, किन्तु कल ही अगर तुम्हें कुछ हो गया तो परसों मुझे दूसरों के यहां दासी का काम करना पड़ेगा। मगर वह सब तुम्हें अपनी आखों से देखना नहीं पड़ेगा, इसलिए तुम्हे शर्म नही लगेगी। सोचने-विचारने की कोई जरूरत नहीं, क्यों?"

इस अद्भुत अभियोग का नीलांबर सहसा कोई जवाब नही दे सका। कुछ देर तक चुपचाप जमीन की ओर देखते रहने के बाद, सिर उठाकर धीरे से कहा—"यह तुम्हारे मन की बात नहीं है। तुम्हें दु:ख पहुंचता है, इसी से नाराज होकर यह सब कह रही हो। वरना तुम बखूबी जानती हो कि स्वर्ग में बैठकर भी मैं तुम्हारा दु:ख नहीं देख सकूंगा।"

विराज ने कहा—"मैं भी पहले ऐसा ही समझती थी। बिना दु.ख में पडे, यह नही जाना जा सकता कि दु:ख क्या है।-मर्दों की माया-ममता भी, समय आये बिना ठीक-ठीक नही जानी जा सकती। खैर, मैं तुमसे झगडा करना नही चाहती। जो कह रही हूँ, वही करो, जाकर चुपचाप नहा आओ।"

"जाता हूँ"—कहकर नीलांबर वैसे ही बैठा रहा।

विराज ने फिर कहा—"आज दो साल हो गये पूटी की शादी हुए। उससे भी पहले से आज तक की सभी बातो पर विचार करके मैंने देखा है—तुमने मेरी बातो पर ध्यान नहीं दिया। हमेशा अपने ही मन की करते गये। आदमी अपने घर के नौकर-चाकर की भी बात रख लेता है, किन्तु तुमने मेरी एक बात नही रखी।"

नीलाबर कुछ कहने जा रहा था कि विराज फिर कह उठी—"न-न, मैं तुमसे बहस करना नही चाहती! कितने कष्ट ओर घृणा से, इष्टदेव का नाम लेकर मैंने कसम खायी है कि में तुमसे कोई बात नहीं कहूगी! एकाएक अगर बात नहीं उठती तो मैं तुमसे कुछ भी नहीं कहती। अब शायद तुम्हे याद न हो, किन्तु बचपन में एक बार सिर-दर्द के कारण मैं सो गयी थी, इसलिए दरवाजा खोलने मे देर हो गयी थी, बस इसी पर तुम मुझे मारने चले थे। तुम्हे विश्वास नहीं हुआ था कि मेरी तबीयत खराब है। उसी दिन मैंने कसम खायी थी कि अपनी बीमारी की बात कभी मैं तुमसे नही कहूगी और आज तक मेरी वह कसम रही है।"

नीलाबर के सिर उठाते ही दोनों की आंखे मिल गयी। सहसा वह उठ गया और विराज के दोनो हाथ पकडकर घबराई आवाज में बोला—"यह नही होगा विराज! तुम्हारी तबीयत क्यों ठीक नही है? तुम्हे बताना ही होगा!"

धीरे-से अपना हाथ छुडाने की कोशिश करते हुए विराज ने कहा—"छोडो, लगता है …।"

नीलाबर ने कहा—"लगने दो, बताओ क्या हुआ?"

विराज ने उदासी से हसते हुए कहा—"कहा? कुछ भी तो नही हुआ! बिल्कुल चगी तो हूँ।"

नीलाबर को विश्वास नही हुआ। कहा—"चंगी तो नही हो! होती, तो कई साल पुरानी बात उठाकर मेरा जी नही दुखाती, जिसके लिए मैं कई बार माफी मांग चुका हूँ।"

"अच्छा अब नही कहूंगी।"—कहकर विराज अपने आपको छुडाकर जरा दूर बैठ गयी।

नीलाबर उसका मतलब समझ गया। दो-तीन मिनट तक चुपचाप बैठे रहने के बाद वह उठकर चल दिया।

रात को चिराग जलाकर विराज चिट्ठी लिख रही थी। पलग पर लेटे-लेटे नीलांबर चुपचाप देख रहा था। एकाएक वह बोल उठा—"इस जन्म में तो तुम्हारा कोई दुश्मन भी तुम पर दोष नही लगा सकता, किन्तु अपने पहले जन्म मे पाप किये बिना ऐसा नही होता।"

विराज ने सिर उठाकर पूछा—"क्या नही होता?"

नीलांबर ने कहा—"तुम्हारा तन-मन ईश्वर ने राजरानी के लायक ही बनाया था, किन्तु · ।"

विराज ने पूछा—"किन्तु क्या?"

नीलांबर चुप हो रहा।

क्षणभर जवाब की प्रतीक्षा करने के बाद विराज ने रूखी आवाज में कहा—"यह खबर ईश्वर तुम्हे कब दे गये?"

नीलाबर ने कहा—"आख-कान हों, तो ईश्वर सभी को खबर दे जाते हैं।"

"हूँ"—कहकर विराज फिर चिट्ठी लिखने लगी।

थोडी देर तक चुप रहने के बाद नीलाबर ने फिर कहा—"उस दिन तुमने कहा था कि मैंने तुम्हारी बात नही मानी। शायद यही सच है! किन्तु इसमे क्या अकेले मेरा ही दोष है?"

विराज ने सिर उठाकर देखते हुए कहा—"अच्छा तो मेरा दोष बतला दो!"

नीलांबर ने कहा—"तुम्हारा दोष तो नही बतला सकूंगा, किन्तु एक बात आज सच-सच कहूंगा! तुम यह कभी नही सोचती कि तुम जैसी कितनी औरते, ऐसे गुणहीन मूर्ख के पाले पडी हैं। यही तुम्हारे पहले जन्म का पाप है, नहीं तो दु.ख बर्दाश्त करने की कोई बात ही नही थी!"

विराज चुपचाप चिट्ठी लिखती रही। शायद उसने इस बात का जवाब न देने की सोची, किन्तु उससे रहा नही गया। मुँह घुमाकर पूछा—"तुम समझते हो कि ये सब बातें सुनकर मैं खुश होती हूँ?"

नीलांबर ने पूछा—"कौन-सी बाते?"

विराज ने कहा—"यही जैसे मैं राजरानी बन सकती थी, बस तुम्हारे हाथ मे पडकर ऐसी हो गयी! तुम समझते हो कि ऐसी बाते सुनकर मुझे खुशी होती है या जो ऐसी बाते कहता है—उसका मुंह देखने की तबीयत होती है?"

नीलांबर ने देखा, कि विराज बहुत क्रोधित हो गयी है। वह नही समझता था कि बात इतनी बढ़ जायेगी। मन-ही-मन उसे बहुत सकोच हुआ, परन्तु एकाएक उसके दिमाग में यह बात नही आयी कि कैसे उसे खुश करे।

विराज कहने लगी—"रूप-रूप-रूप! सुनते-सुनते मेरे कान पक गये। और भी लोग कहते हैं, क्योंकि वे खासतौर से शायद यही देखते हैं, किन्तु तुम तो मेरे स्वामी हो, बचपन से ही तुम्हारे आश्रय में रहकर बडी हुई हूँ। तुम भी इससे बढ़कर और कुछ नही देख पाते? बस, यह रूप ही मुझमे सब कुछ है? क्या समझकर यह बात तुम जबान पर लाते हो? मैं क्या रूप का सौदा करती हूँ, या इसी रूप मे फसाकर तुम्हे रखना चाहती हूँ?"

नीलांबर ने घबराकर कहा—"न, न यह नही ।"

विराज बात काटकर कहने लगी—"ठीक यही है। इसी कारण एक दिन मैंने पूछा था कि अगर मैं काली-कलूटी होती तो तुम मुझे इतना प्यार करते या नहीं—याद है?"

नीलांबर ने सिर हिलाया—"याद है! तब तुमने तो कहा था · ।"

विराज ने कहा—"कहा था कि काली-कलूटी होने पर भी मुझको प्यार करते, क्योंकि मुझसे शादी की है! मैं गृहस्थ की बेटी और गृहस्थ की बहू हूँ। यह सब बाते मुझसे करते हुए तुम्हे शर्म नही लगती? पहले भी तुमने कहा था ·।" कहते-कहते क्रोध और अभिमान से, चिराग की रोशनी में उसकी आखो के आसू झिलमिलाने लगे।

स्वय विराज ने ही एक दिन कहा था कि हाथ पकड लेने से क्रोध नही रह जाता।

नीलांबर को सहसा वही बात याद आ गयी। झटपट उठकर उसने विराज का दाहिना हाथ अपने हाथो मे ले लिया और वही बैठ गया।

बाये हाथ से विराज ने अपनी आखे पोछ ली।

उस रात को पति-पत्नी बडी देर तक जागते रहे। नीलांबर ने एकाएक पत्नी की ओर मुखातिब होकर मधुर स्वर में पूछा—"आज तुम्हें इतना गुस्सा क्यो आ गया, विराज?"

विराज ने कहा—"तुमने ऐसी बात क्यों की?"

नीलांबर ने कहा—"मैंने कोई बुरी बात तो की नही!"

विराज ने फिर बिगडकर कहा—"फिर वही बुरी बात! बहुत ही बुरी बात है इसीलिए तो सुन्दरी को · ।"

कहते-कहते विराज चुप हो रही।

क्षणभर चुप रहकर नीलांबर ने पूछा—"बस, इतनी-सी बात पर तुमने सुन्दरी को जवाब दे दिया?"

"हां"—कहकर विराज चुप हो रही।

नीलांबर ने फिर कुछ नहीं पूछा।

विराज अपने-आप ही कहने लगी—"देखो जिद मत करो! मैं दूध-पीती बच्ची नहीं हूँ। अच्छा-बुरा सब समझती हूँ। उसने छुड़ा देने वाला काम किया था, इसी से छुड़ा दिया। उसका पूरा हाल अगर तुम मर्द लोग न सुनो तो ही ठीक है!"

नीलाम्बर ने कहा—"मैं सुनना भी नहीं चाहता!" कहकर वह एक ठण्डी सास लेकर, करवट बदलकर सो गया।

छोटे भाई पीताम्बर ने, बटवारे के दो-चार दिन बाद ही बांस और चटाई की दीवार बनाकर अपना हिस्सा अलग कर लिया था। दक्षिण की ओर एक दूसरा दरवाजा बना लिया और सामने छोटी-सी एक बैठक भी बना ली थी। अपने घर को अच्छी तरह सजाकर वह बडे आराम से रहता था। पहले भी वह अपने बड़े भाई से अधिक बोलता नही था, किन्तु अब तो सारा सम्बन्ध ही टूट गया था। इस ओर विराज को अक्सर दिनभर अकेले ही रहना पड़ता था। सुन्दरी के चले जाने के बाद, बहुत-सा काम लोकलाज के कारण उसे एकान्त मे करना पडता था और इस तरह उसे रात को देर तक जागना पडता था। एक दिन उसी तरह वह काम कर रही थी कि टट्टी के उस पार से एक धीमी मधुर आवाज ने कहा—"दीदी।"

रात अधिक हो गयी थी। विराज चौंक गयी। फिर मधुर आवाज आयी—"जीजी, मैं हूँ मोहिनी!"

विराज ने विस्मित होकर कहा—"छोटी बहू, इतनी रात को · ·?"

मोहिनी ने कहा—"हा दीदी, जरा पास आओ!"

विराज टट्टी के पास चली गयी। छोटी बहू ने धीरे से कहा—"जेठ जी सो गये हैं?"

विराज ने कहा—"हाँ।"

मोहिनी ने कहा—"कुछ कहना चाहती हूँ दीदी, पर कह नही सकती!" यह कहकर वह चुप हो गयी।

उसकी आवाज से लगा, जैसे वह रो रही हो! विराज ने चिन्तित होकर पूछा—"क्या हुआ, छोटी बहू?"

मोहिनी ने तुरन्त कोई जवाब नही दिया। लगा जैसे वह रो रही है। अपने को संयत कर रही है।

विराज ने घबराकर पूछा—"क्या बात है बहू?"

अब मोहिनी ने भर्राई आवाज मे कहा—"जेठजी पर नालिश हुई है! कल क्या कहते हैं, सम्मन आयेगा! अब क्या होगा दीदी?"

विराज डर गयी, किन्तु अपने मन का भाव छिपाते हुए उसने कहा—"सम्मन आयेगा तो इसमे डरने की क्या बात है, बहू?"

मोहिनी ने पूछा—"कोई डर नही, दीदी?"

विराज ने कहा—"डर किस बात का! मगर किसने की है नालिश?"

छोटी बहू ने कहा—"भुलु मुकर्जी ने।"

विराज सन्नाटे मे आ गयी। फिर कहा—"रहने दे, अब कहने की जरूरत नहीं है। अब मैं समझ गयी।" मुकर्जी का उनपर पावना हे, शायद इसी से नालिश की है; लेकिन इसमें डरने की तो कोई बात हैं नही, छोटी बहू!" दोनों ही चुप हो गये।

कुछ देर चुप रहने के बाद छोटी बहू ने कहा—"मैंने तुमसे कभी अधिक बातचीत नही की है दीदी, और इस लायक भी नही हूँ कि कोई बात कह सकूं! परन्तु, अपनी छोटी बहन की एक बात आज मानोगी, दीदी?"

"मानूंगी क्यों नहीं बहन?"

मोहिनी ने कहा—"तो अपना हाथ जरा इस ओर बढ़ा दो।"

विराज के हाथ बढ़ाते ही, फर्राटी की संधि से एक मुलायम और छोटे हाथ ने एक सुनहला हार रख दिया।

विराज ने चकित होकर कहा—"यह क्यो दे रही हो, छोटी बहू?"

छोटी वहू ने और भी धीमी आवाज में कहा—"इसे बेचकर या बन्धक रखकर—जैसे भी हो—उसका कर्ज चुका दो दीदी!"

इस अप्रत्याशित सहानुभूति से विराज क्षणभर के लिए अभिभूत हो उठी। उसकी जबान से कोई बात नही निकल सकी। लेकिन 'जाती हूँ दीदी'—कहकर छोटी बहू जब जाने को हुई, तब वह जल्दी से पुकार उठी—"बहू, सुनो तो!"

छोटी वहू ने लौटकर पूछा—"क्या है दीदी?"

विराज ने हार फर्राटी के उस पार फेकते हुए कहा—"छि छि, ऐसा नही करना चाहिए!"

छोटी बहू ने हार उठा लिया और क्षुब्ध होकर पूछा—"क्यों दीदी?"

विराज ने कहा—"छोटे बाबू सुनेगे तो!"

वहू ने कहा—"वे सुनेंगे कैसे?"

"आज नहीं तो दो दिन वाद, उन्हें मालूम होने पर क्या होगा?"

छोटी वहू ने क़हा—"उन्हे कभी नहीं मालूम हो सकेगा दीदी! मेरी मां ने पिछले साल, मरते समय इसे मुझे दिया था। तब से मैंने इसे कभी बाहर नही निकाला। तुम्हारे पावो पडती हूँ दीदी, ले लो!"

उसकी बातें सुनकर विराज की आखें डबडबा आयी। वह विस्मित और स्तब्ध रह गयी। इस औरत के व्यवहार के साथ—जिसके खून से कोई सम्बन्ध नही, वह घर के दो सहोदर भाइयों के व्यवहार की तुलना करने लगी। फिर हथेली से आंखें पोंछकर उसने रुंधे कण्ठ से कहा—"आखिरी वक्त तक यह बात याद रहेगी बहन, किन्तु यह हार मैं न ले सकूगी। इसके अलावा, अपने पति से छिपाकर कोई काम नही करना चाहिए वहू, नही तो हम दोनो पर पाप पडेगा।"

छोटी वहू ने कहा—"तुम सभी बाते नही जानती हो जीजी, इसी से कहती हो। धर्म-अधर्म की चिन्ता तो मुझे भी है दीदी, मरने के समय मैं क्या उत्तर दूगी?"

विराज ने अपनी आंखें पोंछकर अपने आपको सम्हालते हुए कहा—"सबको तो मैंने जाना वहू, किन्तु तुम्हें ही अब तक नहीं जान सकी! मरने के समय तुम्हें कोई जवाब नहीं देना पड़ेगा, वह जवाब तो अन्तर्यामी ने अभी लिख दिया होगा। वडी रात हो गयी बहिन, अब जाकर सो रहो!" यह कहकर, उसे कुछ कहने का मौका दिये विना ही विराज वहा से चल दी।

लेकिन वह अन्दर नही जा सकी। अंधेरे बरामदे के किनारे में आंचल बिछाकर वह लेट गयी। सब कुछ भूलकर, उस समय वह कम बोलने वाली, छोटी देवरानी की दया और सहानुभूति की बातें सोचने लगी। उसकी आंखों से निरन्तर आसू गिरने लगे। रह-रहकर उसके हृदय में एक कचोट-सी उठने लगी कि इतने नजदीक रहकर भी वह इस छोटी बहू को जान न सकी, और न जानने की कोशिश ही कर सकी। यह सच है कि उसने कभी बहू की निंदा नही की, परन्तु अपना समझकर कोई अच्छी बात भी नही की। विजली जैसे क्षणभर में तीव्र अन्धकार को चीर देती है, वैसे ही यह छोटी बहू आज उसके हृदय के अन्तरतम को प्रकाशित कर गयी। उसी तरह रोते-रोते, न मालूम कब वह सो गयी। अचानक किसी का हाथ लगने से वह अचकचाकर उठ बैठी।

सिरहाने बैठे नीलाबर ने कहा—"अन्दर चलो, रात बीत चली है।"

पति का सहारा लेकर, विराज चुपचाप अन्दर जाकर निर्जीव-सी सो गयी।

छः

एक साल बीत गया। इस बार दो आने भी फसल नही हुई। जिस जमीन से पूरे साल का भरण-पोषण होता था, उसमें से बहुत-सी उसी मोहल्ले के भोलानाथ मुकर्जी ने खरीद ली है। घर तक बन्धक है। लोग यह भी जान गये हैं कि छिपे तौर पर छोटे भाई पीतांबर ने ही उसे खरीद लिया है। बैल

गया है। तालाब मे दरार निकल आयी है। विराज को कोई सहारा नजर नही आता। शरीर का एक
सा जोर से बाध देने से—सारा शरीर जैसे धीरे-धीरे अवसन्न होने लगता है, सारे ससार से उसका
बन्ध वैसा ही होने लगा है। विराज पहले थोड़ा हसी-मजाक भी कर लेती थी, किन्तु अब उस घर मे
ई भी ऐसा आदमी नही रह गया, जिससे वह ऐसी बात कर सके। कोई उससे मिलने-जुलने आता तो
उसे चिढ़ होती। स्वभाव से ही वह बडी अभिमानिनी है। अब पास-पड़ोस के लोगो की मामूली बातो
भी वह चिढ़ जाती है। देखने से लगता है कि गृहस्थी के कामो मे भी अब उसकी तबीयत नही लगती।
उसके कमरे का बिस्तर गन्दा हो गया है। अरगनी पर कपडे तितर-बितर पडे हैं। कमरे का कूडा भी वैसे
पडा रह जाता है, उसे फेकने की भी ताकत जैसे उसमे अब नही रह गयी है। इस बीच नीलाबर ने दो
र अपनी छोटी बहिन हरिमती को लाने की कोशिश की, मगर उन लोगो ने मना कर दिया। करीब
द्रह दिन हुए, उसने एक चिट्ठी लिखी थी; परन्तु हरिमती के ससुर ने उसका जवाब भी नही दिया।
राज के सामने यह सब नही कहा जा सकता, वह एकदम चिढ जाती है। उसने पूटी को बेटी की तरह
ल-पोसकर बड़ा किया, लेकिन आजकल उसकी बात सुनते ही वह चिढ जाती है।

आज सबेरे गाव के डाकखाने से, नीलाबर उदास मुँह लिये लौट आया और कहा—"पूटी के ससुर ने
वाब भी नही दिया। मालूम होता है कि अब की दूर्गा-पूजा मे भी उसे नही देख सकूगा!"

काम करते-करते विराज ने एक बार सिर उठाया, मगर कुछ कहे बिना ही उठकर चली गयी।

दोपहर को जव नीलाबर खाने को बैठा, तो उसने धीरे-से कहा—"उसने कौन-सा अपराध किया है
क उसका नाम लेते ही तुम चिढ जाती हो?"

विराज ने सिर उठाकर कहा—"यह किसने कहा कि मैं चिढ उठती हूँ?"

नीलावर ने कहा—"कहेगा कौन? मैं खुद ही देखता हूँ!"

क्षणभर पति की ओर देखती रहने के बाद विराज ने कहा—"देखते हो तो अच्छा है!" कहकर वह
हाँ से जाने लगी। नीलाबर ने टोककर कहा—"बताओ तो भला कि तुम एकदम बदल कैसे गयी।"

विराज ने घूमकर कहा—"दूसरो के बदलने पर बदल ही जाना पड़ता है।" कहकर वह बाहर चली
गयी।

इसके दो-तीन दिन वाद, एक दिन तीसरे पहर नीलाबर चडी-मण्डप के बरामदे मे बैठा हुआ कुछ
गुनगुना रहा था। विराज कुछ देर चुप रही। फिर उसके सामने आकर खडी हो गयी।

नीलावर ने सिर उठाकर कहा—"क्या है?"

विराज तीखी नजर से देखती रही।

नीलांवर ने सिर नीचा कर लिया। विराज ने रूखी आवाज मे कहा—"जरा सिर उठाओ तो देखूं!"

नीलावर ने सिर नही उठाया, चुप रहा।

विराज ने पहले की तरह ही कडी आवाज से कहा—"आखे तो खूब लाल हैं! फिर शुरू हो गया?"

नीलाबर डर से आखे नीची किये हुए, काठ के पुतले-सा बैठा रहा। विराज से वह हमेशा से ही डरता
था, परन्तु इधर कुछ दिनों से वह बिल्कुल बारूद बन गयी थी—किसी समय भी भडक उठेगी, इसका
अन्दाज लगाना कठिन था।

थोडी देर तक स्थिर भाव से खड़े रहने के बाद विराज ने कहा—"दम लगाकर 'बम भोले बाबा'
बनकर बैठने का यही तो समय है!" कहकर वह अन्दर चली गयी।

दूसरे दिन नीलांवर से नही रहा गया। लाज-शर्म सब छोडकर, सवेरे ही उसने पीतावर को बाहर
कमरे में बुलाकर कहा—"मुझे तो पूंटी के ससुर ने जवाव तक नही दिया। तुम ही एक वार कोशिश कर
देखो! शायद दो दिनों के लिए ही बहिन आ सके!"

भाई की ओर देखते हुए पीताबर ने कहा—"तुम्हारे रहते, भला मैं क्या कोशिश करू?"

धुर्तता की यह बात सुनकर नीलावर को गुस्सा आ गया, किन्तु उसने अपना भाव छिपाते हुए
कहा—जैसे वह मेरी बहिन है, वैसे तुम्हारी भी है। बस, यही समझ लो कि मैं मर गया, अब तुम्ही अकेले हो।

पीतांबर ने कहा—"जो सत्य नही है, तुम्हारी तरह मैं मान लेने को तैयार नही हूँ और उन्होंने तुम्हारी
चिट्ठियों का जवाब नही दिया तो मेरी ही चिट्ठियो का जवाब क्यों देंगे?"

नीलाबर ने छोटे भाई की यह बात भी बर्दाश्त कर ली। कहा—"जो सत्य नही है, वही मैं समझ लेता हूँ? खैर, यही सही! यह बात लेकर मैं तुमसे झगडा करना नही चाहता। किन्तु मेरी चिट्ठी का जवाब तो वह इसलिए नही देते कि मैं शादी की सभी शर्तें पूरी न कर सका, मगर यह सब कहने के लिए मैंने तुम्हे नही बुलाया। तुम यह बताओ कि जो कहता हूँ, वह कर सकोगे या नहीं?"

पीतांबर ने सिर हिलाकर कहा—"नही। शादी के पहले मुझसे पूछा था।"

नीलाबर ने कहा—"पूछकर क्या होता?"

पीतांबर ने कहा—"मैं कुछ अच्छी ही राय देता!"

नीलाबर के दिमाग मे आग जल रही थी, उसके ओठ कापने लगे, फिर भी अपने-आपको सभालकर कहा—"तो तुम नही कर सकोगे?"

पीताबर ने कहा—"जी नही। वे जैसे पूटी के ससुर हैं, वैसे मेरे भी! वे बडे हैं; भेजना नही चाहते, तो उनके खिलाफ मैं कुछ भी नही कर सकता। मेरी यह आदत नही है!"

नीलाबर के जी मे आया कि लाठी से उसका मुँह तोड दे, मगर उसने अपने आपको सभालकर, खडे होकर कहा—"निकल जाओ—हट जाओ मेरे सामने से!"

पीताबर ने भी क्रोधित होकर कहा—"बेकार नाराज क्यो हो रहे हो? अगर न जाऊ तो क्या मुझे जबरदस्ती निकाल दोगे?"

नीलाबर ने दरवाजे की ओर इशारा करते हुए कहा—"बुढापे मे मार खाकर अगर जाना नही चाहते, तो हट जाओ मेरे सामने से!"

पीताबर कुछ कहने ही वाला था कि नीलाबर ने कहा—"मैं कुछ भी सुनना नही चाहता। बस, चले जाओ!!"

गंवार नीलाबर अपनी शारीरिक शक्ति के लिए मशहूर था।

पीताबर धीरे-से बाहर निकल गया। उसे कुछ कहने की हिम्मत न हुई।

गोलमाल सुनकर विराज बाहर निकल आयी। पति का हाथ पकड कर कहा—"छि! सब कुछ जानकर भी क्या भाई से झगडा किया जाता है ताकि सभी सुनकर हसी उडाएं!"

नीलाबर ने उद्धत स्वर मे कहा—"तो दब जाऊ? सब कुछ बर्दाश्त कर सकता हूँ विराज, परन्तु धूर्तता नही।"

विराज ने कहा—"अगर हाथ पकडकर वे तुम्हे बाहर निकाल दे, तो कहा खडे होओगे? यह भी सोचा है कभी? अकेले तो हो नही!"

नीलाबर ने कहा—"जो सोचने वाला होगा, सोचेगा! मैं बेकार क्यो चिन्ता करू?"

विराज ने कहा—"ठीक ही तो है! ढोल बजाना और महाभारत पढना ही जिसका काम है, उसके लिए सोचना-विचारना तो बेकार ही है!"

विराज ने यह बात मजाक मे नही कही और नीलाबर को भी मधुर नही लगी, फिर भी उसने सहज स्वर मे कहा—"उसे ही मैं सबसे बडा काम समझता हूँ! और चिन्ता करने से—भाग्य मे जो लिखा होगा, वह तो मिट जाने का नही!" फिर माथे की ओर इशारा करते हुए कहा—"यहाँ लिखा रहने के कारण ही कितने राजा-महाराजाओ को पेडो के नीचे रहना पडा है, विराज! फिर मैं तो एक मामूली आदमी हूँ!"

विराज मन-ही-मन जली जा रही थी। कहा—"यह सब कहना जितना आसान है, करना उतना आसान नही! और तुम भले ही पेड के नीचे रह सको, पर मैं तो नही रह सकती! औरतो को लाज-शरम होती है—खुशामद करके या दासी का काम करके, मुझे तो किसी आश्रय में रहना ही पड़ेगा। छोटे भाई की इच्छानुसार अगर नही रह सकते हो तो उससे हाथापाई करके सब कुछ मिट्टी मे मत मिलाओ!" कहकर विराज बाहर निकल गयी।

इससे पहले भी पति-पत्नी मे कई बार झगडा हो चुका है, और नीलाबर इससे परिचित है। परन्तु आज जो कुछ हुआ, वह वैसा नही था। इस मूर्ति से तो वह बिल्कुल अपरिचित था। वह भयभीत-सा खडा रह गया।

थोडी देर बाद ही विराज इस कमरे मे आयी और बोली—"इस तरह खडे क्यों हो? देर हो रही

है—जाओ, जल्दी नहाकर पूजा-पाठ करके खा लो! जब तक मिलता है, तभी तक सही!" कहकर पति के कलेजे में एक और शूल वेधकर वह चली गयी।

इसी कमरे की दीवार पर राधाकृष्ण की तस्वीर थी। इधर देखकर सहसा नीलाबर रो पडा, परन्तु तुरन्त ही उसने आखे पोछ ली ताकि कोई देख न ले।

और विराज भी दिनभर रोती रही। जिसकी मामूली तकलीफ भी वह बर्दाश्त नही कर पाती थी, उसी को इतनी कडी बात कह देने के कारण, उसके दुःख और पश्चात्ताप की कोई सीमा नही रही। उसने कुछ खाया न पीया। दिनभर इस कमरे से उस कमरे मे घूमती रही। इसके बाद शाम को तुलसी के पौधे तले चिराग जलाकर, गले मे आचल डालकर जब वह प्रणाम करने लगी तो फफक-फफककर रो पडी।

घर निर्जन और निस्तब्ध था। नीलाबर दोपहर को खाने बैठा और तुरन्त ही जो उठकर चला गया तब से अभी तक वापिस नही आया था।

विराज की समझ मे नही आ रहा था कि वह क्या करे, कहां जाये और किससे क्या कहे? चारो ओर देखने पर भी उसे कोई उपाय नजर नही आया। अधेरे आंगन मे वह औंधी पड़कर रोने लगी। उसके मुँह से बस यही निकलने लगा—"अन्तर्यामी, एक बार मेरी ओर आख उठाकर तो देखो! जो कोई कष्ट या पाप नही जानता, उसे कोई तकलीफ मत देना, देवता! अब मुझसे बर्दाश्त नही हो सकेगा।"

रात के नौ बज रहे थे। नीलांबर आकर चुपचाप चारपाई पर लेट गया। विराज अन्दर आकर उसके पैरो के पास बैठ गयी परन्तु नीलाबर ने न तो उसकी ओर देखा और न कुछ कहा।

थोडी देर बाद विराज ने पति के पाव पर अपना हाथ रक्खा, परन्तु नीलाबर ने तुरन्त अपना पैर खीच लिया। चार-पाच मिनट मौन मे बीत गये। विराज का सोया हुआ अभिमान जागने लगा तो भी उसने मधुर स्वर में कहा—"आज दिनभर कुछ नही खाया। किस पर नाराज हो, जरा सुनूं तो!"

नीलाबर ने इसका भी कोई जबाब नही दिया।

विराज ने पूछा—"बताओ न!"

नीलाबर ने उदास स्वर मे कहा—"क्या होगा सुनकर?"

विराज ने कहा—"सुनाओ भी सही!"

अबकी नीलाबर उठ बैठा और विराज के चेहरे पर अपनी आंखें शूल की तरह गडाकर कहा—"मैं तुमसे बड़ा हूँ विराज, कोई मजाक नही है!"

उसकी उस आवाज से विराज स्तब्ध रह गयी—ऐसा गम्भीर कण्ठ-स्वर तो उसने कभी किसी दिन नही सुना था।

सात

मगरा के गज मे पीतल ढालने के कई कारखाने थे। मुहल्ले की छोटी जाति की लडकियां, मिट्टी के सांचे बनाकर वहां बेचा करती थी। उन्ही मे से एक लड़की को बुलाकर, अत्यन्त दुःखी विराज ने सांचा बनाना सीख लिया था। वह बहुत ही बुद्धिमती और चतुर थी। दो ही दिनों में काम सीखकर, वह सबसे अच्छा साचा बनाने लगी। व्यापारी खुद ही आने लगे और नगद पैसे देकर उससे सांचा खरीदने लगे। इस तरह वह रोज ही आठ-दस आने कमा लेती, मगर लाज के कारण पति से यह बात नही कहती। नीलांबर के सो जाने के बाद, बड़ी रात को वह उठती और साचे बनाती। आज रात को भी वह सांचे बनाने गयी, मगर थकावट के कारण वही सो गयी। नीलांबर सहसा जाग गया और पलग पर किसी को न देखकर बाहर निकल आया। विराज के इधर-उधर सांचे पडे थे और उसके हाथ भी कीचड से सने थे। वहीं ठण्ड में, गीली जमीन पर एक ओर वह पडी थी। आज तीन दिन से पति-पत्नी में बोल-चाल नही थी। नीलाबर की आखे छलछला गयी। वह वही पर बैठ गया और विराज के सिर को सावधानी से अपनी गोद में रख लिया। विराज कुछ सकपकायी और दोनों पैरो को समेटकर और मजे मे सो गयी। नीलांबर ने बायें हाथ से अपनी आंखें पोंछ ली, और पास ही रखे चिराग को जरा तेज करके, एकटक अपनी पत्नी का मुंह निहारने लगा। यह क्या हो गया है? विराज की आंखों के कोने स्याह हो गये हैं। उसके सुन्दर और सुडौल माथे पर दुश्चिन्ता की रेखा साफ झलक रही थी। एक अव्यक्त और असीम वेदना से उसका सम्पूर्ण हृदय मसोस उठा। असावधानी के कारण, आंसू की एक बूंद विराज की पलक पर टपक पडी। विराज की आखें

खुल गयी। क्षणभर देखती रहने के बाद, हाथ फैलाकर वह पति की छाती से लिपट गयी और करवट फेरकर, उसकी गोद मे मुंह छिपाकर पडी रही। नीलाबर उसी तरह बैठा-बैठा रोता रहा। दोनो ही चुप रहे। रात बीत चली। जब पौ फट गयी तो नीलाबर ने सभलकर, पत्नी के माथे पर हाथ रखकर स्नेहपूर्वक कहा—"अन्दर चलो विराज, ठण्ड मे मत पडी रहो!"

"चलो"—कहकर विराज उठ बैठी और पति का हाथ पकडकर अन्दर जाकर सो रही।

सवेरे ही नीलाबर ने कहा—"विराज, कुछ दिन तुम अपने मामा के यहा घूम-फिर आओ! मैं भी जरा कलकत्ता जाऊगा।"

"कलकत्ता जाकर क्या होगा?"

नीलाबर ने कहा—"पैसा कमाने का वहा कुछ-न-कुछ उपाय हो ही जायेगा। बात मानो विराज, दो-चार महीने वहीं जाकर रहो।"

विराज ने कहा—"कब तक मुझे बुला लाओगे?"

नीलाबर ने कहा—"छ महीने के अन्दर ही बुला लूगा, वायदा करता हूँ!"

"अच्छा!" कहकर विराज राजी हो गयी।

चार-पाच दिनो के बाद बैलगाडी आयी। विराज के मामा का घर वहा से आठ-दस कोस पर है। बैलगाडी से ही जाना होता है। विराज के व्यवहार मे, उसके जाने का कोई लक्षण दिखाई नही पडा।

नीलाबर व्यग्र होकर उसे सावधान करने लगा।

विराज ने काम करते-करते कहा—"आज तो मैं नही जाऊगी! मेरी तबीयत ठीक नही है।"

नीलाबर ने विस्मित होकर पूछा—"तबीयत खराब है?"

विराज ने कहा—"हा, बहुत खराब है!" कहकर उदास मुह किये, पीतल की कलसी कमर पर रखकर पानी लेने के लिए वह नदी की ओर चल दी। उस दिन बैलगाडी लौट गयी। रात को बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर, दो दिन बाद जाने के लिए वह फिर राजी हो गयी।

दो दिन बाद फिर बैलगाडी आयी। नीलाबर ने आकर खबर दी, तो विराज फिर पलट गयी—"नहीं मैं कभी नही जाऊगी!"

नीलाबर ने चिन्तित होकर कहा—"क्यो?"

विराज रो पडी—"मैं नही जाऊगी! मेरे पास न तो गहने हैं, न अच्छे कपडे हैं। मैं नही जाऊगी!"

नीलांबर ने क्रोधित होकर कहा—"जब थे, तब तो एक बार भी उनकी ओर आख उठाकर नहीं देखा!"

धोती के छोर से विराज आंखे पोछने लगी।

नीलाबर ने कहा—"यह छल मैं समझता हूँ! मुझे सन्देह तो पहले ही से था, परन्तु सोचता था कि दु:ख-कष्ट के कारण अब तुम्हें होश आ गया। परन्तु देखता हूँ—कुछ भी असर नही हुआ! खैर, सूख-सूखकर तुम भी मरो और मैं भी।" कहकर नीलांबर ने गाडी वापस कर दी।

दोपहर के वक्त नीलाबर सो रहा था। पीताबर अपने काम पर गया था। छोटी बहू ने टट्टर की सन्धि से मधुर स्वर मे कहा—"दीदी, बुरा मत मानना, मैं तुमको क्या समझाऊंगी—दो दिन बाद चली क्यों न गयीं?"

विराज चुप रही।

छोटी बहू ने कहा—"जेठजी को रोको मत, दीदी! विपत्ति के समय दिल को जरा कडा कर लो। दो दिन बाद भगवान अवश्य कृपा करेंगे!"

विराज ने धीरे-से कहा—"दिल तो कडा किये ही हूँ, बहू!"

छोटी बहू ने जोर देते हुए कहा—"तो जेठजी को मर्दों की तरह रुपया कमाने दो, दीदी, दो दिन बाद भगवान अवश्य ही कृपा करेंगे!"

विराज ने सिर उठाकर कुछ कहना चाहा, परन्तु फिर सिर झुका लिया।

छोटी बहू ने कहा—"दीदी, जा नहीं सकोगी?"

विराज ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं! सुबह उठकर उनका मुह देखे बिना मैं नही रह सकती। ऐसा

काम मुझसे करने के लिए मत कहो बहू, यह मुझसे नही हो सकेगा!" यह कहकर वह जाने लगी कि छोटी बहू ने सहसा पुकारकर भर्राई आवाज मे कहा—"कुछ दिनों के लिए तुम्हें जाना ही पडेगा, दीदी! बिना गए काम नही चलने का!"

विराज लौटकर खडी हो गयी। क्षणभर स्थिर भाव से खडी रहकर कहा—"अच्छा, समझी—शायद सुन्दरी आयी होगी!"

छोटी बहू ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ!"

"तो इसीलिए चले जाने को कहती हो!"

बहू ने कहा—"हां दीदी, तुम यहा से चली ही जाओ!"

थोडी देर तक चुप रहने के बाद विराज ने कहा—"एक कुत्ते के डर से घर छोडकर भाग जाऊं?"

बहू ने कहा—"कुत्ता जब पागल हो जाता है, तो उससे डरना ही पडता है, दीदी! इसके अलावा यह तुम्हारे अकेले की बात नही है। जरा सोचो तो सही कि इसे लेकर और भी क्या अनिष्ट हो सकता है।"

क्षणभर चुप रहने के बाद, विराज ने सिर उठाकर उद्धत स्वर में कहा—"नही, किसी तरह भी नही जाऊगी!" यह कहकर छोटी बहू को जवाब देने का मौका दिये बिना ही, वह वहां से चली गयी। मगर अब उसे डर होने लगा। उसके घाट के ठीक सामने उस पार, दो दिनों से बडी धूम-धाम से नहाने का एक घाट बनाया जा रहा था और नदी मे मछली न रहने पर भी मछली पकडने का मचान बन रहा था। विराज मन-ही-मन समझ गयी कि यह सब क्यो हो रहा है! एक दिन नीलाबर नहाकर लौटा तो पूछा—"उस पार घाट कौन बनवा रहा है?"

विराज एकाएक बिगड गयी—"मुझे क्या मालूम!" और वह झट वहा से चली गयी।

नीलाबर यह देखकर अवाक् रह गया। किन्तु समय-असमय मे पानी के लिए जाना विराज ने उसी दिन से बन्द कर दिया। या तो भोर मे या कुछ रात गये ही वह पानी के लिए जाती थी। इसके अलावा किसी हालत में भी वह उधर नही जाती। घृणा, लज्जा और क्रोध के मारे उसका दम घुटने लगा। इसी अत्याचार और अशिष्टता के विरुद्ध विराज अपने पति से कुछ भी कहने का साहस नही कर सकी।

चार दिनों बाद, एक दिन नीलाबर घाट से लौटा तो हंसते हुए बोला—"नये जमीदार की सज-धज देख रही हो, विराज?"

विराज ने अनमने स्वर में कहा—"देखा है!"

नीलाम्बर ने हंसते-हंसते कहा—"यह पागल है क्या! नदी मे तो दो-चार छोटी मछलियो के भी रहने भर का पानी नहीं है और यह जमीदार, बंसी डाले दिनभर बैठा रहता है!"

विराज चुप रह गयी, किसी तरह भी अपने पति की हंसी मे साथ नही दे सकी।

नीलांबर कहने लगा—"मगर, यह तो अच्छा नही है! भले आदमियों के मकानो के घाट के सामने उसके दिनभर बैठे रहने से, स्त्रियां और लडकियां कैसे बाहर निकलेंगी? तुम लोगों को तो बड़ी असुविधा होती होगी!"

विराज ने कहा—"उपाय ही क्या है?"

नीलांबर ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—"बंसी लेकर पागलपन करने की क्या कोई और जगह नही है? कल सवेरे ही कचहरी जाकर कह आऊगा कि ज्यादा शौक है, तो बंसी लेकर कही और बैठे! हू, हमारे घर के सामने यह सब नहीं चलेगा!"

यह बात सुनकर विराज कुछ डर गयी। उसने घबराकर कहा—"न-न, यह सब तुम्हे कहने की कोई जरूरत नहीं! नदी पर सबका हक है।"

नीलांबर ने विस्मित होकर कहा—"क्या कह रही हो विराज, अपने अच्छे-बुरे का विचार नही करना चाहिए? कल ही जाकर कह आऊंगा; और अगर नही माना, तो खुद ही जाकर घाट वगैरह तोड-फोडकर फेंक दूगा। देखूं, मेरा क्या कर लेता है!"

विराज सकते मे आ गयी। धीरे से बोली—"तुम जमीदार से लड़ाई करने जाओगे?"

नीलांबर ने कहा—"जाऊंगा क्यों नही! बड़े आदमी हैं तो क्या अत्याचार करेगे और उसे बर्दाश्त करना पडेगा?"

"साबित कर सकोगे कि यह अत्याचार है?"

नीलांबर ने झल्लाकर कहा—"इस सब झंझट में मैं नहीं पड़ता! साफ देख रहा हूं कि वह अत्याचार कर रहा है, और तू कह रही है कि क्या प्रमाणित कर सकता हूं? कर सकूंगा या नहीं, इसे मैं समझूंगा।"

क्षणभर पति की ओर गौर से देखती रहने के बाद विराज ने कहा—"दिमाग जरा ठण्डा करो! जिसे दोनों वक्त खाना भी नही मिलता, उसके मुंह से यह बात सुनकर लोग थू-थू करेंगे। तुम जमींदार के लड़के से झगडा करने जाओगे?"

विराज के मुंह से वह बात इतने कड़े ढग से निकली कि नीलांबर सह न सका। एकदम आग-बबूला होकर उसने कहा—"तूने क्या मुझे कुत्ता-बिल्ली समझ लिया है, जो हर वक्त खाने का ताना दिया करती है? कब दोनो वक्त खाना तुम्हें नही मिला?"

दुःख तकलीफ के कारण विराज में पहले की-सी सहनशीलता नहीं रह गयी थी। उसने भी चिढ़कर कहा—"बेकार मत चिल्लाओ! तुम्हे यह नही मालूम कि दोनों वक्त खाना कैसे मिलता है। यह मैं ही जानती हूं और जानते हैं अन्तर्यामी! इस मामले में अगर तुम कुछ कहने गये तो मैं जहर खा लूंगी!" कहते-कहते विराज ने जब सिर उठाया तो देखा कि नीलाबर का चेहरा एकदम लाल हो गया। उसकी विकल आँखो के सामने, विराज सकोच से एकदम सिमट-सी गयी। बिना कुछ कहे वह वहा से खिसक गयी। नीलाबर वैसे ही खडा रहा। इसके बाद एक दीर्घ नि श्वास छोडकर वह बाहर चला गया और स्तब्ध होकर चण्डीमण्डप के किनारे बैठ गया। उसके प्रचण्ड क्रोध को न समझने के कारण उसने अपना सिर एक ऐसी जगह मे जोर से उठाया, जो ज्यादा ऊची नही थी, पर जोर की टक्कर खाकर वह बिलकुल निस्पन्द रह गया। नीलाबर के कानो मे विराज की आखिरी बात ही गूंजने लगी कि 'गृहस्थी कैसे चलती है।' रह-रहकर उस गहरी अधेरी रात मे आगन मे लेटी हुई विराज का चेहरा उसे याद आने लगा। सच ही तो है! अब वह जान गया कि असहाय नारी कैसे गृहस्थी चला रही है। कुछ ही पहले विराज की तीर-सी कडी बात से उसके हृदय मे जो घाव हो गया था, वह घाव अब आत्मग्लानि से भरने ही नही लगा, बल्कि वह श्रद्धा और विस्मय के रूप मे भी परिणत होने लगा। उसका विराज, आज का विराज नही है। वह न जाने कितने युग-युगान्तर की है। उसकी आलोचना, केवल उसके दो-एक असहिष्णु व्यवहार से तो नही की जा सकती। उसके अलावा यह बात कोई नही जानता कि उसके हृदय मे क्या है? नीलाबर की आखो से आसू गिरने लगे। मुह ऊपर उठाकर और दोनो हाथ जोडकर, वह सहसा भर्राई आवाज में कह उठा—"भगवान, सब-कुछ ले लेना, परन्तु मेरी विराज को मत लेना!" कहते-कहते सहसा उसकी इच्छा हुई कि अपनी प्रियतमा को छाती से चिपटा ले। वह दौडा हुआ आया और विराज के कमरे के सामने खड़ा हो गया। दरवाजा अन्दर से बन्द था। धक्का देकर, आवेगपूर्ण स्वर मे उसने पुकारा—"विराज!"

जमीन पर औंधी पडी हुई विराज रो रही थी। चौंककर वह उठ बैठी।

नीलाबर ने कहा—"क्या कर रही हो, विराज! दरवाजा खोलो!"

विराज डरती हुई दरवाजे के पास खडी हो गयी।

नीलाबर ने अधीर होकर कहा—"विराज, खोलो न!"

अबकी विराज ने भर्राई आवाज मे कहा—"बोलो, मारोगे तो नही?"

नीलांबर के मुंह से निकला—"मारूगा?"

यह बात तेज छुरी की तरह उसके कलेजे मे जा लगी। दुःख, लज्जा और अभिमान से उसका गला रुध आया। दरवाजा पकडकर वह निर्जीव-सा खडा रहा। विराज यह सब नहीं देख रही थी। अनजाने में ही घाव-पर-घाव करते हुए उसने कहा—अब ऐसी बात नही कहूंगी। बोलो, मारोगे तो नही?"

लडखडाती जुबान से नीलाबर बस केवल—'न' कह सका। डरते-डरते विराज ने जैसे ही दरवाजा खोला, नीलांबर लडखडाता हुआ अदर घुस गया और आखे बन्द कर पलग पर जा पडा। उसकी बन्द आखो के कोनो से लगातार आसू गिरने लगे। पति का ऐसा चेहरा विराज ने कभी नही देखा था। अब वह समझ गयी। सिरहाने बैठकर बडे प्रेम और स्नेह से उसने पति का सिर अपनी गोद में रख लिया और आचल से उसकी आखे पोछने लगी। संध्याकालीन अन्धकार घना होने लगा। किसी ने कुछ नहीं कहा।

अधेरे मे पति-पत्नी दोनो चुपचाप पडे रहे। उनके मन मे जो-जो बाते आयी, उन्हे बस अन्तर्यामी ने ही सुना।

आठ

नीलांबर सोच रहा था कि विराज कैसे यह बात अपनी जुबान पर ला सकी? उसके मन मे कैसे यह बात आयी कि वह उसे मार सकता है! एक तो गृहस्थी की तकलीफो की कोई सीमा नही थी और उस पर रोज-रोज यह होने लगा, दो दिन भी चैन से नही गुजरते। बात-बात मे कलह और झगडा हो जाता। सबसे बडी बात है कि उसकी विराज दिनोंदिन कैसे बदलती जा रही है, और चारो ओर देखने पर भी उसके दु ख की कोई सीमा दिखाई नही पडती। नीलाबर भाग्यवादी था और ईश्वर के श्री चरणो पर उसे बडी श्रद्धा थी। उसने मन मे किसी को दोष नही दिया—कोई बुरी बात नही कही और न किसी की शिकायत की। चण्डी-मण्डप की दीवार पर टगी राधाकृष्ण की युगल-जोडी के सामने खडे होकर उसने रोते-रोते कहा—"अगर, दु ख ही देना था भगवन्, तो तुमने मुझे इतना निरुपाय क्यो बनाया? उससे अधिक यह बात कोई नही जानता कि वह कितना निरुपाय है! न तो उसने लिखना-पढना सीखा और न कोई काम-धन्धा। सीखा था केवल दीन-दुखियो की सेवा करना और हरि-कीर्तन करना। दूसरो की तकलीफे इससे दूर जरूर होती थी, किन्तु आज दुर्दिन मे, उसकी अपनी तकलीफ कैसे दूर हो! अब तो उसके पास कुछ भी नही रह गया, सब कुछ चला गया। इन्ही दु खो के कारण कितनी बार उसने सोचा है कि अब वह यहा नही रहेगा, विराज को लेकर कही चला जाएगा। परन्तु सात पुश्त के इस घर को छोडकर, किसी पेड के नीचे या किसी देव-मन्दिर के सामने वह सुखी रह सकेगा? वह छोटी-सी नदी पेड-पौधो से घिरा हुआ यह घर, या घर-बाहर के इतने परिचित लोगो को छोडकर—कही और या स्वर्ग मे भी क्या वह एक दिन भी जिन्दा रह सकेगा? इसी घर मे उसकी मा मरी है, उसके पिता के अन्तिम समय मे, इसी चण्डी-मण्डप के दालान मे उसने उनकी सेवा की है, और उन्हे गगा पहुँचाया है, यहीं उसने पूटी को पाला-पोसा है और उसकी शादी की है। इस घर की, इस जगह की ममता वह कैसे छोड पायेगा! वह उठ बैठा और दोनो हाथो से अपना मुह ढककर रोने लगा। क्या यही सब उसके दु ख है? अपनी प्यारी बहिन को कहा दे आया कि उसकी खबर तक नही मिल पाती, बहुत दिनो से वह अपनी बहिन को देख नही सका—और जोर से 'दादा' कहकर पुकारना भी नही सुन सका। दूसरे के घर मे कितना दु ख पा रही है, कितना रो रही है, यह भी नही जान सका। और विराज के आगे उसका नाम लेना भी गुनाह है! उसे पाल-पोसकर भी वह उसे भूल गयी है, परन्तु वह कैसे भुलावे? वह उसकी अपनी बहन है, उसे गोद मे लेकर, कन्धे पर चढाकर उसने बडा किया है। जहा कही भी गया, उसे साथ ले गया और इसके लिए उसको कितना उपहास सहना पडा! वह पूटी को रोती घर छोडकर एक पग भी आगे नही जा सका है। यह सब बाते बस वही जानता है और पूटी जानती है।

विराज जानकर भी अनजान है, कभी कुछ कहती नही। पूटी के बारे मे, जैसे वह हमेशा के लिए एकदम प्रस्तर-मूर्ति-सी गूगी बन गयी है। यह बात नीलाबर के हृदय मे शूल-सी चुभती है कि उसकी निर्दोष बहिन को उसने दोषी समझ रक्खा है, और इस मामले मे कोई बात चलाना भी मुश्किल है। तुरन्त ही विराज उसे रोककर कह उठती है—"रहने दो यह सब! वह राजरानी हो, लेकिन उसकी बातो की कोई जरूरत नही।" और 'राजरानी' शब्द वह कुछ इस तरह कहकर उठ जाती कि नीलाबर के दिल मे आग-सी लग जाती। मन-ही-मन वह व्याकुल हो उठता कि उस पर कही गुरुजनो का शाप न पडे और उसका अकल्याण न हो। ईश्वर से प्रार्थना करता और छिपाकर प्रसाद चढाकर नदी मे बहा आता। ऐसे ही दिन बीते जा रहे थे।

दुर्गा पूजा आ गयी। अब उससे नही रहा गया। विराज से छिपाकर उसने कुछ रुपया इकट्ठा किया और एक धोती और मिठाई खरीदकर सुन्दरी को जा पकड़ा।

सुन्दरी ने बैठने के लिए आसन बिछा दिया और तम्बाकू चढा लायी! आसन पर बैठकर नीलाबर ने अपनी फटी-सी, गन्दी धोती के भीतर से वह धोती निकालकर कहा—"तुमने उसे पाला-पोसा है न,

सुन्दरी! उसे एक बार जाकर देख आओ।" इसके आगे वह कुछ भी नही कह सका, मुह फेरकर चादर से आखे पोछ ली।

गाव के सभी लोग उसकी तकलीफ की बात जानते थे। सुन्दरी ने पूछा—"वह कैसी है, बडे बाबू?"

नीलाबर ने गर्दन हिलाकर कहा—"नही जानता!"

सुन्दरी होशियार थी। उसने और कोई सवाल नही पूछा। दूसरे दिन सबेरे ही जाने के लिए राजी हो गयी। नीलाबर ने उसे कुछ राह-खर्च देना चाहा, परन्तु सुन्दरी ने नामंजूर करते हुए कहा—"बडे बाबू, तुमने धोती खरीद ली है, वरना यह भी मै ही ले जाती। मैंने भी तो उसे तुम्हारी तरह पाला-पोसा है!"

नीलाबर मुह फेरकर अपनी आखें पोछने लगा। किसी ने ऐसी सम्वेदना प्रकट नही की। सभी कहते हैं कि उसने गलती की है, अन्याय किया है, पूटी की वजह से ही उसका सर्वनाश हुआ है! जाते समय नीलाबर ने सुन्दरी को इस बात की ताकीद कर दी, कि उसकी तकलीफ की बातें पूटी के कान मे न पडे।

नीलाबर के चले जाने के बाद सुन्दरी भी रो पडी। मन-ही-मन सभी इस आदमी को प्यार करते थे। सभी श्रद्धा रखते थे।

उस दिन विजयादशमी थी। तीसरे पहर विराज सोने के कमरे मे गयी और उसने अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया। शाम होते-होते—'चाचा' पुकारकर कोई घर मे चला आया और कोई—'नीलू दा, 'नीलू भइया' कहकर बाहर से आवाज देने लगा।

नीलाबर उदास मुह लिए चण्डी-मण्डप से बाहर निकल आया। रस्म-रिवाज की तरह कोई गले मिला और किसी ने पैर छूकर प्रणाम किया। इसके बाद भाभी को प्रणाम करने के लिए सभी अन्दर चले। उनके साथ नीलाबर भी अन्दर आया और देखा कि विराज रसोईघर मे भी नही है। सोने का दरवाजा बन्द है। दरवाजे पर धक्का देकर उसने पुकारा—'विराज, लडके तुम्हे प्रणाम करने आये हैं।'

विराज ने अन्दर ही से कहा—"मुझे बुखार है, उठ नही सकती!"

सभी चले गये। थोडी देर बाद ही फिर किसी ने दरवाजे पर धक्का दिया। विराज कुछ बोली नही। दरवाजे के बाहर से किसी ने धीरे से कहा—"दीदी, मैं हूँ मोहिनी, दरवाजा खोलो!"

तब भी विराज चुप रही।

मोहिनी ने कहा—"यह नही होगा, दीदी! रात भर भी अगर इस दरवाजे पर खडा रहना पडा, तो मैं खडी रहूगी, मगर विना आशीर्वाद लिये यहा से नही हटूंगी!"

विराज ने दरवाजा खोल दिया और सामने आकर खडी हो गयी। उसने देखा कि मोहिनी के बाये हाथ मे खाने की कोई चीज और दाहिने हाथ मे भांग की लुटिया है। मोहिनी ने दोनो चीजे उसके पैरो के पास रख दी और चरण छूकर प्रणाम करके कहा—"मुझे बस यही आशीर्वाद दो दीदी कि मैं भी तुम्हारी जैसी बन सकू! इसके अलावा तुम्हारे मुँह से मैं और आशीर्वाद नहीं चाहती।"

विराज ने सजल आंखो को आचल से पोछकर, छोटी बहू के माथे पर अपना हाथ रख दिया।

मोहिनी ने खडे होकर कहा—"त्योहार के दिन आसू नहीं बहाना चाहिए दीदी—किन्तु तुमसे तो यह बात मैं नही कह सकती—अगर तुम्हारे शरीर की हवा भी मुझे स्पर्श कर गयी हो तो उसी के जोर पर यह बात कहे जाती हू कि अगले साल ऐसे ही दिन को यह बात कहूगी।"

मोहिनी के चले जाने पर विराज ने वह चीजे उठाकर अन्दर रख दी और स्थिर होकर बैठ गयी। आज वह और भी अच्छी तरह से यह बात समझ गयी कि मोहिनी उसका बराबर ख्याल रखती है। इसके बाद कितने ही लडके आये और गये, मगर विराज ने फिर दरवाजा बन्द नही किया। उन्ही चीजो से आज की रस्म अदा की गयी।

दूसरे दिन सबेरे, थकी-सी वह बरामदे मे बैठकर साग काट रही थी कि सुन्दरी ने आकर प्रणाम किया।

विराज ने आशीर्वाद देकर बैठने को कहा।

बैठते ही सुन्दरी कहने लगी—"कल रात हो गयी थी, इसलिए सबेरे ही कहने चली आयी। चाहे कुछ भी कहो, परन्तु यदि पहले मुझे मालूम हुआ होता, तो मैं कभी नही गयी होती!"

विराज कुछ भी नही समझ सकी, चुपचाप देखती रह गयी।

सुन्दरी ने कहा—"घर मे कोई नही है। सभी घूमने के लिए पच्छिम गये हैं; केवल एक बडी बुआ है। उसकी खरी-खोटी बाते क्या बताऊ तुम्हे! बोली—"लौटा ले जा! दामाद तक के लिए एक धोती नही भेजी! बस एक सूती धोती लेकर पूजा की रस्म अदा करने आयी हो? इसके बाद नीच, चमार, बेहया,—सब कुछ कह डाला! अब उन बातो को क्या सुनाऊ।"

विराज ने चकित होकर कहा—"किसने किसको क्या कहा रे?"

सुन्दरी ने कहा—"और किसको, हमारे बडे बाबू को!"

विराज अधीर हो गयी। उसे कुछ मालूम नही था, इसीसे वह कुछ समझ न पायी। उसने कहा—"किसने कहा, यह तो बता!"

अब सुन्दरी कुछ विस्मित हुई। कहा—"वही तो बतला रही हूँ, बहू! पूटी की फुफिया सास इतनी घमण्डी है कि धोती नही ली, लौटा दी उसने।" कहकर उसने वह धोती आंचल से बाहर निकालकर रख दी।

अब विराज सब समझ गयी। एकटक वह उस धोती की ओर देखती रह गयी और मन-ही-मन जल-भुन गयी।

नीलाबर बाहर गया था। कुछ तय नही था कि कब वह लौटेगा। सुन्दरी चली गयी।

दोपहर को नीलांबर खाना खाने बैठा था। विराज ने उसके सामने वह धोती रखकर कहा—"सुन्दरी लौटा गयी है।"

सिर उठाकर देखते ही नीलाबर एकदम डर गया। उसने सोचा भी नहीं था कि विराज भी यह जान जायेगी। बिना कुछ पूछे ही, उसने चुपचाप सिर झुका लिया।

विराज ने कहा—"उन लोगो ने क्यो नही लिया और क्यो गालिया देकर वापस कर दिया, यह सब सुन्दरी से जाकर सुन लेना।"

फिर भी नीलाबर चुपचाप सिर झुकाए रहा। विराज भी चुप रही।

नीलाबर की भूख-प्यास बिल्कुल ही जाती रही। सिर झुकाए वह यही महसूस कर रहा था, कि विराज एकटक उसकी ओर देख रही है और उसकी आखो से जैसे आग बरस रही है।

शाम को नीलाबर सुन्दरी के घर गया, और बार-बार पूछकर सब बाते सुनी। फिर कहा—"जब वे पछांह घूमने गये है तो अवश्य ही बडे मजे मे होगे, क्यो सुन्दरी?"

सुन्दरी ने सिर हिलाकर कहा—"मजे मे तो हैं ही, बाबूजी!"

नीलाबर का चेहरा खिल गया, बोला—"तुमने देखा—कितनी बडी हुई है?"

सुन्दरी ने हसते हुए कहा—"भेंट तो हुई ही नही, बाबूजी!"

नीलांबर लज्जित हो गया। कहा—"ठीक है, मगर नौकर-चाकरो से तो सुना होगा!"

सुन्दरी ने कहा—"पूछती क्या बाबू? फुफिया सास ने जो जली-कटी सुनायी—और दो हाथ-मुह मटकाये कि भागने को भी राह नही मिली!"

नीलाबर क्षुब्ध हो गया। क्षणभर रुककर पूछा—"अच्छा, मेरी पूटी पहले से कुछ मोटी-ताजी हुई? तुझे कैसा लगता है?"

जवाब देते-देते सुन्दरी थक-सी गयी थी। थोडे मे कह दिया—"मोटी ही हुई होगी!"

नीलांबर ने उत्सुक होकर पूछा—"सुना होगा किसी से, क्यों?"

सुन्दरी ने गर्दन हिलाकर कहा—"सुना तो कुछ भी नही, बाबूजी!"

"तो जाना कैसे?"

सुन्दरी चिढ़ गयी, कहा—"जाना कहा से? तुमने पूछा—"कैसी होगी!" मैंने कह दिया—"मोटी!"

नीलाबर ने सिर झुकाकर धीरे-से कहा—"ठीक है।"

इसके बाद क्षणभर सुन्दरी की ओर वह चुपचाप देखता रहा, फिर एक लम्बी सांस खीचकर उठ गया। कहा—"अच्छा, अब चलूं—फिर किसी दिन आऊंगा!"

सुन्दरी ने चैन की सास ली। दरअसल उसकी कोई गलती नहीं थी। एक तो कुछ कहने को था नहीं, दूसरे एक ही बात बार-बार पूछने पर भी नीलांबर को चैन नही मिलता था।

चन्दन, अभी तक ज्यो-का-त्यो था। सुन्दरी ने उन्हें ध्यान से देखा। उस दृष्टि का मतलब निताई नही समझ सकते थे। इसीसे वे कुछ उत्तेजित होकर कह उठे—"इस तरह क्या देख रही हो?"

"देख रहा हूँ।"

"क्या देख रही हो?"

"देख रही हूँ कि तुम ब्राह्मण हो, और जो चले गये, वे भी ब्राह्मण हैं, परन्तु दोनो मे आकाश-पाताल का अन्तर है!"

कुछ समझ न सकने के कारण निताई ने पूछा—"अन्तर कैसा?"

सुन्दरी ने मुस्कराते हुए कहा—"बुड्ढे हो, ओस मे मत खडे रहो, ऊपर आकर दालान मे बैठ जाओ! कसम खाकर कहती हूँ गागुली महाशय कि मेरे मालिक की पदधूलि पाकर तुम जैसे कितने ही गागुलियो का उद्धार हो सकता है।"

उसकी बाते सुनकर निताई क्रोध और विस्मय से देखते रह गये, उनकी जुबान से कोई बात नही निकली। सुन्दरी ने तम्बाकू चढाते-चढाते, सहज स्वर मे कहा—"मैंने सच ही कहा है ब्राह्मण देवता, नाराज मत होना! हमेशा से ही मैं देखती आ रही हूँ। मालिक के जनेऊ की ओर देखने पर लगता है—जैसे मालिक के गले से बिजली कौंध रही है। जरा अपना जनेऊ तो देखो, देखकर हसी आती है!" कहते-कहते वह ठठाकर हस पडी।

निताई पहले से ही डाह के कारण जल रहा था, अब क्रोध के कारण पागल-सा हो गया। दोनो आखो से आग बरसने लगी। चिल्लाकर बोला—"इतना घमण्ड मत कर सुदरी, मुह सड जाएगा!"

चिलम फूकते-फूंकते सुन्दरी नजदीक आयी और हंस कर बोली—"कुछ नही होगा। लो, तम्बाकू पीओ! मरने पर तुम्ही लोगो का मुह नही जलेगा, जो मेरे दु खी मालिक को देखकर हसते हो!"

हुक्का फेककर निताई उठ खडा हुआ। सुन्दरी ने उनके दुपट्टे का एक छोर पकड लिया और हंसते हुए कहा—"तुम्हे मेरे सिर की कसम, बैठ जाओ!" निताई गुस्से मे अपना दुपट्टा खीचने-छुडाने लगे और—"चूल्हे में जा, भाड में जा, तेरा सर्वनाश हो जाए।" इत्यादि शाप देते हुए जल्दी से चले गये।

सुन्दरी वही बैठ गयी और थोडी देर तक खूब हसती रही। फिर गयी और सदर दरवाजा बन्द कर धीरे-धीरे कहने लगी—"कहां वे और कहा यह! इसे कहते हैं ब्राह्मण! इतनी तकलीफ मे भी चेहरा हमेशा प्रफुल्लित रहता है; फिर भी आख उठाकर देखने की हिम्मत नही होती। लगता है जैसे आग जल रही हो!"

नौ

किसी तरह यह बात, उल्टी-सीधी होकर विराज के कानों तक पहुंच ही गयी। पड़ोस की बुआ उस दिन आलोचना करने आयी थी। विराज ने सब कुछ गौर से सुना, फिर भी गम्भीर स्वर में कहा—"उनका एक कान काट लेना चाहिए था बुआ!"

बुआ बिगडकर जाने लगी, जाते-जाते कहती गयी—"जानती हूँ, ऐसी बातूनी औरत और इस गांव में दूसरी नही!"

विराज ने पति को बुलाकर कहा—"सुन्दरी के यहां कब गये थे?"

नीलांबर ने डरते-डरते जवाब दिया—"बहुत दिन हुए, पूटी का समाचार पूछने गया था।"

"अब मत जाना! सुनती हूँ—उसका चरित्र बहुत भ्रष्ट हो चुका है।" यह कहकर वह अपने आप काम से चली गयी। इसके बाद कई दिन बीत गये। सूर्यदेव रोज ही उदय और अस्त होते हैं। उन्हें रोक रखने का कोई उपाय न होने के कारण ही जाडा गया और गर्मी भी अब आने ही वाली है। विराज की गम्भीरता दिनोंदिन बढ़ती ही गयी। उसकी नजर थकी-सी, मगर तेज होने लगी। उसकी ओर देखने वालो की आंखें जैसे अपने आप ही झुक जाती। बर्छे से छेदकर मारा जाने वाला नाग बार-बार बर्छे को ही डंसता है और थककर जैसे उसकी ओर देखता रह जाता है—ठीक वैसे ही विराज की आंखें दयनीय, परन्तु भयानक हो गयी थी। पति के साथ बातचीत होती ही नहीं। वह जैसे देखती ही नही कि कब वह छिपे-छिपे आता है और कब जाता है। छोटी बहू के अलावा, सभी उससे डरते हैं। काम-काज के छूटते ही, वह आकर उपद्रव कर जाया करती है। विराज ने शुरू से उससे बचने का बहुत उपाय किया, मगर

क्षणभर उसकी ओर देखते रहने के बाद नीलांबर ने कहा—"यह मुझे मालूम है कि घर छोड़कर किसे भागना पडेगा—तुम्हे याद कराना नही पडेगा। लेकिन तुम्हे यह बतलाए जाता हूँ कि जब तक वह नही होता, तब तक तुम्हें सब्र करके रहना पडेगा!"

यह कहकर नीलांबर लौट ही रहा था कि पीतांबर सामने आकर खडा हो गया। बोला—"तो तुम्हे भी बतलाये देता हूँ दादा कि दूसरे के घर का शासन सभालने के पहले, अपने घर का शासन संभालना अच्छा होता है।"

नीलांबर देखता ही रह गया। पीतांबर ने साहस पाकर कहा—"जानते तो हो कि उस पार का घाट किसका है! तभी से मैंने छोटी बहू को नदी जाने की मनाही कर दी थी। आज तडके ही भाभी के साथ नहाने गयी थी। कौन जाने, रोज ही इस तरह जाती हो!"

नीलांबर ने विस्मित होकर कहा—"इतनी-सी बात पर तुमने हाथ उठा दिया?"

पीतांबर ने कहा—"पहले सुनो तो सही! वहा जमीदार का लडका राजेन्द्र था। कैसा उसका नाम है, सभी उसे जानते हैं! भाभी आज उसी के साथ आधे घण्टे तक बाते करती रही, क्यो?"

नीलांबर कुछ भी नही समझ पाया। कहा—"कौन बाते कर रहा था रे, विराज बहू?"

"पीतांबर ने कहा—"जी हा, वही!"

"तुमने खुद देखा है?"

पीतांबर ने अपने चेहरे पर हसी का-सा भाव लाकर कहा—"मैं जानता हूँ कि तुम मुझे देख नही सकते—मेरा यह न्याय ईश्वर ही करेगे, लेकिन . "

नीलांबर ने डाटकर कहा—"फिर ईश्वर का नाम जुबान पर लाता है! जो कहना है वह कह!"

पीतांबर चौंक गया। कुछ रुककर रुष्ट स्वर मे कहने लगा—"बिना देखे कुछ कहने की मेरी आदत नही है! मैं कहता हूँ, अगर घर मे शासन न कर सको तो दूसरे को मारने के लिए मत चढ़ आया करो!"

नीलांबर को ऐसा लगा जैसे उसके सिर पर कोई मकान गिर पडा। क्षणभर हतबुद्धि-सा देखते रहने के बाद बोला—"आधे घण्टे तक कौन बाते करता रहा, विराज बहू? तुमने अपनी आंखो से देखा है?"

पीतांबर एक-दो कदम पीछे लौट चुका था। खडे होकर बोला—"हां, अपनी आखों देखा—आध घण्टे से कही अधिक हो गया!"

फिर थोडी देर चुपचाप देखते रहने के बाद नीलांबर ने कहा—"अच्छा, अगर यह हो भी तो यह कैसे जाना कि बात करना जरूरी नही था?"

पीतांबर मुह फेरकर हंस पडा। कहा—"यह तो नही मालूम किन्तु मेरा भी छोटी बहू को मारना उचित न हुआ; क्योंकि वह घाट छोटी बहू के लिए नही बनाया गया है!"

उत्तेजित होकर नीलांबर दोनों हाथ उठाकर दौडा, परन्तु सहसा रुक गया। पीतांबर की ओर देखते हुए कहा—"तू जानवर है, मगर छोटा भाई ठहरा! बडा भाई होकर मैं तुम्हें शाप नहीं दूगा, क्षमा करता हूँ! मगर अपने गुरुजन के लिए आज तुमने जो कुछ कहा भगवान उसके लिए तुम्हे क्षमा नही करेगे!" कहकर वह धीरे से अपने घर की ओर टूटे हुए बेडे को अपने हाथ से ही बाधने लगा।

विराज ने सब कुछ सुना। लज्जा और घृणा से वह सिर से पांव तक काप गयी। एक बार उसके जी मे आया कि सामने जाकर अपनी सभी बातें कह दे, परन्तु उसके पैर नही उठे। पति के सामने कैसे वह अपने मुह से यह बात कहे कि उसके रूप पर पुरुष की ललचाई आंखें पडी हैं!

बेडा बाधकर नीलांबर बाहर चला गया।

दोपहर को थाली परोसकर विराज आड में बैठी रही। रात को पति के सो जाने पर चुपके से आकर पति के बिछौने पर सो गयी; और सबेरे उठने के पहले ही बाहर निकल आयी।

ऐसे ही नजर बचाते जब दो दिन बीत गये और नीलांबर ने कुछ नही पूछा तो उसके मन मे एक और शका होने लगी। पत्नी की इतनी बडी बदनामी की बात मे भी पति को कोई उत्सुकता नही हो, इसकी ठीक वजह उसे ढूढे भी नही मिली। सभावना से भी विराज को सान्त्वना नहीं मिली कि इस घटना से वह विस्मित हुआ है। एक तरफ तो उसने ये दो दिन नजर बचाकर बिताये हैं और दूसरी तरफ हर घडी उसे आशा लगी रही कि कब बात करेगी और कब ये उसे बुलाकर सभी बातें जानना चाहेंगे। जब तक अपने

पति के चरणों के नीचे बैठकर, सब कुछ वह कह न देगी, तब तक उसके छाती का बोझ नहीं हटेगा और उसकी बेचैनी दूर नहीं होगी। मगर यह सब तो हुआ नहीं। नीलांबर चुप ही रहा।

विराज ने एक बार यह भी सोचने की कोशिश की कि हो सकता है पति को इस पर विश्वास नहीं हुआ है! मगर फिर भी उसने सोचा, कि अपने-आपको इस तरह पति से बिल्कुल छिपाने से, क्या उन्हें सन्देह नहीं होगा! मगर जिस बात को इतने दिनों से छिपाती आयी है, उसे खुद ही जाकर कैसे कहे? वे दो दिन ऐसे ही बीते। दूसरे दिन सवेरे विराज डरी हुई और घबड़ाई हुई घर का काम कर रही थी। सहसा उसके अन्तर्मन को मथकर यह बात बाहर निकल आयी कि कहीं लालाजी की बातों पर उन्हें विश्वास हो गया हो तो!

पूजा-पाठ करके नीलांबर उठने ही वाला था कि विराज आंधी की तरह वहां गयी और हांफने लगी।

नीलांबर ने विस्मित होकर सिर उठाया ही था कि विराज जोर से होंठ भींचकर कह उठी—"बतलाओ मैंने क्या किया है? मुझसे बोलते क्यों नहीं?"

नीलांबर हंस पड़ा। कहा—"तुम तो भागती-फिरती हो, बतलाओ बात किससे करूं?"

"भागती-फिरती हूं? तुम क्या एक बार बुला नहीं सकते थे?"

नीलांबर ने कहा—"जो आदमी भागता फिरे, उसे बुलाना पाप है!"

"पाप है? तो यह कहो कि तुमने लालाजी की बातों पर विश्वास कर लिया है!"

"सही बात पर विश्वास नहीं करूंगा?"

क्रोध एवं दुःख से विराज रो पड़ी। भर्राई आवाज में चिल्लाकर बोली—"वह सब बिल्कुल झूठ है! तुमने क्यों विश्वास किया?"

"नदी-किनारे तुमने उससे बात नहीं की थी?"

विराज ने उद्दण्डतापूर्वक कहा—"हां, की थी!"

नीलांबर ने कहा—"तो मैंने इतने ही पर विश्वास किया!"

विराज ने हथेली से आंखें पोंछते हुए कहा—"अगर विश्वास ही कर लिया है तो उसी नीच की तरह मुझे दण्ड क्यों नहीं दिया?"

नीलांबर फिर हंस पड़ा। नवविकसित पुष्प की-सी उसकी निर्मल उज्ज्वल हंसी से उसका मुखमण्डल उद्भासित हो गया। दाहिना हाथ उठाकर बोला—"अच्छा तो नजदीक आओ, बचपन की तरह एक बार फिर कान उमेठ दूं!"

तुरन्त ही विराज सामने आकर घुटनों के बल बैठ गयी और उसकी छाती पर निर्जीव-सी गिरकर, अपने दोनों हाथ उसके गले में डालकर, फूट-फूटकर रोने लगी।

नीलांबर ने रोने से मना नहीं किया। उसकी आंखें डबडबा आयीं। पत्नी के माथे पर अपना दाहिना हाथ रखकर वह मन-ही-मन आशीर्वाद देने लगा। कुछ देर बाद रुलाहट का वेग कुछ कम हुआ तो विराज ने उसी तरह पड़े-पड़े कहा—"जानते हो उससे मैंने क्या कहा था?"

नीलांबर ने स्नेहपूर्वक मधुर स्वर में कहा—"जानता हूं, उसे आने से रोक दिया है!"

"तुमसे किसने कहा?"

नीलांबर ने हंसकर कहा—"कहा किसी ने नहीं! लेकिन यह मैं जानता हूं कि एक अपरिचित आदमी से बात की है तो बड़े दुःख में पड़कर ही; इसके अलावा वह बात और क्या हो सकती है!"

विराज की आंखों से आंसू गिरने लगे।

नीलांबर कहने लगा—"लेकिन काम तुमने अच्छा नहीं किया! मुझे बता दिया होता तो मैं ही जाकर समझा देता! बहुत दिनों पहले ही, उसके मन का भाव मैं ताड़ गया था। कई दिन सुबह-शाम उसे देखा भी। मगर तुमने मना कर दिया था। इसीसे कभी कुछ कहा नहीं।"

उसी दिन शाम से ही आकाश में बादल छाये हुए थे, और बूंदा-बांदी हो रही थी। घर में, पति-पत्नी में फिर उस बात की चर्चा चली।

नीलांबर बोला—"आज दिनभर मैं उसका इन्तजार करता रहा।"

विराज डर गयी—"क्यों? किसलिए?"

"इसलिए कि दो बात कहे बिना, ईश्वर के सामने अपराधी बनना पडेगा!"

भय और उत्तेजना से विराज उठ बैठी। कहा—"न, यह किसी तरह नहीं होगा! इस बात को लेकर तुम उससे एक शब्द भी नही कह सकते!"

उसके चेहरे और आखों के भाव से नीलांबर को बहुत विस्मय हुआ। कहा—"मैं तुम्हारा पति हूँ। मेरा यह कर्त्तव्य नही है?"

बिना कुछ सोचे-समझे ही विराज कह गयी—"पहले पति के और कर्त्तव्य करो, तब यह करना!"

"क्या?"—कहकर नीलांबर स्तम्भित-सा हो गया। फिर—'अच्छा' कहकर, एक नि:श्वास छोडकर, करवट बदलकर चुप हो रहा।

वैसे ही पडी-पड़ी विराज स्थिर होकर सोचने लगी कि आज यह कैसी बात उसके मुंह से निकल गयी!

बाहर वर्षा की बूंदे गिरने का धीमा शब्द होने लगा। खुली हुई खिडकी से मिट्टी की सोंधी-सुहावनी गन्ध अन्दर आने लगी। अन्दर पति स्तब्ध पडे रहे।

बड़ी देर बाद नीलाबर ने अत्यन्त दु:खित स्वर में—जैसे अपने आप ही कह रहा हो, कहा—"मैं कितना निकम्मा हूँ, विराज—यह जैसे तुमसे सीखा, वैसे और किसी से नही!"

विराज कुछ कहना चाहती थी, लेकिन उसके कण्ठ से कोई आवाज ही नही निकली।

बहुत दिनो बाद, आज इस अत्यन्त दु:खित दम्पति के बीच सन्धि का सूत्रपात होते ही, वह फिर छिन्न-भिन्न हो गया।

दस

दोपहर को कही किसी को न देखकर, छोटी बहू रोती हुई आयी और विराज के पैरों पर गिर पडी। पति को जो गलतफहमी हुई थी, उसके डर से व्याकुल होकर, दो दिनों से वह इसी मौके की ताक में थी। रोकर बोली—"उन्हें शाप मत देना दीदी, मेरी ओर देखकर क्षमा कर दो! उन्हे अगर कुछ हो गया, तो मैं जीऊगी नही!"

हाथ पकडकर उसे उठाते हुए, विराज ने गम्भीर स्वर मे कहा—"मैं शाप नही दूंगी, बहिन! उनमें इतनी शक्ति भी नही है कि मेरा कुछ बिगाड सकें। लेकिन तुम जैसी सती लक्ष्मी पर, बिना किसी अपराध के हाथ उठाना, दुर्गा माता नही सहन करेगी।

मोहिनी काप गयी। आसू पोंछती हुई बोली—"क्या करूं दीदी, उनकी आदत ही ऐसी है! जिन देवता ने उन्हें इतना क्रोधी बनाया है, वे ही उन्हे क्षमा करेगे! फिर भी कोई ऐसा देवी-देवता नहीं है, जिसकी मैंने मनौती न मानी हो! किन्तु मैं पापिन हूँ, किसी ने मेरी पुकार नही सुनी। एक दिन भी ऐसा नहीं जाता, दीदी....।" कहते-कहते वह सहसा रुक गयी।

अभी तक विराज ने नही देखा था, कि छोटी बहु की दाहिनी कनपटी पर तिरछा-सा एक गहरा-काला दाग पडा है। सहमते हुए उसने पूछा—"तेरे माथे पर यह क्या मार का निशान है?"

छोटी बहू ने लज्जित होकर अपना सिर झुका लिया, और गरदन हिलायी।

विराज ने पूछा—"किस चीज से मारा था?"

पति के व्यवहार से लज्जित छोटी बहू सिर नही उठा सकी। वैसे ही उसने धीरे-से कहा—"गुस्सा होने पर वे पागल हो जाते हैं, दीदी!"

"सो तो मुझे मालूम है! लेकिन, मारा किस चीज से?"

वैसे ही सिर झुकाए मोहिनी ने कहा—"पावो में चट्टी थी।"

विराज स्तब्ध रह गयी। उसकी आखे जलने लगी। कुछ देर बाद दबी हुई भर्राई आवाज में उसने पूछा—"कैसे तुमने बर्दाश्त कर लिया, छोटी बहू?"

छोटी बहू ने सिर कुछ ऊपर करके कहा—"मुझे आदत पड गयी है, दीदी!"

विराज ने जैसे सुना नही, उसी प्रकार विकृत कण्ठ से कहा—"और उसी को क्षमा करने के लिए तू कहने आयी है?"

जेठानी के मुह की ओर देखकर छोटी वहू ने कहा—"हां दीदी, अगर तुम खुश न होगी तो उनका अनिष्ट होगा! और सहने की बात जो कहती हो, तो वह तो मैंने तुम्हीं से सीखा है! मेरा जो कुछ है, वह सब तुम्हारे ही चरणों की. . .।"

विराज ने अधीर होकर कहा—"नही छोटी वहू, झूठ मत वोलो! यह अपमान मैं वर्दाश्त नही कर सकती।"

मोहिनी ने थोडा हंसकर कहा—"अपना अपमान वर्दाश्त कर लेना ही क्या वहुत है, दीदी? तुम्हारे जैसा पति सबके भाग्य में नही होता, तो भी जितना तुम वर्दाश्त करती हो, उतने में चूरा निकल जाता! उनके मुंह की हंसी गायव हो गयी है, मन सुखी नही है—यह सब तुम्हें अपनी आंखों से देखना पडता है। ऐसे पति का इतना कष्ट, ससार मे तुम्हारे अलावा और कोई वर्दाश्त नहीं कर सकता दीदी!"

विराज चुप हो रही।

छोटी वहू ने दोनों हाथों से जल्दी से उसके पाव पकड लिये और कहा—"वताओ दीदी, उन्हें क्षमा कर दिया? यह सुने विना, मैं तुम्हें किसी तरह नही छोड सकती। अगर, तुम प्रसन्न न होओगी, तो उन्हें कोई वचा नहीं सकेगा, दीदी!"

विराज ने अपना पाव हटा लिया, और हाथ से छोटी वहू की ठुड्डी स्पर्श कर चुम्बन लेते हुए कहा—"क्षमा किया!"

विराज की पद-धूलि एक वार फिर माथे से लगाकर, छोटी वहू प्रसन्नचित्त घर चली गयी।

मगर, विराज उसी जगह अभिभूत की भांति वडी देर तक स्तव्ध वैठी रही। उसके अन्तरतम से जैसे कोई वार-वार पुकारकर कहने लगा—"यह सव देखकर सीख, विराज!"

तव से छोटी वहू वहुत दिनों तक इस घर में नहीं आयी। मगर उसकी एक आख और एक कान जैसे हमेशा इसी ओर लगा रहता। आज करीव एक वजे, वड़ी सतर्कता से इधर-उधर देखकर वह इस घर में आयी।

रसोईघर के वरामदे में, विराज गाल पर हाथ धरे वैठी थी। उसे देखकर भी वह ज्यों-की-त्यों वैठी रही।

छोटी वहू विराज के पांव छूकर नजदीक ही बैठ गयी और वोली—"तुम क्या पागल हुई जा रही हो, दीदी?"

विराज ने मुह घुमाकर तेज आवाज में जवाव दिया—"तू नहीं होती?"

छोटी वहू ने कहा—"अपने साथ मुकावला करके मुझे पाप मत लगाओ, दीदी! मैं तो तुम्हारी पद-धूलि के वरावर भी नही हूँ! मगर वतलाओ तो तुम क्यों ऐसा कर रही हो? आज जेठजी को तुमने खाना क्यों नहीं दिया?"

विराज ने कहा—"खाने को मना तो नही किया।"

छोटी वहू ने कहा—"मना तो नही किया, सो ठीक है, मगर एक बार भी नजदीक गयी क्यों नही? खाने के लिए वैठकर उन्होंने कितनी वार पुकारा और तुमने एक वार आवाज तक नहीं दी। तुम्ही कहो, इससे दुःख होता है या नहीं? एक वार तुम नजदीक चली जातीं तो खाना छोडकर वे उठ नहीं जाते।"

विराज चुप रही।

छोटी वहू कहने लगी—"यह कहकर कि हाथ फसे थे, खाली नहीं थी—तुम मुझे भुलावा नही दे सकतीं, दीदी! हमेशा से, सव काम छोड़कर, सामने वैठकर तुमने उन्हें खाना खिलाया है .. कभी भी इससे वढ़कर तुम्हारे लिए कोई काम नहीं रहा है! और आज!"

वात पूरी होने के पहले ही, भावावेश में विराज ने उसका एक हाथ पकडकर अपनी ओर खीच लिया और कहा—"तो चलकर देख ले!" यह कहकर वह उसे रसोईघर में खीच ले गयी और थाली की ओर इशारा करके कहा—"यह देख!"

छोटी वहू ने गौर से देखा—"एक काले रग की पथरी में, बिना साफ किये मोटे चावल का भात और उसी के पास करेमू की भाजी थी। और कोई उपाय न देखकर, आज विराज उसे नदी के तीर से तोड़ लायी थी।

छोटी बहू की आखो से आसू गिरने लगे, मगर विराज की आखो मे आसू का आभास तक नही था। देवरानी-जेठानी चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखती रह गयी।

विराज ने सहज स्वर में कहा—"तू भी तो एक स्त्री है! तुझे भी तो रसोई बनाकर पति के सामने परसना पडता है। तू ही बता—ससार मे कोई स्त्री, सामने बैठकर पति का यह भोजन करना देख सकती है? पहले बता दे, इसके बाद मुझे भरपेट गाली दे, मैं कुछ न कहूगी!"

छोटी बहू कुछ भी नही कह सकी। उसकी आखो से झर-झर आंसू गिरने लगे।

विराज कहने लगी—"तू ही जानती है, छोटी बहू कि दैवात् रसोई खराब हो जाने से भी अगर किसी दिन उन्होने खाना नही खाया तो मुझ पर क्या गुजरी है! यह और कोई जाने या न जाने, पर तू जानती है। और आज के समय, उनके सामने जो यह लाकर रख देने को मिलता है, लगता है—अब यह भी नहीं मिलेगा!"

इससे आगे विराज कुछ कह न सकी। देवरानी की छाती पर पछाड खाकर वह गिर पडी और उसके गले से लिपटकर जोर से रो पडी। बडी देर तक दोनो सगी बहिनो की तरह एक-दूसरे के गले से चिपटी रही। बडी देर तक दोनो का अभिन्न नारी-हृदय चुपचाप आंसुओ से भीगता रहा।

इसके बाद विराज ने सिर उठाया और कहा—"न, मैं तुमसे कुछ भी नही छिपाऊगी, क्योंकि तेरे सिवा मेरा दु ख समझने वाला और कोई नही है! मैंने बहुत सोच-विचार कर यह देख लिया है कि जब तक मैं यहां से हटूगी नही, उनका दु ख-कष्ट दूर नही होगा। रहने पर तो उनका मुख देखे बगैर मैं एक दिन भी नही रह सकती। मैं चली जाऊगी! बता, मेरे जाने पर तू उन्हे देखेगी?"

छोटी बहू ने आख उठाकर पूछा—"कहा जाओगी?"

विराज के सूखे होठो पर, बुझी-सी एक उदास हसी की रेखा खिच गयी। शायद वह कुछ हिचकिचायी। इसके बाद बोली—"यह कैसे जानूगी बहिन कि कहा जाया जाता है! सुनती हूँ—"इससे बढकर पाप और कोई नही है! जो भी हो, दिन-रात की यह जलन तो मिट जाएगी!"

अब बात समझकर मोहिनी काप गयी। घबराकर उसके मुह पर हाथ रखकर उसने कहा—"छी छीः, ऐसी बात जुबान पर मत लाना, दीदी!" आत्महत्या की बात जो कहता है, उसे भी पाप लगता है और जो सुनता है, उसे भी! छी छी —तुम्हे यह क्या हो गया है, दीदी?"

विराज ने उसका हाथ हटाते हुए कहा—"यह नही जानती। बस इतना ही जानती हूँ कि अब उन्हे मैं खाना नही दे सकती! मुझे स्पर्श करके आज तुम वायदा करो कि जैसे भी होगा, तुम दोनो भाइयो मे मेल करा दोगी!"

"वायदा करती हूँ—कहकर मोहिनी बैठ गयी और अपनी पूरी शक्ति से उसके दोनो पावो को पकडकर कहा—"आज मुझे भी एक भीख दोगी, बतलाओ!"

विराज ने पूछा—"क्या?"

छोटी बहू ने कहा—"जरा रुको, मैं अभी आती हूँ!"

जाने के लिए उसने पैर बढ़ाया ही था कि विराज ने उसका आंचल पकड लिया। कहा—"नही, जाओ मत, एक तिल भी मैं किसी से नही लूगी!"

छोटी बहू ने कहा—"क्यो नहीं लोगी?"

विराज ने जोर से सिर हिलाते हुए कहा—"यह नही हो सकता! मैं किसी का कुछ भी नही ले सकती!!"

जेठानी की इस आकस्मिक उत्तेजना को बहू ने क्षणभर गौर से देखा। इसके बाद वह वही बैठ गयी और जोर से उसे खीचकर, पास बैठाकर कहा—"तो सुनो, दीदी! पता नही क्यों, पहले तुम मुझे प्यार नही करती थी और ठीक से बात भी नहीं करती थी। कितनी बार इसके लिए मैं छिपकर रोई हूँ—और कितने देवी-देवताओं को मनाया है! उन्होने भी आज सिर उठाकर देखा और तुमने भी छोटी बहिन की तरह मुझे पुकारा है। अब जरा सोचकर देखो, कि इस हालत में मुझे देखकर, अगर तुम कुछ न कर पातीं तो कितनी व्याकुल हुई होती!"

विराज ने कोई जवाब नही दिया, सिर झुकाये रही।

छोटी बहू उठकर गयी और जल्दी ही एक बड़ी-सी टोकरी मे, खाने की चीजें भरकर ले आयी।

विराज स्थिर होकर देख रही थी। छोटी बहू जब नजदीक आकर उसके आंचल मे सोने की एक मुहर बाधने लगी—तो उससे रहा नही गया। जोर से उसे पीछे धकेलकर चिल्ला पडी—"न, यह नही हो सकता, मर जाने पर भी नही!"

मोहिनी सभल गयी। सिर उठाकर बोली—"होगा क्यो नही? जरूर होगा! मेरे जेठजी ने मेरी शादी के समय यह मुझे दिया था।" मुहर उसने आचल मे बाध दी और झुककर एक बार फिर जेठानी की पद-धूलि माथे से लगाकर वह चली गयी।

ग्यारह

सगरा का पीतल के कब्जो का इतना पुराना कारखाना एकाएक बन्द हो गया। चाडाल जाति की वही लडकी यह खबर विराज को देने आयी। साचो की बिक्री बन्द हो जाने से, वह अपने तरह-तरह के नुकसानो और तरकीबो को सुनाने लगी। विराज ने चुपचाप सब सुन लिया। एक सास छोडकर वह रह गयी। लडकी ने समझा कि उसके दु ख मे हिस्सा बटाने वाला कोई न मिला, इससे कुण्ठित होकर वह रह गयी। हाय रे, अबोध दुखिया की लडकी! तुझे क्या पता कि छोटी-सी सास मे कैसा तूफान उठने लगा था! तू कैसे समझ पाएगी कि शान्त, मौन पृथ्वी के अन्तस्तल मे कैसी आग धधकती है!

नीलाबर ने आकर बताया कि उसे काम मिल गया। अबकी दुर्गापूजा मे ही, कलकत्ते की एक प्रसिद्ध कीर्तन-मण्डली मे वह मृदग बजाएगा।

खबर पाकर विराज का चेहरा मुर्दे की तरह पीला पड गया। उसका पति वेश्या के अधीन होकर, वेश्या के साथ भले आदमियो के बीच गाता-बजाता फिरेगा, तब कही भोजन मिलेगा! लज्जा और धिक्कार के कारण जैसे वह धरती मे समा जाने लगी, मगर जुबान से वह रना भी नही कर सकी। दूसरा कोई उपाय जो नही था! सन्ध्या के अन्धकार मे नीलाबर उसका चेहरा नही देख पाया—अच्छा ही हुआ।

भाटे के खिचाव मे पानी—जैसे घडी-घडी अपने क्षय के चिन्ह को तट-प्रान्त मे अकित करके, क्रमश. दूर होता चला जाता है, ठीक वैसे ही विराज का शरीर सूखने लगा। उसके शरीर-तट की सारी मलिनता को निरन्तर आवृत्त कर, उसका देव-वाछित अनुपम यौवन तीव्र गति से न जाने कहा विलीन होने लगा। चेहरा मुरझा गया और आखे अस्वाभाविक उज्ज्वल हो गयी, मानो हर घडी वे कोई भयानक चीज देख रही हो। मगर उसे देखने वाला कोई नही था, अगर कोई था, तो वह थी—छोटी बहू। एक महीने से अधिक हुए, भाई के बीमार पड जाने के कारण वह भी मायके चली गयी है। सब कुछ देखकर, समझकर भी विराज कुछ नही कहती। कुछ कहना चाहती भी नही। मामूली बातचीत करते समय भी उसे थकावट-सी मालूम होती है।

इधर कई दिनो से तीसरे पहर उसे कुछ जाडे के साथ-साथ सिर मे दर्द होने लगा है। उसी हालत मे, टिमटिमाता चिराग लेकर उसे रसोईघर मे जाना पडता है। पति घर पर नही रहते, इसलिए प्राय वह अब दिन मे खाना नही बनाती। रात को खाना बनाती है, मगर उस वक्त उसे बुखार रहता है। पति का खाना-पीना हो जाने पर, हाथ-पैर धोकर वह पडी रहती है। ऐसे ही उसके दिन बीत रहे हैं। विराज अपने ठाकुर-देवता से, मुह उठाकर देखने के लिए आजकल नही कहती—पहले की तरह प्रार्थना नही करती। दैनिक-पूजा के बाद गले मे आचल डालकर जब वह प्रणाम करती है तब मन-ही-मन केवल यही कहती है कि भगवन्, जिस रास्ते जा रही हूँ, उसी रास्ते जरा जल्दी जा सकू!

उस दिन सावन की सक्राति थी। सवेरे से ही जोर की बारिश हो रही थी। तीन दिनो से बुखार से पीडित रहकर, विराज भूख-प्यास से बेचैन होकर शाम को बिस्तर से उठ बैठी। नीलाबर घर मे नही था। पत्नी को बुखार रहने पर भी, कुछ मिलने की उम्मीद मे, परसो उसे श्रीरामपुर के एक धनी चेले के यहा जाना पडा था। परन्तु कह गया था कि जैसे भी होगा, शाम को लौट आऊगा! आज तीन दिन हो गये, उसके दर्शन नही हुए। कई दिनो बाद, विराज आज दिन मे कई बार रोती रही। किसी तरह जब नही रहा गया तो शाम का एक चिराग जलाकर, एक तौलिया सिर पर डालकर, कापते-कापते बाहर आकर रास्ते के किनारे खडी हो गयी। वर्षा के अन्धकार मे जहा तक उसकी नजर गयी, उसने देखा, मगर कोई नही

दिखाई पडा। उसके कपडे और बाल भीग गये। चण्डी-मण्डप की सीढियो का सहारा लेकर वह बैठ गयी और फिर रोने लगी। पता नही, उनका क्या हुआ! एक तो कष्ट और उपवास से उनका शरीर दुर्बल हो रहा है और उस पर यह कडी मेहनत—कही बीमार तो नही पड गये हो। कही किसी घोडा-गाडी के नीचे तो नही आ गये हो! घर बैठे वह कैसे कहे कि क्या हो गया! क्या करे! और एक आफत यह है कि पीताबर घर मे नही है। कल तीसरे पहर, छोटी बहू को लेने वह गया है। सारे घर मे विराज एकदम अकेली है और वह भी अस्वस्थ। आज दोपहर से बुखार जरूर नही है, मगर घर मे खाने लायक कोई चीज नही है। दो दिनो से, केवल पानी पीकर ही वह रह रही है। भीग जाने के कारण उसे जाडा मालूम हुआ और सिर चकराने लगा। हाथ-पैर पर जोर देकर किसी तरह वह उठ खडी हुई और चण्डी-मण्डप मे आकर, जमीन पर औंधी पडकर सिर पटकने लगी।

सदर दरवाजे पर किसी ने धक्का दिया। विराज ने गौर से सुना। दूसरा धक्का लगते ही—'आती हूँ' कहकर विराज दौड पडी और दरवाजा खोल दिया। घडी भर बैठने की भी शक्ति उसमे नही थी।

उस मुहल्ले के किसान का लडका ही किवाडो पर धक्का दे रहा था। उसने कहा—"माजी, दादा-ठाकुर ने एक सूखी धोती मागी है।"

विराज ठीक-ठीक कुछ समझ नही पायी। चौखट का सहारा लेकर क्षणभर देखती रहने के बाद पूछा—"धोती मागते हैं? कहा हैं वे?"

लडके ने जवाब दिया—गोपाल महाराज का क्रियाकर्म करके, अभी-अभी सब लौटे हैं।"

क्रियाकर्म करके?—विराज स्तम्भित हो गयी। गोपाल चक्रवर्ती इनके दूर के सम्बन्धी थे। उनका बुड्ढा बाप बहुत दिनो से बीमार था। दो दिन पहले त्रिवेणी मे 'गगा-यात्रा' करायी गयी थी। आज दोपहर को वे मर गये। सब कुछ बतलाकर लडके ने यह भी बतलाया कि पास-पडोस मे दादा ठाकुर से बढकर नाडी देखने वाला और कोई नही है। वे भी उसी दिन से उनके साथ ही थे।

गिरते-लडखडाते विराज उठकर आयी, एक धोती देकर बिस्तर पर गिर पडी।

अधेरे घर मे जिसकी स्त्री बुखार, दुश्चिन्ता और अनाहार से मुर्दा-सी पडी है—यह जानते हुए भी, उसका पति अगर बाहर परोपकार मे लगा हो तो उस अभागिन को कहने-सुनने के लिए और कोई नही रह जाता! आज उसके थके दिमाग मे यह बात बार-बार आने लगी कि ससार मे विराज, तुम्हारा कोई नही है। तुम्हारे मा-बाप नही हैं, भाई-बहिन नही है—पति भी नही है। हैं बस यमराज! उनके यहा जाने के अलावा, तेरी ज्वाला और कही पर शान्त नही होने की! बारिश की आवाज मे, झीगुरो की झकार मे और हवा की सनसनाहट मे, जैसे यही—"नही है, नही है,' की आवाज उसके कानो मे निरतर गूजने लगी। भडारे मे चावल नहीं हैं, कोठिला मे धान नही हैं, बाग मे फल नही हैं, तालाब मे मछली नही हैं—सुख नही है, शान्ति नही है, स्वास्थ्य नही है और घर मे छोटी बहू भी नही है। आश्चर्य यह है कि किसी के विरुद्ध, उसके मन मे आज कोई खास क्षोभ भी नही है। साल भर पहले, पति की इस हृदयहीनता के सौवे हिस्से से भी शायद वह पागल हो उठती; मगर आज एक स्तब्ध अवसाद से, जैसे वह संज्ञाहीन होने लगी।

इस प्रकार निर्जीव-सी पडी-पडी, वह न जाने क्या-क्या सोचती रही। आदत के कारण, उसे बीच मे सहसा याद आ गया कि दिनभर उन्होंने कुछ खाया-पीया नही।

अब उससे नहीं रहा गया। जल्दी से बिस्तरा छोडकर, चिराग हाथ मे लेकर वह भडार-घर मे गयी और देखने लगी कि बनाने के लिए कुछ है या नही। मगर कुछ भी नही मिला। अनाज का एक दाना भी वह नही देख पायी। बाहर आकर, दीवार के सहारे खडी होकर वह कुछ देर तक सोचती रही। इसके बाद मुह से फूककर हाथ का चिराग बुझा दिया और खिडकी खोलकर बाहर निकल आयी। घोर अन्धकार था। मगर वह भयानक सन्नाटा और घनी-कटीली झाडियो से भरा, फिसलन वाला तग रास्ता उसकी गति को रोक नही सका। बाग का दूसरा छोर जगल जैसा था। वहाँ चाडाल जाति वालो की छोटी-छोटी झोपडिया थीं। विराज उधर ही गयी। बाहर कोई दीवार नही थी। विराज ने एकदम आगन मे पहुचकर पुकारा—"तुलसी!"

आवाज सुनकर हाथ मे रोशनी लेकर तुलसी बाहर आया और देखकर अवाक् रह गया।

"इस अंधेरे में माजी, यहां क्यो आयी?"

विराज ने कहा—"थोड़ा-सा चावल दे!"

"चावल दूं?"—तुलसी हतबुद्धि हो गया। वह इस अद्भुत प्रार्थना का कोई मतलब ही नही समझ पाया।

विराज ने उसकी ओर देखकर कहा—"जरा जल्दी कर तुलसी, खड़ा मत रह।"

दो-एक और बात पूछकर तुलसी अन्दर गया, और चावल लाकर, विराज के आचल मे बांधते हुए बोला—"इन मोटे चावलो से तो काम चलेगा नही, माजी! यह तुम लोग खा नहीं सकोगे।"

विराज ने सिर हिलाकर कहा—"खा सकेंगे।"

इसके बाद चिराग लेकर तुलसी ने रास्ता दिखलाना चाहा, मगर विराज ने मना कर दिया—"कोई जरूरत नही, अकेले तू लौट नही सकेगा।" और पलक झपकते वह अन्धकार मे आंखों से ओझल हो गयी।

चाण्डाल के घर वह आज भीख मांगने आयी, भीख मागकर ले भी गयी तो भी यह अपमान इसे उतना नही खटका। शोक, दुःख, स्वाभिमान—कुछ भी अनुभव करने की शक्ति उसमें नही थी।

घर आकर उसने देखा—नीलाबर आ गया है। तीन दिन से उसने पति को नहीं देखा था। नजर पड़ते ही एक प्रचण्ड आकर्षण उसे उस ओर खीचने लगा, मगर इस समय वह एक डग भी इसे नहीं हिला सका।

धातु जैसे तेज बिजली से शक्तिमय हो जाती है, उसी तरह वह पति को नजदीक पाकर शक्तिमय हो उठी थी। फिर सम्पूर्ण आकर्षण के खिलाफ, वह एकटक देखती रह गयी।

केवल एक बार ही सिर उठाकर नीलाबर ने गर्दन झुका ली थी। इतने में ही विराज ने देख लिया, कि उसकी दोनों आखें गुडहल के फूल की तरह लाल हो गयी हैं। वह समझ गयी कि मुर्दा फूकने जाकर, इन कई दिनों तक इन्होंने लगातार गाजा पीया है। कुछ मिनट तक ऐसे ही रहने के बाद उसने नजदीक आकर कहा—"खाना नही हुआ?"

नीलाबर ने कहा—"नही।"

और कोई सवाल न पूछकर विराज चौके मे जा रही थी। सहसा नीलाबर ने पुकारकर कहा—"इतनी रात को तुम कहा गयी थीं?"

विराज खडी हो गयी। कुछ इधर-उधर करके कहा—"घाट!"

नीलाबर ने अविश्वास के स्वर मे कहा—"नही, घाट तो नही गयी थी!"

"तो यमराज के घर गयी थी!" कहकर विराज रसोईघर मे चली गयी। घण्टे भर बाद, भात परसकर वह बुलाने आयी। नीलाबर तब ऊंघ रहा था। नशे के जोर के कारण उसका माथा गरम हो रहा था। वह सीधा होकर उठ बैठा और वही पहला सवाल फिर दोहराया—कहा गयी थी।"

विराज को गुस्सा हो आया। मगर उसने अपने आप को सम्भालकर सहज स्वर मे कहा—"खा-पीकर इस वक्त सो रहो! सवेरे यह बात पूछ लेना।"

नीलाबर ने सिर हिलाकर कहा—"नही, अभी सुनूगा! बतलाओ—कहा गयी थी?"

उसकी जिद्द देखकर विराज इस दुःख मे भी हस पडी—"अगर न बताऊ तो?"

नीलाबर ने कहा—"बतलाना पडेगा!"

विराज ने कहा—"मैं फिर भी नही बतलाऊगी। पहले खा-पी लो, तभी सुन सकोगे।"

नीलाबर ने इस मजाक पर कुछ ध्यान न दिया। आखे तरेरकर सिर उठाया। आखो मे नशे की खुमारी नही थी, घृणा और हिंसा फूट पड रही थी। उसने भयानक आवाज मे कहा—"कभी नही! बिना सुने, तुम्हारे हाथ का पानी भी नही पीऊगा!'

विराज इस तरह चौंक पडी, जैसे काले नाग के डस लेने पर भी आदमी नही चौंकता होगा। लडखडाते हुए वह पीछे हटी और दरवाजे के पास बैठ गयी। कहा—"क्या कहा? मेरे हाथ का पानी भी नहीं पीओगे?"

"नही, किसी तरह भी नही!"

विराज ने पूछा—"क्यो?"

नीलाबर चिल्ला पडा—"फिर भी पूछ रही हो—क्यो?"

विराज स्थिर दृष्टि से पति की ओर देखती रह गयी। फिर बोली—"अब समझ गयी। अब नही पूछूंगी। मगर यह किसी तरह भी नही बता सकती। कल जब तुम्हे होश होगा तो सब कुछ अपने आप ही समझ जाओगे। इस समय तुम अपने आपे मे नही हो!"

नशाखोर सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है, मगर अपनी बुद्धि भ्रष्ट हो जाने की बात नही बर्दाश्त कर सकता। गुस्से से भरकर नीलाबर कहने लगा—"यही तो कहना चाहती हो कि मैंने गाजा पिया है! आज पहले पहल मैंने गाजा नही पिया है कि होश भी खो दूगा, बल्कि तुम भी होश मे नही हो—तुमने अपनी बुद्धि गवा दी है। अपने आप मे नही हो।

विराज उसी तरह उसका मुह देखती रही।

नीलाबर ने कहा—"मेरी आखो मे धूल झोकना चाहती हो, विराज? मैं मूर्ख हूँ, जो मैंने पीतांबर की बात पर उस दिन विश्वास नही किया। मगर उसने छोटे भाई का कर्त्तव्य-पालन किया है। नही तो यह नही बतला सकती थी कि तुम कहा थी? झूठ-मूठ ही कह दिया कि घाट गयी थी?"

विराज की आखे बिल्कुल पागलो की-सी जलने लगी। फिर भी अपने आपको सम्भालकर बोली—"झूठ इसलिए बोली थी कि सुनकर शायद तुम लज्जित और दु खी होओगे—खा न सकोगे! मगर अब डर बेकार है। तुम्हे लज्जा-शरम भी अब नही रही, तुम आदमी नही रहे! मगर क्या तुमने झूठ नही कहा? इतना बडा छल करते एक पशु को भी लज्जा होती, मगर तुम्हे नही हुई! भले आदमी, बीमार औरत को छोडकर, तुम किस चेले के घर तीन दिनो से गाजा पी रहे थे—बतलाओ?"

"बताता हूँ" कहकर, पास ही रक्खा हुआ पनडिब्बा उठाकर नीलांबर ने विराज के माथे पर जोर से दे मारा। सिर में लगकर वह बडा-सा डिब्बा झन्न से जमीन पर गिर पडा। देखते-देखते खून की धार उसकी आख के कोने से बहकर होठ तक फैल गयी।

बायें हाथ से माथा दबाकर विराज चिल्ला पडी—"तुमने मुझे मारा?"

मारे गुस्से के नीलाबर काप रहा था। कहा—"नही, मारा नही। मगर दूर हो जा मेरे सामने से, अब यह मुह मत दिखा कुलांगार!!"

विराज उठ खडी हुई। कहा—"जाती हूँ!"

एक डग आगे जाकर, सहसा वह लौटकर खडी हो गयी और कहा—"मगर बर्दाश्त तो कर सकोगे? कल जब याद आएगा कि बुखार की हालत मे तुमने मुझे मारकर निकाल दिया है, तो बर्दाश्त कर सकोगे? तीन दिनो से मैंने कुछ खाया-पीया नही, और इस अधेरी रात मे तुम्हारे लिए भीख मांगकर लायी हूँ। इस कुलागार को छोडकर रह तो सकोगे न?"

खून देखकर नीलाबर का नशा उतर गया था। हतबुद्धि-सा वह चुप हो रहा।

आचल से खून पोंछकर विराज ने कहा—"सालभर से मैं जाने की सोच रही थी, मगर तुम्हे छोडकर नहीं जा सकी। आख उठाकर देखो—मेरे शरीर मे कुछ नही रह गया है, आंखों से अच्छी तरह सूझता नही, एक कदम भी चलने की ताकत नही। मैं जाती नहीं, मगर पति होकर तुमने मुझ पर लाछन लगाया है, अब यह मुह मैं दिखला नही सकूंगी! तुम्हारे चरणो-तले मरने की ही मुझे बहुत लालसा थी—यही लालसा मैं किसी तरह नही छोड पा रही थी—आज यह भी छोडती हूँ"—कहकर माथे का खून पोछकर विराज फिर खिडकी के खुले रास्ते से, अधेरे बाग मे गायब हो गयी।

नीलांबर ने कुछ कहना चाहा, मगर जुबान नही हिली। दौडकर उसके पीछे-पीछे जाना चाहा, मगर उठ नही सका। लगा—जैसे कि मन्त्र फूककर, उसे पत्थर की मूर्ति बनाकर वह आखो से ओझल हो गयी।

आज एक बार आख उठाकर उस सरस्वती नदी की ओर देखो तो डर मालूम होगा। वैशाख की वह सूखी-सी नदी, सावन के आखिरी दिनो मे लबालब होकर तीव्र गति से बह रही थी। जिस काले पत्थर के ऊपर, एक दिन वसन्त के प्रभात मे भाई-बहिन को असीम स्नेह-सुख से एक साथ बैठे हमने देखा था—उसी काले पत्थर के ऊपर विराज इस अंधेरी रात मे, शून्य हृदय लेकर, कापते-कांपते आकर खडी हो गयी।

गहरी जल-राशि सुदृढ प्राचीर की दीवार से टकराकर, भवरे बनाती हुई वह रही थी। उसी ओर एक वार उसने झुककर देखा और फिर सामने की ओर। उसके पैरो तले काला पत्थर, सिर के ऊपर काले वादलो से घिरा हुआ आकाश, सामने काला जल, चारो ओर दो सघन निस्तव्ध वन—और हृदय के भीतर जाग उठा है उससे अधिक काली आत्महत्या की प्रवृत्ति। वही वैठकर, वह अपने आचल से अपने हाथ-पैर मजवूती से लपेटकर वाधने लगी।

बारह

सवेरे ही आकाश मे घने बादल छा गये थे। टिप्-टिप् पानी वरस रहा था। रात में खुले दरवाजे की चौखट पर सिर रखकर नीलावर सो गया था। सहसा उसके कानों से आवाज आयी—

"वहू जी!"

नीलावर हडवडाकर उठ वैठा। ऐसे ही वर्षा से भरे वादलो से घिरे प्रभात में, कभी श्रीराधाजी– श्याम की तान सुनकर, घवराकर उठ वैठी थी। आंखे मलना हुआ वह वाहर आया। आगन मे खडा तुलसी पुकार रहा था। सारी रात वन-वन ढूंढकर, रोकर थका हुआ, डरा हुआ नीलावर, घण्टे-डेढ-घण्टे पहले वापस आ गया था और दरवाजे पर ही बैठा था। इसके वाद न जाने कव उसे नींद आ गयी थी।

तुलसी ने कहा—"बाबूजी, माजी कहा हैं?"

नीलाबर ने हतवुद्धि-सा उसकी ओर देखते रहकर कहा—"तो तू किसे पुकार रहा था?"

तुलसी ने कहा—"मांजी को ही तो वुला रहा हूँ, बाबू! कल पहर रात वीते, घोर अधेरी रात मे, मेरे घर जाकर मोटा चावल माग लायी थी। इससे दरवाजा खुला देखकर पूछने चला आया कि उस चावल से काम चला?"

मन-ही-मन नीलावर सव कुछ समझ गया, मगर कुछ वोला नही। तुलसी ने कहा—"तो इतनी सुवह खिडकी किसने खोली? शायद वहूजी घाट पर गयी हैं!" कहकर वह चला गया।

नदी किनारे के सभी गड्ढे, मोड और झाडिया नीलावर खोजता फिरा। उसने अभी तक नहाया-खाया भी नही था। सहसा वह रुक गया। मन-ही-मन बोला—"यह कैसी वेवकूफी मेरे सिर पर सवार है! क्या अभी तक उसे इतना भी याद नही होगा कि दिनभर मैंने कुछ खाया भी नही! यह याद कर, एक क्षण भी वह नही रह सकती है। तो फिर यह कैसा ऊट-पटाग काम मैं सुवह से करता फिर रहा हूँ?" यह उसकी आखो के सामने इतना साफ दिखाई देने लगा कि उसकी दुश्चिन्ता मिट गयी। कीचड ठेलता, खेतो के ढेले फोड़ता हुआ और नाले लाघता हुआ वह एक सास से घर की ओर दौडा। दिन ढल गया था। पश्चिम आकाश से, क्षणभर के लिए बादलो के झरोखे से सूरज की लाल किरणे चमक रही थी। वह सीधा रसोईघर मे जाकर खडा हो गया देखा—फर्श पर आसन बिछा हुआ है और रात का परोसा खाना पडा हुआ है, चूहे दौड रहे हैं। अधेरे मे उसने ख्याल नहीं किया था, परन्तु इस समय देखकर समझ गया कि तुलसी के दिये हुए मोटे चावल का भात यही है। बुखार से कापती हुई विराज, अपने भूखे पति के लिए भीख माग लायी थी। इसी वजह से उसने मार खायी और अश्रव्य वाते सुनकर, लज्जा और धिक्कार के मारे, वर्षा की उस भयानक रात मे वह घर छोडकर चली गयी।

नीलाबर वहीं वैठ गया। दोनो हाथो से मुह छिपाकर, औरतो की तरह वह चिल्लाकर रो पडा। अभी तक वह लौटकर नही आयी तो अब उसे लौटने की उम्मीद नही रही। अपनी पत्नी को वह वखूवी जानता था। वह विराज के स्वाभिमान से परिचित था कि जान चली जाये तो भी, दूसरे के आश्रय मे रहकर, वह अपना यह कलक प्रकट नही होने देगी। उसका हृदय अन्दर से हाहाकार कर उठा। इसके वाद वह औंधा पड रहा और दोनो हाथ सामने फैलाकर वडबडाने लगा—"अव मैं सह न सकूगा, विराज! तू लौट आ!"

शाम हो गयी। घर मे किसी ने चिराग नही जलाया। भोजन बनाने के लिए रसोईघर में नहीं घुसा। रोते-रोते नीलाबर की आखे सूज गयी, मगर किसी ने कुछ नही पूछा। दो दिन से भूखे-प्यासे नीलाबर को

किसी ने खाने के लिए नही बुलाया। बाहर जोर से पानी बरसने लगा। घने अन्धकार को चीरकर बिजली कौंध जाती, मानो किसी दुर्योग की खबर दे रही हो। फिर भी नीलाबर जमीन मे मुह गडाये, उसी तरह फफक-फफककर रोता रहा।

जब उसकी नीद खुली तो सुबह हो चुकी थी। बाहर कुछ अस्पष्ट शोरगुल सुनकर वह दौडा आया। देखा, दरवाजे पर एक बैलगाडी खडी है। उससे सामना होते ही छोटी बहू घबराकर घूघट निकालकर उतर गयी। बडे भाई पर तिरछी नजर डालकर पीताम्बर उसकी ओर चला गया। छोटी बहू नजदीक आयी और जमीन पर सिर टेककर उसे प्रणाम किया। नीलाबर ने अस्पष्ट स्वर मे कुछ आशीर्वाद दिया और रो पडा। छोटी बहू विस्मित हो गयी। मगर उसके सिर उठाने के पहले, नीलाबर जल्दी मे कही चल पडा।

जीवन मे पहली बार, छोटी बहू अपने पति के खिलाफ नाराज होकर खडी हो गयी। आसुओ के बोझ से भरी अपनी दोनो रक्ताभ आखो को ऊपर उठाकर उसने कहा—"तुम क्या पत्थर हो? दु ख के मारे दीदी ने आत्महत्या कर ली, फिर भी हम गैर बने रहेगे? तुम अलग रह सको तो रहो, मगर उस घर का सारा काम, आज से मैं ही करूगी!"

पीताबर चौंक पडा—"क्या कह रही हो?"

मोहिनी ने जो कुछ तुलसी के मुह से सुना था, सब सुना दिया।

पीताबर सहज ही मान लेने वाला आदमी नही था। कहा—"मगर उसका शरीर तो पानी मे उतरा जाता!"

छोटी बहू ने आखे पोछकर कहा—"नही भी उतरा सकता है—धारा मे बह गया होगा—सम्भव है, गगा माता ने उस सती-लक्ष्मी को अपनी गोद मे ले लिया हो!   और खोजा ही किसने, कौन पता लगाने गया?"

पीतांबर को पहले विश्वास नही हुआ, बोला—"अच्छा मैं खोज करता हूँ!" फिर कुछ सोचकर कहा—"भाभी कही अपनी मा के घर तो नही चली गयी?"

मोहिनी ने सिर हिलाते हुए कहा—"कभी नही! बडी स्वाभिमानिनी थी। वह और कही नही गयी, नदी मे जान दे दी!"

"अच्छा, उसका भी पता लगाता हूँ—कहकर पीताबर उदास मुह लिए बाहर चला गया। सहसा भाभी के लिए आज उसका जी खराब हो गया। विराज को ढूढने के लिए आदमी लगाकर, जीवन मे उसने आज पहली बार पुण्य-कार्य किया। पत्नी को बुलाकर कहा—"यदु से आगन का बेडा तुडवा दो और तुमसे जो कुछ हो सके, करो! दादा की ओर देखा नही जाता!"

यह कहकर, थोडा-सा गुड खाकर पानी पीकर, बगल मे बस्ता दबाए वह काम पर चला गया। चार-पाच दिन नागा हो जाने से उसका बहुत नुकसान हो गया था।

काम करते-करते, आसू पोछती हुई छोटी बहू यही सोच रही थी कि जिस मुह की ओर देखा नही जाता था, वह मुह न जाने कैसा हो गया है!

चडी-मण्डप के पास, आखे बन्द किये हुए नीलाबर स्तब्ध बैठा था। सामने दीवार पर राधाकृष्ण की युगल जोडी की तस्वीर टगी थी। यह तस्वीर जाग्रत की देवता है। जब रेलगाडी नही थी तब पैदल-यात्रा करके, नीलाबर के बाबा इसे वृन्दावन से ले आये थे। वे परम वैष्णव थे। यह तस्वीर उनसे आदमी की तरह बातचीत करती थी। यह कहानी, अपनी मा से नीलाबर ने कई बार सुनी है। ठाकुर-देवता की बात, उसके लिए अस्पष्ट बात नही थी। यह सब उसके लिए प्रत्यक्ष सत्य था कि सच्चे विश्वास के साथ पुकार सकने पर, ये सामने आकर बाते करते हैं। इसीसे छिपकर इस तस्वीर से बात करने की कोशिश वह कितनी ही बार कर चुका हे, मगर सफल नही हुआ है। इस असफलता का कारण उसनेअपनी अक्षमता को ही माना है। लिखना-पढना वह जानता नही, बस अक्षर पहचानता था। उसके मन मे यह सन्देह कभी नही उठा कि तस्वीर सचमुच ही नही बोलती है! उसके बाद विराज से, उसने रामायण-महाभारत पढना और चिट्ठी लिखना सीखा था। शास्त्र या धर्मग्रन्थो के पास वह नही फटका था, इसीसे ईश्वर के प्रति उसकी धारणा एकदम स्थूल थी। इस मामले मे वह कोई तर्क भी बर्दाश्त नही कर सकता था। इन्ही

बातो को लेकर, बचपन में वह कभी पीताबर के साथ और कभी विराज के साथ मार-पीट भी कर बैठता था।

विराज नीलाबर से केवल चार साल छोटी थी, इसलिए उसे उतना मानती नही थी। एक बार मार खाकर, विराज ने नीलाबर के पेट मे काटकर खून निकाल दिया था। सास ने दोनो को छुडा दिया था और विराज को समझाया था—"छि बेटी, बडो को इस तरह नही काटना चाहिए!" विराज ने रोते-रोते कहा था—"पहले उन्ही ने मुझे मारा!" तब बेटे को बुलाकर उसने कसम दिला दी, कि फिर कभी वह बहू पर हाथ न उठाए। तब वह चौदह साल का था, आज वह तीस के करीब है। लेकिन तब से उस दिन तक, मातृ-भक्त नीलाबर ने मा की आज्ञा का उल्लघन नही किया था।

स्तब्ध नीलाबर ने आज बीते दिनो की इन बातो को याद कर पहले मा से क्षमा मागी, फिर उन्ही जाग्रत देवता से बुदबुदाकर कहा—"भगवान तुम तो सब कुछ देखते हो! अगर उसने कोई अपराध नही किया तो सारा पाप मुझ पर लादकर उसे स्वर्ग जाने दो! यहा उसे बहुत दु ख हुआ है, अब और दु ख मत देना!" उसकी बन्द आखो के कोरो से आसू गिर रहे थे। सहसा उसका ध्यान भग हुआ।

"बापू!"

नीलाबर ने विस्मित होकर देखा—थोडी दूर पर छोटी बहू बैठी है। उसके चेहरे पर मामूली घूघट था। उसने सहज स्वर मे कहा—"बापू, मैं आपकी बेटी हूँ! अन्दर चलिए! नहा-धोकर आज आपको थोडा भोजन करना होगा।"

नीलाबर पहले अवाक् होकर देखता रहा—मानो युग-युग से किसी ने उसे खाने के लिए नही बुलाया हो। छोटी बहू ने फिर कहा—"बापू, खाना तैयार है।"

अबकी नीलांबर समझ गया। एक बार उसका शरीर काप गया। फिर औंधा होकर वह रो पडा—"खाना तैयार है न बेटी?"

गाव के सब लोगो ने सुना और सबने विश्वास किया कि विराज बहू नदी मे डूबकर मर गयी। विश्वास केवल धूर्त पीताबर ने नही किया। मन-ही-मन वह तर्क करने लगा कि इस नदी मे इतने मोड हैं, इतनी झाडिया हैं—कही-न-कही लाश अवश्य अटक जाती! नदी मे नाव से और किनारे-किनारे आदमियो के साथ चारो ओर खोज डालने पर भी जब लाश का पता नही चला, तो उसे विश्वास हो गया कि भाभी ने और चाहे जो कुछ किया हो मगर नदी मे डूबकर नही मरी! कुछ देर पहले उसके दिमाग मे एक सन्देह उठा था, वही सदेह फिर उसके मन मे उठने लगा। मगर किसी के सामने वह उसे प्रकट नही कर पाता था। एक बार मोहिनी से उसने कहना शुरू किया, तो जीभ काटकर, कानो मे उगली डालकर, पीछे हटकर उसने कहा—"तब तो देवी-देवता भी मिथ्या हैं, दिन-रात भी झूठ है!" फिर दीवार पर टगी भगवती अन्नपूर्णा की तस्वीर की ओर देखकर कहा—"मेरी जीजी इन्ही भगवती का अश थी। यह बात कोई जाने या न जाने, मगर मैं जानती हूँ!" इतना कहकर वह चली गयी।

पीताबर ने क्रोध नही किया। एकाएक वह इस तरह बदल गया था, जैसे कोई दूसरा आदमी हो।

मोहिनी जेठ से बोलने लगी है। खाना परोसकर वह आड मे बैठ जाती, और पूछ-पूछकर सब कुछ जान चुकी है। ससार मे केवल उसी ने जाना कि क्या हुआ था; केवल उसीने समझा कि क्या मर्मभेदी व्यथा उसकी छाती मे चुभ गयी है।

नीलाबर ने कहा—"बेटी, चाहे मेरा कितना ही अपराध क्यो न हो, परन्तु जानबूझकर मैंने कुछ नही किया! फिर माया-ममता छोडकर वह कैसे चली गयी? क्या इसी कारण चली गयी बेटी कि अब और नही सह सकती थी?"

मोहिनी को बहुत कुछ मालूम था। एक बार उसके जी मे आया कि कह दे, कि दीदी एक दिन अपने जाने की बात कह रही थी और अपने पति का सारा भार उस दिन मुझे सौंप गयी थी। मगर उससे कुछ कहा नही गया, वह चुप रही।

पीताबर ने एक दिन पत्नी से पूछा—"तुम दादा से बाते करती हो?"

मोहिनी ने कहा—"हा! उन्हें बापू कहती हूँ, इसी से बोलती हूँ।"

पीतांबर ने हसकर कहा—"लोग हसी उडाते हैं।"

मोहिनी ने नाराज होकर कहा—"लोग और कर ही क्या सकते हैं? वे अपना काम करें, मैं अपना काम करूंगी! ऐसी हालत में अगर उन्हे बचा सकी तो सारी लोकनिदा सिर-आखों पर ले लूंगी।" कहकर वह काम से चली गयी।

तेरह

पन्द्रह महीने गुजर गये। आगामी शारदीया-पूजा के आनन्द का अभाव—जल, थल, पवन, और आकाश—चारों ओर दिख रहा है। दिन का तीसरा पहर है। नीलांबर एक कम्बल के आसन पर बैठा हैं। शरीर दुबला हो गया है, चेहरा पीला पड गया है, सिर पर छोटी-छोटी जटाए हैं तथा आंखो में है विश्वव्यापी करुणा और वैराग्य। महाभारत की पोथी बन्द कर, विधवा बहू को सम्बोधन कर बोला—"मालूम होता है बेटी, पूंटी आदि आज नही आएंगी!"

बिना किनारी की सफेद धोती पहने हुए, निराभरण छोटी बहू थोडी दूर बैठी महाभारत सुन रही थी। दिन की ओर देखकर उसने कहा—"नही बापू, अब भी वक्त है, वे आ सकते हैं!"

ससुर के मर जाने के बाद पूंटी स्वतन्त्र है। पति और दास-दासियों के साथ आज वह पिता के घर आने वाली है, और यह समाचार उसने पहले ही भिजवा दिया है कि पूजा के दिनो में वह यही रहेगी। उसे यह सब नही मालूम है कि मा समान उसकी भाभी नही रही—और छोटा भाई सांप के काट लेने के कारण छ: महीने पहले ही मर गया।

नीलांबर ने नि:श्वास छोडकर कहा—"सोचता हूँ कि अगर वह नही आती तो अच्छा होता! एक साथ ही इतना दु:ख वह कैसे बर्दाश्त कर सकेगी?"

बहुत दिनो बाद अपनी बहुत ही प्यारी छोटी बहिन के लिए, आज उसकी शुष्क आखों मे आंसू दिखाई पडा। साप के काट लेने पर पीतांबर ने कोई झाड-फूक नही करने दी। अपने भाई के दोनो पैरो को पकडकर उसने कहा था—"मुझे कोई दवा नही चाहिए! अपनी पदधूलि मेरे माथे पर, मुंह मे दे दो! इससे अगर मैं बचा नही तो बचना चाहता भी नही!!" आखिरी समय तक उसके पैरो पर सिर रगडता रहा। उसी दिन नीलाबर आखिरी बार रोया था। आज उसकी वही आंखे फिर डबडबा आयीं। पतिव्रता साध्वी छोटी बहू, अपनी आखो से आंसू चुपके से पोछकर चुप रही।

नीलाबर धीरे-धीरे कहने लगा—"उसके लिए भी मुझे उतना दु ख नही होता, बेटी! पीताम्बर की तरह भगवान अगर विराज को भी उठा लिए होते तो आज यह मेरे सुख का दिन होता! मगर वह सब तो हुआ नही। पूटी अब समझदार हो गयी है। बताओ बेटी, अपनी भाभी के कलक की बात सुनकर उस पर क्या गुजरेगी! तब तो सिर उठाकर वह देख भी नही सकेगी!"

सुन्दरी को इतनी आत्मग्लानि हुई कि वह बर्दाश्त नही कर सकी। करीब दो महीने पहले उसने स्वीकार कर लिया था कि विराज मरी नही, बल्कि जमीदार राजेन्द्र के साथ घर छोडकर चली गयी। नीलाबर का मानसिक अवसाद उससे देखा नही गया था। उसने सोचा था कि यह बात सुनकर शायद वह क्रोधित हो जाये और यह दु ख भूल जाये! घर आकर नीलाबर ने यह बात छोटी बहू से कही थी।

वही बात छोटी बहू को याद आ गयी। थोडी देर चुप रहकर उसने कोमल स्वर मे कहा—"ननदजी से नही कहा जायेगा!"

"कैसे छिपाऊंगा, बेटी! जब वह पूछेगी कि भाभी को क्या हुआ था—तो क्या कहूगा?"

छोटी बहू ने कहा—"जिस बात को सभी जानते हैं, वही कहा जायेगा कि नदी में डूब गयी!"

नीलाबर ने सिर हिलाकर कहा—"वह नही हो सकता बेटी! सुना है, पाप छिपाने से और बढ़ता है। हम उसके अपने हैं, हम उसके पाप का बोझ और नही बढ़ायेंगे।" यह कहकर वह कुछ हसा। छोटी बहू समझ गयी कि उस जरा-सी हसी मे कितनी व्यथा, कितनी क्षमा है। थोडी देर बाद छोटी बहू ने सकोच-मधुर स्वर मे कहा—"बापू, शायद यह सब सच नही है!"

"क्या तुम्हारी दीदी की बाते . ?"

छोटी बहू सिर झुकाये रही।

नीलाम्बर ने कहा—"क्यो नही बेटी, सब सच है! तुम्हे तो मालूम ही है बेटी कि गुस्से में उस पगली को होश नही रहता था। बचपन मे भी वैसी ही थी और बडी हुई तब भी वैसी ही रही। उस पर मैंने जो अपमान और अत्याचार किया है, उसे आदमी तो क्या ईश्वर भी नही बर्दाश्त कर सकता।" नीलाम्बर ने हाथ से एक बूद आसू को पोछकर कहा—"याद आती है बेटी तो छाती फटने लगती है—अभागिन ने तीन दिनो से कुछ खाया-पीया तक नही था। बुखार से कापते-कांपते, बारिश मे भीगती हुई, चावल की भीख मागने गयी थी और इसी अपराध पर मैंने ।" इससे आगे वह कुछ नही कह सका। धोती का खूट मुह मे भर, उच्छ्वास रोकने की कोशिश करने लगा।

छोटी बहू भी उसी तरह रो रही थी। उसकी जुबान से भी कोई बात नही निकल सकी।

थोडी देर बाद कुछ स्थिर होकर, आख-मुह पोछकर नीलाम्बर ने कहा—"बहुत कुछ तुम्हे मालूम है, फिर भी सुनो बेटी! पता नही किस तरह उसी रात को, एकदम उन्मत्त होकर वह सुन्दरी के घर जा पहुची थी। उसके बाद—उफ रुपयो के लालच मे पडकर उसी रात को सुन्दरी उसे जमीदार राजेन्द्र के बजरे पर पहुचा गयी।"

बात पूरी होने के पहले ही, मोहिनी लाज-शर्म छोडकर आत्म-विस्मृत होकर चिल्ला पडी—"यह कभी सत्य नही हो सकता बापू, कभी नही! नही! जीते-जी दीदी से कोई ऐसा काम नही करा सकेगा। वे तो सुन्दरी को देखना भी पसन्द नही करती थी।

नीलाम्बर ने सहज स्वर मे कहा—"यह भी मैंने सुना है! शायद तुम्हारी ही बात सच हो बेटी, उसके शरीर मे प्राण नही था। जब उसका ज्ञान और बुद्धि अच्छी थी—तभी उसने वह मुझे अर्पण कर दिया था। उसे लेकर नही गयी है। आज भी वह मेरे पास है। यह कहकर उसने अपनी आखे बन्द कर ली, मानो अन्तरतम तक डूबकर देखने लगा हो।

मुग्ध होकर छोटी बहू उस शान्त, पीले और मुदी आखो वाले चेहरे की ओर देखने लगी। उस चेहरे में क्रोध, हिंसा और द्वेष की छाया तक नही थी। थी केवल असीम व्यथा और अनन्त क्षमा की अनिर्वचनीय महिमा। गले मे आचल डालकर उसने प्रणाम किया और नीलाम्बर की पदधूलि माथे से लगाकर उठ गयी। शाम का चिराग जलाते-जलाते उसने मन-ही-मन सोचा—दीदी ने पहचान लिया था, इसी से इन्हें छोडकर एक दिन भी रहना नही चाहती थी।

चार साल बाद पूटी मायके आयी है। ठीक एक बडे आदमी की तरह! उसके पति, छ महीने का बेटा, पांच-छ दास-दासी और बहुत-से सामान से सारा घर भर गया। स्टेशन पर उतरते ही यदु नौकर से उसने सब कुछ सुनकर, वही से रोना शुरू कर दिया था। एक पहर रात को जोर-जोर से रोते-रोते सारे मुहल्ले को उसने चौंका दिया। घर मे प्रवेश करते ही दादा की गोद मे सिर रख, औंधी होकर पडी रही। उस रात को उसने पानी तक नही पिया था। दादा को भी नही छोडा। मुह ढके रखकर, धीरे-धीरे सब कुछ सुना। पहले वह भाभी से सकोच करती थी बल्कि डरती भी थी, परन्तु दादा को वह ठीक पुरुष ही नही मानती थी, सो सकोच भी नही करती थी। वह रूठती और उपद्रव मचाती थी अपने इस दादा पर ही। ससुराल जाने के एक दिन पहले तक, भाभी की डाट सुनकर दादा के गले से लगकर वह खूब रोई थी। उसने उसी दादा को इतने दिनों तक जितने दु ख दिये और जीर्ण-शीर्ण कर ऐसा पागल-सा बना दिया, उस पर उसके क्रोध और चिढ़ की सीमा नही रही। अपने दादा के इतने बडे दु.ख के आगे पूटी ने अपने सारे दु खों को तुच्छ मान लिया। उसे अपनी ससुराल वालों से नफरत हुई। छोटे दादा को साप काटने से मर जाना उसे खटका नही और उसकी दुखिया विधवा की ओर वह एकदम उदासीन हो गयी।

दो दिनों के बाद उसने अपने पति को बुलाकर कहा—"यह सब लाव-लश्कर लेकर तुम लौट जाओ, दादा के साथ मैं पश्चिम घूमने जाऊगी! और अगर इच्छा न हो तो तुम भी साथ चलो! बहुत वाद-विवाद करने के बाद यतीन्द्र ने पिछला काम ही आसान समझा और सब माल-असबाब बांधकर ठीक करके चला गया। यात्रा की तैयारी होने लगी। पूटी ने चुपके से सुन्दरी को बुला भेजा था, मगर वह आयी नही। उसने कहलवा दिया कि जो कुछ मुझे कहना था—कह दिया। अब और अपना मुह मैं नही दिखला

सकूगी।

पूटी गुस्से मे होंठ काटकर रह गयी, पूटी की ओर से उपेक्षा और उससे भी अधिक उसके निर्दय व्यवहार से छोटी बहू को कितना सदमा पहुंचा इसे अन्तर्यामी ही जानते हैं। हाथ जोडकर छोटी बहू ने मन-ही-मन कहा—"दीदी, तुम्हारे सिवा और कौन मुझे समझेगा? जहा कही भी तुम हो, अगर तुमने मुझे क्षमा कर दिया है तो वही मेरे लिए सब कुछ है!" छोटी बहू हमेशा से ही शान्त स्वभाव की थी; आज भी उसने किसी से कोई शिकायत नही की! चुपचाप सबकी सेवा करती रही। जेठ को खिलाने का भार अब पूटी ने ले लिया था, इसलिए वहा भी उसके बैठने की अब कोई जरूरत नही रही।

जाने के दिन नीलाबर ने अत्यन्त विस्मय होकर कहा—"बेटी, तुम नही चलोगी?"

छोटी बहू ने चुपचाप गरदन हिला दी।

बेटे को गोद मे लिए पूटी—दादा के पास आकर सुनने लगी। नीलाबर ने कहा—"यह नही हो सकता बेटी, तुम यहा अकेली कैसे रहोगी? और रहकर ही क्या होगा? चलो!"

छोटी बहू ने उसी तरह सर झुकाए, गरदन हिलाते हुए कहा—"नही बापू, मैं कही नही जा सकूंगी!"

छोटी बहू के मायके की आर्थिक दशा अच्छी थी, उन लोगो ने कई बार कोशिश की कि विधवा लडकी को ले जाए, मगर किसी तरह भी वह जाने को तैयार नही हुई।

तब नीलाबर समझता था कि मेरी वजह से वह नही जाना चाहती, मगर अब यह बात वह नही समझ सका कि सुनसान घर में अकेली क्यो रहना चाहती है। पूछा—"क्यो बेटी, कही जा क्यो न सकोगी?"

छोटी बहू चुप रही।

"नही बतलाओगी तो मेरा जाना नही होगा, बेटी!"

छोटी बहू ने मृदु स्वर मे कहा—"आप जाइए, मैं रहूगी!"

"मगर क्यो?"

छोटी बहू फिर चुप हो रही—जैसे मन-ही-मन किसी संकोच को जी-जान से दूर करने की कोशिश कर रही हो। इसके बाद थूक घोटकर बहुत धीरे-से बोली—"दीदी शायद कभी आ जाएं, इसीसे मैं नही जा सकूंगी बापू!"

नीलांबर चौंक गया। उसकी आखो के सामने ऐसा अन्धकार छा गया, जैसे तेज बिजली के चमक जाने से उसकी आखे चौंधिया गयी हो। मगर वह सब केवल क्षणभर ही रहा। तुरन्त ही उसने अपने-आपको सम्भाल लिया और अत्यन्त क्षीण हसी हंसकर कहा—"छिः बेटी, तुम अगर पागल की तरह जवाब दोगी, अबोध बन जाओगी तो मेरी क्या हालत होगी?" छोटी बहू ने आखे बन्द कर कुछ सोचा। उसके बाद बेधडक स्थिर और धीमे स्वर मे कहा—"मैं अबोध नही हुई हूँ बापू! आप जो चाहे कहें, मगर जब तक चन्द्र और सूर्य को उदय होते देखूगी तब तक किसी उल्टी बात पर मुझे विश्वास नही होगा!"

पास-पास खडे भाई-बहिन अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगे। वैसे ही सुदृढ़ स्वर मे उसने फिर कहा—"आपके चरणो मे सिर रखकर मरने का जो वरदान दीदी ने आप से माग लिया था, वह कभी किसी तरह झूठ नही हो सकता! सती-लक्ष्मी दीदी अवश्य लौटेगी। जब तक जीऊगी, इसी आशा मे उनकी बाट जोहती रहूगी। मुझसे कही जाने के लिए मत कहिएगा बापू!" यह कहकर, एक सास मे कई बाते कहने के कारण सिर झुकाकर वह हाफने लगी।

नीलाबर से न रहा गया। उसके आसू उमड पडे। वह जल्दी से एक ओर भाग गया ताकि वहा सन्नाटा हो जाय।

पूटी ने एक बार चारों ओर देखा। फिर नजदीक आयी और अपने लडके को पैरो के पास बिठाकर विधवा भाभी के गले से लिपट गयी और अस्फुट स्वर मे रोते-रोते बोली—"मुझे क्षमा करना भाभी, मैं तुम्हें पहचान नहीं पायी थी।"

छोटी बहू ने झुककर उसके बच्चे को उठाकर छाती से लगा लिया और उसके मुह-से-मुंह सटा कर—आसू छिपाती हुई वह रसोई में भाग गई।

चौदह

विराज का मरना ही उचित था, मगर वह मरी नही। बहुत दिनों से वह दु:ख-दैन्य से पीडित थी। अनाहार और अपमान की चोट से उसका दुर्बल मस्तिष्क विकृत हो गया था। उसी रात को, मरने से ठीक पहले क्षण मे, उसने बिल्कुल दूसरी ही राह पर पैर बढ़ा दिया। मौत को छाती पर रखकर जब अपने हाथ-पैर आंचल से बांध रही थी, ठीक उसी समय कही बिजली गिरी और उस भयानक शब्द मे चौंककर उसने सिर उठाया। बिजली के तेज प्रकाश में—उस पार नहाने का वह घाट और मछली मारने के लिए बनाया गया लकडी का मचान उसकी नजर में पड गया। लगा जैसे उसकी प्रतीक्षा में आखें खोले—चुपचाप वे उसकी ओर देख रहे थे। नजर मिलते ही सकेत में उसे बुला लिया। सहसा भयानक स्वर में विराज कह उठी—"वे साधु-पुरुष तो मेरे हाथ का पानी तक न पियेंगे, मगर यह पानी तो पिएगा। अच्छी बात है!"

लोहार की धौंकनी में जलते हुए कोयले जिस तरह राख हो जाते हैं उसी तरह विराज के प्रज्वलित मस्तिष्क के सामने उसका अतुलनीय-अमूल्य हृदय भी जल-भुनकर राख हो गया—पति, धर्म और मृत्यु को भूलकर, प्राण-पण से वह उस पार के घाट की ओर देखने लगी। आकाश की छाती को चीरती हुई, अन्धकार में एक बार बिजली कडकड़ाकर कौंध गयी। विराज की फैली हुई नजर सिकुडकर अपनी ओर चली आयी। सिर उठाकर एक बार उसने पानी की ओर देखा, गरदन घुमाकर एक बार घर की ओर देखा, इसके बाद बन्धन खोलकर पलक मारते ही वह अंधेरे जगल में गायब हो गयी। उसके कदमों की आवाज से खस-खस, सर-सर करके कितने ही जीव-जन्तु उसका रास्ता छोडकर हट गये, मगर उसने उधर ध्यान ही नही दिया—वह सुन्दरी के पास जा रही थी। पंचानन ठाकुरतल्ले में वह रहती थी। पूजा चढाने जाकर विराज कई बार उसका घर देख आयी थी। इस गांव की बहू होने पर भी, बचपन मे इस गांव का करीब-करीब सब रास्ता वह जान गयी थी। थोडी ही देर में सुन्दरी की बन्द खिडकी के पास वह पहुंच गयी।

इसके करीब दो घण्टे बाद ही, कंगाली मल्लाह ने अपनी नाव उस पार के लिए छोड दी। कितनी बार रात को पैसे के लालच में उसने सुन्दरी को उस पार पहुंचाया है, और आज भी ले जा रहा है। मगर आज एक के बदले दो औरतें चुपचाप बैठी हैं—अंधेरे में उसने विराज का मुंह नही देखा, देखता तो भी पहचान नही पाता! अपने घाट के पास आकर दूर से ही अंधेरे में किनारे पर, एक धुंधले दीर्घ शरीर को सीधा देखकर विराज ने आंखें बन्द कर ली।

सुन्दरी ने फिर धीरे से पूछा—"इस तरह किसने मारा?"

विराज ने अधीर होकर कहा—"उनके अलावा मुझ पर और कौन हाथ उठा सकता है सुन्दरी—जो तू बार-बार पूछ रही है!" अप्रतिभ होकर सुन्दरी चुप हो रही।

दो घण्टे बाद, सजे-सजाये बजरे का लगर ज्यो ही उठने लगा, विराज ने सुन्दरी की ओर देखकर पूछा—"तू साथ नही चलेगी?"

सुन्दरी ने कहा—"नही बहू, मैं यहां नही रही तो लोग शक करेंगे? डरो मत बहू, जाओ, फिर भेंट होगी!"

विराज ने और कुछ नही कहा। कंगाली की उसी डोंगी से सुन्दरी घर वापस आ गयी।

विराज को लेकर जमींदार का सुन्दर-सुडौल बजरा किनारा छोड गया और त्रिवेणी की ओर चल पडा। जोर की हवा में डांडों की आवाज दब गयी। एक ओर राजेन्द्र चुपचाप—सिर झुकाए शराब पीने लगा। प्रस्तरमूर्ति की तरह पानी की ओर देखती हुई विराज बैठी रही। राजेन्द्र ने आज बहुत शराब पी थी। नशे में वह उन्मत्त हुआ जा रहा था। बजरा सप्तग्राम की सीमा पार कर गया तब उठकर वह विराज के पास आ गया। विराज के सूखे बाल बिखरकर इधर-उधर लोट रहे थे। माथे का आचल खिसककर कन्धे पर आ गया था—उसे कुछ भी होश नहीं था। उसका ध्यान उधर गया ही नहीं कि, कौन आया और कौन पास बैठा।

मगर राजेन्द्र को यह क्या हो गया? वह मन-ही-मन डरने लगा—जैसे किसी भयंकर स्थान मे अकेले पड जाने से—आदमी को भूत-प्रेत का भय होने लगता है। वह देखता ही रह गया, बुलाकर बातचीत नही कर सका।

जबकि इस औरत के लिए उसने क्या नही किया! दो साल तक इसके लिए दीवाना रहा। सोते मे, जागते मे, केवल एक झलक देख लेने की लालसा में वह वन-वन मारा-मारा फिरता रहा। जिस बात की उसे स्वप्न मे भी आशा न थी, वही समाचार सुन्दरी ने उसे सोते से जगाकर उसके कान मे कहा तो अपने सौभाग्य पर पहले उसे विश्वास ही नही हुआ।

सामने नदी घूम गयी थी। उसके दोनों किनारो पर बहुत से बरगद और पाकड के बडे-बड़े पेड और बांस के झुरमुट थे। जगह-जगह बास की लाइने और पेडो की डाल पानी की सतह तक झुक गयी थी—जिससे अन्धकार और घना हो गया था। यहां पहुचकर, राजेन्द्र ने अपना साहस बटोरकर किसी तरह कह डाला—"तुम.. आप.. आप.. जरा अन्दर चल कर बैठे, यहा पेडो की डालिया वगैरह लगेंगी।"

विराज ने सिर घुमाकर देखा। सामने एक छोटा-सा चिराग जल रहा था। उसी की मद्धिम रोशनी मे दोनो की आखे मिली। उस समय वह दुश्चरित्र, परायी जमीन पर खडा होकर भी उस नजर को बर्दाश्त कर सका था—मगर आज अपने कब्जे मे होने और शराब के नशे मे चूर रहने पर भी, वह उस नजर के सामने सीधे नही देख सका। उसकी गरदन झुक गयी।

विराज देखती रह गयी। पर-पुरुष उसके इतने नजदीक बैठा है, फिर भी मुंह पर पर्दा नही है, सिर पर आचल तक नही! इसी समय मल्लाह डांड चलाना छोडकर, छोटी-छोटी डालियां हटाने में व्यस्त हो गये। नदी यहां पर कुछ तग थी, इसलिए भाटे का आकर्षण भी तेज था। 'अरे, सावधान!'— कहकर राजेन्द्र ने डाड चलाने वालों को सावधान किया और फिर उसी ओर देखते हुए विराज से कहा—"कही चोट लग जायेगी, अन्दर आ जाइए!' और खुद कमरे मे चला गया।

यन्त्र-चालित-सी विराज उसके पीछे-पीछे चली आई। मगर कमरे में कदम रखते ही सहसा वह चिल्ला पडी—"मइया री!"

राजेन्द्र चौंक गया। चिराग की धुंधली रोशनी में विराज की दोनों आंख और खून से सना माथे का सिंदूर—चामुण्डा के तीनों नेत्रों की तरह जल रहा था। मतवाला शराबी, बेंत खाये कुत्ते की तरह एक डरी हुई आवाज करके, कांपते-कापते उस आग के सामने से हट गया। अंधेरे मे पांव-तले सांप पड जाने से जैसे आदमी चौंक पडता है, ठीक उसी तरह विराज कापकर बाहर हो गयी। एक बार उसने पानी की ओर देखा और—"मइया री, यह मैंने क्या किया"—कहकर वह उसी अन्धकारपूर्ण अतल जल में उछल पडी।

मल्लाह चिल्लाकर इधर-उधर दौड़ पडे। बजरा उलटते-उलटते बचा। इसके अलावा और कुछ नही कर पाये। गौर से पानी की ओर देखने पर भी उन्हें कुछ नहीं नजर आया। राजेन्द्र अपनी जगह से जरा भी नही हिला। उसका सारा नशा उतर गया था, फिर भी वह खड़ा रहा। तेज धार के कारण कुछ देर में बजरा अपने आप ही निकल आया। मल्लाह ने नजदीक आकर पूछा—"बाबू साहब, क्या किया जाये? पुलिस में खबर कर दी जाये?" निश्चल होकर राजेन्द्र ने उनकी ओर देखते हुए भर्राई आवाज में कहा—"क्यो, जेल जाने के लिए? अरे गदाई, किसी तरह जल्दी भाग चल!" गदाई पुराना मल्लाह था, बाबू को पहचानता था। सभी जानते थे, इसलिए मामला कुछ-कुछ समझ गये थे। इस इशारे से उनकी आखे खुल गयीं। सबको इकट्ठा करके आज्ञा देकर, बजरा उडता हुआ वहाँ से अदृश्य हो गया।

कलकत्ते के पास पहुंचकर राजेन्द्र ने चैन की सास ली। पिछली रात के अंधेरे में, आमने-सामने बैठकर उसने जिन आखो को देखा था, उनकी याद कर, इतनी दूर जाकर, दिन मे भी वह काप गया। उसने अपना कान पकडकर मन-ही-मन कहा—"जीवन मे फिर ऐसा काम कभी नहीं करूंगा! कोई नहीं जानता कि किसके मन मे क्या है! उस पगली ने अपनी मौत-सी आखों से उसके प्राण नही लिए—इसीसे उसने अपना बडा भाग्य समझा और किसी भी समय—किसी भी वजह से उधर मुह कर सकूगा—इतना विश्वास उसमें नही रहा। अब तक मूर्ख कुलटायों से ही उसका पाला पड़ा था। वह नहीं जानता था कि

सती क्या चीज होती है? उस पापी को अपने जीवन मे पहले-पहल होश हुआ कि केंचुल मे खेला जा सकता है, मगर जमीदार के लडके के लिए भी जीवित विषधर खेलने की चीज नही है!

पन्द्रह

उस दिन अपराह्न मे सिरहाने बैठी हुई औरत से पूछने पर विराज ने जाना कि वह हुगली के अस्पताल में है। बहुत दिनो बाद जब उसे होश हुआ, तभी से वह अपनी बात याद करने की कोशिश कर रही थी। एक-एक करके बहुत-सी बाते उसे याद हो आयी हैं।

एक दिन बरसात की एक रात मे, उसके पति ने उसके सतीत्व पर कटाक्ष किया था। पीडा तथा अनाहार से जर्जर और टूटा हुआ उसका शरीर एव विकल मन, उस निराधार आरोप को बर्दाश्त नही कर सका। बहुत दिनो से दु ख सहते-सहते वह पागल-सी हो गयी थी। अभिमान और घृणा से उस दिन वह—"अब उनका मुह नही देखूगी।' कहकर सारा बन्धन तोडकर नदी मे डूब मरने के लिए गयी थी—किन्तु मरी नही!

उसके बाद बुखार और मानसिक विकार की झोंक मे वह बजरे पर भी चली थी और बीच में ही नदी में कूदकर—तैरकर किनारे आयी थी भीगे सिर और भीगे कपडे लिए—सारी रात वहीं बैठी-बैठी कापती रही फिर न जाने कैसे, एक गृहस्थ के दरवाजे पर आकर गिर पडी। बस, इतना ही याद आता है! यह याद नहीं है कि कौन यहा लाया और कब लाया और कितने दिनों से वह यहां पड़ी है, और याद आता है कि घर छोडकर भागने वाली वह एक कुलटा है—पर-पुरुष का आश्रय लेकर घर से निकली है।

इसके आगे वह और कुछ नही सोच पाती थी—सोचना चाहती भी नहीं थी। धीरे-धीरे वह अच्छी होने लगी, उठकर थोडा-थोडा टहलने भी लगी। मगर अपनी चिन्ता को भविष्य की ओर से उसने बिल्कुल अलग रखा था। उसके शरीर का रोम-रोम यह अनुभव करता है कि वह कैसी दुखद घटना थी। मगर जिस पर पर्दा पडा है, उसका कोना उठाकर देखने से भी मारे डर के उसका सारा शरीर ठण्डा पडने लगता, सिर मे चक्कर आने लगता। अगहन के महीने मे, एक दिन सवेरे उसी औरत ने आकर कहा—"अब तुम अच्छी हो गयी हो, अब तुम्हें जाना होगा!" 'अच्छा'—कहकर चुप हो रही। वह औरत उसी अस्पताल की थी। उसने समझा था कि बीमार गरीब का शायद कोई अपना नही है। उसने कहा—"बुरा मत मानना बेटी, मैं पूछती हूं कि जो लोग तुम्हें यहा दाखिल कर गये थे, वे फिर तो यहां आये नही। वे क्या तुम्हारे अपने नहीं थे!"

विराज ने कहा—"नही, उन्हे तो मैंने कभी देखा भी नही! बरसात की एक रात मे, मैं त्रिवेणी के पास एक नदी मे डूब गयी थी। मालूम होता है—दया करके वे लोग ही मुझे यहा दाखिल कर गये हैं।"

औरत ने कहा—"ओह, नदी मे डूबी थी? तुम्हारा घर कहा है?"

विराज ने मामा के घर का नाम लेकर कहा—"वहीं जाऊगी। वहा मेरे अपने आदमी हैं।"

वह औरत अधिक उम्र की थी; विराज के अच्छे स्वभाव के कारण उसे उस पर कुछ ममता हो गयी थी। उसने सहानुभूति दिखलाते हुए, दयापूर्वक कहा—"वहीं चली जाओ बच्ची, सावधानी से रहना, कुछ ही दिनो में अच्छी हो जाओगी!"

विराज ने कुछ हसकर कहा—"अब क्या अच्छी होऊगी, मां, यह आंख अच्छी नही होगी, यह हाथ ठीक नहीं होगा।"

बीमारी के बाद से उसकी बायीं आख से सूझता नही था और बाया हाथ भी बेकार हो गया था। उस औरत की आखें डबडबा आयी। कहा—"कुछ कहा नही जा सकता बच्ची, अच्छा हो भी सकता है!"

दूसरे दिन वह कुछ राह-खर्च और जाडे का एक पुराना कपडा दे गयी। विराज ने उसे ले लिया। प्रणाम करके वह बाहर जा रही थी कि सहसा लौट आयी। बोली—"मैं जरा अपना मुह देखना चाहती हूं, अगर एक शीशा. "

"हा-हा अभी लाती हूं, कहकर आईना लाने वह गयी और लाकर विराज के हाथ मे देकर कहीं चली गयी। विराज शीशा लेकर एक बार फिर अपने लोहे के पलग पर बैठ गयी और देखने लगी। शीशे मे

अपना मुह देखते ही उसे अपने आप से नफरत हो गयी। शीशा फेंककर बिस्तरे मे मुंह छिपाकर वह कराह उठी। उसका सिर घुटा हुआ है—आकाश मे छाए बादलो जैसे सुन्दर उसके बालों का क्या हुआ? उसके सारे मुख को इस तरह क्षत-विक्षत किसने कर दिया? कमल जैसी उसकी बडी-बडी आखें क्या हुई? अतुलनीय सोने-सा उसका रग कहा गया। भगवान! यह कितनी बडी सजा दी तुमने? अगर कभी उनसे भेंट हो गयी तो कैसे यह मुह दिखलाऊगी? जब तक शरीर में प्राण रहता है तब तक कुछ-न-कुछ आशा बनी ही रहती है—शायद इसी मे अन्त सलिला नदी की तरह मेरे अन्तस्तल मे थोडी-सी आशा बनी थी। हे दयामय! उसे सुखाकर नष्ट करने से तुम्हे क्या मिला?

होश आ जाने पर, रोगी-शय्या पर पड़े-पडे जब उसे पति का मुंह स्पष्ट दिखलाई देता तो सहसा उसे ख्याल होता था कि मैंने जो कुछ किया है, वह तो बेहोशी की हालत मे किया है। तो क्या मेरा अपराध वे क्षमा नही करेगे? सब पापो का प्रायश्चित्त है, केवल इसी एक का नही है? ईश्वर जानते हैं कि सचमुच मैंने कोई पाप नही किया है, तो इतने दिनो तक मैंने पति की जो सेवा की है, उससे वह धुलकर साफ नही हो जायेगा? बीच-बीच मे सोचती कि उनके मन मे क्रोध नही टिकता तो सहसा अगर मैं उनके पैरो पड जाऊ और सब कुछ साफ-साफ कह दू—तो मेरे मुह की ओर देखकर वे क्या करेगे? इसको देखकर क्या कहेगे? अपनी इस कल्पना को उसने न जाने कितने रंगों मे, कितने भावो मे प्रकट करती रही—रात-रात भर जागकर। जब नीद आने लगती तो उठ जाती और आंखे धोकर फिर यही बात वह नये सिरे से सोचने लगती। भगवान उसके इस रगीन चित्र को क्यो तुमने पैरो-तले कुचल दिया? अपने पति के चरणो पर औंधी होकर—शर्म के मारे वह सिर उठाकर उनकी ओर देख सकेगी?

उस कमरे मे एक औरत मरीज थी। विराज को इस तरह रोते देख,वह विस्मित होकर उसके पास आयी और पूछने लगी—"क्या हुआ जी! इस तरह रो क्यो रही हो?"

वह विराज के रोने का कारण जानना चाहती है।

विराज ने तुरन्त अपनी आखें पोछ ली और बिना किसी ओर देखे, वह धीरे से बाहर निकल गयी। उस दिन लोगों की भीड और शोरगुल से गूजती सडक पर एक नये सिरे से, बिना आदत के, थकी-सी एक अनिश्चित यात्रा के लिए जब उसने कदम बढ़ाया, तो उसकी छाती को चीरकर एक दीर्घ नि.श्वास बाहर निकल गयी। उसने मन-ही-मन कहा—"ईश्वर, शायद तुमने अच्छा ही किया! आख उठाकर अब तेरी ओर कोई नही देखेगा—यह चेहरा और ये आखे शायद इसी यात्रा के लायक हैं! गाव के लोग जानते हैं कि घर छोडकर भागने वाली वह एक कुलटा है। इसी से यह मुख उठाकर अपने गांव की ओर पति की ओर देखना, उसके लिए मना हो गया है। ईश्वर! इस मुख का ऐसा हो जाना ही शायद तुम्हारा मगलमय विधान है! विराज अपने रास्ते पर चल पडी।

सोलह

कितने ही दिन बीत गये। विराज पहले दासी का काम करने गयी, मगर उसकी टूटी देह से काम नही हो सका, सो मालिक ने हटा दिया। तब से वह रास्ते-रास्ते भीख मागती फिरती है, पेड के नीचे बना-खा लेती है और वही सो रहती है। उसके वर्तमान जीवन मे, उसके पिछले जीवन का तनिक भी चिन्ह नही रह गया है। उसके बदन पर तार-तार फटे कपडे, जटा बने हुए थोडे-से रूखे बाल और भीख मे मिली एक मैली मथरी है। इस समय वैसा ही उसका शरीर है, वैसा ही रग है और वैसा ही सब कुछ है। और उसकी उम्र महज पच्चीस साल की है। एक दिन इस देह की तुलना स्वर्ग मे भी नही मिलती थी। अतीत से अलग कर, भगवान ने जैसे उसे एकदम नये सिरे से बना दिया था। खुद भी वह सब कुछ भूल गयी है, मगर दो बातें अब भी वह नही भूल सकी है। एक तो यह कि 'दो' कहकर कुछ मागते समय आज भी उसका मुह लाल हो जाता है और दूसरी बात यह नही भूलती कि उसे अपने घर से बहुत दूर जाकर मरना पडेगा। वह यह नही जानती कि किस स्थान पर मरेगी, मगर इतना जरूर जानती है कि उस दूर जगह मे पहुचने के लिए ही वह लगातार रास्ता तय कर रही है। किसी तरह भी अपनी यह हालत वह पति को नही दिखला

सकेगी। उसने चाहे जो भी गलती की हो, मगर उसकी यह हालत देखकर पति की छाती फट जायेगी। यही बात न भूल सकने के कारण तो वह निरन्तर दूर हटती चली जा रही थी।

सालभर से बराबर वह चलती जा रही है, मगर उसकी मंजिल कहा है? कहा किस भू-सेज पर, इस लज्जाहत तप्त माथे को उठाकर, इस लांछित जीवन को वह विसर्जित कर सकेगी? आज दो दिनो से वह पेड के नीचे पडी है—उठ नही पा रही है। धीरे-धीरे फिर रोग ने घेर लिया—खासी, बुखार और छाती मे दर्द। कमजोर शरीर के लिए, कडी बीमारी मे फसकर अस्पताल गयी थी। अच्छी होते-न-होते, खाये-बिना-खाये अपने रास्ते चल पडी। उसकी देह बहुत सबल थी, इसी से अब तक वह टिकी हुई थी—मगर लगता है कि अब वह नही टिकेगी। आज आंखें बन्द किये वह सोच रही थी कि क्या इस पेड की छाया ही उसकी आखिरी मंजिल है? क्या इसी के लिए वह अविराम गति से चलती आ रही है? अब क्या वह नही चल सकेगी? दिन का अवसान हो गया। पेड की सबसे ऊंची चोटी पर से सूरज की आखिरी लाल आभा भी मिट गयी। गाव के अन्दर से उडती हुई साध्यकालीन शख-ध्वनि उसके कानों में पडी। उसी के साथ उसकी मुंदी आखो के सामने, अपरिचित गृहस्थ-वधुओ की शान्त-मगल मूर्तिया नाच उठी। इस समय कौन क्या कर रही है, किस तरह प्रदीप जला रही है, हाथ में प्रदीप लिये कहां-कहा दिखाती फिर रही है, गले मे आचल डालकर अब प्रणाम कर रही है, तुलसी के चबूतरे पर चिराग रखकर कौन भगवान से कौन सी कामना का निवेदन कर रही है, यह सब कुछ वह मानो आखों से देखने और कानो से सुनने लगी। बहुत दिनों बाद उसकी आखो मे आसू आ गये। उसे ऐसा लगा, जैसे कितने ही हजार वर्षों से, वह किसी घर में साध्यदीप नहीं जला सकी हो—किसी का मुख याद करके, भगवान के चरणों मे उनकी आयु और ऐश्वर्य के लिए प्रार्थना नही कर सकी हो। इन सब बातों को जी-जान से कोशिश करके वह भूली रहती थी, परन्तु आज नही भूल सकी। शख-ध्वनि सुनकर, उसका भूखा-प्यासा मन कोई निषेध न मानकर, गृहस्थ वधुओं के बीच मे जाकर खडा हो गया। एक साथ ही मन मे घर-द्वार, आंचल, तुलसी का चबूतरा और दीपक उभर आया—जैसे यह सब उसका जाना-पहचाना हो। उन सभी के हाथ का चिन्ह दिखलाई पड रहा है। फिर उसका दु ख, भूख-प्यास, पीडा की यातना—कुछ भी न रहा। एकाग्रचित्त होकर मन-ही-मन वह उन बहुओं के पीछे-पीछे घूमने लगी। उनके साथ वह चौके मे रसोई बनाने गयी। रसोई बनाकर उन लोगों ने जब अपने पतियो को भोजन परसा—इसके बाद सारा काम-धन्धा खत्म करके, रात को जब वे अपने सोए हुई पतियों के सेज के पास आकर खडी हो गयी—तो वह भी खडी होने के लिए सोचते ही कांप गयी। यह तो उसी के पति हैं। फिर उसकी पलके नही मुदी, सोये हुए पति की ओर एकटक निहारती हुई—उसने अपनी सारी रात आखो में काट दी। जब से उसने घर छोडा, ऐसी एक भी रात उसके नसीब मे नहीं थी। उसके भाग्य में आज यह कैसे सुख है! निद्रा के जागरण में, तन्द्रा के स्वप्न मे यह कैसी मधुर निशा-यापन है! विराज बेचैन होकर उठ बैठी। उस समय भी पूरब का आकाश साफ नही हुआ था। चादनी उस समय भी शाखाओ और पत्तियो के बीच से होकर, पेड के नीचे और उसके चारो ओर, पारिजात फूलो की तरह झड रही थी। वह सोच रही थी कि अगर यह दृश्य काल्पनिक और असत्य ही है, तो इस तरह क्यो वे आज दिखाई पडे। क्या वे यही कह गये हैं कि उसके पाप का प्रायश्चित्त पूरा हो गया? तब तो एक घडी भी वह देर नही कर सकेगी! बेचैन होकर वह सुबह का इन्तजार करने लगी। आज रात सहसा उसकी बन्द दृष्टि को कोई जोर से खोलकर, सारे हृदय मे आनन्द और माधुर्य भर गया। अब पति से भेंट हो या न हो, परन्तु एक मिनट के लिए भी अब उसे कोई उनसे अलग न कर सकेगा। इस तरह उन्हे पाने की राह थी, फिर भी बेकार ही उनसे अलग होकर वह इतने दिनो से दुःख पाती रही। इस गलती के कारण गहरी वेदना, बार-बार काटे की तरह चुभने लगी। न मालूम कैसे, आज उसे विश्वास हो गया कि पति उसे बुला रहे हैं।

विराज ने दृढ़ स्वर से कहा—'ठीक ही तो है, यह शरीर क्या मेरा अपना है कि उनकी आज्ञा के बिना इस तरह इसे नष्ट कर रही हूँ! यह विचार करने का अधिकार तो उन्हे है! जो कुछ करना होगा, वे ही करेंगे। सभी बाते उनके चरणों मे निवेदन करके ही मुझे छुट्टी मिलेगी!' विराज लौट पडी।

आज उसका बदन हल्का था, उसके कदम जैसे कडी मिट्टी पर नहीं पड़ रहे थे। मन उसका परिपूर्ण

था, उसमे जरा-सी भी ग्लानि नही थी। चलते-चलते वह बार-बार यही बात सोचने लगी कि यह कितनी बडी भूल थी! उसके सिर पर कैसा अहकार लद गया था। यह कुरूप और कुत्सित मुख और किसी के सामने करने में लज्जा नही मालूम हुई और उनसे लज्जा मालूम हुई—जिनके सामने इसे करने का अधिकार विधाता ने नौ साल की उम्र मे ही उसे दिया था।

सत्रह

पूटी अपने दादा को घड़ीभर भी आराम-विश्राम नही लेने देती। पूजा के दिनो से लेकर पूस के अंत तक, एक शहर से दूसरे शहर और एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ की ओर खीचे जा रही है। वह अभी कम उम्र की है, उसका शरीर स्वस्थ और सबल है—कौतूहल असीम है। बराबर उसके साथ कदम बढाये जाना, नीलाबर के बूते के बाहर है, फिर भी वह समझ नही पाती कि क्यो नही कही रुककर विश्राम कर लेने को उसका जी चाहता। क्यो उसका मन दिन-रात घर की ओर उन्मुख रहता है? क्यो उसका थका मन अपने देश—अपने गाव लौट जाने के लिए दिन-रात रोया करता है? देश मे या गाव मे क्या है? ऐसे स्वास्थ्यकर स्थान मे मन क्यो नही लगता? बीच-बीच मे छोटी बहू पूटी को चिट्ठी लिखती है, मगर उसमे कोई ऐसी बात नही रहती। फिर भी वन-जगल की लगातार यात्रा और चिन्ता से, उसकी जीर्ण देह ककालसार होने लगी। पूटी चाहती है कि सब कुछ भूलकर दादा फिर पहले जैसे हो जाये—उसी तरह स्वस्थ और सदा प्रसन्न रहे, उसी तरह हर घडी गाते-गुनगुनाते रहे, उसी तरह कारण-अकारण खुलकर हसते रहे। मगर उसकी सारी कोशिश दादा बेकार किये जा रहे हैं। पूटी ने पहले ऐसा सोचा नही था। वह हताश नही हुई थी। समझती थी कि दो दिन बाद सब ठीक हो जायेगा—मगर दो-दो दिन करते-करते चार-पाच महीने बीत गये, फिर भी कोई फायदा नही हुआ। घर छोडकर आने के दिन, मोहिनी की बातो और व्यवहार से, उसके मन में विराज के प्रति करुणा का भाव पैदा हो गया था—उसकी बातो पर उसने विश्वास किया। अगर उसका दादा ठीक हो जाता तो बचपन की बाते याद करके, मन-ही-मन सम्पूर्ण रूप से शायद विराज को क्षमा भी कर देती—क्षमा करने के लिए, उस भाभी की मधुर-स्मृति जगाने के लिए एक बार वह व्याकुल भी हो उठी थी—मगर वह सुयोग उसे मिल कहां रहा है? दादा ठीक ही नही होते! ससार मे ऐसे किसी दुःख या कारण की वह कल्पना ही नही कर सकती थी— जिससे कोई इस आदमी को इतने दुःख में डालकर, चुपचाप हटकर खड़ा हो सकता है! भाभी अच्छी थी या बुरी—यह बात पूंटी अब नही सोचती। मगर उसके दादा को छोडकर जाने वाली औरत के प्रति पूंटी के विद्वेष की जैसे कोई सीमा नही रही। उसी तरह उसी अभागिनी अपराधिनी औरत को याद करके, उसके वियोग में जो आदमी अपने को तिल-तिल नष्ट करता जा रहा है—उसके ऊपर भी उसका मन प्रसन्न नही हुआ।

मुह फुलाए एक दिन सवेरे वह आयी और कहा—"दादा, चलो घर चले!" नीलांबर ने कुछ विस्मित होकर बहिन की ओर देखा, क्योकि माघ का महीना प्रयाग मे बिताने की बात तय हुई थी। दादा के मन का भाव समझकर पूटी ने कहा—"अब एक दिन भी रहना नही चाहती, कल ही जाऊंगी।"

उसका रुष्ट भाव देखकर, नीलाबर ने विषादपूर्ण हसी हसकर कहा—"क्या बात है पूंटी?"

पूटी अब अपने को संभाल न सकी, रो पडी। थर्राई आवाज मे बोली—"तुम्हें यहा अच्छा नहीं लगता तो रहकर क्या होगा? दिनोंदिन सूखते जा रहे हो। न, एक दिन भी मैं यहां नही रह सकूगी!"

नीलांबर ने स्नेह से हाथ पकड़कर, खीचकर पास बैठाकर कहा—"लौट चलने से ही क्या मैं अच्छा हो जाऊंगा? इस देह के ठीक होने की उम्मीद अब मुझे नही है, पूंटी! अच्छा चल बहिन, जो होगा, घर पर ही होगा!"

दादा की बात सुनकर पूटी और रो पडी। कहा—"हमेशा ही तुम क्यो उसकी चिन्ता किया करते हो? सोच-सोचकर ही तो तुम ऐसे हुए जा रहे हो।"

"यह किसने कहा कि मैं हमेशा ही उसे याद करता हूं?"

पूंटी ने जवाब दिया—"कहेगा कौन? मैं खुद ही जानती हूं!"

"तू उसे याद नही करती!"

पूंटी ने आंसू पोंछकर उद्धत भाव से कहा—"नहीं करती! उसे याद करने से पाप लगता है!"

नीलाम्बर चौंक पड़ा—"क्या होता है?"

"पाप लगता है! उसका नाम लेने से मुह अपवित्र होता है, स्नान करना पडता है।" इतना कहते-कहते उसने विस्मय से देखा कि दादा की स्नेह-कोमल दृष्टि पलभर में बदल गयी।

नीलांबर ने बहिन के मुह की तरफ देखकर कडे स्वर मे कहा—"पूंटी!"

सुनकर वह डर गयी और कुंठित हो गयी, दादा की वह बड़ी लाडली बहिन है। बचपन से आज तक, हजार गलती करने पर भी उसने दादा की कभी ऐसी आखें नही देखीं, ऐसी आवाज नही सुनी। इतनी बडी उमर मे झिडकी खाकर, क्षोभ और अभिमान से उसका सिर झुक गया।

नीलाबर और कुछ न कहकर वहां से उठ गया। पूटी फफक-फफककर रोने लगी। दोपहर को दादा का खाना परसकर सामने नही गयी। तीसरे पहर खाने की सामग्री दासी के हाथ भेजकर, खुद आड में खडी रही। नीलाबर ने न तो बुलाया और न बात ही की।

शाम हो चुकी है। पूजा-पाठ समाप्त कर नीलांबर उसी आसन पर चुपचाप बैठा है। पूटी चुपके से पीछे आयी और घुटने टेककर, दादा की पीठ पर मुख रख दिया। दादा से नालिश करने का उसका यही तरीका है। बचपन मे अपराध करके, भाभी से डांट खाकर वह इसी तरह आकर फरियाद करती थी। नीलाबर को सहसा यह सब याद आ गया और उसकी पलके भी भीग गयी। पूटी के सिर पर हाथ रखकर उसने मधुर स्वर मे कहा—"क्या है रे?"

पूटी ने पीठ छोड दी और बच्चो की तरह दादा की गोद मे गिरकर, मुह छिपाकर रोने लगी। उसके माथे पर एक हाथ रखकर नीलाबर चुपचाप बैठा रहा। बडी देर बाद पूंटी ने भर्राई आवाज में कहा—"अब कभी नही कहूगी, दादा!"

नीलाबर ने हाथ से उसके बालों को इधर-उधर करते हुए कहा—"हां, ऐसे अब कभी मत कहना!"

पूटी चुप होकर उसी तरह पडी रही। उसके मन की बात समझकर नीलाबर ने मधुर स्वर में कहा—"वह तेरी बडी है, गुरुजन है!—केवल नाते में ही नही पूंटी, उसने तुम्हे मां की तरह पाला-पोसा है। वह तुम्हारी मा के समान है। और कोई कुछ भी कहे, मगर तेरे मुह से यह बात निकलना घोर अपराध है!" पूटी ने आखे पोछते-पोछते कहा—"इस तरह वह हमे छोडकर क्यो चली गयी?"

"वह क्यो चली गयी, यह केवल मैं जानता हूँ पूटी—और जानते हैं भगवान! वह खुद भी नही जानती थी, उस समय वह पागल हो गयी थी। उसे जरा भी होश होता, तो वह आत्महत्या ही करती—यह काम नही करती!"

पूटी ने एक बार आखे पोंछकर, उखडती हुई आवाज मे कहा—"तो अब वह आती क्यो नही दादा?"

"आती क्यो नही? आने का उपाय नही है बहिन, इसीसे नही आती।"—यह कहकर अपने आपको सभालकर उसने क्षणभर बाद ही कहा—"अगर उसके आने का उपाय होता तो जिस हालत मे मुझे छोड कर गयी है, उस हालत मे वह कभी रह नही सकती थी—अवश्य ही लौट आती! यह बात क्या तू खुद नही समझती पूटी?"

मुह छिपाए ही पूटी ने गर्दन हिलाकर कहा—"समझती हूँ दादा!"

नीलाबर ने भावावेश मे कहा—"यही कहो बहिन, वह आना चाहती है, मगर आ नही पाती। तुम सब यह नही देख पाते कि यह कैसी सजा है, मगर आखे बन्द करते ही मैं देखने लगता हूँ, देखते-देखते मेरा क्षय हो रहा है और कुछ नही।"

पूटी फिर रो पडी।

नीलाबर ने हाथ से अपनी आखे पोछते हुए कहा—"अपनी साध की, कामना की केवल दो बातें वह मुझसे कहा करती थी। एक यह कि आखिरी समय उसका सिर मेरी गोद मे हो, और दूसरी यह कि सीता-सावित्री की तरह मरने पर वह उन्ही के पास जाये। अभागिनी की सभी साधे खराब हो गयीं।"

पूटी चुपचाप सुनने लगी।

रुधे गले को साफ करके नीलाबर कहने लगा—"सभी उसे दोषी कहते हैं। मैं मना नही कर पाता, इसीसे चुप रहता हूँ। मगर बता—भगवान को कैसे धोखा दू? वह तो जानते हैं कि किसके दुःख और अपराध का भार माथे पर लेकर वह डूब गयी? तू ही बतला—किस मुह से मैं उसे दोष दू? उसे आशीर्वाद दिये बिना मैं कैसे रहू? संसार की नजरो मे चाहे वह कितनी भी कलंकिनी क्यों न हो—मगर मुझे उसके

खिलाफ कोई शिकायत नही। अपनी गलती से, इस जन्म मे उसे पाकर भी मैने खो दिया, ईश्वर करे अगले जन्म में मुझे वह मिल जाये!" इसके आगे वह कुछ न कह सका, उसका गला रुध गया।

पूटी जल्दी से उठकर, आंचल से दादा के आसू पोछने लगी और खुद भी रो पडी। सहसा उसे लगा—जैसे दादा कही दूर हटते जा रहे हैं। रोकर कहा—"जहां जी चाहे, चलो दादा, मगर एक दिन के लिए भी मैं तुम्हे अकेला नही छोड सकती, नही छोडूगी!"

नीलाबर सिर उठाकर जरा हसा।

विराज जगन्नाथपुरी के रास्ते लौट रही थी। इसी रास्ते से वह अनिर्दिष्ट मृत्युशय्या की खोज मे गयी थी। मगर उस जाने और इस आने में कितना अन्तर है! अब वह अपने घर लौट रही है। उसके कमजोर शरीर के थक जाने पर विश्राम की आवश्यकता पडती है—तो उसे अपने आप पर क्रोध आता है। किसी तरह—कही भी रुकना वह नही चाहती। उसकी खासी क्षय-रोग मे बदल गयी है, इसकी जानकारी उसे हो गयी है। इसीका उसे डर था कि कही ऐसा न हो कि वह वहा तक पहुच ही न पावे। बचपन से यह बात उसके मन में घर कर गयी थी कि अगर शरीर निष्पाप न हो, तो कोई अपने पति के चरणो मे प्राण-त्याग नही कर पाती। इसी तरह मरने के पहले वह एक बार अपनी परीक्षा लेना चाहती है कि उसका प्रायश्चित्त पूरा हुआ या नही। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर जीवन के उस पार खडी होकर—वह बडी खुशी से उनकी प्रतीक्षा करेगी। मगर दामोदर नदी के इस पार पहुचते-पहुचते वह बिल्कुल थक गयी, उसके मुह से खून आने लगा। पैरों को आगे बढ़ाने की ताकत उसमे नही रह गयी। हताश होकर, एक पेड के नीचे बैठकर वह रोने लगी। यह कितना भयानक अपराध है—जो इतनी कोशिश करने पर भी उसकी अन्तिम साध पूरी नही हुई—उसका यह जन्म तो गया और दूसरे जन्म की भी कोई आशा न रही! फिर भी उस पेड के नीचे पडी-पडी, हर घडी वह पति के चरणों की वन्दना करती रही।

दूसरे दिन तारकेश्वर के आस-पास कहीं बाजार लगने का दिन था। सुबह से ही उस सडक पर बैलगाडिया चलने लगी। हिम्मत करके उसने एक बूढे गाडीवान से प्रार्थना की। उसका रोना देखकर बूढ़ा राजी हो गया और उसे तारकेश्वर पहुचा गया। विराज ने सोचा—मन्दिर के पास कही पडी रहेगी। वहा कितने ही आदमी आते-जाते रहते हैं, शायद किसी से छोटी बहू तक खबर भेज सके!

अट्ठारह

कितने ही स्त्री-पुरुष—पीडित होकर—कितनी ही कामनाए लिए इस देव-मन्दिर के इधर-उधर पडे हैं। उन्ही के बीच आकर विराज ने बहुत दिनो बाद कुछ शान्ति का अनुभव किया। वह भी पीडित है, उसने भी कामना की है। वह भी वहा चुपचाप पडी रह सकेगी, कोई उसकी ओर उत्सुकता से देखेगा नही—यही सोचकर उसे कुछ चैन मिला। मगर उसका मर्ज बढता ही गया। माघ की उस कडाके की सर्दी मे—बिना कुछ खाये-पीये छ दिन गुजर गये। उम्मीद नही रह गयी कि और दिन गुजर सकेगे या कोई आवेगा ही। बस, मौत का ही सहारा रह गया। उसी के लिए एक बार फिर वह अपने-आपको तैयार करने लगी।

उस दिन आकाश मे बादल छाये थे। तीसरा पहर होते-होते अधेरा सा हो गया। सुबह मुह से बहुत-सा खून निकल जाने के कारण उसका शरीर एकदम शिथिल हो गया था, उसने मन-ही-मन सोचा—लगता है, आज ही सब कुछ खत्म हो जायेगा! तभी से मन्दिर के पीछे मुंह छिपाये वह पडी थी। दोपहर को देवता की पूजा हो चुकने पर, रोज की तरह उसने उठकर प्रणाम नही किया—मन-ही-मन प्रणाम कर लिया। इतने दिनो से वह पति के चरणो मे विनती करती आ रही है। वह अबोध नही है। उसने जो अपराध कर डाला है, उससे उसका इस जन्म का अधिकार तो चला गया, मगर उस जन्म मे फिर ऐसा न हो—यही वह चाहती है। उसने यही भिक्षा मागी है कि अनजान मे गलती कर देने की सजा उसे अगले जन्म तक न भुगतनी पड़े। मगर दिन ढलते-ढलते आज उसकी विचारधारा सहसा बदल गयी। अब भिक्षा का भाव नहीं रहा, बल्कि विद्रोह का भाव दिखलाई पडा। उसके सम्पूर्ण मन मे एक अपूर्व अभिमान का स्वर गूंज उठा। उसी मे मग्न होकर वह मन-ही-मन कहने लगी—"तो फिर तुमने क्यो कहा था?"

उसे मालूम नही हुआ कि कब उसका बाया अशक्त हाथ गिरकर परिक्रमा की राह मे पड गया था। सहसा उसी हाथ पर कोई कठिन पीडा महसूस कर वह दयनीय स्वर मे कराह उठी—"आह!" जिस आदमी का अनजाने मे उस पर पैर पड गया था, वह घूमकर खडा हो गया और कह उठा—"हाय-हाय, कौन इस तरह रास्ते मे पडा हुआ है? मुझसे बडा अन्याय हो गया! अधिक चोट तो नही लगी?"

विराज ने तुरन्त मुह से कपडा हटाकर देखा और एक अस्फुट शब्द करके रह गयी। यह आदमी और कोई नही, नीलांबर ही था। एक बार झुककर देखने के बाद वह हट गया!

थोडी देर मे सूरज डूब गया। पश्चिमी आकाश मे बादल नही थे। दिगन्त-मण्डल से निकली हुई सूर्य की सुनहली आभा—मन्दिर के कलश और पेड की चोटी पर फैल गयी थी। नीलाबर ने दूर खडे होकर पूटी से कहा—"बहिन वह बीमार औरत मुझसे कुचल गयी। देख तो अगर उसे कुछ दे सके। मालूम होता है, कोई भिखारिन है!"

पूटी धीरे-से उसके पास जाकर खडी हो गयी। उसके मुख का कुछ हिस्सा, कपडे से ढका था, तो भी उसे लगा—जैसे यह चेहरा उसने कभी देखा है। पूछा—"क्यो जी, तुम्हारा घर कहा है!"

"सातगाव मे।"—कहकर वह हस पडी।

विराज की सबसे सुन्दर चीज थी—उसके मुह की हसी। एक बार देख लेने पर कोई भी इस हसी को नही भूल सकता था।

"अरे, यह तो भाभी हैं।"—कहकर पूटी उस जीर्ण-शीर्ण देह पर औंधी पडकर उसके मुह-पर-मुह रखकर रो पडी।

दूर खडा-खडा नीलाबर देख रहा था। वह भी समझ गया। एक बार सिर से पाव तक विराज़ को देखकर बोला—"यहा मत रो पूटी, उठ!" यह कहकर बहिन को हटाकर, जीर्ण-शीर्ण उस स्त्री को छोटे बच्चे की तरह छाती से लगाकर वह अपने डेरे की ओर चल पड़ा।

दवादारू के लिए, किसी स्वास्थ्यकर स्थान मे जाने के लिए विराज से बहुत कुछ कहा गया, परन्तु किसी तरह भी वह राजी नही हुई।

नीलाबर ने पूटी को आड मे बुलाकर कहा—"उसे कितने दिन जीना है बहिन, जैसे भी वह चाहे, उसे रहने दे। परेशान मत कर!"

तारकेश्वर मे पति की गोद मे सिर रखकर उसने यही निवेदन किया था कि उसे घर ले चलो और अपनी चारपाई पर सुला दो। घर के लिए, घर की हर चीज के लिए और पति के लिए उसकी उत्कट पिपासा देखकर लोग रो पडते। विराज दिन-रात बुखार मे बेहोश रहती है, मगर थोडा-सा होश आते ही, घर की हर एक चीज को गौर से देखा करती है।

नीलांबर उसकी चारपाई छोडकर कही नहीं जाता और आंखो मे आंसू भरकर ईश्वर से यही प्रार्थना किया करता कि तुमने बहुत सजा दी, अब क्षमा करो! जो परलोक की तैयारी कर चुका है, उस पर इस लोक से माया-मोह का बंधन काट दो।

गृहत्यागिनी का गृह के ऊपर यह उत्कट आकर्षण देखकर, नीलाबर मन-ही-मन बेचैन हो उठता है। दो हफ्ते गुजर गये। कल से घोर विकार के लक्षण नजर आ रहे हैं। आज दिन-भर प्रलाप करके दो घटे पहले वह सो गयी थी। शाम के बाद उसकी आंखे खुली। पूटी रोते-रोते उसके पैरों के पास सो गयी थी। छोटी बहू सिरहाने बैठी थी। उसे देखकर विराज ने कहा—"छोटी बहू हो?"

छोटी बहू ने उसके मुह पर झुककर कहा—"हा दीदी, मैं हू।"

"पूटी कहा है?"

छोटी बहू ने हाथ दिखाकर कहा—"तुम्हारे पैरो के पास सो रही है।"

"वे कहां हैं?"

छोटी बहू ने कहा—"उस ओर सध्या-पूजा कर रहे है।"

'तो मैं भी करू'—कहकर आंखे बन्द कर मन-ही-मन वह भी जप करने लगी। बडी देर बाद दाहिना हाथ माथे से छुआकर उसने प्रणाम किया। इसके बाद क्षणभर छोटी बहू की ओर चुपचाप देखती रहने के बाद उसने धीरे-धीरे कहा—"मालूम होता है, आज ही मुझे जाना है, बहिन! मगर मेरी कामना है कि

दूसरे जन्म मे फिर तुम्हे पाऊं।"

कल ही से लोगों को महसूस हो गया था कि विराज का अन्तिम समय आ गया है। उसकी बात सुनकर, छोटी बहू चुपचाप रोने लगी।

विराज अब खूब होश में है। गले को कुछ और धीमा करके उसने चुपके से कहा—"छोटी बहू, सुन्दरी को एक बार बुलवा सकती हो?"

छोटी बहू ने रुंधी सास मे कहा—"अब उसे क्यो बुला रही हो, दीदी? वह नही आएगी!"

विराज ने कहा—"आयेगी रे, एक बार बुलावा भेजो, आयेगी! मैं उसे क्षमा करके आशीर्वाद देती जाऊ। अब मुझे किसी पर क्रोध नही है, क्षोभ नहीं है! भगवान ने मुझे क्षमा कर मेरे पति को लौटा दिया है, तब मैं भी सबको क्षमा कर जाना चाहती हूँ।"

छोटी बहू ने रोते-रोते कहा—"भगवान् की यह क्षमा कैसी है, दीदी? बिना अपराध के तुम्हे इतनी सजा देकर भी उनकी इच्छा पूरी नही हुई, अब वे तुम्हे उठा ले जाना चाहते हैं। एक हाथ लेकर भी तुम्हे अगर हम लोगों के लिए छोड देते .. ।"

विराज हस पडी। कहा—"मुझे लेकर तुम क्या करोगी बहिन? गाव-नगर मे मेरी बदनामी हो गयी है—मेरे जिन्दा रहने से क्या लाभ है बहिन?"

छोटी बहू ने जोर देते हुए कहा—"लाभ है दीदी! फिर तुम्हारी बदनामी तो झूठ-मूठ की हुई है—उससे हम नही डरते।"

विराज ने कहा—"तुम लोग नही डरते, किन्तु मैं तो डरती हूँ! बदनामी बिलकुल सच है! मेरा अपराध चाहे कितना ही कम क्यो न हो—छोटी बहू, मगर इसके बाद हिन्दू घर की स्त्री का जिन्दा रहना ठीक नही। तुम कहती हो, भगवान् की दया नही है, परन्तु . ।"

उसकी बात पूरी होने से पहले ही पूटी रोती हुई चिल्ला पडी—"ओह भगवान की बडी दया है!" अब तक वह रोती हुई सुन रही थी। उससे बर्दाश्त नही हो सका तो इस तरह चिल्ला पडी। फिर रोते-रोते कहा—"उसे जरा भी दया नही है, विचार नही है! असल पापी को कुछ नही हुआ और वे हमे इस तरह सजा दे रहे हैं।"

उसका रोना देखकर विराज चुपचाप हस पडी। कैसी मधुर थी वह हसी, कैसी हृदय-विदारक! इसके बाद उसने बनावटी गुस्से की आवाज में कहा—"चिल्ला मत मुँहजली, चुप रह!"

पूटी झट उसके गले से लिपट गयी और जोर से रो पडी—"तुम मरो मत भाभी, हम बर्दाश्त नही कर सकेंगे। तुम दवा खाओ और कही चलो—तुम्हारे पैरों पडती हूँ भाभी, तुम कुछ दिन और जीओ।"

पूटी के रोने की आवाज सुन पूजा छोड नीलाबर दौडा और सुनने लगा। पूटी छटपटाकर लगातार उससे जिन्दा रहने की विनती करने लगी।

इस बार विराज की आखो से आसू की बडी-बडी बूदे बह चली। छोटी बहू ने सभालकर उसके आसू पोछ दिये और पूटी को खीचकर अलग कर दिया। पूटी छोटी बहू की छाती मे सिर छिपाकर सबको रुलाती हुई फफककर रोने लगी। बडी देर बाद, उखडे हुए गले से विराज बार-बार कहने लगी—"रो मत पूटी, सुन।"

नीलांबर आड में खडा होकर सुनने लगा कि विराज का सम्पूर्ण चैतन्य लौट आया है।

विराज कहने लगी—"बिना समझे-बूझे उन्हे दोष मत दे पूंटी! उनका कैसा सूक्ष्म विचार है फिर भी वे कितने दयावान हैं। इस बात को आज मैं ही जानती हूँ, मेरे न रहने पर ही तुम लोग यह समझोगे कि मेरा मरना ही, मेरा जीना! और तू कहती है कि एक हाथ और एक आंख उन्होने ले ली है तो दो दिन बाद ही मेरे इस शरीर का अन्त होगा। मगर यह तुम कैसे भूल जाती हो पूंटी, कि इतनी ही सजा देकर उन्होने मुझे तुम लोगों की गोद में लौटा दिया है, पूंटी?"

"खाक लौटा दिया है।" कहकर पूंटी रोने लगी।

भगवान की दया के सूक्ष्म विचार पर उसे तनिक भी विश्वास नही हुआ, बल्कि यह सब उसे घोर अत्याचार और अविचार ही जान पड़ा। कुछ देर बाद विराज ने कहा—"उन्हे बडी देर से नही देखा पूटी, जरा एक बार अपने दादा को बुला तो दे!"

नीलाबर आड मे ही खडा था। उसके पास आते ही छोटी बहू चारपाई छोडकर उठ खडी हुई, नीलाबर सिरहाने बैठ गया और उसका दाहिना हाथ सावधानी से अपने हाथ में लेकर नाडी देखने लगा। हा, सचमुच ही विराज मे अब कुछ रह नही गया था। नीलाबर ने पहले ही यह अनुमान कर लिया था कि बुखार के वेग मे ही वह इतनी बाते करती जा रही है और उसके बाद ही सभव है कि वह समाप्त हो जाय। इस समय भी नाडी देखकर उसने यही समझा।

विराज ने कहा—"खूब हाथ देखो।" कहकर हस पडी।

सहसा सच बताओ अब कितनी देर है!"

यह कहकर, कोशिश करके उसने अपना सिर पति की गोद में रख दिया। फिर कहा—"सबके सामने एक बार और कह दो कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया!"

नीलांबर ने रुधे स्वर मे कहा—"किया" कहकर अपनी आखे पोंछ ली।

आखे मूदे विराज क्षणभर पडी रही। फिर धीरे-धीरे कहने लगी—'इतने दिनो तक तुम्हारी गृहस्थी सभालने मे जाने-अनजाने मैंने कितनी ही गलतिया की हैं—छोटी बहू, तुम भी सुनो पूटी, तुम भी सुनो—तुम सभी सब कुछ भूलकर आज मुझे क्षमा करो। मैं जाती हूँ'—कहकर हाथ बढाकर वह पति का चरण खोजने लगी। सिरहाने का तकिया हटाकर नीलाबर ने पैर ऊपर उठा दिया। बार-बार उसकी पदधूलि माथे से लगाकर विराज ने कहा—'इतने दिन बाद मेरा सब दु ख सार्थक हुआ। अब कुछ चिन्ता नही है। मेरी देह शुद्ध है निष्पाप है! चलती हूँ, जाकर राह देखती रहूगी।'

कहकर करवट बदलकर उसने पति की गोद मे अपना मुह छिपा लिया और कहा—'इसी तरह मुझे लिए रहो, कही जाना मत।' इतना कहकर वह चुप हो रही। वह बिल्कुल थक गयी थी।

सभी उदास मुह लिये बैठे रहे। रात के बारह बजे के बाद वह फिर प्रलाप करने लगी। नदी में कूद जाने की बात—अस्पताल की बात—निरुद्देश्य यात्रा की बात—यही सब बकती रही। मगर उन सब बातो से अति उत्कट-एकाग्र पति-प्रेम था। केवल यही वह बकती रही कि घडी-भर मे भ्रम ने किस तरह उस सती-साध्वी को जलाया—पीडा पहुचाई।

इधर कई दिनो से नीलाबर को, विराज के सामने ही बैठकर भोजन करना पडता था। बीच-बीच में उस दिन छोटी बहू और पूंटी को पुकार कर यह बकने लगी। सबेरे के समय उसकी पुकार बन्द हो गयी और उल्टी सास चलने लगी। फिर उसने किसी की ओर नही देखा, किसी से कुछ नही कहा। पति की गोद मे सिर रख, सूर्योदय के साथ-साथ उस दुखिया के सारे दुःखों का अन्त हो गया।

मझली दीदी

एक

किष्टो की माँ लाई-मटर भूनकर, माँग जाँचकर, ढेरो तकलीफ का सामना करके किष्टोधन को चौदह वर्ष का बनाकर जब चल बसी, तब उस बेचारे के लिए गाँव मे रहने की कोई जगह न रही। उसकी सौतेली बडी बहन कादम्बिनी की हालत अच्छी थी। सबने कहा, "किष्टो जा, अपनी दीदी के घर जाकर रह। वह पैसे वाली है, मजे से रहेगा वहाँ तूँ।"

मातृशोक से रोते-रोते किष्टो बुखार मे पड गया। अत मे ठीक होकर भीख माँग के किसी तरह उसने अपनी माँ का श्राद्ध किया। इसके बाद घुटे सिर, एक छोटी सी पोटली का सबल लेकर, दीदी के घर राजहाट मे जा पहुँचा। दीदी उसे नही पहचानती थी। परिचय जानकर और आने का कारण सुनकर एकदम अग्निमूर्ति बन गई तत्क्षण। वह अपने ढग से बाल-बच्चो के साथ अपनी गिरस्ती चला रही थी—अकस्मात् यह उत्पात कहाँ से आ जुटा।

मुहल्ले का जो बूढा किष्टो को रास्ता बताता हुआ गाँव से साथ आया था, कादम्बिनी ने उसे दो-चार कडी बातें सुना कर कहा, "मेरा अन्नध्वश करने मेरे बडे प्यारे रिश्तेदार को ले आये हो मेरे घर।" फिर अपनी सौतेली माँ के उद्देश्य मे जहर उगलती हुई बोली, "जिन्दा रहते वक्त कभी उस बदजात औरत ने भूलकर भी मेरी कोई खबर नही ली, अब खुद मर के और लडके को मेरे सिर पर थोप के खबर ले रही है। पराये लडके को ले जाओ भई तुम—मुझसे यह झझट नही पाला जायगा।"

बूढ़ा जात का नाई है। किष्टो की माँ की इज्जत करता था, "माजी" कहा करता था उन्हे। तभी इतनी कडी बातो के बाद भी उसने उम्मीद नही छोडी। गिडगिडाकर बोला, "दीदी ठकुराइन, लक्ष्मी का भडार है तुम्हारे यहाँ। कितने नौकर-चाकर, भिखारी-फकीर, कुत्ते-बिल्ली तुम्हारे घर का अन्न खाकर चले जा रहे हैं, यह छोकरा भी दो मुट्ठी चावल खाकर बाहर पड़ा रहेगा कही, पता भी नही चलेगा तुम्हे। बडा सीधासादा लडका है दीदी ठकुराइन! भाई मानना न चाहो न मानो, एक दु खी अनाथ ब्राह्मण के लडके की हैसियत से ही अपने घर के एक कोने मे जगह दे दो दीदी।"

इस स्तुति से पुलिस के दारोगा का मन भी पसीज जाता, कादम्बिनी तो एक मामूली औरत ही थी। लिहाजा वह चुप हो गई तब। बूढे ने किष्टो को अलग बुलाकर कुछ जरूरी बाते बताकर आँखे पोछते हुए विदा ली।

किष्टो को आश्रय मिल गया।

कादम्बिनी के पति नवीन मुखर्जी की धान-चावल की आढत थी। दिन के बारह बजे घर लौटकर तिरछी निगाह से किष्टो का जायजा लेकर बोले, "यह कौन है?"

कादम्बिनी ने चेहरे पर नाराजी झलका कर जवाब दिया, "तुम्हारे साले साहब हैं, लो अब खिला-पिला के बडा करो—अगले जनम मे काम आयेगा।"

नवीन को अपनी सौतेली सास के मरने की खबर पहले ही मिल चुकी थी, साले की उपस्थिति का कारण वह समझ गया। बोला, "अच्छा! देही तो बडी चिकनी और गोलमटोल है!"

स्त्री बोली, "होगी क्यो नही? मेरे बाप जो जमीन-जायदाद छोड गया था, वह सब तो उस हरामजादी ने इसी के पेट मे ठूंसा है। मुझे तो उसकी एक फूटी कौडी तक नही मयस्सर हुई।"

कहना अनावश्यक है कि जमीन-जायदाद में उसकी सौतेली माँ को एक मिट्टी का घर और उससे सटी थोडी सी जमीन पर कई बातावि (बडे) नीबू के पेड मिले थे। घर में विधवा रहती थी और पेडों के नीबू बेचकर लडके के स्कूल की फीस देती थी।

नवीन अपनी नाराजी को दबाकर बोला, "बहुत अच्छा।"

कादम्बिनी ने कहा, "अच्छा क्यो नही होगा! बडा सम्बन्धी है न! उसे बाकायदे रखना पडेगा न! अब अगर मेरे पाँचू गोपाल को एक ही जून खाना मयस्सर हो जाय तो वही बहुत होगा, नही तो दुनियाभर के लोग बदनाम करेंगे।" यह कहकर पास के मकान के दुमंजिले कमरे की एक खास खुली खिड़की की ओर कादम्बिनी ने अत्यन्त क्रुद्ध दृष्टि से देखा। ऊपरवाला यह कमरा उसके मझले देवर की स्त्री हेमांगिनी का है।

किष्टो बरामदे के एक किनारे सिर नीचा किये बैठा था। मारे शर्म के मरा जा रहा था बेचारा। कादम्बिनी ने भडार घर मे से नारियल के खोल में थोडा सा तेल लाके उसके सामने रखकर कहा, "रोना धोना बद करो, जाओ तालाब से नहा आओ—फुलेल मल कर नहाने की आदत तो नहीं है, क्यों?" फिर पति के उद्देश्य से चिल्लाकर बोली, "तुम जब नहाने जाओ बाबू साब को भी बुलाकर अपने साथ लेते जाना जी, नही तो कही डूब-ऊब गया तो घर भर के लोगों के हाथ मे हथकडी पड जायगी।"

किष्टो खाने बैठा था। स्वभावत. ही वह चावल कुछ ज्यादा खाता था। तिसपर कल शाम से उसने कुछ नही खाया था, आज इतना रास्ता पैदल चल कर आया है— वक्त भी काफी हो गया है। इन कारणों से थाली के तमाम चावल खाकर भी उसकी भूख नही मिटी थी। कुछ ही दूर बैठे नवीन भोजन कर रहे थे, उन्होंने यह देखकर स्त्री से कहा, "सुनती हो, किष्टो को और थोडा भात दे जाओ—"

'देती हूँ', कहकर कादम्बिनी ने पूरी एक थाली भात लाकर किष्टो की थाली में उँडेल दी। फिर जोर से हँसकर बोली, "हो गया तब! रोज इस हाथी की खुराक को जुटाने में तो हमारी आढत ही खाली हो जायगी! शाम को दुकान से मन-दो-मन मोटा चावल भिजवा देना, नही तो दिवाला निकलने में देर नहीं लगेगी, कहे दे रही हूँ मैं।"

मर्मान्तिक लज्जा से किष्टो का मुँह और नीचे झुक गया। वह अपनी माँ का इकलौता लडका है। दु.खिनी माँ उसे महीन चावल का भात दे पाती थी या नही, नही कह सकता, पर पेट भर के खाने के अपराध से उसे कभी सिर नही झुकाना पडा था, इतना जरूर कह सकता हूँ। उसे याद आ गया कि अधिक से अधिक खाकर भी कभी वह अपनी माँ की साध पूरी नही कर पाया था। अभी उस दिन की बात है कि माँ से पतग-चरखी के पैसे वसूल करने के लिए उसने दो मुट्ठी भात अधिक खाया था।

उसके आँखों के कोनों से आँसुओं की बडी-बडी बूँदें बहकर धीरे-धीरे उसकी थाली में गिरने लगीं, सिर नीचा किये वह वही भात निगलने लगा—बायाँ हाथ उठाकर उन्हें पोंछने तक की हिम्मत नही हुई उसे, इस डर से कि कही उसकी दीदी न देख ले। रोने के अपराध मे एक बार पहले वह डाँट खा चुका है। उस डाँट के भय ने उसके इतने बडे मातृशोक को भी दबा दिया।

दो

पैतृक मकान को दो भाइयों ने आपस मे बाँट लिया था।

पास का दुमंजिला घर मझले भाई विपिन का है। छोटे भाई की मृत्यु बहुत दिन पहले हो चुकी थी। विपिन भी धान-चावल का कारबार करता है। उसकी हालत भी अच्छी है, पर बडे भाई नवीन की तरह नही। तो भी इसी का मकान दुमंजिला है। मझली बहू हेमांगिनी शहर की लडकी है। वह नौकर-नौकरानी रखके, लोगों को खिला-पिला के, शान-शौकत से रहना पसंद करती है। पैसे बचाने के लिए वह गरीबी चाल से नही रह सकती, तभी करीब चार साल पहले दोनों भाइयों की बहुए झगडा करके अलग हो गयी थी। तब से बाहरी कलह बहुत बार हुआ है, फिर मेल भी हुआ है, पर मनोमालिन्य नही मिटा। इसके लिए जिम्मेदार हैं जेठानी कादम्बिनी। वे चतुर हैं, इसलिए बखूबी समझती हैं कि टूटी

हॉडी को फिर नही जोडा जा सकता। लेकिन मझली बहू उतनी चतुर नही है, उतना समझती भी नही है। हालाँकि झगडा पहले वही कर डालती थी, पर वही उसे मिटाने के लिए, बाते करने के लिए, खिलाने के लिये भीतर ही भीतर बेचैनी महसूस करके एक दिन धीरे से जेठानी के पास चली आती थी। फिर, हाथ-पैर जोडकर रो-धोकर, गलती के लिए माफी माँगकर, जेठानी को अपने घर ले आकर मेल कर लेती थी। इसी तरह दोनो भाइयो की बहुओ का चल रहा था अब तक। आज दिन के तीन साढे तीन बजे हेमांगिनी इस मकान में चली आई। कुएँ के पास सीमेन्ट की एक वेदी पर धूप मे बैठकर किष्टो साबुन से ढेर सारे कपडे साफ कर रहा था। थोडी दूर पर खडी होकर कादम्बिनी थोडा साबुन और अधिक बदन का जोर लगाकर कैसे कपडे साफ किये जा सकते हैं वह विधि उसे सिखा रही थी। मझली बहू को देखते ही बोल उठी, "मैय्यारी,—छोकरा कितने गटे कपडे लेकर यहाँ आया है।"

बात सही थी। किष्टो की तरह लाल किनारे की धोती पहन कर और एक चादर ओढकर कोई रिश्तेदारी मे नहीं जाता। इन दोनो को साफ करने की जरूरत जरूर थी, पर धोबी के अभाव मे और ज्यादा जरूरी हो गया था पाँचू गोपाल और उसके पिता के कुछ कपडो का साफ करना। फिलहाल किष्टो यही कर रहा था। एक नजर डालते ही हेमांगिनी समझ गई कि कपडे किनके हैं। किन्तु इस बात को न कहकर उसने पूछा—"लडका कौन है दीदी?" अपने कमरे की खिडकी की ओट मे खडी हो के सब कुछ वह पहले ही जान चुकी थी। दीदी हिचक रही हैं देखकर बोलीं, "देखने में तो बडा सुंदर है लडका। चेहरा भी तुमसे कुछ मिलता-जुलता है दीदी। तुम्हारे पीहर का है क्या कोई?"

चेहरा बिगाडकर कादम्बिनी ने जवाब दिया, "हाँ, मेरा सौतेला भाई है। ए किष्टो, अपनी मझली दीदी को प्रणाम कर न रेआकर। कितना बेशऊर लडका है रे बाबा। अपने से बडे लोगो को प्रणाम करना पडता है, यह भी क्या नही सिखाके मरी तेरी माँ?"

घबडा के किष्टो ने कादम्बिनी के पैरो के पास आकर नमस्कार करते ही वे चिल्ला पडीं, धत्तेरे की भोंदू। किसको प्रणाम करने के लिए कहा मैंने और किसे कर रहा है!"

दरअसल जब से वह यहाँ आया है तब से लगातार तिरस्कार और अपमान का आघात सहते-सहते बेचारे का दिमाग काम नहीं कर रहा था। व्यस्ततापूर्वक और अकबका के हेमांगिनी के पैरो के पास आके सिर नीचा करते ही उसने उसे हाथो से पकडके चिबुक स्पर्श करके आशीर्वाद दिया, "ठीक है भाई, हो गया—चिरंजीवी होओ।" मूढ़ की तरह किष्टो उसके चेहरे की ओर देखता रहा। इस देश मे इस तरह से भी कोई बात कर सकता है, यह बाते जैसे उसके मस्तिष्क मे नही प्रवेश कर पा रही थी।

किष्टो के भीत, कुण्ठित ओर असहाय चेहरे की ओर देखते ही हेमांगिनी का हृदय हाहाकार कर उठा। अपने को और न सँभाल पाकर उसने इस अभागे अनाथ बालक को सहसा खींचकर अपनी छाती से लगा लिया; फिर उसके थके पसीने से भीगे चेहरे को अपने आँचल से पोछ कर जेठानी से कहा, "इससे कही कपडे साफ करवाना चाहिये दीदी, एक नौकर क्यो नही बुलवा लेती मेरे यहाँ से?"

एकाएक कादम्बिनी को इसका कोई जवाब नही सूझा; पर पलभर मे ही अपने आपको सँभाल लिया उसने, फिर नाराजी से बोली, "मैं तो तुम्हारी तरह अमीर नही हूँ मझली बहू जो मेरे यहाँ दस-बीस नौकर-नौकरानी हों। हम लोगों की गिरस्ती में—

उसकी बात खतम होने से पहले ही हेमांगिनी ने अपने कमरे की ओर मुँह करके अपनी लडकी को पुकार के कहा, "उमा, शिबू को थोडा इस घर में भेज दे तो बेटी, बडे ठाकुर और पाँचू के मैले कपड़े वह तालाब से धो लाये और सूखने डाल दे।" फिर जेठानी की ओर मुँह फेर कर बोली, "इस जून किष्टो और पाँचू गोपाल मेरे घर खाना खायेंगे दीदी। उसे स्कूल से आते ही मेरे यहाँ भेज देना। तब तक मैं इसे ले जा रही हूँ।" किष्टो से बोली, "उनकी तरह मैं भी तुम्हारी दीदी लगती हूँ किष्टो— आओ मेरे साथ।" कहकर उसका एक हाथ पकड के अपने घर चली गई।

कादम्बिनी ने बाधा नहीं दी। इसके अलावा हेमांगिनी के व्यंग्य को भी चुपचाप हजम कर लिया। इसका कारण यह था कि व्यंग्य करने वाले व्यक्ति ने किष्टो और पाँचू के एक जून के खाने का खर्च भी बचा दिया। उसका कादम्बिनी के लिए ससार में पैसे से बडा और कुछ नही था। तभी वह दुधारूगाय की लात भी सहने को तैयार थी।

तीन

सध्या के समय कादम्बिनी ने पूछा, "क्या खा आया रे किष्टो?"

सलज्ज भाव से किष्टो ने सिर नीचा करके कहा, "लुचुई।"

"किससे खायी?"

"रोहू मछली के मूडो (मूड) की तरकारी थी, और थे सदेश, रसगुल्ले–"

"ईसु! क्यों रे रोहू का मूडो मझली ठकुराइन ने किसे खाने को दिया?"

इस प्रश्न से अकस्मात् किष्टो का चेहरा फक पड गया। उद्यत खड्ग के सामने बलि के बकरे की जो हालत होती है, किष्टो की भी वही हालत हुई। जवाब में देर देखकर कादम्बिनी बोली, "शायद तुझे?"

भयकर अपराधी की तरह किष्टो सिर नीचा किये बैठा रहा।

कुछ ही दूर बरामदे मे बैठे नवीन मुखर्जी हुक्का पी रहे थे। कादम्बिनी ने उन्हें सम्बोधन करके कहा, "क्यो, सुना तुमने?"

नवीन ने सक्षेप मे 'हूँ' कहकर हुक्के का एक लम्बा कश खीचा।

कादम्बिनी लाल पीली होकर कहने लगी, "चाची सगी आदमी है, व्यवहार देखो उसका! मेरा पाँचू गोपाल रोहू मछली का मूडो कितना पसन्द करता है वह क्या नही जानती? तब फिर किस अक्किल से उसने उसे उसकी थाली मे न डाल के किष्टो की थाली मे डाल दिया? क्यों रे किष्टो सन्देश-रसगुल्ले तो खूब पेट भरके खा आया है न? सात जनम मे भी तो यह सब तूने आँखो मे भी नही देखा होगा। पति की ओर देखकर बोली, "जो दो मुट्ठी चावल के भात पाकर अपने को कृतार्थ मानते हैं उनके पेट में लुचुई-सन्देश ठूँसकर क्या फायदा होगा? लेकिन मैं तुम्हे साफ-साफ कहे दे रही हूँ कि मझली बहू अगर किष्टो को न बिगाड़ दे तो मेरे नाम का कुत्ता पालना।"

नवीन मौन बने रहे। क्योंकि उसकी पत्नी की मौजूदगी मे मझली बहू उसे बिगाड दे सकेगी, ऐसी असभव घटना पर उन्हे विश्वास नही हुआ। उनकी पत्नी उन्हे एक सीधा-सादा आदमी समझती थी, उसे डर लगा रहता था कि कोई उनकी सिधाई का फायदा उठाकर ठग न ले। उसी दिन से वह छोटे भाई किष्टो की मानसिक उन्नति अवनति के प्रति सतर्कता बरतने लग गयी।

अगले दिन से ही दो नौकरों मे से एक को छुडवा दिया गया। किष्टो नवीन के धान-चावल की आढत मे काम करने लग गया। वहाँ वह सामान तौलता है, बेचता है, चार-पाँच कोस चलके नमूने इकट्ठे करके लाता है, दोपहर को नवीन के घर भोजन करने के लिये जाने पर दुकान अगोरता है। कई दिन बाद एक दिन जब नवीन आहार और दिवा निद्रा समाप्त करके दुकान लौटे, तब वह भोजन करने घर आया था। तब दिन के तीन बज चुके थे। किष्टो ने तालाब नहाकर आ के देखा कि दीदी सो रही हैं। बेहद भूख महसूस हो रही थी उसे तब, पर दीदी को जगाने की हिम्मत नही हुई उसे।

रसोईघर के बरामदे के एक कोने में चुपचाप बेचारा दीदी के जगने की बाट जोहता हुआ बैठा रहा। एकाएक उसने पुकार सुनी–"किष्टो?"

बडी स्निग्ध प्रतीत हुई उसे यह पुकार। सिर उठाकर उसने देखा कि मझली दीदी अपने दुमंजिले पर के कमरे की खिडकी पर खडी हैं। किष्टो ने एक बार सिर उठाकर ही सिर नीचा कर लिया। थोडी देर बार हेमांगिनी ने नीचे आकर उसके सामने खडे होके पूछा–"कई दिन से दिखलाई नही पडे, क्या बात है यहाँ चुपचाप क्यो बैठे हो किष्टो?"

एक तो भूख से ही बडी जल्दी उसकी आँखो मे पानी आ जाता है, तिस पर इतना स्नेहार्द्र कण्ठस्वर। उसकी दोनो आँखे छलछला उठी। वह सिर नीचा किये बैठा रहा, कोई उत्तर नही दे सका।

मझली काकी को सब बच्चे बहुत प्यार करते थे। उनकी आवाज सुनकर कादम्बिनी की छोटी लडकी कमरे से बाहर आके चिल्लाकर बोली, "किष्टो मामा, रसोईघर मे तुम्हारा खाना ढका रक्खा है, खा लो, मां खा पी के सो रही है।"

हेमांगिनी ने अचभे मे आकर कहा, "किष्टो ने अभी तक खाना नही खाया है, और तेरी माँ खा-पी के सो रही है! हाँ किष्टो, आज इतनी देर कैसे हो गई?"

किष्टो सिर नीचा किये ही बैठा रहा। टूनि 'कादम्बिनी की छोटी लडकी' ने उसकी तरफ से जवाब दिया, "किष्टो मामा को तो रोज ही इतनी देर हो जाती है। बाबा (पिताजी) खा-पी के दुकान पर लौट जाने के बाद वह खाने आता है।"

हेमांगिनी समझ गयी कि उसे दुकान के काम मे लगा दिया गया है। उसे बैठे-बैठे खिलाया जायगा, यह उम्मीद उन्होने बिलकुल नही की थी। पर एक बार वक्त का खयाल करके और एक बार इस भूख-प्यास से व्याकुल बालक को देखकर उनकी आँखो मे आँसू उमड आये। आँचल से आँखें पोछते-पोछते वे अपने घर चली गयी। दो-तीन मिनिट बाद एक कटोरी दूध लेकर लौट आयी। रसोईघर मे घुसकर ही सिहर उठी और मुँह फेर कर खडी हो गई।

किष्टो खा रहा था। एक पीतल की थाली मे ठडे सूखे डलेबने भात थे, पास ही थी थोडी सी दाल और थोडी सी कोई तरकारी जैसी चीज। दूध पाकर उसका मुरझाया मुख प्रसन्नता से खिल उठा।

हेमांगिनी दरवाजे के बाहर आकर खडी रही। किष्टो के खाने के बाद तालाब पर मुँह धोने के लिये चले जाने के बाद एक बार उन्होने मुँह बढा कर अदर देखा कि थाली मे गिनती का एक चावल भी नही बचा था। भूख के मारे बेचारे ने पूरी थाली साफ कर दी थी।

हेमांगिनी का लडका ललित भी लगभग उसी उमर का है। अपनी अनुपस्थिति मे एकाएक अपने लडके की इसी दशा की कल्पना करके उसे बडी तेजी से रुलाई आ गयी। उसे दबाकर वे अपने घर चली गयी।

चार

खाँसी-जुकाम से हेमांगिनी को बीच-बीच मे बुखार आ जाया करता था, दो-एक दिन बाद अपने आप ठीक भी हो जाता था। उपर्युक्त घटना के कुछ दिन बाद इसी तरह थोडा बुखार आ जाने से सध्या के बाद वह अपने कमरे मे बिस्तर पर पडी थी। अदर और कोई नही था, यकायक उसे लगा जैसे कि कोई दरवाजे के ओट मे चुपचाप खडा हो के अंदर झाँक रहा है। उन्होने पुकारकर कहा, "कौन खडा है रे वहाँ, ललित?"

किसी ने जवाब नही दिया। फिर पुकारने पर, दरवाजे की ओट से जवाब आया, "मैं।"

"मैं" कौन रे? आ, अन्दर आजा।"

हिचकिचाते हुए अंदर आकर किष्टो दीवार के सहारे खडा हो गया। हेमांगिनी उठ कर बैठ गयी और बडे स्नेह से उसे पास बुलाकर पूछा, "क्या है रे, किष्टो?"

किष्टो और थोडा पास आकर, अपनी मैली धोती की गाँठ से दो अधपके अमरूद निकाल के बोला-"बुखार मे बडा अच्छा लगता है।"

हेमांगिनी ने उन्हे लेने के लिए साग्रह हाथ बढाकर कहा, "कहाँ से लाया है रे? मैं कल से कितने लोगो की खुशामद कर रही हूँ अमरूदो के लिये, लेकिन कोई नही ला पाया', यह कहकर किष्टो का हाथ पकडकर अपने पास बैठाया। किष्टो ने सकोच और आह्लाद से आरक्त मुख को नीचे कर लिया। हालाँकि न यह अमरूदो का मौसम है और न हेमांगिनी ही अमरूद खाने के लिए बेचैन हो उठी थी। तो भी इन दो अमरूदो के लिए किष्टो दोपहर भर धूप मे घूमा है।

हेमांगिनी ने पूछा, "क्यो रे किष्टो, तुझे कैसे पता चला कि मुझे बुखार आ गया है?"

किष्टो कुछ नही बोला।

"तुझे किसने कहा कि मैं अमरूद खाना चाहती हूँ?"

किष्टो ने उनके इस सवाल का भी कोई जवाब नही दिया। उसने जो अपना सिर नीचा कर लिया था, उसे और नही उठा पाया। लडका बहुत ही लजीला और भीरु स्वभाव का है, हेमांगिनी को यह पहले ही पता चल गया था। तब उन्होने उसके सिर और चेहरे पर प्यार से हाथ फेरकर, पुचकार के "भइया-दादा" कहके उसके भय को दूर करके बहुत सी बाते जान ली। बहुत ढूँढ कर अमरूद पाने की बात से लेकर, उसके देश और माँ की बात, खाने-पीने की बात, दुकान मे क्या-क्या करना पडता है वह

बात वगैरह एक-एक करके सब कुछ जान कर उनकी आँखे छलछला उठी। आँखे पोछकर बोली, "ए देख रे किष्टो, अपनी मझली दीदी से कभी कुछ न छिपाना। जब जिस चीज की जरूरत हो चुपचाप आकर मांग लेना—माँग लेगा न?"

खुशी से सिर हिलाकर किष्टो बोला, "अच्छा।"

सच्चा स्नेह क्या है, इसे किष्टो अपनी दुखिया माँ से जान गया था। इस मझली दीदी मे उसका आस्वादन करके उसका अवरुद्ध मातृशोक पिघल कर बह गया। वहां से जाने वक्त मझली दीदी के पैरो की धूल सिर पर चढाकर वह हवा मे उडते हुए बाहर निकल आया।

किन्तु, इधर उसके प्रति उसकी दीदी का आक्रोश प्रतिदिन बढ़ने लगा। कारण, वह सौतेली माँ का लडका है, वह एकदम बेसहारा है। बदनामी के डर से न उसे घर से निकाल दिया जा सकता है, न किसी को दे दिया जा सकता है। लिहाजा जब रखना ही पडेगा, तब जब तक उसके बदन मे कूवत है तब तक कस कर काम लेना चाहिये।

उसके घर लौटते ही दीदी ने उसे पकड लिया, "दुकान से भागकर दोपहर भर कहाँ था रे किष्टो?"

किष्टो चुप रहा। बेहद गुस्से से चिल्लाकर कादम्बिनी बोली, "बता जल्दी।" इस पर भी किष्टो ने कोई जवाब नही दिया। मौन रहने से जिनका गुस्सा दूर हो जाता है, कादम्बिनी उन लोगों में नही है। इसीलिए जवाब पाने के लिए जितना ही वे जिद करने लगी, जवाब न पाकर उनकी जिद और भी बढने लगी और गुस्सा भी तेज होने लगा। आखिर मे पाँचू गोपाल को बुलाकर उससे उसके दोनो कान बार-बार उमेठवाये और उसका रात का खाना भी काट दिया।

आघात चाहे जितना दारुण क्यो न हो, प्रतिहत न होने का प्रभाव नही डाल सकता। किसी पहाड की चोटी से नीचे फेक देने से ही हाथ-पैर नही टूटते, टूटते तभी हैं जब नीचे की कठिन भूमि वेग का प्रतिरोध करती है। बिलकुल यही बात हुई है किष्टो के साथ। माँ की मृत्यु ने जब उसके पैरो के नीचे की कठिन भूमि को एकदम विलुप्त कर दिया, तब से बाहर का कोई भी आघात उसे धराशायी नही कर पाता। वह दु खिनी का बेटा है, पर उसने कभी दु ख नही पाया। डांट-फटकार से उसका पूर्व-परिचय नही था, तो भी जब से वह यहाँ आया है कादम्बिनी के दिये कठोर दु:ख-कष्ट को वह अनायास ही सह पा रहा था, वह सिर्फ इसलिये कि उसके पैरों तले कोई अवलंब नही था। किन्तु आज वह नही सह पाया, आज उसे हेमांगिनी के मातृस्नेह की निर्भरभित्ति का पता मिल गया था, तभी आज के इस अत्याचार अपमान ने उसे एकदम व्याकुल बना दिया। माता-पुत्र इस निरपराध तथा निराश्रित बालक को लांछित, अपमानित और दंडित करके चले गये। वह अंधेरे में जमीन पर लोटकर आज बहुत दिन बाद फिर माँ को याद करके, मझली दीदी का नाम ले के फूट-फूटकर रोने लगा।

पाँच

अगले दिन सवेरे ही किष्टो धीरे-धीरे कमरे मे आकर हेमांगिनी के पैरो की ओर बिस्तर के एक किनारे बैठ गया। हेमांगिनी ने अपने पैरों को थोडा सिकोड कर स्नेहपूर्वक पूछा, "दुकान नही गया किष्टो?"

"अब जाऊँगा।"

"देरी मत कर भइया, तुरत चला जा, नही तो डाँट-फटकार शुरू हो जायगी अभी।" किष्टो का चेहरा कुछ क्षण के लिए लाल हो गया, फिर सफेद पड गया।

"जा रहा हूँ", कहकर वह खडा हो गया। थोडा हिचक के कुछ कहने जाकर फिर चुप हो गया। हेमांगिनी सभवत. उसके मनोभाव को समझ गयीं, बोलीं, "मुझे कुछ कहना चाहता है रे?"

सिर नीचा करके किष्टो ने बडे आहिस्ते से कहा, "कल रात से मैंने कुछ भी नहीं खाया है मझली दीदी—"

"कल रात से नही खाया। क्या कहता है रे किष्टो?" कुछ क्षण हेमांगिनी स्थिर रही, इसके बाद उसकी आँखे भर आयी और झर-झर आँसू गिरने लगे। हाथ पकडके खीचकर उन्होंने उसे और करीब

वैठाया फिर एक-एक करके तमाम बाते जानकर बोली, ''कल रात ही को क्यो नही आया?''

किष्टो चुप रहा। हेमांगिनी ने आँचल से आँखें पोछकर कहा, ''तुझे मेरे सिर की कसम है किष्टो, आज से तू मुझे अपनी मरी माँ जैसी ही समझना।''

यथासमय सब खबर कादम्बिनी तक पहुँच गयी। उन्होने अपने घर से मझली बहू को पुकार कर कहा, ''भाई को क्या मैं खिला नही सकती जो तुमने उसके सिर पर सवार होकर उसे इतनी बाते कही हैं?''

उसके बात करने के ढग से हेमागिनी के बदन मे आग लग गयी। पर उसने अपने को सयमित करके कहा, ''अगर कही भी हैं तो उससे क्या नुकसान हो गया?''

इस पर कादम्बिनी बोलीं, ''अगर मै तुम्हारे लडके को बुलाकर इस तरह कहूँ, तो तुम्हारा सम्मान कहाँ रहेगा? इसी तरह अगर उसे तुम शह देती रहोगी तो मैं उसे वस मे कैसे रख सकूँगी, बताओ?''

और नही बरदाश्त कर पाई हेमांगिनी। बोली, ''दीदी, पद्रह-सोलह साल से हम लोग एक साथ हैं—तुम्हे जानती हूँ मैं। पेट की मार देकर पहले अपने लडके को बस मे करने की कोशिश करो, बाद मे पराये के लडके को करना, तब मैं सिर पर सवार होकर कभी कुछ नही कहने जाऊँगी।''

कादम्बिनी ने हैरत मे आकर कहा, ''मेरे पाँचू गोपाल से उसका मुकाबला कर रही हो? कहाँ देवता और कहाँ बदर? इसके बाद तुम और भी क्या-क्या कहती फिरोगी, यही सोच रही हूँ मैं मझली बहू!''

मझली बहू ने उत्तर दिया, ''कौन देवता है और कौन बदर, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ, पर मैं और कुछ नही कहूँगी दीदी, सिर्फ इतना ही कहूँगी कि तुम जैसी बेरहम और बेहया औरत दुनिया भर मे नही है।'' कहकर उन्होने जवाब का इतजार बिना किये ही खिडकी बंद कर दी।

उसी दिन शाम को, यानी जब दोनो घरो के मालिको का लौटने का वक्त होता है, आँगन मे खडी होकर बडी बहू ने नौकरानी को उपलक्ष्य बनाकर उच्च स्वर मे तर्जन-गर्जन शुरू कर दिया जो दिन-रात करते हैं, वे ही इसका विहित करेंगे। मौसी को माँ से भी ज्यादा दरद है। मैं अपने भाई का हित नही समझती हूँ, समझती है परायी! इस चाल से कभी किसी का भला नही होगा—भाई-बहन मे झगडा करवाकर लोगो को मजा देखने की प्रवृत्ति को धरम नही सहन करेगा, कहे दे रही हूँ, इतना कहकर वे रसोईघर मे घुस गयी।

दोनो भाइयो की बहुओ मे इस तरह की नोंक-झोंक, गाली-गलौज पहले भी बहुत बार बहुत ढग से हो चुकी है, किन्तु आज की घटना मे उष्मा कुछ अधिक थी। हेमांगिनी बहुत बार जेठानी की बाते सुनकर भी अनसुनी कर देती थी, उनके तानो को समझकर भी चुप रहती थी; पर उसकी तबीयत ठीक नही थी आज, तभी वह फिर खिडकी के पास आकर खडी हो के बोली, ''इतनी जल्दी क्यों चुप हो गयी दीदी? शायद भगवान अभी तक सुन न पाये हो—और कुछ देर मेरे सत्यानाश की मनौती मनाओ न— बडे ठाकुर (जेठजी) घर आकर सुन ले, ये भी आकर सुन ले— इतनी जल्दी थक जाने से कैसे काम चलेगा?''

कादम्बिनी दौडती हुई आँगन मे चली आयी, इसके बाद मुँह उठाकर चिल्ला के बोलीं, ''मैंने क्या किसी कलमुँही का नाम लिया है?''

स्थिर भाव से हेमांगिनी ने उत्तर दिया, ''नाम लोगी दीदी, किसी का नाम लेकर कहने वाली नहीं हो तुम। लेकिन क्या तुम समझती हो कि तमाम अक्ल तुम्हारे ही पल्ले पडी है, और दुनियाभर के बाकी लोग बुद्धू हैं? ताना मार-मार के किसके सर्वनाश की कामना कर रही हो तुम उसे क्या कोई नही समझती?''

कादम्बिनी ने अब अपना निजी रूप प्रकट किया। मुँह बिराकर और हाथ पैर पटक-पटक कर कहने लगी, समझता है तो समझा करे, मेरी बला से! जो खोट करेगा बात उसी को लगेगी। और अकेली तुम ही समझती हो, मैं नही समझती हूँ क्या? किष्टो जब यहाँ आया था तब सात बार थप्पड मारने पर भी चूँ नही करता था, जो मैं कहती थी वही चुपचाप करता था—आज दोपहर को किसके बल पर क्या जवाब दे गया, पूछ लो इस पसन्न की माँ से—' यह कहकर उसने नौकरानी की ओर सकेत किया।

प्रसन्न की माँ ने कहा, ''बात सच है मझली बहू का। आज जब वह खाना छोडकर चला जाने लगा, तब माँ ने कहा, ''बिना इस पिडा के लीले जब जमलोक पहुँच जाना पडेगा, तब इतना तेवर किस बात के

लिये?" वह कह गया—" मेरी मझली दीदी के रहते में किसी से नही डरता।"

कादम्बिनी ने अब सदर्भ कहा, "सुन लिया न! किसके बल पर इतनी गर्मी दिखाता है वह, बताओ? आज मैं साफ-साफ कहे दे रही हूं, मझली बहू, उसे तुम बार-बार अपने यहाँ न बुलाया करो। हम दोनो भाई-बहन की बातो में तुम्हे दखल देने की कोई जरूरत नही।"

हेमागिनी ने और कुछ नही कहा। एक केंचुआ फणिधर की तरह डक मारने लग गया है सुनकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही। खिडकी पर से लौटकर चुपचाप वह सोचने लग गयी कि कितनी अधिक मत्रणा द्वारा यह असभव बात सभव हो सकी है।

फिर सिरदर्द के साथ बुखार मालूम होने लगा था उसे। तभी वेवक्त निर्जीव की तरह बिस्तर पर पडी थी। उसके पति ने कमरे में घुसकर उसे इस हालत मे देखकर तैश मे आकर कहा, "भाभी के भाई को लेकर क्या बखेडा कर रक्खा है तुमने? किसी की बात नही मानोगी, दुनियाभर के अभागे-आवारों की हिमायत के लिए कमर बाँधकर खडी हो जाओगी, रोज-रोज मुझे यह झझट अच्छा नही लगता मझली बहू। भाभी ने आज मुझे नाहक दस बाते सुना दी।"

श्रान्त कठ से हेमांगिनी बोली, "बहू ठकुराइन हक की बातें कहती ही कब हैं जो आज उन्होने तुम्हें नाहक बातें कही हैं?"

विपिन ने कहा, "लेकिन आज उन्होने ठीक बात ही कही है। तुम्हारी आदत तो जानता हूँ मैं। उस बार घर के गाय चराने वाले छोकरे को लेकर भी ऐसा ही किया था, मोती लुहार के भानजे का इतना बढिया वह बगीचा भी तुम्हारे लिये ही हाथ से निकल गया, उलटे पुलिस की कारवाई रोकने के लिए घर से सौ-डेढ़ सौ देने पडे। तुम क्या अपना भला-बुरा भी नही समझती हो? तुम्हारी यह आदत कब जायगी?"

हेमागिनी इस बार बिस्तर पर उठ कर बैठ गयी, फिर पति के चेहरे की ओर देखती हुई बोली, 'मेरी यह आदत मरने पर ही जायगी, उससे पहले नही। में मॉ हूँ, मेरी गोद में बाल बच्चे हैं, और सिर के ऊपर भगवान हैं। इससे ज्यादा मैं और किसी के बारे मे कुछ नही कहना चाहती हूँ। मेरी तबीयत खराब है, मैं और बकवास नही करना चाहती अब। तुम जाओ।' कहकर वह चादर तान कर करवट बदल के लेट गयी।

विपिन ने जबान से तो और कुछ कहने की हिम्मत नही की, पर मन ही मन स्त्री पर और विशेषतया उस सिर पड़े अभागे पर आज बेहद नाराज हुआ।

छः

अगले दिन सवेरे खिडकी खोलते ही हेमांगिनी को जेठानी की तीखी आवाज सुनाई पडी। वे अपने पति को कह रही थी, 'छोकरा कल से गायब है, कुछ पता नही लगाया तुमने उसका?'

पति ने कहा, "चूल्हे मे जाय वह। क्या होगा पता लगा कर?"

अपनी आवाज को ऊँची करके स्त्री बोली, "तब तो अपने गाँव मे ही रहना मुश्किल हो जायगा। यहाँ हम लोगो के दुश्मनो की तो कमी नही, कही मर-फर के पड़ा होगा तो छोटे-बडे सबको जेलखाने जाना पडेगा कहे दे रही हूँ।"

हेमांगिनी सब कुछ समझ गयी, और फौरन खिडकी को बद करके एक गहरी उसाँस खीचकर अन्यत्र चली गयी।

दोपहर को रसोईघर के बरामदे मे बैठके हेमांगिनी रोटी खा रही थी। एकाएक चोरो की तरह आहिस्ते-आहिस्ते कदम रखते हुए किष्टो आ पहुँचा। रूखे बाल, उतरा चेहरा।

"कहाँ भाग गया था रे किष्टो?"

"भागा तो नही था मैं कही। कल सध्या के बाद दुकान पर ही सो गया था, आधी रात को नीद खुली। भूख लगी है, मझली दीदी।"

"जा, उस घर मे जाकर खा', कहकर हेमांगिनी ने अपनी थाली की ओर ध्यान दिया।'

दो-एक मिनट चुपचाप खडे रहकर, किष्टो जाने को उद्यत हुआ। तव हेमांगिनी ने पुकार कर उसे वापस लौटा के अपने पास बैठाया और रसोईदारिन को वही उसके लिए खाना परोस देने के लिए कहा।

किष्टो का खाना करीब आधा हो चुका था, तभी वाहर से दौडती हुई आकर उमा ने नि शब्द इंगित से उसे दिखाकर अपनी माँ से कहा, वावा (पिताजी) आ रहे हैं न।

अपनी लडकी के इस ढग को देखकर माँ ने अचभे मे आकर कहा, "तो क्या हुआ? तू डर क्यो रही है?"

उमा किष्टो के पीछे आकर खडी हुई थी, उत्तर मे उसी को उँगली से दिखाकर उसने आँख के इशारे से जाहिर किया, "खा रहा है न।"

किष्टो ने भी कुतूहल से मुडकर देखा। उमा की उत्कंठित दृष्टि--उसके शंकित चेहरे के इशारे को उसने देख लिया। तत्क्षण उसका चेहरा सफेद पड गया। न जाने कौन सा उसके मन मे उत्पन्न हो गया, वही जाने। मझली दीदी, वावू आ रहे हैं, कह कर ही वह खाना छोडकर फौरन रसोईघर के दरवाजे की ओट मे जाकर खडा हो गया। उसकी देखा-देखी उमा भी और कही जाकर छिप गयी। अकस्मात् घर वाले के आ पडने पर चोर जैसा आचरण करते हैं विलकुल वैसा ही आचरण कर बैठे ये दोनो।

विभ्रान्तमना होकर हेमांगिनी ने पहले इधर-उधर देखा, इसके वाद हारी-थकी सी वह दीवार का सहारा लेकर पड गई। लज्जा और अपमान की बरछी ने जैसे उसकी छाती को आरपार बेध दिया हो, ऐसा लगा उसे। कुछ क्षण वाद विपिन आ गया। सामने ही स्त्री को उस तरह बैठे देखकर पास आ के उसने उद्विग्नतापूर्वक पूछा, "यह क्या, खाना ले के इस तरह क्यो बैठी हो?"

हेमांगिनी ने कोई जवाब नही दिया। विपिन ने और अधिक उत्कठित होकर कहा, "फिर बुखार आ गया क्या?" अधखाये खाने की थाली पर निगाह जाते ही बोला, "यहाँ इतना खाना छोडकर कौन चला गया? ललित न?"

हेमांगिनी उठकर बैठ के बोली, "नही, वह नही-- उस घर का किष्टो खा रहा था, तुम्हारे डर से दरवाजे की ओट मे छिप गया है।"

"क्यो?"

"क्यो, इसे तुम्ही अच्छी तरह जानते हो। और सिर्फ वहीनही तुम आ रहे हो, यह खबर दे के उमा भी कही दौडकर छिप गयी है।"

विपिन समझ गया कि स्त्री की वातचीत का रुख टेढ़ा हो गया है। तभी शायद उसे सीधे रास्ते पर लाने की गरज से वह मुस्कराकर वोला, "वह क्यो भागने गयी?"

हेमांगिनी ने कहा, "कौन जाने? शायद अपनी माँ का अपमान देखने के डर से भाग गयी है।" फिर एक गहरी उसाँस खीचकर बोली, "किष्टो पराया लडका है, वह तो डर कर भागेगा ही। मेरी अपनी लडकी तक को यह विश्वास नही है कि उसकी माँ किसी को बुलाकर एक मुट्ठी भात देने का अधिकार रखती है।"

अव विपिन को पता चल गया कि मामला वाकई टेढा हो गया है। तभी मामला कही और ज्यादा न वढ जाय, इसलिए स्त्री के आरोप को एक मामूली हँसी में बदलकर आँखे मार के सिर हिला के वोला, "नही-- तुम्हे कोई अधिकार नही है। भिखारी आने पर भीख देने का भी। खैर, जाने दो इन बातो को-- सिर दर्द तो नही हो गया फिर तुम्हे? मैं सोच रहा हूँ कि शहर से एक बार केदार डाक्टर को बुलवा भेजू-- नही तो चलो एक बार कलकत्ता ही।

बीमारी और चिकित्सा की बात वही थम गयी। हेमांगिनी ने पूछा, "उमा के सामने तुमने कभी किष्टो को कुछ कहा था?"

विपिन ने जैसे हैरत में आकर कहा, "मैंने? नही तो। उहो-- याद आ गया, उसे शायद कहा था--भाभी नाराज होती हैं, भाई साहव बुरा मानते हैं-- शायद तब उमा वहाँ खडी थी-- बात क्या है जानती हो--'

'जानती हूँ', कहकर हेमांगिनी ने बात को वही दबा दिया। विपिन के कमरे के अदर घुसते ही उसने किष्टो को बाहर बुलाकर कहा, "किष्टो, ले ये चार पैसे ले, जाकर दुकान से लाई-दाने खरीद कर खा ले।

भूख लगने पर फिर कभी न आना मेरे पास। तेरी मझली दीदी की इतनी औकात नही है कि वह वाहर के किसी आदमी को मुट्ठी भर चावल खाने को दे सके।"

किष्टो चुपचाप वहां से चला गया। कमरे के भीतर खडे हो के विपिन ने उसकी ओर देखकर गुस्से से दाँत पीसे।

सात

पाँच-छः दिन वाद एक दिन शाम के वक्त विपिन वडी नाराजी के साथ घर मे आकर वोला, "यह सव तुमने क्या शुरू कर दिया है मझली वहू? किष्टो तुम्हारा कौन है कि उस पराये लडके के लिए दिन रात तुम आपस मे लड़ाई-झगडा करती फिर रही हो। आज मैंने देखा कि दादा भी वहुत नाराज हो गये हैं।"

थोडी ही देर पहले वडी वहू ने अपने घर मे वैठकर पति के उपलक्ष्य और मझली वहू को लक्ष्य वना के चिल्ला-चिल्लाकर अपशब्दों के जो तीर छोडे थे उनमे से एक भी वेकार नहीं गया। सवने आकर अपने लक्ष्य को वेधा था और इनकी नोको मे जो विष था उसके दाहक प्रभाव से भी अछूती नही वची थी हेमांगिनी। पर जेठ जी के मोजूद रहने की वजह से हेमांगिनी को तव सिवाय वरदाश्त करने और कोई चारा न था।

पहले समय में जैसे यवन आक्रमणकारी गायो को सामने रखकर राजपूत सेना पर हमला चलाकर लड़ाई जीतते थे, वडी वहू मझली वहू को आजकल अकसर इसी तरह शिकस्त दे रही थी।

पति की वात से हेमांगिनी को आग लग गयी। वोली, "अच्छा, वे भी नाराज हो गये हैं! यह तो वडे अचरज की वात है, यकायक सुनकर यकीन नही होता! अव क्या करने पर उनकी नाराजी दूर होगी, वताओ?"

स्त्री की वात से मन ही मन क्रुद्ध हुआ विपिन, पर सहसा मनोभाव को व्यक्त कर देना उसके स्वभाव के विरुद्ध है, तभी उसने अपने रोष को छिपाकर सहजभाव से कहा, "कुछ भी हो, वे हैं तो वडे ही—"

उसकी वात पूरी होने से पहले ही हेमांगिनी वोल उठी, "सब जानती हूँ, मैं दुधमुँही वच्ची नही हूँ कि वडो की मान-मर्यादा न समझूँ। पर चूँकि उस लडके को मैं स्नेह की दृष्टि से देखती हूँ, इसलिये लगता है जैसे वे मुझे दिखा-दिखाकर दिन-रात वींधते रहते हैं।" उसकी आवाज अव थोडी नरम मालूम पडी। कारण, एकाएक जेठजी के विषय में श्लेष का प्रयोग करके वह मन ही मन अप्रतिभ हो उठी थी, वडी वहू के वाक्यवाणो की चोट से वेहाल होकर ही वह अपने पर कावू नही रख पायी थी तव।

भीतर ही भीतर विपिन उस पक्ष मे था। क्योंकि, एक पराये लडके को लेकर वेकार अपने दादा और भाभी से विरोध करना वह मन ही मन नही पसद करता था। पत्नी के इस अप्रतिभ भाव का फायदा उठाकर उसने जोर देकर कहा, "विंधने-फींदने की वात न सोचो। वे अपने लडके को डांट मे रखना चाहते हैं, उसे काम-काज सिखा रहे हैं— इन वातों को देखकर तुम अगर वुरा मानने लगोगी तो कैसे काम चलेगा? फिर वे जो कुछ भी करे, हैं तो हमारे वडे ही।"

हेमांगिनी ने पहले कुछ विस्मय से पति की ओर देखा। इसका कारण यह था कि पन्द्रह-सोलह वर्ष के पारिवारिक जीवन मे पहले कभी उसने पति मे इतनी अधिक मात्रा मे भ्रातृभक्ति नही देखी थी। पर दूसरे ही क्षण उसका सर्वांग क्रोध से जल उठा। वह वोली, "वेशक वे वडे हैं, मैं भी माँ हूँ। वडे अगर अपने वडप्पन के मान को अपनी करनी से स्वय ही खो दें तो मैं कैसे उसकी पूर्ति कर सकती हूँ!"

विपिन शायद कोई जवाव देने जा रहा था, रुक गया। दरवाजे के वाहर से कुंठित कठ से निर्गत एक विनम्र सवोधन सुनाई पडा :

"मझली दीदी!"

पति-पत्नी मे दृष्टि-विनिमय हुआ। पति थोडा मुसकराया, स्नेह विकीर्ण नहीं हुआ उससे। स्त्री के गभीर मुद्रा में चुपचाप दरवाजे के पास आकर किष्टो की ओर देखते ही वह आह्लाद होकर वोला, "कैसी हो मझली दीदी?"

हेमांगिनी कुछ बोल नही पाई मुहूर्तभर। जिसके लिये पति-पत्नी मे अभी विवाद हो गया, अकस्मात् उसी को सामने पाकर विवाद की सारी कटुता उसी के सिर आ पडी। धीमी पर कडी आवाज में हेमागिनी ने कहा,''यहाँ क्या है? रोज-रोज तू क्यो यहाँ आता है, बता तो?''

किष्टो की छाती धकधकाने लगी। यह आवाज सचमुच इतनी कडी थी कि अभागे बालक का चेहरा भय, विस्मय और लज्जा से काला पड गया।

बोला,''देखने आया हूँ तुम्हे।''

विपिन ने हँसकर कहा,''देखने आया है तुम्हे।'' इस हँसी ने जैसे मुँह चिढाकर हेमागिनी का अपमान किया। चोट खायी नागिन की तरह एक बार उसने पति के चेहरे की ओर देखा, फिर मुँह फेर कर किष्टो से बोली,''तू यहाँ फिर कभी मत आना।— जा।''

''अच्छा, कहकर किष्टो अपने चेहरे की कालिमा को हँसी से ढकने जाकर अपने समूचे चेहरे को और अधिक काला, भद्दा, और विकृत बनाकर सिर नीचा किये वहाँ से चला गया।

उस विकृति की काली छाया अपने चेहरे पर लिये हेमागिनी ने फिर एक बार पति की ओर देखा, इसके बाद फौरन वहाँ से बाहर निकल गयी।

आठ

पाँच-छ दिन हो गये, पर अभी तक हेमांगिनी का बुखार नही छूटा। कल डाक्टर कह गये है कि छाती मे कफ जम गया है। अभी-अभी मँझवाती हुई है, ललित बढिया कपडे पहन के कमरे मे आकर बोला, ''माँ, दत्तबाबू के यहाँ पुतलियो का नाच होगा, मैं देखने जाऊँ?''

थोडा मुस्कराकर माँ ने कहा, ''हाँ रे ललित, तेरी माँ पिछले पाँच-छ दिन से बुखार मे पडी है, तू एक बार भी पास तक आ के नही बैठता।''

लज्जित होकर ललित सिरहाने आकर बैठ गया। माँ ने सस्नेह बेटे की पीठ पर हाथ रखकर कहा, ''मेरी यह बीमारी अगर न ठीक हो, अगर मैं मर जाऊँ, तब तू क्या करेगा? खूब रोयगा न?''

''धत्—ठीक हो जायगी,' कहकर ललित ने माँ की छाती पर एक हाथ रक्खा। माँ लडके का हाथ अपने हाथ मे लेकर चुप पडी रही। यह स्पर्श उसके ज्वर से उत्तप्त शरीर को जुडा देने लगा। माँ की इच्छा हुई कि इसी तरह वह और भी कुछ समय तक उसके पास बैठा रहे। पर थोडी ही देर बाद ललित बेचैनी महसूस करने लगा, पुतलियो का नाच शायद अब शुरू हो गया होगा, यह सोचकर भीतर ही भीतर उसका मन चचल हो गया।

लडके की मन की बात समझकर माँ को मन ही मन हँसी आ गयी। बोली, ''अच्छा जा, देख आ, ज्यादा रात न कर देना कही।''

''नही माँ, जल्दी ही आ जाऊँगा,''कहकर ललित कमरे से बाहर चला गया। पर दो-एक मिनट बाद ही लौट आकर बोला, ''माँ, एक बात कहूँ?''

माँ ने मुसकराते हुए कहा, ''एक रुपया चाहिए न? उस आले मे है, जा ले ले— देखना, ज्यादा न ले लेना कही।''

''नही माँ, रुपया नही चाहिये। कह रहा हूँ, सुनोगी?''

माँ ने विस्मित होकर कहा, ''रुपया नही चाहिये? तब क्या बात है रे?''

ललित और थोडा करीब जाकर फुसफुसाकर बोला, ''किष्टो मामा को एक बार आने दोगी? अन्दर नही आयेगा—उस दरवाजे पर खडा होके तुम्हे दूर से ही एकबार देख के चला जायगा। कल भी बाहर आके बैठा था, आज भी आकर बैठा है।''

हेमांगिनी व्यस्त होकर बिस्तर पर उठके बैठ गयी। बोली, ''जा जा ललित, अभी बुला ले आ— आह बाहर बैठा है, किसी ने मुझे बताया तक नही?''

''डर के मारे आना नही चाहता है न'', कहकर ललित चला गया। मिनट भर बाद किष्टो कमरे मे आके सिर नीचा करके दीवार से सट कर खड़ा हो गया।

हेमांगिनी ने पुकारा, "आओ भइया, यहाँ आओ।"

किष्टो उसी तरह स्थिर खड़ा रहा। तब वह खुद उठ आकर किष्टो का हाथ पकड़कर बिस्तर पर ले गयी। उसके पीठ पर हाथ फेरकर बोली, "क्यों रे किष्टो, तुझे डाँटा था इसलिए गुस्सा न अपनी मझली दीदी को भूल गया है?"

सहसा किष्टो ने फफककर रोना शुरू कर दिया। हेमांगिनी को कुछ अचंभा हुआ, क्योंकि किसी ने अभी तक उसे रोते नही देखा था। अशेष यंत्रणा पाकर भी वह चुपचाप सिर नीचा किये रहता है, लोगों के सामने कभी नही रोता। उसके इस स्वभाव को हेमांगिनी जानती थी, तभी अचंभे में आकर बोली, "छी. रोता क्यों है? मर्द बच्चे कहीं रोते हैं?"

प्रत्युत्तर मे किष्टो ने धोती के छोर को मुँह में ठूँस कर अपनी रुलाई को भरसक दबाने की कोशिश करते हुए कहा, "डाक्टर ने तो कहा है कि तुम्हारी छाती में कफ जमा है?"

हेमांगिनी हँस पड़ी, 'इसीलिए रो रहा है? कितना नासमझ है रे तू!' कहते-कहते उसकी अपनी आँखो से भी टपटप आँसू की दो बूँदें ढरक पड़ीं। बायें हाथ से आँखें पोंछकर उसके सिर पर एक हाथ रखके मजाक करती हुई बोली, "कफ जम गया है तो क्या हुआ। अगर मर भी गई तू और ललित कंधे पर उठाकर गंगाजी में डाल आना—क्यों, डाल आयेगा न?"

"मझली बहू, आज कैसी तबीयत है?" कहती हुई जेठानी दरवाजे पर आ खड़ी हुई। क्षण भर किष्टो की ओर तीखी नजर से देखती हुई बोली, "यह भी यहाँ आ पहुँचे हैं। यहाँ क्या मझली बहू के सामने रो-गाकर डिरामा किया जा रहा है। कितने नखरे आते हैं, यह पाजी!'

थककर हेमांगिनी अभी तकिये के सहारे आराम से बैठी थी, अब उठकर तनकर सीधी बैठ के बोली, "दीदी, छः-सात दिन से बुखार में पड़ी हूँ मैं, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अब आप जाओ।"

यह सुनकर पहले अकबका गयी कादम्बिनी। पर कुछ क्षण बाद संभल कर बोली, 'तुमसे तो मैं कुछ भी नही कह रही हूँ मझली बहू। अपने भाई का शासन कर रही हूँ। तुम मुझ पर इस तरह क्या गुस्सा कर रही हो?"

हेमांगिनी ने कहा, "शासन का काम तो तुम्हारा दिन-रात चलता रहता है—और करना हो तो घर जाकर करना, यहाँ मेरे सामने करने की जरूरत नहीं, करने भी नहीं दूँगी।"

"क्यों, तुम क्या घर से निकाल दोगी मुझे?"

हेमांगिनी ने हाथ जोड़कर कहा, "मेरी तबीयत बहुत खराब है दीदी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, या तो तुम चुप रहो—या जाओ।"

कादम्बिनी ने कहा, "क्या मैं अपने भाई को शासन नही कर पाऊँगी?"

हेमांगिनी ने जवाब दिया, 'अपने घर जाकर करना।"

"वह तो आज अच्छी तरह ही होगा। मेरी शिकायत करना निकाल दूँगी आज—बदमाश छोटा कहीं का। मैंने कहा गाय की रस्सी नही है किष्टो, दो आँटी पाट (पटसन) काट दे,—"नही दीदी, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, मैं पुतलियों का नाच देखने जाऊँगा"—यही शायद तेरा पुतली का नाच है रे? यह कहकर कादम्बिनी लंबे-लंबे डग भरती हुई चली गयी।

हेमांगिनी कुछ देर तक काठ की तरह बैठे रहकर लेट गयी। किष्टो से बोली, "क्यों नही तू पुतलियों का नाच देखने गया रे? अगर तू चला गया होता, तब तो यह सब नही होता आज। जब वे तुझे यहाँ नही आने देना चाहते भइया, तब तू मेरे पास अब और न आना।"

किष्टो बिना कुछ कहे धीरे-धीरे चला गया। पर फौरन लौटकर बोला, "हमारे गाँव की विशालाक्षी देवी बड़ी जाग्रत हैं मझली दीदी, उन्हें पुजापा चढ़ाने पर रोग दूर हो जाते हैं। तुम चढ़ाओ न मझली दीदी।"

अभी-अभी बेकार का जो झगड़ा हो गया उससे बहुत दुःखी हो गई थी हेमांगिनी, लड़ाई-झगड़े तो होते ही रहते हैं—इसलिए नहीं। आज के इस अजनबी बहाने को पाकर इस अभागे की जो दुर्दशा होने वाली है, इसी बात को सोचकर उसका हृदय क्षोभ और निरुपाय आक्रोश से पीड़ित हो रहा था। किष्टो के वापस लौट आते ही हेमांगिनी उठकर बैठ गयी, और उसे पास बैठाकर उसके बदन पर हाथ फेरते-फेरते

रोने लगी। आँखे पोछकर बोली, "मैं ठीक होकर तुझे चुपके से पुजापा चढाने भेज दूँगी। अकेला जा सकेगा न?"

उत्साह से दोनो आँखे फैलाकर किष्टो ने कहा, "हाँ, क्यो नही। तुम आज ही मुझे एक रुपया देकर भेज दो न, मझली दीदी—मैं कल सुबह ही पुजापा चढाकर तुम्हे प्रसाद ला दूँगा। उसे खाने पर फौरन तुम्हारी बीमारी दूर हो जायगी। आज ही भेज दो न मुझे मझली दीदी।"

हेमांगिनी ने देखा कि वह और अधिक इंतजार नही कर पा रहा है। उसने कहा, "लेकिन कल लौट आने पर ये लोग तुझे बहुत मारेगे।" मारने की बात सुन कर पहले किष्टो थोडा निरुत्साहित हो गया, पर कुछ ही क्षण बाद प्रफुल्लित होकर बोला, "भले ही मारे, तुम तो अच्छी हो जाओगी।"

उसकी आँखो मे फिर आँसू आ गये। बोली, "हाँ रे किष्टो, मैं तो तेरी कोई नही हूँ, तब मेरे लिये तू क्यो इतना सरदर्द मोल लेना चाहता है?"

कहाँ से पायगा किष्टो इस प्रश्न का उत्तर? वह कैसे समझाये कि उसका पीडित आर्त हृदय अहर्निश रो-रो कर अपनी माँ को खोजता फिर रहा है। कुछ क्षण उसके चेहरे की ओर देखकर बोला, "तुम्हारी बीमारी ठीक नही हो रही है न मझली दीदी— छाती मे कफ जम गया है न।"

हेमांगिनी ने इसबार थोडा मुसकराकर कहा, "मेरी छाती मे कफ जम गया है इससे तुझे क्या? तुझे इतनी चिन्ता क्यो हो रही है?"

किष्टो ने अचंभे मे आकर कहा, "चिन्ता नही होगी मझली दीदी, छाती मे कफ जमना बहुत बुरी चीज है। अगर बीमारी बढ गयी, तब?"

"तब मैं तुझे बुलवा भेजूँगी। लेकिन बिना बुलाये यहाँ और न आना भइया।"

"क्यो मझली दीदी?"

हेमांगिनी सिर हिलाकर दृढतापूर्वक बोली, "नही, तुझे मैं यहाँ अब और नही आने दूँगी। बिना बुलवाये अगर आ गया तो बहुत नाराज हूँगी।"

किष्टो ने सभीत उसके चेहरे की ओर देखकर पूछा, "तब बताओ कल सुबह कब बुलवा भेजोगी?"

"कल सुबह ही फिर तेरा आना जरूरी हो गया?"

अप्रतिभ होकर किष्टो बोला, "अच्छा, सुबह न हो तो दोपहर को आ जाऊँगा—ठीक है न मझली दीदी?"

उसके चेहरे से एक ऐसा व्याकुल अनुनय प्रस्फुटित हुआ जिसे देखकर हेमांगिनी मन ही मन व्यथित हुई। किन्तु अब उसे कठोर बनना ही पडेगा। सब ने मिलकर इस सरल असहाय बालक पर जो अत्याचार करना आरंभ कर दिया है, किसी भी हालत मे उसे और अधिक नही बढने दिया जा सकता। संभवत वह सहन कर सकता है, मझली दीदी से संपर्क बनाये रखने का दंड चाहे जितना प्रचंड क्यो न हो शायद वह उसे सहन करने से पीछे न हटे, लेकिन वह खुद इसे कैसे सहन कर सकती है?

हेमांगिनी की आँखो से आँसुओ की बाढ फूट पडी। तो भी उन्होने मुँह फेर कर रूखी आवाज मे कहा, 'मुझे परेशान न कर किष्टो, जा यहाँ से। बुलवा भेजने पर ही आना, नही तो जब-तब आकर मुझे दिक करने की कोई जरूरत नही।"

'नही परेशान तो नही कर रहा हूँ , कहकर भय और लज्जा से सिर नीचा किये हुए तत्क्षण वहाँ से उठकर चला गया किष्टो।

अब हेमांगिनी की आँखो से प्रस्रवण की भाँति जल झर कर गिरने लगा। स्पष्टतया उसने देखा कि यह निरुपाय अनाथ बालक अपनी माँ को खोकर उसे ही माँ समझकर अवलंब बना रहा है। उसी के आंचल की अत्यल्प छाया पाने के लिये न जाने क्या-क्या करता फिर रहा है।

हेमांगिनी ने आंखे पोछकर मन ही मन कहा, "भइया किष्टो, तू इस तरह दु:खी हो के चला गया, लेकिन तेरी यह मझली दीदी तो तुझसे भी अधिक असहाय है। तुझे जबरदस्ती अपने पास रख सके यह क्षमता उसमे नही है भइया।"

उमा ने आकर कहा, "माँ, कल किष्टो मामा तगादे के लिए न जाकर, तुम्हारे पास आकर बैठा था, इसलिये ताऊजी ने उसे ऐसा मारा कि नाक से . .

हेमांगिनी ने उसे झिडककर कहा, "अच्छा—हो गया—हो गया—जा तू यहां से।" यकायक डाँट खाकर उमा भौंचक रह गयी। और कुछ न कहकर धीरे-धीरे चली जाने लगी। माँ ने पुकारकर कहा, "सुन रे! नाक से क्या बहुत खून निकल रहा था?"

लौट आकर उमा ने कहा, "बहुत नही, थोडा सा।"

"अच्छा तू जा।"

उमा दरवाजे के पास आकर बोल उठी, "माँ, यह देखो किष्टो मामा खडा है यहाँ।"

किष्टो ने सुनी यह बात। सभवत इसे अपना स्वागत समझकर मुँह बढा के नलज्ज हँसी-हँसकर बोला, "कैसी तबीयत है मझली दीदी?"

क्षोभ, दु ख और अभिमान से अभिभूत होकर हेमांगिनी पागलो की तरह चिल्लाकर बोली, "क्यो आया है तू यहाँ? जा, कहती हूँ जा यहाँ से जल्दी। जा भाग यहाँ से—"

विमूढभाव से किष्टो टुकुर-टुकुर देखता रहा उसकी ओर, हेमांगिनी ने और अधिक तेज आवाज मे कहा, "गया नही नालायक, खडा है अभी तक?"

किष्टो सिर नीचा करके सिर्फ 'जा रहा हूँ' कहकर ही चला गया। उसके चले जाने पर हेमांगिनी निर्जीव की तरह बिस्तर पर लेटकर गुस्से से बडबडाने लगी, "सौ बार कह दिया है मैंने इस गधे को कि मेरे पास न आया कर—तो भी "मझली दीदी"—उमा! शिबू को कह देना तो कि उसे और इस घर मे न घुसने दे।"

उमा ने कोई जवाब नही दिया। चुपचाप चली गयी वहाँ से।

रात को हेमांगिनी ने पति को बुलवा कर रोआँसी आवाज मे कहा, "अभी तक कभी तुम से मेने कुछ नही माँगा है— आज अपनी इस बीमारी के वक्त तुमसे एक भीख माँग रही हूँ—दोगे?"

संदिग्ध भाव से विपिन ने पूछा, "क्या चाहिये?"

हेमांगिनी बोली, "किष्टो को दे दो मुझे—वह बेचारा बडा दु खी—मा-बाप नही है उसके—वे लोग उसे मारे डाल रहे हैं,—यह और मुझसे नही देखा जा रहा है।" हल्की मुसकराहट के साथ विपिन ने कहा, "तब आँखे बद किए तो रह सकती हो।"

पति के इस निष्ठुर उपहास ने हेमांगिनी को बरछी की तरह बेध दिया, किसी और समय वह इसे नहीं सह पाती, पर आज परिस्थिति सर्वथा भिन्न थी—दु ख से उसके प्राण निकले जा रहे थे, तभी उसे सह कर जोड के बोली, "मैं कसम खाकर कह रही हूँ कि मैं उसे अपनी कोख के बच्चे की तरह प्यार करती हूँ—उसे लाकर दे दो मुझे—मैं उसे पालूँ-पोसूँ—खिलाऊँ-पहनाऊँ—उसके बाद तुम लोगो की जो इच्छा हो सो करना। वह जब बडा हो जायगा मैं कुछ भी नही कहूँगी।"

विपिन ने थोडा नरम होकर कहा, "वह क्या मेरे बखार का चावल धान है कि तुम्हारे कहते ही मै उसे तुम्हे ला दूँगा। वह किसी दूसरे का भाई है दूसरे के घर आया है—तुम बीच मे पडकर उससे ममता का नाता क्यो जोड रही हो?"

हेमांगिनी रोने लगी। थोडी देर बाद आँखे पोछकर बोली, "तुम अगर चाहो तो जेठजी को कहकर, दीदी को कहकर, बडी आसानी से उसे ला सकते हो। तुम्हारे पैरो पडती हूँ, ला दो उसे तुम।"

विपिन ने कहा, "अच्छा मान लो अगर यह हो भी जाय, तो मैं ही ऐसा कौन अमीर आदमी हूँ कि उसे पालपोस के बडा कर सकूँगा?"

हेमांगिनी ने कहा, "पहले तुम मेरी छोटी-छोटी बातो तक की उपेक्षा नही करते थे, अब मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि जब मैं इतने आग्रह के साथ कह रही हूँ सचमुच मेरी जान निकली जा रही है, तो भी मेरी इस मामूली बात को भी तुम नही मानना चाह रहे हो? वह बेचारा असहाय है इसलिये क्या तुम लोग सब मिलकर उसे मार डालोगे? मैं उसे अपने पास बुलाऊँगी, देखती हूँ वे क्या करते हैं।"

सुनकर रुष्ट हो गया विपिन। बोला, "मैं उसे बिलकुल नहीं खिला-पिला सकता।"

हेमांगिनी ने कहा, "इसका जिम्मा मैं लेती हूँ। क्या मैं इस घर की कोई नही हूँ कि अपने लडके को भी मैं खिला-पिला नही सकती? कल ही मैं उसे अपने पास लाकर रक्खूँगी। उन लोगो ने अगर जबरदस्ती या कोई बेजा हरकत की तो मैं उसे थाने के दारोगा के पास भेज दूँगी।"

अगले दिन सुबह से ही बारिश हो रही थी। हेमागिनी अपने कमरे की खिडकी खोलकर आसमान की ओर देख रही थी, एकाएक उसे पॉचू गोपाल की ऊँची आवाज सुनाई दी। वह चिल्ला कर कह रहा था, माँ, देखो तुम्हारा लायक भाई बारिश मे भीगते हुए आ पहुँचा है।"

'झाडू कहाँ है रे? आ रही हूँ मैं,' कहकर कादम्बिनी तुरत घर से बाहर निकल आई। फिर एक गमछा सिर पर डालकर तेजी से सदर दरवाजे की ओर चली गई।

हेमांगिनी की छाती धडकने लगी। ललित को बुलाकर बोली, "बेटा, जा तो थोडा उस घर की ड्योढी पर। देख तो तेरा किष्टो मामा कहाँ से चला आ रहा है।"

ललित दौडता हुआ चला गया, और थोडी देर बाद लौटकर बोला, "पॉचू दा ने उसे मुरगा बना रक्खा है और पीठ पर दो अद्धा ईटे रख दी हैं।"

अपने सुखे चेहरे पर व्यग्रता लाकर हेमागिनी ने पूछा, "क्या किया था उसने?"

ललित ने कहा, "कल दोपहर को उसे अहीरो के यहाँ तगादे के लिए भेजा था, तीन रुपये वसूल हुए थे। इन्हे लेकर वह कही चला गया था, सब रुपये खर्च करके अभी आ रहा है।"

हेमांगिनी ने बात पर यकीन नही किया। बोली, "किसने कहा कि उसने रुपये वसूल किये थे?"

"लछमन ग्वाला खुद आकर कह गया है," कहकर ललित अपने पढने के कमरे मे चला गया।

दो-तीन घटे और कोई हल्ला-गुल्ला नही सुनाई पडा। दिन के दस बजे उसे खाने के लिए कुछ रोटी-तरकारी दे गयी थी, हेमागिनी खाने को बैठने ही जा रही थी कि इतने मे उसी के कमरे के बाहर कुरुक्षेत्र मच गया। बडी बहू के पीछे-पीछे पॉचू गोपाल किष्टो का कान पकडकर खीचे ले आ रहा है, साथ मे बडे मालिक नवीन भी हैं। मझले मालिक को बुलाने के लिए आदमी दुकान पर गया है।

हेमागिनी ने सिर पर घूँघट डालकर कमरे के एक तरफ जाकर खडे होते ही बडे मालिक ने तीखी और कडी आवाज मे बोलना शुरू कर दिया, "तुम्हारी वजह से हम लोग अब और टिक नही पा रहे हैं इस घर मे मझली बहू।" विपिन को कहो कि हमारे घर की कीमत दे दे जिससे हम लोग और कही चले जायँ।"

विस्मय से हतबुद्धि होकर हेमांगिनी चुपचाप खडी रही। तब बडी बहू ने युद्ध-परिचालन दायित्व अपने हाथ मे ले के ठीक दरवाजे के सामने आकर मुँह-हाथ हिलाती हुई बोली, "मझली बहू, मैं तुम्हारी जेठानी हूँ, तो भी मुझे ही तुम कुत्ता-बिल्ली समझती हो—ठीक है, मर्जी तुम्हारी, लेकिन मैंने हजार बार कहा है कि झूठे और दिखावटी प्यार से मेरे भाई का दिमाग मत खराब किया करो—हो गया न अब? दो-दिन लाड-प्यार करना आसान है, पर हमेशा के लिए तो उसकी जिम्मेदारी तुम नही लोगी—वह तो मेरे ही सिर पर रहेगी।"

हेमागिनी ने इसे केवल जेठानी का कटुभाषण और आक्रमण ही समझा—और कुछ नही। उसने धीमी आवाज मे पूछा, "क्या हुआ है?"

कादम्बिनी ने इस बार और ज्यादा हाथ-मुँह हिला के कहा, "अच्छा हुआ है—बहुत बढिया हुआ है। तुम्हारे सिखाने-पढाने की वजह से वसूल किये हुए रुपये चुराना सीख गया है—और दो दिन पास बुला के और दो-चार बाते सिखा दोगी तो सिदूक तोडना और सेध लगाना भी सीख जायगा।"

हेमांगिनी बीमार तो थी ही, तिस पर इस अशालीन ताने और झूठे इलजाम से उसने अपना मानसिक सतुलन खो दिया। इससे पहले कभी भी वह किसी भी कारण से जेठ के सामने नही बोली थी, पर आज सब्र नही कर पाई। मृदु स्वर मे बोली, "मैंने क्या उसे चोरी-डकैती करना सिखा दिया है दीदी?"

बडे सहजभाव से कादम्बिनी ने कहा, "मुझे क्या पता कि तुमने उसे क्या सिखाया है या नही सिखाया है। ऐसी आदत तो पहले नही थी उसकी, अब कैसे हो गई? फिर, इतनी गुपचुप बातचीत ही क्या होती है तुम लोगो की, और उसे इतना लाड-प्यार देने की भी क्या जरूरत है? न जाने कितने दिन का पुजीभूत अवरुद्ध विद्वेष आज इस छोटे से पथ को पाकर बाहर निकल आया, उसे जो सब कुछ देखते हैं, वे ही देख पाये।

एक मुहूर्त के लिए हेमागिनी ज्ञानहत की भाँति स्तभित बनी रही। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को ऐसा निष्ठुर आघात, ऐसा निर्लज्ज कर सकता है, इसे जैसे उसका मस्तिष्क ग्रहण नही कर पा रहा था। पर यह

स्थिति मुहूर्तभर ही रही। दूसरे ही क्षण वह एक घायल सिंहनी की तरह अपनी आँखो में आग जलाये कमरे से बाहर चली आयी। जेठ को सामने देखकर घूँघट और लंबा कर दिया, लेकिन अपने गुस्से पर काबू नही कर पाई। जेठानी को सम्बोधित करके धीमी पर कडी आवाज मे बोली, "तुम इतनी नीच हो कि तुमसे बात करने मे भी मुझे घृणा का बोध होता है। तुम इतनी बेहया औरत हो कि तुम उस छोकरे को अपना भाई भी कह रही हो। आदमी जानवर पालने पर उसे भी पेटभर खाना देता है, लेकिन उस अभागे को गधे की तरह खटा के भी तुम लोगो ने आज तक उसे एक भी दिन पेट भर खाना नही दिया। मैं अगर न रहती तो अब तक वह बिना खाये ही मर गया होता। वह सिर्फ अपने पेट की आग को बुझाने ही मेरे पास दौडा चला आता है, लाड-प्यार पाने के लिए नही।"

जेठानी ने कहा, "हम लोग उसे पेटभर खाना नही देते—खाली खटाते हैं—और खाना देकर तुमने ही उसे जिन्दा रक्खा है?"

हेमांगिनी ने जवाब दिया, "बिलकुल यही बात है। आज तक कभी तुम लोगों ने उसे दो जून खाना नही दिया है—सिर्फ मारा पीटा है और खटाया है मन भर के। तुम्हारे डर से मैंने उसे बार-बार मना किया है कि यहाँ मत आया करो, लेकिन वह भूख नही बरदाश्त कर पाता, और मेरे यहाँ उसे पेट भर खाना मिल जाता है तभी दोडा चला आता है—चोरी डकैती की सलाह लेने नही आता। पर तुम लोग इतने ईर्ष्यालु हो कि इसे भी नही सहन कर पाते।"

इस बार जेठजी बोल उठे। किष्टो को सामने लाकर उसकी धोती के छोर की गाँठ खोलकर उन्होंने केले के पत्ते का एक ठोंगा निकाल के गुस्से से कहा, "हम लोग ईर्ष्यालु हैं। क्यो हम लोग उसे अच्छी नजर से नही देखते इसे तुम अपनी आँखो से खुद देख लो। तुम्हारे सिखाने से ही वह मझली बहू, मेरे रुपये चुरा कर तुम्हारी भलाई के लिए न जाने किस देवता पर पुजापा चढाकर प्रसाद लाया है—यह लो", यह कह कर उन्होंने दो-एक संदेश, फूल और बेलपत्ते ठोंगा मे से बाहर निकाल कर दिखाये।

कादम्बिनी ने अचंभे से आँखे फाडकर कहा, "अरी मैय्या! कितना छिपा रुस्तम है, कितनी लंबी दाढी है इसके पेट मे। अब तुम्ही बताओ मझली बहू, क्यो उसने चोरी की है? क्या मेरी भलाई के लिए?"

क्रोध से हेमांगिनी ने अपना विवेक खो दिया। एक तो वह अस्वस्थ थी ही, फिर ये तमाम झूठे आरोप। जल्दी से किष्टो के सामने आकर उसके दोनो गालो पर उसने कसके दो थप्पड जमाये। बोली, "बदमाश, चोर, मैंने तुझे चोरी करना सिखाया है? कितने दिन तुझे मैंने यहाँ आने को मना किया है, कितनी ही बार तुझे यहाँ से निकाल दिया है। मुझे अब साफ लग रहा है कि तू चोरी के ख्याल से ही जब-तब मेरे कमरे में ताक-झाँक किया करता था।"

इससे पहले ही घर के सब लोग मौजूद हो गये थे वहाँ। शिबू ने कहा, "मैंने अपनी आँखो से देखा है माँजी कि परसो रात को वह आपके कमरे के सामने अँधेरे मे खडा था, मुझे देखते ही वहाँ से भाग गया। मैं अगर न आ पडता तो वह जरूर आपके कमरे मे घुसकर चोरी करता।"

पाँचू गोपाल बोला, "वह जानता है कि मझली काकी बीमार हैं—शाम होते ही सो जाती हैं, तभी वह यहाँ आता है चोरी के खयाल से। बहुत काँइयाँ है।"

मझली बहू के किष्टो के प्रति किये गये आज के व्यवहार से कादम्बिनी जितनी प्रसन्न हुई उतनी पिछले सोलह साल मे कभी नही हुई थी।

बेहद खुश होकर बोली, "भीगी बिल्ली बना रहता है। मुझे पता नही था मझली बहू कि तुमने उसे अपने घर आने को मना कर दिया है। वह तो कहता फिरता है कि मझली दीदी मुझे माँ से भी ज्यादा प्यार करती है।"

फिर उसने ठोंगे सहित प्रसाद-निर्माल्य को बाहर फेककर कहा, "रुपये चुरा कर न जाने कहाँ से इन सब को ले आया था।"

किष्टो को घर ले जाकर बडे मालिक ने उसे चोरी की सजा देनी शुरू की। अकल्पनीय निर्दय प्रहार। पर किष्टो न बोला, न रोया। इधर मारने पर उधर मुँह फेर लेता, उधर मारने पर इधर। भारी गाडी के साथ दलदल में फँसकर बैल जिस तरह मार खाते हैं वैसे ही किष्टो चुपचाप मार खाता रहा। यहाँ तक कि कादम्बिनी ने भी स्वीकार किया कि हाँ, वाकई छोकरे ने मार खाना सीखा है। पर भगवान जानते हैं कि

यहाँ आने से पहले उसके सरल स्वभाव के कारण किसी ने कभी उस पर हाथ नही उठाया था।

हेमांगिनी अपने कमरे की तमाम खिडकियाँ बद करके काठ बनी अन्दर बैठी थी। उमा मार देखने गयी थी उस घर मे, लौटकर बोली, "ताईजी कह रही थी कि बडा होने पर किष्टो मामा डाकू बनेगा। उसके गॉव मे एक देवी हैं—"

"उमा—?"

मॉ के अश्रुविकृत कठस्वर को सुनकर चौंक पडी उमा। पास आकर डरते-डरते पूछा, "क्या है मॉ?"

हॉ रे, अब भी क्या उसे सब मिलकर मार रहे है?" कहकर वे फर्श पर औंधी गिरकर रोने लगी।

मॉ को रोता देखकर उमा भी रोने लगी। फिर, पास बैठकर अपने ऑचल से मॉ की ऑखे पोछकर बोली, "प्रसन्न की मॉ किष्टो मामा को बाहर खीचकर ले गई है।"

हेमांगिनी और कुछ नही बोली। वहीं उसी तरह पडी रही। दिन के दो-तीन बजे एकाएक तेज बुखार आ गया उसे। कॅपकॅपी महसूस होने लगी। आज बहुत दिन बाद पथ्य करने जा रही थी वह—उसका वह खाना एक तरफ पडा सूखने लगा।

सध्या के बाद विपिन उस घर मे भाभी से सारी बाते सुनकर क्रुद्ध होकर स्त्री के कमरे मे घुस रहा था, उमा ने पास आकर फुसफुसाकर कहा, "मॉ बुखार से बेहोश पडी हैं।"

विपिन चौंक पडा, "ऐ, तीन-चार दिन तो बुखार नही था।"

विपिन भीतर ही भीतर अपनी स्त्री को बहुत चाहता था। कितना चाहता था यह, चार-पॉच साल पहले जब अपने बडे भाई से अलग हुआ था, तब पता चला था। व्याकुल होकर कमरे मे घुस के उसने देखा कि वह तब भी फर्श पर पडी थी। जल्दी से उसे उठाकर बिस्तर पर सुलाने के लिए जैसे ही उसने उसके बदन पर हाथ रक्खा, हेमांगिनी ने ऑखे खोलकर क्षणभर उसकी ओर देखा। फिर अकस्मात् उसके दोनो पैरो को पकडकर रोती हुई बोली, "किष्टो को अपने घर आश्रय दो, नही तो मेरा यह बुखार ठीक नही होगा। दुर्गामाता मुझे कभी क्षमा नही करेगी।"

विपिन ने अपने पैरो को छुडा लिया। इसके बाद पास बैठकर स्त्री के सिर पर हाथ फेर कर सात्वना देने लगा।

हेमांगिनी ने फिर कहा, "उसे आश्रय दोगे?"

विपिन ने अपनी सजल ऑखे हाथ से पोछकर कहा, "तुम जो चाहती हो वही होगा, तुम ठीक हो जाओ।"

हेमांगिनी ने और कुछ नही कहा, बिस्तर पर जाकर सो गयी।

बुखार रात को ही छूट गया। अगले दिन सुबह इसे देखकर विपिन बहुत खुश हुआ। हाथ-मुँह धो के कुछ जलपान करके वह दुकान जा रहा था, तभी हेमांगिनी ने आकर कहा, "कल मार खाकर किष्टो को बहुत बुखार आ गया है, मैं उसे अपने यहॉ ले आ रही हूँ।"

मन ही मन विपिन बहुत नाराज होकर बोला, "उसे यहॉ लाने की क्या जरूरत है? वह जहॉ है वही रहने दो न उसे।"

क्षणभर स्तंभित रहकर हेमांगिनी ने कहा, "कल रात को ही तो तुमने वायदा किया था कि उसे आश्रय दोगे।"

अवज्ञा से सिर हिलाकर विपिन बोला, "हॉ, वह हमारा कौन है कि उसे घर लाकर पोसना पड़ेगा। तुम भी अजीब हो।"

कल रात को स्त्री को अत्यन्त अस्वस्थ देखकर जिस बात को स्वीकार कर लिया था, आज सुबह उसे स्वस्थ देखकर उसी बात को तुच्छ कर दिया। छत्ता बगल दबाकर खडे होके कहा, "यह पागलपन हरगिज न करना, वे लोग बहुत नाराज होगे।"

हेमांगिनी ने शान्त-दृढ़ स्वर मे कहा, "वे लोग नाराज होकर क्या उसे मार डाल सकते हैं, या मेरे ले आने पर उसे रोक सकते हैं? मेरे दो बच्चे थे, कल से तीन हो जायेगे। मैं किष्टो की मॉ हूँ।"

"अच्छा, वह तब देखा जायगा, कहकर विपिन चलने लगा, हेमांगिनी ने उसका रास्ता रोककर

कहा, "यहाँ उसे नहीं लाने दोगे?"

"हटो, हटो,—क्या पागलपन कर रही हो?" कहकर विपिन आँखे लाल करके चला गया।

हेमांगिनी ने पुकार के कहा, "शिबू, एक बैलगाडी ले आ, मैं मैके जाऊँगी।"

विपिन सुनकर मन ही मन हँसकर बोला, "ओह! डराया जा रहा है।" इसके बाद वह दुकान पर चला गया।

किष्टो चण्डीमडप के एक किनारे एक फटी चटाई पर बुखार, बदन और छाती के दर्द से आच्छन्न होकर चुपचाप पडा था।

हेमांगिनी ने पुकारा, "किष्टो!"

किष्टो जैसे तैयार ही था, तडाक् से उठ के बैठकर बोला, "मझली दीदी!"

दूसरे ही क्षण एक सलज्ज हँसी से उसका पूरा चेहरा दमक उठा। जैसे उसे कोई बीमारी या शिकायत न हो, इसी तरह वह बडे उत्साह के साथ उठकर खडा हो गया, अपनी धोती की छोर से फटी चटाई झाडते-झाडते बोला, "बैठो।"

हेमांगिनी ने उसका हाथ पकडकर उसे खीचके अपनी छाती से लगा लिया। बोली, "अब बैठने का वक्त नही है भइया, आ मेरे साथ। मुझे मेरे मायके पहुँचा देना पडेगा आज तुझे।"

"चलो, कहकर किष्टो ने अपनी टूटी छडी बगल मे दबायी और फटा गमछा कधे पर डाला।"

हेमांगिनी के अपने घर के सदर दरवाजे पर बैलगाडी खडी थी। किष्टो को लेकर वह गाडी पर चढ गयी। गाडी जब गाँव के सिवान को छोड गयी, तब पीछे से पुकार और चिल्लाहट सुन के गाडीवान ने गाडी रोक दी। पसीने से लथपथ और चेहरा लाल किये विपिन आ पहुँचा। सभय प्रश्न किया, "कहा जा रही हो मझली बहू?"

हेमांगिनी ने किष्टो को दिखाकर कहा, "इसके गाँव मे।"

"कब वापस लौटोगी?"

हेमांगिनी गभीर तथा दृढ स्वर मे उत्तर दिया, "भगवान जब लौटायेंगे तभी लौटूँगी।"

"इसका मतलब?"

हेमांगिनी ने फिर किष्टो को दिखाकर कहा, "अगर कभी इसे कही कोई आश्रय मिला, तभी मैं अकेले लौट सकूँगी, नही तो इसे ले के ही रहना पडेगा।'

विपिन को याद आ गया कि उस दिन भी उसने अपनी स्त्री का ऐसा ही चेहरा देखा था और उसकी ऐसी ही आवाज सुनी थी, जिस दिन मोती लुहार के असहाय भानजों के बगीचों को बचाने के लिए वह अकेले सबके खिलाफ कमर कस के खडी हो गयी थी। वह समझ गया कि यह मझली बहू वह नही है जिसे आँखे लाल कर के दबाया जा सके।

विपिन ने नम्रतापूर्वक कहा, "मुझे माफ कर दो मझली बहू, घर चलो।"

हेमांगिनी ने हाथ जोडकर कहा, "मुझे तुम माफ कर दो—बिना काम पूरा किये मैं किसी तरह घर नही लौट सकती।"

विपिन एक क्षण और अपनी पत्नी के शान्त और दृढ़ चेहरे की ओर चुपचाप देखता रहा, फिर एकाएक किष्टो के दाहिने हाथ को पकड के बोला, "किष्टो, अपनी मझली दीदी को तू घर वापस ले आ भइया। मैं कसम खा के कह रहा हूँ कि जब तक मैं जिन्दा हूँ तब तक तुम दोनों भाई-बहन को आज से कोई अलग नही कर पायेगा। आ भइया, अपनी मझली दीदी को घर वापस ले आ।"
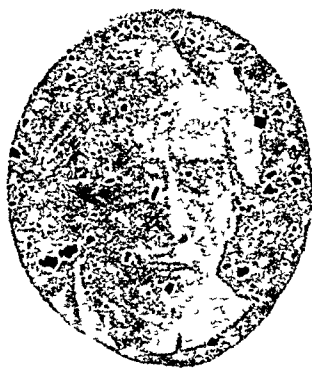
शरत् की कहानियां

- हरिलक्ष्मी
- अनुपमा का प्रेम
- अंधकार में आलोक
- तसवीर
- सती
- एकादशी बैरागी

हरिलक्ष्मी

१

जिस घटना को लेकर इस कहानी की रचना हुई, वह बहुत ही छोटी है। इस घटना के सहारे लक्ष्मी के जीवन मे जो कुछ हो गया है, वह साधारण भी नही है और तुच्छ भी नही है। ससार मे ऐसा ही होता है। बेलपुर मे रहने वाले दो पट्टीदार, शान्त नदी के किनारे एक जहाज के साथ एक छोटी-सी नौका निरुपद्रव भाव से उससे बधी हुई थी। अकस्मात नदी के जल मे ऐसी तूफानी तरगे आई कि जहाज के साथ बँधी हुई रस्सी कट गई, लगड छिन्न-भिन्न हो गया और एक क्षण मे ही वह छोटी-सी नौका कहाँ चली गयी, इसका पता किसी को भी न लगा।

बेलपुर ताल्लुका बहुत बडा नही है। असामियो को अत्यन्त डाँटने-डपटने और बहुत कोशिश करने पर भी इस ताल्लके की आमदनी बारह हजार साल से ऊपर नहीं आती। इस ताल्लुके के साढ़े पन्द्रह आने के मालिक शिवचरण और दो पैसे का विपिन बिहारी है। इस प्रकार दोनो की तुलना यदि जहाज और नौका से की जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

दूरी होने पर भी इन दोनो का घराना छ सात पीढ़ी पहले एक ही था और दोनो घराने एक ही मकान मे रहा करते थे, किन्तु आज एक की तीन तल्ला अट्टालिका गाँव के माथे पर चढ़ी जा रही है और दूसरे की टूटी-फूटी मडइया जमीन मे विलीन होती जा रही है।

इसी हालत मे विपिन बिहारी के दिन कटते जा रहे थे और जैसे-तैसे दु ख-सुख भोगते कट जाते, परन्तु हठात् उसके जीवन मे एक तुषारापात हो गया।

साढ़े पन्द्रह आने के मालिक शिवचरण की स्त्री का अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। बन्धु-बान्धवो ने शिवचरण को समझा-बुझा और जोर देकर कहा—"अभी तो तुम्हारी अवस्था ४० वर्ष की ही है। तुमको जिन्दगी के अपार दिन काटने हैं। तुम्हे दूसरा विवाह अवश्य कर लेना चाहिये।" परन्तु उसके शत्रु सुनकर हँसे और बोले—"अरे भाई, चालीस तो चालीस साल पहले ही पार हो गया है अर्थात् कोई भी सत्य नहीं है। असली बात यह है कि इनका नाजुक शरीर, दिव्य गौरवर्ण जिस पर रोम का चिह्न मात्र भी नही है। दाढ़ी मूछ बनाने की पूरी सुविधा है, इतना होते हुए भी असुविधाएँ भी बहुत हैं। उनकी अवस्था का अनुमान लगाते समय आदमी नीचे की तरफ तो जा ही नही सकता। ऊपर चढ़ कर कहाँ पर ठहरे, इसका किसी को थाह नही लग सकता। जो हो, धनवानों का अवस्था के ख्याल से किसी भी देश मे विवाह नही रुक सकता, बगाल का तो कहना ही क्या है। महीने-डेढ़ महीने के शोक-संताप के बाद ही शिवचरण का विवाह हरिलक्ष्मी से हो गया। वह उसे विवाह कर अपने घर मे ले आये। सूना घर सोलह कलाओ से पूर्ण हो गया। शत्रु-पक्ष के आदमी कुछ भी क्यो न कहे, यह बात माननी ही पड़ेगी कि प्रजापति, जो विवाह के देवता हैं, उन पर अति प्रसन्न थे। कुछ लोगों ने गुप-चुप बातचीत की, 'यह बात नही कि वर की तुलना मे वधू की उमर बिलकुल कम हो, परन्तु यदि दो-चार बाल बच्चे साथ लेकर घर मे आती तो फिर कहने सुनने की कोई बात ही न रह जाती। वह अति सुन्दरी है, यह बात सभी ने स्वीकार की। असल बात यह है कि साधारणत. बडी उमर की लडकियों से भी लक्ष्मी की उमर कुछ ज्यादा हो गयी थी। शायद उन्नीस से कम न होगी। उसके पिता आधुनिक युग के नवीन फैशन में ढले हुए व्यक्ति हैं। उन्होंने बडी कोशिश से अपनी लड़की को मैट्रिक तक पढ़ाया था। उनकी इससे भी आगे कुछ इच्छा थी, लेकिन रोजगार मे घाटा लगने से दरिद्र हो गये और उनको बाध्य होकर ऐसे सुपात्र को कन्या देना पडा।

हरिलक्ष्मी शहर की लडकी है। उसने दो-चार रोज मे ही अपने स्वामी को पहचान लिया है। उसके लिए कठिनता यह हुई कि वह अपने छोटे-बडे व्यक्तियों के बहुत बड़े परिवार मे अच्छी तरह मिल-जुल न सकी। उधर शिवचरण के प्रेम का कोई अन्त न रहा। यह प्रेम वृद्ध की तरुणी स्त्री होने के नाते नहीं, मानो शिवचरण ने एक अनमोल निधि प्राप्त कर ली है। घर के अपने और अपनों का दल कहाँ, किस प्रकार से उसके मन को खुश करें, इसकी कोशिश सभी करते रहते थे।

एक बात वह प्राय. ही सुना करती—अब तो मझली बहू के मुँह पर काली पुत गयी है। विद्या-बुद्धि और गुण सभी में उसका गर्व चूर्ण हो गया है।

परन्तु इतना करने पर भी कुछ फल न हुआ। दो महीनो के अन्दर ही हरिलक्ष्मी बीमार हो गयी। इसी बीमारी की हालत मे एक दिन मझली बहू से उसकी भेट हुई। यह विपिन विहारी की स्त्री है। बडे मकान में नववधू को बुखार चढ़ा है, ऐसा सुनकर वह इसे देखने आयी है। उमर में यह नवीन बहू से दो-तीन वर्ष बडी होगी। यह भी एक सुन्दरी है, यह बात मन ही मन हरिलक्ष्मी ने स्वीकार कर ली। किन्तु इसी उमर मे ही दरिद्रता के भीषण चिह्न उसके शरीर से मालूम हो रहे थे। उसके साथ में एक छ. वर्ष का लडका था वह भी रोगी। हरिलक्ष्मी ने उसे अपने पलग पर एक तरफ बैठा लिया और एकटक देखने लगी। उसने बडे गौर के साथ देखा, हाथ मे कुछ सोने की चूडियों को छोड़कर और कोई भी गहना उसके शरीर पर नही है। वह एक मैली रगीन किनारे की धोती पहन कर आयी है। शायद उसके पति की है। ग्राम्य-प्रथा के अनुसार लडका नगा-धडगा नही है, उसकी कमर मे भी एक पीले रग में रगी धोती बँधी हुई है।

हरिलक्ष्मी उसका हाथ पकड कर धीरे-धीरे बोली—"भाग्य से मुझे बुखार चढ़ गया तो आपके दर्शन हो गये। परन्तु रिश्ते में तुम्हारी जेठानी लगती हूँ। मझली बहू, सुना है हमारे देवर जी इनसे बहुत छोटे हैं।"

मझली बहू ने हँसते हुए कहा—"रिश्ते में छोटा जानकर किसी को आप कह कर पुकारा जाता है?"

हरिलक्ष्मी बोली—"यह पहला दिन था इसलिए मैंने 'आप' शब्द का व्यवहार किया है, तुम सच मानो मैं अपनों में ऐसे शब्द का व्यवहार नही करती। परन्तु मैं तुमको भी कह देती हूँ कि तुम मुझे जीजी कहकर मत पुकारना। यह बात मैं सहन नहीं कर सकूँगी। मेरा नाम है लक्ष्मी। समझी?"

मझली बहू ने कहा—"नाम नही बताना पडता। आपको देखने से ही पता चल जाता है। मेरा नाम जानती हो? किसी ने दिल्लगी से कमला रख दिया था।" इतना कह कर वह कौतुकवश हँसने लग गयी।

हरिलक्ष्मी की इच्छा हुई कि वह भी प्रतिवाद करके कहे कि तुम्हारा मुँह देखते ही तुम्हारा नाम समझ मे आ जाता है, किन्तु ऐसा कहना उसने उचित नही समझा। वह बोली—"हमारे नामो का माने एक है, किन्तु मझली बहू, मैं तुमको 'तुम' कह सकी हूँ, लेकिन तुममे यह बात नही आयी।"

मझली बहू ने हँसते हुए उत्तर दिया—"सहज ही ऐसा नही कर सकी हूँ। एक उमर छोडकर सब विषयो मे तुम मुझसे बडी हो। दो दिन बीतने दो न, जरूरत पडने पर बदलने मे कितनी देर लगती है?"

हरिलक्ष्मी के मुँह से तुरत-फुरत इसका उत्तर नही निकला, लेकिन उसने मन ही मन समझ लिया कि पहले ही दिन की मुलाकात मे यह अधिक खुलकर बाते करना नहीं चाहती, उसके कुछ कहने से पहले ही मझली बहू उठती-उठती बोली—"अच्छा जीजी, आज तो जाती हूँ, कल फिर—"

हरिलक्ष्मी चकित होकर बोली—"अभी क्यो जाओगी, जरा बैठो।"

मझली बहू बोली—"आपके हुक्म करने पर तो बैठना ही होगा, किन्तु आज जाने की आज्ञा दो जीजी। उनके आने का समय हो गया।" यह कहकर वह उठ खडी हुई और लडके का हाथ पकड कर जाने से पहले पुलकित मन से बोली—"जा रही हूँ जीजी, कल जरा जल्दी आऊँगी। क्यो?" यह कहती हुई धीरे-धीरे बाहर की तरफ चली गयी।

विपिन की स्त्री के चले जाने पर हरिलक्ष्मी उसकी तरफ बहुत देर तक देखती रही। इस समय उसे बुखार नही था, थोडी ग्लानि थी। कुछ देर के लिए वह समस्त दु खों को भूल गयी थी। उसकी बीमारी के दिनो में गाँव की कितनी ही बहू-बेटियाँ उसे देखने के लिए आयी, लेकिन किसी के भी रूप-गुण की तुलना वह पडोस के मकान के दरिद्र घर की बहू के साथ न कर सकी। वे अपने आप आई और उठना ही नही चाहती थी, और बैठने के लिए कहा गया तो फिर कहना ही क्या? उनमें कितनी चपलता, कितनी वाचालता थी, मनोरञ्जन करने के लिए कितना लज्जाजनक प्रयास था उनका! बोझ से दबा हुआ उसका मन विद्रोही हो उठा है। किन्तु उन्ही मे से अकस्मात यह कौन आकर उसकी रोग शय्या के पास कुछ क्षणों के लिए, अपना ऐसा सुन्दर परिचय दे गयी? उसके मायके की बात पूछने का समय नही मिला, बिना पूछे ही लक्ष्मी न जाने कैसे जान गयी कि उसकी तरह वह कलकत्ते की लडकी हरगिज नही। इसके

लिए विपिन की स्त्री प्रसिद्ध है कि गाँव मे रहने वाली होने पर भी पढ़ी-लिखी है। हरिलक्ष्मी ने सोचा, शायद मझली बहू स्वर के साथ रामायण-महाभारत पढ़ सकती है, परन्तु इससे अधिक और कुछ नही। जिस पिता ने विपिन जेसे दीन दु खी के हाथ अपनी कन्या सौंपी है, उसने कोई घर पर मास्टर रखकर और स्कूल मे पढाकर पास करा के कन्यादान नही किया होगा।, उसका रग उज्ज्वल श्याम वर्ण है—पर गौर नही कहा जा सकता। रूप की बात जाने दो— शिक्षा, सस्कार, अवस्था, किसी भी बात मे विपिन बिहारी की स्त्री उसके सामने टिक नही सकती। परन्तु एक बात मे लक्ष्मी ने अपने को मानो उससे भी छोटा समझा। वह था उसका कठस्वर। मानो वह सगीत हो, और बात करने का ढँग तो मानो मधु से भरा हुआ था। जरा भी जडता नही, इतनी सहज-सरल बात-चीत थी उसकी कि मानो वह अपने घर से कण्ठस्थ कर लाई हो। परन्तु सबसे अधिक जिस चीज ने उसे बाँध लिया, वह थी उसकी चातुरी। इस बात को कि वह गरीब घर की बहू है, मुँह से न कहने पर भी इस ढग से पकट कर गयी कि मानो यही उसके लिए स्वाभाविक है—मानो इसके सिवा उसे और कुछ शोभा नही देता—यह बताने के सिवा और किसी उद्देश्य का उसमे लेशमात्र भी नही था कि वह गरीब है, पर कंगाल नही। एक भले घर की बहू दूसरे घर की एक बीमार बहू को देखने के लिए आई है।

सन्ध्या को जब हरिलक्ष्मी के पति उसे देखने आये तो और-और बातो के सिलसिले मे उसने कहा—"आज उस घर की मझली बहू से मुलाकात हुई थी?"

शिवचरण ने पूछा—"किससे, विपिन की बहू से?"

हरिलक्ष्मी ने कहा—"हाँ, मेरे भाग्य अच्छे थे कि इतने दिनो के बाद वह खुद ही मुझे देखने को आ गयी। लेकिन पाँच मिनट से अधिक वह नही ठहरी। काम था, इसलिये चली गयी।"

शिवचरण ने कहा—"काम? अरे, उन लोगो के घर कोई नौकर—नौकरानी तो है नही। बर्तन माँजने से लेकर बटलोई चढाने तक सारे काम अपने हाथ से करने पडते हैं। तुम्हारी तरह पडे-पडे, बैठे-बैठे, आराम कर तो ले कोई! एक गिलास पानी तक तो तुम्हे अपने हाथ से भर कर पीना नहीं पडता।"

अपने सम्बन्ध मे पति का ऐसा मनोभाव हरिलक्ष्मी को बहुत बुरा मालूम हुआ, पर यह समझकर गुस्सा नही हुई कि बात को उसकी बडाई करने के लिए ही कही गयी थी, अपमान करने के लिए नहीं। बोली—"सुना है कि मझली बहू को बडा घमड है, अपना घर छोड कर कहीं आती-जाती नहीं!"

शिवचरण बोले—"जायगी कैसे? हाथ मे कुछ चूडियों के सिवा सोना-पत्थर कुछ है भी? वह मारे शरम के कही मुँह नही दिखा सकती।"

हरिलक्ष्मी ने जरा हँसकर कहा—"इसमे शरम कैसी? दुनिया के लोग क्या उसके शरीर पर जडाऊ गहने देखने के लिए व्याकुल हो रहे हैं? क्या गहने न देखकर लोग उसे दुतकार देगे?"

शिवचरण ने कहा—"जडाऊ गहने? मैंने जो तुम्हे दिये है किसी साले के नाती ने वह आँखो से देखे भी हैं? अपनी स्त्री को आज तक दो चूडियों के सिवा और कुछ बनवा कर न दे सका? याद रखो, रुपये का जोर बडा होता है। जूता मारूगा और—"

हरिलक्ष्मी अपने पति की बात पर दु.ख प्रकाश करती हुई लज्जायुक्त होकर बोली—"छि छि., ऐसी बात क्यो कर रहे हो?"

शिवचरण बोला—"नही, नही, मेरे पास दबी-छिपी बात नही, जो कुछ कहना होता है, साफ-साफ कह देता हूँ।"

हरिलक्ष्मी चुपचाप आंखे बन्द किये पडी रही। कहने को और था ही क्या? ये लोग गरीबो के प्रति अत्यन्त असभ्य और कठोर बात कहने को ही स्पष्टवादिता समझते हैं। शिवचरण शान्त रहा, कहने लगा—"विवाह मे जो पाँच सौ रुपये उधार लिये थे, उसका ब्याज असल मिलाकर सात सौ हो गये, उसका भी कुछ ख्याल है? गरीब है—एक किनारे मे पडा है, पडा रहे। अरे मैं चाहूँ तो कान पकड कर दो मिनट मे बाहर कर सकता हूँ। जो एक दासी के योग्य नही, वह मेरी स्त्री के सामने घमण्ड दिखलाती है?"

हरिलक्ष्मी करवट बदल कर सो रही। एक तो बीमार, उस पर विरक्ति और लज्जा से उसके सारे शरीर से मानो भीतर से कँपकँपी आने लगी।

दूसरे दिन घर मे एक मीठा स्वर सुनकर हरिलक्ष्मी ने आँख खोल कर देखा तो विपिन की स्त्री चुपके से बाहर जा रही है। उसने बुला कर कहा—"मझली बहू, कहाँ जा रही हो?"

मझली बहू ने शरमाते हुए लौटकर कहा—"मैंने समझा आप सो रही हैं, आज कैसी तबीयत है जीजी?"

हरिलक्ष्मी बोली—"आज बहुत अच्छी हूँ। आज अपने बच्चे को साथ क्यो नही लायी?"

मझली बहू ने कहा—"आज वह अचानक सो गया था जीजी।"

"अचानक सो गया, इसका माने?"

"आदत खराब हो जायगी इसलिये मैं दिन मे उसको सोने नही देती।"

हरिलक्ष्मी ने पूछा—"धूप मे ऊधम मचाता तो नही फिरता?"

मझली बहू ने कहा—"मचाता क्यो नही फिरता? मगर दोपहर मे सोने की अपेक्षा वह कही अच्छा है।"

"तुम शायद खुद नही सोती?"

मझली बहू ने हँसते हुए सिर हिलाकर कहा—"नही।"

हरिलक्ष्मी ने सोचा था स्त्रियो के स्वभावानुसार अब की बार शायद यह अपने अनवकाश की लम्बी-चौडी कहानी सुनाने लगेगी, लेकिन उसने ऐसी कोई बात नही की। इसके बाद और-और बाते होने लगी। बात ही बात मे हरिलक्ष्मी ने अपने मायके की बात, स्कूल की बात—यहाँ तक की अपने मैट्रिक पास की बात तक भी कह डाली। बहुत देर बाद जब उसे होश हुआ तब उसने स्पष्ट देखा कि मझली बहू श्रोता के लिहाज से चाहे जितनी अच्छी क्यो न हो, वक्ता के लिहाज से कुछ भी नही। अपनी बात प्राय उसने कुछ भी नही कही।

पहले तो लक्ष्मी को शर्म मालूम हुई, पर उसी समय उसे मालूम हुआ कि गपशप करने के लिए उसके पास है ही क्या? मगर कल जैसे इस बहू के विरुद्ध इसका मन दु खी हो चुका था, उसके विपरीत आज वह प्रसन्न हो गई।

दीवार पर टँगी हुई सुन्दर और कीमती घडी ने अनेक प्रकार के बाजो की ध्वनि के साथ तीन बजे। मझली बहू उठ खडी हुई और नम्रतापूर्वक बोली—"जीजी, अब मैं चलती हूँ।"

लक्ष्मी सकौतुक बोली—"बहन जी, तुम्हारी क्या तीन ही बजे तक छुट्टी रहती है? बाबू क्या घडी देखकर ठीक समय पर घर आते है?"

मझली बहू ने कहा—"आज वे घर पर ही है।"

लक्ष्मी—"फिर आज जल्दी कैसी, और थोडी देर बैठो।"

मझली बहू बैठी नही, लेकिन जाने के लिए पैर भी नही बढ़ा सकी। वह धीरे से बोली—"जीजी आपने कितनी शिक्षा पाई, कितना पढ़ा-लिखा है, और मैं ठहरी गँवई गाँव की।"

लक्ष्मी—"तुम्हारा मायका क्या गाँव मे है?"

मझली बहू—"हाँ जीजी, बिलकुल देहात मे, बिना समझे कल क्या कहते क्या कह दिया हो—पर असम्मान करने के लिए नही, आप मुझे जैसी भी कसम खाने के लिए कहेगी जीजी—"

हरिलक्ष्मी दंग रह गयी, बोली—"ऐसा क्यो कहती हो मझली बहू। तुमने तो कल कोई भी ऐसी बात नही कही।"

मझली बहू ने इसके उत्तर मे फिर कुछ नही कहा और "अब आज्ञा दीजिए" कह कर जब वह फिर से विदा लेकर धीरे-धीरे जाने लगी, तब उसका कंठ-स्वर अकस्मात् कुछ और ही तरह की सुनाई दिया।

रात्रि मे जब शिवचरण घर मे आये, उस समय हरिलक्ष्मी चुपचाप लेटी हुई थी। उसका शरीर पुलकित और स्वस्थ था और मन भी शात और प्रसन्न दिखाई देता था।

शिवचरण ने पूछा—"कैसी तबीयत है बडी बहू।", लक्ष्मी उठ बैठी, बोली—"अच्छी हैं।"

शिवचरण ने कहा—"सबेरे की बात मालूम हुई? बच्चू को बुलवा कर सबके सामने ऐसा डाट दिया है कि जन्म भर याद रहेगा। मैं बेलपुर का शिवचरण हूँ! हाँ!"

हरिलक्ष्मी डर गयी, बोली—"किसको डाँट दिया?" शिवचरण ने कहा—"विपिन को बुलाकर कह दिया, तुम्हारी स्त्री हमारी स्त्री के पास आकर शान दिखाकर उसका अपमान कर गयी, इतनी हिमाकत उसकी! पाजी, नालायक, कबाडे घर की लडकी कही की! उसके बाल कटवाकर मुँह काला करके गधे पर चढ़ाकर गाँव से निकाल बाहर कर सकता हूँ, जानता है?"

हरिलक्ष्मी का रोग-ग्रसित चेहरा एकाएक सफेद पड गया, वह बोली—"तुम कह क्या रहे हो?"

शिवचरण अपनी छाती ठोक गर्व के साथ कहने लगा—"इस गॉव मे जज समझो, मैजिस्ट्रेट समझो और दारोगा या पुलिस समझो, सब कुछ मैं ही हूँ। मारने की लकडी, जिलाने की लकडी—सब मेरी मुट्ठी मे है। तुम यदि चाहो तो कल ही विपिन की बहू को आकर तुम्हारे पैर दबाने पडेगे। अगर ऐसा नही हो तो मुझे लाटू चौधरी की पैदाइश ही गल समझना।"

इस प्रकार विपिन की बहू को अपमानित और लांछित करने के वर्णन और व्याख्यान मे लौटू चौधरी के सुपुत्र ने अपने अपशब्द और कुशब्दो की झडी लगा दी।

पति की उत्तेजना भरी व्यर्थ बातो को सुनकर हरिलक्ष्मी बहुत दुखी हुई और मन ही मन कहने लगी—"हे धरती माता, फट पडो।"

२

दूसरे विवाह की तरुणी पत्नी की शरीर-रक्षा के लिए शिवचरण केवल अपनी देह के सिवा और सब कुछ दे सकता था। हरिलक्ष्मी की वह काया बेलपुर मे न सम्हल सकी। डाक्टरो ने एक मत से राय दी कि हवा-पानी बदलना चाहिए। शिवचरण ने अपने साढे पन्द्रह आने की हैसियत के अनुसार बडे ठाठ-बाट के साथ हवा बदलने जाने की तैयारियॉ शुरू कर दी। यात्रा के शुभ मुहूर्त वाले दिन गॉव के लोग टूट पडे। अगर नही आया तो केवल विपिन और उसकी पत्नी। बाहर शिवचरण न कहने योग्य बाते भी कहने लगा, और भीतर बडी बुआ ने उग्र रूप धारण कर लिया। बाहर भी 'स्थायी' स्वर मिलाने वालो की कमी न रही। और भीतर भी बुआ के समान चीत्कार करने वाली स्त्रियॉ काफी जुट गयी। सिर्फ कुछ नही बोली तो हरिलक्ष्मी। मझली बहू के प्रति उसके क्षोभ और अभिमान की मात्रा किसी से भी कम न थी, वह मन ही मन कहने लगी— मेरे ओछे पति ने कितना भी अन्याय क्यो न किया हो, मैंने खुद तो कुछ नहीं कहा? परन्तु घर की और बाहर की औरते जो कुछ चिल्ला रही थी, उनके साथ किसी भी तरह स्वर मे स्वर मिलाने मे उसे घृणा मालूम होने लगी। जाते समय पालकी का दरवाजा हटाकर लक्ष्मी ने उत्सुक दृष्टि से विपिन के टूटे-फूटे घर की खिडकी की ओर देखा, परन्तु किसी की छाया तक उसे दिखाई नही पडी।

काशी मे मकान भाडे पर लिया गया था। वहाँ की जलवायु के गुण से हरिलक्ष्मी के नष्ट स्वास्थ्य की पुन. प्राप्ति मे देर न हुई। चार महीने बाद जब वह लौट कर घर आई, तब उसके शरीर की कान्ति देखकर स्त्रियो की गुप्त ईर्ष्या का कुछ ठिकाना न रहा।

हेमन्त ऋतु का आगमन हो रहा था। दोपहर को मझली बहू अपने चिर-रुग्ण पति के लिए एक ऊनी गुलूबन्द बीन रही थी। पास ही लडका बैठा खेल रहा था। वह देखकर चिल्ला उठा—"मॉ, ताई जी।"

मझली बहू ने हाथ का काम जहॉ का तहॉ छोड कर चट-पट उठकर नमस्कार किया और बैठने के लिए समयानुसार आसन अर्पण किया और खिले हुए चेहरे से बोली—"तबीयत ठीक हो गयी जीजी?"

हरिलक्ष्मी बोली—"हॉ, हो गयी। परन्तु ठीक नही भी तो हो सकती थी। ऐसा भी तो हो सकता था कि फिर लौट कर न आती, फिर भी जाते समय जरा भी तुमने खोज खबर नही ली। रास्ते भर तुम्हारी खिडकी की ओर देखती हुई गयी। जरा मोह भी न हुआ, मझली बहू? ऐसी पत्थर की बनी हो तुम?"

मझली बहू की आँखे डबडबा आयी, पर मुँह से कोई उत्तर न निकला।

हरिलक्ष्मी ने कहा—"मुझमे और चाहे जो भी कुछ दोष हो, मझली बहू, मेरा मन तुम्हारी तरह कठोर नही है। भगवान न करे, लेकिन ऐसे मौके पर मैं तुम्हे बिना देखे न रह सकती थी।"

मझली बहू ने इस आरोप का भी कुछ उत्तर नही दिया, वह चुपचाप खड़ी रही।

हरिलक्ष्मी इसके पहले इस घर मे कभी नही आयी थी। पहले पहल आज ही उसने यहॉ पैर रखा है। वह इधर-उधर घूम-फिर कर सब कोठरियाँ देखने लगी। सौ वर्ष का पुराना टूटा-फूटा मकान है, उसमे केवल तीन कोठरियॉ किसी प्रकार गुजारा करने के लिए हैं। घर मानो दरिद्रता का निवास बन रहा है। असबाब तो नही के बराबर है, दीवारो का चूना झडता जा रहा है, मरम्मत कराने की ताकत नही, फिर भी जरा-सा गन्दापन कही देखने को नही मिलता। छोटे-छोटे बिछौने हैं, लेकिन साफ-सुथरे। दो-चार देवी-देवताओ की तस्वीरे भी टँगी हैं, और हैं मझली बहू के अपने हाथ की शिल्प-कला के कुछ नमूने।

अधिकतर ऊन और सूत के काम की चीजें हैं। उनमें न तो कोई लोमिसुए के हाथ का लाल चोंच वाला तोता ही है और न पचरंगी बिल्ली की सूरत। मूल्यवान फ्रेम में जड़े हुए लाल, नीले, बैंगनी, सफेद आदि रंगों के बने हुए ऊन से बुने 'वेलकम' 'आइये, बैठिये, या अशुद्ध उच्चारण के गीता के श्लोक भी नहीं। हरिलक्ष्मी ने ताज्जुब के साथ पूछा—"यह किसकी तस्वीर है मझली बहू? पहचाना हुआ-सा चेहरा दिखाई देता है?"

मझली बहू ने शरमाते हुए हँसकर कहा—"तिलक महाराज की तस्वीर देख-देखकर खींचने की कोशिश की थी जीजी, पर कुछ बन न सकी।" यह कहते हुए उसने उँगली उठाकर सामने की दीवार पर टँगे हुए लोकमान्य बाल गंगाधर के चित्र को दिखाया।

हरिलक्ष्मी बहुत देर तक उस तरफ देखती रही, फिर धीरे से बोली—"पहचान नहीं सकी, यह मेरा ही अपराध है मझली बहू, तुम्हारा नहीं। मुझे यह गुण सिखा दोगी बहन? यह विद्या अगर सीख सकी, तो तुम्हें गुरु मानने में मुझे कोई आनाकानी न होगी।"

मझली बहू हँसने लगी।

उस दिन तीन-चार घण्टे के बाद जब हरिलक्ष्मी घर पर लौटी तो यह बात तय कर गयी कि वह शिल्प-कला सीखने के लिए कल से रोज आया करेगी।

आने भी लगी, परन्तु दस-बीस दिन में वह साफ समझ गयी कि यह विद्या सिर्फ कठिन ही नहीं, बल्कि सीखने में भी काफी समय लेगी। एक दिन लक्ष्मी ने कहा—"मझली बहू, तुम मुझे खूब ध्यान से नहीं सिखाती हो।"

मझली बहू ने कहा—"इसमें तो काफी समय लगेगा ही, जीजी, इससे अच्छा है आप और बुनावटें सीखें।"

लक्ष्मी ... ही भीतर गुस्सा हो गयी, उसे छिपाते हुए उसने पूछा—"तुम्हें सीखने में कितने दिन लगे थे मझली बहू?"

मझली बहू ने उत्तर दिया—"मुझे तो किसी ने सिखाया नहीं है जीजी, मैं तो अपनी ही मेहनत से सीखी हूँ, थोड़ा-थोड़ा करके।"

हरिलक्ष्मी बोली—"इसी से तो, अगर तुम भी दूसरे से सीखने जाती तो पता लग जाता।"

मुँह से चाहे वह कुछ भी कहे, लेकिन मन ही मन वह स्वीकार कर रही थी कि असाधारण मेधा और तीक्ष्ण बुद्धि में वह मझली बहू की बराबरी किसी प्रकार भी नहीं कर सकती। आज उसकी शिक्षा का काम अग्रसर नहीं हुआ। वह रोज से बहुत पहले ही अपना क्रोशिया, सलाइयाँ और सूत बटोर कर अपने घर चली गयी। दूसरे दिन वह नहीं आयी। उस काम में उसका यह पहला नागा हुआ।

तीन-चार दिनों के बाद एक दिन हरिलक्ष्मी अपना सलाई, सूत का बक्स लेकर मझली बहू के मकान पर पहुँच गयी। मझली बहू उस समय अपने लड़के को रामायण में तस्वीरें दिखाकर कथा सुना रही थी। उसने जल्दी से उठकर हरिलक्ष्मी के बैठने के लिए एक चटाई बिछा दी और मीठे स्वर में बोली—"दो-तीन दिन आप आयी क्यों नहीं, शरीर तो अच्छा था न?"

हरिलक्ष्मी ने गम्भीरतापूर्वक कहा—"शरीर अच्छा था, योंही पाँच-छः दिन नहीं आ सकी।"

मझली बहू विस्मय-प्रकाश करती हुई बोली—"पाँच-छः दिन नहीं आयी? मालूम होता है इतना ही हुआ होगा। खैर, आज दो घण्टा अधिक रहकर काम पूरा कर लेना चाहिए।"

हरिलक्ष्मी बोली—"शायद मैं बीमार पड़ गई होती तो मझली बहू, तुम्हें खोज-खबर तो जरूर रखनी चाहिए थी।"

मझली बहू जरा लजाकर बोली—"ठीक कहती हो, मुझे जरूर खोज-खबर रखनी चाहिए थी, किन्तु घर-गृहस्थी के अनेक प्रकार के काम होते हैं। अकेला आदमी किसको भेजे, बताओ तो? लेकिन अपराध अवश्य हुआ है, सो मैं स्वीकार करती हूँ जीजी।"

लक्ष्मी मन ही मन बहुत खुश हुई। इतने दिन वह अपने अभिमान के वशीभूत होकर नहीं आयी थी। दिन-रात उसके जाऊ-जाऊ करते ही कट गये थे। मझली बहू तो क्या, ऐसा एक भी आदमी गाँव में नहीं था जिससे उसका दिल अच्छी तरह मिला हुआ हो। लड़का रामायण की तस्वीरें गौर के साथ देख रहा था। हरिलक्ष्मी ने उसे अपने पास बुलाया और बोली—"निखिल, मेरे पास आओ।" वह हरिलक्ष्मी के पास

जाकर खडा हो गया। हरिलक्ष्मी ने अपने बक्स मे से एक लर की सोने की सिकडी निकाली और लडके के गले मे पहना कर बोली—"जाओ, खेलो।"

मझली बहू का चेहरा गम्भीर हो उठा, उसने पूछा—"क्या यह सिकडी आपने दी है?"

लक्ष्मी बोली—"हाँ, मैंने दी है।"

हरिलक्ष्मी अप्रतिश हो गयी। वह बोली—"क्या लडके की ताई लडके को एक सिकडी नही दे सकती?"

मझली बहू ने कहा—"सो मैं नही जानती जीजी, परन्तु यह जानती हूँ कि वह माँ होकर मैं इसे लेने नही दे सकती।" फिर अपने लडके को देखकर बोली—"निखिल, सिकडी गले से निकाल कर अपनी ताई को दे दो।" पुन लक्ष्मी से बोली—"जीजी हम लोग गरीब हैं, लेकिन भिखारी नही, एक दामी चीज देखते ही उसे दोनों हाथ पसारकर लेने की चेष्टा करे, यह काम हमारा नही है।"

हरिलक्ष्मी स्तब्ध होकर बैठी रही और मन ही मन कहने लगी—पृथ्वी फट पडो।

जाते-जाते कह गयी कि यह बात तुम्हारे जेठ के कान तक पहुँचेगी मझली बहू।

मझली बहू ने कहा—"उनकी बहुत सी बाते मेरे कान मे पहुँचती हैं। मेरी एक बात उनके कान तक पहुँचने मे उनके कान अपवित्र नही होगे।"

हरिलक्ष्मी बोली—"ठीक है, परीक्षा करने पर मालूम हो जायगा। फिर कुछ देर ठहर कर बोली—"व्यर्थ मुझे अपमानित करने की क्या दरकार थी मझली बहू। मैं भी बदला लेना जानती हूँ।"

मझली बहू—"यह तो आप नाराजगी की बात कह रही है। मैं आपको अपमानित नही कर सकती और न व्यर्थ मे मैं अपने स्वामी को ही अपमानित होते देख सकती हूँ। इसे आप अच्छी तरह जानती हैं।"

हरिलक्ष्मी—"मैं खूब जानती हूँ। यह सब बाते अपने टोला-गाँव की स्त्रियो को सिखाओ।"

मझली बहू ने इसकी तीखी बात का कुछ भी उत्तर नही दिया, वह चुप रही।

लक्ष्मी जाने की तैयारी करती हुई बोली—"उस सिकडी का मूल्य कितना भी क्यो न हो, मैंने लडके को स्नेह-वश ही दी थी। इससे तुम्हारे स्वामी का आर्थिक कष्ट दूर होगा, इस ख्याल से मैंने नही दी थी। मझली बहू, बडे आदमी ही गरीबो का अपमान करते हैं, सिर्फ यही तुमने जान रखा है। वह प्यार भी करते हैं, यह तुम्हे मालूम नही है। यह भी सीखने की आवश्यकता है . लेकिन फिर जाकर हाथ-पैर मत छूती फिरना।"

इसके उत्तर मे मझली बहू जरा व्यग्य हँसी हँसती हुई बोली—"जीजी, इस बात की चिन्ता तुमको नही करनी होगी।"

३

बाढ़ के दबाव से मिट्टी का बाँध जब टूटने लगता है तब उसकी मामूली सी प्रारम्भिक दशा देख कर कोई कल्पना भी नही कर सकता कि लगातार चलने वाली पानी की धारा इतने कम समय के अन्दर ही उस टूटन को इतना भयकर और ऐसा विशाल बना देगी। ठीक ऐसा ही हुआ हरिलक्ष्मी की बात का नतीजा। उसने अपने पति से विपिन और उनकी स्त्री के विषय मे मनमानी शिकायत उपस्थित कर उनके ऊपर अभियोग कायम कर दिया। उस समय वह उसके फलाफल के लिए खुद भी दहल उठी। झूठ बोलना उसका स्वभाव भी नही है और कहना भी चाहे तो उसकी शिक्षा उसे मना करती है, परन्तु इस बात को वह खुद भी न समझ पाई कि दुर्निवार जल-स्रोत की तरह जो बाते तैश में उसके मुँह से निकल गयी, उनमे से बहुत ही ठीक और सच्ची नही थी। यह बात उसी समय उसके मन मे आ गयी।

परन्तु उन झूठे-सच्चे वाक्यो का स्रोत रोक लेना, यह भी उस समय उसकी शक्ति के बाहर की बात थी। यह बात भी उसने अच्छी तरह जान ली। जो बात अभी नही जानती थी, वह था उसके पति का स्वभाव। वह जैसा ही कठोर था, वैसा ही प्रतिशोध लेने मे निर्दय था। वह था पक्का प्रतिहिंसक और बर्बर। किसी को दु ख देने की सीमा कहाँ है, यह वह जानता ही न था। आज उसने हरिलक्ष्मी की उत्तेजक बातो को बडे ध्यान के साथ सुना और बोला—"अच्छा, छ महीने के बाद देखना इसका नतीजा।"

अपमान और लाछना की आग हरिलक्ष्मी के हृदय में जल ही रही थी। किन्तु शिवचरण के बाहर चले जाने पर उसके मुँह से निकली हुई थोडी सी बातें बार-बार मन ही मन उच्चारण कर हरिलक्ष्मी के मन मे सन्तोष नही हुआ, उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो कहीं बडा भारी अनर्थ घट गया है।

कुछ दिनों बाद बात ही बात में हरिलक्ष्मी ने हँसते हुए मुख से अपने स्वामी से पूछा—"उनके सम्बन्ध में कुछ किया है क्या?"

"किनके सम्बन्ध मे?"

"विपिन लाला के सम्बन्ध मे।"

शिवचरण निस्पृह भाव से बोला—"क्या करता, मैं कर भी क्या सकता हूँ? मैं एक मामूली आदमी ही तो हूँ।"

हरिलक्ष्मी उत्तेजित होकर बोली—"इसके माने?"

शिवचरण बोला—"मझली बहू कहा करती है कि राज तो जेठ जी का नही है, अग्रेज सरकार का है।"

हरिलक्ष्मी ने कहा—"ऐसा कहा है क्या? लेकिन अच्छा।"

"अच्छा क्या?"

लक्ष्मी ने जरा सदेह प्रकट करते हुए कहा—"लेकिन मझली बहू तो ठीक इस तरह की बात कभी कहती नही। वह बहुत होशियार है? बहुत से लोग शायद बात बढ़ा-चढ़ाकर चुगली भी कर दिया करते हैं।"

शिवचरण ने कहा—"इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं। यह बात तो मैंने अपने कानो सुनी है।"

हरिलक्ष्मी इस बात पर विश्वास न कर सकी। परन्तु उस समय के लिए पति का मनोरजन करने के ख्याल मे कुछ गुस्सा दिखाती हुई बोली—"कहते क्या हो, इतना घमड। मुझे तो खैर जो कुछ कहा सो कहा, लेकिन तुम तो जेठ लगते हो। तुम्हारी तो जरा इज्जत करनी चाहिए थी?"

शिवचरण बोला—"हिन्दुओ के घर ऐसा ही तो सब समझते हैं। पढ़ी-लिखी विद्वान महिला है न? इसी से यह बात है। परन्तु मेरा अपमान करके कोई बच नही सकता। अभी मैं काम से जा रहा हूँ, पीछे देखा जायेगा।" इतना कह कर शिवचरण वहा से चल दिया। बात को हरिलक्ष्मी जिस प्रकार कहना चाहती थी, न कह सकी, बल्कि वह उल्टी हो गई, पति के चल जाने पर रह रहकर उसे इसी बात का ख्याल होने लगा।

बाहर की बैठक में जाकर कुछ काम कर लेने के बाद शिवचरण ने विपिन को बुलाकर कहा—"पाँच-सात साल से तुमसे कह रहा हूँ विपिन कि अपने मवेशियो को यहाँ से हटा लो, रात को सोना मेरे लिए हराम हो गया है। तुम कुछ सुनते नही, क्या तुमने मेरी बात एक कान से सुन कर दूसरे से निकाल देना ही निश्चय किया है?"

विपिन ने आश्चर्यचकित होकर कहा—"कहाँ, मैंने तो एक बार भी नही सुना भइया।"

शिवचरण ने बडी आसानी के साथ कहा—"कम से कम दस बार तो मैंने अपने मुँह से कहा है तुमसे। तुम्हे याद न रहे तो कैसे कहा जाय, यह समझ में नही आता। परन्तु इतनी बडी जमीदारी का जो शासन करता है, उसकी बात को उडा देने से काम नही चलता। खैर, तुम्हे खुद इस बात का ख्याल होना चाहिए कि दूसरे के स्थान पर कैसे इतने दिनों तक मवेशी बाँधे जा सकते हैं? कल ही अपने कुल पशु वहाँ से हटा लेना। मुझे फुरसत नही मिलेगी, तुम्हे अन्तिम चेतावनी मैंने दे दी है, अब मत भूलना।"

विपिन के मुँह से ऐसे ही बात नही निकलती, उस पर अकस्मात् यह विस्मयकर प्रस्ताव सुनकर केवल एकाएक अभिभूत हो गया। अपने दादा के समय से वह उस जगह को अपनी समझता चला आ रहा था। वह जमीन दूसरे की है, इतनी बडी झूठी बात का वह प्रतिवाद तक न कर सका कि वह दूसरे की नही है। वह चुपचाप झाड खाकर घर चला आया।

उसकी स्त्री ने सब बात उससे सुनी और बोली—"राजा की अदालत खुली है न।" विपिन मौन खडा रहा। वह कितना ही अच्छा असामी क्यो न हो, यह बात वह अच्छी तरह जानता था कि अग्रेजो की अदालत के बडे-बडे दरवाजे जैसे अमीरो के लिए हैं, वैसे गरीबो के लिए नही हैं। गरीबों का प्रवेश उन दरवाजो के अन्दर होना बहुत कठिन है। हुआ भी वही। दूसरे ही दिन बडे बाबू के आदमी ने आकर

प्राचीन और पुरानी मवेशियो वाला मकान तोडवा दिया और उसकी जगह लम्बी दीवार खडी कर दी। विपिन इसकी सूचना थाने मे दे आया, किन्तु आश्चर्य है कि शिवचरण की पुरानी ईंटो की नयी दीवार जब तक सम्पूर्ण तैयार नही हो गयी, तब तक रगी हुई एक भी पगडीवाला उसके पास तक न पहुँच पाया। विपिन की स्त्री ने अपने हाथ की सोने की चूडी गिरवी रख कर अदालत मे नालिश दायर कर दी, लेकिन उससे केवल उसके गहने की ही बरबादी हुई और कुछ नतीजा न निकला।

विपिन की दूर के रिश्ते की बुआ लगने वाली एक शुभ-चिन्तक ने उसकी स्त्री को इस विपद मे हरिलक्ष्मी के पास जाने की राय दी थी। उसने उसके उत्तर मे कहा था, "शेर के आगे हाथ जोडकर खडा रहने से क्या लाभ होगा बुआजी? जाने वाले के प्राण तो जायेगें ही, ऊपर से अपमान और सहना पडेगा।"

यह बात हरिलक्ष्मी के कान मे पड गयी, लेकिन वह चुप करके बैठ रही। उसने इस बात का उत्तर देने की भी चेष्टा न की।

पश्चिम से लौट आने के बाद उसका स्वास्थ्य अभी तक अच्छा न हो सका था। इस घटना के एक महीने के अन्दर ही वह पुन ज्वर से पीडित हो गयी। कुछ दिनो तक उसका इलाज ग्राम मे ही होता रहा। जब अच्छी न हुई तो डाक्टरो की राय के अनुसार पुन उसे हवा-पानी बदलने के लिए बाहर भेजने की तैयारी होने लगी।

अनेक कामो मे अत्यन्त फँसे रहने के कारण शिवचरण इस बार उसके साथ न जा सका, वह मकान पर ही रह गया। जाने के समय एक बात अपने स्वामी को कहने के लिए वह छटपटाने लगी, लेकिन बहुत आदमियो के रहने के कारण वह उस बात को अपने मुँह से निकाल न सकी। उनके मन मे यह कल्पना चक्कर लगाने लगी कि इस बात का कहना व्यर्थ होगा, वह इसे किसी भी हालत मे नही समझ पायेगे।

४

हरिलक्ष्मी के पूर्ण निरोग होने मे इस बार बहुत समय लगा। अन्दाज एक वर्ष के बाद वह बेलपुर मे वापस आयी। वह केवल जमीदार की आदरमयी स्त्री ही तो नही, इतने बडे घर की मालकिन भी तो है इसलिए महल्ले के आदमी अपना-अपना झुण्ड बाँधकर उसे देखने के लिए आये। बडो ने उसे आशीर्वाद दिया और छोटो ने उसे प्रणाम करके उसकी चरण-रज ली। आयी नही केवल विपिन की स्त्री। वह नही आयेगी, यह बात हरिलक्ष्मी जानती थी। इस एक साल के अन्दर विपिन का परिवार कैसे रहा, उनके ऊपर जो दिवानी और फौजदारी के मामले चल रहे थे, उनका क्या हुआ, इन सब बातो के विषय मे उसने किसी से कुछ भी नही पूछा। शिवचरण कभी मकान पर और कभी पश्चिम मे जाकर स्त्री के पास रहा करता था।

जब-जब हरिलक्ष्मी के पास उसके पति गये तब-तब ही उसके मन मे वह बात आयी, लेकिन उसने उनसे उस विषय मे कोई भी प्रश्न नही किया। प्रश्न करने मे उसे भय मालूम होता था। वह मन मे कहती, इतने दिनो मे मालूम होता है, इनके ऊपर काफी काम का बोझ पड गया है, अब वह क्रोध की मात्रा इनके चेहरे से दिखाई नही देती। शायद उस बात के छेडने पर इनका क्रोध जागृत हो उठे, इस भय से वह ऐसा मनोभाव जाहिर करती कि वह सब तुच्छ बाते वह भूल गयी है। शिवचरण भी अपनी तरफ से विपिन के विषय की कोई बात नही चलाता, इस बात को वह हरिलक्ष्मी से छिपाकर ही रखता है कि अपनी स्त्री के अपमान की बात वह भूला नही है, बल्कि उसकी अनुपस्थिति मे इसका पूर्ण प्रबन्ध उसने कर रखा है। उसके मन मे साध थी कि लक्ष्मी घर जाकर अपनी आँखो से ही सब देखभाल ले और मारे आनन्द के फूली न समाये।

अधिक दिन बीत जाने के पहले ही बुआजी की स्नेहपूर्ण देखरेख मे लक्ष्मी जब नहा-धोकर निश्चिन्त हुई तो बुआजी ने उत्कण्ठा प्रकट करते हुए कहा—"अभी तुम्हारा शरीर कमजोर है बहूरानी, तुम अभी नीचे जाने की तकलीफ न करो, मै यही तुम्हारे लिए खाने की थाली परसवा कर मँगा देती हूँ।"

हरिलक्ष्मी ने इसका प्रतिवाद करके हँसते हुए कहा—"मेरा शरीर अब स्वस्थ हो गया है बुआजी, अब मै रसोई घर मे जाकर ही भोजन कर लूँगी। ऊपर खाना लाने की दरकार नही है। चलिए, मैं नीचे ही चलती हूँ।"

बुआ ने उसे मना किया और बोली—"शिबू की मनाही है।" और उसी समय उसने नौकरानी को खाने की थाली लाने की आज्ञा दी। नौकरानी ने बडी जल्दी बुआजी की आज्ञा का पालन किया और हरिलक्ष्मी के खाने की थाली ऊपर ले आयी। उसके चले जाने के बाद लक्ष्मी ने आसन पर बैठ कर पूछा—"यह खाना बनाने वाली कौन है बुआजी, मैंने पहले इसे कभी नही देखा।"

बुआजी हँसती हुई बोली—"अरे तू नही पहचान सकी। यह हमारे विपिन की बहू है।"

हरिलक्ष्मी मन ही मन दु खी होकर बैठी रही। उसने मन ही मन समझा, उसे आश्चर्य मे डालने के लिए ही यह षड्यन्त्र छिपाकर रखा गया था। कुछ ही क्षण मे अपने आपको सम्हालती हुई जिज्ञासु की तरह बुआजी के मुँह की तरफ देखती रही।

बुआजी बोली—"विपिन मर गया है, सुना है कि नही?"

लक्ष्मी ने कुछ भी नही सुना था। लेकिन जो उसको खाने की थाली दे गई थी, वह विधवा मालूम होती थी। इसी से उसने सिर नीचा करके बुआ के प्रश्न का उत्तर दिया, बोली—"हाँ।"

बुआजी ने कुल किस्सा खुलासा कहके सुनाया, वह बोली—"जो लिखडी बरताना उसके पास था, वह सब मामले मुकद्दमे मे खतम करके विपिन मर गया है। बाकी रुपया चुकाने मे मकान भी चला जाता। मैंने ही परामर्श दिया कि मझली बहू, दो वर्ष नौकरी करके सब चुका दे, तुम्हारे बच्चे के रहने का स्थान तो बच जायगा।"

लक्ष्मी मलीन मुख कर, एकटक चुपचाप उनकी तरफ देखती रही। बुआजी गले को भर्रा कर बोली—"मैंने उसे एक दिन एकान्त मे बुलाकर कहा—मझली बहू, जो होना था सो हो गया, एक बार रुपया पैसा उधार लेकर काशी जाओ और बहू के आगे हाथ-पैर जोड और अपने लडके को उसके पैरो पर गिरा कर कहो—जीजी, इसका तो कोई दोष नही है, इसे बचा लो।"

बात समाप्त करते-करते बुआ जी की आँखो से टपाटप आँसू गिरने लग गये। वह अपने आँसुओ को साडी के छोर से पोछती हुई बोली—"वह माथा नीचे किए चुपचाप बैठी रह गयी, हाँ, ना कुछ भी नही बोली।"

हरिलक्ष्मी ने जान लिया कि इस अपराध का सारा भार मेरे माथे पर आ पडा है। उसके मुँह का अन्न-कौर सारा का सारा विष के समान हो उठा और एक ग्रास भी गले से नीचे नही जाने लगा। बुआजी कुछ काम के लिए थोडी देर तक बाहर गई थी। उसने आकर खाने वाली चीजो को ज्यो का त्यो पडा देखकर चञ्चलता के साथ पुकार कर कहा—"विपिन की बहू! ओ विपिन की बहू! ओ विपिन की बहू!"

विपिन की बहू दरवाजे के बाहर आकर खडी हो गयी। बुआ जी बडी जोर से कडक उठी, न जाने थोडी देर पहले के उसके करुण-चक्षु कहाँ चले गये! वह कडकती हुई आवाज मे बोली—"इस प्रकार से काम नही चलेगा विपिन की बहू, देखो बहू एक दाना भी मुँह मे नही डाल सकी। क्या ऐसा ही खाना बनाया जाता है?"

दरवाजे के बाहर से कोई उत्तर नही मिला, परन्तु दूसरे के अपमान के भार से लज्जा और वेदना के मारे हरिलक्ष्मी का अपने कमरे के भीतर सिर नीचा हो गया।

बुआजी फिर बोली—"नौकरी करने चली हो, ऐसी हालत मे चीज वस्तु बिगाडने से काम नही चलेगा। बेटी, और नौकर जिस प्रकार काम करते हैं, उसी प्रकार तुम्हे भी करना पडेगा, मैं चेताये देती हूँ।"

विपिन की स्त्री अब धीरे-धीरे बोली—"मैं पूर्ण रूप से ऐसी ही चेष्टा करती हूँ, बुआजी न जाने आज खाने की चीजे खराब क्यो हो गयी हैं।" यह कह वह नीचे चली गयी। हरिलक्ष्मी के उठकर खडे होते ही बुआजी हाय, हाय कर उठी।

लक्ष्मी ने मीठे स्वर मे कहा—"क्यो दुखी होती हो बुआजी, मेरा जी अच्छा नही है, इसलिए मैं खाने को नही खा सकी। इसमे मझली बहू के बनाने मे कुछ दोष नही था।"

हाथ मुँह धोकर अपने कमरे में आते ही हरिलक्ष्मी का मानो गला घुटने लगा। हर प्रकार का अपमान सहकर भी विपिन की स्त्री इसी घर मे नौकरी कर सकती है, किन्तु, आज के बाद गृहिणीपन का कार्य श्रम करके उसका खुद इस घर मे कैसे निर्वाह हो सकता है? मझली बहू के लिए तो फिर एक धीरज की बात है—बिना अपराध के दु ख सहने का धीरज, परन्तु स्वय लक्ष्मी के लिए कहाँ क्या बाकी रह गया?

रात को अपने स्वामी के साथ वह कैसी बात करे, हरिलक्ष्मी के मन मे अच्छी तरह सोचने पर भी नही आया। आज उसके मुँह की बात से भी विपिन की स्त्री का सारा दु ख दूर हो सकता था, किन्तु निरुपाय रमणी के सामने जो मनुष्य इस प्रकार बदला चुका सकता है, जिसके पौरुष मे यह बात खटकती तक नही उससे भीख माँगने का नीचपन स्वीकार करने की हरिलक्ष्मी के मन ने किसी प्रकार की गवाही न दी, वह अपने पति से इस विषय मे कुछ भी न बोली।

शिवचरण ने हँसते हुए प्रश्न किया—"मझली बहू के साथ मुलाकात हुई? कहो, कैसा भोजन बनाती है?"

हरिलक्ष्मी अपने पति की बात का उत्तर न दे सकी, उसके मन मे हुआ, यह मेरा स्वामी है, सारा जीवन इसी के साथ बिताना होगा। यह सब सोचते हुए इसके मन मे घोर ग्लानि उत्पन्न हुई, वह दुखी होकर बोली—"पृथ्वी रसातल को जाओ।"

दूसरे दिन दासी को भेज कर हरिलक्ष्मी ने बुआजी को बुलवा भेजा, उसने कहला दिया कि मुझे बुखार चढा है मैं कुछ नही खाऊँगी। बुआजी ने आकर अनेक सवाल जवाब करके हरिलक्ष्मी को परेशान कर दिया। उसके मुँह के भाव से और कठस्वर से उसको सन्देह हुआ कि लक्ष्मी बहानेबाजी कर रही है। वह बोली—"तुमको तो बिलकुल बुखार नही है, बहूरानी।"

हरिलक्ष्मी माथा हिलाकर जोर से बोली—"मुझे बुखार चढा हुआ है, कुछ नही खाऊँगी।"

डाक्टर के आने पर दरवाजे के बाहर ही से विदा करती हुई बोली—"आप जानते हैं, आपकी दवा से मुझे कुछ लाभ नही हो रहा है, अब आप जाइए।"

शिवचरण ने आकर अनेक प्रश्न किए, किन्तु एक बात का भी उसे उत्तर न मिला और दो-तीन दिन जब इसी प्रकार बीत गये तब सारे घर के स्त्री-पुरुष आशका से उद्विग्न हो उठे।

उस रोज दिन के दो बजे हरिलक्ष्मी स्नान घर मे से नि शब्द धीरे-धीरे पैर रखती हुई, आँगन के एक किनारे से ऊपर जा रही थी। बुआजी रसोई घर के बरामदे मे से देखकर चिल्ला उठी, "देखो! बहू जी, विपिन की बहू का काम, आखिर मे मझली बहू ने चोरी करनी शुरू कर दी है।"

हरिलक्ष्मी पास जाकर खडी हो गयी। मझली बहू चुपचाप नीचे सिर किए बैठी थी, एक बर्तन मे कुछ खाने की चीजें अगोछे से ढकी रखी थी। बुआजी ने उनकी तरफ दिखाकर कहा—"तुम्ही बताओ, बहूरानी, इतना चावल और तरकारी एक आदमी खा सकता है? घर लिए जा रही है लडके के लिए! जब मैंने बार-बार इसे मना कर दिया कि शिवचरण के कान मे भनक पडने पर फिर खैर नही होगी। वह गर्दन पकडकर घर से बाहर कर देगा। बहूरानी, तुम मालकिन हो, तुम्ही इसका फैसाला कर दो।" इतना कहकर बुआजी ने मानो अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया।

बुआजी की चिल्लाहट सुनकर घर के नौकर, नौकरानी, और लोग-बाग जो जहाँ थे, आकर इकट्ठे हो गये और लगे तमाशा देखने। उनके बीच मे बैठी थी उस घर की मझली बहू और उसकी मालकिन यानी इस घर की गृहिणी।

इतनी छोटी, इतनी तुच्छ चीज को लेकर इतना बडा काण्ड खडा हो जायगा, यह बात हरिलक्ष्मी ने कभी स्वप्न मे भी नहीं सोची थी। अभियोग का क्या उत्तर दे, अपमान से, अभिमान से, लज्जा से वह अपना मुँह ऊपर को न उठा सकी। यह लज्जा दूसरे के लिए नही, अपने लिए ही थी। उसकी आँखो से आँसू निकलने लगे। उसके मन मे आया कि इतने आदमियों के सामने पकडी गयी है विपिन की स्त्री और उसका न्याय करने बैठी है वह।

दो चार मिनट बाद ही अपने आप को सम्हाल कर हरिलक्ष्मी बोली—"बुआजी आप लोग सभी थोडी देर के लिए इस जगह से चले जाओ।"

उसके इतना कहते ही सब स्त्री-पुरुष वहाँ से चले गये, हरिलक्ष्मी धीरे-धीरे मझली बहू के पास जाकर बैठ गयी। उसने अपने हाथ से उसका मुँह ऊँचा करके देखा—उसकी दोनो आँखो से आँसुओ की लडी बह रही है। वह बोली—"मझली बहू, मैं तुम्हारी जीजी हूँ, यह कह कर उसने अपने आँचल के छोर से उसकी आँखो का जल पोंछ दिया।

अनुपमा का प्रेम

प्रथम परिच्छेद

विरह

ग्यारह वर्ष की उम्र से ही उपन्यासो को पढ़-पढकर अनुपमा ने अपना दिमाग खराव कर लिया था। वह समझती थी कि मनुष्य के हृदय मे जितना प्रेम, जितनी माधुरी, जितनी शोभा, जितना सौन्दर्य, जितनी तृषा हे, सवको वीन-वीनकर इकट्ठा करके मैंने अपने मस्तिष्क के भीतर सहेज कर रख लिया है, मनुष्य चरित्र और मनुष्य-स्वभाव मेरे लिए नख-दर्पण हो गया है। दुनिया में और कुछ सीखना वाकी नही, सव जान लिया है, सव सीख लिया है। अनुपमा इस वात पर विश्वास ही नही कर सकती कि सतीत्व की ज्योति को जैसा वह देखती है और प्रणय की महिमा को जैसा वह समझती है, दुनिया में और भी कोई समझ सकता है।

अनुपमा ने सोचा कि मैं एक माधवी लता हूँ, फिलहाल मजरियाँ आ रही हैं, —ऐसी दशा मे शीघ्र ही महकार-शाखा-वेष्टिता हुए विना खिलने के सम्मुख हुई कलियाँ किसी भी तरह पूर्ण विकसित नही हो सकेंगी। इसलिए उसने ढूँढ़-खोजकर एक नवीन-कान्त सहकार मनोनीत कर लिया और दो ही चार दिन में उसे हृदय, मन, जीवन, यौवन सव-कुछ दे डाला। मन ही मन देने और लेने का सभी को समान अधिकार है, मगर लिपट जाने के पहले सहकार के मतामत की भी कुछ आवश्यकता होती है। वही पर माधवी-लता जरा कुछ खतरे में पड गयी। नवीन नीरद कान्त को वह कैसे जताये कि वह उसकी माधवी लता है,— स्फुटोन्मुख हुई खडी है, उसे आश्रय न दोगे तो अभी वह अपनी कलियो समेत जमीन पर लोटती हुई अपने प्राण दे देगी।

परन्तु सहकार इतना नही जान सका। न जाने, न सही,—अनुपमा का प्रेम उत्तरोत्तर वढ़ने ही लगा। अमृत मे गरल, सुख मे दु ख, प्रणय मे विच्छेद चिर-प्रसिद्ध हैं। दो-चार दिन वाद अनुपमा ने विरह-व्यथा से जर्जरित होकर मन ही मन कहा—स्वामिन्, तुम मुझे स्वीकार करो या न करो, मेरी तरफ मुडकर देखो चाहे न देखो, मैं तुम्हारी सदा की दासी हूँ। प्राण चले जायँ यह भी मजूर है; पर तुम्हें किसी तरह नही छोड़ूँगी। इस जन्म मे न मिलो तो दूसरे जन्म मे निश्चय ही मिलोगे, —तव देखना कि सती-साध्वी की इन छोटी-छोटी वाँहो मे कितना वल है।

अनुपमा वडे आदमी की लडकी हैं। उसके मकान से लगा हुआ उद्यान भी है और मनोरम सरोवर भी। वहाँ चन्द्रमा उदित होता है, कमल भी खिलते हैं, कोयल भी कूकती हैं और मधुप भी गुजारते हैं। वही पर घूम-फिरकर वह विरह-व्यथा अनुभव करने लगी। वाल विखेरकर, अलकार खोलकर, देह में धूल लपेटकर, प्रेम की जोगिन वनकर, कभी सरसी के जल में मुँह देखने लगी, कभी नयन-जल से वक्षस्थल को प्लावित करती हुई गुलाव-पुष्प का चुम्वन करने लगी, कभी अचल विछाकर वृक्ष के नीचे पडकर दीर्घ-नि श्वास लेने लगी,—भोजन में रुचि नही ,सोने की इच्छा नही, साज-श्रृगार से अत्यन्त विरक्ति, गप-शप या वात-चीत मे विल्कुल मन नही। इस तरह अनुपमा दिन पर दिन सूख-सूखकर कॉंटा होने लगी। यह देखकर उसकी माँ को वडी चिन्ता हो गयी,—एक के सिवाय दूसरी लडकी नही, उसको भी यह क्या हो गया? पूछने पर वह न जाने क्या क्या कहती है जो किसी की समझ मे नही आता ओठों की वात ओठों में ही समाप्त हो जाती है। अनुपमा की माँ ने एक दिन जगवन्धु वाबू से कहा—अजी इसकी तरफ क्या एक वार देखोगे ही नही? तुम्हारे इस एक के सिवा दूसरी लडकी नही, वह भी विना इलाज के मरी जा रही है।

जगवन्धु वावू ने विस्मित होकर कहा—क्या हुआ उसे?

"सो तो मालूम नहीं। डाक्टर साहब तो देख सुन कर कह गये कि उसको कोई बीमारी नही है। फिर ऐसी क्यो होती जा रही है?

जगबन्धु बाबू ने चिढकर कहा—सो मैं कैसे जानूँगा?

"तो फिर हमारी लडकी मर जाय?"

"यह तो बडी मुश्किल की बात है! बुखार नही ,कोई बला नही,—यो ही अगर मर जाय तो मैं क्या उसे पकडकर रख सकता हूँ?"

तब अनुपमा की माँ सूखा मुँह लिये बडी बहू के पास जाकर बोली—बहू, मेरी अनू इस तरह क्यो घूमा करती है?

"मैं कैसे जान सकती हूँ, माँ?"

"तुम लोगो से क्या कुछ नही कहती?"

"कुछ नही।"

गृहिणी रो-सी उठी—तब क्या होगा? बिना खाये-पीये-सोये इसी तरह दिन-दिनभर बगीचे मे घूमती फिरेगी, तो कितने दिन जीयेगी? तुम लोग कोई उपाय करो,—नही तो किसी दिन तालाब मे डूब मरेगी।

बडी बहू ने कुछ देर तक सोच-विचारकर कहा—देखभालकर उनका ब्याह कर दो, गृहस्थी का बोझ सिर पर आयगा तो अपने आप ठीक हो जायँगी।

"अच्छी बात है, तो फिर आज ही मैं यह बात उनसे कहूँगी।"

अनुपमा के बाप ने यह बात सुनकर हँसते हुए कहा। कलिकाल ठहरा! कर दो, ब्याह करके ही देखो शायद अच्छी हो जाय।

दूसरे ही दिन घटक आया। अनुपमा बडे आदमी की लडकी ठहरी और रूपवती, पात्रो के लिए सोचना नही पडा। एक ही सप्ताह मे घटक महाराज ने लडका ठीक करके जगबन्धु बाबू को खबर दी। उन्होने यह बात गृहिणी से कही, गृहिणी ने बडी बहू से कही, क्रमश अनुपमा को मालूम हो गया।

दो-एक दिन बाद एक दिन दोपहर के वक्त सब मिलकर अनुपमा के ब्याह के बारे में बातचीत कर रही थी, इतने मे बालबिखेरे, एक गुलाब हाथ मे लिये शिथिल वसना अनुपमा भी तसवीर की तरह वहाँ आ खडी हुई। अनुपमा की माँ ने लडकी को देखकर जरा हँसते हुए कहा— बिटिया तो मेरी जैसे जोगिन बन गयी है।

बडी बहू ने जरा मुस्कराते हुए कहा—ब्याह होते ही यह सब गायब हो जायेगा। दो-एक लडके हुए नही कि फिर तो कुछ बात ही नही।

अनुपमा तसवीर की तरह खडी-खडी सब सुनती रही। बहू ने फिर कहा—माँ, ननदजी के ब्याह का दिन कब निश्चित हुआ?

"दिन अभी निश्चित नही हुआ।"

"ननदोई पढ़ क्या रहे हैं?"

"अबकी बार बी० ए० का इम्तहान देगे।"

"तब तो अच्छा दूल्हा मिला।" इसके बाद बडी बहू मुस्कराती हुई मजाक में बोली—पर देखने मे खूबसूरत नही हुआ तो हमारी ननदजी को पसन्द नही आयेगा।

"क्यों, पसन्द क्यो नही आवेगा? जमाई हमारा देखने मे तो बहुत ही अच्छा है।"

तब तो अनुपमा ने अपनी गरदन कुछ टेढी की और जरा झुककर पैर के नाखूनों से मिट्टी खोदने की-सी चेष्टा करते हुए कहा—ब्याह मैं नहीं करूँगी।

माँ को ठीक से सुनाई नही दिया, इससे उन्होने पूछा—क्या कहा बिटिया?

बडी बहू ने अनुपमा की बात सुन ली थी। वह खूब जोर से हँस पडी और बोली— ननदजी कह रही हैं, वे कभी ब्याह नही करेगी।

"ब्याह नही करेगी?"

"नही।"

'न करे' कहकर अनुपमा की माँ मुँह दबाती और भीतर ही भीतर मुस्कराती हुई चली गयी। उनके

चले जाने पर वडी बहू ने अनुपमा से पूछा—व्याह नही करोगी?
अनुपमा ने पहले की ही तरह गम्भीर मुँह वनाकर कहा—कि ... म नही।
"क्यो?"
"जिम तिस के गले मढ देने का नाम ही विवाह नही है। विना मन मिले व्याह करना ही गलत है।"
वडी वहू आश्चर्य मे आकर अनुपमा के चेहरे की ओर देखती हुई बोली—गले मढ देना किसे कहते हैं जी? यदि माँ-वाप किसी को न सौंपेगे तो क्या लडकियाँ खुद देख-भालकर पसन्द करके व्याह करेंगी?
"जरूर"
"तो तुम्हारी राय मे मेरा व्याह भी गलत हो गया है? व्याह के पहले तो मैं तुम्हारे भइया का नाम तक नही जानती थी?"
"सभी क्या तुम्हारी तरह हैं?"
वडी वहू को फिर हँसी आ गयी, वोली—तुम्हे क्या कोई मन का आदमी मिल गया है?
अनुपमा ने अपनी भाभी की इस सहास्य व्यंग्योक्ति पर अपना मुँह पहले से चौगुना गम्भीर वनाकर कहा—भाभी, मजाक उडा रही हो, क्यो? यह क्या मजाक करने का वक्त है?
"क्यो, हो क्या गया?"
"हो क्या गया? तो सुनो।" अनुपमा को लगा जैसे उसके पति का उसके सामने ही वध किया जा रहा है, सहसा कतलू खाँ के किले मे वध-मच के सामने का विमला और वीरेन्द्रसिह का दृश्य उसके सामने खडा हो गया। अनुपमा ने सोचा-वे जैसा कर सकते हैं, क्या मैं वैसा नही कर सकती? सती स्त्री ससार मे किससे डरती है? देखते-देखते उसकी आँखे एक अनैसर्गिक तेज से चमकने लगी—देखते-देखते उसने अपना आँचल कमर से लपेट लिया। यह हालत देखकर वडी वहू तीन हाथ पीछे हट गयी। पल-भर में अनुपमा पास के पलग के पाये से जोर से लिपटकर ऊपर की ओर देखती हुई जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगी—प्रभो, स्वामी, प्राणनाथ, ससार के सामने आज मैं मुक्त कठ से स्वीकार करती हूँ, तुम्ही मेरे प्राणनाथ हो। प्रभो, तुम मेरे हो,—मैं तुम्हारी हूँ। यह पलग का पाया नही है प्रभो, यह तुम्हारे चरण-युगल हैं,—मैं धर्म को साक्षी मानकर तुम्हे पतित्व मे वरण कर रही हूँ। तुम्हारे चरण छूकर कहती हूँ,—इस ससार मे तुम्हारे सिवा और कोई मेरा स्पर्शतक नही कर सकता, किसी की मजाल है जो प्राण रहते हम दोनो को अलग कर सके? माँ, माँ, जगज्जननी!
बड़ी बहू चिल्लाती हुई बाहर दौडी गयी—अजी देखो, लल्ली को क्या हो गया! देखते-देखते गृहिणी दौडी आयी। वहूजी का चीत्कार वाहर तक पहुँच गया था। 'क्या हुआ, हुआ क्या,' कहते हुए जगबन्धु बाबू और उनके पुत्र चन्द्र बाबू भी दौडे आये। मालिक-मालकिन, पुत्र-पुत्रवधू और दास-दासियों से कमरा भर गया। अनुपमा मूर्च्छित होकर खाट के पास पड़ी थी। गृहिणी रोने लगी—मेरी अनु को यह क्या हो गया! डाक्टर को बुलाओ! पानी लाओ! पखा करो!—इत्यादि शोर-गुल सुनकर मुहल्ले के आधे पड़ोसी भी वहाँ आ पहुँचे।
वहुत देर वाद आँखे खोलकर अनुपमा ने धीरे-धीरे कहा—मैं कहाँ हूँ?
उसकी माँ ने मुँह के पास मुँह ले जाकर स्नेह के साथ कहा—क्यों विटिया, तुम तो मेरी गोद मे पडी हो।
अनुपमा ने एक गहरी साँस ली और धीरे-धीरे कहा—ओह, तुम्हारी गोद मे! मैं तो सोच रही थी कि और कही किसी स्वप्नराज्य मे उनके साथ वहती हुई जा रही हूँ। उसके कपोलो मे बह-वहकर आँसू टपकने लगे। माँ ने उन्हे पोछते हुए कातर होकर कहा—क्यो रो रही हो विटिया? किसकी बात कहती हो?
अनुपमा गहरी श्वास लेकर मौन हो गयी।
वडी वहू ने चन्द्र वाबू को एक तरफ बुलाकर कहा—सबको चले जाने के लिए कह दो, अव कोई डर नही है, लल्ली अच्छी हो गयी।
धीरे-धीरे सव चले गये। रात को वड़ी वहू अनुपमा के पास आकर बैठ गयी और बोली—किस के साथ व्याह होने से तुम सुखी होगी?
अनुपमा ने आँखें मीचकर कहा—सुख-दुःख मेरे लिए कुछ भी नही है, वही मेरे स्वामी हैं—
"सो तो समझ गयी—पर वे हैं कौन?"

"सुरेश! सुरेश–"

"सुरेश? राखाल मजूमदार का लडका?"

"हाँ, वही।"

रात को ही अनुपमा की माँ को यह बात मालूम हो गयी। दूसरे ही दिन वे मजूमदार के घर पहुँची। बातो-बातो मे सुरेश की माँ से उन्होने कहा–अपने लडके के साथ मेरी लडकी को ब्याह दो। सुरेश की माँ ने हँसते हुए कहा–ठीक तो है!

"ठीक नही, तुम्हें यह सम्वन्ध करना ही पडेगा।"

"लेकिन सुरेश से तो एक बार पूछ आऊँ। वह घर ही मे है, अगर वह राजी हो गया तो उसके बाप भी इनकार नही करेगे।"

सुरेश इन दिनो घर पर ही बी० ए० परीक्षा के लिए तैयारी कर रहा है,–एक-एक मिनट उसके लिए एक-एक वर्ष हो रहा है। उसकी माँ ने ब्याह की बात कही तो उसने सुनी ही नही। फिर कहा–सुरेश, तुझे ब्याह करना होगा।

सुरेश ने मुँह उठकार–हाँ, सो ठीक है, पर अभी क्यो? पढते समय ये सब बाते अच्छी नही लगती।

माँ ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा–नहीं नही, अभी नही–परीक्षा हो जाय उसके वाद ब्याह होगा।

"कहाँ?"

"इसी गाँव मे, जगवन्धु बाबू की लडकी से।"

"क्या? चन्द्र की बहन से जिसे वह मुन्नी कहा करता है।"

"मुन्नी क्यो, उसका नाम अनुपमा है।"

सुरेश मुस्कराता हुआ बोला–हाँ, अनुपमा! अरे मारो गोली–देखने मे बड़ी भद्दी है।।

"भद्दी क्यों है? वह तो अच्छी है देखने मे।"

"होने दो अच्छी देखने मे एक ही जगह ससुराल और घर, मुझे बिल्कुल पसन्द नही।"

"क्यो, इसमे बुराई क्या है?"

"बुराई की बात रहने दो, तुम जाओ माँ, मुझे अभी पढना है–अभी कुछ भी नही हुआ।"

सुरेश की माँ ने लौटकर कहा–सुरेश तो एक ही गाँव मे ब्याह करने को किसी तरह राजी नही होता।

"क्यो?"

"सो नही जानती।"

अनुपमा की माँ ने मजूमदार-गृहिणी का हाथ पकडकर बडे करुण भाव से कहा–सो नही होने का बहन। यह ब्याह तो तुम्हे करना ही पडेगा।

"लडका राजी न हो, तो मैं क्या कर सकती हूँ बताओ?"

"विना कराये मैं छोडूँगी नही।"

"तो आज रहने दो, कल फिर एक बार समझाऊँगी, देखूँ अगर राजी कर सकूँ।"

अनु की माँ ने घर आकर जगबन्धु बाबू से कहा–उनके सुरेश के साथ मेरी अनु का ब्याह होना चाहिए, जैसे बने तुम इसे पक्का कराओ।

"क्यो भला? रायग्राम मे तो करीब-करीब पक्का ही हो चुका है, उस सम्बन्ध को क्या छोड दोगी?

"कारण है।"

"क्या है कारण?"

"और कुछ भी नही, सुरेश सरीखा रूपवान्, गुणवान् लडका सहज मे नही मिल सकता और फिर मेरे एक ही तो लडकी है, उसे मैं दूर नही ब्याह सकती। सुरेश के साथ होगा तो गाँव की गाँव मे जब जी मे आया, देख सकूँगी।"

"अच्छा, कोशिश करूँगा।"

"कोशिश नही जी,–जरूर, करना ही पडेगा।"

मालिक को अपनी पत्नी के नथ हिलाने का ढंग देखकर हँसी आ गयी, वोले–जरूर करूँगा।

शाम के बाद मालिक मजूमदार के यहाँ से लौटकर स्त्री से कहा–ब्याह नही हो सकता।

"क्यों,क्या बात हुई?"

"क्या करूँ, वतलाओ? वे अगर राजी न हों, तो मैं जवरदस्ती उनके घर जाकर लडकी को फेक तो आ नही सकता!"

"क्यो, राजी क्यो नही होतें?"

"एक ही गाँव में व्याह करने की उनकी मशा नही है।"

अनु की माँ ने माथे पर हाथ दे मारे, वोली—मेरी तकदीर का ही दोष है!

दूसरे दिन वे फिर सुरेश की माँ के घर पहुँची और वोली—जीजी, व्याह तो करना ही पडेगा।

"मेरी तो इच्छा है, पर लडका जो राजी नही होता।'

"मैं छिपाकर सुरेश को और भी पाँच हजार रुपये दूँगी।"

रुपये का लोभ सवसे वडा लोभ है। सुरेश की माँ ने यह वात सुरेश के वाप से कही। उन्होने सुरेश को वुलाकर कहा—सुरेश, तुम्हें यह व्याह करना ही होगा।

"क्यो?"

"क्यो क्या होता है? इस व्याह में तुम्हारी गर्भधारिणी का मत है, मेरी भी राय है; साथ ही एक और भी कारण आ पडा है।"

सुरेश ने नीची निगाह किये हुए कहा—अभी पढ़ने-लिखने का समय है—परीक्षा मे हानि होगी।

"सो तो मुझे मालूम है वेटा! मैं तुम्हे परीक्षा की हानि करने को नही कहता। परीक्षा खतम हो जाने पर व्याह होगा।'

"जैसी आज्ञा।"

अनु की माँ के आनन्द की सीमा न रही। उन्होने यह वात पति से कही और नौकर-चाकर सवको ही वडी खुशी से यह समाचार सुना दिया। वडी वहू ने अनुपमा को वुलाकर कहा—सुना ननदजी, तुम्हारा दूल्हा तो पकडाई दे गया।

अनुपमा ने लज्जा के साथ जरा-सा मुस्कराते हुए कहा—मैं तो पहले ही से जानती थी।

"कैसे मालूम हुआ? चिट्ठी-पत्री चलती थी क्या?"

"प्रेम अन्तर्यामी होता है। हमारी चिट्ठी-पत्री मन ही मन चला करती थी।" "तुम धन्य हो!"

अनुपमा के चले जाने पर वडी वहू ने धीरे से कहा—इस उम्र मे ये छोटे मुँह वडी-वडी वाते सुनकर देह जलने लगती है। मैं तीन-तीन लड़कों की माँ हो गयी—ये मुझे आज प्रेम सिखाने चली हैं।

द्वितीय परिच्छेद

प्रेम का परिणाम

दुर्लभ वसु काफी धन-दौलत छोडकर जव परलोक सिधार गये तव उनके वीस वर्ष के इकलौते पुत्र ललित मोहन ने उनकी श्राद्ध-शान्ति की और फिर एक दिन स्कूल जाकर मास्टर से कहा—मास्टर साहव, मेरा नाम काट दीजिए।

"क्यो वेटा?"

"फिजूल पढने-लिखने से क्या होगा? जिसके लिए पढ़ा-लिखा जाता है, वह मेरे पास वहुत है, पिताजी मेरे लिए पढ़-लिखकर काफी धर गये हैं!"

मास्टर साहव ने आँख मिचकाकर मुस्कराते हुए कहा—तो फिर तुम्हे फिक्र ही किस वात की है? अव मजे से 'चरो' और खाओ! यहीं पर ललित मोहन के विद्याभ्यास की इति हो गयी।

ललित मोहन की एक तो कच्ची उम्र और फिर हाथ में काफी रुपया, लिहाजा स्कूल छोडते ही काफी यार-दोस्त जुट गये और उसके वाद क्रमश तमाखू, भाँग, गाँजा, शराव, गायक-गायिका इत्यादि एक के वाद एक उसकी वैठक की शोभा वढ़ाने लगे। इधर पिता का संचित किया हुआ धन भी पानी की तरह तरंगे लेता हुआ तेजी के साथ सागर की तरफ दौडने लगा। माँ ने रो-धोकर वहुत समझाया वहुत-कुछ कहा-सुना, पर उसने सुना ही नही।

एक दिन वह सूर्ख आँखे लिये हुए माँ के पास जाकर वोला—माँ, मुझे इसी समय पचास रुपया दो। माँ

ने कहा—मेरे पास एक पैसा भी नही है। ललित मोहन और कुछ न कहकर एक कुल्हाडी उठा लाया, और उससे माँ का बॉक्स तोडकर उसमे से पचास रुपया लेकर चलता बना। माँ खडी-खडी सब देखती रही, कुछ बोली नही।

दूसरे दिन उसने पुत्र के हाथ मे लोहे के सन्दूक की चाबी देकर कहा—बेटा, यह लो लोहे के सन्दूक की चाबी। तुम्हारे बाप का रुपया है, जैसे चाहो खर्च कर सकते हो, अब मैं कुछ नही कहूँगी। पर भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि मेरे चले जाने पर तुम्हारी आँखे खुल जायँ।

ललित ने विस्मित होकर कहा—कहाँ जाओगी?

"मालूम नही। आत्म-घात करने से कहाँ जाना पडता है, सो तो मैं नही जानती, पर इतना मालूम है कि सद्गति नही होती। पर क्या करूँ बताओ,—मेरी तकदीर ही ऐसी है।"

"आत्म -घातिनी होगी?"

"और चारा ही क्या है? तुम्हे पेट मे धर कर मुझे सभी सुख जो मिल चुके। अब रोज-रोज तुम्हारी झाड़ू-लात खाने की अपेक्षा यमदूत का अग्निकुण्ड क्या बुरा है?"

ललितमोहन माँ को पहचानता था—वह अच्छी तरह जानता था कि उसकी माँ झूठ-मूठ डराने वाली नही है। तब वह रोने लगा और पैरो पड़कर कहने लगा—माँ, अब की बार तुम माफ कर दो, अब ऐसा काम न करूँगा। तुम रहो, जाओ मत।

माँ ने रूखे स्वर मे कहा—ऐसा भी कही हो सकता है? तुम्हारे यार-दोस्त, आखिर वे सब जायँगे कहाँ?

"मैं किसी को नही चाहता। रुपया-पैसा, यार-दोस्त, कुछ भी नही चाहता, सिर्फ तुम रहो।"

"तुम्हारी बात का विश्वास क्या है?"

"क्यो माँ, मैं तुम्हारी बुरी औलाद हूँ, फिर भी क्या कभी मैंने कोई अविश्वास का काम किया है। तुम यहाँ रहकर इच्छा-खुशी जो दोगी, उससे ज्यादा मैं एक पैसा भी नही माँगूँगा।"

"इच्छा-खुशी तो तुम्हे एक पैसा भी देने को जी नही चाहता—क्योंकि एक-डेढ साल के अन्दर ही तुमने जितना रुपया उडाया है, उससे आधा भी तुम कभी अपनी जिन्दगी मे पैदा नही कर सकोगे।"

"तो तुम मुझे कुछ भी मत देना।"

जननी का हृदय कोमल हो उठा, उसने कहा—नही, तुम इतना नही सह सकते, और मैं भी ऐसा नही चाहती। महीने मे एक सौ रुपये से तुम्हारा काम चल जायगा?

"मजे से।"

"तो यही ठीक रहा।"

दो ही एक दिन मे उसके यार-दोस्त सब धीरे-धीरे खिसकने लगे। ललितमोहन दो-एक के घर बुलाने भी गया, किसी ने कहा—'कल आऊँगा' और कोई बोला—'आज काम है।' परिणामस्वरूप आया कोई भी नही। अब वह बिल्कुल अकेला पड गया। अकेले शराब पीता है, अकेले ही घूमता-फिरता है। उसने एक बार सोचा—अब शराब नही पीऊँगा, पर वक्त कैसे कटे? लिहाजा वह न छूट सकी। एक रास्ते पर वह अकसर घूमा करता; वह रास्ता जगबन्धु बाबू के बगीचे के बगल से होकर गया है, और अपेक्षाकृत निर्जन होने से वहाँ शराब पीकर घूमने-फिरने का मौका भी सबसे अच्छा है। शराबी होने से गाँव-भर मे उसकी काफी बदनामी थी, इसलिए किसी के घर जाना अच्छा नही मालूम होता था—लिहाजा वह शराब पीकर अपने ही साथ आप घूमा-फिरा करता था।

आजकल उसे एक और साथी मिल गया है,—वह है अनुपमा। आते-जाते वह अकसर देखा करता है—उसी की तरह अनुपमा भी बगीचे के भीतर घूमा-फिरा करती है। अनुपमा को वह बचपन से देखता आया है—परन्तु आजकल उसमे उसे कुछ नवीनता-सी दीख पडती है। जगबन्धु बाबू के बगीचे की दीवार का एक हिस्सा टूटा था, वहाँ से एक पेड के पास खडा होकर वह देखता—अनुपमा बगीचे-भर मे घूमती-फिरती है, कभी पेड के नीचे बैठी हुई फूलो की माला गूँथती है, कभी फूल चुनती है, और कभी-कभी सरोवर के शीतल जल में दोनों पैर डुबोकर बालिका-सुलभ क्रीड़ा करती है। यह देखना उसे बहुत अच्छा लगता; इधर-उधर बिखरे हुए बाल, अत्यन्त-रक्षित देहलता, गैर-सिलसिले के कपड़े और गहने और सबसे बढ़कर उसका चेहरा शराब की मदभरी आँखों से उसे कमल-पुष्प-सा दिखाई

देता। कभी-कभी उसे ऐसा मालूम होता कि ससार मे अनुपमा को देखते रहना ही उसे सबसे ज्यादा प्रिय है। रात होते ही वह घर जाकर सो रहता, और जब तक नींद नही आती, तबतक अनुपमा का मुखडा उसे याद आता रहता। स्वप्न मे भी कभी-कभी अनुपमा का अनिन्ध-सुन्दर मुखमडल उसके हृदय मे जाग उठता। इसी तरह कितने ही दिन बीत गये, जगबन्धु बाबू के बगीचे की उस टूटी दीवार के पास रोज शाम को बैठे रहना आजकल उसका नित्यकर्म हो गया है। बच्चा नही है। इसलिए थोडे ही दिन मे समझ गया कि अनुपमा को वास्तव मे मैंबहुत ज्यादा प्रेम करने लगा हूँ।परन्तु ऐसे प्रेम से लाभ कुछ नही। वह जानता था कि मैं शराबी हूँ, अयोग्य और मूर्ख हूँ, सबसे घृणित हूँ,—अनुपमा के योग्य किसी भी हालत मे नही हो सकता—सैकडो कोशिशे करने-पर भी उसे पाना मेरे लिए सम्भव नही, तो फिर इस तरह व्यर्थ मन खराब करने-से क्या? कल से अब नही आऊँगा। पर रहा नही जाता,—सूर्यास्त होते ही वह शराब पीकर उस टूटी दीवार के ऊपर आकर बैठजाता।मगर इसके भीतर एक बात और है—किसी के प्रेम करने से मालूम होता कि शायद वह भी इसी तरह प्रेम करती हो; और क्यो नही वह प्रेम करेगी? हाँ, इतना जरूर है कि यह बात साबित नही की जा सकती।

एक दिन ललित मोहन दीवार पर चढ़ा ही था कि चन्द्र बाबू की उसपर निगाह पड गयी।

चन्द्र बाबू ने दरबान को पुकार कर कहा—को पकडो। दरबान पहले तो समझ ही न सका कि किसे पकडना है, और बाद मे जब समझा कि ललित बाबू को पकडना है, तब सलाम करके तीन हाथ पीछे हटकर खडा हो गया।

चन्द्र बाबू ने फिर जोर से चिल्लाकर कहा— को पकड के थाने मे ले जाओ।

दरबान बगला-हिन्दी की खिचडी पकाता हुआ बोला—हामि नही पारबे बाबू।

ललित मोहन तबतक दीवार से उतरकर धीरे से चलता बना। उनके चले जाने पर चन्द्र बाबू ने कहा—क्यो नही पकडा?

दरबान चुप हो रहा। एक माली ललित को अच्छी तरह जानता था, उसने कहा—भला इस भोजपरिया की क्या मजाल है जो ललित बाबू को पकडे। इस जैसे चार दरबानो के सिर तो वे एक घूँसे से ही तोड देगे।

दरबान ने भी इस बात से इनकार नही किया, बोला—बाबू नौकरी करने आया हूँ, जान देने नही।

चन्द्र बाबू ऐसे ही छोड देने वाले नही थे। ललित पर वे पहले ही से बहुत खफा थे, अब मौका पाकर, गवाह जुटाकर उन्होने अनधिकार प्रवेश और न जाने क्या-क्या अपराध लगाकर अदालत मे दावा दायर कर दिया। जगबन्धु बाबू और उनकी स्त्री दोनो ही ने इस मुकदमे के लिए मना किया, लेकिन चन्द्रनाथ ने एक न सुनी। और मर्मपीडिता अनुपमाने तो खास तोर से जिद की कि पापी को सजा दिये बिना मेरा मन किसी भी तरह शान्त नही होगा।

इन्स्पेक्टर ने घर पर आकर अनुपमा का इजहार लिया। अनुपमा ने सब कुछ ठीक-ठीक कह दिया। अन्त मे मामला ऐसा हो गया कि ललित की माँ काफी रुपया खर्च करके भी लडके को किसी तरह न बचा सकी। ललितमोहन को तीन साल की कडी सजा का हुक्म हो गया।

बी० ए० की परीक्षा का रिजल्ट निकल गया। सुरेश चन्द्र मजूमदार एकदम फर्स्ट आये। गाँव-भर मे तारीफ का तहलका -सा मच गया। अनुपमा की माँ के आनन्द की सीमा न रही। वे मारे खुशी के सुरेश की माँ से जाकर बोली—अपनी बात अपने आप नही कहनी चाहिए, मगर देखो तो सही, मेरी लडकी का भाग्य।

सुरेश की माँ ने हँसते हुए कहा—सो तो देख ही रही हूँ।

''ब्याह तो हो जाने दो, फिर तुम्हारा लडका राजा न हो जाय तो कहना। अनू जब पैदा हुई थी, तब एक जोतिषी ने आकर कहा था कि लडकी रानी होगी। इतने सुख से कोई कभी नही रही और न रहेगी जितना सुख, तुम्हारी लडकी को होगा।

''किसने कहा था?

''एक सन्यासी जोतिषी ने।''

''लेकिन पहले तुम अपने जमाई के लिए एक मकान तो खरीदवा दो।''

''क्यो नही, जरूर। यो तो चन्द्र को मैं अपनी कोख का ही लडका समझती हूँ, पर मेरी अनू को भी

हिसाव से देखा जाय तो बाप की आधी जायजाद मिलनी चाहिए और मैं जिन्दी रही तो वह पायगी ही।"

"ऐसा ही हो—दोनो राजा-रानी होकर सुख से रहे और हम लोग यह देखकर मरे।"

दो दिन बाद राखाल मजूमदार ने अपने पुत्र को बुलाकर कहा—इसी वैसाख मे तुम्हारे ब्याह का दिन ठीक हुआ है।

"मेरी जरा भी इच्छा नही कि अभी ब्याह हो।"

"क्यो?"

"मैंने 'गिलक्रिष्ट-स्कालरशिप' पाया है, चाहूँ तो मैं उससे विलायत जाकर पढ सकता हूँ।"

"तुम विलायत जाओगे?"

"इच्छा तो है।"

"पढते-पढते तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। ऐसी बात फिर कभी जवान पर भी न लाना।"

"विना खर्च के जब यह सुभीता मिल रहा है तब दोष ही क्या है?"

राखाल बाबू इस बात पर आग—बबूला हो उठे, बोले—नास्तिक कही का! कहता है, दोष क्या है? दूसरे के खर्च से अगर जहर मिल जाय तो क्या वह भी खाना होगा?

"उस बात मे और इस बात मे वहुत फर्क है।"

"फर्क कहाँ रहा? इस तरफ है जात खोना और म्लेच्छ होना, और दूसरी तरफ है जहर खाना। ठीक एक बात नही तो और क्या है? बाल-बाल नही मिल जाता है?"

सुरेश फिर किसी तरह का प्रतिवाद न करके चुपचाप चल दिया। उसके चले जाने पर राखाल बाबू अपने ही आप हँसकर कहने लगे—बेटा दो-चार पन्ने अंग्रेजी पढ़के हम लोगो से बहस करने को तैयार हैं! कैसी वात सुना दी! दूसरे के खर्च से जहर मिल जाय, तो क्या वह भी खाना होगा? वच्चू के मुँह से दूसरा शब्द भी न निकल सका। ऐसी अकाटच युक्ति को क्या कोई काट सकता है?

ब्याह का सब कुछ पक्का हो जाने पर बडी बहू ने एक दिन अनुपमा से कहा—तुम्हारे दूल्हे की सुख्याति तो गाँव मे समाती ही नही।

अनुपमा ने मन्द मुस्कराहट के साथ कहा—जिसके सती-साध्वी स्त्री है, दुनिया मे उसके लिए सुख के सभी द्वार खुले रहते हैं।

"फिर भी तो अभी ब्याह नही हुआ?"

"ब्याह हम लोगो का बहुत दिन पहले हो चुका है, अवश्य ही उसे दुनिया नही जानती, पर भीतर-भीतर हम दोनो के हृदय का पूर्ण मिलन बहुत दिन पहले हो गया है।"

वडी बहू जरा हँसी, ओठो को जरा कुंचित करके और जरा ठहर कर वोली—यह बात और कही मत कह बैठना, मैं बूढी मौगी हूँ, फिर भी मुझे कहना तो दूर रहा—ऐसी बात सुनने मे भी शरम लगती है, और तुम सभी बाते ऐसे कह जाती हो जैसे थियेटर मे ऐक्टिग करती हो;—ऐसा करोगी तो लोग पागल कहेगे।

"मैं प्रेम मे पागल हूँ!"

तृतीय परिच्छेद

विवाह

आज बैशाख की पचमी है। अनुपमा के विवाहोत्सव के कारण गाँव-भर मे धूम मची हुई है। जगबन्धु बाबू के घर आज भीड का कोई ठिकाना नही है, समाती ही नही। एक तरफ खिलाने-पिलाने का ठाठ और दूसरी तरफ बाजो की धूम। ज्यों-ज्यो शाम करीब आने लगी, त्यो-त्यो धूमधाम बढने लगी। गोधूलि के बाद ही ब्याह है, दूल्हा आता ही होगा, सभी लोग उत्साह और आग्रह से उद्ग्रीव हो रहे हैं।

पर दूल्हा है कहाँ? राखाल बाबू के घर शाम के पहले से ही शोर मच रहा है-सुरेश गया किधर? 'इधर ढूँढ' और ऊपर ढूँढ', 'इधर देख' और 'उधर देख' मचा हुआ है। फिर भी कोई सुरेश को ढूँढ़ नही पा रहा है। कुसवाद के पहुँचने मे देर नही लगती, बिजली की तरह उड़ती हुई यह बात जगबन्धु बाबू के घर भी पहुँच गयी। घर-भर के सभी लोग सिर पर हाथ रखकर बैठ गये— ऐ, कैसी बात?

ठीक आठ बजे लग्न है, मगर नौ बज रहे हैं, कहीं भी दूल्हे का पता नहीं चल रहा है। जगबन्धु बाबू सिर धुनते हुए इधर से उधर दौडने लगे। अनुपमा की माँ रोती हुई उनके पास आकर कहने लगी—अब क्या हो जी?

जगबन्धु बाबू उस समय आधे पागल-से हो रहे थे। चिल्ला उठे, होगा मेरा श्राद्ध—और क्या होगा? इस अभागी लडकी के लिए बुढापे मे मेरी इज्जत गयी, यश गया, जात गयी, सब गया मेरा तो, अब जात बाहर होकर रहना होगा। क्यो मैंने अपनी मिट्टी खराब कराने के लिए बुढ़ापे मे तुमसे व्याह किया, तुम्हारी ही वजह से आज यह अपमान हो रहा है। शास्त्रो मे ही लिखा है—स्त्रीबुद्धिःप्रलयकरी। तुम्हारी बातो मे आकर अपने ही पाँव पर कुल्हाडी मार ली मैंने! जाओ, अपनी लडकी को लेकर चली जाओ, मेरे सामने से दूर हो जाओ!

हाय! अनुपमा की माँ के दु ख का वर्णन करने की जरूरत नहीं। इधर यह हाल है, और उधर एक और आफत। अनुपमा को बार-बार मूर्च्छा आ रही है।

इधर रात बढती चली जा रही है, दस, ग्यारह, बारह बजने-बजते क्रमश एक, दो, बज गये, परन्तु कहीं भी सुरेश का पता नहीं।

सुरेश मिले चाहे न मिले, मगर अनुपमा का व्याह तो करना ही होगा। क्योंकि आज रात को व्याह न हुआ, तो फिर जगबन्धु बाबू की जात चली जायगी।

आखिर रात के करीब तीन बजे, मुहल्ले के पाँच पचो ने—जगबन्धु बाबू के हितैषी मित्रों ने—मिलकर पचास वर्ष के बूढ़े, दमा के रोगी, रामदुलाल दत्त को दूल्हे के वेश मे लाकर खडा कर दिया।

अनुपमा ने जब सुना कि इस तरह से उनका जीवन नष्ट करने का उद्योग हो रहा है, तो वह मूर्च्छा छोडकर माँ के पैरा पर लोट गयी,—ओ मा! मेरी रक्षा करो, इस तरह मेरे गले पर छुरी मत फेरो! यह व्याह होगा तो तुम निश्चय समझ लेना मैं आत्म-घात करके मर जाऊँगी।

माँ ने रोते हुए कहा—मैं क्या करूँ बिटिया?

मुँह से चाहे कुछ भी कहे, पर लडकी के दु ख और आत्म-ग्लानि से उनका हृदय जला जा रहा था, इसी से रोती-झीकती हुई वे फिर पति के पास पहुँची। बोली—सुनते हो, जरा सोच-समझ लो—नतीजा क्या होगा—यह व्याह हो गया तो लडकी मेरी जहर खाकर मर जायगी। जगबन्धु बाबू कुछ उत्तर न देकर अनुपमा के पास पहुँचे और गम्भीरता के साथ बोले—उठो, सबेरा हुआ जा रहा है।

"कहाँ जाऊँ बाबूजी?"

"अभी कन्या-दान करना है।"

अनुपमा रो उठी—बाबूजी, मुझे मार डालो—मैं जहर खा लूँगी।

"यदि तबीयत मे आवे, तो कल खा लेना,—आज व्याह देकर मैं अपनी जात बचा लूँ फिर जो जी मे आवे सो करना—जहर खाना, तालाब मे डूब मरना, मैं एक बार भी मना नहीं करूँगा।"

कैसी कठोर बात है! अब तो सचमुच ही अनुपमा का कलेजा काँप उठा। बोली—बाबूजी, मुझे बचाओ! बहुत रिरियायी, बहुत रोई-बिलखी, पर कोई फल न हुआ। दृढ-प्रतिज्ञ जगबन्धु बाबू ने उसी रात को रामदुलाल दत्त के साथ अनुपमा का व्याह कर दिया।

बहुत दिनों से पत्नी-हीन वृद्ध रामदुलाल के घर पर अपना कहने को कोई नहीं था। दो पुराने ईंटो के बने घर, जरा-सा साग-सब्जी का बगीचा—बस यह दत्त महाशय की सासारिक सम्पत्ति थी। बहुत तकलीफ के साथ उनके दिन गुजरते थे। व्याह करके दूसरे ही दिन वे अनुपमा को अपने घर ले आये, साथ-साथ बहुत-सी खाने-पीने की चीजे आयी, दास-दासियाँ आयी, कोई तकलीफ नहीं—छह-सात रोज उनके बडे आनन्द से बीत गये। ससुर बडे आदमी ठहरे—अब उन्हे कोई चिन्ता नहीं, व्याह करके उनकी तकदीर जग गयी। परन्तु अनुपमा की बात दूसरी थी। और दो दिन रहकर जब वह मायके लौटी, तो उसका चेहरा देखकर दास-दासियो ने भी छुपकर अपने आँसू पोछ लिये।

घर जाकर प्राण दे दूँगी, यह बात अनुपमा ने ससुराल मे ही तय कर ली थी। अब सचमुच ही वह मर जाना चाहती है। बहुत रात बीत जाने पर जब घर के सब लोग सो रहे, तो वह चुपके से उठकर और पीछे वाले दरवाजे से निकलकर बगीचे के तालाब की सीढियो पर जाकर बैठ गयी। आज उसे मरना होगा—जबानी नहीं, सचमुच ही मरना होगा। अनुपमा को याद आया—और भी एक दिन मैं यहीं मरने

आयी थी। वह ज्यादा दिन की बात नहीं है, लेकिन तब मर नहीं सकी; क्योंकि तब एक आदमी ने आकर मुझे पकड लिया था। आज वह कहाँ है? जेलखाने मे सजा भुगत रहा है। किस कसूर पर? वह सिर्फ इतना कहने आया था कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। किसने उसे जेल भिजवाया? चन्द्र बाबू ने। क्यो? इसलिए कि वे उसे फूटी ऑख नही देख सकते थे, वह शराबी था, उसने अनधिकार प्रवेश किया था, मगर मैं क्या उसे बचा नहीं सकती थी? बचा सकती थी, पर मैंने यह नहीं किया; बल्कि उसे जेल भिजवाने में सहायता ही की। आज वह सोचने लगी—ललित क्या सचमुच ही मुझसे प्रेम करता था? हो सकता है कि करता हो शायद न भी करता हो; नहीं; पर उसे सजा दिलवाने से मुझे क्या मिल गया, कौन से इष्ट की सिद्धि को गयी? जेल में वह पत्थर तोड रहा होगा; कोल्हू चला रहा होगा और भी न जाने क्या-क्या नीच काम कर रहा होगा, इससे चन्द्र बाबू को भले ही कुछ लाभ हुआ हो; पर मुझे क्या लाभ हुआ? उसे सजा न हुई होती तो क्या मैं उन्हे पा सकती, जो अभी आनन्द के साथ अपनी उन्नति के लिए जहाज पर सवार होकर विलायत जा रहे हैं? अनुपमा बैठी-बैठी बहुत देर तक रोती रही; फिर पानी मे उतरी। घुटने तक, छाती तक, गले तक, फिर क्रमश डुबान-पानी मे जा पहुँची। कोई आधे मिनट तक पानी के भीतर डूबी रहने से बहुत-सा पानी उसके पेट मे चला गया और तब वह फिर ऊपर उतरा आयी, फिर डूबी और फिर उतरा आयी। वह तैरना जानती थी, इससे सारा तालाब ढूँढ मारने पर भी डूब जाने लायक पानी उसे कहीं नही मिला। उसने बहुत बार डुबकियाँ लगायी, काफी पानी भी पेट मे चला गया, मगर किसी भी तरह वह एकदम न डूब सकी। उसने देखा कि मरने का सकल्प करके भी; ज्यो ही डूबती हूँ त्यो ही, साँस रुकने लगती है और तब साँस लेने के लिए ऊपर तैर आना पडता है। इस तरह सारे तालाब मे तैर-तारकर रात खतम होने के करीब जब उसने अपनी बिलकुल थकी हुई निर्जीव देह को किसी तरह सीढियो पर लाकर पटका, तो देखा कि किसी भी हालत मे, किसी भी कारण से क्यो न हो, इस तरह जरा-जरा करके प्राण त्यागना आसान काम नही है।

पहले जब वह विरह-व्यथा से जर्जर होकर दिन में सौ-सौ बार मरने जाया करती थी, तब समझती थी कि प्राणों का रखना न रखना नायक, नायिका के बिलकुल हाथ की बात है; मगर आज वह सारी रात प्राणों के साथ खूब लड-झगडकर भी उन्हे निकालकर न फेंक सकी। आज वह अच्छी तरह समझ गयी कि प्राणो को हमेशा के लिए विदा कर देना—उसकी एकादश वर्षीय विरह-व्यथा मे सम्भव नही।

पौ फटने के पहले जब घर आयी, तब उसका सारा शरीर मारे जाडे के कॉप रहा था। माँ ने पूछा—अनू, इतने तड़के उठकर नहा आयी बेटी? अनुपमा ने सिर हिलाकर जवाब दिया—हाँ।

इधर दत्त महाशय ने एक तरह से चिरस्थायी रूप से ही ससुराल मे डेरा जमा दिया है। शुरू-शुरू मे कुछ दिन उन्हे जमाई का-सा थोडा-सा आदर-सत्कार मिलता रहा, पर अब क्रमश उसमे कमी होने लगी है। घर-भर मे किसी को भी अब वे देखे नही सुहाते। चन्द्रनाथ बाबू तो हर बात मे उनका मजाक उडाते हैं, आवाजें कसते रहते हैं, हर तरह से उन्हे लांछित और अपमानित करते हैं। इसका एक कारण भी हो गया था। एक तो चन्द्र बाबू का हृदय वैसे ही ईर्ष्या-परायण था, उस पर जगबन्धु बाबू ने दामाद अकर्मण्य है, इसलिए उसे कुछ धन-सम्पत्ति दे जाने को कह दिया था। अनुपमा कभी पास नही आती और सास भी कुछ खबर-सुध नही लेती, फिर भी रामदुलाल के दिन बडे आनन्द से कट रहे हैं। आवभगत या किसी तरह के नाते-रिश्तेदारी के कायदे-कानून की वे जरा भी परवाह नहीं करते हैं, जो मिल जाता है, उसी से सन्तुष्ट हैं। दोनो वक्त सन्तोषजनक खाने को मिल जाता है, बुढापे मे इतने ही को वे काफी समझ लिया करते हैं। परन्तु उनके सुख-भोग के दिन अब ज्यादा बाकी नही थे। एक तो जीर्ण-शीर्ण शरीर, उस पर पुराना दोस्त कास-रोग उसमे बहुत दिनो से आश्रय लिये बैठा था और हर साल ही जाड़ो मे वह उन्हे स्वर्ग ले जाने के लिए खीचा-तानी करता था। अबकी बार भी जाडो मे वह खूब खीचा-तानी करने लगा। जगबन्धु बाबू ने देखा कि यक्ष्मा रामदुलाल की नस-नस और गाँठ-गाँठ मे फैल गया है। गँवई-गाँव मे उसका ठीक इलाज हो नही सकेगा, इसलिए उन्होने उन्हे कलकत्ते भेज दिया। वहाँ कुछ दिनों तक अच्छा इलाज होता रहा, उसके बाद सती-साध्वी अनुपमा के सौभाग्य से दूसरा साल पूरा होते न होते सदानन्द रामदुलाल ससार त्यागकर चल दिये।

चतुर्थ परिच्छेद

वैधव्य

फिर भी अनुपमा जरा रोई। पति के मरने पर हिन्दू घर की स्त्री को रोना चाहिए, इसलिए रोई। इसके बाद उसने अपनी इच्छा से सफेद धोती पहन कर सारे गहने उतार डाले। माँ ने रोते हुए कहा—अनू, तेरी यह शकल मुझसे नही देखी जाती। और कुछ नही तो हाथों मे कडे तो पहने रह।

"सो नही हो सकता; विधवा को गहने नही पहनने चाहिए।"

"मगर तू तो अभी कच्ची उम्र की लडकी है।"

"इससे क्या,हिन्दू स्त्री ज्यो ही विधवा हुई कि फिर उसमे लडकी-बूढी का भेद नही रह जाता।" माँ अब क्या कह सकती थी? सिर्फ रोने लगी। अनुपमा के विधवा होने पर लोगों को नया शोक नही हुआ,—सभी जानते थे कि दो-एक साल मे वह विधवा होगी ही। किसी ने कहा—मुरदे के साथ व्याह करने से क्या सधवा रह सकती है? अनुपमा के पिता भी इस बात को जानते थे और माँ भी समझती थी, इसी से नया शोक किसी को नही हुआ। जो होना था, सो विवाह की रात को ही हो चुका था। अनुपमा ने पति को प्रेम नही किया, जाना नही, पहचाना नही, फिर भी वह कठोर वैधव्य-व्रत पालन करने लगी। रात को पानी तक नही छूती, दिन को मुट्ठी-भर चावल अपने हाथ से उबाल लेती है, और एकादशी के दिन निर्जल उपवास करती हे। आज पूर्णिमा है, कल अमावस्या है, परसों शिवरात्रि है, इस तरह महीने मे पन्द्रह रोज वह कुछ खाती ही नही। कोई कुछ कहता तो कहती—मेरा इह-लोक तो नष्ट हो गया, अब परलोक के लिए ही कुछ कर लेने दो। परन्तु इतना वह सह कैसे सकती थी? उपवास और अनियमों के कारण सूखकर आधी रह गयी। उसकी हालत देख-देखकर माँ ने तो समझ लिया कि अब वह मर जायगी बचेगी नही। पिता ने भी सोचा कि मर जाना विचित्र नही। इसी से एक दिन उन्होंने स्त्री को बुलाकर कहा—सुनो, अनू का फिर से व्याह कर दो। गृहिणी ने आश्चर्य चकित होकर पूछा—ऐसा कही होता है? धर्म जायगा जो।

"मैंने बहुत विचार कर देखा है, दो बार व्याह करने से ही धर्म नही जाता। व्याह के साथ धर्म का कोई सम्बन्ध नही, बल्कि अपनी बच्ची की इस तरह हत्या करने मे ही धर्म-हानि की संभावना है।"

"तो कर दो।"

परन्तु अनुपमा ने जब यह बात सुनी तो गरदन हिलाकर दृढ़ता के साथ कहा—ऐसा नही हो सकता। तब फिर स्वय जगबन्धु बाबू ने अनुपमा को बुलाकर कहा—हो सकता है, बेटी!

"इससे तो मेरे इह-लोक, पर-लोक दोनों ही बिगड़ेंगे।"

"न कुछ बिगडा है और न बिगडेगा,— बल्कि व्याह न करने से ही न बिगडने-की सम्भावना है। मान लो, अगर कोई गुणवान् पति मिल गया तो तुम दोनों ही लोकों का काम कर सकोगी।"

"क्या अकेले नही कर सकती?"

"नही बेटी, नही कर सकती। कम से कम हिन्दू-कुल की स्त्रियाँ नही कर सकती। धर्म की बात तो दूर रही, एक मामूली से काम के लिए भी उन्हे औरों का सहारा लेना पडता है,—भला, पति के सिवा वैसी सहायता और कौन कर सकता है, बता? और किस कुसूर से तुझे इतनी बडी सजा मिलनी चाहिए?"

अनुपमा ने नीचे को निगाह किये हुए कहा—मेरे पूर्व जन्म का फल है।

कट्टर हिन्दू जगबन्धु बाबू के कानों में यह बात शूल-सी लगी। कुछ देर चुप रहकर वे बोले—अगर ऐसा ही है तो भी मेरे लिए एक अभिभावक की जरूरत है; मेरे पीछे तेरी देख-भाल कौन करेगा?

"दादा करेंगे।"

"भगवान् ऐसा न करें, पर उसने अगर नही की? वह तो तेरी अपनी माँ के पेट का भाई नही है और जहाँ तक समझता हूँ, उसका मन भी अच्छा नही।"

अनुपमा ने मन ही मन कहा—तब जहर खा लूँगी।

पिता कहने लगे,—और भी एक बात है अनू, पिता होने पर भी बात मुझे कह देनी चाहिए,—मनुष्य

का मन हमेशा एक-सा ही रहेगा यह कोई नहीं कह सकता, खासकर यौवन-काल मे प्रवृत्तियो को हमेशा वश मे रखना मुनि-ऋषियों के लिए भी कठिन हो जाता है।

कुछ देर चुप रहकर अनुपमा ने कहा—जात जो चली जायगी!

"नही बेटी, जात नहीं जायगी,—मेरे दिन खतम हो चले हैं और अब आँखे भी खुल गयी हैं।"

अनुपमा ने सिर हिलाया। मन ही मन कहा—तब जात जा रही थी, और अब नही जायगी? जिस समय आँख-कान बन्द करके तुम लोगो ने मेरी बलि चढाई थी, उस समय ये सब बाते क्यो नही सोची? आज मेरी भी आँखे खुल गयी हैं—मैं भी अच्छी तरह बदला लूँगी।

किसी भी तरह जब उसे न डिगा सके तब जगबन्धु बाबू बोले—तो ठीक है बिटिया, जैसा तुम अच्छा समझो, वैसा करो, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध मैं तुम्हारा व्याह नही करना चाहता। इतना मैं अवश्य कर जाऊँगा, जिससे तुम्हे आगे कभी खाने-पहनने की तकलीफ न हो। उसके बाद धर्म मे चित्त लगाकर जिससे तुम सुखी हो सको, वही करना।

पाँचवाँ परिच्छेद

चन्द्रनाथ बाबू की गृहस्थी

तीन साल बाद जेल से छूट कर ललित मोहन घर नही आया। किसी ने कहा—शर्म के मारे नही आता, कोई कहने लगा—इस गाँव मे आकर अब वह क्या मुँह दिखायेगा।

ललितमोहन बहुत जगह घूम-फिर कर दो साल बाद अचानक एक दिन घर आ पहुँचा। उसकी माँ ने मारे आनन्द के उसका सिर चूमकर आशीर्वाद दिया और कहा—बेटा, अब व्याह करके गृहस्थ बनो, जो भाग्य मे था सो तो हो चुका—अब उसके लिए सोच-फिकर मत करो। ललित ने भी कुछ न कुछ करने का निश्चय कर लिया।

पाँच वर्ष बाद लौटकर ललित ने गाँव मे बहुत-कुछ परिवर्तन देखा, खासकर जगबन्धु बाबू के घर। अनुपमा के माँ-बाप कोई भी जीवित नही, चन्द्रनाथ बाबू ही अब घर के मालिक हैं, अनुपमा विधवा होकर आज कल यही है, कारण अन्यत्र उसके लिए स्थान नही है। माँ का निधन पहले ही हो चुका था, बाद मे पिता का निधन हो जाने के बाद अनुपमा ने सोचा कि पिताजी जो कुछ दे गये हैं, उससे किसी तीर्थ-स्थान में जाकर रहूँगी और उन्ही रुपयो से धर्म-पुण्य, व्रत-नियमादि पालन करके अन्तिम जीवन आसानी से बिता दूँगी। परन्तु, पिता की तेरही आदि हो जाने के बाद वसीयतनामा देखने पर अनुपमा को बडी चोट लगी। मालूम हुआ कि पिता सिर्फ पाँच सौ रुपये ही उसे दे गये हैं! वे बडे आदमी थे, ये मामूली से रुपये उनके लिए रुपयो मे शुमार ही नही किये जा सकते और वास्तव मे इन रुपयो से किसी की भी जीवन-भर गुजर नही हो सकती। गाँव के लोगो मे बहुत कुछ काना-फूसी चली कि यह वसीयत जगबन्धु बाबू की हो ही नही सकती, जरूर इसके अन्दर कुछ कारसाजी है। मगर इस बात से क्या फायदा? निरुपाय होकर अनुपमा चन्द्र बाबू के घर में ही रहने लगी।

लोग कहते हैं, पिता की मृत्यु न होने तक सौतेली माँ को पहचाना नही जा सकता, उस तरह सौतेले भाई को भी पिता के जीते-जी पहचानना कठिन है। इतने दिन बाद अनुपमा जान सकी कि उसके दादा चन्द्रनाथ बाबू किस ढग के आदमी हैं। जितने भी प्रकार के अधम श्रेणी के लोग देखने मे आते हैं, चन्द्रनाथ बाबू उन सबसे निकृष्ट निकले। हृदय मे तिल-भर भी दया-माया नही,—आँखो मे जरा भी लिहाज नही। अनुपमा की इस निराश्रय अवस्था मे उन्होने उसके साथ जैसा व्यवहार शुरू कर दिया है, उसे मुँह से कहकर नही बतलाया जा सकता। हर बात मे, यहाँ तक कि उठते-बैठते भी उसे तिरस्कृत, लांछित और अपमानित किया करते हैं। यो तो बहुत दिनो से अनुपमा उन्हे देखे नही सुहाती थी, अब तो वे उसे फूटी आँखो भी नही देख सकते। बडी बहू पहले प्यार करती थी, पर अब वह भी अनुपमा को देख नही सकती। जब अनुपमा बड़े आदमी की लडकी थी, जब उसके माँ-बाप जिन्दा थे, जब उसकी एक बात पर पाँच-पाँच जने दौडे आते थे, तब वह भी उसे प्यार करती थी। और अब, अब वह दुखिया है, विधवा है, अपना कहने को उसके कोई नही, रुपये-पैसे भी नही, दूसरे की रोटी बिना खाये उसकी गुजर नही चल सकती, उसे भला अब कौन प्यार करे? अब उसका कौन खयाल रखे? बडी बहू के तीन-चार

बच्चे हैं; अब उन सबका भार अनुपमा पर है। उन्हें खिलाना-पिलाना, नहलाना-धुलाना, पहनाना-उढ़ाना, पास सुलाना,—सब अनुपमा ही करती है; फिर भी जरा-सी कुछ त्रुटि हो गयी कि बडी बहू नाराज होकर झट् से दो-चार उलटी-सीधी सुना देती है। इसके सिवा अनुपमा को हर रोज दोनो वक्त चन्द्र बाबू के लिए दो-चार अच्छी तरकारियाँ बनानी पड़ती हैं, क्योंकि पाचक ब्राह्मण ठीक नहीं बना सकता और, नहीं तो चन्द्र बाबू का उस दिन खाना ही नहीं होता। एकादशी हो चाहे द्वादशी, चाहे उपवास हो, इतना तो उसे बनाना ही पडेगा। विधवा होने के बाद से अनुपमा ने प्रातःकाल ही उठकर नहा-धोकर बहुत देर तक पूजा करने का नियम-सा कर लिया था; पर अब उसे उतना भी समय नही दिया जाता। जरा-सा देर होते ही बडी बहू रानी कहने लगती हैं—लल्ली जरा जल्दी हाथ चलाओ, बच्चे रो रहे हैं,—अभी तक कुछ खाने को नही मिला। अनुपमा जैसे-तैसे निबटा कर उठ बैठती है, जबान से एक शब्द भी नही कह सकती। एकादशी का लम्बा उपवास करके भी उसे रात को रसोई बनानी पडती है, प्यास के मारे छाती फटती रहती है, आग की गरमी मे झुलसती रहती है, शरीर अवश होने लगता है, फिर भी मुँह से उफ तक नही करती। अवस्था बदलने पर सहने की भी ताकत बढ जाती है, क्योंकि जगदीश्वर यह सिखा देते हैं,—नहीं तो अनुपमा अब तक कब की मर गयी होती।

इस गृहस्थी में उससे तो दास-दासिया अच्छी हैं। उनसे जब कोई कडी बात कह देता है तब वे उसका जवाब तो दे सकती हैं। 'हमारा हिसाब चुका दीजिए, हम घर चली जायँ' इतना तो वह सकती हैं। मगर अनुपमा इतना भी नहीं कह सकती; वह बिना मूल्य की क्रीत-दासी है; उसे मारो, काटो, चाहे जो कर डालो, फिर भी यही रहना पडेगा। और वह जा ही कहाँ सकती है? एक तो विधवा और फिर बड़े आदमी की लडकी। अनुपमा की हालत समझायी नही जा सकती, समझी जा सकती है। दूसरों की मोहताज हिन्दू विधवा ही उसे समझ सकती है, और कोई तो शायद ही समझे।

आज द्वादशी है। तडके ही उठकर नहा-धोकर अनुपमा पूजा करने बैठी। पन्द्रह मिनट भी न हो पाये थे कि इतने में बडी बहू ने कमरे के बाहर से ही जरा जोर से कहा—'ननदजी, तुम्हारी पूजा क्या आज दिन-भर भी खतम नही होगी? ऐसा करने से नहीं चल सकता, कहे देती हूँ। अनुपमा शिवजी पर जल चढा रही थी बोली नही। बडी बहू दस मिनट बाद फिर आ धमकी और बाहर से ही चिल्लाई—इतना पुण्य थैले मे अमायेगा नही ननदजी, ज्यादा पुण्य मत करो,—और बहुत ही ज्यादा पुण्य धर्म का शौक चर्राया हो तो किसी वन-जगल में चली जाओ, वहाँ करना यहाँ घर-गृहस्थी मे रहकर इतनी ज्यादती नही सही जा सकती।

फिर भी अनुपमा कुछ नही बोली।

तब बडी बहू ने पहले से दूने जोर से चिल्लाकर कहा—पूछती हूँ, कोई खायेगा पीयेगा भी कि नही?

अनुपमा ने हाथ का बिल्व-पत्र रखते हुए कहा—मेरी तबीयत खराब है, आज मैं कुछ नही कर सकूँगी।

"नही कर सकोगी? तो सब कोई उपवास करें, क्यो?"

"क्या, मेरे सिवा क्या और कोई आदमी नही है? महाराज को क्या हो गया?"

"उसे बुखार आ गया है,—और उन्हे क्या महाराज के हाथ की भाती है?"

"नही भाती तो तुम्हीं बना दो।'

"मैं रसोई बनाऊँ? दर्द के मारे सिर फटा जाता है, एक हकीम चौबीसों घंटे मेरे पीछे लगा रहता है,—मैं आँच के सामने बैठकर तपूँ?"

अनुपमा जल उठी, बोली—तो फिर सबसे उपास करने के लिए कह दो।

"अच्छी बात है, आती हूँ, तुम्हारे भइया से जाकर कह देती हूँ। और तुम्हें बीमारी किधर से हो गयी? अभी तो नहा-धोकर बैठी हो और अभी निगलोगी भी, बड़े भाई को जरा-सा बनाकर खिला भी नहीं सकती?"

"नहीं, नही होता मुझसे। बडी बहू, मैं तुम लोगों की खरीदी हुई बाँदी नहीं हूँ कि जो मुँह मे आया कह दिया। मैं ये सब बातें भइया से कहूँगी।"

बडी बहू ने मुँह बिचकाकर कहा—कह न दो जाकर, तुम्हारे भइया मेरा सिर उतरवा लेगे।

अनुपमा कुछ देर तक स्तब्ध हो रही, बोली,—सो मैं जानती हूँ। भइया अगर अच्छे होते, तो तुम्हारा इतना साहस न बढ़ जाता।

"क्यों, उन्होंने क्या किया है? खाने को देते हैं, पहनने को देते हैं और क्या करें? सचमुच ही तो वे मुझे निकालकर तुम्हें सर पर नहीं रख सकते!—तब इसके लिए व्यर्थ गुस्सा करने से क्या लाभ?"

सभी चीजो की सीमा होती है। अनुपमा की सहिष्णुता की भी सीमा है।

इतने दिनो तक उसने जो बात नही कही, आज उसके मुँह से वही बात निकल गयी। बोली—भइया मुझे क्या खिलायेंगे-पहनायेंगे,—बाप के जिन रुपयो से वे खाते-पहनते हैं; उन्हीं के रुपयो से मैं खाती पहनती हूँ।

बडी बहू ने क्रोधित होकर कहा—अगर यही बात होती हो बाप तुम्हे रास्ते का कगाल बनाकर न छोड़ जाते।

रास्ते का कंगाल वे नही बना गये, तुम्ही लोगो ने बना दिया है। गाँव भर के सभी लोग जानते हैं कि वे मुझे निराश्रय या सम्बलहीन नही छोड गये हैं। उन रुपयो को भइया अगर न हडप लेते तो मुझे तुम्हारी यह भर्त्सना न सहनी पडती।"

'सुनते ही पहले तो बडी बहू का चेहरा उतर गया, परन्तु दूसरे ही क्षण वह दूने तेज से जल उठी, बोली—गाँव भर के सभी जानते हैं,—वे चोर हैं? तो यह बात उनसे कह दूँ?

"कह दो, और यह भी कह दो कि इस पाप का फल उन्हे भुगतना ही पडेगा।"

वह दिन इसी तरह बीत गया। हालाँ कि यह बात चन्द्रनाथ बाबू ने सुन ली, पर उन्होने कोई प्रतिवाद नही किया।

चन्द्रनाथ बाबू के घर भोला नाम का एक छोकरा-सा नौकर था। पाँच-छै दिन बाद चन्द्र बाबू ने उसे भीतर घर मे बुलाकर खूब मारना शुरू कर दिया। उसका रोना-चिल्लाना सुनकर और नौकर-नौकरानियाँ भी दौडी आयीं,—तब तक उसी तरह मार जारी थी। अनुपमा अपने कमरे मे बैठी पूजा कर रही थी, पूजा छोड़कर वह भी दौडी आयी। उस समय भोला के नाक-मुँह से खून बह रहा था। अनुपमा चिल्ला उठी—भइया, यह कर क्या रहे हो—मर जायगा जो?

चन्द्र नाथ चिल्ला उठे—आज कमबख्त को एकदम मार ही डालूँगा '। साथ-साथ तुझे भी मार डालता, मगर औरत होने से तुझे छोड देता हूँ। अपने घर मे मैं इतना पाप बरदाश्त नही कर सकता।

बाबू जी तुझे पाँच सौ रुपये दे गये हैं,—उन्हे लेकर तू आज ही मेरे घर से निकल जा।

'अनुपमा कुछ भी न समझ सकी। उसने सिर्फ इतना कहा—क्यो?

"कुछ नही। आज ही रुपये ले ले, लेकर भोला के साथ निकल जा यहाँ से । बाहर जाकर जो मन मे आवे सो करना।"

अनुपमा वही मूर्च्छित होकर गिर पडी। नौकर-नौकरानियो ने सभी ने यह बात सुनी, कोई मुँह पर हाथ रखकर हँसा, कोई हँसी को दबाकर भले आदमी की तरह खिसक गया। और कोई दौडकर अनुपमा को उठाने लगा। चन्द्रनाथ बाबू मृतप्राय भोला के मुँह पर और एक लात जमाकर बाहर चले गये।

षष्ठ परिच्छेद

आखिरी दिन

आज अनुपमा का आखिरी दिन है। इस घर मे अब वह नही रहेगी। जब से उसने होश सभाला है तब से उसे कोई सुख नही मिला। बचपन से प्रेम करना शुरू करके उसने अपनी शांति आप ही नष्ट की थी 'अति' कर डाली थी, इससे विधाता ने उसे रचमात्र भी सुख नही दिया। अपनी कल्पना से जिसे वह प्रेम करती थी वह उसे मिला नहीं, और जो उससे प्रेम करने आया था उसे उसने खदेड दिया। अब न बाप है, न मा, कहीं भी खडे होने का स्थान नही। सती स्त्रियो के लिए एकमात्र अवलम्बन है सतीत्व का सुयश सो उसे भी ईश्वर उससे छीन लेना चाहते हैं। इसी से वह अब इस घर मे नही रहना चाहती। मारे क्षोभ के उसका हृदय फटा जा रहा है। निस्तब्ध निद्रित चाँदनी रात मे पिछवाडे का दरवाजा खोलकर वह फिर

तालाब की उन्हीं पुरानी सीढ़ियों पर जाकर बैठ गयी। अब अनुपमा चालाक हो गयी है। पहले उसकी तैरने की जानकारी ने उसे मरने नहीं दिया था, अब की बार उसे व्यर्थ करने के लिए साथ में वह कलसा लेती आयी है। अब की बार वह ढूँढकर निकालेगी कि तालाब मे कहाँ पर डुबान पानी है और निश्चय ही डूब मरेगी।

मरने से पहले दुनिया बडी सुन्दर दिखाई देती है। घर-द्वार, आकाश, मेघ, चन्द्रमा, तारे, जल, फूल, लता, पत्ते, वृक्ष, सब सुन्दर हो उठते हैं; जिधर देखो, उधर ही मनोरम मालूम होता है। मानो ये सभी चीजें उँगली उठाकर कहने लगती है—मरो मत, देखो, हम कितने सुख से हैं! तुम भी सहती रहो, किसी न किसी दिन सुखी होओगी ही। न हो, तो हमारे पास आओ, हम तुम्हे सुखी करेगी, व्यर्थ मे विधाता की दी हुई आत्मा को नरक मे मत पटको। यही कारण है कि मरने के लिए तैयार होकर भी मनुष्य फिर लौट पडता है। किंतु जब लौटकर देखता है कि दुनिया मे उसके लिए रच-मात्र भी सुख नही, असीम संसार में खडे होने के लिए तिल-भर भी स्थान नही, अपना कहने को कोई नही, तब वह फिर मरना चाहता है, पर दूसरे ही क्षण न जाने कौन भीतर से कह उठता है—राम राम! लौट जाओ,—ऐसा काम मत करो। मर जाने से ही क्या सब दु खो की समाप्ति हो जायगी? कैसे तुमने समझ लिया कि इससे भी बढ़कर भयकर दु.ख में न जा पडोगे? बस, मनुष्य सकुचित होकर पीछे हटकर खडा हो जाता है। अनुपमा को क्या ये सब बाते याद न आती थी? परन्तु फिर भी अनुपमा मरेगी ही, किसी भी तरह अब नही बचेगी।

पिता की बाते याद आयी, माँ का खयाल आया, साथ ही साथ एक और आदमी का खयाल आया। जिसका खयाल आया वह है ललित। जो-जो उसे प्यार करते थे, वे सभी एक-एक करके चलते बने हैं, सिर्फ एक ही आदमी उनमे से जीवित है। उसने उससे प्रेम किया था, प्रेम पाने के लिए वह आया था, हृदय की देवी समझकर पूजा करने आया था, पर अनुपमा ने उसकी वह पूजा स्वीकार नही की; बल्कि उसे अपमानित करके खदेड दिया। इतना ही नही, उसने उसे जेल तक भिजवाया। ललित ने वहाँ कितनी तकलीफे पायी, कोई ठीक है! शायद वहाँ उसने अनुपमा को कोसा होगा, शाप दिया होगा। वह सोचने लगी—अवश्य ही उसी पाप से मुझे इतना गहरा कष्ट मिला है, इतनी वेदना हो रही है। वह जेल से लौट आया है। अब वह अच्छा हो गया है, शराब पीना छोडकर देशोपकार मे लगकर फिर यश कमा रहा है। वह क्या अब भी मुझे याद करता होगा? हो सकता है कि नही करता हो, या करता भी हो। मगर उससे क्या, मेरे नाम पर कलक जो लग रहा है! उसने क्या उसे नही सुना होगा? जब गाँव-भर मे यह बात फैल जायगी कि कलंकिनी होकर तालाब मे डूब मरी हूँ, कल जब मेरी देह पानी पर तैरने लगेगी—ओ राम! कितनी घृणा से वह मुँह सिकोड लेगा!

अनुपमा ने आँचल से गले मे कलसा बाँध लिया। इतने मे न जाने किसने पीछे से पुकारा—अनुपमा।

अनुपमा चौंक उठी, पीछे मुडकर देखा कि लम्बे कद का पुरुष स्थिर होकर खडा है। आगन्तुक ने फिर पुकारा—अनुपमा!

अनुपमा को मालूम हुआ कि यह स्वर उसने पहले भी कही सुना है, पर उसे याद नही आ रहा है। वह चुप हो रही।

"अनुपमा, आत्म-हत्या मत करो।"

अनुपमा कभी किसी दिन भी लज्जावती लता नही थी, उसने हिम्मत के साथ कहा—मैं आत्महत्या करूँगी, यह आपने कैसे जाना?

"तो फिर गले मे यह कलसा क्यो बाँधा है?"

अनुपमा मौन रही। आगन्तुक ने जरा मुस्कराहट के साथ कहा—आत्मघाती होने से क्या होता है जानती हो?"

"क्यो"

"अनन्त नरक!

अनुपमा काँप उठी। उसने धीरे से कलसा खोलकर रख दिया और कहा—इस दुनिया मे मेरे लिए कही जगह नही है।

"भूल गयी? मैं याद दिलाये देता हूँ। लगभग छह साल पहले ठीक इसी जगह एक अभागे ने तुम्हे जीवन भर के लिए स्थान देना चाहा था,—याद है?"

लज्जा से अनुपमा का चेहरा सुर्ख हो गया, बोली—हाँ है।

"तो यह सकल्प छोड दो।"

"मेरे नाम पर कलक लगाया जा रहा है, जीना नही चाहती।"

"मरने से क्या कलक धुल जायगा?"

"धुल जाय या न धुल जाय, मैं तो उसे सुनने नही आऊँगी।"

गलत समझा है तुमने अनुपमा, मरने से वह कलक हमेशा छाया की तरह तुम्हारे नाम के साथ घूमता रहेगा। जीकर देखो, यह झूठा कलक कभी चिरस्थायी नही होगा।"

"लेकिन कहाँ जाकर जिन्दा रहूँ?"

"मेरे साथ चलो।"

अनुपमा ने एक बार सोचा कि यही करना चाहिए। इनके पैरो पड़कर कहूँगी—मुझे क्षमा करो। कहूँगी, तुम्हारे पास बहुत रुपया है, मुझे कुछ भीख मे दे दो, -मैं दूर कही जाकर छिपी रहूँगी, इसके बाद बहुत देर तक चुप रहकर सोच-विचारकर बोली—मैं नहीं जाऊँगी।

बात खतम भी न हो पाई कि अनुपमा पानी में कूद पड़ी।

अनुपमा को जब होश आया तो उसने देखा—एक सुसज्जित कमरे में वह पलंग पर लेटी हुई है और पास ही ललितमोहन बैठा है। अनुपमा ने आँखें उन्मीलित करके कातर स्वर में कहा—मुझे क्यों बचा लिया?

अन्धकार में आलोक

बहुत दिनो की बात है। जब वह बी० ए० पास करके अपने घर लौटा, उसकी माँ ने कहा—"बेटा वह लडकी बिलकुल लक्ष्मी है। मेरी बात मानो, और एक बार जाकर उसे अपनी आँखों से देख आओ।"

सत्येन्द्र ने सिर हिलाकर कहा—"नही माँ, अभी यह मुझसे न होगा। नही तो फिर मैं परीक्षा मे पास न हो सकूँगा।"

माँ ने कहा—"क्यो न हो सकेगा? वह रहेगी मेरे पास और तेरी पढ़ाई लिखाई होगी कलकत्ते मे, मैं तो नही समझ सकती कि इसमे तेरे पास होने पर क्या बाधा पडेगी?"

सत्येन्द्र ने कहा—"नही माँ, यह ठीक नही होगा। अभी मुझे समय नही है।"

यह कहकर सत्येन्द्र बाहर जा रहा था कि उसकी माँ ने कहा—"जाओ मत, खड़े हो, एक बात और भी कहनी है।" फिर कुछ रुककर कहा—"बेटा, मैंने उन लोगों को वचन दे दिया है। क्या तू मेरी बात न रखेगा?"

सत्येन्द्र मुडकर खडा हो गया और कुछ असन्तुष्ट होकर बोला—"मुझसे बिना पूछे ही उन्हें क्यों वचन दिया?"

लडके की बात सुनकर माँ के मन मे बहुत कष्ट हुआ। उसने कहा—"खैर, मुझसे भूल हो गयी। पर तुमको तो अपनी माँ की बात रखनी पडेगी। इसके सिवा वह विधवा की लडकी बहुत दुखिया है। बेटा, मेरी बात सुनो—मान जाओ।"

'अच्छा, फिर कहूँगा' कहकर सत्येन्द्र बाहर चला गया। माँ बहुत देर तक चुपचाप वही खडी रही। यही उसकी एक मात्र सन्तान थी। सात-आठ बरस हुए स्वामी का देहान्त हो चुका है तब से बेचारी विधवा स्वय ही गुमाश्तो और कारिन्दो की सहायता से अपनी बहुत बडी जमींदारी की व्यवस्था करती है। लडका कलकत्ते मे रहकर किसी कालेज मे पढता है। उसे अपनी जमींदारी वगैरह की कुछ भी फिक्र नही करनी पडती। विधवा माँ ने अपने मन मे सोच रखा था कि जब लडका वकालत पास कर लेगा, तब मैं उसका ब्याह कर दूँगी और अपने पुत्र तथा पुत्र-वधू पर जमींदारी और गृहस्थी का सब भार देकर निश्चिन्त हो जाऊँगी। उसने यह भी सोचा था कि इससे पहले मैं अपने लडके को गृहस्थी की झझटो मे फँसाकर उसकी उच्च शिक्षा मे बाधक न बनूँगी। पर बीच मे कुछ और ही बात हो गयी। स्वामी की मृत्यु के उपरान्त इतने दिनो तक इस बीच मे कोई काज-कर्म नही हुआ था। उस दिन किसी व्रत के उपलक्ष मे गाँव-भर के सब लोगो को निमन्त्रित किया गया। उसमे स्वर्गीय अतुलचन्द्र मुकर्जी की दरिद्र विधवा भी अपनी ग्यारह बरस की लडकी को साथ लेकर आयी। लडकी उसे बहुत पसन्द आयी। वह केवल सुन्दरी ही नही, इस छोटी अवस्था मे ही अशेषगुणवती थी और यह बात उसके साथ केवल दो-चार बाते करने मे ही सत्येन्द्र की माँ की समझ मे आ गयी।

उस समय माँ ने मन ही मन कहा कि अच्छा, मैं अपने लडके को जरा यह लडकी दिखला तो लूँ। फिर देखूँगी कि वह इसे कैसे नापसन्द करता है।

दूसरे दिन जब सत्येन्द्र दोपहर के बाद कुछ खाने के लिए अपनी माँ के कमरे मे पहुँचा तब स्तब्ध होकर खडा रह गया। उसने देखा कि उसके खाने की जगह के ठीक सामने ही एक आसन पर हीरे मानिक और मोतियो से सजी हुई मानो कोई वैकुण्ठ की लक्ष्मी बैठी है।

माँ ने भी कमरे मे पहुँचकर कहा—"खाने बैठो।"

सत्येन्द्र की मानो तन्द्रा भग हो गयी। उसने कुछ हडबडाकर कहा—'यहाँ क्यो, मैं और किसी जगह बैठकर खा लूँगा।'

माँ ने मुस्कराते हुए कहा—"तू सचमुच कुछ ब्याह तो कर नही रहा है, फिर इस जरा-सी लडकी के सामने लज्जा किस बात की?"

"मैं किसी से लज्जा नही करता" कहकर सत्येन्द्र कुछ अप्रतिभ होकर वही सामनेवाले आसन पर बैठ गया। माँ वहाँ से चली गयी। सत्येन्द्र दो ही मिनट मे बहुत जल्दी जल्दी किसी प्रकार भोजन समाप्त करके उठ गया।

अपनी बाहरवाली बैठक मे पहुँचकर उसने देखा कि इसी बीच मे उसके कई मित्र भी वहाँ आ पहुँचे हैं और चौसार बिछी हुई है। उसने पहले से ही दृढतापूर्वक आपत्ति प्रकट करते हुए कहा—"मैं किसी तरह नही बैठ सकूँगा। मेरे सिर मे बहुत सख्त दर्द हो रहा है।"* इतना कहकर वह एक कोने मे चला गया और तकिये पर सिर रखकर आँखे बन्द करके लेट गया। मित्रों को मन ही मन कुछ आश्चर्य हुआ। उन्होने खेलने वालो की कमी के कारण चौसर उठाकर शतरज ला बिछाई। सन्ध्या तक कई बाजियाँ हुईं, बहुत-सी बाते और कहा सुनी हुई, पर सत्येन्द्र न तो एक बार भी अपने स्थान से उठा और न उसने किसी से यही पूछा कि कौन हारा और कौन जीता। आज उसे ये सब बाते अच्छी ही नही लग रही थी।

जब उसके मित्र चले गये, और वह मकान के अन्दर पहुँचकर सीधा अपने सोने के कमरे मे जा रहा था, तब भडारवाले बरामदे मे से माँ ने पूछा—"तू आज अभी से सोने क्यो जा रहा है?"

सत्येन्द्र ने कहा—"मै सोने नही, पढने जा रहा हूँ। एम० ए० की पढाई मामूली नही होती, समय नष्ट करने से कैसे काम चलेगा?"

इतना कहकर वह धम् धम् शब्द करता हुआ ऊपर चला गया।

आधा घण्टा बीत गया, पर उसने एक सतर भी नही पढी। टेबुल पर सामने किताब खुली हुई रखी थी और वह कुरसी पर पसरा हुआ ऊपर की तरफ मुँह करके छत की कडियाँ गिन रहा था। अचानक उसका ध्यान टूट गया, उसने कान खडे करके सुना—झम्! क्षण-भर बाद ही फिर सुनाई पडा—झम् झम्! सत्य सीधी तरह से बैठ गया। इतने मे उसने सिर से पैरो तक गहने पहने हुई वही लक्ष्मीस्वरूपा कन्या धीरे-धीरे आती हुई देखी। वह आकर उसके पास खडी हो गयी। सत्य टकटकी लगाकर देखने लगा। लडकी ने बहुत ही कोमल स्वर से कहा—"माँ ने आपकी सम्मति पूछी है।"

सत्य ने कुछ देर चुप रहने के बाद पूछा—"किसकी माँ ने?"

लडकी ने कहा—"मेरी माँ ने।"

सत्य को इसका कोई उत्तर ढूँढे न मिला। कुछ देर बाद उसने कहा—"मेरी माँ से पूछ लेना, उन्ही से मालूम हो जायगा।"

लडकी वहाँ से जा रही थी कि सत्य सहसा उससे पूछ बैठा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

लडकी 'मेरा नाम राधा-रानी है' कहकर चली गयी।

२

उस जरा-सी राधा-रानी के ध्यान से बलपूर्वक अपना पीछा छुड़ाकर सत्य एम० ए० पास करने के लिए कलकत्ते चला आया। उसने निश्चय कर लिया कि जब तब मैं विश्वविद्यालय की समस्त परीक्षाओ मे उत्तीर्ण न हो जाऊँगा तब तक किसी प्रकार विवाह न करूँगा, यदि सभव हुआ तो उसके बाद भी न करूँगा, कारण गृहस्थी के झगड़ो मे फँसने से मनुष्य का आत्मसम्मान नष्ट हो जाता है, इत्यादि इत्यादि। फिर भी रह-रहकर उसके मन मे न जाने क्या होने लगता है और यदि कभी कही कोई स्त्री दिखाई पड जाती है तो उसके पास ही एक और छोटा-सा मुख उसे दिखाई पडने लगता है और वही छोटा मुख उस

* बगालियो मे यह प्रथा है कि जब किसी का विवाह होने को होता है, तब वह अपने घनिष्ठ मित्रों के साथ पहले भावी वधू को पसन्द करने के विचार से देखता है। इस अवसर पर अनेक प्रकार के परिहास और वधू की अनेक प्रकार की परीक्षाएँ होती हैं। इसी के लिए उसके मित्र वहाँ एकत्र हुए थे और उनका अभिप्राय समझकर सत्येन्द्र ने बीमारी का बहाना किया था। —अनुवादक

स्त्री को आवृत करके अकेला ही विराजता रह जाता है। इस प्रकार सत्य किसी तरह उस लक्ष्मी की प्रतिमा को भुला नही सका है। वह सदा से स्त्रियो की ओर से उदासीन था, पर अब अकस्मात् उसे न जाने क्या हो गया है कि जब कभी वह रास्ते मे या और कही किसी वयस्क लडकी को देखता है, तो उसका जी चाहता है कि मैं उसे अच्छी तरह देखूँ। हजार चेष्टाएँ करने पर भी वह किसी प्रकार उसकी ओर से अपनी दृष्टि नही हटा सकता। देखते देखते हठात्, और सम्भव है कि अत्यन्त लज्जा के कारण उसका सारा शरीर सिहर उठता और वह तुरन्त ही वहाँ से जिधर मुँह उठता उधर ही जल्दी से खिसक जाता।

सत्या को तैरकर स्नान करने का बहुत शौक था। उसके चोर बागानवाले मकान से गगा अधिक दूर नही थी और इसीलिए वह प्राय जगन्नाथ-घाट पर स्नान करने जाया करता था।

आज पूर्णिमा का दिन था। घाट पर कुछ भीड हो रही थी। गगा-किनारे आकर जिस उडिया ब्राह्मण के पास अपने सूखे वस्त्र आदि रखकर जल मे उतरता था, उसी की ओर जब वह बढा जा रहा था, तब एक जगह बाधा पाकर उसे कुछ रुक जाना पडा। वहाँ उसने देखा कि चार पाँच आदमी एक तरफ देख रहे हैं। सत्य ने उनके दृष्टि का अनुसरण करके ज्यो ही देखा त्यों ही वह विस्मय से स्तब्ध हो गया। उसे ऐसा जान पडा कि मैंने एक साथ इतना अधिक रूप आज तक कभी किसी स्त्री-शरीर मे देखा ही नही। उसकी अवस्था अठारह-उन्नीस वर्ष से अधिक नही थी। वह एक मामूली काली किनारे की सफेद धोती पहने थी। उसके सारे शरीर मे कोई गहना नही था। वह घुटनो के बल बैठी हुई मस्तक पर चन्दन की छाप लगवा रही थी और उसका परिचित पण्डा एकाग्र मन से उस सुन्दरी के मस्तक और नाक पर चन्दन चर्चित कर रहा था।

सत्य पास जाकर खडा हो गया। पण्डे को सत्य से भी यथेष्ट दक्षिणा मिला करती थी, इसी लिए उसने उस रूपसी के चन्द्र मुख की खातिरदारी छोडकर अपने हाथ का छापा फेंककर बडे बाबू के सूखे वस्त्र लेने के लिए हाथ बढाया।

दोनो की आँखे चार हो गयी। सत्य जल्दी मे अपने कपडे पण्डे के हाथ मे देकर सीढियाँ उतरता हुआ जल मे जा पहुँचा। पर आज वह तैरा नही और किसी प्रकार जल्दी-जल्दी स्नान करके जब कपडे बदलने के लिए ऊपर पहुँचा तब उसने देखा कि वह असामान्य रूप-सी वहाँ से चली गयी है।

उस रोज दिन-भर सत्य का मन गगा-गगा करता रहा। दूसरे दिन पूरी तरह से सवेरा भी नही होने पाया था कि गगा माता ने उसे इतनी जोर से अपनी तरफ खीचा कि वह खूँटी पर से एक धोती लेकर तुरन्त गगाजी की तरफ चल पडा।

घाटपर पहुँचकर उसने देखा कि वह अपरिचिता रूपसी स्नान करके अभी अभी ऊपर आयी है। जब सत्य स्नान करके स्वय पडा के पास पहुँचा, तब वह रूपसी भी पहले दिन की तरह पडे से ललाट मे चन्दन लगवा रही थी। आज भी दोनो की आँखे चार हुई, आज भी उसके सारे शरीर मे बिजली दौड गयी और वह किसी प्रकार जल्दी कपडे बदलकर वहाँ से चला।

२

सत्य ने समझ लिया कि यह स्त्री नित्य ही प्रात काल स्नानकरनेकेलिए आया करती है। अब तक जो हम दोनो का साक्षात् नही हो सका, इसका कारण यह है कि मैं इससे पहले स्वय ही देर करके स्नान करने आया करताथा।

गगा-किनारे सात दिनो से बराबर दोनो की देखा-देखी होती आ रही है, पर आज तक कोई बात-चीत होने की नौबत नही आयी। कारण, जहाँ केवल आँखो-आँखो मे बाते होती हैं वहाँ मुख को मूक होकर ही रहना पडता है। वह अपरिचिता रूपसी चाहे जो हो, पर उसने आँखो से बाते करने की शिक्षा का यथेष्ट अभ्यास किया है एव इस विद्या मे वह पारदर्शिनी है, सत्य के अन्तर्यामी ने इस बात को अपने निभृत अन्तर मे अनुभव कर लिया।

उस दिन वह जब स्नान करके कुछ अन्यमनस्कता से अपने घर लौट रहा था, तब एकाएक उसे सुनाई पडा, "जरा सुनिए तो!" उसने सिर उठाकर देखा तो रेलवे लाइन के उस पार वही रमणी खडी हुई है। उसकी कमर पर बायी ओर जल की भरी हुई पीतल की एक छोटी कलसी है और दाहिने हाथ मे गीली

धोती। उसने सिर हिलाकर, सकेत से बुलाया। सत्य इधर उधर देखकर उसके पास जा खडा हुआ। उसने उत्सुक नेत्रो से देखकर मृदु स्वर से कहा—"आज मेरी नौकरानी नही आयी है। यदि आप कृपाकर मुझे कुछ दूर तक पहुँचा दे, तो बहुत अच्छा हो।" हमेशा वह अपने साथ एक नौकरानी लेकर आया करती थी, पर आज अकेली थी।

सत्य के मन मे कुछ दुविधा हुई कि यह ठीक नही है, उसने एक बार चाहा भी, पर वह किसी तरह अपने मुँह से 'नही' न कह सका। रमणी उसके मन का भाव समझकर कुछ हँसी और इस प्रकार की हँसी जिन्हे आती है, उनके लिए ससार मे कुछ अप्राप्त नही है। सत्य तुरन्त ही 'चलिए' कहकर उसके पीछे हो लिया। दो-चार कदम आगे बढने पर स्त्री ने फिर कहा—"नौकरानी बीमार है, वह आ नही सकी। लेकिन मैं भी बिना गगा-स्नान किये नही रह सकती; और देखती हूँ कि आपको भी यह बुरी आदत पडी हुई है।"

सत्य ने धीरे से कहा, "जी हाँ, मैं भी प्राय गगा-स्नान करने आता हूँ।"

"यहाँ आप कहाँ रहते हैं?"

"मेरा मकान चोर-बागान मे है।"

"मेरा मकान जोडा-साँकू मे है। आप मुझे पथरिया घाट के मोड तक पहुँचा दीजिएगा और तब बडी सडक से चले जाइएगा।"

"अच्छी बात है।"

फिर बहुत देर तक दोनो मे कोई बात-चीत नही हुई। चितपुरवाली सडक पर पहुँचकर स्त्री घूमकर खडी हो गयी और फिर वही हँसी हँसकर बोली—"बस, मेरा मकान पास ही है, अब आप जा सकते हैं—नमस्कार।"

सत्य नमस्कार करके गर्दन नीचे करके जल्दी से चला गया। उस रोज उसके मन की जो अवस्था रही वह लिखकर बतलाना असम्भव है। उस दिन क्या हुआ था, यह केवल वही अनुभव कर सकेगे जिन्हे यौवन-काल मे पचशर के प्रथम पुष्प-बाण का आघात सहना पडा है। सब लोग यह बात नही समझ सकेंगे कि किस उन्माद के नशे मे मत्त होने पर जल-स्थल आकाश-पाताल सब रगीन दिखने लगतें और इस प्रकार सारा चैतन्य, अपनी सारी चेतना खोकर, एक प्राणहीन चुम्बक के टुकडे की तरह, केवल उसी एक ओर खिच जाने के लिए प्रत्येक पल उन्मुख हो रहता है।

दूसरे दिन सवेरे सत्य ने जाकर देखा कि धूप निकल आयी है। व्यथा की एक तरग उसके कण्ठ तक को झकझोरती हुई निकल गयी और उसने निश्चित रूप से समझ लिया कि आज का सारा दिन बिलकुल ही व्यर्थ गया। नौकर सामने से चला जा रहा था। उसे खूब डपटकर कहा—"हरामजादे, इतना दिन चढ़ गया ओर तूने मुझे जगाया तक नही। जा, तुझ पर एक रुपया जुरमाना करता हूँ।"

उस बेचारे के होश-हवाश गुम हो गये और वह चुपचाप देखता रह गया। सत्य बिना दूसरा वस्त्र लिये ही गुस्मे से भरा हुआ घर से निकल गया।

बाहर आते ही उसने किराये की एक गाडी ली और गाडीवान को पथरियाघाट से होकर चलने का हुक्म देकर रास्ते के दोनो तरफ प्राणपण से अपनी आँखे बिछा दी। पर जब गगाजी के पास पहुँचकर उसने घाट की ओर देखा, तब उसका सारा क्षोभ शान्त हो गया। बल्कि ऐसा जान पडा कि मैंने मानो अकस्मात् सडकपर पडा हुआ एक अमूल्य रत्न पा लिया है।

ज्यो ही सत्य गाडी से उतरा, त्यो ही उस स्त्री ने मुस्कराकर नितान्त परिचितों की तरह कहा—"आज बहुत देर कर दी? मैं आध घटे से यहाँ खडी हूँ जल्दी नहा लीजिए आज भी मेरी नौकरानी नही आई है।'

'बस, एक मिनट और ठहर जाइए।' कहकर सत्य जल्दी से जल मे उतरा। उसका तैरना न जाने कहाँ चला गया। वह जैसे तैसे जल्दी जल्दी दो-तीन डुबकियाँ लगाकर आ पहुँचा और बोला—"मेरी गाडी कहाँ गयी?"

रमणी ने कहा—"मैंने किराया देकर बिदा कर दिया है।"

"आपने किराया दिया?"

"हाँ दे दिया, चलिए," कहकर वह एक बार और भुवनमोहिनी हँसी हँसकर आगे बढ गयी।

सत्य एकवारगी अपना दिल दे वैठा था, नही तो लाख निरीह ओर लाख अनभिज्ञ होने पर भी उसे एक वार अवश्य सन्देह होता कि आखिर यह सव क्या मामला है!

रास्ता चलते चलते रमणी वोली—"आपने अपना मकान कहाँ वतलाया था? चोर-वागान मे?"

"हाँ।"

"वहाँ क्या केवल चोर ही रहते हैं?"

सत्य ने चकित होकर पूछा, "क्यों?"

"आप चोरों के राजा जो ठहरे।"

इतना कहकर रमणी गरदन कुछ टेढी करके कटाक्ष करती और मुस्कराती हुई फिर चुपचाप मराल-गति से चलने लगी। आज कमर पर जो कलसी थी, वह कुछ वड़ी थी और उसमे भरा हुआ गगा जल छला-छल शव्दो के द्वारा मानो कह रहा था—'अरे मुग्ध, अरे अन्ध युवक, सावधान! यह सव छल है— यह सव धोखा है।' और इस प्रकार वह जल उछल उछलकर कभी व्यग और कभी तिरस्कार करने लगा।

मोड के पास पहुँचकर सत्य ने सकोच के साथ कहा—"गाडी का किराया?"

रमणी मुडकर खडी हो गयी और अस्फुट तथा कोमल स्वर से वोली—"एक तरह से वह आपका ही दिया हुआ ही तो है।"

सत्य ने इस इशारे को न समझकर पूछा, "मेरा दिया हुआ कैसे?"

"मेरे पास अव अपना है ही क्या, जो मैं दूँगी? जो कुछ मेरा था वह सव तो तुमने पहले ही चोरी और डकैती करके ले लिया है।"

इतना कहकर उसने तत्काल ही मुँह फेर लिया। मानो वह अपनी उच्छ्वसित हँसी के वेग को वलपूर्वक रोकने लगी।

यह अभिनय सत्य नही देख सका, इस लिए चोरी के इस प्रच्छन्न सकेत ने तीव्र विद्युत-रेखा की तरह उसके सशय-जाल को आर-पार विदीर्ण करके हृदय के अन्तस्तल तक प्रकाशित कर दिया। उसी समय उसका जी चाहा कि मैं इस आम सडक पर ही इसके लाल लाल पैरों पर लोट जाऊँ। लेकिन इसके वाद पल-भर मे ही वहुत अधिक लज्जा के कारण उसका सिर इस प्रकार नीचे झुक गया कि वह फिर सिर उठाकर अपनी प्रियतमा के मुख की ओर देख भी न सका और चुपचाप सिर झुकाये धीरे धीरे चला गया।

रमणी के आज्ञानुसार नोकरानी फूटपाथ पर खडी हुई राह देख रही थी। वह पास आकर वोली—"अरे तुम इस वेचारे को क्यों इस तरह नचाती फिरती हो? इसके पास कुछ है भी? चार पैसे मिल भी सकेंगे?"

रमणी ने हँसते हुए कहा—"सो तो नही जानती, पर इस तरह के वेवकूफो को नाक मे नकेल पहनाकर चक्कर खिलाने मे मुझे वडा मजा आता है।"

दासी ने कुछ देर तक खूव हँसने के वाद कहा—"यह भी तुम कर सकती हो। पर और चाहे जो कहो, देखने मे किसी राजा का-सा लडका मालूम होता है। जैसा वढिया चेहरा-मोहरा है, वैसा ही वढिया रग भी है और तुम दोनो का जोडा भी खूव मिलता है। जव तुम खडी खडी उससे वाते कर रही थी, तव ऐसा मालूम होता था कि मानो एक जोडी गुलाव के फूल खिले हुए है।"

रमणी ने मुस्कराते हुए कहा—"अच्छा चल। अगर पसन्द आ जाय, तो न हो तू ही ले लेना।"

पर नौकरानी भी सहज मे हारने वाली नही थी। उसने भी उत्तर दिया—"दीदी, तुम यह चीज जीते-जी किसी को न दे सकोगी, यह मैं अभी से कहे देती हूँ।"

ज्ञानियो का कथन है कि आँखो-देखी भी असभव घटना किसी से मत कहो। कारण, अज्ञानी उस पर विश्वास नही करते। इसी अपराध मे बेचारे श्रीमन्त को * मसान जाना पडा था। जो हो, यह बात बिलकुल ठीक है कि सत्य ने उस दिन घर लौटकर टेनिसन की कविताएँ पढी थी और वह 'डान जुआन' का बगला अनुवाद करने बैठा था। वह इतना बडा हो गया था, पर फिर भी उसके मन मे जरा भी सन्देह नही हुआ कि दिन-दहाडे, इतने बडे कलकत्ते शहर की आम सडक और घाट पर, ऐसे अद्भुत प्रेम की बाढ कैसे आ सकती है तथा उस बाढ की लहरो मे डूबकर चलना उसके लिए कहाँ तक निरापद है।

दो दिन बाद जब दोनों फिर उसी तरह स्नान करके घर लौट रहे थे, तब रास्ते मे उस अपरिचित से सहसा कहा—"कल रात को मैं थिएटर देखने गयी थी। बेचारी सरला का त्रास देखकर छाती फटने लगी।"

सत्य ने सरला का नाटक तो नही देखा था, पर हाँ, 'स्वर्णलता' पुस्तक अवश्य पढी थी, इसलिए उसने धीरे से कहा—"हाँ, बेचारी बडे कष्ट से मरी थी।"

उसने लम्बी साँस लेकर कहा—"ओह, उसे कितना भीषण कष्ट हुआ था। तुम बतला सकते हो कि सरला ने अपने पति को इतना क्यो चाहा और उसकी जेठानी क्यो प्रेम नही कर सकी?"

सत्य ने सक्षेप मे उत्तर दिया—"अपना अपना स्वभाव।"

"हाँ, यही बात है। ब्याह तो सभी का होना है, पर क्या सभी स्त्रियाँ और पुरुष एक दूसरे पर समान रूप से प्रेम कर सकते हैं? नही। ऐसे बहुत से लोग होते हैं जो मरते दम तक यह भी नही जानते कि प्रेम किसे कहते है। जानने की शक्ति ही उनमे नही होती। देखते नही, बहुत से लोग ऐसे होते हैं जिनके सामने हजार अच्छा गाना बजाना हुआ करे, पर फिर भी वे मन लगाकर नही सुन सकते और बहुत-से किसी बात से भी क्रोधित नही होते, क्रोध कर ही नही सकते। लोग उनकी तारीफ करते हैं, पर मेरा तो जी उनकी निन्दा करने को ही चाहता है।"

सत्य ने कुछ मुस्कराते हुए पूछा—"क्यो?"

रमणी ने उद्दीप्त कठ से उत्तर दिया—"इसलिए वे अक्षम होते हैं। अक्षमता मे थोडा बहुत गुण भी हो तो हो सकता है, परन्तु दोष ही अधिक है। यही जैसे सरला का जेठ। स्त्री के इतने बडे अत्याचार से भी उसे क्रोध नही आया।

सत्य चुप रहा, उसने फिर कहना आरम्भ किया—"और उनकी स्त्री प्रमदा भी कैसी शैतान है! अगर मैं होती तो उस राक्षसी का गला ही घोट देती।"

---

* बगला मे कवि-ककण श्रीमुकुन्दराम चक्रवर्ती का लिखा हुआ 'चण्डी काव्य' नाम का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमे 'श्रीमन्त' नामक एक वणिक की कथा हैं। कहते हैं, एक व्यापारी जब व्यापार करने के लिए सिहल जाने लगा तब उसकी स्त्री को चार मास का गर्भ था। चलते समय वह अपनी स्त्री से कह गया कि यदि मैं किसी कारण से लौटकर घर न जाऊँ तो तुम्हारे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हो, उसी को मेरा पता लगाने के लिए सिहल भेजना। इस व्यापारी ने सिहल जाते हुए समुद्र मे कमल पर बैठी हुई एक स्त्री काके देखा और सिहल पहुँचकर वहाँ के राजा से उस कमल-कामिनी का वर्णन किया। राजा ने कहा कि तुम मुझे उस कमल-कामिनी को दिखलाओ। वणिक राजा को अपने साथ लेकर गया, परन्तु समुद्र मे कही कमल-कामिनी न दिखाई पडी। इस पर राजा ने उसे कारागार मे बन्द कर दिया।

उस स्त्री के गर्भ से जो बालक उत्पन्न हुआ, उसका नाम 'श्रीमन्त' रखा गया। वह बाल्यावस्था से ही चडी का भक्त था। अपने पिता का पता लगाने के लिए वह सिहल को चल दिया। मार्ग मे जब कभी उस पर कोई विपत्ति आती थी, तब चण्डी प्रत्यक्ष दर्शन देकर उसकी रक्षा करती थी। उसे भी एक स्थान पर चण्डी उसी कमल-कामिनी रूप मे दिखाई पडी। श्रीमन्त ने सिहल पहुँचकर अपने पिता का पता लगाया तो मालूम हुआ कि मेरे पिता यहाँ के राजा को कमल कामिनी नही दिखा सके, इसी अपराध मे कारागार मे बन्द कर दिये गये हैं। सोलह वर्ष के बालक श्रीमन्त ने राजा से जाकर कहा कि मैंने भी वह कमल-कामिनी देखी है। राजा उसके साथ भी गया, परन्तु कमल-कामिनी न दिखाई पडी। इस पर राजा ने आज्ञा दी कि इसका सिर काट डालो। जब वणिक का सिर काटने के लिए उसे श्मशान ले गये, तब चण्डी ने एक वृद्धा के रूप मे प्रकट होकर श्रीमन्त की रक्षा की, उसके पिता को कारागार से मुक्त कराया, श्रीमन्त को राजा से सिंहल का आधा राज्य दिलवाया और अन्त मे राजकुमारी के साथ उसका विवाह करा दिया।

—अनुवादक

सत्य ने हँसते हुए कहा—"पर तुम होती कैसे? प्रमदा नाम की सचमुच कोई औरत तो थी नही—वह तो कवि की कल्पना मात्र—"

रमणी ने बीच मे ही रोककर कहा—"तो फिर कवि ने ऐसी कल्पना ही क्यो की? अच्छा, सभी कहते हैं कि सब मनुष्यो के अन्त.करण मे भगवान् हैं, आत्मा है, परन्तु प्रमदा का चरित्र देखने से तो नही मालूम होता कि उसके अतर मे भगवान् थे। मैं तुमसे सच कहती हूँ, कहाँ होना तो यह चाहिए कि वडे बडे आदमियो की पुस्तके पढकर लोग भले वने और एक दूसरे के साथ प्रेम करे, सो तो नही, एक ऐसी किताव लिखकर रख दी की जिसे पढते ही मनुष्य के प्रति मनुष्य के मन मे घृणा उत्पन्न हो जाय और इस वात पर विश्वास ही न हो कि सचमुच ही सब लोगो के अन्त करण मे भगवान का मन्दिर है।"

सत्य ने विस्मित होकर उसकी मुख की ओर देखते हुए कहा—" मैं देखता हूँ कि तुम खूब किताबे पढती हो?"

रमणी ने उत्तर दिया—"अँगरेजी तो जानती नही, पर हाँ, वगला की जितनी कितावें निकलती हैं, सभी पढती हूँ। कभी कभी तो ऐसा होता है कि मैं सारी सारी रात पढती ही रहती हूँ। यही तो वडी सडक है, चलो न, मेरे मकान पर जितनी किताबे हैं, सब तुमको दिखलाऊँगी।"

सत्य ने चौंककर पूछा—"तुम्हारे मकान पर?"

वह बोली—"हाँ, मेरे मकान पर। चलो, तुम्हे चलना पडेगा।"

हठात् सत्य का चेहरा पीला पड गया। उसने डरते हुए कहा—"नही नही। छी छी —"

"छी छी कुछ नही। चलो।"

"नही नही, आज नही, आज रहने दो।"

इतना कहकर सत्य काँपते हुए पैरो से शीघ्रतापूर्वक चल दिया। आज उसे अपनी इस अपरिचिता प्रेमिका के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गयी, जिसके भार से उसका हृदय अवनत हो गया।

५

सवेरे गगा-स्नान करके सत्य धीरे-धीरे अपने डेरे पर लौट आया था। उसकी दृष्टि क्लान्त और सजल थी। उसकी पलके अभी तक भीगी हुई थी। आज चार दिन हो गये हैं वह अपनी उस अपरिचिता प्रियतमा को नही देख पाया। आज कल वह गगा-स्नान करने नही आती।

इधर कई दिन से उसने आकाश-पाताल की न जाने कितनी वाते सोची हैं, उसकी सीमा ही नही। वीच बीच मे उसके मन मे यह दुश्चिन्ता भी उत्पन्न हुई कि कही ऐसा न हो कि वह इस ससार मे ही न रह गई हो, अथवा कही ऐसा न हो कि वह मृत्यु-शय्यापर पडी हो, न जाने उसे क्या हुआ?

वह उस गली को तो जानता था, पर और कुछ भी नही पहिचानता था। किसका मकान है और वह कहाँ है, यह कुछ नही जानता था। याद करने से पश्चात्ताप और आत्म-ग्लानि के कारण हृदय दग्ध हुआ जाता था। क्यो न मैं उस दिन साथ जाकर मकान देख आया? क्यो मैंने उस दिन उसके इतने बडे अनुरोध की उपेक्षा की?

उसे सचमुच ही प्रेम हो गया था और वह सिर्फ आँखो का नशा नही, हृदय की गहरी प्यास थी। उसमे छल या कपट की कही छाया भी नही थी, जो कुछ था, वह सचमुच ही हार्दिक स्नेह था।

"वावूजी।"

सत्य ने चौंककर देखा कि उसकी वह दासी जो साथ आया करती थी, रास्ते के एक किनारे खडी हुई है।

सत्य कुछ घवराया हुआ जल्दी से उसके पास जा पहुँचा और भर्राई हुई आवाज से उसने पूछा—"उन्हे क्या हुआ है?"-और तत्काल ही वह रो पडा, अपने आपको सँभाल ही न सका। दासी ने सिर झुकाकर किसी प्रकार अपनी हँसी छिपाई। शायद उसने इस डर से कि कही मुझसे सत्य के सामने ही जोर से हँसी न आ जाय सिर झुकाये हुए ही कहा—"उनकी तवीयत वहुत खराब है, वह आपको देखना चाहती हैं।"

"अच्छी बात है। चलो।"

यह कहकर सत्य आँसू पोछता हुआ उसके पीछे पीछे चल दिया। कुछ दूर बढ़कर उसने दासी से

पूछा—"क्या बीमारी है? क्या बहुत ज्यादा बढ गयी है।"

दासी ने कहा-' नही, कोई बडी बीमारी तो नही है, पर बुखार तेज है।"

सत्य ने मनही मन ईश्वर को मनाया और दासी से फिर कोई प्रश्न नही किया। मकान के सामने पहुँचकर देखा कि मकान बहुत बडा है और उसके दरवाजे पर एक हिन्दुस्तानी दरवान बैठा हुआ ऊँघ रहा है। दासी से पूछा, मेरे जाने से उनके पिता नाराज तो न होगे? वे मुझे पहिचानते नही।"

दासी ने कहा-"उनके पिता नही हैं खाली माँ हैं। पर उनकी तरह उनकी माँ भी आपको बहुत प्यार करती है।"

सत्य ने और कुछ कहे विना उस मकान मे प्रवेश किया।

सीढियाँ पार करके तीसरी मजिल के बरामदे मे पहुँचकर उसने देखा कि बराबर बराबर तीन कमरे है और बाहर से देखने पर सभी खूब सजे हुए जान पडते हैं। कोने वाले कमरे मे से जोर की हँसी के साथ तबले और घुँघरुओ के बजने की आवाज आ रही है। दासी ने उसकी तरफ हाथ से इशारा करके कहा—"यह कमरा है, अन्दर चलिए।"

इतना कहकर दासी कुछ और आगे बढी और उसने दरवाजे के आगे पडा हुआ परदा हाथ से हटाते हुए खूब ऊँची आवाज से कहा—"लो दीदी, ये हैं तुम्हारे नागर।"

कमरे मे जोर का ठहाका लगा और शोर मच गया। वहाँ सत्य ने जो कुछ देखा उससे उसका सिर चकरा गया। उसे ऐसा जान पडा कि हठात् मैं बेहोश होकर गिरना चाहता हूँ। किसी प्रकार चौखट का सहारा लेकर और आँखे बन्द करके वह वही दरवाजे पर बैठ गया।

उस कमरे मे तख्त पर खूब मोटा गद्दा बिछा था और उस पर दो तीन आदमी बैठे हुए थे जो देखने मे भले आदमी-से जान पडते थे। एक हारमोनियम और दूसरा तबला रखे बैठा था। एक आदमी खूब मजे मे शराब पी रहा था। ऐसा जान पडता था कि वह युवती अभी नाच रही थी। उसके दोनो पैरो मे घुँघरू बँधे हुए थे, सारा शरीर नानां गहनो से सजा हुआ था और उसकी सुरा-राग-रजित आँखे झूम रही थी। वह जल्दी से सत्य के पास आ पहुँची और उसका हाथ पकड कर खूब खिलखिलाकर हँसती हुई बोली—"अरे यार, कही मिरगी की बीमारी तो नही है?—लो भाई, आज मजाक रहने दो, उठो, मुझे इससे बडा डर लगता है।"

जिस प्रकार कोई हत-चेतम मनुष्य प्रवल विद्युत् के स्पर्श से काँच उठता है, ठीक उसी प्रकार उस युवती के कर-स्पर्श से सत्य भी सिर से पैर तक काँप उठा।

रमणी ने कहा—"मेरा नाम है श्रीमती विजली, और क्यो दोस्त, तुम्हारा क्या नाम है "हाबू-गाबू?"

सब लोग खूब जोर से ठठाकर हँस पडे और वह दासी तो हँसती-हँसती जमीन पर ही लोट गयी, बोली—"वाह दीदी, तुम भी खूब रग लाना जानती हो।"

विजली ने कुछ बनावटी क्रोध दिखलाते हुए बिगडकर कहा—"चुप रह। बहुत बढ-चढकर बाते न किया कर।" और तब सत्य से कहा—"आइए, यहाँ आकर बैठिए। इतना कहकर बिजली सत्य को जोर से खीचती हुई लायी और एक कुरसी पर बैठाकर स्वय घुटनो के बल उसके पैरो के पास बैठ गयी और हाथ जोडकर गाने लगी—

आजु रजनि हम, भाग्ये पोहायेनु[1], पेखनु पिय मुखचदा।
जीवन-यौवन सफल-करि माननु, दसदिसि भेल[2] [3] निरददा।
आजु मन गेह, गेहकरि माननु, आजु मम देह भेल देहा।
आजु विधि मोहे, अनुकूल होयल, टूटर्ल[4] सबहु सदेहा।
पाँच बान-अब लाख बान हउ, मलय-पवन बहु मदा।
अब सो न चबहुँ मोहे परिहोयत[5] तबहुँ मानव निज देहा।

उस आदमी ने जो शराब पी रहा था, उठकर सत्य के पैरो के पास आकर साष्टाग प्रणाम किया। यह नशे मे चूर था, रोता हुआ बोला—"महाराज, मैं बडा पातकी हूँ, मुझे अपने चरणो की थोडी-सी रज—"

अदृष्ट की बिडम्बना से सत्य ने आज स्नान करने के बाद एक गरद की धोती पहन रखा था।

---

१ व्यतीत की। २ देखा। ३ हुए। ४ टूट गये। ५ छोडेगा।

जो आदमी हारमोनियम वजा रहा था, वह अभी तक बहुत कुछ होश मे था। उसने कुछ सहानुभूति दिखलाते हुए कहा—"क्यो वेचारे का झूठ मूठ तमाशा वना रही हो?"

विजली ने हँसते हुए कहा—"वाह, झूठ-मूठ कैसे? यह सचमुच का तमाशा है, तभी तो ऐसे मजे के दिन यहाँ लाकर तुम लोगो को तमाशा दिखला रही हूँ—अच्छा वावू, तुम्हे मेरे सिर की कसम है, सच तो वतला दो कि तुमने मुझे क्या समझा था? मैं नित्य गगा-स्नान करने जाती हूँ, इसलिए न तो मैं ब्राह्मण हूँ, न मुसलमान और न ईसाई। तब हिन्दू के घर की इतनी बडी लडकी देखकर तुम्हे समझना चाहिए था कि या तो मैं सधवा हूँ या विधवा। भला बतलाओ तो कि फिर तुम क्या समझकर मुझसे प्रीति लगाने चले थे? मुझसे व्याह करना चाहते थे या भुलाकर कहीं उडा ले जाना चाहते थे?"

फिर खूब जोर का ठहाका लगा। इसके बाद सब मिलकर न जाने क्याक्या कहने लगे। सत्य ने न तो सिर ही उठाया और न किसी का कोई जवाब ही दिया। वह मन ही मन क्या समझ रहा था, यह वतलाना ही किस तरह और वतलाने पर उसे मानता ही कौन? खैर, जाने दो उस वात को।

बिजली सहसा चकित होकर उठ खडी हुई और बोली—"वाह, मैं भी खूब हूँ। अरे ओ श्यामा, जा, जल्दी जा, बावू साहब के वास्ते कुछ जल-पान तो ले आ। वेचारे स्नान करके आये हैं और मैं अब तक सिर्फ मजाक ही कर रही हूँ।" बोलते बोलते ही कुछ समय पूर्व का उसका व्यंग और उपहास की अग्नि मे उत्तप्त स्वर स्नेहयुक्त अकृत्रिम अनुताप से सचमुच ही बिलकुल ठडा पड गया।

थोडी ही देर मे दासी ने एक थाली मे जल-पान का बहुत-सा सामान लाकर उपस्थित कर दिया। बिजली उसे अपने हाथ मे लेकर सत्य के सामने घुटनो के बल बैठ गयी और बोली, "अच्छा लो, मुँह ऊपर करो, कुछ खा लो।"

सत्य अभी तक अपनी सारी शक्ति एकत्र करके अपने आपको सँभाल रहा था। अब उसने सिर उठाकर शान्त भाव से कहा—"मैं नही खाऊँगा।"

"क्यो, क्या तुम्हारी जान चली जायगी? मैं क्या कोई भंगिन हूँ या मोचिन?"

सत्य वैसे ही शान्त स्वर मे बोला—"अगर आप वह होती तो मैं खा लेता। लेकिन आप जो कुछ है, वह हैं।" बिजली ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा, "देखती हूँ कि हाबू बाबू भी छुरी कटारी चलाना जानते हैं।"

यह कहकर बिजली फिर हँसी। किन्तु उसकी वह हँसी केवल शब्द ही शब्द थी, हँसी नहीं थी। इसीलिए उस हँसी मे और कोई साथ नही दे सका।

सत्य ने कहा—"मेरा नाम सत्य है, हाबू नही। मैंने कभी छुरी-कटारी चलाना तो नही सीखा; परन्तु अपनी भूल का पता लगने पर उसे सुधारना अवश्य सीखा है।"

बिजली हठात् कुछ और कहना चाहती थी, किन्तु उसे रोककर अन्त मे बोली, "क्या तुम मेरा छूआ नही खाओगे?"

बिजली उठकर खडी हो गयी। इस वार उसके परिहास के स्वर मे कुछ तीव्रता आ गयी। उसने कुछ जोर देकर कहा—"तुम खाओगे जरूर, यह मैं कहे देती हूँ। आज नही तो कल, और नही दो दिन बाद, पर खाओगे जरूर।"

सत्य ने गरदन हिलाकर कहा—"देखिए, भूल सभी से हुआ करती है और मेरी भूल कितनी बडी है, यह सब समझ गये हैं। लेकिन आपसे भी भूल हो रही है। मैं कहता हूँ कि आज नही, कल नही और चार दिन बाद भी नही, इस जन्म मे नही और अगले जन्म मे भी नही,—मैं आपका छूआ नही खाऊँगा। मुझे आज्ञा दीजिए, मैं जाऊँ।—आपके निःश्वास से मेरा रक्त सूखा जाता है।"

उस मुख पर गहरी घृणा की एक ऐसी स्पष्ट छाया दीख पडी कि वह उस शरावी की आँखो से भी छुपी न रही। उसने सिर हिलाते हुए कहा—"बिजली बीबी, यह 'अरसिकेषु रहस्य-निवेदनम्' है। जाने दो,—जाने दो। इसने तो सवेरे का सारा ही मजा किरकिरा कर दिया।"

बिजली ने कोई उत्तर नही दिया, वह स्तम्भित होकर सत्य के मुँह की ओर देखती हुई खडी रही। सचमुच उससे बहुत बडी भूल हो गयी थी। उसने कल्पना भी नही की थी कि ऐसा मुँह-चोर और शान्त आदमी इस तरह बोल सकता है।

सत्य अपना आसन छोडकर उठ खडा हुआ। बिजली ने कोमल स्वर से कहा—"थोडी देर और बैठो।"

यह सुनते ही वह शराबी चिल्ला उठा—"ऊँ हूँ हूँ! अभी पहली चोट मे जरा जोर दिखलावेगा, अभी जाने दो। डोर ढीली कर दो, डोर ढीली कर दो।"

सत्य कमरे से बाहर निकल आया। बिजली ने पीछे से जाकर उसका रास्ता रोक लिया और धीरे से कहा—"वे लोग देख लेते, नही तो मैं उसी समय हाथ जोडकर तुमसे कहती कि मेरा बहुत बडा अपराध हुआ है।"

सत्य ने कोई उत्तर न दिया और मुँह फेर लिया।

बिजली ने फिर कहा—"यह बगलवाला कमरा मेरे पढ़ने-लिखने का है। जरा-सा चलकर उसे देख न लो। उसे जरा अन्दर चलकर एक बार देख लो, मैं तुमसे माफी माँगती हूँ।"

सत्य 'नही' कहकर सीढी की तरफ बढा। बिजली ने उसके पीछे पीछे चलते हुए पूछा—"कल मुलाकात होगी?"

"नही।"

"क्या और कभी मुलाकात न होगी?"

"नही।"

रुलाई के मारे बिजली का गला भर आया। थूक निगलकर, जोर लगाकर और गला साफ करके उसने कहा—"मुझे विश्वास नही होता कि अब मुलाकात न होगी। फिर भी यदि न हो तो बोलो, क्या तुम मेरी एक बात पर विश्वास करोगे?"

उसका भग्न स्वर सुनकर सत्य विस्मित हुआ लेकिन इधर पन्द्रह सोलह दिनो से जो अभिनय वह देखता आ रहा था, उसके मुकाबले मे तो यह कुछ भी नही था। तो भी वह मुँह फेरकर खडा हो गया। उसके मुख की प्रत्येक रेखा पर अविश्वास के चिन्हो को पढकर बिजली की छाती फट गयी। पर वह करती ही क्या? हाय हाय! विश्वास दिलाने के समस्त उपाय ही उसने अपने हाथो कूडे के समान झाड पोछकर फेक दिये थे।

सत्य ने पूछा—"किस बात पर विश्वास करूँ?"

बिजली के ओठ तो फडके, पर उनसे आवाज न निकली। उसने आँसुओ के भार से दबी हुई आँखे एक बार पल भर के लिए ऊपर उठाई और फिर पहले की तरह नीची कर ली। सत्य ने भी वह देख लिया,—पर आँसू भी क्या नकली नहीं होते? बिजली ने सिर उठाये बिना ही समझ लिया कि सत्य प्रतीक्षा कर रहा है। पर उस बात को वह किसी तरह भी मुँह से न निकाल सकती थी, जो बाहर निकलने के लिए कलेजे के अजर-पजर ढीले किये डालती थी।

वह उसे प्यार करने लगी थी और ऐसा प्यार करने लगी थी जिसका एक कण भी सार्थक करने के लोभ मे यदि सम्भव होता तो वह अपने रूप के भाण्डार—शरीर—को भी शायद एक सडे-गले वस्त्र के समान त्याग दे सकती। पर उस पर विश्वास कौन करेगा? वह दागी आसामी जो थी। अपने सारे शरीर मे अपराध के करोडो चिन्ह रखते हुए, विचार के सामने खडी होकर, वह किस मुँह से यह बात कहती कि यद्यपि अपराध करना ही मेरा पेशा है, फिर भी इस बार मैं निर्दोष हूँ? ज्यो ज्यो विलम्ब होने लगा त्यो त्यो ही उसे बोध होने लगा कि विचारक मुझे फाँसी की आज्ञा देनेवाला ही है। पर वह उसे रोके कैसे? सत्य अधीर हो उठा था, बोला, "अब जाता हूँ।"

बिजली सिर तो ऊँचा न कर सकी, पर इस बार उसके मुँह से बात निकली। उसने कहा, "जाओ। लेकिन सिर से पैर तक अपराधो मे डूबी होने पर भी मैं जिस बात पर विश्वास करती हूँ, उस पर अविश्वास करके तुम अपराधी मत बनना। विश्वास रखो कि सभी के शरीर मे भगवान् निवास करते हैं और जब तक मृत्यु नही हो जाती, तब तक वे उसे छोडकर नही जाते।"

कुछ देर चुप रहकर फिर बोली, "यह ठीक है कि सभी मन्दिरो मे देवता की पूजा नही होती, लेकिन फिर भी उनमे रहने वाले देवता ही होते हैं। उन्हे देखकर सिर भले ही न नवा सको, किन्तु ठुकराकर भी नही जा सकते।"

यह कहकर जब उसने पैरो की आहट से सिर उठाकर देखा तब सत्य चुपचाप धीरे धीरे चला जा रहा था।

स्वभाव के विरुद्ध विद्रोह किया जा सकता है, पर उसे बिलकुल उडाया नही सकता। नारी-शरीर

पर सैकडो अत्याचार किये जा सकते हैं, पर नारीत्व को तो अस्वीकार नही किया जा सक्ता? विजली नर्तकी है, फिर भी नारी तो है! जन्म-भर सहस्रो अपराध करने के कारण अपराधी होने पर भी उसका यह देह नारी-देह ही तो है! कोई घण्टे-भर वाद जव वह अपने कमरे मे लौट आयी तव उसकी लांछित अर्द्धमृत नारी प्रकृति अमृत के स्पर्श से जाग उठी थी। इस थोडे से समय में ही उसके सारे शरीर मे जो अद्‌भुत परिवर्त्तन हो गया था, उसका पता उस शरावी तक को चल गया। उसने अन्त मे मुँह खोलकर कह ही डाला—"क्यो वाईजी, तुम्हारी आँखो की पलके तो भीगी हुई है! दैया रे, यह लडका भी कैसा जिद्दी है कि ऐसी वढिया चीजे भी उसने मुँह मे न डाली।—अच्छा लाओ तो जी, थाली जरा इधर वढा दो।"

यह कहकर शरावी खुद ही थाली खीचकर निगलने लगा।

लेकिन उसकी एक वात भी विजली के कानो मे न गयी। अचानक जव उसकी नजर अपने पैरो की तरफ गयी, तव उसे ऐसा जान पडा कि उनमे वँधे हुए घुँघरूओ के तोडो ने मानो विच्छुओं की तरह डक निकालकर उसके दोनो पैरो मे काट खाया है। उसने उन्हे जल्दी से खोलकर फेंक दिया।

एक ने पूछा—"घुँघरू खोल दिये?"

विजली ने सिर उठाकर कुछ मुस्कराते हुए कहा—"हाँ, अव मे इन्हे नही पहनूँगी।"

"इसका मतलव?"

"मतलव यही कि न पहनूँगी। वाईजी मर गयी!"

शरावी मिठाई खा रहा था। वोला—"आखिर वीमारी क्या हुई?"

विजली को हँसी आ गयी। यह वही हँसी थी। उसने हँसते हुए कहा—"जिस वीमारी मे दीआ के जलने पर अन्धकार मर जाता है और सूर्य के निकलने से रात मर जाती है, आज उसी वीमारी से तुम लोगो की वाईजी सदा के लिए मर गयी।"

६

चार वरस वाद की वात है। कलकत्ते के एक आलीशान मकान मे एक वडे जमीदार के लडके का अन्न-प्राशन है। खिलाने-पिलाने का विराट् काम-काज खत्म हो चुका है। सन्ध्या के वाद मकान के वाहरवाले प्रशस्त आँगन मे महफिल का इन्तजाम किया गया है। अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद और नाच-गान का आयोजन हो रहा है।

एक तरफ तीन चार नर्तकियाँ वैठी हैं। यही नाचेगी और गायेगी दूसरी मंजिल के वरामदे मे चिक की आड मे वैठी हुई अकेली राधा-रानी नीचे आये हुए लोगो को देख रही है। निमन्त्रित स्त्रियो का अभी तक शुभागमन नही हुआ है।

सत्येन्द्र ने चपचाप पहुँचकर धीरे से पूछा—"इतने ध्यान से क्या देख रही हो?"

राधा-रानी न अपने स्वामी के मुख की ओर देखकर हँसते हुए कहा—"वही जो सव लोग देखने के लिए आ रहे है। जो वाईजी आई हुई हैं, उन्ही की सज-धज देख रही हूँ। लेकिन, तुम अचानक यहाँ कैसे आ गये?"

स्वामी ने हँसते हुए उत्तर दिया—"तुम यहाँ अकेली वैठी हो, इसीलिए कुछ वात-चीत करने आ गया।"

"चलो, जाओ!"

"सच कहता हूँ। अच्छा, यह तो वतलाओ कि इन सव मे तुम्हे कौन पसन्द है?"

राधा-रानी ने 'वह' कहकर उँगली से उस स्त्री की ओर इशारा किया, जो सवसे पीछे वहुत ही सादी पोशाक मे वैठी हुई थी।

सत्य ने कहा, "वह तो वहुत ही दुवली पतली रोगिणी-सी है।"

"हो, पर वही सवसे अधिक सुन्दरी है। पर वेचारी गरीब मालूम होती है, बदन पर औरो की तरह गहने नही हैं।"

सत्येन्द ने सिर हिलाकर कहा—"होगी! लेकिन जानती हो कि इन लोगो की मजूरी क्या है?"

"नही।"

सत्येन्द्र ने हाथ से दिखलाते हुए कहा—"इन दोनों को तो तीस तीस रुपये देने होंगे, उसे पचास देने होंगे, और जिसे तुम सबसे गरीब बतलाती हो, वह दो सौ रुपये लेगी।"

राधा-रानी ने चौंककर पूछा—"दो सौ! क्यों, क्या वह बहुत अच्छा गाती है?"

"गाना कभी सुना तो नहीं। लोग कहते हैं कि आज से चार-पाँच बरस पहले बहुत अच्छा गाती थी पर नहीं कहा जा सकता कि अब अच्छा गा सकेगी या नहीं।"

"तो इतने रुपये देकर बुलवाया ही क्यों?"

'इससे कम पर वह आती ही नहीं। इतने पर भी आने के लिए राजी नहीं थी, बहुत मुश्किलों से मना-मनूकर बुलवाई गयी है।"

राधा-रानी ने और भी अधिक विस्मित होकर पूछा— 'रुपया देना और फिर मनाना कैसा?"

सत्येन्द्र ने पास पड़ी हुई एक कुरसी खींच ली और उस पर बैठकर कहा—"पहली बात तो यह है कि आजकल उसने यह पेशा छोड़ दिया है। उसमें गुण चाहे जितने हों, पर इतने रुपये जल्दी कोई देना नहीं चाहता, और इस लिए, उसे कहीं आना-जाना नहीं पड़ता। यही उसकी चाल है। और दूसरा कारण है मेरी खुद की गरज।"

इस बात पर राधा-रानी को विश्वास नहीं हुआ। फिर भी आग्रह के मारे उसने कुछ आगे खिसक आकर कहा—"तुम्हारी गरज तो क्या खाक होगी, लेकिन यह तो बतलाओ, उसने पेशा क्यों छोड़ दिया है?"

"सुनोगी?"

"हाँ, कहो।"

सत्येन्द्र ने क्षण-भर चुप रहने के बाद कहा—"इसका नाम बिजली है। किसी समय—लेकिन रानी, यहाँ अभी और लोग आ जायँगे, अन्दर चलोगी?"

"चलो, चलो।" कहकर राधा-रानी तुरन्त उठ खड़ी हुई

* * * *

अपने स्वामी के चरणों के पास बैठकर राधा-रानी ने सब बातें सुनकर आँचल से अपनी आँखें पोंछ लीं और अंत में कहा—"इसी लिए आज उसका अपमान करके बदला लोगे? तुम्हें यह अक्ल भला किसने दी?"

उधर स्वयं सत्येन्द्र की आँखें भी सूखी नहीं थीं। बातें करते समय कई बार उसका गला भी भर आया था। उसने कहा—"हाँ, अपमान तो हैं, पर हम तीनों आदमियों के सिवा और कोई इसे न जान सकेगा। किसी को खबर भी न होगी।"

राधा-रानी ने उत्तर नहीं दिया। एक बार और आँचल से अपनी आँखें पोंछकर वह बाहर चली गयी।

निमन्त्रित भले आदमियों से सारी महफिल भर गयी थी और ऊपर वाले बरामदे से बहुत-सी स्त्रियों के सलज्ज चीत्कार चिकका आवरण भेदकर बाहर निकल रहे थे। और सब नर्त्तकियाँ तो प्रस्तुत हो गयी थीं, पर बिजली अभी तक सिर झुकाये चुपचाप बैठी हुई थी। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उसने पहले जो धन एकत्र किया था, वह इधर लम्बे पाँच बरसों में समाप्त हो चुका था और उसी के अभाव की मार से आज उसे विवश होकर वही कार्य स्वीकार करना पड़ा, जिसका वह शपथपूर्वक त्याग कर चुकी थी। लेकिन वह सिर उठाकर खड़ी नहीं हो सकती थी। अभी दो घण्टे पहले उसे इस बात की कल्पना भी नहीं थी कि अपरिचित पुरुषों की सतृष्ण दृष्टि के सामने मेरा शरीर इस प्रकार पत्थर की तरह भारी हो जायगा और पैर इस प्रकार भँजकर टूट जाना चाहेंगे।

"आपको बुला रही हैं।"

बिजली ने सिर उठाकर देखा कि बारह तेरह बरस का एक लड़का पास ही खड़ा है। उसने ऊपर वाले बरामदे की ओर संकेत करके फिर कहा—"बहूजी आपको बुला रही है?"

बिजली को विश्वास नहीं हुआ। उसने पूछा—"कौन बुलाता है?"

"बहूजी बुलाती हैं।"

"तुम कौन हो?"

"मैं उनका नौकर हूँ।"

विजली ने सिर हिलाकर कहा—"नही, मुझ नही वुलाती होगी, तुम फिर जाकर एक वार पूछ आओ।"

लडका थोडी देर वाद फिर आकर वोला—"आपका ही नाम विजली है न? आपको ही वुला रही हैं। आइए मेरे साथ, वहूजी खडी हैं।"

विजली ने जल्दी से अपने पैरो के घुंघरू खोल दिये और वह उस लडके के पीछे पीछे मकान के अन्दर चली गयी। उसने समझा कि शायद मालिकिन की कोई खास फरमाइश है, इसी लिए मुझे वुलाया है।

सोने के कमरे के दरवाजे के पास राधा-रानी लडके को गोद मे लिए हुए खडी थी। कुछ तो घवराहट मे और कुछ सकोच मे धीरे धीरे ज्यो ही विजली उसके सामने जाकर खड़ी हुई, त्यों ही राधा-रानी आदरपूर्वक हाथ पकडकर उसे अन्दर खीच ले गयी और एक कुरसी पर उसे जवरदस्ती वैठाते हुए हँसकर वोली—"वहन, मुझे पहचान सकती हो?"

विजली आश्चर्य से हतवुद्धि हो रही। राधा-रानी ने अपनी गोद के लडके को दिखलाते हुए कहा—"अगर तुमने अपनी छोटी वहन को नही पहचाना, तो इसका तो खैर कोई दु ख नहीं। लेकिन अगर इसे भी न पहचान सकोगी, तो मैं सचमुच ही तुमसे वहुत लडाई करूँगी। और इतना कहकर वह मुस्कराने लगी।

इस प्रकार की मुस्कराहट देखकर भी विजली के मुँह से कोई वात न निकल सकी। फिर भी उसका अन्धकारपूर्ण आकाश धीरे-धीरे स्वच्छ होने लगा। उस अनिन्द्य-सुन्दर मातृ-मुख से हटकर उस ताजे खिले हुए गुलाव के समान शिशु के मुख की ओर उसकी टकटकी लग गयी। राधा-रानी निस्तब्ध हो रही। फिर सहसा उसने खडे होकर दोनो हाथ पसारकर उस वालक को अपनी गोद मे ले लिया और उसने जोर से अपने कलेजे से लगाकर वह रो पडी।

राधा-रानी ने पूछा—"क्यो वहन, पहचान लिया?"

"हाँ वहन, पहचान लिया।"

राधा-रानी ने कहा—"वहन, समुद्र मन्थन करके उसमे से निकाला हुआ विप तो स्वयं पी लिया और समस्त अमृत अपनी इस छोटी वहन को दे दिया। उन्होने तुम्हे चाहा था, इसीलिए मैं उन्हे पा सकी हूँ।"

सत्येन्द्र का एक छोटा-सा फोटो अपने हाथ मे लेकर विजली टक लगाकर देख रही थी। उसने सिर उठाकर मुस्कराते हुए कहा—"वहन, विप का विप ही तो अमृत है। पर मैं भी वंचित नही हुई हूँ। उस विष ने इस घोर पापिष्ठा को भी अमर कर दिया है।"

राधा-रानी ने उसकी इस वात का कोई उत्तर न देकर कहा, "क्यो वहन, एक वार उनसे मुलाकात करोगी?"

विजली ने क्षण-भर तक आँखें वन्द करके स्थिर होकर कहा—"नहीं वहन, चार वरस पहले जिस दिन वे इस अस्पृश्या को पहचानकर मारे घृणा के मुंह फेरकर चले आये, उस दिन मैंने दर्प के साथ कहा था कि फिर मुलाकात होगी और तुम फिर आओगे। पर मेरा वह दर्प नहीं रहा, वे फिर नही आये। पर आज मेरी समझ मे आ रहा है कि क्यों दर्पहारी भगवान ने मेरा वह दर्प तोड़ दिया। वहन, वे तोडकर किस प्रकार फिर से गढ़ देते हैं और छीनकर किस प्रकार लौटा देते हैं, इसे जितनी अच्छी तरह मैं जानती हूँ और कोई नही जानता।" एक वार और आँचल से अच्छी तरह आँखे पोछकर वह वोली, "मैंने अत्यधिक हार्दिक कष्ट के कारण भगवान को निर्दय निष्ठुर कहकर अनेक दोष दिये हैं; परन्तु अव मैं समझ रही हूँ कि इस पापिष्ठा पर उन्होने कितनी दया की है। यदि वे मुझे उन्हे लौटा ला देते, तो मैं सब तरफ से मिट्टी हो जाती। उन्हें भी न पाती और खुद को भी खो देती।"

राधा-रानी का गला रोने से रुँध गया था, इसलिए वह कुछ भी न कह सकी विजली फिर कहने लगी—"सोचा था कि यदि कभी मुलाकात होगी, तो उनके पैर पकडकर फिर एक वार माफी माँग देखूँगी। लेकिन अव इसकी कोई आवश्यकता नहीं रही। वहन, मुझे केवल यह चित्र दे दो। इससे अधिक मैं और कुछ नही चाहती। अगर चाहूँ भी, तो भगवान को सहन न होगा।—अच्छा, अव मैं जाती हूँ" यह कहकर विजली खडी हो गयी।

राधा-रानी ने भर्राए हुए स्वर से पूछा—"अब फिर कब भेट होगी बहन?"

"नही, अब भेट नही होगी बहन। मेरा एक छोटा-सा मकान है, उसे बेचकर जितनी जल्दी हो सकेगा, यहाँ से चली जाऊँगी। पर बहन, क्या एक बात बतला सकोगी? आखिर इतने दिनो बाद हठात् उन्होने क्यो मुझे एकाएक स्मरण किया। और जब उनका आदमी मुझे बुलाने गया तब क्यो उसने एक झूठा नाम बतलाया?"

मारे लज्जा के राधा-रानी का मुख लाल हो गया और वह सिर झुकाकर चुप रह गयी।

बिजली ने कुछ देर तक सोचने के बाद—"मैं समझ गई। मेरा अपमान करना चाहते थे, इसलिए? है न यही बात? इसके सिवा और तो कोई कारण नही मालूम होता कि क्यो उन्होने इस प्रकार मुझे यहाँ बुलाने के लिए इतनी चेष्टा की।"

राधा-रानी का सिर और भी नीचे झुक गया। बिजली ने हँसकर कहा—"बहन, इसमे तुम्हारे लज्जित होने की कौन-सी बात है? लेकिन उनकी भी भूल है। उनके चरणो मे मेरे शत-कोटि प्रणाम जताकर कह देना कि यह बात होने की नही। अब अपना कहलाने लायक मेरे पास कुछ है ही नही तब यदि वे अपमान करेगे, तो सारा अपमान स्वय उन्ही का होगा।"

"अच्छा बहन, नमस्कार।"

"बहन, नमस्कार। मैं अवस्था मे तुमसे बहुत बडी हू, फिर भी तुम्हे आशीर्वाद देने का अधिकार मुझे नही है। —मैं काय-मन से ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ बहन, तुम्हारे हाथ की चूडियाँ अक्षय हो। जाती हूँ।"
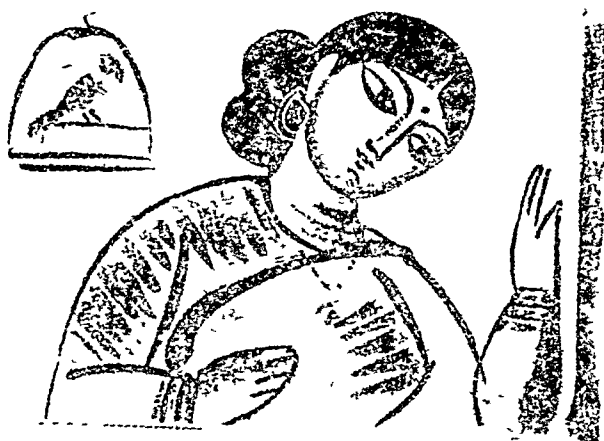
तसवीर

यह कहानी जिस समय की है उस समय ब्रह्मदेश अंग्रेजों के अधीन नही हुआ था। उन दिनो उसके राजा-रानी थे, मित्र राजा थे, सैन्य-सामन्त थे और वे अपने देश का शासन खुद ही करते थे।

माडाले राजधानी थी, किन्तु राजवश के अनेक व्यक्ति देश के विभिन्न शहरों मे जा बसे थे।

मालूम होता है कि उन्ही में से कोई एक राजवशी बहुत समय पहले पेगू से पाँच कोस दक्षिण मे इमेदिन ग्राम में आकर बस गया था।

उसकी प्रकाण्ड अट्टालिका, प्रकाण्ड बगीचा, काफी धन-दौलत और बडी भारी जमीदारी थी। जब परलोक से पुकार आयी तब इस सब के जो मालिक थे उन्होने बुलाकर कहा—"भाई बा-को, इच्छा थी कि तुम्हारे पुत्र के साथ अपनी लडकी ब्याहकर जाऊँगा, किन्तु वह शुभ घड़ी मैं नही देख सका। मा-शोये को रह गया, उसकी देख-भाल करना।"

इससे अधिक कहने की जरूरत उन्होने नही समझी। बा-को उनका बचपन का बधु था। एक दिन उसके पास भी खूब दौलत थी, लेकिन फयार मन्दिर बनवाने और भिक्षुओं को खिलाने-पिलाने में वह केवल अपने सर्वस्व का अन्त ही नही, बल्कि ऋण-ग्रस्त भी हो गया था। फिर भी जीवन मे अपने इस मित्र को पहचानने का उस मुमुर्ष को इतना बडा सुयोग मिल गया था कि वे उसे अपना सर्वस्व ही नही, अपनी इकलौती लडकी को भी निर्भयता से सौंप देने में जरा भी न हिचकिचाया। किन्तु यह दायित्व बा-को को अधिक दिन वहन न करना पडा। उसके पास भी 'उस पार' का सम्मन आ पहुँचा और उस महामान्य परवाने को सिर-माथे रखकर वह वृद्ध वर्ष का चक्र पूरा घूमते-न-घूमते जहाँ का भार वही फेंककर अज्ञात की ओर चल दिया।

इस धर्मप्राण दरिद्र मनुष्य के प्रति ग्रामवासियों का जितना सद्भाव था, उतनी श्रद्धा-भक्ति थी, उसी प्रकार प्रचण्ड आग्रह से उन्होने उसका मृत्यु-उत्सव मनाया।

बा-को की मृत देह मालाओ तथा चन्दन से सज्जित करके पलग पर लिटा भी गयी और उसके आगे खेल-तमाशो, नृत्य-गीतों और आहार-विहार का स्रोत रात्रि-दिन अविराम गति से बहने लगा। ऐसा जान पड़ता था, मानो इसका कभी अन्त ही न होगा।

पितृ-शोक के इस उत्कट आनन्द से क्षण-भर के लिए किसी प्रकार भागकर बा-थिन एक निर्जन वृक्ष के नीचे बैठकर रो रहा था। इतने में अचानक चौंककर उसने पीछे देखा कि मा-शोये खडी है। उसने आँचल के छोर से बिना कुछ कहे-सुने आँखें पोंछ दीं साथ ही वह पास बैठकर, उसका दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर धीरे-से बोली, "पिताजी मर गये हैं, किन्तु तुम्हारी मा-शोये तो अभी तक बची हुई है।"

२

बा-थिन तसवीर बनाता था। अपनी बनाई हुई अंतिम तसवीर उसने एक सौदागर के द्वारा राजा के दरबार मे भेज दी। राजा ने उस तसवीर को ले लिया और खुश होकर अपनी बहुमूल्य अँगूठी पुरस्कार में दी।

आनन्द से मा-शोये की आँखों मे आँसू आ गये। वह उसके पास खड़ी होकर मृदु कण्ठ से बोली, "बा-थिन, जगत में तुम सबसे बडे चित्रकार होओगे।"

बा-थिन हँस पडा। बोला, "शायद मैं पिता का ऋण अदा कर सकूँगा।"

उत्तराधिकार सूत्र से मा-शोये ही उसकी एक-मात्र महाजन थी। इसलिए वह इस बात से सबसे अधिक लज्जित होती थी। बोली—"तुम बार-बार इस प्रकार ताने दोगे तो फिर मैं तुम्हारे पास नही आऊँगी।"

बा-थिन चुप हो रहा, किन्तु यदि पिता का ऋण अदा न हुआ तो उनकी मुक्ति न होगी, इस बडी भारी विपत्ति की बात का स्मरण करते ही उसका समस्त अन्तर मानो सिहर उठा।

बा-थिन का परिश्रम इन दिनो बहुत बढ गया है। जातक कथाओ मे से एक नया चित्र वह अंकित कर रहा है। आज सारे दिन उसे सिर उठाकर देखने का भी अवकाश नही मिला।

मा-शोये प्रति दिन जिस तरह आती थी, आज भी आयी। बा-थिन के सोने का कमरा, रहने का कमरा और तसवीर बनाने का कमरा यह स्वयं अपने हाथ से सजा कर और सारी सामग्री को सिलसिले से सजाकर चली जाती थी। इस काम का भार नौकर-नौकरानियो पर डाल देने का साहस उसे न होता था।

सम्मुख ही एक दर्पण था जिसमे बा-थिन का प्रतिबिम्ब पड रहा था। मा-शोये टक लगाये उसे देखती रही और अचानक एक नि.श्वास डालकर बोली, "बा-थिन, यदि तुम मेरे समान लडकी होते तो अब तक देश की रानी हो जाते।"

बा-थिन ने मुँह उठाकर हँसते हुए कहा—"क्यो भला कहो तो?"

"राजा तुम्हे ब्याह करके अपने सिहासन पर बिठाते। यद्यपि उनकी कई रानियाँ है, किन्तु ऐसा रग, ऐसा बाल, ऐसा मुख, —भला उनमे से किसी के हैं?"

यह कहकर वह तो अपने काम मे लग गयी, किन्तु बा-थिन को याद आने लगा कि जब वह माण्डाले मे तसवीर बनाना सीखता था तब भी बीच-बीच मे यही बात सुना करता था।

उसने हँसकर कहा, "किन्तु रूप चुराने का यदि कोई उपाय होता तो शायद मुझे भुला करके तुम स्वय राजा के बायी तरफ जा बैठती।"

मा-शोये ने इस अभियोग का कोई उत्तर नही दिया, किन्तु मन ही मन कहा, तुम नारी के समान दुर्बल हो, नारी के समान कोमल हो और नारी के ही समान सुन्दर हो, तुम्हारे रूप की सीमा नही है।

इस रूप के आगे वह अपने को मन ही मन बहुत छोटा समझती है।

३

वसन्त के प्रारम्भ मे प्रतिवर्ष इसी इमेदिन ग्राम मे अत्यन्त समारोह से घुडदौड होता है। आज उसी उपलक्ष्य मे गाँव के बाहर मैदान मे बडी भारी भीड इकट्ठी हो रही है।

मा-शोये धीरे-धीरे बा-थिन के पीछे आ खडी हुई। वह एकाग्र मन से तसवीर खीच रहा था, इसलिए उसका पद-शब्द न सुन सका।

मा-शोये बोली, "मैं आयी हूँ, जरा फिर कर तो देखो।" बा-थिन ने चकित होकर पीछे देखा और विस्मित होकर पूछा, "अचानक आज इतनी सजावट किस लिए की गयी है?"

"वाह, देखती हूँ, तुम्हे मालूम ही नही है कि आज हमारे यहाँ घुडदौड है। जो जीतेगा आज मुझे माला पहनायेगा।"

"कहाँ, सो तो सुना नही," कहकर बा-थिन तूलिका पुनः उठाना ही चाहता था कि मा-शोये उसके गले से लिपटकर बोली, "नही, तुमने सुना है, तुम उठो— और कितनी देर करोगे?"

ये दोनों प्रायः बराबरी के हैं। बा-थिन दो-चार महीने बडा हो सकता है। किन्तु शिशुकाल से इसी प्रकार इन्होंने उन्नीस बरस काट दिये हैं। खेला है, विवाद किया है, मार-पीट की है, और प्यार किया है।

सामने के विशाल दर्पण में तब तक दो मुख दो फूले हुए गुलाबो की तरह फूल गये थे। बा-थिन उन्हें दिखाकर बोला—'ये देखो।"

मा-शोये कुछ क्षण चुपचाप नीरव भाव से उन दो तसवीरों की ओर देखती रही। आज अकस्मात्—

पहले ही पहल उसने सोचा कि मैं स्वय भी बडी सुन्दर हूँ। आवेश मे उसके दोनों चक्षु मुँद गये, वह धीरे से कान मे बोली, "मैं मानो चन्द्रमा का कलंक हूँ।" वा-थिन और भी पास में उसके मुख को खीचकर बोला, "नही, तुम चन्द्र का कलक नही हो—तुम किसी का कलंक नही हो,— तुम हो चाँद की कौमुदी, एक बार अच्छी तरह देखो तो सही।"

किन्तु मा-शोये को आँखे खोलने का साहस नही हुआ, वह उसी तरह दोनो चक्षु मूँदे रही।

शायद इसी तरह बहुत क्षण कट जाते, परन्तु उसी समय एक नर-नारी-दल नाचता-गाता सामने के रास्ते से होकर उत्सव में योग देने जाता दिखलाई दिया। मा-शोये व्यस्त होकर खडी हो गयी और बोली, "चलो, समय हो गया है।"

"किन्तु मेरा जाना बिलकुल असभव है, मा-शोये।"

"क्यो?"

"मैंने इस चित्र को पाँच दिन मे पूरा कर देने का वादा किया है।"

"वादे पर पूरा न हुआ तो?"

"तो वह माण्डाले चला जायगा, चित्र भी न लेगा और रुपया भी नही देगा।"

रुपयो के उल्लेख से मा-शोये कष्ट पाती थी, लज्जित होती थी। वह नाराज होकर बोली, "किन्तु इसलिए मैं तुम्हें इतना जी-तोड परिश्रम कदापि न करने दूँगी।"

वा-थिन ने इस बात का कोई उत्तर न दिया। किन्तु पितृ-ऋण का स्मरण करते ही उसके चेहरे पर जो म्लान छाया पडी वह और एक मनुष्य की दृष्टि से छिपी न रह सकी।

मा-शोये बोली, "चित्र मुझे बेच देना, मैं दूने दाम दे दूँगी।"

वा-थिन को इसमे सन्देह नही था, उसने हँसकर पूछा, "किन्तु इसका क्या करोगी?"

मा-शोये गले का बहुमूल्य हार दिखाकर बोली—"इसमे जितने मोती, जितने पन्ने हैं, सबसे इस चित्र को सजाऊँगी और बाद इसके कमरे में अपनी आँखो के ऊपर टाँग कर रखूँगी।"

उसके बाद?"

"उसके बाद जिस दिन रात्रि मे खूब बडा चन्द्रमा उगेगा और खुली हुई खिडकी के भीतर से होकर ज्योत्स्ना का प्रकाश तुम्हारे सोये हुए मुख के ऊपर खेलेगा—"

"उसके बाद?"

"उसके बाद तुम्हारी निद्रा भग कर—"

बात पूरी नही होने पाई। नीचे मा-शोये की बैल-गाडी राह देख रही थी, उसके गाडीवान की उच्च कण्ठ की पुकार सुन पडी।

वा-थिन व्यस्त होकर बोला—"इसके बाद की बात फिर सुनूँगा, अभी नही। तुम्हारा समय हो गया है, शीघ्र जाओ।"

किन्तु इस तरह समय वह जाने की चिन्ता मा-शोये के आचरण मे जरा भी नही दीख पडी। क्योंकि वह और भी अच्छी तरह बैठकर बोली—"मेरी तबीयत खराब मालूम होती है, मैं नही जाऊँगी।"

"जाओगी नही? वचन जो दे दिया है। क्या तुम नही जानती कि सब लोग उत्सुकता से ऊँची गर्दन किये तुम्हारी प्रतीक्षा करते होगे?"

मा-शोये प्रबल वेग से सिर हिलाकर बोली, "करने दो। वचन-भग की ऐसी लज्जा मुझे नही है,—मैं नही जाऊँगी।

"छी ! ऐसा कही किया जाता है!"

"तो तुम भी चलो।"

"चल सकता तो जरूर चलता, किन्तु मैं अपने कारण तुम्हे सत्य भग नही करने दूँगा। और देर मत करो, जाओ।"

उसका गभीर मुख और शान्त दृढ कण्ठ स्वर सुनकर मा-शोये उठकर खडी हो गयी। अभिमान से उसका चेहरा मलीन हो गया। वह बोली, "तुम अपनी सुविधा के लिए मुझे दूर करना चाहते हो। दूर मैं हुई जाती हूँ, किन्तु अब कभी तुम्हारे पास नही आऊँगी।"

मुहूर्त-मात्र मे बा-थिन की कर्तव्य-दृढता स्नेह के जल मे गल गयी। वह उसे पास मे खीचकर हँसता हुआ बोला, "इतनी बडी प्रतिज्ञा मत कर बैठो मा-शोये! मैं जानता हूँ कि इसका परिणाम क्या होगा। किन्तु अब और विलम्ब करने से काम नही चलेगा।"

मा-शोये ने वैसे ही विपण्ण मुँह से उत्तर दिया, "तुम जानते हो कि मेरे विना खाने पहनने से लेकर सोने उठने तक सब विषयो मे तुम्हारी जो दशा होगी उसे मैं सह न सकूँगी और इसीलिए तुम मुझे आज यहाँ से खदेड़ रहे हो।" यह कहकर वह प्रत्युत्तर की अपेक्षा किये वगैर ही तेजी के साथ घर से बाहर हो गयी।

४

प्राय: अपराह्न के समय जब मा-शोये की रौप्य मंडित 'मयूरपंखी' (बैलगाड़ी) मैदान मे पहुँची तब एकत्रित जन-मण्डली प्रचण्ड कलरवसे कोलाहल कर उठी।

वह युवती थी, सुन्दरी थी, अविवाहिता थी और विपुल धन की अधिकारिणी थी। मानव के योवन-राज्य मे उसका स्थान बहुत ऊँचा था। इसीलिए यहाँ भी बहुमान का आसन उसी के लिए निर्दिष्ट था। वह आज पुष्पमाला वितरण करेगी। इसके बाद जो भाग्यवान् इस रमणी के गले मे सबसे पहले जयमाला पहना सकेगा, उसका अदृष्ट ही आज मानो जगत् के लिए ईर्ष्या करने की एकमात्र वस्तु होगी।

सज्जित घोडो की पीठपर रक्तवर्ण पोशाक वाले सवार उत्साह और चाचल्य के आवेग को कष्ट से सयत कर रहे थे। देखने से मालूम होता था, आज संसार मे उनके लिए कुछ भी असाध्य नही है।

क्रमशः समय नजदीक आता गया और जो लोग भाग्य-परीक्षा करने के लिए उद्यत थे, वे एक पंक्ति मे खडे हो गये। क्षण-भर बाद घण्टे के साथ ही मरने-जीने की परवाह छोडकर उन लोगो ने अपने घोडे छोड दिये।

यह वीरत्व है। यह युद्ध का अश है। मा-शोये के पिता-पितामह आदि सब सैनिक थे। युद्ध करना ही उनका व्यवसाय था। नारी होने पर भी उनका ही रक्त उसकी रगो में दौड रहा था। यह उसके वश की बात न थी कि जो विजयी हो, उसका अपने समस्त हृदय से स्वागत न करे।

इसीलिए जब एक भिन्न ग्रामवासी अपरिचत युवकने आरक्त देह, कॉपते हुए मुँह और पसीने-भरे हाथो से उसे जयमाला पहिना दी तब उसके आग्रह की अतिशयता अनेक कुलीन रमणियो की ऑखो मे खटके विना न रह सकी।

लौटते वक्त उसने उसे गाडी में अपनी बगल मे स्थान दिया और उससे सजल कण्ठ से कहा—"तुम्हारे विषय में मैं बहुत डर गयी थी। एक बार तो यह भी मन में आया कि इतनी बडी ऊँची दीवार है, यदि लॉघते समय किसी प्रकार कही पैर चूक जाय तो!"

युवक ने विनय से गरदन झुका ली, किन्तु इस असम-साहसी बलिष्ठ वीर के साथ मा-शोये मन ही मन अपने उसी दुर्बल, कोमल और सब विषयों मे अपटु चित्रकार की तुलना किये बगैर न रह सकी।

युवक का नाम था पो-खिन। बातों ही बातों मे मालूम हुआ कि वह उच्चवंशीय है, धनी है और उसका दूर का रिश्तेदार भी है।

मा-शोये ने आज बहुत-से लोगो को भोजन के लिए निर्मंत्रित किया था। वे सब और दूसरे बहुत-से लोगो की भीड गाडी के साथ-साथ आ रही थी। आनन्द की प्रबलता से, उनके ताण्डव-नृत्य से उठे हुए धूल के मेघो से और संगीत के असह्य निनाद से उस समय सन्ध्या का आकाश एकबारगी ढँककर अभिभूत हो गया था।

यह भयंकर जनता जब उसके मकान के सामने से आगे बढ़ गयी तब क्षण-भर के लिए बा-थिन ने अपना काम छोड दिया और खिडकी के पास आकर चुपचाप देखने लगा।

५

सन्ध्या भोजन की घटना के बाद दूसरे दिन मा-शोये ने बा-थिन से कहा, "कल की सन्ध्या बड़े आनन्द मे कटी। दया करके बहुत-से लोग आये थे। केवल तुम्हे समय नही था, इसलिए तुम्हें नहीं बुलाया।"

उस चित्र को वह जी-जान से खतम करने मे लगा था, इसलिए बिना मुख उठाये ही बोला—"भला ही किया।" और यह कहकर वह फिर काम मे लग गया।

मा-शोये विस्मय से स्तंभित हो रही। बातो के भार से उसका पेट फूल रहा था। कल काम के भार मे बा-थिन उत्सव में भाग नही ले सका था, इसलिए उसके साथ बहुत समय तक बहुत-सी बातें करूँगी, यह सोचकर ही वह आयी थी। किन्तु यहाँ सब उल्टा ही हो गया। अकेले-अकेले केवल प्रलाप हो सकता है आलाप नही, इसीलिए वह स्तब्ध होकर बैठ रही। किसी भी तरह दूसरे पक्ष की प्रबल उदासीनता और गम्भीर नीरवता के रुद्ध द्वार को खोलकर भीतर प्रवेश करने का उसे विश्वास नही हुआ। प्रतिदिन जो छोटे-मोटे काम वह कर जाती थी वे आज पडे रहे, किसी भी काम में हाथ डालने की उसकी प्रवृत्ति नहीं हुई। इस तरह बहुत-सा समय निकल गया। एक बार भी बा-थिन ने मुँह नही उठाया, एक बार भी कोई प्रश्न नही किया। जिस प्रकार कल की इतनी बडी घटना के प्रति उसको लेशमात्र कुतूहल नही, उसी प्रकार मानो काम के बीच मे साँस लेने का भी उसे अवकाश नही है।

बहुत समय तक वह चुपचाप, कुण्ठित और लज्जित-सी बैठी रही। अन्त मे थककर उठ बैठी और मृदु कण्ठ से बोली, "तो अब मैं जाती हूँ।"

बा-थिन चित्रपर दृष्टि रखे हुए ही बोला—" अच्छा जाओ।"

जाते समय मा-शोये को मन में लगा कि मानो वह इस मनुष्य के अन्तर की बात जान गयी है। सोचा, पूछूँ,एक बार पूछने की इच्छा भी हुई, परन्तु मुँह नही खोल सकी, चुपचाप ही बाहर चली गयी।

मकान मे आते ही देखा, पो-खिन बैठा है। गत रात्रि के आनन्दोत्सव के विषय मे वह धन्यवाद देने आया था। अतिथि को मा-शोये ने अच्छी तरह बिठाया।

उस व्यक्ति ने पहले मा-शोये के ऐश्वर्य की बात उठाई, फिर वंश की, फिर उसके पिता की ख्याति और राजद्वार मे उनके मान-सम्मान की बात कही। इस प्रकार न जाने वह क्या अनर्गल बकता चला गया।

उस सब मे से कुछ को तो उसने सुना और कुछ उसके अन्यमनस्क कानो तक पहुँचा ही नही। किन्तु वह आदमी सिर्फ बलिष्ठ और अति साहसी घुडसवार ही नही था, अत्यन्त धूर्त भी था। मा-शोये की इस उदासीनता को वह ताड गया। माण्डले के राज-परिवार के प्रसग को उठाकर अन्त मे जब उसने सौन्दर्य की आलोचना शुरू कर दी और जब वह कृत्रिम सरलता से परिपूर्ण होकर इस रमणी को लक्ष्य कर बार-बार उसके रूप और यौवन की ओर इशारा करने लगा तब उसे यद्यपि मन ही मन अतिशय लज्जा मालूम हुई, फिर भी वह इससे एक विचित्र आनन्द और गौरव अनुभव करती रही।

बातचीत खतम होने के बाद जब पो-खिन विदा होने लगा तब आज की रात्रि के लिए भी वह आहार का निमन्त्रण लेता गया।

किन्तु उसके जाने के बाद ही मा-शोये का समस्त मन उसकी बात-चीत की मन ही मन आवृत्ति करके छोटा हो गया और ग्लानि से भर गया। निमन्त्रण करने की भूल के कारण उसकी विरक्ति और वितृष्णा की अवधि नही रही। तब उसने झटपट अपने नौकर के हाथ और भी कई बन्धु-बान्धवो को निमन्त्रण-पत्र भेज दिये। अतिथि लोग यथासमय हाजिर हुए। आज भी हँसी-दिल्लगी, गप-शप, नृत्य-गीत के साथ जब खाना-पीना खतम हुआ तब रात्रि अधिक बाकी नही थी।

क्लान्त परिश्रान्त होकर वह सोने गयी, किन्तु आँखों में नीद नही आयी और आश्चर्य यह कि जिनके साथ इतना समय इस तरह काट दिया उनमे से किसी की भी कोई बात उसके मन में नही आयी। वह सब मानों बहुत युगो की पुरानी अकिंचित्कर घटना थी,—बिलकुल शुष्क और बिलकुल नीरस। उसके मन मे बार-बार कोई दूसरा ही व्यक्ति आने लगा जो उसी के उद्यान के कोने के एक निर्जन गृह मे इस समय

निर्विघ्न है,—आज के इतने ऊधम-उपद्रव का लेशमात्र भी जिसके कानो में जाने के लिए कही से कोई छोटा-सा मार्ग भी खोजकर न पा सका जिसमे से वह जा सके।

६

चिर-दिनो का अभ्यास प्रभात होते ही मा-शोये को फिर खींचने लगा। आज वह फिर बा-थिन के कमरे में जाकर बैठ गयी। प्रतिदिन की तरह आज भी वह केवल आओ, कहकर और उसकी सहज अभ्यर्थना का कार्य समाप्त करके काम मे लग गया। किन्तु पास मे बैठकर मा-शोये को खयाल आने लगा कि यह कर्म निरत नीरव मनुष्य नीरव ही मानो उससे बहुत दूर चला गया है।

बहुत देर तक तो मा-शोये से कहने के लिए कोई बात ही न खोज सकी। इसके बाद संकोच छोडकर उसने पूछा, "तुम्हारा अब और कितना काम बाकी है?"

"बहुत।"

"तो इन दो दिनो मे क्या किया?"

बा-थिन इसका जवाब न देकर चुरुट का बक्स उसकी तरफ बढाकर बोला, "यह शराब की गन्ध मैं सहन नही कर सकता।"

मा-शोये ने इस इशारे को समझ लिया। उसने जल-भुनकर बक्स को जोर से ठेलकर कहा, "मैं सुबह-सुबह चुरुट नही पीती, और चुरुट से गन्ध छुपाने की कोशिश भी नही करती। मैं किसी नीच जाति की बेटी नही हूँ।"

बा-थिन ने मुँह उठाकर शान्त कण्ठ से कहा, "शायद तुम्हारे कपडों में किसी प्रकार लग गयी हो। शराब की गन्ध की बात मैं बनाकर नही कह रहा हूँ।"

मा-शोये बिजली की तरह जोर से उठकर खडी हो गयी और बोली, "तुम जैसे नीच हो, वैसे ही ईर्ष्यालु भी हो, इसीलिए तुमने मेरा यह अकारण अपमान किया है। अच्छा, यही ठीक है, मैं अपने वस्त्र तुम्हारे घर से चिरकाल के लिए हटाये लिये जाती हूँ।" यह कहकर वह प्रत्युत्तर की राह देखे बगैर ज्यो ही जल्दी से घर छोडकर जाने लगी त्यो ही बा-थिन ने पीछे से पुकार कर संयत स्वर मे कहा—"मुझे कभी किसी ने नीच और ईर्ष्यालु नही कहा। तुम हठात् अध·पतन के मार्ग पर जाने को उद्यत हुई हो, इसीलिए मैंने तुम्हें सावधान किया है।"

मा-शोये लौटकर खडी हो गयी और बोली, "मैं अध.पात के मार्ग पर जा रही हूँ?"

"मुझे तो ऐसा ही समझ पडता है।"

"अच्छा, तुम अपनी इस समझ को अपने ही पास रक्खो। किन्तु यह निश्चित है कि जिसके पिता अपनी सन्तान के लिए आशीर्वाद रख गये हैं—अभिशाप नही रख गये, उसके साथ तुम्हारे मन का मेल नही हो सकता।"

यह कहकर वह तो चली गयी, किन्तु बा-थिन स्थिर होकर बैठा रहा। कोई किसी कारण किसी को इतने मर्मान्तिक रूप से विद्ध कर सकता है, इतना प्यार एक ही दिन में इतना बडा जहर हो सकता है, यह वह सोच भी नही सका।

मा-शोये ने घर आकर देखा कि पो-खिन बैठा है। वह सम्मानपूर्वक उठ खड़ा हुआ और अत्यन्त मधुरतापूर्वक मुस्कराया।

मुस्कराना देखकर माँ-शोये की दोनो भौहें मानों अनजान में ही कुंचित हो उठीं। बोली, "आपका क्या कोई विशेष कार्य है?"

"नही, कार्य तो कुछ ऐसा-"

"तो फिर अभी मेरे पास समय नही है।" कहकर मा-शोये पास की साढ़ियो से ऊपर चली गयी।

गत रात्रि की बात स्मरण करके पो-खिन एकबारगी हतबुद्धि हो गया। किन्तु चपरासी को सामने आते देख वह उसे सूखी हँसी के साथ हाथ मे एक रुपया पकडा कर सीटी देता बाहर चला गया।

बचपन से जिन दोनो का कभी एक मुहूर्त के लिए भी वियोग नहीं हुआ था, अदृष्ट की विडम्बना से आज एक महीने से अधिक हो गया, उनमें से किसी ने भी किसी से साक्षात्कार नहीं किया।

मा-शोये यह सोचकर अपने को समझाने की चेष्टा करने लगी—यह एक तरह से अच्छा ही हुआ कि जिस मोह के जाल ने मुझे इतने दिनो से अपने कठिन वन्धनों मे जकडकर अभिभूत-सा कर रखा था, वह छिन्न हो गया। अब उसके साथ मेरा विन्दुमात्र सबंध नहीं है। इस धनी की कन्या की नवीन उद्दाम प्रकृति ने पिता की मौजूदगी में भी कई बार ऐसे बहुत-से काम करना चाहा हैं जिन्हें वह केवल गभीर और सयत-चित्त बा-थिन की नाराजगी के भय से ही नहीं कर सकी है। किन्तु आज वह स्वाधीन है,--एकवारगी खुद की मालिक खुद ही हो गयी है। कहीं से किसी के आगे लेश-भर भी जवावदेही करने की अब उसे जरूरत नही रही। इसी एक बात को लेकर वह मन ही मन बहुत-कुछ उधेड-बुन जोड-तोड करती रही है; परन्तु एक दिन भी अपने हृदय के निगूढ़तम गृह के द्वार खोलकर उसने नही देखा कि वहाँ क्या है। यदि देखती तो देख पाती कि अब तक सिर्फ वह अपने आपको ही ठगती रही है। उस एकान्त गुप्त कमरे मे रात-दिन आमने-सामने दोनों बैठे हुए हैं और दोनो की आँखें नीरव भाव से आँसू बहा रही है।

अपने जीवन का यह एकात करुण चित्र उनके मनश्चक्षु के लिए अगोचर था, इसीलिए इस बीच में उनके घर अनेक उत्सव-रात्रियों के निष्फल-अभिनय हो गये, पराजय की लज्जा ने उसे धूलि के साथ नही मिला दिया।

किन्तु आज के दिन के ठीक उसी तरह क्यो कटना नही चाहा, यह बात बतलानी होगी।

जन्म-तिथि के उपलक्ष्य में हर वर्ष उनके घर आमोद-, आह्लाद और खाने-पीने का अनुष्ठान होता था। आज वही आयोजन कुछ अधिक आडम्बर के साथ हो रहा है। उसमें घर के दास-दासियों से लेकर पडोसियों तक ने आकर योग दिया है, परन्तु मानो केवल उसी का किसी काम में जी नही है। सुबह मे ही उसे मन ही मन लग रहा है कि यह सब वृथा है, यह सभी व्यर्थ का परिश्रम है। न जाने कैसे इतने दिनों मानो उसे लगता था कि 'वह' भी दुनिया के अन्य दूसरे लोगों के समान है, 'वह' भी मनुष्य है, 'वह' भी ईर्ष्या से अतीत नही हैं, उसके घर जो यह सब आनन्द -उत्सव के बडे-बडे और नये-नये आयोजन हो रहे हैं, इनकी खबर क्या उसकी बन्द खिडकियों को भेद करके उस एकात कमरे में नही पहुँचती होगी? और उसके कार्य में बाधा नहीं पहुँचाती होगी?

सम्भव है, वह अपनी तूलिका फेंककर कभी स्थिर हो बैठता हो, कभी चंचल हो जल्दी-जल्दी घर में चहलकदमी करने लगता हो, कभी निद्राविहीन तप्त शय्या में पडकर सारी रात-जल-भुनकर खाक हुआ करता हो, और कभी —किन्तु जाने दो इन सब बातों को।

मा-शोये कल्पना-ही-कल्पना मे इतने दिन तक एक प्रकार के तीक्ष्ण आनन्द का अनुभव किया करती थी किन्तु आज अचानक उसे जान पडा कि कुछ भी नही है। उसके किसी कार्य में भी कोई विघ्न नही पडा। सब झूठ है, सब धोखा। न तो वह स्वय पकडना चाहता है और न पकडाई ही देना चाहता है। वह दुर्बल-देह अकस्मात् न जाने कैसे एकवारगी पहाड की तरह कठिन और अचल हो गया है,—कही की कोई भी आँधी इसे रत्ती भर भी विचलित करने में समर्थ नही है।

फिर भी जन्म-तिथि के उत्सव का विराट् आयोजन आडम्बर के साथ ही हो रहा था। पो-खिन आज सर्वत्र सब कामो में मुख्य बन गया था और इससे परिचित लोगों मे कानाफूसी भी होने लगी कि जान पडता है, यही आदमी एक दिन इस घर का पति हो जायगा और शायद वह दिन अब अधिक दूर भी नही है।

गाँव के स्त्री-पुरुषो से मकान परिपूर्ण था। चारों ही तरफ आनन्द-कलरव सुन पडता था। किन्तु जिसके लिए यह सब हो रहा था वही व्यक्ति अनमना था। उसी का मुख निरानन्द की छाया से आच्छन्न था। परन्तु, यह छाया प्रायः किसी भी बाहरी आदमी की आँखो को मालूम न हो सकी। मालूम पडी तो केवल मकान के दो-एक पुराने नोकर-नौकरानियो को और मालूम पडा उन्हे जो कि अलक्ष्य में रहकर

भी सब कुछ देखते हैं। केवल वे ही देखने लगे कि इस लडकी के निकट यह सभी कुछ विडम्बना है। इस जन्म-तिथि के दिन हर वर्ष जो मनुष्य सबसे पहले चुपचाप उसके गले में आशीर्वाद की माला पहिना देता था, आज न वह है, न माला है और उस आशीर्वाद का भी आज बिलकुल अभाव है।

मा-शोये के पिता के समय के एक बूढ़े ने आकर कहा—"छोटी बिटिया, कहाँ, उनको तो आज देख ही नही रहा हूँ?"

बूढ़ा कुछ समय पहले नौकरी से छुट्टी लेकर चला गया था। उसका घर भी दूसरे गाँव मे था। मनमुटाव की यह बात उसे मालूम नही थी। आज यहाँ आने पर ही नौकरो के द्वारा मालूम हुई थी। मा-शोये उद्धत भाव से बोली "देखने की दरकार हो तो उसके घर जाओ, यहाँ क्यों आये हो?"

"अच्छी बात है, मैं जाता हूँ।" कहकर बूढ़ा चला गया। जाते-जाते धीमे स्वर मे कहता गया-"केवल उसी अकेले को देखने से तो नही चलेगा, तुम दोनो को एक साथ देखना चाहिए,—नहीं तो यहाँ तक चलकर आना वेकार होगा।"

बूढ़े की बात इस नवीना से छुपी नही रही, और तभी से एक प्रकार की सचकित अवस्था मे ही सब कामो मे उसका समय कट रहा था। सहसा गले का एक दबा हुआ अस्फुट शब्द सुनकर उसने गर्दन उठायी तो देखा बा-थिन खडा हैं? उसके सर्वांग मे बिजली दौड़ गयी, किन्तु निमेष-मात्र मे उसने अपने को सम्हाल लिया और वह मुँह फिराकर अन्यत्र चली गयी।

कुछ समय बाद बूढ़ा आकर बोला—"छोटी बिटिया, कुछ भी हो बा-थिन तुम्हारे मेहमान हैं, उनसे क्या एक बात भी न करनी चाहिए?"

"किन्तु मैंने तो तुमसे बुला लाने के लिए नही कहा था?"

"यही तो मेरा अपराध हो गया," कहकर वह वापस जा रहा था कि मा-शोये ने बुलाकर कहा,—"अच्छा, मेरे सिवाय यहाँ और भी तो लोग हैं, वे तो बात कर सकते हैं?"

बूढ़ा बोला, "हाँ, कर सकते हैं, परन्तु अब उसकी आवश्यकता नही है, वे चले गये।"

मा-शोये क्षण-भर स्तब्ध हो रही। फिर बोली—"मेरा भाग्य, नही तो तुम भी तो उनसे भोजन करके जाने के लिए कह सकते थे।"

"नही, मैं इतना निर्लज्ज नही हूँ," यह कहकर बूढ़ा गुस्से मे चला गया।

८

इस अपमान से बा-थिन की आँखो मे जल आ गया। किन्तु इसके लिए उसने किसी को भी दोष नही दिया, केवल अपने आपको ही बारम्बार धिक्कार देकर कहा, यह ठीक ही हुआ। मुझ जैसे निर्लज्ज मनुष्य के लिए इसकी जरूरत थी।

किन्तु यह जरूरत यही पर, इस एक रात्रि के भीतर ही, खत्म नही हो गयी, इससे भी कही अधिक,—बहुत अधिक अपमान अभी उसके अदृष्ट में और भी लिखा था जो उसे दो दिन बाद महसूस हुआ। और इस प्रकार महसूस हुआ कि वह उस लज्जा को सारे जीवन-भर कहाँ रक्खेगा, इसका कूल-किनारा नही दीख पडा।

जिस चित्र की बात को लेकर हमने यह कथा प्रारम्भ की थी जातक का वह गोपा का चित्र इतने दिनों मे अब सम्पूर्ण हो पाया। एक मास से अधिक के अविश्राम परिश्रम का फल आज शेष हुआ। सुबह का सारा समय उसने इसी आनन्द मे मग्न रहकर बिताया।

चित्र राजदरबार मे जायगा। जो व्यक्ति दाम देकर उसे ले जाने वाला था, खबर पाकर वह उपस्थित हो गया। किन्तु चित्र का पर्दा हटाते ही वह चौंक पडा। चित्रो के सम्बन्ध मे वह अनाड़ी नही था; बहुत देर तक एकटक देखने के बाद अन्त मे क्षुब्ध स्वर मे बोला, "यह चित्र मैं राजा को न दे सकूँगा।"

भय और विस्मय से हतबुद्धि होकर बा-थिन ने कहा—"क्यों?"

"कारण यह कि मैं इस मुख को पहचानता हूँ। मनुष्य का चेहरा देकर देवता अंकित करने से देवता का अपमान होता है। यदि यह बात मालूम हो गयी, तो राजा मेरा मुँह भी न देखेंगे।"

यह कहकर वह चित्रकार की विस्फारित व्याकुल आँखों की ओर कुछ देर तक देखकर और मुस्कराकर बोला, "कुछ ध्यान देकर देखने से ही तुम देख सकोगे कि यह कौन है?—यह चित्र नही चल सकता।"

बा-थिन की आँखो पर से धीरे-धीरे मानों कुहरे का भारी गहरा अन्धकार हटने लगा। उस भद्र व्यक्ति के वहाँ से चले जाने पर भी वह अपनी दृष्टि को वैसे ही निवद्ध किये हुए वही खडा रहा। उनकी आँखो से जल गिरने लगा और उसे यह समझना बाकी न रहा कि इतने दिन प्राणान्त परिश्रम करने के बाद उसने अपने हृदय के अन्तस्तल से जिस सौन्दर्य, जिस माधुर्य को बाहर खींचकर निकाला है और देवता के रूप मे जिसने उसे दिन-रात छला है, वह सौन्दर्य जातक की गोपा का नही,—उसकी मा-शोये का है।

आँखें पोंछते हुए उसने मन ही मन कहा, "भगवान्! मेरी तुमने इस तरह विडम्बना की।—भला, मैंने तुम्हारा क्या विगाडा था!"

९

पो-खिन साहस पाकर बोला, "तुम्हारी कामना तो देवता भी करते हैं मा-शोये, मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ।"

मा-शोये, अन्यमनस्क-सी होकर बोली, "परन्तु जो नही करता, वह मालूम होता है, देवताओं से भी वडा है।"

किन्तु उसने इस प्रसग को आगे नही वढ़ने दिया। कहा, "सुना है, दरवार में तुम्हारी खूब घुस-पैठ है,—क्या तुम मेरा एक कार्य करा सकोगे? वहुत जल्द?"

पो-खिन ने उत्सुक होकर पूछा, "कौन-सा कार्य?"

"एक मनुष्य पर मेरा वहुत-सा रुपया निकलता है, परन्तु मैं उससे वसूल नही कर पाती हूँ। उसकी कोई दस्तावेज नही है। क्या इसका तुम कुछ उपाय कर सकते हो?"

"अवश्य। क्या तुम जानती नही हो कि मैं राजकर्मचारी हूँ?" यह कहकर वह हँसा।

इस हँसी मे स्पष्ट उत्तर था। मा-शोये व्यग्रता से उसका हाथ दबाकर बोली, "तो कोई उपाय कर दो आज ही। मैं एक दिन का भी विलम्व नही करना चाहती।"

पो-खिन गर्दन हिलाकर बोला, "अच्छी वात है, करता हूँ।"

यह ऋण हमेशा से इतना तुच्छ, इतना असम्भव और इतना हास्य-प्रद था कि इस सम्वन्ध मे किसी ने कभी चिन्ता तक नही की थी। किन्तु राजकर्मचारी के मुख की आशा से मा-शोये की समस्त देह एक मुहूर्त में उत्तेजना से उत्तप्त हो उठी। वह अपने दोनों चक्षुओ को प्रदीप्त कर उसका समस्त इतिहास सुनाकर बोली—"मैं कुछ भी न छोडूगी,—एक कौडी भी नही। जोक जिस तरह रक्त सोख लेती है ठीक उसी तरह। आज ही, अभी-अभी, नही हो सकता?"

इस विषय मे उस मनुष्य से अधिक कहने की जरूरत न थी। यह उसकी आशा से भी अधिक था। वह अपने भीतर के आनंद और आग्रह को किसी तरह दवाकर बोला, "राजा का कानून कम-से-कम सात दिन का समय चाहता है। इतने समय तक तो किसी प्रकार धैर्य धारण करना ही पड़ेगा। इसके बाद जिस प्रकार चाहो उस प्रकार, जितना चाहो उतना रक्त चूसो, मैं आपत्ति न करूँगा।"

"अच्छी वात है। किन्तु अब आप यहाँ से जाइए।" यह कहकर वह एक तरह से छूटकर भाग खडी हुई।

इस दुर्वोध लडकी की तरफ से उस मनुष्य के लोभ की सीमा न थी। इसलिए उसकी अनेक अवहेलनाओ को वह विना कुछ कहे पचा जाता था। आज भी उसने ऐसा ही किया। वल्कि घर लौटते समय मार्ग मे उसका चित्त पुलकित होकर यह वात वार-बार कहने लगा, 'अब कुछ भय नहीं है,—मेरे सफलता के पथ के निष्कण्ट होने में मालूम होता है, अव अधिक देर नही लगेगी।' यह सच है कि देर न

लगेगी, किन्तु कितने शीघ्र और कितना वडा विस्मय भगवान् ने उसके भाग्य में लिख रखा था—इस बात की कल्पना करना भी आज उसके लिए सम्भव नही था।

१०

ऋण के दावे का सम्मन आया। उसे हाथ मे लेकर बा-थिन वहुत समय तक चुप बैठा रहा। यद्यपि ठीक इसी बात की उसे आशका नही थी, फिर भी उसे आश्चर्य नही हुआ। समय थोड़ा है, शीघ्र ही कुछ करना चाहिए।

एक दिनमा-शोये ने गुस्से से उसके पिता कीफिजूलखर्चीपर व्यग्य किया था। उसके इस अपराध को वह भूला नही था और उसके लिए उसे क्षमा भी नही किया था। इसलिए वह अब उससे समय की भिक्षा माँगकर उनके और अपमान कराने की कल्पना भी नही कर सका। उसे चिन्ता सिर्फ इतनी थी कि उसके पास जो कुछ है वह सब दे करके भी अपने पिता को ऋणमुक्त कर सकेगा या नही?

उसके गाँव मे एक ही धनी महाजन था। दूसरे दिन सुबह ही उसने उसके पास जाकर गुप्त रीति से सर्वस्व वेच डालने का प्रस्ताव किया। मालूम हुआ जितना वह देना चाहता है उतना ऋण चुकाने के लिए काफी है।

रुपये लेकर वह घर आया। किन्तु एक मनुष्य की अकारण हृदय-हीनता ने उसकी समस्त देह और मन के ऊपर अज्ञात भाव से कितना बड़ा आघात पहुँचाया है, यह वह तब जान सका जब कि उसे जोर से ज्वर चढ आया।

दिन और रात किस प्रकार निकल गये, इसका उसे पता भी नही लगा। होश आने पर उसने देखा कि आज ही उसकी मियाद का अन्तिम दिन है।

आज अन्तिम दिन है। अपने एकात कोने मे बैठकर मा-शोये अपनी कल्पनाओ का जाल बुन रही थी। उसके अहंकार ने क्षण-क्षण मे स्वय चोट खा-खाकर दूसरे व्यक्ति के अहकार को एकबारगी अभ्रभेदी उच्च वनाकर खड़ा किया था। वही विराट् अहकार आज उसके पैरो पर गिरकर मानो मिट्टी मे मिल जायगा, इसमे उसे लेशमात्र भी सशय न रहा।

इसी समय नौकर ने आकर जताया कि नीचे बा-थिन राह देख रहे हैं। मा-शोये मन ही मन क्रूर हँसी हँसकर बोली, "जानती हूँ।" वह स्वय भी इसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

मा-शोये के नीचे आते ही बा-थिन उठकर खडा हो गया, किन्तु उसके मुँह को देखते ही मा-शोये की छाती में मानो सेल विंध गयी। रुपए वह चाहती नही थी, रुपए पर उसका रत्तीभर भी लोभ नही था, किन्तु उस रुपये के नाम से कितना भयकर अत्याचार किया जा सकता है यह उसने आज स्वय देखा। बा-थिन ने ही पहले बात की, कहा, "आज सात दिनो की मियाद का अन्तिम दिन है, तुम्हारा रुपया लाया हूँ।"

हाय रे मनुष्य! मरते हुए भी दर्प नही छोडना चाहता। नही तो प्रत्युत्तर मे मा-शोये के मुख से यह बात कैसे बाहर निकल सकती—"मैं कुछ थोडे से रुपए नही चाहती,—मैंने तो ऋण के समस्त रुपए चुकाने को कहा है?"

बा-थिन का पीडित सूखा मुँह हँसी से भर गया। वह बोला, "ठीक कहती हो, तुम्हारा सभी रुपया मैं लाया हूँ।"

"सब रुपया? पाया कहाँ से?"

"कल जान जाओगी। उस बक्स मे रुपये रखे हैं, किसी से लाने के लिए कहो।"

गाडीवान ने दरवाजे के बाहर से उसे लक्ष्य करके पूछा, "और कितनी देर लगेगी? ज्यादा देर लग जायगी तो पेगू मे रात्रि को ठहरने का स्थान न मिल सकेगा।"

मा-शोये ने गर्दन बढ़ाकर देखा कि रास्ते पर बक्स, बिस्तर आदि सामान से लदी हुई बैल-गाडी खडी है। भय से निमेषमात्र मे उसका समस्त मुख फीका पड गया। व्याकुल होकर एक साथ वह हजार

प्रश्न पूछने लगी, "पेगू क्यो जा रहे हो? गाडी किसकी है? कहाँ से इतने रुपए पाये? चुप क्यो हो? कल क्या मालूम होगा? आज बोलते हुए तुम्हारा—"

बोलते-बोलते ही वह आत्म-विस्मृत होकर पास आयी और उसने उसका हाथ पकड लिया। फिर निमेष-मात्र मे हाथ छोडकर उसने उसका माथा छुआ और चौंककर कहा—"ओह, तुम्हें तो ज्वर चढा हुआ है। इसी से तो कहती हूँ, मुँह पर इतना फीकापन क्यों है?"

बा-थिन ने अपने को छुडाकर शान्त मृदु-कण्ठ से कहा—"बैठो।" यह कहकर वह स्वय ही बैठ गया और बोला—"मैं मंडाले जा रहा हूँ। आज क्या तुम मेरा अन्तिम अनुरोध सुनोगी?"

मा-शोये ने गर्दन हिलाकर जताया कि सुनूँगी। बा-थिन कुछ स्थिर होकर बोला—"मेरा अन्तिम अनुरोध है कि कोई सुपात्र देखकर उसके हाथ शीघ्र विवाह कर लेना। इस प्रकार अविवाहित अवस्था में अधिक दिन न रहना। और भी एक बात—"

इतना कहकर वह कुछ समय तक मौन रहा और इस बार और भी मृदु कण्ठ से बोला—"और एक बात तुम्हे चिरकाल के लिए मन मे रखने के लिए कहता हूँ। यह बात कभी नही भूलना कि लज्जा के समान अभिमान भी स्त्रियो का भूषण है, किन्तु अति करने से—"

मा-शोये अधीर होकर बीच मे ही बोल उठी—"यह सब और किसी दिन सुनूँगी। रुपए तुमने कहाँ पाये सो बताओ?"

बा-थिन हँस पडा। बोला, "यह बात क्यो पूछती हो? मेरी ऐसी कौन-सी बात है जो तुम नही जानती?"

"रुपए तुमने कहाँ से पाये?"

बा-थिन ने थूक निगलकर इधर-उधर करते हुए अन्त मे कहा—"बाप का ऋण उन्ही की सपत्ति देकर चुकाया गया है,-नही तो मेरा खुद का और है क्या?"

"तुम्हारा फूलो का बगीचा?"

"वह भी तो पिताजी का था।"

"तुम्हारी उतनी पुस्तके?"

"अब पुस्तके लेकर क्या करूँगा? इसके सिवाय, वे भी तो उन्ही की थी।"

मा-शोये एक नि श्वास डालकर बोली, "जाने दो, अच्छा ही हुआ। अब ऊपर चलकर सो जाओ। चलो।"

"किन्तु आज तो मुझे जाना ही होगा।"

"इस ज्वर को लेकर? तुम्हे क्या सचमुच ही विश्वास है कि तुम्हे मैं इस अवस्था मे छोड दूँगी?"

यह कहकर उसने पास आकर उसका हाथ पकड लिया। इस बार बा-थिन ने विस्मय से देखा कि मा-शोये का चेहरा एक मुहूर्त मे ही एकाबारगी परिवर्तित हो गया है। उस मुख पर विषाद, विद्वेष, निराशा, लज्जा, अभिमान आदि किसी का चिह्न मात्र भी नही है। है सिर्फ विराट् स्नेह और उतनी ही विपुल शका। उस मुख ने उसे एकबारगी मन्त्र-मुग्ध कर दिया। वह चुपचाप धीरे-धीरे उसके पीछे-पीछे ऊपर सोने के कमरे मे जा उपस्थित हुआ।

उसे शय्या पर सुलाकर मा-शोये पास मे बैठ गयी और दो सफल दृप्त चक्षुओं को उसके पाडुर मुख पर रखकर बोली—"तुम क्या यह समझते हो कि कुछ रुपए ले आये हो, इसी से तुम्हारा ऋण अदा हो गया? मंडाले जाने की बात छोड दो, मेरे हुक्म के बिना इस घर से बाहर निकलते ही मैं छतपर से नीचे कूद पड कर आत्महत्या कर लूँगी। तुमने मुझे बहुत दुःख दिया है। किन्तु अब ओर दु ख नही सहूँगी, यह मैं तुमसे निश्चयपूर्वक कह रही हूँ।"

बा-थिन ने कुछ जबाब नही दिया। चादर तानकर और एक दीर्घ श्वास लेकर वह करवट बदलकर सो गया।

सती

हरीश पवना का एक सभ्रान्त और अच्छा वकील है। सिर्फ एक वकील की हैसियत से ही नही, एक कर्मनिष्ठ व्यक्ति की हैसियत से भी शहर भर मे उसकी बेहद शोहरत थी। देश के प्राय. सभी प्रकार के सदनुष्ठानो से ही किसी न किसी रूप मे वह जुडा था। शहर का कोई भी अहम काम उसे छोडकर पूरा नही होता था। सुबह नगर के भ्रष्टाचार निरोधक सभा की कार्यकारिणी समिति का एक विशेष अधिवेशन था, लिहाजा घर लौटन में उसे देर हो गई है। अब किसी तरह कुछ पेट मे डालकर अगर अदालत पहुँच जाय तो गनीमत मानेगा। विधवा छोटी बहन उमा के पास बैठकर उसके भोजन का तत्त्वावधान कर रही थी कहीं देर हो जाने के कारण दादा के भोजन मे कोई त्रुटि न हो जाय।

पत्नी निर्मला धीरे-धीरे कमरे में आकर थोडी दूर पर बैठ गई। बोली, 'मैंने कल के अखबार मे देखा कि हम लोगो की लावण्यप्रेमा यहाँ के बालिका विद्यालयो की इन्सपेक्ट्रेस नियुक्त हो के आ रही हैं।'

आपात दृष्टि मे सहज लगनेवाली इस बात के अतराल मे एक अत्यंत गंभीर इंगित छिपा था।

चकित होकर उमा ने कहा, 'सच? लेकिन भाभी "लावण्य" नाम तो बहुतों का होता है।'

निर्मला बोली, 'हाँ होता है। मैं उनसे कह रही हूँ।'

सहसा सिर उठाकर हरीश ने रुखाई से कहा, 'मुझे इसकी जानकारी कैसे होगी? सरकार क्या मुझ से राय लेकर नियुक्तियाँ करती है?'

स्निग्ध स्वर मे स्त्री ने उत्तर दिया, 'ओह, नाराज क्यों होते हो? नाराज होने की तो मैंने कोई बात नही कही। तुम्हारी तदबीर-कोशिश से अगर किसी का भला होता हो तो यह खुशी ही की बात है,' कहकर जिस तरह वह धीर-मंथर पदक्षेप से आई थी उसी तरह बाहर चली गयी।

उमा ने घबडाकर कहा, 'तुम्हे मेरी कसम दादा, मत उठो-मत उठो—'

हरीश तडितवेग से आसन छोडकर उठ पडा। बोला, 'ओफ्, शान्ति से दो कौर खा भी नही सकता। अब बिना आत्मघात किये छुटकारा नहीं मिलेगा—' कहते हुए बाहर निकल गया। जाते वक्त उसने अपनी पत्नी का मधुर स्वर सुना.', तुम किस दु.ख से आत्मघात करोगे? दुनिया देखेगी उसे एक दिन जो करेगा।'

यहाँ हरीश का थोड़ा पूर्ववृत्तान्त का ब्यान आवश्यक है। अब उसकी उमर चालीस से कम नही हैं। पर जब सचमुच कम थी, उस पाठ्यावस्था के समय का एक छोटा सा इतिहास है। उसके पिता राममोहन तब बरिशाल जिले (अब बांग्लादेश में है) के सब-जज थे। हरीश एम० ए० परीक्षा की तैयारी के लिये कलकत्ता का मेस छोडकर बरिशाल चला आया। पडोस में रहते थे हरकुमार मजुमदार। स्कूल इन्सपेक्टर। सीधेसादे, निरहंकार और प्रकाण्ड पंडित। सरकारी काम से फुरसत मिलने पर और

सदर में मौजूद रहने पर वे बीच-बीच में आकर सदर-आला बहादुर के बैठकखाने में बैठते थे। बहुत से लोग आते थे वहाँ। खल्वाट मुंसिफ, छँटी दाढ़ी वाले डिप्टी, महास्थविर सरकारी वकील और शहर के अन्य गण्यमान्य व्यक्तियों मे संध्या के बाद प्राय. कोई भी वहाँ अनुपस्थित नही रहता था। उसका कारण था। सदरआला खुद निष्ठावान हिन्दू थे। अतएव वार्तालाप तर्कवितर्क मुख्यत: धर्म के विषय मे ही होता था। और जिस तरह सर्वत्र होता है, यहाँ भी उसी तरह अध्यात्मतत्व की शास्त्रीय मीमासा का पर्यवसान एक खण्डयुद्ध में होता था।

उसदिन ऐसी ही एक लडाई के बीच हरकुमार अपनी बाँस की छडी हाथ मे लिये धीरे-धीरे अदर आ गये। इन सब लडाई-झगडों मे वे कभी कोई हिस्सा नही लेते थे। या तो वे स्वयं ब्रह्मसमाजमुक्त थे इसलिये, या अपनी शान्त मौन प्रकृति के कारण, चुपचाप बैठके सब कुछ सुनने के अलावा खुद आगे बढ़कर अपनी राय जाहिर करने की चचलता उन्होने कभी नही दिखलाई। किन्तु आज बात कुछ दूसरे ढग की हो गई। उनके कमरे मे दाखिल होते ही गजे मुंसिफ बाबू उन्हें ही मध्यस्थ मान बैठे। इसका कारण यह था कि इस बार छुट्टी मे कलकत्ता जाकर वे कही यह सुन आये थे कि इस व्यक्ति का भारतीय दर्शन मे गहरा प्रवेश है। मुसकराकर सम्मत हो गये हर कुमार। थोडी ही देर में यह स्पष्ट हो गया कि प्राचीन शास्त्रीय ग्रथों के अनुवाद मात्र को सबल बनाकर इनसे तर्क नही किया जा सकता। उनकी प्राजल व्याख्या ने सबको सतुष्ट कर दिया, नही किया सिर्फ सब-जजबहादुर को। उनकी धारण थी कि जिस व्यक्ति ने स्वय अपनी जाति खो दी है व्यर्थ है उसका यह शास्त्रज्ञान। और अपने मन की बात उन्होंने जाहिर भी कर दी। सबके उठकर चले जाने के बाद उन्होने अपने परमप्रिय सरकारी वकील साहब को आँख का इशारा करके हँसकर कहा, 'सुना न आपने भादुडी महाशय? भूत के मुँह से रामनाम।'

भादुडी ने पूरी तरह उनकी हाँ मे हाँ नही मिलाई। बोले, 'हाँ। लेकिन जानता खूब है। लगता है सब कुछ जैसे हिफ्ज है उसे। पहले मास्टरी करता था न।'

उनकी बात से हाकिम प्रसन्न नही हुए। बोले, 'भाड में जाय यह ज्ञान। यहाँ लोग असली ज्ञानपापी हैं। इन्हें कभी मुक्ति नही मिलेगी।'

इस मजलिस में हरीश भी उसदिन चुपचाप एकतरफ बैठा था। इस मितभाषी प्रौढ़ के ज्ञान और पाण्डित्य को देखकर मुग्ध हो गया था वह। सुतरा पिता की जो भी धारणा हो उनके विषय में, पुत्र अपनी आसन्न परीक्षा की सफलता के उद्देश्य से उनकी शरण मे चला गया। उसे मदद करनी पड़ेगी उन्हें। हरकुमार राजी हो गये। उनके घर उनकी पुत्री लावण्य से हरीश का परिचय हुआ। वह भी आई० ए० (इन्टरमीडिएट) परीक्षा की तैयारी के लिये कलकत्ता का कोलाहलमय वातावरण छोडकर अपने पिता के पास चली आई है। उस दिन से प्रतिदिन के यातायात से हरीश ने केवल पाठ्यपुस्तको के दुरूह अशो के अर्थ को ही नही जाना, और भी एक जटिलतर वस्तु के स्वरूप को भी उसने जान लिया, जो तत्त्व की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। पर यह बात अभी नही। क्रमश. परीक्षा के दिन पास आने लगे, हरीश कलकत्ता चला गया। उसने परीक्षा अच्छी तरह दी और अच्छी तरह पास भी हुआ।

कुछ समय बाद फिर जब लावण्य से मुलाकात हुई, तब हरीश ने सहानुभूतिपूर्वक पूछा, 'आप फेल कैसे हो गयी?'

लावण्य ने कहा, 'क्या मैं फेल तक नही हो सकती? इतनी अक्षम हूँ मैं?'

हरीश हँस पडा उसकी बात सुनकर। बोला, 'खैर, जो हुआ सो हुआ। अब की बार ठीक से तैयारी करके इम्तहान दीजिये।'

लावण्य विदुमात्र लज्जित न होकर बोली, 'अच्छी तरह तैयारी करके इम्तहान देनेपर भी मैं फेल होऊँगी। वह मुझसे नही होगा।'

हरीश ने अवाक् होकर पूछा, 'क्यो नही होगा आपसे?'

लावण्य ने कहा, 'क्यों नही होगा? ऐसे ही नही होगा,' यह कहकर वह अपनी हँसी रोककर फौरन वहाँ से चली गई।

क्रमश. यह बात हरीश की माता के कानों मे पहुँच गई।

उस दिन सुबह राममोहनबाबू एक मुकदमे की राय लिख रहे थे। जो बदनसीब हारा था उसे कहीं कोई बिना-सहारा न मिले, इसे अपने शुभ संकल्प को कार्य रूप में परिणत करने के लिये राय के मसविदे में चुन-चुनकर शब्द-संयोजन कर रहे थे, गृहिणी के मुँह से बेटे की करतूत सुनकर उन्हें आग सी लग गई। हरीश ने नरहत्या की है, संभवतः यह सुनने पर भी वे इतने विचलित नहीं होते। आँखें लाल करके बोले, 'क्या! इतनी हिम्मत—!' इससे अधिक नहीं बोल पाये वे।

दिनाजपुर रहते वक्त शिक्षा की उपयोगिता, गीता के साराश और अवकाश प्राप्त करने के बाद काशीवास के सुख विषयों पर वहाँ के एक पुराने वकील से उनके मत का बहुत मेल था, फलस्वरूप उनमें घनिष्ठता हो गई थी। एक छुट्टी के दिन वहाँ जाकर वकीलबाबू की छोटी लडकी निर्मला को फिर एक बार देखकर लडके की शादी का रिश्ता पक्का कर आये।

लडकी देखने में अच्छी थी। दिनाजपुर रहते वक्त गृहिणी ने उसे बहुत बार देखा था, फिर भी उन्होंने पति की बात सुनकर हैरत में आकर कहा, 'कहते क्या हो जी, एकदम रिश्ता पक्का कर आये? आजकल के लडके—'

कर्ता ने कहा, 'पर मैं तो आजकल का बाप नहीं हूँ। मैं पुराने जमाने के नियमों से ही अपने लडके की परवरिश कर सकता हूँ। हरीश को अगर मेरी बात पसंद न हो तो उसे अपना कोई दूसरा उपाय देखने के लिये कहना।'

गृहिणी पति को पहचानती थी, वे स्तब्ध हो गयी।

कर्ता राममोहनबाबू ने पुनः कहा, 'लडकी हुस्न में परी तो जरूर नहीं है, पर भले घर की लडकी है। वह अगर अपनी माँ के सतीत्व और अपने बाप की धर्मनिष्ठा को लेके हमारे घर आ जाये, तो हरीश इसे अपना सौभाग्य ही समझे।'

इस खबर के जाहिर होने में विलंब नहीं हुआ। हरीश को भी पता चल गया इसका। पहले उसने सोचा कि भागकर वह कलकत्ता चला जाय, वहाँ और कुछ न मिले तो ट्यूशन करके ही जिन्दगी बसर करे। फिर सोचा सन्यासी बन जायगा। अंत में, पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिताहि परम तपः—इत्यादि स्मरण करके स्थिर हो गया।

लडकी के पिता बड़े ठाठबाट के साथ पात्र देखने आये और उन्होंने आशीर्वाद (तिलक) की रस्म भी इसी के साथ पूरी कर दी। हाकिम बहादुर के समारोह सभा में शहर के बहुत से नामी गिरामी लोग आमंत्रित होकर आये थे; निरीह हरकुमार बिना कुछ जानेसुने ही चले आये थे। राममोहनबाबू ने सबके समक्ष अपने भावी समधी मैत्र महाशय की हिन्दू धर्म में प्रगाढ़ निष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा की, और अंग्रेजी शिक्षा के सख्यातीत दोषों का कीर्तन करके बहुत कुछ यह अभिमत व्यक्त किया कि उन्हें हजार रुपये की नौकरी देने के अलावा अंग्रेजों में और कोई गुण नहीं है। आजकल वक्त बदल गया है इसलिये लडकों को अंग्रेजी पढ़ाये बिना काम नहीं चलता, किन्तु जो मूर्ख इस म्लेच्छ विद्या और म्लेच्छ सभ्यता को हिन्दुओं के शुद्ध अंतःपुर में स्त्रियों के बीच ले आता है उसका न इहलोक रहता है न परलोक।

अकेले हरकुमार के अलावा उनकी इस उक्ति का निगूढ़ अर्थ किसी के लिये अविदित न रहा, उस दिन सभा भंग होने से पहले ही विवाह का दिन भी निश्चित हो गया और यथासमय शुभकार्य के सम्पन्न होने में कोई विघ्न नहीं उपस्थित हुआ। बेटी को श्वशुर गृह भेजते समय निर्मला की सती साध्वी माता मैत्र गृहिणी ने वधूजीवन के चरम तत्त्व को पुत्री के कर्णगोचर किया। उन्होंने कहा, 'पुरुषों को हमेशा दृष्टि के अंतर्गत रखना चाहिये, उनपर से दृष्टि हटते ही वे हाथ से बाहर निकल जाते हैं। गिरस्ती के दौरान और कोई भी बात भले ही भूल जाओ, लेकिन इस बात को कभी न भूलना बेटी।'

उनके अपने पति शिक्षा की उपयोगिता और गीता के सारतत्त्व में मशगूल होने के पहले तक उन्हें काफी दिक कर चुके थे। अब भी उनका दृढ विश्वास है कि जबतक मैत्रबूढा चितारोहण नहीं करता तबतक वे निश्चिन्त नहीं हो सकती।

निर्मला पति की गिरस्ती में आई और पिछले बीस साल से है। इस लंबे अरसे में न जाने कितने परिवर्तन हो गये, नजाने कितनी घटनायें घटी। हाकिम बहादुर की मृत्यु हो गई, स्वधर्मनिष्ठ मैत्र गतासु हो गये, लिखाई-पढाई खतम होने के बाद लावण्य की अन्यत्र शादी हो गई, जूनियर वकील हरीश

सीनियर वकील बन गया, उसकी उमर यौवन पार करके प्रौढत्व मे जा पहुँची, किन्तु निर्मला मातृदत्त मत्र को नही भूली।

दो

इस सजीव मत्र की क्रिया इतनी द्रुत आरभ होगी इसे कोई नही जानता था। रायबहादुर राममोहन जीवित थे तब। पेन्शन लेकर पवना के अपने घर मे चले आये थे। हरीश के एक वकील मित्र के पिता के श्राद्ध के अवसर पर कलकत्ता से एक अच्छी कीर्तन गाने वाली आई थी। वह देखने मे अच्छी थी और उमर भी कम थी उसकी। सबकी इच्छा हुई कि श्राद्ध कर्म के बाद सब एक दिन उसका कीर्तन अच्छी तरह सुने। अगले दिन हरीश को कीर्तन सुनने का निमत्रण मिला। कीर्तन सुनकर घर लोटाने में उसे थोडी रात अधिक हो गई।

निर्मला ऊपर के खुले बरामदे मे सडक की ओर नजर किये खडी थी। पति के ऊपर आनेपर उसने पूछा, 'गाना कैसा लगा?'

हरीश ने खुश होकर कहा, 'अच्छा गाती है।'

'देखने मे कैसी है?'

'बुरी नही, अच्छी ही है।'

निर्मला ने कहा, 'तब रात एकदम बिताकर ही आते।'

इस अप्रत्याशित कुत्सित मन्तव्य मे हरीश क्रुद्ध होने के बजाय विस्मय से अभिभूत हो गया। उसके मुँह से सिर्फ यही निकला, 'क्या कहती हो।'

निर्मला ने सक्रोध कहा, 'ठीक ही कहती हूँ। मैं दुध मुँही बच्ची नही हूँ, सब जानती हूँ, सब समझती हूँ। तुम मेरी आँखो मे धूल झोकोगे? अच्छा—'

उमा पास के कमरे मे से दौड के आकर सभीत बोली, 'तुम क्या कर रही हो भाभी? पिताजी सुन लेगे।'

निर्मला ने कहा, 'सुन लेगे तो सुन ले। मैं धीरे-धीरे तो नही बोल रही हूँ।

इसके जवाब मे उमा क्या कहे, समझ नही पायी। पर कहीं उसकी ऊँची आवाज से वृद्ध पिता की नीद न टूट जाय, इस डर मे हाथ जोडकर दबी आवाज मे उसने विनती की, 'भाभी शान्त हो जाओ, इतनी रात को चिल्लाकर घर की बदनामी न कराओ।'

भाभी की आवाजे इसने घटी नही, बल्कि बढी ही। बोली, 'कैसी बदनामी! तुम यह नही कहोगी तो कौन कहेगा ठाकुरझी*, तुम्हारे भीतर तो मेरी तरह नही जल-भुन रहा हे। कहते-कहते वह रो पडी और जल्दी से अपने कमरे मे घुसकर उसने दरवाजे बद कर लिये।

एक काठ के पुतले की तरह हरीश ने चुपचाप नीचे आकर मवक्किलो के बैठने की बेच पर सोकर बाकी रात बितायी। इसके बाद करीब दस दिन के लिये दोनो की बातचीत हो गई।

पर हरीश भी फिर सध्या के बाद घर से बाहर नही दिखलाई पडा। दिखलाई पडने पर भी उसकी शकाकुल व्याकुलता लोगो की उपहास की वस्तु बन गई। दोस्त नाराज होकर कहने लगे, हरीश तुम जितने बूढे हो रहे हो, रोग भी तुम्हारा उतना ही बढता चला जा रहा है?

हरीश अक्सर कोई जवाब नही देता था, सिर्फ बात जब बहुत ज्यादा चुभने लगती थी तब कहताथा 'इसी घृणा से यदि तुम लोग मेरा, परित्याग कर दो तो तुम लोगो को भी मुक्ति मिलजाय और मुझे भी।'

दोस्त कहते, 'बेकार ही हम कहने गये, उसे शरमिंदा करते जाकर हम लोगो को खुद शरमिन्दा होना पड रहा हे।'

---

* बगाल मे ननद का सबोधन।

तीन

चेचक के प्रकोप से उसबार बहुत तादाद मे लोग मरने लगे। हरीश को भी चेचक रोग ने पकड लिया। वैद्य ने आकर उसे देखा, फिर चेहरे को गभीर बना कर बोले, 'हालत बेहद नाजुक है। बचना मुश्किल मालूम हो रहा है।'

रायबहादुर तक परलोकवासी हो गये थे। हरीश की वृद्धा माता पछाड खाकर जमीन पर गिर पडी। निर्मला ने कमरे से बाहर आके कहा, 'मैं यदि सती माँ की सती बेटी होऊँ तो किसी की हिम्मत है मेरे लोहा–* सिंदूर से मुझे वंचित करे। तुम लोग उन्हे देखना, मैं चलती हूँ', यह कहकर वह शीतला को मंदिर मे जाके धरना देकर पडी रही। उसने कहा, 'अगर वे जीवित रहे तो मैं घर लौटूंगी, नही तो यही से उनके साथ जाऊंगी।'

सात दिन की अवधि मे देवी के चरणामृत के अलावा पानी तक कोई उसके हलक से नीचे नही उतार पाया।

वैद्य ने आकर कहा, 'बेटी, तुम्हारे पति ठीक हो गये हैं, अब तुम घर चलो।'

लोगो की भीड लग गई उसे देखने के लिये। स्त्रियो ने उसके पैरों की धूल लेकर सिर पर चढ़ायी, उसके माथे पर सिंदूर का लेप किया। उन्होंने ने कहा, 'मानवी नही है यह, लगता है कि साक्षात् देवी है।' वृद्धो ने कहा, 'क्या सावित्री का उपाख्यान झूठा है या कलियुग से धर्म ही पूरी तरह उठ गया है? यमराज के हाथो से आखिर पति को लौटा तो लाई।'

बार-लाइब्रेरी मे हरीश के दोस्त कहने लगे, 'इनसान औरत का गुलाम वैसे ही नही हो जाता है, शादियाँ तो हमने भी की हैं, मगर औरत अगर हो तो ऐसी हो। अब समझ मे आया कि क्यो हरीश संध्या के बाद घर के बाहर नही रहता था।'

वीरेन्द्र वकील भक्त व्यक्ति है, पिछले वर्ष काशी जाकर किसी सन्यासी से गुरु मत्र ले आया है। उसने टेबिल पर जोर से हाथ मार कर कहा, 'मैं जानता था कि हरीश नही मर सकता। सच्चा सतीत्व मामूली बात है क्या? घर से यह कह कर निकल आई कि "यदि सती माँ की सती बेटी होऊँ तो–" ओह! बदन सिहर उठता है।'

वयोवृद्ध तारिणी चटर्जी अफीमची है। एक कोने मे बैठ के निविष्टचित्त से हुक्का पी रहे थे, हुक्के को ढेरे के हाथ मे देके गहरी उसाँसे खीचकर बोले, 'शास्त्रानुसार सहधर्मिणी होना बडा कठिन होता है। देखो न, मेरी सिर्फ लडकियाँ ही सात है, उनकी शादी करते-करते ही दिवाला निकला जा रहा है।'

बहुत दिन बाद ठीक होकर जब फिर हरीश कचहरी गया तब न जाने कितने लोगो ने उसे अभिनदित किया जिसका कोई शुमार नही।

सखेद ब्रजेन्द्र बाबू बोले, 'भाई हरीश, तुम्हे स्त्रैण कहकर बहुत मजाक उडाया है, माफ करना। लाख क्यो, करोडो मे भी तुम जैसा भाग्यवान मिलना मुश्किल है, तुम धन्य हो।'

भक्त वीरेन्द्र बोला, 'सीता-सावित्री की बात अगर छोड भी दी जाय तो भी खना, लीलावती, गार्गी हमारे ही देश मे पैदा हुई थी। भाई, स्वराज-फराज जो कुछ भी कहो, किसी से कुछ नही होगा जबतक कि हम स्त्रियो को फिर वैसा नही बना पायेगे। मैं समझता हूँ कि जल्दी ही हमे पबना शहर मे एक आदर्श नारी शिक्षा समिति का गठन करना चाहिये, और जो आदर्श महिला उसकी पर्मानेन्ट प्रेसीडेन्ट बनेगी उसका नाम तो हमलोग जानते ही हैं।'

वयोवृद्ध तारिणी चटर्जी बोले 'इसी के साथ एक दहेज प्रथा-निवारणी समिति का गठन भी आवश्यक है। मुल्क बरबाद हुआ जा रहा है।'

ब्रजेन्द्र ने कहा, 'हरीश, अपने कॉलेज जीवन मे तो तुम अच्छा-खासा लिखा करते थे, अपनी इस आश्चर्यजनक रिकवरी (आरोग्य) के विषय मे तुम्हे 'आनंद बाजार पत्रिका' मे एक आर्टिकल लिखना

---

* सधवा स्त्री के चिह्न।

चाहिये।'

हरीश किसी की किसी बात का भी जवाब नहीं दे पाता। कृतज्ञता से उसकी आँखें डबडबा गयीं।

चार

मृत जमींदार गोसाईचरण की विधवा पुत्रवधू के साथ उनके अन्य पुत्रों का जायदाद को लेकर मुकदमा शुरू हो गया था। हरीश विधवा पुत्रवधू का वकील था। जमींदार का कौन सा कर्मचारी किधर था, यह जानना मुश्किल था इसलिये गुप्त परामर्श के लिये विधवा खुद ही पहले दो-एक बार वकील के घर आ चुकी थी। आज सुबह भी उनकी गाडी आकर हरीश के सदर दरवाजे पर रुकी। हरीश ने सम्मानपूर्वक उन्हे अपने चेम्बर मे लाकर बैठाया। उनकी बातचीत पास के कमरे मे मुहर्रिर न सुन ले इस अंदेशे से वे दोनो बडी सावधानी से धीरे-धीरे बाते कर रहे थे। विधवा के किसी कौतुके सवाल का हरीश के हँसकर जवाब देने की कोशिश करते ही करीब के कमरे के पर्दे की ओट से अकस्मात् एक तीखी आवाज आई, 'मैंने सब कुछ सुन लिया है।'

विधवा चौंक पडी। हरीश लज्जा और शका से काठ बन गया।

दो अति सतर्क आँखे और कान उसे अहरह पहरे के घेरे मे रखे हुए हैं, इस बात को वह कुछ क्षण के लियें भूल गया था।

पर्दा ठेलकर निर्मला रणरंगिनी मूर्ति में बाहर निकल आयी। हाथ पटककर आवाज में जहर ढाल कर बोली, 'फुसफुसा के बाते करके मुझे धोखा दोगे तुम' सुनकर भी यह न सोचना। मुझसे तो कभी इस तरह हँसकर बाते नही करते।'

नितान्त असत्य नहीं था यह अभियोग।

विधवा ने सयतभाव से कहा, 'यह सब क्या मामला है हरीशबाबू?'

क्षणभर विमूढ की तरह देखकर हरीश ने कहा, 'पागल है।'

निर्मला ने कहा, 'पागल हूँ? पागल ही हूँ। पर किस ने बनाया बताओ?' यह कहकर वह जोर जोर से रोने लगी, फिर एकाएक घुटने टेक कर विधवा के पैरो के पास माथा पटकने लगी। मुहर्रिर काम छोडकर दौडकर वहाँ चला आया; एक जूनियर वकील तभी आया था, वह भी दरवाजे के पास आकर खडा हो गया, बोस कपनी का बिल-मैनेजर उसी के कंधे पर से झाँकने लगा और उन्हीं सब लोगो की आँखों के सामने निर्मला माथा पटकते-पटकते बोली, 'मैं सब जानती हूँ, सब समझती हूँ। रहो तुम्ही लोग खुश रहो। किन्तु यदि मै सती माँ की सती बेटी होऊँ, यदि मन-विचार से सिवाय एक के कभी दो को जाना हो, यदि—।'

इधर विधवा खुद भी रोने लग गयी, 'यह सब क्या है हरीश बाबू! मुझे क्यों बदनाम किया जा रहा है इस तरह? यह कैसी—।'

हरीश ने किसी को भी कोई जवाब नही दिया। सिर नीचा किये केवल यही बात उसके मन में उठने लगी 'पृथ्वी, द्विधा क्यों नही होती?'

लज्जा-घृणा-क्रोध से हरीश उस दिन उसी कमरे मे स्तब्ध होकर बैठा रहा, कचहरी जाने की बात तक नही सोच सका। दोपहर को उमा ने आकर बहुत मिन्नतें करके और कसम दिलाकर उसे कुछ खिला दिया। सध्या के कुछ पहले रसोइये ने एक चाँदी की कटोरी में कुछ पानी लाकर उसके पैरो के पास रक्खा हरीश की पहले तबीयत हुई कि लात मार कर उसे फेक दे पर आत्म सवरण करके आज भी उसने दाहिने पैर के अँगूठे को उसमे डुबो दिया। पति के पादोदक पिये बिना निर्मला किसी दिन जल स्पर्श नही करती थी।

रात को बाहर के कमरे मे अकेले सोये हरीश सोच रहा था कि उसके इस दु:खमय दु:सह जीवन का कब अवसान होगा। इसी तरह बहुत दिन उसने बहुत सी बाते सोची हैं, किन्तु उसकी इस सती स्त्री के एकनिष्ठ पतिप्रेम के प्राणान्तकर नागपाश से मुक्त होने का कोई भी पथ उसे नही दिखलाई पडा।

पाँच

लगभग दो वर्ष गुजर गये हैं। निर्मला ने पता लगाकर जाना है कि अखबार की खबर झूठी नही है। लावण्य सचमुच ही पवना के बालिका विद्यालयो की इस्पेक्ट्रेस बन के आ रही है।

आज हरीश ने थोड़ी जल्दी कचहरी से लौटकर छोटी बहन उमा को बताया कि रात की ट्रेन से उसे एक जरूरी काम से कलकत्ता जाना पडेगा, लौटने मे शायद उसे चार-पाँच दिन लग जाय। बिस्तर और जरूरी कपडे नौकर से ठीकठाक कराकर रखवा दे दह यह निर्देश देकर वह बाहर वाले कमरे मे चला गया।

करीब पन्द्रह दिन से पति-पत्नी मे बातचीत बद है।

रेलवे स्टेशन दूर है—रात के आठ बजे ही मोटर से निकल जाना पडेगा। सध्या के बाद वह मुकदमे के जरूरी कागज-पत्र सँभाल कर हैण्ड बैग मे रख रहा था, तभी निर्मला अदर चली आई।

हरीश ने सिर उठाकर देखा, कुछ बोला नही।

निर्मला ने क्षणभर मौन रहकर पूछा, 'आज कलकत्ता जा रहे हो क्या?'

हरीश ने कहा, 'हाँ।'

'क्यो?'

'क्यो का क्या मतलब? मुवक्किल के काम से—हाई कोर्ट मे मुकदमा है।'

'चलो न, मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ।'

'तुम जाओगी' जाकर कहाँ रहोगी बताओ?'

निर्मला बोली, 'जहाँ जगह मिले। तुम्हारे साथ पेड के नीचे रहने मे भी मुझे कोई लज्जा नही होगी।'

सुनने मे यह बात अच्छी है, और एक सती स्त्री के कहने योग्य भी। लेकिन उसकी यह बात सुनकर हरीश के बदन मे आग सी लग गई।

उसने कहा, 'तुम्हे लज्जा न आये, पर मुझे तो आयगी। मैं बजाय पेड के नीचे रहने के फिलहाल किसी दोस्त के घर जाकर ठहरूँगा, तय किया है।'

निर्मला ने कहा, 'तब तो और भी अच्छा हुआ। उनके घर भी तो उनकी पत्नी होगी, बाल-बच्चे होगे, मुझे कोई असुविधा नही होगी।'

हरीश ने कहा, 'नही, यह नही हो सकता। बिना कोई सूचना दिये, बिना बुलाये किसी आम आदमी के घर मैं तुम्हे अपने साथ लेकर नही जा सकता।'

निर्मला ने कहा, 'नही साथ लेकर जा सकते, यह मैं जानती हूँ। मेरे साथ रहने पर लावण्य के घर नही टिक पाओगे न।'

हरीश आगबबूला हो गया। हाथ-मुँह हिलाकर चीखकर बोला, 'तुम जितनी गदी हो उतनी ही बुरी भी। वह एक विधवा भद्र महिला है, मैं क्यो उसके घर टिकने जाऊँगा, वह भी क्यो मुझे जाने के लिये कहेगी? फिर, वक्त कहाँ है मेरे पास? कलकत्ता जाकर मुवक्किल के काम से मुझे साँस तक लेने की फुरसत नही मिलेगी।'

'मिल जायगी जी मिल जाएगी,' यह कह कर निर्मला कमरे से बाहर चली गयी।'

तीन दिन के बाद ही हरीश के कलकत्ता के लौट आने पर स्त्री ने कहा, 'चार-पाँच दिन कह गये थे, लेकिन तीन ही दिन मे कैसे लौट आये?'

हरीश बोला, 'काम खतम हो गया, चला आया।'

निर्मला ने जबरदस्ती हँसकर पूछा, 'शायद लावण्य मे नही मुलाकात हुई?'

हरीश ने कहा, 'नही।'

निर्मला ने बेहद भलमनसाहती दिखाते हुए पूछा, 'कलकत्ता जब गये ही, एक बार जाके खबर क्यो नही ले आये?'

हरीश ने जवाब दिया, 'वक्त नही मिला।'

'इतने पास गये, थोडा वक्त निकाल लेते,' यह कहकर वह चली गयी।

इसके करीब महीने भर बाद, एक दिन कचहरी जाते वक्त हरीश ने बहन को बुलाकर कहा, 'आज मुझे लौटने मे शायद थोडी रात हो जायगी उमा।'

'क्यो दादा?'

उमा पास ही थी, धीरे बोलने मे ही काम चल जाता, पर अपनी आवाज को ऊँची करके किसी अदृश्य व्यक्ति के उद्देश्य से हरीश ने उत्तर दिया, 'योगीन बाबू के घर कुछ जरूरी सलाह-मशविरा के लिये जाना है, आने मे देर हो जा सकती है।'

लौटने मे वाकई देर हो गई। करीब रात के बारह बज गये। हरीश मोटर मे उतर कर बाहर वाले कमरे मे चला गया। कपडे बदलते-बदलते उसने ऊपर की खिडकी मे स्त्री को शोफर से यह पूछते हुए सुना, 'अबदुल, योगीन बाबू के घर से आ रहे हो न?'

अबदुल ने कहा, 'नही माईजी, स्टेशन से आ रहे हैं।'

'स्टेशन से? स्टेशन से क्यो? गाडी मे कोई आया है शायद?'

अबदुल ने बताया, 'कलकत्ता से एक माईजी आयी हैं एक बच्चे के साथ।'

'कलकत्ता से? बाबूजी उन्हे लाकर डेरे मे पहुँचा आये हैं शायद?'

अबदुल 'हाँ' कह कर गाडी गैरेज मे ले गया।

कमरे के भीतर हरीश जडवत् खडा रहा। ऐसी सभावना की बात उसके मन मे न आई हो, ऐसी बात नही, पर वह अपने नौकर से झूठ बोलने का अनुरोध किसी तरह नही कर सका।

सोने के कमरे मे उस दिन रात को कुरुक्षेत्र की पुनरावृत्ति हो गयी।

अगले दिन सुबह ही लावण्य लडके को साथ लेकर इस मकान मे हाजिर हो गई। बाहर के कमरे मे था तब हरीश। उससे बोली, 'आपकी स्त्री से मेरा परिचय नही है। चलिये, परिचय करा दीजिये।'

हरीश की छाती मे धडकन होने लगी। एक बार उसने यह कहकर भी टालना चाहा कि वह बहुत व्यस्त है, लेकिन वह उज्र टिक नही पाया। उसे साथ ले आकर स्त्री से परिचय करा देना पडा।

लगभग दस साल का एक लडका और लावण्य। निर्मला ने बडे आदर से उनका स्वागत किया। लडके को खाने को मिठाई दी और उसकी माँ को आसन बिछाकर यत्नपूर्वक बैठाया। बोली, 'मेरा सौभाग्य है कि आपसे मुलाकात कर सकी।'

लावण्य ने इसके उत्तर मे कहा, 'हरीशबाबू से मैंने सुना है कि आपने लगातार बार व्रत और उपवास करके अपनी सेहत को खराब कर डाली हैं। इस वक्त भी मुझे आपकी सेहत ठीक नही लग रही है।'

निर्मला ने हँसकर कहा, 'बढा-चढा के कही गयी है बात। लेकिन यह बात आखिर उन्होने कब कही आपसे?'

हरीश उस वक्त वही खडा था, उसका चेहरा एकदम फक पड गया।

लावण्य ने कहा, 'इसबार कलकत्ता मे। खाने बैठकर केवल आप ही की बात करते थे। उनके मित्र कुशलबाबू के घर के बहुत पास ही है न हमलोगो का घर। छत पर से चिल्लाकर पुकारने से आवाज सुनाई पड जाती है उस घर मे।'

निर्मला ने कहा, 'थोडी सुविधा है।'

लावण्य ने हँसकर कहा, 'पर सिर्फ इसी से काम नही बनता था, लडके को भेजकर पकड के लाना पडता था।'

'अच्छा।'

लावण्य बोली, 'फिर, जाति और छुआछूत का भी बहुत खयाल है। ब्राह्मणो का छुआ तक नही खाते—मेरी बुआजी के हाथ तक का भी नही। मुझे ही खुद सब कुछ पकाकर परोसना पडता था।' यह कहकर वह मुसकराते हुए कौतुकपूर्ण दृष्टि से हरीश की ओर देखकर बोली, 'अच्छा इस मे आपकी क्या लॉजिक (दलील) है बताइये तो? मैं क्या ब्राह्मसमाज से बाहर हूँ?'

हरीश का तमाम बदन सन्न पड गया। उसकी झूठ प्रमाणित हो जानेपर उसे लगा कि शायद इतने दिन बाद माता वसुधरा अवश्य उसपर दया करके उसे अपने जठर मे खीच लेंगी। पर सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह हुई कि आज निर्मला ने कोई भयकर पागलपन का काम नही किया, बिलकुल शान्त बनी रही। संशय की वस्तु ने अविसंवादी सत्य के रूप मे प्रकट होकर सभवत. उसे हतचेतन बना दिया था।

हरीश बाहर आकर स्तब्ध भाव से और फीका चेहरा किये बैठा रहा। इस भीषण सभावना की बात को स्मरण करके लावण्य को पहले से ही सतर्क कर देने की जुगत बहुत बार उसके मन मे आयी थी, पर वह इस नितान्त अपमानजनक तथा मर्यादाहीन दुराव छिपाव के प्रस्ताव को किसी तरह भी इस शिक्षित और भद्र महिला के समक्ष नही उपस्थित कर पाया।

लावण्य के चले जाते ही निर्मला ने आँधी की तरह कमरे मे घुसकर कहा, 'छी , तुम इतने झूठे हो। इतना झूठ बोलते हो।'

आँखे लाल करके झट से खडे होकर हरीश ने कहा, 'हाँ, बोलता हूँ। मेरी खुशी।'

क्षणभर निर्मला पति के चेहरे की ओर चुपचाप देखती रही, फिर रोने लगी। बोलो, बोलो, जितनी इच्छा हो झूठ बोलो, जितनी खुशी हो मुझे धोखा दो। पर धर्म अगर हो, अगर मै सती माँ की बेटी होऊँ, अगर कायमन से सती होऊँ, तो मेरे लिये एक दिन तुम्हे जरूर रोना पड़ेगा, पडेगा, पडेगा।' यह कहकर वह जिस तरह आयी थी उसी तरह द्रुत वेग से कमरे से बाहर चली गयी।

बातचीत पहले से ही बद चली आ रही थी, अब वह दृढतर हो गयी—बस इतना ही हुआ। नीचे के कमरे मे ही होता था उसका शयन और भोजन। हरीश हर रोज कचहरी जाता है और आता है, बाहर वाले कमरे मे बैठकर अपना वक्त काटता है—इसमे नया कुछ भी नही है। पहले सध्या के समय एक बार क्लब मे जाकर बैठता था, अब वह भी बद हो गया है। कारण शहर के उसी ओर लावण्य का डेरा है। उसे लगता था कि पतिप्राणाचार्या की दो आँखे दस आँखे बनकर दशो दिशाओ से अहरह पति का निरीक्षण कर रही हैं। यह निरीक्षण विरामहीन, विश्रामहीन और मध्याकर्षण की तरह नित्य है। स्नान के बाद दर्पण की ओर देखकर उसके मन मे यह बात आती थी कि सती साध्वी की इस अक्षय प्रेम की आग मे उसके कलुषित देह के नश्वर मेद-मज्जा-मास शुष्क और निष्पाप होकर बहुत तेजी से उच्चतर लोक के लिये तैयार हो रहे हैं। उसकी पुस्तको की आलमारी मे एक कालीसिह रचित महाभारत ग्रन्थ था। वक्त कटना जब भारी हो जाता था तब वह उसमे से चुन-चुन कर सती नारियों के उपाख्यान पढा करता था। बडी अद्भुत कहानियाँ होती थीं यह। पति पापी-तापी जो भी क्यो न हो, केवल स्त्री के सतीत्व के बल से ही पूर्णतया वह पापमुक्त होकर कल्पकाल तक अपनी पत्नी के साथ रहता है। कल्पकाल की सही अवधि कितनी होती है, हरीश नहीं जानता। किन्तु वह अवधि कम नहीं होती, और मुनि-ऋषियो द्वारा लिखित शास्त्रो के वाक्य भी मिथ्या नही हो सकते, इन बातो के बारे मे सोच कर उसका सारा शरीर निस्पद हो जाता था। परलोक के भरोसे का परित्याग करके वह बिस्तर पर पडे-पडे बीच-बीच मे इह लोक की ही बात सोचा करता था। पर कोई रास्ता नही मिलता था उसे। साहब लोगो मे ऐसी बात हो जाती तो मामला-मुकदमा खडा करके अबतक कोई न कोई छुटकारे का रास्ता निकल आता। अगर मुसलमानो से होता हो तीन बार 'तलाक' शब्द का उच्चारण करके बहुत पहले ही मुक्ति मिल जाती। किन्तु निरीह, एकपत्नीव्रतवाला भद्र बगाली (हिन्दू) है वह—नही, कोई उपाय नही है उसके लिये। अग्रेजी शिक्षा से बहुविवाह समाप्त हो गया है,—विशेषतया निर्मला, चन्द्र-सूर्य जिसका मुँह नहीं देख पाते, बडे से बड़ा शत्रु भी जिसके सतीत्वपर अणुमात्र कलक नही लगा सकता, वस्तुत पति के सिवाय जिसका और कोई ध्यान-ज्ञान नहीं, उसी का परित्याग। बाप रे! निर्मल, निष्कलुष हिन्दू समाज मे फिर क्या वह मुँह दिखा पायगा? देश के लोग शायद तब उसे जिन्दा ही निगल जायेगे।

सोचते-सोचते उसके आँख-कान गरम हो जाते, बिस्तर छोडकर वह सिर और चेहरे पर पानी के छीटे देकर, बाकी रात कुर्सीपर बैठ कर ही बिता देता था।

इस तरह शायद महीनेभर से ऊपर का वक्त बीत चुका था, हरीश कचहरी जा रहा था, नौकरानी ने

आकर एक चिट्ठी उसके हाथ मे दी। बोली 'जवाब के लिये आदमी खडा है।'

लिफाफा फटा था, ऊपर लावण्य के हाथ की लिखावट थी। हरीश ने पूछा, 'मेरी चिट्ठी किसने खोली?'

नौकरानी ने कहा, 'मा जी ने।'

हरीश ने चिट्ठी पढ के देखा कि बहुत दु खी होके लावण्य ने लिखा है 'उसदिन अपनी ऑखो मुझे आप बीमार देख गये थे, मगर फिर आपने एक भी बार मेरी कोई खबर नही ली कि मैं जिन्दा हूँ या मर गयी। जबकि आप इसबात को अच्छी तरह जानते हैं कि इस विदेश मे सिवाय आपके मेरा अपना आदमी और कोई नही है। जो हो, इसबार मैं नही मरी, जिन्दा हूँ। लेकिन यह पत्र उस शिकायत के लिये नही है। आज मेरे लडके का जन्मदिन है, कचहरी से लौटते वक्त एकबार आकर उसे आशीर्वाद दे जायें, यही भिक्षा है। —लावण्य।'

पत्र के अत मे 'पुनश्च' द्वारा उसने यह अवगत कराया है कि रात का भोजन उसे नही करना पडेगा। थोड़ा गाने-बजाने का भी आयोजन है।

चिट्ठी पढकर शायद वह थोडा अन्यमनस्क हो गया था। एकाएक सिर उठाते ही उसने देखा कि हँसी छिपाने की गरज से नौकरानी ने अपना मुँह नीचा कर लिया। इसका मतलब यह हुआ कि, घर के नौकर-नौकरानियो के लिये भी वह हँसी का सामान बन गया है। तत्क्षण उसकी शिराओं मे खून खौलने लगा—क्या इसकी कोई इन्तिहा नही है? जितना सह रहा हूँ उतना ही अत्याचार बढता चला जा रहा है।

उसने पूछा, 'चिट्ठी कौन लाया है?'

'उनके घर की नौकरानी।'

हरीश ने कहा, 'उससे कह दो कि मैं कचहरी से लौटती बेर आऊँगा।' यह कहकर वह छाती फुलाकर मोटर मे जाकर बैठ गया।

उस रात को घर लौटने मे हरीश को वाकई बहुत रात हो गई। गाडी से उतरते ही उसने देखा कि उसके ऊपर के सोने के कमरे की खुली खिडकी मे निर्मला एक पत्थर की मूर्ति की तरह स्तब्ध बनी खडी है।

छः

चिकित्सको का दल थोडी ही देर पहले चला गया है। पारिवारिक चिकित्सक वृद्ध ज्ञान बाबू जाते समय बोले, 'लगता है सारी अफीम निकल गयी है। बहूमा के जीवन की और कोई शका नही है।'

हरीश ने थोडा सिर हिलाकर कौन सा भाव व्यक्त करना चाहा, वृद्ध ने उसे समझने की कोशिश नही की। बोले, 'जो होना था हो गया, अब कई दिन करीब रहकर सावधानी से देखभाल करने पर यह सकट दूर हो जायगा।'

'जी', कहकर हरीश स्थिर होकर बैठ गया।

उस दिन बार-लाइब्रेरी मे बडी तीखी और कठोर आलोचना आरभ हो गई। भक्त वीरेन्द्र बोला, 'मेरे गुरुदेव स्वामीजी कहते हैं, "वीरेन्द्र, आदमी का विश्वास कभी न करना।" उसदिन गोसाई बाबू, की विधवा पुत्रवधू के विषय मे जो स्कैण्डल फैला था तुम लोगो ने उसे यकीन नही किया था, कहा था कि हरीश ऐसा काम नही कर सकता। अब देख लिया न? गुरुदेव की कृपा से मैं ऐसी बहुत सी बाते जान लेता हूँ जिन्हे तुम लोग ड्रीम भी नही कर सकते।'

व्रजेन्द्र बोला, 'हरीश कितना बडा स्काउन्ड्रल है। ऐसी सतीसाध्वी स्त्री है उसकी, पर मजा यह है कि दुनिया मे बदमाशो को ही ऐसी स्त्रियाँ मिलती हैं।'

वृद्ध तारिणी चटर्जी हुक्का हाथ मे लिये ऊँघ रहे थे, बोले, 'बेशक मेरे तो बाल पक गये, लेकिन कैरेक्टर में कभी कोई स्पाट (धब्बा) नहीं लगा पाया। अथच मेरी ही हुई सात लडकियाँ, जिनकी शादी करते-करते मेरा दिवाला निकला जा रहा है।'

योगेनबाबू बोले, 'हमलोगो के बालिका विद्यालय की निरीक्षिका लावण्यप्रभा देखता हूँ एक आदर्श महिला हैं। हमें गवरमेन्ट में मूव करना चाहिये।'

भक्त वीरेन्द्र बोला, 'हाँ, यह बहुत जरूरी है।'

पूरा एक दिन भी नही बीता, पर इसी बीच ऐसी साध्वी के पति हरीश के चरित्र के विषय मे शहर का हर एक व्यक्ति जान गया। और सुहृदवर्ग की कृपा से सब बाते उसके कानो मे भी पहुँच गयी।

एक दिन उमा ने आकर आँखे पोछते हुए कहा, 'दादा, तुम फिर शादी कर डालो।'

हरीश ने कहा, 'पागल हो गई हो क्या।'

उमा ने कहा, 'पागल क्यो होऊँगी? हमारे देश मे तो पुरुषो मे बहुविवाह की प्रथा थी।'

हरीश बोला, 'तब हमलोग बर्बर थे।'

उमा जिद करके बोली, 'बर्बर किसलिये? तुम्हारी तकलीफ को और कोई न समझे, मैं तो समझती हूँ। तमाम जिन्दगी क्या तुम इसी तरह बरबाद करोगे?'

हरीश बोला, 'और क्या चारा है बहन? एक स्त्री का परित्याग करके पुन विवाह की व्यवस्था पुरुषों के लिये है जानता हूँ, पर स्त्रियो के लिये तो नही है यह व्यवस्था। तेरी भाभी के लिये भी यदि यह पथ खुला रहता तो तेरी बात मैं मान लेता उमा।'

'तुम कैसी बेसिरपैर की बाते करते हो दादा।'—यह कहकर उमा नाराज होकर चली गई। हरीश चुपचाप अकेला बैठा रहा। उसके उपायहीन अधकार चित्ततल से केवल एक ही बात बारबार उठने लगी· पथ नही है। पथ नही है। उसके इस आनदहीन जीवन मे दु ख ध्रुव बनकर रह गया।

उसके बैठने के कमरे मे तब सध्या की छाया गाढ़ी बनती जा रही थी, सहसा उसने सुना, पास के मकान के दरवाजे पर खडे हो के वैष्णव भिखारियो का दल कीर्तन के सुर मे दूती का विलाप गा रहा है। दूती मथुरा मे आकर व्रजनाथ की हृदयहीन निष्ठुरता का ब्योरा देती हुई शिकायत कर रही है। तब इस अभियोग का दूती को क्या उत्तर मिला था हरीश नही जानता है, किन्तु इस युग मे व्रजनाथ के पक्ष मे बिना पैसे का वकील खडा करके वह दलील पर दलील जुटा कर मन ही मन कहने लगा : 'अरी दूती, नारी का एकनिष्ठ प्रेम बेशक बडी अच्छी चीज है, दुनिया मे उसकी और कोई दूसरी मिसाल नही। किन्तु तुमतो कहने पर भी सब बातें नही समझोगी। पर मैं जानता हूँ व्रजनाथ किस भय से व्रज छोडकर भाग गये थे, और सौ साल के भीतर उधर नही गये। कस-वस सब झूठ है। असल बात है श्रीराधा का वह एकनिष्ठ प्रेम।' थोडा रुककर फिर उसने कहना शुरू किया .' तोभी उन दिनो अनेक सुविधाएँ थीं मथुरा मे छिप कर रहा जा सकता था। पर यह बडा कठिन युग है। न कोई भाग जाने की जगह है, न मुँह दिखाने की जगह है। अब भुक्तभोगी व्रजनाथ यदि दया करके इस अधीन को थोडा शीघ्र अपने श्रीचरणों मे स्थान दे दे तो मैं बच जाऊँ।'

बूढ़ा-सा गुमाश्ता जनेऊ लटकाये उघडे-बदन बैठा स्लेट पर ब्याज का हिसाब लगा रहा है और सामने, अगल-बगल बरामदे मे खम्भों की ओट मे, नाना उमर और नाना अवस्था के स्त्री-पुरुष म्लान मुहँ लिये बैठे हुए हैं। कोई कर्ज लेने, कोई ब्याज देने और कोई सिर्फ समय बढ़ाने की भीख माँगने आया है; मगर कर्ज चुकाने के लिए कोई बैठा हो, ऐसा तो किसी के चेहरे से नही मालूम हुआ।

अकस्मात् बहुत से अपरिचित शरीफ घरो के लडकों को देखकर एकादशीने आश्चर्यचकित होकर उनकी तरफ देखा। गुमाश्ते ने स्लेट रखते हुए कहा—"कहाँ से आ रहे हैं?"

अपूर्व ने कहा—"कालीदह से।"

"महाशय, आप लोग?"

"हम सभी ब्राह्मण हैं।"

ब्राह्मण का नाम सुनते ही एकादशीने बडी इज्जत के साथ खडे होकर गरदन झुकाकर प्रणाम किया और कहा—"बैठने की आज्ञा हो।"

सभी के बैठ जानेपर एकादशी खुद भी बैठ गया। गुमाश्ते ने प्रश्न किया—"आप लोगों को क्या चाहिए?"

अपूर्व ने लाइब्रेरी की उपयोगिता के सम्बन्ध मे थोडी-सी भूमिका बाँधकर चन्दे की बात छेडी तो देखा कि एकादशी की गरदन दूसरी तरफ मुंड गयी है। वह खभे के पीछे बैठी हुई एक स्त्री को सम्बोधित करके कह रहा है—"तुम क्या पागल हो गयी हो कारू की माँ? ब्याज तो हुआ सिर्फ सात रुपये दो आने, सो उसमे से भी दो आने छुंडवा लोगी। इससे तो गलेपर पैर दे जीभ निकालकर मुझे मार ही क्यो नही डालती?"

इसके बाद दोनो ने ऐसी खींचा-तानी शुरू कर दी, मानो, इन्ही दो आने पैसो पर उनका जीवन निर्भर हो। मगर हारूकी माँ जैसी दृढप्रतिज्ञ थी, एकादशी भी वैसा ही अटल था। देर होते देख अपूर्व उन दोना के वाग्वितण्डा के बीच मे ही बोल उठा—"हमारी लाइब्रेरी के बारे मे—"

एकादशी ने मुखातिब होकर कहा—"जी, अभी सुनता हूँ, क्यो रे नफर, तू क्या हमे सिरपर पाँव रखकर डुबो देना चाहता है? वे दो रुपये तो अभी तक चुकाये नही फिर और एक रुपया माँगने किस मुँहसे चला आया? हम पूछते हैं, ब्याज-याज भी कुछ लाया है?"

नफर के अटी मे से एक आना पैसा निकालकर देते ही एकादशी ने त्योरियाँ चढाते हुए कहा—"तीन महीने न हो गये रे? और दो पैसे कहाँ हैं?"

नफर ने हाथ जोडते हुए कहा—"और नही हैं मालिक, धाडा के लडके से न जाने कितने हाथ-पाँव जोडकर एक आना उधार लाया हूँ, बाकी दो पैसे अगली हाट के दिन दे जाऊँगा।"

एकादशी ने गरदन बढ़ाकर उसकी अटी की तरफ देखते हुए कहा—"देखूँ तेरी वह अटी।"

नफर ने अपनी बाईं अटी दिखाकर अभिमान के साथ कहा—"दो पैसे के लिए झूठ बोलूँगा मालिक? जो साला पैसे लाकर भी तुम्हे धोखा दे, उसके मुँह मे कीडे पडे, कह दे रहा हूँ।

एकादशी ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"जैसे तू चार पैसे उधार ला सका वैसे ही और दो पैसे तुझसे नही लाते बना?" नफरने गुस्से मे आकर कहा—"कसम न खा रहा हूँ मालिक। मुँह में कीडे पडे।"

अपूर्व की देह मे आग लग रही थी, उससे और नही राहा गया, वह बोल उठा—"आप तो अच्छे आदमी मालूम होते हैं।"

एकादशी ने अपूर्व की तरफ सिर्फ एक बार देख-भर लिया—कुछ कहा नही। परान बाग्दी सामने के आँगन से जा रहा था एकादशी ने हाथ के इशारे से उसे बुलाकर कहा—"परान, नफर की काँछ तो जरा खोल देख रे, पैसे दो बँधे हैं या नही?"

परान के आगे बढते ही नफरने गुस्से मे आकर अपनी काँछ की खूँट मे से दो पैसे खोलकर एकादशी के सामने फेंक दिये। एकादशी को उसकी इस बेअदबीपर जरा भी गुस्सा न आया। गम्भीरता के साथ दो पैसे बॉक्स मे डालकर उसने गुमाश्ते से कहा—"घोषालजी, नफर के नाम सूद जमा कर लीजिए। और क्यो, एक रुपया लेकर तू अब क्या करेगा रे?"

नफर ने कहा—"बिना जरूरत के थोडे ही आया हूँ महाशय?"

एकादशी ने कहा—"आठ आना ले जा न। पूरा रुपया ले जाकर तो इधर-उधर कर देगा, और क्या?"

उसके बाद बहुत घिसा-घिसी करके नफर चौधरी बारह आने कर्ज लेकर वापस गया।

देर हो रही थी। अपूर्व के साथी अनाथनाथ ने चन्दे की लिस्ट एकादशी के सामने फेंककर कहा—"जो देना है, दे दीजिए महाशय, हम अब और नहीं ठहर सकते।"

एकादशी ने लिस्ट उठाकर करीब पन्द्रह मिनट तक उसे शुरू से आखिर तक खूब अच्छी तरह गौर के साथ देखा और अन्त में एक उसाँस लेकर उसे वापस करते हुए कहा—"मैं बूढ़ा आदमी हूँ, मुझसे चन्दा क्यों?"

अपूर्व ने किसी तरह अपने गुस्से को सम्हालते हुए कहा—"बूढ़े आदमी रुपया न देंगे, तो क्या छोटे लडके देंगे? वे पावेंगे कहाँ, आप ही बताइए?"

बूढ़े ने इसका कोई उत्तर न देकर कहा—इस्कूल को तो बीस-पचीस साल हो गये, कहाँ, इतने दिनों से तो किसी ने लाइब्रेरी की बात नहीं उठाई बाबा? खैर, जाने दो, यह कोई बुरा काम नहीं, हमारे लडके-बच्चे किताबें पढें चाहे न पढें, हमारे गाँव के लडके तो पढ़ेंगे। क्या कहते हो घोषालजी?"

घोषाल ने गरदन हिलाकर क्या कहा, कुछ समझ में न आया। एकादशी ने कहा—"अच्छा चन्दा तो दे दूँगा मैं, किसी रोज आकर ले जाइएगा-चार आने पैसे। क्यों घोषालजी, इससे कम तो अच्छा नहीं मालूम होता। इतनी दूर से आकर लडकों ने घेरा है, कुछ भी हो, नाम फैला हुआ है, इसी से तो! और भी लोग हैं, उनके पास तो कोई माँगने नहीं जाता, क्यों जी, है कि नहीं?"

गुस्से के कारण अपूर्व के मुँह से बात नहीं निकली। अनाथ ने कहा—"इन्हीं चार आने पैसों के लिए हम लोग इतनी दूर से आये हैं? सो भी और किसी दिन आकर ले जाने होंगे?"

एकादशी मुँह से एक शब्द करके सिर हिला-हिलाकर कहने लगा—"देख तो ली हालत आपने, हक्के छह पैसे वसूल करने में नालायकों से कैसा ओछापन करना पडता है। सो इस पाटके बिके बिना तो देने का सुभीता—"

गुस्से से अपूर्व के ओठ काँपने लगे. बोला—"सुभीता तो सब हो जायगा जब यहाँ भी नाई-धोबी बन्द कर दिये जायेंगे। नीच पिशाच कहीं का, सारी देह में तिलक-चन्दन लगाकर जात खोकर वैष्णव भगत बन बैठा है, अच्छा!"

विपिन ने खड़े होकर एक उँगली उठाकर धमकाते हुए कहा—"बारुईपुर के राखालदास बाबू हमारे सम्बन्धी हैं, याद रहे वैरागी।"

बूढ़ा वैरागी इस अचिन्तनीय काण्ड से हतबुद्धि होकर देखता रह गया। पर लडकों के अकस्मात् इतने क्रोध का कारण उसकी समझ में ही नहीं आया। अपूर्व ने कहा—"गरीबों का खून चूस-चूस कर मोटा होना तुम्हारा निकालेंगे तब छोड़ेंगे?"

नफर अब तक बैठा हुआ था; उसकी काँछ में से दो पैसे निकलवा लेने के कारण गुस्से में वह भीतर ही भीतर उफन रहा था। उसने कहा—"जो कहा मालिक ने ठीक कहा। वैरागी नहीं, पिशाच है। देख तो लिया आँखों के सामने किस तरह मुझसे दो पैसे वसूल कर लिये।"

बूढ़े पर फटकार पड़ने से उपस्थित सभी कोई मन-ही-मन निर्मल आनन्द का उपभोग करने लगे। उनके चेहरे का भाव ताड़कर विपिन उत्साहित होकर आँख मिचकाता हुआ बोल उठा—"तुम लोग तो भीतर की बातें जानते नहीं—लेकिन हमारे तो ये गाँव के आदमी हैं, हम लोग सब जानते हैं। क्यों जी बुढऊ, हमारे गाँव में क्यों तुम्हारे नाई-धोबी बन्द किये गये थे, कह दूँ?"

बात पुरानी थी। सब कोई जानते थे, एकादशी सदगोपों के घर पैदा हुआ है—जाति का वैष्णव नहीं है। उनकी एक-मात्र सौतेली बहन प्रलोभन में पडकर कुल के बाहर निकल गयी और तब एकादशी उसे बडे दुःख से बहुत ढूढ़-खोज कर वापस लाया। परन्तु इस कुत्सित आचरण से गाँव के लोग विस्मित और अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। फिर भी एकादशी बिना माँ-बाप की इस सौतेली छोटी बहन को किसी भी तरह न छोड सका। संसार में उसके और कोई भी न था—इसी को उसने बचपन से गोद में खिला-पिलाकर इतना बडा किया था; बडे ठाठ-बाट से ब्याह दिया था, और फिर कम उमर में विधवा हो जाने पर, अपने इसी भइया के घर आकर वह आदर-यत्न के साथ रहने लगी थी। उमर और बुद्धि के दोष से उस बहन के इतने जबरदस्त पद-स्खलन से बूढ़े-बेचारे ने रोते-रोते घर भर दिया। खाना-सोना छोडकर गाँव-गाँव और शहर-शहर छानकर अन्त में जब बहन का पता लगा कर उसे घर वापस ले आया तब गाँववालों के

निष्ठुर शासन को सिर-माथे रखकर, अपनी इस लज्जिता, अत्यन्त अनुतप्त, अभागिनी बहन को फिर घर से निकालकर खुद प्रायश्चित्त करके जात मे शामिल होने के लिए वह किसी भी तरह राजी न हो सका। उसके बाद गाँव मे उसके नाई-धोबी आदि बन्द कर दिये गये। अन्त में एकादशी निरुपाय होकर भेष लेकर वैष्णव हो गया और इस बारुईपुर में भाग आया। इस बात को सभी जानते थे, फिर भी किसी दूसरे आदमी के मुँह से उस कलंक-कहानी का माधुर्य लेने के लिए लोग उद्ग्रीव हो उठे। परन्तु एकादशी लज्जासे, भय से, बिलकुल सिटपिटा-सा गया। पर वह अपने लिए नहीं, अपनी छोटी बहन के लिए। प्रथम यौवन के अपराध ने गौरी के हृदय के भीतर जो गहरा घाव कर दिया था, आज भी वह वैसे का वैसा बना हुआ है, जरा भी सूखा नहीं हैं, वृद्ध एकादशी इन बात को अच्छी तरह जानता है। कहीं वा कोई जरा-सा इशारा भी गौरी के कानो तक जाकर उसके दर्द को हिला-डुलाकर ताजा न कर दे—इस आशका से एकादशी विवर्णमुख चुपचाप टुकुर-टुकुर देखता रहा। उसकी इस सकरुण दृष्टि की नीरव विनीत प्रार्थना पर और किसी की निगाह नहीं पडी, पर, अपूर्व सहसा इस बात को ताड गया और मारे आश्चर्य के अवाक् हो गया।

विपिन कहने लगा—"हम लोग क्या भिखारी हैं, जो ऐसी कडी धूप में दो कोस रास्ता पैदल आकर चार आने पैसे भीख माँगने आये है? सो भी आज नही—न जाने कब किस आसामी का पाट बिकेगा, उसका पता लगाकर हम लोगो को और एक दिन पैदल दौडना पडेगा तब कहीं अगर बाबू साहब की मेहरबानी हो जाय। लेकिन लोगो का खून चूसकर जो सूद खाया करते हो बूढे, सोचा होगा कि जोकपर जोक नही बैठती, क्यो? अगर मैं यहा भी तुम्हारा हाल-बेहाल न कर दूँ तो मेरा नाम विपिन भट्टाचार्य नही। छोटी जातके पास पैसा हो गया है न, इसीलिए आँख-कान से दिखाई-सुनाई नही देता, क्यों? चलो जी अपूर्व, हम लोग चले—फिर जो कुछ करना होगा, किया जायगा। कहकर वह अपूर्व का हाथ पकडकर खींचने लगा।

करीब ग्यारह बज चुके थे, खासकर इतना रास्ता पैदल आने के कारण अपूर्व को बहुत जोर की प्यास लग रही थी, और कुछ देर पहले उसने नौकरानी से पानी लाने को कह भी दिया था। उसके बाद इस कलह-विवाद मे उसकी उसे याद ही नही रही। इतने मे एक हाथ में पानी का गिलास और दूसरे हाथ मे बतासो से भरी रकाबी लिए सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष की विधवा स्त्री ने जब पास के दरवाजे से प्रवेश किया, तब उसे अपने पानी मँगाने की बात याद हो आयी। गौरीको देखने से उसे कोई नीच जाति की हरगिज नही कह सकता। सफेद पट्ट-वस्त्र पहनकर, स्नान करके तुरन्त ही शायद सध्या-पूजा करने बैठी होगी, नौकर से ब्राह्मण ने जल मगाया है, सुनते ही वह सध्या-पूजा छोडकर दौडी आई है। आने के साथ ही उसने कहा—"आप लोगो मे से किसी को जल चाहिए था न?

विपिन ने कहा—"पाट की साडी पहन लेने से ही क्या तुम्हारे हाथ का पानी पी लेगे हम लोग? अपूर्व, यही हैं विद्याधरी, देख लो।"

पलक मारते ही उस विधवा के हाथ से बतासो की रकाबी झन्न-से नीचे गिर पडी, और उस असीम लज्जा के भाव को अपनी आँखो से देखकर, अपूर्व स्वय शरम के मारे गड गया। उसने क्रोध के साथ विपिन को कुहनी मारते हुए कहा—"यह सब क्या बन्दर-पन कर रहे हो? जरा भी तमीज नही है।

विपिन गाँव का आदमी ठहरा। झगड़े के समय दूसरे का मुँह के सामने अपमान करने मे नर-नारी का भेदाभेद न रखनेवाला वह निरक्षर वीर पुरुष है, इसलिए अपूर्व के बिगडने पर और भी निष्ठुर हो उठा। लाल-लाल आँखे निकालकर जोर से बोला—क्यों, कोई झूठी बात कह रहा हूँ क्या? उसकी इतनी हिम्मत हो गयी कि ब्राह्मण घराने के लडको के लिए पानी लाती है। मैं बीच बाजार मे भडा फोड सकता हूँ, जानते हो?"

अपूर्व समझ गया, अब तर्क नही चल सकता और उससे अपमान की मात्रा बढने के सिवा घट नही सकती। बोला—"मैंने ही लाने को कहा था विपिन, तुम बिना जाने यो ही झगडा मत करो। चलो, अब हम लोग चल दे।"

गौरी रकाबी उठाकर, किसी की भी तरफ बिना देखे, चुपचाप दरवाजे के पीछे जाकर खडी हो गयी और वहाँ से बोली—भइया, ये किसका चन्दा लेने आये थे, तुमने दे दिया?

एकादशी अब तक दिङ्मूढ़ की भाँति बैठा था, बहन के आह्वान से चकित होकर बोला—"नही बहन, अभी दिये देता हूँ।"

अपूर्व की तरफ देखकर उसने हाथ जोडते हुए कहा—"बाबू साहब, मैं गरीब आदमी हूँ; चार आने मेरे लिए बहुत है, दया करके ले लीजिए।"

विपिन फिर कोई एक कडा जवाब देना ही चाहता था कि अपूर्व ने इशारे से उसे मना कर दिया, परन्तु इतना काण्ड हो जाने के बाद फिर उसी चार आने के प्रस्ताव से उसे खुद भी घृणा मालूम हुई। अपने को सम्हालते हुए उसने कहा—रहने दो बैरागी, तुम्हें कुछ भी न देना होगा।"

एकादशी समझ गया—"यह गुस्से की बात है एक उसाँस लेकर बोला—"कलिकाल है! सुविधा पाने पर क्या कोई दूसरे की गरदन मरोडने से बाज आता है! दो घोषालजी, पाँच आने पैसे ही खर्च-खाते लिख दो, और क्या करोगे बताओ?" कहकर बैरागी ने फिर एक लम्बी साँस ली। उसका चेहरा देखकर अपूर्व को हँसी आ गयी। इस कुसीद-जीवी (सूद-खोर) वृद्ध के लिए चार आने पाँच आने के बीच भेद है, इसे उसने मन ही मन समझ लिया और किंचित् मुसकराकर कहा—"रहने दो बैरागी, तुम्हे नही देना होगा। हम चार-पाँच आने पैसे चन्दा मे नही लेते, अब हमलोग जाते हैं।"

मालूम नही क्यो अपूर्व को बहुत ही आशा थी कि इस पाँच-आने के विरुद्ध कम से कम दरवाजे की ओट मे से अवश्य प्रतिवाद होगा। उसके आँचल का छोर अब तक वही दीख रहा था, परन्तु उसने कोई बात नही कही। जाने से पहले अपूर्व ने सचमुच ही बडे क्षोभ के साथ मन ही मन कहा, ये लोग वास्तव मे अत्यन्त क्षुद्र हैं। दान देने के बारे मे पाँच आने से ज्यादा ये सोच ही नही सकते। पैसे ही इनके प्राण हैं, पैसा ही इनका हड्डी-माँस है, पैसे के लिए ससार मे ऐसा कोई काम नहीं जो ये न कर सकते हो।

अपूर्व के अपने दल-बलसहित उठ खडे होते ही एक दस-ग्यारह वर्ष के लडके पर अनाथ की निगाह पडी। लडके के गले मे उत्तरीय* पडा था,—शायद उसके घर पितृ-वियोग या ऐसी ही कोई दुर्घटना हुई होगी। उसकी विधवा माँ बरामदे मे खम्भे की ओट मे वैठी थी। अनाथ ने आश्चर्य के साथ पूछा—"पुटू, तू यहाँ कैसे।"

पुटू ने उँगली दिखाकर कहा—"मेरी माँ बेठी हैं। माँ ने कहा है, हमारे बहुत सारे रुपये इनके पास जमा हैं।" कहते हुए उसने एकादशी की तरफ इशारा किया।

इस बात को सुनकर सभी कोई विस्मित और कुतूहली हो उठी। अन्त तक इसका क्या होता है, देखने के लिए अपूर्व खूब जोर की प्यास होते हुए भी, विपिन का हाथ पकडकर बैठ गया।

एकादशी ने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है बेटा! कहाँ घर है?"

बच्चे ने उत्तर दिया—"मेरा नाम शशधर है. इन लोगो के गाँव मे रहते है,—कालीदह मे।"

"तुम्हारे बाप का नाम क्या है?"

लडके की तरफ से अनाथ ने जवाब दिया—"इसके बाप बहुत दिन हुए मर गये। बाबा रामलोचन चटर्जी अपने लडके की मृत्यु के बाद घर-गृहस्थी छोडकर बाहर निकल गये थे. सात वर्ष बाद महीना-भर हुआ, वे फिर घर लौट आये थे कि परसो बेचारो के घर आग लग गयी और आग बुझाने मे जलकर मर गये। और कोई है नही, बस यह एक नाती ही श्राद्ध का अधिकारी बच गया है।"

इस बात को सुनकर सभी ने दुख प्रकट किया सिर्फ एक एकादशी ही चुपचाप बैठा रहा। कुछ देर बाद उसने प्रश्न किया—"रुपयो की हाथ चिट्ठी है? जाओ, अपनी माँ से पूछ आओ।"

लडका माँ से पूछ आया और बोला—"कागज-पत्र कोई नही हैं, —सब जल गये।"

एकादशी ने पूछा—"कितने रुपये थे?"

अब की बार विधवा ने आगे बढकर माथे की धोती नीची करते हुए कहा—"ठाकुर मरने से पहले कह गये हैं कि पाँच सौ रुपया जमा रखकर वे तीर्थयात्रा करने गये थे। बाबा, हम लोग बडे गरीब हैं, सब रुपया न दो तो कम से कम कुछ भीख ही हम लोगो को दे दो।" यह कहकर विधवा भीतर ही भीतर घुमड-घुमड के रोने लगी। घोषाल साहब अब तक खाता-बही लिखना छोडकर एकाग्रचित्त से सब सुन रहे थे। अब उन्होने आगे बढ़कर प्रश्न किया।"हम पूछते है, कोई गवाही-अवाही भी है?"

* बगाल मे किसी के मर जाने पर गले मे कोरे कपडे की एक टुकडा पहनी जाती है, जो अशौच दूर होने तक रहती है।

विधवा ने गरदन हिलाकर कहा—"नही। हम लोग भी नही जानते थे। चाचाजी हम लोगो से छिपा कर रुपये जमा करके चले गये थे।"

घोपाल ने मृदु हास्य के साथ कहा—"सिर्फ रोने से ही काम नही होता जी! यह सब नकद रुपये-पैसे का मामला ठहरा! गवाह नही, हाथ-चिट्ठी नही, तो फिर कैसे क्या होगा, बताओ?"

विधवा फूट फूटकर रोने लगी। रोने का नतीजा क्या होगा, सो किसी से छिपा न था, सब समझ रहे थे। अब एकादशी ने बात की। घोपाल की तरफ देखकर कहा—"हमें ख्याल आ रहा है, किसी ने पाँच सो रुपया जमा करा के फिर लिये नही हैं। तुम जरा पुराने खातो मे ढूँढो तो सही, कुछ लिखा हुआ है या नही।"

घोपाल ने झल्लाकर कहा—"कौन इतनी अबेर मे भूत की बेगार करने जाय साहब? न गवाह हैं, न रसीद-वसीद ही कुछ—"

बात खतम होने के पहले ही दरवाजे के पीछे से जवाब आया—"रसीद नही है, तो क्या ब्राह्मण के रुपये ही डूब जायँगे? पुरानी बही देखिए, आपसे न हो तो मुझे दीजिए मैं देखे देती हूँ।"

सबने एक साथ विस्मित होकर दरवाजे की तरफ आँख उठाकर देखा। मगर, जिसने हुक्म दिया था, वह दिखाई नही दी।

घोपाल ने राजा गरम होकर कहा—"कई साल हो गये बेटी, इतने दिनो के खाते ढूँढ निकालना आसान काम नही है। खाते वहियो का कोई ठीक है, ढेर लगे हैं! हाँ, सो जमा होगे तो मिलेगे क्यो नही।" फिर विधवा की तरफ मुखातिब होकर कहा— तुम बेटी, रोओ मत। हक के रुपये होगे तो मिलेगे क्यो नही? अच्छा, कल हमारे घर आना, सब बाते पूछ-ताछकर वही-खाते देखकर निकाल दूँगा। आज इतनी अबेर हो गई है, अभी तो होना मुश्किल है।

विधवा ने उसी वक्त राजी होकर कहा— अच्छा, कल सबेरे ही आपके यहाँ आ जाऊँगी।

"आ जाना," कहकर घोपाल ने गरदन हिलाते हुए सामने के वही-खाते सब, उस दिन के लिए, बन्द कर दिये।

परन्तु, पूछताछ करने के बहाने विधवा को अपने घर पर बुलाने का अर्थ बिलकुल स्पष्ट था। किवाडो की ओट मे से गौरी ने कहा— आठ साल पहले की बात है यानी सन् १८९४ ई० का खाता जरा निकालिए तो सही, रुपये जमा हैं या नही, सब मालूम हो जायगा।

घोपाल ने कहा—"इतनी जल्दी क्या पड़ी है, बेटी?"

गौरी ने कहा—"मुझे दीजिए, मैं देखे देती हूँ। ब्राह्मण की घर की बहू दो कोस पैदल चलकर आयी है, फिर दो कोस इस धूप में पैदल जायगी। इसके बाद कल आपके पास आयेगी; इतनी झझट की जरूरत क्या है घोपाल काका?"

एकादशी ने कहा—' सच्ची ही तो कह रही है घोपालजी, ब्राह्मण की लडकी को झूठ-मूठ इधर हैरान करना क्या अच्छा है? देखो देखो, चटपट देख दो।

क्रुद्ध घोपाल महाशय तब बडबडाते हुए उठे और बगल की कोठरी मे से १९५१ साल का खाता निकाल लाये। दसेक मिनट उलट-पलटकर सहसा बहुत ही खुश होकर बोल उठे— वाह! अपनी गौरी बेटी की क्या याददाश्त है! ठीक उसी साल की वही में जमा मिल गया! यह रहा रामलोचन चटर्जी का जमा पाँच सौ—

एकादशी ने कहा—"अब जरा व्याज तो जोड डालो, घोपालजी।"

घोपाल ने आश्चर्य मे आकर कहा—"अब व्याज भी?"

एकादशी ने कहा—"क्यो, दागे नहीं? रुपया इतने दिनो तक काम मे लगा रहा, रक्खा तो नही रहा! आठ साल का सूद लगाओ,— इधर के कुछ महीनो का छोड दो।"

जोडने पर सूद और असल मिलाकर कुल सात सौ रुपये हुए। एकादशी ने बहन को लक्ष्य करके कहा—"बहन, रुपये निकाल ला सन्दूक मे से। क्यो पुटू की माँ, सब रुपये एक साथ ही ले जाओगी न?"

विधवा के अन्तर की बात अन्तर्यामी ने सुन ली, आँसू पोछते हुए उसने एकादशी से कहा—"नही तो, इतने मुझे नही चाहिए, अभी सिर्फ पचास रुपये दे दो।"

"सो ही ले जाओ वह घोषालजी वही मुझे दो जरा, सही कर दूँ, और बाकी रुपयों का तुम एक रुक्का लिख दो।

घोषाल ने कहा— 'मैं ही दस्तखत किये देता हूँ आप क्यों—"

एकादशी ने कहा— नहीं नहीं मुझे ही दो न, अपनी आँखों से देख लूँ।"

कहते हुए उसने वही हाथ में ली, और आधा मिनट उसे देख-दाखकर हँसते हुए कहा—"घोषालजी इसमें तो असली मोती की एक जोड़ी ब्राह्मण के नाम और भी जमा है। मैं तो जानता हूँ न —आपको हर वक्त एक-सा नहीं दिखाई देता।'

यह कहता हुआ एकादशी दरवाजे की तरफ देखकर जरा हँसा। इतने आदमियों के सामने मालिक की व्यंग्योक्ति से घोषाल का मुँह काला हो गया।

उस दिन का सब काम हो जाने पर अपूर्व जब अपने साथियों को लेकर तपते हुए रास्ते पर निकल आया, तो उसके मन के भीतर एक क्रान्ति-सी मची हुई थी। घोषाल साथ में था, उसने विनय के साथ आह्वान करके कहा—' आइए, इस गरीब के घर गुड़ से ही सही, कम से कम जरा पानी तो पी लीजिए।

अपूर्व मुँह से कुछ न कहकर चुपचाप पीछे पीछे चलने लगा। घोषाल की देह जली जा रही थी, उसने एकादशी को लक्ष्य करके कहा—' देखी आपने इस छोटी जात के नालायक की हिमाकत! आप जैसे ब्राह्मणों के पैरों की धूल पड़ी घर में हरामजादे की सोलह पीढ़ियों का अहोभाग्य समझो! साला पिशाच है पाँच आने पैसे देकर भिखारी टरकाना चाहता है।"

विपिन ने कहा—"दो दिन ठहर जाइए न, हरामजादे महापापी को यहाँ भी नाई-धोबी का बहिष्कार कराकर पाँच आने पैसे देने का मजा चखाये देता हूँ, राखाल बाबू हमारे रिश्तेदार हैं— हाँ, यह याद रखिएगा घोषाल साहब!"

घोषाल ने कहा—"मैं ब्राह्मण हूँ। दोनों शाम सन्ध्या-पूजा बिना किये पानी तक नहीं पीता। दो मोतियों के लिए दोपहरी में कैसा मेरा अपमान किया, आँखों से देख तो लिया आपने! नालायक का भला होगा; इसका कभी खयाल भी मत कीजिए। और वह हरामजादी, जिसे छूने से नहाना पड़ता है, क्या करती है। ब्राह्मण के पीने के लिए पानी ले आती है! रुपये की ठसक तो देखो जरा!"

अपूर्व ने अब तक एक भी बात में अपनी बात नहीं मिलायी थी, चलते-चलते सहसा वह बीच रास्ते में खड़ा हो गया। बोला—"अनाथ, मैं वापस लौट रहा हूँ भाई, —"मुझे बड़ी जोर की प्यास लगी है।"

घोषाल ने आश्चर्य के साथ कहा—"लौटकर कहाँ जायेंगे? वह रहा, सामने ही तो मेरा मकान दीख रहा है।""

अपूर्व ने सिर हिलाकर कहा—"आप इन लोगों को ले जाइए, —"मैं जाता हूँ वहीं एकादशी के घर पानी पीने।"

एकादशी के घर पानी पीने!"सबके सब एक साथ त्योरियाँ चढ़ाकर खड़े हो गये। विपिन ने उसका हाथ पकड़कर एक झटका देते हुए कहा—"चलो चलो—भरी दुपहरी में,—"ऐसी कड़ी धूप में, बीच रास्ते पर मजाक अच्छा नहीं लगता। तुम तो जरूर जाओगे,—"ऐसे ही हो न! तुम पीओगे एकादशी की बहन का छुआ पानी।"

अपूर्व ने अपना हाथ खींचकर दृढ़ता के साथ कहा—"हाँ, हाँ, सचमुच ही मैं उसका लाया हुआ पानी पीने जा रहा हूँ। तुम लोग घोषाल महाशय के यहाँ से खा-पी आओ,—"मैं उस पेड़ के नीचे बैठा मिलूँगा।"

उसके शान्त और स्थिर कंठ-स्वर से हतबुद्धि होकर घोषाल ने कहा—"इसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है, सो मालूम है?"

अनाथ ने कहा—"पागल तो नहीं हो गये?"

अपूर्व ने कहा—"सो तो नहीं मालूम। पर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा, तो वह उस समय धीरे-सुस्ते बैठकर सोचा जायगा। लेकिन अभी तो नहीं रुक सकता।"कहता हुआ वह उसी कड़ी धूप में जल्दी-जल्दी एकादशी के घर की ओर चल दिया।

शरत् के नाटक

□ रमा

पात्र-परिचय

पुरुष

वेणी घोषाल—जमीदार
रमेश घोषाल—वेणी का चचेरा भाई
मधु पाल—दुकानदार
वनमाली पाड्डे—हेडमास्टर
यतीन—यदुनाथ मुखर्जी का छोटा पुत्र, रमा का भाई

गोविन्द गांगुली धर्मदास चटर्जी भैरव आचार्य दीनानाथ भट्टाचार्य षष्ठिचरण, पराणहालदार	ग्रामीण किसान

भजुआ—रमेश का नौकर
गोपाल सरकार—रमेश का गुमाश्ता
दीनू भट्टाचार्य के लडके, हलवाई, नौकर, वनर्जी, नाई, सामान खरीदने वाले लोग, यात्री, कर्मचारी, भिखमगे, किसान, अकवर, गौहर, उसमान, वैष्णव, सनातन, जगन्नाथ आदि।

स्त्री

विश्वेश्वरी--वेणी की मां
रमा—यदु मुखर्जी की लड़की
रमा की मौसी, सुकुमारी, नन्द की मां, भिखारी, वैष्णवी, लक्ष्मी, खेंदी आदि।

रमा

पहला अंक

पहला दृश्य

[स्वर्गीय यदुनाथ मुखर्जी के मकान का पिछला भाग खिडकी का दरवाजा खुला है। चारो ओर आम और कटहल का बगीचा है। थोडी दूर पर तालाव के पक्के घाट का कुछ हिस्सा दिखाई देता है। सबेरे का ममय है। रमा और उसकी मौसी स्नान करने के लिए वाहर निकली हैं। ठीक दूसरी तरफ से वेणी घोषाल का प्रवेश। रमा की उम्र बाईस-तेईस से ज्यादा नही है। कम उम्र मे विधवा हो गई थी, इसलिए उसके हाथ मे कुछ चूडियाँ ही हैं और वह वारीक किनारी की धोती पहने हुए है। वेणी की उम्र भी पैंतीस-छत्तीस से ज्यादा नही है।]

वेणी—रमा, मैं तुम्हारे पास ही आ रहा था।

मौसी—लेकिन वेटा, इस खिडकी के रास्ते क्यो आ रहे थे?

रमा—मौसी, तुम भी खूब हो। बडे भइया घर के ही आदमी हैं। भला उनके लिए सदर दरवाजा क्या और खिडकी क्या?—क्या कुछ काम है? तो चलकर अन्दर बैठो न, मैं अभी जल्दी से गोता लगाकर आती हूँ।

वेणी—बहन, बैठने को वक्त नही है, बहुत से काम हैं। तुमने कुछ निश्चय किया कि क्या करोगी?

रमा—निश्चय किस बात का बडे भइया?

वेणी—बहन, वही हमारे छोटे चाचा के श्राद्ध का। रमेश कल आ पहुँचा है। अपने पिता का श्राद्ध वह खूब ठाठ से करेगा। तुम जाओगी या नहीं?

रमा—मैं जाऊँगी, तारिणी घोषाल के घर!

वेणी—हाँ बहन, यह तो मैं जानती हूँ कि और चाहे जो चला जाय लेकिन तुम किसी हालत मे भी उस मकान मे पैर नही रखोगी। लेकिन सुना है कि वह लौंडा खुद जाकर घर-घर कहाँ फिरेगा। पाजीपन की बातो मे तो वह अपने बाप पर ही जाता है। अगर वह सचमुच तुम्हारे यहाँ आया तो क्या कहोगी?

रमा—बडे भइया, मैं कुछ भी नही कहूँगी। बाहर दरवान ही उसे जवाब दे लेगा।

मौसी—दरवान क्यो जवाब देने लगा! क्या मैं बात करना नही जानती? पाजी को मैं ऐसी खरी-खरी सुनाऊँगी कि फिर कभी इस जन्म मे मुखर्जी के घर मुँह न दिखा सकेगा। तारिणी घोषाल का लडका आयेगा हमारे मकान मे न्योता देने? मैं कुछ भी नही भूली हूँ वेणीमाधव! तारिणी इस लडके के साथ ही हमारी रमा का व्याह करना चाहता था। तब तक यतीन्द्र का जन्म भी नही हुआ था। उसने सोचा था कि इस तरह मुखर्जी की सारी जायदाद मुट्ठी मे आ जाएगी। वेटा वेणी, समझते हो न?

वेणी—हाँ मौसी, समझता क्यो नही, सब कुछ समझता हूँ।

मौसी—हाँ हाँ वेटा, समझोगे क्यो नही। यह तो सीधी-सी बात है। और जब मनचाहा नही हुआ, तब इसी भैरव आचार्य से न जाने क्या-क्या जप-तप और जादू-मन्तर कराके वेटी के भाग मे ऐसी आग लगा दी कि छ महीने भी नही बीतने पाये कि इसके हाथो में लोहे की चूड़ियाँ नही रही और माथे का सिन्दूर पुँछ गया। नीच होकर चाहता था यदु मुखर्जी की लडकी को अपनी बहू बनाना। वैसी ही उस हरामजादे की मौत भी हुई। गया था सदर में मुकदमा लडने, पर लौटकर घर भी न आ सका। एकलौता लडका था, पर उसके हाथ की आग भी नसीब न हुई। ऐसे नीचो के मुँह मे आग!

रमा—मौसी, तुम किसी को नीच क्यो बनाती हो? तारिणी घोषाल तो बडे भइया के सगे चाचा ही थे। वाम्हन को नीच क्यो कहती हो? तुम्हारे मुँह मे/जैसे लगाम नही।

वेणी—(कुछ लज्जित होकर) नही रमा, मौसी ने ठीक ही कहा है। तुम कितने बडे कुलीन घर की लडकी हो। भला वहन, तुम्हे क्या हम लोग अपने घर ला सकते हैं? छोटे चाचा के मुँह से यह बात निकलना ही बेअदबी का काम था। रहा जन्तर-मन्तर की बात, सो वह भी सत्य है। छोटे चाचा और भैरव के लिए दुनिया मे कोई भी काम ऐसा नही जो वे न कर सकते। रमेश के आते ही यह बदमाश उससे मिल गया है और उसका मुरब्बी बन बैठा है।

मौसी—वेणी, यह तो जानी हुई बात है। लौंडा दस-बारह बरस तक तो घर ही नही आया। उसके मामा आकर उसे काशी या न जाने कहाँ ले गये और फिर उन्होने कभी इस ओर आने ही नही दिया। वह इतने दिनो तक था कहाँ? और करता क्या था?

वेणी—भला मौसी, मुझे क्या मालूम। छोटे चाचा के साथ तुम लोगो का जैसा बरताव था, वैसा ही मेरा भी था। सुनता हूँ कि इतने दिनो तक वह न जाने बम्बई या कहाँ था। कोई कहता है कि उसने डाक्टरी पास कर ली है, कोई कहता है कि वह वकील हो गया है और कोई कहता है कि यह सब गप्प है। फिर यह लौंडा भारी शराबी है। जिस समय घर आया था, उस समय उसकी दोनो आँखे अडहुल के फूल की तरह लाल थी।

मौसी—ऐसी बात है? तब तो फिर उसे घर के भी अन्दर न घुसने देना चाहिए।

वेणी—हरगिज नही। क्यो रमा, तुम्हे रमेश की याद तो है?

रमा—(कुछ लज्जित भाव से मुस्कराती हुई) बडे भइया, यह तो अभी कल की ही बात है। वे मुझसे कोई चार ही बरस बडे हैं। एक ही पाठशाला मे पढ़े हैं, एक साथ खेले हैं, उन लोगो के घर मे ही तो रहा करती थी। चाची मुझे अपनी लडकी की तरह चाहती थी।

मौसी—उस चाहने के मुँह मे आग। वह चाहता था खाली अपना मतलब हासिल करने के लिए। उन लोगो का इरादा था किसी तरह तुझे फँसा लिया जाय। रमेश की मा क्या कम चालबाज थी?

वेणी—इसमे सदेह ही क्या है। छोटी चाची भी.

रमा—देखो मौसी, तुम लोग और चाहे जो कहो, लेकिन मेरी चाची स्वर्ग में हैं, उनकी निन्दा मैं किसी के मुँह से नही सुन सकती।

मौसी—कहती क्या है री? एकदम इतना—

वेणी—हाँ, यह तो ठीक है, ठीक है। छोटी चाची भले आदमी की लडकी थी। उनकी चर्चा चलने पर अब भी माँ की आँखों मे आँसू भर आते हैं। पर अब इन बातो को जाने दो। तो अब यही बात बिलकुल पक्की रही न बहन? कुछ इधर-उधर तो नही होगा न?

रमा—(हँसकर) नही। बडे भइया, बाबू जी कहा करते थे कि आग, कर्ज और दुश्मन का कुछ भी बाकी नही रहने देना चाहिए। तारिणी घोषाल ने जीते जी हम लोगो को कम नही सताया,—बाबूजी तक को वे जेल भेजना चाहते थे। बडे भइया, मैं कुछ भी नही भूली हूँ, और जब तक जीती रहूँगी, भूलूँगी भी नही। रमेश उसी दुश्मन के लड़के हैं। हम लोग तो नही ही जायँगे, साथ ही जिन लोगो के साथ हमारा सम्पर्क है, उन लोगो को भी नही जाने देगे।

वेणी—यही तो चाहिए और यही है तुम्हारे लायक बात।

रमा—क्यों वड़े भइया, ऐसा उपाय कोई नही किया जा सकता कि कोई भी ब्राह्मण उनके घर न जाय? तब तो.

वेणी—अरे बहन, मैं वही तो कर रहा हूँ। यदि तुम मेरी सहायता करती रहो तो फिर मुझे और कोई चिन्ता नही। रमेश को अगर मैं इस कूआँपुर गाँव से न भगा दूँ तो मेरा नाम वेणी घोषाल नहीं। उसके बाद रह जाऊँगा मैं और यह साला आचार्य। छोटे चाचा तो अब हैं नही, देखूँगा कि अब इसे कौन बचाता है?

रमा—(हँसकर) शायद यही रमेश घोषाल बचावेंगे। लेकिन बडे भइया, मैं कहे देती हूँ कि हम लोगो के साथ दुश्मनी करने में वे भी कोई बात उठा नही रखेंगे।

वेणी—(इधर-उधर देखकर और स्वर कुछ अधिक धीमा करके) रमा, असल बात तो यह है कि रुपये-पैसे और जमीन-जायदाद का हाल वह अभी तक कुछ भी नही समझता। अगर बाँस को उखाड

फेंकना चाहती हो तो यही समय है। यदि पक गया तो मैं कहे देता हूँ कि फिर नही हिल सकेगा। तुम्हे दिन-रात इस बात का ध्यान रखना पडेगा कि यह और कोई नहीं, तारिणी घोषाल का ही लडका है। अगर अच्छी तरह जम गया तो फिर [रमा चौंक पडती है। तुरन्त ही दरवाजे से रमेश अन्दर आता है। उसका सिर रूखा है, पैर नंगे हैं, और दुपट्टा सिर मे चिपटा हुआ है। वेणी की ओर दृष्टि पड़ते ही—]

रमेश—अरे, बडे भइया यहाँ हैं? अच्छा तो चलिए। आपके बिना यह सब करेगा कौन? मैं तो गाँव-भर मे आपको ढूँढ़ता फिर रहा हूँ। रानी कहाँहैं? देखा कि घर मे कोई नही है। मजदूरनी ने कहा कि इसी तरफ गयी हैं.

[रमा सिर झुकाकर खडी थी। सहसा उसे देखकर---]

रमेश—अरे ये तो यही हैं। अरे तुम तो इतनी बडी हो गयी। अच्छी तरह हो न? मालूम होता है शायद मुझे पहचान नहीं रही हो। मैं तुम्हारा रमेश दादा हूँ।

रमा—(सिर उठाकर उसकी तरफ देखती तो नही, पर कोमल स्वर से पूछती है)—आप अच्छी तरह हैं?

रमेश—हाँ अच्छी तरह हूँ। लेकिन रानी, मुझे 'आप' क्यो कहती हो? (वेणी की ओर देखकर) बड़े भइया, रमा की एक बात मैं कभी न भूलूँगा। जिस समय मेरी माँ मरी, उस समय ये बहुत छोटी थीं। लेकिन उस समय भी इन्होने मेरे आँसू पोछते हुए कहा कि 'रमेश दादा तुम रोओ मत। मेरी माँ तो है ही, हम दोनो उसी को बाँट लेंगे।' शायद तुम्हे यह बात याद नहीं है। क्यो, याद नही है न? मेरी माँ तो याद है न?

[रमा कोई उत्तर नही देती। मारे लज्जा के उसका सिर और भी नीचे हो जाता है।]

रमेश—लेकिन रानी, अब तो समय ही नही है। जो कुछ करना हो, कर धर दो। जिसे बिलकुल निराश्रय कहते हैं, वही होकर मैं फिर तुम लोगो के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ हूँ। अगर तुम लोग नहीं चलोगी तो शायद कुछ भी इन्तजाम न हो सकेगा।

मौसी—(रमेश के पास पहुँचकर और उसके मुँह की ओर देखकर) क्यो बेटा, तुम तारिणी घोषाल के लडके हो न?

[रमेश चकित होकर चुपचाप देखने लगता है]

मौसी—तुमने पहले तो मुझे कभी देखा नही था, इसलिए बेटा, तुम मुझे पहचान नही सकोगे। मैं रमा की सगी मौसी हूँ। लेकिन मैंने तुम्हारे जैसा बेहया आदमी आज तक नही देखा। जैसा बाप था वैसा ही लडका भी हुआ है। कोई बात नहीं, कोई चीत नही, इस तरह एक गृहस्थ के घर मे खिड़की के रास्ते घुसकर उत्पात मचाने मे तुम्हें शरम नही आई?

रमा—मौसी, तुम यह क्या बक रही हो! नहाने जाओ न।

(वेणी का चुपचाप प्रस्थान)

मौसी—नही रमा, बकती नही हूँ। जो काम करना ही है, उसमे मुझे तुम लोगो की तरह मुँह-देखी मुरौवत नहीं है। भला वेणी को इस तरह भाग जाने की क्या जरूरत थी? इतना तो कह कर जाना था कि 'भाई, हम लोग तुम्हारे नौकर-गुमाश्ते नहीं हैं और न तुम्हारी जमीदारी की प्रजा ही हैं जो तुम्हारे घर पानी भरने और आटा सानने जायँगे। तारिणी मर गया तो लोगो का कलेजा ठडा हुआ।' यह कहने का भार हमारे जैसी दो औरतो पर न छोड़कर आप ही कह जाता तो मर्द का काम होता।

[रमेश चुपचाप पत्थर की मूरत की तरह खड़ा रहता है]

मौसी—जो हो, मैं ब्राह्मण के लडके का नौकर-चाकरों से अपमान नही कराना चाहती। जरा होश में आकर काम करो। तुम कोई छोटे बच्चे नही हो जो घर मे घुसकर लाड-प्यार की बातें करते फिरो। तुम्हारे घर मेरी रमा कभी अपने पैर धोने भी न जा सकेगी। मैं तुमसे साफ-साफ कह दे रही हूँ।

रमेश—रमा, माँ तुम्हें रानी कहा करती थी। लडकपन की उनकी वही बात मुझे याद थी। मैं नही जानता था कि तुम मेरे घर जा भी नही सकोगी। रमा, अनजान मे मुझसे जो गलती हो गई है, उसके लिए मुझे क्षमा करो।

[रमेश चला जाता है। वेणी फिर आ पहुँचता है। इस समय उसके चेहरे से प्रसन्नता प्रकट हो रही है]

वेणी—वाह मौसी, तुमने खूब सुनायी! इस तरह कहना हम लोगों के बूते की बात न थी। रमा, यह

काम क्या किसी नौकर-चाकर से हो सकता था। मैंने आड में खडे-खडे देखा कि लौंडा आषाढ़ के बादलों की तरह काला मुंह करके चला गया। यह बहुत ठीक हुआ।

मौसी—हां ठीक तो हुआ। लेकिन यह सब कहने का भार औरतों पर न छोडकर और यहां से खिसक न जाकर खुद ही कहते तो और भी अच्छा होता। और अगर नही कह सकते थे तो भैया, कम से कम सामने खडे होकर सुन ही लेते कि मैंने क्या कहा?

रमा—मौसी तुम अफसोस मत करो। ये न सुनें पर मैंने सब सुन लिया है। कोई कितना भी क्यों न कहता, लेकिन तुम्हारे सिवा और कोई अपनी जीभ से इतना जहर न उगल सकता।

मौसी—यह क्या कहा तूने?

रमा—कुछ नही। कहती हूं कि क्या आज रसोई-पानी का कुछ बन्दोबस्त नही होगा? जाओ न, इतनी लगा आओ।

(रमा जल्दी से तालाब की तरफ चल देती है।)

वेणी—क्यो मौसी, आखिर बात क्या है?

मौसी—भला बेटा, मैं क्या जानूं। इस राज-रानी का मिजाज समझना मेरी जैसी मजदूरनियो और लौंडियों का काम है?

(प्रस्थान)

[गोविन्द गागुली का प्रवेश]

गोविन्द—खैर, मिल तो गये। मैं सबेरे से सारे गॉव मे ढूंढ़ता फिरा कि आखिर वेणी बाबू गये कहॉ! आपने कुछ हाल-चाल सुना? बेटा जी कल घर आते ही दौडे गये थे नन्दी के यहॉ। अगर दो-चार दिन मे ही वह बरबाद न हो जाये तो तुम लोग मेरा नाम बदल देना। अगर उसके शाही श्राद्ध की फेहरिस्त देखो तो अवाक् रह जाओगे। मैं जानता हूं कि तारिणी घोषाल एक पाई भी मरते समय नही छोड गया था। फिर इतना ठाठ किस बिरते पर? अगर हाथ में हो तो करो। न हो तो मत करो। अपनी जायदाद रेहन रखकर किसी ने कभी ऐसे ठाठ से बाप का श्राद्ध किया हो, ऐसा तो भइया, मैंने कभी नही सुना। वेणीमाधव बाबू, मैं तुमसे बिलकुल ठीक कहता हूं कि इस लडके ने नन्दी की कोठी से कम से कम पॉच हजार रुपये उधार लिये है।

वेणी-अरे यह क्या कह रहे हो! तब तो गोविन्द चाचा, तुमने खूब पता लगाया है!

गोविन्द—(कुछ हँसकर) भइया जरा धीरज धरो, मुझे एक बार अच्छी तरह तो घुस जाने दो। फिर देखना कि मैं नाडी के अन्दर तक की खबर ले आता हूं कि नही। तब तुम गोविन्द गागुली को पहचानोगे। इस बीच तुम्हें बहुत-सी बाते सुननी पडेगी—लोग न जाने क्या-क्या लगाबुझा जायँगे। लेकिन तुम चाचा को तो पहचानते हो न? मन ही मन समझ लो। अभी मैं और कुछ प्रकट नही करूँगा।

वेणी—मैं रमा के पास गया था।

गोविन्द—हॉ, मुझे मालूम है। उसने क्या कहा?

वेणी—वे लोग तो नही ही जायँगी लेकिन उनके सम्बन्ध के और जो लोग हैं, उनमे से भी कोई न जायगा।

गोविन्द—बस-बस। अब और कुछ नही देखना है।

वेणी—लेकिन तुम लोग तो

गोविन्द—अरे बेटा, तुम घबराते क्यो हो! पहले मुझे घुसने तो दो। पहले सब तैयारियॉं तो खूब अच्छी तरह करा लूँ, तभी तो—फिर श्राद्ध मे क्या-क्या होता है, सो तुम बाहर खडे-खडे देखना।

वेणी—लेकिन मैं सुनता हूं कि

गोविन्द—अरे बेटा, ऐसी तो बहुत-सी बाते सुनोगे। बहुत से साले आकर बहुत तरह की बातें लगावेंगे। लेकिन गोविन्द चाचा को तो पहचानते हो न? बस!

(दोनो का प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[रमेश के मकान का बाहरी भाग। चंडी-मडपवाले बरामदे में एक ओर भैरव आचार्य बैठे हुए थान फाड-फाड कर और उनकी तहें लगाकर एक पर एक रख रहे हैं। चडी मडप के अन्दर बैठे हुए गोविन्द गागुली

तम्बाकू पी रहे हैं और तिरछी नजर से कपडो की सख्या गिनते जाते हैं। चारो ओर श्राद्ध का आयोजन हो रहा है और जगह-जगह उसकी सामग्री बिखरी पडी है। बहुत से लोग तरह-तरह के कामो में लगे हुए हैं। समय तीसरा प्रहर]

[रमेश का प्रवेश]

रमेश—(गोविन्द गागुली से विनयपूर्वक) अच्छा आप आ गये!

गोविन्द—बेटा, आवेगे क्यो नही! यह तो अपना ही काम ठहरा रमेश!

[नेपथ्य मे किसी के खाँसने का शब्द। चार-पाँच लडकों और लड़कियो को लिए हुए खाँसते-खाँसते धर्मदास चटर्जी का प्रवेश। उनके कधे पर मैला दुपट्टा पड़ा है। नाक के ऊपर एक जोडी बैंगन की तरह बडा सा चश्मा लगा है जो पीछे की तरफ डोरी से बँधा है। सिर के बाल बिलकुल सफेद हैं। मोछो के सफेद बाल तम्बाकू के धुएँ से ताँबे के रंग के हो गए हैं। आगे बढ़कर थोडी देर तक रमेश के मुँह की ओर देखते हैं और तब बिना कुछ कहे-सुने रोने लगते हैं। रमेश पहचानता ही नही है कि ये कौन हैं। लेकिन जो हो, वह घबराकर उसका हाथ पकड़ लेता है। उनके हाथ पकडते ही—]

धर्मदास—(रोकर) नही बेटा रमेश, मुझ स्वप्न मे भी इस बात का ध्यान नही था कि तारिणी इस तरह हम लोगो को धोखा देकर निकल जायगा। लेकिन मेरा भी ऐसे चटर्जी वंश मे जन्म नही हुआ है जो किसी के डर मे अपने मुँह से कोई झूठी बात निकालूँ। तुम जानते हो कि जब मैं यहाँ आ रहा था तब रास्ते मे तुम्हारे सगे ताऊ के लडके और तुम्हारे भाई वेणी घोषाल के मुँह पर मैं क्या कह आया? मैंने कहा कि रमेश जैसे श्राद्ध का इन्तजाम कर रहा है वैसा श्राद्ध करना तो बडी बात है, इस तरफ उस तरह का श्राद्ध आज तक किसी ने आँख से भी न देखा होगा। बेटा, मेरे बारे मे बहुत-से साले आकर तुमसे न जाने कितने तरह की बाते कहेगे। लेकिन तुम यह बात निश्चय समझ रखना कि यह धर्मदास केवल धर्म का ही दास है और किसी का नही।

[इतना कहकर वे गोविन्द के हाथ से हुक्का लेकर एक कश खींचते ही जोर से खाँसने लगते हैं।]

[उत्तर मे धर्मदास बडबडाते हुए न जाने क्या क्या कह जाते हैं, लेकिन खाँसी के मारे उसका एक अक्षर भी किसी की समझ मे नही आता। सबसे पहले गोविन्द गागुली ही इस घर मे आये थे, इसलिए नये जमीदार को अच्छी अच्छी बाते समझाने-बुझाने का सुयोग सबसे पहले उन्हीको प्राप्त होना चाहिए था। लेकिन जब उन्होने देखा कि मेरा यह सुयोग नष्ट होना चाहता है, तब वे जल्दी से उठकर खडे हो जाता है।]

गोविन्द—कल सबेरे, समझे धर्मदास भइया, जब मैं यहाँ आने के लिए घर से चला, तब घर से निकल चुकने पर भी यहाँ आ न सका। वेणी लगा आवाज देने गोविन्द चाचा, तम्बाकू तो पी जाओ। पहले तो मैंने सोचा कि तम्बाकू पीकर क्या होगा! लेकिन फिर ख्याल आया कि जरा यह भी तो समझ लूँ कि वेणी के मन मे क्या है।—बेटा रमेश, तुम जानते हो कि उसने क्या कहा? उसने कहा कि चाचा, मैं देखता हूँ कि तुम लोग रमेश के बहुत बडे शुभचिन्तक बन गये हो। लेकिन यह तो बतलाओ कि उनके यहाँ लोग जायँ-वायँगे भी या यो ही? मैं भी भला उसे क्यो छोडने लगा! अरे तुम बडे आदमी हो तो हुआ करो। हमारा रमेश भी तो किसी से कम नही है। तुम्हारे घर से तो किसी को मुट्ठी भर चिउडा भी मिलने की आशा नही है। मैंने कहा—वेणी बाबू, आखिर यही तो रास्ता है, जरा खडे खडे चलकर देख लो न कि कगालो को किस तरह भोजन बाँटा जा रहा है। रमेश अभी कलका लडका है तो क्या हुआ, लेकिन कलेजा इसको कहते हैं। लेकिन भइया धर्मदास, मैं यह फिर भी कहता हूँ कि आखिर हम लोग कर ही क्या सकते हैं! जिनका काम है, वही ऊपर से यह सब करा रहे हैं। तारिणी भइया एक शापभ्रष्ट दिग्पाल थे।

[धर्मदास की खाँसी किसी तरह रुकती ही न थी। और उनके सामने ही यह गोविन्द ऐसी अच्छी-अच्छी बाते इस नवीन नवयुवक जमीदार से कह रहा है; इसलिए और भी अच्छी तरह कहने के प्रयत्न मे वे और भी तडफडाने लगे।]

गोविन्द—लेकिन बेटा, तुम तो मेरे लिए कोई पराए नही हो, बिलकुल अपने ही हो। तुम्हारी माँ थी मेरी खास फुफेरी बहन की सगी भानजी। राधानगर के बनर्जी के परिवार की। यह सब तारिणी भइया ही जानते थे। इसलिए जब कोई काम-धन्धा होता, कोई मामला-मुकदमा करना होता, कोई गवाही देनी होती तो बस बुलाओ गोविन्द को।

धर्मदास—अरे गोविन्द, क्यो व्यर्थ बकवाद कर रहे हो! ख—ख—ख—ख—मैं कोई आज का नहीं हूँ

मैं क्या नही जानता? उस साल उन्होंने गवाही देने के लिए बुलाया तो कहा, मेरे पास जूते नही हैं नगे पैर कैसे जाऊँ?—खक्-खक्-खक्। तारिणी ने उसी समय ढाई रुपये खर्च करके नया जूता दिलवा दिया और तुम वही जूता पहनकर वेणी की तरफ से गवाही दे आये! खक्- खक्-खक्-खक्।

गोविन्द—(लाल लाल आँखें करके) मैं गवाही दे आया था?

धर्मदास—नही दे आये थे?

गोविन्द—चल झूठा कही का!

धर्मदास—झूठा होगा तेरा बाप!

गोविन्द—(टूटा हुआ छाता लेकर उछल पडता है) अबे साले।

धर्मदास—(बाँस की लाठी तानकर) इस साले का मैं—खक्-खक्-खक्-खक्—रिश्ते में बडा भाई होता हूँ कि नही, इसीलिए। इस साले की जरा अक्किल तो देखो! (फिर खाँसता है)

गोविन्द— हुँ: यह साला मेरा बडा भाई है!

(चारो ओर से लोग दौडे आये। छोटे-छोटे लड़के और लडकियाँ चकित होकर देखने लगी। रमेश जल्दी से आकर उन दोनों के बीच मे खडा हो जाता है।)

रमेश—हैं हैं, यह क्या! आप दोनो ही बड़े हैं, बाह्मण हैं, भला यह कैसा झगडा है?

भैरव—(पास आकर रमेश से) कोई चार सौ धोतियाँ तो हो गयी। क्या कुछ और चाहिए?

[रमेश कोई उत्तर नही देता।]

भैरव—छी: गागुलीजी, बाबूजी तो तुम लोगों की बातें सुनकर बिलकुल अवाक् हो गये हैं। बाबूजी, आप कुछ ख्याल मत कीजिएगा। ऐसा तो हुआ ही करता है। जिस घर मे कोई बडा काम-काज होता है, उसमें मार-पीट, खून-खच्चर तक की नौबत आ जाती है और फिर सब ठीक हो जाता है। लीजिए चटर्जी, पहले जरा यह तो बतलाइए कि क्या अभी और भी धोतियाँ फाड़नी होगी?

गोविन्द—अरे हाँ, यह तो होता ही रहता है, बहुत होता है। नही तो इसे वृहत कर्म क्यों कहा गया है! उस साल तुम्हें याद है भैरव, यदु मुकर्जी की लडकी रमा के तिलक के दिन सिर्फ एक सीधे के बारे में राघव भट्टाचार्य और हारान चटर्जी मे सिर- फुडौअल तक हो गयी थी। लेकिन भैरव भइया, मैं कहता हूँ कि बबुआ रमेश का यह काम ठीक नही हो रहा है। छोटी जात के लोगों को इस तरह धोतियाँ और कपडे देना और राख मे घी डालना दोनो बराबर हैं। इसके बजाय अगर ब्राह्मणों को एक-एक जोडा और लड़कों को एक-एक धोती दे दी जाती तो नाम हो जाता। मैं तो कहता हूँ बेटा, बस तुम यही तरकीब करो। क्यो धर्मदास भइया, तुम्हारी क्या राय है?

धर्मदास—(रमेश से) बेटा, गोविन्द ने कोई बुरी तरकीब नहीं बतलायी। इन लोगों को देना व्यर्थ है। नहीं तो शास्त्रो में इन लोगो को नीच क्यों कहा गया है? क्यों बेटा रमेश, समझ गये न?

रमेश—हाँ हाँ, समझता क्यो नही हूँ।

भैरव—तो फिर क्या इतने ही कपड़ों से काम हो जायगा?

रमेश—मैं तो समझता हूँ कि नही होगा। अभी यह नही कहा जा सकता कि कितने कंगाल आवेगे। इसलिए अच्छा तो यही है कि आप और भी दो सौ धोतियों का इंतजाम कर रक्खें।

गोविन्द—और नही तो कैसे काम चलेगा। —भइया, तुम अकेले कहाँ तक थान फाडोगे, चलो, मैं भी चलता हूँ।

[इतना कहकर गोविन्द धोतियो के ढेर के पास पहुँच जाते हैं और बैठकर धोतियाँ तरतीब से रखने लगते हैं। इसी बीच मे धर्मदास अवसर देखकर रमेश को एक ओर खीच ले जाते हैं और धीरे धीरे उसके कान में कुछ कहते हैं। उधर से गोविन्द भी सिर उठाकर कनखियों से इन लोगो की तरफ देखते हैं।

धर्मदास—बेटा, यह देश बडा खराब है। भंडार-वंडार किसी को सौंपकर उसका विश्वास न कर बैठना। तेल, नमक, घी, आटा, सब आधा-तिहाई खिसका देंगे! अभी जाकर तुम्हारी बुआ को भेज देता हूँ। तुम्हारा एक कण भी नष्ट न होने पावेगा।

रमेश—जो आज्ञा।

[दाढ़ी-मूँछ मुड़ाये दुबले-पतले वृद्ध दीनानाथ भट्टाचार्य का प्रवेश। उनके साथ दो-तीन लडके-लडकियाँ हैं। लड़की सबसे बडी है। वह डोरिये की ऐसी धोती पहने है जो जगह जगह से फटी है।]

दीनानाथ—अरे बबुआजी कहाँ हैं?

गोविन्द—(खडे होकर) आओ दीनू भइया, बैठो। हम लोगो के बडे भाग्य हैं जो आज यहाँ आपके चरणो की धूल पडी है। बेचारा लडका अकेला मरा जा रहा है, सो तुम लोग तो. ..

[धर्मदास आँखें तरेरकर उसकी तरफ देखते हैं।]

गोविन्द—सो तुम लोग तो कोई इधर आओगे नही भइया!

दीनानाथ—भइया, मैं तो यहाँ था ही नही। तुम्हारी बहू को लाने के लिए उसके बाप के घर गया था। बबुआजी कहाँ हैं? सुना है, बहुत बड़ी तैयारी हो रही है। रास्ते मे उस गाँव की हाट में सुनता आ रहा हूँ कि खिलाने-पिलाने के बाद बच्चे-बूढे सबके हाथ मे सोलह-सोलह पूरियाँ और आठ आठ सन्देश दिये जायँगे।

गोविन्द—(गला धीमा करके) इसके सिवा शायद सबको एक एक धोती भी दी जायगी। दीनू भइया, यही हमारे रमेश हैं। तुम चार आदमियो के और बाप-माँ के आशीर्वाद से जैसे-तैसे मैं सब इन्तजाम कर ही रहा हूँ, लेकिन यह वेणी तो एकदम से हाथ धोकर पीछे पड गया है। अरे मेरे ही पास उसने दो बार आदमी भेजा। खैर, मेरी बात तो छोड दो, क्योंकि रमेश के साथ मेरा रक्त का सम्बन्ध है, लेकिन ये दीनू भइया तो रास्ते से ही खबर सुनकर दौडे हुए आ पहुँचे हैं। अबे ओ षष्ठीचरण, तम्बाकू ले आ न। बेटा रमेश, जरा इधर आओ। जरा तुमसे एक बात कह लूँ।

[नौकर आकर दीनू के हाथ मे हुक्का दे जाता है। गोविन्द रमेश को खीचकर दूसरी तरफ ले जाते हैं और धीरे से कहते हैं।]

गोविन्द—शायद अदर धर्मदास की स्त्री आ रही है। खबरदार बेटा, खूब होशियार रहना। वह धूर्त्त ब्राह्मण चाहे कितना ही क्यो न फुसलावे, लेकिन भडार-वडार कभी उसकी औरत के हाथ मे न देना। वह हरामजादी आधा-तिहाई माल खिसका देगी। मैं तो कहता हूँ कि बेटा, आखिर तुम्हे चिन्ता किस बात की है? खुद तुम्हारी मामी मौजूद है। मैं अभी जाते ही उसको भेज देता हूँ। वह जिस तरह अपना घर समझकर चीजो की देखभाल करेगी, उस तरह क्या और कोई कर सकेगा या कभी कर सकता है?

[दो बच्चे आकर दीनू के कन्धे पर झूल जाते हैं।]

बच्चे—बाबा, सन्देश खायँगे।

दीनू—(एक बार रमेश की ओर और एक बार गोविन्द की ओर देखकर) सदेश कहाँ से लाऊँ रे, सदेश कहाँ हैं?

[दीनू की लडकी उँगली से भीतर की ओर इशारा करती है।]

दीनू की लडकी—बाबा वह देखो, वह जो हैं .

[और सब बच्चे भी धर्मदास को घेर लेते हैं और रोने का नाटक करने लगते हैं।]

सब बच्चे—हमे भी—

रमेश—(आगे बढ़कर) अच्छा-अच्छा। आचार्यजी, सब लडके तीसरे पहर के घर से निकले हुए हैं। कोई घर से खाकर तो आया ही नही है। (अन्दर खडे हुए हलवाई से) अरे क्या नाम है तुम्हारा? जाओ, सदेश का एक थाल इधर ले आओ। आचार्यजी, देखिए देर न होने पावे।

[भैरव आचार्य अदर चले जाते हैं और थोडी ही देर बाद हलवाई सन्देश का थाल ले आता है। उसके आते ही सब लडके उस थाल पर टूट पडते हैं और इतना व्यस्त कर डालते हैं कि किसी को संदेश बाँटने का अवसर ही नही देते। लडको को खाते देखकर दीनानाथ की शुष्कदृष्टि भी सजल और तीव्र हो जाती है।]

दीनू—अरे ओ खेंदी, सदेश खा तो खूब रही है। लेकिन जरा बतला तो सही कि कैसे बने हैं?

खेंदी—बहुत बढ़िया बने हैं बाबा। (खाने लगती है।)

दीनू—(कुछ हँसकर और सिर हिलाकर) अरे तुम लोगो की पसंद का क्या कहना है! बस मीठी हुई कि चीज बढ़िया हो जाती है। हाँ जी, हलवाई, तुमने यह कडाही क्यो उतार दी? क्यों गोविन्द भइया, अभी तो कुछ धूप है, तुम्हे नही मालूम होती?

हलवाई—जी हाँ, है क्यो नही। अभी बहुत दिन बाकी है। अभी सन्ध्या पजा का—

दीनू—अच्छा एक संदेश जरा गोविन्द भइया को तो दो, जरा चखकर देखें कि तुम लोग कलकत्ते के

कैसे कारीगर हो—

[हलवाई गोविन्द और दीनू दोनो को सन्देश देने लगता है।]

दीनू—अरे नही नही, मुझे क्यो दे रहे हो? अच्छा, आधा ही देना, आधे से ज्यादा नही! (हुक्का रखकर) अरे ओ षष्ठीचरण, जरा जल तो ला बेटा, हाथ धो लूँ।

रमेश—(अदर की ओर देखकर) षष्ठी, जरा अदर से चार-पाँच तश्तरियाँ तो ले आ।

गोविन्द—सन्देश देखने से ही मालूम होते हैं कि अच्छे बने हैं। क्यो जी हलवाई, मालूम होता है कि पाक कुछ नरम ही रखा है?

हलवाई—जी हाँ, इस घान का पाक कुछ नरम ही रखा है।

गोविन्द—(हँसकर) अरे हम लोग जानते है न। आँख से देखते ही बतला सकते हैं कि कौन-सी चीज कैसी बनी है।

हलवाई—जी, आप लोग नही समझेंगे तो और कौन समझेगा!

[षष्ठीचरण और उसके साथ एक दूसरा नौकर तश्तरियाँ और पानी के गिलास आदि लाकर रखता है। हलवाई सन्देश का थाल ले आता है और ब्राह्मणो की तश्तरियों मे परोसने लगता है। सब चुप हैं, किसी के मुँह से कोई बात नही निकलती। लडके-लडकियाँ, धर्मदास, दीनू, गोविन्द सब निगलने लगते हैं। देखते देखते सारा थाल साफ हो जाता है।]

दीनू—हाँ, कलकत्ते का कारीगर है। क्यो धर्मदास भइया, क्या कहते हो?

[धर्मदास का कठ-स्वर सन्देश के ताल को भेदकर ठीक तरह से बाहर नही निकला, लेकिन फिर भी पता चल गया कि दीनू से उनका मत-भेद नही है।]

गोविन्द—(साँस लेकर) हा, यह जरूर उस्तादो का हाथ है!

हलवाई—महाराज, आप लोगो ने जब कष्ट ही किया है तब जरा मोती चूर के लड्डुओ की भी इसी तरह परख कर दीजिए।

दीनू—मोतीचूर! कहाँ हैं, ले आओ भला।

हलवाई—लीजिए, अभी लाता हूँ।

[पलक मारते ही हलवाई मोतीचूर के लड्डुओ का एक थाल ले आता है और ब्राह्मणो की तश्तरियों मे परोस देता है। मोतीचूर, के लड्डुओ के खतम होने मे भी देर नही लगती।]

दीनू—(अपनी लडकी की ओर हाथ बढाकर) अरे ओ खेदी, ले बेटी, ये दो लड्डू तो ले ले।

खेदी—नही बाबूजी, अब मुझसे नही खाये जायेंगे।

दीनू—अरे खा जायगी। जरा एक घूँट पानी पीकर गला तर कर ले, मुँह बँध गया होगा मिठाई के मारे। न खाया जाय तो आँचल मे बाँध ले। कल सवेरे उठकर खा लेना।

[जबरदस्ती लडकी के हाथ मे लड्डू दे देता है।]

दीनू—(हलवाई से) हाँ भइया, इसको कहते हैं खिलाना। बिलकुल अमृत हैं। खूब बढिया बने हैं। (रमेश से) क्यो बेटा, दो तरह की मिठाइयाँ बनवाई हैं न?

हलवाई—जी नही, रस-गुल्ला, खीरमोहन

दीनू—हैं! खीरमोहन भी? अरे कहाँ, वह तो तुमने निकाला ही नही (विस्मित होकर और रमेश की तरफ देखकर) हाँ, एक बार खाया था राधानगर के बोस के यहाँ। आज भी मानो जबान पर लगा हुआ है। बेटा, मैं कहूँगा तो तुम विश्वास नही करोगे, लेकिन खीरमोहन मुझे बहुत अच्छा लगता है।

रमेश—(हँसकर) जी नहीं, भला इसमे अविश्वास करने की कौन सी बात है। अरे ओ षष्ठी, देख तो अदर शायद आचार्य महाराज है, जाकर उनसे कह दे कि थोडा खीरमोहन लेते आवे।

[षष्ठीचरण का प्रस्थान]

गोविन्द—(कुछ उद्विग्न स्वर से) हैं? क्या मिठाइयाँ सब यो ही बाहर पडी हैं? नही, नही, यह बात तो ठीक नही है।

धर्मदास—चाबी, चाबी! भडार की चाबी किसके पास है?

गोविन्द—अरे कही उस भैरव आचार्य के हाथ में तो नही है?

[षष्ठीचरण का प्रवेश]

षष्ठी—बाबूजी, अब इस वक्त भडार नही खुलेगा। खीरमोहन नही मिल सकेगा।

रमेश—अरे जाकर कह दे कि हमने माँगा है।

गोविन्द—देखी धर्मदास, इस आचार्य की अक्किल। माँ से ज्यादा दरद मौसी को हो रहा है! इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि

षष्ठी—इसमेआचार्य का क्या दोष है! उस घर मे माँ जी ने आकर भंडार बद कर दिया है। यह उन्ही का हुक्म है।

धर्मदास और गोविन्द—कौन आई हैं, वेणी बाबू की माँ? उस घर की मालकिन?

रमेश—क्या ताईजी आयी है?

षष्ठी—जी हाँ, उन्होने आते ही छोटे-बडे दोनो भडारो का ताला बद कर दिया है। चाबी उन्ही के आँचल मे है।

गोविन्द—देखा धर्मदास भइया, क्या हो रहा है? मैं पूछता हूँ मतलब समझ रहे हो न?

दीनू—अरे भाई, इसका मतलब समझना कौन बहुत मुश्किल है। ताला बद करके चाबी ले गयी हैं, इसका मतलब यही है कि भण्डार और किसी के हाथ में न पडने पावे। वे सभी कुछ तो जानती हैं।

गोविन्द—तुम जब कुछ समझते बूझते नही, तब बोला क्यो करते हो? तुम इन सब बातो को क्या जानो, जो जल्दी से माने-मतलब निकालने बैठ जाते हो?

दीनू—अरे अरे, आखिर इसमे समझने बूझने की है ही कौन-सी बात? सुन तो रहे हो कि मालकिन ने खुद आकर ताला बन्द कर दिया है। इसमे और कौन क्या कह सकता है?

गोविन्द—भट्टाचार्य, अब घर जाओ न जिस काम के लिए घर-भर मिलकर दौडे आये थे, वह तो हो गया। सब लोगो ने मिलकर खाया भी और बाँधा भी। हम लोगो को बहुत से काम हैं।

रमेश—गागुली जी, आपको हो क्या गया है? आप खामख्वाह चाहे जिसका अपमान क्यो करते है?

[डाँट खाकर गोविन्द कुछ लज्जित हो जाते हैं। फिर सूखी हँसी हँसकर]

गोविन्द—अरे बबुआ, अपमान मैंने किसका किया? अच्छा, जरा उन्ही से पूछ लो कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह ठीक है या नही। अगर वह डाल डाल घूमे तो मैं पात-पात चलने वाला हूँ। देखा धर्मदास, इस दीनू ब्राह्मण का हौसला? अच्छा

रमेश—'अच्छा' क्या?

दीनू—(रमेश से) नही बेटा, गोविन्द ठीक ही कह रहे हैं। यह तो सभी जानते हैं कि मैं बहुत गरीब हूँ। मेरे पास इन लोगों की तरह जमीन-जायदाद और खेती-बारी तो कुछ है नही। इधर उधर से माँग जाँचकर किसी तरह दिन बिताता हूँ। भगवान ने इतनी शक्ति तो मुझे दी ही नही कि मैं लडके-बालो को अच्छी अच्छी चीजे खिला सकूँ। इसीलिए जब बडे आदमियो के घर कोई काम-काज होता है, तब वही खा-पीकर ये सन्तुष्ट हो लेते हैं। बेटा, तुम अपने मन में कुछ ख्याल मत करना। जब तारिणी भइया जीते थे, तब हम लोगों को बडे चाव से खिलाते-पिलाते थे।

[सब लोगो के देखते देखते दीनू की आँखों से दो बूँद आँसू निकलकर जमीन पर गिर पडते हैं। दीनू उन्हे अपने मैले और फटे दुपट्टे से पोंछ लेता है।]

गोविन्द—वाह क्या कहना है! तारिणी भइया खाली तुम्ही को बडे चाव से खिलाते-पिलाते थे। धर्मदास भइया, सुनते हो इनकी बातें?

दीनू—अरे गोविन्द, मैं क्या कह रहा हूँ? मेरे कहने का मतलब तो यह है कि मेरे जैसे गरीब और दु खी लोग कभी तारिणी भइया के यहाँ से खाली हाथ नही लौटते थे।

रमेश—भट्टाचार्यजी, दो दिन आप मुझ पर कृपा रखिएगा। और अगर खेदी की माँ के पैरो की धूल इस मकान को प्राप्त हो तो मैं अपना बडा भाग्य समझूँगा।

दीनू—बेटा रमेश, मैं बहुत ही गरीब हूँ, बहुत ही दु खी हूँ। तुम तो इस तरह से कहते हो कि मैं मारे लज्जा के मरा जाता हूँ।

[नौकर आता है]

रमेश—जिस लडके को किसी समय तुमने पाल-पोसकर बडा किया था ताईजी, क्या उसी के सम्बन्ध मे यह समझती हो कि वह जब बडा होकर घर लौटेगा तब तुम्हें पहचान भी न सकेगा?

ताई—बेटा, मैंने यह आशका नही की थी रमेश, फिर भी बिना तुम्हारे मुँह से यह सुने नही रहा गया कि तुम अपनी ताई को भूले नही हो।

रमेश—नही ताईजी, खूब अच्छी तरह याद है लेकिन मैं जो कुछ कर सकता, स्वय ही कर लेता। तुमने क्यो इस घर मे आने का कष्ट किया?

ताई—बेटा, तुम तो मुझे बुलाकर लाये नही, जो मैं तुम्हें इसकी कैफियत दू?

रमेश—बुला कैसे लाता ताई? सबसे पहले तो मैं माँ समझकर तुम्हारी ही गोद मे दौडा गया था। लेकिन ताई, तुमने तो कहला दिया कि घर पर नही हैं और मुझसे भेंट तक नही की।

ताई—मालूम होता है रमेश, इसीलिए तुम रूठ गये हो और इसीलिए मुझे अपने घर से विदा कर देना चाहते हो।

रमेश—मेरे रूठने की बात कहती हो? जिसके माँ नही, बाप नही, जो स्वयं जन्म-भूमि में निराश्रय और विदेशी है और बिना किसी कसूर के ही जिसे पास-पडोस के और परिवार के लोग घर से दूर कर रहे हैं, भला तुम्ही बतलाओ ताईजी, उसके रूठने का क्या मूल्य हो सकता है?

नौकर—बाबूजी, माँजी आपको अन्दर बुला रही हैं।

रमेश—अच्छा आता हूँ।

दीनू—अच्छा बेटा, अब इस समय हम लोग जाते हैं।

रमेश—अच्छी बात है। लेकिन मेरी प्रार्थना भूल मत जाइयेगा।

दीनू—नही बेटा, प्रार्थना क्यों कहते हो, यह तो तुम्हारी दया है।

(लडके-लडकियों को साथ लेकर दीनू का प्रस्थान।)

गोविन्द—बेटा रमेश, तो फिर अब मैं भी चलता हूँ। सन्ध्या-पूजा, ठाकुरजी की आरती .

रमेश—लेकिन गागुलीजी..

गोविन्द—अरे बेटा, तुम्हे कुछ कहने की जरूरत नहीं। यह तो हमारा अपना काम है। तुम न भी बुलाते, तो भी हमे आप ही आकर सब कुछ करना पडता। कल सबेरे जब मैं तुम्हारी मामीको यहाँ भेज दूँगा, तब निश्चिन्त होऊँगा।

धर्मदास—गोविन्द, तुम व्यर्थ की बातें बहुत करते हो।

गोविन्द—कोई चिन्ता नही रमेश। भंडार वडार जो कुछ है ..

धर्मदास—भला भंडार के लिए तुम्हे इतनी चिन्ता क्यों हो रही है?

गोविन्द—अरे भइया, यह तो हम लोगों का अपना काम ठहरा। मैंने और भइया धर्मदास ने, हम दोनों ने तुम्हारे बुलाने की राह नही देखी—आप ही बिना बुलाए आ पहुँचे हैं। आ पहुँचे हैं कि नही?

धर्मदास—सुनो रमेश, हम लोग कोई वेणी घोषाल नही हैं। हम लोगों की असलियत ठीक है।

रमेश—अरे आप लोग यह क्या कह रहे हैं?

[रमेश की ताई आड में से जरा-सा मुँह बाहर निकालकर कहती है—]

ताई—रमेश, ये लोग इसी तरह बोलते हैं। न तो पढ़े लिखे हैं और न अच्छी संगत है, इसलिए जानते भी नही कि ये क्या बक गये।

[गोविन्द और धर्मदास का प्रस्थान]

रमेश—ताईजी?

ताई—हाँ रे, मैं हूँ। मुझे पहचानते तो हो?

[कहती हुई ताई जी सामने आ खडी होती हैं। उनकी अवस्था पचास से कम नही है, लेकिन देखने मे वे किसी तरह चालीस से अधिक की नहीं जान पडती। उनके सिर के बाल छोटे-छोटे और कटे हुए हैं और थोडे से बाल बल खाकर माथेपर आ पडे हैं। किसी समय जिस रूप की इस प्रदेश में बहुत अधिक प्रसिद्धि थी, आज भी वह अनिन्द्य रूप उनके सुडौल और भरे हुए शरीर को छोडकर कहीं जा नहीं सका है। आज भी ऐसा जान पडता है कि उनके अवयव किसी अच्छे शिल्पी की साधना के सुन्दर फल हैं।]

ताई—क्यो रमेश, क्या मेरे निकट भी उसका कोई मूल्य नही है?

रमेश—नही, नही है। आज तुमने अपने लड़के को ही केवल लडका समझ लिया है। और यह बात भूल गयी हो कि एक दिन था जब तुमने एक ऐसे लड़के को भी, जिसकी माँ मर गयी थी, ठीक उसी तरह अपना लडका समझ कर पाला-पोसा था।

ताई—क्यों रमेश, क्या तुम इसी तरह शूल बेध-बेधकर बातें करोगे? क्या मैंने तुम दोनो को इसीलिए पाला-पोसा था कि तुम लोगो के लिए मैं घर में भी और बाहर भी इस तरह दंड भोगूँगी?

रमेश—घर मे और बाहर भी? यही तो जान पडता है! (हठात् पैरो के पास घुटनो के बल बैठकर) ताईजी, तुम मुझे क्षमा करो। मेरे अन्दर जो आग लगी हुई है, उसके कारण मैं तुम्हारी इस दिशा को नही देख पाया।

[ताई रमेश को उठाकर दाहिने हाथ से उसकी ठोढी छूती है।]

ताई—हाँ बेटा, मैं जानती हूँ।

रमेश—लेकिन अब तुम इस मकानपर मत आना। मैं और सब कुछ सह लूँगा ताई, लेकिन मुझसे यह नही सहा जायगा कि तुम मेरे लिए दुःख पाओ।

ताई—रमेश, यह ठीक नही है। यदि दुःख सहना ही कर्तव्य हो तो फिर वह तुम भी सहोगे और मैं भी सहूँगी। यदि धोखा देकर आराम पाने की चेष्टा की जायगी तो उसके छिद्र में से केवल आराम ही न निकल जायगा, बल्कि और भी अधिक दुख उसमे घुस पडेगा बेटा। तुम मुझे रोकने का विचार मत करो। अगर मना भी करोगे तो उसे मैं सुनने ही क्यों लगी?

रमेश—ताईजी, मैं तुम्हे भूल गया था इसलिए मना करने की गुश्ताखी की थी। अब तुम मेरी बात मत सुनो और जो अच्छा जान पडे, वही करो।

ताई—हाँ, वही तो मैं करूँगी।

रमेश—हाँ हाँ, करो। न जाने कितनी आँधियाँ, कितने तूफान और कितने कष्टपूर्ण समय तुम्हारे ऊपर से होकर निकल गये हैं। बीच-बीच मे दूर से ही उनकी खबर मिलती रही है। लेकिन कोई तुम्हें बदल नही सका। तेज की कभी न बुझनेवाली आग तुम्हारे अन्दर उसी तरह धक् धक् जल रही है।

ताई—बस बस, चुप रहो। छोटे मुँह बडी बात मत कहो। अच्छा यह बतलाओ कि अपने बडे भइया के पास भी गये थे?

(रमेश सिर झुकाकर चुप रहता है।)

ताई—घर पर नही है, कहकर ही शायद उसने भेंट नही की?

[रमेश फिर भी उसी तरह चुप रहता है।]

ताई—न करने दो, फिर भी एक बार और—(थोडी देर तक चुप रहकर) मैं जानती हूँ कि वह तुमसे खुश नही है, लेकिन अपना काम तो तुम्हे करना ही चाहिए। वह बडा भाई है। उसके सामने झुकने में कोई लज्जा की बात नही है। इसके सिवा बेटा, मनुष्य के लिए यह ऐसा कठिन समय है कि ऐरे गैरे के भी यहाँ जाकर हाथ-पैर जोडकर सब झगडा मिटा लेना ही मनुष्यत्व है। मेरे राजा बेटा, एक बार फिर उसके पास जाओ। इस समय शायद वह मकानपर ही होगा।

रमेश—ताईजी, अगर तुम्हारा हुक्म होगा तो जरूर जाऊँगा।

ताई—और देखो, एक बार जरा रमा के यहाँ भी चले जाना।

रमेश—गया था।

ताई—गये थे? उसने तुम्हें पहिचान तो लिया था?

रमेश—हाँ, मैं समझता हूँ कि पहचान लिया था। नहीं तो अपमान करके मुझे घर से क्यो निकाल देती?

ताई—अपमान करके निकाल दिया? रमा ने?

रमेश—और मालूम होता है कि उतने अपमान से भी मन नही भरा, इसीलिए यह भी कह दिया कि अगर फिर यहाँ आओगे तो दरवान से धक्का देकर निकलवा दूँगी।

कह सकते कि हमारी खातिर नही हुई। नही तो लोगों से कहता फिरता कि रमेश के बारे में तो खैर मान लिया कि वह लडका है, लेकिन उसके मामा गोविन्द गागुली तो वहाँ मौजूद थे; ! बेटा, बडे काम-काज मे मालिक होकर बैठना कोई सहज काम नही है। एक-एक चाल सोचते-सोचते सिर मे चक्कर आने लगता है!

धर्मदास—गोविन्द, तुम बहुत बकवाद करते हो। अब चुप रहो !

[एक तरफ से सुकुमारी और उसकी माँ क्षान्त आकर घर के अन्दर चली जाती हैं। परान हालदार बहुत तेज निगाह से उनकी तरफ देखते हैं। थोडी देर में नौकर षष्ठीचरण आता है।]

परान—अन्दर ये कौन गयी हैं रे?

षष्ठी—वही क्षान्त बाम्हनी और उसकी लड़की!

परान—मैं जो सोचता था, वही हुआ। आखिर उन लोगों को घर में घुसने किसने दिया?

षष्ठी—आचार्यजी बुला लाये हैं। दो दिन से वे ही तो सब काम-काज कर रही हैं!

परान—अगर वे खाने पीने की चीजें छूएँगी तो कोई ब्राह्मण यहाँ पानी तक न पीएगा।

[क्षान्त शायद आड़ में खडी सुन रही थी, इसलिए वह तुरन्त बाहर निकल आती है।]

क्षान्त—हालदार लाला आखिर ऐसा क्यों होगा? (रमेश से) हाँ बेटा, तुम भी तो आखिर गाँव के एक जमींदार हो। क्या सारा दोष इसी क्षान्त बाम्हनी की लडकी का ही है? हम लोगो के सिर पर कोई नही है तो क्या इसके लिए जितनी बार जी चाहे उतनी ही बार दंड दोगे? जब मुखर्जी के यहाँ पीपल की पूजा-प्रतिष्ठा हुई थी तब (गोविन्द की ओर उँगली दिखाकर) क्या इन्होंने दस रुपया जुरमाना अदा नहीं कर लिया था? सारे गाँव की मनसा-पूजा के नाम से क्या इन्होंने हमसे चार बकरो का दाम नही रखवा लिया था? तब फिर एक ही बात के लिए आखिर ये कितनी बार घालमेल करना चाहते हैं।

गोविन्द—क्षान्त मौसी, अगर तुमने मेरा नाम लिया है तो भाई, मैं तो सच बात ही कहूँगा। यह तो देश भर के लोग जानते हैं कि सिर्फ किसी की खातिर से कोई बात कहने वाले गोविन्द गागुली नही हैं। तुम्हारी लडकी का प्रायश्चित्त भी हो गया है और हमने उसे सामाजिक दड भी दे दिया है, यह मैं मानता हूँ। लेकिन यज्ञ में लकडी देने का हुक्म तो हम लोगों ने दिया नही है। इसके मरने पर जलाने के लिए हम लोग अपना कन्धा देंगे, किन्तु—

क्षान्त—मरने पर तुम अपनी लडकी को कन्धे पर उठाकर जलाने के लिए ले जाना बेटा, मेरी लडकी की तुम्हें फिकर करने की जरूरत नहीं। और क्यो गोविन्द, तुम अपनी छाती पर हाथ रखकर क्यों नही कहते? तुम्हे अपनी छोटी भौजाई के काशीवास की याद नही आती? और ये जो हालदारजी हैं, इनकी समधिन की जुलाहे के साथ बदनामी नही फैली थी? ये सब शायद बडे आदमियो की बडी बातें हैं, क्यो?

गोविन्द—क्यो री हरामजादी .

क्षान्त—(आगे बढ़कर) मारोगे क्या? अगर क्षान्त बाम्हनी को छेडोगे तो सारे गाँव का भडा फूट जायगा। बस इतने से ही काम चल जायगा या अभी कुछ और बतलाऊँ?

[भैरव आचार्य का जल्दी से प्रवेश]

भैरव—बस-बस मौसी, इतने से ही चल जायगा। और कुछ कहने की जरूरत नही। (अन्दर की ओर देखकर) चलो बहन सुकुमारी, और आओ मौसी, तुम भी अन्दर चलकर बैठो।

[भैरव और क्षान्त का प्रस्थान]

गोविन्द—देखते हो न परान मामा, हम लोगो का अपमान कराके इन लोगों को अन्दर बैठाने के लिए ले गया है। देखी भैरव की हिमाकत? अच्छा...

परान—अब रमेश इस बात की कैफियत दें कि बिना हम लोगों के हुक्म के इन दीनों दुष्टा स्त्रियों को क्यों इन्होंने घर के अन्दर घुसने दिया। नहीं तो हम लोगों में से कोई यहाँ पानी न पीएगा।

ताई—(दरवाजे के पास आकर) रमेश!

रमेश—ताईजी, तुम अभी तक यहीं हो?

ताई—हाँ, हूँ तो। गोविन्द गांगुली से कह दो कि क्षान्त और सुकुमारी को आदर के साथ मैं बुला लायी हूँ, आचार्यजी नही। बेकार उनका अपमान करने की कोई जरूरत नहीं थी।

परान—लेकिन जब तक वे यहाँ से निकाल न दी जायँगी, तब तक हम लोगो मे से कोई यहाँ पानी न

पीएगा।

ताई—यह वात तो परसों होगी। मैं मना कर देती हूँ कि आज मेरे घर मे हल्ला-गुल्ला और लडाई-झगडा करने की जरूरत नही। मैं सबको ही न्यौता दूँगी, किसी को वाद नही कर सकूँगी।

परान—फिर हम लोगो मे से कोई यहाँ पानी तक न पी सकेगा।

ताई—रमेश, इनसे कह दो कि मुझे यह डर न दिखलावे। यहाँ अनाथो, भूखो और कगालो की कमी नही है। हमारी इतनी तैयारी व्यर्थ नही जायगी, वल्कि उलटे सार्थक ही होगी।

रमेश—(आकुल स्वर मे) लेकिन ये सब लोग तो खरमडल कर देना चाहते हैं। ताईजी, इन सब वातो की जिम्मेदार तुम पर आ पडेगी।

ताई—रमेश, यह तुम्हारी नासमझी है। हमारे घर के काम-काज की जिम्मेदारी हमारे सिर नही पडेगी, तो क्या किसी दूसरे के सिर पडेगी? इस समय इन लोगों से जाने के लिए कह दो। अभी बहुत से काम पडे हैं। मेरे पास व्यर्थ नष्ट करने के लिए समय नहीं है।

(ताई अन्दर चली जाती हैं। सदर दरवाजे से गोविन्द, धर्मदास और परान हालदार धीरे से बाहर निकल जाते हैं।)

रमेश—मैं समझता था कि मेरा कोई नही है। लेकिन ताईजी, उसके सभी हैं जिसकी ओर तुम हो।

तीसरा दृश्य

गाँव का रास्ता

[श्राद्धवाले घर मे न्यौता खाकर दीनू भट्टाचार्य लौट रहे हैं। उनके साथ पटल, न्याडा, बूढी आदि लडके-लडकियाँ हैं। सबो के हाथ मे एक एक पोटली है और दूसरे हाथ मे पुरवो मे रायता और खीर आदि।]

खेदी—(डरकर) बाजूजी, भजुआ आ रहा है...

(सुनते ही सब लोग चौंक पडते हैं। रमेश का नौकर भज्जू आता है।)

दीनू—अरे यह तो भज्जू बाबू हैं! कहाँ जाना हो रहा है?

भज्जू—अरे भट्टाचार्य महाराज, यह सब क्या लिये जा रहे हैं?

दीनू—कुछ नही वेटा, यही जरा-सा जूठा मीठा है। महल्ले मे छोटी जाति के गरीब और दुखिया लडकी-लडके हैं न। जाते ही सब लोग हाथ फैलाकर खडे हो जायँगे। उन लोगो को ही देने के लिए .

भज्जू—अरे कमी किस चीज की है! कितने गरीब दुखिया वहाँ बैठकर पूरी-मिठाई खा रहे हैं...

दीनू—अरे हाँ, खा क्यो नही रहे हैं वेटा, सभी तो खा रहे हैं। राजा का भण्डार ठहरा। यहाँ कमी किस वात की है! लेकिन फिर भी तो आ नही सकते। उन्ही के लिए जरा-सा

भज्जू—हाँ हाँ ठीक है। भट्टाचार्यजी, यह वडा खराव गाँव है। कितना गोलमाल होता है! यह उठता है तो वह बैठता है। यह भागता है तो वह खीचकर लाता है। हा हा. हा ।

दीनू—अरे बेटा, सब ऐसे ही होता है। बडे काम-काजो में ऐसा ही होता है । बूढ़ी देख जरा पटल का हाथ बदल ले। —(भज्जू से) अरे बेटा हमारा गाँव तो फिर भी बहुत कुछ ठिकाने से हैं। अरे रास्ता देखकर चल न। ठोकर लगेगी तो दही की हँडिया गिर जाएगी। —अरे बेटा, मैं जो हाल खेदी के मामा के यहाँ देख आया हूँ, वह तुमसे क्या कहूँ। वहाँ ब्राह्मण और कायस्थो के सब मिलाकर बीस तो घर नही होंगे, लेकिन दस तडे हैं। क्यो रे पटल, ऊपर आसमान की तरफ मुँह करके चलता है? तो भी बेटा, एक बात मैं कह सकता हूँ। भिक्षा के लिए बहुत-सी जगहो पर जाना पड़ता है। बहुत से लोग मुझपर कृपा भी रखते हैं। मेने खूब देखा है कि जो कुछ दया माया है, वह सब तुम्हारे बाबू साहब जैसे लडको में ही है। अगर नही है तो खाली बुड्ढे सालों मे नही है। मौका पाते ही ये दूसरे के गले पर पैर रखकर खडे हो जाते हैं और जीभ वाहर निकलवाकर ही छोडते हैं।

(इतना कहकर अपनी जीभ बाहर निकालकर दिखलाता है।)

भज्जू—हा हाः हा.।

दीनू और यह गोविन्द गागुली! अगर इस सालेके पाप की बात मुँह से कही जाए तो प्रायश्चित्त

करना पड़े। जालसाजी करने मे, झूठी गवाही देने मे और झूठा मुकदमा लडने मे इसका कोई सानी नही है। सभी डरते हैं। और फिर वेणी बाबू इसके मददगार हैं, इसलिए किसी को उससे कुछ कहने का भी साहस नही होता। चाहे जिसकी जात मारता हुआ घूमता है।

भज्जू—भट्टाचार्यजी, सब जगह ऐसा ही होता है। हमारे गाँव मे भी बहुत गोलमाल है। मगर हमारे बाबूजी को कोई नही पा सकता।

दीनू—हाँ बेटा, हम भी कहते हैं कि कोई नही पा सकता।—अरे खेदी, जरा पैर बढ़ाये चल तू तो।

भज्जू—अरे हमारे बाबू क्या आदमी हैं? वह तो देवता हैं।

दीनू—हाँ, बेटा रमेश देवता ही हैं।—अरे पटल, फिर मुँह बाये खडा है!—हाँ तो भज्जू बाबू, कहाँ जा रहे हो?

भज्जू—आचार्य जी के घर।

दीनू—अच्छा, जाओ, ज़रा जल्दी जाओ। अब हम लोग भी चलते हैं।

(सबका प्रस्थान।)

चौथा दृश्य

[मधुपाल मोदी की दुकान। बिक्री-बट्टा हो रहा है]

पहला गाहक—एक पैसे का तेल देने मे क्या सन्ध्या कर दोगे?

मधु—अरे भाई, देता हूँ।

दूसरा गाहक—अरे पाल भइया, एक पैसे की हलदी देने मे इतनी देरी?

मधु—अरे भाई, देता तो हूँ। अकेला आदमी

तीसरा गाहक—दो पैसे की मसूर की दाल के लिए मालूम होता है कि आज हमारे यहाँ रसोई न चढने पावेगी।

मधु—अरे चाचा, रसोई क्यो नही होगी? लो न।

[रमेश का प्रवेश]

मधु—(गरदन आगे बढाकर और देखकर) अरे, यह तो हमारे छोटे बाबू हैं। प्रणाम बाबूजी! (इतना कहकर और हाथ मे एक मोढा लेकर दुकान के नीचे उतर आता है।) हमारे सात पुरखो के बडे भाग्य जो दुकान पर आपके चरण पडे। बैठिए।

रमेश—श्राद्ध के हिसाब मे तुम्हारे दस रुपये बाकी थे। तुम भी लेने नही आये और मैं भी नही भेज सका। आज सोचा कि चलो खुद ही चलकर दे आऊँ। यह लो।

मधु—(हाथ बढाकर और रुपये लेकर) बाबूजी, यह तो हमारे बाप-दादा ने भी कभी नही सुना कि आदमी घर-आकर रुपये दे जाय!

रमेश—(मोढे पर बैठकर) क्यो मधु, दुकान कैसी चलती है?

मधु—बाबूजी, दुकान कहाँ से चले? दो आना, चार आना, एक रुपया, सवा रुपया ऐसे ही करते-करते साठ सत्तर रुपये लोगो के यहाँ बाकी पड गये हैं। लोग कह जाते हैं कि सन्ध्या को दे जायँगे और फिर छ -छ महीने तक देने का नाम नही लेते। अरे ये तो बनर्जी महाराज हैं। प्रणाम। कहिए, कब आये?

[बनर्जी के बाएँ हाथ मे एक झारी है, पैरो पर कीचड के दाग हैं, कान पर जनेऊ चढा है और दाहिने हाथ मे अरुई के पत्ते मे लपेटी हुई चार छोटी छोटी चिंगडी मछलियाँ हैं।]

बनर्जी—कल रात ही तो आया हूँ। मधु, जरा तम्बाकू पिलाओ।

[इतना कहकर झारी रख देते हैं और हाथ से मछलियाँ भी।]

बनर्जी—इस सैरुबी धीवरिन की अक्किल तो देखो मधु, चट से कम्बख्त ने मेरा हाथ पकड लिया! भला बतलाओ तो सही कि कैसा जमाना आ गया है! ये क्या एक पैसे की चिंगडी हैं? ब्राह्मण को ठगकर कै दिन खायगी हरामजादी! उसका सत्यानाश हो जायगा!

मधु—अरे उसने आपका हाथ पकड लिया!

बनर्जी—उसके सिर्फ ढाई पैसे बाकी थे, लेकिन क्या इतने पैसे के लिए हाट मे सब लोगो के सामने

मेरा हाथ पकड लेना चाहिए? यह किसने नही देखा? मैंने मैदान में निवटकर, झारी माँजकर और नदी मे हाथ-पैर धोकर सोचा कि जरा हाट से भी होता चलूँ। हरामजादी एक दौरी मे मछलियाँ रखकर बैठी थी। मुझे देखकर आप ही बोली कि महाराज, आज अब कुछ नही है; जो थी सब बिक गयी। पर मेरी आँख मे वह कही धूल झोक सकती है? ज्यो ही मैंने उसकी दौरी मे हाथ डाला त्यों ही झट से उसने मेरा हाथ पकड लिया। —अरे तेरे पहले के ढाई पैसे बाकी हैं और आज का एक पैसा हुआ। क्या ये साढे तीन पैसे लेकर मैं गाँव छोडकर भाग जाऊँगा? क्यो मधु, क्या कहते हो?

मधु—भला ऐसा भी कही हो सकता है।

वनर्जी—तब फिर कहते क्यों नही? गाँव मे क्या किसी पर किसी का कोई शासन रह गया है? नही तो षष्ठी धीवर के धोबी और नाऊ बद करके और झोपडी उजाडकर उसे दुरुस्त न कर दिया जाता! (अचानक रमेश की ओर देखकर) अरे मधु, ये बाबूजी कौन हैं?

मधु—ये हमारे छोटे बाबूजी हैं। श्राद्ध के हिसाब मे दस बाकी रह गये थे, वही देने के लिए आये हैं।

बनर्जी—अच्छा, रमेश बबुआ है! जीते रहो बेटा। यहाँ आकर सुना कि तुमने जैसा चाहिए, वैसा ही काज किया है। ऐसा खाना-पीना इस तरफ आज तक कभी हुआ ही नहीं। लेकिन दु ख है कि मैं अपनी आँखो से नही देख सका। कुछ हरामजादो के फेर मे पडकर नौकरी करने कलकत्ते चला गया था; सो वहाँ इतनी दुर्दशा हुई कि पूछो मत। अरे राम, वहाँ क्या कोई आदमी रह सकता है?

मधु—(तम्बाकू भरकर और हुक्का बनर्जी के हाथ मे देकर) फिर, कुछ नौकरी-वौकरी मिल तो गयी थी न?

बनर्जी—क्यो, मिलती क्यो नही? क्या मैंने कोदो देकर लिखना-पढ़ना सीखा था? लेकिन नौकरी मिलने से ही क्या होता है? जैसा धुआँ, वैसी ही वहाँ कीचड़। घर से बाहर निकलो और अगर बिना किसी गाडी के नीचे दबे सही सलामत लौटकर घर आ जाओ तो समझो कि तुम्हारे बाप ने बडे पुण्य किये थे। तुम कभी गये हो वहाँ?

मधु—जी नही, एक बार मेदिनीपुर शहर देखा है।

बनर्जी—अरे देहाती भूत, कहाँ कलकत्ता और कहाँ मेदिनीपुर। जरा अपने रमेश बाबू से पूछ कि मैं सच कहता हूँ या झूठ। अरे मधु, अगर खाने को न मिलेगा तो लडके-बच्चो का हाथ पकडकर भीख माँग लूँगा, ब्राह्मण ठहरा, भीख माँगने मे कोई लज्जा नही। लेकिन अब परदेश जाने का मेरे सामने कोई नाम भी न ले। कहूँगा तो तुम शायद विश्वास नही करोगे कि वहाँ सोआ, करेमू, चलता और केले के फूल तथा डठल तक खरीदकर खाने पडते हैं। तुम खा सकोगे? बिना खाये मैं तो इधर महीने-भर मे ही बीमार चूहे की तरह हो गया हूँ।

[इतना कहकर बनर्जी मधु के हाथ मे हुक्का दे देते है और उठकर मधु के तेल के बरतन मे से थोडा-सा तेल हथेली मे लेकर कुछ नाक और कानो मे डालते हैं और बाकी सिर पर डालकर रगड़ने लगते हैं।]

बनर्जी—बहुत दिन चढ आया। अब जरा गोता लगाकर घर चलूँ। मधु, एक पैसे का नमक तो दे दो। पैसा सन्ध्या को दे जाऊँगा।

मधु—फिर वही सन्ध्या को!

[मधु कुछ दु खित होकर उठता है और दुकान मे जाकर कागज की पुडिया मे नमक देता है।]

बनर्जी—(नमक हाथ मे लेकर) अरे मधु, तुम सब लोगो को भला हो क्या गया है? गाल पर थप्पड़ मारकर पैसा छीन लेना चाहते हो! (इतना कहकर और अपने हाथ से ही एक पसर नमक उठाकर पुडिया मे रख लेता है और रमेश की ओर देखते हुए मुस्कराकर कहता है—)—यही तो रास्ता है; चलो न बबुआ रास्ते मे बातचीत करते चले।

रमेश—अभी मुझे कुछ देर है।

बनर्जी—अच्छा तो रहने दो। (झारी उठाकर चलना चाहता है।)

मधु—क्यो बनर्जी महाराज, वह आटे का दाम पाँच आने क्या यो ही—

बनर्जी—क्यो रे मधु, क्या लज्जा शरम तुम लोगो की आँखो के चमडे तक को भी नही छू गयी है? उन हरामजादो के फेर मे पडकर कलकत्ते आने-जाने मे मेरे पाँच-छह रुपये मिट गये। क्या यही तुम्हारे लिए तगादा करने का समय है? किसी का सर्वनाश और किसी का पौष मास! यही बात है न? देखा बेटा

रमेश—मगर उन लोगों का व्यवहार देखा?

भैरव—(लज्जित होकर) बहुत दिनों का

बनर्जी—अरे हुआ करे बहुत दिन! अगर सब लोग मिलकर इसी तरह मेरे पीछे पड़ जाओगे तब तो गाँव में रहना ही मुश्किल हो जायगा।

(बनर्जी कुछ नाराज से होकर अपनी सब चीजें उठाकर चल देते हैं। इसके बाद फौरन ही वनमाली धीरे-धीरे आकर प्रणाम करके रमेश के पैरों के पास खड़े हो जाते हैं।)

रमेश—आप कौन हैं?

वनमाली—आपका सेवक वनमाली। इस गाँव के माइनर स्कूल का प्रधान अध्यापक हूँ।

रमेश—(कुछ सकपकाकर और खड़े होकर) आप ही स्कूल के हेडमास्टर हैं?

वन०—जी हाँ मैं ही आपका सेवक हूँ। मैं दो बार आपके यहाँ प्रणाम करने गया, लेकिन आपसे भेंट नहीं हुई।

रमेश—आपके स्कूल में कितने लड़के पढ़ते हैं?

वन०—चयालीस लड़के। हर साल दो लड़के वर्नाक्यूलर में पास होते हैं। एक बार नारायण बनर्जी के तीसरे लड़के ने छात्रवृत्ति भी पायी थी।

रमेश—अच्छा?

वन०—जी हाँ। लेकिन इस बार अगर स्कूल का छप्पर ठीक न कराया गया तो बरसात का पानी स्कूल के बाहर नहीं गिरेगा।

रमेश—सारा ही आप लोगों के सिर पर गिरेगा?

वन०—जी हाँ। लेकिन उसमें अभी देर है। इस समय तो हम लोगों में से किसी को इधर तीन महीने से तनख्वाह नहीं मिली है। मास्टर लोग कहते हैं कि अपने घर का खाकर अब जंगल के मच्छर नहीं उड़ाये जायँगे।

रमेश—आपकी तनख्वाह कितनी है?

वन०—तनख्वाह तो छब्बीस रुपये है, लेकिन पाता हूँ तेरह रुपये पंद्रह आने।

रमेश—तनख्वाह तो छब्बीस रुपये है, और मिलते हैं तेरह रुपये पन्द्रह आने? आखिर इसका मतलब?

वन०—गवर्नमेंट का हुक्म है कि नहीं। इसीलिए छब्बीस रुपये की रसीद लिखकर डिप्टी इन्स्पेक्टर को दिखलानी पड़ती है। और नहीं तो सरकारी सहायता बन्द हो जाय।

रमेश—इसमें लड़कों के सामने आपके सम्मान की हानि नहीं होती?

वन०—जी नहीं, यह तो देशाचार है। इसके सिवा लड़के हमसे उसी तरह डरते हैं जिस तरह बाघ से। बेंतों से उनकी पीठ लाल कर देते हैं न!

रमेश—हाँ, कर देने की बात ही है। और अब मास्टरों की तनख्वाह कितनी है?

वन०—तेईस रुपये।

रमेश—तेईस? एक आदमी की या तीन आदमियों की?

वन०—तीन आदमियों की। नौ रुपये, आठ रुपये और छह रुपये। पर वेणी बाबू इतना भी नहीं देना चाहते। कहते हैं कि आठ रुपये, सात रुपये, छह रुपये हो जायँ तो अच्छा।

रमेश—ठीक है। मालूम होता है कि मालिक वही हैं।

वन०—जी हाँ, वही सेक्रेटरी हैं। लेकिन कभी अपने पास से एक पैसा भी नहीं देते। हाँ, यदु मुखर्जी की कन्या रमा पूरी सती लक्ष्मी हैं। अगर उनकी दया न होती तो यह स्कूल कभी का बंद हो गया होता।

रमेश—यह आप क्या कह रहे हैं? मैंने तो यह नहीं सुना।

वन०—जी हाँ, छोटे बाबू, केवल उन्हीं की दया से स्कूल चल रहा है और किसी की दया से नहीं। उनका एक भाई भी स्कूल में पढ़ता है। इस साल उन्होंने कहा था कि छप्पर डलवा देंगी; लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि उन्होंने क्यों अब तक छप्पर नहीं डलवाया। शायद किसी ने भाँजी मार दी है।

रमेश—क्या यह भी होता है? अच्छा, आज आप जायँ, क्योंकि आपको देर हो रही है। कल मैं आपका स्कूल देखने के लिए आऊँगा।

वन०—जो हुक्म। आपकी दया है तो फिर हम लोगों को चिन्ता ही किस बात की?

[इतना कहकर वनमाली फिर एक बार झुककर प्रणाम करते हैं और चले जाते हैं। दूसरे रास्ते से गोपाल और भज्जू का प्रवेश]

रमेश—क्यो गुमाश्ताजी, आप अचानक इस तरह घबराये हुए क्यो चले आ रहे हैं?

गोपाल—वेणी बाबू ने तो बहुत अत्याचार करना शुरू कर दिया है छोटे बाबू, रोज-रोज तो यह नही सहा जाता।

रमेश—क्यो, बात क्या है?

गोपाल—कपासडांगे में बाईस बीघे का जो बन्द है; उसका अभी तक बँटवारा नही हुआ है। वह अभी तक मुखर्जी के साथ सीर में जोता जाता है। एक हिस्सा उनका है, एक हिस्सा वेणी बाबू का है और एक हिस्सा हम लोगो का है। उस दिन उन्ही ने इतना बडा इमली का पेड काटकर आपस मे दो हिस्सों मे बाँट लिया और हम लोगों को एक टुकडा तक नही दिया। जब आपसे मैंने कहा तब आपने कह दिया कि जरा-सी लकडी के लिए झगडा नही किया जा सकता।

रमेश—ठीक ही है गुमाश्ताजी, क्या एक मामूली-सी चीज के लिए बडे भाई के साथ झगड़ा किया जा सकता है?

गोपाल—बस, इसी भरोसे वेणी बाबू आज जबरदस्ती गढ तालाब की मछलियाँ पकड़ ले गये हैं। मैं समझता हूँ, इस समय मुखर्जी के यहाँ उनका हिस्सा-बाँट हो रहा होगा।

रमेश—लेकिन यह आप ठीक तरह से जानते है कि उसमे हम लोगो का हिस्सा है?

गोपाल—और नही तो क्या छोटे बाबू, मैंने क्या यो ही इस काम मे सिर के बाल पकाये हैं?

रमेश—लेकिन सब लोग तो कहते हैं कि रमा बहुत ही धर्मनिष्ठ लडकी है। उसी से क्यो न एक बार पुछवा लिया?

गोपाल—सुनता हूँ कि उन्होने हँसकर कह दिया कि छोटे बाबू से जाकर कह दो कि वह सारी सम्पत्ति हमे सौंप दे और अपना महीना बाँधकर जहाँ से आये हैं, वही चले जायें। जमीदारी की रक्षा करना डरपोक आदमियो का काम नही है।

रमेश—तो मालूम होता है कि चोरी करने को ही उन्होंने साहस का काम समझ रखा है! भज्जू, तुम्हारे साथ लाठी है?

भज्जू—(लाठी उठाकर) हाँ हुजूर!

(भज्जू वहाँ से जाना चाहता है।)

गोपाल—(अचानक बहुत ही भयभीत होकर) लेकिन छोटे बाबू, इसमें तो सचमुच फौजदारी हो जायगी!

रमेश—तो फिर और उपाय ही क्या है?

गोपाल—छोटे बाबू, इस तरह एकदम से कोई काम कर बैठना ठीक होगा?

रमेश—तो फिर आप क्या करने को कहते हैं?

गोपाल—कहता हूँ,—मैं कहता हूँ कि पहले थाने में रिपोर्ट कर दी जाय। और नही तो एक बार उनसे अच्छी तरह पूछकर

रमेश—तो फिर गुमाश्ताजी, वही कीजिए। हमारे जैसे डरपोक आदमी को इससे कुछ और अधिक करना उचित भी नही है। भज्जू, तुम उस घर की माँजी को पहचानते हो न? पहचानते हो। अच्छा, जाकर उनसे पूछ आओ कि गढ़-तालाब की मछलियों में हमारा हिस्सा है या नहीं। अगर वे कहे, है तो मछलियाँ लेते आना। अगर कहें कि नहीं है तो चुपचाप चले आना। मुझे पूरा विश्वास है गुमाश्ताजी, कि मामूली दो चार मछलियों के लिए रमा झूठ नही बोलेगी। (भज्जू का जल्दी से प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

[वेणी घोषाल के अन्तःपुर में विश्वेश्वरी का कमरा। रमा आती है और सामने दासी को देखती है।]

रमा—नन्द की माँ, ताईजी कहाँ हैं।

दासी—अभी वह पूजा के कमरे से बाहर नहीं निकली हैं। उन्हें बुला लाऊँ दीदी?

रमा—उनकी पूजा में बाधा डालकर? नहीं नहीं, मैं बैठती हूँ। जब वे बाहर निकलें तब उन्हें मेरे आने की खबर कर देना।

दासी—बहुत अच्छा दीदी!

[दासी चली जाती है। थोड़ी देर बाद दबे पाँव यतीन्द्र का प्रवेश]

यतीन्द्र—जीजी!

रमा—(चौंककर और मुँह फेरकर) अरे तू कहाँ से आ गया?

यतीन्द्र—मैं तो तुम्हारे पीछे पीछे ही आ रहा था, देख नहीं पाया?

[आगे बढ़कर रमा से लिपट जाता है।]

रमा—कैसा दुष्ट लड़का है रे तू? समय हो गया, स्कूल नहीं जायगा?

यतीन्द्र—आज तो हम लोगों की छुट्टी है जीजी।

रमा—छुट्टी किस बात की? आज तो बुधवार है।

यतीन्द्र—हुआ करे बुधवार। बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, और रवि, एकदम से पाँच दिन की छुट्टी है।

रमा—छुट्टी किस बात की?

यतीन्द्र—हमारे स्कूल पर नया छप्पर जो डाला जा रहा है। उसके बाद चूने का काम होगा। बहुत-सी किताबें आवेंगी। चार-पाँच कुर्सियाँ और टेबुलें आयी हैं। एक आलमारी और एक बड़ी घड़ी आयी है। किसी दिन तुम भी चलकर देख आओ न जीजी!

रमा—अरे कहता क्या है रे?

यतीन्द्र—मैं बिल्कुल ठीक कहता हूँ जीजी! रमेश बाबू आये हैं न। वे ही सब कर रहे हैं। उन्होंने कहा है कि अभी और भी न जाने क्या क्या कर देंगे। वह रोज एक घण्टे आकर हम लोगों को पढ़ा भी जाते हैं।

रमा—क्यों यतीन्द्र, वे तुझे पहचानते हैं?

यतीन्द्र—हाँ।

रमा—तू उन्हें क्या कहकर पुकारता है?

यतीन्द्र—हम लोग उन्हें 'छोटे बाबू' कहते हैं।

रमा—(भाई को खींचकर और गले लगाकर) छोटे बाबू कैसे रे! वे तो तेरे बड़े भइया हैं।

यतीन्द्र—धत्

रमा—धत् क्या! तू जिस तरह वेणी बाबू को 'बड़े भइया' कहकर पुकारता है, उसी तरह इन्हें 'छोटे भइया' कहकर नहीं पुकार सकता?

यतीन्द्र—क्या वे मेरे बड़े भाई हैं? सच कहती हो जीजी?

रमा—हाँ हाँ, सच कहती हूँ, वे तेरे बड़े भाई हैं।

यतीन्द्र—तो मैं घर जाऊँ जीजी और जाकर नरू, हारा, मन्ना सब लोगों से कह आऊँ?

(रमा गरदन हिलाकर मना करती है।)

यतीन्द्र—क्यों जीजी, इतने दिनों तक वे कहाँ थे?

रमा—वे इतने दिनों तक पढ़ने के लिए परदेस गये हुए थे। यतीन्द्र, जब तू बड़ा हो जायगा तब तुझे भी इसी तरह परदेस जाकर रहना पड़ेगा। मुझे छोड़कर अकेला रह सकेगा?

यतीन्द्र—(दो-तीन बार अनिश्चित भाव से सिर हिलाकर) क्यों जीजी, छोटे भइया की सब पढ़ाई खतम हो गयी?

रमा—हाँ, उनकी सब पढ़ाई खतम हो चुकी है।

यतीन्द्र—तुमने कैसे जाना?

रमा—(थोड़ी देर तक चुप रहकर) जब तक कोई अपनी पढ़ाई खतम न कर ले तब तक वह दूसरों के लड़कों के लिए इतना रुपया दे सकता है? इतनी-सी बात तू नहीं समझ पाता?

यतीन्द्र—(सिर हिलाकर जतलाता है कि हाँ, समझता हूँ) अच्छा जीजी, छोटे भइया हमारे यहाँ क्यों नहीं आते? बड़े भइया तो रोज आते हैं।

रमा—तू उन्हे बुलाकर नही ला सकता?

यतीन्द्र—अभी जाऊँ जीजी?

रमा—(भय-व्याकुल हो दोनो हाथो से गले लगाकर) तू भी कैसा पागल लडका है रे! खबरदार यतीन्द्र कभी ऐसा काम मत करना, कभी न करना।

यतीन्द्र—जीजी, तुम्हारी आँखो में पानी क्यो भर आया? जिस काम के लिए तुम मना कर देती हो, वह काम तो मैं कभी नही करता।

रमा—(आँखें पोछकर) हाँ, जानती हूँ कि नही करता। तू मेरा राजा भइया है न; इसीलिए!

यतीन्द्र—अब घर चलो न जीजी!

रमा—तू जा। मैं थोडी देर बाद आऊँगी। (यतीन्द्र चला जाता है।)

[विश्वेश्वरी का प्रवेश]

विश्वेश्वरी—बेटी, यह सब तुम लोग क्या कर रहे हो? वेणी के चोरी के काम मे तुमने कैसे मदद की रमा?

रमा—ताईजी, मैंने तो उनसे यह काम करने के लिए नही कहा।

विश्वेश्वरी—रमा, तुमने स्पष्ट भले ही न कहा हो, पर तुम्हारा अपराध कुछ कम नही हुआ।

रमा—लेकिन ताईजी, मैं क्या करूँ, उस समय और कोई उपाय ही नही था। जब भज्जू लाठी हाथ मे लिये हुए घर के अन्दर जा कर खडा हो गया, तब मछलियो का हिस्सा-बाँट हो चुका था। बडे भइया अपना हिस्सा लेकर चले गये थे। मुहल्ले-टोले के दस पाँच आदमी भी एक-एक दो-दो मछलियाँ लेकर अपने-अपने घर जा रहे थे।

विश्वेश्वरी—लेकिन रमा, असल मे वह मछलियाँ वसूल करने के लिए नही गया था। रमेश मांस-मछली छूता तक नही, इसलिए उसे इन सब चीजो की जरूरत भी नहीं। उसने तो भज्जू को तुम्हारे पास सिर्फ यह जानने के लिए भेजा था कि कपासडाँगा के गढ तालाब मे उसका भी हिस्सा है या नही। अब तुम्ही बतलाओ बेटी, कि यह तुम्हारे मुँह से कैसे निकल गया कि उसमे उसका कोई हिस्सा नही है?

(रमा सिर झुकाकर चुप रहती है)

विश्वेश्वरी—तुम तो नही जानतीं कि तुम्हारे प्रति उनके मन मे कितनी श्रद्धा और कितना विश्वास है; लेकिन मैं अच्छी तरह जानती हूँ। उस दिन इमली का पेड़ काटकर तुम दोनो ने आपस मे बँटवारा कर लिया। गोपाल गुमाश्ते की बातो की ओर भी रमेश ने कोई ध्यान नही दिया और कहा कि अगर हमारा हिस्सा होगा तो हमे मिल ही जायगा। रमा कभी मुझे नही ठगेगी। लेकिन बेटी, कल जो किया है, उससे । खैर एक बात तुमसे कहे देती हूँ। धन सम्पत्ति का मूल्य चाहे कितना ही अधिक क्यो न हो, लेकिन फिर भी इस मनुष्य के प्राणो का मूल्य उससे कहीं अधिक है। देखो रमा, तुम कभी किसी को बातो मे आकर या किसी तरह के लोभ मे पड़कर उसे चारो ओर से आघात करके नष्ट न कर देना। इसमे जो कुछ गँवा बैठोगी, वह फिर कभी न मिलेगा।

रमेश—(नेपथ्य से) ताई जी।

[रमेश के अन्दर आते ही रमा सिर झुकाकर तिरछी होकर बैठ जाती है।]

विश्वेश्वरी—इस दोपहर के समय एकाएक कैसे चले आये बेटा?

रमेश—बिना दोपहर को आये तुम्हारे पास बैठने का समय जो नही मिलता ताई। तुम्हे बहुत से काम रहते हैं। क्यो, हँसी क्यो? अच्छा ताई जी, तुम्हे याद है कि ठीक ऐसे ही दोपहर के समय लड़कपन मे एक दिन आँखो मे जल भर कर मैं तुमसे बिदा हुआ था? आज भी मैं उसी तरह बिदा होने के लिए आया हूँ। लेकिन ताई जी, ऐसा मालूम होता है कि यह मेरी आखिरी बिदाई होगी।

विश्वेश्वरी—राम राम बेटा, यह तुम क्या कहते हो? आओ, मेरे पास आकर बैठो।

[रमेश उसके पास बैठकर कुछ हँसता है, लेकिन कोई उत्तर नही देता। विश्वेश्वरी बहुत ही स्नेहपूर्वक उसके सिर और पीठ पर हाथ फेरने लगती है।]

विश्वेश्वरी—क्यो बेटा, क्या यहाँ तुम्हारी तबीयत ठीक नही रहती?

रमेश—ताई जी, मेरा पछाँह मे पला हुआ दाल-रोटी का शरीर है। यह क्या जल्दी खराब हो सकता है? नही। लेकिन फिर भी मैं यहाँ एक दिन भी नही ठहर सकता। यहाँ तो मानो मेरा दम ही घुटा जाता है।

विश्वेश्वरी—तुम्हारा शरीर अस्वस्थ नही है, यह सुनकर मेरी जान मे जान आई बेटा, लेकिन यह

तो तुम्हारी जन्म-भूमि है। आखिर यहाँ तुम क्यों नही ठहर सकते?

रमेश—यह मैं नही बतलाऊँगा। मैं खूब अच्छी तरह समझता हूँ कि तुम सब जानती हो।

विश्वेश्वरी—सब नही, तो कुछ जरूर जानती हूँ। लेकिन रमेश, सिर्फ इसीलिए ही मैं तुम्हे कही जाने न दूँगी।

रमेश—लेकिन ताई जी, मुश्किल तो यह है कि यहाँ कोई भी मुझे नही चाहता।

विश्वेश्वरी—सिर्फ लोगों के न चाहने के कारण ही भागने से तो काम चलेगा नही। अभी जो तुम अपने दाल-रोटी वाले शरीर की इतनी बड़ाई कर रहे थे, सो क्या खाली भागने के काम का है? हाँ, यह तो बतलाओ, गोपाल गुमाश्ता कहता था कि किसी रास्ते की मरम्मत के लिए तुम चन्दा कर रहे थे। उसका क्या हुआ?

रमेश—अच्छा, यही एक बात तुम्हें बतलाये देता हूँ। तुम जानती हो कि वह कौन सा रास्ता है? वही जो डाक-खाने के सामने से होकर सीधा स्टेशन तक गया है। कोई पाँच बरस पहले बहुत जोरों का पानी बरसने से बिगड गया था और अब बीच में एक बहुत बड़ा गड्ढा हो गया है। लोग पैर फिसलने से गिर-गिर कर अपने हाथ-पैर तोड लेते हैं, लेकिन उसकी मरम्मत नही करते। सिर्फ बीसेक रुपयों का खर्च है, लेकिन इसके लिए लगातार आठ-दस दिनों तक घूमने पर मुझे आठ दस पैसे भी नही मिले। कल रात को मैं मधु की दुकान के सामने से होकर आ रहा था। सुना कि कोई सब लोगो को मना कर रहा है कि तुम लोग एक पैसा भी मत देना। जो चर्र-मर्र बढ़िया जूते पहनकर चलते हैं और दो पहियो वाली गाडी पर घूमते हैं, उन्ही को तो इसकी गरज है। किसी के कुछ न देने पर भी वे अपनी गरज से आप बनवावेंगे। बस, खाली 'बाबू बाबू' कहकर उनकी पीठ पर हाथ फेरते रहना चाहिए।

विश्वेश्वरी—(हँसकर) वे लोग ऐसा कहते हैं तो बेटा, करा दो न मरम्मत। दादा जी के ढेर रुपये तो तुम्हें मिले हैं।

रमेश—(कुछ बिगडकर) लेकिन मैं क्यों देने लगा? अब तो मुझे इसी बात का बहुत दु.ख हो रहा है कि मैंने बिना समझे बूझे इतने रुपये स्कूल के लिए क्यों खर्च कर दिये। इस गाँव के किसी भी आदमी के लिए कुछ भी नही करना चाहिए। ये लोग इतने नीच हैं कि अगर इन्हें कुछ दान दिया जाय तो बेवकूफ समझते हैं और अगर इनका भला किया जाय तो समझते हैं कि अपनी गरज से कर रहा है। इन्हे तो क्षमा करना भी अपराध है। समझते हैं कि इसने डर कर छोड दिया।

(विश्वेश्वरी, हँसने लगती है)

रमेश—तुम हँसती हो ताई जी?

विश्वेश्वरी—बेटा, मैं हँसूँ न तो और क्या करूँ? अब तो तुम नाराज होकर इन लोगो को छोडकर चले जाना चाहते हो रमेश? अगर तुम यह जानते होते कि ये लोग कितने दुःखी, कितने दुर्बल और कितने अज्ञान हैं, तो इन लोगों पर नाराज होने में तुम्हें आप ही लज्जा आती। (रमा से) क्यो बेटी, तुम तो तभी से सिर झुकाये बैठी हो। क्यों रमेश, क्या भाई-बहन में बोल-चाल भी नहीं है?

रमा—(उसी प्रकार सिर झुकाये हुए) ताई जी, मैं तो विरोध नहीं रखना चाहती। रमेश भइया ...

रमेश—(चौंककर) हैं, क्या रमा हैं! अकेली ही आयी हो या अपनी मौसी को भी साथ लाई हो?

विश्वेश्वरी—रमेश, यह तुम क्या कहते हो! तुम लोगो की अच्छी तरह जान-पहचान नही है, इसलिए. ..

रमेश—बस ताई जी, माफ करो, इससे अधिक और जानने-पहचानने का आशीर्वाद मत दो। अगर ये घर जाकर अपनी मौसी को यहाँ भेज दें तो वह तुम्हें और मुझे दोनो को चबा जाय और तब घर जाय।

रमेश— बाप रे बाप, भागता हूँ .

विश्वेश्वरी—रमेश, जाओ मत। पहले बात सुन लो।

रमेश—(रुककर) नही ताई जी, मैं सब सुन चुका हूँ। जो लोग मारे अहंकार के तुम्हें भी ठुकराकर चलना चाहते हैं, उन लोगों की तरफ से तुम एक बात भी मत कहो। अगर तुम्हारा अपमान होगा, तो वह मुझसे नही सहा जायगा। (जल्दी से प्रस्थान)

रमा—(विश्वेश्वरी की ओर देखकर और रोकर) क्यो ताई जी, यह कलक मुझ पर क्यो लगाया जा रहा है कि मैं तुम्हारा अपमान करने के लिए मौसी को भेज दूँगी?

विश्वेश्वरी—(रमा को अपने पास खीचकर) बेटी, उसने तुम्हे गलत समझा है। लेकिन जो सत्य है, उसे वह एक न एक दिन अवश्य जान लेगा।

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[तारकेश्वर का रास्ता। सूर्य निकले अभी थोड़ी ही देर हुई है। रमा पास के किसी ताल से स्नान करके गीले कपडे पहने हुए लौट रही है। अचानक रमेश से उसका सामना हो जाता है। वह एक बार सिर का आँचल आगे खीचने की चेष्टा करती है, लेकिन गीला कपडा खीचा नही जाता। तब वह जल्दी से हाथ का भरा हुआ घडा जमीन पर रखकर गीली धोती के नीचे हाथ छाती के ऊपर रखकर कुछ झुककर खडी हो जाती है।]

रमा—आप यहाँ कैसे आ गये?

रमेश—(एक ओर हटकर) क्या आप मुझे पहचानती हैं?

रमा— हा, पहचानती हू। आप तारकेश्वर कब आये?

रमेश—बस, अभी-अभी गाडी से उतरा हूँ। मेरे मामा के यहाँ की औरते आने को थी, लेकिन कोई आयी नही।

रमा—यहाँ कहाँ ठहरे हैं?

रमेश—कही नही। पहले कभी यहाँ आया नही हूँ। आज का दिन किसी तरह कहीं न कही बिता देना होगा। रहने की कोई जगह ढूँढ़ लूंगा।

रमा—साथ मे भज्जू है?

रमेश—नही, मैं अकेला ही आया हूँ।

रमा—अच्छी बात है। (इतना कहकर और कुछ हँसकर रमा जब जरा मुह उठाती है तब अचानक फिर दोनो की चार आंखें हो जाती हैं। वह मुह नीचा करके मन ही मन कुछ सकुचित होकर कहती है।) अच्छा तो आप मेरे ही साथ आइए।

[इतना कहकर वह जमीन पर से घडा उठा लेती है और अग्रसर होना चाहती है।]

रमेश—मैं चल तो सकता हू, क्योंकि अगर चलने मे दोष होता तो आप कभी न बुलाती। यह बात भी नही है कि मैं आपको पहचानता न होऊँ, लेकिन किसी भी तरह याद नही कर पाता। यही ख्याल होता है कि कभी स्वप्न मे आपको देखा है। आप अपना परिचय तो दे।

रमा—मेरे साथ आइए। मैं रास्ता चलते-चलते अपना परिचय दूँगी। कुछ यह भी याद है कि स्वप्न कब देखा था?

रमेश—नही। क्या आपके साथ कोई अपना आदमी नही है?

रमा—नही, एक दासी है, मगर वह डेरे पर काम कर रही है। और नौकर बाजार गया है। और फिर मैं तो प्राय. ही यहाँ आया करती हूँ। यहाँ की राह गली सब पहचानती हूँ।

रमेश—लेकिन आप मुझे अपने साथ क्यो ले चल रही हैं?

रमा—न ले चलूँ तो आपको खाने-पीने का बहुत कष्ट होगा।

रमेश—हुआ करे। इससे आपको क्या?

रमा—पुरुषो को और सब बाते तो समझाई जा सकती हैं, सिर्फ यही बात नही समझाई जा सकती। मैं रमा हूँ।

रमेश—रमा?

रमा—हाँ। जिसके साथ परिचय होना भी आप घृणा की बात समझते हैं, वही।

रमेश—लेकिन मुझे कहाँ ले जा रही हो?

रमा—डेरे पर। वहाँ मौसी नही है। आप डरिए नही, चलिए।

[दोनों का प्रस्थान। इसके बाद तुरन्त ही नीचे लिखे व्यक्तियों का प्रवेश—एक हज्जाम आता है और उसके पीछे जल्दी-जल्दी एक और आदमी आता है जिसकी दाढ़ी और मूछें बहुत बढ़ी हुई और सिर पर

बाल भी बडे-बडे हैं। थोडी-सी दाढ़ी छुरे से बनी हुई है। यह आदमी मन्नत पूरी करने के लिए ठाकुर जी के यहाँ अपने सिर के बाल और दाढ़ी देने आया है।]

यात्री—(कुछ घबराहट मे) हज्जाम, ओ हज्जाम! तुम हज्जाम हो न? लो भइया, जरा मेरी दाढ़ी तो बना दो जिससे जल्दी जाकर गोता लगाकर पूजा कर आऊँ। यह बाबा का स्थान है, नही तो दो पैसे का भी काम नही है। लो यह चवन्नी लो और जल्दी से हजामत बना दो। साढ़े बारह की गाडी से मुझे जाना है। घर में लडके को फिर दो दिन से बुखार आने लगा है। बनाओ, जल्दी बनाओ। यही बैठ जाऊँ?

हज्जाम—(हाथ मे चवन्नी लेकर, खूब अच्छी तरह देखकर, कमर मे खोसकर और दो बार उस आदमी की तरफ सिर से पैर तक देखकर) अरे तुम्हारी दाढ़ी तो जूठी हो गयी है!

यात्री—जूठी कैसे? देखते तो हो, बाबा के लिए दाढी और सिर के बाल बढाये हैं। ये क्या हमारे हैं? ये जूठे कैसे हो गये?

हज्जाम—(हाथ से दिखलाकर) यह देखो, दाढ़ी बनायी हुई है। यह तो जूठी हो गयी है।

यात्री—जूठी हो गयी? एक साले हज्जाम ने चवन्नी हाथ मे ले ली और जरा सा छुरा फेरकर कहा कि मालिक की चवन्नी और लाओ। मैंने पूछा कि मालिक कौन है? मैं तो अभी-अभी गद्दी मे सवा रुपये जमा करके हुकम लिये आ रहा हूँ। तब वह बोला कि अच्छा तो फिर और कही चले जाओ। इस तरह वह चवन्नी तो चली ही गयी। मैं बिगडकर चला आया। लो भइया, जल्दी से बना दो। तुम्हारे माँ-बाप का भला होगा।

हज्जाम—अभी आठ आने पैसे और निकालो। चार आने उसके और चार आना मालिक के।

यात्री—चार आने उसके और चार आने मालिक के? तुम लोग क्या आदमी को पागल कर दोगे? लाओ मेरी चवन्नी लौटा दो। मैं जाकर उसी से बनवा लूँगा।

हज्जाम—जाते हो तो जाओ न। मैंने क्या तुम्हे पकड रक्खा है?

यात्री—(बिगडकर) मैं कहता हूँ मेरी चवन्नी फेर दो।

हज्जाम—कैसी चवन्नी! इतनी देर तक दर दस्तूर क्या यो ही हो गया?

हज्जाम—आया है बडा भारी पडित कही का! समझ रख, यह तारकेश्वर का स्थान है। आँखे दिखलायगा तो गरदनियाँ खाएगा। देखूँ तो सही कि कौन तेरी दाढ़ी बनाता है!

[लडके का हाथ पकडे हुए एक प्रौढ स्त्री आती है। उसका आँचल पकडे हुए मंदिर के दो कर्मचारी भी जल्दी-जल्दी आते हैं।]

पहला कर्म०—हैं, बाबा को ठगना! अरी अभागिन, तुझे और कोई ठगने को नही मिला? खाली सवा रुपया मनौती का?

प्रौढ़ा—(कातर स्वर से) नही भइया, मैं किसी को ठगती नही हूँ। मैंने सवा रुपये की ही मन्नत मानी थी, सो सवा रुपया दे दिया।

पहला कर्म०—भला बतला तो कि कब मन्नत मानी थी?

प्रौढ़ा—तीन बरस हुए, उसी बाढ के समय। मैं सच कहती हूँ भइया।

दूसरा क०—सच कहती है! झूठी कही की! इधर तीन बरस मे घर में और कोई बीमार ऊमार नही पडा? फिर कभी मन्नत मानने की जरूरत नही पडी? ऐसा कभी नही हो सकता। रख तो अपनी छाती पर हाथ। अच्छी तरह याद कर। बाल-बच्चे वाली है। यह कोई और देवता नही हैं स्वय बाबा तारकनाथ हैं।

प्रौढ़ा—(बहुत डरकर) भइया, शाप-वाप मत देना। लो यह और एक रुपया

पहला कर्म०—(हाथ बढ़ाकर और रुपया लेकर) बस एक रुपया? कम से कम और भी पाँच रुपये की मन्नत तूने मानी थी। अच्छी तरह याद कर। बाबा की दया से हम लोग सब बाते जान लेते हैं। हमे कोई ठग नही सकता।

दूसरा कर्म०—दे दे न पाँच रुपये! बाल बच्चे वाली ठहरी, क्यों बाबा के कोप मे पडती है? तेरे बच्चे का कल्याण हो। दे, जल्दी दे डाल।

प्रौढा—(कुछ रोनी सी होकर) नही भइया, अब मेरे पास रुपये नही हैं। और रुपये कहां से लाऊँ?

पहला कर्म०—अरे यह गले मे सोने का जन्तर जो है। इसे सराफ के यहाँ रखने से क्या पाँच रुपये भी

नही मिलेगे? कहे तो आदमी साथ कर दे। वह दुकान दिखला देगा। फिर किसी दिन आकर छुडाकर ले जाना।

[एक स्त्री को घेरे हुए पाँच-सात भिखारिनो का प्रवेश]

पहली भिखारिन—दे मा, तेरे बेटे-बेटियो का कल्याण हो।

दूसरी भिखारिन—दे मा तेरी लडकी और जवाई का कल्याण हो।

तीसरी भिखारिन—दे मा तेरे बाप मां का .

चौथी भिखारिन—दे मा तेरे स्वामी और पुत्र का

[सब मिलकर धक्कमधक्का और खीचातानी करने लगती हैं]

दाढीवाला यात्री—मैं दाढी और बाल नही देना चाहता और मनौती भी नही उतारना चाहता।

मन्नतवाली प्रौढ़ा-अरे भइया, यह तो मेरे इष्टदेव का जन्तर है। इसे मैं कैसे बन्धक रखूँ?

भिखारियो से घिरी हुई स्त्री—अरे मैं तो लुट गयी। किसी ने मेरी गाठ काट के रुपये ही ले लिये!

भिखारिनियाँ—तेरे स्वामी और पुत्र का कल्याण हो, दे दे माँ, एक पैसा दे, एक अधेला दे।

पहला कर्म०—अरी माई, तू बाल-बच्चे वाली है और यह बाबा का स्थान है।

हज्जाम— दाढी बनवाओगे?

यात्री—मैं दाढी बनवाऊँगा? रहने दो, यह तारकनाथ के सिर रहे। मैं घर जाता हूँ। (प्रस्थान)

भिखारिनो से घिरी हुई स्त्री—अरे अब मैं घर कैसे जाऊँगी। किसी ने मेरी गाँठ ही काट ली है।

भिखारिने—दे माँ, एक पैसा। दे माँ, एक अधेला।

(कहते-कहते सब उसे ठेलते ले जाते हैं)

मन्नतवाली प्रौढ़ा—दोहाई बाबा तारकनाथ की, मेरे इष्ट देवता का जन्तर मत छीनो।

(लडके का हाथ पकडे हुए जल्दी से प्रस्थान)

पहला कर्म०—एक रुपये से ज्यादा वसूल नही हो सका

दूसरा कर्म०—अरे उस अभागिन के पास और कुछ था ही नही। (प्रस्थान)

हज्जाम—चलो, चार ही आने सही। कही सिर पटकने पर भी तो चार आने नही मिलते।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[तारकेश्वर मे रमा का मकान। एक मामूली-सा बिछौना बिछा है। उस पर रमेश बैठा है। रमा घबराई हुई आती है।]

रमा—आप भी खूब हैं। मैं जरा उधर रसोईघर में एक और तरकारी लाने के लिए गयी कि आप उठकर हाथ-मुँह धोकर मजे मे भले आदमियो की तरह बिछौने पर आ बैठे। बतलाइए, आप उठ क्यो बैठे।

रमेश—डर से।

रमा—डर से? किसके डर से? मेरे?

[इतना कहकर रमा पास ही बैठ जाती है।]

रमेश—तुम्हारा भय तो था ही, पर साथ ही एक डर और भी था आज कुछ बुखार-सा मालूम हो रहा है।

रमा—बुखार-सा मालूम हो रहा है? आपने यह पहले ही क्यो नही कहा? आप स्नान करके खाने के लिए क्या समझकर बैठ गये थे।

रमेश—बिलकुल मामूली बात समझकर। जो इतनी तैयारी करके और इतने यत्न से खिलावे, उसे यह कहकर निराश करना कहाँ तक मुनासिब हो सकता है कि मैं नही खाऊँगा! सोचा कि बुखार आता है तो आने दो, दवा खाने से अच्छा हो जायगा। तुम्हारी बनाई रसोई न खाकर अगर यो ही रह जाता तो फिर उसकी पूर्ति इस जीवन मे न हो सकती।

रमा—बस बस, रहने दीजिए। इस परदेस मे अगर सचमुच बुखार आ जाय तो भला आप ही बतलाइए कि कितना बुरा हो?

रमेश—बुरा तो है ही, लेकिन जिस रानी को इतना-सा देख पाया हूँ, उसके हाथ का भोजन न करना भी क्या कम बुरा होता?

रमा—इतने पर ही यह कहते हैं ! इस परदेस मे तो मैं कोई तैयारी कर ही नही सकी।

रमेश—तैयारी की बात सोचता ही कौन है? सोचता हूँ केवल आदर और यत्न की बात, भला यह मैं कहाँ पाता?

रमा—(लज्जित होकर) क्या आपके यहाँ यत्न करने वालो की कोई कमी है?

रमेश—भला, तुम्ही बतलाओ कि इतना यत्न कहाँ पाता ! छुटपन में ही माँ मर गयीं। इसके बाद ताईजी के पास कुछ दिन ही रहा और तब अपने मामा के घर बहुत दूर चला गया। मामी तो मर ही चुकी थीं, इसलिए सारा घर होटल की तरह था। वहाँ से पढ़ने के लिए इलाहाबाद गया। वहाँ भी होटल ही नसीब हुआ। इसके बाद गया इजीनियरिंग कालेज मे। वहाँ बहुत दिनो तक रहना पडा, लेकिन लडकपन से होटल में रहने का जो दु:ख भोगता आ रहा था, उसका फिर भी अन्त न हुआ। अगर खाना हो तो खा लो। न तो बाधा देनेवाला कोई शत्रु ही था और न आगे बढा देने वाला कोई मित्र।

(रमा चुप रहती हैं)

रमेश—शरीर ठीक नहीं है, इसलिए जी भरकर खा न सका। फिर भी ऐसा मालूम होता है कि मानो मेरे जीवन का यह पहला सुप्रभात है। इस जीवन की सारी धारा मानो एक ही बार मे एकदम बदल गयी।

रमा— (सिर नीचा किये हुए) आप सब बातो को इतना बढा चढ़ाकर क्यो कह रहे हैं?

रमेश—अगर बढाने की शक्ति होती तो जरूर बढ़ाता। लेकिन वह नही है।

रमा—चलो, मेरे बडे भाग्य हैं कि वह नही है, अन्यथा अधिक शक्ति होती तो शायद मुझे यहाँ से भाग जाना पड़ता। और फिर यह भी मेरा बडा भाग्य है कि घर लौटकर आप मेरी निन्दा नही करेंगे। चारों तरफ लोगों से यह तो नही कहते फिरेंगे कि रमा ने बुलाकर पेट-भर खाने को भी न दिया।

रमेश—नही, रानी, निन्दा नही करूँगा और प्रशसा भी नहीं करता फिरूँगा। मेरा आज का दिन निन्दा और प्रशसा दोनों के बाहर है। वास्तव मे खाने-पीने में पेट भरने के सिवा और भी कुछ है, आज से पहले यह मानो मैं जानता ही न था।

रमा—आज ही पहले-पहल मालूम हुआ है?

रमेश—हाँ, आज ही मालूम हुआ है।

रमा—अभी इससे भी अधिक जानने को बाकी है। लेकिन उस दिन आप मुझे खबर भेज दीजिएगा।

रमेश—इसका मतलब?

रमा—सब बातों का मतलब जानना ही होगा, इसका भी भला क्या मतलब है? अच्छा, सच तो कहिए कि क्या आप उस समय मुझे बिलकुल ही नही पहचान सके थे?

रमेश—भला, तुम्ही बतलाओ कि कैसे पहचानता? वही लडकपन मे देखा था। उसके बाद लौटकर आने पर तो मैं तुम्हारा मुँह देख ही नही पाया। जब जब देखने की चेष्टा की तब तब या तो तुमने मुँह फेर लिया और या फिर दूसरी तरफ देखने लगी। तभी तो आज हठात् जान पडा कि शायद यह मुख मैंने कभी स्वप्न मे देखा है। ऐसा स्वप्न तो...

रमा—अच्छा आप रात को क्या खाते हैं?

रमेश—जो कुछ मिल जाता है, वही।

रमा—और यह तो बतलाइए कि आप इतने ला-परवाह क्यो हैं? सुनती हूँ कि इस बात का कोई ठिकाना नही रहता कि कब कौन-सी चीज कहाँ रहती है और कहाँ जाती है। मानो किसी चीज पर कोई माया-ममता है ही नही। मानो सभी कुछ शून्य मे डूबता-उतराता रहता है।

रमेश—मेरी इतनी निन्दा किससे सुनी?

रमा—यह जानकर आप क्या करेंगे? क्या घर लौटकर उसके साथ झगडा करेंगे?

रमेश—क्या मैं लोगो के साथ खाली झगडा ही करता फिरता हूँ?

रमा—यही तो करते हैं। जब से आये हैं, तब से मेरे साथ तो बराबर झगडा ही कर रहे हैं। क्या मौसी

ही घर की मालिक हैं? या मैंने उन्हें सिखला दिया था कि जिससे उनके मना कर देने पर आपने मेरा मुँह तक देखना बद कर दिया? ताल की मछलियाँ क्या मैंने चुराई थीं जो मेरे पास आपने उसकी कैफियत माँगने के लिए आदमी भेज दिया?

रमेश—कैफियत तो नही माँगी थी, सिर्फ जवाब चाहा था। लेकिन उस जवाब की तो कोई अमर्यादा नही हुई, रानी।

रमा—नही हुई। लेकिन अमर्यादा नही हुई इसी से तो उसकी सारी अमर्यादा का भार मेरे सिर आ पडा है। क्या इसका भार मैं अनुभव नही करती या इस दण्ड को नही समझती? गाँव-भर मे अगर आपके खिलाफ कोई आदमी कुछ करेगा तो क्या उसके लिए जवाबदेह मैं ही होऊँगी? क्या आपकी सारी नाराजगी आकर मेरे ही सिर पडेगी? मालूम होता है कि आप परदेस से यही न्याय सीखकर आये हैं।

[दासी का प्रवेश]

दासी—दीदी, क्या नटवर सब सामान बाँधे? नही तो छः बजे की गाड़ी नहीं मिलेगी।

रमा—कुमुदा, इसके लिए आखिर इतनी जल्दी क्यों है?

दासी—बादल घिर आये हैं। मालूम होता है रात को बहुत पानी बरसेगा।

रमा—बरसा करे। तुम लोग मैदान में थोड़े ही बैठी हो।

दासी—नही, उससे कह देती हूँ। [प्रस्थान]

रमेश—शायद सध्या की गाडी से तुम लोगो का जाने का विचार है?

रमा—हाँ, और आपका?

रमेश—मेरा? मुझे तो जैसे-तैसे कल का दिन यहाँ बिताना ही पडेगा।

रमा—एक तो आपका शरीर अच्छा नहीं है, तिस पर बरसात के दिन हैं। आखिर आप रहेगे कहाँ?

रमेश—कही भी रह जाऊँगा। इतने लोग जो यहाँ पूजा के लिए आते हैं; आखिर वे भी तो कही ठहरते हैं?

रमा—उन लोगों के लिए तो जगह है। आप तो पूजा करने आये नही हैं, तब आपको कोई क्यों ठहरने देगा?

रमेश—(हँसकर) क्या उनके चेहरे पर नाम लिखा रहता है?

रमा—(हँसकर) हाँ, लिखा रहता है। भक्त लोग बाबा तारकनाथ की कृपा से उसे पढ सकते हैं और अ-भक्तों को दूर कर देते हैं। आप बिछौना-उछौना भी तो अपने साथ नही लाये हैं?

रमेश—नही। बिछौना उन लोगों ने लाने के लिए कहा था।

रमा—बहुत बढ़िया इन्तजाम है! शरीर अच्छा नही है, आकाश में बादल छाये हुए हैं; साथ मे नौकर-चाकर नही है; न ओढना है न बिछौना है, न खाने-पीने का कोई बन्दोबस्त है। फिर भी किसी बात की चिन्ता का नाम तक नहीं है! कौन, कब, कहाँ से आवेगा, उसी पर निर्भर हैं। बिलकुल परमहसों वाली अवस्था है। आखिर आपकी यह हालत हुई कैसे?

रमेश—जिसका कही कोई न हो, उसकी अपने आप ही हो जाती है।

रमा—यही तो देख रही हूँ। न हो तो आज इसी मकान मे रह जाइए।

रमेश—लेकिन जिनका मकान है..

रमा—उन्हे कोई उजर न होगा। वे ऐसे नाचीजो पर बहुत दया करते हैं और ठहरने भी देते हैं।

रमेश—लेकिन रमा, तुम्हें यह बिछौना रख जाना होगा।

रमा—हाँ, रख जाऊँगी। लेकिन देखिए, लौटा दीजिएगा, कही खो मत दीजिएगा।

रमेश—बिछौना कैसे खोऊँगा? तुम मुझे न जाने क्या समझती हो! किसी ने मेरे बारे मे तुम्हारा खयाल बिलकुल बिगाड दिया है।

रमा—(हँसकर) और कौन खयाल बिगाड़ेगा? शायद मौसी ने ही बिगाड़ दिया है। लेकिन वे यहाँ नहीं हैं, आप निर्भय होकर विश्राम कीजिएगा। तब तक मैं कुछ और काम-काज निबटा लूँ।

[जाने के लिए उठकर खडी होती है।]

रमेश—जिनका मकान है उनके साथ अगर परिचय न होगा तो—

रमा—उनके साथ तो आपका बहुत छोटी अवस्था से परिचय है। चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं

है। लडकपन मे जिसे रानी कहकर पुकारा करते थे उसी का यह मकान है।

रमेश—यह तुम्हारा मकान है? यहाँ मकान किसलिए?

रमा—कहा तो कि यह जगह मुझे बहुत अच्छी लगती है, इसलिए मैं प्राय. यहाँ आया करती हूँ।

रमेश—ठाकुर जी पर तुम्हारी बहुत भक्ति है?

रमा—इसे भक्ति नहीं कहते। लेकिन जब तक जीती हूँ, तब तक कुछ चेष्टा तो करनी ही होगी।

[दासी का प्रवेश]

दासी—दीदी, पानी बरसना शुरू हो गया है, आज चलने मे कष्ट होगा।

रमा—तो आज नही जायँ। नटवर से कह दो कि कल चलेंगे।

दासी—तब तो जान बची। लेकिन बात तो आज ही जाने की थी। घर पर वे लोग फिकर करेंगे?

रमा—कुमुदा, बीच-बीच मे थोड़ी चिन्ता करना अच्छा होता है। चल मैं आती हूँ।

(दासी का प्रस्थान)

रमेश—केवल मेरे ही कारण आज तुम्हारा जाना न हो सका।

रमा—आपके कारण नही, आपकी बीमारी के कारण। मुँह देखने से ही अच्छी तरह मालूम हो रहा है कि शायद बुखार आवेगा। इस अवस्था मे छोडकर मैं जाऊँ भी कैसे?

रमेश—मैं तो तुम्हारा कोई नही हूँ रमा, बल्कि रास्ते का काँटा हूँ। फिर भी एक गाँव के आदमी की हैसियत से आज जो आदर यत्न तुम्हारे निकट पाया है, वह मुँह से कहने का नहीं है।

रमा—तो फिर मत ही कहिए। और दो दिन बाद यदि आप इसे भूल भी जायँगे तो मैं इसकी शिकायत नही करूँगी।

[रमा फिर चलने को तैयार होती है]

रमेश—आशीर्वाद देता हूँ रमा, तुम सुखी रहो, दीर्घजीवी हो।

रमा—(सहसा लौटकर और खडी होकर) रमेश भइया, अब मैं सचमुच नाराज हो जाऊँगी। मैं हिन्दू विधवा हूँ। मुझे दीर्घजीवी होने के लिए कहना मानो मुझे शाप देना है। हम लोगों का कोई भी शुभाकाक्षी कभी इस तरह का आशीर्वाद नही देता। अब मैं जाती हूँ।

(जल्दी से प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

[गाँव का रास्ता। समय प्राय तीसरा पहर। लगातार तीन दिन तक पानी बरसते रहने के कारण ताल-पोखर और नाले आदि जल से बिलकुल भरे हुए हैं। रास्ते मे बहुत अधिक कीचड है। अभी थोडी ही देर पहले वर्षा रुकी है। हाथ मे छडी और छाता लिये हुए वेणी और गोविन्द का प्रवेश। दुर्गम रास्ते से चलने के चिन्ह उनके सारे शरीर पर मौजूद हैं।]

गोविन्द—(आड मे से जोर से) मैं कहता हूँ कि आखिर इतना मुलाहजा किस बात का! बडे रिश्तेदार बनकर आये हैं कहने के लिए कि बाँध काट दो और पानी निकाल दो, नही तो खेत डूब जायँगे। डूबते हो तो डूब जायँ। बडे बाबू, समझ मे ही नही आता कि इन नीच जात के लोगों का यह हौसला देखकर मैं हँसूँ या रोऊँ।

वेणी—हाँ देखो तो चाचा! इन किसान सालो के सौ बीघे के खेत डूब जायँगे, इसलिए कहते हैं पानी निकाल दो! सामने के ताल का सालाना दो सौ रुपया जल-कर देना पडता है। पानी निकाल देने पर क्या फिर उसमे एक भी मछली रह जायगी?

गोविन्द—मछली भला रह सकती है?—तुम साले नीच जात के लोग हो। कभी एक साथ दो रुपयों का भी तो मुँह नही देखा होगा। जानते हो कि दो-दो सौ रुपयो का एक साथ नुकसान किसे कहते हैं? आदमी तो सब तैनात कर रक्खे हैं न? लुक-छिपकर ये साले कही से कुछ काट-कूट तो नही देंगे? बडे बाबू, कुछ कहा नही जा सकता। जान पर आ पडने पर ये साले सब कुछ कर सकते हैं।

वेणी—दरबान और गोपाल को पहरा देने के लिए भेज दिया है। उधर रमा के पीरपुर में जो अकबर लठैत रहता है उसे और उसके दोनो लडके के पास भी खबर भेज दी है। वे लोग सौ आदमियो मे मोरचा ले सकते है।

गोविन्द—वेटा, तुमने यह ठीक किया। मैं तो चिलम पर तमाखू रख कर फूंक ही रहा था कि तुम्हारा नौकर जा पहुँचा। मैंने पूछा कि इस तरह पानी मे भीगते हुए कैसे आया हरी? उसने कहा कि वडे बाबू आपको बुला रहे हैं। वेटा, मैं झूठ नही कहूँगा, हाथ का हुक्का हाथ मे ही रह गया, एक कश तक खीचने का समय नही मिला। तुरन्त छाता और छडी हाथ मे लेकर निकल पडा। तुम्हारी चाची ने कहा कि इस आँधी-पानी मे कहाँ जाते हो? मैंने कहा—चुप भी रहो। लगी फिर पीछे से टोकने।—देखती नही हो कि वडे बाबू ने बुलवा भेजा है? फिर इसमे आँधी कैसी और पानी कैसा?

वेणी-चाचा, तुम तो जानते ही हो कि मैं विना तुमसे पूछे एक पैर भी आगे नहीं रखता। जब मेरे पास रोने-धोने से कुछ नही हुआ तब सब साले गये छोटे बाबू के यहाँ दरबारदारी करने। वह तो है विलकुल बैल गँवार, उसका क्या, कही कह न बैठे कि हमारा नुकसान होता है तो होने दो, तुम लोग काट दो बाँध।

गोविन्द—कह सकता है। वडे वावू, वह हरामजादा सब कुछ कह सकता है। (कुछ धीमे स्वर मे) मैं कहता हूँ कि रमा के पास तो खबर भेज दी है न? उस छोकरी का भी मिजाज सदा ठीक नही रहता। गरीब दुखियो का रोना-धोना देखकर कही वह भी सम्मति न दे बैठे।

वेणी—नही चाचा, उसका डर नही है। उसे मैंने सबेरे ही समझाकर दवा दिया है। कल रात मे ही कुछ कुछ काना-फूसी सुन रहा था न। देखो, फिर कई साले इसी तरफ आ रहे है।

[कई कृषकों का प्रवेश। वे लोग सिर से पैर तक पानी और कीचड मे लथपथ हैं।]

कृषकगण—(एक स्वर मे) दोहाई वडे वावू की। गरीबो को बचाइए। अगर यह फसल सड गयी तो हमारे वाल-वच्चे भूखो मर जायँगे।

गोविन्द—क्यो जी सनातन, तुम लोग छोटे वावू के पास दौडे गये थे। अब बचावे न वे?

सनातन—गागुली महाराज, जो गये हैं वे गये हैं। हम लोग तो इन्ही चरणो को जानते हैं और इन्हे ही पकडे रहेंगे।

[वेणी वावू के पैरो पडकर रोने लगता है।]

दूसरा कृषक—(वेणी वावू के पैरो पडकर) हम लोगो को वचाना चाहे तो बचावे और मारना चाहें तो मार डाले। हम आपके चरण नही छोडेंगे।

वेणी—(जोर से अपने पैर छुडाकर) जाओ जाओ, हम अपने जल-कर के दो सौ रुपयो का नुकसान नही कर सकेंगे। चलो चाचा, हम चले। हमको और भी काम हैं।

[वेणी और गोविन्द चलने के लिए तैयार होते हैं]

कृषकगण—वडे वावू, गागुली महाराज तो क्या सचमुच हम लोग मारे जायँगे?

गोविन्द—(लौटकर खडे होकर कुछ मुँह बनाकर) हम क्या जाने कि मारे जाओगे या बचोगे।

(दोनो का प्रस्थान)

कृषकगण—हे भगवान्! क्या सचमुच ही दुखियो को मार डालोगे? तुम ऊपर बैठे हुए सब कुछ देख रहे हो, फिर भी कुछ उपाय नही करोगे?

(सबका जल्दी से प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[रमा के मकान का बाहरी हिस्सा। समय सन्ध्या। आँगन मे एक ओर चडीमडप का कुछ हिस्सा दिखाई देता है और दूसरी ओर तुलसी का छोटा-सा चौरा है। रमा सन्ध्या का दीपक हाथ मे लेकर धीरे-धीरे आती है और तुलसी के चौरे के पास दीपक रखकर और गले मे आँचल डालकर प्रणाम करती है। उसी समय रमेश हौले से आते हैं और उसके झुके हुए सिर के पास खडे हो जाते हैं।]

रमा—(सिर उठाकर और अचानक रमेश को सामने देखकर आश्चर्यपूर्वक) हैं! आप कहाँ से?

रमेश—रमा, मुझे एक बहुत जरूरी काम से आना पडा है।

रमा—(कुछ मुस्कराकर) यह तो खूब आना है। अगर कोई देख ले तो यही समझे कि मैं दीपक जलाकर इतनी देर तक आपको ही प्रणाम कर रही थी! भला, इस तरह आकर खडा होना चाहिए?

रमेश—रमा, मैं केवल तुम्हारे पास आया हूँ।

रमा—(हँसकर) यह तो मैं जानती हूँ। और नही तो मैं कब कहती हूँ कि आप मौसी के पास आये हैं?

[इतना कहकर और दीपक हाथ मे लेकर रमा खडी हो जाती है।]

रमा—कहिए, क्या आज्ञा है?

रमेश—निश्चय ही तुम सब बाते सुन चुकी हो। पानी निकाल देने के लिए मैं तुम्हारी राय लेने आया हूँ।

रमा—मेरी राय?

रमेश—हाँ, तुम्हारी राय लेने के लिए यहाँ तक दौडा आया हूँ। रमा, मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि दुखियो की इतनी बडी विपत्ति के समय तुम कभी 'ना' न करोगी।

रमा—पानी निकाल देना तो अवश्य उचित है। लेकिन रमेश भइया, यह काम होगा किस तरह? बडे भइया की तो राय नही है।

[वेणी और गोविन्द का प्रवेश]

वेणी—नही, मेरी राय नही है। और क्यो होने लगी? तुम्हे यह भी खबर है कि दो-तीन सौ रुपयो की मछलियाँ निकल जायँगी? यह रुपया क्या किसान लोग दे देगे?

रमेश—किसान तो गरीब हैं, वे इतना रुपया कहाँ से लावेगे? बडे भइया, जरा आप इस मामले को अच्छी तरह समझ देखे।

वेणी—सो देख लिया है। लेकिन रमेश, यह बात तो समझ मे नही आती कि हम लोग आखिर अपने इतने रुपयो का नुकसान क्यो करे। (गोविन्द से) चाचा, देखा, हमारे भाई साहब इसी तरह जमीदारी करेगे। अरे रमेश भइया, सबेरे से अब तक वे सब हरामजादे मेरे यहाँ ही पड़े हुए रो-गा रहे थे। मैं सब जानता हूँ। मैं पूछता हूँ कि क्या तुम्हारे यहाँ दरवान नही है? या उसके पैरो मे चमरौधा जूते नही हैं? जाओ, अपने घर जाकर यही इन्तजाम करो। पानी आपसे आप निकल जायगा। (इतना कहकर गोविन्द के साथ मिलकर ही ही हा हा करके हँसने लगते हैं)

रमेश—लेकिन बडे भइया, यह समझ लीजिए कि अगर हम तीनो आदमी अपने दो सौ रुपयो का नुकसान बचाने के फेर मे रहेगे तो उन गरीबो का साल-भर का अन्न मारा जायगा। चाहे जैसे हो उनका पाँच-सात हजार रुपयो का नुकसान हो जायगा।

वेणी—हो जायगा तो हो जाने दो। उनका चाहे पाँच हजार का नुकसान हो और चाहे पचास हजार का, यहाँ तो सारा सदर खोद डालने पर भी पाँच पैसे बाहर नही निकलेगे। भइया, इन सालो के लिए दो दो सौ रुपये बिगाड डाले जायँ?

रमेश—तो फिर ये लोग साल-भर खायँगे क्या?

वेणी—(हँसकर, सिर हिलाकर, थूककर और अन्त मे स्थिर होकर) खायँगे क्या? तुम देखना ये साले जमीन बन्धक रखकर हम हीं लोगो के पास रुपये उधार लेने के लिए दौडे आवेगे। भइया, जरा अपना मिजाज ठढा रखकर काम करो। अपने पूर्वज किसी तरह जोड-जाडकर यह जो थोडी-सी जूठन छोड गये हैं, सो हम लोगो को भी हाथ-पैर हिलाकर, जोड-जाडकर, खा-पीकर फिर अपने लडके-बालो के लिए रख जाना है।—वे लोग खायँगे क्या? उधार कर्ज लेकर खायँगे। नही तो इन सालो को फिर छोटी जात क्यो कहा जाता है?

गोविन्द—बबुआजी, यह तो ऋषियो-मुनियो और शास्त्रो का वाक्य है। यह कोई हमारी तुम्हारी बात तो नही है।

रमेश—बडे भइया, जब आप निश्चय कर चुके हैं कि कुछ भी न करेगे, तो फिर व्यर्थ बहस करने मे कोई लाभ नही है।

वेणी—नही, बिल्कुल नही। (रमा से) रमा, तुम्हारे पीरपुर वाले अकबर अली और उसके लडको के पास खबर भेज दी गयी है। (गोविन्द से) चलो चाचा, जरा हम लोग उधर भी चलकर देख-सुन आवे। सन्ध्या हो रही है।

गोविन्द—चलो भइया, चलें।

[दोनो का प्रस्थान]

रमेश—रमा, तुम अपनी सम्मति दे दो। खाली उनके मंजूर न करने से ही इतना अन्याय नहीं हो सकता। मैं अभी जाकर बाँध काटे देता हूँ।

रमा—लेकिन मछलियो के रोक रखने का क्या बंदोबस्त करेंगे?

रमेश—जल इतना अधिक है कि मछलियो को रोकने का कोई बंदोबस्त हो ही नही सकता। यह हानि हम लोगो को बरदाश्त करनी ही पड़ेगी, नही तो सारा गाँव मारा जायगा।

[रमा चुप रह जाती है।]

रमेश—तो फिर तुम्हारी अनुमति है?

रमा—नही, मै इतने रुपयो का नुकसान नही उठा सकूँगी। इसके सिवा यह सम्पत्ति मेरे भाई की है। मैं तो उसकी अभिभाविका मात्र हूँ।

रमेश—नही, मैं जानता हूँ, इसमे आधी-सी सम्पत्ति तुम्हारी भी है।

रमा—सिर्फ नाम के लिए। पिताजी अच्छी तरह जानते थे कि सारी सम्पत्ति यतीन्द्र को ही मिलेगी। इसीलिए वे आधी सम्पत्ति मेरे नाम लिख गये हैं।

रमेश—(विनयपूर्ण स्वर मे) रमा, यह कितने से रुपयो की बात है? फिर तुम्हारी अवस्था और सबसे अच्छी है। तुम्हारे लिए यह नुकसान नुकसान नही है। मै प्रार्थना करता हूँ कि मैंने यह स्वप्न मे भी नही सोचा था कि तुम इतनी निष्ठुर हो सकोगी।

रमा—अगर अपना नुकसान न कर सकने के कारण मैं निष्ठुर ठहरूँ, तो खैर, निष्ठुर ही सही। और फिर अगर आपको इतनी ही दया है तो आप स्वय ही इस हानि की पूर्ति क्यो नही कर देते?

रमेश—रमा, मनुष्य की परख तभी होती है जब रुपयो का मामला आकर पडता है। इसी जगह धोखा-धडी नही चलती। यही मनुष्य का सच्चा स्वरूप दिखाई दे जाता है। आज तुम्हारा भी वही सच्चा स्वरूप दिखाई पड गया। लेकिन मैंने कभी नही सोचा था कि तुम ऐसी हो। मैं समझता था कि तुम इनसे कही बढकर हो, इनसे बहुत ऊपर हो। लेकिन तुम वैसी नही हो। तुम्हे निष्ठुर कहना भी भूल है। तुम बहुत ही नीच, बहुत ही छोटी हो।

रमा—क्या कहा? क्या हूँ?

रमेश—तुम बहुत ही हीन और नीच हो। तुमने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि इस समय मैं कितना अधिक व्याकुल हो रहा हूँ, और इसीलिए तुम इस समय दुखियों की भूख के अन्न का दाम मुझसे वसूल करना चाहती हो। यह बात तो बडे भइया भी अपने मुँह से नही कह सके थे। पुरुष होने पर भी जो बात उनके मुँह से नही निकल सकी, स्त्री होने पर भी वह तुम्हारे मुँह से अच्छी तरह निकल पडी। अच्छा रमा, मैं आज तुमसे एक बात कहे जाता हूँ कि इससे भी अधिक हानि की पूर्ति मैं कर सकता हूँ, लेकिन ससार मे जितने पाप हैं उन सबसे बढकर पाप है मनुष्य की दया के ऊपर अत्याचार करना। आज तुमने वही अत्याचार करके मुझसे रुपये वसूल करने का जाल रचा है।

[रमा विह्वल और हत-बुद्धि की तरह चुपचाप देखती रहती है।]

रमेश—यह ठीक है कि तुम लोग यह बात अच्छी तरह जानते हो कि मेरी दुर्बलता कहाँ है, लेकिन वहाँ निचोडने से आज एक बूँद भी रस नही निकलेगा। लेकिन मैं क्या करूंगा, सो भी तुम्हे बतलाये जाता हूँ। मैं अभी जाकर जबरदस्ती बाँध काटे देता हूँ। अगर तुम लोग मुझे रोक सको तो रोकने की चेष्टा कर देखो।

[रमेश चलने लगता है। रमा उसे पुकारती है।]

रमा—जरा सुनिए। मेरे घर मे खडे होकर आपने जो मेरा मनमाना अपमान किया, उसका तो कोई जवाब मैं नही दूँगी। लेकिन यह काम करने की आप कदापि चेष्टा न करें।

रमेश—क्यों?

रमा—कारण, इतने अपमान के बाद भी आपके साथ झगडा करने की मेरी इच्छा नही होती। और—

रमेश—और क्या?

रमा—और—और शायद वहाँ अकबर सरदार का दल भी जा पहुँचा है।

रमेश—मैं नही जानता कि तुम्हारे अकवर सरदार के दल मे कौन-कौन हैं और जानना भी नही चाहता। लडाई-झगडा करना मैं पसन्द नही करता, लेकिन अव तुम्हारे सद्भाव का भी मेरे निकट कोई मूल्य नही रह गया है। (जल्दी से प्रस्थान)

[मौसी का प्रवेश]

मौसी—यहाँ जोर-जोर से कौन वोल रहा था? गला तो कुछ पहचाना हुआ मालूम होता है।

रमा—कोई नही।

मौसी—तो मैं क्या विना किसी के वोले ही सुन रही थी? सन्ध्या का दीपक जलाकर पूजा करने वैठी थी। ऐसा मालूम हुआ कि कोई सॉड दहाड रहा है। मुझे पूजा छोडकर आना पडा।

रमा—वह चला गया। तुम फिर जाकर पूजा मे वैठ जाओ (नेपथ्य की ओर) कुमुदा !

[दासी का प्रवेश]

कुमुदा—क्या है दीदी?

रमा—मैं जरा ताईजी के यहाँ जाऊँगी। मेरे साथ चलो।

मौसी—इस समय वहाँ किस लिए जाती हो?

रमा—देखो मौसी, सभी कुछ तुम्हे जानना होगा इसका कुछ अर्थ नही है। चलो कुमुदा।

कुमुदा—चलो दीदी। (दोनो का प्रस्थान)

मौसी—अरे वाप रे ! जैसे मार ही वैठेगी। अगर लोगो ने तारकेश्वर का हाल न सुना होता ! और मैं इसी के लिए लोगो के साथ झगडाकर करके मरती हूँ। (प्रस्थान)

[वेणी, गोविन्द, घायल अकवर और उसके दोनों लडके गौहर और उसमान प्रवेश करते हैं।]

अकवर—(खूँटी के सहारे वैठ जाता है। उसका सारा मुँह खून से तर है)—या अल्लाह !

गौहर—(अपने सिर का खून हाथ से पोछकर) क्यो अव्वा, क्या ज्यादा दरद मालूम होता है?

अकवर—या अल्लाह !

वेणी—मेरी वात सुनो अकवर, थाने चलो ! अगर सात वरस के लिए उसे जेल न भेज दिया तो मैं घोषाल-वश का लडका नही।

[रमा का प्रवेश]

रमा—हैं ! तुम लोगो का यह हाल किसने किया अकवर? (पास ही वैठ जाती है।)

अकव्वर—(आकाश की ओर हाथ उठाकर) अल्लाह ने !

वेणी—यहाँ वैठकर 'अल्लाह अल्लाह' करने से क्या होगा? मैं कहता हूँ कि थाने चलो। अगर मैं इसके वदले मे दस वरस के लिए उसे जेल न भेज दूँ तो—रमा, तुम चुप क्यो हो? इससे कहो न कि मेरे साथ थाने चले।

रमा—अकवर, तुम्हें किसने इस तरह जख्मी किया?

अकवर—छोटे वावू ने विटिया।

रमा—यह भी कही हो सकता है अकवर? क्या अकेले छोटे वावू ने तुम तीनो वाप-वेटो को घायल कर दिया? यह तो तीन सौ आदमी भी नही कर सकते !

अकवर—यही तो हुआ विटिया।—शावाश वावू ! सचमुच तुमने अपनी माँ का दूध पिया है ! लाठी चलाना इसे कहते हैं !

गोविन्द—अरे यही वात तो थाने मे चलकर कह देने के लिए कहता हूँ। तुम किसकी लाठी से घायल हुए? छोटे वावू की या उस हरामजादे भजुआ की लाठी से?

अकवर—उस ठिगने हिन्दुस्तानी की लाठी से? वह लाठी चलाना क्या जाने? क्यों रे गौहर, तेरी पहली ही चोट से वह वैठ गया था न?

[गौहर ने मुँह से कुछ नही कहा। सिर्फ सिर हिलाकर 'हाँ' कर दिया।]

अकवर—अगर मेरे हाथ की चोट वैठती तो वह वचता भी नही। गौहर की लाठी से ही वह 'वाप रे' कहके वैठ गया विटिया।

[गौहर फिर सिर हिलाता है।]

अकवर—विटिया, इसके वाद जब छोटे वावू उसके हाथ की लाठी लेकर वॉध पर जाकर अड गये

तब हम तीनो बाप-बेटे भी उन्हे वहाँ से नही हटा सके। अँधेरे मे उनकी आँखे बाघ की आँखो की तरह चमकने लगी। उन्होने कहा—अकबर, तू बूढा आदमी है, इसलिए अलग हट जा। अगर बाँध नही काटा जायगा तो गाँव-भर के लोग भूखो मर जायँगे, इसलिए इसे तो काटना ही होगा। आखिर तू भी तो खेती-बारी करता है, तेरे पास भी तो तेरे गाँव मे जमीन जायदाद है। जरा समझ देख कि अगर वह सब बरबाद होने लगे तो तुझे कैसा मालूम हो? मैंने सलाम करके कहा कि अल्लाह की कसम छोटे बाबू, तुम एक बार रास्ता छोड़ दो। बिटिया रानी ने हमे भेजा है और हम लोग अपनी जान लड़ा देना कबूल करके आये हैं। तब उन्होने चौंककर पूछा कि क्या तुम लोगो को रमा ने भेजा है, मुझे मारने के लिए अकबर? मैंने कहा कि छोटे बाबू, बाँध काटना बन्द कर दो और घर जाओ, जिससे तुम्हारी आड मे जो ये लोग धडाधड कुदाल चला रहे हैं, मैं उन सबके सिर फोडकर चला जाऊँ।

वेणी—बेईमान साले उसे सलाम बजाकर यहाँ शेखी मार रहे हैं।

[अकबर और उसके दोनो लडके प्रतिवाद करने के लिए हाथ उठाते हैं]

अकबर—खबरदार बडे बाबू! 'बेईमान' मत कहना। हम मुसलमान के लडके और सब सह सकते हैं, मगर यह नही सह सकते। (हाथ से मुँह पर का खून पोछकर) देखती हो बिटिया, ये हमे बेईमान कहते हैं! घर के भीतर बैठे हुए बेईमान कह रहे हो बडे बाबू, यदि अपनी आँखो देखते तो मालूम हो जाता कि छोटे बाबू क्या हैं।

वेणी—(मुँह चिढ़ाकर) छोटे बाबू क्या हैं! यही चलकर थाने मे क्यो नही बतला आते? कह देना कि हम लोग बाँध पर पहरा दे रहे थे। इतने मे छोटे बाबू चढ़ आये और हम लोगो को मारा।

अकबर—(जीभ काटकर)—तोबा तोबा! क्या दिन को रात कहने के लिए कहते हो बडे बाबू?

वेणी—यह नही तो और कुछ कह देना। आज रात को थाने मे चलकर अपना घाव तो दिखला आओ। कल वारंट निकलवाकर एकदम हाजत मे बन्द करा दूँगा।—रमा, जरा तुम भी इसे समझाओ न। फिर ऐसा मौका और कभी नही मिलेगा।

[रमा चुप रहती है और अकबर के मुँह की ओर देखती है।]

अकबर—(सिर हिलाकर) नही बिटिया, यह मुझसे नही होगा।

वेणी—(कडककर) क्यों, होगा क्यों नही भला?

अकबर—(क्रुद्ध स्वर से) आप भी कैसी बाते करते हैं बडे बाबू! क्या मुझमे शरम-हया नही है? क्या चार गाँव के आदमी मुझे सरदार नही कहते? बिटिया रानी, हुक्म दो तो मैं अपराधी बनकर जेल जा सकता हूँ, लेकिन फरियाद करने के लिए कौन-सा काला मुँह लेकर जाऊँ?

रमा—क्या तुम सचमुच थाने न जा सकोगे अकबर?

अकबर—नही बिटिया, मैं और सब कुछ कर सकता हूँ लेकिन थाने मे जाकर अपनी चोट नही दिखला सकता। उठो गौहर, चलो घर चलें। हम लोग नालिश-फरियाद नही कर सकेंगे।

[तीनो उठकर खडे हो जाते हैं और चलना चाहते हैं।]

गोविन्द—बडे बाबू, ये लोग तो सचमुच ही चले जा रहे हैं। यह तो कुछ भी नही हुआ!

वेणी—रमा, इन्हे रोको न! अगर यह अवसर हाथ से गँवा दिया तो फिर नही मिलने का।

[रमा चुप रहकर सिर झुका लेती है। अकबर और उसके दोनो लडके लाठी टेकते हुए किसी तरह बाहर चले जाते हैं।]

वेणी—ओह, मैंने सब समझ लिया!

गोविन्द—हूँ जो सुना गया था, मालूम होता है वह झूठ नही है।

(दोनों का जल्दी से प्रस्थान)

रमा—रमेश भइया, मैंने तो स्वप्न मे भी नही सोचा था कि तुम यह कर सकते हो और तुममे इतनी शक्ति है!

पाँचवाँ दृश्य

[गाँव का एक हिस्सा। कई टूटे-फूटे मंदिरो के भग्नावशेष दिखलाई देते हैं। सारा स्थान वृक्षो, लताओ और गुल्मो से भरा हुआ है। ऐसा मालूम होता है कि इस तरफ कदाचित् ही कोई आता जाता है।]

[वेणी और गोविन्द का प्रवेश]

गोविन्द—(चौकन्ना होकर और इधर-उधर देखकर) कोई साला यहाँ भी कहीं छिपा हुआ न सुनता हो। बबुआ, मैं तो जाल फैलाकर और उसकी डोरी हाथ में लेकर बैठा था, जरा-सा खींचा है कि धड़ाम में गिर पड़ा।

वेणी—काम तो हो गया न?

गोविन्द—और नहीं तो क्या बेटा, मैं तुम्हें यों ही इस जंगल में बुला लाया हूँ?—अबे साले भैरव आचार्य, तेरी एक कौड़ी की तो ताकत नहीं और तू जाता है हम लोगों के खिलाफ? तू चला है दूसरों को बचाने? अब पहले अपने बाप-दादा की जमीन तो बचा ले! जरा मैं भी देखूँ कि किस तरह तू अपनी लड़की का ब्याह करता है!

वेणी—तो क्या डिगरी हो गयी?

गोविन्द—(दोनों हाथों की दसों उँगलियाँ ऊपर उठाकर) एक हजार की। लेकिन बेटा, अब खाली बातों में काम न चलेगा,—आधे-आध होगा!

वेणी—(बहुत प्रसन्न होकर) अरे चाचा, आधे-आध क्यों, बल्कि दस आने और छह आने।

गोविन्द—शाबाश मेरे बेटे, जीते रहो! और सिर्फ यही नहीं बेटा, दुर्गा-पूजा आ रही है। जरा अब की बार यह भी देखना होगा कि यदु मुखर्जी की लड़की इस बार अपने यहाँ दुर्गा की स्थापना कैसे करती है! और फिर लोगों को खूब अच्छी तरह यह भी दिखला दूंगा कि अगले फागुन में वह अपने भाई का जनेऊ किस तरह करती है!—तब तो मेरा नाम गोविन्द गांगुली।

वेणी—तो फिर वह तारकेश्वर वाली घटना सच है?

गोविन्द—सच नहीं होगी? वह साला नटवर क्या कुछ बतलाना चाहता था? इनाम का लोभ दिया, पीठ पर हाथ फेरा, पुचकारा, लेकिन किसी तरह एक से दो नहीं हुआ। तब मैंने अपने पैरों की धूल उसके सिर पर लगाकर कहा कि बेटा, चाहे तुम रमा के चाकर हो और चाहे जो कुछ हो, लेकिन हो तो शूद्र ही। शूद्र के सिवा तो कुछ हो ही नहीं। बाल-बच्चे वाले ठहरे। ब्राह्मण के पैरों की धूल तुम्हारे सिर पर है। अब अगर तुम झूठ बोलोगे तो यह रात नहीं बीतने पायेगी और तुम्हें साँप डस लेगा।

वेणी—तब?

गोविन्द—साले का मुँह रुँआसा हो गया। मैंने साहस दिखलाते हुए कहा—नटवर, अगर यह नौकरी छूट जायगी तो तुम्हे बहुतेरी नौकरियाँ मिल रहेगीं, लेकिन जान चली जायगी तो फिर कभी न मिलेगी। तब उसने शुरू से आखिर तक सारा हाल कह दिया। शाम की छ बजे की गाड़ी से मालकिन घर नहीं आ सकी। छोटे बाबू रात-भर वहीं रहे। खाना, पीना, हँसी-मजाक सभी कुछ होता रहा।—जाने दो, दूसरो की चर्चा और निन्दा करने की जरूरत नहीं। लेकिन हाँ, घटना बिलकुल सही है।

वेणी—देखा न चाचा, उस दिन अकबर को किसी तरह थाने नहीं जाने दिया!

गोविन्द—भला जाने कैसे देती! अरे बेटा, कहीं जाने दिया जाता है? हरगिज नहीं।

वेणी—हूँ। देखो, अँधेरा हो रहा है। चलो चला जाय।

गोविन्द—चलो। (सहसा वेणी का हाथ पकड़कर) देखो बेटा, पहले कह रखता हूँ कि अगर भतीजा आधी जायदाद निकाल ले जायगा तो बुरा होगा। इसके लिए सावधान रहना होगा।

वेणी—चाचा, तुम बेफिक्र रहो। जब तक मैं जीता हूँ, तब तक ऐसा नहीं हो सकता।

गोविन्द—इस बार रमा को हाट का हिस्सा छोड़ देने को रास्ता न मिलेगा। सो भी तुमसे कहे रखता हूँ बड़े बाबू। लेकिन अभी ये सब बातें दबाये रखना। एकाएक कहीं जाहिर न कर बैठना।

वेणी—(कुछ मुस्कराकर) देखा जायगा। (दोनों का प्रस्थान)

छठा दृश्य

[रमेश के घर का अन्तःपुर। बहुत रात बीत जाने पर भी रमेश अपने सोने के कमरे में बैठा हुआ लिख पढ़ रहा है। अकस्मात् नेपथ्य में किसी के रोने का शब्द सुनाई पड़ता है और थोड़ी ही देर बाद गोपाल गुमाश्ते के गले से लिपटे हुए भैरव आचार्य खूब जोर-जोर से चिल्लाते हुए आते हैं। रमेश घबराकर उठ खड़ा होता है।]

भैरव—(रोते हुए) छोटे बाबू, मैं तो जान और माल दोनो से मारा गया।

रमेश—क्यो गुमाश्ताजी, क्या बात है?

गोपाल—बाबूजी काम खतम करके सोने के लिए जा रहा था कि अचानक आचार्यजी न जाने कहाँ से दौडे हुए आये और मेरे गले से लिपट गये। अब न तो ये गला ही छोडते हैं और न इनका रोना ही बन्द होता है।

रमेश—आचार्यजी, क्या हुआ है?

भैरव—बाबूजी, मैं तो बिलकुल बरबाद हो गया। अब तो मुझे लडकों-बच्चो के साथ पेड-तले ही जाकर रहना पडेगा।

रमेश—क्यो, पेड तले क्यो? मकान क्या हुआ?

भैरव—मकान कहाँ है? वह तो नीलाम हो गया।

रमेश—अभी सवेरे तक तो था, इसी बीच मे किसने नीलाम करा लिया?

भैरव—गोविन्द गागुली के चचिया ससुर कोई सनत् मुखर्जी हैं, उन्होने नीलाम करा लिया है।

(जोर से रोने लगते हैं)

गोपाल—अरे, मेरा गला तो छोडिए। बाबूजी से सब बातें समझाकर कहिये किसने लिया और क्यों लिया है। ख्वाहमख्वाह मुझे इस तरह पकडकर रखने से क्या होगा? छोडिए।

भैरव—(गला छोडकर) एक हजार सतासी रुपये पाँच आने छः पाई, बाबूजी, धन भी गया और प्राण भी।

गोपाल—रुपये उधार लिए थे?

भैरव—नही गुमाश्ताजी, एक पैसा भी नही। बिलकुल झूठ है, दस्तावेज तक झूठा और जाली है। मै तो कुछ भी नही जानता कि कब नालिश हुई, कब सम्मन निकला, कब डिगरी हुई और घर बार नीलाम हो गया। कल इधर-उधर से घुस-फुस सुनकर जब सदर गया तब पता चला कि अब बाल-बच्चो को लेकर मुझे पेड तले रहना पडेगा। एक हजार सतासी रुपये पाँच आने छ पाई—

रमेश—ऐसी वेढव बात तो कभी नही सुनी गुमाश्ताजी !

गोपाल—बाबूजी, गाँव देहात में ऐसा बहुत हुआ करता है। जो लोग गरीब होते हैं उन पर जब बडे आदमियो का कोप रहता है तब वे इसी तरह माल और जान से मारे जाते हैं। यह सब वेणी बाबू और गागुली की कारस्तानी है। आचार्यजी शुरू से ही हम लोगो की तरफ हैं, इसीलिए उन पर यह विपत्ति आयी है।

भैरव—हाँ छोटे बाबू, यही बात है। इसीलिए मुझ पर यह विपत्ति आयी है।

रमेश—लेकिन गुमाश्ताजी, अब इसका उपाय?

गोपाल—यह बडे खर्च का काम है। यह कर्ज भी झूठ है, सबूत भी झूठ हैं और इसके गवाह भी झूठे हैं। मालूम होता है कि और किसी ने इनके नाम से सम्मन ले लिया है और उसी ने अदालत मे जाकर यह भी बयान दे दिया है कि मैंने कर्ज लिया है। जब तक सदर में जाकर सब बातों का पूरा-पूरा पता न लगाया जाय, तब तक कुछ भी नही कहा जा सकता।

रमेश—तो फिर आप जायँ, सब बातों का पता लगाएँ और जितना खर्च हो, करके इसका प्रतिकार करें। ऐसा यत्न करे कि जिसमे आगे से किसी को इतना बडा अत्याचार करने का साहस न हो।

भैरव—(अचानक रमेश के पैर पकडकर) बाबूजी, आप चिरजीवी हो। धन, पुत्र और लक्ष्मी प्राप्त करके आप राजा हो। भगवान आपको

रमेश—(पैर छुडाकर) आचार्यजी, अब आप घर जायँ। जो कुछ करना मुनासिब होगा, वह मैं अवश्य करूँगा।

भैरव—भगवान आपको—

रमेश—आचार्यजी, रात बहुत हो गयी है। आज मैं बहुत थका हुआ हूँ।

भैरव—भगवान आपको दीर्घजीवी करे। भगवान आपको राजा करें—

(प्रस्थान)

रमेश—(ठडी साँस लेकर) गुमाश्ताजी, यही है हम लोगों के अभिमान का धन। यही है हमारे देश

का शुद्ध, शान्त और न्यायनिष्ठ ग्रामीण समाज !

गोपाल—जी हां यही है। सभी लोगों को मालूम हो जायगा कि यह काम वेणी बाबू का है, सभी लोग आपस में चुपचाप बाते भी करेंगे, लेकिन कोई खुलकर इस अत्याचार का प्रतिवाद नही करेगा ! उस बार गागुली ने अपनी विधवा बडी भौजाई को मारकर घर से बाहर निकाल दिया, लेकिन चूँकि वेणी बाबू उनके मददगार है, इसलिए सब लोग चुप बैठ रहे। वह रो रोकर सब लोगों से सारा हाल कहती फिरी ! सब लोगों ने यही जवाब दिया कि हम क्या करे। भगवान से कहो; वही इसका न्याय करेंगे।

रमेश—उसके बाद?

गोपाल—उसके बाद वही गागुली अब लोगो को जाति से बाहर करते फिरते हैं। इस मरे हुए ग्रामीण समाज मे इतना साहस नही कि इस बारे मे कुछ भी कह सके। लेकिन मैंने ही अपने लडकपन मे देखा है कि तब ऐसी हालत नही थी। विधवा बडी भौजाई पर हाथ छोडकर कोई सहज मे छुटकारा नही पा सकता था। उस समय समाज दड देता था और अपराधी को वह दड सिर झुकाकर स्वीकृत करना पडता था।

रमेश—तो फिर क्या अब ग्रामीण समाज कुछ भी नही रह गया?

गोपाल—जो कुछ है, सो तो जब से आप यहाँ आये हैं, तब से बराबर देख ही रहे हैं। जो पीडितो की रक्षा नही करता, जो दुखियो को केवल दु ख के मार्ग पर ढकेल देता है, उसी को हम लोग जो 'समाज' कहने का महापाप करते हैं, वह हम लोगो को बराबर रसातल की ओर ही लिये जा रहा है।

रमेश—(चकित होकर) गुमाश्ताजी, ये सब बाते आपको मालूम किससे हुई?

गोपाल—अपने स्वर्गीय मालिक से। आपने जो इस समय भैरव का उद्धार करने का विचार किया, सो यह शक्ति आपने कहाँ से पाई? वह उन्ही की दया है। छोटे बाबू, इस तरह गरीबो और विपन्नो का उद्धार करते हुए मैंने उन्हे अनेक बार देखा है।

रमेश—(दोनो हाथो से अपना मुँह ढँककर) आह पिताजी!

गोपाल—छोटे बाबू, रात प्राय समाप्त हो रही है, आप आराम करे।

रमेश—हॉ, मै सोता हूँ। आप भी घर जायँ।

[गोपाल चला जाता है। रमेश सोने की तैयारी करता ही है कि अचानक दरवाजे के पास किसी को देखकर चौंक पडता है।]

रमेश—कौन? कौन खडा है?

[यतीन्द्र दरवाजे मे से अन्दर झाँकता है।]

यतीन्द्र—छोटे भइया, मैं हूँ।

रमेश—(उसके पास पहुँचकर) कौन, यतीन्द्र? इतनी रात को? मुझे बुला रहे हो?

यतीन्द्र—जी हाँ, आप ही को।

रमेश—मुझे 'छोटे भइया' कहने को तुमसे किसने कहा?

यतीन्द्र—जीजी ने।

रमेश—रमा ने? क्या उन्होंने तुम्हे कुछ कहने के लिए भेजा है?

यतीन्द्र—नही। जीजी ने कहा कि मुझे अपने साथ छोटे भइया के यहाँ ले चलो। वे सामने ही तो खडी हैं।

(दरवाजे से बाहर देखता है)

रमेश—(घबराकर और आगे बढकर) आज मेरा यह कैसा सौभाग्य है? लेकिन मुझे न बुलवाकर इतनी रात को आप ही क्यो चली आयी? आओ, अन्दर आओ।

[रमा बहुत ही सकुचित भाव से अन्दर आती है औ दरवाजे के पास ही जमीन पर बैठ जाती है। यतीन्द्र अपनी बहन के पास बैठना चाहता है। परन्तु रमेश एक आराम-कुरसी खीचकर उसे उस पर लैटा देते हैं।]

रमा—अब रात बाकी नही है। सबेरा होना चाहता है। मै सिर्फ एक भिक्षा माँगने आयी हूँ। बतलाइए, देगे?

रमेश—मेरे पास भिक्षा माँगने के लिए आयी हो? आश्चर्य! कहो, क्या चाहती हो?

रमा—(सिर ऊपर उठाकर और थोडी देर तक रमेश की तरफ टक लगाकर देखने के बाद) पहले आप वचन दीजिए।

रमेश—(सिर हिलाकर) नही, सो नही दे सकता। बिना कुछ पूछे वचन देने की जो शक्ति मुझमे थी रमा, वह तुमने स्वय अपने हाथो से नष्ट कर दी है।

रमा—मैंने नष्ट कर दी है?

रमेश—हाँ, तुम्ही ने। तुम्हारे सिवा ससार मे यह शक्ति और किसी मे नही थी। आज मै तुमसे एक सत्य बात कहूँगा रमा, इच्छा हो तो विश्वास करना और न हो तो न करना। लेकिन वह चीज अगर मर न गयी होती और सदा के लिए बिलकुल नष्ट न हो गयी होती, तो शायद यह बात तुम्हे किसी दिन भी न सुना सकता। लेकिन आज हम दोनो मे से किसी की भी लेश-मात्र हानि होने की सम्भावना नही है, इसीलिए आज प्रकट कर रहा हूँ कि उस दिन तक भी मेरे पास ऐसा कुछ भी नही था जो तुम्हे न दे सकता। लेकिन जानती हो कि क्यो?

रमा—(सिर हिलाकर) नही।

रमेश—लेकिन सुनकर नाराज मत होना और लज्जित भी न होना। समझ लेना कि यह कोई पुराने जमाने की कहानी सुन रही हो। रमा, मैं तुमसे प्रेम करता था। मैं समझता हूँ कि जितना मैं तुम्हे चाहता था, उतना शायद कभी किसी ने किसी को न चाहा होगा। लडकपन मे माँ के मुँह से सुना था कि हम लोगो का ब्याह होगा। उसके बाद जिस दिन सब कुछ नष्ट हो गया, उस दिन इतने बरस बीत गये, फिर भी ऐसा मालूम होता है कि वह कल की बात है।

[रमेश के मुख की ओर देखकर रमा क्षण-भर के लिए सिहर उठती है। और फिर, सिर झुकाकर स्तब्ध और निश्चल बैठी रहती है।]

रमेश—तुम सोचती हो कि तुम्हे यह सारी कहानी सुनाना अन्याय है। मेरे मन मे यही सन्देह था, और इसीलिए, उस दिन भी, जब तारकेश्वर मे केवल एक दिन के आदर-सत्कार से मेरे समस्त जीवन की धारा बदल दी गयी, चुप ही रहा था। यद्यपि उस दिन मैंने कुछ कहा नही था; लेकिन, उस दिन मेरी उस नीरवता मे जो व्यथा थी, उसे मापने का मान-दड शायद केवल अन्तर्यामी के ही हाथ मे है।

रमा—(असहिष्णु होकर) जो उसके हाथ मे है, वह उसी के हाथ मे रहने दो न रमेश भइया।

रमेश—सो तो है ही रमा।

रमा—तो—तो—आज अपने ही मकान मे इस प्रकार मेरा अपमान क्यो कर रहे हैं?

रमेश—अपमान? बिलकुल नही। इसमें मान-अपमान की कोई बात ही नही है। जिन लोगो की यह कहानी सुन रही हो वह रमा भी तुम पहले कभी नही थीं और वह रमेश भी अब मैं नही हूँ।

रमा—रमेश भइया, आप अपनी ही बात कहे। रमा का हाल मैं आपसे अधिक जानती हूँ।

रमेश—जो हो, मेरी बात सुनो। नही जानता कि क्यो, लेकिन उस दिन मेरा दृढ़ विश्वास हो गया था कि तुम चाहे जो कहो और चाहे जो करो; लेकिन मेरा अमगल किसी तरह सहन न कर सकोगी। शायद सोचा था कि वह जो लड़कपन में तुमने एक दिन मुझसे प्रेम किया था और वह जो अपने हाथ से मेरी आँखे पोछ दी थी, सो शायद आज भी तुम एकदम से भूल नही सकी हो। इसीलिए निश्चय किया था कि बिना तुम्हे कोई बात जतलाये, केवल तुम्हारी छाया मे बैठकर अपने जीवन के समस्त कार्य धीरे-धीरे कर जाऊँगा। लेकिन उस रात को जब मैंने खुद अकबर के मुँह से सुना कि तुमने स्वयं ही,— अरे यह क्या? बाहर इतना हल्ला कैसा हो रहा है?

[जल्दी से गोपाल का प्रवेश।]

गोपाल—छोटे बाबू!

(अचानक रमा को देख कर स्तब्ध होकर रुक जाता है।)

रमेश—क्या हुआ है गुमाश्ताजी?

गोपाल—पुलिसवालों ने आकर भजुआ को गिरफ्तार कर लिया है।

रमेश—भजुआ को? किस लिए?

गोपाल—उस दिन की राधा पुर की डकैती में वह शामिल बतलाया जाता है।

रमेश—अच्छा, मैं आता हूँ। आप बाहर चलें।

(गोपाल का प्रस्थान)

रमेश—यतीन्द्र सो गया है। इसे सोने दो। लेकिन तुम अब यहाँ क्षणभर भी मत ठहरो। खिडकी के रास्ते से निकल जाओ। पुलिस विना तलाशी लिये नही मानेगी।

रमा—(खडी होकर भीत स्वर से) स्वयं तुम्हारे लिए तो कोई भय नहीं है?

रमेश—यह|नही कह सकता रमा। गह भी नही जानता कि मामला कहाँ तक वढ गया है।

रमा—तुम्हे भी तो गिरफ्तार कर सकते हैं?

रमेश—हाँ, कर सकते हैं।

रमा—जुल्म भी कर सकते हैं?

रमेश—यह भी असम्भव नही है।

रमा—(सहसा रोकर) रमेश भइया, मैं नही जाऊँगी।

रमेश—(डरकर) जाओगी नही!

रमा—वे लोग तुम्हारा अपमान करेंगे, तुम्हारे ऊपर जुल्म करेगे। नही रमेश भइया, मैं किसी तरह नही जाऊँगी।

रमेश—(व्याकुल स्वर से) छी छीः, तुम्हे यहाँ नही ठहरना चाहिए। क्या तुम पागल हो गयी हो रानी?

(रमेश हाथ पकडकर जवरदस्ती उसे वाहर कर देते हैं। उधर से वहुत से लोगो के पैरो की आहट और हो-हल्ला अधिक स्पष्ट होने लगता है।)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[विश्वेश्वरी का कमरा। ताईजी और रमेश।]

ताई–क्यो रमेश, क्या अपने उस पीरपुरवाले नये स्कूल मे ही व्यस्त रहते हो, हमारे स्कूल मे पढाने नही जाते?

रमेश–नही। जहाँ परिश्रम व्यर्थ हो, जहाँ कोई किसी का भला न देख सकता हो, वहाँ मेहनत करने और जान लडाने मे कोई लाभ नही। उलटे अपने ही शत्रु बढ जाते हैं। इससे अच्छा तो यही है कि जिन लोगो का मगल करने की चेष्टा मे देश का सच्चा मगल हो सकता है, उन्ही मुसलमानो और छोटे जाति के हिन्दुओ मे ही परिश्रम किया जाय।

ताई–यह तो कोई नयी बात नही है रमेश। आज तक ससार मे दूसरो की भलाई करने का भार जिस किसी ने अपने सिर लिया है, उसके शत्रुओ की सख्या सदा बढती ही रही है। इस भय से जो लोग पीछे हट जाते हैं, उन्ही के दल मे अगर तुम भी मिल जाओगे तो फिर बेटा, कैसे काम चलेगा? यह भारी बोझा भगवान ने तुम्ही को उठाने के लिए दिया है और तुम्हे ही इसे उठाकर चलना पड़ेगा। और क्यो रमेश, क्या तुम उन लोगो के हाथ का पानी पीते हो?

रमेश–(हँसकर) यह देखो, इसी बीच यह बात भी तुम्हारे कानो तक पहुँच गयी। लेकिन ताईजी, मैं तो तुम्हारा यह जाति-भेद मानता नही।

ताई–जाति-भेद नही मानते? यह क्या कोई झूठी बात है? या जाति-भेद कोई चीज ही नही है जो तुम नही मानोगे?

रमेश–जाति-भेद है, यह तो मानता हूँ, लेकिन यह नही मानता कि वह कोई अच्छी चीज है। इससे न जाने कितने वैर-विरोध और कितनी हानियाँ होती हैं। मनुष्य को छोटा मानकर अपमान करने का फल क्या तुम नही देखती ताईजी? पास मे पैसा न होने के कारण उस दिन द्वारिका महाराज का प्रायश्चित्त नही हो सका। इसी कारण कोई उनका मृत शरीर तक स्पर्श नही करना चाहता था। क्या तुम यह नही जानती?

ताई–जानती हूँ, सब जानती हूँ। लेकिन इसका असल कारण जाति-भेद नही है। इसका जो सबसे बड़ा कारण है, वह यही है कि जिसे यथार्थ धर्म कहते हैं और जो किसी समय यहाँ था, वह अब गाँवो से एकदम लुप्त हो गया है। अब बच रहे हैं सिर्फ थोड़े मे अर्थहीन आचार के कुसस्कार और इसी से ही उत्पन्न हुई व्यर्थ की दलबदी।

रमेश–क्या इसका कोई प्रतिकार नही है?

ताई–है क्यो नही बेटा, इसका प्रतिकार केवल ज्ञान है। जिस पथ पर तुमने पैर रक्खा है, केवल उसी पथ से इसका प्रतिकार हो सकता है, इसीलिए तो बेटा, मैं तुमसे बारबार कहती हूँ कि अपनी जन्मभूमि का परित्याग करके कही मत जाओ। तुम्हारी ही तरह जो घर से बाहर रहकर बडे हुए हैं, वे यदि तुम्हारी ही तरह लौटकर फिर अपने गाँवो मे आ रहते और सब प्रकार के सम्बन्ध तोडकर शहरो में न चले जाते, तो गाँवो की इतनी अधिक दुर्गति न होती। वे लोग कभी गोविन्द को सिर चढ़ाकर तुम्हे दूर न भगाते।

रमेश–ताईजी, लेकिन दूर जाने मे तो मुझे कोई दुःख नही है।

ताई–लेकिन, यही दुःख तो सबसे बढकर दु ख है रमेश। परतु यदि तुम इस तरह बीच में ही सब कुछ छोडकर चले जाओगे तो बेटा, तुम्हारी यह जन्मभूमि तुम्हे कभी क्षमा न करेगी।

रमेश—लेकिन ताईजी, जन्म-भूमि मेरी एक की ही तो है नही?

ताई—एक तुम्हारी ही क्या वेटा, केवल तुम्हारी ही मा है। तुम देखते नही हो कि माता कभी अपने मुँह से अपनी सतान से कुछ भी नही माँगती? इसलिए इतने लोगों के रहते हुए भी किसी के कानो मे रोने की आवाज नही पहुँची; लेकिन तुमने तो आते ही सुन ली।

रमेश—(थोडी देर तक सिर झुकाकर चुप रहने के वाद) ताईजी, मैं तुमसे एक वात पूछूँ?

ताईजी—कौन-सी वात?

रमेश—मैं तो तुम्हारा यह जाति-भेद मानता नही; लेकिन तुम तो मानती हो?

ताई—तुम नही मानते, इसलिए क्या मैं भी नही मानूँगी?

रमेश—किन्तु मैं तो सभी का छूआ खाता हूँ। मेरे हाथ का छूआ हुआ तो तुम खा नही सकोगी ताईजी?

ताई—खा क्यों नही सकूँगी? तुम तो मेरे लडके हो। और सो भी क्या ऐसे वैसे? वहुत वडे लडके। क्या मैं स्त्री होकर इतनी वडी हिमाकत की वात मुँह पर ला सकती हूँ?

रमेश—(झुककर और ताई के चरणों की धूल अपने मस्तक पर लगाकर) ताईजी, तुम मुझे यही आशीर्वाद दो कि मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचान सकूँ।

ताई—(उसकी ठोढी पकडकर और चूमकर) वस वस, हो गया, हो गया। लेकिन अभी तक मेरा पूजा-पाठ नही हुआ है वेटा, क्या थोडी देर वैठ सकोगे?

रमेश—नही ताईजी, मेरा स्कूल जाने का समय हो रहा है।

ताई—अच्छा तो फिर जव समय मिले, तव आना।

(रमेश और ताई का प्रस्थान।)

[एक ओर से रमा का और दूसरी ओर से दासी का प्रवेश।]

रमा—राधा, ताईजी कहाँ हैं?

दासी—अभी अभी पूजा करने गयी हैं। ज्यादा देर नही लगेगी दीदी, जरा वैठ जाओ न?

[वेणी का प्रवेश। उसके आते ही दासी वहाँ से हट जाती है।]

वेणी—तुम्हे आते देखकर आया हूँ रमा, तुमसे वहुत-सी वाते करनी है। माँ क्या पूजा करने गयी हैं?

रमा—हाँ, राधा ने यही तो कहा।

वेणी—अनेक दाव-पेच सोचकर काम करना होता है बहन, नही तो शत्रु को दुरुस्त नही किया जा सकता। उस दिन भजुआ हाथ में लाठी लेकर अपने मालिक के हुक्म से तुम्हारे घर पर मछलियाँ वसूल करने के लिए चढ आया था; उसकी रिपोर्ट अगर तुम थाने मे न लिखवा देती तो आज उस साले को इस तरह हाजत मे वन्द कराया जा सकता था? उसी के साथ अगर वहन, तुम दो-चार बातें और वढाकर रमेश का नाम भी जोड़ देती!—लेकिन उस समय तो तुम लोगो मे से किसी ने मेरी वात नही सुनी। नही नही, तुम घवराओ नही, तुम्हे वहाँ गवाही देने के लिए नही जाना पड़ेगा। और अगर जाना ही पडे, तो क्या हर्ज है? अगर जमीदारी सुरक्षित रखना है तो पीछे हटने से काम नही चल सकता।—और फिर रमेश ने भी तो कष्ट देने के लिए हमारे दादाजी के लाखो रुपये वरवाद किये हैं। पीरपुर मे स्कूल खोला है। एक तो यो ही मुसलमान प्रजा जमीदारों को मानना नही चाहती, तिस पर लिखना-पढना सीख गयी तव तो फिर हम लोगो का जमीदारी रखना और न रखना विलकुल वरावर हो जायगा। यह वात मैं अभी से कहे रखता हूँ।

रमा—अच्छा वडे भइया, यदि धन-सम्पत्ति और जमीदारी नष्ट हो जायगी तो उससे स्वय रमेश भइया की भी तो कम हानि न होगी?

वेणी—(कुछ सोचकर) हाँ। लेकिन रमा, तुम नही जानती कि ऐसे मामलो में कोई अपनी हानि का विचार ही नहीं करता। हम दोनों के परेशान होने से ही वह प्रसन्न होगा। देख नही रही हो कि जव से यहाँ आया है तव से किस तरह रुपये उडा रहा है? छोटी जाति के लोगों में 'छोटे बाबू, छोटे बाबू' की धूम मच गयी है। लेकिन यह वहुत दिनों तक नही चल सकेगा। यह जो तुमने उसे पुलिस की नजर पर चढा दिया वहन, इसी से उसका अन्त हो जायगा।

रमा—क्या रमेश भइया को इस बात का पता चल गया है कि मैंने रिपोर्ट लिखाई थी?

वेणी—मुझे ठीक तो नही मालूम, लेकिन उसे इसका पता लग तो जरूर जायगा। भज्जूवाले मामले मे आखिर सव वाते खुलेगी या नही?

रमा—(कुछ देर तक चुप रहकर) तो क्यो वडे भइया, आज-कल सव जगह सव लोगो के मुँह से उन्ही का नाम सुनाई देता है?

वेणी—हाँ, एक तरह से यह ठीक ही है। लेकिन रमा, मैं भी उसे सहज मे नही छोड़ूँगा। कोई स्वप्न में भी इस वात का खयाल न करे कि वह तो लिखा पढाकर सारी प्रजा को बिगाड दे और मैं जमीदार होकर चुपचाप बैठा हुआ सव सहता रहूँ। यह साला भैरव आचार्य भजुआ की तरफ से गवाही देकर अब अपनी-लडकी का व्याह कैसे करता है, सो भी देखना है।

रमा—वडे भइया, आप कहते क्या हैं?

वेणी—क्या एक वार हिला डुलाकर न देखना होगा? वह मेरे मुकाबले मे अदालत मे खड़ा होकर गवाही देगा, और फिर वाल-वच्चो को लेकर इस गाँव मे रहेगा इसकी खवर मुझे न लेनी होगी? और यह आचार्य तो झीगा मछली है। बडे-बडे रोहू मच्छ भी तो हैं। अब देखना है कि गोविन्द चाचा क्या कहते हैं। यहाँ डकैतियाँ तो होती ही रहती हैं। अगर इस वार नौकर को जेल भेजवा सका तो फिर मालिक को भेजने मे भी ज्यादा जोर न लगाना पडेगा।

रमा—(वहुत ही विस्मय से वेणी के मुँह की ओर देखकर) कहते क्या हो बडे भइया, तुम रमेश भइया को जेल भेजोगे?

वेणी—क्यो? क्या वह कोई पीर-पैगम्वर है? हाथ मे पाकर क्या उसे यो ही छोड देना होगा? तुम कैसी वाते करती हो!

रमा—(कोमल स्वर से) रमेश भइया अगर जेल गये, तो क्या यह हम लोगो के लिए कलंक की वात न होगी?

वेणी—क्यो? कलक किस बात का?

रमा—हैं तो वे हम ही लोगों के आत्मीय। अगर हम लोग न बचावेगे तो सब लोग हम पर ही न थूकेंगे?

वेणी—जो जैसा काम करेगा, वह वैसा फल भोगेगा, इसमे हम लोगो का क्या?

रमा—रमेश भइया कोई चोरी-डकैती तो करते नही फिरते हैं। वल्कि यह बात तो किसी से छिपी नहीं है कि दूसरो की भलाई के लिए वह अपना ही सर्वस्व लगा रहे हैं। उसके वाद हम लोगो को भी तो गाँव मे मुँह दिखलाना होगा?

वेणी—वहन, आखिर तुम्हे हो क्या गया है?

रमा—गाँव के लोग चाहे मारे डर के हम लोगो के मुँह पर कुछ न कहें फिर भी पीठ पीछे तो कहेगे ही। तुम कहोगे कि पीठ पीछे तो लोग राजा की माँ को भी डाइन कहा करते हैं। लेकिन भगवान तो हैं? अगर निरपराध को झूठ-मूठ दड दिलाया, तो भगवान तो किसी तरह नही छोडेगे!

वेणी—हाय री किस्मत! अरे वह लौंडा देवी-देवता या भगवान कुछ मानता भी है? शिव जी का मन्दिर गिरता जा रहा है। उसकी मरम्मत कराने के लिए जब उसके पास आदमी भेजा, तव उसने उसे यह कहकर घर से निकाल दिया कि जिन लोगो ने तुम्हे मेरे पास भेजा है, उनसे जाकर कह दो कि व्यर्थ के कामो में खर्च करने के लिए मेरे पास रुपये नही हैं। सुनो उसकी बात! यह तो हुआ व्यर्थ का खर्च और काम का खर्च है छोटी जात के लोगों के लिए स्कूल खोलना! फिर ब्राह्मण का लडका होकर भी वह सन्ध्या-पूजा आदि कुछ भी नही करता है और सुनता हूँ कि मुसलमानो तक के हाथ का पानी पीता है। वहन, उसने अंग्रेजी के चार पन्ने पढ लिये हैं, अव क्या उसका कोई धरम-करम रह गया है? जरा भी नही। दड उसका गया कहाँ है? सव लोग एक दिन देखेंगे कि उसका सारा दंड जमा किया हुआ रक्खा था।

[रमा चुप रहती है।]

वेणी—अव मैं जाता हूँ। समय मिला तो फिर एक वार तुमसे भेट करूँगा। वाहर शायद गोविन्द चाचा आकर वैठे होगे।

रमा—मैं भी जाती हूँ वडे भइया। (दोनो का प्रस्थान)

[रमेश का प्रवेश]

रमेश—राधा, राधा !

[दासी का प्रवेश]

राधा—क्या है छोटे बाबू?

रमेश—ताईजी पूजा करके आ गयीं? उस समय मैं उनसे एक बात कहना भूल गया था।

राधा—नही, अभी नही आयी। बुला दूँ?

रमेश—नही नही, रहने दो। उनसे कह देना कि मैं तीसरे पहर आऊँगा।

राधा—अच्छा।

[जल्दी से गोपाल का प्रवेश]

रमेश—आप यहाँ कैसे?

गोपाल—छोटे बाबू, राह देखने का समय नही है। मैं आपको चारो तरफ ढूँढता फिर रहा हूँ। सुना आपने भैरव आचार्य का हाल? कुछ सुना कि उसने हम लोगो का कैसा सत्यानाश किया है?

रमेश—कहाँ, नही तो !

गोपाल—जब मालिक स्वर्ग सिधारे, तब शोक और दुःख मे सोचा कि और नही अब शान्त रहूँगा। लेकिन नही होने दिया। किन्तु छोटे बाबू, अब आप मुझे नही रोक सकेगे। आचार्य को मै उसकी करनी का फल जरूर चखाऊँगा, जरूर चखाऊँगा। इसका बदला उससे लूँगा, लूँगा और लूँगा ! मै आज ही सदर जाता हूँ।

रमेश—गुमाश्ताजी, बात क्या है? आखिर आचार्य ने क्या किया है जो आप जैसे शान्त आदमी इतने उत्तेजित हो गये हैं?

गोपाल—आप पूछते हैं कि उसने क्या किया है? नमक-हराम शैतान कही का ! उसी समय मेरे मन में आया था कि इसकी जमीन-जायदाद नीलाम होती है तो होने दो, हम लोग इस मामले में हाथ नही डालेगे। लेकिन उसी समय डरा कि शायद स्वर्ग मे बडे मालिक दुःखी होगे। उनका स्वभाव तो जानता हूँ, इसीलिए आपको भी मना नही कर सका।

रमेश—लेकिन गुमाश्ताजी, फिर भी तो मैं कुछ नही समझा?

गोपाल—उस दिन मैं आपकी आज्ञा के अनुसार सदर मे जाकर उसकी डिगरी के रुपये जमा करके मुकदमे का सब इन्तजाम ठीक कर आया, और आज अभी अभी खबर मिली है कि परसो भैरव आचार्य ने स्वयं जाकर अदालत मे दरख्वास्त दे दी और वह मुकदमा उठा लिया। देना उसने मजूर कर लिया।

रमेश—इसका मतलब?

गोपाल— इसका मतलब यह है कि हम लोगो ने जो रुपये जमा किये थे, वे सब गये। हम लोगो के माथे पर नारियल फोडकर अब तीनों आदमी हिस्सा बाँट कर खायेंगे। गोविन्द गागुली, बडे बाबू और वह खुद। आप सुन नही रहे हैं कि सबेरे से ही आचार्य के दरवाजे पर रोशन-चौकी की शहनाई बज रही है? धूमधाम से नाती का अन्न-प्राशन होगा। उन्ही रुपयो से देश-भर के ब्राह्मण फलाहार करेगे। फिर मजा यह कि आपके लिए कोई स्थान नही है,—स्थान है गोविन्द गागुली के लिए। आपको कर दिया है उन लोगो ने जाति से बाहर।

रमेश—भैरव आचार्य? यह सब वह कर सका?

गोपाल—कर क्यो नही सकेगा? अब तो केवल यही जानना बाकी है कि गाँव-देहात के आदमी कर क्या नही सकते। अच्छा, अब मैं जाता हूँ।

रमेश—जाइए। मैं तो सिर्फ यह सोच रहा हूँ कि महापातक का प्रायश्चित्त कैसे होगा?

गोपाल—मेरी गवाही है, अदालत खुली हुई है। छोटे बाबू, मै उसे सहज मे नही छोड़ूँगा।

(प्रस्थान)

रमेश—नही जानता कि कानून क्या कहता है। यह भी नही जानता कि कृतघ्नता का कोई दण्ड अदालत मे मिलता है या नही। किन्तु वह रहने दो। आज मैं स्वय अपने ऊपर यह भार लेता हूँ। केवल सहते जाना ही ससार मे परमधर्म नही है।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[भैरव आचार्य के मकान का बाहरी भाग। दौहित्र का अन्न-प्राशन है, इसलिए बाहर दरवाजे पर मगल-घट स्थापित हैं। आम के पत्तो की बन्दनवार बाहर टॉग दी गयी है। ऑगन मे एक ओर गेशन-चौकी बजाने वालो का दल बैठा हुआ है। सामने बरामदे मे गोविन्द गागुली और वेणी घोषाल आदि बैठे हैं। कोई हँस रहा है, कोई तम्बाकू पी रहा है। एक वैष्णव और उसकी वैष्णवी दोनो मिलकर कीर्तन कर रहे हैं और सब लोग आनन्दपूर्वक सुन रहे हैं। गीत समाप्त होने पर दीनू भट्टाचार्य हुक्का रखकर बाहर जा रहे हैं। इतने मे ही रमेश वहाँ आ पहुँचते हैं। उन्हें देखने से ही पता चल जाता है कि वे बहुत ही उत्तेजित हैं। उनके अचानक आ पहुँचने से सभी लोग कुछ घबरा-से जाते हैं।]

गीत

श्रीमती करिछे वेश।
भुलाते नागर
श्याम नटवर, नाना छादे बाधे केश।
(आहा) श्रीमती करिछे वेश।
हेरिया मुकुरे, चाचर चिकुरे
बिनाये बिनाये विनोद गोखरे
राधा बांधिल कबरी कत
केह ह' लनाक मनोमत (हाय रे)
फणि गंजित वेणी विनोदिनी
दुलाइया दिल शेष
(आहा) श्रीमती करिछे वेश।
वेणी गेल छुटि, लंघिया कटि
परशि मेखला नितम्बे लुटि
चुम्बिला पाद देश।
उज्ज्वल दुटी नयन प्राते कज्जल दिलटानि
फुलधनु जिनि भ्रूयुग माझे दीपसम टिपखानि
भरिया दुकरे स्वर्णविन्दु
मार्जिल धनी बदन इन्दु
नन्दिते श्यामसुन्दर हृदि—वन्दिते कमलेश।

रमेश—आचार्य जी कहाँ हैं?

दीनू—(पास पहुँचकर) चलो भइया, चलो, घर लौट चलो। तुमने भैरव आचार्य का जो उपकार किया है, वह—उसका बाप भी न करता। लेकिन कोई उपाय भी तो नही है। सभी लोगो को बाल-बच्चो के साथ घर-गृहस्थी चलानी पडती है। अगर वह तुम्हे निमन्त्रण देने जाता तो,—समझ गये न भइया, हाँ।—इसमें भैरव को भी अधिक दोष नही दिया जा सकता। तुम लोग जात-पाँत तो मानते ही नही हो। इसीलिए—समझ गये न भइया ! दो दिन बाद उसकी छोटी लड़की का ब्याह होगा। वह भी बारह बरस की हो गई है। उसे भी तो आखिर पार करना होगा।—हम लोगो के समाज का हाल तो जानते ही हो भइया—

रमेश —जी हाँ, मैंने सब समझ लिया है। आप बतलाइए कि वह है कहाँ?

दीनू—है, है, घर मे ही है। लेकिन मैं उस ब्राह्मण को भी कैसे दोष दूँ? (सब लोगो की ओर देखकर) हम बडे-बूढ़ो को परलोक का भी तो आखिर कुछ भय—

रमेश—हाँ, हाँ, सो तो ठीक है। लेकिन भैरव कहाँ है?

[भैरव का प्रवेश]

रमा—मैं समझना भी नहीं चाहती। लेकिन तुम्हे और कही जाना ही होगा। गुमाश्ताजी से कह जाना, मैं उनका सब काम-काज देखती रहूँगी।

रमेश—मेरा काम-काज तुम देखोगी?

रमा—क्यों, नही देख सकूँगी?

रमेश—देख तो सकोगी! शायद मेरी अपेक्षा भी अच्छी तरह देख सकोगी। लेकिन इसकी जरूरत नही है। मैं तुम्हारा विश्वास कैसे करूँगा?

रमा—रमेश भइया, और लोग विश्वास नही कर सकते, लेकिन तुम कर सकोगे। अगर तुम न कर सकोगे तो ससार से विश्वास करने की वात ही उठ जायगी। तुम अपना यह भार मुझ पर छोड जाओ।

रमेश—(थोड़ी देर चुपचाप उसके मुँह की ओर देख कर) अच्छा सोचूँगा।

रमा—लेकिन सोचने-समझने का तो समय है नहीं। आज ही तुम्हें यहाँ से कहीं और चले जाना होगा। नही जाओगे तो—

रमेश—(फिर उसके मुँह की ओर टक लगाकर देखते हुए) तुम्हारी वात-चीत के ढग से मालूम होता है कि अगर न जाऊँगा तो विपत्ति आने की सभावना है। अच्छा, अगर मैं चला ही जाऊँ तो इसमें तुम्हारा क्या लाभ है? मुझे विपत्ति में डालने के लिए स्वयं तुमने भी तो कोई कम चेष्टा नही की है। जो आज और एक विपत्ति से सचेत करने के लिए आयी हो? वे सव घटनाएँ इतनी पुरानी नहीं हो गयी हैं कि तुम्हें याद न हों। वल्कि मुझे साफ-साफ वतला दो कि मेरे चले जाने से स्वय तुम्हे क्या फायदा होगा—तो शायद तुम्हारे लिए मैं राजी भी हो जाऊँ।

[इस कठोर आघात से रमा के चेहरे का रग वदल जाता है, लेकिन फिर भी वह अपने आप को सभाल लेती है।]

रमा—अच्छा, अव मैं साफ-साफ ही वतलाती हूँ। तुम्हारे चले जाने से मेरा लाभ तो कुछ भी नहीं, लेकिन न जाने से हानि वहुत होगी। मुझे गवाही देनी पडेगी।

रमेश—वस यही? सिर्फ इतनी ही वात? लेकिन अगर गवाही न दो तो?

रमा—गवाही न दूँ तो महामाया की पूजा मे मेरे यहाँ कोई न आवेगा, मेरे यतीन्द्र के जनेऊ मे कोई भोजन न करेगा, व्रत-उपवास, धर्म-कर्म,—नही रमेश भइया, तुम चले जाओ, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि चले जाओ। यहाँ रहकर मुझे सव तरह से चौपट मत करो। तुम जाओ, इस देश से चले जाओ।

रमेश—(कुछ देर चुप रहकर) अच्छा, मैं जाऊँगा। अपने शुरू किये हुए काम विना पूरा किये ही चला जाऊँगा। लेकिन मैं स्वयं अपने आपको क्या उत्तर दूँगा?

रमा—उत्तर नही है। अगर और कोई होता तो उत्तर की कमी नही थी, लेकिन रमेश भइया, एक वहुत ही क्षुद्र स्त्री की अखंड स्वार्थ-परता का उत्तर तुम कहाँ खोज पाओगे? तुम्हे निरुत्तर ही जाना होगा।

रमेश—अच्छी वात है, ऐसा ही होगा। लेकिन आज मैं नही जा सकता।

रमा—सचमुच ही नही जा सकते?

रमेश—नहीं। तुम्हारे साथ कौन आया है, उसे वुलाओ।

रमा—मेरे साथ कोई नही है। मैं अकेली ही आयी हूँ।

रमेश—अकेली आयी हो? यह कैसी वात है? रानी, अकेली किस साहस से आयी?

रमा—साहस यही कि मैं यह निश्चयपूर्वक जानती थी कि इस रास्ते में तुमसे भेंट होगी तव फिर मुझे किस वात का डर?

रमेश—यह अच्छा नहीं किया रमा। कम से कम अपनी दासी को साथ ले आना चाहिए था। इस सुनसान रास्ते मे तुम्हे मुझसे भी तो डरना उचित है?

रमा—तुमसे? मैं तुमसे डरूँगी?

रमेश—आखिर नही क्यो डरोगी?

रमा—(सिर हिलाकर) नही,किसी तरह नही। रमेश भइया, तुम मुझे और चाहे जो उपदेश दो, उसे सुन लूँगी। लेकिन तुमसे डरने का डर मुझे नही दिखलाना।

रमेश—मुझ पर तुम्हारी इतनी अवहेला है?

रमा—हाँ, इतनी अवहेला है। अभी कहते थे कि दासी को साथ न लाकर अच्छा नही किया। लेकिन मै यह भी तो सुनूँ कि किसलिए लाती? सोचा होगा कि तुम्हारे हाथो से वचने के लिए मैं दासी की शरण लूँगी? तो क्या वह तुम्हारे निकट रमा की अपेक्षा वडी हो जायगी?

[रमेश चुपचाप उसके मुँह की ओर देखते रहते हैं।]

रमा—सबेरे की वात याद नहीं है? वहाँ आदमियो की कमी नही थी। लेकिन तुम्हारी उस मूर्ति को देखकर जव सब लोग भाग गये तव भैरव आचार्य की रक्षा किसने की? इसी रमा ने। उस समय यदि किसी दासी या नौकर की आवश्यकता नही हुई तो इस समय भी नही होगी। वल्कि आज से तुम्ही रमा से डरा करो। और आज मैं यही कहने के लिए आयी थी।

रमेश—तव तो रमा, तुम व्यर्थ ही आयीं। सोचा था कि केवल अपनी भलाई के लिए ही मुझसे चले जाने के लिए कह रही हो। लेकिन जब ऐसा नही है, तव सचेत करने का कोई प्रयोजन मुझे नही दिखाई देता।

रमा—रमेश भइया, क्या संसार मे सभी प्रयोजन आँखो से दिखाई देते हैं?

रमेश—जो नही दिखाई देता उसे मै स्वीकार नही करता। मै जाता हूँ।

(प्रस्थान)

रमा—(अकस्मात् रोकर) जो अन्धा हो, उसे मैं किस तरह दिखलाऊँ?

चौथा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—रमा के पूजा वाले दालान का एक अश। दुर्गा की प्रतिमा तो स्पष्ट नही दिखाई देती, लेकिन पूजा की सारी सामग्री सामने रखी है।]

समय—तीसरा पहर। इस समय का पूजा का कार्य समाप्त हो चुका है। एक ओर रमा स्थिर भाव से बैठी है। इतने मे घर का कारिन्दा आता है।]

कारिन्दा—विटिया, समय तो जा रहा है, लेकिन शूद्रों में से तो कोई आया नही। मैं जरा चक्कर लगाकर देख आऊँ?

रमा—कोई नही आया?

कारि०—नही।

[हाथ मे हुक्का लिय हुए वेणी घोषाल का प्रवेश।]

वेणी—हिश्! इतना खाने-पीने का सामान वरवाद करने के लिए वैठे हैं छोटी जाति के लोग! इनका इतना हौसला! मै इन सालो को इसका मजा चखाऊँगा और जरूर चखाऊँगा। अगर इनका घर-वार न उजडवा दूँ तो मैं—

[वेणी के मुँह की ओर देखकर रमा सिर्फ हँस देती है, कुछ कहती नही।]

वेणी—नही नही, रमा, यह हँसी की वात नही है। बड़े भारी सर्वनाश की वात है। एक वार जव मुझे मालूम हो जायगा कि इसकी जड मे कौन है तो उसे यो उखाड फेकूँगा। ये हरामजादे साले यह नही समझते कि जिसके जोर पर इतना नाच रहे हैं, वे रमेश वावू खुद इस समय जेल मे घानी चलाते हुए मरे जा रहे हैं। फिर तुमको मारने में कितनी-सी देर लगेगी? मैंने साफ साबित कर दिया कि वह भैरव आचार्य को मारने के लिए घर पर चढ आया था और उसके हाथ मे इतनी वडी भुजाली थी। फिर कोई साला तो नही रोक सका? अरे मैं चाहूँ तो रात को दिन और दिन को रात करके दिखला दूँ! अच्छा और थोडी देर तक देखता हूँ। उसके वाद, शास्त्र मे कहा है, यथा धर्म. तथा जय.। शूद्र होकर ब्राह्मण के धर्म-कर्म में इस तरह की शरारत! अच्छा— (प्रस्थान)

[विश्वेश्वरी का प्रवेश]

विश्वेश्वरी—रमा!

रमा—क्यो ताईजी?

ताई—इस तरह चुपचाप वैठी हो वेटी! देखकर कौन कहेगा कि आदमी है! ठीक जैसे किसी ने मिट्टी की मूरत गढ रक्खी है। (धीरे-धीरे पास पहुँचकर और बैठकर) न वह हँसी है और न वह उल्लास है। मानों कही वहुत दूर चले गये हैं।

रमा—(कुछ हँसकर) इतनी देर तक घर के अन्दर क्या कर रही थी ताई जी?

ताई—तुम्हारे यज्ञवाले घर मे तो काम-काज कम नही है वेटी, खाने-पीने की चीजो का तुमने पहाड लगा रक्खा है।

रमा—लेकिन इस वार विलकुल व्यर्थ हो रहा है। जान पडता है, एक भी किसान मेरे घर माँ का प्रसाद लेने के लिए न आवेगा। लेकिन और वरसो का हाल तो तुम जानती हो ताई जी, इसी सप्तमी के दिन प्रजा की भीड को चीरकर घर के अन्दर आना मुश्किल होता था।

ताई—अव भी समय नही वीता है रमा। शायद सन्ध्या के वाद ही सव लोग आवे।

रमा—नही ताईजी, नही आवेंगे।

ताई—सभी यही वात कह रहे हैं। वेणी और गोविन्द क्रोध में भरे हुए चारों तरफ घूम रहे हैं। अन्दर

तुम्हारी मौसी के गाली-गलौज के मारे कान नही दिये जाते। सिर्फ तुम्हारे मुँह से ही मैं कोई शिकायत नही सुन रही हूँ। न तो वह क्रोध ही है और न क्षोभ। तुम्हारी आँखो की तरफ देखने से तो मालूम होता है कि उनके नीचे रुलाई का समुद्र रुका हुआ है। बेटी, तुम किस तरह इतनी बदल गयी?

रमा—ताईजी, मैं क्रोध किस पर करूँ? प्रजा के ऊपर? क्या केवल गरीब होने के कारण ही उन्हे अपनी मान-मर्यादा का बोध नही है? वे मेरी जैसी पापिष्ठा का अन्न क्यो ग्रहण करने लगे?

ताई—बेटी, भला तुम्हे पापिष्ठा कौन कह सकता है?

रमा—कहे भी तो अनुचित न होगा। वे लोग जानते हैं कि हम लोग उनको नही चाहते, हम लोग उनके कोई अपने नही हैं। ताईजी, हमने उन्हे आदरपूर्वक तो बुलाया नही, जोर से हुक्म-भर दे दिया है कि हमारे यहाँ खा जाओ। फिर भी उनके न आने से हम लोग मारे गुस्से के पागल हुए जाते हैं। लेकिन उन लोगो को आदर का स्वाद मिल गया है। रमेश भइया से उन लोगो को मालूम हो गया है कि प्रेम किसे कहते हैं। उन लोगो के उसी बन्धु को जब हम लोगो ने झूठे मुकदमे मे फँसाकर और झूठी गवाहियाँ देकर जेल मे बन्द करा दिया तब ताईजी, वे यह दु.ख भला किस तरह भुला सकते हैं?

ताई—लेकिन बेटी, तुमने तो गवाही दी नही?

रमा—मैंने झूठी गवाही नही दी? उन्हे इस बात का पूरा विश्वास था कि और जो चाहे झूठ बोले मगर मैं कभी झूठ न बोल सकूँगी। लेकिन बोल तो सकी ! रुकी तो नही ! आचार्य के कितने बडे अपराध और कितनी बडी कृतघ्नता से रमेश भइया आपे से बाहर हो गये थे, यह तो मैं जानती हूँ। और यह भी जानती हूँ कि उनके हाथ मे एक तिनका तक नही था। फिर भी अदालत मे खडे होकर स्मरण भी नही कर सकी कि उनके हाथ मे छुरी-छुरा था या नही!

ताई—रमा—

रमा—ताईजी, तुम कहती थी कि मैं झूठ नही बोली। यहाँ तक कि अदालत में हलफ लेकर झूठ शायद मैंने न बोला हो, लेकिन जिस अदालत मे हलफ नहीं ली जाती, उसके सामने पहुँचकर मैं क्या उत्तर दूँगी? हे भगवान, तुमने मुझे पहले ही क्यो न जानने दिया कि सत्य को छिपाने का इतना बडा बोझ होता है?

ताई—लेकिन बेटी, मैं तुमसे कहे देती हूँ कि रमेश को सजा हो गयी है, यह तो सत्य है, लेकिन उसका अमगल कभी नही होगा।

रमा—अमंगल होगा कैसे ताईजी जब कि आज सारे अमगल का भार मेरे सिर आ पड़ा है?

ताई—अकेले तुम्हारे ही सिर नही आ पडा है बेटी, हम सभी ने मिलकर उसका हिस्सा बाँट लिया है। अत्याचारी समाज के जिन कायरो के दल ने झूठी बदनामी का डर दिखलाकर तुम्हे छोटा बनाया है, इस पाप के भार से आज उन लोगो का सिर रास्ते की धूल मे मिल गया है। मैं वेणी की माँ हूँ। रमा, आज मेरा सिर धूल मे लोट रहा है। उसे मैं कभी न उठा सकूँगी।

रमा—ऐसी बात मत कहो ताईजी। लेकिन मैंने क्या किया था जानती हो? एक जन-शून्य अँधेरे रास्ते मे उनसे अकेले मे भेट करके समझाया था कि तुम यहाँ से चले जाओ। रमेश भइया, यहाँ मत रहो, चले जाओ। परतु उन्होने विश्वास नही किया और कहा कि मेरे चले जाने से तुम्हारा क्या लाभ होगा? मेरा लाभ? मैं अचानक मारे व्यथा के मानो पागल हो गयी। कहा कि लाभ तो कुछ नही है, लेकिन न जाने से मेरी हानि बहुत बडी होगी। मेरे यहाँ महामाया की पूजा में कोई न आयगा और मेरे यतीन्द्र के जनेऊ में कोई नही खायगा। तुम यहाँ रहकर मुझे सब तरह से बरबाद मत करो। लेकिन इतना बडा झूठ मैंने कहाँ से पाया ताईजी? उन्होंने नाराज होकर कहा कि बस यही? इतना ही? तब तो इसके लिए अपना काम छोडकर मैं किसी तरह न जाऊँगा। इस उपेक्षा से क्षुब्ध होकर मैंने सोचा कि तब हो जाने दो सजा। विश्वास था कि यों ही कुछ मामूली-सा जुरमाना हो जायगा। लेकिन वह सजा इस रूप में मिलेगी, उनके रोग-शीर्ण मुख की ओर देखकर भी विचारक को दया नही आवेगी और वह उन्हें जेल भेज देगा, यह बात तो मैं बहुत ही बडे दुःस्वप्न में भी नही सोच सकती थी ताईजी।

ताई—हाँ बेटी, यह मैं जानती हूँ।

रमा—सुना कि अदालत में वे केवल मेरे ही मुख की ओर देख रहे थे। उनके गोपाल गुमाश्ते ने अपील करनी चाही; लेकिन उन्होंने कह दिया कि नही। अगर सारा जीवन जेल में ही बिताना पड़े, तो वह भी

अच्छा, लेकिन अपील करके छूटना अच्छा नही। ताईजी, तुम्ही बतलाओ कि मेरे लिए यह कितना बडा दड है?

ताई—पर अब तो उसकी मियाद भी पूरी होना चाहती है। उसके छूटकर आने मे अब ज्यादा देर नही है।

रमा—उनकी मुक्ति हो जायगी, लेकिन उनकी उस घोर घृणा से इस जीवन में मेरी तो मुक्ति नही होगी?

[वृद्ध सनातन हाजरा को लिए हुए वेणी का प्रवेश]

वेणी—यह हमारी तीन पीढियो का आसामी है। सामने से चला जा रहा था, जब बुलाया तब कही घर के अन्दर आया। क्यो रे सनातन, इतना अभिमान कब से हो गया? तुम्हारी गर्दन पर क्या और एक नया सिर निकल आया है?

सनातन—दो सिर किसके धड पर रहते हैं बाबू? जब आप जैसो के ही नही रहते, तो फिर हम जैसे गरीबो के कैसे।

वेणी—क्या कहता है, बे हरामजादे?

सनातन—बडे बाबू, दो सिर किसी के नही रहते, बस यही बात कह रहा हूँ—और कुछ नही।

[गोविन्द गागुली का प्रवेश]

गोविन्द—हम लोग तो खाली यही देख रहे हैं कि तुम लोगो का हौसला कितना बढता जा रहा है। माता का प्रसाद लेने को भी तुम लोगो मे कोई नही आये। भला बतलाओ तो क्यो नही आये?

सनातन—(हँसकर) हम लोगो का हौसला क्या। हमारा जो कुछ करना था सो तो आप कर ही चुके। उसे जाने दीजिए। लेकिन चाहे माता का प्रसाद हो और चाहे जो कुछ हो, अब कोई कैवर्त्त किसी ब्राह्मण के घर नही खायगा। हम लोग तो केवल इसी की चर्चा करते रहते हैं कि धरती-माता इतना बडा पाप किस तरह सह रही है। (ठडी साँस लेकर और रमा की ओर देखकर) बहन, जरा सावधान रहना। पीरपुर के लडको का दल बिलकुल ही पागल हो उठा है। इसी बीच में वह बडे बाबू के मकान के चारो तरफ दो तीन चक्कर लगा गया है। खैरियत यही हुई कि बडे बाबू को कोई पा नही पाया। (वेणी की ओर देखकर) बडे बाबू, जरा सँभलकर रहिएगा, रात-बिरात बाहर मत निकलिएगा।

[वेणी कुछ कहना चाहते हैं, लेकिन मारे भय के उनके मुँह से बात नही निकलती।]

रमा—(स्नेहपूर्ण स्वर से) सनातन, मालूम होता है कि छोटे बाबू के कारण ही तुम सब लोगो की इतनी नाराजगी है!

सनातन—बहन, मैं झूठ बोलकर नरक मे नही जाऊँगा। ठीक यही बात है। फिर भी पीरपुर के लोगो का गुस्सा सबसे ज्यादा है। वे लोग छोटे बाबू को देवता समझते हैं।

रमा—(आनन्द से मुख उज्ज्वल हो उठता है) ऐसी बात है सनातन?

वेणी—(सनातन का हाथ पकडकर) सनातन, तुझे दारोगाजी के सामने चल कर कहना होगा। तू जो माँगेगा वही दूँगा। तू अपनी वह दो बीघा जमीन छुडा लेना चाहे तो वह भी छोड दूँगा। मैं ठाकुरजी के सामने कसम खाता हूँ। तू इस ब्राह्मण की बात रख दे।

सनातन—बडे बाबू, अब वह जमाना चला गया,—अब वे दिन नही रह गये। छोटे बाबू सब कुछ उलट-पुलट कर गये हैं।

गोविन्द—तो ब्राह्मण की बात नही मानेगा?

सनातन—(सिर हिलाकर) नही। गागुलीजी, कहूँगा तो तुम नाराज हो जाओगे। किन्तु उस दिन पीरपुरवाले नये स्कूल के कमरे मे छोटे बाबू ने कहा था कि गले मे दो-चार सूत डाल लेने से ही कोई ब्राह्मण नही हो जाता। और महाराज मैं कोई आज का तो हूँ नही, सब जानता हूँ। जो कुछ तुम सब करते फिरते हो, वह क्या ब्राह्मणो का काम है? बहन, मैं तुम्ही से पूछता हूँ, तुम्ही कह दो?

[रमा चुपचाप सिर झुका लेती है।]

सनातन—(मन का क्रोध दबाकर) ज्यादातर तो करता है लडको का दल। इन दोनो गाँवो के जितने छोकरे हैं, वे सब सध्या के बाद मोडल के घर जाकर इकट्ठे होते हैं और साफ साफ कहते फिरते हैं कि जमीदार हैं तो छोटे बाबू, और तो सब चोर और डाकू हैं। इसके सिवाय हम लोग मालगुजारी देगे और

रहेगे, किसी से डरेगे क्यो? अगर लोग ब्राह्मणो की तरह रहें तो ब्राह्मण है; और नही तो जैसे हम हैं, वैसे ही वे भी हैं।

वेणी—(आतक से परिपूर्ण होकर) सनातन, तुम बतला सकते हो कि मुझपर ही उन लोगो की इतनी नाराजी क्यो है?

सनातन—बडे बाबू, क्यो नही बतला सकता? यह तो सभी अच्छी तरह जान गये हैं कि आप ही सारे अनर्थों की जड हैं।

[वेणी मारे भय के चुप हो जाते हैं। अन्दर से उनका कलेजा धक् धक् करने लगता है।]

ताई—गांगुलीजी, एक छोटे आदमी के मुँह से इतनी हिमाकत की बाते सुनकर भी तुम चुप हो रहे हो? [वेणी बाबू तिरछी और गुस्से से भरी नजर से देखकर चुप रह जाते हैं।]

गोविन्द—हॉ, तो क्यो रे सनातन, विपिन मोडल के घर पर ही सब लोगो का जमावडा होता है? तू बतला सकता है कि वहाँ वे सब क्या करते हैं?

सनातन—क्या करते हैं सो नही जानता। लेकिन महाराज, भला चाहते हो तो कोई और बुरी चाल मत सोचना। उन सब छोटे-बडो ने मिलकर आपस मे भाईचारा कायम कर लिया है। सब एक-मन और एक-प्राण हैं। छोटे बाबू को जेल हो जाने से मारे गुस्से के बारूद हो रहे हैं। उन लोगो के बीच में पहुँचकर चकमक रगडकर आग मत सुलगाने लग जाना। बस, मैं आप लोगो को होशियार किये जाता हूँ।

(प्रस्थान)

[सनातन के चले जाने पर सब लोग कुछ देर तक चुप रहते हैं।]

वेणी—रमा, सुन लिया सब हाल?

[रमा कुछ हँसती है, कोई उत्तर नही देती। उसकी हँसी देखकर वेणी के सारे शरीर में आग-सी लग जाती है।]

वेणी—उस साले भैरव के लिए ही इतना सब बखेड़ा हुआ है। अगर तुम वहाँ न जाती और उसे न छुडाती तो यह सब कुछ भी न होता। खाता साला मार, तुम्हारा क्या बिगडता था?

[रमा फिर कुछ हँसती है, मगर उत्तर नही देती।]

वेणी—रमा, तुम तो हँसोगी ही। तुम औरत ठहरी, तुम्हे घर से बाहर तो निकलना नही पडता। मगर बतलाओ कि हम लोग क्या करे? अगर वे सचमुच ही किसी दिन हमारा सिर फोड़ दें तो क्या हो? औरतो के साथ काम करने से यही तो दशा होती है।

[रमा चकित होकर केवल वेणी के मुख की ओर देखती रहती है।]

वेणी—गोविन्द चाचा, चुपचाप बैठे रहने से कैसे काम चलेगा? मेरे दरबान और नौकर को बुलवा दो न! साथ मे दो लालटेने भी लेते आवे।

गोविन्द—आओ चलो, बाहर चलकर बुलवाता हू। और फिर डर काहे का है? न होगा तो मैं ही चलकर तुम्हे घर तक पहुँचा जाऊँगा।

(दानो का प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[स्थान—एक रास्ता। जगन्नाथ और नरोत्तम का प्रवेश। जगन्नाथ के हाथ में एक बडी लाठी है।]

नरोत्तम—बस यही रास्ता है। इधर से ही होकर जायगा। जग्गू अब भी कहो, हिम्मत करोगे न!

जगन्नाथ—भला हिम्मत न होगी। सजा भोगने के लिए राजी होकर ही तो सजा देने के लिए निकला हूँ। इसने बहुत दु.ख दिया है। दुर्गा मैया, ऐसा करो कि जिसमे आज एक काम-सा काम कर जाऊँ और मेरा हाथ न कॉपे।

नरोत्तम—क्यो रे हाथ काँपेगा?

जगन्नाथ—काँप सकता है। बाप-दादो के समय से मार खाने का अभ्यास पडा हुआ है न! इसलिए अगर अन्त तक मेरा हाथ न उठे, तो समझ लेना कि मेरे हाथ का ही दोष है, मेरा नही।

नरोत्तम—अच्छा, तो फिर लाठी मेरे हाथ मे दे दो और तुम दूर खडे रहो। जरा मैं देखूँ कि क्या कर सकता हूँ।

जगन्नाथ—नरोत्तम, तुम ऐसी बात मत कहो। तुम्हारे बाल-बच्चे हैं, लेकिन मेरे कोई नही है। यही मौका है। छोटे बाबू लौट आये तो फिर यह काम नही हो सकेगा। वे रोक लेगे। इसलिए उनके जेल से निकलने के पहले ही उनका बदला चुकाकर, मैं जेल के अन्दर चला जाऊँगा। तुम घर जाओ।

नरोत्तम—घर नही जाऊँगा, तुम्हारे पास ही रहूँगा।

[नरोत्तम कुछ दूर हटकर खडा हो जाता है। दूसरी ओर से वेणी, गोविन्द और दरबान का प्रवेश। दरबान के हाथ में लालटेन है।]

वेणी—(चौककर) कौन खडा है रे?

जगन्नाथ—मै हूँ जगन्नाथ।

गोविन्द—रास्ते मे खडा होकर लोगो को मना कर रहा है जिससे कोई खाने न जाय। क्यो बे हरामजादे?

जगन्नाथ—गागुलीजी, गाली मत बकना, कहे देता हूँ!

वेणी—गाली नही दूँगा? हरामजादे साले जानता है, कल ही तेरा घरबार उजाडकर धान बोआ दूँगा?

जगन्नाथ—हाँ, जानता हूँ कि बहुतो का उजाड दिया है। लेकिन आज ऐसा बन्दोबस्त कर जाऊँगा कि फिर न उजाड सको।

वेणी—क्यो बे हरामजादे, कौन-सा बन्दोबस्त करेगा तू? सुनूँ?

[कुछ आगे बढ जाते हैं।]

जगन्नाथ—बस, यही बन्दोबस्त है!

(वेणी के सिर पर जोर से लट्ठ जमा देता है।)

वेणी—(बैठ जाता है) बाप रे! मर गया!

(गोविन्द और दरबान चिल्लाकर जल्दी से भाग जाते हैं।]

वेणी—भइया जगन्नाथ, तुम्हारे पैरो पडता हूँ, ब्रह्म-हत्या मत करो। दुहाई भइया, तुम्हे दस बीघे जमीन दूँगा।

जगन्नाथ—मुझे तुम्हारी जमीन नही चाहिए, वह अपने पास ही रक्खो। मैं ब्रह्म-हत्या भी नही करूँगा।

वेणी—जगन्नाथ, आज से तुम्हारा और मेरा बाप-बेटा का सम्बन्ध हुआ। तुम जो माँगोगे वही—

जगन्नाथ—मैं कुछ नही चाहता। लेकिन बाप-बेटे का सम्बन्ध और तुम्हारे साथ? राम राम! बडे बाबू, तुम्हे फिर होशियार किये देता हूँ कि यह मार ही आखिरी मार नही है। हम लोगो ने मालिक समझकर और ब्राह्मण समझ कर जितना ही सहा है, उतना ही तुम्हारा अत्याचार बढ़ता गया है। अब हम नही सहेगे। देखता हूँ कि तुम लोग सीधे होते हो या नही।

(प्रस्थान)

वेणी—बाप रे! मर गया रे! सब साले भाग गये रे!

[गोविन्द और दरबान का प्रवेश]

गोविन्द—(हाँफते हुए) भागने क्यो लगा भइया, भागा नही था! आदमियो को बुलाने के लिए दौडा गया था। जानते तो हो कि जगुआ साला कैसा गुडा है! साले पर डकैती का चार्ज लगाकर पाँच बरस के लिए जेल न भेज दूँ तो मेरा नाम गोविन्द गागुली नही!

दरबान—(हाँफते हुए) अगर हाथ मे कोई हथियार रहता!

वेणी—अबे दूर हो साले सामने से। मार-मार के तख्ता बना दिया— (सिर पर हाथ फेरकर) दैया रे! कितना खून जा रहा है! अब मैं नही बच सकता। (पड जाता है।)

गोविन्द—(पकडकर उठाने की चेष्टा करते हुए) अरे बच जाओगे, बच जाओगे। मैं खुद तुम्हें कलकत्ते के अस्पताल मे ले चलूँगा। (दरबान से) अरे जरा पकड़ न साले सत्तूखोर! साला डर के मारे गीदड़ की तरह भाग गया।

दरबान—क्या करे बाबूजी, बिना हथियार के—

[दोनो वेणी को उठाकर ले जाते हैं।]

तीसरा दृश्य

[रमा के सोने का कमरा। बीमार रमा पलगपर लेटी हुई है। सामने से सबेरे की धूप खिड़की के रास्ते अन्दर आकर जमीन पर पड रही है। ताई का प्रवेश]

ताई—(रुँधे हुए गले से) क्यो बेटी रमा, आज कैसी तबीयत है?

रमा—(कुछ हँसकर) ताईजी, अच्छी हूँ।

ताई—रात को बुखार उतर गया था?

रमा—नही। लेकिन मालूम होता है कि जल्दी एक दिन मे उतर जायगा।

ताई—और खाँसी?

रमा—खाँसी तो अभी तक वैसी ही मालूम होती है।

ताई—फिर भी बेटी, कहती हो कि तबीयत अच्छी है?

[रमा चुपचाप हँसती है। ताई उसके सिरहाने जा बैठती है और सिर पर हाथ फेरने लगती है।]

ताई—बेटी, तुम्हारी यह हँसी देखकर मालूम होता है कि मानो पेड मे से तोडा हुआ फूल किसी देवता के पैरों के पास पडा हुआ हँस रहा है। बेटी !

रमा—क्यो ताईजी?

ताई—मैं तो तुम्हारी माँ के समान हूँ रमा,—

रमा—ताईजी, माँ के समान क्यो, तुम तो मेरी माँ ही हो।

ताई—(झुककर और रमा का मस्तक चूमकर) तो फिर बेटी, सच-सच बतला दो, तुम्हें क्या हुआ है?

रमा—ताईजी, बीमार हूँ।

ताई—(रमा के रूखे बालो पर हाथ फेरती हुई) यह तो बेटी, मैं चमडे की इन आँखो से ही देख रही हूँ। अगर ऐसी कोई बात हो जो इनसे न देखी जा सकती हो तो वह भी अपनी माँ से नही छिपाना। बेटी, छिपाने से बीमारी अच्छी नही होगी।

रमा—(थोडी देर तक चुपचाप खिडकी के बाहर की तरफ देखकर) बडे भइया कैसे हैं ताईजी?

ताई—सिर का घाव भरने मे तो अभी देर लगेगी, लेकिन अस्पताल से वह पॉच छ दिन मे ही घर आ जायगा। बेटी, तुम दु ख मत करो। उसे इसकी जरूरत थी। इससे उसका भला ही होगा। शायद तुम सोचती होगी कि मैं माँ होकर अपनी सन्तान पर इतना बडा सकट आने पर ऐसी बात कैसे कह रही हूँ। लेकिन तुमसे सच कहती हूँ कि मैं यह नहीं बतला सकती कि इससे मुझे कष्ट अधिक हुआ है या आनन्द। जो लोग अधर्म से नहीं डरते और जिन्हे लज्जा नही, उन लोगों को बेटी, अगर प्राणो का भय इतना अधिक न हो तो यह संसार ही मिट्टी मे मिल जाय। इसीलिए रमा, मेरे मन मे तो बारबार यही बात आती है कि उस खेतिहर के लडके ने वेणी की जितनी भलाई की है उतनी भलाई ससार मे उसका कोई आत्मीय बन्धु भी न कर सकता। बेटी, धोने से कोयले की कालिख नही छूटती, उसे तो आग मे जलाना पडता है।

रमा—लेकिन ताईजी, पहले तो यह बात नही थी। यहाँ के खेतिहरो को किसने इस तरह कर दिया?

विश्वे०—बेटी, यह क्या तुम खुद ही नही समझती कि कौन इन लोगो का इतना हौसला बढ़ा गया है? उन लोगो ने सोचा था कि जैसे भी हो जेल मे बन्द कर देने से सब झगड़ा मिट जायगा। लेकिन यह नही सोचा कि जब आग सुलग जाती है तब यो ही नही बुझ जाती। जबरदस्ती बुझा दी जाय तो आसपास की चीजो को भी तपा जाती है।

रमा—लेकिन ताईजी, क्या यह अच्छा है?

विश्वे०—बेटी, अच्छा तो है ही। एक ओर तो प्रबल की अत्याचार करने की अखड लालसा और दूसरी ओर निरुपाय लोगो की सहन करने की वैसी ही अविच्छिन्न कायरता। इन दोनो को ही यदि वह खर्च कर दे तो अच्छा ही है। बेटी, वेणी की अवस्था का ध्यान करके मैं कभी ठडी साँस नही भरूँगी। बल्कि यही प्रार्थना करूँगी कि मेरा रमेश लौट आकर दीर्घजीवी हो और इसी तरह काम कर सके। रमा,

एकलौती सन्तान क्या है यह केवल माँ ही जानती है। जब खून से लथपथ हालत मे लोग वेणी को पालकी में डालकर अस्पताल ले गये, उस समय मेरी जो दशा हुई थी, वह मैं तुम्हें किसी तरह समझा नहीं सकती। लेकिन फिर भी मैं किसी को अभिशाप नहीं दे सकी। बेटी, यह बात तो मैं भूल नही सकती कि धर्म का दड माँ का मुँह नही देखता रहता।

रमा—ताईजी, मैं तुम्हारे साथ तर्क नहीं करती, लेकिन अगर यही बात ठीक हो तो फिर रमेश भइया किस पाप के कारण यह दु ख भोग रहे हैं? हम लोगों ने जो-जो कार्रवाइयाँ करके उन्हें जेल भेजा है, वे तो किसी से छिपी नही हैं?

विश्वे०—छिपी नही है, इसीलिए तो आज वेणी अस्पताल में है। और तुम्हारा—बेटी, जान रक्खो कि कोई काम कभी यों ही निष्फल होकर शून्य-में नहीं मिल जाता। उसकी शक्ति कहीं न कही जाकर अपना काम करती ही है। लेकिन किस तरह करती है, इसका पता हर समय सबको नहीं लगता। और इसीलिए आज तक इस समस्या की मीमासा नही हो सकी है कि क्यों एक के पाप के लिए दूसरों को प्रायश्चित्त करना पडता है। लेकिन रमा, इसमें सन्देह नही कि करना अवश्य पड़ता है।

(रमा चुपचाप ठंढी साँस ले लेती है।)

विश्वे०—बेटी, इस घटना से मेरी भी आँखें खुल गयी हैं। सिर्फ किसी की भलाई करने की नीयत से ही इस ससार मे भलाई नही की जा सकती। शुरू की छोटी बडी बहुत-सी सीढ़ियाँ पार करने का धैर्य होना चाहिए। एक बार रमेश हताश होकर यहाँ से चला जाना चाहता था। उस समय मैंने ही उसे नही जाने दिया था। इसीलिए जब मैंने सुना कि वह जेल चला गया है तब मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मानो मैंने ही उसे जेल भेजा है। उस समय तो जानती नही थी कि बाहर से दौड़े आकर भला करने जाने में इतनी विडम्बना है! भलाई करने का काम बहुत कठिन है।

रमा—क्यों ताईजी, कठिन क्यों है?

विश्वे०—उस समय तो सोचा भी नही था कि पहले दस आदमियों के साथ मिलकर एक होना पडता है। वह पहले से ही इतना अधिक जोर और इतनी अधिक जीवनी-शक्ति लेकर इतनी अधिक ऊँचाई पर आ खड़ा हुआ कि कोई उस तक पहुँच ही नही सका—कोई उसे पा ही नहीं सका। लेकिन अब सोचती हूँ कि उसे नीचे उतारकर भगवान ने मगल ही किया है।

रमा—भगवान ने नही ताईजी, हम लोगों ने। लेकिन हम लोगो का अधर्म उन्हें क्यों नीचे उतार लायगा?

विश्वे०—उतार क्यों नहीं लायगा बेटी? नही तो पाप इतना भयकर क्यों है? उपकार के बदले में यदि कोई प्रत्युपकार न करे, बल्कि उलटे उसके साथ अपकार करने लगे, तो भी उससे क्या बनता बिगडता है, अगर मनुष्य की कृतघ्नता दाता को नीचे न उतार लावे? रमा, तुम कहती हो, लेकिन तुम्हारा गाँव रमेश को क्या फिर बिलकुल पहले की तरह पावेगा? तुम लोग साफ देखोगे कि जिन हाथो से वह अब तक चार आदमियों की भलाई करता फिरता था, उसके वही हाथ भैरव आचार्य ने—और फिर अकेले भैरव ने ही क्यों, तुम सभी लोगों ने,—मरोडकर तोड दिये हैं। और कौन कह सकता है कि यह भी ठीक नहीं हुआ? उसके बलिष्ठ और समूचे हाथों का अपर्याप्त दान ग्रहण करने की शक्ति जब लोगों में नही थी तब उसके टूटे हाथ ही उन लोगों के असली काम मे आवेंगे।

[विश्वेश्वरी एक ठंढी साँस लेती है। रमा थोडी देर तक उसका हाथ इधर-उधर हिलाती रहती है। और तब फिर वह भी ठंढी साँस लेती है।]

रमा—ताईजी!

ताई—क्यों बेटी?

रमा—अपयश और तिरस्कार अब मुझे नही छूता ताईजी। जिस दिन झूठी गवाही देकर मैंने उन्हे जेल भेजा है, उस दिन से ससार की सारी व्यथा मेरे लिए परिहास-सी हो गयी है।

ताई—ऐसा ही होता है बेटी!

रमा—सभी कहने लगे कि शत्रु का, चाहे जिस तरह हो, निपात करने में कोई दोष नही है और उन लोगों ने यही किया। लेकिन मैं तो यह कैफियत नही दे सकती ताईजी।

ताई—क्यों, तुम क्यो नही दे सकतीं?

रमा—नही ताईजी, नही। एक बात है जो मै आज तुम्हारे निकट स्वीकार करती हूँ। मोडल के घर पर सब लडके इकट्ठे होकर रमेश भइया के कहने के अनुसार ही सच्ची आलोचना किया करते थे। उन लोगो को बदमाशो का दल बतलाकर पुलिस से पकडवा देने का एक षड्यन्त्र चल रहा था। मैंने आदमी भेजकर उनको सावधान कर दिया। क्योंकि पुलिस तो यही चाहती है। अगर एक बार वे पुलिस के हाथ मे पड जाते तो फिर खैरियत नही थी।

ताई—(कॉपकर) कहती क्या हो रमा? क्या वेणी अपने गॉव मे पुलिस को झूठमूठ बुलाकर उससे उत्पात कराना चाहता था?

रमा—मुझे तो जान पड़ता है कि बडे भइया को जो यह दण्ड मिला है, सो उसी का फल है। ताईजी, तुम मुझे माफ कर सकोगी?

ताई—उसकी मॉ होकर भी अगर माफ न कर सकूँगी तो फिर और कौन माफ करेगा? मैं तो आशीर्वाद देती हूँ कि भगवान् तुम्हे इसका पुरस्कार दे।

रमा—(हाथ से अपने ऑसू पोछकर) मेरे लिए तो अब यही एक सान्त्वना है कि जब वे जेल से छूटकर आयॅगे तब देखेगे कि उनके आनन्द का क्षेत्र तैयार हो गया है। उन्होने जो चाहा था वही हुआ है,—उनके उसी देश के दीन दुखिया अब नीद से उठ बैठे हैं, उन्हे पहचान गये हैं और उनसे प्रेम करने लग गये हैं। क्या इस प्रेम के आनन्द मे वे मेरा अपराध न भूल सकेगे? ताईजी, सिर्फ एक जगह हम दूर नही हो पाये हैं। तुमसे हम दोनो ही प्रेम करते हैं।

[विश्वेश्वरी चुपचाप उसकी ठोढी पकडकर चूम लेती है।]

रमा—उसी जोर से एक दावा तुम्हारे सामने रखे जाती हूँ। जिस समय मैं नही रहूँगी उस समय भी यदि वे मुझे क्षमा न कर सके तो मेरी ओर से उनसे केवल इतना ही कह देना कि वे मुझे जितनी बुरी समझते थे, उतनी बुरी मैं नही थी। और जितना दुःख उन्हे दिया है, उससे कही अधिक दुःख स्वयं मैंने भी भोगा है। तुम्हारे मुँह से वे यह बात सुनेगे तब शायद अविश्वास न कर सकेगे।

ताई—तब तो बेटी, चलो हम लोग किसी तीर्थ-स्थान में चलकर रहे। हम लोग वहॉ चले जहॉ न रमेश हो और न वेणी हो, और जहॉ ऑख उठाते ही भगवान के मंदिर का शिखर दिखलाई पड़े। रमा, मैंने सब बाते समझ ली हैं। और बेटी, अगर तुम्हारे जाने का दिन ही आ पहुँचा हो तो मैं यह विष हृदय मे रखकर नही ले जाऊँगी, सब यही निःशेष करके डाल जाऊँगी। क्यो बेटी, यह कर सकोगी?

रमा—(विश्वेश्वरी के घुटनो मे मुँह छिपाकर और विकलतापूर्वक रोकर) मुझसे नही हो सकेगा, ताईजी! तुम मुझे यहॉ से ले चलो।

चौथा दृश्य

[स्थान—जेल खाने के सामने का रास्ता। एक ओर से रमेश और दूसरी ओर से वेणी का प्रवेश। वेणी के सिर पर पट्टी बँधी हुई है। साथ मे स्कूल के हेडमास्टर वनमाली और कुछ विद्यार्थी हैं। पीछे-पीछे वेणी के साथी और भी दो-चार आदमी हैं।]

वेणी—(रमेश को गले लगाकर) भाई रमेश, अब मुझे पता चला है कि अपने रक्त का कितना अधिक आकर्षण होता है। मैं यह बात जानकर भी नही जानता था कि रमा उस आचार्य हरामजादे को अपने हाथ मे करके इस तरह की शत्रुता करेगी और सारी शरम-हया को ताक मे रखकर स्वय आकर झूठी गवाही देकर इतना दुःख देगी। भगवान ने इसका दड भी मुझे दे दिया है। भइया, जेल मे तुम तो बल्कि अच्छी तरह थे, लेकिन मैं तो बाहर रहते हुए भी इधर कई महीनो से मानो भूसे की आग मे जल रहा हूँ।

[रमेश हत-बुद्धि की तरह खड़े देखते रहते हैं और उनकी समझ में नही आता कि क्या करे। वनमाली और विद्यार्थी आगे बढ़कर उनके चरण छूते हैं।]

वेणी—(रोकर) भाई, तुम अपने बड़े भइया पर नाराज मत रहना। चलो, घर चलो। माँ ने रो रोकर दोनो आँखे अन्धी करने का उपक्रम कर रक्खा है। रमेश, हम लोगों की केवल जान ही बच रही है।

रमेश—(वेणी के सिर पर बँधी हुई पट्टी की ओर संकेत करके) वडे भइया, यह क्या हुआ? तुम्हारा सिर किस तरह फूटा?

वेणी—सुनने से क्या होगा भाई, मैं किसी को दोष नही देता। यह मेरे ही कर्मों का फल है। मेरे ही पापो का दड है। रमेश, तुम तो जानते ही हो कि जन्म से मुझमें एक दोष है कि यह मुझसे नही होता कि मन में तो कोई और बात रक्खूँ और मुँह से कोई और बात कहूँ। जिस तरह और सव लोग अपने मन की वात अपने मन मे छिपाकर रखते हैं, उस तरह मैं नही रख सकता। इसके लिए मुझे न जाने कितने दंड भोगने पडे हैं, लेकिन फिर भी मेरी आँखे नही खुली। मेरा दोष केवल यही था कि उस दिन रोते-रोतेकह वैठा कि रमा, मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया था जो तुमने मेरे भाई को जेल भेजवा दिया? जेल जाने की वात सुनकर माँ तो जान ही दे देगी। हम भाई भाई सम्पत्ति के लिए आपस में झगडा भले ही करते रहे, फिर भी है तो वह हमारा भाई ही। तुमने एक ही चोट मे मेरे भाई को भी मारा और माँ को भी मारा। रमेश, उस दिन रमा की जो उग्र मूर्ति देखी थी, उसे स्मरण करके आज भी कलेजा काँप जाता है। उसने कहा कि क्या रमेश के वाप मेरे वाप को जेल नही भेजना चाहते थे? वस चलता तो क्या छोड देते?

रमेश—हाँ, रमा की मौसी के मुँह से भी मैंने यही वात सुनी थी।

वेणी—यह तो हुआ उसका जातक्रोध। लेकिन स्त्री का इतना अहकार मुझसे नही सहा गया। मैंने भी गुस्से मे आकर कह डाला कि अच्छा उसको जेल से आने दो तव फिर समझ लिया जायगा। लेकिन भाई, खून करना तो उसका अभ्यास ही ठहरा। तुम्हे क्या याद नही है कि तुम्हारा खून करने के लिए उसने अकबर लठैत को भेजा था? लेकिन तुम्हारे आगे तो उसकी चालाकी चली नही; उलटे तुम्ही ने उसे सवक सिखला दिया। लेकिन मेरा खून करना कौन मुश्किल है?

रमेश—फिर क्या हुआ?

वेणी—इसके वाद जो कुछ हुआ, वह क्या मुझे याद है? मैं कुछ भी नही जानता कि किस तरह मुझे अस्पताल ले गये, वहाँ क्या हुआ, किसने देखा। इस वार मैं जो जीता बच गया हूँ, सो केवल माँ के पुण्य से। ऐसी माँ और किसकी है रमेश!

[रमेश के मन में और चेहरे पर क्या क्या होने लगा, इसका कोई ठिकाना नहीं;—उसने एक बात भी नही कही।]

वेणी—भाई, गाडी तैयार है। अव देर मत करो। घर चलो। तुम्हे ले चलकर माँ के पास पहुँचा दूँ तो मुझे चैन मिले।

रमेश—चलिए। जेल मे ही सुना था कि रमा बहुत बीमार है?

वेणी—रमेश, ईश्वर का दण्ड है। यह क्या सभी को याद रहता है कि उसका ही राज्य है? चलो भाई, घर चलो।

(सबका प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

[रमा के कमरे मे रमेश का प्रवेश। रमा को देखकर चौंक पडते हैं।]

रमेश—तुम इतनी ज्यादा बीमार हो यह तो मैंने नही सोचा था।

[रमा बहुत कठिनता से उठकर बैठती हैं और रमेश के चरणों की तरफ झुककर प्रणाम करती है।]

रमेश—अब कैसी हो रानी?

रमा—आप मुझे रमा ही कहकर पुकारा करें।

रमेश—अच्छी बात है। सुना कि तुम बीमार थी। अब कैसी हो, यही जानना चाहता था। नही तो नाम तुम्हारा चाहे जो हो, उस नाम से पुकारने की मेरी इच्छा भी नही है और आवश्यकता भी नही है।

रमा—अब मैं अच्छी हूँ। मैंने आपको बुलवा भेजा था, इसलिए शायद आपको बहुत आश्चर्य हुआ होगा लेकिन—

रमेश—नही, आश्चर्य नहीं हुआ। तुम्हारे किसी भी काम से आश्चर्य होने के दिन निकल गये। लेकिन, पूछता हूँ कि मुझे किसलिए बुलाया है?

रमा—(थोडी देर तक सिर झुकाकर चुप रहने के बाद) रमेश भइया, आज मैंने तुम्हे दो कामो के लिए कष्ट दिया है। यह तो मैं जानती हूँ कि मैंने बहुत से अपराध किये हैं, लेकिन फिर भी मुझे निश्चय था कि तुम अवश्य आओगे और मेरे ये दो अन्तिम अनुरोध भी अस्वीकृत न करोगे।

(रुलाई के कारण उसका गला काँप जाता है।)

रमेश—क्या अनुरोध है?

रमा—(चकित के समान सिर उठाकर फिर नीचा कर लेती है।) बडे भइया तुम्हारी सहायता से पीरपुर की जिस जायदाद पर कब्जा करना चाहते हैं, वह जायदाद मेरी अपनी है। पिताजी खास तौर पर वह मुझे ही दे गये हैं। उसमे पन्द्रह आने मेरा है और एक आना तुम लोगो का। वही जायदाद मैं तुम्हे दे जाना चाहती हूँ।

रमेश—तुम डरो मत। बडे भइया चाहे मुझसे कितना ही क्यो न कहे, लेकिन चोरी करने मे न मैंने कभी किसी की सहायता की और न अब करूँगा। और तुम दान ही करना चाहती हो तो उसके लिए और बहुत से लोग हैं। मैं दान ग्रहण नही करता।

रमा—मैं जानती हूँ रमेश भइया, कि तुम चोरी करने मे किसी की सहायता नही करोगे। और यह भी जानती हूँ कि अगर तुम लोगे भी तो अपने लिए नही लोगे। लेकिन सो तो नही है। दोष करने पर दड मिलता है। मैंने जो अपराध किये हैं, उनके दंड के रूप मे ही इसे क्यो नही ग्रहण करते?

रमेश—और तुम्हारा दूसरा अनुरोध?

रमा—मैं अपने यतीन्द्र को तुम्हारे हाथ सौंप जाती हूँ।

रमेश—'सौंप जाती हूँ' के क्या माने?

रमा—(रमेश के मुँह की ओर देखकर) रमेश भइया, एक दिन कोई भी माने तुमसे छिपे नही रहेगे। इसीलिए मैं अपने यतीन्द्र को तुम्हारे सुपुर्द कर जाऊँगी। उसे तुम अपनी ही तरह सिखा-पढाकर अपने ही जैसा बनाना जिससे बडा होकर वह तुम्हारी ही तरह स्वार्थ-त्याग कर सके। (आँचल से आँसू पोछकर) मैं यह अपनी आँखो से नही देख सकूँगी। लेकिन मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यतीन्द्र के शरीर मे उसके पूर्व-पुरुषो का रक्त है। त्याग की जो शक्ति उसकी अस्थि और मज्जा मे मिली हुई है, अगर उसे ठीक तरह से सिखाया पढाया गया तो शायद वह भी एक दिन तुम्हारी ही तरह सिर ऊँचा करके खडा हो सकेगा।

[रमेश चुप रहते हैं]

रमा—रमेश भइया, इस तरह चुप रहने से तो मैं आज तुम्हे नही छोड़ूँगी।

रमेश—देखो, इन सब बातों में मुझे मत घसीटो। मैं बहुत से दु ख सहने के बाद प्रकाश की थोड़ी-सी शिखा प्रज्वलित कर सका हूँ, इसलिए मुझे बराबर भय बना रहता है कि कही वह जरा मे ही न बुझ जाय।

रमा—नही रमेश भइया, डर की कोई बात नही है। यह प्रकाश अब नही बुझेगा। ताईजी ने कहा था कि तुम बहुत दूर से आकर और बहुत बडे ऊँचाई पर बैठकर काम करना चाहते थे और इसीलिए तुम्हारे कामों मे इतनी बाधाएँ आयी हैं। उस समय परायो की तरह तुम ग्राम्य-समाज से बाहर थे, परन्तु अब हो गये हो उनके ही एक आदमी। उस समय तुम्हारा दिया हुआ दान एक विदेशी का दान था, परन्तु अब वह आत्मीय का स्नेहपूर्ण उपहार हो गया है। अब तुम वह नही रह गये हो जो दु.ख पाओ और दु ख सहो। इसीलिए अब यह प्रकाश मद्धिम नही पडेगा, बल्कि दिन पर दिन उज्ज्वल होता जायगा।

रमेश—ठीक जानती हो रमा, कि हमारे इस दीपक की शिखा अब नही बुझेगी?

रमा—हाँ, ठीक जानती हूँ। यह उन ताईजी की कही हुई बात है जो सब जानती हैं। यह काम तुम्हारा ही है। मेरे यतीन्द्र को तुम अपने हाथो मे लो, मेरे सब अपराध क्षमा करो और आज मुझे यह आशीर्वाद दो कि मैं निश्चिंत होकर जा सकूँ।

रमेश—रमा, तुम जाने की बात क्यो सोच रही हो? मैं कहता हूँ कि तुम फिर अच्छी हो जाओगी।

रमा—रमेश भइया, मैं अच्छे होने की बात नही सोच रही हूँ, सोच रही हूँ केवल अपने जाने की बात। लेकिन मेरा और भी एक अनुरोध तुम्हे मानना पडेगा। मेरे विषय मे तुम कभी बडे भइया के साथ झगडा मत करना।

रमेश—इसके माने?

रमा—माने अगर कभी सुन पाओ तो केवल इसी बात को स्मरण रखना कि मैं किस तरह चुपचाप सहती हुई चली गयी और मैंने एक भी बात का प्रतिवाद नही किया। एक दिन जब मुझे असह्य हो गया था तब ताईजी ने आकर कहा था कि मिथ्या को आंदोलन करके जगाये रखने से उसकी आयु बढती जाती है। अपनी असहिष्णुता से उसकी आयु बढ़ाने के समान पाप बहुत ही कम हैं। उनका यही उपदेश स्मरण रखकर मैं सभी दु.ख और दुर्भाग्य काट सकी हूँ। रमेश भइया, तुम भी यह बात कभी मत भूलना।

[रमेश चुपचाप मुँह की ओर देखते रहते हैं।]

रमा—रमेश भइया, तुम आज यह समझकर दु खी मत होना कि तुम मुझे क्षमा नही कर सकते हो। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि जो बात आज कठिन जान पडती है, वही एक दिन सहज और सीधी हो जायगी। उस दिन तुम सहज में ही मेरे सब अपराध क्षमा कर दोगे और इसी विश्वास मे मेरे मन में कोई क्लेश या दु.ख नही है। मैं कल सबेरे ही जा रही हूँ।

रमेश—कल सबेरे ही कहाँ जाओगी?

रमा—जहाँ ताईजी ले जायँगी वहीं जाऊँगी।

रमेश—लेकिन सुना है कि वे तो फिर लौटकर नही आवेगी।

रमा—मैं भी नही आऊँगी। आज मैं भी तुम्हारे चरणों मे सदा के लिए विदा होती हूँ।

[इतना कहकर रमा जमीन पर सिर रखकर प्रणाम करती हैं।]

रमेश—अच्छा जाओ। लेकिन क्या यह भी नही जान सकूँगा कि क्यों इस प्रकार अकस्मात् विदा हो रही हो?

[रमा चुप रहती है।]

रमेश—यह तुम्ही जानो कि क्यो अपनी सब बातें इस प्रकार छिपा रखकर चली जा रही हो। लेकिन मैं भी भगवान के निकट अपने शरीर और मन से प्रार्थना करता हूँ कि मैं एक दिन तुम्हे अपने समस्त अन्त -करण से क्षमा कर सकूँ। तुम्हें क्षमा न कर सकने के कारण मुझे जो कष्ट हो रहा है, वह मेरे अन्तर्यामी ही जानते हैं।

[अकस्मात् विश्वेश्वरी का प्रवेश]

ताई—रमा!

रमेश—ताईजी, किस अपराध के कारण आप इस प्रकार हम लोगों को छोडकर चली जा रही हैं।

ताई—अपराध? बेटा, अगर अपराधों की बात कही जाय तो उसका कभी अन्त ही नही होगा। इसलिए उसकी जरूरत नही। लेकिन मेरी बात तुम जान रक्खो। अगर मैं यहाँ मरूँगी रमेश तो वेणी मेरे मुँह मे आग देगा जिससे मैं किसी तरह मुक्ति न पा सकूँगी। यह जीवन तो जलते-भुनते ही बीता, लेकिन रमेश, कही परलोक भी इसी तरह जलते-भुनते न बीते, इसी डर से भाग रही हूँ।

रमेश—ताईजी, तुमने यह तो कभी मुझ पर प्रकट नही होने दिया कि लडके का अपराध तुम्हारे कलेजे को इस तरह वेध रहा है। लेकिन रमा क्यों सब कुछ छोडकर विदा होना चाहती है? उसे तुम कहाँ ले जाओगी?

रमा—मैं जाती हू ताईजी।

(रमा का प्रस्थान)

ताई—तुम पूछ रहे थे कि रमा क्यो विदा होना चाहती है? मैं उसे कहाँ ले जाना चाहती हूँ? ससार में उसे स्थान नहीं मिला रमेश, इसीलिए उसे भगवान के चरणों मे ले जा रही हूँ। यह तो नही जानती कि वहाँ जाने पर भी वह बचेगी या नही, लेकिन यदि बच रही तो मैं उससे बाकी जीवन इसी अति कठिन प्रश्न की मीमांसा करने मे बिताने के लिए कहूँगी कि क्यों भगवान ने उसे इतना अधिक रूप, इतने अधिक गुण और इतना बडा एक महाप्राण देकर इस ससार मे भेजा था और क्यो बिना किसी दोष या अपराध के उसके सिर पर दु खो का इतना बडा बोझ लादकर फिर ससार के बाहर फेंक दिया। यह उसी का अभिप्राय है या केवल हमारे समाज के खयालो का खेल है। अरे रमेश, उसके समान दु खिनी शायद इस पृथ्वी पर और कोई नही है।

[विश्वेश्वरी का गला भर आता है। रमेश चुपचाप उसकी मुँह की ओर देखते रहते हैं।]

ताई—लेकिन रमेश, तुम्हारे लिए मेरा यही आदेश रहा कि तुम उसे गलत न समझना। मैं चलते

समय किसी की कोई शिकायत नही करना चाहती, लेकिन मेरी इस बात पर कभी भूलकर भी अविश्वास मत करना कि उससे बढकर तुम्हारा मगल चाहनेवाली और कोई नहीं है।

रमेश—लेकिन ताईजी,—

ताई—रमेश, इसमे लेकिन-वेकिन को कोई जगह नही है। तुमने जो कुछ सुना है, सब झूठ है; और जो कुछ जाना है, सब गलत है। लेकिन इस अभियोग की अब यहीं समाप्ति करो। तुम्हारे लिए उसकी अंतिम प्रार्थना यही है कि तुम्हारे कल्याण का कार्य नदी की बाढ की तरह समस्त द्वेष और ईर्ष्या को बहाता हुआ चला जाय। इसीलिए उसने मुँह बन्द रखकर सब कुछ सहा है। उसके प्राण जा रहे हैं, फिर भी उसने बात नही कही रमेश।

रमेश—ताईजी, उससे कहो—

विश्वे०—अगर हो सके तो तुम्ही उससे कहना रमेश। मेरे पास अब समय नही है।

(प्रस्थान)

[यतीन्द्र को साथ लिये हुए रमा का प्रवेश। उसके वस्त्रो से जान पड़ता है कि वह कही दूर जा रही है।]

रमेश—(चकित होकर) यह क्या? इतना रात को यह वेश क्यो?

रमा—रमेश भइया, मैं यात्रा के लिए घर से निकल चुकी हूँ। अब रात नही है। जाने से पहले दो काम बाकी थे। एक तो अंतिम बार तुम्हारे चरणो की धूल लेना और दूसरे यतीन्द्र को तुम्हारे हाथ मे सौंपना।

रमेश—यह भार मुझे ही दे जाओगी रमा?

रमा—रमा नही, रानी। उसका सबसे अधिक प्यारा धन यही छोटा भाई है। रमेश भइया, इसे तुम्हारे सिवा और कौन ले सकता है?

रमेश—लेकिन इसमे कितना बड़ा उत्तरदायित्व है रमा,—वह अनुरोध—

रमा—अब भी वही रमा? लेकिन यह तो अनुरोध नही है, यह तो उसका दावा है। यही दावा लेकर वह एक दिन ससार मे आयी थी और यही दावा लेकर संसार से जाऊँगी। रमेश भइया, इस दावे का तो कही अन्त नही है। इससे तुम कैसे बच सकते हो? यह लो।

[रमेश के हाथ मे यतीन्द्र का हाथ पकडा देती है और जमीन पर झुक कर प्रणाम करती है।]

यवनिका-पतन

शरत् की रचनायें

- शरत् पत्रावली
- शरत्चन्द्रिका जीवनी
- शरत् चित्रावली

शरत्-समग्र

व्यक्ति परिचय

श्री विभूति भूषण भट्ट – भागलपुर के सबजज श्री नफरचन्द्र भट्ट के पुत्र । आपके सौतेले भाई इन्दु भूषण भट्ट शरत् बाबू के सहपाठी थे । शरत बाबू द्वारा स्थापित साहित्य–सभा के सदस्य और बाल्य सखा ।

श्री प्रमथनाथ भट्टाचार्य – मुजफ्फरपुर प्रवासकाल मे मित्रता हुई थी । साहित्य रसिक अन्तरग मित्र ।

श्री उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय – रिश्ते मे शरत बाबू के मामा । उपन्यासकार और 'विचित्रा' मासिक के सपादक ।

सर्वश्री सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय, गिरिशचन्द्र गंगोपाध्याय – शरत् बाबू के नाना श्री केदारनाथ गगोपाध्याय के सबसे छोटे भाई श्री अघोरनाथ गगोपाध्याय के पुत्र । बचपन में शरत बाबू इन्हे पढाते थे । साहित्य–सभा के सदस्य, कथाकार और घनिष्ट साथी ।

श्री फणीन्द्रनाथ पाल– 'यमुना' पत्रिका के सपादक ।

श्री हरिदास चट्टोपाध्याय–कलकत्ता के प्रमुख पुस्तक प्रकाशक 'गुरुदास चट्टोपाध्याय एण्ड सस' के मालिक । 'भारतवर्ष' पत्रिका के प्रकाशक ।

श्री सुधीरचन्द्र सरकार– कलकत्ता के प्रसिद्ध पुस्तक प्रतिष्ठान 'एम० सी० सरकार एण्ड सस' के सत्वाधिकारी, 'मौचाक' पत्रिका के सपादक ।

श्री दिलीप कुमार राय– सुप्रसिद्ध नाट्यकार श्री द्विजेन्द्र लाल राय के पुत्र । महर्षि अरविन्द के शिष्य एव विश्व प्रसिद्ध गायक । सगीतज्ञ, कथाकार ।

श्री मणिलाल गंगोपाध्याय– 'भारती' पत्रिका के सपादक । इसी पत्रिका मे सर्वप्रथम शरत् बाबू का प्रथम उपन्यास 'बडी दीदी' छपा था । कथाकार तथा नाट्यकार ।

श्री लीलारानी गंगोपाध्याय– कानपुर निवासी श्री सरोज गगोपाध्याय की पत्नी । साहित्यिक तथा शरत्बाबू की शिष्या ।

श्रीमती राधारानी देवी– शरत्बाबू की साहित्यिक शिष्या, लेखिका ।

श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर– विश्व कवि, कथाकार, नाट्यकार भारत के गौरव ।

श्रीमती निरुपमा देवी -- बगला साहित्य की सुप्रसिद्ध लेखिका, विभूति भूषण भट्ट की बहन ।

श्री अमल होम– 'ट्रिब्युन' के सहायक सपादक । प्रसिद्ध पत्रकार ।

श्री महेन्द्रनाथ करण – पौण्ड क्षत्रीय जाति का युवक ।

श्री निर्मल चन्द– कलकत्ता के प्रसिद्ध एटर्नी । शरत् बाबू के कानूनी सलाहकार ।

श्री उमाचरण चट्टोपाध्याय – लेखक । आपने शरत्–साहित्य पर शोधपूर्ण लेख लिखा था ।

श्री चारुचन्द्र बंधोपाध्याय – ढाका विश्वविद्यालय मे बगला–साहित्य के अध्यापक । शरत् बाबू के मित्र ।

श्री हरिदास शास्त्री – शरत् बाबू के मित्र । इनसे काशी मे परिचय हुआ था ।

श्री मनीन्द्रनाथ राय – कलकत्ता स्थित बेहाला के जमींदार । कलकत्ता मे अपना मकान बनवाने के पूर्व शरत् बाबू इनके घर रहते थे ।

श्री परिमल घोष – 'दीपिका' तथा 'प्राची' पत्रिका के सपादक और इटरमीडिएट कालेज बाद में महसीन कालेज मे अध्यापक ।

श्री पशुपति चट्टोपाध्याय – 'नाचघर' के कार्यकर्ता ।

श्रीमती हिरण्मयी देवी – शरत् बाबू की दूसरी जीवन सगिनी ।

सुश्री जहाँनारा चौधुरी – 'वर्षवाणी' पत्रिका की सपादिका ।

*

शरत पत्रावली

(शरत बाबू ने अपने जीवनकाल में मित्रों, सपादको, रिश्तेदारो, सीहत्यकारों, के नाम अनेक पत्र लिखे है जिनमें अधिकाश प्रकाशित हो चुके है । बगला में इसका विशाल सग्रह है ।

इस सकलन में सभी पत्रो को स्थान नही दिया गया है । कुछ चुने हुए पत्रों को प्रकाशित किया जा रहा है । विषेश रूप से वे पत्र प्रकाशित किये जा रहे है जो उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओ से सम्बन्धित है या उन पर प्रकाश डालते है । इनके अलावा साहित्य, कला तथा धर्म के बारे मे उनके निजी विचार क्या थे, इन पत्रों से ज्ञात हो सकता है । – सपादक)

विभूति भूषण भट्ट के नाम

एस० चटर्जी
पी० डब्लू० ए० रगून
२२-२-०८

परम कल्याणीय पुटू भाई

काफी दिनों के बाद तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ । प्रार्थना कर रहा हूँ कि यह तुम्हारे हाथ तक पहुँचे । मेरी सारी दुष्कृतियों को भूलाकर इसे स्नेह की दृष्टि से पढना भाई, ताकि मेरा लिखना सार्थक हो । तुम लोगों को पत्र लिखने में सकोच हो रहा है । भय मालूम हो रहा है, कही हिज्जे में गलती न हो । बेतरतीब लिखावट देखकर हस पडोगे और सोचोगे कि बचपन मे कैसे इसके लेखों से प्यार करते थे ।

सब भूल गया हूँ , भाई – बँगला के अक्षर कलम से निकल नही रही है । इन सभी बातों को माफ करना होगा भाई, वर्ना अन्त तक पहुँच नही सकूगा ।

मेरा कहना है – ऐसा भाग्य मेरा है कि इतने दिनों तक शायद चार माह कलकत्ता रहने पर भी तुम लोगों को देख नही सका । तुम भी कलकत्ता आये जब कि ऐसी गलती हो गयी कि मुलाकात नही कर सके । अब ऐसा लग रहा है जैसे फिर कभी मुलाकात होगी या नही । एक बार आशु (दिभूति बाबू का भतीजा) के साथ और एक बार अकेले तुम्हारे यहाँ जाने को तैयार हुआ था, पर न जाने क्यों लज्जा बोध हुआ और नही जा सका ।

पुँटू, मेरा बडा अभागा जीवन है । ऐसा अर्थहीन निष्फल और निरस दिन, मास और वर्ष की समष्टि है । जिसे व्यर्थ में ढो रहा हूँ, आखिर क्यों समझ नही पा रहा हूँ । भगवान ने अगर बुद्धि दी है तो जरा सद्‌बुद्धि देते । अगर नही दिया तो इतना प्रेम करना क्यों सिखाया ? प्रेम करने लायक एक पात्र दे देते तो क्या उनके विश्व राज्य में लोगों की

कमी पड जाती । पता नही, यह कैसा न्याय है ?

मै समझ रहा हूँ कि मै अपने आत्मीय बंधु-बान्धव सभी के निकट घृणा का पात्र हूँ। यह बोझ कितना मर्मान्तिक है, बताने पर लोग विश्वास नही करेगे । यह भी जानता हूँ कि विश्वास के लिए कोई मार्ग नही रख छोडा है — चिर प्रवासी, दु खी कुत्सित आचारी हूँ, मै किसी के सामने खडा नही हो सकता । मगर पुंटू, क्या यह सब मेरी गलती है ? मेरी पतग के नीचे भार नही है, मेरे तीर के आगे फाल नही है, मेरी नाव मे पतवार नही है, मै सीधे नही चल रहा हूँ । इसलिए धिकारते हुए दोनो हाथों से ढकेल दिया गया हूँ, क्या यह सारा दोष मेरा है? साधु नही बन रहा हूँ। भाई ऐसे पकिल जीवन मे सज्जनता मेल नही खाती, मगर तुम लोग तो अच्छे हो तब तुम लोग इतने निष्ठुर क्यो हो गये हो ?

सुरेन, गिरीन को पत्रोत्तर देने पर उत्तर नही मिला, तुमने भी नही दिया । मुझे एकाध लाइन लिखकर भेजने से क्या तुम लोग पतित हो जाते । इतनी दूर रहकर मै तुम लोगो को कोई नुकसान नही पहुँचा सकता । एक पत्र लिखने पर अगर तुम लोगो का चरित्र मलिनहो जाता है तो जाने दो । ऐसी निर्मल चीज मलिन हो जाय या न हो तो इससे क्या बनता बिगडता है ?

कभी तुम लोग मुझे प्यार करते थे - आज मै विनती कर रहा हूँ कि पत्र का उत्तर देना । हमेशा से यह विश्वास करता आया हूँ, पता नही क्यों 'बूडी' (निरुपमा देवी) और तुम कभी मुझसे नाराज नही होगे । मेरे इस विश्वास को भग मत करो । अगर झूठ है तो हर्ज क्या ? जो झूठ किसीकी हानि नही पहुंचाता बल्कि एक को आश्रय देता है, नैतिक अवनति उसमें कितना है, इसे नापने की शिक्षा मुझे मिली नही है, किन्तु दयामय और स्नेह के स्वर्णांग मे एक भी खरोंच नही आयेगी, यह बात मै निश्चय पूर्वक कहता हूँ।

यह मत सोचना कि मै किसी का समाचार प्राप्त नही करता । छपे हुए अक्षरो में जानकारी प्राप्त कर लेता हूँ । भले ही हाथ का लिखा हुआ कुछ न मिले - भले ही मुझे कुछ नही कहा जाता, मगर अन्य लोग जो पाते है, उसे कृतज्ञता के साथ ग्रहण करता हूँ । तुम कुछ नही लिखते, पर मै अपने मन मे कल्पना करता हूँ, कि तुम आनन्द पूर्वक होगे । बूडी का समाचार पाता हूँ, मन ही मन आर्शीवाद देता हूँ , गौरव अनुभव करता हूँ, इसे मै जानता हूँ । वह जो कुछ लिखती है, उसे नदी के किनारे जेटी पर बैठ कर थोड़ा-थोडा पढता हूँ और मन ही मन कामना करता हूँ कि जीवित रहकर थोडी-थोडी अच्छी चीजो का स्वाद ग्रहण करता रहूँ ।

न जाने बूडी की कापी कितनी मोटी हो गयी होगी । एक बार पढने की इच्छा होती है । अच्छा सशोधित रफ कापी वगैरह कुछ भी नही है ? चुपचाप चोरी से एक बार भेज दो । मै तीन चार दिन बाद रजिस्ट्री से भेज दूगा । अगर वह इस बीच जाँच-पडताल करे तो कह देना कि एक आदमी पढने के लिये ले गया है ? वह अच्छा आदमी है । शायद तब वह परेशान नही होगी ।

खुकुमणि (विभूति भूषण भट्ट की छोटी बहन - क्षणा प्रभा देवी) क्या ससुराल में है ? अगर घर पर हो तो उसे एक पत्र लिखने को कहना । देखू वह कैसा लिखती है । शायद काफी बडी हो गयी है ।

अब जरा मेरा इतिहास सुनोगे ? रगून में दाम्पत्य चर्चा करते वक्त देखा कि पूर्ण ग्रहस्थ बन गया हूँ । डेढ साल तक अगाध प्रणय का धरातल नही देख सका । एक दिन मधुर कलह हुआ और मानभजन के पहले ही देखा कि मेरी गृहणी मुझसे नाराज होकर एक सुपात्र के गले मे जयमाल डाल चुकी है । फलस्वरूप मै अपनी गटरी-मोठरी लेकर, ३६ न० की गली में स्थित चार मजिले वाले मकान के एक कमरे मे आकर, चित्त लेटकर चुरुट पीने लगा ।

यह क्या हुआ, आज भी समझ नही सका । मेरी पत्नी ब्रह्मदेशी नही थी, शुद्ध स्वदेशी थी । जब यह पता चला कि वे धोबिन थी तब नाक-कान उमेठकर इरावती नदी में स्नान कर आया और दूसरे दिन मेडिकल सार्टिफिकेट देकर पैरोज बुककर, अपनी विरह-ज्वाला शान्त करने के लिए हागकाग चला गया । लौटते वक्त कलकत्ता गया था । सुना है कविवर चण्डीदास ने कोई छन्द लिखा है । मैने भी निश्चय किया है कि बहुत दिन पहले "चरित्रहीन" नामक उपन्यास शुरू किया था ।, अब उसे पूरा करूंगा !

देश में जाकर भी सुख पूर्वक नही रहा । एक बार हैजे का शिकार हुआ, फिर आपरेशन हुआ और अस्पताल मे पड़ा रहा । सबसे अधिक परेशान करते रहे लडकियो के बाप । मुझे खा जाना चाहते थ । मेरे दुख के दिनो मे वे लोग कहाँ थे, यह नही जानता । आज जब आराम से जिन्दगी के बाकी दिन गुजारना चाहता हूँ तब दल के दल न जाने किस अज्ञात स्थान से बाहर आकर परेशान कर रहे है ।

मैने गृह, गृहिणी, प्रणय और विरह को पिछले अट्ठारह मास में अच्छी तरह भोग लिया है और इसे हजम करने मे अभी ,अट्ठारह मास लगेगे । इसके बाद अगर जीवित रहा तो देखूगा पर अभी नही ।

पिछले छ माह से शराब से दूर रहा, तबीयत कुछ अच्छी है, अगर आगे सेवन न करूं तो पूर्ण स्वस्थ हो जाऊगा ।

क्या तुम्हारे पास समय का अभाव है ? पत्र लिखने में कौन सा वक्त लगता है । तुम्हें यह पत्र ९ बजे लिखना शुरू किया, अभी १५ मिनट बाकी है दस बजने में । दस बजते ही जाकर सो जाऊगा ।

तुम्हारे परीक्षा का रिजल्ट कब निकलेगा ?

नयी माँ[१] को मेरा प्रणाम कहना । कहना कि मै स्वस्थ और प्रसन्न हूँ । आज ऐसा लग रहा है जैसे वे मुझसे स्नेह करती रही ।

सुरेश्वरी[२] घर पर ही होगी ।

मेरा आशीर्वाद स्वीकार करना ।

शरत् दा ।

प्रमथनाथ भट्टाचार्य के नाम

डी० ए० जी० आफिस, रगून

२२-३-१२

प्रमथ

तुम्हारा पत्र पाकर आज ही जवाब लिख रहा हूँ, ऐसा तो नही होता । जो मेरे स्वभाव को जानता है, उसके आगे अपने बारे में इतना अधिक जवाब देना बेकार है ।

अक्सर तुम मुझे याद करोगे, यह मै जानता हूँ , क्योंकि जिन्हें याद करने की कोई जरूरत नही, जब वे करते है तब तुम भी करोगे ही ।

मेरे भाग्य विधाता ने मेरी सबसे बडी इस सजा को जन्मकाल में ही मेरे सिर पर लिख दिया था । आज अगर मै यह समझ पाता कि मेरे परिचित, आत्मीय - स्वजन, इष्ट

---

१ विभूति भूषण भट्ट के पिता श्री नफरचन्द्र ने तीन विवाह किया था । विभूति बाबू , निरुपमा देवी आदि तीसरी पत्नी के सन्तान है । नयी माँ का मतलब है - विभूति भूषण भट्ट की माँ ।

२ विभूति बाबू की बहन ।

मित्र मुझे भूल गये है तो मै सुखी होता, शान्ति पाता। यह होने को नही। ये लोग मुझे स्मरण करेगें, पता जानना चाहेगे, विचार करेंगे और अनवरत मेरी अधोगति के दुख से लम्बी सास लेकर मेरे मर्मान्तिक दुख की बोझ को अक्षय बनाये रखेंगे। इन लोगों ने मुझसे कौन सी आशा की थी, क्या नही पाया और किससे क्या होने पर मुझे निष्कृति दे सकते है, अगर यह बात कोई बता दे तो मैं हमेशा के लिए उनके निकट कृतज्ञ रहूँगा। मैं इतनी बातें न लिखता, अगर तुम पिछली बातों की याद न दिलाते तो। मै मर गया हूँ -अगर कभी किसी से मुलाकात हो तो कह देना।

लेकिन तुम दुखी मत होना। मै तुमसे नही डरता। क्योकि तुम शायद मेरे अपराधों का निर्णय करने की जिम्मेदारी नही लोगे, इसलिए तुम्हारे निकट कुछ दिन और जीवित रहने मे कोई नुकसान नही होगा। तुम मेरे मित्र हो, और शुभकांक्षी हो विचारक बनकर मुझे कष्ट नही दोगे, इस बात की आशा तुम्हारे निकट कर सकता हूँ।

मेरे बारे में कुछ जानना चाहते हो। सक्षेप में वह यो है -

१- शहर के बाहर एक छोटे से मकान में नदी के किनारे रहता हूँ।

२- नौकरी करता हूँ। ६० रुपये वेतन मिलता है और १०रुपये भत्ता। एक छोटी सी दुकान भी है। किसी प्रकार दिन गुजर जाता है। पूजी कुछ भी नही।

३- दिल की बीमारी है किसी भी क्षण . ..

४- पढ़ा बहुत लिखा प्राय कुछ भी नही। पिछले दस वर्षों से फिजिओलाजी, बायलोजी, सांइकोताजी और कुछ इतिहास पढा है। शास्त्र भी कुछ पढा है।

५- आग मे मेरा सब जल गया।, लाइब्रेरी और 'चरित्रहीन' उपन्यास की पाण्डुलिपि भी। नारी का इतिहास लगभग चार-पाँच सौ पृष्ठ लिखा था वह भी जल गया।

इच्छा थी कि इस वर्ष छपवाऊगा। मेरे द्वारा कुछ हो यह शायद होने का नहीं इसलिए सब कुछ स्वाहा हो गया। फिर शुरू करू, ऐसा उत्साह नही हो रहा है। चरित्रहीन ५०० पृष्ठ मे समाप्त होने को आया था, सब गया। तुम्हारे क्लब के बारे में जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। कैसे क्या-क्या होता है, बीच - बीच मे समाचार देते रहना। स्वय भी कुछ करना चाहिए, केवल चंग पर चढना नही चाहिए, इसे मत भूलना। तुम्हारा जैसा स्वभाव है, उससे तुम इतने लोगो से घनिष्ठता बढा लोगे तो इसमें कोई आश्चर्य नही।

हम लोगो की आगे की साहित्य-सभा की एक मात्र सदस्या निरुपमा देवी ही साहित्य -सेवा कर रही है, बाकी लोगो ने छोड दिया है -क्यों यही न ?

मेरे पास पहले की लिखी कोई भी रचना नही है, कहाँ है, है कि नही, कुछ पता नहीं जानता - जानने की इच्छा भी नही है। एक समाचार तुम्हें देना बाकी है। तीन साल पहले दिल की बीमारी के लक्षण दिखाई पडे तब मैने पढ़ना लिखना बन्द करके 'आयल पेण्टिग' प्रारभ किया था। पिछले तीन सालों में काफी आयल पेण्टिग सग्रह किया था। वह सब भी जल गया,केवल अकन सामग्री बच गयी।

अब मुझे क्या करना चाहिए अगर यह बता सको तो तुम्हारे सुझाव के अनुसार कुछ दिनों तक प्रयत्न करू।

१- नावेल, हिस्ट्री, पेण्टिंग

कौन सा ? किसे प्रारंभ करूं, बताओ।

तुम्हारा स्नेहाकांक्षी

शरत्

प्रमथ, ४अप्रैल, १६१३ ई०

तुम्हारी आगे वाली चिट्ठी का जवाब अभी तक नहीं दिया। सोच रहा था - तुम क्यों सदा मुझे इतना प्यार करते हो। मैं यह बात बहुत दिनों से सोच रहा हूँ। मै इतना योग्य नही हूँ भाई। मुझमें बहुत दोष हैं। तुम्हारा सरल, स्नेहपूर्ण बधुत्व मुझे अधिकतर समय सुख देता है - दुःख देने से भी नही चुकता। सोचता हूँ - मेरे बारे में यह व्यक्ति अपनी इच्छा से आत्मवचना करता है या वास्तव में इतना सरल, सुहृद आज के जमाने में मिलता है। तुम्हें देने के लिए मेरे पास कुछ अदेय नही है, यह बात अगर कोई विश्वास न करे, पर तुम अवश्य करोगे। मेरे अनेक दोषों के समय जब बराबर विश्वास करते आये हो तब इन दिनों मैं अच्छे लडकों में हूँ। आजकल मै सच बातें कहता हूँ।

मुझे बहुत सी बातें कहनी है। मेरा 'काशीनाथ' बचपन का लिखा है। जिन दिनों तुम्हे अच्छा लगता था। (शायद तुम्हें स्मरण हो -पाथुरियाघाटा में), मुझे भी अच्छा लगा था, लिखा भी था। आज तुम बडे हो गये हो और मैं भी। तुम्हें भी अच्छा नहीं लगा और मुझे तो वाहियात लगा था। धन्य हैं समाजपति महाशय (सुरेश समाजपति - 'साहित्य' पत्र के सपादक)। इसे उन्होंने छापा था।

अनिला देवी और उनका भाई शरत् - अर्थात् शरत् एव अनिला देवी - अर्थात् अनिला और शरत् 'यमुना' पत्र को जबान देकर बध गये है। मैने अनेक अपराध किये है, अनेक गर्हित कार्य जीवन के प्रारंभिक उम्र में किया है, अब और नहीं करना चाहता भाई। मैने जबान दी है - तुम मेरे मित्र हो - इस मामले में प्रफुल्ल मन से सम्मति दो। लाभ के कारण या तुम्हारी तरह मित्र के अनुरोध पर असत्य की सृष्टि न करूं - यह आशीर्वाद देकर मुझे सर्वान्तकरण से भिक्षा दो। मेरे सभी मामा भी नाराज हैं, उनसे भी काफी अनुरोध किया है। मेरी रचना (छोटी कहानियों में मजबूत नही हूँ) फाल्गुन से यमुना मे छप रही है और तुम्हारी अनुमति पाने पर और कुछ दिनों तक छपती रहेगी। मेरी राय तथा कहानी की धाराके बारे में विचार करने के लिए दो-एक दिन के भीतर यमुना के अक मिलेगे। यमुना को देखकर तुम भले ही समुद्र की कल्पना न कर सको तो कम से कम यमुना को देखकर यमुना ही समझना। अपनी सही राय लिख कर भेजना। वैशाख के अक भी वैशाख के पहले ही मिल जायगा। उसमें 'नारी का मूल्य' नामक एक लेख क्रमश के रूप मे अनिला देवी लिख रही हैं। इसके बारे में अपनी राय देना।

'चरित्रहीन' तुम्हें पढने के लिए दे सकता हूँ, लेकिन छापने के लिए नही। यह चरित्रहीन का लिखा चरित्रहीन है - तुम्हारे सुरुचिवाली पार्टी में जाकर बड़ी उलझन में फस जायेगा - इसके अलावा अत्यन्त अशोभन होगा। मेरे बारे में (गो कि वर्तमान रचनाओं को देखकर) आप लोगों की अच्छी राय हो और रचना की जरूरत हो तो जरूर दूगा, मगर अभी नहीं। चुपचाप छिपकर- बाजे-गाजे के साथ फोटोग्राफ देकर नही। मैं अति अर्वाचीन नही हूँ। एक बात और, वह यह कि चरित्रहीन कहानी की दृष्टि से कुछ भी नही है। एनांलिसिस और साइकोलाजिकल दृष्टि से लिखता हूँ। पहले वाला जल गया, उसके बाद दोनों को मिलाकर लिखा है।

आज यहीं तक घर का हालचाल ठीक है न ?

मेरी बातें घर में बता देना। तुम्हारी बुआ को प्रणाम कहना।

स्नेहाकाक्षी

शरत्

प्रमथ

एक अहंकार करूंगा, माफ करोगे ? अगर करो तो कहूँ। मुझसे अच्छा उपन्यास या

कहानी एक रवि बाबू के सिवाय और कोई नही लिख सकता । जब यह बात मन से - ज्ञान से सत्य प्रतीत हो तब निबन्ध, कहानी या उपन्यास के लिए अनुरोध करना । इसके पहले नही - तुम्हारे निकट मेरा यही बडा अनुरोध रहा । इस विषय में किसी के निकट खातिरदारी नही चाहता - मै सत्य चाहता हूँ । तुम्हारी पत्रिकामेंअच्छे लेखो की कमी नही होगी, क्योंकि तुम लोग रुपये दोगे । किन्तु मैं अगर इस मौके पर यमुना को छोड दूँ तो उसका कोई नही रहेगा । जब कि मेरा कहना है कि 'मेरिट' का आदर रहेगा तो यमुना बडी होगी मै किसी काम के लायक नही बन सका । भाई, अगर इस कार्य को सम्पन्न कर सका तब सुख से मर सकूगा । इसी बीच मुझे जवाब देने की जरूरत नही है । वैशाख की यमुना को देखकर फुरसत से जवाब देना । दीदी का लेख 'नारी का लेखन' पढने पर जरा कुरुचिपूर्ण लगेगा, पर टूथ चाहिए । आज के जमाने मे इसी की आवश्यकता है । मैं निर्भीक व्यक्ति हूँ, मुलाहिजा करना पसन्द नही करता, इसीलिए मैने स्वंय इस जिम्मेदारी को ली है । ठीक इसी प्रकार के बारह लेख लिखने का विचार है । मसलन, १- नारी का मूल्य, २-धर्म का मूल्य, ३- ईश्वर का मूल्य, ४- नशे का मूल्य, ५- मिथ्या का मूल्य, ६- आत्मा का मूल्य, ७ - पुरुष का मूल्य, ८- साहित्य का मूल्य, ९- समाज का मूल्य, १०- अधर्म का मूल्य ११- . , १२- .. ..

शायद दो वर्ष लगेंगे समाप्त करने में । क्या राय है ? ठीक क्या होगा ? द्वादश मूल्य का नाम देने का विचार है । तुम्हारी रचना का क्या हुआ ? तुमने लिखा था कि भेजूगा ! अगर भेजना तो रजिस्ट्री से भेजना ।

---

१७ अप्रैल, १९१३
रंगून

प्रमथ

कल तुम्हारा पत्र मिला आज जवाब दे रहा हूँ । वक्त नही है, काम की बात लिख रहा हूँ । वैशाख की यमुना मे इन लोगों ने विज्ञापन छापा है कि श्रावण के अंक से चरित्रहीन ये लोग प्रकाशित करेंगे । ऐसी हालत में मै क्या कर सकता हूँ समझ में नही आता । पता नही, मुझसे पूछे बगैर तुमने हरिदास बाबू से यह प्रस्ताव क्यो किया था, इसे मैं समझता हूँ । तुम यह जानते थे कि असाध्य होने पर तुम्हें देने लायक अदेय मेरे निकट कुछ है भी नही । अब इस समस्या का हल कैसे होगा । इसका निर्णय करना कठिन हो गया है । तुम्हें मेरे लिए लज्जित होना पडेगा, फाल्स पोजिशन होगा । इसी ने मुझे द्विधा में डाल दिया है वर्ना मैं कुछ ख्याल न करता । यमुना में छपना उचित है या नही, यह सवाल ही पैदा न होता । यह प्रश्न है - तुम्हारे सम्मान-असम्मान की बात । जलधर बाबू आदि प्रसिद्ध लेखक है, पैसे का लोभ दिखाकर जबरन, इनसे उपन्यास लिखवाना उचित नही होगा, फिर भी इनका नाम है, इनकी रचनाए वापस करके अच्छा काम नहीं किया । इसके अलावा मेरी रचना बहुत अच्छी होगी, इसका सबूत क्या है बहरहाल, तुम्हें पढाने के लिए चरित्रहीन जितना लिखा था (बहुत दिनों से नहीं लिखा) भेजने को सोच रहा हूँ । अगली मेल से अर्थात् इसी सप्ताह के भीतर भेज दूँगा । किन्तु और कोई रूप कह नही सकता । पढकर वापस भेज देना । इसका पहला कारण यह है कि इसके लिखने की शैली तुम लोगों को किसी भी दशा में अच्छी नहीं लगेगी । पसन्द करोगे या नहीं, इस पर मुझे घोर संदेह है, इसलिए इसे छापना मत । समाजपति महाशय ने बडे आग्रह के साथ इसे माँगा था, क्योंकि उन्हें सचमुच अच्छा लगा था । तुम लोगों के लिए जलधर सेन आदि की रचनाएँ अच्छी हैं । मेरी रचनाए वाहियात हैं । इनके यथार्थ भाव को कष्ट उठाकर कौन

समझेगा और कौन अच्छा कहेगा ? तुम्हारे ऊपर मेरा शपथ रहा कि वास्तव में और कोई उपाय न रहे तो और क्या कहूँ , वर्ना मुझे छोड दो - यमुना के कलेवर में वृद्धि करुगा। इससे बढकर एक बात है। तुम अगर सचमुच सोचते हो कि यह तुम्हारी पत्रिका में छपने लायक है तो हो सकता है कि छापने की स्वीकृति दे सकता हूँ , नही तो केवल मेरे मगल की ओर देखते हुए जिससे मेरी चीज छपे ऐसी चेष्टा किसी भी हालत में नही कर सकते। निरपेक्ष सत्य-साहित्य में यही मैं चाहता हूँ। इसमे मै रियायत नही चाहता। इसके अलावा तुम लोगों के द्विजूदा सहमत होंगे या नही, कहा नही जा सकता। अगर कोई आशिक परिर्वतन चाहता है तो यह नही हो सकता। मै एक लाइन भी काटने नही दूगा। मगर एक बात कह दूँ - केवल नाम और प्रारभ को देखकर ही 'चरित्रहीन' मत समझ लेना। मै एक 'एथिक्स' का स्टुडेण्ट हूँ , सही स्टुडेण्ट। एथिक्स समझता हूँ। जो कुछ भी हो पढकर लौटा देना और निडर होकर अपनी राय लिखना। तुम्हारी राय की कीमत है। किन्तु राय देते समय इसे याद रखना कि मेरा गभीर उद्देश्य है, इसे मत भूलना। यह कोई कबाडी की किताब नहीं है। रांड के घर की कहानी भी नही है, अगर छापने लायक मालूम पडे तो लिखना, मै कोशिश करके इसे पूरा कर दूंगा। अन्त मे क्या होग इसे मै जानता हूँ — मै जो मन में आया उसे नही लिखता। प्रारभ से एक उद्देश्य लेकर लिखता हूँ जो घटना चक्र से बदलता भी नही। वैशाख की यमुना कैसी लगी। 'पथ निर्देश' समझ पाये। जल्द जवाब देंना।

शरत्

प्रमथ, (मई १९१३,?)

जब तक तुम मेरी रचना नही पढते तबतक मेरा लिखना असपूर्ण रह जाता है। शायद यह मेरी बचपन की आव्त है, इसीलिए 'यमुना' तुम्हें बराबर मिलती रहे, इसका प्रबध मैने कर दिया है। मेरा स्वभाव जानते हो। जो लोग मेरे अपने है, वे मुझे अच्छी तरह से जानते है , जबकि बाद में कुछ भी न जाने - यह मेरी स्वाभाविक व्याधि है - इसी अनुरोध के कारण तुम्हारे पास यमुना भिजवा रहा हूँ , इसीलिए 'चरित्रहीन' भेजा। आशा है कि अब तक मिली होगी। पता नही क्यों मेरे मन में यह भय समा गया है कि यह पुस्तक तुम्हें अच्छी लगेगी यह साहस तुममें नही है। इन्टेलेकच्युली पूर्ण रूप से निर्दोष न होने पर भी निचले दर्जे की नही है , मगर रुचि के प्रश्न पर तो प्रारभ में तो कुछ दोष अधिक है। सब जानते हुए भी मैने एक पत्ति भी नही निकाला और न निकालूगा। जाने दो इस बात को। तुम्हे पढने के लिए दी है। अपनी सही राय देते हुए इसे वापस कर देना। आशा है, अनुरोध मानोगे। तुम लोग 'रिजेक्ट' कर दो - मै यही (ईश्वर के निकट) आन्तरिक प्रार्थना कर रहा हूँ। ऐसी हालत में तुम्हें फाल्स पोजिशन में फसना नही पडेगा। सहज ही कह सकोगे - पसन्द नही आया।

एक बार मन में विचार किया था कि तुम्हारी पत्रिका के लिए कुछ छोटी कहानियां, हो सका तो लिखूगा, क्योंकि तुम इस पत्रिका के साथ (फणी बाबू - यमुना संपादक) एक पत्र भेज रहा हूँ, इससे सब समझ जाओगे। हरिदास बाबू अपने लोगों को इस बीच, मेरे बारे में इतना झूठ मित्रों से कह चुके हैं तब भविष्य में (अगर तुम लोगों से सम्पर्क रख सका) और भी कितनी कुत्सा फैलेगी, इसे तुम समझ सकते हो। मेरी निन्दा से मुझसे कही अधिक तुम्हें कष्ट होगा - यह मै जानता हूँ। कही हरिदास के प्रति स्नेह तुम्हे मेरे प्रति अध कर डाले - इसलिए इन बातों को लिखना पडा वर्ना फणी का पत्र भेजकर तुम्हें विवेचना करने की जिम्मेदारी देकर चुप रह जाता। जिस बात से मुझे सख्त नफरत है

(बडे आदमियो की निर्लज्ज खुशामद), क्या प्रकारान्तर से मेरे भाग्य में यही होगा-अगर तुम्हारे साथ 'साहित्यिक' सम्बन्ध रखूँ तो। तुम लोग रुपये दोगे, तुम लोगा का छोटे साहित्यकारो पर काफी प्रभाद है, मगर मैं न तो छोटा साहित्यकार हूँ और न रुपयों का कगाल। कम से कम आत्मसंभ्रम विसर्जन नही दे सकता। एक तुम और तुम्हारे प्यार के अलावा मुझे खरीदने लायक पूरे कलकत्ते में नही है, फिर तुम्हारा मुहल्ला तो बहुत छोटा है। कितने दुख की बात है, बताओ। हरिदास बाबू के मैनेजर सु* को पहचानता हूँ। मेरे बारे मे इतनी झूठी बातें प्रचारित करने में उसे शर्म नही आयी? वह सोचता है कि मै उसकी तरह हीन, नीचे पेशेदार साहित्य सेवी हू - यही न?

प्रमथ, अधिक गर्व करना उचित नही है, है क्या हूँ, मैं क्या हूँ, इसे जानता हूँ। मै किसी भी पत्र को सहारा देकर लोकप्रिय बना सकता हूँ - अगर यह बात झूठ है तो अधिक दिन नही, केवल एक साल तक इन्तजार करो तब कहोगे कि गुमान नही करता।

खैर, जाने दो इन बातों को। यह हमारी आपसी बाते है। इससे किसी का लाभ या हानि नही होगा। अगर तुम्हारा उन लोगो पर प्रभाव हो और मै तुम्हारा दुश्मन नही हूँ तो इन झूठी बातो का प्रचार न हो, इसका उपाय करना। मै खचिया भर लिख नही पाता। लिख लेने पर छपाने के लिए सपादकों को दनादन पत्र लिखकर परेशान नही करता। फणी मुझे कभी एक भी बात झूठ लिख नही सकता - इसे मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। इसके आलावा उस अभागे बा-- को जानता हूँ, उसके बारे में सुन चुका हूँ। इसी दुख के कारण ही तुम्हें कडी बाते लिखने के लिए मजबूर हुआ। मुझे यमुना से प्यार है यह बात तुम जानते हो, फिर भी कही तुम्हारी अमर्यादा न हो जाय, इस डर से तुम्हारे पास चरित्रहीन भेजा। (तुम अच्छा बुरा जो भी कहो या न कहो, यह अलग बात है।) अगर न भेजता तो तुम्हारे ग्रूप के लोग सोचते कि मै तुम्हे उतना प्यार नही करता। प्यार करता हूँ, इसे प्रमाणित करने के लिए भेजा। तुम पढोगे, अस्वीकृत करोगे, कोई नुकसान नही, फिर भी तुम्हारा सम्मान रहेगा और मेरे ऊपर तुम्हारा जोर है, यह प्रमाणित करेगा। तुम्हारा पत्र पाने पर मै फणीपाल को पत्र लिख दूँगा। वह पाण्डुलिपि तुम्हारे यहाँ से ले आयेगा।

एक बात और। तुम लोगों को रुपये की गर्मी अधिक नही रखना चाहिये। रुपये से सभी को नही खरीदा जा सकता। जरा सत् और जरा अनेष्ट होना चाहिये। कदम रखते देर नही हुई और गश्तवाले आ पहुँचे। अभी तक परिपत्र प्रकाशित नही हुआ इस बीच खचिया भर ग्लानि और इसके बाद क्या होगा, यही सोच रहा हूँ। समाज जिसे अच्छा बने, लोगो को सत्शिक्षा प्राप्त हो, मासिक पत्रिकाओ का यही उद्देश्य होना चाहिये। जबकि तुम्हारे मैनेजर जो हैं, उसकी चर्चा करते ही क्रोध से लाल हो रहा हुँ। ऐसे नमूने को अधिक बढावा न दिया जाय, मेरी ओर से हरिदास बाबू को अनुरोध करना। कहना -मेरा पेशा है नौकरी - इससे खाने भर को मिल जाता है। मैं ठहरा सन्यासी आदमी -मुझे अपने नाम या रुपयों से अधिक आत्मसम्मान प्रिय है। इसके अलावा मैने हरिदास बाबू का कोई नुकसान नही किया है जो उनका दाहिना हाथ मेरे दाहिने हाथ को काटेगा। मै जरा अभिमानी हूँ। अगर यह न होता तो मैं निर्वासित होकर अज्ञातवास न करता।

बहरहाल, तुम मेरे मित्र हो। मित्र का जो अर्थ होता है, वही हो। उससे एक तिल कम नही। जो उचित मालूम पडे, करना। "पथ निर्देश" पढ चुके? कैसी लगी? कुछ याद आ रही है, बहुत दिनों की पुरानी कहानी। नहीं पढी है तो कोई हर्ज नही, मगर कहानी कैसी लगी - लिखना। सुना है कि लोगों को पसन्द आयी है। (गोकि कहानी

---

* श्री सुधाकृष्णा बागची

कुछ कठिन है । मन लगा कर पढना पडेगा ।)

पिछले कुछ दिनों से बुखार है । तुम्हारा चिरजीव कैसा है ? आशीर्वाद देता हूँ वह शीघ्र अच्छा हो जाय । प्राणधन बाबू को मेरा नमस्कार कहना । उन्हें मेरी याद दिला देना ताकि वे मुझे भूल न जाय ।

शरत्

प्रमथ,

मुझे ऐसा आभास हुआ है कि सु— की बातों में कुछ सत्यता है । शायद उन लोगों ने (हरिदास बाबू आदि) कहा है कि मेरी कोई पुस्तक कृपा करके पत्रिका में प्रकाशित कर देने पर मै उनका चिर कृतज्ञ रहूगा । कितनी बडी गलत धारणा है ।

प्रमथ, सु— से मुलाकात होने पर पूछना कि "जाह्णवी" में अगर मेरी कोई रचना छाप सकता है, शायद इसके लिए कुछ रकम भी दे सकता हूँ । डै-- सोआइन । सुना है कि उस व्यक्ति ने "पुण्य की जय" के शीर्षक से कुछ लिखा था । पुण्यात्मा लोग इसी तरह की रचना लिखते हैं ।

प्रमथ,

'चरित्रहीन मिला या नही, समाचार नही दिया । इसके पहले दो - चार दिनों तक बीच-बीच में पत्र मिलते रहे, पर इधर काम हो जाने पर चुप्पी साध गये हो । क्या उसे पढा ? कैसी रचना है ? मुझे सन्देह है कि अच्छी नही है, कम से कम यह कहने का साहस नहीं हो रहा है, किन्तु अच्छा हो या बुरा, एनालिसिस ठीक है न ? दर्शन की तरह नीरस तो नहीं ? यहाँ एक बात तुम्हें याद दिला दूँ, अगर अच्छा न लगे तो इसे छापने का तिल मात्र प्रयास मत करना । 'साहित्य' न हो 'यमुना' और नहीं तो 'भारती' में प्रकाशन हो जायेगा । तुम लोगों की नयी पत्रिका है । 'पुण्य की जय' या इसी प्रकार दमदार सतीत्व, हिन्दू विधवा जलकर मर गयी या जलधर सेन की जैसी कहानी अच्छी होगी । पाठक प्रशसा करते हुए कहेंगे — हा । हिन्दू पत्रिका है । हिन्दू आइडियल कायम है । इस तरह की कहानिया लिखना कठिन है, इसके अलावा हिन्दू कट्टरपन भी नही है । रुचि की दृष्टि से आपत्ति होगी, इसे अनुभव कर रहा हूँ । इस रोजगार में कौन सा ठीक रहेगा, इस पर पहले गौर करना चाहिए । मगर मुझे तुम्हारा निरपेक्ष मत चाहिए । मैं यह जानता हूँ कि मेरे मित्र प्रमथनाथ की क्या राय है । अगर तुम्हारा निरपेक्ष राय यह हो तो अच्छा नहीं है तो जिससे अच्छा हो, वही प्रयत्न करूगा । पढने के बाद मुझे सूचित करना । मैं फणी को पत्र लिख दूगा । वह पाण्डुलिपि वापस ले आयेगा ।

तुम लोगों का परिपत्र अभी तक छपा नही है ? अगर छप जाय तो कृपया एक प्रति मुझे भेज देना । जब पत्रिका प्रकाशित हो तो उसकी एक प्रति भेज देना ।

एक सलाह तुम्हें देना चाहता हूँ । चूकि तुमने जिम्मेदारी ली है, इसलिए कह रहा हूँ, वर्ना नही कहता । अगर अपनी पत्रिका में धारावाहिक कोई उपन्यास छापना तो उसमें साधु - सन्यासी, जप-तप, कुल कुण्डलिनी आदि अवश्य रहे । ऐसे उपन्यास बाजार में प्रसिद्ध हो जाते हैं । और यह भी देखना कि अन्त में दो - चार पात्र हडबड़ाकर मर जाये - (एक को जहर खाना चाहिए) और नहीं तो सभी एक जगह आकर एकत्रित हो जायें । यह होने पर ही लोग काफी प्रशसा करेंगे । नयी पत्रिका के लिए उपन्यासों की सख्त जरूरत होती है । अगर मुझे अनुमति दो तो मैं चरित्रहीन के बदले इस तरह का उपन्यास

तुरत लिखकर भेज सकता हूँ। जो उचित समझो, लिखना। मै उसी तरह की रचना लिखना शुरू कर दूगा। अगर मुझे हुक्म दोगे तो रचना के साथ ही लाल स्याही से लिखा दो तंत्र - मन्त्र भी भेज दूगा। अपने पत्र मे यह जरूर लिखना कि रचना में कितने सन्यासी - फकीरो का रहना जरूरी है। नायिका सतीत्व की रक्षा के लिए कितनी वीरता दिखायेगी, इन बातो का आभास देना। साथ ही षटचक्र का भेद होना आवश्यक है या नही, यह भी लिखना। एक बात यह तो बताओ कि तुम लोगों के परम मित्र सुधाकृष्ण बागची का क्या हाल चाल है? उन्होंने अब तक क्या क्या किया? कौन -कौन सी सलाह उन्होने आपको दी? उनकी सलाह जरूर कीमती होगी। मेरा प्यार स्वीकार करना।

तुम्हारे स्नेह का

शरत्

प्रमथ,

मैने मजाक किया है, नाराज मत होना। पूर्ण रूप से मजाक किया है, किसी पर किसी का 'रिफ्लेशन' नही, इसे ठीक से समझना। तुमसे मजाक इसलिए किया, क्योंकि तुमने 'चरित्रहीन' के लिए बेहद हगामा किया था। मैने तुम्हें पहले ही सूचित कर दिया था कि 'चरित्रहीन' षटचक्रभेद नही है। यह तो 'एथिक्स' और 'साइक्लोजी' है, धर्म नही। बहरहाल, तुम अपनी गोष्ठी मे मेरे कारण अप्रतिभ होगे, यही मेरे लिए कष्टदायक है। उनसे कहना कि शरत् लिखना नही जानता, ऐसी बात नही है, पर इसमें उसका कुछ उद्देश्य है, वह असपूर्ण अवस्था में दिखाई नही दे रहा है। मुझमें कहानी लिखने की प्रतिभा है यह प्रमाण बचपन मे तुम देख चुके हो। यही जवाब उन लोगों को देना। भविष्य मे तुम लोगों को अच्छा लगे, ऐसा उपन्यास लिखकर दूंगा, इस बारे में कोई ख्याल मत करना।

एक बात और। अनिला देवी मेरी दीदी है - मै नही। तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि दोनों एक ही व्यक्ति है। द्विजू बाबू से तुमने ऐसा क्यों कहा? यह काम अच्छा नही किया, मैने तो कभी तुमसे ऐसा नही कहा है कि दोनों एक ही व्यक्ति है। दो से चार तक फैलने पर (जो बिलकुल झूठ है) बात फैल जायेगी। यह बडे शर्म की बात होगी, क्योकि दीदी ने कहा है कि आगे वे और तीव्र आलोचना प्रस्तुत करेंगी। ठाकुर घराने के विरुद्ध कितनी जगह कितनी गलतिया है, उसकी आलोचना लिखकर लेख मेरे पास भेज चुकी है। यह लेख ग्रैण्ड है। सुना है कि ठाकुर घराने में लोग केवल अपने नाम के जोर से अण्ड-बण्ड लिख रहे है। सम्प्रति ऋतेन्द्र बाबू ने एक लेख (फाल्गुन के 'साहित्य' पत्रिका में 'कानकाटा' का इतिहास') लिखा है उसमें सभी तथ्य गलत है। इस प्रकार सर्वज्ञाता बनकर दृढता के साथ उन्होंने लिखा है, इस तरह की रचना बगला और अग्रेजी मे कभी प्रकाशित नही हुआ है, ऐसा दीदी ने लिखा है। मेरा विश्वास है कि उनका अध्ययन 'ए लिटल विट् वाइड' है ऐसी स्थिति में लोग यह सोचें कि एक साधारण क्लर्क और कहानी लेखक इस तरह की गभीर आलोचना लिख सकता है, यह सुनने में अच्छा नही लगेगा। इसके अलावा दीदी को भी दु ख हो सकता है। अगर हो सके तो बात को पलट लेना।

शरत

प्रमथनाथ,

ज्येष्ठ, १३२०

एक साथ तुम्हारे दो पत्रो को पाकर मै निश्चिन्त हो गया। यद्यपि मै फणी के पत्र को पढकर उत्तेजित हो उठा था, तद्यपि तुम्हारे वृद्ध—महाशय को लेकर इतना करना उचित

नही हुआ। वृद्ध आदमी ठहरे, शाप देंगे तो अच्छा नही होगा। जरा विनय के साथ उन्हे समझा देना ताकि वे कुछ ख्याल न करें। जब उन्होंने कुछ नही कहा है तब बात यहीं समाप्त कर दो।

तुम लोगों के 'इवनिंग क्लब, में मेरी रचनाओं की प्रशसा हुई है सुनकर प्रसन्नता हुई। अगर पास रहता तो द्विजू बाबू को प्रणाम कर उनके चरणों का रज ग्रहण करता। इससे अधिक कुछ करने की क्षमता मुझमें नही होती। तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ। भागलपुर तथा यहा एक मतभेद उत्पन्न हुआ है। वह यह कि 'राम की सुमति' से 'पथ निर्देश' अधिक सुन्दर है। द्विजू बाबू को मेरा प्रणाम निवेदित करते हुए पूछना कि इनमें कौन सी कहानी अच्छी है। उनकी राय फाइनल होगी और मतभेद भी समाप्त होगा।

'भारतवर्ष' जब तुम्हारी अपनी पत्रिका है तब इस बारे में अपना कर्त्तव्य मैं स्थिर करूगा। इस बारे मे अपने मन की बात कहना बेकार है। मगर एक बात है, मेरे पास समय की कमी है। रात को मैं लिख नही पाता, सवेरे दो घटे का समय मिलता है, वह भी प्रत्येक दिन नहीं। तुमसे मेरा एक अनुरोध है, 'यमुना' को अपना स्नेह देना। जिस प्रकार भारतवर्ष तुम्हारी है, उसी प्रकार 'यमुना' मेरी है। उसे कोई नुकसान न पहुँचे, इस ओर ध्यान देना भाई। फणी से मैं स्नेह करता हूँ, यह सत्य है, पर तुम्हारा कोई असम्मान करे या उपेक्षा करें, यह फणी ही क्यों, किसी के कहने पर भी मैं ऐसा नहीं कर सकता। यही वजह है कि 'चरित्रहीन' भेजा था। गो कि इसके पीछे अनेक बातें हुई हैं। और होती रहेंगी - इन बातों को जानते हुए भी मैंने भेजा था। बहरहाल, जब तुम लोगों को वह पसन्द नहीं आया तब उसे वापस भेज दो। जैसा विज्ञापन किया गया है, उसी तरह इसका प्रकाशन 'यमुना' में ही होगा। तुमने सुझाव दिया है कि इसे एक साथ पुस्तकाकार में छपवा दू तो अच्छा होगा। बात सही है, पर मामला इतना बढ गया है कि अगर अपने स्वार्थ के लिए फणी को न दू तो बडा बुरा और लज्जाजनक कार्य होगा। तुमने जो कुछ लिखा है, उसे मैं जानता था। मैं यह भी जानता था कि यह उपन्यास तुम लोग पसन्द नही करोगे और यह बात मैं अपने पूर्व पत्रों में व्यक्त भी कर चुका हूँ। मगर इस बारे मे मुझे सिर्फ इतना ही कहना है कि जो व्यक्ति जान बूझकर मेस की नौकरानी को प्रारभ में खीच लाया है, वह जान बूझकर ही करता है। तुम लोगों ने उसका अन्त न जानकर अर्थात्, उसे केवल मेस की नौकरानी मात्र समझा है। प्रमथ, हीरे को तुम लोगों ने शीशा समझने की गलती की है भाई। अनेक विशेषज्ञ पुस्तक को पढकर मुग्ध हुए है और इसका उपसहार जानना चाहते हैं। यह एक साइण्टिफिक साइको एण्ड एथिकेल नावेल है। इस तरह के उपान्यास बगला में अन्य किसी ने लिखा है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। इतने से डर गये भाई? काउण्ट टालस्टाय की 'रिसारेक्शन' पढी है? वह एक अच्छी पुस्तक है। एक साधारण वेश्या की कहानी है। मगर हमारे मुल्क मे अभी तक उतना आर्ट समझने की समय नही आया है, यह सत्य है।

बहरहाल, जब वह नही हो सका तब उस विषय पर आलोचना करना ही बेकार है। मेरी भी वैसी राय नहीं थी। तुम लोगों की नयी पत्रिका है, उसमें इतना साहस न करना ही न्याय सगत है। मगर मेरे लिए अन्य कोई उपाय नही है। उलग समझकर मैं आर्ट से घृणा नही कर सकता। जिससे यह रचना 'इन स्टिक्टेस्ट सेन्स मराल' हो, ऐसा जरूर करूगा, रजिस्ट्री के द्वारा मेरे पास वापस भेज दो। फणी को देने की जरूरत नही है। तुम लोगों के प्रथम अक के लिए क्या दू, भाई? कैसी रचना चाहते हो अगर सूचित कर सको तो अच्छा हो। मै यथासाध्य प्रयत्न करूगा।

एक बात और है। इसके आगे मुझे अगर कोई इस विषय पर सर्तक कर देता अर्थात, बता देता कि नौकरानी को लेकर प्रारभ करना उचित नही है तो शायद मैं अन्य

मार्ग पकड़ने का प्रयत्न करता । यह बात किसी ने नही बतायी । अब तो काफी देर हो गयी है । 'पाषाण' कैसी रचना है स्मरण नही है मेरे पास नही है । इसके अलावा वह बचपन की रचना है । बिना देखे बिना सशोधन किये, उसे प्रकाशित नही करा सकता । अगर करना पडा तो 'काशीनाथ' की तरह बन जायेगी । चन्द्रनाथ की कहानी याद है ? उसे भी नये ढग से सुधार रहा हूँ । आज कल उसका प्रकाशन यमुना मे हो रही है । जब यह समाप्त हो जायेगी तब 'चरित्रहीन' धारावाहिक रूप में प्रकाशित होगा, ऐसा मैने निश्चय किया है । इसे समाजपति महाशय को देने की बात हुई थी और इस बाबत उन्होंने पत्र भी लिखा था, मगर फणी की पत्रिका तो मेरी पत्रिका है ।

फणी पर नाराज मत होना । वह आदमी अच्छा है । किन्तु उसे यह मालूम नही कि तुम मेरे निकट क्या हो । बीस वर्षों से हमारी घनिष्ठता है । लोग सोचते है मित्र । किन्तु मित्रता किसके बीच है, कैसी मित्रता है, भला वह बेचारा कैसे जान सकता है । तुम्हारी-मेरी बाते, हम दोनों के अलावा और कोई नही जानता , प्रमथ । अगर इस बारे मे उससे कभी कोई बातचीत हो तो कहना - बाहरी व्यक्तियो को कैसे बताऊ कि शरत् के लिए मै क्या हूँ । बल्कि न जानना ही अच्छा है । तुमने जो कुछ लिखा है, जरा सोच-विचार कर जवाब दूगा । तुम भी उत्तर जल्द देना । हरिदास बाबू और प्राणधन भाई को मेरी बातों की याद दिला देना ।

शरत्

प्रमथनाथ, १२ मई, १६१३

तुम्हारा तीसरा पत्र मिला । तुम्हारे पहले वाले पत्रों का उत्तर दे चुका हूँ, फिर भी इस पत्र का उत्तर लिखने बैठा हूँ । इसका कारण यह है कि मैं तुम्हें प्यार ही नही करता बल्कि तुम्हारे प्रति मेरी श्रद्धा भी है । मतलब तुम्हारी राय का उचित मूल्य समझता हूँ । मुझे जो कुछ भी कहना है, कह लू , इसके बाद भी अगर तुम्हारी वही इच्छा बनी रहे तो यथासाध्य तुम्हारी अभिरुचि का पालन करने का प्रयत्न करूगा । तुमने लिखा है कि विधवा बिना छोटी कहानियां जमती नही (मजाक किया है ?) शायद तुम्हारी बाते ठीक है । बकिम बाबू जैसे उपन्यासकार ने अपने सर्वश्रेष्ठ उपन्यासो (कृष्णकान्त की वसीयत तथा विषवृक्ष) में उसे निकाल नही सके । तुमने मेरी कहानी 'पथ निर्देश' के बारे मे कटाक्ष किया है । समझ गया, तुम्हें वह कहानी पसन्द नही आयी है । अगर यह बात सच है तो मै तुम्हें उपदेश देता हूँ कि आगे उपन्यास कहानी लिखने का प्रयत्न मत करना और पढने का प्रयत्न भी मत करना । एक-दो पेण्टर जिस प्रकार कलर ब्लाइण्ड होते है, तुम भी उसी प्रकार के हो । 'राम की सुमति' में आर्ट कम है, अगर वही कहानी बहुत पसन्द आयी है और दूसरी वाली नही तो मै सचमुच लाचार हूँ । यह केवल मेरी राय नही है । इस पर विश्वास करो, ऐसा अधिकाश लोगों का मत है । इसके अलावा अगर तुम्हारी मुझ पर जरा भी श्रद्धा है तो मै भी यही बात कहना चाहूगा । परिश्रम की दृष्टि से, आर्ट की दृष्टि से 'पथ निर्देश' के आगे 'राम की सुमति' का स्थान नीचे, काफी नीचे है । मैंने यह निश्चय किया था कि 'राम की सुमति' की तरह एक नमूना लिखू । इस प्रकार हिन्दू परिवारो में जितने प्रकार के सम्बन्ध है, उन सभी के अवलम्बन पर एक - एक कहानी लिखूगा । इस प्रकार पूरी एक पुस्तक तैयार हो जायेगी । यह रचना केवल महिलाओ के लिए होगी ।

खैर 'चरित्रहीन' वापस (रजिस्ट्री से) कर देना । इस बारे में ऋषि टालस्टाय की 'रिसारेक्शन' (दि ग्रेटेस्ट बुक) पढना । अग विशेष खोलकर लोगों को दिखाना नही चाहिए, इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ । मगर घाव को भी नही दिखाना चाहिए, यह नही

जानता था । डाक्टरों की उपमा काम नही देती । समाज में अगर कोई डाक्टर होता है जिसका काम फोडे का इलाज करना है, वह कौन है जरा बताना । जो सड़ गया उस पर पट्टी बाधकर रखने से दूसरों को अच्छा जरूर लगता है, पर रोगी के लिए सुविधा नही होती । केवल सौन्दर्य सृष्टि करने के अलावा उपन्यास लेखकों के लिए अन्य गभीर कार्य करने पडते है । जो कार्य घाव दिखाना चाहता है तो उसे दिखाना ही पडेगा । आस्टिन, मेरी करोली आदि ने समाज के घावों को दिखाया है, उसका इलाज करने के लिए, लोगों को दिखाकर केवल डराने के लिए नही, मनोरजन के लिए नहीं । इसके अलावा 'सेण्टल फिगर' कर रहा हूँ , यह कैसे समझ लिया ? गो कि बदनामी होगी, इसे मै अच्छी तरह से समझ रहा हूँ , पर यह तो जानते हो कि डर कर चुप हो जानेवाला स्वभाव मेरा नही है । तुमने लिखा कि लोग निन्दा करेंगे, शायद ठीक है पर एक इस 'चरित्रहीन' के सहारे 'यमुना' की कितनी उन्नति होगी या नही होगी, इसे भी देखना आवश्यक है । यह मत सोचना कि जो छोटा है वह कभी बडा नहीं हो सकता । छोटा भी बडा होता है, बडा भी छोटा होता है ।

इसे भी छोड दो । कहानी लिखकर तुम लोगों का मनोरजन कर सकता हूँ , आज इस आशा को मैने त्याग दिया । तुम्हारी पत्रिका के लिए कैसी कहानी होनी चाहिए — इसे समझना मेरे लिए कठिन होगा । अगर यह सदेश (मिठाई) बनाने का कार्य होता तो छोटा - बडा या चीनी कम अधिक मिलाने से पूरा हो जाता, मगर यह तो मन की सृष्टि है । लिहाजा सहस्र प्रयत्न करने पर भी तथा सर्वान्त करण से इच्छा करने पर भी तुम्हारी पत्रिका के लिए कुछ कर सकूगा इसका भरोसा मुझे नही है ।

वास्तव मे यदि तुम्हारे काम आ सका तो उससे बढकर मेरे लिए सोभाग्य की बात क्या हो सकती है , पर मेरा कार्य तुम लोगो के निकट अकार्य प्रमाणित होगा । मगर एक बात कहूँगा भाई, नाराज मत होना, तुम लोग इतने प्रगतिशील होकर कैसे बुर्जुआवादी बन गये । मै केवल इसी बात की चिन्ता कर रहा हूँ ।

तुमने 'नारी का मूल्य' लेख पढकर काफी प्रशसा की है ज्येष्ठ का अक (यमुना) पढने के बाद न जाने कितनी निन्दा करोगे, इसी चिन्ता में हूँ । तुम अपना 'अर्थ का मूल्य' लिखो । जब इच्छा हुई है तब जरूर लिखो, पर विद्वानों की सर्वत्र पूजा होना (बडे लोगो से) उचित नही है - यह बात कैसे प्रमाणित करोगे, इसे मैं नही समझ पाता । गोकि सभी जगह वह पूजा नही पाता और पाना उचित भी नही है इसे प्रमाणित करना कठिन होगा ।

तुम लोगो की पत्रिका का चारों ओर नाम हो गया है । सभी कह रहे है कि दो - तीन अक देखने के बाद-विचार किया जायेगा कि ग्राहक बना जाय या नही । लिहाजा पहले के दो तीन अक भर्ती के मैटर न हो, क्योंकि कीमती काफी अधिक है । लोग इसी दृष्टि से मेटर चाहेगे । कम से कम बर्मा के लोगों का यही विचार है । पहले ही पहल लोग निराश न होने पायें । आशा है लौटती डाक से 'चरित्रहीन' वापस भेज दोगे । तुम्हे पहले वाले पत्रों में यह लिख चुका हूँ कि वह 'यमुना' में धारावाहिक रूप में छपेगी गोकि पत्रिका को बडी बनाने के बाद । आगे फलाफल उसका भाग्य और मेरा प्रयत्न एव भगवान का हाथ । रहा नाम से छपने का प्रश्न ? जब यह उपन्यास इतना कुरुचि पूर्ण है तब इसे अपने नाम से छपवाना ही उचित होगा । जो कठिन चीज है, वह उसका भार सभाल सकता है ।

एक बात और । 'आंख की किरकिरी' (रवीन्द्रनाथ ठाकुर का उपन्यास) की बदनामी इसलिए है कि 'विनोदिनी' (नायिका) घर की बहू है । उसे लेकर इतना करना उचित नही था । इससे घर की पवित्रता को चोट पहुँची है जिस प्रकार पाचकौडी की 'उमा' (पाचकौडी बनर्जी का उपन्यास) । मैने अभी तक किसी की पवित्रता पर चोट नही पहुँचायी है । आगे क्या करूगा पता नही । मुझ पर नाराज मत होना प्रमथ । अगर मन की बाते

खुलकर तुमसे न कह सका तो किससे कहूगा ? मेरी प्रबल इच्छा थी कि तुम्हारी सहायता करु पर अब वह साहस नहीं है । विधवा के बिना कहानी नही जमती जब यही तुम लोगों का 'निगेटिव स्टैण्डर्ड' है तब मेरे लिए कोई उपाय नही है ।

तुम लोगों को एक उपदेश देने कि इच्छा है । इच्छा हो इसे ग्रहण करना या नही करना । तुम लोग अपने पालतू लेखको को फरमाइश देकर लिखाते समय प्रत्येक पग पर ओवरसियरो की तरह फीता लेकर लेबिल नापने की तरह नाप-जोख करोगे तो सारी रचनाए सिकुड जायेगी । तब पत्रिका बिलकुल चौपट हो जायेगी । जो लोग सुलेखक है और जिन्हे वास्तव मे 'कवि' समझते हो, उनकी आलोचना करो और उनकी रचनाए भी छापो । लोगों को अच्छा बुरा दोनो ही बात कहने का अधिकार दो - गाली दो, किन्तु प्रकाश होने के पक्ष में अन्तराय मत होना । पादरियो का 'होम' या गिरजाघरों के 'प्रेयर' की तरह अगर अपनी पत्रिका को बना डालोगे तो क्या यह अच्छा होगा ? मै बहुत कुछ लिख गया, पर अब इस बात का डर लग रहा है कि कही इस पत्र मे मेरा क्रोध और आक्रोश है समझ न बैठो । कुछ भी नही है । तुमने सरल भाव से पत्र लिखा है, मै इसीसे सचमुच कृतज्ञ हूँ । ऐसी स्थिति मे जो मित्र नही हैं, वे क्या कहेगे । गोकि पुस्तक इम्मारेल कहने के कारण जरा दुखित नही हुआ हूँ , यह नही कह रहा हूँ , पर उपाय क्या है ? भिन्नरुचिर्हि लोक । 'पथ निर्देश' कहानी ही जब इम्मारेल लगी है (कारण तुमने लिखा है - मजाक किया, पर कौन सा मजाक है समझना कठिन है) तब तो 'चरित्रहीन मे स्पष्ट 'इम्मारेल' का निशान लगा दिया गया है ।

जाने दो यह सब । तुम्हारा हालचाल कैसा है । काफी व्यस्त होगे । कौन - सा धारावाहिक उपन्यास छापने जा रहे हो ? उसका लेखक कौन है ? किन्तु जलधर दादा का दिशु दादा - टादा बेमतलब का हो गया है । मेरे यहा बगाली कम नही है, वे सब समझदार है ऐसी रचनाए अब वे अब पढ़ना नही चाहते । कुछ ऐसी चीज प्रकाशित करो जो उज्ज्वल हो । जिस प्रकार पतगा प्रकाश के निकट से हट नही पाता, उसी प्रकार तुम लोग कुछ प्रकाशित करो ताकि लोग उसके प्रति आकृष्ट होते रहे । अगर ऐसा नही कर सकते हो तो पत्रिका प्रकाशित मत करो । वही आलू-बोरे की तरकारी, केले का रायता - यह सब छापने से लाभ ? मुझे अच्छी तरह याद है, जब 'बग दर्शन' मे रवि बाबू का 'आख की किरकिरी' और 'नौका डूबी' उपन्यास छप रहे थे तब हम 'बग दर्शन' के आने की पतीक्षा मे आखें बिछाये रहते थे । पत्रिका के आते ही छीना - झपटी होती थी । तुम लोग ऐसा कर सको तो सफलता प्राप्त कर सकोगे । क्योकि तुम लोगों का रिसोर्स काफी है और सहायक भी अनेक है । सबसे अधिक (रुपये) चीज भी है ।

सुना है तुम लोगो का कोई परिपत्र छपा है । सोचा था कि मुझे भी प्राप्त होगा । शायद भेजना आवश्यक नही समझा । बहरहाल, उसमे क्या - क्या था, अगर लिखकर भेज सको तो अच्छा होगा ।

आज यही तक इतना बडा पत्र लिखकर मैने तुम्हे दु ख दिया या क्या किया । मुझे भी चोट पहुँची है । तुमने लिखा है कि 'चरित्रहीन' दूसरे के नाम से छपवाऊ , केवल इसी बात पर सबसे अधिक चोट पहुँची है । क्या मै इतना हीन हूँ ?

मेरी जो खराब रचनाए है, उसे मेरे ही नाम का आश्रय चाहिए । यह न करके कोई एक फिजूल नाम देकर (अपना नाम बचाने के लिए) छपवाऊ ? अच्छा या बुरा जो भी हो, उसके फल को भोगना उचित है । नाम क्या है ? कौन इसकी परवाह करता है ? अगर इसकी चाह होती तो अब तक मै चुपचाप अपना वक्त बरबाद न करता । मेरा प्यार लेना । पत्रोत्तर बराबर देते रहना ।

शरत्

'रंगून गजट' में द्विजू दादा के निधन का समाचार पढ़कर मैं स्तंभित रह गया । मैं उन्हें कम जानता था, ऐसी बात नहीं । गोकि तुम्हारी तरह जानने का अवसर नहीं मिला है, मगर जितना जानता था, वह मेरे लिए बहुत कम नहीं था । सचमुच उनका स्थान लेने वाला अन्य कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा । कौन कब यात्रा करेगा इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता । उनकी मृत्यु से बंगालियों की अपार क्षति तो हुई है, पर तुम लोगों का कितना नुकसान हुआ, इसे अच्छी तरह समझ रहा हूँ । उनके लड़के घर, इवनिंग क्लब के बारे में विस्तारित समाचार जानने के लिए उत्सुक रहूंगा । पत्र के उत्तर में सारी बातें लिखना ।

तुम लोगों के 'भारतवर्ष' का भाग्य खराब है । मैंने तो सोचा था कि अब प्रकाशित नहीं होगा । प्रकाशित होने पर नहीं टिक सकेगा, कारण इसका असली आकर्षण अन्तर्हित हो गया । अगर संभव हो तो दूसरा संपादक मत रखना । शारदा मित्र क्या कर सकते हैं ? वे अच्छे जज हैं और तृतीय श्रेणी के समालोचक । कम्पाइलर भी हैं , पर पुराने ख्यालात के । वे शायद जम नहीं सकेंगे । 'साहित्य - परिषद' का सभापति होना अलग है और किसी पत्रिका का संपादन करना अलग कार्य है । इस बात को याद रखना कि वे साहित्यिक नहीं है । जबकि तुम लोग कलकत्ते के निवासी हो और मैं तहसील में रहता हूँ । मैं ऐसी राय दे नहीं सकता । देने पर भी तुम लोग उसे स्वीकार नहीं करोगे । बहरहाल, जो मन में आया, उसे व्यक्त कर दिया । उन्हें संपादक बनाने पर तो अनर्थ होने वाला है, ऐसा मेरा विश्वास है, यही सूचित किया ।

उनके सम्मान की रक्षा के लिए जो कुछ मेरे लिए संभव होता, उसे अवश्य करता, पर अब वे नहीं है । वे साहित्यिक योद्धा थे । वे मेरा मूल्य समझते थे और न समझने पर उनके सामने मेरा अपमान नहीं था । इसलिए सोचा था कि रचना भेजूंगा । अच्छी होने पर प्रकाशित करेंगे, नहीं होने पर नहीं करेंगे । इसमें लज्जा का कोई कारण नहीं था और न अभिमान होता । लेकिन अब ऐरे-गैरे मेरी कीमत लगायेंगे, संभव नहीं है कि प्रकाशन के योग्य नहीं 'है कहेंगे।' 'शायद यह कहें कि फाड़कर फेंक दो या फाइल कर दो । लिहाजा मुझे माफ करो भाई । तुम कितने बड़े सुहृद हो, इसे मैं जानता हूँ । इस बात को मैं एक दिन के लिए नहीं भूलूंगा । अगर तुम मुझको गलत समझोगे या मुझ पर नाराज हो जाओगे तो मेरे मन का भाव अटल रहेगा । लेकिन यह सब अलग बात है । दूसरे की पत्रिका के लिए मैं अपनी मर्यादा नष्ट नहीं करूंगा । मैं प्रारंभ से ही कहता आ रहा हूँ कि तुम लोगों के लेखक सागर के बराबर है । जिन लोगों की रचना इस बार छापने की सूचना प्रकाशित हुई है, अनुरूपा, विद्याविनोद, नगेन्द्रनाथ आदि, इनकी रचनाओं के आगे मेरी रचना गोष्पद की तरह लगेगी । मैं छोटी पत्रिका में लिखता हूँ भाई, यही मेरे लिए काफी है । वहाँ मुझे सम्मान मिलता है, श्रद्धा मिलती है - इससे अधिक की आशा भी नहीं करता ।

एक बात और 'चरित्रहीन के बारे में । मेरे सुरेन मामा ने लिखा है - हरिदास बाबू ने उनसे कहा है कि यह उपन्यास इतना इम्मारेल है कि किसी भी पत्रिका में नहीं छप सकता । शायद ऐसा ही होगा, क्योंकि तुम लोग मेरे शत्रु नहीं हो जो मिथ्या दोषारोपण करोगे । मैं भी यही सोच रहा हूँ कि लोग इसी तरह पहले ग्रहण करेंगे । मैंने इन्हीं बातों को स्पष्ट करते हुए तुम्हारे सुझावों का विवरण फणी को लिखा था इतना करने पर भी उसने दृढ़ निश्चय किया है कि वह उसे यमुना में छापेगा। उसका यह विश्वास है कि मैं ऐसा कुछ भी नहीं लिख सकता जो अनैतिक हो। इसीलिए लाचार होकर तुम्हारे अनुरोध की रक्षा नहीं कर सका भाई। क्योंकि प्रकाशन का विज्ञापन हो चुका है, अब उसे वापस

नही किया जा सकता। मै अपने नाम के लिए जरा भी नही सोचता। लोगो की जो इच्छा हो, मेरे बारे मे सोचते रहे, जब उसका यह विश्वास है कि चरित्रहीन के द्वारा उसकी पत्रिका की श्रीवृद्धि होगी और अनैतिक हो या नैतिक हो, पाठक आग्रह के साथ पढेगे तो वह जो अच्छा समझे करे। मगर एक उपाय करना ही होगा। 'राम की सुमति' की तरह सरल स्पष्ट कहानी आसपास छापते हुए चरित्रहीन के प्रभाव को जरा माइल्ड करना पडेगा। फणी ने लिखा है कि मेरी कहानी पढने के लिए पाठक उतावले है। जाने दो इस बात को। 'काल' ही मेरा विचार करेगा। मनुष्य सुविचार-अविचार दोनो ही करेगा, इसके लिए चिन्तित होना बेकार है।

अगर इस मौके पर मै कलकत्ता रहता तो तुम लोगों के 'भारतवर्ष' के लिए काफी काम करता । किसी प्रसिद्ध सपादक की आड मे रहकर पत्रिका का सपादन करते हुए दो-तीन माह चला देता । मै केवल पद्य नहीं लिख पाता बाकी सब कुछ लिख सकता हूँ । और सपादकों का जो मुख्य कार्य है समालोचना (अन्य पत्र - पत्रिकाओ में प्रकाशित रचनाओं के बारे मे) मुझे अच्छी तरह करना आता है । मगर जब कलकत्ते मे नही हूँ और निकट भविष्य मे रहने की आशा भी नहीं है तब इन बातो की चर्चा करने से कोई लाभ नही ।

इस दूर देश मे रहते हुए, कम समय में केवल 'यमुना' के लिए कुछ लिख पाता हूँ, इससे अधिक मेरे पास न समय है न स्वास्थ्य । मेरे बारे मे तुम्हे दुखित होने की जरूरत नही है । यही मेरी विनती है । अब द्विजू बाबू नही है और मै दूसरे सपादको के निकट अपनी रचनाओं की परख करा नहीं सकता । यह मेरे लिए असाध्य है । हाँ, रवि बाबू को छोडकर । इसके अलावा मैंने यह वायदा लिया है कि छोटी यमुना को बडी बनाऊगा । इसके लिए मै अपनी शिष्य - मण्डली से अनुरोध करूँ, यह सवाल उत्पन्न हुआ है । मै यह बात अच्छी तरह जानता हूँ कि वे लोग मुझसे इतनी श्रद्धा करते है कि, अगर मै उनसे अनुरोध करूगा तो वे किसी भी हालत में अस्वीकार नही करेगे । केवल इसीलिए अभी तक उनसे अनुरोध नही किया है । आशा है कि इनसे सहायता लेने पर मेरा सकल्प पूरा हो सकेगा । सुना है कि इसी बीच यमुना की प्रतिष्ठा बढ गयी है । अगर इसी तरह प्रति माह आदर प्राप्त करती रहेगी तो भविष्य में बडी पत्रिका अवश्य बन जायेगी । पत्रिका की साइज अगले साल डबल करने की योजना है ।

तुम्हारी बात रखने के लिए, सारी बातें जानते हुए इस बार मैने चरित्रहीन भेजा था ? आगे जब आवश्यक होगा तब तुम्हारी बात मान लूगा । किन्तु दूसरो के लिए मुझे लज्जित मत करो भाई । हरिदास तुम्हारे मित्र है, मै क्या उनसे कम हू ? तुम्हे जितने लोगो ने प्यार किया है उनसे कम मैने नही किया है । जब मुझ पर नाराज होना तब इस बात को याद कर लेना । अब और क्या कहूँ ? मै वहा अपनी रचना देकर अप्रतिभ होना नहीं चाहता । वहाँ काफी बडे लेखक लिखते है, मेरे कारण तिल भर अन्तर नही आयेगा । फणी ने भी तुम्हारा नाम लिया है । काफी प्रशसा की है ।

अपना समाचार देना । मेरा समाचार एक तरह से ठीक ही है । कभी बुरा तो कभी अच्छा । रगून बर्दाशत नही हो रहा है, इसका अनुभव प्रति पग पर कर रहा हूँ । पता नही यहाँ की मिट्टी ने शायद मुझे खरीद लिया है ।

तुम्हारा स्नेहकाक्षी

शरत्

प्रमथ,

१४ लोअर पोजडग स्ट्रीट
रगून, १७-७-१३

तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई । इसके आगे के पत्रो म बराबर तुम्हारा क्रोध प्रकट होता रहा । इस बार वह बात नही है । अब तुम शान्त और प्रकृतिस्थ हो गये हो । मैने सोचा था कि हमारे भाई जान उखड न जाये । जो भी हो, ठीक से सम्हल गये हो, यह सतोष की बात है । आज सुरेन को 'देवदास' की पाण्डुलिपि भेजने के लिए पत्र लिख दिया । लेकिन वह काम लायक रचना नही है । बोतल पर बोतल पीकर नशे की हालत मे लिखा था । उसकी लिखावट भी टेढी-मेढी हे । जो मन मे आता गया, वही लिखता रहा ।

आश्विन के अक के लिए एक कहानी दूगा, इस ओर से निश्चिन्त रहो । मगर जरा बडी होगी । २०-२५ पृष्ठो से कम न होगी । लेकिन ऐसी कहानी इस साल प्रकाशित नही हुई है, ऐसा लिखूगा । पूजा अक मे मेरे लिए २०-२५ पृष्ठ खाली रखना । मगर दु खान्त नही लिखूगा । दु खान्त काफी लिख चुका अब नही । नये लडकों को दु खान्त कहानी लिखने दो । मेरी तरह उम्र वालो को दु खान्त कहानी लिखना सिर्फ कागज-कलम का अपव्यय करना है । अग्रेजी कहानियाँ का अनुवाद करना भी नही आता । खाटी चीज इडियन माल । अगर जरूरत हो तो बोलो । अगर अग्रेजी कहानियो की तरह चाहते हो तो लिखो । अग्रेजी ढग की तरह मै लिख सकता हूँ । मगर शर्म आती है ।

समालोचना के बारे में तुम्हारी राय ठीक है । समाजपति की तरह स्पष्टवादिता बनने की नकल करके गाली-गलौज करना उचित नही है । लेकिन तुमने जो यह लिखा है कि केवल गुणों की चर्चा की जाय, दोषों की नही, यह भी ठीक नही है । दोष दिखाऊगा, परन्तु मित्र की तरह, शिक्षक की तरह, ताकि वह अपनी गलतियों को समझ सके वर्ना उस तरह की आलोचना बेहद बेहूदी होती है । 'कुछ भी नही हुआ' बेकार की मेहनत की गयी है, स्याही कागज का अपव्यय किया गया है, आदि को समालोचना नही कहते । कहाँ दोष है, कहाँ गलती हो गयी है, इन बातों को ठीक से बताकर अगर लेखक का उपकार किया जा सके तो करो वर्ना उस तरह की चालकी से काम नही होता । महज शत्रुता बढती है । पुस्तको की आलोचना इस तरह होनी चाहिए ताकि समालोचना ही साहित्यिक निबध बन जाये । उसे पढने की इच्छा हो ।

तुम्हारे पत्र में फणी की अस्वस्थता का समाचार पढकर डर गया हूँ । सुरेन ने भी ऐसा ही लिखा है । अगर फणी की बीमारी के कारण 'यमुना' बन्द हो गयी तो एक बडी दुर्घटना होगी । मै इस पत्रिका को बडी बनाने की आशा मे कितनी आस लगाये हूँ क्या बताऊ । अगर स्थान परिवर्तन से ठीक हो सकता हो तो उसे इस बारे में सलाह दो । दो एक माह भागलपुर या मुजफ्फरपुर रहने पर शायद उसके स्वास्थ्य मे सुधार हो सकता है, मगर ऐसी हालत मे पत्रिका कौन चलायेगा ? अगर तुम कुछ उपाय कर दो तो शायद कुछ हो सकता है । बेचारा अकेला आदमी, इतनी छोटी पत्रिका के लिए सहायक रखना भी उसके लिए कठिन है । सारा काम अकेला करता है । यही कठिनाई है ।

मेरे लिए नौकरी का प्रबन्ध कर रहे हो, सुनकर प्रसन्नता हुई । साहित्य-चर्चा से पेट नही भरता भाई । इसके अलावा मान लो दो-एक माह लिख नही सका तो कितनी कठिनाई का सामना करना पडेगा । ऐसे सशय पूर्ण मार्ग मे कदम बढाना उचित नहीं है । सोच रहा हूँ कि पूजा के अवसर पर दो-एक माह की छुट्टी लेकर तुम लोगो से मुलाकात करने आऊगा । उन्ही दिनो मित्र महाशय[1] से मुलाकात करूगा, पर मै वहा काम करने के लिए तैयार नही हूँ । सुना है कि जी तोड मेहनत करनी पडती है और वेतन भी कम देते

[1] बर्मा आफिस के अफसर

हूँ किसे गरज पडी है कि कम वेतन पर इतना मेहनत करे । फिर साहित्य-चर्चा भी वन्द कर देनी पडेगी । यह मुझसे नही होगा ।

इस बार 'साहित्य' मे 'दादा' नामक की कहानी प्रकाशित हुई है । कितनी भयानक है । सभी यह जानते हैं कि बाजार मे अकृतज्ञता हे, इसका यह अर्थ नही कि इस तरह कि कहानियाँ लिखी जायें । इससे किसका भला होगा ? पूरी कहानी पढ़ने के बाद मन में वितृष्णा उत्पन्न होती है, ऊँचा नही उठता । इसे साहित्य नही कहा जा सकता । ऐसी कहानी साहित्य मे प्रकाशित हुई है । उससे कही अच्छी तुम लोगों के आषाढ के अक में 'दर्पपूर्ण' कहानी छपी है । अन्त मे मन प्रसन्न हो उठता है । मैं इस तरह की कहानियाँ पसन्द करता हूँ ।

तुम्हारा 'बाइस्कोप' लेख दो बार पढ चुका हूँ । बहुत सी बातें नही जानता था जो अब ज्ञात हो गया । 'पाण्डुआ का इतिहास' लेख सबसे सुन्दर है । छोटी-छोटी घरेलू बाते इस लेख से ज्ञात हुई है । इस तरह के लेख प्रत्येक अक मे रहने चाहिए ।

बस मेल का समय हो गया । मै स्वस्थ हूँ ।

शरत्

प्राणधन बाबू को मेरी याद है ? शायद भूल गये होंगे । मुझे उनकी याद बराबर आती है । कम दिनो के परिचय मे उनका मुझ पर व्यापक प्रभाव पडा हे । गोकि यह सब बातें उन्हें बताने की जरूरत नही है वर्ना वे न जाने क्या सोचें ।

अपने घर का हाल चाल क्यों नही लिखते ? ——श ।

रगून

६ - ८ - १३

प्रमथ,

तुम्हारा पत्र जिस दिन मिला, उसके दूसरे दिन पाण्डुलिपि मिली । दोहराने का अवसर नही था, वर्ना २३-२४ श्रावण के पहले नही पहुँचती । फलत भादो के अक मे छप नही पायेगी सोचकर जल्दी मे नही भेजा । इसका यह अर्थ नही कि अगले माह न छपने पर उत्तर नही दिया जा सकेगा । उसे आश्विन के अक मे देना । इस बारे मे कुछ कहना है । निबन्ध कुछ बडा हो गया है और इसमे कुछ ऐसी बातें है । जैसे 'झगडा' यह उचित है या नही, सदेह है । मैं इन बातों को अलग कागज में लिखकर आश्विन महीने के लिए भेज दूगा ।

तुमने समाजपति के बारे में जो लिखा हे, उससे अधिक फणी ने लिखा है । समाजपति महाशय से प्राप्त रजिस्टर्ड पत्र इस पत्र के साथ भेज रहा हूँ । इसे पढने पर समझ सकोगे कि मैं किस मुसीबत में फस गया हूँ । कैसे, क्या करू, समझ मे नही आ रहा है जबकि मेरे पास इस वक्त कोई कहानी नही हे ओर न मगज में कोई आ रही है । दूसरी ओर आफिस में इतना काम बढ गया है कि शाम को सात बजे के पहले घर वापस नही आ पाता हूँ । इसके बाद पढना- लिखना, खासकर दिमाग से कुछ बाहर निकालना असाध्य हो गया हे । मगर मेरा मस्तिष्क काफी सख्त है, ठोंकठाक कर कुछ निकाला जा सकता हे ।

एक बात और । उस दिन एक चिट्ठी मिली (भावी सपादक से) 'अयन' तथा 'कर्मक्षेत्र' नामक पत्रों ने विशेष प्रलोभन देकर पत्र लिखा है । मगर लोभ दिखाने से क्या

होगा ? मेरे पास पूजी कहाँ है ? मै सत्येन दत्त नही हूँ जो आज्ञा पाते ही कविता तेयार कर दूगा । सुना है कि 'अयन' पत्रिका वाले मेरी 'कोरल' कहानी सुरेन ' के यहाँ जवरन उढा ले गये हैं । उनसे यही शर्त हुई है कि उसे गुमनाम छापेंगे । पता लगा है कि कहानी अच्छी है । पता नही, मुझे अच्छी तरह याद नही है ।

आजकल इतनी तेजी से पत्र - पत्रिकाओं का प्रकाशन क्यों हो रहा है ? क्या लाभजनक रोजगार है ? एक तो खुशामदो से परेशान हूँ, जरा भी आजादी नहीं ।

मेरी कहानियों का सकलन छापने से क्या लाभ होगा ? कौन खरीदेगा ? न जाने कितनी पुस्तके है, क्या मेरी पुस्तके कोई पढेगा ? बरबाद करने लायक रुपये मेरे पास नही है और न इच्छा । इसके अलावा कितना बखेडा है । विज्ञापन करो, बडे लोगों की सम्मति छापो । यह सब मुझसे नही होगा और न मै पसन्द करता हूँ । चुपचाप रहने मे मुझे आनन्द मिलता है । इतना झमेला कौन करेगा मुझसे नही होगा ।

एक बात चुपचाप कहना चाहता हूँ । अब तक यह बात मेरे मन मे उत्पन्न नही हुई थी । इतनी पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित हो रही है क्या कोई मुझे सहायक सपादक बना सकता है ? मै उनके लिए काफी काम कर सकता हूँ । एक वडी कहानी, एक धारावाहिक उपन्यास, एक निबध और एक समालोचना लिख सकता हूँ । इसके अलावा तसबीरो का चुनाव, गीतो की स्वरलिपि की त्रुटियाँ, वैज्ञानिक आलोचना, साहित्यिक आलोचना यह भी (अगर बाहर से न मिला तो) मै कर दूगा । दस बजे से पाँच बजे तक काम करने पर सारा काम कर सकता हूँ । हाँ, 'ताम्रलिपि' जैसा लेख नही लिख सकता । इसके बाद यहाँ जेसे सुबह - शाम करता हूँ, वह करता रहूगा । देखना अगर मुझे कोई रखना चाहे तो । अगर कोई अच्छा सपादक रहेगा तो मै उनका सहायक बनकर काम चला लूगा । कम से कम छी-छी करने का मौका नही दूगा । इस बात का भरोसा तुम मेरी ओर से दे सकते हो । यह नौकरी मुझे पसन्द है, बशर्ते स्थायी हो । ऐसा न हो कि दो दिन बाद कहें कि तुम्हारा जरूरत नही है । अब आप जा सकते है इसी बीच किसी पत्रिका का प्रकाशन प्रारभ हो और उनसे जान- पहचान हो तो प्रयत्न करना। बर्मा अब जम नही रहा है । अपने मुल्क मे वापस आने की इच्छा हो रही है । समाजपति के बारे में अपनी राय देना । तुम्हारी राय के बिना मे कुछ नही कर करूगा । किस मुसीबत मे फस गया हूँ , इसका अनुभव तुम स्वय ही कर रहे होगे । समाजपति के मामले में क्या करना उचित है । जल्द जवाब देना । साथ के पत्र को खो मत देना, पढने के बाद वापस कर देना, क्योंकि आगे चलकर वे मेरी बुराई करने लगेंगे तब काम आ सकता है । एक प्रमाण रहेगा । आज रात केवल लिखने मे गुजर गया ।

—शरत्

श्री उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय के नाम

१० - १- १३

डी० ए० जी० आफिस, रगून

प्रिय उपीन,

तुम्हारा पत्र पाकर दुर्भावना दूर हुई । दो दिन पहले फणीचन्द्र का पत्र और चरित्रहीन मिले । तुम लोगो पर अधिक दिनों तक नाराज होना सभव नही है, इसलिए अब

क्रोध नही है । लेकिन कुछ दिन पहले सचमुच वहुत क्रोध और दु ख हुआ था । मै केवल चकित होकर सोचता रहा कि ये करते क्या है ? एक भी पत्र का जवाब नही देते तब इन लोगो की मति-गति बदल गयी है । तुमसे एक बात कह दूँ उपेन, कि मुझमे एक बुरी आदत है, मै जरा में सोच बैठता हूँ कि लोग जो कुछ करते है, जान बूझकर करते हे । इच्छा न होते हुए भी कोई-कोई अपनी आदत के दोप की वजह से करते है, अपने बारे मे इस बात की याद नही आती । सेनसेटिव नामक एक बात हे, मुझमें वह बहुत अधिक है । सुरेन (सुरेन्द्रनाथ गागुली) को दो सप्ताह पूर्व एक पत्र लिखा था । आजतक उसका जवाब नही मिला । ये लोग क्यों तो लिखते है और क्यो बन्द कर देते है । तुमने समाजपति को 'काशीनाथ' देकर अच्छा काम नही किया । वह 'बोझा' का जोडीदार है, बचपन मे अभ्यास के लिए लिखी गयी कहानी है । छपवाना तो दूर रहा, लोगों को दिखाना भी उचित नही है । मेरी सम्पूर्ण इच्छा है कि वह न छपे । मेरे नाम को मिट्टी मत मिलाओ, अकेला बोझा काफी हो गया ।

मै यमुना के प्रति स्नेहहीन नही हूँ। साध्य के अनुसार सहायता करूगा, पर छोटी कहानियाँ लिखने की इच्छा अब नही होती, वह तुम लोग लिखो । निबध लिखूँगा और भेजूगा । चरित्रहीन कब तक पूरा होगा, कह नही सकता । पूरा होने पर समाजपति के पास भेजूगा, यह कहना ठीक नही होगा । तुम अगर कलकत्ते मे होते तो तुम्हारे पास भेजता । इसी बीच तुम समाजपति को लिख देना कि 'काशीनाथ' को न छापे । अगर छाप देगें तो शर्म से गड जाऊगा । तुमने दो एक कहानी लिखने को कहा है और भेजने को कहा है । अगर लिखा तो किसे भेजूगा ? तुम्हे या फणी को ?

गिरीन तब छोटा था, जब मै परिवार से बाहर चला आया । इतने वर्षो के बाद शायद उसे मेरी याद न हो । उपीन, एक बात तुम्हे कह रहा हूँ — एक दिन उसकी एक पुस्तक खरीदनी चाही थी । तुमने मना करते हुए कहा था कि सुनने पर उसे दु ख होगा । आज तक उसी बात को स्मरण कर मैंने नही खरीदी । एक बार स्पष्ट रूप से मॉगी थी लेकिन उसने नही भेजी । बचपन में उसकी रचनाओं का सशोधन करता था । मैं लिखता था, इसीलिए उन लोगों ने लिखना शुरू किया था । उस परिवार मे शायद मैने ही पहले उस पर ध्यान दिया । इसके बाद वे लोग चावल से हस्तलिखित मासिक पत्रिका निकालते थे । आज तक उसने एक भी प्रति पढने को नही दी । शायद वह सोचता है, मेरे जेसा निर्बोध आदमी उसकी चीजो को समझ नही सकता । जाने दो उसके लिए दु ख करना बेकार है, शायद संसार की यही गति है । मेरा स्वास्थ्य आजकल अच्छा है । आव की बीमारी दूर हो गयी है । मेरा महाश्वेता (आयल पेण्टिग) फिर समाप्त होने की और बढ रहा है । उस बडे उपन्यास को लिखने का इरादा तुम्हारा है न । अगर नही है तो यह बुरी बात है । वकालत भी करो और इसे भी मत छोडो ।

मेरा कलकत्ता जाना — (इस देश को छोडकर) शायद सभव न होगा । समझ रहा हूँ कि स्वास्थ्य भी ठीक नही रहेगा । लेकिन ठीक न रहना ही अच्छा है, पर वहा जाना ठीक नही । ऐसा ही लग रहा है। मेरी फाउण्टेन पेन तुम्हारे हार्थो में अक्षय हो — उस कलम ने अनेक चीजे लिखी हैं । काम लेने पर और भी लिखेगी ।

आज यही तक । अगर चन्द्रनाथ भेजना सभव हो और सुरेन राजी हो तो उचित सशोधन करके फणी को भेज दूगा । पत्र का उत्तर देना ।

शरत्

---

१४ लोअर पोजडग स्ट्रीट
रगून, २६ - ४- १३

श्री चरणेषु,

तुम्हारी चिट्ठी पाकर जितना आश्चर्य हुआ, उससे सौ गुना व्यथित हुआ । तुम मुझसे द्वेष करोगे, इस बात को अगर मै स्वय कहूँ तो क्या तुम विश्वास करोगे ? कलकत्ते की स्मृति आज भी मेरे मन में जाज्वल्य-मान हे । मैं बहुत सी बाते भूलता हूँ सही, किन्तु यह सब बाते इतने जल्दी नही । शायद कभी नही भूलता । जो कुछ भी हो इस बारे में कोई जवाब नही देना चाहता । मै अच्छी तरह से जानता हूँ कि यदि अकेले मे मेरा मुहँ और मेरी बातो को याद कर देखो तो समझ सकोगे कि तुम मुझसे द्वेष करोगे, यह बात मेरे मुहँ नही निकल सकती । उपीन, मै तो इस बात की कल्पना भी नही कर सकता । मगर यह कह सकता हूँ कि तुम्हारी जो इच्छा हो, मेरे बारे मे सोच सकते हो । मै तुम्हें अपना उतना ही मगलाकाक्षी सुहृद आत्मीय एव सम्पर्क मे मान्य व्यक्ति समझूगा, और यही हमेशा किया है । तुम्हारा आपस में कलह-विवाद हो सकता है, इसीलिए मैं क्यों बीच में पडने जाऊगा ? क्या तुम्हें विश्वास है कि मैने कहा कि तुम मुझसे द्वेष करते हो ? मेरे बारे तुमने ऐसी बातों पर विश्वास कैसे कर लिया और लिखने साहस किया ? मै बुरा होने के कारण क्या इतना अधम हूँ ? मै मन-ज्ञान से इस तरह की कल्पना कर सकता हूँ कि आज पहली बार सुन रहा हूँ ।

तुमने मुझे गहरी चोट पहुँचायी है । अगर अधिक दिनों तक जीवित न रहूँ तो यह मन में भी यह दु ख का कारण बना रहेगा कि तुमने व्यर्थ ही मुझे दु ख पहुँचाया है । तुम्हारा पत्र पाने के बाद से केवल यही सोचता रहा कि तुम मुझे न जाने कितना नीच समझते हो शायद मेरे नीच और मूर्ख होने के कारण ही तुम मेरे बारे में (सम्प्रति कलकत्ते मे इतनी घनिष्ठता और इतनी बातें हो जाने के बाद भी) इस बात पर विश्वास कर सके हो । नही तो यही सोचते कि ऐसा नही हो सकता । मेरी कसम हे उपीन, पत्र पाते ही लिखना- कि तुम अब इस बात पर विश्वास नहीं करते । मैने सुरने को कुछ दिन पहले लिखा था कि मुझसे विद्वेष करके ही मानो यह सब चीजें छपवायी जा रही है । इसका कारण यह है कि मैने समाजपति को लिखा था कि वह चीजें न छापें, फिर मुझे कोई उत्तर न देकर उनकी छपाई चलती रही । बहरहाल अब भीतर की बात मालूम हो गयी । तुमने भी वही बात समाजपति को कही थी, उसके बारे में और बातें जानकर सारा मामला समझ गया । तुम मेरे कितने मगलाकाक्षी हो, यह अगर न समझता उपीन, तो आज इस तरह कहानियाँ न लिख सकता । मै मनुष्य के हृदय को समझता हूँ । जिस प्रकार तुम अपने अन्तर्यामी के निकट निडर हो असकोच भाव से कह सकते हो- "मै शरत् को सचमुच प्यार करता हूँ", मैं भी वैसा ही जानता हूँ और उसी तरह विश्वास भी करता हू ।

जाने दो इस बात को । केवल एक 'चन्द्रनाथ' को लेकर इतना बडा हगामा । यद्यपि यह समझ में नही आ रहा है कि कैसे फणी पाल के पत्र मे छपेगा ?

तुम लोगों ने सारी बाते न समझकर, चारो ओर से न सम्हलकर अचानक विज्ञापित किया और उसका फल भोग रहे हो । दोष तुम लोगो का ही है और दूसरे किसी का नही । फणी पाल के लिए जरा फाल्स पोजीशन मे पड गये । इसे प्रति पग पर देख रहा हूँ ।

मै ओर भी मुसीबत में पड गया हूँ । एक तो मेरी बिलकुल इच्छा नही हे कि 'चन्द्रनाथ' जेसा है, वैसा छपे जबकि कुछ अश छप गया है ओर बाकी हिस्सा मुझे नही मिला है । सुरने को डर हे कि कही वह खो न जाये । वे मेरी चीजो को हृदय से प्यार करते है, शायद इसीलिए इतनी सतर्कता है ।

और एक बात है उपीन । 'भारतवर्ष' पत्रिका के लिए प्रमथ बार-बार चरित्रहीन माग रहा है । अन्त मे इस तरह जिद कर रहा है कि क्या कहूँ । वह मेरा बहुत दिनो का पुराना मित्र है तथा मित्र कहने का जो बोध होता है, वह वही है । उसने सबसे गर्व के साथ कहा है कि मै उसे चरित्रहीन दूँगा । इसी आशा में जलधर सेन आदि चार-पाँच लेखको के उपन्यासों को घमन्ड में आकर लौटा दिया है । वही आजकल 'भारतवर्ष' का मुखिया है । अब द्विजू बाबू[1] आदि (हरिदास, गुरुदास के पुत्र) ने उसे धर दबाया है । इधर 'यमुना' मे विज्ञापन छपा है कि इसी पत्र में 'चरित्रहीन' छपेगा । समाजपति भी बराबर रजिस्टर्ड पत्र भेज रहें है । किधर क्या करूँ समझ नही पा रहा हूँ । अभी-अभी प्रमथनाथ की लम्बी रोने-धोने वाली चिट्ठी मिली है । उसने लिखा है कि अगर उसे नही मिला तो वह कही मुहँ दिखाने लायक नही रहेगा । यहाँ तक की इष्ट-मित्र, क्लब आदि को छोडना पडेगा । क्या करूँ ? जरा सोचकर जवाब देना । तुम्हारा जवाब चाहिए, क्योंकि एक अकेला तुम शुरू से इसका इतिहास जानते हो ।

–बहुत अच्छा नही हूँ । सात-आठ दिनो से बुखार आ रहा है जबकि खुलकर नही आ रहा है । अगर आवश्यक समझो तो यह पत्र सुरेन को दिखा देना । तुम लोग आपस में झगडा करके मरो, मगर मै तुम लोगों का एक जमाने में शिक्षक रहा- कम-से-कम उम्र का सम्मान मुझे देना ।

सेवक शरत्

(फणी बाबू, यह पत्र पढ़कर उपीन के पास भेज दें ।)

१४ लोअर पोजगडग स्ट्रीट
रंगून, १०-५-१६१३

प्रिय उपेन,

आज तुम्हारा पत्र मिला और प्रमथ का भी मिला । तुम मेरे बारे में सम्पूर्ण स्वस्थ हो गये हो, इससे कितनी तृप्ति का अनुभव कर रहा हूँ, इसे लिखकर जताना पागलपन होगा । तुम्हें अब क्लेश नही हो रहा है या दुःख नही हो रहा है, इसी से समझ गया कि अत्यन्त सहज भाव से मेरे कर्त्तव्यों का निर्धारणा कर दिया है । मैने अपने को मूर्ख कहा था- क्या यह झूठी बात है ? तुम लोगों के सामने मैं अपने को पण्डित समझते हुए अभिमान करूँगा, क्या इतना बडा अहमक हूँ ? मानता हूँ कि बनाकर कहानियाँ लिखता हूँ, पर इसमे पाण्डित्य कहाँ है ? बी० ए०, एम० ए०, बी० एल० इन डिग्रियों को मै अत्यन्त श्रद्धा करता हूँ, यही लिखा था । प्रमथ लिखता है कि कहानियाँ को उसकी 'इवनिंग क्लब' मे अत्यन्त सम्मान मिला है । द्विजेन्द्र लाल राय ने इतनी प्रशसा की है कि विश्वास नही होता । दीदी का लेख 'नारी का मूल्य' तो 'अमूल्य' है । द्विजू बाबू का कहना है कि ऐसी कहानियाँ रवि बाबू की भी नही है, और ऐसा निबंध बंगला भाषा में इसके पहले कभी पढने मे नही आया । फणी का पत्र छोटा जरूर है । पर उसकी तरह अच्छा पत्र भी नही निकल रहा है । ईश्वर करे फणी इस तरह परिश्रम करके अपनी पत्रिका का सपादन करे । दो दिन बाद हो या दस दिन बाद हो, श्री वृद्धि अनिवार्य है । इसके लिए प्रयत्न करना होगा, परिश्रम करना होगा । रही मेरी बात । मै उसे छोटे भाई की तरह देखता हूँ । उसकी पत्रिका से अगर कुछ बच जाता है तो दूसरा कोई पायेगा । लेकिन

---

१ श्री द्विजेन्द्र लाल राय, प्रसिद्ध नाटककार

आजकल इतने अनुरोध आ रहे हैं कि अगर दस हाथ होते तो भी काम पूरा कर सकता- ऐसा नहीं अनुभव होता।

'चरित्रहीन' उसकी पत्रिका में प्रकाशित नहीं होगी, यह किसने कह दिया ? प्रमथ को पढने के लिए दिया हैं। लेकिन वह अगर कह बैठता कि उसे प्रकाशित करेगा तो शायद मुझे अपनी सम्मति देनी पडती। लेकिन वे लोग ऐसी माग नही कर सकते। शायद पाण्डुलिपि पढकर डर गये हैं। उन्होंने सावित्री को नौकरानी के रूप में देखा है। अगर आँखे होती और कैसी कहानी, कैसा चरित्र, किस तरह समाप्त होगा, तब वे समझते कि किस कोयले की खान से कितना अमूल्य हीरा निकल सकता है, ऐसी दशा में वे उसे सहज ही छोडना नही चाहते। शायद आगे चलकर अफसोस करें कि हाथ मे ऐसा रत्न आने पर उन्होंने त्याग दिया। मुझसे यह जानना चाहा है कि इसका उपसहार क्या होगा ? मेरे ऊपर जिन्हें भरोसा नही है, वे अवश्य ही इस तरह का पहला उपन्यास छापने मे आगा-पीछा करेगे। यह कोई आश्चर्य की बात नही। वे लोग स्वय ही कह रहे हैं कि चरित्रहीन का अतिम भाग (अर्थात तुम लोगों ने जितना पढा है उसके बाद उतना और) रवि बाबू से भी बहुत अच्छा हुआ (स्टाइल और चरित्र विश्लेषण मे). फिर भी वे लोग डर रहे है कि कही अतिम भाग बिगाड न दूँ। उन लोगों ने इस बात को नही सोचा कि जो आदमी जान-बूझकर मेरा की एक नौकरानी को प्रारम्भ में ही खीचकर लोगों के सामने उपस्थित करने का साहस करता है, वह अपनी क्षमता को समझ-बूझकर ही ऐसा करता है। अगर इतना भी नहीं जानूँगा तो व्यर्थ ही इतनी उम्र तक तुम लोगों की गुरुगिरी की।

और एक बात। प्रमथ कहता हैं- 'भारतवर्ष' को मै अपनी पत्रिका समझू और वैसा समझता हूँ। मैंने प्रमथ को जबान दिया है कि यथासाध्य प्रयत्न करूँगा, लेकिन साध्य कितना है, यह नही बताया। एक बात और– वे लोग दाम देकर लेख खरीदेंगे तब उन्हें कमी नहीं होगी, लेकिन दाम देने पर सभी लेख नही मिलते- मेरे बारे में इस बात को वे लोग समझ गये हैं।

बहरहाल चरित्रहीन मेरे हाथ में आते ही फणी को भेज दूगा। अपने पास नही रखूँगा। लेकिन प्रमथ उसे फणी को नहीं देगा, क्योंकि वे लोग फणी से नाराज हैं। ऐसा ही होता हैं, क्योंकि मासिक-पत्रों के सचालक एक दूसरे को देख नही पाते। और कुछ नहीं। प्रमथ मेरा बाल्य बधु ही नही है, मेरा परम प्रिय मित्र है, बहुत अच्छा व्यक्ति है। सचमुच अच्छा आदमी है। उसे मैं बहुत प्यार करता हूँ। इसीलिए डर रहा था कि उसकी जोर जबरदस्ती से पार पाऊँगा या नही। इस बारे में तुम्हें सही समाचार बाद में दूँगा।

तुम लिखते हो कि हम लोग यमुना को बडा करेंगे। हम लोग कौन ? तुम यमुना के परम बधु हो, एव निस्स्वार्थ बंधुत्व करने जाकर तुम्हें लाछना भोगनी पडी है, इसे विशेष रूप से जानने के कारण ही तुम्हारे विषय में जो कुछ सुना है, उस पर रच मात्र विश्वास नही किया। हो सकता है, कुछ राजनीतिक चाल चले हो-अच्छा ही किया है। जिसे प्यार करना उसकी इसी तरह से मदद करना। फणी को तुम प्यार करते हो, लेकिन 'हम लोग' का अर्थ ठीक से समझ नही सका। इस बार समझाकर लिखना।

'पथ निर्देश' और 'रामेर सुमति' के बारे में मेरा अभिमत है- 'पथ निर्देश' बेहतर है। हा, यह कहानी जरा कठिन है। सभी अच्छी तरह नही समझ सकेंगे। मैने भी अनेक लोगो से अनेक प्रकार की राय सुनी है। जो लोग कहानी स्वय लिखते है, वे ठीक जानते हैं कि 'राम की सुमति' तो लिखा जा सकता है, पर 'पथ निर्देश' लिखने के लिए कठिनाइयों का सामना करना पडेगा। शायद सभी नहीं लिख सकते। इस तरह की गडबडी के माहौल में पुरानी परम्परा खोकर एक खिचडी बना डालेंगे। हो सकता है कि धैर्य की कमी के कारण समाप्त होने के पहले ही बन्द कर दें। अपनी कहानी की

आलोचना स्वय कैसे करूँ ? कलकत्ता और यहा लोगों की राय मे दोनों कहानिया सुपरलेटिव डिग्री में एक्सेलेण्ट है। द्विजू बाबू ने आदर्श कहानी कहा है।

फणी के पत्र मे इस तरह की कई चीजें प्रकाशित हो, इसके लिए विशेष रूप से प्रयत्न करना चाहिए। पर अब मे छोटी कहानिया लिखने की इच्छा नही रखता। कुछ बडी हो जाती है। तुम लोगो की तरह छोटी कहानिया जैसे लिख नही पाता। इसके अलावा मुझे एक बात और कहनी है। मै तो 'चन्द्रनाथ' को बिलकुल नये ढाचे में ढालने के प्रयत्न मे हूँ। हा, कहानी (प्लाट) ज्यों की त्यों रहेगी। इसके बाद या तो चरित्रहीन, नही तो उससे भी कोई अच्छी चीज यमुना में छपनी चाहिए। और निबध। इनकी भी अत्यन्त आवश्यकता है। अच्छे निबध खासतौर से जरूरी है वर्ना सिर्फ कहानियों से पत्रिका को कोई "बडी" नही समझेगा। अगर तुम लोग मुझे छोटी कहानिया लिखने से छुटकारा दिला सको तो मै निबध लिख सकता हू और शायद कहानी की तरह सरल-सुबोध शैली मे। इस विषय में अपनी राय देना।

अगर कहानी लिखने का काम तुम लोग चला लो तो मैं केवल उपन्यास और निबध लेकर काम चलाऊ। नही तो देखता हूँ कि रात को भी मुझे खटना पडेगा। इन दिनो मेरी तबीयत ठीक नही है। रात मे लिख नही पाता और पढाई में भी नुकसान होता है। आलोचना, निबध, उपन्यास, कहानी आदि लिखने से लोग सव्यसाची कहकर मेरा मजाक उडायेंगे। मुझे अन्य पत्र-पत्रिकाओं को भी कुछ देना होगा।

'देवदास' और 'पाषाण' भेज देना, मै पुन उसे नये ढग से लिखूगा। अच्छा, फणी ३००० कापी छापकर क्यो पैसा बरबाद कर रहा है। क्या उसके ग्राहको की सख्या बढी है ? मेरी समझ से नही। विश्वास है कि अगले साल उसकी पत्रिका एक श्रेष्ठ पत्रिका के रूप मे खडी हो जायेगी।

फणी को लगातार इस बात की आशका है कि मै उसे छोडकर अन्यत्र कही लिखना शुरू करूँगा। लेकिन इस आशका का क्या कारण है ? वह मेरे छोटे भाई जैसा है, वह उस बात पर विश्वास क्यो नही कर पाता, इसे वही जाने। मै तो नही जानता।

तुम्हारी "क्रय-विक्रय" कहानी सचमुच अच्छी है, किन्तु उसे जरा और बडी करनी चाहिए थी और अन्तिम भाग को सचमुच ही शेष करना उचित था। ऐसी कहानी को तुमने इतनी जल्दबाजी में क्यों समाप्त की—नही जानता। एक बात याद रखना कि कहानी कम से कम १२-१४ पृष्ठों की होनी चाहिए और अन्त बिलकुल स्पष्ट होना चाहिए।

सुरेन ने मेरी चिट्ठी का जवाब क्यों नही दिया ? उसे मैने अपने हाथ की कलम दी है, क्योंकि उससे अच्छी चीज मेरे पास देने के लिए नही है। वह उसका क्या सद्व्यवहार कर रहा है, पूछकर लिखना। मेरी कलम का असम्मान न होने पाये। और चार कलम देना बाकी है। योगेश मजुमदार कहा है ? पुटू, बूड़ी और सौरीन के लिए मैने कलमें ठीक कर रखी है। किसी दिन भेज दूगा।

गिरीन क्या बाँकीपुर लौटा ? वह कहाँ है, यह मालूम न होने के कारण उसे जवाब नही दे सका। मेरे पास फोटो नही है, कभी यह बात याद नही आयी। अच्छा, आज यही तक।

हा और एक बात। सुधार कृष्ण बागची ने लिखित वक्तव्य भेजा है। उसका कहना है कि सारी बातें झूठी है। अच्छी बात है। मै जानता हूँ कि कौन-सी बात झूठ है। आदमी जब अस्वीकार कर रहा है तो उसे वही समाप्त कर देना उचित है। इसके अलावा वह वृद्ध है।

★★

फणीन्द्र बाबू, आपका तार पाकर भी जवाब नही दिया। कारण जवाब देने की वस्तु

मेरे हाथ के बाहर है, पर आशा करता हूँ कि जल्द ही हाथों में आयेगी।

अगली डाक से आलोचना और नारी का मूल्य भेजूगा। उसके बाद वाली डाक से चन्द्रनाथ और कोई एक चीज। चरित्रहीन यमुना मे छपे, यह मेरी आन्तरिक इच्छा है। ईश्वर की इच्छा से ऐसा ही होगा। निश्चिन्त रहो। पर सुन रहा हूँ कि उसमे मेस की नौकरानी के कारण रुचि को लेकर जरा किचकिच मचेगी। मचने दीजिए। लोग कितनी ही निन्दा क्यो न करें, जो लोग जितनी निन्दा करेंगे, वे उतने ही अधिक पढेंगे। वह भला हो या बुरा, एक बार पढना शुरू करने पर अन्त तक पढना ही पड़ेगा। जो समझते नही है जो कला का मर्म नही जानते, वे शायद निन्दा करेंगे, पर निन्दा करने पर भी काम बनेगा। किन्तु वह साइकोलाजी और एनालिसिस के सम्बन्ध में बहुत अच्छा है, इसमें सदेह नही और यह एक सपूर्ण साइण्टिफिक एथिलल नावेल है, इस वक्त पता नही चल रहा है।

—शरत्

---

१४ लोअर पोजगडग स्ट्रीट
रगून, २२ अगस्त, १६१३

प्रिय उपीन,

बहुत दिनों बाद तुम्हे पत्र लिखने बैठा हूँ। तुमने भी बहुत दिनों से अपनी कोई खबर नही दी। मत लिखो, इसके लिए दु ख नही करता और न शिकायत कर रहा हूँ। दो-तीन महीने के बाद शायद फिर मुलाकात होगी, तब वह सब बातें होंगी।

इस महीने की यमुना पाने पर तुम्हारी 'लक्ष्मीलाभ' कहानी पढी। इस सम्बन्ध में तुम मेरी राय पसन्द करोगे या नही, तुम्हारे शब्दों में प्रकट कर रहा हूँ—'बाप के मुँह से बेटे की प्रशंसा सुनने से कोई लाभ नही।' मेरी यथार्थ राय यह है कि इस तरह की मधुर कहानी बहुत दिनों से नही पढी। शायद यह तुम्हारी सबसे अच्छी कहानी है। अनावश्यक आडम्बर नही है, लोगों का दोष दिखाना, गृहस्थी के कष्टों को दिखाना, इत्यादि कुछ भी नही है। केवल एक सुन्दर फूल की तरह निर्मल और पवित्र है। मधुर अति मधुर। यही तो मै चाहता हूँ। पढकर आनन्द के अतिरेक से आखों में आसू न आ जाय तो भला वह कोई कहानी है? बहुत सुन्दर हुई है उपीन, मै आन्तरिक अभिप्राय प्रकट कर रहा हूँ। बीच-बीच में ऐसी कहानिया पढ़ने को मिलनी चाहिए। हा, मुझे खुश करना कठिन है। किन्तु ऐसी चीज मिल जाय तो मै और कुछ नही चाहता। मेरी प्रशसा से तुम्हें शायद जरा सकोच होगा और सभी शायद मेरे साथ एक मत के भी नही होगे। लेकिन मुझसे अच्छा मर्मज्ञ आज के युग में एक रवि बाबू को छोडकर और नहीं कोईहै।यह मत सोचना कि मै गर्व कर रहा हूँ, किन्तु मेरी आत्मनिर्भरता कहो या गर्व कहो, मेरी धारणा यही है। ऐसी कहानी बहुत दिनों से पढी नही। सुना है, तुम्हारी एक बडी अच्छी कहानी भारतवर्ष में छपी है। मेरे पास अभी भारतवर्ष नही आयी है। नही कह सकता कि वह कैसी बनी है, लेकिन भाव और माधुर्य में ऐसी ही बनी पडी हो तो वह निश्चय अच्छी कहानी होगी।

इसके अलावा तुम्हारे लिखने की स्टाइल बहुत सुन्दर है। मै अगर ऐसी सुन्दर भाषा लिख पाता, भाषा पर ऐसा अधिकार पाता तो शायद मेरी कहानी और अच्छी होती। गो कि मै अपने साथ तुम्हारी तुलना नही कर रहा हूँ। इससे शायद तुम्हें सकोच होगा। लेकिन हर्ष होने पर मै उसे दबाकर नही रख सकता।

आजकल कैसे हो? मैं बहुत अच्छा नही हूँ। वर्षाकाल मेरे लिए बडा खराब मौसम

हैं । १०-१२ दिन हुए बुखार हुआ था, इधर दो दिनों से ठीक हूँ । मेरा प्यार स्वीकार करो ।

— शरत्

उपीन,

'अनागत' नाम को बदलकर 'आगामीकाल' कर दिया । प्रथम अध्याय के फुटनोट में निम्नलिखित कैफियत छाप देना ।

श्रीयुक्त प्रफुल्ल सरकार महाशय द्वारा रचित 'अनागत' नामक उपन्यास इसके पूर्व प्रकाशित हो चुका है, इस बात की जानकारी मुझे नही थी । कहानी बिना कोई परिवर्तन किये नाम मे परिवर्तन किया जा सकता है । 'आगामीकाल' नाम 'विचित्रा' के सपादक उपेन्द्रनाथ ने रखा है ।[1]

श्री फणीन्द्रनाथ पाल के नाम

डी० ए० जी० आफिस

रगून

जनवरी, १६१३

फणी बाबू,

आप लोगो का क्या समाचार है ? बराबर चिट्ठी देना न भूले । मेरे द्वारा जो समव है, मै करूँगा । उपीन कहाँ है ? भवानीपुर कब आयेगा ? मुझे चन्द्रनाथ कब भेजगा ? मुझे क्या करना होगा, आपको बताना होगा । न बतलाने पर मुझसे विशेष काम नही होगा । आने के बाद से मै पेचिश और बुखार से परेशान हूँ । नही तो अब तक कुछ लिखता । बहरहाल, एक पत्र लिखियेगा । सौरीन को मेरी याद दिला दें ।

— शरत्

रगून

माघ, १६१३

प्रिय फणीन्द्र बाबू,

'राम की सुमति' कहानी का अन्तिम भाग भेज रहा हूँ । उसके बारे मे आप से कुछ कहना जरूरी समझता हूँ । कहानी कुछ बडी हो गयी है । शायद एक अक मे प्रकाशित नही हो सकेगी । किन्तु होने पर अच्छा होता । जरा छोटे टाइप में छापने से और दो पृष्ठ बढा देने से हो सकती है । छोटी कहानी को कमश छापने से उतना अच्छा नही होता । विशेष रूप से आपकी पत्रिका का प्रसार जरा होना चाहिए । यद्यपि मेरी छोटी कहानी लिखने की आदत आजकल कम हो गयी है, पर आशा करता हूँ कि दो-एक माह में अभ्यास ठीक हो जायेगा । मै प्रति मास छोटी कहानी (१०-१२ पृष्ठो की) एव निबन्ध भेजूँगा । कहानी निश्चय ही, क्योंकि आजकल इसका समादर कुछ अधिक है ।

---

[1] यह सन् १६३५ के पूर्वार्द्ध भाग में लिखा गया था । पत्र में कोई तिथि नहीं है ।

अगली बार जिसमें कहानी छोटी हो, इधर ध्यान रखूँगा । एक बात और । आप समाजपति के साथ मेल जाल रखें । उनकी पत्रिका मे अगर आपकी पत्रिका की आलोचना थोडी बहुत रहे तो सुविधा होगी । इस बार के 'साहित्य' मे मेरे नाम से न जाने क्या कूड़ा-करकट छपा है । क्या यह मेरा लिखा हुआ है ? मुझे तो तनिक भी याद नही है । अगर है तो उसे छापा क्यो ? आदमी बचपन में बहुत कुछ लिखता है तो क्या वह सब छपाना चाहिए ? आपने 'बोझा' छापकर जिस प्रकार लज्जित किया है, उसी तरह समाजपति ने भी इसे छापकर लज्जित किया है । अगर उपेन को पत्र लिखे तो यह अनुरोध अवश्य कर दें कि मेरी राय के बगैर कुछ पत्र भी न छपवाये । आवश्यक होने पर मैं कहानिया बहुत लिख सकता हूँ–आपकी पत्रिका तो एक बुलबुले जैसी है, उस तरह ३-४ गुनी पत्रिका को अकेले भर सकता है । इसके अलावा मेरे लिए एक सुविधा और है । कहानी के अलावा सभी प्रकार के विषय पर निबन्ध लिख सकता हूँ। अगर आपको जरूरत हो तो लिखें। मै राजी हूँ। 'राम की सुमति' कई बार में छापेंगे या एक बार में, मुझे लिखें। तब तो चैत्र के लिए और लिखने की आवश्यकता नही होगी।

'चरित्रहीन' लगभग समाप्ति पर है । प्रात काल को छोडकर रात को मै लिख नही पाता । रात को लेटकर पढता हूँ । .

एक बात और । "यमुना" मे छापने के देने के पूर्व आप उपन्यास, कहानी और निबन्ध मुझे एक बार दिखा ले तो बडा अच्छा हो । मान लीजिए चैत्र अक के लिए जितना ठीक किया है, उसे इस समय यानी महीने भर पहले मुझे भेज दे तो मै जरा निर्वाचन कर दे सकता हूँ । पौष की 'यमुना' अच्छी नही हुई है । आखिरी कहानी अच्छी नहीं बनी है । इसमें आपका खर्च बढ जायगा (डाक टिकट), पर पत्रिका अच्छी बन जायगी । इधर से वापस भेजने का खर्च मैं दूँगा । निबन्ध को अगर डाक से भेज दिया करें तो मैं जरा देख लिया करूँ, यही मेरी इच्छा है । मै यह पहले ही कह चुका हूँ कि केवल कहानिया नही लिखता, सभी तरह की रचनाएँ लिख सकता हूँ, केवल पद्य नही लिख पाता । अच्छा, आप सौरीन बाबू के जरिये, किम्वा उपीन, सुरेन, गिरीन के जरिये 'निरुपमा देवी' की रचना-कविता संग्रह लेने का प्रयत्न क्यो नही करते ? उनके बड़े भाई विभूति को शायद आप पहचानते हैं । उन्हें लिखने पर निरुपमा की रचना (रचना न हो तो कविता) शायद प्राप्त कर सकते है । अनेक लोगों से उनकी कविता और निबन्ध अच्छे होते हैं ।

मुझसे जितना उपकार हो सकेगा, अवश्य ही करूँगा । वचन दिया है । उसी के अनुसार काम भी करूँगा । साहित्य के अन्दर जितनी भी नीचता क्यों न प्रवेश करे, इधर अभी तक नहीं आयी है । इसके अलावा यह मेरा पेशा नही है । मै पेशेदार लेखक नहीं हूँ, और न कभी होना चाहता हूँ ।

अगर मैं जरा पास होता तो आपको सुविधा होती जरूर, लेकिन इस देश को शायद मैं कभी नहीं छोड सकूँगा । मै मजे में हूँ । बेकार मुश्किल में फसना नही चाहता और जाऊँगा भी नहीं । अपनी बात यही तक—

अगले वर्ष से यदि आप पत्रिका को कुछ बड़ी कर सकें कुछ मूल्य बढाकर तो प्रयत्न कीजिए । प्रति अक में पढने लायक सामग्री रहेगी । इस बात को स्पष्ट कर दें । इसीलिए कहता हूँ कि कहानियों को एक ही अक में छापना अच्छा होता है । जरा घाटा सहकर भी, इससे जरा विज्ञापन जैसा होगा ।

उपेन ने मुझे कई बार लिखा कि वह 'चन्द्रनाथ' भेज रहा है, किन्तु आज तक नहीं मिला । शायद उसे अभी तक नहीं मिला । अगर आप 'चन्द्रनाथ' को छापना चाहे तो मै

उसे नये सिरे से लिख दूंगा। भवानीपुर के सौरीन की जबानी मैने सुन लिया है कि वह कैसी चीज है। मुझे भी कुछ-कुछ याद है, अतएव नये सिर से लिख देना कोई मुश्किल नही है। अगर आपको इस तरह की नयी रचनाएँ चाहिए मुझे लिखिये। .. ... आ

शरत्चन्द्र।

रगून, १२-२-१३

प्रिय फणी बाबू,

अभी-अभी आपका पत्र मिला। पहली बात-'बगवासी' में कोडपत्र आदि निकालकर निरर्थक फिजूलखर्ची करना ठीक नही। आप जरा भी परेशान न हो। आपकी पत्रिका में अगर अच्छी चीज रहेगी तो दो दिन बाद हो या दस दिन बाद हो, यह बात अपने आप प्रचारित हो जायेगी। कोई उसे रोक नही सकता। आपको डरने की जरूरत नही है। प्रचार करके ग्राहक इकट्ठा करना कोडपत्र देकर रुपया बरबाद करने से कही अच्छा है।

दूसरी बात-'राम की सुमति' छोटे टाइप मे छापकर पूरी कहानी एक साथ छापने से अच्छा होता, क्योकि इस तरह की छोटी कहानी क्रमश छापना अच्छा नही होता। जो भी हो, जब नही हुआ तो उसकी चर्चा बेकार है। मै दो-एक दिन के भीतर एक कहानी और भेजूँगा (आपका उत्तर पाने पर भेजूँगा)। यह कहानी मेरी राय मे 'राम की सुमति' से अच्छी होगी। खेद का विषय है कि यह भी उसी तरह बडी हो गयी है। बडी कोशिश करने पर छोटी नही हो सकती। भविष्य मे प्रयत्न करके देखूगा कि क्या होता है।

तीसरी बात-'चन्द्रनाथ' को लेकर शायद कोई बखेडा है। इसलिए कहता हूँ कि उससे कुछ फायदा नही। 'चरित्रहीन' प्रकाशित किया जा सकेगा। गोकि इसके लिए पत्रिका की पृष्ठ सख्या बढानी होगी। लेकिन मूल्य कितना होगा, और कब से बढायेंगे, लिखियेगा। बिना मूल्य बढाये पत्रिका बडी करके गच्चा खाना ठीक नहीं होगा।

चौथी बात- समाजपति से अनबन न करें, यही कहा है। उनकी खुशामद करने को नही। फणी बाबू, आपकी दुकान का माल अगर खाटी होगा तो एक दिन बाद हो या पाच दिन बाद हो, ग्राहक जमा होगे ही। माल अच्छा न होने पर हजार कोशिश करने पर भी दुकान नही चलेगी--दो--चार दिन हो, महीना भर हो फेल हो जायेगी।

मेरे बचपन का कूडा-करकट छपवाकर मुझे कितना लज्जित किया जा रहा है, मेरे प्रति कितना अन्याय किया जा रहा है, इसे मैं लिखकर व्यक्त नही कर सकता। समाजपति समझदार होने पर भी कैसे उन कूडों को छापा, आश्चर्य है।

पाचवी बात-सौरीन बाबू के साथ आपका मेलजोल कैसा है? उन्होंने क्या मेरी दीदी की समालोचना देखी? शायद बडे नाराज हैं। लेकिन इसमें मेरा दोष क्या? जिन्होंने लिखी है, वे ही इसके जिम्मेदार है। इसके अलावा इन रचनाओ को छोटे टाइप में छापा है न?

छठवी बात-मेरी नयी कहानी (जिसे दो-एक दिन के भीतर भेजूगा) किस महीने मे छापेंगे? चैत्र में 'राम की सुमति' समाप्त होगी, अतएव उस महीने मे नही, वैशाख में दें। मगर चाहे जिस अक में दें, छोटे टाइप में छापने पर कम जगह लगेगी और ग्राहकों को पढने की चीज अधिक मिलेगी।

सातवी बात-वैशाख से पत्रिका सुन्दर होनी चाहिए। चित्रों के पीछे बेकार रुपये खर्च करने की अपेक्षा उन रुपयों को अन्य किसी प्रकार के कागजों मे लगाया जाय तो अच्छा होगा। गोकि मै यह नहीं जानता कि ग्राहक तस्वीर पसन्द करते है या नही। अगर यह फैशन है तो निश्चित रूप से देना होगा। आप मुझे निबन्ध, कहानिया आदि के निर्वाचन करने का मौका दें तो अच्छा होगा। मैं जरा देख-सुन लिया करूँ। खातिरदारी के चक्कर

में आकर कूडा छापना या नाम देखकर गोवर-मिट्टी देना, ठीक नहीं है।

आठवी बात—श्रीमती निरुपमा देवी अगर कृपा करके अपनी रचना आपको देती है तो अवश्य ही अच्छी वात है। उनकी कविता लिखने की शक्ति काफी अधिक है। श्रीमती अनुरुपा देवी की रचना पाना शायद दु साध्य है। वह 'भारती' में लिखती हैं। आपके यहाँ लिखेंगी या नही, कहा नही जा सकता। लिखने पर भी अश्रद्धा के साथ फालतू चीजें लिखेंगी। ये सब बडी लेखिकाएँ है। 'यमुना' जैसी छोटी पत्रिका में इन्हें लिखने की प्रवृत्ति नही होती। मगर एक वार प्रयत्न करके देखियेगा। अगर मिल जाय तो अच्छा और न मिले तो अच्छा।

मेरे तीन नाम हैं—

आलोचना, निबन्ध इत्यादि—अनिला देवी।

छोटी कहानियाँ—शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय।

वडी कहानियाँ—अनुपमा।

सब कुछ एक ही नाम से छापने पर लोग समझेंगे कि इनके पास इस आदमी के अलावा और कोई नही हैं।

यहा मेरे एक मित्र है—प्रफुल्ल लाहिडी, बी० ए०। आप अच्छे दार्शनिक हैं। निबन्ध अच्छा लिखते है, गोकि नाम नहीं है, क्योंकि किसी मासिक पत्रिका के लेखक नही है, मैने इनसे 'यमुना' में लिखने के लिए अनुरोध किया है। रचना मिलने पर भेज दूगा।

असुविधा यह है कि यमुना का कलेवर छोटा है। इसमें अधिक प्रयास किया नहीं जा सकता। दाम भी कम है। अचानक दाम बढाने पर क्या होगा, कहा नही जा सकता। अगर विलकुल सभव न हो तो कुछ दिनों बाद आश्विन माह से (ग्राहको का राय लेकर और यह प्रमाणित करते हुए कि अधिक दाम देने पर घाटे में वे नही रहेगे) मूल्य और आकार में परिवर्तन किया जा सकता है। आप स्वय ढीले आदमी है। लेकिन ऐसा करने से नही चलेगा। आपने जब और दूसरा काम न करने का निश्चय किया है तब कायदे के मुताबिक इसे करना चाहिए। विशेष श्रद्धा के साथ करिये। जिस विशेष बुद्धि कहा गया है, उसकी उपेक्षा करने से काम नही चलेगा। 'प्रवासी' आदि पत्रिकाए कभी बहुत छोटी थी और आज कितनी बडी हो गयी है। आपने मुझे पुरुष लेखकों की आलोचना लिखने को कहा है, पर मेरे पास बगला पुस्तकें नहीं है। मासिक पत्रिका एक भी नही लेता, मुझे कहाँ, क्या मिलेगा जो आलोचना लिखूँ? लिखने पर लोगों की दृष्टि जरूर आकर्षित होती है और वादानुवाद का कम चलता है। इसे मैं जानता हूँ, ऐसा होता है तो चिन्ता की कोई बात नहीं। मेरी आलोचना में यदि गलती रह जाय और उसे प्रमाणित कर दिया जाय (कर सकना कठिन है) तो वह भी अच्छी वात है।

यही मुझे एक बात कहनी है। मेरी पढाई-लिखाई में क्षति हो रही है। सवेरे का पूरा वक्त किसी दिन आपके लिए और किसी दिन चरित्रहीन के लिए नष्ट हो रहा है। यद्यपि रात को पढने का मौका मिल जाता है, पर नोट्स नही ले पाता। कई दिनो से मैं एक बात सोच रहा हूँ कि एच० स्पेंसर के सभी सिन्थेटिक फिलासफी की एक बंगला समालोचना—नहीं आलोचना—तथा योरोप के अन्य-अन्य दार्शनिक जो स्पेंसर के शत्रु-मित्र है, उनकी रचनाओं पर एक धारावाहिक लेख लिखू। हमारे यहा की पत्रिकाओ में केवल अपने सांख्य और वेदान्त, द्वैत और अद्वैत के अलावा अन्य किसी तरह की चर्चा नही होती, इसीलिए अक्सर मेरी यही इच्छा होती है। क्या करू, बताइये। अगर आपकी पत्रिका में स्थान न हो तो (होना सभव भी नहीं है।) अन्य कोई इस तरह की पत्रिका बतला सकते है जो छाप सकती हो?

आप बराबर मुझे खत लिखा करे। न लिखने पर मुझे भी लिखने की इच्छा नही होती। इसे भी एक काम समझे। रचनाए रजिस्ट्री करके ही भेजूँगा। खर्च आप क्यो देगे? मेरी हालत उतनी बुरी नही है कि खर्च भी लेना पडेगा। भविष्य मे ऐसी बाते न लिखें।

आशीर्वाद देता हूँ, आपकी दिनो दिन श्रीवृद्धि हो, वही मेरा पारितोषिक होगा।

चन्द्रनाथ की माग अब न करे। अगर जरूरत हुई तो पुन लिख दूँगा। वह अच्छी छोडकर बुरी न होगी।

मेरे तीन तरह के नामो के प्रति आपकी क्या राय हे ? शायद इससे सुविधा होगी। एक ही नाम से अधिक लिखना ठीक नही है।

उपेन क्या कहता है। वह चिट्ठी-पत्री लिखने वाला नही है। उसके रहने से सुविधा होती। नही रहने से काफी परेशानी होती है। उस व्यक्ति का आपके प्रति अत्याधिक स्नेह है। अगर उससे कुछ काम ले सके तो प्रयत्न करते रहियेगा।

बहरहाल, और चाहे जो हो, आप परेशान न हो, चिन्ता करने की जरूरत नही। मै आपको छोडकर कही जाऊँगा या किसी लोभ से जाने की चेष्टा करूँगा, इस तरह की बात मन में न लाये। . मेरा सब कुछ दोषो से भरा नही है।

आप पहले इस विषय मे सतर्क करने के लिए पत्र मे लिखते थे कि दूसरी पत्रिकावाले मुझसे अनुरोध करेगे। भले ही करे, (चैरिटी विगिनस होम) सच है न ? जरा जल्दी जवाब दीजिएगा। मेरा आशीर्वाद ले। इति।

—शरत्चन्द्र चट्टोपाध्या

प्रिय फणी बाबू, [चैत्र १३१६]

आपके निबन्ध वापस कर चुका हूँ। दोनो निबन्ध बुरे नही है। दिये जा सकते है। 'चक्षु' पर लिखा निबन्ध अच्छा है।

'चन्द्रनाथ' को लेकर बडा गोलमाल हो रहा है। बिना पता लगाये, हाथ मे न पाकर यह सब विज्ञापन छापना बचपना है। वे लोग सारा चन्द्रनाथ एक साथ नही देगे। इसके लिए बेकार प्रयत्न न करे। पर कुछ-कुछ नकल करके भेजते रहेगे। मेरी तनिक भी इच्छा नही है कि मेरी पुरानी रचनाए, ज्यो की त्यो छपे। उसमे अनेक भूल भ्राति है, अगर उसे सशोधन कर दूँ तो छापा जा सकता है, अन्यथा नही। अकेले 'काशीनाथ' को लेकर मै लज्जित हूँ। अपने मित्रो से पुन लज्जा मिले, यह मै नही चाहता। उन लोगो ने मेरे मगल के लिए ऐसा किया है, पर मेरा मत सपूर्ण रूप से बदल गया है। चन्द्रनाथ बन्द रखें। चरित्रहीन को ज्येष्ठ से प्रारभ कर दे। अगर चन्द्रनाथ वैशाख से प्रारभ हो गया है (ऐसी स्थिति में अन्य कोई उपाय नही है।) तो मुझे बाकी हिस्से का परिवर्तन-सशोधन करना होगा। वैशाख मै कितना छपा है, देख लेने पर मुझे बाकी हिस्सा न मिलने पर भी थोडा-थोडा करके लिख दूँगा। अगर वैशाख मे न छपा हो तो चरित्रहीन छपेगा।

मै चरित्रहीन के लिए काफी चिट्ठिया पा रहा हूँ। कोई रुपये का लोभ तो कोई सम्मान की लोभ कोई दोनो का तो कोई मित्रता का अनुरोध कर रहा है। मुझे कुछ भी नही चाहिए। आपसे कहा है कि आपका जिससे भला होगा, वही करुगा। मै बात बदलता नही।

आप कृपा करके इस पते पर फाल्गुन चैत्र और वैशाख की यमुना भेजे—बी० प्रमथनाथ भट्टाचार्य, १६ युगल किशोर दास लेन, कलकत्ता।

ये लोग अर्थात् गुरुदास बाबू के पुत्र अपनी नयी पत्रिका के लिए मेरे लेखों के लिए विशेष प्रयत्न कर रहे है, गोकि मेरे प्रियतम मित्र प्रमथ की खातिर—पर मेरी वही एक बात। खैर, फाल्गुन, चैत्र, यमुना उसे दें। उन्होने और उनके दल ने मेरे काशीनाथ के बारे में गुप्त आलोचना की है। और एक बात है—'यमुना' को छोडकर अन्यत्र कहीं नही लिखूँगा, इससे भी एक काम बनेगा। मेरी रचनाओं को तुच्छ बताने का साहस उनमें नही। मै गण्डमूर्ख नही हूँ, इसे प्रमथ जानता है।

निरुपमा को अपने दल में खीचने का प्रयत्न कीजिएगा। वह सचमुच अच्छा लिखती है और बाजार में उसका नाम भी है। अक्सर और अधिकतर अवसरों पर वह मुझसे अच्छा लिखती है—ऐसी मेरी धारणा है। इसी बीच 'मानसी' के श्रीयुक्त फकीर बाबू से मुलाकात हो तो उनसे कहियेगा कि उनका पत्र मिला है, जल्द उत्तर दूगा। मुझे बुखार है, इसलिए पत्र नहीं दे पा रहा हूँ। शीघ्र दूँगा।

क्या आप एक बात बता सकते है कि और कितने दिनों तक मेरा श्राद्ध 'साहित्य' पत्रिका में होता रहेगा? लोग शायद यही सोचेंगे कि मुझमें लिखने की क्षमता 'काशीनाथ' से अधिक नही है। इससे नाम बिगडता है, उपीन बेचारे को शायद इस बात का ख्याल नही है। फिर भी उसने आन्तरिक मगलेच्छा के लिए ही ऐसा किया है, इसलिए किसी तरह सह लिया। दूसरा कोई चारा भी नहीं। पर मै पूछता हूँ, क्या इस तरह की और कहानिया अभी उन लोगों के पास है, क्या? अगर है तो मेरा बेडा गर्क हो जायेगा। एक बात और आपसे कहता हूँ। उस दिन गिरीन का एक पत्र मिला। चन्द्रनाथ को लेकर उन लोगों से उपीन की कहासुनी हो गयी। वे लोग यद्यपि आपके विरुद्ध नही है, तथापि इस घटना से और काशीनाथ का 'साहित्य' में छपने के कारण वे लोग चन्द्रनाथ देने के लिए तैयार नही। वे लोग मेरी रचनाओं को बहुत चाहते है। उन्हें हमेशा इस बात का डर लगा रहता है कि कही खो न जाये, कही दूसरी पत्रिकावालों के हाथ न लग जाय, इसलिए सुरेन ने थोडा-थोडा हिस्सा नकल करके भेजने का इरादा किया है। अगर वैशाख में 'चन्द्रनाथ' छप गया है तो मुझे चिट्ठी या तार से 'हाँ-ना' लिख भेजे। इसके बाद मै सुरेन से एक बार अनुरोध करके देखूंगा। यह कहकर अनुरोध करूगा कि दूसरा चारा नही है, देना ही होगा। अगर छपा नही है तो अच्छा ही है, क्योंकि तब चरित्रहीन छप सकेगा।

मुझे कहानिया और निबन्ध भेजे। बाकी चीजे आप देख लें। जैसी-तैसी कहानिया मेरे हाथ रहते न छपे, यही मेरी अभिप्राय है।

जल्दी मे पत्र लिख रहा हूँ (काम के बीच मे), इसलिए सारी बाते गहराई से सोच नही पा रहा हूँ, पर जो लिख रहा हूँ, उसे ठीक समझें।

द्विजू बाबू को सपादक बनाकर सजधज के साथ हरिदास बाबू पत्रिका निकाल रहे हैं। अच्छी बात है। वे रुपया देगें अतएव उन्हें रचनाए भी अच्छी मिलेगी। इसके अलावा बडों की मदद करने के लिए लोग तैयार रहते है, यही जग की रीति है। इसके लिए चिन्ता की आवश्यकता नही है।

ज्येष्ठ के लिए कुछ भेजना है, उसे वैशाख के पहले हफ्ते के अन्दर ही भेज दूगा। केवल 'चन्द्रनाथ' के बारे में चिन्तित रह गया है। वह कैसी कहानी है, शैली कैसी है, जाने बिना छापना उचित नही है। इस बात का डर लग रहा है। बहरहाल बहुत जल्द ही इस विषय में सूचना पाने की आशा मे हूँ।

तबीयत ठीक नही है। कल से बुखार है। न बढे तो अच्छा है। आपकी तबीयत कैसी है? बुखार ठीक हुआ? इति।

आप लोगों के स्नेह का
—शरत्

प्रिय फणी बाबू,

अभी-अभी आपका रजिस्टर्ड पैकेट मिला। अगर रजिस्ट्री भेजते है तो घर के पते पर क्यो भेजते है ? आफिस का पता ठीक है, क्योकि डाकिया जब घर पर जाता है तब मै आफिस मे रहता हूँ। साधारण डाक से भेजने पर घर का पता ठीक है। दोनो निबन्धो को देखकर शीघ्र भेज दूगा। वैशाख के लिए बडा गोलमाल देख रहा हूँ। खैर, इस महीने मे किसी सूरत से काम चला लें—(१) पथ निर्देश, २- नारी का मूल्य और अन्यान्य निबन्ध आदि। चन्द्रनाथ को न छापें, क्योकि वह अगर छापने योग्य होगा तो कमश छापना होगा। ज्येष्ठ मास से चरित्रहीन या चन्द्रनाथ और भी अच्छे ढग से कमश छापे। देखू, गिरीन-सुरेन क्या जवाब देते है। वैशाख के लिए कोई खास सूरत नजर नही आती। मेरे ऊपर आपका दावा सर्वप्रथम है, इसमे कोई सदेह नही। मै जब तक जीवित हूँ तब तक आपको विशेष कष्ट नही होगा। लेकिन भाई, मेरा स्वास्थ्य ठीक नही है। इसके अलावा कहानी-सहानी लिखने की प्रवृत्ति नही होती। लगता है जैसे मुसीबत मे पडकर लिख रहा हूँ। फिर भी लिखूगा- कम से कम आपके लिए। सचमुच इस बीच कहानी भेजने के लिए मेरे पास अनेक अनुरोध आये है। लेकिन मैं निरुपाय हूँ। उतनी कहानिया लिखने बैठू तो मेरा लिखना-पढना बन्द हो जायगा। मै प्रतिदिन दो घण्टे से अधिक नही लिखता। दस-बारह घण्टे पढता हूँ। यह क्षति मै किसी सूरत से होने नही दूगा। बहरहाल, आप वैशाख का अक घसर-पसर कर प्रकाशित कर दें। इसके बाद वाले अक से देखा जायगा। अब यह देखिये कि आपके ग्राहक क्या कहते है। उसके बाद समझकर काम करना होगा। यह मेरा परम सौभाग्य है कि आपकी माताजी मेरी खोज खबर लेती है। उन्हे कह दे कि मै अच्छी तरह हूँ। आशा करता हूँ कि बाकी लोग कुशल-मगल से होगे। वैशाख का अक अगर उतना अच्छा नही होता तो पत्रिका मे इस विषय का उल्लेख कर दे कि मेरी एक कहानी प्रत्येक माह अवश्य रहेगी।

(मेरा पता आप ऐरे-गैरे को क्यो देते हैं ?) मुझे अनेक लोग कहते है बडी पत्रिका मे लिखने के लिए, क्योंकि उससे नाम अधिक होगा। आपकी पत्रिका छोटी है, कितने आदमी पढते है ? हा, मै भी इस बात को स्वीकार करता हूँ। लाभ-हानि पर विचार किया जाय तो उनकी बात सत्य है और लोग ऐसा करते भी है। लेकिन मुझमे आत्म सभ्रम है और कुछ आत्म निर्भरता भी। इसीलिए सब जिस रास्ते को सुविधा का समझते है, मै उसे सुविधा का समझने पर भी वही मेरा सब आश्रय तो नही है। अगर मै प्रयत्न करके एक छोटी पत्रिका को बडा कर सकू तो वह मेरा लाभ है। इसके अलावा आपको अनेक भरोसा दे चुका हूँ, अब नीच लोगो की तरह काम नही करूगा। मुझमें बहुत दोष है सही, पर मै सोलह आने दोषों से भरा नही हूँ। अधिकतर समय मे मै अपनी बात को पूर्ण करता हूँ। आपको चिन्तित होने की जरूरत नही। मेरा यह पत्र किसी को पढने के लिए न दे। अगर वैशाख के अक से यह समझा जाय कि ग्राहकों की सख्या घट नही रही है तब यह आशा की जा सकती है कि आगे और बढ सकती है। 'पथ निर्देश' पूरा एक ही अक मे छाप दे। क्रमश न छापे। एक बात और। 'नारी का लेखन' लेख मे काफी अशुद्धिया छपी है। एक जगह अनुरूपा के स्थान पर आमोदिनी नाम छपा है। "भूमा के साथ भूमि" इत्यादि। यह अनुरूपा का है—आमोदिनी का नही। निरुपमा से प्रयत्न कर अगर उससे लेख आदि प्राप्त कर सके तो करियेगा। वह वास्तव मे अच्छा लिखती है। वह मेरी छोटी बहन भी है और छात्रा भी।

—शरत्

प्रिय फणी बाबू, (अप्रैल, १६१३)

मेरी ओर से आपको एक काम करना होगा। मै प्रचलित मासिक पत्रिकाओं के बारे में कुछ नही जानता, इसीलिए उनकी आलोचना नहीं कर पाता। मैं कोई बुरा आलोचक नही हूँ, अतएव इस दिशा में प्रयत्न करूगा, गोकि सब यमुना के लिए। आपसे अनुरोध है कि मेरे लिए दो-तीन मासिक पत्रिकाएँ वी०पी०पी० से भेजने का प्रयत्न करें। मै छुडा लूंगा। 'प्रवासी', 'साहित्य', 'मानसी'. 'भारती'। रचना देकर इन पत्रों को प्राप्त करने की इच्छा नही है। इसके अलावा इतनी रचना पाऊँगा कहाँ ? दो-एक पत्रिकाए खातिरदारी में मिल रही है। लेकिन मुझे यह खातिरदारी की जरूरत नहीं है, बल्कि इससे यह सकोच हो रहा कि वे लोग मुफ्त में पत्रिका भेज रहे है। इन सभी बातों को मधे नजर रखते हुए आप से अनुरोध कर रहा हूँ। पता है—१४ लोअर पोजगडग स्ट्रीट। वैशाख से आये तो और अच्छा है। हम लोगों के क्लब में पत्रिकाए आती जरूर है, पर वहां बडी असुविधा है। आपको अनेक प्रकार के अनुरोधों से बीच-बीच में तग करूगा। मेरा स्वभाव ही ऐसा है। बुरा न मानें,आप उम्र में मुझसे काफी छोटे हैं। छोटा भाई समझकर आपसे बेफ्रिक खटाता हूँ। अगली डाक से चिट्ठी और रचनाए भेजूगा। इति।

—शरत्

---

१४ लोअर पोजगडग स्ट्रीट
रगून, ३-५-१३

प्रिय फणी बाबू,

आपका पत्र मिला और आपके द्वारा भेजी गयी पत्रिकाए अर्थात 'प्रवासी' 'भारती' 'साहित्य' आदि सभी मिले। चन्द्रनाथ में जितना परिवर्तन उचित समझा कर दिया। भविष्य मे भी ऐसा ही करूगा। कहानी के रूप में चन्द्रनाथ अत्यन्त मीठी कहानी है, लेकिन भावुकता से भरी है। लडकपन तथा जवानी में इस तरह की रचनाएं स्वभाविक तौर पर ऐसी होती है। बहरहाल जब उपन्यास हाथ मे आ गया है तब तो इसे अच्छा उपन्यास बनाना ही है। कम से कम दूना हो जायगा प्रति माह २० पृष्ठ छापने पर आश्विन माह के पूर्व समाप्त होगा या नही, इसमें मुझे सदेह है। इस कहानी की विशेषता यह है कि इसमें किसी प्रकार की अनैतिकता नही है। सभी पढ सकेंगे। "चरित्रहीन" आर्ट के हिसाब से और चरित्र चित्रण की दृष्टि से जरूर अच्छा है, लेकिन इस तरह का नही है। चरित्रहीन के लिए प्रमथ बराबर तगादा कर रहा था, अन्त मे हालत यह हो गयी कि आजन्म की मित्रता टूटने की नौबत आ गयी। इसी डर से 'चरित्रहीन' उसे पढने के लिए भेजा दिया जबकि उसके मन का भाव मै नहीं जानता, पर मैने अपने मन का भाव स्पष्ट रूप से लिखकर भेज दिया है। अभी तक उसका कोई उत्तर नही मिला है। पाने पर लिखूगा। आपके और मेरे मन में स्नेह का प्रगाढ सम्बन्ध है मेरी उम्र हो गयी है। इस उम्र में जो होता है, उसे सहज ही नष्ट नही करता। आप मेरे बारे में क्यो इतना उद्विग्न हो जाते है ? 'यमुना' की उन्नति की ओर मेरा सबसे अधिक ध्यान है, इसके बाद और कुछ। 'चरित्रहीन' वही आधा लिखकर रख छोडा है। क्या होगा, यह नही जानता। कब तक समाप्त होगा, यह भी कह नही सकता। चन्द्रनाथ जरा अच्छा बनकर प्रकाशित हो, इसके लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। क्योंकि इसे तो आलरेडी छापा गया है। 'यमुना' इस वर्ष प्रसिद्धि प्राप्त करें, इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। इसके बाद अर्थात्

अगले वर्ष से आकार में वृद्धि करनी होगी। इस वर्ष कितने ग्राहक है ? पिछले साल से कम या अधिक ? इसे जरूर लिखें। अगर मै दूसरी पत्रिकाओ में लिखकर अपने नाम को अधिक प्रचारित कर पाता तो 'यमुना' का उपकार के सिवा अपकार न होता। लेकिन बीमारी के कारण लिख नहीं पाता और वह होगा भी नही। जल्दबाजी करने से काम नही होगा फणी बाबू, स्थिर होकर विश्वास के साथ आगे बढना होगा। मै बराबर आपके काम में लगा रहूगा। लेकिन मेरी शक्ति बहुत कम हो गयी है परिश्रम नही कर पाता। एक आलोचना लिख रहा हूँ, दो - तीन दिन में समाप्त होगी। ऋतेन्द्र ठाकुर के विरुद्ध। (शायद अतिरिक्त तीव्र हो गयी है,) फाल्गुन के 'साहित्य' मे उन्होंने उडीसा खोंद जाति के सम्बन्ध में एक लेख लिखा था जो शुरू से आखिर तक गलत है। पुरातत्व के बारे में (नाम कमाने के लिए) बेकार के लेख नही लिखना चाहिए, यही मेरा उद्देश्य है। मै नही जानता कि ऋतेन्द्र ठाकुर से 'यमुना' का कैसा सम्बन्ध है ? अगर उचित समझें तो छापें वर्ना 'साहित्य' को दे दें। नही वह कहानी आज तक नही मिली। निरुपमा देवी की कोई रचना मिली ? अगर उसे कोई जिम्मेदारी दे दें तो अच्छा हो। अगर सौरीन बाबू मेरी गैर मौजूदगी में मेरी जिम्मेदारी ले तो बडा अच्छा हो, पर मेरा ख्याल है कि निरुपमा भी काफी जिमेदारी ले सकती है। सुरेन, गिरीन, उपीन भी। मगर ये लोग निबन्ध लिख सकते है या नही मै नही जानता। निबन्ध लिखने के लिए जरा अध्ययनशील होना आवश्यक है। इससे मन को बल मिलता है। कहानी वगैरह अगर ये लोग लिखे तो मै निबन्धों मे ही मगन रहूँ। कहानी लिखना वैसा आता नही और न लिखनें की इच्छा होती है। उम्र हो गयी है, अब जरा विचारपूर्ण लेख लिखने की इच्छा होती है। मेरा कहानी लिखना, लगभग जबरदस्ती करना है। प्रमथ का अन्तिम पत्र साथ में भेज रहा हूँ। मेरा नाम 'अनिला देवी' है, कोई जानने न पाये। मैं ही हूँ। इसका अनुमान लगाकर प्रमथ ने डी० एल० राय को बताया है। मैं उसे एक कडा पत्र दूंगा।

आपकी पत्रिका को मैं अपनी पत्रिका समझता हूँ। इसे नुकसान पहुँचाकर अन्य कोई काम नही करूगा। केवल प्रमथ को लेकर सकट मे पड गया हूँ। वह भी परिचित नही, मेरा परम प्रिय मित्र है, सदा का स्नेह पात्र। इससे जरा चिन्तित हूँ, नही तो क्या। प्रमथ के पत्र से बहुत सी बातें समझ सकेंगे। इस वक्त मेरा बुखार १०२ ५ है। रगून मे बुखार नही होता, लेकिन मुझे बुखार दूसरी वजह से होता है। शायद हृदय से सम्बन्ध है। इस देश का स्वास्थ्य आम तौर पर अच्छा ही हे। लेकिन मुझे सहन नही हो रहा है। इति।

आ शरत्

---

१४ लोअर पोजगडग स्ट्रीट

प्रिय फणी बाबू

रगून [विशाख , १३२०]

पिछली डाक से 'चन्द्रनाथ' का कुछ भाग भेजा हे। अगली डाक से कुछ और भेज दूगा। मै अत्यन्त पीडित हूँ। ज्येष्ठ की 'यमुना' के लिए चिन्तित हूँ। सिर दर्द इतना है कि कोई काम नही कर पा रहा हूँ। अक्षरों की ओर देखने मे कष्ट हो रहा है। बाध्य होकर काम-काज, पढना-लिखना, सब कुछ स्थगित कर रखा है सौरीन्द्र बाबू को मेरा आन्तरिक स्नेहाशीर्वाद देते हुए कहियेगा —यह समस्या है। यह महीना किसी सूरत से चला लें। स्वस्थ हो जाने पर आषाढ के लिए कोई चिन्ता नही रहेगी। मे सौरीन को पत्र नही लिख पा रहा हूँ, उन्होने मुझे जो कुछ लिखा है पढकर खुशी हुई है। मुझे अपने यहाँ बुलाया है, देखू। जिसके ऐसे मित्र है, वह बडा सौभाग्यशाली है। 'चरित्रहीन' को अर्द्ध लिखित हालत में पढने के लिए भेज दिया है। बार-बार जिद करने के कारण मै उसके

अनुरोध की उपेक्षा नही कर सका । वापस आने पर शेष भाग को लिखूगा । इस महीने में कहानी नही लिख सकूगा । समय बिलकुल नही है । एक आलोचना लिखना प्रारंभ किया था, पर समाप्त नही कर सका । अगर उसे पूरा कर सका तो आपके हाथ २६ तारीख तक पहुँच सकेगा । । फलत इस महीने में उपयोग नही हो सकेगा । सचमुच मै बहुत चिन्तित हूँ । काफी कोशिश करने पर भी नही लिख पा रहा हूँ । अगर कोई लिखने वाला होता तो बोलता जाता । ऐसा कोई मिल भी नही रहा है । वैशाख की 'यमुना' सचमुच अच्छी हुई है । सौरीन की कहानी अच्छी है और निबन्ध भी अच्छा है ।

— शरत्

---

१४ लोअर पोजडग स्ट्रीट

फणीन्द्र बाबू,

रगून १०-५-१६१३

आपके तार का जवाब नही दिया, कारण जवाब देनेवाली चीज मेरे हाथ में नही है । आशा है शीघ्र प्राप्त होगी । अगली डाक से आलोचना, नारी का मूल्य भेजूंगा । बाद वाली डाक से चन्द्रनाथ और एक कुछ । 'चरित्रहीन' यमुना ही प्रकाशित हो, यही मेरी आन्तरिक इच्छा है और ईश्वर की इच्छा से ऐसा ही होगा । आप निश्चिन्त रहिये । सुना है कि उसमें मेस की नौकरानी के रहने के कारण लोगो की रुचि मे बाधा पहुँचेगी । पहुँचे । लोग भले ही निन्दा करे, जो लोग जितनी निन्दा करेंगे, वे उतना ही पढेगे । अच्छा हो या बुरा हो, एक बार प्रारभ करने पर उसे पूरा पढना ही पडेगा । जो समझते नही, जो कला की परवाह नही करते, वे निन्दा ही करेंगे, पर निन्दा करने पर भी काम होगा । मगर यह साइकोलाजी और एनालिसिस की दृष्टि से बहुत अच्छा है, इसमे सदेह नही है और एक प्रकार से एक सायण्टिफिक एथिकल नावेल है । अभी पता नही चल पा रहा है ।

आ — शरत्

प्रियवरेषु,

रंगून, १४-६-१६१३

मेरे बारे में आपकी माताजी पूछताछ करती है, यह मेरे लिए सौभाग्य का विषय है । उनसे कह दें कि मै बिलकुल ठीक हो गया हूँ । मेरे बारे में पूछताछ करनेवाला ससार में कोई नही है, इसलिए अगर कोई मेरे बारे में भला-बुरा जानना चाहता है तो सुनकर कृतज्ञता से भर उठता हूँ । मेरी तरह अभागा ससार में कम है । उपकार कर रहा हूँ, यश, मान, स्वार्थत्याग कर रहा हूँ इत्यादि बडे-बडे भाव मेरे मन मे कभी नही आते । कभी थे भी नही और आज भी नही है । वैसे यह बडी बात नही है । यश का भूखा होता तो उसके लिए पहले से ही प्रयत्न करता । इतने दिनो तक चुप न रहता । . . . और एक बात वह यह कि शतद्वारी चण्डी पाठक होने में मुझे लज्जा आती है । एक पत्रिका मे नियमित लिखता हूँ, यही काफी है । जो मेरी रचनाए पसन्द करते हैं, वह इसी पत्रिका को पढेगे, ऐसी मेरी धारणा है । इसके अलावा होमियोपैथी मात्रा में इसमे थोडा, उसमे थोडा, कुछ अश्रद्धा से कुछ ऐसे-वैसे, कुछ तर्जुमा करके दूसरे के भावो चोरी करना — ये क्षुद्रताए बचपन से ही मुझमे नही है । इतना लिखने जाऊ तो पढना बन्द करना पडेगा और पढना मृत्यु के सिवा मै छोड नही सकता । . . . मेरी छोटी कहानियाँ न जाने कैसे बडी हो जाती है, यह बडी मुश्किल की बात है । मैं एक उद्देश्य लेकर कहानी लिखता हूँ और उसे परिस्फुट किये बिना नही छोडता । मैने सोचा था कि "बिन्दो का

लल्ला" आपको पसन्द नहीं आयेगी। छापने में शायद आगा - पीछा करेंगे। कही मेरी खातिर अथवा सकोचवश अपना नुकसान सहते हुए छाप दें, इसीलिए आपको पहले से ही सावधान किये दे रहा था, अर्थात विश्वस्त होना चाहिए। अगर सचमुच आपको अच्छी लगी है तो छापकर आपने अच्छा ही किया। पाठक भले ही कुछ कहे। 'नारी का मूल्य' अगली बार समाप्त करके कुछ और शुरू करूगा। 'नारी का मूल्य' की बहुत प्रशंसा हुई है। मैने इस तरह चौदह मूल्य लिखने को सोचा है। इस बार 'प्रेम का मूल्य' या 'भगवान का मूल्य' लिखूगा। उसके बाद क्रमश धर्म का मूल्य, समाज का मूल्य, आत्मा का मूल्य, सत्य का मूल्य, मिथ्या का मूल्य, नशे का मूल्य, साख्य का मूल्य, और वेदान्त का मूल्य। चरित्रहीन केवल १४-१५ अध्याय तक लिखा है, बाकी अन्य कापियो तथा रफ कागजो मे लिखा है। सभी की नकल करनी है। इसके अन्तिम कई अध्यायों को ग्रैण्ड बनाऊगा। लोग पहले जो चाहे कहें, लेकिन अन्त में उनकी राय बदल जायेगी। मै झूठी प्रशसा पसन्द नही करता और अपना वजन समझे बिना बात नही करता, इसीलिए कहता हूँ कि अन्तिम भाग सचमुच अच्छा होगा। नैतिक हो या अनैतिक लोगो को कहना पडे – "हॉ एक रचना है" और इसमें आपको बदनामी का डर क्यो है ? बदनामी होगी तो मेरी। इसके अलावा कौन कहता है कि मैं गीता का टीका लिख रहा हूँ ? चरित्रहीन इसका नाम है पाठकों को पहले से ही इसका आभास दे दिया गया है। यह सुनीतिसचारिणी सभा के लिए नही है और न स्कूली पाठय पुस्तक। अगर वे टालस्टाय के 'रिजरेक्सन' को एक बार पढते है तो चरित्रहीन के बारे में कुछ कहने को रह नही जाता। इसके अलावा जो कला के तौर पर, मनोविज्ञान के तौर पर महान् पुस्तक है, उसमें दुश्चरित्र की अवतारणा जरूर रहेगी। क्या कृष्णकान्त के वसीयतनामा में नही है ? .... रुपया ही सब कुछ नहीं है, देश का काम करने की जरूरत है। पाँच आदमियों को यदि यथार्थ में सिखाया जा सके, कट्टरता और अत्याचार के विरुद्ध स्वर ऊँचा किया जाय। इससे बढकर आनन्द की क्या बात है ? आज भले ही लोग ऐसे क्षुद्र व्यक्ति की बात भी न सुनें, लेकिन एक दिन सुनेंगे ही। ... ... इस सकल्प को लेकर मैंने एक दिन साहित्य–सभा की स्थापना की थी, आज न तो वह साहित्य -सभा है और न वह शक्ति।

— शरत्

रगून

प्रियवरेषु,

१०-१०-१३

तुम्हारी भेजी गयी 'बड़ी दीदी' मिली, बुरी नही हुई है, पर वह बचपन की रचना है। अगर न छपती तो अच्छा रहता।

आजकल मासिक पत्रों में जो छोटी कहानियाँ प्रकाशित होती है। उसमे पन्द्रह आना के बारे मे आलोचना नही हो सकती। वे न तो कहानियाँ है और न साहित्य, केवल स्याही-कलम का अपव्यवहार। पाठकों पर अत्याचार। इस बार .. . मे इतनी कहानियाँ छपी है, पर एक भी अच्छी नही अधिकाश अपाठ्य है। किसी में दम नहीं है, भाव नही है, केवल है शब्दो का आडम्बर, घटनाओ की सृष्टि और जबरदस्ती पैथस, बूढी वेश्या का श्रृंगार कर जनता को भुलावे में डालने की चेष्टा देखकर मन मे वितृष्णा, लज्जा अथवा करुणा उत्पन्न होती है। ऐसे लोगो को कहानी लिखते देखकर सचमुच मेरे मन में इस प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं और कुछ भी न हो, स्वस्थ तो बिलकुल नही है। छोटी कहानियों की कैसी दुर्दशा हो रही है।

दो - एक बातें चरित्रहीन के बारे में कह दूँ। इसके बारे में कौन, क्या कहता है,

सुनते ही मुझे लिखना । इस पुस्तक के विषय में लोगो में इतने प्रकार के अभिप्राय है कि इस सम्बन्ध मे कुछ धारणा बनाना कठिन है । अनैतिक तो लोग कह ही रहे है । लेकिन अग्रेजी साहित्य में जो कुछ वास्तव में अच्छा है, उसमे इससे कही अधिक अनैतिक घटनाओं की सहायता ली गयी है । बहरहाल, साहित्यिको की मतामत की सूचनाए मुझे दीजिएगा ।

— शरत्

परम कल्याणीय,

कभी - कभी सोचता हूँ कि कुछ दिनों की छुट्टी लेकर बर्मा में ही किसी स्वास्थ्यप्रद जगह जाकर रहू और कलकत्ता न आऊ । जो कुछ होगा, उसे बाद में लिखूगा । फिलहाल मै स्वस्थ हूँ । लेकिन लिखना - पढना सपूर्ण रूप से छोड दिया है । तुम लोग मुझे कलकत्ते मे रहने के लिए कह रहे हो, यह ठीक है । लेकिन मुझे यह पसन्द नही है । नौकरी छोडकर, अस्वस्थ दशा में यायावरो की तरह रहना मुझे बिलकुल पसन्द नही है और किसी के पास जाकर रहना, यह तो एक दम असम्भव है । मैं बल्कि अस्पताल मे मरूगा, पर किसी भी हालत में इस पीडित शरीर को लेकर किसी के घर प्राण नही छोडूगा । इससे मुझे घृणा है । मेरे आत्मीय तथा मित्र है, इसे जानता हूँ । जाने पर कुछ दिनों तक देख भाल नही होगी, ऐसा नही समझता । लेकिन किसी को अनर्थक क्लेश देने की इच्छा नही रखता । अगर जाना पडा तो अपनी बडी बहन के यहाँ जाकर रहूगा । एक प्रकार से वही मेरा घर-द्वार है । उसकी स्थिति भी अच्छी है और बराबर आने के लिए अनुरोध कर रही है, पर अस्वस्थ शरीर लेकर मै कही जाना नही चाहता । मुझे इस बात का डर है कि मरकर उन्हें परेशानी में नही डाल दूँ । अब शायद किसी प्रकार की आशका नही है । वर्षा का मौसम मेरे लिए कठिन होता है । वह तो समाप्त हो गयी । अब आशा है, धीरे-धीरे स्वस्थ हो जाऊगा । अपने दु सह समय में चरित्रहीन को अगर समाप्त न कर सकू तो भला और कौन कर सकता है, पिछली बार यही पूछा था । इसका उत्तर निश्चिन्त करना ।

एक बात और जानने की इच्छा है । 'नारी का मूल्य' समाप्त हो गया । इसकी इतनी प्रशसा होगी, ऐसा सोचा भी नही था, लेकिन अब परिचित-अपरिचित लोगों से इसकी कितनी आलोचनाए और पत्र पाकर लग रहा है कि इस लेख ने लोगों की दृष्टि आकर्षित की है । मैं पूरी तरह से स्वस्थ होता तो जैसा पहले सकल्प किया था, शायद वैसा ही होता ।

पर एक बात यह भी है कि कोई भी प्रतिवाद क्यों न करें, नितान्त महिला की रचना होने के कारण अवहेलना न करें । मेरी लिखी हुई है, यह बात मणिलाल को कैसे मालूम हो गयी ? कही तुमने प्रचार तो नही कर दिया ? हाँ, जो लोग मेरी रचनाओ से घनिष्ठ रूप से परिचिन है वे समझ जायेंगे । लेकिन यह बात सामान्य लोग नही समझ सकेगे ।

— शरत्

सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय और गिरीन गंगोपाध्याय के नाम

१४ लोअर पोजंडग स्ट्रीट
रंगून, १८ - ३ - १६१३

प्रिय सुरेन और प्रिय गिरीन,

कल शाम को घर आने पर तुम लोगो के पत्र मिले। आखो मे पानी भर जाने के कारण उस वक्त पढ नही सका। पिछले दिनो की बातों के बारे मे चन्द बातें कहकर उसे समाप्त करना चाहता हूँ। प्रथम मेरे अशेष दु खमय जीवन मे उक्त साहित्य-सभा की स्मृतियाँ शायद एक मात्र सुखद स्मृतियाँ है। सूनसान मैदान में, छत के कोने में घर के कोने-अतरे में जब घर के लोग हमे सरगर्मी से खोजते रहते और तब हम वही बैठे साहित्य-चर्चा करते रहे। मैं इन बातो को आज तक नही भूल सका हूँ। द्वितीय-तुम लोग मेरे सुरेन-गिरीन हो, इससे अधिक कुछ नही कह सकता। कहना उचित भी नही है। बाहरी लोग इसे समझ नही सकते कि इतना कहने का कितना अर्थ होता है। केवल हम लोग ही जानते है। शायद मै थोड़े दिन जीवित रहूँगा। इसके बाद जिसे इच्छा हो, उससे कहना। अभी यह बात किसी को कहने की जरूरत नही है। इस तरह ससार के कितने लोग बडे हुए है, यह मै नही जानता।

गिरीन, मेरे द्वारा बहुत दिनो से प्रयोग किया हुई दो सोयन कलम से भेज रहा हूँ। यह कलम तुम्हारे निकट सार्थक हो, अमर हो। सावधानी से प्रयोग करने पर काफी दिनों तक काम देगी। न घिसेगी औरनचौपट होगी। मै जब नही रहूँगा तब तुम दोनो भाइयो को एक विचित्र शिक्षक की बाते स्मरण करा देगी। वास्तव मे बडा विचित्र हूँ मैं ऐसा हृदय भगवान कम लोगो को देते है, और ऐसा अपव्यवहार भी कम लोग करते हैं। मै बहुत दिनों से हृदय रोग से पीडित हूँ, दो-तीन साल पहले मराणासन्न हो गया था। इन दिनों स्वस्थ हूँ या नही, कोई निश्चित नही है जबकि दिन गुजरते जा रहे है। कलम के साथ मेरा स्नेह लिपटा हुआ है, कितनी पुरानी बातें जुडी हुई है, जरा सोचने पर तुम्हें ज्ञात हो जायेगा। हम लोगो का सम्बन्ध यही तक।

यमुना की बाते मै जब एक बार कलकत्ते गया था तब ठीक से यह समझ आया था कि तुम दोनो भाई उसके पृष्ठ पोषक हो, वर्ना तुम लोगों की जिसमे सहमति न हो, उसके साथ सहयोग कर तुम लोगों का अपमान करूगा, यह दोष गिरीन, मेरा बडा से बडा शत्रु भी नही कर सकता। मुझमे अनेक दोष हैं, इसलिए वे दोष मेरे लिए सभव है यह बात नही भी हो सकती आशा है इस बात का अविश्वास नहीं करोगे। मैने फणी पाल को वचन दिया था — तुम्हारी पत्रिका जिससे बडी हो, वही करूगा। मै दर्शन के आगे साहित्य छोड चुका था, अब पुन कहानी लिखना प्रारभ किया है। 'चन्द्रनाथ' तुम्हे देने को कहा था, मै समझता था कि तुम लोग जो अच्छा समझोगे करोगे। पता नही, क्यों मेरे मन मे सदेह हो गया था कि शायद तुम नही दोगे। अगर नही दोगे तो मै किसी भी हालत मे 'दो' नही कह सकता। इतनी खातिरदारी मेरा किसी के साथ नही है। तुम लोगो की इच्छा के विरुद्ध प्रकट रूप से तुम लोगों का असम्मान करने के पहले ही मुझे जीवित न रहना पडे — इसकी सूचना दे चुका हूँ। मुझे याद आती है, एक अर्सा पहले "बूडी" (निरुपमा) ने मुझे एक पत्र लिखा था कि "देवदास" भेजने के लिए तुम्हें पत्र दूँ। मैने उसे जवाब दिया था कि मेरी रचनाओं के बारे में वे लोग किसी का विश्वास नही करते। मुझे अपनी रचनाओ से तनिक भी प्यार नही है, पर वे लोग बहुत अधिक प्यार करते है अतएव वे लोग कदापि देना पसन्द नही करेगे। मैं उन्हें तुम्हारे पास (पाण्डुलिपि) भेजने के लिए नही लिख सकता। तुम लोग मुझ पर अविश्वास करते हो, क्योंकि मै किसी चीज की कीमत नही समझता। रहे तो रहे, जाये तो जाय — मेरी इस आदत को

सभी जानते है, खासकर तुम लोग ।

'यमुना' के बारे में मैंने दूसरे ढंग से समझा था, शायद इसीलिए इतना गोलमाल हुआ है । उन लोगों की भीतरी बातें खुलासा क्यों नही किया, कह नही सकता ।

अगर तुम लोग याद दिला सको तो क्यों नहीं लिखूगा ? लेकिन इसके बाद मन में यह बात आ रही है कि इस तरह का लिखना और तुम लोगों को खडा करके अपमान करने के समान है, और कुछ नही । स्वय ही काप उठता हूँ । मै कहता हूँ कि प्रयत्न करके देखो, वे लोग देंगे क्यों नही ? जब यह पत्रिका इन लोगों की है तब क्या वे इसे जगत् में खड़ा नही करेंगे ?

गिरीन, मैं पृथ्वी का मनुष्य होकर भी तीन लोक से न्यारी प्रकृति का हूँ । दावपेंच समझ नही पाता । इसके अलावा जब उपेन इसमें इतना लिप्त है, तुम लोगों की रचना भी छपती है तब यह समझकर पत्र देता हूँ कि तुम लोग भी उसी तरफ हो । फिर भी यह समझते हुए "देना ही पडेगा" मैंने नही लिखा है । अब क्या करना उचित है, मैं सोच नही पा रहा हूँ । अब यह सोच रहा हूँ कि एक बार पुन अज्ञातवास करू, क्या राय है ?

'साहित्य' में मेरा कूडा-करकट छपवाना उचित नही हुआ है । उन सामग्रियों को अपने लिए रखना उचित था । हमेशा हाथ का लिखा अपने पास रहेगा, यही मेरी इच्छा थी । क्यों इन रचनाओं को छपवाकर मुझे सकोच में डाला जा रहा है, समझ में नहीं आता । बचपन की रचनाओं में बचपना और फुहडपन भरा रहता है । जब मैं अभी तक जीवित हूँ तब मुझसे बिना पूछे साहित्य में क्यों छपवाया गया--यह मैं नही कह सकता । यह काम अच्छा नही हुआ । समाजपति महाशय ने एक रजिस्ट्री पत्र भेजा है, उसके जवाब में मैंने अपने मन की बातें लिख दी है । मैं इसके लिए लज्जा अनुभव कर रहा हूँ, यह मेरे मन की बात है, इसे जो जानते हैं, वे एक मात्र अन्तर्यामी है ।

यश का भूखा कौन ? मैं ? मै कभी किसी चीज का भूखा नही था, यश लेकर क्या करूगा ?

जो यह समझता है कि मैं यश का भूखा हूँ, वह मुझे नहीं जानता । अगर यश का भूखा होता तो इतने दिनों तक इतना वक्त सहज में नष्ट नही करता । गिरीन, लिखना बन्द करके पिछले ८-१० वर्षों तक लगातार काफी अध्ययन किया है, मेरे मन में लिखने का कोई गर्व नहीं है । विद्या का कुछ गर्व जरूर उत्पन्न हुआ है । अक्सर सोचता हूँ कि मेरी तरह बहुत कम बंगालियों ने पढा होगा और उन्हें स्मरण होगा । अब मै दर्शन में डुबकी लगाऊगा और फिर नहीं निकलूंगा ।

तुम लोगों की राय की प्रतीक्षा करुगा । मैं भीड़ में लोगों के बीच जाने से हिचकता हूँ । मानो मुझे उधर ही ले जाकर परेशान कर रहे हैं । मैं जब गुम हो जाता हूँ तब किस तरह होता है, इसे तुम लोग जानते हो । उस बात को सोचते हुए मुझे जवाब देना, सोच-समझकर जवाब देना ।

प्रमथ को उत्तर दिया है । *परिस्थिति* अभी समाप्त नहीं हुआ है ; शायद अब पूरा भी नही करूगा । अन्त बढिया करने का विचार किया था, पर मुझे परेशान करने पर मै कुछ भी नही करूगा । और एक बात है गिरीन, मेरी बहुत सी पुस्तकें पिछले वर्ष घर में आग लगने के कारण जल गयी, गोकि अभी काफी है । इन पुस्तकों को तुम्हें देना चाहता हूँ । मेरी आयल पेण्टिग काफी जल गयी है, केवल अर्द्ध समाप्त 'महाश्वेता' बच गयी है । इसे पूरा करके एक दिन भेज दूगा । अब तक भेज दिया होता, पर इतना बडा है और इसे यहाँ से भेजना भी मुश्किल काम है, इसलिए भेज नही सका । अभी तक उसे पूरा नही कर सका, अगर कहो तो पूरा कर दूँ । मेरा घर द्वार नही है, तुम्हारा घर-द्वार है । यह मेरी बडी प्रिय चीज है । चौपट न हो जाये, इसलिए इसे अपने पास रखना चाहता हूँ ।

मै यमुना के बारे मे जरा सकटपूर्ण स्थिति में फस गया हूँ। बिना कुछ जाने बहुत सी बातें कह गया हूँ। सुना है कि उन लोगों ने पृष्ठ संख्या में वृद्धि की है, भीतरी बात क्या है। मैने मन में सोचा था — बेचारा फणी बी० ए० पास करने के बाद भी जब साधुसुरेन्‌-कार्य में लगा है तब चाहे जैसे भी हो, वह अपने पैरो पर खडा हो जाये और जब तुम लोग हो तब यह कार्य निश्चित रूप से उचित है। यही गलती है कि बिना समझे जबान दे देता हूँ। अब तुम लोग मेरा सब ठीकठाक कर दो। हमेशा मुसीबत के वक्त मैने तुम लोगो से मदद ली है। यह भी एक मुसीबत ही है। चन्द्रनाथ जैसा है, उस रूप मे नही छपवाया जा सकता। जब तक मै स्वय न देख लूँ तबतक राजी नही हो सकता। अगर तुम लोग अपने मन से यह सोच लो कि यह सामग्री तुम्हारी है तो बात अलग है। मै केवल एक बार दोहराना चाहता हूँ। गिरीन, मैं जो कुछ कह दूँ, जो कुछ करू, अगर मेरे अन्तर को जान सके हो और उस पर विश्वास बना रहे तो ठीक उसी रूप मे काम करना, मेरी जबानी बात, मेरी अण्ड-बण्ड बातों की परवाह मत करना।

गिरीन, अभी तक तुम्हारी पुस्तक पढ नही पाया। बिना पढ़े कैसे अपनी राय दू। भेज देना, पढकर अपनी राय दूगा। गोकि मेरी राय की भी एक अलग कीमत है। मुझे तुमने पुस्तक नही दी थी, इसीलिए नाराज होकर मैने वैसा लिखा था। मैं स्वय जानता हूँ कि तुम लोग मुझे छोटा नही समझते। विश्वास मानो, कभी तुम लोगो को सिखाता था और आज भी सीखा सकता हूँ। यह अहकार की बात नही, सही बात है। मैंने बहुत अध्ययन किया है, वह सब व्यर्थ हो जायगा ? व्यर्थ नही होगा, यही सोचकर इस गर्वोक्ति को लिखा। तुम एम० ए० हो, इसे जानता हूँ, फिर भी यह कहना जो कहना है, इस पर जरा विचार करना। तुम्हारी कुछ रचनाए पढ चुका हूँ। तुम्हारी भाषा कितनी अच्छी हो गयी है, उसका उल्लेख करने पर तुम सकोच करोगे। सोचोगे कि प्रेम की दृष्टि से देखने के कारण ऐसा लिखा है, पर यह बात नही है गिरीन, वास्तव में तुम्हारी भाषा और लिखने की शैली मुझसे कही अधिक अच्छी है। मगर मेरे लिखने का ढग जरा स्वतत्र है — इसीलिए दूसरे ढग का लगता है।

बहरहाल मेरा क्या कर्त्तव्य है, इसका निणर्य करके लिखो। अभी -अभी फणी का एक तार प्राप्त हुआ है। गिरीन, वाकई अजीब मुसीबत में फस गया हूँ। इसके अलावा वे लोग चन्द्रनाथ के पीछे क्यों पडे है ? जबकि इसी बीच मैने 'राम की सुमति' तथा 'पथ निर्देश' जैसी बडी - बडी कहानियाँ भेज चुका हूँ। इन कहानियों को इधर लिखी है, फलत पहले की लिखी हुई कहानियों से जरूर अच्छी होगी, वैशाख के अक में अगर 'पथ निर्देश' को छापेंगे तो उनकी पत्रिका भर जायगी। बहरहाल, ऐसी हालत में क्या करना उचित है, ताकि मुझे लज्जित न होना पडे, सारी बातें समझ देख-सुन लेना। तुम लोग जो कुछ करोगे, उसमें मेरी सहमति रहेगी। सिर्फ सहमति नही, आन्तरिक सहमति रहेगी, पूर्ण हृदय से सहमत रहूँगा। एक क्षण के लिए भी यह विचार मन में नही आयेगा कि —'नही' यह तो ठीक नही हुआ'। ये लोग आजकल चरित्रहीन की माग कर रहे हैं जबकि उतना बडा उपन्यास यमुना जेसी पत्रिका में दो साल से अधिक समय में भी समाप्त नही होगा। इतने दिनों तक क्या लोग धैर्य धारण किये रहेगें, यह संभव नहीं है।

यह पत्र तुम सुरेन के पास भेज देना, इसके साथ ही अपनी राय जरूर लिखना।

बच्चा हुआ सुनकर प्रसन्नता हुई। वश की तरह वश का गौरव बने, यही मेरा आशीर्वाद है। शायद मै यहाँ अधिक दिनों तक नही रह सकूगा। मेरी तबीयत यहाँ किसी भी तरह ठीक नही होगी। डाक्टरों की राय है कि यह देश अब आपको सहन नही हो रहा है। मै भी यही सोच रहा हूँ, कलकत्ते में नौकरी - चाकरी ठीक कर लू तो यहाँ का काम छोडकर चला-आऊँ। अब मुझसे काम नही होता। केवल साहित्य-चर्चा करने की

इच्छा है। भगवान ने शायद इसी धातु से मेरा निर्माण किया है। इसीलिए उसे छोडकर अन्य बेकार के कामों में मन नही लग रहा है, सुविधा भी नहीं हो रही है।

अब जो करना है बाद में बताऊगा। सुना है कि द्विजू बाबू सपादक बनकर गुरुदास बाबू की (जिनकी पुस्तकों की दुकान है।) सहायता से छह रुपये वार्षिक चन्दे वाली मासिक पत्रिका प्रकाशित करने जा रहे है। इन लोगों ने भी मेरे चरित्रहीन के लिए पत्र लिखा है। शायद पारश्रमिक देकर लेना चाहते है, इसी प्रकार की बातों का उल्लेख है। समाजपति का उल्लेख कर चुका हूँ, फिर फणी बाबू का तार कितनी मुसीबत है, बताओ।

तुम लोगो का स्नेही

शरत्

बाजे शिवपुर, हवडा

प्रिय सुरेन,   २० श्रावण, १३३०

सोचा था अपने जन्म दिवस भादों की सक्रान्ति तक किसी भी हालत में पत्र नही लिखूगा। १ वैशाख से एक भी पत्र नहीं लिखा, बुरी तरह ससारी तथा गृहस्थी के पचडे मै फस गया था जिसे अपने लिए बिलकुल व्यर्थ समझा था। सोचा था कि यह चीज नीरवता से कम हो जायेगी, मगर देखा कि इसका दूसरी तरह का अर्थ हो रहा है। कम-से-कम जिसे किसी सूरत से भूल नहीं करना चाहिए था, वही तुम गलत रास्ते की ओर बढ रहे हो। मानो मन के भीतर कुछ मैला जम गया है, दोलन (भागलपुर का एक विपल्वी युवक) के हाथ भेजे गये पत्र से ऐसा आभास लगा। तुम ऐसा सोच सकते हो, आश्चर्य है। सुरेन कैसे कहाँ जाऊ जहाँ कोई उपद्रव नही है, इच्छा के विरुद्ध काम न करना पड़े– आजकल यही सोच रहा हूँ। अब मुझे यह दुनिया अच्छी नही लग रही है। पिछले दो माह से यही बात रह-रहकर मेरे मन में उत्पन्न हो रही है।

तुम्हारे वहाँ भी शान्ति नही है। मेरे जाने पर अशान्ति बढती है जब नही समझता था तब जाता था, अब मेरे कदम नही बढते। समझ में नही आता, कहाँ जाऊ ?

नान—को तो छोड दिया। खद्दर का मोह भी दूर हो गया। सुना है कि तुमने चर्खा कातना बन्द कर दिया है। काश, यह सद्‌बुद्धि पहले आती। दियासलाई की मशीन के सभी लोहे को बेच दो। जग लगे को कब्र में डाल दो या जला दो। ममी बनाकर पूजा करने की अब कोई जरूरत नही है।

कितना कर्ज हुआ ? सुना कि तुम्हारा सर्वस्व चला गया। मैं पहले से ही जानता था। कर्ज चुकाना हम लोगों के लिए आवश्यक हो गया है। इस बात का आनन्द है कि बेवकूफी की, लेकिन वह भी बेवकूफी का आनन्द है। छोटी-मोटी चालाकी नही। एस० आर० दास (कलकत्ता हाईकोर्ट के एडवोकेट जनरल) से हमेशा सी० आर० दास (बैरिस्टर जिन्होने मुल्क की आजादी के लिए तन-मन-धन सब कुछ अर्पित कर दिया था।) बडे रहेगें।

अब जरा साहस की आवस्यकता। चरखा, दियासलाई के कारखाने से तुम्हे मुक्त होना है।

मैंने तो निश्चय किया है कि अब मै पढने-लिखने में मन लगाऊगा, पर इसके पहले मन को जरा आराम देना है। बहुत ही भाराक्रान्त हो उठा है। मजे में हूँ।

तुम्हारा - शरत्

बाजे शिवपुर, हवडा

२५ - ४ - २५

प्रिय सुरेन,

.. तबीयत ठीक नही है । भेलू नही रहा । पिछले गुरुवार के अगले गुरुवार को मै ढाका से वापस आया । तुरत बेलगछिया अस्पताल से उसे मोटर पर घर ले आया । आते ही वह अत्यन्त पीडित हो गया । डाक्टरों ने कहा - एक्युट गैस्ट्रीटिस हुआ है । सात दिन, सात रात, न खाया और न नीद आयी, फिर भी बाद वाले गुरुवार के दिन भोर ६ बजे चल बसा । आखिरी दिन बहुत कष्ट सहता रहा ।

बुधवार के दिन जबरदस्ती कडी दवा पिलाने के लिए चम्मच से उसके मुँह में दवा डालने की कोशिश की, पर उसने नही ली । क्रोधित होकर मुझे काट खाया । उस दिन मेरे गले के पास अपना मुँह रखकर बहुत रोता रहा । भोर के वक्त उसका रोना बन्द हुआ ।

मेरा २४ घटे का साथी इस दुनिया मे केवल उसने मुझे पहचाना था । जब उसने मुझे काटा तब सब लोग डर गये थे । उस वक्त रवि बाबू की पक्तियाँ याद आयी — 'तोमार प्रेमे आघात आछे नाइक अवहेला ।' उसका आघात था, पर अवहेला नही था । उसके पूर्व कभी इतना दर्द मुझे नही मिला है ।

. . डाक्टर वगैरह अनेक मित्र इलाज कर रहे है अर्थात पागल कुत्ते के काटने पर जो करना चाहिए, वही । जो उचित है वह होगा ही । २८ इजेक्शन, जिसमे आज तक १० लग चुके है, अब १८ बाकी रहा । वह भी सपूर्ण होगा । इन्सान को जिन्दा रहना है, कारण योर लाइफ इज टू वैलुएबल । बहरहाल, यह भी देख लिया जाय कि आखिर कहाँ तक क्या होता है ।

तुम्हारा — शरत्

पी ५६६ मनोहर पुकुर

कालीघाट, कलकत्ता

प्रिय सुरेन,

गिरीन के निधन का समाचार मिला । सात्वना इस बात की है कि अब हम लोगों के लिए अधिक दिन नहीं रहा, निष्कृति के दिन आ गये है । दरवाजे के पास खडे है, पल्लों को खुलने में जो देर लगे । उस दिन ही तो तुम, मैं और गिरीन एक साथ बैठकर भोजन करते रहे पन्द्रह दिन भी नहीं हुए और आज वह नही है । सोचता हूँ मेरा शुभ दिन कब आयेगा । बच जाऊगा ।

'नाट मूर' आज दिया बाद में सूचित करूगा । तुम्हें उस दिन कहा था, गिरीन, एक--आध साल और जीवित रहेगा । किन्तु एक—आध साल भी नही चला ।

५ भाद्रपद,१३४१

तुम्हे एक रजिस्टर्ड पत्र ५-६ दिन पूर्व दिया था, आज तक उसका उत्तर नही मिला । यह देखकर काफी आश्चर्य और चिन्तित हूँ । वापस आने के बात से मैं बुखार से पीडित हूँ । पत्र पाते ही उत्तर देना ।

सत्येन्द्रनाथ गंगोपाध्याय के नाम

प्रिय सत्य,

कल तुम्हारा पत्र पाकर आशान्वित हुआ। इधर नाना मतामत के घात -- प्रतिघात से मेरी हालत नाजुक हो गयी है। अभी--अभी टेलिफोन से सूचना मिली कि आज रात को एक और डाक्टर आयेंगे। नये ढग से पेशाव की जाच होगी। इसके बाद मेरी आँखों के पानी की जाच होगी। कल दोपहर को एक इजेश्क्शन हो गया है, आज दोबार कैलशियम का इजेक्शन लगाया जायगा। इसके पहले दो बार बारह कुनैनों को कोंचा गया है। अव शरीर में कोंचने लायक स्थान शेष नहीं है, शायद आँख मे कोचेंगे। ऊपर से अनेक शुभार्थियो का समूह आ रहा है। कोई कह रहा हे -- इन कमबख्त डाक्टरों को भगा दीजिए, कविराज को बुलाइये, वही ठीक रहेगा। कोई कह रहा है, वे लोग क्या करेंगे, उसके बदले भवानीपुर के साह डाक्टर को बुलाइये, वे दो छोट - छोटे ग्लोब देंगे, उसी से सात दिन मे आपको आराम हो जायेगा। परसो 'वसुमती' (पत्रिका) के सतीश मुखर्जी आये थे। उन्होंने कहा-- "दादा, आपको दरअसल पीलिया की बीमारी हुई है। मैं एक माला भेज दूगा। आप उसे गले में पहन लीजिएगा। रोग ज्यां--ज्यां दूर होगा त्यों - त्यो माला लम्बी होती हुई पैर तक पहुँचने के बाद अपने आप टूटकर गिर जायेगी। स्थान परिर्वतन की सलाह अनेक लोगों ने दी है।

रवि बाबू की एक कविता याद आ रही है --

"नानान् छापेर जमलो शीशी
नाना मापेर कौटा हलो जतो
व्याधिर चेये आधि हलो बडो
डाक्टरेरा बल्ले तखन हाओया बदल करो।"

जबकि मैं सर्दी से हमेशा घबड़ाता हूँ। देवघर की सनसनाती हवाओं की याद आते ही मेरी यात्रा का उत्साह जीरो डिग्री पर उतर आता है। मैं सोचता हूँ कि इससे अच्छा तो मेरे गाँव का डाक्टर रमेश ही है। वे रोग भले ही ठीक नही कर सकते, इतना उपद्रव भी नही करते। एक बात और, ६१ वर्ष उम्र की उपेक्षा उचित नही है, इसे सविनय सश्रद्धा के साथ इस समय मान लेना उचित है।

शेषेर से दिन मन
करो रे स्मरण -- इत्यादि

इस पद को आँखे बन्द कर भक्ति के साथ आवृत्ति करते हुए चुप रहना ही बेहतर है। कम से कम यह शीर्ण देह कुछ दिनों तक विश्राम कर लेगा। कथरी ओढकर मन ही मन जपूँगा -- हे मेरे शाम के वक्त के साथी ६६° बुखार, तुम्हे विचलित करने का व्यर्थ प्रयत्न नही करूगा, तुम जरा जल्दी से अपना काम निपटा लो। मैं हमेशा से वैरागी हूँ किस बात की नालिश करूगा। बाबा वैद्यनाथ धाम के यहाँ निवास करने का सकल्प कर सकूगा या नही, यह कह नही सकता। अगर यह सकल्प बना रहा तो यही भरोसा है कि अभी तक तुम वहाँ मौजूद हो। सूचना दूगा। मेरा प्यार लेना।

इति ८ पौष, १३४३। शरत्

श्री हरिदास चट्टोपाध्याय के नाम

प्रिय वरेषु,

आपकी चिट्ठी और 'विराज वहू' की पाँच प्रतियाँ प्राप्त हुई, धन्यवाद।

मेरा स्वास्थ्य खराब है और अब लिखने की इच्छा नही होती। लिखने पर रचना अच्छी नहीं बनती। 'पण्डित महाशय' इसी स्थिति में लिखा गया है। शायद अच्छा नही बन पाए। बहरहाल, जब कुछ छप गया है तब पूरा न छापने पर लोग निन्दा करेगे।

दस–बारह दिन हुए मैंने डेरा बदला है जबकि इस डेरे का वास्तविक पता क्या है, आज तक ज्ञात नही कर सका, इसीलिए लिख नही सका। अगली डाक मे सूचित करूंगा। आप मेरे पुराने पते पर पत्र दे।

पत्र के साथ 'राम की सुमति' आदि की रसीद भेज रहा हूँ। मैं बहुत आलसी आदमी हूँ, इसीलिए देर हो गयी। अन्यथा न समझें।

आपका

श्री शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

५४, ३६ न० स्ट्रीट, रगून

१५-११-१५

प्रियवरेषु,

आपका पत्र लिखा था। बुखार हो जाने के कारण जवाब नही दे सका था। अब ठीक हूँ। विजया (दशहरा) की शुभकामनाए ग्रहण करें।

'श्रीकान्त की भ्रमण कहानी' सचमुच भारतवर्ष मे छापने योग्य है ऐसा मैंने नही समझा था – अब भी नही समझता। पर यह जरूर सोचा था कि कही कोई छाप दे। खासकर उसके प्रारभ में जो श्लेष थे, वे सब किसी भी दशा में आपकी पत्रिका में स्थान नही पा सकते थे, यह जानी हुई बात हे। लेकिन किसी दूसरी पत्रिका में शायद यह नही हो सकती थी – इसका भरोसा था। इसी वजह से आपके मार्फत भेजा। अगर कहें तो और लिखू और भी बहुत सी बातें कहने को है, पर व्यक्तिगत श्लेष विद्रूप यही तक। आखिर तक सच बातें कही जायेगी।

मेरा नाम किसी तरह से भी प्रकट न होने पाये। यहाँ तक कि आपके और उपेन बाबू के अलावा (उसकी जबान नही खुलती–चाहे अच्छा हो या बुरा हो) अन्य कोई न जाने तो अच्छा होगा। वह क्या है? हाँ, श्रीकान्त की आत्मकथा से मेरा कुछ सम्बन्ध तो रहेगा ही, इसके अलावा वह भ्रमण–कहानी है, पर 'मैं' मै नही हूँ। अमुक से हाथ मिलाया है, अमुक से सटकर बैठा यह सब नही है।

तीन महीने का धक्का तीस साल का समय लेने जा रहा है।[1] कितना नीरस और है। आप दुखी न हो, यह न केवल मेरी राय है बल्कि अनेक लोगो की है। महाराजा (वर्धमान) के लेख में एक प्रतिशत आत्मम्भरिता नही है। इनमें 'मैं' भी जिस प्रकार है, उसी प्रकार 'तुम' भी है, 'ये' 'वे' भी छूटा नही है; रवि बाबू ने भी अपनी आत्म कहानी लिखी है। लेकिन अपने को किस प्रकार सबसे पीछे रखने की सफल चेष्टा

---

१ उन दिनों 'भारतवर्ष' पत्रिका में कई लोगों के यात्रा विवरण छप रहे थे। इसी समस्या पर 'श्रीकान्त' में व्यग्य किया गया था। (देखिये, श्रीकान्त का परित्यक्त पृष्ठ) यहाँ देव प्रसाद सर्वाधिकारी के लेख पर कटाक्ष किया गया है 'योरोप मे तीन महीने' नामक धारावाहिक यात्रा विवरण एक अर्से तक छपता रहा। वर्धमान महाराज का 'योरोप यात्रा' भी छपता रहा।

की है। जो लिखना नही जानते अर्थात् जिनकी रचनाओं की परख नही हुई है, वे चाहे कितने ही बड़े आदमी क्यों न हो, बगैर जाने उनके लम्बे लेख छापना महान् कष्टदायक है। इन लोगों का ख्याल है कि सारी बातें कहना चाहिए यानी जो देखते है, जो सुनते है, जो होता है, सारी बातें पाठकों को दिखाना–सुनाना चाहिए। जो चित्र नही बनाना जानते, वे जिस प्रकार हाथ में तूलिका लेते ही सोचते है कि जो कुछ दिखाई पड रहा है, सब चित्रित कर डालें। लेकिन लम्बे अनुभव के बाद वही व्यक्ति अनुभव करता है कि बहुत सी बडी चीजे छोड देनी पडती है। बहुत कुछ कहने का लोभ सवरण करना पडता है तब चित्र बनता है। बोलने या अकन करने से न बोलना या न अकन करना अत्यन्त कठिन काम है तभी वास्तव में बोलना और अकन करना होता है,

वाह ! यह तो मै आपको लेक्चर देने लगा। माफ करें, यह सब आप मुझसे अधिक जानते है, यह मै जानता हूँ। बहरहाल, श्रीकान्त पढकर लोग किस तरह छी–छी करते है, कृपा कर मुझे लिखें। उतने दिनों तक श्रीकान्त की एक भी पक्ति नहीं लिखूगा।

मै पुन एक कहानी लिख रहा हूँ। अच्छी होगी। कामेडी होगी, ट्रेजडी नही। कितनी जल्दी समाप्त होती है, देखू। इस कहानी का भाव गोरा के परेश बाबू से लिया गया है, अर्थात् अपने में कहने के लिए अनुकरण। पर पकड नही सकते। सामाजिक पारिवारिक कहानी है। मेरे मन में उत्साह है। अच्छी होगी, पर क्या से क्या हो जाय–कहा नही जा सकता।

प्रमथ चला गया क्या ? काफी दिनों से उसका पत्र नही आ रहा है। वह स्वस्थ हो रहा है, यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है। सच तो यह है कि इस तरह के मित्र नही होते। मित्र का यही रूप होना चाहिए। अगर वह बच नही सका तो मेरे मित्र का क्षेत्र वास्तव में खाली हो जाएगा।

आपके पिता जी की क्या हाल है ? कैसे है आजकल ? 'यमुना' क्या आजकल चल रही है ? फणी ने पुस्तकें प्रकाशित की है ? वह कहा करता था कि आपकी एक-एक कहानी मै ३०-४० बार पढकर कठस्थ कर चुका हूँ। आपकी रचना मेरा आदर्श है और ऐसी है गुरुभक्ति कि आज तक एक भी पुस्तक नही भेजी। मै उसकी सारी रचनाएँ पढ चुका हूँ। उसकी रचनाएँ कैसी है, मुझसे अधिक कोई नही जानता। गोकि विभिन्न कारणों से अब मै उससे सम्पर्क नही रखता। जाने दीजिए, परचर्चा करने से क्या लाभ।

पिछले महीने की 'भारतवर्ष' पत्रिका अच्छी नहीं बन पडी। सभी महिला लेखिकाओ की रचनाए थीं। नया प्रयोग है, पर अर्थ की दृष्टि से निम्न कोटि की है। यह तो होना ही था, पर एक लाभ यह हुआ है कि फाइल की मोटाई कम हो गयी है।

आपने मुझे चैतन्य चरितामृत पढने के लिए दिया था, उसे लौटा नही सका। आते समय भूल गया और मेरे साथ यहाँ आ गया। पुलिस ने तलाशी में इस तरह उलट–पुलट दिया है कि अब वह बिक्री के लायक भी नही है। मलाट में दाग लग गये हैं। पुस्तकें दूसरे की हैं, कीमती भी है, मै बडा लज्जित हूँ। क्या करु कुछ समझ मे नही आता। इसके अलावा आपने कुछ वैष्णव ग्रंथ पढने के लिए दिया था। इन पुस्तकों को कितनी बार पढ चुका हूँ, बता नही सकता। इन्हें वापस करना था। मैंने आपका काफी नुकसान किया है, इन पुस्तकों की कीमत पूछने की इच्छा नही हो रही है। कृपया इन पुस्तकों को मुझे दान में दे दीजिए। आपका ढेरो आशीर्वाद दूगा और भविष्य में नित्य इन बातों को स्मरण कर लज्जित नहीं होऊगा।

उपेन्द्र बाबू, जलधर दादा को मेरी याद दिला दे । एक अर्सा पहले जलधर दादा का पत्र मिला था, उसका जवाब दिया था या नही, स्मरण नही है । जवाब की प्रतीक्षा मे वे बैठे नही है, यह भी जानता हूँ ।

आप लोगो का

श्रीशरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

५४,३६ न० स्ट्रीट, रगून

७- २- १५

प्रियवरेषु,

आपका पत्र यथा समय मिला । वैष्णव ग्रथो के बारे मे आपने जो लिखा है, वह आपकी उदारता हे । मै भला राजी क्यो न होऊगा ?

नयी कहानी आशा है कि ठीक समय पर भेज दूगा । अगर न भेज सका तो एक छोटी कहानी भेज दूगा । कारण यह है कि मै असम्पूर्ण कहानी भेजना नही चाहता और उसे सम्पूर्ण करने का भरोसा देकर छापने को भी नही कह सकता । पर चन्द्रकान्त की कहानी स्वतत्र है । इस कहानी को सम्पादक महोदय कृपा करके नितान्त उपेक्षा न करे । मुझे आशा है कि कम से कम जो रचनाएं छपती है और छप रही है, यह उनसे बहुत नीचे आसन पाने योग्य नही है । अनेक सामाजिक इतिहास इसके भविष्य के गर्भ मे प्रच्छन्न है । मेरी बहुतेरी चेष्टा और यत्न की वस्तु कम से कम मित्रो से तो कुछ कद्र पाने के योग्य होगी ही । हा, शुरुआत जरूर से तो खराब है, पर अच्छी चीजे प्रारम्भ मे खराब होती है, ऐसा दिखाई देता है । यही हे मेरी कैफियत । क्या इस बार छपेगी ? हाथ से लिखे अक्षरो को छापे की अक्षरों में देखने की आशा से ही उसे भेजा है, यह बात भूमिका मे लिखी है ।

श्रीयुक्त योगीन्द्र नाथ सरकार द्वारा हस्ताक्षरित एक यात्रा 'समुद्रवक्ष' लेख आपकी फाइल में काफी दिनों से पडा हुआ है । मुझे भी स्मरण आ रहा है कि उसे मैने देखा था । वे बराबर तगादा करते हुए माग रहे है । उन्होंने कहा है कि पत्र लिखने पर भी आपके यहाँ से जवाब नही मिला ।

उस लेख की तलाश करके वापस भेज दे तो अच्छा हो । उनका विश्वास है कि लेख काफी अच्छा (मैने पढा नही हैं) है । वापस पाने पर वे किसी अन्य पत्रिका को प्रकाशन के लिए भेजेंगे, इसलिए वापस चाहते है ।

और एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ । जरा सोचकर जवाब देने पर मेरा भला होगा । अपने अगले पत्र इस प्रश्न उत्तर का अवश्य दें, यह मेरा अनुरोध है । मेरी पुस्तकें बाजार में कैसी बिकती है, इस बारे मे मुझे कोई जानकारी नही हैं । मान लीजिए मेरी छ पुस्तकें (उपन्यास) जिनकी कीमत सवा रुपये हों, अगर उसे छापा और बेचा जाय, सब खर्च देने के बाद दुकानदार मुझे २०रुपये मासिक देता रहे तो क्या उसके लिए कठिन कार्य होगा ? क्या इससे उसे हानि होगी ।

बाकी बातें अगले पत्र मे । डाक छूटने मे देरी नही है ।

आपका

शरत्

५४, ३६ न० स्ट्रीट, रगून

करकमलेषु,

आपका पत्र पाकर समाचारों से अवगत हुआ । 'मझली दीदी' की छपाई बहुत उत्तम हुई है । सुन्दर कागज, चमत्कार छपाई । यह तो हुआ किन्तु अभागी की जिल्दसाजी काफी सस्ती है । यहाँ के लोग विश्वास नही कर रहे हैं कि इससे आपको फायदा कितना होगा । पुस्तक जो है सो है, सस्ती कीमत के कारण इसकी बिक्री अच्छी होगी, इसमें संदेह नहीं है। भगवान आपका भला करें-इससे दोनों पक्षों का भला होगा, रोजगार की बात छोड देने पर भी। ....

आपका काम और आपकी दुकान को प्रमथ अपना समझता है । मैं भी वही समझता हूँ । मैं आपका सुनाम और दुर्नाम दोनों ही सुनता आया हूँ । मगर आपके शत्रुओं ने भी कभी यह नही कहा कि हरिदास बाबू रुपये-पैसे के मामले में बेईमान हैं । इस बात को लोग मानते है कि यह व्यक्ति बहुत धूर्त है, पक्का रोजगारी है, पर दूसरे की चीज या रकम ठगता नही । जबकि यह अपवाद देना कितना सहज है, इसे मैं अच्छी तरह से जानता हूँ । आपको जब यह दोष किसी ने नहीं दिया, आपके शत्रु भी जब रुपये-पैसे के मामले में आपका विश्वास करते है, और कहते हैं कि हरिदास किसी का यथार्थ प्राप्त कभी आत्मसात् नही करते तब मै आपका मित्र होकर अकुण्ठित रूप से आपका विश्वास करुगा ही ।

बहरहाल, मेरी सारी जिम्मेदारी आप पर रही । जो इच्छा हो, वही करें । आपकी राय लिए बिना मैं कोई काम नही करूगा । मेरी पुस्तकें आप अपनी समझकर अपनी रुचि और इच्छा के अनुसार प्रकाशित कर सकते हैं । अगर इसमें कभी कोई गलती हो गयी तो यही सोचूँगा कि पक्का रोजगारी होते हुए भी हरिदास बाबू ने गल्ती की जोड-तोड ठीक से नहीं कर सके । यही तक । मैं जानता हूँ कि आप खाँटी आदमी हैं । पुरुषों के लिए इससे बढ़कर अन्य कोई सुनाम है या नही, यह नहीं जानता । मैं आशीर्वाद देता हूँ कि आपका सुनाम या दुनार्म चाहे जितना भी हो, इस बात को लोग हमेशा कहते रहें कि यह आदमी खाँटी रहा । खैर, भविष्य मे मेरी लिखी पुस्तकों के बारे में कोई चर्चा नही करुगा ।

एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ । यहाँ मेरे एक मित्र है । इन्होंने युद्ध के बारे मे एक पुस्तक से भाव लेकर एक उपन्यास लिखा है । मैने देखी है उसमें दूष्यता नहीं है, बल्कि हमारे महामहिम ब्रिटिश राज के बारे में एक राजभक्त लेखक जिस ढग से लिख सकता है, उसी तरह लिखा है । दोष-गुण प्रत्येक राज-शासन में रहते है, पर हमारे राजा दूसरे के सकट को अपने माथे लेकर इस युद्ध में इतना बडा स्वार्थ त्याग करते हुए, केवल दूसरे की रक्षा के लिए छोटे राष्ट्र को अन्याय से छुटकारा दिलाने को इस युद्ध में उतर पडे है—इस बारे में किसी को सदेह करने की गुजाइश नही है । यह कहानी बेलजियम की लड़ाई पर लिखी गयी है । पुस्तक अच्छी बन पडी है । एक वर्ग के पाठक जो इस तरह की सामग्री पढना पसन्द करते हैं, उन्हें यह कृति विशेष रूप से पसन्द आयेगी । उपन्यास में जो कुछ रहना चाहिए और जिसे लेकर लिखा जाना चाहिए, सब है । क्या आठ आने की सीरिज में नही छापा जा सकता ? अगर आपकी इच्छा हो तो भेज दूँ, आप पढ लें, यदि निर्दोष लगे तो प्रकाशित कर दें, इससे लेखक का भला होगा । कहिये, भेज दूँ ? क्या इस तरह की पुस्तक चलेगी ? उत्तर व्यवसायिक दृष्टि से दीजिएगा । मैं इसके लिए दबाव नहीं डाल रहा हूँ और यह भी जानता हूँ कि आप रोजगार की दृष्टि से किसी का अनुरोध स्वीकार नहीं करते तथा यह भी जानता हूँ कि मेरी दृष्टि से जिसमे दोष नही है, शायद उसमें सचमुच दोष हो । इस प्रकार की पुस्तकें काफी सोच समझ कर ही छापना उचित है ।

उत्तर निरपेक्ष दीजिएगा। क्योंकि दोष रहने पर दोनों पक्षों का अमगल होगा। अब जो इच्छा हो, लिखियेगा। समाचार देते रहें।

आपका लोगों का
शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

५४, ३६ न० स्ट्रीट, रगून
२२-२-१६

करकमलेषु,

बहुत दिनो से आपका पत्र नही मिला। आशा है कि सब ठीक ठाक है। भाई, इस बार मै बुरी तरह गिर गया हूँ। सुदूर से प्रमथ भाई की हवा लगी कि क्या हुआ, कुछ समझ नही पा रहा हूँ। यह और भी खराब है। सुनता हूँ कि बर्मा की बीमारी है। इस मुल्क से न हटने पर ठीक नही होता। इसलिए दो मे से एक अनिवार्य हो गया है। पता नही, भगवान जाने। डर लगता है शायद जिन्दगी भर के लिए पगु न हो जाऊ। इस सभावना को स्मरण नही कर पा रहा हूँ जिसे यथार्थ भय कहते है यानी पेट का भात कही चावल न बन जाये, वही हो रहा है। डिसपेप्सिया धीरे-धीरे बढ रही है। . . .

इसी मानसिक चचलता के कारण कुछ काम करने की इच्छा नही हो रही है। जलधर को यह कहकर 'समाज-धर्म का मूल्य' पढने के लिए दे। इसकी फेयर कापी इतना ही कर सका था। बाकी हिस्सा फेयर करके बाद मे भेजूगा। इसके बाद जो कुछ लिखने का विचार किया है, वह दूसरे देशों के सामाजिक नियमो से अपने देश के सामाजिक नियम-कानून के साथ एक तुलनात्मक आलोचना के सिवा कुछ भी नही है। इसलिए उधर किसी प्रकार व्यक्तिगत आलोचना का डर नही। पता नही, इस निबन्ध को 'भारतवर्ष' मे छापने की उनकी इच्छा होगी या नही। अगर नही होती है तो वापस भेज दीजिएगा। मै धीरे-धीरे लिखकर एक पुस्तक तैयार कर दूगा और भविष्य मे व्यक्तिगत अश काटकर छपवाने की कोशिश करूगा। इस समाजतत्त्व को लेकर एक अर्से तक अध्ययन किया है। बहुत-सी बाते कहने के लिए मन तडफडाता रहा। लेकिन इन बातो को सज्जनता के साथ कैसे व्यक्त करूँ, समझ नही पा रहा था।

आप इस लेख को पढकर यह सुझाव दे सकते हैं कि इसमें कौन-सा अश परिवर्तन कर दिया जाय ताकि किसी को भी नागवार न लगे, पर सारी बातें कह भी दिया जाय। सुझाव के अनुसार लेख मे सशोधन कर दूगा। जलधर दादा को बहुत आशा बँधाई थी, लेकिन कहानी सम्पूर्ण रूप से मानसिक स्थिरता पर निर्भर करता है। अगर मेरा भाग्य चिरकाल के लिए फूट गया है और इसे ठीक से जान जाऊं तो धीरे-धीरे इस महादुःख को शायद सह सकूँगा। . . .

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

शिवपुर
२६-६-१६

भाई,

मेरे दर्द ने मुझे कुबड़ा बना दिया। कल पानी में भीगने के कारण दर्द काफी बढ गया। ....

कल मैने कहा था कि एक सलाह करनी है। विवरण न जानने के कारण सुविधा नही हुई। यह सब बाते पत्र मे लिखा नही जा सकता। लेकिन अब वक्त नही रहा, पत्र में ही लिख रहा हूँ। जवाब दीजिएगा। इधर ३-४ दिनो तक मुलाकात नही होगी।

शायद आपको मालूम होगा कि मेरी भाजी का विवाह है। इस शुक्रवार के बाद अगले शुक्रवार को। उसकी बला मुझ पर है। मेरी बला आप पर है। आज तक मैने आपको यह नही बताया कि मै जातिच्युत हूँ। शुभ कार्य वाले दिन में मेरा जाना उचित नही है। खैर, इसके लिए मै चिन्तित नही हूँ। पर मुझे रुपये देने पडेंगे, लेकिन मै वहाँ न जाऊ, यही उन लोगो की दिली ख्वाहिश है। मुझे चार सौ रुपये चाहिए। यह रकम मुझे चाहिए। आपसे उधार लेने मे हिचक इसलिए है कि मेरी शारीरिक स्थिति ठीक नही है। आपका जो कर्ज पहले का है, पता नही कब तक चुकता हो, ऊपर से यह चुकता करना सभव भी है और असभव भी। शरीर ठीक रहता तो अकडकर माँगता। कौन सा उपाय किया जाय कि आपका नुकसान न हो, इसे आप ठीक कर लें। मै वही करूगा। मैं जानता हूँ कि वही सबसे अच्छा होगा।

मेरे न आने तक कोई उपाय नही हो सकता तो इसे लिख दीजिएगा। कल मै किराये की गाडी से आ जाऊगा। अगर इसकी जरूरत न समझे तो खोका [1] के हाथ रकम दे दें और सावधानी से लाने की हिदायत दे दीजिएगा। एक लिफाफे में बन्द कर दीजिएगा।

क्या होगा पुस्तक बेच देने पर काम पूरा हो जायेगा ? मेरी इच्छा नही है कि सरकार[2] से कहूँ। जो हो, सूचित कीजिएगा।

आपका
शरत्

बाजे शिवपुर
२१ चैत्र, १३२५

भाई,

अभी बेलगछिया अस्पताल जा रहा हूँ। मण्टू [3] के लिए इतजार करना होगा। कही इतनी दूर आकर उसे वापस न जाना पडे। उसे एण्डरसन् साहब के नाम पत्र देना है — शायद वे कुछ कर सके।.

कल घर आने पर पत्र मिला। बहुत दिनों से रुपनारायण नदी के किनारे गिट्टी का मकान बनवाने की इच्छा थी। खबर मिली कि आज जाने पर कुछ हो सकता है। जमीन की कीमत ११०० रुपये है। इतनी लम्बी रकम बैक से निकालने में माया लग रही है। इसके अलावा मकान बनवाने के लिए रकम की कमी पड जायेगी। आपसे निवेदन है कि उस दिन के रुपये से मुझे ७०० रुपये दें और अपनी ओर से ४०० रुपये उधार दें तो सुविधा हो जाय। अगर ४०० रुपये देने में असुविधा हो तो क्या कर सकता हूँ, इसीलिए इन्दु के हाथ ४०० रुपये का एक कास चेक भेज रहा हूँ। इच्छा हो तो लीजिए। मगर रुपये भेज दीजिएगा। हस्ताक्षर ठीक है, वापस नही होगा।

आशीर्वादक
शरत् दा

---

१ छोटा भाई प्रकाश,
२ प्रकाशक - एम० सी० सरकार,
३ श्री दिलीप कुमार राय।

बाजे शिवपुर
११- ८-१६

परम कल्याणवरेषु ,

उस दिन रात ग्रथावली प्रकाशन की जो योजना बनी थी, उसे छोड़ दिया, क्योकि सोचकर देखा कि यह घृणित कार्य है, जिसके लिए पिछले एक साल से सतीश बाबू बराबर आ रहे हैं, यह तो खैर कोई बात नही । किन्तु अन्यत्र प्रकाशन के लिए देना अत्यन्त घृणित और नीचता का काम है । जिसे नीचता समझता हूँ, उसे नही करुगा ।

गोकि इस बात को मैने किसी से नही कही और न कहूँगा । आशा है आप भी किसी ने नही कहेंगे ।

सतीश बाबू आज सवेरे आये थे । मैने स्वीकृति नही दी, पर अपने पिता की मौत के बाद से इतने मायूस हो गये है कि सुनने पर क्लेश होता है । आपके आश्रय में मेरा काम किसी सूरत से चल जाता है । आज तक यही सोचता रहा । उन्होंने यह भी कहा कि तीन साल में वे २५-३० हजार रुपये दे सकते है । यह न तो असभव है और न सभव । अगर यह सभव होता है तो मेरी पश्चिम यात्रा हो सकती है । बहुत दिनों से उधर जाने के लिए मेरा मन चचल है ।

अगले गुरुवार या शुक्रवार को फाइनल करना है । बराबर लेखन के भरोसे खाना--पीना अच्छा नही है । यह भी सोचता हूँ कि ये लोग जितनी रकम देने को तैयार है, उतनी तो वर्तमान स्थिति में आजीवन नहीं मिल सकती । बशर्ते जीवन की मीयाद और दस वर्ष मान लिया जाय । मुमकिन है कि इससे आपकी बिक्री पर कुछ असर हो सकता है और यह भी सभव है कि न भी हो, क्योंकि सस्ते सस्करण वे ही लोग खरीदते है जो कभी पुस्तक नही खरीदते । अगर चलने - फिरने लायक होता तो एक बार चला जाता । मेरा आशीर्वाद लें ।

शरत् दा

श्री सुधीरचन्द्र सरकार के नाम

१४ मार्च, १६१६

परम कल्याणवरेषु श्रीमान् सुधीरचन्द्र सरकार,

निरापद दीर्घजीवनेषु

कल तुम्हारा तार और इसके आगे वाले दिन पत्र मिला । . . . सुना होगा मैं प्राय पगु हो गया हूँ । कहा जा सकता है कि पैदल चल नही पाता । लेकिन पढने - लिखने का काम पहले जैसा करता हूँ । मन इतना विमर्ष है कि किसी काम में हाथ लगाने की इच्छा नही होती -लगाने पर भी वह अच्छा नही होता । जितनी रचनाए पहले लिखी थी अर्थात आधा, तिहाई, चौथाई, ऐसी बहुत सी रचनाए है । इन्हे किसी तरह से जोडतोड दे रहा हूँ। चरित्रहीन के बारे में ऐसा नही करना चाहता, इसीलिए इतने दिनो तक दो अध्याय भेज सका था । इस बार तुम मेरे निकट बैठकर सब ठीक कर लेना । मैं कविराजी चिकित्सा के लिए कलकत्ता आ रहा हूँ । एक साल रहूँगा । ११ अप्रैल को रवाना होऊगा, क्योंकि इसके पहले का टिकट किसी सूरत से नही मिला । आजकल सप्ताह में एक, कभी डेढ सप्ताह में एक जहाज छूटता है । ... आज डेढ माह से आफिस वगैरह बन्द है । किसी सूरत से टिका हुआ हूँ । ... .

श्रीमती लीलारानी गंगोपाध्याय के नाम

बाजे शिवपुर, हवडा
२४ - ७ - १६

परम कल्याणीयासु,

आपका पत्र एव 'मिलन' [1] पूरा पढ गया । मेरी पुस्तक अच्छी लगी है, ग्रन्थकार के लिए इससे बढकर दूसरा पुरस्कार और क्या हो सकता है ? आपने भक्ति का अधिकार मागा है । भक्ति जहाँ केवल विनय नहीं है, सच्ची वस्तु है, वहाँ यह अधिकार अवश्य है । पर भक्ति किसकी करते है, इस पर भी जरा विचार करना आवश्यक है ।

आपसे मेरा परिचय नहीं है, इसलिए अधिक प्रश्न करना शोभा नही देता, फिर भी पूछने की इच्छा होती है जब आप ब्राह्म-समाजी नही हैं तब विधवा--विवाह क्यों करना चाहती है ?

यह केवल क्षणिक भर का ख्याल है या हेम और गुणी की हालत देखकर करुणा उत्पन्न हो गयी है । इसमें क्या आपको वास्तविक आपत्ति नही है ? अगर यह है और मिलन हो जाने पर मन प्रसन्न हो जाय -- अगर यह हो जाय तो इस मिलन का कोई विशेष मूल्य है, ऐसा मै नही समझता ।

पर रचना की दृष्टि से रचना की अच्छाई-बुराई के विचार से इस रचना का मूल्य निश्चित करना, इस पत्र में सभव नही है ।

मेरी सारी पुस्तके आपने पढी है कि नही, नही जानता । अगर पढी है तो कम से कम यह बात निश्चित देखी होगी कि कितने ही बडे और सुन्दर जीवन समाज में विधवा-विवाह न होने के कारण हमेशा के लिए व्यर्थ और निष्फल हो गये है । उससे अधिक अपने बारे में कुछ नही कहना है ।

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर, हवडा
२६ - ७ - १९१६

परम कल्याणीयासु,

आपका पत्र मिला । मुझे पत्र लिखकर उत्तर की आशा करना अत्यन्त दुराशा है । मेरी इस सुन्दर आदत की खबर आपको कैसे लग गयी, यही सोचा रहा हूँ । कारण यह है, बात इतनी सच्ची है कि इसका प्रतिवाद करना मेरे लिए बिलकुल असम्भव है । सचमुच ही लोगों को मुझसे जवाब नही मिलता । मैं बहुत आलसी हूं । फिर आपको दो - दो चिट्ठियाँ कैसे लिखी, इसे सोचने पर देखता हूँ कि आपने भक्ति का जो दावा किया है, उसी ने इस असभव को सभव किया है । वस्तुत यह वस्तु मनुष्य से न जाने कितने विचित्र कार्य करवा लेती है । मुझे जो बडे भाई की तरह भक्ति करती है, इसी से पत्र लिख रहा हूँ, उसी के प्रश्नों का उत्तर दे रहा हूँ, इसके अन्दर कितना विशाल गर्व प्रच्छन्न है ।

आपको कुछ सिखाया नही, आँखो से कभी देखा नही । किसकी कन्या, किसकी पत्नी क्या परिचय है, कुछ भी नही जानता, पर अपने को जब मेरी छोटी बहन कह रही

---

१ श्रीमती लीलारानी लिखित पुस्तक

है – यह सौभाग्य कदाचित् ही किसी को मिलता है तब यह जिसके भाग्य में होता है, उस पर एक प्रकार का नशा छा जाता है।

मुझे न जानते हुए और एक हिन्दू घर की बहू होकर भी आपने मुझे निस्सकोच पत्र लिखा। यह बात सच है कि ऐसा सबसे नही हो सकता, लेकिन मैं भी निस्सकोच पत्र लिख सकता हूँ, प्रश्न कर सकता हूँ, यह आशका आपके मन मे नही थी, इसीलिए लिख सकी है। होती तो नही लिख सकती थी। मेरे प्रति इतना विश्वास आपका मेरे प्रति था, अन्यथा मेरा इतनी पुस्तके लिखना व्यर्थ होता।

ठीक है। छोटी बहन की तरह तुम्हे जब इच्छा हो मुझे पत्र लिखना। मेरी वास्तविक शिष्या और सहोदरा से अधिक एक व्यक्ति है, उसका नाम है – निरुपमा। आज के साहित्य - जगत में शायद वह आपसे अपरिचित नहीं है। 'दीदी', 'अन्नपूर्णा का मदिर' 'विधिलिपि' आदि उसकी लिखी पुस्तकें है। यही लडकी जब सोलह वर्ष की उम्र में विधवा होकर बुत बन गयी तब मैने उसे बार-बार समझाया कि "विधवा होना ही नारी जीवन की चरम हानि है और सधवा होना ही चरम सार्थकता है, इन दोनो में कोई भी सत्य नही है।" उन्ही दिनों से उसे समग्र चित्त से साहित्य मे नियोजित कर दिया। उसकी रचनाओं का सशोधन करता और हाथ पकडकर लिखना सिखाता था – इसीलिए आज वह आदमी बनी है, केवल नारी होकर नही।

यह मेरे लिए गर्व की वस्तु है।

तुमने लिखा है – जिसने पति को जाना नही, पहचाना नही, ऐसी बाल - विधवा में क्या दोष है ? तुम्हारे मुख से इतनी बात की बहुत कीमत है। अगर मेरी रचनाए एक भी बाल - विधवा के प्रति तुम्हारे अन्दर करुणा उत्पन्न कर सकी तो मुझे बहुत बडा पुरस्कार मिला।

अब तुम्हारी रचनाओं के बारे में कहूँगा। आजकल बेशुमार उपन्यास प्रकाशित हो रहे हैं। उनमे दो चीजों पर ध्यान दिया है। प्रथम पुरुषों की रचनाएँ प्राय अन्त सारहीन और अपाठ्य है। यही नही, उनमे पन्द्रह आना दूसरों की चुरायी हुई है। इसके लिए वे लज्जित नही है। पुस्तकों के बिक जाने को ही वे काफी समझते हैं।

दूसरी बात यह देखी है कि महिलाओ की रचनाओं मे और चाहे जो हो, कम से कम वे दूसरो की चुरायी हुई नही है। उन्होंने अपने छोटे से परिवार में जो कुछ देखा है, अपने जीवन मे यथार्थ का जो अनुभव किया है, उसे ही कल्पना द्वारा प्रकट किया है, अतएव उनमें कृत्रिमता भी अधिक नही है।

तुम्हारी रचना में जो सत्साहस और सरलता है, उसने मुझे मुग्ध किया है। रचना बहुत अच्छी न होने पर भी अपनी अकृत्रिमता से ही सुन्दर बन गयी है। मुझसे परिशिष्ट लिखवाने में समय नष्ट मत करवाओ, स्वतत्र रूप से पुस्तक लिखो। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम किसी से हीन न रह सकोगी।

यहाँ तुम्हे उपदेश देना चाहता हूँ। नारी के लिए पति परम पूजनीय व्यक्ति है, सबसे बडा गुरुजन है। लेकिन इसके माने यह नही है कि स्त्री पुरुष की दासी है। यह सस्कार नारी को जितना छोटा, जितना तुच्छ कर देता है, उतना और कुछ नहीं।

जब यह पुस्तक लिखना, इस बात को सबसे अधिक याद रखने का प्रयत्न करना।

पति के विरुद्ध कभी विद्रोह का स्वर मन मे नहीं लाना चाहिए। लेकिन पति भी मनुष्य है, मनुष्य को भगवान के रूप मे पूजा करना केवल निष्फल ही नहीं, इससे अपने को और पति को भी छोटा बना देती है।

तुमसे एक प्रश्न करूगा ;" जिस विधवा ने स्वामी को जाना नही पहचाना नही

तुम्हारी कापी दो--चार दिन के बाद वापस कर दूगा । 'कालो' कहानी को मेरी परिणीता की तरह और एक बार अध्यायों में बाँटकर नही भेज सकती ? दीदी पहले बहुत दुख बहुत कष्ट सहना पडता है । असहिष्णु होने से काम नही चलता, यह चीज इतने दुख, इतने परिश्रम की होने के कारण ही इसका इतना मूल्य है । पहले ऐसा लगता है जैसे बहुत परिश्रम बेकार जा रहा है, किन्तु कोई भी परिश्रम किसी भी दिन सचमुच बेकार नही होता, किसी न किसी रूप में उसका फल मिलता है । रात बहुत हो गयी है, इसलिए आज यही समाप्त कर रहा हूँ । आज भी पेट में अन्न न पडने के कारण पत्र में गडबडी हो गयी । जरा कष्ट उठाकर पढ लेना । कही अगर कोई बात असलग्न रहे तो बडे दादा समझकर माफ कर देना । मेरा आशीर्वाद लेना ।

रात्रि १२-३० बजे । तुम्हारा दादा

पु०-- जब ठीक मालूम होगा तब स्वय ही मासिक पत्रो मे छपने के लिए भेज दूगा । मेरे भेजने से कभी कोई सम्पादक 'ना' ही नही करता । वे जानते है कि उपयुक्त न होने पर मैं नही भेजता । गृहस्थी के कामों के कारण तुम्हें बहुत कम समय मिलता है । बात ठीक भी है फिर भी यह बात सत्य है कि अनवकाश के भीतर कभी -कभी समय मिल जाता है, किन्तु अवकाश में किसी भी समय काम करने का अवकाश नही मिलता ।

बाजे शिवपुर, हवडा

१४-८-१६

परम कल्याणीयासु,

कल और आज तुम्हारी बडी और छोटी दोनों चिट्ठियाँ मिली । पहले अपना समाचार दे दूँ । मै प्रारभ से ही कमरे के सारे दरवाजे खिडकिया खोलकर सोता हूँ । उस दिन चार बजे रात को उठकर देखा -- बिस्तर, तकिया, और क़पडे पानी की बौछार से भीग गये है । जाडा लगने लगा और दुर्भाग्य की बात यह है कि उस दिन शाम को भी रास्ते में कम नही भीगा था । दोनों को मिलाकर बुखार हो गया । मगर एक दिन में दूर नही हुआ, क्रमश बढने लगा । अब उतर गया हे । दूसरी बात और भी मजेदार है । कई दिनो से दाहिने पैर के घुटने के नीचे इतनी जलन और खुजली हुई कि परेशान हो गया। चार दिन बाद एक दिन सुबह उठकर देखा कि एक जगह लाल होकर एक्जिमा सा हो गया है । कुछ--कुछ सूजन भी है । कुछ दिनों से सुन रहा था कि इस इलाके में 'बेरी बेरी' फैल रहा है । वह क्या कौन - सा पदार्थ है, उसे देखने का मौका आज तक नही मिला । सोचा, शायद उसी ने पकड लिया है । डर के मारे बुरा हाल हो गया है । कसकर टिंचर आइडिन लगाने लगा । कई बार लगातार लगाने के कारण उसने ऐसा रूप धारण किया कि सचमुच बेरी बेरी का शिकार होता तो अच्छा होता । डाक्टर ने आकर बुरी तरह फटकारना प्रारभ किया --आप मे क्या किसी विषय में तनिक भी सब्र नही है ? अब कास्टिक या एसिड-फेसिड लगाकर जो चाहे करें, मै चला । बहरहाल, जरा ठढा होने के बाद दवा और मालिश की व्यवस्था की हुक्म देते हुए बोले -- दोनों पैर तकिये पर रखकर चुपचाप पडा रहूँ । क्या करू दीदी, पडा हुआ हूँ । तीसरी बात -- मैं कभी कच्ची डकार का रोगी नही रहा, इतना कम खाता हूँ कि वह मेरे पास कभी आता नहीं । कहीं अनाहार के कारण उसे भूखों न मरना पडे । उस दिन घर पर बनाये गये कबाड़ा सदेश जबरदस्ती खिलाया गया । आज तक उसकी डकार आ रही है मैं इस देश का मशहूर आलसी हूँ ? चबाने के डर से सहज ही कोई चीज मुँह में नही डालता । मेरी आदतें यह अत्याचार कैसे सहन कर सकती हैं ? क्या कहती हो दीदी, ठीक है न ? घर के लोग

इस बात को नही समझते, उनका ख्याल है कि बिना खाये मै दुबला होता जा रहा हूँ। लिहाजा खाने से उनकी तरह हाथी बन जाऊगा। स्वर्गीय गिरीश बाबू ने अपने 'आबू हसन' मे लाख टके की बात कह गये है। — 'अबलाएँ बडी लालची होती है वे मरने पर भी खाती है।, औरत जाति को उन्होंने अच्छी तरह पहचान लिया था। आज बीस वर्ष से हम लोग केवल खाने के पीछे झगडा - झझट करते आ रहे है। उसने नही खाया, वह नही खाया, कमजोर हो गया -- घर गृहस्थी और रसोई किसके लिए है ? जहाँ दोनो आँखे ले जायेगी, वहाँ जाकर मै वैरागी बन जाऊगी। मै कहता हूँ कि अगर वैरागी बनना है तो जल्द बन जाओ, धमकाती क्यों हो ? मै सूखकर काँटा हो गया। वास्तव में मेरे दुख को किसी ने नही देखा दीदी। मै अक्सर सोचता हूँ कि अगर स्वर्ग कही सचमुच है तो वहाँ एक दूसरे को खाने के लिए इतनी जबरदस्ती नही करता होगा।, अगर होता है तो मै नरक में ही जाऊगा।

हाँ, एक बात और है। बीस दिन पहले कुत्तों की लडाई बन्द कराने गया तो न जाने कहाँ से एक खौराहे कुत्ते ने आकर मेरी हथेली मे दाँत गडा दिया। अभागा कुत्ता कितना बडा अकृतज्ञ है। भेलू के पजे से उसे बचाने गया था। डर के कारण घटना का जिक्र किसी से नही किया। घाव भी सूख गया है, पर कल से दर्द हो मालूम पड रहा है।

लेकिन अब नही, फिलहाल यही अपनी शारीरिक कुशलता की बाते समाप्त कर रहा हूँ। सुख की बात यह है कि मै अब बूढा हो गया हूँ। अब से एक न एक उपलक्ष्य करके चलना पडेगा। न जाने कितने दुख-दैन्य आफत-विपदों के दरम्यान चालीस बरस काटे है। सुना है मेरे खानदान मे कोई ४० से आगे नही गया है। कम से कम इस बात पर मैने अपने बाप-दादों को हराया है। अब और क्या चाहिए ?

जाने दो। बूढे आदमी को मरने-जीने को लेकर तुम लोगो को उद्विग्न करना नही चाहता। लेकिन दीदी, तुम भी तो अच्छी नही हो। स्वास्थ का ख्याल रखना। परिश्रम करने की आवश्यकता नही। स्वस्थ होकर घर वापस आओ तब सब होगा। तुम्हारी कापी की सारी रचनाएँ ध्यान से पढ गया। इसमें सब कुछ है, लेकिन शिक्षा नही है। साहित्य—रचना करने का कौशल को भी आयत्त करना चाहिए भाई, नही तो केवल अपनी अनुभूति के सम्बल से काम नहीं चलता। मै इसी पेशे में हूँ और जानता हूँ कि इतना सिखा लेने में मुझे अधिक देर नही लगेगी। कितना लिखना चाहिए और कितना छोड देना चाहिए, किसे दबा देना चाहिए —

"घटे जा ता सब सत्य नय,
कवि तव मन भूमि रामेर जन्मस्थान
अयोध्यार चेये ढेर सत्य जेनो।"

इससे बडी सत्य बात अन्य कोई नही है दीदी, जितनी घटनाएँ घटती है, उन सभी को नही लिखना चाहिए। कुछ परिस्फुट करके कहना कुछ इगित में कुछ को पाठकों के मुँह से कहलवाना चाहिए। गोकि तुम्हारी जितनी सहायता कर सकता हूँ, वह केवल पत्र लिखकर, सशोधन कर, दूर रहकर उतनी नही होगी, फिर भी चेष्टा करनी होगी। और अगर इस बार जाडे में निकल सका तो तुम्हारे हिन्दुस्तानियों के शहर में १०-१५ दिन के लिए, पास ही कही कोई मकान लेकर थोडी सी मदद कर सकता हूँ। और कहीं मेरे सनातन आलस्य ने उस समय घेर लिया तो बस यहीं तक।

ब्राह्म महिलाएं ? वे निरापद रहें, उनमें से बहुतों के सामने तुम्हें लाने की शायद मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। एक बात साफ तौर से कह दू। दूर से सुनने में ही ब्राह्म महिलाए हैं, उच्च शिक्षिता है, दो-चार को छोडकर वे सब मन ही मन मुझसे बहुत डरती हैं। सिर्फ उन्हें यही ख्याल आता है कि मैं अन्तर की छानबीन करता हूँ, इसीलिए वे मेरे सामने उन्हे

चैन नही मिलती । उनका अन्तर कृत्रिम है, संकीर्णता से भरा है । वास्तव में इनकी तरह सकीर्ण चित्तवाली महिलाएं सपूर्ण बगाल में नही है । दीदी, मैंने कभी खाने-छूने में भेद नहीं किया । लेकिन ब्राह्म महिलाओं के हाथ का कुछ भी नहीं खाता । खाता हूँ तो केवल उनके हाथ का जिनके माँ बाप ब्राह्मण हों या ब्राह्मण से विवाह हुआ हो । ब्राह्म समाजी हो, इससे कुछ आता जाता नही, किन्तु मिली-जुली जाति का छुआ भोजन मैं नही खाता । वे कहती है कि शरत् बाबू बड़ी-बड़ी बातें सिर्फ लिखते भर हैं, पर अन्तर से कट्टरपंथी है । मै कट्टर नही हूँ लीला, लेकिन नाराजगीवश इनके हाथ का नहीं खाता । मैंने यह भी देखा है कि ब्राह्म लड़कियों में साढ़े पन्द्रह आने फ़राग है । सिर्फ साबुन, पाउडर और कपड़े-लत्ते से, नकियाकर बोलकर जितनी दूर चल जाय । केवल ४-५ लड़कियों को देखा है जो वास्तव में श्रद्धा की पात्री है । बी०ए० पास होने पर भी हमारी लड़कियों में और उनमे अन्तर नहीं किया जा सकता । इतनी अच्छी हैं कि लगता है जैसे आज भी वे हिन्दू की लड़कियाँ है ।

इन लड़कियों की निन्दा कर रहा हूँ, इसीलिए शायद तुम्हें क्रोध हो रहा होगा । लेकिन जानती हो दीदी, अन्दर ही अन्दर तुम लोगो के प्रति मुझमें कितनी श्रद्धा है कितना स्नेह है । केवल उनका बनना, विद्या का प्रदर्शन और कुसंस्कारवर्जित रोशनी में दम जोकि सत्य नही है उसका प्रदर्शन — इन्हीं बातों को देखकर मुझे अरुचि होती है ।

उनके निकट तुम हंसी की पात्री बनोगी ? काश, इनमें से ५-७ भर भाड़ी में भरकर तुम्हारे कानपुर में भेज सकता और कुछ न हो तो भाई (लीलारानी के पति) के काम आ जाते ।

"दादा की मर्यादा" को कैसे जानोगी । तुम्हारे तो दादा नही हैं ।

तुम्हारे पति के उदार विचारों को सुनकर बड़ी खुशी हुई । मै उन्हें सर्वान्तःकरण से आशीर्वाद दे रहा हूँ । लेकिन दीदी, एक बात उन्हें कहने की इच्छा होती है । मैंने बचपन में ६-७ सौ कुल त्यागिनी का इतिहास सग्रह किया था । काफी समय, काफी मेहनत, काफी रकम खर्च किये थे । उससे मुझे एक विचित्र शिक्षा मिली । मेरी बदनामी चारों ओर फैल गयीं । लेकिन बात को नि:संशय रूप से जान गया कि जो कुल त्यागकर जाती है उनमे अस्सी प्रतिशत सधवाए होती हैं, विधवाए बहुत कम । पति के जीवित रहने से ही क्या और कड़े पहरे में रखने से क्या और विधवा होने से क्या ! दीदी अनेक दुखों के कारण महिलाए अपना धर्म नष्ट करती है और जिसके कारण करती हैं, वह वह पुरुष का रूप भी नहीं और न एक वीभत्स प्रवृत्ति के लोभ मे । जब वे इतनी बड़ी वस्तु नष्ट कर सकती है तब वे बाहर जाकर किसी आश्चर्यजनक वस्तु को पाने के लोभ से नही, केवल कुछेक से अपने को मुक्त करने के लिए ही इस दुःख को सिर पर उठा लेती है । यह सब बातें शायद तुम नहीं समझ सकोगी और मेरा कहना भी शोभा नहीं देता । लेकिन सबसे बडी बात यह है कि तुम केवल महिला नही हो, मेरी छोटी बहन भी हो और ससार मे यह वस्तु नितान्त तुच्छ नही है ।

'कहानी' के भीतर कितना सच और कितनी कल्पना है, यह नही जानता, अगर कल्पना ही है तो अवश्य बहादुरी की बात है । देखता हूँ तो साहस का ठिकाना नही । वह कौन है ? अब पवित्र (बगला साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक श्री पवित्र गंगोपाध्याय) के बारे में कुछ कहना चाहिए । उसे बहुत दिनों से नही जानता, पर यह जानता हूँ कि वह निर्मल चरित्र और वास्तव में अच्छा लड़का है । तुम्हें शायद दीदी भी कह सकता है । उम्र में तुमसे २-४ माह छोटा ही होगा । उससे कभी किसी नारी की अमर्यादा नही होगी, ऐसा मेरा विश्वास है उसे तुम एक पत्र लिख सकती हो, कोई नुकसान नही । इसके अलावा तुम भी तो विशुद्ध स्वर्ण हो किसका कैसा सम्मान है, कैसी मर्यादा है मेरी दृढ़ धारणा है,

कि वह तुम्हारे निकट सुरक्षित रहेगी। सुनता हूँ कि वह इस बीच यह प्रचार कर रहा है कि कुछ ही दिनो के भीतर बगला साहित्य में एक ऐसी लेखिका आनेवाली है जो किसी भी छोटे स्थान में खडी नहीं होगी। कल एक आदमी उस 'मिलन' को छापने के लिए मेरी खुशामद करने आया था। मैंने नही दिया। कहा कि पत्रिका के उपयुक्त नही है। जल्दबाजी की क्या जरूरत ? मैं यह जानता हूँ कि बहुत से लोग अच्छा कहेगें, पर निन्दा करने वालों की कमी नही रहेगी। मैं धैर्य धारण कर एक साल प्रतीक्षा करने के बाद पत्रिका मे छपने भेज दूगा। तब यह सदेह नही रहेगा।

मैंने तो तुम्हें शिष्य स्वीकार कर लिया है, पर देखो बहन, अन्त में बूडी की तरह गुरुमारा विद्या हासिल मत कर लेना। वह तो मुझसे बडी हो गयी है। शायद अन्त तक तुम भी हो जाओगी। ससार में विचित्र कुछ भी नही है, कुछ कहा नही जा सकता।

लेकिन इसे तब स्वीकार करुगा जब तुम लिखकर सूचित करोगी कि तुम स्वस्थ हो गयी हो, अब कोई बीमारी नही है, वर्ना दिल की बीमार वाले आदमी को अपना शागिर्द नहीं बनाऊँगा। उसे पहले डाक्टर का प्रमाण पत्र पेश करना पडेगा, यह बता देता हूँ। मैं परिश्रम करके सिखाऊगा और तुम अचानक चल बसोगी, मेरे परिश्रम को बेकार कर दोगी, ऐसा नहीं होने का।

तुमने एक बार लिखा था — "आपका परिचित श्रीरामपुर।" और 'जयरामपुर' क्या अपरिचित हैं? वहाँ की मलेरिया रुई की तरह के मच्छरो के झुण्ड को आसानी से भुलाया जाय, ऐसा आदमी भला कहाँ मिलेगा ? पिछले वैशाख मास म इसी डर के कारण मैं एक निमत्रण मे नहीं गया। जयरामपुर की एक लडकी मुझे दादा कहती है और मैं उसे कहता हूँ 'छोटी दीदी'।

डेहरी (आन सोन) जा रही हो ? जब तुम्हारा जन्म नही हुआ था तब मै डेहरी की नहर के किनारे पकी खिरनियाँ बटोरता था और फन्दा डालकर गिरगिट पकड़ता था। ओह ! कितने दिनों की बात है। उन दिनों रेल नही बनी थी, स्टीमर से आरा जाना पडता था। तुम्हारे बगले को मैं शायद अपनी आँखों से देख रहा हूँ। अच्छा, तुम्हारे घर के निकलते ही दाहिने हाथ सूर्य निकलता है न ? उन दिनों एक घाट था, सतीनोर या ऐसा कोई नाम था। तुम्हारे यहाँ से शायद दो मील होगा। कुछ दिनों वहाँ बैठा था। पता नहीं, उस घाट का अस्तित्व है या नहीं।

'यायावरों' को कही आने-जाने में कोई बाधा नही है। अच्छा बर्मा के बारे मे इतनी बातें तुमने कैसे जान ली ? वहाँ का मजिस्ट्रेट (डिप्टी) निडक था, यह समाचार किसने दिया ? माडले से आने- जाने का रास्ता है, यह किससे सुना। अगर सचमुच बर्मा मे रहती थी तो कहाँ ? उस देश का ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहाँ मेरे दोनों चरण न पडे हों, जब कि मेरे जैसे आलसी—बादशाह दुनिया में कम हैं।

'राजलक्ष्मी' कहाँ मिलेगी ? वह सारी मनगढन्त कहानी है। श्रीकान्त उपन्यास के अलावा और कुछ नही है। उन निराधार अफवाहों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। कहानी क्या सच है ? किसकी कहानी है ? तुम जीती रहो, दीर्घजीवी बनो, बार-बार आशीर्वाद देता हूँ। मेरे आदेश को भूलकर भी कभी स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही मत बरतना। तुम्हें देखा नही है, फिर भी न जाने क्यों तुम्हारे प्रति बड़ा स्नेह उत्पन्न हो गया है। यह शायद तुम्हारे भाग्य की बात है। मुझे ऐसा लग रहा है कि अगर ऐसा आलसी न होता तो जाडे में केवल तुम्हें देखने के लिए कानपुर आता। लेकिन कभी यह होने का नही, यह भी जानता हूँ।

तुम्हारे दोनों बच्चों को आशीर्वाद दे रहा हूँ। अगर उन्हें माता-पिता का गुण मिल गया तो ससार में सार्थक होंगे। लेकिन तुम्हें जीवित रहकर इन्हें आदमी बनाना होगा।

मर जाने से काम नही होगा। ऐसा होने पर मुझे भी शायद सचमुच बडा कष्ट होगा। — दादा।

सच कह रहा हूँ कि तुम्हारी सिलसिले से लिखी चिट्ठी के सामने अपना यह बेहतरतीब पत्र भेजने में लज्जा हो रही है। आज की कहानी के प्रथम अध्याय की बातें अगली चिट्ठी मे सूचित करूंगा।

बाजे शिवपुर

७ भाद्रपद, २६

परम कल्याणीयासु,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। कुछ जरूरी बातें हैं। बूड़ी से मुझे काफी आशा थी, पर वह 'दीदी' के अलावा और कुछ लिख नही सकी। क्यों, जानती हो ? जप-तप पूजा-पाठ के नाटक के चक्कर में उसके भीतर जो आग थी, मधु था, सब उम्र के साथ सूख गया। हाँ, आतिशयिक के कारण, वर्ना हमारे घर की कौन लडकी इन सभी मामलों में कुछ न कुछ करती है। जाने दो। तुम पर द्वितीय आशा है। तुम्हारी जो उम्र है, यही मनुष्य के लिए रवाना होने की उम्र है। इसीलिए मै तुम्हें सिखा लेना चाहता हूँ ,और इसीलिए तुम्हारी किसी रचना को छपने देने के लिए तैयार नही हुआ। मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि अपनी रचना, अपने नाम से पहले पहल छपे अक्षरों मे देखने की इच्छा बहुतों को होती है। मैं यह लेकिन भी जानता हूँ कि तुम एक साल सब्र करोगी।

लेकिन सिखाने की वह सुविधा नही है। होना भी सभव नही है, फिर भी एक बार शायद उधर जाऊ ? जहाँ कही भी रहूँ, तुमसे एक बार मुलाकात करना संभव है। तुम्हारे मन में शायद यह बात उत्पन्न हो सकती है कि इन लोगों की पुस्तकें पढती हूँ , इन्हें पढकर अगर सीख नही सकी तो ये दो दिन में सिखाकर ऐसा क्या राजा बना देंगे ? यह बात बिलकुल सच है। वास्तव में यह सिखाने की चीज नहीं है। फिर भी यही मान लो — "तुलसी ने मृत्यु के समय जब उसका ... इत्यादि" मै उपस्थित रहा तो लिखने के पहले तुम्हें यह बात कह देता कि जो तुलसी मर गया है जो पूरी कहानी मे अब फिर नहीं आयेगा, उसके बारे में पाठकों का अधिक कौतूहल नही रहता, वह आर्ट की दृष्टि से भी बेकार है। इसीलिए उसके सबन्ध में दो पृष्ठों का इतिहास पाठकों को क्लान्त कर देता है। मैं होता तो कहाँ से शुरू करता, यह कहने के पहले ही यह कहना चाहता हूँ कि आरम करना ही सबसे कठिन होता है। इसी पर सारी पुस्तक निर्भर करती है।

मान लो इस तरह से शुरू होता — एक दिन तुलसी मृत देह श्मशान में, राख में परिणत हो रही थी। उसकी तेरह साल की लडकी निकट ही स्तब्ध खडी थी। उसके मुँह पर निवार्णोन्मुख चिता की दीप्त रश्मि न जाने कितनी देर से विचित्र रेखाओं के खेल खेल रही थी, किसी की नजर उस पर नही गयी। अचानक उसकी ओर तारा ठाकुरानी की नजर गयी, वे जैसे चौक उठी जिसके नश्वर शरीर की अभी समाप्ति हुई है, मानो यही अचानक अपने बचपन की मूर्ति धारण किये खडी है। उसी तरह का अतुलनीय रूप, उसी तरह का माधुर्य, मुँह पर उसी तरह की गहरे विषाद की छाया पडी हुई है। इस सद्य मातृहीना के मुँह की ओर देख देखकर उनकी चिन्ता का सूत्र अतीत के कितने दु:ख-सुखों की कहानियों के भीतर से चलचित्र की तरह सचरण करने लगे। उसे याद आयी उस दिन की बात जब तुलसी ने पति को छोड़कर निराश्रित होकर उसके घर में पैर रखा

था। उसके बाद किस प्रकार से उसने अपने पूर्ण विकसित रूप के लावण्य को लोगों की नजरो से छिपाकर उसकी छोटी सी गृहस्थी मे अपने को खपा दिया था, इत्यादि,

इस अतीत दिनो के इतिहास को जितने सक्षेप मे निपटाया जा सके, उसे करना आवश्यक है, क्योकि यह बात याद रखना पडेगा कि पुस्तक मे वह फिर कभी नही आयेगी, अतएव उसके चरित्र को स्पष्ट करने के लिए अधिक प्रयोजन नही है।

इसके बाद कहानी लिखते समय पहले जिसे प्लाट कहते है, उसके प्रति अतिरिक्त ध्यान देने की आवश्यकता नही है। जो-जो लोग तुम्हारी पुस्तक मे रहेगे, पहले उनके चरित्र को अपने अन्दर स्पष्ट कर लेना चाहिए। मान लो जिसे खूब जानती हो, जैसे तुम्हारे पिता या पति। इसके बाद ये दोनो चरित्र अपने गुण-दोषो को लिए किसी न किसी घटना मे स्पष्ट हो सकते है, इसे भी ठीक कर लेना चाहिए। मान लो तुम्हारे पिता अपने कामों के भीतर, अपने मामले मुकदमे मे, तुम्हारे पति अपने मित्रो की नौकरी, उदारता या त्याग में, अच्छी तरह पूर्णता प्राप्त कर लेते है तभी कहानी खडी करने की चेष्टा करनी चाहिए। नही पहले से ही कहानी के प्लाट लेकर सिर खपाने की आवश्यकता नही होती। जिसे होती है, उसकी कहानी बेकार हो जाती है।

और भी अनेक छोटी चीजे है जिन्हे लिखते समय जबानी कहे बिना पत्र मे लिखकर बताना कठिन है। इन बातो को एक दिन तुम्हें बताऊगा। लेकिन वह दिन कब आयेगा, उसे विधाता जानते है। मेरा असख्य आशीर्वाद लेना।

तुम्हारा दादा — श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर

६ अगस्त, १९२०

परम कल्याणीयासु,

मेरे मानसिक परिवर्तन के बारे मे तुम एक प्रश्न अर्से से करती आ रही हो। और मै बहुत दिनों से चुप हूँ। आगे जब तुम मेरी उम्र तक पहुँचोगी तब इसे समझ पाओगी कि जगत् मे मनुष्य के निकट ऐसी बातें रहती है जिसे किसी के आगे व्यक्त नही किया जा सकता। करने पर कल्याण से अकल्याण की मात्रा बढती है जबकि इस नीरवता की सजा काफी सख्त है।

भीष्म ने एक दिन स्तब्ध होकर शरवर्षण सहन किया था, वह बात चिरकाल के लिए महाभारत मे दर्ज हो गयी, पर कितनी अलिखित बाते महाभारत मे, कितनी शरशय्या नित्य नि शब्द भाव से रचित हो रही थी, उसके बारे मे एक भी लाइन कही भी दर्ज नही है। इसी तरह दुनिया चल रही है।

तुम्हारे दादा की काफी उम्र हो गयी है, अनेक लोगो के अनेक ऋण चुकता कर चुका हूँ, उसका यह उपदेश कभी मत भूलना कि पृथ्वी मे कौतूहल नामक वस्तु का मूल्य ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से चाहे जितना बडा हो उसके दमन करने का पुण्य भी ससार मे कम नही है।

जिस वेदना का प्रतिकार नही है, नालिश करने पर जिसके नीचे से पक निकलकर जर्रे-जर्रे मे फैल जायेगा, वह अगर शान्त है तो उसे रहने दो। वहाँ क्या है, अगर न जान सकी तो क्या हर्ज है। न मालूम हो।

दु ख के मामले में सभी को पीछे छोडता चला आया हूँ, शेष लोग मेरे पीछे-पीछे

लगडाते हुए आ रहे है — यह धारणा न सत्य है और न साधु । सौभाग्य के दम में रावण को फसना पडा था, किन्तु दैन्य और दुर्भाग्य के अहकार में गौतमी को जब अपने सभी अर्जित पुण्यों का जुरमाना देना पडा था तब उसका फैसला अग्रेज जज की अदालत में नही हुआ था । काले-गोरे की मुकदमा में पिनालकोड की धारा में नही हुआ था .. भले ही मै पुस्तक **लिखता हूँ,** पर बेतरतीब पत्र लिखने में मेरे समकक्ष होने वाले व्यक्ति अधिक नही है । [१]

दादा

बाजे शिवपुर, हवडा
२७ जून, २१

परम कल्याणीयासु,

लीला, आज तुम्हारी चिट्ठी मिली । तुम्हें जवाब नही दे सका, केवल यह समय की कमी के कारण । वास्तव में दीदी, इस समय मुझे जरा भी फुरसत नही है । काँग्रेस का काम काफी सार्थक हुआ तो शायद वक्त मिलेगा । आजकल मुझे दो वर्ष पहले वाले महात्मा गाँधी सत्याग्रह के दिन निरन्तर याद आ रहे हैं । मै वालटियर था मेरी बगल का आदमी और सामने के ६-७ व्यक्ति जब 'जान गयी' कह कर गोली से गिरकर मर गये तब उस वक्त मै भागा नही, मुझे नही लगी थी । कितने दिनों तक मै आश्चर्य चकित था कि उस दिन मशीनगन की गोली क्यो नही लगी ? आज लगता है उसकी आवश्यकता थी , ...,

दादा

बाजे शिवपुर, हवडा
१जनवरी, २३

परम कल्याणीयासु,

गया से लौट आया । काग्रेस समाप्त होने के पहले ही चला आया था, शरीर बिलकुल अपुट हो जाने के कारण सोचा था कि जाने के पहले तुम्हारे पत्र का जवाब दे दूगा पर लिख नही सका । गया जाकर लिखने को सोची, वह भी नही हो सका और अब लौटकर चिट्ठी लिख रहा हूँ । यह जो लिखू-लिखू सोचता हूँ और लिख नही पाता, इसकी भी एक कीमत है, नितान्त तुच्छ बात नही है । लेकिन इस बात को कितने लोग समझते हैं ? वे कहते हैं, अपनी कीमत अपने पास ही रखो, हमारी अमूल्य चिट्ठी का जवाब देना । इसी से हम लोगों का हो जायगा ।

कभी मेरे बारे में सब कहा करते थे कि उसका शरीर बडी दया-माया का है । और आज सभी भाई-बहन, मित्र बाधव, भाजियाँ कह रहे है कि उसके शरीर में दया-माया का भाप तक नही है । मै कहता हूँ कि इसकी भी कीमत है । वे कहते है कि उस कीमत से हमारा कोई मतलब नही, तुम्हारी पहले वाली गैर कीमती वस्तु ही चाहिए । घर की गृहणी तक उनके सुर में सुर मिला रही है । शायद उनके गले की आवाज सबसे तेज है ।

दादा

---

१ इस पत्र में अपने प्रथम प्रणय की मानसिक घुटन का जिक्र किया गया है ।

वाजे शिवपुर, हवडा
३ मई, १९२३

परम कल्याणीयासु,

कई दिन हुए मेरे साथ एक दुर्घटना हो गयी। एलायस बैंक में यथासर्वस्व था, अचानक फेल हो जाने के कारण सब कुछ डूबा। मकान समाप्त नही हुआ, तालाब समाप्त नही हुआ, सोचा था कि इस साल कुछ भी नही रख छोडूगा, सब कुछ समाप्त कर दूँगा, पर समाप्त हो जाने से सब कुछ स्थगित रहा। मगर यह आफत कम नहीं है कि कितने लोग मेरे मार्फत अपना यथासर्वस्व मेरे ही बैंक में इस विश्वास के साथ रखे थे कि मै उन्हें कभी धौखा नही दूगा। अब उन्हें आना पाई चुकाना होगा। अनेक परिवारों की जिम्मेदारी की मुझ पर है। समझ में नही आता उनसे क्या कहूँ ? लेकिन यह बात निश्चित है कि मेरे बन्द कर देने से इनका चूल्हा भी बन्द हो जायेगा। भगवान अगर देते हैं तो वह अलग बात है। अक्सर वे नही देते तब लोगों को भूखों मरना पडता है। सोंच रहा हूँ कि दो-तीन माह कही जाकर दिन-रात परिश्रम करके देखू, यदि पाँच-छ हजार रुपयों का जुगाड कर सका। हो सकता है कि रक्षा हो जाय। आत्मीय लोगो को लेकर परेशानी है।

तुम्हारा दादा

वाजे शिवपुर, हवडा
१७ मई, १९२३

परम कल्याणीयासु,

कुछ दिनों तक यहाँ नही था। तीन घटे हुए वारिशाल से लौटने पर तुम्हारा पत्र मिला। इसीलिए ठीक समय पर उत्तर नही दे सका। . . . .

हुगली जेल में हमारे कवि काजी नजरुल अनशन करके मरणासन्न हैं। एक बजे की गाड़ी से जा रहा हूँ, देखूँ अगर मुलाकात करने पर मेरे अनुरोध से अगर वह खाने के लिए राजी हो। न हो होने से उनके लिए आशा नही देखता हूँ। वे एक सच्चे कवि हैं। रवि बाबू को छोडकर इतना बडा दूसरा कोई नही है।

दादा

सामताबेड, पानित्रास पोस्ट
जिला-हवडा, १३ कार्तिक, ३३

परम कल्याणीयासु,

लीला तुम्हारी चिट्ठी मिली। इस तरह बीच-बीच में अपना समाचार देती रहना। . . . . .

मेरे मझले भाई प्रभास सन्यासी थे, शायद इसे सुना होगा। वह कुछ दिन पहले बर्मा से लौटकर मगलवार की रात को बीमार हुआ। बराबर कहने लगा — बारम्बार बीमारी से यह शरीर अपटु होता जा रहा है। इसे छोड देना आवश्यक है। अगले दिन एक बजे घर और बिस्तर छोडकर स्वंय बाहर आये और मेरी छाती पर सिर रखकर शरीर त्याग दिया। दीदी, मैं, बहू और प्रकाश हम ही लोग थे।

दादा

श्री दिलीप कुमार राय के नाम

सामताबेड़
वैशाख, १३३३

परम कल्याणीयेषु,

तुम्हारी चिट्ठी और कवि [१] की चिट्ठी की प्रतिलिपि कल मिली। यहाँ पत्र आने-जाने में दो दिन लग जाते हैं वर्ना उत्तर जल्द पा जाते।

पता नही, कौन कवि को मेरे बारे में लिखकर सूचित किया था, अन्दाजा नहीं लगा सका। लेकिन मैने वे बातें कही थी यह सच है। मेरा ख्याल था कि वे मुझ पर असंतुष्ट है, इसीलिए १ वैशाख को बोलपुर जाने के लिए, तुम्हारे अनुरोध करने पर भी नहीं गया। बहरहाल, अब समझ में आया कि मेरा ख्याल गलत था। मन को काफी शान्ति मिली।

इस शनिवार को तुम्हारा और तुम्हारे शागिर्दों का गाना--बजाना सुनने जाऊंगा, अपना भी एक काम है। मेरे यहाँ आने के लिए ३-४ गाड़ियाँ हैं। बी० एन० रेलवे टाइम टेबुल खरीदकर देवलटी स्टेशन देख लेना। डेढ़ घण्टे में यहाँ पहुँचती है। स्टेशन से पैदल आना पड़ता है। अगर आने का समय मालूम हो जाय तो आदमी भेज दूंगा। सोने लायक जगह किसी सूरत से दे दूंगा।

परसों कलकत्ता गया था। भवानीपुर से लौटते वक्त इच्छा हुई कि तुम्हारे यहाँ जाऊं, पर इस डर से नही गया कि कहीं तुम गायब रहो, शरीर कोई बुरा नहीं है।

कवि का पत्र मुझे देकर बुद्धिमानी का काम किया है, यह मुझे स्वीकार करना होगा। तुम्हारा कल्याण हो।

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

पानित्रास पोस्ट, गाँव-सामताबेड
जिला हवडा, २२ भाद्र १३३३

मण्टूराम [२]

तुम्हारी पुस्तक और एक छोटी चिट्ठी मिली। कल दिन - रात में पढकर समाप्त किया। बहुत अच्छी लगी। लेकिन दो एक त्रुटियाँ भी है। भारत के बडे-बडे गाने - बजानेवालो में अपना नाम न देखकर कुछ खिन्न हुआ। पर यह निश्चित रूप से जानता हूँ कि यह गलती तुम्हारी इच्छाकृत नही है। असावधानी के कारण हो गयी है और भविष्य में इसे सुधार दोगे, इसमें संदेह नही। सुधार देना, भूलना नही। रायबहादुर मजुमदार (राजू के बडे भाई सुरेन्द्रनाथ मजुमदार) का 'रागा जवा मूटो' का उल्लेख नही है। वह भी चाहिए उससे वे खिन्न हुए है, ऐसा मेरा विश्वास है। यह तो रही त्रुटि की बात। मतभेद का भी एक विषय है। तुमने पूजनीय रविबाबू की एक उक्ति उद्धृत किया है -- 'सर्वसाधरण को हम अश्रद्धा करते है, इसीलिए उन्हे चिडवा-लाई देकर सदेशों को बचा लेते है।' यह बात सुनने मे अच्छी है और जिन्होंने लिखा है, उनकी मानसिक उदारता और निरपेक्षता भी यथार्थ में प्रकट होती है, किन्तु इतना गलत वाक्य दूसरा नही। शिक्षा,

१ श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
२ दिलीप बाबू के घरेलू नाम

सभ्यता तथा कल्चर के लिए सन्देश चाहिए, चिडवा-लाई अगर खिलाते हो तो पेट के दर्द से परेशानी बढेगी । सर्वसाधारण का अर्थ है — छोटे लोग, वे चिडवा-लाई की ओर बढते हैं।

अतएव इस तरह की अश्रद्धेय बात कभी मत कहना ।

अखबारों मे देखा कि तुम विलायत जा रहे हो । आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी यात्रा निर्विघ्न हो, उद्देश्य सफल हो । मेरी उम्र हो गयी है । लौटने पर अगर मुलाकात न हो तो उस बात को याद रखना कि मै हमेशा तुम्हारी शुभकामना करता रहा । आशा है सकुशल हो।

श्री शरत्चन्द्रोपाध्याय

पु० — अगले ३१ भाद्रपद को मैं पचास पूरा कर लूगा । १ आश्विन को कलकत्ता तुम लोगों से मिलने आऊगा ।

सामताबेड पानित्रास पोस्ट
जिला-हवडा, आषाढ १३३५

परम कल्याणीयेषु,

मण्टू, बहुत दिनों से तुम्हारी चिट्ठी का जवाब नही दे सका । तुम नाराज हुए होगे । उस दिन तुम्हारे थियेटर रोड वाले मकान में गया था । न तुम थे और न तुम्हारे तुकु मामा । साहब का बगला है, इन्तजार करना उचित है या नही, निश्चय नही हुआ । मेरे साथ श्रीयुक्त शैलेश बिशी थे, होशियार आदमी । दलाली के काम से साहबो के यहाँ जाते हैं । उन्होने कहा कि कार्ड रख देना ही एटिकेट है । इतजार करने पर नाराज हो जाते हैं, कार्ड न रहने पर चला आया ।

भारतवर्ष (ज्येष्ठ १३३५) में तुम्हारी 'चाकर' कहानी पढी । कहानी की दृष्टि से उतनी अच्छी नही है, पर देखा तुममें चमत्कार विकास हुआ है और वह है डायलाग । कहानी लिखने का कौशल अथवा पद्धति और डायलाग की धारा, जिस दिन ये दोनों एक हो जायेगी, उस दिन तुम सचमुच ही बड़े साहित्यिक बन जाओगे । एक बात मत भूलना मण्टू । रचना में लिखते जाना जितना कठिन है, लेखन में न लिखकर रुक जाना, उतना ही कठिन है, मगर यह बात किसी को सिखाई नहीं जा सकती । अपने आप सीखनी पडती है । मै यह बात निश्चित रूप से जानता हूँ कि इसे सीखने में तुम्हें देर नही लगेगी । आज जो लोग तुम्हारा मजाक उड़ाते है । वही एक दिन प्रकट रुप में न सही, मन ही मन इस सत्य को स्वीकार करेंगे । हम लोगों के जाने का दिन पास आ रहा है । शायद हम इसे देख न पाये, पर उतने दिनों बाद यदि यह बात तुम्हें याद रहे तो मेरी बात याद आयेगी ।

आशा लता के निबन्धों को पढा । बचपना है । अभी इन लेखखो के भले -बुरे पर विचार करने का समय नही आया है । लडकपन का एक भारी दोष है कि बहुत सी पुस्तकें पढ जाने का अभिमान इन लोगों पर सवार हो जाता है । इसलिए इनकी रचना में अपना कुछ नहीं रहता, रहती है दूसरो की रटी हुई चीजें । और कारण-अकारण ठूँसी हुई विद्या की वाचलता । इस लडकी को इतनी जल्दी लिखने को मना कर देना । लिखने की द्रुतगति केरानी का काम है लेखक का नहीं — इसे नहीं भूलना चाहिए । कम उम्र में कहानी लिखना अच्छा है, समालोचना नहीं । चाहे उपन्यास पर हो या नारी पर हो

लीजिए । मेरी बाकी पाण्डुलिपि वापस कर दीजिये । मुझे इसकी यथेष्ट आशका है । लेकिन मेरी तरफ से भी कुछ कैफियत नही है, ऐसी बात नही । जैसे –

कुछ-कुछ तुम्हारी ही तरह मै भी उन नारो को नही मानता । जैसे कला-कला के लिए, धर्म धर्म के लिए, सत्य सत्य के लिए, आदि । कला की उपलब्धि सबकी एक प्रकार की नही होती । वह अन्तर की वस्तु है । उसकी सज्ञा का निर्देश करने जाना और उसके बाद ही एक जोर का एक झोका देना अवैध है । धर्म, सत्य आदि केवल बातें ही नही है । उनसे भी कुछ अधिक है, इस बात को सदा याद रखना चाहिए । कहानी का उद्देश्य अगर चित्तरजन करना ही है तो यह तथ्य रह जाता है कि वह दो शब्दों का समावेश है -- चित्त औररजन डाक्टर जितेन्द्र मजूमदार 'एम० डी० और मण्टूराम दोनों का चित्त एक वस्तु नही । एक चित्त जिस बात से खुशी से फूला नही समाता, हो सकता है कि दूसरे को उसमें कोई भी आनन्द न मिले । एक बहुशिक्षित व्यक्ति को देखा है जो 'दो धारा' के पन्द्रह बीस पृष्ठ से अधिक नही पढ सका । मगर मैं किस तरह से पुस्तक समाप्त कर गया यह समझ ही न सका । कहानी लिखने के नियम का उससे कहाँ तक उल्लघन किया गया है । यह मै नही जानता और जानने की इच्छा भी नहीं हुई । प्रसन्न हुआ था तृप्ति पाई थी, यह एक तथ्य है । फिर भी अगर तर्क किया जाय कि कला क्या है, तो उसे मै भी नही जानता, नही समझता, अवश्य ही चुप रह जाऊँगा । लेकिन इस छप्पन साल की उम्र वालें मन को किसी तरह राजी नही कर सकूँगा । अतएव हल चलाने के लिए ये मेरे तर्क नही है । जिन बातों को तुमने बहुत सोचकर लिखा है । उनकी उपन्यास लिखने में आवश्यकता नही है, यह नही कहता । लेकिन मेरे मन मे उपन्यास लिखने की जो धारणा है, उससे लगा है कि 'स्वपन' के चरित्र पर विचार करने से उसके अन्तिम हिस्से के साथ प्रारम्भ के हिस्से का उतना सामजस्य नहीं है । इसके अलावा पुस्तक को छोटा करने की आवश्यकता प्रारम्भ की ओर है । यह एक कौशल है, शुरू के हिस्से को पढने में रुचि जिसमे क्लान्त न हो जाय । एक बात और है मण्टू । लिखने बैठकर लिखने से न लिखना बहुत कठिन काम है । केदारनाथ बन्द्योपाध्याय सचमुच ही बडे लेखक है । मगर वे न लिखने के इशारे को नही समझ पाते हैं । क्या इस बात को तुमने उनकी पुस्तको में नही देखा है ? उनकी पुस्तके पढते समय बहुधा मुझे इसी बात का अफसोस हुआ है कि केदार बाबू न लिखने के उस कौशल को जानते है । इसी को कहते है लिखने का सयम । कहने की विषय - वस्तु जिसमें आवेग की प्रखरता के कारण प्रयोजन से एक पग भी अधिक न ठेल ले जा सके, बल्कि एक पग पीछे रहा तो अच्छा । तुम अगर इतना छोडना पसन्द करो, तो अपने यहाँ के किसी साहित्यिक मित्र को दिखाकर उनकी राय ले लेना । हाँ, ऐसा भी हो सकता है कि जिन अशों को उस समय काट दिया है उन्हें पुस्तक के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते में ही फिर जोड दूँ । जो भी हो तुम्हारी राय जान लेना अच्छा होगा, तब बहुत जल्द ही सब-कुछकाट-छाँटकर दुरुस्त कर देने में अधिक देर नही लगेगी ।

तुम्हारे नीरेन की चिट्ठियों को बहुत ध्यान से पढा था । तुम मुझ पर श्रद्धा रखते हो, प्यार करते हो, इसीलिए तुम्हे बहुत खला है । लेकिन उससे कुछ काम तो होगा नही । उन लोगों का पर्वतप्रमाण दम्भ इससे रचमात्र भी कम होगा । मुझे इसमे विश्वास नही । और उस लीलामय राय की बात यह आदमी कितना अधम है, इसकी कल्पना भी नही की जा सकती । तर्क वितर्क मे भी मेरे नाम के सग उसका नाम युक्त होगा, यह याद आते ही समग्र मन लज्जा से कटकित हो उठता है । उस आदमी के बारे मे इससे अधिक कुछ कहना चाहता । शायद एक दिन तुम लोग भी देखोगे कि विदेशी शासक के हाथों जिन स्वदेशी मुदगरों ने देश कल्याण पर सबसे बडा आघात किया है वह छोकरा उन्ही, जाति का है । जाने दो ।

तकु से शीघ्र ही एक दिन मुलाकात करूगा । यह नही बताऊँगा कि तुमने उसके बारे में मुझे कुछ लिखा है । लेकिन तुमने मुझे तो कुछ सूचित किया है, उसी के आधार पर जिरह करके सत्य का अविस्कार करने की चेष्टा करूगा । देखूँ, तकु क्या कहता है । श्री अरविन्द के सम्बन्ध मे कही भी तो मैने वह बात नही कही है । देश के सारे लोग उनपर गहरी श्रद्धा रखते हैं । क्या केवल मै ही नही रखता ? लेकिन, आश्रमवासियों प्रति मेरा मन बहुत प्रसन्न नही है । कारण है कुछ तकु की बातें और कुछ दूसरे आश्रम वासियो के सम्बन्ध में मेरी अपनी जानकारी । इसके अलावा तुम्हारा चला जाना मुझे बहुत ही खटका है । जब आई० सी० एस० या कानून नही पढा तब दु ख हुआ था । मगर जब गाने--बजाने और उसके साथ ही साहित्य को तुमने अपनाया तब वह क्षोभ दूर हो गया था । सोचा था सभी नौकरी करेंगे और अपने देश के लोगों को हाकिम या बैरिस्टर बनकर जेल भेजेगे -ऐसा क्यो हो ? मण्टू को खाने-पहनने की चिन्ता नही है, वह अगर भारत के कला - शिल्प को विदेशियों की नजरों मे बडा बना सके, बुद्धि इसके पिटे-पिटाये पथ से एक नया मार्ग निकाल सके तो क्या इससे देश को कम लाभ होगा, कम गौरव होगा ? तुम्ही से एक बार सुना था कि विदेशियो के पास 'सिम्फोनी' नामक एक वस्तु है जो सचमुच ही बड़ी है और उसे तुम देश के सगीत को देना चाहते हो । इसके बाद एक दिन सुना था कि तुम सब-कुछ छोडकर बैरागी बनने चले गये हो । तब अचानक लगा कि मेरी अपनी ही कोई बहुत बडी क्षति हो गयी है । इस जीवन में तुम्हें शायद फिर नही देख पाऊँगा । क्या तुम समझते हो कि यह मेरे लिए कोई छोटा दु ख है ? और कोई भले ही विश्वास न करे, मगर तुम तो जानते हो । यह बात मुझे चिर दिन घोर दु ख देगी, इसमे मुझे सदेह नही ।

एक मजे की बात सुनो मण्टू । उस दिन एक जरूरी काम से बैक गया था । कैशियर बगाली है । सुना कि एक नामी ज्योतिषी है । बडे जतन से मेरा कामकाज कर चुकने पर उन्होने मेरी जन्म-कुण्डली देखनी चाही । बोला, कुण्डली तो नही है, मगर राशि -चक्र नोट बुक मे लिखा है । उसे उसी समय उन्होंने लिख लिया, मेरी हाथ - रेखा की छाप ले ली । इस के बाद आगे उनका काम था । वे मेज से पचाग निकाल कर गणना में जुट गये । क्या कहा जानते हो ? कहा, एक साल के अन्दर आप दूसरा रास्ता पकडेंगे । पूछा, दूसरे रास्ते का क्या मतलब ? बोले आध्यात्मिक । मैने जवाब दिया कि कुडली मे वैसी बात है, यह मुझे काशी के भृगु-सहिता वालो ने भी बतलायी थी । मगर मै खुद उस पर पाई-भर भी विश्वास नही करता । क्यों कि आध्यात्मिक का 'आ' तक मेरे अन्दर नही है । बोले–एक साल के बाद अगर फिर मुलाकात हुई, तो इसका जवाब दूँगा । मैने कहा, एक साल के बाद भी मेरे मुँह से यही सुनेगे । उन्होंने केवल गर्दन हिलाई । उनका विश्वास है कि कुण्डली का फला फल गिनना जाने तो वह मिथ्या नही होता ।

मण्टू, एक बात शायद तुमने पहले भी मुझसे सुनी होगी । मेरे वश का एक इतिहास है । इस वश मे मेरे मझले भाई (प्रभास) स्वर्गीय स्वामी वेदानन्द को लेकर आठ पीढियों से अखड धारा मे सन्यासी होते रहे है -- केवल मै ही घोर नास्तिक हुआ । वशानुगत बात मेरे खून में उलटी बहने लगी । अतएव जीवन के पचपन वर्ष पार कर देने पर किसी को नया शिष्य बना पाने की आशा नही करनी चाहिए । लेकिन खजाची महाशय बिलकुल नि सशय है कि मैं बैरागी होऊगा ही ।

सुना है कि तुम्हारा अनिलवरण धूल को चीनी बना सकता है ; कहा जाता है कि आश्रम को सारी चीनी वही सप्लाई करता है, -- क्या यह सच है ? मैं विश्वास नही करता, क्योकि तब तो वह आश्रम में क्यों रहने जाता ? कलकत्ता आकर अनायास ही एक चीनी की दुकान खोल सकता था ।

बारीन से आजकल अकसर मुलाकात होती है । वह कहता है कि अब वह उधर कभी नही जायेगा । उतनी भीषण सख्ती के कारण उसकी आत्मा पिंजडे को छोडकर नहीं निकल गयी, यह बडे सौभाग्य की बात है, लेकिन तुम्हारी 'मदर' के बारे में उसके दिल मे गहरी भक्ति है । कहता है कि उस प्रकार की अदभुत व्यक्ति देखने में नही आती । कहता है कि उनकी सूक्ष्म दृष्टि में एक अदभुत वस्तु है । जितनी काम करने की शक्ति है, जितना अनुशासन है, बुद्धि भी उतनी प्रखर है । प्रत्येक व्यक्ति का प्रत्येक मामला उनकी नजरों के सामने रहता है । उनके आदेश और उपदेश के अतिरिक्त वहाँ कुछ भी नही हो सकता । इसलिए जो लोग बाहर से अचानक जाते हैं, वे उनके सबन्ध में तरह–तरह की उलटी-सीधी धारणाये ले कर लौटते है .. .

'दोला' की काट-छाँट को जरा-विचार कर पढना । एकाएक चिढ न जाना । ऐसा भी हो सकता है कि उसकी। कितनी ही कटी-छँटी बातों को अन्त तक मैं फिर बैठा दूँ। जो भी हो, मुझे उत्सर्ग न करना, बल्कि रवीन्द्रनाथ को करना। फिर एक बार मेरा विजयादशमी का स्नेहाशीर्वाद लेना इति।

— श्री शरत चन्द्र चट्टोपाध्याय

पुनश्च,— अनिल वरण की चीनी बनाने की खबर जरूर देना । बना सकता हो तो जावा की चीनी का बडी आसानी से बायकाट किया जा सकता है । यह तो देश का एक महान् काम हैं ।

ता० ५ ज्येष्ठ, १३४०

परमकल्याणीयेषु ।

मण्टू, बहुत दिनों से तुम्हे एक चिट्ठी लिखने का इरादा था, लेकिन किसी तरह नही लिख सका । आज कलम लेकर बैठा हूँ , कुछ लिखूँगा ही ।

. . श्रीकान्त का पाँचवाँ पर्व लिखकर समाप्त कर दूँगा, 'अभया' आदि के सम्बन्ध में और यदि तुम लोग कहते हो कि चौथा पर्व अच्छा नही हुआ तो बस रथ यही रूका ।

लेकिन इस बारे में कुछ अपनी बात कहूँ । मेरा अभिप्राय था, सहज घटना लेकर उस पर्व को समाप्त करूँगा और नाना दिशाओं से थोडे से शब्दों में तथा साहित्यिक सयम के अन्दर से कितना रस सृजन किया जा सकता है, इसकी परीक्षा करूँगा । उपादान या उपकरण के प्राचुर्य से नही, घटना की आसाधारणता से नही, बल्कि अति साधारण ग्रामीण अचल की रोजमर्रा की घटनाओं को ही लेकर यह पुस्तक समाप्त होगी ! विस्तार न होगा, रहेगी गम्भीरता, पूखानुपुख विवरण नही रहेगा, केवल इशारा रहेगा । केवल रसिकों के आनन्द के लिए । कहाँ तक क्या हुआ है, नही जानता । पर उपन्यास-साहित्य के बारे में जितना समझता हूँ, उससे यह आशा करता हूँ कि और कुछ भी अच्छा न बना हो तो कम से कम असयत होकर उच्छृखलता का स्वरूप प्रकट नही कर बैठा हूँ । लेकिन तुम्हारी राय चाहिए ही ।

उस दिन 'पुष्प-पात्र' मासिक पत्रिका में तुम्हारी रचना पढी । उसमें दूसरी कितनी ही बातों के अन्दर तुमने क्षुब्ध हृदय से बू . के नारी-विद्वेष का प्रतिवाद किया है, कारण का अनुसधान किया है । तुम उसे प्यार करते हो, तुम्हारे प्यार में कही आधात पहुँचे, इसके लिए मेरे मन मे काफी दुविधा और सकोच है फिर भी लगता है कि तुम्हे भीतर की कुछ बातें जान लेनी चाहिए । किसी ने लिखा है कि साहित्य-सृजन के अन्तराल में तो स्रष्टा रहता है, यदि वह छोटा हुआ तो उसकी सृष्टि भी बडी होने मे बाधा पाती है । इस

बात पर मै भी विश्वास करता हूँ । बुद्धदेव बसु ने लिखा है कि सावित्री जैसी मेस की नौकरानी मिलती, तो मै मेस ही मे पडा रहता । लेकिन मेस मे पड़े रहने से ही नही होता-सतीश भी बनना चाहिए । नही तो सावित्री के हृदय को नही जीता जा सकता, तमाम जिन्दगी मेस मे बिताने पर भी नही । इसके अलावा यह लडका जरा भी नही समझता कि सावित्री सचमुच ही नौकरानी कोटि की लडकी नही है । पुराणों मे लिखा है कि लक्ष्मी देवी को भी मुसीबत में पडकर एक बार ब्राह्मण के घर दासी का काम करना पडा था । पाँच पाण्डवों मे से अर्जुन उत्तरा को जब नाचना-गाना सिखाते थे, तब उनकी बात सुनकर यह नही कहा जा सकता कि इस तरह का उस्ताद जी मिलने पर सभी लडकियाँ नाचना-गाना सीखने के लिए पागल हो जाती । सारे सम्प्रदायो की तरह वेश्याओं मे भी ऊँची-नीची होती है । वेश्या के निकट जो वेश्या दासी होकर रहे उसका और मालकिन का चाल-चलन एक नही हो सकता । इनके बारे में अनुभव जुटाने के लिए रुपया अधेली भी खर्च करने से काम चल जाता है, लेकिन उनको जानने के लिए बहुत कुछ खर्च करना होगा । आसानी से नही मिलती । रग पोतकर वे बरामदे में मोढे पर नही आ बैठती । तुमने जिस मिष्ट-भाषिणी सुशीला बाईजी का उल्लेख, किया है, उसे क्या सभी देख पाते है ? उसके लिए अनेक उपकरण, अनेक आयोजन न हों तो नही चल सकता । या तो अपने बहुत रुपयों या किसी राजकुमार मित्र के बहुत रुपये खर्च हुए बिना ऊपरी स्तर में प्रवेशाधिकार नही मिलता । जो रास्ते पर से आदमी पकडकर खपरैल के घर में घुसती है उनका परिचय मिलता है । गरीबों का अनुभव नीचे के स्तर में ही सीमित रहता है इसीलिए वह श्रीकान्त की टगर और बाडी वाली को ही पहिचानता है । यह सारे उदाहरण अनावश्यक और लिखने मे भी लज्जाजनक हैं लेकिन जो लोग अन्धाधुन्ध नारी-जाति के प्रति ग्लानि के प्रचार को ही यथार्थवाद समझते है उनमे आदर्शवाद तो है ही नही, यथार्थवाद भी नही है । है केवल अभिनय और झूठी स्पर्धा-न जानने का अहकार । स्त्रियो के विरूद्ध कलह करने की स्पिरिट से साहित्य का सृजन नही होता ।

मेरा आन्तरिक स्नेह और शुभेच्छा लेना । साहाना से मुलाकात हो तो कह देना कि मै उसे आशीर्वाद देता हूँ ।

शरत् बाबू

सामताबेड पानित्रास, हवडा

१० भाद्रपद, १३४०

कल्याणीयेषु,

मण्टू, तुम्हारी चिट्ठी मिली । श्रीकान्त के चतुर्थ पर्व पर तुम्हारा भेजा हुआ निबन्ध पहले ही मिल गया था । पहले लगा था कि निबन्ध बहुत बडा है । शायद काटने-छाँटने की जरूरत है, लेकिन दो बार बडे ध्यान से पढने के बाद मुझे सन्देह नही रहा कि इस रचना मे कुछ काटा-छाँटा नही जा सकता । मेरी पुस्तक के बारे में लिखा है इसीलिए मुझे इतना अच्छा लगा है कि नही, यह बात मेरे मन में बार-बार आयी है । मगर बहुत सोचने पर भी कहने मे सकोच नही है कि यह समालोचना तुमने किसी भी पुस्तक के बारे मे की होती, मुझे इतनी ही अच्छी लगती । इसका कारण मुख्यत श्रीकान्त की ही बातें है, यह सच है । पर साहित्य के विचार की जिस धारा की तुमने इतने माधुर्य और सहृदयता से आलोचना की है, वह केवल सुन्दर ही नही बन पडी है, उसमें निरपेक्ष न्याय भी हुआ है । इसलिए कोई भी सहृदय पाठक इसे स्वीकार करेगा । इसके अलावा आलोचना कथोपकथन की शैली में की गयी है । मण्टू, तुमने यह बडी अच्छी पद्धति का आविष्कार

किया है । इस तरहसे नही लिखने से इतने बड़े निबन्ध को चाहे जितना भी अच्छा क्यों न हो पढने के लिए शायद लोगो में धीरज नही रहता । पढने में एक सुन्दर कहानी जैसा लगता है । इसे किसी अच्छी मासिक पत्रिका में छपने के लिए भेजूँगा और अनुरोध करूँगा कि इस रचना की कोई भी चीज काटी न जाय । लेकिन तुम्हें प्रूफ भेजना सम्भव होगा कि नही, यह ठीक-ठाक नही बता सकता । पर अगर समय हुआ तो यही होगा ।

श्रीकान्त चतुर्थ पर्व तुम्हें इतना अच्छा लगा है जानकर कितनी प्रसन्नता हुई यह नही बतला सकता , इसका कारण यह है कि इस पुस्तक को मैने सचमुच ही बडे यत्न से मन लगाकर हृदयवान् पाठकों को अच्छा लगने के लिए ही लिखा है। तुम्हारे जैसा एक पाठक भी श्रीकान्त को भाग्य से मिला है, यही मेरे लिए परम आनन्द की बात है । अब दूसरा पाठक नही चाहिए । कम से कम न मिले तो भी दुःख नही और मन ही मन सोचा था कि न जाने कितनी भाषाओं की कितनी ही पुस्तकें तुमने इन कई वर्षो में पढी है फिर भी उनके बीच मेरे जैसे मूर्ख आदमी की रचना पढने के लिए तुम्हें समय मिला है, यह क्या कम आश्चर्य की बात है ? जानता हूँ कि मै कितना तुच्छ, कितना सामान्य लेखक हूँ । न विद्या है और न पाडित्य । देहाती आदमी जो मन में आता है, लिख जाता हूँ । इसीलिए आज के जमाने में पण्डित प्रोफेसर लोग जब गाली-गलौज करते हैं तो डर के मारे चुप रह जाता हूँ सोचता हूँ , कि इनके सामने मैं कितना साधारण हूँ । लेकिन इसके अन्दर जब तुम्हारे जैसे मित्र की प्रशसा मिलती है तो इस बात को गर्व के साथ याद करता हूँ कि पाण्डित्य में मण्टू इनसे छोटा नही है । फिर भी उसे भी तो अच्छा लगा है । यह मेरे लिए बहुत बडा भरोसा है, बहुत बडी सान्त्वना है ।

बहुत दिनों से तुम्हे देखा नही है । देखने की बहुत इच्छा होती है । दशमरे में अगर पाण्डिचेरी आऊँ तो क्या दो-एक दिन के लिए रहने की व्यवस्था कर सकते हो ? आश्रम में रहने का नियम नही है, वह मै जानता हूँ । पर वहाँ क्या कोई होटल नही है ? अगर हो तो लिखना । इति

तुम्हारा नित्य शुभानुध्यायी
श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामतावेड, पानित्रास, हवडा
१६ माघ १३४०

परमकल्याणीयेषु,

मण्टू, बहुत दिनों से तुम्हे कुछ नही लिखा । आज सबेरे अचानक तुम्हें लिखने की इच्छा इतनी प्रबल क्यों हो उठी यही सोचता हूँ । शायद फरीदपुर के दिनेश बाबू की आन्तरिक बाते होंगी । तीन दिन हुए फरीदपुर से लौटा हू । साहित्य-सम्मेलन था और म्युनिसिपैलिटी-एड्रैस। मंच पर जब लम्बा और सारगर्भ निबन्ध पढ़ा जा रहा था तब नेपथ्य में 'अनामी' की आलोचना चल रही थी । हाँ, अस्सी फीसदी विरोधी मत था । इसके बीच अचानक एक सज्जन स्वीकार कर बैठे कि अनामी पुस्तक को उन्होंने शुरू से आखिर तक चार बार पढा है और चार बार पढने की इच्छा है । तब "कहते क्या है ? दिनेश बाबू, आप फरीदपुर बार के विशिष्ट रत्न हैं । प्रचण्ड तार्किक वकील हैं– आप में यह दुर्बलता कैसी ?।"

"दिनेश बाबू, आपका दिमाग क्या खराब हो गया है ?"

"दिनेश बाबू देखता हूँ आप ससार के अष्टम आश्चर्य है।" आदि आदि।

अवश्य ही मै चुप था-मौन गवाह की तरह। एक बार मुझे अकेले पाकर इन्ही दिनेश बाबू ने कहा "शरत् बाबू सारी पुस्तकें ससार मे सभी के लिए नही है। मै शान्तदास बाबाजी का शिष्य-वेष्णव हूँ। भगवान में विश्वास करता हूँ। दिलीप बाबू ने जिस भाव की प्रेरणा से कविताएं लिखी ससार में उसकी तुलना कम ही है। जब भी समय मिलता है, मुग्ध होकर कविताओ को पढता हूँ। कितनी अच्छी लगती है। यह दूसरे को नही समझा सकता।"

सुनकर मन ही मन सोचा, इससे बढकर निष्कपट, सच्ची आलोचना और क्या हो सकती है ? जिस तार को तुमने झकृत किया है, उनके हृदय का वही तार गुनगुनाकर बज उठा है। लेकिन जिसका तार नही बजा, वह किसी के चार-चार बार पढने की बात सुनकर आश्चर्य प्रकट न करेंगे तो क्या करेगे ? और जो लोग केवल विस्मय प्रकट करने को ही काफी नही समझते है, वे गाली-गलौज पर उतर आते हैं। मात्रा जितनी ही बढती जाती है, अपने को उतना ही निडर और बहादुर समझते है। ऐसा ही तो देखता आ रहा हूँ।

उस, दिन हीरेन नामक एक लडके ने मुझे एक चिट्ठी लिखी है कि वह 'अनामी' के लिए एक आलोचना-सभा करना चाहता है और मुझे सभापति बनाना चाहता है। मैने उस चिट्ठी पाने के डेढ़ मिनट के भीतर ही जवाब दे दिया-राजी हूँ। मन स्थिर करना और डेढ मिनट के अन्दर जबाब देना। मै कहता हूँ कि दिनेश बाबू के चार-चार बार 'अनामी' पढने से भी यह बात विस्मयजनक है। आगामी सभा मे इस बात का उल्लेख करूँगा।

कुछ दिनो से तुमसे एक अनुरोध करने की बात सोच रहा हूँ। वह है आशालता की रचना के सम्बन्ध में। वह तुम्हे श्रद्धा करती है तुम्हारे कहने से सुन भी सकती है। उससे कहना कि लिखने में वह जरा सयत हो। हाँ, सयम वस्तु एक प्रकार की सहज बुद्धि (इन्सटिक्ट) है। अपने में अगर न हो तो दूसरे को समझाया नही जा सकता। फिर भी कहना कि जहाँ तहाँ अकारण ही दूसरों की रचनाओं के उद्धरण देना, इससे बढकर असुन्दर वस्तु दूसरी नही। अमुक ग्रथकार की '—' इन बातों से एकमत हूँ और उस आदमी की . . . ये पक्तियाँ भद्दी है, अमुक लेख की ' . . . ' इन पक्तियो ने बडे ही सुन्दर ढग से प्रकट किया है, आदि आदि। ये बाते अत्यन्त रूखे ढग से पाठक से कहना चाहती है कि तुम लोग देखो कि इस छोटी उम्र मे मैने कितना समझा है, कितनी पुस्तके पढी है। मण्टू, तुम अपनी रचनाओ के उद्धरणों को उससे एक बार पढने के लिए कहना। कहना कि तुम्हारे बहुविस्तृत और गहरे अध्ययन में यह नितान्त आवश्यकता के कारण आ पडी है। अकारण ही नही आई है, और पाण्डित्य दिखाने की दाम्भिकता से भी नही। आशा बच्ची है, अभी से उसे इस विषय में सावधान कर देने से आशा है फल अच्छा ही होगा, वह शायद नही जानती कि उद्धरण के मामले में तुम्हारा अनुकरण कर पाना सहज काम नही। बहुत ही कठिन है। दूसरे हजारों प्रकार के असदमो की बात नहीं उठाऊँगा। क्योकि अगर बुद्धदेव बसु उसका साहित्यिक आर्दश (हीरो) है तो उसे सभाला नही जा सकेगा। गहरी पीडा के साथ ही ये बातें तुमसे कही। मण्टू, तुम्हें न जाने कितनी बार कहा है कि लिखने मे सयम-साधना जैसी दूसरी कठिन साधना और नही। जिसे अनायास ही लिख सकता था, उसे न लिखना। रसिक पाठक का मन तृप्ति से परिपूर्ण हो जाता है, जब वह सयम के इस चिन्ह को देखता है। जाने दो। मेरी वह चिट्ठी जो 'स्वदेश' ओ प्रचारक' मे प्रकाशित हुई थी उसके बारे में कवि ने मुझे एक चिट्ठी लिखी थी। उसके अन्त मे लिखा था "तुमने बार-बार मुझे तीक्ष्ण कठोर भाषा में आक्रमण किया है। लेकिन मैने कभी खुले आम या गुप्त रूप से निन्दा करके बदला नही लिया।

इस रचना ने उस फेहरिस्त में एक अक और जोड भर दिया है।"

उसदिन उमाप्रसाद ने मुझसे कहा था कि इस चिट्ठी को लिखकर मैंने अन्याय किया है। क्योंकि उसकी प्रत्येक पक्ति में जहर फैल गया है। लेकिन क्या करूँ, लाचार हूँ। जो लिख गया वह वापिस नही लिया जा सकता। अब कवि से मेरा विच्छेद शायद सम्पूर्ण हो गया। किन्तु इस विषय में तुमने 'स्वदेश' में जो चिट्ठी लिखी है वह बहुत अच्छी बनी है। दुख प्रकट हुआ है, पर क्रोध नही। मुझसे यही त्रुटि हो गयी है। लेकिन न जाने क्या हो गया, 'परिचय' की उस रचना को पढते ही सारे बदन मे आग लग गयी। तब कागज-कलम लेकर चिट्ठी लिख डाली।

श्रीकान्त के चतुर्थ पर्व की आलोचना 'विचित्रा' में एक बार फिर पढी। अगर यह श्रीकान्त न होकर और कुछ होता तो मुक्त कण्ठ से प्रशसा करके चैन की सास लेता। रचना सचमुच ही सुन्दर है। जिसने सचमुच ही पढा है और समझा है उसके आनन्द की अभिव्यक्ति है।

मण्टू, बीच-बीच में चिट्ठी लिखना, जवाब मिले चाहे न मिले। तुम्हारी चिट्ठी पाना मेरे लिए परम तृप्ति की बात है। एक बात और। बन्धु सुरेन मैत्र (जिनका सारा सिर गजा है, प्रो० शिवपुर इंजनियरिग कालेज, जिनके यहाँ हम जाते थे) श्री अरविन्द के बडे भक्त हैं। उन्होंने अनुरोध किया है कि आज तक तुमने मेरे बारे मे उन्हे जितनी रचनायें भेजी है (और लिखने के बावजूद जिन्हें मेने कभी वापिस नही किया है) उन्हें एक बार पढने के लिए माँगा हे। मैने कहा कि दूँगा। लेकिन कही गुस्सा न हो जाना। सुरेन ब्राह्म होने पर भी आदमी अच्छा है। इति।

तुम्हारा नित्य शुभाकाक्षी
श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

पी० ५६६ मनोहर पुकुर, कालीघाट कलकत्ता
६ ज्येष्ठ, १३४२

परमकल्याणीयेषु,

पहले अपनी खबर दे रहा हूँ। परसों घर से लौटने के बाद से सिर में दर्द है। बुद्धदेव भट्टाचार्य, डा० कानाई गांगुली बैठे हुए है। एक डाक्टरखाने मे टेलीफोन किया जा रहा है और मेरे ड्राइवर से कहा जा रहा है कि वह मोटर निकाले। अर्थात खून का दवाव दिखाने जाऊँगा। अगर दबाब अधिक न हुआ तो अच्छा ही है, अगर हुआ तो बिस्तर पर पडकर परम आनन्द से हपय बिनाऊँगा। मेरे लिए उससे बढकर आनन्द और आराम की दूसरी वस्तु नही है। श्री भगवान यही करें। जाने दो।

बुद्धदेव से तुम्हारी चिट्ठी आधी पढा ली है। किसी फ्रासीसी जाननेवाले मित्र से बाकी आधी को पढा लूँगा।

मण्टू, इस अति तुच्छ 'निष्कृति' को लेकर समरागन मे कूद पडना और टीन का खडग लेकर भैसे को काटने जाना एक ही बात है। सचमुच ही अपने अन्दर विशेष बल नही पाता। केवल यही एक बात याद आती है कि तुम्हारे गुरुदेव का आशीर्वाद है और तुम्हारा अकृतिम स्नेह और श्रद्धा। लेकिन भाई, ऐसा लगता है कि मेरी ओर से कुछ भी नहीं है।

तुम श्रीकान्त का अनुवाद करने मे क्यों सकोच कर रहे हो ? अगर अनुवाद होना है तो तुम्ही से होगा। भवानी को बुलाकर श्रीकान्त चतुर्थ पर्व देकर किसी अध्याय का

अनुवाद कर डालने के लिए कहा था, आठ-दस दिन के बाद वह खुद तो आया नही, चिट्ठी लिखकर सूचित कर दिया कि हिम्मत नही होती और जैसी अँग्रेजी में उसने चिट्ठी लिखी है, इससे लगता है कि उसकी बात गलत नही है। उसने सच ही लिखा है, उससे नही होगा। यदि होगा तो वह अखबारी भाषा होगी। सोमनाथ मित्र दूसरे पर्व का अनुवाद करने के लिए उद्यत हो गये हैं, इस बात को मै खुद भी नही जानता। 'विचित्रा' के उपेन ने अगर खुद वह व्यवस्था की हो तो बाद दूसरी है। पता लगाऊँगा, मै तो खुद सोच भी नही पा रहा हूँ कि तुम्हारे सिवा इस काम को और कौन हाथों में ले सकता है। 'निष्कृति' का जो अनुवाद तुमने किया है उससे अच्छा कौन करता ? लेकिन तुमसे श्रीकान्त का अनुवाद करने के लिए कहने की इच्छा नही होती। क्योंकि इतने बडे परिश्रम के काम मे हाथ लगाने से तुम्हारे कामों को क्षति पहुँचेगी।

'निष्कृति' के बारे में तुम्हें जिस तरह की व्यवस्था करने की इच्छा हो, करना। यहाँ छोटी कहानियों का अनुवाद कराने की चेष्टा कर सकता हूँ। मगर आदमी नही मिलते। 'पण्डित महाशय' का अनुवाद मेरे ही पास है, मगर उसे देखने से शायद तुम्हे दु ख होगा। माया के साथ मेरी अभी तक मुलाकात नही हुई, आशा करता हूँ कि दो-एक दिन में हो जायेगी। मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना। इति।

शरत् दादा

पुनश्च -बाकी समाचार बुद्धदेव ही तुम्हें देगा।

श० च०

पी०५६६ मनोहर पुकुर, कलकत्ता

३ माघ, १३४१

परमकल्याणीयेषु,

मण्टू, कल रात को गाँव के घर से यहाँ आ गया हूँ।

(१)तुम्हारी निशिकान्त की तसवीर अच्छी बनी है। बहुत दिनों के बाद फिर तुम्हारा मुँह देखा बडी प्रसन्नता हुई है। अब सचमुच ही देखने का बडी इच्छा होती है। लेकिन आशा छोड दी है। सोचा है इस जीवन में अब नहीं देख सकूँगा।

(२)टाइपराइटर सही-सलामत पहुँच गया है, यह संतोष की बात है। डर था कही विकलाग होकर तुम्हारे आश्रम में जा पहुँचे। उस दिन हीरेन ने आकर कहा कि मण्टू दादा का अपना टाइपराइटर पुराना हो गया है, उन्हें एक नयी मशीन चाहिए। कहा, जरा दौड-धूपकर भेज दो न हीरेन। वह राजी हुआ। यह सब-कुछ उसीने किया है। मै जड वस्तु हूँ। मुझसे कुछ भी नही होता। मैने केवल रुपये का चेक लिख दिया था। तुम्हें पसन्द आया है, इससे बढकर मेरे लिए आनन्द की बात नही। जिस आदमी ने अपना सब-कुछ दे दिया, उसे देना नही है, पाना है। मुझे बहुत-कुछ मिला, तुमसे बहुत अधिक।

(३)श्री अरविन्द के हाथ की लिखी चिट्ठी सम्हालकर रख दी है। यह एक रत्न है।

(४)'निष्कृति' का अच्छा अनुवाद करने के लिए तुम यथासाध्य प्रयत्न करोगे, इसे मै जानता था। तुम मुझे सचमुच प्यार करते हो इसलिए नही। जो यथार्थ में साधु का व्रत ग्रहण करते हैं यह उनका स्वभाव है। इसको किये बगैर उनसे नही रहा जाता। या तो करते नही हैं पर करने पर बेगार नही करते।

(५)जब श्री अरविन्द ने स्वय देख देने का सकल्प किया है तो अनुवाद अच्छा ही होगा। लेकिन मण्टू, पुस्तक में अपना कौन-सा गुण है ? श्री अरविन्द को क्यों अच्छी

लगी, नही जानता। कम से कम अच्छी नही लगती तो अचरज नही होता, खिन्न भी नही होता। तुम जब श्रीकान्त का प्रचार कर सकोगे तभी आशा करूँगा कि एक बंगाली कहानीकार को पश्चिम वाले कुछ श्रद्धा की दृष्टि से देखते है। तुम्हारा उद्यम और श्री अरविन्द का आशीर्वाद रहा तो यह असभव भी एक दिन सम्भव होगा। इसकी मुझे उम्मीद है।

(६)अनुवाद के मामले में तुम्हारी पूर्ण स्वतन्त्रता मैने स्वीकार की है। इसका कारण यह है कि तुम तो केवल अनुवादक ही नही हो, खुद भी बडे लेखक हो। तुम्हें अकिंचित कर साबित करने वाले लोगों की भी कमी नही, उनमें यह चेष्टा है और अध्यवसाय की सीमा नही। होने दो। उनकी समवेत चेष्टा से तुम्हारी और एकाग्र साधना कहाँ बडी है। तुम्हारे गुरू की शुभाकाक्षा तो सब-कुछ के पीछे है ही। उनकी सारी कुचेष्टाए सफल होंगी और तुम्हारे अन्तर की जाग्रत शक्ति सार्थक नहीं होगी, ऐसा हो ही नही सकता मण्टू।

(७)रवीन्द्रनाथ मुझे इण्ट्रोडूयस करना चाहेंगे। इसका भरोसा नही करता। मेरे प्रति तो वह प्रसन्न नही है। इसके अलावा उनके पास समय ही कहाँ है। साहित्य-सेवा के काम के बारे में वह मेरे गुरुकल्प है, उनका ऋण मै कभी चुका नही सकूँगा। मन ही मंन उन पर इतनी श्रद्धा, भक्ति करता रहता हूँ। लेकिन भाग्य ने गवाही नही दी। मेरे प्रति उनकी विमुखता का अन्त नही। अतएव इसकी चेष्टा करना बेकार है।

(८)हीरेन शायद आज ही कल के अन्दर आयेगा। उसे तुम्हारे कागज भेज देने के लिए कहूँगा।

(९)बाकी रही तुम्हारी बात। मै तुम्हारा बहुत ही कृतज्ञ हूँ, मण्टू इसमें अधिक क्या कहूँ। चिट्ठी लिखने की बात सदा से मेरे लिए जटिल रही है। मानों सम्हालकर लिख ही नही पाता। इसलिए मुझे जो बातें कहनी चाहिए थी, कह नही सका था। वह मेरी अक्षमता है, अनिच्छा कभी नही, इस पर विश्वास करना।

मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना और सौरीन को कहना। लडके की बात याद नही आ रही है। स्वर्गीय दादा महाशय के यहाँ या तकू के यहाँ शायद देखा होगा।

(१०) श्री अरविन्द की नववर्ष की प्रार्थना सचमुच ही बहुत अच्छी लगी। यथार्थ में वह बहुत बडे कवि है।

शुभाकाक्षी

श्री शरत्‌चन्द्र चट्टोपाध्याय

पी० ५६६ मनोहर पुकुर, कालीघाट,

कलकत्ता ७ चैत्र, १३४१

परमकल्याणवरेषु,

मण्टू, बहुत दिनों से तुम्हें चिट्ठी नही लिख सका। जानता हूँ अन्याय हुआ है। इसकी सजा है इससे भी बेखबर नही। लेकिन यह भी देखता आ रहा हूँ कि अक्षम लोगो की अक्षमता अगर अकृत्रिम होती है तो उसे पूरा करने के लिए भगवान आदमी भी जुटा देते है, एकदम रसातल मे नही भेज देते। बुद्धदेव भट्टाचार्य के रूप में यह आदमी मुझे मिला है। मै तुम्हें जो कुछ कहना चाहता हूँ, उसके मार्फत कहता हूँ। और वही खबर भी दे जाता है। तुम्हारी तरह उसका स्नेह भी मेरे प्रति सचमुच ही आन्तरिक है। सचमुच ही चाहता है कि मेरा भला हो, मेरे यश मेरी प्रशंसा में कही कोई न रह जाये। उस दिन, उसने मुझे जबरदस्ती पकड ले जाकर हाफमैन के कैमरे के सामने बैठाकर तस्वीर

उतरवा ली । तब छोडा । कहा दिलीप कुमार की माँग है, अवहेलना नही कर सकता । उन्होने जो परिश्रम किया है, हमे उनकी कुछ सहायता करनी चाहिए अर्थात मेहनत में हाथ बटाना चाहिए । सब-कुछ क्या वे अकेले ही करे ? बुद्धदेव समझता है कि मै बहुत बडा लेखक हूँ, अतएव बडे लेखक का सम्मान मुझे मिलना ही चाहिए । मै बहुतेरा कहता हूँ कि बहुत छोटा लेखक हूँ । योरप् मुझे कोई सम्मान नही प्रदान करेगा । इसलिए अपने अन्दर कोई भरोसा नही पाता । वह कहता है कि तो क्या दिलीप बाबू व्यर्थ ही इतना परिश्रम कर रहे है ? यानि फिजूल मेहनत नही करते । और अरविन्द ने निश्चय ही उन्हे आशा दिखाई है । मैं कहता हूँ कि यह तो अरविन्द जानें ।

उस दिन वशिष्ठ वशीश्वर सेन की अमेरीकन स्त्री ने तुम्हारा 'निष्कृति' का अनुवाद देखने के लिए विशेष अनुरोध किया । उन्हे खबर मिली है कि उसमे श्री अरविन्द की कलम लगी है, इसीलिए इतना आग्रह है । कहती है कि इसकी एक प्रति वह अप्रैल मे अमेरिका ले जाकर प्रकाशित कराने का चेष्टा करेंगी । पहले वह 'एशिया' पत्रिका की सम्पादिका थी । वहाँ के बहुतेरे प्रकाशकों से सुपरिचित है । मै सोचता हूँ कि 'निष्कृति' न होकर 'श्रीकान्त' होता तो कुछ आशा भी थी । लेकिन उस देश मे 'निष्कृति' को किस बात से समादार मिलेगा ? बहरहाल एक प्रति तुम मुझे दो मण्टू, कम से कम मै पढ देखूँ, कैसी हुई है । बुद्धदेव ने भी शायद अब तक तुम्हें लिखा होगा । तुमने जो-जो चीजें भेजने के लिए लिखा था, उन्हे भेजने के लिए कहा है । बहुत सम्भव है इतने दिनो मे तुम्हारे पास पहुँच गयी हो । देखता हूँ 'निष्कृति' के फ्रान्सीसी अनुवाद का इरादा भी तुममे है और तुम चेष्टा भी कर रहे हो । मुझे अपना भरोसा नही । पर सोचता हूँ श्री अरविन्द के आशीर्वाद से असम्भव भी सम्भव हो सकता है । ससार मे शायद यह भी होता है ।

तुम फकीर आदमी हो । फिर भी मेरे लिए तुम्हारा बहुत खर्च हो रहा है । अब बुद्धदेव के आते ही इतना मै भेज दूँगा । बुद्धदेव लडका बहुत पढा हुआ है सस्कृत और वनस्पति शास्त्र का काफी अच्छा ज्ञान है । कालेज में वह इन दोनो विषयो को पढाता है ।

मण्टू , अब श्रीकान्त मे हाथ लगाओ, जिन्दा रहते इस अनुवाद को ऑखो से देखा जाना चाहता हूँ ।

साहाना और तुम्हारे गाने की पुस्तक मिली और सम्हालकर अलमारी मे रख दी है , साहाना को मेरा आशीर्वाद कहना ।

मै चिट्ठी का जबाब देने मे जितना भी आलस क्यो न करूँ, तुम भुलकर भी बदला न लेना । सात-आठ दिनो के बाद हम सभी गाँव जा रहे है । जाते समय तुम्हें पता लिखूँगा । इसी बीच 'निष्कृति' के अनुवाद की एक प्रति कलकत्ते के पते से भेज दो । आशा है, तुम सभी अच्छे हो मेरा स्नेह और आशीर्वाद लेना । इति ।

शरत् दादा

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाम

बाजे शिवपुर, हवडा ।
२६ वैशाख, १३२६

श्री चरणेषु ,

लडको की जबानी सुना था कि आप मुझसे अतिशय असतुष्ट है । उत्तेजना मे आकर गुस्से मे आपके बारे मे कुछ झूठ बातें कही हो । लेकिन जो व्यक्ति इस बात का सत्यासत्य जाँच करने के लिये आपके पास गया था, उन्होने भी कम अपराध नही किया

है। इग्लैण्ड के बर्ताव से आप क्षुब्ध हुए है और सभी कुछ पजाव वाली चिट्ठी के लिए। उसके न लिखने से यह सब कुछ नही होता, इन बातों को उस समय मै ठीक-ठीक किस रूप मे कहा था, मुझे याद नही। आम तौर पर मैं इन बातें बनाकर या झूठ नही कहता, पर कहना असभव है, यह भी नही है। कम से कम यह जरूर कहा है कि इस बार विलायत से लौटकर आप बिलकुल बदल गये हैं और बगाल के लोगों के प्रति आपका पहले वाला स्नेह और ममता नही है। चरखा, नानकोआपरेशन आदि पर आपकी तनिक भी आस्था या विश्वास नही है, इत्यादि-इत्यादि

आपके निकट एक दिन नाराज होकर चला आया था। उसके बाद भी शायद इन झूठी बातों का प्रचार हुआ होगा। शायद मेरे मन में यह भाव था कि लोग गलत समझते हैं तो समझें।

आपके निकट मैने बहुत बडा अपराध किया है, पर प्रथम अपराध होने का कारण मुझे क्षमा करेगे। आपके अलावा और किसी बडे आदमी के यहाँ मैं जान बूझकर नहीं जाता, मेरा यह रास्ता भी मेरे अपने दोष के कारण बन्द हो गया है, यह बात याद आने पर दुःख होता है।

आपके शिष्यों में एक मै भी हूँ, उनकी तरह इतने दिनों तक मैने कभी आपकी निन्दा नही की। लेकिन इस बार क्यों मुझे ऐसी दुर्बुद्धि आयी, नहीं जानता।

मेरा प्रणाम ग्रहण करें। इति —

सेवक

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर, हवडा

२६ वैशाख, २६

श्री चरणेषु,

क्षुद्र स्वार्थ के लिए आप देश का अमगल करेंगे, इतना बडा अपवाद मैने दिया है तो उसके बाद पत्र लिखकर आपसे क्षमा याचना करना न केवल विडम्बना है, बल्कि आपके साथ विद्रूप करना है। लिहाजा आपके पत्र का स्वर जो इतना कठोर होगा, उसमे विस्मित होने का कोई कारण नही है।

मेरे अपराध की बाते लोगो ने आपके पास पहुँचाई है, उन्होंने कहीं इसकी सीमा नही रखी। इसके बाद क्या कहूँ।

मेरा प्रणाम ग्रहण करें।

सेवक

श्री शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर, हवडा

२माघ, ३०

श्री चरणेषु,

हजार प्रकार के कार्यों में सम्प्रति आपको तनिक भी अवकाश नही है, इस बात को

हम सभी जानते हैं। फिर भी मैने यह सोचकर लिखा था कि जो गीत आपके लिए बात करने जैसा ही सहज है, एक मात्र उसी के जोर से मेरे नाटक की सारी त्रुटिया ढक जाती।

सत्येन्द्र अगर जीवित होता तो आपकी इस चिट्ठी को दिखाकर आज आसानी से उससे गीत लिखा सकता था। उसके लिए यह पत्र आदेश जैसा होता। लेकिन वह परलोक मे है और दूसरा कोई नही जिससे जाकर कहूँ।

कलकत्ता आने पर आपको सास लेने की फुरसत नही मिलती। उस वक्त इस बात को लेकर मै उत्पात करना नही चाहता। मेरा शत कोटि पणाम स्वीकार करे।

सेवक

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड, पानित्रास पोस्ट

जिला हवडा

श्री चरणेषु,

आपका पत्र मिला। अस्वस्थता के कारण यथासमय उत्तर नही दे पाने के कारण अपराध हो गया। षोडशी के बारे मे आपकी राय को श्रद्धा और कृतज्ञता के साथ ग्रहण किया है। फिर भी दो-एक बात मुझे निवेदन करनी है, यह केवल मेरा व्यक्तिगत विषय नही है, आम तौरपर अनेक लोगों के साथ घटनाए होती है जिसे आप तक पहुँचाना आवश्यक है। इस नाटक को मैने अपने एक उपन्यास के आधारपर लिखा है। उसमे जितनी बाते कह सका हूँ, चरित्र सृष्टि के लिए जितनी घटनाओं का समावेश कर सका हूँ, इसमें वह नही कर पाया। काल की दृष्टि से नाटक का परिसर छोटा, व्याप्ति की ओर से इसका स्थान सकीर्ण, इसीलिए लिखते समय बार-बार अनुभव किया है कि यह ठीक नही हो रहा है। जबकि उपन्यास ही उसका आधार है तब ठीक किस रूप मे किया जाय, समझ मे नही आ रहा था। शायद उपन्यास से नाटक बनाते समय इस तरह की समस्या आती है। एक दृष्टि से काम सहज होता है, किन्तु दूसरी ओर से त्रुटि प्रचुर होती है और हुआ भी वैसा ही है। एक कारण और भी है। इस जीवन में विभिन्न अवस्था में गुजरते समय बहुत सी बातों को देखा है जिसे आपने कहा है— इस देश की लोकयात्रा (लोकनाट्य) के बारे में मेरी अभिज्ञता। किन्तु बहुत कुछ देखना और जानना साहित्यकारो के लिए बहुत ही अच्छा है, इस विषय पर मुझे सदेह है। कारण अभिज्ञता केवल शक्ति नही देती, बल्कि हरण भी कर लेती है। सासारिक-सत्य साहित्य के लिए सत्य नही भी हो सकता। सभवत यह पुस्तक इसका एक उदाहरण है। इसे लिखी है एक अत्यन्त घनिष्ट रूप से जानी हुई घटना को आधार बनाकर। वही जानकारी मेरे लिए परेशानी बनी। लिखते समय पग-पग पर जिरह करके मेरी कल्पना के आनन्द और गति में बाधा ही नही पहुँचाई बल्कि विकृत करती रही है। सत्य घटना के साथ कल्पना का मिश्रण करने पर शायद ऐसी बात होती है। जगत् में जो घटनाए वास्तव में होती है, उसके यथायथ विवरण से इतिहास का निर्माण होता है, पर साहित्य की रचना नही की जा सकती। जबकि सत्य के साथ कल्पना का मिश्रण करने पर षोडशी का निर्माण हुआ है। इस उपाय से जन साधारण के निकट पर्याप्त समादर प्राप्त हुआ, पर आपके यहा से इसकी कीमत प्राप्त नही हुई। एक प्रकार से मेरी पुस्तक की सारी प्रशसा निष्फल हो गयी।

इसी प्रकार मेरी एक पुस्तक है—ग्रामीण समाज। इसकी जितनी बिक्री है, उतनी ख्याति है। लोग इस पुस्तक की जितनी प्रशसा करते है, मैं उतना ही लज्जित होता हूँ। जानता हूँ कि यह स्थायी नही होगा, कारण इसमें सच-झूठ का मिश्रण है। झूठ स्थायी हो

जाता है, किन्तु सत्य की नीव पर जो असत्य है, उसे गिरते देर नही लगती। बात कुछ उल्टी मालूम होती है।

कभी मै तसवीर बनाया करता था। तसवीर मे इसका सिर, उसका धड, उसके पैर, इस तरह एक अच्छी चीज को खडी किया जा सकता है। कारण वह केवल बाहरी वस्तु है। आखो से देखने पर विचार किया जा सकता है, किन्तु साहित्य मे चरित्र सृष्टि के मामले मे ऐसा नही होता। मनुष्य के मन का पता पाना कठिन है। वहाँ अपने विचार या आवश्यकतानुसार इसका कुछ, उसका कुछ, कुछ सत्य, कुछ कल्पना जोड जाडकर लोकरजन के लिए तैयार किया जाता है। मगर कही धोखा रह जाता है और उत्तरकाल में उसी धोखे पर नजर जाती है। पता नही, शायद इसीलिए आजकल प्रखर, वास्तव साहित्य का चलन प्रारभ हुआ है। उसमे झुड के झुड लोग आते है, सभी छोटे हैं, सभी सत्य है, सभी हीन है, किसी मे कोई विशेषता नही है, अर्थात जैसा कि हम समाज को देखते है। सारी पुस्तक पढने के बाद सोचने में आता है कि इस पुस्तक को पढने से क्या लाभ हुआ ? कोई कहेगा– लाभ क्या होगा, यों ही बीच-बीच में शायद साधारण मामूली विषयों पर सूक्ष्मता से विवरण या निपूण चित्रण रहता है, उसकी जैसी भाषा होती है, वैसा ही आडम्बर। फिर मन प्रसन्न नही होता जबकि लोग कहते है – यही तो साहित्य है।

षोडशी के बारे मे आपने ठीक क्या कहा है, उसे समझ नही सका। केवल इतना समझ पाया हूँ कि ठीक नही हुआ है। आपकी नजर से यह चूक नही हुई है।

आपने परिप्रेक्षित का उल्लेख किया है। तसवीर बनाते समय इसमे दूरत्व के परिमाण में बडी चीजे छोटी, गोल चीज चपटी, चौकोर चीज लम्बी, सीधी चीज तीर्छी दिखाई देती है। कितनी दूर, किस स्थान पर वस्तु का आकार-प्रकार में क्या रूप होगा, कितना परिर्वतन होगा– इन बातों का एक नियम कैमरा की तरह मशीन को भी मानकर चलना पडता है। इसमे कोई व्यतिक्रम नही। मगर साहित्य के मामले में ऐसा कोई नियम-कानून नही है। साहित्य का सभी कुछ दारोमदार करता है– लेखक की रूचि ओर विचार-बुद्धि पर। अपने को कहा कितनी दूरी पर खडा रखना होगा, इसका निर्देश प्राप्त नही होता। कहने मतलब तसवीर का पारस्पेक्टिव तथा साहित्य का पारस्पेक्टिव, तर्क की दृष्टि से एक होने पर भी कार्य से एक नही है। इसके अलावा साहित्य का वर्तमान काल जितना बडा सत्य है, भविष्य का काल किसी सूरत से भी इतना बड़ा सत्य नही है। नर-नारी के एकनिष्ठ प्रेम को लेकर इतने युगो तक, इतने काव्य लिखे गये है कि इससे मानव को तृप्ति मिली है, उसने अनेक आसू बहाये है, यह भी आगे चलकर हसी के कारण बन जायेगें। कम-से-कम असभव नही है। इसका यह अर्थ नही कि आज उसे कल्पना मे ग्राह्य न करे।

एक क्रक्रिट उदाहरण दूँ। रामायण मे राम–रावण के युद्ध का विवरण काफी बडा है। राक्षस और बन्दरों ने मिलकर कौन, किस ओर से लडता रहा, किसने कौन-सा अस्त्र चलाया, उसके कितने नाम-धाम का वर्णन है। किसका हाथ, किसका पेर किसका गर्दन कटे, इसकी भी उपेक्षा नहीं हुई है। युद्ध क्षेत्र ऐसी घटनाए न छोटी है और न तुच्छ। सभव है तत्कालीन लोगों ने कवि से इनकी माग की हो और पाकर अकृत्रिम आनन्द प्राप्त किया था। लेकिन आज युद्ध क्षेत्र की तथा युद्धार्थी वीरो का युद्धकौशल अकिंचितकर हो गया है। साहित्य की दूरव्यापी पारस्पेक्टिव के अर्थ को आपने इस रूप मे इशारा किया है ?

उसके पूर्व मैने भी नाटक नही लिखा। आजकल दो-चार नाटक लिखने की इच्छा होती है, पर अनेक बाधाएँ है। मेरे उपन्यासो का फैसला पाठक करते है, उसका विस्तृत क्षेत्र हे, पर नाटक का परीक्षक कौन है, समझना कठिन है। रगमच के लोग या मूर्ख

दर्शक-- इसका हाईकोर्ट कहा है, नही जानता । रामायण-महाभारत या टाड साहब के राजस्थान से नाटक लिखने पर परीक्षा मे सफलता मिल सकती है, पर आपकी डाट सुननी पडेगी ।

अन्त मे आपने मेरी शक्ति का उल्लेख किया है-- 'तुम अगर वर्तमान युग की माग और जनता की भीड की रुचि न भुला सको तो तुम्हारी यह शक्ति बाधा पायेगी ।' आप विभिन्न कार्यो में व्यस्त है, मगर मेरी इच्छा होती है कि आपके पास आकर इस बात को अच्छी तरह समझ आऊँ । कारण वर्तमान युग बहुत बडी बात है, अगर उसकी बात नही मानेंगे तो वह भी सजा देगा ।

आपकी अनुमति के बिना आपका समय नष्ट करने की इच्छा नही होती । मै पत्र कायदे से लिख नही पाता-- अपनी बात को सजाकर नही लिख पाता । अगर लिखने मे कही कोई त्रुटि रह गयी हो तो क्षमा कर दे । इति--२६ फाल्गुन, १३३४ ।

सेवक

श्री शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

सामेताबेड पानित्रास

हवडा ।

श्री चरणेषु ,

मेरा दशहरे का शत-कोटि प्रणाम ग्रहण करें । इसी बीच आप नाना प्रकार के कठिन कार्यों में व्यस्त रहे और शान्ति निकेतन भी ठहर नही सके-- इसीलिए प्रणाम निवेदन करने मे विलम्ब किया ।

'कालेरयात्रा' [१] के साथ-साथ जो आशीर्वाद आपसे मिला, मेरे लिए वह श्रेष्ठ पुरस्कार है । आपका तुच्छतम दान भी ससार मे किसी भी साहित्यिक के लिए सम्पद है, मै इस दान को सिर माथे ले रहा हूँ ।

मेरा भाग्य अच्छा था जो आप ३१ भाद्रपद को कलकत्ता नही आये । आते तो उस दिन का अनाचार देखकर अत्यन्त व्यथित होते और सबसे वडे दु ख की बात मेरे हमउम्र के साहित्यिकों ने इस उपद्रव का सूत्रपात किया था। [२] सात्वना की बात केवल यही है कि यह लोग इसी को पसन्द करते हैं, मै तो उपलक्ष्य मात्र हूँ । कारण पिछले साल की जयन्ती में इन लोगो ने कम दु ख देने की चेष्टा नही की थी । मै एक दिन स्वय आपको प्रणाम कर आना चाहता हूँ । केवल सकोच के कारण नही आ पाता हूँ, कही कोई कुछ समझ न बैठे ।

आपकी तबियत कैसी है ? इस गिरे स्वास्थ्य को लेकर आप कैसे इतना अधिक शारीरिक परिश्रम कर पाते हैं, यही विस्मय की बात है । इति-- २६ आश्विन, १३३६ ।

सेवक

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

---

१ 'कालेरयात्रा' नामक पुस्तक शरत् बाबू के नाम महाकवि रवीन्द्रनाथ ने समर्पित की है ।

२ शरत् बाबू के इस जन्म दिवस समारोह की अध्यक्षता महाकवि रवीन्द्रनाथ करने वाले थे । अस्वस्थ रहने के कारण नही आ सके, बदले में लिखित आशीर्वाद भेजा था ।

श्रीमती राधारानी देवी के नाम

सामताबेड

परम् कल्याणीयासु,

राधे, तुम्हारी चिट्ठी और चिट्ठी के द्वारा विजया (दशहरा) का प्रणाम यथास्थान पहुँच गया। षोडशी देखकर प्रसन्नता हुई, सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई। शिशिर वाकई बहुत सुन्दर अभिनय करता है और बड़े सुन्दर ढग से सिखाता है। रिहर्सल के वक्त मौजूद रहने पर यह भरोसा नहीं होता कि वे लडकियाँ स्टेज पर एक दिन इस तरह सवाद कह सकेंगी। अपूर्व धैर्य के साथ अपने अन्तिम लक्ष्य तक लगा रहता है। यह उसकी बहादुरी है।

'साहित्य की रीति नीति' नामक मेरा लेख पढकर तुम खिन्न हो गयी हो। तुमने अनुभव किया कि रवि बाबू पर व्यर्थ ही कटूक्ति की है। किन्तु कहा? जो व्यग या विद्रुप है, पढने पर भी मुझे नही मिला। उन्हें मै अत्यन्त श्रद्धा करता हूँ, वे मेरे गुरु है। संभव है कि लेख के दोष के कारण जो कहना चाहता था, कह नही पाया हूँ। दूसरे प्रकार का अर्थ हो गया है। अगर कोई गलती हो गयी है तो वह मेरी अक्षमता का दोष है, मेरे मन का नहीं।

तुम लोग एक बात नही जानते कि मेरा भाषा पर अधिकार सचमुच कम है। विनय नही कर रहा हूँ, तुम्हारे जैसे आत्मीय के निकट विनय करने से लाभ क्या होगा? फिर भी मै यथार्थ बात कह रहा हूँ, मन की बात कह रहा हूँ। भाषा के ऊपर दखल इतना कम है कि दो लाइन की कविता तक ठीक से लिख नहीं पाता–शब्द खोजे नहीं मिलते। इसीलिए जो कोई ऐसी-वैसी कविता लिखता है तब विस्मित रह जाता हूँ। इसी कारण कहने गया कुछ और हो गया कुछ। तुम लोग दुखी हुए और सोचने लगे कि बूढा होकर दादा ने एक दूसरे पर आक्रमण किया है।

जो भी हो, नवीन लेखकों के प्रति मेरा आकर्षण और आन्तरिक स्नेह है। उनसे भूल चूक होती है, इसे जानता हूँ; पर इसी कारण लोगों के सामने उन्हें अश्रद्धेय और प्रतिपन्न करने पर मुझे चोट पहुँचती है। इसके अलावा उन्हें कितना अपवाद, अन्याय दिया जाता है। यह इगित किया जाता है कि गरीब होने की वजह से वे लोग गन्दी चीजों को उछालकर अर्थोपार्जन करते हैं। मै इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि विरुद्ध पार्टी के लोग इस तरह की अफवाहें फैलाते हैं।

अगर कभी अपने बडे को अच्छी तरह जान सकोगी तब यह समझ लोगी कि विद्वेष नामक चीज उसमे नहीं है, कहना अतिशयोक्ति नहीं है। रवि बाबू में हो सकता है, पर तुम्हारे दादा में नही है। एक बात तुम्हें जता रहा हूँ, किसी से मत कहना। 'पथ के दावेदार' जब जब्त हुआ तब रवि बाबू के पास मैंने निवेदन किया आप अगर प्रतिवाद कर दें तो एक काम हो सकता है। पृथ्वी के सभी लोग यह जान जायेंगे कि यह सरकार किस प्रकार का साहित्य जब्त करती है। गोकि, मेरी पुस्तक सजीवित नहीं होगी। अग्रेज़ वैसे पात्र नहीं है। कम से कम संसार के लोगों को समाचार मिल जायगा। उन्होंने मुझे प्रत्युत्तर में लिखा–'ससार का परिक्रमा कर आया। देखा अग्रेजों की तरह सहिष्णु और क्षमाशील राज्यशक्ति दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारी पुस्तक पढने पर पाठकों का मन अग्रेज सरकार के प्रति अप्रसन्न हो उठेगा। तुम्हारी पुस्तक जब्त कर कुछ न करना, तुम्हें क्षमा किया जाना हुआ। इस क्षमा पर निर्भर होकर सरकार को कुछ कहकर निन्दा करना साहस की विडम्बना है।[१]

सोच सकती हो, बिना अपराध के कोई दूसरे को इस तरह कटुक्ति कर सकता है?

---

१ सम्पूर्ण पत्र और विवरण 'शरत्चन्द्रिका' जीवनी में है।

इस पत्र को उन्होंने छपवाने के लिय भेजा था, किन्तु मैने छापने के लिए नहीं भेजा। कवि का इतना बडा प्रमाणपत्र तुरन्त स्टेट्समैन आदि अग्रेजी पत्र ससार के सभी स्थानों में तार द्वारा सूचना दे देंगे। हमारे देश के बच्चो को बिना मुकदमा चलाये, जेलों में बन्द करके रखा गया है और इसके पीछे जो जनान्दोलन हो रहा है, सब कुछ निष्फल हो जायगा। ठीक कह नहीं सकता, शायद यही बात और मलाया मे जाकर उन्होंने जो कुछ किया, उससे बगालियों का सिर झुक गया, मेरे मन में अलक्ष्य भाव से यह भावना थी जब मैने 'साहित्य की रीतिनीति' लिखा। सभव है कि दो–एक स्थानों मे तीव्रता की झाझ आ गयी है। बहरहाल, जो हो गया है, उसका उपाय ही क्या है भाई ? बुखार दूर हुआ ? इति १० अक्टूबर, १६२६ ई०।

बडे भैया

सामताबेड, पानित्रास पोस्ट

जिला हवडा

११-११-२६

परम् कल्याणीयासु,

राधू, तुम्हारा पत्र मिला। इसी बीच तुम विध्याचल गयी थी, यह नहीं सोच था। बल्कि मै यह सोच रहा था कि उस दिन नरेन (नरेन्द्र देव) के यहा से वापस आ रहा था, वह नहीं था और इसी बीच एक दिन उसे साथ लेकर तुम्हारे यहा जाऊगा।

तुमने मुझे विध्याचल जाने को लिखा है, इस समाचार से मेरा मन खुशी से भर उठा। लेकिन इन दिनों कहीं जाने के लिए मेरे पास तिल भर समय नहीं है। पहली बात, गाव में रहने का यथासाध्य पुरस्कार मिल गया है। स्थानीय क्षुद्र जमींदार के उत्पीडन से दरिद्र प्रजाओं को बचाने के लिए फौजदारी और दीवानी मुकदमें मे फस गया हूँ। गोकि मै असामी (मुद्दालेह) नहीं हूँ, पर दीदी के एक देवर को मूल असामी बनाने के कारण मैं परेशानी में फस गया हूँ। लिखना–पढ़ना भरसाई में गया है।

दूसरी बात, आगामी काग्रेस में भयानक गोलमाल हुआ है। परसो सुभाष ने पकड़ा और कहा कि कुछ दिन कलकत्ते में रहकर इस झमेले का निबटारा कर दूँ। अगर मै नहीं निबटा सका तो यह निबटेगा भी नहीं–यही आशका इन लोगों की है।

स्वास्थ्य के बारे में निश्चय किया है कि अब कोई बात नही करूगा। तुम कैसी हो ? अगर हो सके तो इस बार उसे मजबूत करके लौटना।

अक्सर सोचा करता हूँ कि आंख-कान बन्द करके कहीं किसी सूनसान स्थान में भाग जाऊ। लिखाई–पढाई का काम करता रहा और इस झमेले मे फंस गया। मन की शान्ति तथा शरीर की स्वस्ति, दोनों चौपट हो रही है। केवल यही गनीमत है कि अपने कामों की सूची अखबारों में नहीं छपती। इसे सम्हाल कर चल रहा हूँ, यही मेरा सौभाग्य है।

तुमने मेरी सेवा का भार लेना चाहा है, वह केवल इसलिए कि मुझे पहचानती नहीं हो। इस पृथ्वी में इसे कोई नहीं ले सकता। दो-तीन दिन बाद कहोगी–बडे भैया धता हो जाये तो जान बचे। परीक्षा करने का लोभ जरूर होता है, किन्तु इन दिनों जितना स्नेह है, उस श्रम के कारण जरा भी नहीं रहेगा। ७–८ बार मै चाय पीता हूँ, क्या स्वय इतनी बार बनाकर दे सकती हो। जो कि अन्य कोई खाने–पीने की झझट नहीं, लेकिन अपनी

इस गदी आदत के कारण मैं किसी के घर ठहरने का साहस नहीं करता।

तुम लोग कब तक वहा रहोगे ? लाहौर से दिसम्बर में वापस लौटते समय क्या तुमसे वहा एक बार मुलाकात हो सकेगी ?

बचपन मे एक बार एक जन के निमत्रण पर उनका अतिथि हुआ था, आज तुम्हारी चिट्ठी पढते समय बार–बार उनकी बात याद आ रही है। कुछ बातें ऐसी होती है जिसे मनुष्य कभी सम्पूर्ण रूप से भूल नहीं पाता। लेकिन भूलने के अलावा अन्य कोई चारा भी नहीं है।

जाने दो यह सब बातें। मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना।

तुम्हारा–बडे भैया

सामताबेडा, पानित्रास पोस्ट
जिला – हवडा।

परम् कल्याणीयासु,

राधू, तुम्हारी पुस्तक पाने के बाद से अक्सर यही सोच करता था कि कविता के बारे में कुछ कहने का अधिकार भगवान ने भले ही नही दिया है, कम से कम पुस्तक तो मिली है और आदि से अन्त तक पढ तो लिया है, यह समाचार दे सकता हूँ। यही दे दूँ। इसी तरह दिन गुजरते गये। इसी बीच शिलाँग से तुम्हारा पत्र आया। मन ही मन लज्जित हुआ। निश्चय किया कि अब देर नहीं करना है , जवाब देना है। मगर यही सोचता रह गया और दिन गुजरते गये। आज आधी रात को सहसा आराम कुर्सी से उठकर बैठ गया और कागज–कलम लेकर दृढ प्रतिज्ञा की कि ऊपर जाने के पहले उस पत्र को समाप्त कर ही डालूँगा। कल सबेरे की डाक में छोड देना है।

लेकिन भाई, यह तो जानती हो कि कविता के बारे मे मै सचमुच कुछ नहीं जानता, यह विनय नहीं है। जब कोई कविता लिखता है तब मै अवाक् होकर देखता हूँ। न तो मै दो लाइन लिख पाता हूँ और न अच्छी–अच्छी बातें खोज पाता हूँ। एक बार काफी प्रयत्न करने के 'हाय' के साथ 'जलाशय' को मिलाकर कविता लिखी थी, किन्तु अभिज्ञ व्यक्तियों ने कहा कि नहीं बनीं।

नहीं बनी, यह तो ठीक है, पर बनती कैसे है यह भी तो मेरी बुद्धि के अतीत है, अतएव मेरे जैसे सुधी व्यक्ति आग्रह के साथ जो इस पुस्तक को पड चुके है इससे तुम्हारी तरह कवि के लिए आनन्द दूर की बात, कौन–सी सान्त्वना मिलेगी ?

फिर भी एक बात सूई की तरह बिधती है। वह यह कि भावुकता का यह काव्यग्रन्थ इतनी शोभा, इतनी वर्णछटा, शब्द विन्यासों का इतना माधुर्य , किन्तु कहीं भी उनकी बुनियाद प्रत्यक्ष अनुभूति पर प्रतिष्ठित नही है। हृदय के सम्पर्क मे नित्यता नहीं है। तुमने कभी किसी को प्यार नहीं किया है। तुम कहोगी–सभी क्या वास्तव में प्यार करने के बाद कविता लिखते हैं ? जवाब में मै यह कहूगा–जिसने प्यार नहीं किया है वह उसका दुर्भाग्य है। उसके हृदय की व्याकुलता या कामना को दोषी नहीं कहा जा सकता। केवल खेद के साथ इतना ही कहा जा सकता है–बेचारा दुनिया में वचित रह गया, उसे पात्र नहीं मिला–यह उसका दोष नहीं–भाग्य।

तुम सोचती हो इस जीवन मे तुम्हारे मनुष्य को प्यार करना दुर्नीति है, पाप है। तुम्हें भी अगर कोई प्यार करे, वह भी गर्हित अपराध है। कोई अगर तुमसे यह कहे–बडे भैया तुम्हे मन ही मन बहुत प्यार करते है। सुनने पर तुम क्रोध से पागल हो जाओगी।

कहोगी—क्या, इतनी बडी स्पर्द्धा ! कारण तुम मन ही मन प्रतिज्ञा कर चुकी हो—इस दुनिया में किसी को भी नहीं । इस सबध में तुम्हारा मन एक निश्चय जगह पर पहुँचकर कठिन हो गया है । यही एक भारी अन्तर है और यही अन्तर ही अतिश्योक्ति के आकार में रह रह कर कविता में प्रकट होती है ।

तुमने मुझे शिलाग आने के लिए आमन्त्रित किया है, पर मै आऊ कैसे ? मेरी साहित्य—चर्चा एक प्रकार से बन्द है, किन्तु एक काम आ गया है । देश के इस हगामे मे कैसे मैं भाग जाऊ ? मैं हवडा जिले के काग्रेस का अध्यक्ष हूँ, कुछ करता नही, पर रहना पडता है । जबकि जाने की तीव्र इच्छा है । साहित्य चर्चा की आदत लगभग छूट गयी है । तुम्हारी तरह के साहित्यिको के पास आने पर शायद कुछ अश प्राप्त हो जाय तो फायदे मे रहूँगा । मेरी तरह आलसी आदमी इस दुनिया में दूसरा कोई नहीं है । बिना मजबूर हुए मै कोई काम कर नहीं पाता, फिर भी इतनी पुस्तकें कैसे लिख सका, उसका इतिहास बता दूँ ।

मेरी एक गार्जियन थीं । उनकी तरह कडा तगादगीर पृथ्वी में कम है । वे ही थीं मेरी रचनाओं की कठोर समालोचिका । उनके तीक्ष्ण तिरस्कार के कारण मै आलस नहीं कर पाता था और न भरती का साहित्य लिख पाता था । लापरवाही से लिखी एक लाइन उनकी नजर से नहीं बचती थी, किन्तु आजकल वे धर्म—पूजा—पाठ में व्यस्त हैं । गीता—उपनिषद के अलावा अन्य चीजों पर नजर नहीं पडती । कभी खोज—खबर नहीं लेती । इस तरह मै उनकी डाट—डपट से जन्म भर के लिए बच गया हूँ । अक्सर बाहरी धक्को से प्रकृतिगत जडता, क्षण भर के लिए चचल हो उठती है तभी सोचता हूँ कि बहुत लिख चुका, अब फिर क्यों ? इस जीवन की छुट्टी अगर इधर से दिखाई दे रही है तब क्यों न दो—चार वर्ष भोग कर लूँ । क्या विचार है, राधू ? क्या ठीक नहीं है ? जबकि लिखने लायक बहुत बडा अश अलिखित रह गया । परलोक में अगर वाणी के देवता इस त्रुटि के लिए प्रश्न करेगे तो उस वक्त एक जन को दिखा दूँगा, यही मेरी सान्त्वना है ।

अब और नहीं । रात काफी हो गयी, तुम्हारा वक्त भी काफी खराब किया । इधर यह अनुभव कर रहा हूँ कि उनींदी आखों से जो कुछ लिख गया, उसमें असगति काफी रह गयी जबकि इस पत्र को दुहराने का साहस नहीं है । आशका है कि कहीं तब फाड़कर फेक न दूँ, फिर भेजना कठिन हो जायगा । इसलिए लिफाफे के भीतर बन्द कर दे रहा हूँ अगर कुछ गलत लिख गया हूँ तो बडा भाई समझकर क्षमा कर देना । इति—२० वैशाख, १३३७ (फसली सन्) ।

तुम्हारा—बडे भैया

सामताबेड, पावित्रास—पोस्ट
जिला – हावडा

परम् कल्याणीयासु,

राधू, कई दिन पहले एक बडी चिट्ठी लिखा था, तुम्हारे काव्य ग्रथ के बारे में । उस चिट्ठी को भेजा था या फाडकर फेंक दिया, याद नहीं आ रहा है । रात के समय 'लीला कमल' पढते—पढते आत्म विस्मृत होकर बहुत सी बातें लिख गया था। पता नहीं, वह चिट्ठी तुम्हें मिली या नहीं । अगर मिली है तो वह चिट्ठी तुम्हें दुख पहुँचा सकती है । अगर नहीं मिली है तो उसमें जो लिखा था, उसे सक्षेप में बता दूँ । कारण तुम सीधे कह बेठोगी—"यह बडे भैया की चालाकी है । एक अर्से तक पुस्तक अपने पास रखने के बाद

बेकार की सफाई दे रहे है, या यह कहोगी कि मेरी नाराजगी के डर से बनाकर एक कहानी गढी गयी है।

सच बहन, यह कहानी गढी नहीं गयी है। तुम्हारी नाराजगी का डर सचमुच है, इसे कबूल करता हूँ। दुनिया में जो दो-चार जगह वास्तविक अकृत्रिम स्नेह और निष्कलुष श्रद्धा प्राप्त की है बहन, मै उसकी कीमत जानता हूँ, इसीलिए उसे खोने में डरता हूँ।

शायद तुम हस पड़ोगी। कहोगी–"अकृत्रिम स्नेह इतनी आसानी से खो नहीं जाता बडे भैया।' यह बात सही है दीदी। फिर भी तुम्हें क्या मालूम–अति अकृत्रिम गभीर स्नेह भी दुनिया में अनेक रकम के कारण–अकारण के दबाव से आच्छन्न हो जाता है या अपने को आवृत्त करने के लिए बाध्य होता है। यहाँ तक कि वह अपने को अपने ही निकट स्वीकार करने को राजी नहीं होता, विश्व के सामने तो बिल्कुल नहीं। इसके बाद है गलत समझना। स्नेह–प्रेम, श्रद्धा–प्रीति के सबध में जो कुछ घटनाए होती हैं, उसके कारणों की खोज करने पर देखोगी कि अपराध या त्रुटि से कहीं अधिक सौ में अस्सी बातें गलत समझने के कारण होती है। गलत समझने वाली बातों से मैं वहुत डरता हूँ। मेरी पुस्तकों में इस बात को तुमने देखा होगा।

जिस पत्र को लिखने के बाद तुम्हें नहीं भेजा है, ऐसा अनुभव कर रहा हूँ, उसमें तुम्हारी पुस्तक की आलोचना थी। राधू, 'लीलाकमल' की कविताए इतनी अन्तस्पर्शी है कि पढते समय बार–बार यह गलती हो जाती है कि क्या ये वास्तव में तुम्हारे अन्तर से उत्सारित हुई हैं। लेकिन मैं तो तुम्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ दीदी। और चाहे जो हो, ये कविताए तुम्हारे वास्तविक जीवन की उपलब्धि से नहीं लिखी गयी है। ये कविताए किसी और के निकट जीवन्त सत्य भले ही बन जाय, किन्तु लेखिका के निकट सम्पूर्ण काल्पनिक है। शुद्ध काल्पनिक विषय को, सत्य बातों को जिस गहराई से तुमने लिखी है, पढकर अवाक् रह गया। जो वेदना तुम्हारी अकृत्रिम उपलब्धि नहीं है, कल्पना की सहायता से प्राप्त की है, उसे प्रकट करने में तुम्हारी कलम की चाहे जितनी कमाल रही हो, मै तो यह कहूँगा कि क्या इसमें तुम्हारी बहादुरी नहीं है, भाई?

तुम लोग–ये लडकियाँ–तुम लोगों को आज तक ठीक से पहचान नहीं सका। अपने जीवन की अत्यन्त कठिन तथा गभीर वेदना में इतनी ही अभिज्ञता सचय कर सका हूँ, राधू। तुम लोगों की तरह कवि कल्पना के जरिये नहीं, अपने जीवन को बूद–बूद गलाकर अन्त में नीरव भाव से जलाकर जिस अभिज्ञता को वास्तव से आहरण किया है, अब ऐसा लगता है कि मेरे साहित्य में शायद वही स्पष्ट हुआ है मेरी जानकारी और अजानकारी में। यह अत्यन्त अकृत्रिम सत्य पर प्रतिष्ठित है इसीलिए शायद सभी छोटे–बडों के निकट जनप्रिय हुआ है।

मैं क्या सोचता हूँ जानती हो। हम लोग केवल तुम लोगों को पहचान नहीं सके, यह बात नहीं है तुम लोग स्वय भी शायद अपने को ठीक से पहचान नहीं सकी हो अथवा पहचानने में डर रही हो। शायद यह भी हो सकता है कि पहचानकर भी इसे स्वीकार करना नहीं चाहती। यह मेरी काल्पनिक धारणा नहीं है, वास्तविक अभिज्ञतासंजात धारणा है लिहाजा इसका मूल्य उडा देने लायक नहीं है।

आज यहीं तक। मिलने पर इस विषय पर चर्चा होगी। मेरा आशीर्वाद लेना। इति २३ वैशाख, १३३६ फ०।

तुम्हारा–बडे भैया।

सामताबेडा, पानित्रास पोस्ट
जिला – हावडा

परम् कल्याणीयासु,

स्नेह की राधू, तुम्हारे यहा से वापस आने के बाद से मन अत्यन्त अनमना हो गया है। किसी भी काम में मन नहीं लग रहा है। जलधरदादा ने लेख का तगादा किया है, अपना भी जरूरी काम पड़ा, पर कुछ भी नहीं हो पा रहा है। चिलम पर चिलम गडगडे पर पलटता जा रहा हूँ। आराम कुर्सी पर लेटे हुए आँखें बन्द कर तुम लोगों के बारे में सोच रहा हूँ।

मन में आया कि तुम्हे एक पत्र लिखना आवश्यक है। यह तो जानती हो कि मै कितना आलसी आदमी हूँ। पत्र लिखना मेरे लिए पहाड उठाना है। फिर भी कागज लेकर बैठा हूँ, यह सोचकर कि तुम्हें कुछ बातें समझाऊँ तो मेरा क्या होगा, इसे ठीक नहीं जानता राधू, पर इससे तुम्हारा कल्याण होगा–इतना निश्चित है। मुझे भी तृप्ति मिलेगी, इसमें सदेह नहीं।

बात यह है कि तुम औरतें–दूसरों का मन अर्थात् पुरुषों का मन जितने आश्चर्य ढग से समझ लेती हो, ठीक उतने ही आश्चर्य ढग से अपने मन को समझ नहीं पाती। इस तथ्य को मै निस्सन्देह रूप से जानता हूँ, इसे तुम (बडे भैया के निकट) प्रमाणित सत्य के रूप में मान सकती हो।

राधू, मुझे सबसे अधिक भय इस बात पर है कि अधिकाश गभीर प्रकृति वाली लड़कियों की तरह तुम भी अपने निकट आत्म–अस्वीकार कर आत्म–प्रतारणा न कर बैठो। इस आत्म अस्वीकृति की तरह दूसरी कोई आत्महत्या नहीं है।

मेरी एक बात याद रखना बहन, सचमुच का प्यार सभी मनुष्यों के जीवन में नहीं आता। यह दुर्लभ आविर्भाव जिनके जीवन में होता है, वे अगर इसे ठीक से पहचान सके तो इसकी सार्थकता है। अति दुर्लभ हीरा को भी अज्ञव्यक्ति शीशा समझकर फेंक देते है–इसे जानती होगी। फिर भी एक बात कह सकती हो, ससार में नब्बे प्रतिशत मनुष्य शीशा बटोरते है और उसकी चमक–दमक से प्रसन्न होकर, गले में डाल गर्व से घूमते है। जिसे लेकर वे गर्व करते है, दरअसल वह तो तुच्छ शीशा मात्र है। देखने में वह हीरा जरूर मालूम होता है।

तुम यहा कहोगी–'पक्का जौहरी न होने पर हीरा पहचानना सरल नहीं है बडे भैया।"

ठीक बात दीदी। अब मेरी बात सुनो, हीरा और शीशे की परख करने की सहज उपाय है। जोर से जमीन पर पटक देने से शीशा चूर–चूर हो जायगा, हीरे की कोई हानि नहीं होती। हीरे से शीशा काटा जाता है, शीशे से हीरे को काटा नही जा सकता।

वास्तविक प्रेम की परख है त्याग की प्रवृत्ति मे। जिस प्रेम में जितनी अधिक कल्याणबुद्धि, जितनी आत्म उत्सर्ग की प्रवृत्ति, त्याग की प्रवृत्ति अपने आप गम्भीर से दृढतर होती जाती है, उसी प्रेम को विशुद्ध जाति का समझना।

जब दुनिया में प्रत्येक चीज की असली–नकली की जांच करने की पद्धति है तब प्रेम की जाच की भी है। अकृत्रिम प्यार, पात्र के दोष–गुण निरपेक्ष होते है। वह अपने प्रिय व्यक्ति में सब कुछ सुन्दर देखता है, चकित होकर देखता है, महत, और माधुर्यमय देखता है। यह देखना भी एक आश्चर्य–दृष्टि है।

रवि बाबू ने लिखा है–

आमि आपन मनेर माधुरी मिशाय

तोमारे करेछि रचना—

इससे बढकर परमसत्य और कुछ नहीं है।

प्रेम जब हृदय में जाग्रत होता है तब वह चाहता है आधार या आश्रय। यह आधार सभी क्षेत्र में उपयुक्त अथवा सुन्दर हो, ऐसा नहीं होता। प्रेम अपने आप हृदय के रस से अपने पात्र की रचना कर लेता है। प्रेम की प्रतिमा बनाने में पात्र केवल पुआल, वास और रस्सी मात्र है। इसके ऊपर मिट्टी चढाई जायेगी, रग लगाया जायेगा, तूलिका चलायी जायेगी, उस पर तेल लगाया जायेगा, केश, वेष, अलकार पहनाये जायेंगे। इसमें से अधिकतर कार्य अपने हाथ से करना पडेगा।

बडा प्रेम स्वभावत नि स्वार्थ होता है। यह केवल उपलब्धि की सामग्री है राधू। हृदय की महत्वृत्तियों को उपलब्धियों के द्वारा एक—एक कर स्पर्श किया जाता है। बुद्धि के विचार, ज्ञान, तर्क की युक्तियों से नहीं, ऐसी मेरी धारणा है।

एक सच बात तुम्हें चुपचाप बता रहा हूँ, ध्यान से सुनो। दुनिया में ऐसा प्रेम भी है राधू जो जीवन भर जिस किसी को प्यार किया है, उससे वह योजन दूर रहना उसने पसन्द किया है। उसके प्रेम ने ही उसे दूर हट जाने की प्रवृत्ति दी है। आसपास रहकर प्रत्यक्ष देखने की आकाक्षा प्रेम की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उसी व्याकुल और तीव्र प्रवृत्ति को सवरण करने की शक्ति देती है—विशुद्ध प्रेम। सच्चा प्यार अपने पात्र या पात्री को स्वस्थ तथा सुखी देखना चाहता है, उसे सार्थक और ग्लानिहीन देखना चाहता है। उसकी आत्म परितृप्ति यहीं है।

अगर कोई मिलन प्रेम पात्र को किसी अगौरव में नतशिर कर दे, उसके जीवन—कर्त्तव्य से विच्युत कर दे, लज्जा—दु ख या अनुताप—अनुशोचना उन्मेष के सामान्य छिद्र उसके जीवन में रख दे तो वह मिलन कभी कल्याणकारी नहीं हो सकता, अतएव वह वांछनीय नहीं है।

लेकिन यह भी सत्य है, बलिष्ठता की कमी से, प्रेम के प्रति स्थिर विश्वास की कमी से, आत्म—प्रत्यय की कमी से मिलन को जो लोग जीवन में अपनाने से डरते हैं, उन्ही डरपोंकों की प्रेम में दुर्गति होती है।

वास्तविक गभीर प्रेम—कल्याणबुद्धि के प्रकाश में कहीं सार्थक होता है—चिरविच्छेद के अन्तर्गत, कहीं सार्थक होता है चिरमिलन में। जहा विच्छेद से प्रेम का कल्याण होता है, वहा सयम की कमी से मिलन सर्वनाश की सृष्टि करता है। और जहा मिलन में ही प्रेम का कल्याण है, वहा बलिष्ठता के अभाव में विच्छेद की रचना करने पर भी उसी प्रकार सर्वनाश होता है।

गहरे प्रेम के लिए सबसे पहले आवश्यक है—मन की बलिष्ठता। मिलन तथा विच्छेद दोनों मे ही कठिन सयम करना पडता है, किसे मिलन के लिए लेना पडेगा और किससे विच्छेद करना होगा। यहीं प्रेम की असली परीक्षा है। केवल आत्मदान मे ही प्रेम की सार्थकता नहीं है, आत्म सवरण में भी है भाई।

आज शाम को पत्र लिखते समय इतना लिखकर चले जाना पडा था। इस वक्त रात के साढे दस बजे है। अब सक्षेप में अपनी बात समाप्त कर दूँ।

आज तुम्हारे जीवन में अत्यन्त कठिन परीक्षा का समय उपस्थित है—तुम्हारे ही 'जीवन—देवता' ने।[1] जिस 'जीवनदेवता' की ओर देखती तुम उठती, बैठती, सोती और

---

१ श्रीमती राधारानी देवी बाल विधवा थीं। उनका प्रेम श्री नरेन्द्र देव से हो गया था। इस बारे में उन्होंने शरत बाबू से सारी घटना जिक्र करते हुए समस्या का समाधान पूछा था। इस पत्र में शरत् बाबू ने समस्या का समाधान करते समय अपरोक्ष रूप में अपने पुराने घाव को सहलाया है, अर्थात्

जागती हो, जिसे सामने खडा करके सभी को धमकाती हो । तुम्हारे वही जीवन देवता" तुम्हे सत्पथ दिखा दे–यही तुम्हारे हितार्थ बडे भैया का उद्विग्न हृदय से आशीर्वाद है ।

मैंने तो उसी दिन तुमसे कहा था राधू, मेरे जीवन के प्रारभ में यह स्वर्गीय आशीर्वाद न प्राप्त होता तो आज के रूप 'मै' का अस्तित्व सभव नहीं था ।[१]

मेरे साहित्य मे तुम लोगो ने जो कुछ पाया है, उसे यदि मैंने अपने जीवन में न पाया होता तो क्या ऐसा साहित्य लिखना सभव होता ? अतएव मै तुम्हें पथ निर्देश करने अनाधिकारी नहीं हूँ । इसका विश्वास कर सकती हो । नाराज मत होना । उस दिन तुम नाराज हो गयी थी, इसलिए इतनी बाते लिख गया । तुम्हारे बूढे भैया का जीवन धोखे की टट्टी नहीं है भाई । कभी सभव हुआ तो एक कहानी कहूँगा । सुनने पर उपन्यास–कहानी जैसी लगेगी, लेकिन उससे वास्तविक सत्य मेरे जीवन में नहीं घटा था ।

मेरा आशीर्वाद लेना । मनस्थिर कर लेना । अगले सप्ताह कलकत्ता आ रहा हूँ। मुलाकात होगी । आशीर्वादक–बडे भैया

पत्र को पढकर फाड देना–यह मेरा अनुरोध है ।

सामतावेड, पानित्रास
जिला – हवडा

परम कल्याणीयासु,

राधू, लोगो ने मुझे अचानक कुमिल्ला चालान कर दिया । वहाँ से वापस आने के बाद तुम्हारा पत्र मिला ।

'शेष प्रश्न' तुम्हे पसन्द आया, सुनकर में आनन्दित हुआ । सोचा था कि यह पुस्तक बंगाल मे शायद ही किसी को अच्छी लगी। केवल गाली-गलौज ही भाग्य मे बदा है, लेकिन अब अनुभव कर रहा हूँ कि डरने की कोई बात नहीं है । रेगिस्तान के बीच में कहीं–कहीं नखलिस्तान दिखाई दे जाते हे । कई पत्रो को पढ गया ।

एक लडकी ने लिखा है कि अगर उसके पास पर्याप्त धन होता तो वह इस पुस्तक को छपवाकर मुफ्त मे बाइबिल की तरह लोगों मे बटवा देती । यह हुआ एक क्षेत्र, दूसरा क्षेत्र अभी आखो की ओट मे है । तूफान आने पर उसका परिचय मालूम होगा ।

अति आधुनिक साहित्य कैसा होना चाहिए, यह उसका इगित मात्र है, बूढा हो गया हूँ, शक्ति–सामर्थ्य ढलने का आभास अहरह अपने मे अनुभव कर रहा हूँ, आजकल जो लोग शक्तिमान नवीन साहित्यिक है, उनके आगे सिर झुकाकर इतना कह गया । अब उनका काम है कि वे फूल–फलकी शोभा–सम्पदा से इसे बडा बनाने की जिम्मेदारी ले । भाषा पर मेरा दखल नही है, शब्द सम्पदा कितना सामान्य है, भले ही औरो से छिपा रहे, पर तुम लोगों के निकट छिपा नहीं है । लेकिन कहने लायक बहुत-सी बाते मन में रह गयी । केवल कुछ बातों को ही प्रकट कर सका ।

श्रीमती निरुपमा देवी के प्रति अपनी पीड़ा का उल्लेख किया है । वे अपनी जन्म भूमि से क्यों भाग गये थे, इससे स्पष्ट हो जाता है ।

१ इन दोनों तथ्यों की इशारा उनके प्रथम जीवन के प्रेम से है। जीवनी में विस्तार से चर्चा की गयी है।

तुमने मुझसे उपदेश मागा है[1]। लेकिन पत्र में कोई उपदेश नहीं दे सकता, भाई। भेज सकता हूँ, केवल अकुठ कल्याण-कामना! जिस दिन तुमसे मुलाकात होगी– उस दिन सारी बातें जान लूगा। आज केवल इतना ही बता रहा हूँ कि जो लोग दुःख नहीं सह सकते, यह पुस्तक उनके लिए नहीं है।

इसी बीच अगर धैर्य रहे तो एक बार पुन पढकर देखना। जो बातें नजरो से चूक गयी हैं, पुन वे दिखाई दे जायेंगी। कोई भी पुस्तक कम से कम दो बार बिना पढे सारी बातें आँखो के सामने नहीं आती।

बहुत दिन हो गये तुम्हें देखा नही, एक बार देखने की इच्छा होती है। कब मुलाकात हो सकती है, अगर सूचित करो तो अच्छा हो। एक बात और। ब्राह्मण आदमी, खासकर बूढा आदमी हूँ, प्रेम से खिलाना जरा पसन्द करता हूँ। मेरी रचनाओं में यह इंगित अनेक लोग मेरा ही है, यह अनुमान करते है। सोचते भी है, तुम्हारा अन्दाज भी उसी तरह का है। ठीक है न?

मेरा आन्तरिक आशीर्वाद लेना। इति–३० वैशाख, १३३८।

—बडे भैया।

श्रीमती निरुपमा देवी के नाम

बाजे शिवपुर
हावडा
२७-४-१९१७

परम कल्याणीयासु,

तुम्हारी आशा में था। आज मिला। आफत मारपीट की थी। डरने की बात नहीं, लगभग निपट गया है। पर खर्च कुछ अधिक हो गया। जाने दो। झझट क्यों किया, यह बताना कठिन है। यह तो मेरा स्वभाव है।

खुकी आयी है[2]? बाल बच्चों के साथ? खुकी को बच्चे कब हुए? बडे आश्चर्य की बात है।

खैर, जल्द आ रहा हूँ। एक बार उसे देखना चाहता हूँ। उसे मैं बहुत प्यार करता हूँ।

दोनों कापियाँ जल्द भेज दूँगा। अब देर नही होगी।

हरिदास[3] को कुछ कहने के लिए मैंने कभी नहीं कहा। मैंने तो यही लिखा था कि जब तुम्हें रुपयों की जरूरत हो तब लिख भेजना। सिर्फ दो पक्तिया लिखना–'इस पते पर मुझे १५० रुपये भेज दें।' बस। अन्यथा 'मेरी कहानी ले अगर' यह लिखने के लिए मैं क्यों कहने जाऊँगा? गगा पार[4] वालों की बुद्धि ऐसी होती है। यह मैं जानता हूँ कि कोई भी काम लेने पर उसकी जिम्मेदारी निभाती हो। मुर्शिदाबादी लोंगो को केवल चेतावनी देना पडता है। वाकई, अगर इस तरह न लिखोगी तो तुम लिख न सकोगी। धर्म-पूजा–पाठ के चक्कर में तुम्हारी साहित्य–चर्चा का पता नहीं चलेगा। मैं सोच रहा हूँ कि इसी प्रकार

---

१ अपने विवाह के बारे में पूछा है।
२ निरुपमा देवी की छोटी बहन देवी।
३ गुरुदास चटर्जी एण्ड सस प्रकाशक के मालिक।
४ मुर्शिदाबाद जिला गगा के उस पार है।

प्रति माह कुछ न कुछ लिखवाता रहूँ।

वूडी,[1] सभी रचनाए किसी लेखक की अच्छी नहीं होती। 'दीदी' और 'अन्नपूर्णा का मन्दिर' की तरह कहीं न लिख सकूँ, इस भय से हाथ खींच लेने पर जो इज्जत बची रहती है, उसे सम्भ्रम नहीं, दभ कहते है। इस बात पर नाराज मत होना। मेरी जवानी रुढ मालूम होने पर भी मैं अन्तर से तुम लोगों का हितैषी हूँ, इस पर सशय मत करना। इसके अलावा तुम लोगों को आदमी बनाया है, इसका भी किंचित गर्व मुझमें है। जबकि बात-सत्य नहीं है, इसे नहीं समझता हूँ, यह बात भी नहीं है, फिर भी दादागीरी दिखाने का लोभ सवरण नहीं कर पाता। कडी बात कह देता हूँ।

हम लोगो का और मेरा समाचार वैसा ही है। विभिन्न लोगो की तरह अच्छा–बुरा दोनों ही है।

उस दिन बडी भाजी के लडके की मौत के कारण काफी रोना–धोना हुआ। उस दिन दीदी की देवरानी का एक लडका आया था, उसके सिर से बाल तक लिवर है। सारा शरीर पीला हो गया है। उसका क्या होगा, खुदा जाने।

मेरे लिए मुश्किल यह है कि मै शहर के पास रहता हूँ। और लाभ यह हे कि मेरे आत्मीय–कुटुम्ब मुझे इतना चाहते है जो अब प्रत्यक्ष हो रहा है। इतने दिनो तक ये लोग मेरे विरह के कारण अत्यन्त मनोकष्ट में अपना दिन गुजारते रहे, इसका पता चल रहा है।

अब अधिक बात लिखना नहीं है। भागलपुर से सुरेन आकर घोडे की तरह कधे पर चढ बैठा है। अभी कलकत्ता जाना होगा।

मेरा शतकोटि आशीर्वाद लेना। पत्र का उत्तर देना और पुटू (विभूति भूषण भट्ट) को कहना कि अब मै जाने ही वाला हूँ। अच्छा, आजकल तुम्हारे यहा मच्छर और खटमलों के उपद्रव कैसा है। बाहर सोया जा सकता है या नहीं।

तुम लोगों का
शरत् दा

श्री अमल होम के नाम

गाजे शिवपुर
१६-८-१९७६

परम कल्याणीयेसु,

अमल, उस दिन 'भारती' के अड्डे पर सुना कि तुम एक भयकर दुर्घटना से बच गये हो। अंग्रेजों का जुल्म देखने का मौका तुम्हें मिल गया। यह कम नहीं है। हम लोगों का मोह दूर करने के लिए इसकी आवश्यकता थी। जरूरत पडने पर ये लोग कितने निष्ठुर, कितने जानवर बन सकते हैं, इसे तो इतिहास के पृष्ठों से जाना गया है, अब प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया।

इससे एक लाभ और हुआ। देश की पीडा में हम लोगों ने रवि बाबू को नये रूप में प्राप्त किया। उन्होंने अकेले ही देश का मुख उज्ज्वल किया है।

'नारायण' के प्रकाशन काल में सी० आर० दास ने एक दिन मुझसे कहा था कि जब

---

१ निरुपमा देवीका घरेलू नाम।

उन्होंने 'सर' की उपाधि ली तब वे कई दिनों तक रोते रहे। अब अगर उनसे मुलाकात होगी तो पूछूंगा कि क्यों जनाब, आज तो गर्व से हमारी छाती चौड़ी हो गयी है या नहीं ?

तुम्हारी पत्रिका का नाम तो सुना है, पर अभी तक देखा नहीं है। दो-एक प्रति भेज देना। तुम्हारे सम्पादक तो इन दिनों जेल में है। चलाओ जोर से। तुम्हारा नाम सुनकर मुझे प्रसन्नता होती है। मेरा आशीर्वाद स्वीकार करना। इति-

आशीर्वादक

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामेतावेड़-पानित्रास, हवड़ा।

२८ पौष, १३३८

परम कल्याणीयसु,

अमल, वापस आने के बाद से सोचता रहा कि तुम्हें पत्र लिखूँगा, पर शरीर गवाही नहीं दे रहा था। मैं हमेशा से अलहदी हूँ, क्या हो गया है, पता नहीं चलता। मेरी नींद न जाने कहां गायब हो गयी है। शरीर में ऐसी वेदनी इसके पूर्व कभी महसूस नहीं की। पैरों में दर्द आजकल बढ़ गया है।

अमल, वाकई मैं अत्यन्त प्रसन्न होकर वापस आया हूँ। तुम लोगों (तुमने ?) ने टाउनहाल में सभापति के आसन पर ले जाकर बैठाया, मेरे गले में माला डाली, इसलिए नहीं-मेरे द्वारा लिखित मान पत्र कवि के कर कमलों में दिया-इसके लिए भी नहीं-जिस रूप में यह विराट कार्यक्रम सम्पन्न हुआ, इस अनुष्ठान को जितनी निष्ठा, श्रम और श्रद्धा से सार्थक किया गया-उसी से मुझे आनन्द मिला-अकपट आनन्द। कवि के बारे में कभी मैने यहाँ, वहाँ भला-बुरा कहा है क्रोध मे आकर। यह जितना सच है, उतना ही यह भी सच है कि मुझसे बढ़कर उनका इतना बड़ा भक्त अन्य कोई नहीं है। मुझसे बढ़कर और किसी ने उन्हें गुरु के रूप में स्वीकार नहीं किया है, मुझसे बढ़कर अन्य किसी ने उनकी रचनाओं का मस्क नहीं किया है। उनकी कविताओं के बारे में कुछ कहना मै नहीं चाहता, लेकिन मुझसे अधिक किसी ने उनके उपन्यास किसी ने नहीं पढ़ा होगा। उनका आंख की किरकिरी, गोरा और गल्पगुच्छ। आजकल मेरे उपन्यासों को पढ़कर लोग बहुत अच्छा कहते है, उसका कारण मै जानता हूँ, वह इन्हीं के लिए। यह सत्य, परम सत्य है, इसे मै ही जानता हूँ। अन्य किसी ने कहा या नहीं कहा, स्वीकार किया या नहीं किया, इससे कुछ आता-जाता नही। यही वजह है कि मैने अन्तर से सहयोग दिया था-इस जयन्ती में। तुमने बहुत बड़ा काम किया, जी भरकर तुम्हें आशीर्वाद दे रहा हूँ।

सुना है कि तुम इस जयन्ती को करने के बाद अपना मकान बनवा रहे हो आर गाडी हका रहे हो। तुम्हारे और मेरे मित्र इस बात का प्रचार कर रहे है। जयन्ती के प्रारम्भ में यह सुनने में आया कि स्वय कवि ने तुम्हें खड़ा किया था, तुम तो केवल उनके शिखण्डी मात्र थे-पीछे रहकर वे ही सब कुछ करा रहे थे। यह बगाल है, अमल। 'सोनार बागाल' तब भी कहना पड़ेगा-मैं तुम्हे प्यार करता हूं।

मन में किसी प्रकार का क्षोभ मत रखना, जिसके मन मे जो आये, बकने दो। मै जानता हूँ कि तुम्हारा मकान नहीं बना है, गाडी भी नहीं। जिस गाडी पर चढते हो, वह कारपोरेशन की है। बस यहीं तक। तुमने बगाल का सिर ऊचा किया है। मै तुम्हें समस्त अन्तर से पुन आशीर्वाद देता हूँ।

तुम्हारा-शरत् दा।

श्री महेन्द्रनाथ करण के नाम

बाजे शिवपुर

४ आश्विन, १३२६

सविनय निवेदन,

आपके पत्र को मैने दो बार पढा। अगर मेरे पत्र का कोई अश आपके काम आये तो मुझे प्रसन्नता होगी। आप अपनी इच्छा के अनुसार उपयोग कर सकते है, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु मेरी चिट्ठी लिखने की प्रणाली काफी कमजोर है। भाषा की दृष्टि से शर्म आती है। महेन्द्र बाबू, मैं केवल दो जाति मानता हूँ।

मेरा आन्तरिक विश्वास है कि किसी भी मनुष्य का कोई एक सुनिर्दिष्ट जाति नहीं है, जाति है केवल मनुष्य के हृदय की–मस्तिष्क की। वह क्या है जानते है? आप अपने को लीजिए। आपकी शिक्षा, आपके हृदय की प्रशस्तता, स्वदेश प्रेम, स्वजाति के दुख की वेदना का बोझ, आन्तरिकता–यही है बडी जाति। जिस आधार मे ये रहते है, वही आधार ऊँची जाति की है। वर्ना क्या ब्राह्मण और क्या दुले (छोटी जाति)–अगर यह न रहे तो जन्म पत्रिका में लिखित बातें किसी मनुष्य को उच्च पद नहीं दे सकती। सोने की कलम से भले ही किसी महामहोपाध्याय ने लिखी हो।

पौण्ड्र क्षत्रीय ठीक नाम हे। ब्रात्य क्षत्रीय के साथ–साथ इस शब्द का प्रयोग करते–करते एक को छोड देने से काम चल जायगा।

आपने घृणा देकर घृणा का प्रतिशोध देने को लिखा है। शायद आपकी बात सही है। इस बारे मे मेरी कोई अभिज्ञता नहीं है, इसलिए अपनी राय नहीं दे सका, पर इतना समझता हूँ कि केवल भले आदमियों से ससार के सभी काम पूरे नहीं होते।

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

श्री निर्मलचन्द्र के नाम

सामताबेड, ४।१२।२५

परम कल्याणीसेषु,

कल रात को आदमी के हाथ तुम्हारा पत्र और मदन साहब का कट्राक्ट फार्म मिला। साहब का औदार्य देखकर आखे भर आयीं। नगद सौ और भविष्य मे दो सौ–यह साधारण बात नहीं है। ब्राह्मण सन्तानों का युगल सम्पद। मेरी सारी पुस्तकें अब से पन्द्रह वर्षो के लिए उनकी मर्जी के ऊपर निर्भर रहेगा–यह कौन–सी बड़ी बात है?

पर एक जरूरी शर्त वे जल्दी के कारण लिखना भूल गये हैं। लेखक को पन्द्रह वर्ष तक सुबह–शाम उनके यहा जाकर आदाब बजाना होगा। मेरे विचार से केवल एक पुस्तक के लिए इतना बहुत काफी है। लिहाजा इस 'क्लाज' को उसमें डाल दिया जाय तो देखने सुनने मे अच्छा रहेगा।

चितु भाई (चित्तघोष) की इच्छा और मैने पण्डित महाशय' के लिए वायदा किया है।

१०–१२ दिन से घर पर हूँ। परसो शायद आऊँ। आने पर मुलाकात होगी।

— दादा

श्री उमाचरण चट्टोपाध्याय के नाम

बाजे शिवपुर, हवडा

४–१२–१६२० ।

परम कल्याणीयेषु,

तुम्हारे पत्र में श्रीयुक्त जलधर बाबू के पत्र की नकल पढकर दुःखी हुआ, पर आश्चर्य नहीं हुआ । मुझे भी इसी तरह की आशका थी । जलधर बाबू ने जो कुछ लिखा है वह सच होना सभव है, पर मै यह नहीं जानता कि वे मेरे बारे में लिखे गये किन–किन साहित्यिकों के लेखों को वापस कर चुके है । मैने एक बार उन्हे मना किया था कि मेरे बारे में 'अच्छा–बुरा' कोई लेख कभी प्रकाशित न करें, यह सच है और इसकी वजह थी । राधाकमल बाबूने एक बार प्रशसा कर रहा हूँ कह कर यथेष्ट निन्दा कर चुके है, उस लेख को छापा गया था । दिनेश बाबू अपने 'शरत–प्रतिभा' मे गोकि बुरा बनाने की चेष्टा नहीं की है, शायद अच्छा कहने का प्रयत्न किया था, पर अच्छा कहने के महात्म्य को देखकर मेरी आत्महत्या करने की इच्छा हो गयी । इन्हीं सभी कारणों से मैने कहा था–मेरे बारे मे कुछ न छापा जाय ।

लेकिन तुम्हारा लेख तो भिन्न प्रकार का है। अगर यह लेख 'भारतवर्ष' पत्रिका के लिए लिखा गया होता तो मै वहा भेजने के लिए कदापि न कहता । मैंने सोचा कि इस लेख का उद्देश्य जब अन्य है और ललित बाबू जैसे समालोचक ने इसे पास कर दिया है तब इस लेख को कोई भी पत्रिका छाप सकती है, बशर्ते मेरे प्रति उस पत्रिका का व्यक्तिगत विद्वेष न रहे । इसके अलावा साहित्य की दृष्टि से इसका प्रकाशन उचित है, ऐसा मेरा विचार था । अन्यथा अपने नाम का प्रचार करने के लिए ढोलक पीटने की जरूरत है, यह अपवाद मुझे मेरा कोई भी शत्रु नहीं देगा । इसके अलावा निबध गौरव से यह भारतवर्ष के लिए अयोग्य नहीं है । बहरहाल, जब इस लेख को छापने में आपत्ति है तब उपाय क्या है ? जलधर बाबू का मेरे प्रति श्रद्धा और स्नेह है, बहुत दिन पहले जो अनुरोध किया था, उस अनुरोध को अमान्य नहीं करने की दृष्टि से ऐसा उन्होंने किया है जब स्नेह प्रभाव दिखाता है तब कठिनाई आ जाती है ।

अपना निबध उनसे वापस लेने के अलावा अन्य कोई चारा नहीं है । मैं स्वय इस बारे में कुछ नहीं कहूँगा । क्योकि विभिन्न कारणो से मुझे 'भारतवर्ष' के साथ सम्बन्ध विच्छेद कर लेना पडा है । मैने सोचकर देखा है–वर्ना इस पत्रिका के कारण उसके सचालको के साथ एक दिन विच्छेद हो सकता है । पहले इन लोगो के साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था, किन्तु आजकल केवल यथाशक्ति कहानी लिखने के अलावा अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है । अगर मैं वहाँ न लिखूँ तो उनकी कोई हानि नहीं होगी । आजकल भारतवर्ष ऊचे स्थान पर प्रतिष्ठित हो गयी है जहा सामान्य त्रुटि होने पर उसका कोई नुकसान नहीं होगा । यही सब समझकर ही मै उन लोगों से दूर हट आया हूँ । जबकि इसके प्रोप्राइटर हरिदास बाबू और सुधा बाबू मेरे छोटे भाई की तरह हैं । मामूली पत्रिका के लिए इनके साथ मेरा मनोमालिन्य हो तो क्षोभ की सीमा नहीं रहेगी । एक मुश्किल यही है कि अभी तक 'लेन–देन' समाप्त नहीं हुआ है । कौन जाने, वह वहीं हमेशा के लिए रह जाय ।

श्री युक्त ललित बाबू है, अगर आप उनसे कहें तो वे उक्त निबध को अन्यत्र छपवाने का प्रबध कर सकते है अन्यथा मै इसके लिए कहीं कोई प्रबध नहीं करूँगा।

अगर आप उचित समझे तो यह पत्र आप श्री युक्त जलधर बाबू को दिखा सकते हैं । बीच–बीच में अपना कुशल–समाचार देते रहेंगे तो मुझे खुशी होगी ।

मेरा शरीर शनै–शनै सुधार की ओर प्रगति कर रहा है, पर लिखने की ओर नहीं जा रहा है।

ललित बाबू के साथ अगर मुलाकात हो तो उन्हें मेरा सश्रद्ध नमस्कार देना।

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

श्री चारुचन्द्र वंद्योपाध्याय के नाम

बाजे शिवपुर, हावडा

२१ अप्रैल, २५

भाई चारु,

अभी - अभी तुम्हारी चिट्ठी मिली। आज पत्र लिखने लायक मेरी मानसिक स्थिति नहीं है, फिर भी तुम्हे यह बात बिना सूचित किये नहीं रह सका। तुम्हे शायद याद होगा कि आते समय रास्ते में एक मृतप्राय बछडा पडा था। इसके बाद ही एक जिबह किया हुआ मुर्गा दिखाई दिया। मैने तुमसे कहा–'आज जाते समय इतनी मौते क्यो दिखाई दे रही है ? तुमने कहा कि गोह भी था। मैने पूछा कि कहा, मैने तो नहीं देखा।

इसके बाद तुम लोग स्टेशन चले गये। गाडी छूटने के बाद देखा कि रास्ते के किनारे गिद्धो का झुण्ड एकत्रित है और एक कुत्ता मरा पडा है। मेरा अपना कुत्ता अस्पताल मे था, मेरा मन कितना खराब हो गया, उसे लिखा नहीं जा सकता। अग्रेजी मे जिसे अधविश्वास कहते है, वह मुझमें नहीं है, पर तीन–तीन मौत के दृश्यो ने मुझे रास्ते मे क्षण भर के लिए शान्ति नहीं दी।

घर आकर सुना कि भेलो अच्छा है और अस्पताल का पत्र मिला।

२७ अप्रैल, १९२५

गुरुवार को घर ले आया, अगले गुरुवार सबेरे ६ बजे भेलो मर गया। मेरा चौबीस घटे का साथी अब नहीं रहा। ससार में इतनी पीडा की बात है, इसे मैं ठीक से समझता नहीं था। शायद इसीलिए मुझे इसकी आवश्यकता थी। एक और बात समझ सका, चारु। ससार में अब्जेक्टिव कुछ नहीं है, सब्जेक्टिव सब कुछ है वर्ना एक कुत्ते के अलावा कुछ तो नहीं। राजा भरत का उपाख्यान झूठी नहीं है।

तुम्हारा, शरत

हवडा म्युनिसिपैल्टी

भाई चारु, तुम्हारे पत्र का जवाब ठीक समय पर नहीं दे सका। कुछ ख्याल मत करना। काग्रेस के अगले चुनाव आदि की वजह से जरा भी समय नहीं मिलता कि दो लाइन लिखकर अपने प्यार की मर्यादा की रक्षा कर सकू। तुम्हारे लडके का विवाह हुआ–पुत्र तथा पुत्रवधू को हृदय से आशीर्वाद देते हुए कामना करता हूँ, वे जीवन में सुखी हो, अपने सम्मिलित जीवन मे वे सुख–दु ख को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करे।

उस दिन काग्रेस के काम से कुमिल्ला गया था। सोचा था कि मैमनसिह और ढाका

घूमकर आऊंगा । ढाका में तुमसे मुलाकात होगी । लेकिन किस्मत में न बदा हो तो हो कैसे ? इतना आधी–पानी आया कि भीगते हुए वापस आ गया । कुमिल्ला के अलावा अन्यत्र कहीं नही जा सका ।

सुना होगा नरेन देव और राधा रानी का परसो विवाह हो गया । आज तार मिला । शाम के बाद लिलुआ (अर्थात् वहीं किसी जगह उन लोगों ने अड्डा जमाया है ।) जाकर वहा से खा–पीकर लौटूंगा ।

विवाह (लडके का) हो जाने पर मुझे समाचार दिया । आज दार्जिलिंग से कवि का एक आशीर्वादयुक्त पत्र आया है । उन्होंने लिखा है कि बुखार दूर हो गया, पर शरीर काफी कमजोर है । अभी कितने दिनों तक वहाँ रहना पड़ेगा, यह अनिश्चित है । कवि जब सत्तर वर्ष पूर्ण कर लेंगे तब हम सब मिलकर एक आनन्द उत्सव करने की कल्पना कर रहे है । इस कार्य के लिए हम लोगों में से किसी को ढाका आदि अचलों में जाने की जरूरत होगी । हम लोग (अर्थात् जो लोग उनके शिष्य हैं ।) इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए मेहनत करेंगे । न जाने क्यों उनके मन में यह सदेह उत्पन्न हो गया है कि बगाल मे उन्हें लोग समझ नहीं पाते । उनकी इस धारणा को दूर करना आवश्यक है । क्या राय है ? प्रेमोत्पल की मां को मेरा प्रणाम कहना और तुम मेरा प्यार स्वीकार करना । लडके को आशीर्वाद ।

तुम्हारा
शरत्

पी० ५६६, मनोहर पुकुर रोड
कलकत्ता ।

प्रियवरेषु

चारु, उस दिन गाव से कलकत्ता आया हूँ । सुना कि समाचार पत्रो में छपा है कि रवीन्द्रनाथ, यदुनाथ आदि बडे महापुरुषों के साथ–साथ तुम लोगों के ढाका विश्वविद्यालय ने मुझे भी डी० लिट० की उपाधि दी है । बात क्या है, मुझे सूचना दे सकते हो ? देश का कोई विश्वविद्यालय सहसा मेरे प्रति प्रसन्न हो उठेगा, इस बात की कल्पना नही थी ।

तुम लोगों की प्रबध कमेटी की ओर से मुझे कोई सूचना नहीं दी गयी है, इसीलिए तुम्हें पत्र लिखकर असली बात जानना चाहता हूँ ।

मजे में हो ? मेरी तबीयत ठीक नहीं है । इस उम्र में अधिक नाक–भौंह सिकोडना भी उचित नहीं है । गृहिणी को मेरा सश्रद्ध नमस्कार देना । इति–२० माघ, १३४२ ।

तुम लोगों का
शरत्

पी० ५६६, मनोहर पुकुर रोड, कलकत्ता ।

प्रियवरेषु,

भाई चारु, इस बीच घर गया था । गाँव में मिट्टी का घर और रूपनारायण

नद–इनकी माया के कारण मै अधिक दिनों तक कहीं नहीं रह पाता। लेकिन यह भी सच है कि इनकी माया को तोडकर चले जाने में अब अधिक देर नहीं है। पुराने इष्ट–मित्र बहुत से लोग चले गये है। उन्हें मै निरन्तर स्मरण करता हूँ। अभी–अभी दिवगत अध्यापक विपिन गुप्त के श्राद्ध का निमत्रण मिला। शिवपुर में न जाने कितनी शामे इनके साथ बहस मे बीती हैं। तुम पुराने मित्रो मे से हो, आशा है कम से कम तुमसे पहले जा सकूंगा। निरन्तर पीछे की बाते सोचता हूँ, आगे की ओर एक बार भी निगाह नहीं जाती। लेकिन जाने दो इन बातो को, तुम्हारा मन खराब करने से लाभ नहीं।

तुम्हारी दोनों चिट्ठिया मिलीं जिन्होने मुझे उपाधि देने का प्रस्ताव किया था, उनकी श्रद्धा और प्यार ही सबसे बडी उपाधि है। इस बात को याद करते ही मन भर उठता है।

ढाका अगर जा सका तो तुम्हारे यहा जा धमकूगा। भले ही तुमने निमत्रण नहीं भेजा। अपनी गृहिणी को मेरा सश्रद्ध नमस्कार देकर कहना कि उनके आह्वान की अवहेलना नहीं करूँगा। इति–२८ माघ, १३४२।

तुम्हारा

शरत्

श्री हरिदास शास्त्री के नाम

बाजे शिवपुर, हवडा

२८-३-२५

तुम्हारी चिट्ठी पढ़ी। इस बार काशी में इतने लोगो की भीड मे, केवल तुम्हीं आत्मीय से लगे। जबकि मै तुम्हारे बारे में कुछ भी नहीं जानता। इस पत्र को पढने मे कुछ समय नष्ट जरूर हुआ, पर समय क्या प्रहर, दड, पल विपल है ? इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है ? उस दृष्टि से इस लम्बे पत्र को लिखने और मेरे पढने तथा सोचने मे कुछ भी समय नष्ट नहीं हुआ, बल्कि सचय ही हुआ। .. लडकियो के लिए २३ से ३५ के बीच की उम्र सकटजनक होती है, कारण २२-२३ के बाद जब सचमुच का प्रेम जाग्रत होता है तब केवल आध्यात्मिक प्यार से इसकी सारी भूख नहीं मिटती। यह तो हुआ एक पक्ष–शारीरिक पक्ष, किन्तु दूसरा पक्ष भी है और वही हमेशा की मीमासा विहीन समस्या। दुनिया में आमतौर पर ऐसा नहीं होता, पर जिन दो–चार व्यक्तियों के भाग्य मे होता है उनकी तरह भाग्यवान भी नहीं और अभागे भी नहीं। इनके दुर्भाग्य पर ही काव्य–जगत का सारा माधुर्य सचित हो उठा है जबकि इतना बडा सत्य और कुछ नहीं है।

सुख दु ख दुटि भाई
सुखेर लागिया जे करे पीरिति दु ख जाय तार ठाई।

.. .समाज में जिसे गौरव नहीं दिया जा सकता, उसे केवल प्रेम के द्वारा सुखी नहीं किया जा सकता। मर्यादाहीन प्रेम का भार शिथिल होते ही दुर्विसह हो उठता है। ... ..इसके अलावा केवल अपनी बात ही नहीं, भावी सन्तान की बात सबसे बडी है। उनके कन्धों पर दूसरे का बोझा लाद देने की क्षमता बहुत बड़े प्रेम में भी नहीं है। ... .एक बात है–यथार्थ प्यार करने में स्त्रियों की शक्ति और साहस पुरुषों से कहीं अधिक है। वे कुछ भी नहीं मानतीं। पुरुष जहाँ भय से विह्वल हो जाते है, वहीं महिलाए स्पष्ट बातें ऊँचे आवाज मे घोषणा करने मे द्विधा नहीं करती। .. ..समाज के अविचार अत्याचार का जो पहले प्रतिवाद करता है, उसी को दु ख भोगना पडता है।

. कहा जाता है कि सच्चे प्यार के लिए ससार में दु ख भोगना पडता है । कोई न करे तो समाज के बेतुके अन्याय का प्रतिकार कैसे होगा ? समाज के विरुद्ध जाना और धर्म के विरुद्ध जाना, एक वस्तु नहीं है । इस बात को लोग भूल जाते है

श्री मनीन्द्रनाथ राय के नाम

सामतावेडा, पानित्रास पोस्ट
जिला – हवडा
१ जून, १६२६

परम् कल्याणीयेषु,

मनीन्द्र, तुम्हारा पत्र यथा समय प्राप्त हो गया था, पर कुछ बातों का जवाब दे रहा हूँ, और कुछ शारीरिक अस्वस्थता के कारण देर हो गयी ।

तुम मेरे यहा आओगे इससे मै प्रसन्न होऊगा, इसे तुम जानते हो, किन्तु तुम्हें कष्ट होगा । एक तो भयकर गर्मी, तीस पर मैदान से दोपहर को आना कष्टप्रद है । जरा पानी बरस जाय तब आना ।

इसके अलावा ३ से ६ तारीख तक मैं शिवपुर मे रहूँगा । एक काम है और २–१ दिन शिशिर भादुडी का रिहर्सल देखूँगा ।

(भारती में जब यह पुस्तक छप रही थी तब इसका नाट्य रूपान्तर किया था–शिवराम चक्रवर्ती ने । मैंने उलझी समस्याओं को ठीक करके अभिनय के योग्य बना दिया । बुरा नहीं हुआ है । मौका मिले तो एक दिन देखना ।)

इसी बीच एक दिन तुम्हारे यहाँ जाकर तुम्हारे पिता से मुलाकात करूँगा और ब्राह्मण–भोजन करके लौटूँगा । तुम्हारे यहाँ बडे प्रेम से भोजन कराया जाता है, उसका लोभ है । बाकी सब कुशल है । केवल बवासीर रक्तपात कर रहा है ।

आशा है, तुम लोग सकुशल हो । भूपेन बाबू का क्या हाल है ?

मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना
दादा

परम् कल्याण वरेषु,

सामतावेड, हवडा
२७-८-२६

मनीन्द्र, तुम्हारा पत्र मिला । तुम्हारे पत्र को पढने के बाद इच्छा हुई अभी चल दूँ ; पर भाई, मै स्वस्थ नहीं हूँ । पिछले दो सप्ताह से फ्लू का शिकार होने के कारण दुर्बल हो गया हूँ । इसके अलावा वर्षा–बादल के कारण स्टेशन तक जाने का जो मार्ग है, उसकी ऐसी हालत है कि कल्पना करने से डर लगता है । पालकी ढोने वाले कहारों को इस बात का डर रहता है कि बाध पर से चलते वक्त कहीं वे नहर में न गिर जायें । यहा के लोंगो को एक सुविधा यह है कि वर्षाकाल में इनके पैरों में खुर जम जाता है । सभी खटाखट पैदल चले जाते है, फिसलन से डरते नहीं। मेरे खुर अभी तक जमे नहीं है, पर विश्वास

है कि दो–एक साल यहा निवास करने के बाद जम जायेगे । असभव नहीं है, पर मेरा कहना है कि मुझे खुरों की जरूरत नहीं । इसके पहले जहा था, वहीं वापस चला जाऊगा ।

तुम्हारे पिताजी से काफी दिन हुए मुलाकात नहीं हुई है । जबकि उनके मृदुल स्वभाव के कारण उनके प्रति काफी श्रद्धा है । उन्हे मेरा प्रणाम कहना । ठीक होते ही उनका दर्शन करने आऊंगा । षोडशी का अभिनय मैने केवल एक बार देखा है, उसका फल भोग रहा हूँ । पानी में भींगने, तथा कीचड में लथपथ होने से फ्लू हुआ । तुम्हारी इच्छा हो तो एक बार जाकर देख लेना । वास्तव में शिशिर और चारु (चारुशीला देवी) का अभिनय देखने लायक है । मेरा आशीर्वाद लेना ।

दादा

परम् कल्याणीयषु,

मणी, धन्यवाद । ललित ने मेरा बडा उपकार किया है । इसके लिए उसे भी धन्यवाद । मेरा एक काम तुम्हें करना होगा । तुम साहब आदमी हो, तुरन्त कर सकोगे । जैसे, १–एक बार इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट जाना पडेगा । उक्त जमीन के लिए पाच हजार रुपये दे चुका हूँ, अभी उनके यहाँ से कोई पत्र नहीं मिला है । अभी कितने इनस्टालमेंट देंने होगे और कब–कब देना होगा, यह जानना जरूरी है ।

२–मुझे यह नहीं मालूम था कि बकाये रकम के लिए सूद देना पडता है । हम ठहरे गरीब, सूद देना मेरे लिए सम्भव नहीं । बाकी रुपये मै एक साथ देना पसन्द करूँगा जब वे लोग चाहे ।

३–बाकी रुपये अगर अभी दे दूँ तो अब कितना देना होगा ? सुना है कि मेरे बकाये रकम पर सूद लगाया गया है । अगर यह बात मुझे मालूम होती तो ५०% अभी और ५०% बाद मे देने का आवेदन न करता । उनसे कह देता कि मै एक साथ दे दूगा ।

आजकल रुपये की माग हर जगह है । मै बकाया रुपया अभी देने को तैयार हूँ । इससे कोई भी प्रकृतिस्थ व्यक्ति आपत्ति नहीं करेगा । कहने का मतलब ट्रस्ट यह नहीं कहेगा कि आप किश्तों मे दीजिए ।

यही जानना है कि क्या सारी रकम अभी देनी है । अगर वे यह कहे कि बकाया पाच हजार देना ही पडेगा तो दूगा, कारण सभी रकम दूगा और ऊपर से सूद भी दूगा, यह नहीं होगा ।

नक्शा तैयार नहीं हुआ । होते ही मकान मे हाथ लगेगा । इति १४ फाल्गुन, ३८ ।

— दादा

श्री परिमल घोष के नाम

बाजे शिवपुर, हवडा
४ चैत्र, १३३६

प्रियवरेषु,

आपका पत्र पाने पर चैतन्य हुआ । विभिन्न कार्यो में व्यस्त रहने के कारण साहित्य–सम्मेलन की बात याद नहीं रही । साहित्य से एक प्रकार का विच्छेद हो गया है । अब सोचता हूँ कि यह जिम्मेदारी किसी योग्य व्यक्ति को सौप देते तो अच्छा था । बहरहाल, अब समय नहीं रहा । इसके बाद पहले भाषण लिखने की आवश्यकता नहीं हुई

और न मै यह सब जानता ही हूँ। सुना है कि इस तरह भाषण लिखने के लिए भयानक पाण्डित्य की आवश्यकता होती है। मेरी पढाई-लिखाई सामान्य है कहूँ तो अत्युक्ति नहीं होगी। फलस्वरूप मै गम्भीर खोज पूर्ण लेख तैयार नहीं कर सकूँगा। न अग्रेजी जानता हूँ और न सस्कृत। जो मन मे आता है, उसी पर छोटी-बडी कहानियाँ लिखता हूँ। कुछ लोगों को अच्छी लगती है और अधिकतर लोगों को नहीं। लोग गाली-गलौज करते है। मै क्या लिखकर ले आऊँ, समझ में नहीं आ रहा है। आप ठहरे सपादक। निबध आदि सग्रह करना आपका काम है। मै काग्रेस के साथ जुडा हूँ वही ठीक है। देशोद्धार के लिए भाषण देना सहज है।

मेरे रहने के लिए प्रबध की क्या जरूरत ? साथ मे एक नौकर रहेगा। एक कमरा दे दीजिएगा, काम चल जायगा।

कुछ दिन पहले नयी पीढी के साहित्यिकों ने धमकी दी है कि हम लोग भी सम्मेलन में जायेंगे, क्योंकि मै जा रहा हूँ।

आप तो सम्पादक है। मेरा एक उपकार कर दें। साहित्य क्या है, किस धातु पर कौन सा प्रत्यय करने पर निस्पन्न होता है। आर्ट क्या है, उसका उद्देश्य क्या है, कितनी बातें आवश्यक है, अर्थात् जितनी अच्छी बातें कहने पर लोग प्रसन्न हो सकें और कहें-बढिया लिखा गया है-इस तरह की बातें मेरे लिए लिखकर या सग्रह करके रखें, मै उसे अपने भाषण में जोड दूँगा।

आपका,

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

श्री पशुपति चट्टोपाध्याय के नाम

तुम्हारा प्रश्न है कि मैं नाटक क्यों नहीं लिखता ? शायद तुम्हारे मन मे यह जिज्ञासा दो कारणों से आयी है। प्रथम नाट्यकार और दूसरे ग्रथकारो द्वारा उचित उपन्यासों के नाट्य रूप दाता श्रीयुक्त योगेश चौधरी ने हाल में 'वातायन' पत्रिका में बगला नाटकों के बारे में जो विचार प्रकट किये है, उसे तुम पूरी तरह नहीं मान सके और दूसरा हे, तुम निरन्तर जिन नाटकों का अभिनय देखा करते हो , उनके भाव, भाषा, चरित्र गठन इत्यादि को विचार कर देखने पर तुम्हारे मन में यह बात आयी है कि शरत्चन्द्र नाटक लिखें तो शायद रगमच के चेहरे पर कुछ परिवर्तन हो सकता है।

तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में मेरी पहली बात यह है कि मै नाटक नहीं लिखता। इसका कारण है-मेरी अक्षमता। दूसरी, इस अक्षमता को अस्वीकार करके अगर नाटक लिखता हूँ तो मेरी मजदूरी नहीं पोसायगी। यह मत समझना कि केवल रुपये की दृष्टि से यह लिख रहा हूँ। ससार में उसका प्रयोजन है, लेकिन एक मात्र प्रयोजन नहीं, इस सत्य को एक दिन के लिए भी नहीं भूला हूँ। उपन्यास लिखने पर मासिक पत्रिकाओं के सपादक साग्रह उसे ले जायेंगे, उपन्यास छापने के लिए प्रकाशकों की कमी नहीं होती। कम से कम अब तक नहीं हुई है और उस उपन्यास को पढने वाले भी मिलते रहे है। कहानी लिखने के नियमों को मैं जानता हूँ। कम से कम 'सिखा दीजिए' कहकर किसी के द्वार पर नहीं गया। लेकिन नाटक ? रगमच के अधिकारी ही इसके अन्तिम हाईकोर्ट है। सिर हिलाकर अगर कहते हैं कि इस जगह ऐक्शन कम है, दर्शक इसे स्वीकार नहीं करेंगे या यह नाटक नहीं चल सकता तो उसे चलाने की सूरत नहीं हे। उनकी राय ही अन्तिम है, क्योंकि वे इसके विशेषज्ञ हैं। रुपया देने वाले दर्शको की रुचि और पसन्द को वे अच्छी

तरह जानते हैं। फलस्वरूप इस मुसीबत में खामख्वाह घुस पडने में द्विधा अनुभव करता हूँ।

शायद मै नाटक लिख सकता हूँ। कारण नाटक की जो अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु है जिसके अच्छी न होने से नाटक का प्रतिपाद्य किसी भी तरह दर्शक के हृदय में प्रवेश नहीं करता है, उस वार्तालाप को लिखने का अभ्यास मुझे है। बात कैसे कहनी चाहिए, कितनी सरल बनाकर कहने से मन पर गहरा असर करती है, इस कौशल को नहीं जानता, ऐसी बात नहीं है। इसके अलावा यदि चरित्र या घटना निर्माण की बात कहते हो तो उसे भी कर सकता हूँ, ऐसा मुझे विश्वास है नाटक में घटना या सिचुएशन तैयार करना पडता है–चरित्र सृष्टि के लिए ही। चरित्र सृष्टि दो तरह से हो सकता है। एक है–प्रकाश अर्थात पात्र–पात्री जो हैं उसी को घटना परम्परा की सहायता से दर्शकों के सम्मुख उपस्थित करना और दूसरा है–चरित्र का विकास अर्थात् घटना परम्परा के अन्दर से उसके जीवन में परिवर्तन दिखाना। वह अच्छाई की ओर हो सकता है और बुराई की ओर भी। मान लो, कोई आदमी बीस साल पहले विलसन के होटल में खाना खाता था, झूठ बोलता था और अन्य बेकार के काम करता था। आज वह धार्मिक वैष्णव है–बकिमचन्द्र के शब्दों मे–पत्तल पर मछली का शोरबा गिरते ही उसे हाथ से पोंछ देता है। फिर भी हो सकता है कि यह उसका दिखावटीपन न हो, सच्चा आन्तरिक परिवर्तन हो। हो सकता है कि अनेक घटनाओं के आवर्त्त में पडकर दस–पाच भले लोगों के सम्पर्क मे आकर उनसे प्रभावित होकर आज वह वास्तव मे बदल गया हो, अतएव उसे बीस वर्ष पहले जो था, वह भी सत्य है और आज जो हो गया, वह भी सत्य है। लेकिन जैसे–तैसे होने से काम नहीं चलेगा। पुस्तकों के माध्यम से, लेखन के द्वारा पाठक या दर्शकों के निकट इसे यथार्थ बनाना होगा। उन्हें ऐसा नहीं लगना चाहिए कि रचना में इस परिवर्तन का कारण ढूंढने पर भी नहीं मिलता है। काम कठिन है। एक बात और–उपन्यासों की तरह नाटको में लचीलापन नहीं है, नाटक को एक निश्चित समय के बाद आगे बढने नहीं दिया जा सकता। घटना के बाद घटना सजाकर नाटक को दृश्यों या अको मे विभाजित करना, वह भी चेष्टा करने पर दु साध्य नहीं होगा। किन्तु सोचता हूँ कि करके क्या होगा ? नाटक जो लिखूँगा, उसका अभिनय कौन करेगा ? शिक्षित अभिनेता अभिनेत्री कहा है ? नाटक की नायिका बनेगी, ऐसी एक भी अभिनेत्री नजर नहीं आती है। इसी तरह के नाना कारणो से साहित्य की इस दिशा में पग बढाने की इच्छा नहीं होती। आशा करता हूँ कि किसी दिन वर्तमान रगमच की यह कमी दूर होगी, लेकिन शायद हम उसे अपनी आखो से देख नहीं सकेंगे। अवश्य ही अगर वास्तविक प्रेरणा आयी तो शायद कभी लिख सकता हूँ। किन्तु अधिक आशा नही रखता।

श्रीमती हिरण्मयी देवी के नाम

मालच

कारस्टेयर्स टाउन, देवघर

सथाल – परगना

कल्याणीयासु,

बड़ी बहू, कल तीसरे पहर ३।। बजे यहा आ गया। स्टेशन पर सत्य मामा और मृत्युजय मोटर लेकर खडे थे। मार्ग में कोई कष्ट नहीं हुआ। हरिदास का यह मालच बहुत सुन्दर है। साफ–सुथरा और काफी जमीन है। पाखाना नीचे जरूर है, पर अच्छा

है। आज सवेरे चाय के लिए वकरी का दूध दे गया है, उससे कह दिया है कि क्रमश नित्य मुझे एक सेर दूध चाहिए। मच्छर काफी है। कल मसहरी नहीं लगाया, सोचा था कि मच्छर नहीं होंगे, पर रात को ३ या ३।। बजे सब के सब खा जाने को तैयार हो गये। कथरी ओढकर रात वितायी। जाड़ा है, इसलिए वच गया। सभी लोग कह रहे हैं कि एक–दो माह रहने पर शरीर सम्पूर्ण रूप से ठीक हो जायेगा। देखा जाय कितने दिनों तक रह पाता हूँ। मुझे सिर्फ तुम्हारी चिन्ता है। कहीं असावधानी के कारण बीमार न हो जाओ। कारण जिस दिन यह पता चला कि तुम बीमार हो गयी हो, उसी दिन देवघर छोडकर कलकत्ता रवाना हो जाऊगा।

यहा के तेल–घी अच्छे नही है। सत्य मामा ने कहा है कि इन दोनों सामानों का इन्तजाम वे कर देंगे। गेंहूँ लाकर उन्हें देने पर जेलखाने से पिसवाकर मगा देगे[1]।

लगता है, यहा कोई कष्ट नहीं होगा। घूमने की जरूरत है, मोटर की जरूरत है, पैदल टहलने की ताकत नहीं है। शायद काली[2] को गाडी लेकर यहा आना पडे। ६-७ दिन के वाद इस वारे में पत्र लिखूँगा।

बूडी, बाघा अनाचार कर बीमार न हो जाये। दीदी घर चली गयीं ; विना गये उनका काम कैसे चलेगा। अगर रहतीं तो तुम्हें आराम रहता। खाना वनाने वाला पाचक मिला ? इसकी चिन्ता है। चाहे जैसे भी हो, जितना भी वेतन मागे, जल्द एक पाचक ठीककर लो वर्ना सभी को कष्ट होगा।

प्रकाश को यह पत्र दिखाकर कहना कि इस वक्त मै उसके भरोसे हूँ। कोई भी बीमार पडे तो तुरन्त मुझे पत्र दे।

आज या कल अपने कुमुदशकर डाक्टर को पत्र लिखूगा। प्रकाश उन्हें यह सूचित कर दे कि मै देवघर में हूँ।

छोटी वहू, बच्चे, होंदल, प्रकाश और तुम मेरा आशीर्वाद लेना। दीदी को मेरा प्रणाम कहना।

इति १८ फाल्गुन, १३४३

शुभाकाक्षी

श्रीशरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

मृत्युजय ने अभी आकर बताया कि उसने तुम्हें मेरे पहुच जाने की सूचना तार से दे दी है।

श्री अतुलानन्द राय के नाम

कल्याणीयेसु,

श्रावण (१३४०) की 'परिचय' पत्रिका में श्रीमान् दिलीप कुमार राय को लिखित रवीन्द्रनाथ के पत्र–साहित्य की मात्रा के सम्बन्ध में तुमने मेरी राय जाननी चाही है। यह पत्र व्यक्तिगत होने पर भी जव प्रकाशित हुआ है तब ऐसा अनुरोध किया जा सकता है, किन्तु कितनी ही चार पृष्ठ की लम्बी चिट्ठी की अन्तिम पक्ति में "कुछ रुपये भेजने" की तरह अन्तिम कई पक्तियों का वास्तविक वक्तव्य अगर यही हो कि योरोप अपनी मशीनों–धन–दौलत–तोप–बन्दूक, मान–इज्जत के सहित शीघ्र डूबेगा, पर अत्यन्त

---

१ सत्येन्द्रनाथ गागुली सिविल सर्जन के रूप में जेलखाने के भी डाक्टर थे।

२ ड्राइवर।

परिताप के साथ यही समझूगा कि उम्र तो बहुत हुई, क्या उस वस्तु को आखो से देखकर जा सकूंगा ?

इनके अलावा कवि ने और भी जिन लोगों के बारे में आशा छोड दी है, तुम लोगों को सदेह होता है, कि उनमें से एक मै भी हूँ। असम्भव नहीं है। इस निबन्ध में कवि की शिकायत यह है कि वे मतवाले हाथी है, वे बोली मारते, पहलवानी करते, कसरत का करामात दिखाते, प्राब्लेम साल्व करते है, इत्यादि।

ये बातें जिस किसी को क्यों न कही जाये, सुन्दर नहीं है और श्रुति सुखकर भी नहीं। श्लेष विद्रूप का आमेज मन में एक प्रकार का इरिटेशन लाता है। उससे कला का उद्देश्य व्यर्थ हो जाता है, श्रोताओं का मन खिन्न हो जाता है। गोकि क्षोभ प्रकट करना जिस प्रकार बेकार है, उसी प्रकार प्रतिवाद करना व्यर्थ। किसी की तैयारी की हुई बोली तोते की तरह दुहरा दी, कहा पहलवानी की, कौन सा खेल दिखलाया, क्रुद्ध कवि से इन सारी बातो को पूछना अवान्तर है। मुझे अपने बचपन की बात याद आती है। खेल के मैदान मे किसी ने हाक लगा दी कि अमुक मैल बूड गया है। फिर क्या कहना। कहा बूडा, किसने कहा, किसने देखा, वह मैला नहीं, गोबर है–सब वृथा, घर आने पर माताएं बिना नहलाये, सिर पर गगाजल बिना छिडके, घर मे प्रवेश करने नहीं देती। कारण उसने मैल पर पैर रख टिया था। मेरी भी यही दशा है।

क्या 'साहित्य की मात्रा' ओर क्या अन्य निबध, इस बात को मै अस्वीकार नहीं करता कि कवि की इस प्रकार की अधिकाश लेखों को समझने की बुद्धि मुझमें नहीं है। उनके उपमा उदाहरणों में कल, कब्जा, हाट–बाजार, हाथी–घोडे, जन्तु–जानवर आते हैं। समझ मे नहीं आता मनुष्य की सामाजिक समस्याओं में नर–नारी के पारस्परिक सम्बन्ध के विचार मे वे क्यो आते हैं और आकर किस बात को सिद्ध करते है ? सुनने मे अच्छे लगने पर ही तो वे तर्क बन नहीं जाते।

एक दृष्टान्त दू। कुछ दिनों पहले हरिजनों के प्रति अन्याय से व्यथित होकर उन्होने प्रर्वत्तक सघ के मोती बाबू को एक पत्र लिखा था। उसमे शिकायत की थी कि ब्राह्मण की पाली हुई बिल्ली जब जूठे मुह उसके गोद में जा बैठती है तब इससे उसकी पवित्रता नष्ट नहीं होती, वह आपत्ति नहीं करती। सभव है कि न करती हो, लेकिन इससे हरिजनों की क्या सुविधा हुई ? कौन–सी बात सिद्ध हुई ? बिल्ली के तर्क से यह बात ब्राह्मणी को नहीं कहा जा सकता कि बिल्ली जैसी अति निकृष्ट जीव तुम्हारी गोद में जा बैठी तो तुमने आपत्ति नहीं की, अतएव अति उत्कृष्ट जीव मै भी तुम्हारी गोद में बैठूगा, तुम आपत्ति नहीं कर सकती। बिल्ली क्यों गोद में बैठती है, चीटी क्यों थाली पर चढती है, इन तर्कों को पेश करके मनुष्य के प्रति मनुष्य का न्याय–अन्याय का विचार नहीं किया जा सकता। ये उपमाए सुनने में अच्छी लगती है, देखने में चकाचौंध करती है, पर जचाई करने पर जो दाम लगता है, वह अकिचितकर होता है। विराट् फैक्टरी की अनगिनत वस्तुओं के उत्पादन की अपकारिता दिखाकर मोटा उपन्यास भी अत्यन्त नुकसान देह है, यह सिद्ध नहीं किया जा सकता।

आधुनिक काल में कल–कारखानो की नाना कारणों से बहुत से लोग निन्दा करते हैं, रवीन्द्रनाथ ने भी की है–इसमें दोष नहीं है। बल्कि यह फैशन हो गया है। बहुनिन्दित वस्तु के सस्पर्श में जो लोग इच्छा या अनिच्छा से आ गये हैं, उनके कारण भी सुख–दुख के कारण जटिल हो गये हैं, जीवन–यात्रा की प्रणाली बदल गयी है। गाव के किसानों से उनका जीवन हूबहू नहीं मिलता। इस बात को लेकर दुख किया जा सकता है, लेकिन अगर कोई इनकी नाना विचित्र घटनाओं को लेकर कहानी लिखता है तो वह साहित्य क्यों नहीं होगा ? कवि भी यह नहीं कहते कि नहीं होगा। उनकी आपत्ति है केवल साहित्य की

मात्रा उल्लघन में। किन्तु इस मात्रा का निश्चय होगा किस चीज से ? झगडे से या कडवी बातचीत से। कवि ने कहा है—निश्चय होगा साहित्य की चिरन्तन मूल नीति से। किन्तु यह 'मूल नीति' तो लेखक की बुद्धि के अनुभव और स्वकीय रसोपलब्धि के आदर्श के सिवा और कहीं है ? चिरन्तन की दोहाई शारीरिक जोर से दी जा सकती है अन्य किसी से नही। वह मृगतृष्णा है।

कवि ने कहा है—"उपन्यास साहित्य की भी वही दशा है। मनुष्य के प्राणों का रूप विचारो के स्तूप के नीचे दब गया है।" लेकिन प्रत्युत्तर में अगर कोई यह कहता है—उपन्यास साहित्य की वह दशा नहीं है, मनुष्य के प्राणों का स्वरूप विचार के स्तूप के नीचे दब गया है, विचार के सूर्यलोक से उज्जवल हो उठा है" तो उसे कौन—सा नजीर देकर चुप कराया जा सकता है। इसी के साथ एक बात और सुनाई देती है, रवीन्द्रनाथ ने उसको यह कहकर मान्यता दी है कि अगर मनुष्य कहानी के अड्डे पर आता है तो कहानी ही सुनना चाहेगा, यदि वह प्रकृतिस्थ है।" इस फतवे को स्वीकार करते हुए पाठक अगर यह कहे—'हा, हम प्रकृतिस्थ हैं, लेकिन समय बदल गया है और हमारी उम्र भी बढी है। अतएव राजा—रानी, मेढक—मेढकी की कहानी से हमारा मन नहीं भरता—तो क्या उनका यह उत्तर दुर्विनीत होगा—ऐसा मै नहीं समझता। वे अनायास ही कह सकते है कि कहानी मे विचार शक्ति की छाप रहने से ही वह परित्याज्य नहीं होती, किम्बा विशुद्ध कहानी लिखने के लिए लेखक को विचार—शक्ति को विसर्जन देने की जरूरत भी नहीं।

कवि ने रामायण—महाभारत का उल्लेख करके भीष्म और राम के चरित्रों की आलोचना करके दिखाया है कि 'बकवाद' के कारण वे दोनों चरित्र मिट्टी मे मिल गये है। इस विषय पर मै आलोचना नहीं करूगा, क्योंकि वे दोनों ग्रथ केवल काव्यग्रथ ही नहीं, धर्मग्रथ भी है, शायद इतिहास भी है। वे दोनो चरित्र साधारण उपन्यास के बनावटी चरित्र मात्र नहीं हो सकते, अतएव साधारण काव्य, उपन्यास के मापदण्ड से नापने में मुझे हिचक है।

पत्र मे इण्टिलेक्ट शब्दों के कितने प्रयोग है। ऐसा लगता है मानो कवि ने विद्या तथा बुद्धि दोनो अर्थो में इस शब्द का प्रयोग किया है। प्राब्लेम शब्द भी उसी तरह है। उपन्यासों में कितने ही प्रकार के प्राब्लेम रहते है, व्यक्तिगत, नीतिगत, सामाजिक, सासारिक—इसके अलावा कहानी का अपना प्राब्लेम जो प्लाट से सम्बन्धित होते है। इसकी गाठ सबसे कठिन होती है। कुमार सम्भव का प्राब्लेम, उत्तरकाण्ड में रामभद्र का प्राब्लेम, डाल्स हाउस में नोरा का प्राब्लम अथवा योगायोग की कुमू का प्राब्लेम एक ही ढग के नहीं हैं। 'योगायोग' पुस्तक जब 'विचित्रा' में प्रकाशित हो रही थी और अध्याय के बाद अध्याय में कुमू ने जो हगामा किया था, मै तो समझ नहीं पाता था कि उस दुर्द्धष पराक्रान्त मधुसूदन से उसकी रस्साकशी कैसे होगी ? लेकिन कौन जानता था कि समस्या इतनी सहज थी और लेडी डाक्टर आकर क्षणभर में उसका फैसला कर देंगी। हमारे जलधर दादा भी प्राब्लेम बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं। बडे नाराज रहते है। उनकी एक पुस्तक में इसी तरह एक आदमी ने बडी समस्या पैदा कर दी थी, लेकिन उसका फैसला दूसरे ढग से हो गया। फुत्कार कर एक जहरीला साप निकला और काट खाया। दादा से पूछा था कि यह क्या हुआ ? उन्होंने उत्तर दिया था—"क्यों, साप किसी को नहीं काटता क्यों ?"

अन्त में एक बात और कहनी है। रवीद्रनाथ ने लिखा है—"इब्सेन के नाटकों का इतने दिनों तक कुछ कम आदर नहीं हुआ ? लेकिन क्या अब उनका रग फीका नहीं पड गया है ? कुछ दिनों बाद क्या वह दिखाई देगा ?" नहीं पड सकता है, फिर भी यह अनुमान है—प्रमाण नहीं। बाद में किसी समय ऐसा भी हो सकता है कि इब्सेन का पुराना

आदर पुन लौट आये । वर्तमानकाल ही साहित्य का चरम हाईकोर्ट नहीं है ।

श्रीशरत्‌चन्द्र चट्टोपाध्याय

['आत्मशक्ति' सम्पादक के नाम]

५ आश्विन, १३३८

श्रीयुक्त आत्मशक्ति सम्पादक महाशय की सेवा में । आपकी ३० भाद्रपद की 'आत्मशक्ति' पत्रिका में मुसाफिर लिखित 'साहित्य का मामला' पढा । किसी समय बगला–साहित्य में सुनीति दुर्नीति की आलोचना से पत्रिकाओं में कितनी ही कठोर बातें खडी हो गयी है, और आज अकस्मात् साहित्य में 'रस' की आलोचना में कटु रस ही प्रबल हो रहा है । ऐसा ही होता है । देवता के मन्दिर में सेवकों की जगह 'सेवायतों' की सख्या बढते रहने से देवी के भोग की मात्रा बढने के बदले घटती ही रहती है । और मामला तो रहता ही है ।

आधुनिक साहित्य–सेवियों के विरुद्ध सम्मति बहुतेरी कटूक्तियाँ बरसायी गयी हैं । बरसाने के पुण्यकार्य में जो लोग लगे हुए हैं मैं भी उन्हीं में एक हूँ । 'शनिवार की चिटठी' के पृष्ठों में उसका प्रमाण है ।

मुसाफिर लिखित इस 'साहित्य का मामला' के अधिकांश मन्तव्यों से मैं सहमत हूँ केवल एक बात से किंचित् मतभेद है ।

रवीन्द्रनाथ की बात रवीन्द्रनाथ जानें, पर अपनी निजी बात जितनी जानता हूँ उससे शरत्‌चन्द्र 'कल्लोल' 'काली कलम' या बगला के किसी भी पत्र को नहीं पढते है या पढने की फुर्सत नहीं पाते है, मुसाफिर का यह अनुमान सही नहीं है । लेकिन इस बात को मानता हूँ कि पढकर भी सारी बातें नहीं समझता । पर बिना पढे ही सारी समझता हूँ इसका दावा नहीं करता ।

यह तो हुई मेरी अपनी बात । लेकिन जिस बात को लेकर झगडा उठ खडा हुआ है, वह क्या है और लडकर किस प्रकार से उसका निपटारा होगा, यह मेरी बुद्धि से परे है ।

रवीन्द्र नाथ ने साहित्य के धर्म का निरूपण कर दिया और नरेश चन्द्र ने इस धर्म की सीमा निश्चित कर दी । जैसा पाण्डित्य है वैसा ही तर्क भी । पढकर मुग्ध हो गया । सोचा, बस, इस पर और क्या कहा जा सकता है । लेकिन कहा बहुत कुछ गया । तब कौन जानता था कि किसकी सीमा मे किसने पैर बढाया है और सीमा की चौहद्दी को लेकर इतने लट्ठबाज तैयार हो जायेंगे । कुआर की 'विचित्रा' में श्री युक्त द्विजेन्द्रनारायण बागची महाशय ने "सीमाने पर विचार' पर अपनी राय दी है । बीस पृष्ठ लम्बी ठोस बिनाई का मामला है । कितनी बाते कितने भाव है । जैसी गम्भीरता है, वैसा ही विस्तार, वैसा ही पाण्डित्य भी वेद, वेदान्त, न्याय, गीता, विद्यापति, चण्डीदास, कालिदास के श्लोक, उज्ज्वल, नीलमणि जैसे, मय व्याकरण के अधिकरण कारकतक । बापरे बाप । मनुष्य इतना कब पढता हैं, और न जाने कैसे याद रखता है ।

इसके मुकाबले मे लालतूलमंडित वश–खण्डनिर्मित क्रीडा–गाण्डीवधारी नरेशचन्द्र बिल्कुल भर्ता हो गये है । हमारे अवैतनिक नव–नाट्य–समाज के बडे अभिनेता नर सिह बाबू थे । राम कहो, रावण कहो, हरिश्चन्द्र कहो, सब पर उन्हीं का इजारा था । अचानक एक और सज्जन आ धमके, उनका नाम था–रामनरसिह बाबू । और भी बडे अभिनेता । जैसे मुक्त स्वर से पुकारते थे, हस्त–पद सचालन में भी उनका पराक्रम अप्रतिहत था । मानो मतवाला हाथी । इस नवागत राम नरसिह बाबू के रोब के सामने हमारे केवल

नरसिह बाबू तृतीया की शशि–कला की भाँति मद्धिम पड गये । नरेश बाबू को नहीं देखा है पर कल्पना में उनका चेहरा देखकर ऐसा लग रहा है, मानो वह हाथ जोडकर चतुरानन से कह रहे है–प्रभु ! मेरे लिए वन मे जाकर रहना इससे कहीं अच्छा है ।

द्विजेन्द्र बाबू की बहस की शैली जैसी तगडी है, दृष्टि भी वैसी ही छुरे–सी पैनी । इतने सतर्क है मानो फैसले के मसौदे में कहीं एक अक्षर का भी अन्तर न आने पावे । मानो बडे जाल में रोहू से लेकर घोघा–सीप तक छान लाने के लिए बद्ध–परिकर है ।

हाय रे फैसला ! हाय रे साहित्य का रस ! मथते–मथते मानों तृप्ति नहीं हो रही है । रवीन्द्रनाथ और नरेशचन्द्र को दाहिने-बाये रखकर अक्लान्तकर्मी द्विजेन्द्रनाथ निरपेक्ष समान गति से मानो रुई धुन रहे है। लेकिन तत किम् ?

रहे है । लेकिन तत किम् ?

पर यह किम् ही बडी चिन्ता की बात है । नरेशचन्द्र अथवा द्विजेन्द्रनाथ जसे लोग साहित्यिक व्यक्ति है, इनका भाव–विनिमय और प्रीति–संभाषण समझ मे आता है । लेकिन इन आदर–सत्कारो का सूत्र पकडकर जब बाहर वाले आकर उत्सव में योगदान करते है, तब उनके ताण्डव नृत्य को कौन रोक सकता है ?

एक उदाहरण दूँ । इसी कुआर के 'प्रवासी' में श्री ब्रजदुर्लभ हाजरा नामक एक व्यक्ति ने इस ओर रुचि की आलोचना की है । इनके आक्रमण लक्ष्य तरुणो का दल है और अपनी रुचि का परिचय देते हुए कहते हैं–'इस समय जिस प्रकार राजनीति की चर्चा मे शिशु और तरुण, छात्र और बेकार व्यक्ति निरन्तर तल्लीन हैं, उसी प्रकार अर्थोपार्जन के लिए इन बेकार साहित्यिकों के दल ग्रथ रचना मे लगा हुआ है । और उसका परिणाम यह पुकार है कि, हाडी चढाकर कलम पकडने से जो कुछ होना चाहिए वही हुआ है' ।"

इस व्यक्ति ने डिपुटीगीरी करके पैसा जमा किया है और आजन्म गुलामी का पुरस्कार, लम्बी पेन्शन भी इसे नसीब हुई है, इसीलिए साहित्य–सेवियों के निरातिशय दारिद्रय का उपहास करने में इसे सकोच नहीं हुआ । यह आदमी जानता भी नहीं है कि दारिद्रय अपराध नहीं है और सभी देशों और सभी युगों में इन्होंने इतना बडा गौरव मिला है ।

ब्रजदुर्लभ बाबू भले ही न जानें, पर 'प्रवासी' के प्रवीण और सहृदय सम्पादक से तो यह बात छिपी नहीं हुई है कि साहित्य के भले–बुरे की आलोचना और दरिद्र साहित्यिक के चूल्हा न जलने की आलोचना एक ही वस्तु नहीं है । मेरा विश्वास है कि उनके अनजाने ही इतनी बडी कटूक्ति उनकी पत्रिका में छप गयी है । और इसके लिए वह पीडा का ही अनुभव करेंगे और शायद अपने लेखक को बुलाकर कान में कह देंगे, भैया, मनुष्य की गरीबी की खिल्ली उडाने में जो रुचि प्रकट होती है, वह भद्र–समाज की नही है और लोटा चुराने के फैसले में सिद्धहस्त होने से साहित्य के 'रस' का विचार करने का अधिकार नही उत्पन्न होता है । इन दोनों मे अन्तर है, पर वह तुम्हारी समझ से परे है ।

श्री शरत्चन्द्र

समाज धर्म का मूल्य

बिडाल के लिए 'मार्जार' प्रतिशब्द का प्रयोग करके अर्थ समझाने में व्यक्ति विशेष के पाण्डित्य का प्रदर्शन तो अवश्य होगा, किन्तु उसकी सामान्य बुद्धि (Commonsense) के विषय में लोगो के मन में घोर सशय उत्पन्न होगा, यह भी निश्चित है। प्रबन्ध लेखन की प्रचलित पद्धति कुछ भी हो पर जाति के रूप में शुरू में 'समाज' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए इसकी व्युत्पति तथा उत्पत्तिगत इतिहास के वर्णन द्वारा इसकी विशेष व्याख्या करके, अत में यह 'यह' नही है, 'वह' नही है कहकर पाठक के चित्त को विभ्रात करके अपनी रचना का गवेषणापूर्ण उपसहार करने की मेरी मशा नही है। जिस व्यक्ति में इस प्रबन्ध के पढ़ने का धैर्य होगा, उसे 'समाज' शब्द का अर्थ समझाने की आवश्यकता नही पडेगी, यह मै जानता हूँ। दलबद्ध होकर रहने का नाम ही समाज नही होता- मारोला मछलियों का झुंड, मधुमक्खियो का छत्ता, चीटियों का बासा या लगूरो के विराट दल को 'समाज' नही कहा जा सकता, इस तथ्य से वह पाठक अवश्य अवगत होगा।

पर अगर यह कोई कहे कि 'समाज' के बारे में एक मोटी सी और अस्पष्ट धारणा मनुष्य की हो सकती है किन्तु इसलिए क्या प्रबन्धकार को उसके सूक्ष्म अर्थ के दिग्दर्शन कराने की चेष्टा नही करनी चाहिये उन महोदय के लिए मेरा उत्तर है, नही। कारण ससार में अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं जिनकी स्थूल और अस्पष्ट धारणा ही चरम सत्य है, उनके सूक्ष्मरूप के दिग्दर्शन कराने की चेष्टा करना केवल विडम्बना ही नही, प्रवचना, भी है। ईश्वर के विषय में मनुष्य के मन में जो धारणा बनी हुई है, वह बहुत ही स्थूल और अस्पष्ट है, लेकिन यही काम की चीज है। इसी प्रकार की स्थूल या मोटी धारणा पर ही दुनिया चलती है, सूक्ष्म पर नही। समाज भी बिलकुल ऐसी ही एक चीज है। एक अशिक्षित गाँव का किसान जिसे 'समाज' के रूप मे जानता है, उसी पर बेहिचक हम निर्भर कर सकते हैं, एक पडित की सूक्ष्म व्याख्या पर नही, कम से कम मैं इसी मोटी वस्तु की ही विवेचना करना चाहता हूँ। जो समाज मृत्यु के अवसर पर कधा देने आता है, फिर श्राद्ध के समय गुटबदी करता है, विवाह के मौके पर घटक वृत्ति करता है अथवा बहुभात (पाकस्पर्श) के भोज के मौके पर रूठ जाता है ; काम-काज में जिसकी मिन्नतें करके गुस्सा दूर करना पडता है, उत्सव-व्यसन मे जो मदद करता है और विवाद भी, बावजूद बेशुमार नुक्सों के जो पूजनीय है— मैं उसी को समाज कहता हूँ और यह समाज जिसके द्वारा शासित होता है, उस वस्तु को ही समाज-धर्म कहता हूँ। किन्तु यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि मेरे प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य उस सामाजिक धर्म की चर्चा करना नहीं है जो बिना किसी भेदभाव के सब देशों की सब जातियों के समाज का नियत्रण करता है। कारण, मनुष्य अंततोगत्वा मनुष्य ही रहता है। उसके सुख-दु.ख तथा आचार व्यवहार की धारा सर्वत्र एक ही प्रकार की होती है। किसी के मरने पर सब देशों में ही पड़ोसी मृत व्यक्ति के सस्कार के लिए एकत्रित होते हैं, विवाह के अवसर पर सर्वत्र ही लोग खुशियाँ मनाने आते हैं। पिता माता सब देशों में ही सतान के लिये पूज्य है, वयोवृद्धो के प्रति सम्मान-प्रदर्शन सब देशों का नियम है, पति-पत्नी का सम्बन्ध सर्वत्र ही प्राय एकसा है; आतिथ्य सब देशों मे ही गृहस्थ का धर्म माना जाता है। जो कुछ भेद

दिखलाई पड़ता है वह सिर्फ छोटी-छोटी बातों में ही होता है। मुर्दे को कोई घर से गाडी या पालकी में फूल-मालाओं से ढककर कब्रिस्तान ले जाता है, कोई अरथी पर ढो के श्मशान ले जाता है, विवाह के लिये कही वर को तलवार आदि 'पाँच हथियार बाँध के जाना पडता है, और कही सिर्फ सरौता लेकर जाने पर ही पाँच हथियारों की नियम पूर्ति मान लिया जाता है। वस्तुत इन सब छोटी-छोटी बातों को लेकर ही आपस में लोग वाद-वितडा, कलह-विवाद करते हैं। और जो बातें बडी हैं, प्रशस्त है, समाज में रहने के लिए अत्यावश्क हैं, उनके विषय में लोगों में कोई मतभेद नही होता, हो भी नही सकता। और हो नहीं सकता तभी भगवान राज अभी तक बरकरार हैं, ससार में आजीवन निवास करके मनुष्य अन्त में उनके श्री चरणों के आश्रय में पहुचने की सुखद इच्छा पोषण करता है। अतएव मृत व्यक्ति की अन्त्येष्टि करनी पड़ती है, शादी करके औलाद की परवरिश करनी पडती है, मौका मिलते ही पडोसी की हत्या नही करनी चाहिए, चोरी करना पाप है--ये स्थूल किन्तु नितान्त प्रयोजनीय सामाजिक धर्म की बातें सब मानने को बाध्य है, चाहे उन व्यक्तियो का निवास अफ्रीका के सहारा में हो, या एशिया के साइबेरिया में। पर इन सब बातों की आलोचना करना मेरा प्रमुख उद्देश्य नही है। मगर यह भी मै न कहना चाहता हूँ, न समझता हूँ कि छोटी चीजें (या बातें) तुच्छ होती है और सर्वथा आलोचना के अयोग्य है। दुनिया में सब जगह इनका उपयोग न होने पर भी कही कही और किसी विशेष समाज में इनकी पर्याप्त उपयोगिता हो सकती है तथा यह कार्य उपेक्षणीय नही है। साधारणतय ये बातें देशाचार के रूप में प्रगट होती हैं और अधिकाशत ऊटपटाँग सी लगती है। फिरभी ये ही विभिन्न स्थानों में सार्वजनिक सामाजिक धर्म का वहन करती है, यह भी एक सर्वमान्य सत्य है। वहन करने की इन विभिन्न धाराओं पर दृष्टिपात करना ही मेरा लक्ष्य है।

सामाजिक मनुष्य को तीन प्रकार का शासन-पाश आजीवन वहन करना पडता है। पहला राज-शासन दूसरा नैतिक शासन तीसरा जिसे देशाचार कहते हैं, उसका शासन।

राज-शासन, मै स्वेच्छाचारी और दुर्वृत्त राजा की बात नही कह रहा हूँ- जो राजा सुसभ्य, प्रजावत्सल है- उसके शासन में उसकी प्रजा की समवेत इच्छा प्रच्छन्नरूप में वर्तमान रहती है। तभी हत्या करके जब उस शासन-पाश को गले मे बाँधकर फाँसी के तख्ते पर चढता हूँ, उस गले की फाँस में मेरी अपनी इच्छा भी प्रकारान्तर से नही मिली हुई है, ऐसा नही कहा जा सकता। तो भी मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तिवश अपने ऊपर बात आ पडने पर जब मै अपनी उस इच्छा को झाँसा देकर आत्म रक्षा के लिए तत्पर हो जाता हूँ, तब जो आकर जबरदस्ती दण्ड को लागू करती है वही है राजशक्ति, शक्ति के बिना शासन नही हो सकता। इसी तरह नीति तथा देशाचार को मानने के लिये मुझे बाध्य करता है मेरा समाज और उसके (नियम) कानून।

कानून की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मतामत प्रचलित होने पर भी मुख्यत राजाद्वारा सृजित कानून जिस तरह राजा और प्रजा दोनों को ही नियन्त्रित करता है, नीति तथा देशाचार भी उसी तरह समाज-सृष्ट होने पर भी समाज और सामाजिक मनुष्य दोनों ही को नियन्त्रित करता है। किन्तु, ये कानून क्या निर्मूल है ? कोई ऐसी बात नही कहता। इनमें कितनी अपूर्णत्ता, कितना अन्याय, कितनी असगति तथा कठोरता है कि जिसका हिसाब नही। कहाँ नही हैं ये ? राजा के कानून में है, समाज के कानून में भी है।

इन त्रुटियों के रहने पर भी, आईन-कानून के नियम में विवेचना करके जितने लोगों ने जितनी बातें कही हैं- हाँलाकि मै उनके मतामत को उद्धृत करके इस प्रबन्ध की कलेवर वृद्धि नही करना चाहता-तोभी इस बात को सभी ने स्वीकार किया है कि कानून

जब तक कानून है, उसमे कितनी ही त्रुटियाँ क्यो न हो, उसे तब तक शिरोधार्य करना ही पडेगा । न करने का नाम होगा विद्रोह 'The righteousness of a cause is never alone a Sufficient justification of rebellion , सामाजिक आईन कानून पर भी क्या यह बात लागू नही होती ? मै अपने समाज की ही बात कहता हूँ । राजा अपने कानून को खुद देखेगे, उसके बारे मे मैं कुछ नही कहता । सामाजिक आईन-कानून मे भूलचूक अन्याय असगति जो कुछ है उन पर बाद मे विचार हो सकता है, मगर बावजूद इसके इसे मानकर ही चलना पडेगा । जब तक यह सामाजिक शासन-विधि के रूप मे है, तब तक केवल अपने न्यायपूर्ण माँगो के बहाने इसकी उल्लघन करके कोई आदोलन नही खडा किया जा सकता । समाज मे व्याप्त अन्याय, इसकी असगतियो तथा त्रुटियो पर विचार करके इनका सशोधन किया जा सकता है, पर ऐसा न करके अपने न्यायपूर्ण अधिकारो के बल पर अकेले-अकेले या दो चार साथियो को लेकर क्रान्ति मचा कर समाज-सस्कार का कार्य कदापि नही हो सकता ।

श्रीयुत रविबाबू का 'गोरा' उपन्यास जिन लोगो ने पढा है, वे जानते है कि इस प्रकार की कुछ चर्चा उसमे है, किन्तु अत मे क्या मीमासा की गई है । मै नही जानता । पर यदि पक्ष मे न्याय हो और उद्देश्य उत्तम हो तो क्राति आदोलन मे कोई दोष नही, ऐसा लगता है। सत्यप्रिय परेश बाबू ने सत्य को ही अपना एकमात्र लक्ष्य बनाकर क्राति की सहायता करने मे पीछे नही हटे । 'सत्य' शब्द सुनने मे बुरा नही लगता, पर कार्यकाल मे उसके वास्तविक स्वरूप को पहचानना कठिन हो जाता है । क्योकि, कोई भी यह मानने को तैयार नही होता कि उसने असत्य पक्ष ग्रहण किया है । दोनो ही पक्षो की यह धारणा होती हे कि सत्य उसी की तरफ है ।

इसमे और भी एक बात कही गयी है कि समाज व्यक्तिगत स्वतत्रता पर हस्तक्षेप नही कर सकता । क्योकि, व्यक्ति की स्वतत्रता समाज के लिये सकुचित नही हो सकती, बल्कि समाज को ही उसे इस स्वतत्रता का स्थान देने के लिये अपने को प्रसारित करना पडेगा। पडित एच० स्पेन्सर का भी यही मत है । पर उन्होंने व्यक्तिगत स्वतत्रता को यह शर्त लगाकर सीमित कर दिया है जब तक वह दूसरे की वैसी ही स्वतत्रता पर हस्तक्षेप न करे । लेकिन अच्छी तरह से देखने पर पता चलता है कि वास्तव मे दूसरे की वैसी ही स्वतत्रता पर बहुत हस्तक्षेप होता है, अन्त मे वह 'सत्य' कहाँ है, उसका कही कोई नामोनिशान तक नही नजर आता ।

जो हो यह बात गलत नही है कि सामाजिक आईन या राजा का आईन का कार्य क्षेत्र इसी तरह बढा है । और बढ रहा है । किन्तु जब तक यह परिस्थिति नही बदलती, तब तक समाज अगर अपने शास्त्र या न्याय विरूद्ध देशाचार से लोगो को कष्ट देता रहे, तो उसके सशोधन न होने तक इस अन्याय के पदतल में अपने न्यायोचित अधिकार या स्वार्थ की बलि देने मे न कोई पौरुष है, न किसी प्रकार का कल्याण, ऐसी बात भी जोर देकर नही कही जा सकती ।

उपर्युक्त बात सुनने में बहुत-कुछ पहेली जैसी लगती है । बाद मे इसे स्पष्ट करने की चेष्टा करूँगा । लेकिन यहाँ एक मोटी सी बात कह देना आवश्यक समझता हूँ । वह यह है राजशक्ति के विपक्ष में विद्रोह करके उस शक्ति को क्षय कर के जिस तरह देश का मगल नही हो सकता- एक भलाई के लिये जिस तरह इससे अनेक भलाई विपर्यस्त, तहसनहस हो जाती है, समाज शक्ति के सम्बन्ध मे भी बिलकुल यही बात लागू होती है । इस बात को किसी तरह नही भूला जा सकता कि प्रतिवाद एक वस्तु है, किन्तु विद्रोह पूर्णतया भिन्न वस्तु विद्रोह को चरम प्रतिवाद कहकर कैफियत नही दी जा सकती । क्योंकि, बहुत बार विभिन्न परिस्थितियो मे यह देखा गया है कि प्रतिष्ठित शासन-तन्त्र को

उखाड फेंक कर उससे बहुत गुने अच्छे शासन-तन्त्र का प्रवर्तन करने पर भी कोई सुफल नही होता , वरन कुफल ही होता है ।

बाह्य समाज के प्रति दृष्टिक्षेप करने पर यह बात काफी हदतक समझ मे आ जाती है । तत्कालीन बगाल के हजारो तरह के असगत, अमूलक तथा अबोध्य देशाचारों से ऊब कर कई महत्प्राण व्यक्तियों ने इन कुरीतियो के आमूल सस्कार की तीव्र भावना से प्रेरित होकर, प्रतिष्ठित समाज के विरुद्ध विद्रोह करके, ब्राह्म धर्म का प्रवर्तन किया । इसके फलस्वरूप उन्होने अपने को इतना विच्छिन्न कर लिया कि वह धर्म उनके अपने कुछ काम अगर आया भी हो, पर देश के किसी काम मे नही आया । देशवासी उन्हें विद्रोही म्लेच्छ क्रिस्तान समझने लगे । उन्होने जाति-भेद हटा दिया, आहार विषयक आचार-विचार को नही माना, हफ्ते मे एक दिन गिरजाघर की तरह समाजगृह या मदिर मे जाकर जूते-मोजे पहनकर के ही भीड लगाके उपासना करने लगे । इतने थोडे समय मे उन्होंने इतना अधिक सस्कार कर डाला कि उनके समस्त कार्यकलाप उस समय के प्रचलित आचार-विचार के बिलकुल उलटे मालूम होने लगे लोगों को । ब्राह्मधर्म हिन्दुओं के परम सपद वेदो पर आधारित धर्म है, इस बात को किसी ने नही मानना चाहा । आज भी गाँव के लोग ब्राह्मणो को क्रिस्तान ही समझते है ।

किन्तु जिन सुधारों का उन महान् पुरुषो ने प्रवर्तन किया था । देशवासी अगर उन्हे अपने की वस्तु समझते और ग्रहण करते तो आज बगीय समाज यह दुर्दशा सभवत नही सहती । असीम दु खमय यह विवाह-समस्या, विधवाओं की समस्या, उन्नति के लिये विलायत जाने की समस्या आदि का निर्दिष्ट समाधान हो सकता था । दूसरी ओर, गति तथा वृद्धि ही यदि सजीवता के लक्षण हो तो कहना पडेगा कि यह बाह्म समाज भी आज अकाल-वार्द्धक्य की अवस्था में पहुँच गया है ।

सुधार (सस्कार) का अर्थ ही होता है प्रतिष्ठितो के साथ विरोध, और अत्यन्त सुधार की चेष्टा ही बन जाता है चरम विरोध अथवा विद्रोह । इस बात को भूलकर ब्राह्म समाज ने बहुत थोडे समय मे सुधार द्वारा रीति-नीति, आचार-विचार आदि के विषय मे अपने को इतना स्वतत्र और उन्नत बना लिया कि अपना तीव्र क्रोध भूलकर हिन्दू समाज को सहसा हँसी आगई और अपने अवकाश के समय इनके विषय मे इधर-उधर मनोरजक बाते करके प्रसन्न होने लगा ।

हाय रे ! ऐसा धर्म ऐसा समाज अत में परिहास की वस्तु बन गया। मै नही जानता कि हिन्दुओ को इस परिहास का जुर्माना कभी व्याज सहित चुकाना पडेगा या नहीं । लेकिन चाहे ब्राह्म हो, या हिन्दू, बगाल के बगीय समाज को दोनो ओर से ही क्षतिग्रस्त होना पडा ।

और भी एक विचारणीय बात यह है कि सामाजिक आईन-कानून जिधर से प्रतिष्ठित होता है, उधर ही से उनका संस्कार भी होना चाहिये । जो शासन करते है, सस्कार भी उन्ही को करना है । अर्थात मनु-पराशर के विधि-निषेध का सस्कार मनु-पराशर द्वारा ही होना चाहिये । बाइबिल और कुरान हजार गुने अच्छे होने पर भी कोई काम नही आयेगे । यदि देश के ब्राह्मणो ने ही अब तक समाजयत्र का परिचालन किया है तो इसके मरम्मत का काम भी उन्ही से करवाना पडेगा । इसमें हाईकोर्ट के जज, चाहे जितने विलक्षण क्यों न हो कोई मदद नही कर सकते । इस विषय मे देशवासी पुरुषानुक्रम से जिनपर विश्वास करते आये है कितनी ही त्रुटिपूर्ण होने पर भी वे अपने इस अभ्यास को त्यागना नहीं चाहेंगे ।

यह सब स्थूल सत्य है । लिहाजा मुझे उम्मीद है कि अब तक मैंने जो कुछ कहा है इस विषय में किसी को विशेष मतभेद नहीं होगा ।

यदि न हो तो यह बात भी स्वीकार करनी पड़ेगी कि यदि मनु-पराशर के हाथो ही हिन्दुओ की अवनति हुई है तो उन्नति भी उन्ही के माध्यम से प्राप्त करनी पडेगी। दूसरी किसी जाति की सामाजिक विधि-व्यवस्था, वह चाहे जितनी उन्नत क्यो न हो, हिन्दुओं को कुछ नही दे पायेगी। तुलना और समालोचना मे केवल कुछ गुण-दोष ही दिखा सकती है, वस।

पर कोई भी विधि-व्यवस्था, जिसके द्वारा मनुष्य का शासन होता है, उसके गुण-दोष का विचार किस प्रकार किया जा सकता है ? उसके सुख-सौभाग्य देने की क्षमता से अथवा उसके विपद और दुःख से परित्राण करने की क्षमता से ? Sir William Markly ने अपने 'Elements of Law' नामक ग्रन्थ मे कहा है 'The value is to be measured not by the happiness which it procures, but by the misery from which it preserves us, मै भी इसी मत पर विश्वास करता हूँ। इसलिए मनु-पराशर की विधि-व्यवस्था ने हमलोगो को क्या सम्पद-प्रदान किया है, इस बात पर तर्क न करके, किसे विपद् से वह रक्षा करता आया है, केवल इसी बात की आलोचना करके समाज के गुणदोष का विचार करना उचित है। अतएव, आज भी यदि हमे मनु-पराशर की उस विधि-व्यवस्था का संस्कार करना आवश्यक प्रतीत हो, तब उसी धारा के अनुसार ही करना पडेगा। चाहे स्वर्ग हो या मोक्ष, वह क्या दे रहा है, इस बात का विचार करके नही, वरन विपत्तियो से वह अब और हम लोगो की रक्षा नही कर पा रहा है, सिर्फ इसी बात पर विचार करके। सुतरा, एक हिन्दू जब ऊपर की ओर देखकर कहता है, 'वह देखो हम लोगो के धर्मशास्त्र ने स्वर्ग के द्वार सीधे खोल दिये है।' मै तब कहता हूँ-- 'उसे बाद मे भी देख सकते हो, लेकिन फिलहाल नीचे की ओर नजर डालकर यह देखो कि नरक मे गिरने का दरवाजा इस वक्त बद कर दिया है या नही। क्योकि, इसकी जानकारी उससे भी ज्यादा जरूरी है। हजारो साल पहले हिन्दू शास्त्र ने स्वर्ग मे प्रवेश करने का जो सीधा रास्ता ढूँढ निकाला था, वह रास्ता आज भी जरूर उसी तरह खुला होगा। वहाँ पहुँचकर एक दिन स्वर्गीय आनद के उपभोग करने की आशा कोई बडी बात नही है- किन्तु इसी बीच विभिन्न प्रकार की विजातीय सभ्यताओ और असभ्यताओ पारस्परिक सघर्ष के बीच मे पडकर पिसकर मरने के प्रतिदिन जो नये-नये पथ खुलते जा रहे है, उन्हे बद करने की कोई विधि-व्यवस्था शास्त्र-ग्रथो में है या नही, सम्प्रति उन्हे ढूँढ कर देखो। अगर न हो तो तैयार करो, इसमे कोई हर्ज नही है। विपद मे रक्षा करना ही आईन का काम है।' किन्तु उद्देश्य और आवश्यकता कितनी ही बडी क्यो न हो, 'तैयार' शब्द को सुनते ही पण्डितो का दल चिल्लाने लगेगा। अरे, यह कहता क्या है ! ये क्या ऐरे गैरो के शास्त्र है कि अपनी जरूरत के मुताबिक जो चाहोगे वही बना लोगे ? ये हिन्दुओ के शास्त्र ग्रन्थ है ! अपौरुषेय। अन्तः त्रिकालदर्शी ऋषियो द्वारा प्रस्तुत है, जो भगवान की कृपा से सब कालों की सब बाते जानबूझ कर सब कुछ लिख गये है पर यह बात वे याद नही रखते कि भगवान की यह कृपा केवल हिन्दुओ पर ही नही है, ऐसी दया उन्होंने सभी जातियो पर की है। यहूदी जाति के लोग भी यही कहते है, ईसाई और मुसलमान भी यही कहते है। कोई भी यह नही कहता कि उनका धर्म और उनके शास्त्रग्रन्थ साधारण मनुष्यो की साधारण बुद्धि और विवेक की उपज है। इस विषय मे हिन्दुओ के शास्त्रग्रन्थो मे मुझे कोई विशेष महत्व की बात नही नजर आती। सबको जैसे प्राप्त हुई हैं, हमलोगो को भी वैसे ही प्राप्त हुई है। जो हो, आवश्यक होने पर किसी भी शास्त्रीय श्लोक को बदलकर उनके स्थान पर किसी नवीन रचना का समावेश किया जा सकता है, और ऐसा अनेक बार हो चुका है जिसके प्रमाण मौजूद हैं। और यदि ऐसा न होता, तब किसी विधि-निषेध के इतने प्रकार के अर्थ इतने प्रकार के तात्पर्य क्यों मिलते ?

'भारतवर्ष' पत्रिका मे बहुत दिन पहले डाक्टर श्रीयुत नरेशचन्द्र ने लिखा था, 'किसी

बात को न जान के शास्त्रों की दुहाई हरगिज न देना।' लेकिन मै समझता हूँ कि यही एक मात्र कार्य है जिसे शास्त्र न जानकर भी किया जा सकता है। क्योंकि, वात को जानने पर किसी को शास्त्र की दुहाई देने की कोई जरूरत नही पडती। तव वह स्वय विभ्रात बनकर कुछ भी निश्चय नही कर पाता। सुतरा वात वात में वह न शास्त्रों की दुहाई दे पाता है, न मतभेद होने पर बहस करता है।

इस काम को वे ही लोग अच्छी तरह से कर सकते है जिनके शास्त्र ज्ञान की पूँजी अत्यन्त अल्प है। ओर उसी के वल पर वे बेहिचक शास्त्र की दुहाई देकर जबरदस्ती अपने मत को जाहिर करते है और अपनी विद्या की परिधि के बाहर के सब आचार-व्यवहार को ही अशास्त्रीय कहकर निन्दा करते है।

किन्तु मानव के मन की गति विभिन्न है। और उसकी आशा आकाक्षायें अगणित। उसके सुख-दु ख की धारणा अनेक प्रकार के हैं। काल के परिवर्तन तथा उन्नति-अवनति के क्रम के साथ वह समाज मे अनेक प्रकार की जटिलतायें उत्पन्न करता है। हमेशा करता रहा है और करता रहेगा। इसके बीच यदि सनाज अपने को अदम्य और अपरिवर्तनीय समझकर ऋषियो की भविष्य दृष्टि पर निर्भर करके, बिना किसी भय के पत्थर की तरह कठिन बनकर रहने का निश्चय करे तो उसकी मृत्यु अवधारित है। इस प्रकार की हठधर्मिता के कारण ही अनेक विशिष्ट समाज धारा पृष्ठ से मिट गये। पृथ्वी के इतिहास में यह दुर्घटना विरल नही है किन्तु हमारा यह समाज, कहने के लिये कुछ भी कहे, मगर काममें सचमुच उसने मुनि-ऋषियों की भविष्य दृष्टि पर निर्भर रहके अपने शास्त्र को लोहे की साँकल से बाँधकर नही रक्खा, इसका सबसे प्रमाण यह है कि वह समाज अभीतक टिका है। बाहर से भीतर का सामजस्य बनाये रखने का नाम ही जीवित रहना है लिहाजा वह जीवित है, तब किसी न किसी उपाय या कौशल से उसने यह सामञ्जस्य बनाये रक्खा है, यह स्वत सिद्ध है।

सर्वत्र ही विभिन्न जातियो में यह सामञ्जस्य मुख्यतया जिस उपाय से बनाये रक्खा जाता है, वह खुलेआम नवीन श्लोक रचना द्वारा नही। क्योकि एक लबे अरसे के तजरबे से यह देखा गया है कि नये बनाये श्लोक बेनामी में ओर प्राचीनता की छाप लगाकर चला देनेपर ही तेजी से चलते है, नही तो लँगडाते रहते हैं। अतएव अपने बलबूते पर नवीन श्लोकों की रचना करना प्रकृष्ट उपाय नही है। प्रकृष्ट उपाय व्याख्या करना है।

अत यह देखा जा रहा है कि प्राचीन सभ्य समाजों में केवल ग्रीक और रोम को छोडकर ओर सभी जातियों ने यह दावा किया है कि उनके शास्त्र ईश्वर से प्राप्त हुए हैं। और सबको अपने वर्द्धनशील समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये ईश्वरदत्त शास्त्रों के परिसर क्रमश बढाना पडा है और इस विषय मे लगभग सभी ने एक ही रास्ता अपनाया है- वर्तमान श्लोक की व्याख्या करके।

किसी वस्तु की ऐच्छिक व्याख्या तीन प्रकार से की जा सकती है। प्रथम- व्याकरकणगत धातु-प्रत्यय के बलपर, द्वितीय- पूर्व और परवर्ती श्लोको के साथ उसके सम्बन्ध का विचार करके और तृतीय-जिस विशेष दु ख को दूर करने के अभिप्राय से उस श्लोक की रचना हुई थी, उसके ऐतिहासिक तथ्य का निर्णय करके। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हमेशा से समाज के परिचालको ने अपने हाथो के इन तीन हथियारों- व्याकरण, सम्बन्ध और तात्पर्य द्वारा ईश्वरदत्त किसी भी श्लोक में कोई भी मन चाहा अर्थ लगाकर परवर्ती युग के नित्य नये सामाजिक प्रयोजन की पूर्ति और उसके ऋण का परिशोध करके समाज को सजीव बनाये रखते आ रहे है।

आज यदि हम लोगो का राष्ट्रीय इतिहास रहता, तब हम लोग निश्चित रूप से देख पाते कि क्यों शास्त्रीय विधि-व्यवस्था इतनी बदल गयी है और क्यों इतने मुनियो के इतने

मत प्रचलित हो गये है और क्यो प्रक्षिप्त श्लोको से शास्त्र लद गया है। समाज का कोई धारावाहिक इतिहास उपलब्ध नही है तभी अब हम यह नही जान पाते कि अमुक शास्त्र की अमुक विधि क्यों प्रवर्तित हुई थी तथा क्यों अमुक शास्त्र द्वारा वह बाधित हुई थी। आज इतने दूर खडे होकर सब कुछ देखने पर हमे ऐसा ही लगता है। पर यदि उनके पास जाकर देखने का कोई पथ रहता तो हम निश्चय ही देख पाते कि कोई भी परस्पर विरुद्ध विधियाँ एक ही स्थान पर खडे होकर नाचानाची नही कर रही है। एक शायद दूसरे के एक शतक पीछे खडे होकर ओठोपर उँगली रखे चुपचाप हँस रही है।

प्रवाह ही जीवन है। मनुष्य जब तक जीवित रहता है, तब तक एक धारा उसके भीतर होकर निरतर प्रवाहित होती रहती है। बाहर की प्रयोजनीय तथा निष्प्रयोजनीय सभी वस्तुओं को वह ग्रहण भी करता है और त्याग भी करता है। जिसकी उसे आवश्यकता नही है, जो वस्तु दूषित है, उसका वर्जन करना ही वह श्रेय समझता है। किन्तु मरने पर जब त्याग करने की क्षमता नही रहती, तब बाहरी तत्व आकर कायम होकर बैठ जाते है और मृतदेह को सडाने लगते है। जीवत समाज इस नियम को स्वभावत ही जानता है। वह जानता है कि जो वस्तु उसके और काम नही आ रही है, ममतावश उसे घर मे बनाये रखने पर मरना ही पडेगा। वह जानता है कि कूडे-करकट की तरह उसे झाडकर बाहर फेंक देना ही उचित है, बेकार उसके भार को वहन करके शक्तिक्षय करना वाछनीय नही।

किन्तु जीवन शक्ति का जितना ह्रास होने लगता है, प्रवाह की गति जितनी धीमी पडती जाती है, अपनी दुर्बलता के कारण जितना दुष्टो का मुकाबला करने से डरता है, उतना ही उसके घर मे प्रयोजनीय-निष्प्रयोजनीय तथा अच्छे-बुरे का बोझ जमा होने लगता है। और उस गुरु भार को मस्तक पर लादकर उस जरातुर मरणोन्मुख समाज को किसी तरह लाठी टेक कर धीरे-धीरे उस अन्तिम आश्रय यमालय के पथपर ही चलना पडता है।

इसके लिये अब सब कुछ समान है- जैसा अच्छा, वैसा ही बुरा, जेसा सफेद, वैसा ही काला। कारण जानने पर कार्य किया जा सकता है, अवस्था से परिचय हो जाने पर व्यवस्था भी हो सकती है। वर्तमान समय का यह जरातुर समाज जानता ही नही है कि क्यो कोई विधि प्रवर्तित हुई थी, फिर क्यो वह प्रकारान्तर से निषिद्ध हो गई थी। मनुष्य के किस दुख को उसे दूर करने की चेष्टा की थी, या किस पाप के आक्रमण से आत्मरक्षा करने के लिये अरगल लगाकर दरवाजा बद कर लिया था ? इसमे निजी विचार-शक्ति नही है, दूसरे के पास भी समूचे गधमादन को हटाकर ले जाय, यह जोर भी इसका चला गया है इसलिए अब यह सिर्फ इसी बात की रट लगाता है, कि ये तमाम शास्त्रीय विधि-निषेध हमारे हैं। भगवान और चरम पूज्य मुनि-ऋषियो द्वारा बनाये हुए है। इसी तपोवन मे वे मृतसजीवनी की लता गाड गये थे। हालाँ कि प्रक्षिप्त श्लोक तथा इनके व्याख्या रूपी गुल्म और कटतृण से इस तपोवन की भूमि इस समय समाच्छन्न हो गई है, फिर भी वह चरम श्रेय इसी के भीतर कही प्रच्छन्नरूप से मौजूद है। अतएव हे सनातन धर्मी हिन्दुओं, आओ, हमलोग इस होम-धूप-घृत मैदान की सब घास और तिनको को आँखें मूँद कर निर्विकारचित्त से चर्वण करते रहे। हम लोग अमृत के पुत्र हैं, इसलिये कभी न कभी तो वह अमृत लता हम लोगो की लबी जीभ की पकड मे जरूर आयगी, इसमें कोई सदेह नही।

इसमें सदेह न हो सकता हो, लेकिन अमृत के सब सन्तान कच्ची घास को खाकर हजम कर सकेगे या नही, क्या इसमे भी सदेह नही है? लेकिन मेरा कहना यह है कि पेट और जीभ पर निर्भर न रह कर, बुद्धि और आँखों की सहायता से काँटो के पौधो को छाँट दे फेंककर, उस अमृतलता को ढूँढने से क्या काम अपेक्षाकृत सहज और

मनुष्योचित नही होता ? भगवान ने मनुष्य को बुद्धि क्यो दी है । वह क्या केवल किसी और के लिखे शास्त्रीय श्लोकों को कठस्थ करने के लिये ही है ? और एक व्यक्ति ने उसकी क्या टीका की है, तथा दूसरे व्यक्ति ने उस टीका का क्या अर्थ लगाया है-- इसी को समझने के लिये बुद्धि का क्या और कोई स्वतत्र कार्य नही है ? किन्तु बुद्धि की बात उठाते ही पण्डित लोग चमक उठेंगे, क्रुद्ध होकर निरतर चिल्लाते रहेंगे । शास्त्रो मे बुद्धि के प्रयोग की गुजाइश कहाँ है ? ये शास्त्र है न ! उनका विश्वास है कि शास्त्रीय विचार केवल शास्त्रो के वाक्यो की ही परस्पर लडाई है । इसका उद्देश्य उसके हेतु, लक्ष्य, सत्य-असत्य आदि का निरूपण करना नही है । शास्त्रो के व्यवसायी कब से इतने अवनत और हीन बन गये है, इस बात को जानने का कोई उपाय नही है, किन्तु अब उनकी यही एक मात्र धारणा बन गई है कि ब्रह्मपुराण की कुश्ती के पेंच को वायुपुराण के दॉव से काटना पडेगा । और पराशर की लाठी के वार को हारीत की लाठी से रोकना पडेगा और कोई अन्य पथ नही है । इसलिये जो व्यक्ति इस काम को जितनी अच्छी तरह कर सकता है वह उतना ही बडा पडित है । इस काम मे शिक्षित भद्र व्यक्ति की सहज स्वाभाविक बुद्धि के उपयोग का कोई स्थान नही है । क्योकि उसने श्लोक और भाषा कठस्थ नही किया है ।

अतएव हे शिक्षित भद्र व्यक्ति, तुम केवल अपने समाज के एक निरपेक्ष दर्शक की तरह निर्लिप्त दृष्टि से देखते रहो, और शास्त्रीय विचार की सभा मे जब स्मृति रत्न और तर्करत्न कठस्थ श्लोको की चटेबाजी दिखाकर माहौल को गरम कर दे, तब ताली बजा दो ।

किन्तु तमाशा यह है कि पूछने पर ये पण्डितगण बता नही पायेगे कि क्यो वे उस तरह पागलों की भाँति उन पटाओ को घुमा रहे है । और क्या उनका उद्देश्य है ! क्यो वे एक आचार को भली कह रहे है और उसके विरुद्ध जाने पर रुष्ट हो रहे है ? यदि प्रश्न किया जाय कि उन दिनो जिस उद्देश्य या जिस दुःख से निष्कृति पाने के लिये अमुक विधि-निषेध प्रवर्तित हुई थी क्या अब भी वह है ? इससे क्या मगल होगा ? उत्तर मे स्मृतिरत्न महोदय अपना पटा निकाल कर तुम्हारे सामने तब तक भाँजते रहेगे जब तक तुम डरकर और हताश होकर चले न जाओ ।

यहाँ मै एक प्रबन्ध की विस्तृत समालोचना करना चाहता हूँ । क्योकि उससे अपने आप ही बहुत सी बातो के स्पष्ट हो जाने की सभावना है । यह प्रबन्ध अध्यायक श्री भवविभूति भट्टाचार्य, विद्याभूषण, एम०ए० द्वारा लिखित है, जिसका शीर्षक है, 'ऋग्वेद मे चातुर्वर्ण्य तथा आचार' । माघ के 'भारतवर्ष' पत्रिका में छपते ही इसने बहुतों की दृष्टि आकर्षित की थी ।

किन्तु मै आकृष्ट हुआ हूँ इसके शास्त्रीय विचार की सनातन पद्धति के लिये, उसकी उग्रता के लिये और उसके उत्ताप एव उच्छ्वास के लिये ।

प्रबन्ध को पढकर मुझे स्वर्गीय महात्मा राममोहन राय की यह बात याद आ गयी शास्त्रीय विचार में जो उग्र हो जाते है वे दुर्बल है । पहले मैने इस प्रबन्ध की आलोचना करना उचित नही समझा था । किन्तु मै जिन बातो के मूल-निरूपण मे प्रवृत्त हुआ हूँ उनमे से कुछ इस 'चातुर्वर्ण्य' प्रबन्ध मे है । तभी इसकी आलोचना को अपने वक्तव्य की भूमिका बना रहा हूँ ।

इस प्रबन्ध मे भवविभूति महोदय स्वर्गीय रमेश चन्द्रदत्त पर बहुत नाराज हुए है । इसका प्रथम कारण यह है कि वे विद्वानो के मदाकानुसारी देशीय विद्वानो में अन्यतम है । इस पाप के लिये उन्हे उपाधि दी गई है 'मदाकानुसारी' रमेश दत्त । यह उपाधि उस तरह की है जैसे 'राय बहादुर' 'महामहोपाध्याय' आदि है । जहाँ भी स्वर्गीय दत्त महोदय का

उल्लेख हुआ उनके नाम के पहले यह टाइटिल नही छूटी है । द्वितीय एव क्रोध का मुख्य कारण सभवत यह प्रतीत होता है कि (प्रबन्ध लेखक के) पूज्यपाद पितृदेव श्री हृषीकेश शास्त्री महाशय के अपने 'शुद्धितत्व' के ४५ पृष्ठ पर महामहोपाध्याय श्री काशीराम वाचस्पति की टीका की नकल करके 'अग्नेए लिखने के बावजूद इस पदाकानुसारी बगीय अनुवाद ने 'अग्ने' लिखा है । सिर्फ यही नही । फिर 'अग्ने' शब्द को प्रक्षिप्त तक समझा है । सुतरा इस अध्यापक भट्टाचार्य महाशय के मन में विभिन्न प्रकार के भाव उच्छ्वसित हो उठे है । जैसे, वे लिखते है, स्तमित हो जायेगे, लज्जा तथा घृणा से सिर नीचा कर लेगे और यदि एक बूँद भी आर्य रक्त आप लोगों की धमनी में प्रवाहित होता हो, तब क्रोध से जल उठेंगे '. ....'। उनके सब उच्छ्वासो को लिखने पर बहुत स्थान और समय की आवश्यकता पडेगी । लिहाजा मैं इसकी जरूरत नही समझता । जिसकी इच्छा हो वह भट्टाचार्य महाशय का मूल प्रबन्ध देख ले । जो हो, मै इन बातो की चर्चा करना नही चाहता था । पर यह दो बात मै स्पष्ट रूप से दिखलाना चाहता हूँ हमारे देश मे शास्त्रीय विवेचना और आलोचना कितनी व्यक्तिगत तथा अनावश्यक रूप से उच्छ्वासपूर्ण हो उठती है, फिर, उत्कट अधविश्वास धमनी के आर्यरक्त मे इतना आलोडन उत्पन्न कर देता है कि माननीय व्यक्तिगत के लिये मुँह से केवल अपभाषा ही नही निकलती, ऐसी सब दलीले निकलती है जिनकी जीवन के किसी क्षेत्र में कोई उपयोगिता नही है, जो एकदम निरर्थक है । किन्तु मेरी समझ मे नही आता कि स्वर्गीय दत्त महाशय का क्या अपराध है ? एक पण्डित का पदाक तो कोई दूसरा पण्डित ही करता है । यह क्या कोई भयकर अपराध है ? पाश्चात्य पडित क्या पडित नहीं होते जो उनके मत का अनुसरण करने पर गालियाँ खानी पडेगी ?

दूसरा विवाद ऋग्वेद के 'अग्ने' शब्द के विषय में है । इस पदाकानुसारी व्यक्ति ने क्यों जानबूझकर शब्द को प्रक्षिप्त मानकर 'अग्ने' पाठ को ग्रहण किया था, इसकी विवेचना बाद में होगी । किन्तु भट्टाचार्य महाशय क्या यह नही जानते कि वगदेश मे ऐसे बहुत से पडित है जिन्होंने पाश्चात्य पडितों का पदाकानुसरण न कर के भी अनेक प्रमाणिक शास्त्र ग्रन्थो में प्रक्षिप्त श्लोको का अस्तित्व अविष्कार किया है, और स्पष्टरूप से इसे कहने में भी कुण्ठित नही हुए है इसका कारण यह है कि बुद्धिपूर्वक निष्पक्ष आलोचना द्वारा यदि कोई शास्त्रीय श्लोक प्रक्षिप्त मालूम हो, तो सब के सामने उसे प्रगट करने मे ही शास्त्र के प्रति यथार्थ श्रद्धा प्रदर्शन होगा ।

जानबूझकर असलियत को छिपाने में या अज्ञानवश प्रत्येक अनुस्वार विसर्ग तक को बिना विचारे सत्य कह कर प्रचार करने मे कोई पौरुष नही है । इससे शास्त्र प्रतिष्ठा नही बढती, धर्म को ह्रस्व बनाया जाता है । बल्कि जिन्हें शास्त्र मे दृढ विश्वास नही है, केवल उन्हें ही यह भय होता है कि कही दो-एक प्रक्षिप्त बातों के पकडे जाने से पूरी चीज ही झूठी साबित न होकर अमान्य न बन जाये । सुतरा जो कुछ सस्कृत श्लोको के आकार मे इसमें सन्निविष्ट हुआ है, सबको हिन्दूशास्त्र के रूप में मानना पडेगा ।

वस्तुत सत्य और स्वतत्र विचार से भ्रष्ट होकर ही हिन्दू शास्त्रो का ऐसा अध पतन हुआ है । केवल अपने या वर्ग के स्वार्थ की रक्षा के लिये न जाने कितने मिथ्या उपन्यासों के रचित और अनुप्रविष्ट होने से हिन्दुओ का शास्त्र और समाज भाराक्रात बना है, न जाने कितने ही असत्य बेनामी में प्राचीनता की सनद हासिल करके भगवान के अनुशासन बन चुके है उसका कोई हिसाब नही । मैं पूछता हूँ, इन्हे मानना भी क्या हिन्दू शास्त्रो के प्रति श्रद्धा प्रदर्शन करना है , एक दृष्टान्त दे रहा हूँ : 'आमिषास सौरभ्यहीन यस्य मुख भवेत, प्रायश्चित्ती स वर्ज्ज्यश्च पशुरेव न सशय ।' कुलार्णव तत्र यह उक्ति भी हिन्दूशास्त्र है । भगवान महादेव ने कहा है, चौबीस घटे मुँह मे मद्य और मास की सुगन्ध न रहने पर वह व्यक्ति एक अन्त्यज जानवर जैसा है ।' अधिकार भेद से इस शास्त्रीय अनुष्ठान द्वारा भी

हिन्दू स्वर्गलाभ की आशा करता है । तांत्रिक हो या और कोई हो, है तो वह हिन्दू ही । यह (तंत्र) शास्त्रीय विधि है, अत व्यक्ति का स्वर्गवास भी सुनिश्चित है । तो भी यदि कोई पाश्चात्य पडित इसे 'Humbug' कह के हस पडे तो उसी हँसी को रोकने का कोई ठीक सा तरीका भी तो नही नजर आता ।

फिर हिन्दू के घर में जन्म लेकर इस श्लोक को झूठा कहते हुए भी शका होती है । क्यो कि और दस हिन्दू शास्त्रों से तब उद्धरण निकल पडेगे कि महेश्वर द्वारा रचित इस श्लोक पर यदि कोई सदेह करेगा तब केवल वह ही नही, उसके ५६ पुरुष नरक में वास करेगे , हमारे हिन्दूशास्त्र साधारणतया एक पुरुष की बा: नही कहते ।

श्री भवविभूति भट्टाचार्य, एम०ए० महोदय ने अपने 'चातुर्वर्ण्य तथा आचार' नामक प्रबन्ध के आरम्भ मे ही चातुर्वर्ण्य के विषय मे कहा है, 'चातुर्वर्ण्य प्रथा हिन्दू जाति की एक महान् विशेषता है जो पृथ्वी की अन्य किसी जाति में दृष्टिगोचर नही होती । जो सनातन सुप्रथा शान्ति और सुश्रृखला के साथ समाज की परिचालना का एकमात्र सुन्दर उपाय है, किन्तु जिसे पाश्चात्य पडितगण तथा उनके पदाकानुसारी देशीय विद्वानगण हिन्दुओं का प्रधान भ्रम एव उनके अध पतन का मूल कारण कहते है, वह चातुर्वर्ण्य (प्रथा) कितनी प्राचीन है, इसे जानने के लिये वेदपाठ ही अन्यतम सहाय है ।'

इस चातुर्वर्ण्य प्रसग में यदि वे केवल इतना ही लिखते कि यह बहुत प्राचीन प्रथा है, इसे जानने के लिये वेदपाठ की सहायता आवश्यक है, तब कोई बात नही थी । कारण उक्त प्रबन्ध में कथनीय विषय यही है । किन्तु उन सब आनुषगिक वक्र कटाक्षो की सार्थकता कहाँ है जो इसमे भरी पडी है ? जो सनातन सुप्रथा शान्ति और सुश्रृखला के साथ समाज परिचालना का एकमात्र सुदर उपाय है-', मै पूछता हूँ क्यों ? किसने कहा है ? यह 'सुप्रथा' है इसका क्या प्रमाण है ? कोई भी प्रथा केवल पुरातन हो जाने से ही 'सु' नही बन जाती । फिजियन लोग यदि कहें ', महाशय हमारे देश मे माँ-बाप को जिन्दा ही गाड देने का नियम कितने पुराने जमाने से चला आ रहा है इसे अगर आप जानते तो हम लोगो को दोष नही देते ।,

लिहाजा इस जबरदस्त दलील को सुनकर हम लोगो को सिर झुकाकर कहना पड़ेगा, हाँ भाई तुम लोग ठीक कह रहे हो । यह नियम (प्रथा) जब इतना पुराना है, तब और कोई दोष नही है । तुम लोगो को मना करके मैने गलती की है । अच्छी तरह तुम अपने बुजुर्गों को जिन्दा ही दफनाओं-- इससे बेहतर बन्दोबस्त और क्या होगा ! अत मात्र प्राचीनत्व ही किसी वस्तु की अच्छाई-बुराई का प्रमाण नही हो सकता । किन्तु यह जो कहा गया हे कि यह प्रथा किसी व्यक्ति विशेष द्वारा प्रवर्तित नही है, यह इस चरम पुरुष का केवल एक 'अगविलास' है, तब और कोई बात नही कही जा सकती । लेकिन मेरी बात चले या न चले, उससे कोई फर्क नही पडता । मगर जिस बात से फर्क पडता है, बल्कि कहना चाहिये कि पड रहा है, वह यह है कि जिस किसी ने हिन्दूशास्त्र का अनुधावन किया है, उसी ने सभवत अत्यन्त दु ख के साथ यह अनुभव किया होगा कि किस तरह ऋषियों की स्वाधीन चिन्तन की श्रृखला वेदो ही के तीक्ष्ण खड्ग आघात से छिन्न भिन्न होकर अब जहाँ-तहाँ पथ-विषय मे अवहेलित होकर बिखरा पडा है । ध्यान से देखते ही पता चलता है कि जब सुतीक्ष्ण बुद्धि का अनुसरण उनकी विपुल चिन्तनधारा वेगवती हुई है, तभी वेदो ने आकर उसे चिन्तन की गति को व्याहत किया है और उसकी दिशा बदल दी है । खैर, उन पर वेदो का जोर चल गया, पर पाश्चात्य पडितों या उनके पदाकानुसारी देशीय विद्वानों को बिलकुल उस तरह निवृत्त करना मुश्किल ही लगता है । वह जो हो हो, क्यो उन्होंने इस चातुर्वर्ण्य को हिन्दुओं का भ्रम एव अधपतन का हेतु कहा है, अध्यापक महाशय ने जब इसके विषय मे कुछ भी न कह कर केवल उक्ति को ही उद्धृत

करके अपना गुस्सा जाहिर किया है, तब मे इस समय इसकी चर्चा करना आवश्यक नही समझता।

इसके बाद अध्यापक महाशय कहते है कि वैदेशिक पण्डितगण परम पुरुष के इस चातुर्वर्ण्य अगविलास को नही मानना चाहते और कहते है कि ऋग्वेद के समय चातुर्वर्ण्य नही था। कारण, इस वेद के आद्य कतिपय मण्डलों मे 'भारतीयो' के केवल द्विविध भेदो का उल्लेख है। और यदि कही चातुर्वर्ण्य का उल्लेख हो भी तो वह प्रक्षिप्त है।

इस बात पर अध्यापक महाशय ने इन्हें अधा कहकर क्रोध वश आँखों मे उँगली डाल देने तक की धमकी दी है। क्योंकि, आर्यों मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- इन चतुर्विर्धि भेदो का स्पष्ट उल्लेख रहने पर भी उसे उन्होंने नही देखा। फिर 'आर्य वर्णम्, के अर्थ को लेकर दोनों पक्षो में थोडा तर्क-वितर्क है। लेकिन हम लोग तो वेद नही जानते, इसलिये इस 'आर्य वर्णम्' का अन्त में क्या अर्थ निर्धारित हुआ, समझ मे नही आया।

तो भी मोटे तौर पर यह बात समझ मे आ गई कि 'ब्राह्मण' शब्द के विषय में थोडी जटिलता है। कारण 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ 'मत्र' भी होता है।

अध्यापक महाशय कहते है कि मैक्समूलर की इतनी हिम्मत नही है कि यह कहें 'चातुर्वर्ण्य नही था', पर वह यह सिद्ध करना चाहते है कि हिन्दू चातुर्वर्ण्य वैदिक युग मे 'स्पष्टत विद्यमान नही था', अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की जिन विभिन्न वृत्तियों के विषय में सुना जाता है वे उस समय वर्ण चतुष्टय से उतने प्रतिबद्ध होकर प्रगट नही हुए थे। दूसरे शब्दो मे कोई भी व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार किसी भी वृत्ति को ग्रहण कर सकता था।

मुझे तो ऐसा लगता है कि पण्डित मैक्समूलर ने 'मे इतना साहस नही था जो 'नही था' कह कर अपना जो परिचय दिया है, वह एक लबे अरसे के तजरबे से ही हासिल होता है। पर प्रत्युत्तर मे भवविभूति बाबू ने कहा है, सायण चौदहवी सदी का आदमी था, इसलिये उसकी व्याख्या को अमान्य करने मे प्रवृत्त हो सकते हो किन्तु अपौरूषेय वेद के ही अन्तर्गत ऐतरेय ब्राह्मण ने जब 'ब्राह्मणसंपति' का अर्थ ब्राह्मण पुरोहित (ऐ० ब्रा० ८।५।२४,२६) किया, तब उसे कैसे अमान्य करोगे ? ब्रह्मण्य शक्ति (तब) समाज तथा राजशक्ति की नियत्री थी, यह बात इस ऋग्वेद में ही देख पाते है,

देख पाना ही चाहिये। किन्तु कौन अमान्य करता है और करने की जरूरत ही क्या है, यह नही समझ मे आता। ब्राह्मण पुरोहित— हाँ ठीक तो है, पुरोहित की काम जो करते थे उन्ही को ब्राह्मण कहा जाता था। यजन-याजन करने पर ब्राह्मण कहा जाता था, युद्ध, राज्य-पालन करने पर क्षत्रिय कहा जाता था।— यह बाते तो उन्होने कही भी अस्वीकार नही की है। अदालत मे बैठ कर जो फैसला करते है, उन्हें जज कहते है, वकील नही कहते। श्रीयुत गुरुदास बाबू जब वकालत करते थे, तब लोग उन्हें वकील कहते थे, जज बनने पर जज कहते थे। इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? वैदिक युग मे ब्राह्मण्य शक्ति राजशक्ति की नियंत्री थी। अग्रेजों के जमाने में बडे लाट और मेम्बर लोगों की भी वही स्थिति थी, इसलिये यदि उनका उल्लेख राजशक्ति के नियत्री के रूप में भारतवर्ष के अग्रेजी इतिहास किया गया हो तो इसमें विस्मित होने या तर्क करने की क्या बात है ? लेकिन लाट के बेटे लाट नही बनते, और न मेम्बर नाम की किसी स्वतत्र जाति का ही अस्तित्व है। ऋग्वेद के दशम मण्डल की प्राचीनता के विषय में तरह-तरह का मतभेद सुना जाता है। इस सिलसिले मे अध्यापक मैक्समूलर ने एक बहुत बडा अपकर्म कर दिया है। लिखा है उन्होने शूद्र होकर भी कवष (ऋग्वेद के) दशम मण्डल के अनेकों मत्रों के प्रणेता है (?)

'द्रष्टा' कहना चाहिये था। इसीलिये क्षुब्ध और विस्मित भवविभूति बाबू ने (?) चिह्न

का व्यवहार किया है।

लेकिन मेरा ख्याल है कि एक विदेशी के कथन में इतना छिद्रान्वेषण नही करना चाहिये। कारण इसी दशम मंडल के ही ८५ सख्यक सूक्त में दिये सोग और सूर्य के विवाह का वर्णन करके उन्होंने खुद ही कहा है कि इस प्रकार पृथ्वी के मानव के साथ आकाश के ग्रह-तारा का सम्बन्ध बाँधने की चेष्टा क्या ससार के और किसी साहित्य में मिलती है ? ऐसी चेष्टा भले ही ससार के और किसी साहित्य में न मिले, पर किसी एक उद्देश्य की सिद्धि के अभिप्राय से वैदिक कवि को जिस श्लोक की विशेषरूप से रचना करनी पडी थी, उसे कोई विदेशी अगर उस कवि की रचना समझे तो इसमें नाराज होने की क्या बात है ? अस्तु, यह सूक्त एक रूपक मात्र है, इस बात की ओर स्वय भवविभूति बाबू ने इगित किया है। सुतरा हम स्पष्टत देख पा रहे है कि अपौरुषेय वेद के अन्तर्गत के सूक्तों में भी कुछ ऐसे सूक्त हैं जो रूपक मात्र हैं, अत उन्हे छाँटकर विशुद्ध सत्य से अलग कर देना नितान्त आवश्यक है। यह नितान्त आवश्यक कार्य जिससे सपादित होगा, वह वस्तु किन्तु विश्वास -परायणता या भक्ति नही है। वह है मनुष्य के सशय से युक्त तर्कबुद्धि !, अत इच्छा से हो या अनिच्छा से हो उसी को सबसे ऊँचा स्थान देना पडेगा। ऐसा न करने पर मनुष्य मनुष्य नही हो सकेगा। किन्तु यह मनुष्यत्व सदा एक सा नही रहता, इसलिये यह कल्पना करना असमव नही है कि सभवत. इस देश में ऐसा एक समय था जब इस चद्र और सूर्य के विवाह के प्रसग को लोग एक वास्तविक घटना मानने में नही हिचके थे। फिर, आज जिस पर हमलोग सत्य मानकर असदिग्ध भाव से विश्वास कर रहे है, उसे ही हो सकता है हमारे वशराज रूपक कहकर अमान्य कर दें। आज हम लोग जानते है कि सूर्य और चद्र क्या वस्तु है और इस तरह का विवाह-व्यापार कितना असभव है तभी तो इसे रूपक की आख्या दे रहे है। किन्तु इसी सूक्त की कथा को यदि आज किसी ग्रामीण वृद्धा को सुनाया जाय, वह इसे सत्य मान कर विश्वास करने मे तनिक भी द्विधा नही करेगी। पर इसे क्या वेद के महात्म्य की वृद्धि होगी ? भवविभूति बाबू ऋग्वेद के दशम मडल के ९० वे सूक्त को उद्धृत करने जाकर कडाई के साथ कहते है, 'इसमें भी अगर किसी को सदेह रहे तो उसकी ऑखो मे उँगलियाँ डालकर दशम मण्डल के ९० वे सूक्त या प्रख्यात "पुरुषसूक्त" का बारहवाँ ऋक् दिखा दूँगा, यथा-

ब्राह्मणोहस्य मुखमासीद्बाहु राजन्य कृत ।
उरू तदस्य यद्वस्य पद्भ्या शूद्रो अजामत ॥

अर्थ – उस परम पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से राजन्य या क्षत्रिय, उरू से वैश्य और पदद्वय से शूद्र उत्पन्न हुए। इसकी अपेक्षा चातुर्वर्ण्य का और स्पष्ट उल्लेख क्या हो सकता है ?,

इस सूक्त पर विचार बाद मे होगा। किन्तु इस सदर्भ में अध्यापक मैक्समूलर आदि पाश्चात्य पडितों के लिये भवविभूति बाबू ने जो कुछ कहा है, वह समीचीन नही मालूम होता। यह कह रहे है, हम लोगों की चातुर्वर्ण्य प्रथा की अर्वाचीनता सिद्ध करके भारतीय सभ्यता को आधुनिक रूप मे जगत मे प्रचार करना पाश्चात्य पडितों का प्रधान उद्देश्य हो सकता है और उस उद्देश्य के वशवर्ती होकर ... ...,

नि सन्देह ऐसे उद्देश्य की निन्दा सब लोग करेंगे। किन्तु सभी उद्देश्यों का कोई न कोई अर्थ होता है। यहाँ वह अर्थ क्या हैं ? एक सत्य वस्तु के कदर्थ या कुअर्थ लगाने जैसे एक हेय उपाय के सहारे चातुर्वर्ण्य को वैदिक युग से निर्वासित करके उसे अपेक्षाकृत आधुनिक सिद्ध करके इन पाश्चात्य पडितों को क्या लाभ होगा ? केवल चातुर्वर्ण्य ही क्या सभ्यता है ? क्या यही वेद का सर्वप्रधान रत्न है ? वैदिक युग में

चातुर्वर्ण्य के रहने का प्रमाण न दाखिल कर या सकने पर क्या दुनिया भर के लोगो के सामने यह सिद्ध हो जायगा कि वैदिक युग में हम लोगो के पुरखे असभ्य थे ? पाश्चात्य पण्डितों ने मिस्र, बेबिलन आदि देशो की सभ्यता को ८/१० हजार साल पहले का मुक्त कठ से स्वीकार किया है । हम लोगो के देश की बारी आने पर ही उनके इतनी नीचता व्यक्त करने का क्या कारण है ?

इसके अलावा अध्यापक मैक्समूलर ने ऋग्वेद के प्रति जो श्रद्धा व्यक्त की है, उसके साथ भवविभूति बाबू का यह मन्तव्य मेल नही खाता । मुझे ठीक से याद नही आ रहा (और पुस्तक भी इस समय मेरे पास नही है), पर मुझे लग रहा है कि उन्होने Kant के Critique of the pure Reason' के अग्रेजी अनुवाद की भूमिका मे लिखा है, ससार मे आकर अगर मैने कुछ सीखा है तो वह ऋग्वेद से और इसे Critique से।, एक ग्रन्थ की भूमिका में इस तरह अयाचित भाव से एक दूसरे ग्रन्थ का उल्लेख करना सहज श्रद्धा की बात नही है ।

तब न जाने क्यों भवविभूति बाबू ने इन्हे नीचा दिखाने का प्रयास करके आशातीत सकीर्ण अत करण का परिचय दिया है, इसे वे ही बता सकते है । जो हो, जिस 'हिन्दू जाति के प्राणस्वरूप' दशम मण्डल के ९० वें सूक्त के अपोरुषेय ऋग्वेद के अतर्गत रहने पर भी पाश्चात्य पडितो के पदाकानुसारी वगीय अनुवादकों के उसे प्रक्षिप्त मानने के कारण भवविभूति महाशय ने 'बडे ही कातरकठ से देश के भविष्य छात्रो तथा ब्राह्मण तनयो' को पुकारा है, उस सूक्त की किंचित आलोचना आवश्यक है । ब्राह्मणो के अलावा और किसी को पुकारना उचित नही । इससे पहले दशम मण्डल के ही ८५ वे सूक्त की चर्चा हो चुकी है , उसका पुनरूल्लेख निष्प्रयोजन है । किन्तु यह प्रख्यात ९० वाँ सूक्त है क्या ? इसमें परम पुरुष के मुँह, हाथ, उरु और पैर से ब्राह्मण आदि के तैयार होने की बात कही गयी है । पर इसकी जटापाठ, पदपाठ शाकल और वास्कल से चाहे जितनी जाँच क्यो न हो गयी हो, इस पर विश्वास करने के लिये कम से कम और चार सौ साल पीछे जाना पड जायगा । किन्तु वह जब सभव नही है, तब वर्तमान समय मे ससार के अधिकाश शिक्षित सभ्य व्यक्ति जो कुछ विश्वास करते है — उसी अभिव्यक्ति के पर्याय मे ही मनुष्य का जन्म हुआ है, इसे मान लेना पडेगा । इसके बाद करोड़ों वर्ष विभिन्न प्रकार से उसके दिन व्यतीत हुए हैं, सिर्फ कल या परसो उसे सभ्यता का आलोक प्राप्त हुआ है । इस पृथ्वी पर मानव के जन्म की तुलना मे चातुर्वर्ण्य, चाहे वह ऋग्वेद मे हो या न हो, कल की घटना है । अतएव 'हिन्दूजाति के प्राणस्वरूप' इस सूक्त मे चातुर्वर्ण्य की सृष्टि जिस तरह दिखलाई गई है, वह प्रक्षिप्त न होने पर भी विशुद्ध सत्य नही है, रूपक है।

किन्तु भयकर मिथ्या से भी अधिक भयकर है सत्य और मिथ्या का मिश्रण । क्योकि, ऐसी दशा मे न आसानी से मिथ्या का वर्णन किया जा सकता है न निष्कलक सत्य का पूर्ण श्रद्धा से ग्रहण । अत इस रूपक से नीरत्यज कर क्षीर का शोषण बुद्धिमत्ता का कार्य है । उसी बुद्धि के तारतम्य के अनुसार एक व्यक्ति यदि इसके प्रत्येक अक्षर को अभ्रान्त सत्य समझे और दूसरा पूरे सूक्त को मिथ्या कहकर त्यागने को उद्यत हो जाय, तब अपौरुषेय की दुहाई देकर उसे कैसे रोकेंगें ? यदि वह यह कहे कि इसमे ब्राह्मण का धर्म, क्षत्रिय का धर्म, वैश्य का धर्म और शूद्र का धर्म- इन चार प्रकार धर्मों का निर्देश किया गया है, जाति या मनुष्य का नही । अर्थात उस चरम पुरुष के मुख से यजन-याजन अध्ययन-अध्याप्न आदि वृत्तियो की एक श्रेणी बनी, इस ब्रह्मण्य धर्म को करने वाले ब्राह्मण कहलाये । हाथ से क्षत्रिय- अर्थात बल या शक्ति का अर्थ धर्म । इस प्रकार का धर्म यदि कोई ग्रहण करना चाहे, तो उसे 'नही' कहकर कैसे बरजोगे ? लेकिन यहाँ मै एक बात पूछना चाहता हूँ । यह जो अब तक इतना बतकहाव हुआ, उससे किस क्या लाभ हुआ ? मन के अगोचर तो कोई पाप नही । कुछ पाण्डित्य प्रदर्शन के अलावा किसी

पक्ष को क्या कोई उपलब्धि हुई ? पाश्चात्य पण्डितों ने अगर कहा ही है कि चातुर्वर्ण्य हिन्दुओं का विराट भ्रम तथा अध पतन का अन्यतम कारण है और यह प्रथा ऋग्वेद के समय थी भी नही- तब भवविभूति बाबू ने अगर उनके कथन का प्रतिवाद किया ही, तब सिर्फ शारीरिक शक्ति से ही उनकी बातों को उडा देने की व्यर्थ चेष्टा न करके, क्यों उन्होंने प्रमाण द्वारा यह सिद्ध नहीं कर दिया कि यह प्रथा वेद में है ? कारण वेद अपौरुषेय है, उसमें किसी प्रकार की भूल-भ्राति की गुजाइश नही-- जाति भेद प्रथा सुश्रृखला के साथ समाज परिचालन का सचमुच ही एक मात्र उपाय है, इस बात को उन्हे वैज्ञानिक, सामाजिक एव ऐतिहासिक दृष्टान्तो द्वारा प्रमाणित कर देना चाहिये था । तब जरूर ताल ठोककर कहा जा सकता था 'यह देखो, हम लोगो के अपौरुषेय वेद मे जो कुछ है, वह मिथ्या नही, और उसका सहारा लेकर हिन्दुओ ने भूल नहीं की है, उनका अध पतन भी नहीं हुआ है । यह जब उन्होंने नहीं किया, तव पाश्चात्य पण्डितगण जातिप्रथा को भ्रम कहे या और कुछ कहे, इस बात का उल्लेख करके केवल श्लोकों का दृष्टान्त देकर उन्हें अधा, कह कर सकीर्णचेता कह कर और विपुल परिभाषा मे हताश व्यक्त करके कौन सा काम बनेगा ? वेद मे जब रूपक का स्थान है तब बुद्धि द्वारा विचार करने का भी अवकाश हे । सुतरा केवल उक्ति को ही अकाट्य युक्ति के रूप मे नहीं खडा किया जा सकता । अपनी इस भूमिका में मैने इसी बात को कहना चाहा है ।

इसके बाद हिन्दुओं के सर्वश्रेष्ठ सस्कार विवाह की बात आती है । ये पहले ही कहते है, हिन्दुओं की यह पवित्र विवाह पद्धति हजारो साल पहले, ऋग्वेद के समय में जिस प्रकार निष्पन्न होती थी, आज--इस समय मे भी वैदेशिक सभ्यता से सघर्ष के बाद भी, वह तनिक भी परिवर्तित नही हुई है ।' तनिक भी परिवर्तित नहीं हुई है, इसे निम्नलिखित उदारहण द्वारा उन्होंने स्पष्ट किया है --

'तब भी वर को कन्या के घर जाकर विवाह करना पडता था, अब भी यही होता है । फिर विवाह के बाद जुलूस बनाकर, बहुविध अलकार भूषिता कन्या को लेकर, श्वशुर प्रदत्त नानाविध यौतुक (दहेज का सामान) के साथ तक भी जिस तरह वर गृह--प्रत्यागमन करता था, अब भी उसी तरह वह घर लौटता है । विवाह के उपयुक्त समय कन्या--सम्प्रदान की व्यवस्था थी। पर उसकी आयु का कोई परिमाण नहीं निर्दिष्ट है । कन्या श्वशुरालय आकर कर्त्री का स्थान ग्रहण करती थी, और श्वशुर, सास, देवर और ननदों पर प्राधान्य स्थापित करती थी, अर्थात् सबको अपने वश में कर लेती थीं ।'

इसके उपरान्त उपर्युक्त उक्तियों को प्रमाणित करने के लिये विभिन्न श्लोक और उनके तात्पर्य को लिखकर सभवत उन्होंने, सशय भाव से सिद्ध कर दिया है कि यह सब आचार--व्यवहार वैदिक काल में प्रचलित थे। ठीक है ।

लेकिन यह जो कह रहे है कि हजारों साल पहले विवाह पद्धति जैसी थी, आज भी इस वैदेशिक सभ्यता से सघर्ष के बाद भी बिलकुल वैसी ही है, तनिक भी परिवर्तित नहीं हुई है--इसका अर्थ नहीं समझ पा रहा हूँ । कारण, इसके परिवर्तित न होने से यही समझना पडेगा कि आजकल की प्रचलित विवाह पद्धति भी बिल्कुल वैसी ही निर्दोष है और यही शायद उनके कहने का तात्पर्य है । पर इस तात्पर्य के सामजस्य की रक्षा हुई है, ऐसा नहीं लगता । उन्होने कहा है, ' कन्या-सप्रदान की व्यवस्था थी । पर उसकी (कन्या की) आयु का कोई परिमाण नहीं निर्दिष्ट था ।' अर्थात् स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि आजकल जिस तरह लडकी की आयु बारह पार कर के तेरह में पहुँचते ही भय और चिन्ता से लडकी के मा--बाप का जीवन दु सह बन जाता है कि कहीं चौदह पुरुष (पीढी)

नरकस्थ न हो जाँय तथा समाज में 'एक घरा'[1] न बनना पडे, इस दुश्चिंता से घर के तमाम लोग व्यग्र हो उठते है। मगर वैदिक काल मे ऐसा नहीं हो सकता था। इच्छा या सुविधानुसार लडकी की १२/१४/१८/२०/, किसी भी उम्र मे शादी की जा सकती थी। और यदि ऐसा न होता तो कन्या श्वशुर गृह जाकर ही श्वशुर, सास, देवर और ननदो पर प्रभुत्व कैसे जमाती ? यह काम तो निहायत कच्ची उमर की किसी बच्ची की नहीं है।

रोष, द्वेष, अभिमान, गृहिणीपन की इच्छा आदि उस युग मे नहीं थी। बहू के घर आते ही सास और ननद तिजोरी की चाभी उसके सुपुर्द कर देती थी, ऐसा भी नहीं सोचा जा सकता।

जो हो, भवविभूति बाबू के अपने कथन के अनुसार ही उस समय विवाह के लिये लडकी की उमर के विषय मे कोई कडाई नहीं थी। लेकिन अब वह कडाई कितनी हो गई है, वह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं।

द्वितीयत उन्होने कहा है, 'इन सब उपढौकन (उपहार मे दी हुई वस्तुए) कोई वर्तमान समय मे प्रचलित दहेज की कुप्रथा के प्रमाण के रूप में न ग्रहण करे। इन सब को कन्या के पिता का स्वेच्छाकृत और सामर्थ्यानुसार दिया दान ही समझना पडेगा।'

किन्तु इस समय उपढोकन जुटाने में कन्या के पिता को अपना घर तक बेचना पड जाता है। उस समय किन्तु अपौरुषेय ऋक् मत्र लडकी के पिता के तनिक भी काम नहीं आता, वर के पिता को भी अणुमात्र डराने मे, उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा से अणुमात्र विचलित करने मे समर्थ नहीं होता।

तृतीयत अनेक शास्त्रीय विचार के अनन्तर उन्होने यह प्रतिपन्न (प्रमाणसिद्ध) किया है कि जिस लडकी का भाई नहीं था, उस लडकी के साथ उस समय विवाह निषिद्ध था। अथवा, आजकल यह विवाह ही सबसे अधिक सन्तोषजनक माना जाता है। कारण, सम्पत्ति की प्राप्ति होती है, इसे भी भवविभूति बाबू मानते है। फिर भी इतने शास्त्रीय श्लोक और उनके अर्थों के देने के बाद भी मोटी बुद्धि मे यह बात नहीं आई कि भाई के न होने मे बहन का क्या अपराध है और क्यों उसे त्याज्य बनाया गया ? किन्तु अब जब ये ही सर्वापेक्षी वाछनीय है, तब इसे भी एक परिवर्तन ही मानना पडेगा। अत हम देखते है कि

(१) तब लडकी के विवाह की कोई आयु निर्दिष्ट नहीं थी, अब उसके मा–बाप के लिये मृत्युवाण बन गया है ,

(२) स्वेच्छाकृत उपढौकन बन गया है जबरदस्ती लिये जाने वाला दहेज, और

(३) उस युग की निषिद्ध कन्या बन गयी है (वर्तमान की) सर्वापेक्षा सुसिद्ध पात्री (लडकी)।

भवविभूति बाबू कहेंगे, कोई बात नहीं, लेकिन अब भी तो वर को लडकी के घर जाकर ही शादी करनी पडती है और जुलूस बनाकर घर लौटना पडता है। इसे तो वैदेशिक सभ्यता का सघर्ष तिल भर भी नहीं बदल पाया ! यही ठीक है कि नहीं बदल पाया, तो भी याद आ रहा है कि न जाने किसने बेहद खुशी के साथ कहा था, 'अन्नवस्त्र' के (अभाव के) कष्ट के अतिरिक्त मुझे ससार में और कोई कष्ट नहीं है।'

फिर, यही सब कुछ नहीं है। 'विवाहिता पत्नी ही गृह की प्रधान अग है, गृहिणी के अभाव मे गृह जीर्णारण्य के समान है, इसे भट्टाचार्य महाशय' गृहिणी गृहमुच्यते'—इस प्रसिद्ध प्रवादवाक्य से सम्प्रति अवगत हुए है। पुन ऋग्वेद के निम्न पाठ मे भी इस प्रवाद

१ बिरादरी से खारिज , समाजच्युत।

लिये टकटकी लगाये बैठे थे। एकाएक सासजी बोलीं', हाँ वहूमा,[1] कालीचरण तो पजिका देखकर कह गया कि ग्रहण सात बजे से पहले ही लगेगा, सात तो बज चुके है। तुम फिर एक बार अच्छी तरह पजिका को देखो तो।' मैने देखा कि पजिका में ग्रहण के विषय में 'दर्शनाभाव' लिखा है। मैने कहा, 'ग्रहण तो शायद लगेगा, पर यहाँ दिखलाई नहीं पडेगा।' सास ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया, बोली, 'यह कैसे हो सकता है वहु काली तो अच्छी तरह पजिका देखकर कह गया है कि "दशानाभाव" (दस आना, १० १६) दिखलाई पड़ेगा, और तुम कह रही हो बिल्कुल नहीं दिखलाई पडेगा ? यह कैसे हो सकता है ? दशाना (दस आना) न हो आठ आना, (आधा) न हो तो चार आना (चौथाई) तो दिखलाई पडना ही चाहिये।' कालीचरण को बुलवाये जाने पर मैने ओट मे रहकर कहा, 'सरकार महाशय, पजिका में तो "दर्शनाभाव" लिखा है—ग्रहण तो दिखलाई नहीं पडेगा।' काली चरण हसकर बोला, 'बहूमा, कर्ता(मालिक) स्वर्ग मे है—वे कहा करते थे कि गाव भर में अगर कोई पजिका देखना जानता हे तो वह है काली। वही जिसका नाम दर्शानाभाव है, उसीका नाम दशानाभाव है। शुद्ध रीति से लिखने पर वैसे ही लिखना पडता है। यह वडी कठिन विद्या है, वहूमा। पजिका देखना ऐरे–गैरे का काम नहीं है।' मैने अचभे में आकर 'रेफ' का उल्लेख करके कहा, "श" पेर वह तुर्रा जैसी चीज क्या है ? "आ" की मात्रा इधर न रह कर उधर क्यो है ?' लेकिन मेरी कोई बात नहीं टिकी। कालीचरण को सादृश्य मिल गया है—उसने हार नही मानी। बल्कि इस बार और ज्यादा हसकर बोला, 'वहूमा, वह सिर्फ दिखावटी चीज है। छापने वाले समझते है कि इस तरह के चिह्न लगाने से अक्षर अच्छे लगेंगे। यह सव फालतू चीजें है।' यह कह कर वह 'दर्शनाभाव' को 'दशानाभाव' के रूप में सुप्रतिष्ठित करके हर्षोल्लास से हसते–हसते चला गया। जबकि वह घर का गुमाश्ता है, उसने व्याकरण नहीं पढा है। उस दिन यदि कालीचरण ठाकुर महाशय की तरह 'र-ल-ड' लयोर भेद ' सुना देता तो मै किसी को मुँह नहीं दिखा पाती। जो हो, यह सब घर की बातें है, इन्हें न कहने से भी काम चल जाता और सुनकर शायद कालीचरण को दु ख होता। पर मामूली 'रेफ' को तुच्छ बनाने से 'दर्शनाभाव' दशानाभाव बन जाता है, यहा तक कि सादृश्य के बलपर तथा 'र-ल-ड' की सहायता से एशिया माइनर के कानानाइट भी कलिग के कानकाटा मे सोलहो आने रूपान्तरित हो जाते है, इसी तुच्छ बात को ही आज मै ठाकुर महाशय को सविनय निवेदन करना चाहता हूँ। अब कोई पाठक अगर यह कहे कि 'दशाना' तो समझता हूँ, मगर यह सोलह आना क्या है ? वह यह है। उपर्युक्त, प्रबन्ध में ठाकुर महाशय शुरू में ही कह रहे है, 'पाठकों को सुनकर विस्मय होगा कि इन कानानाइट लोगो के साथ (उडीसा के) कानकाटा का घनिष्ठ सम्बन्ध है' (दशानाभाव)। बाद में कह रहे है, 'कानानाइट लोग दरअसल इस्राइल प्रवासी कानकाटा ही हैं' (सोलहआनाभाव)। पाठकों को पर्याप्त विस्मय होगा, यह अनुमान उनका सही है। यहाँ तक कि चन्द्रग्रहण की रात की अपेक्षा भी। जो हो, इस सोलह आने के समर्थन में ठाकुर महाशय कहते हैं, 'इन दोनो जातियों के देवताओं, दोनों के आचार एव प्रथाओं में आश्चर्यजनक सादृश्य है। दोनों जातियों के आचार एव प्रथाओं, उनके देव–देवियों आदि विषयो की पर्यालोचना करने पर यह साफरूप से बोध होता है कि कानानाइट और कानकाटा में दोनो ही एक जाति के जीव है

पहले उनके देवता और नर बलि प्रथा में कितनी एकता है, वहीं दिखा रहा हूँ। भारत के कन्दकाटा या कानकाटा लोग हालाँ कि विभिन्न देव देवियों की उपासना करते है, किन्तु उनकी सर्वप्रधान देवता—भूमि की उर्वरा–शक्ति की देवता या भू–देवी 'तरी' (या 'ताडी') है। भूमि की उर्वराशक्ति इसी देवी पर निर्भर करती है, ऐसा उन लोगों का

---

१ शरच्चन्द्र ने यह प्रबन्ध 'श्रीमती अनिला देवी' छद्मनाम से लिखा है।

विश्वास है । इस देवी के सन्तोष के लिये विशेष कायो में वे नरबलि अथवा शिशुबलि देने मे प्रवृत्त होते है ।' इन दोंनो जातियों के देवता एक ही है, इस बात को दिखलाने के लिये ऋतेन्द्र बाबू ने कहा है, "कानानाइट लोगो की प्रधान देवता–उर्वरा शक्ति की देवी (the goddess of fertility) है । कन्द लोगो की भू–देवी तरी या ताडी (Tari) है और कानानाइट लोगो की देवी Ishtar (ईस्टर) या Astarte (अस्टार्ट)–दोनो एक ही शब्द के विभिन्न रूप मात्र है , केवल देशभेद से उच्चारण मे मामूली सी भिन्नता उत्पन्न कर दी है । जिस तरह सस्कृत 'तार' या 'तारका' शब्द के पहले 'S' युक्त करने से Star बन जाता है, उसी तरह 'तारी' शब्द के पहले भी 'S' या 'as' लगा कर Ishtar या Astarte मे परिणत हो गया है । उच्चारण के समय 'ट' मे और 'ड' मे विशेष प्रभेद नहीं होता ।' इत्यादि, इत्यादि, कारण–'र–ल–ड–लयोरभेद ' । पहले इस देवी की आलोचना आवश्यक है। एकता (या सादृश्य) जो कुछ है वह तो वे कुछ हद तक दिखला ही चुके है, अनैक्य (भिन्नता) कहाँ है, इसे दिखलाने की आवश्यकता है ।

'उर्वराशक्ति' देखते ही ऋतेन्द्रबाबू ने दोंनो को एक कर डाला । किन्तु उर्वराशक्ति का अर्थ क्या केवल भूमि की ही उर्वराशक्ति है ? नारी के सन्तान प्रसव करने की शक्ति को क्या कहते है ? उनकी बात वहीं तक सही है कि दोनो ही जातियॉ उर्वरा शक्ति की पूजा करते थे । परन्तु कानानाइट जिस उर्वराशक्ति की पूजा करते थे वह भूमि की नहीं, नारी की थी । कारण, जिस चिह्न (Symbol) द्वारा अस्टार्ट देवी को जाहिर किया जाता था, और जिस लिये देवी के मे temple prostitution प्रचलित था, एव जिस लिये 'the licentions worship of the devotees of Astarte in her temple in Tyre and Sidon rendered the names of these cities synonymous with all that was wicked,' यह भूमि की उर्वरा शक्ति किसी हालत मे नहीं हो सकती । पुरातन धर्म के इतिहास की किसी भी पुस्तक को खोलकर देखते ही हम पाते है कि Astarte की तुलना Venus देवी से की गयी है। यथा–Astarte the Syrian Venus वीनस भू–देवी नहीं है । और एक बात यह है कि इन खोद लोगो की ताडी देवी की तरह कानानाइट जाति की अस्टार्ट सर्वश्रेष्ठ देवता नहीं थी । ये 'बाल' देवता की पत्नी के रूप मे ही पूजित थीं । देश भर में बतने जिालिम थे उतनी ही विभिन्न अस्टार्ट थी । यहाँ तक कि इस देवी को कहीं कहीं 'शेम्बाल' तक भी कहा गया है । 'शेम्बाल' का अर्थ है बाल देवता की छाया । बाद मे समय समय पर ये अनेक नामों से अभिहित हुई है । बाइबिल मे इन्हे आल्टारथ कहा गया है (2. Kings 23.13) । अलेन साहब ने लिखा है, 'the Astarte given to Hellas under the alian of Aphrodite came back again as Aphrodite to Astartes' old sanctuaries'। किन्तु इसका प्राचीन नाम 'असेरा', इसलिये 'ताडी' के साथ किसी का अगर सम्बन्ध हो भी तो इस असेरा का है, अस्टार्ट का नहीं । मै व्याकरण मे उतना पारगत नहीं हूँ, अगर होता तो भी इस 'असेरा' शब्द को 'र–ल–ड' के जोर से 'ताडी' नहीं बना पाता । इसके बाद नरबलि की बात आती है । पृथ्वी में जो प्राचीन जातिया भू–देवी की पूजा करती थीं और उन्हें प्रसन्न करने के लिये नर–बलि देती थी, उनमे न कहीं मुझे अस्टार्ट देवी मिलती है, न मिलते हैं उनके भक्त कानानाइट । मिलने पर भी ऐसा नहीं लगता कि यह प्रमाणित हो जाता कि खोंद और केनानाइट एक ही धर्म के नियम–कानून मानकर चलते थे । दक्षिण अमेरिका के आदिम जाति के लोग (Indians of Guayaquitl) जमीन में बीज बोते समय नरबलि देते थे । प्राचीन मेक्सिको के अदिवासियों में यह रीति प्रचलित की । वे 'Conceiving the maize as a prsesonal being who went through the whole course of life between seed time and harvest, sacrificed new born babes when the maize was sown oder children when it had sprouted and so on till it was fully ripe when they sacrificed old

men.' पावनी जाति के लोग भूमि की उर्वरता वृद्धि करने के लिए प्रतिवर्ष नरबलि देते थे। दक्षिणी अफ्रीका की प्राचीन कागो की रानी 'used to sacrifice a man and a women in march ; they were killed with spades and hoes.' गिनि प्रदेश के अनेक स्थानों में ही 'It was the custom annually to impale a young girl alive soon after the spring equinox in order to secure good crops. A similar sacrifice is still annually offered in Benin. वेचुयाना जाति भी अच्छी फसल पाने के लिये नरबलि देती थी। हमारे भारतवर्ष में भी कभी गोंड भूमि की उर्वरता को बढाने के लिये ब्राह्मण शिशुओं का हरण करके लाकर भू-देवी के सामने उन्हें विषैले तीरों से बींधकर मार डालते थे। आस्ट्रेलिया के असभ्य आदिवासी भी एक कन्या को जीवित गाडकर भूदेवी को प्रसन्न करते थे और उसकी कब्र पर गाँव के तमाम लोग टोकरियों में भर के अनाज के बीज रख जाते थे। उनका विश्वास था कि वह लडकी देवता बनकर उन सब बीजों में प्रवेश करेगी और अनाज की पैदावार अच्छी होगी। प्राचीन समय में मिस्रवासी भी 'Sacrificed red-hained men to satisfy corn-god.' साइबेरिया में भी इस तरह की बलि की प्रथा थी। इन सब में कोई अमेरिका का, कोई अफ्रीका का, कोई एशिया का और कोई आस्ट्रेलिया का निवासी था। सब एक ही तरह से भू-देवी की पूजा करते थे। इस समानता को देखकर लगता है कि ये सब कभी न कभी कानकाटा के देश में आकर (इस रीति को) सीख गये थे। लेकिन, कब और कैसे आये थे, इसका कोई उल्लेख किसी इतिहास में नहीं मिलता। अत: मैं बताने में असमर्थ हूँ। ठाकुर महाशय ने 'Encyclopaedia Britannica' से उद्धृत करके कहा है, 'कानानाइट जाति के देश में numerous jars with the skeletons of infants मिले हैं, ... We cannot doubt that the sacrificing of children was practised on a large scale among the Cananites.' यह ठीक बात है। कानानाइट जातिवाले शिशुओं की बलि देकर कडाहों में रख के असेरा देवी को अर्पित करते थे। पर उन्हें यह तथ्य कहाँ मिला कि खोंद लोग भी शिशुओं की बलि देकर भू-देवी को अर्पित करते थे? यह सच है कि वे लोग भी शिशुओं की हत्या करते थे, किन्तु वह हत्या देवता के नैवेद्य के लिये नहीं होती थी। बहुत हद तक गरीबी से पीडित होकर, और कुछ इस तरह भूत-प्रेत की दृष्टि लग गयी है—इस अंधविश्वास के कारण हत्या करने का अर्थ ही बलि देना नहीं होता। पर केनानाइटों के कटाहों (jars) से सिर्फ इतनी समानता है कि कानकाटा लोग भी बडे बडे मटकों में पानी भरके उनमें शिशुओं को डुबोकर मारते थे। कारण, और किसी तरह से हत्या करना वे उचित नहीं समझते थे। इस बात को न जाने मैंने कहाँ पढा था, अब याद नहीं आ रहा है। किसी ने एक वृद्ध खोंद को पूछा था, 'भाई, तुम लोग इतनी यंत्रणा देकर शिशुवध क्यों करते हो? और कोई सहज उपाय क्यों नहीं अपनाते?' उसने जवाब दिया था, 'इसके अलावा और किसी उपाय से शिशुओं को मारने पर उन्हें बहुत पाप लगेगा, फकत इतनी ही समानता है। यह दश आने हो, चाहे सोलह आने।

ऋतेन्द्र बाबू ने बाइबिल की उक्ति उद्धृत करके कहा है, 'शिशु घातक केनानाइटों ने किस तरह सब को विपन्न कर डाला था ...' इत्यादि, इत्यादि, किन्तु कलिंग के खोंदो ने कब किसे इस तरह विपन्न किया था, और कब किसके लडके-लडकियों को चुराके लाकर देवता की पूजा की थी, इसे मैं नहीं जानता। वे जिसे भू-देवी निकट बलि देते थे, उसे 'मिरिया' कहते थे तथा यह 'मिरिया, चाहे वह नर हो या नारी, यौवन प्राप्त न होने पर उसे कदापि देवता को अर्पित नहीं किया जाता था। वे केनानाइटों की तरह बच्चों को चुरा के लाकर बलि नहीं देते थे, इसका एक बडा प्रमाण यह है कि वे मरणापन्न 'मिरिया' के कान में इस बात को जोर जोर से दुहराते रहते थे . 'तुम्हें दाम देकर खरीदा है—हम

लोग कोई पाप नहीं कर रहे हैं—कोई पाप नहीं कर रहे है—हम लोग निर्दोष है ।' किन्तु केनानाइटो में इस तरह कुछ आवृत्ति करने का कोई नियम था क्या ? नहीं था । ऋतेन्द्रबाबू ने खुद भी अपने प्रबन्ध एक जगह मैकफर्सन साहब की उक्ति उद्धृत करके दिखलाया है कि खोंद लोग और जो कुछ भी हों चोर-डकैत नहीं थे । इसके अतिरिक्त केनानाइटो के देवमदिर में शिशुओं के पजर देखपाना ठाकुर महाशय के पक्ष में गवाही नहीं देता, बल्कि विपक्ष मे देता है । उन्होने लिखा है, 'केनानाइटों के देवमन्दिरो की खुदाई के दौरान पुरातत्वज्ञो ने ऐसे सब बृहदाकार पात्रो का आविष्कार किया है, जिनमें से शिशुओ के समग्र पजर प्राप्त हुए है । इन सबको विद्वानो ने देवोद्देश मे शिशु—बलिदान के निदर्शन के रूप मे स्वीकार किया है,' मै भी करता हूँ । किन्तु, वे थोडा इस विषय पर गहराई से विचार करते तो उन्हे यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि इन शिशुओ की बलि यदि भूमि की उर्वरता बढाने के लिये भू—देवी के समक्ष दी गयी हो तो उनका समग्र अस्थिपजर पाना तो दूर की बात है, हड्डी का एक टुकडा भी नहीं मिलता । कारण, जैसा कि पहले देखा जा चुका है, जिन्होने भी भू—देवी के प्रीत्यर्थ नरबलि दी है, उन्होंने मृत देह को किसी न किसी तरह भूमि के साथ पूरी तरह मिला दिया है । नृतत्वानुसधानी के लिए कटाई मे उठाकर नहीं रख गये हें । उडीसा के कदकाटा लोगो ने भी नहीं रक्खा है । वे मृत देह के टुकडे टुकडे करके आग्स मे बाट लेते थे और ले जाकर अपने अपने खेत में गाड देते थे । यहा तक कि अवशिष्ट अतड़ियाँ और हड्डियो तक को नहीं छोडते थे । उन्हे जलाकर पानी से घोलकर खेतो मे छिडका कर उनकी उर्वरता की वृद्धि करके ही शान्त होते थे । अब तक तो देवी माहात्म्य ओर उनकी पूजा के नैवेद्य मे बीत गया । इस विवरण में जो कुछ समानता तथा असमानता है उसके विचार का दायित्व पाठको पर है ।

ऋतेन्द बाबू ने फिर द्वितीय समानता की अवतारणा की है । वे कहते है 'जो जहा रहता है, उसके उस आवास स्थान के तुल्य प्रिय और क्या हो सकता है ? ताल (ताड) के वृक्ष कानकाटा जाति का आवास वृक्ष है । इसलिये ताल के वृक्ष तो उनके प्रिय होगे ही । पुन यह तालवृक्षप्रियता केनानाइट जाति के लोगो मे भी कम मात्रा मे नहीं परिलक्षित होती है । इनकी जाति भी बहुत तालागाछभक्त है । तालजातीयवृक्ष उनका इतना प्रिय है कि केनानाइटो की अन्यतम शाखा का नाम फिनीसिय है । (शब्द की उत्पत्ति तालजातीगाछ नाम से हुई है । फिनीसिय शब्द बना है मूल ग्रीक के 'फायनिक' शब्द से, जिसका अर्थ है 'ताल का देश'—Phoinike Signifies the land of palms', हालाँ कि 'फिनिस' अर्थात लालरग से भी फिनीसिया की व्युत्पत्ति असभव नहीं है । जो हो, ऋतेन्द्र बाबू का यह तर्क ठीक से समझ मे नहीं आया । कारण, देश के अच्छे वृक्ष के प्रिय होने मे आश्चर्य की कोई बात तो मुझे नहीं नजर आती । कन्दकाटाओ के देश मे अनेक तालवृक्ष है । वे तालवृक्ष से धरन या शहतीर बनाते है, पत्तों से छप्पर छाते है, चटाई बुनते है । बाइबिल मे वर्णित केनानाइटो को भी 'पाम' (Palm) प्रिय था । क्योकि पाम उनके देश का एक बहुत उपकारी वृक्ष है और वहाँ है भी बहुत । किन्तु इससे क्या प्रमाणित होता है ? हम लोगों के हुगली जिले मे आम के पेड है, इसके फल भी अच्छे होते है, इसकी लकडी भी अच्छी होती है और ये है भी बहुत तादाद में । हम लोगो को आम का वृक्ष प्रिय है । वर्धमान जिले मे बहुसख्यक कटहल के पेड है । वहाँ के लोग उसके फल को भी अधिक खाते है, गाछ से भी स्नेह करते है । पर इसमे आश्चर्य होने की क्या बात है ? किन्तु ऋतेन्द्र बाबू का कथन है 'कारण क्या है ? दोनों की एक आदिम वासभूमि ही इसका कारण है ।' लेकिन क्यो ? लोगों का देश के उपकारी गाछ को प्यार करना नितान्त सगत और स्वाभाविक कार्य है । बल्कि वे अगर यह दिखा पाते कि खास किसी पेड को पसद करने की कोई भी वजह नहीं नजर आ रही है, फिर भी दोनो ही जातियों ने उसे बेहद पसद किया है, तब कोई बात भी होती । जेसे, सिहोर का पेड । अगर यह दिखलाया जा

सकता कि जगन्नाथ मदिर के लोग भी उस वृक्ष को श्रद्धा की दृष्टि से देखते है तथा उडीसा के कानकाटा लोग भी, लेकिन क्यों देखते है पता नहीं , ऐसा होने पर अवश्य ही दोनों का एक जातीय होने का सदेह हो सकता था, लेकिन यहा ऐसा कुछ भी तो नहीं नजर आता । एक बात और है · कलिग देश के कानकाटाओ के 'पाम' तालगाछ है, किन्तु बाइबिल केनानाइटों के देश के 'पाम' खजूर के पेड है । साहब लोग (अग्रेजी मे) दोनों को ही 'पाम' कहते है । किन्तु वास्तव में क्या वे एक है ? दोनों फलों के आकार और वजन में भी अतर है । ताल फल वडा होता है खजूर फल से एक हाथ दोनो को रखने पर मिल नहीं जाते, इस बात को शायद ऋतेन्द्रबाबू भी नामन्जूर नहीं करेंगे । खाने पर स्वाद में भी एकसे नहीं लगते । अतएव इन दोनों वृक्षों को साहब लोग कुछ भी कहे, वे एक नहीं है । एक ताल है, दूसरा खजूर ।

ऋतेन्द्र बाबू ने तृतीय समानता का उल्लेख करते हुए कहा है . 'अब पाठकगण एक और बात में कलिगवासी कानकाटा और केनानाइटों मे जो समानता है उस पर गौर करें । वह है उन दोनों की जातिगत रक्तवर्णप्रियता । वे लोग चाहे पुरुष हों, चाहे स्त्री, सब गहरे लाल रग के कपडे बेहद पसद करते है । विशेषतया गजाम, विशाखापत्तनम आदि ताल कलिग देश के कानकाटा लोग कपडे को पक्के लाल–बैंगनी रग में रगने में सिद्धहस्त हैं । कलिगवासियों की तरह केनानाइटों को भी लालरग बहुत प्रिय है । केनानाइटों की अन्यतम शाखा के फिनीसिय लोग कपडों को गहरे लाल रग में रगने के लिये इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि जिससे बहुतों का अनुमान है कि 'फाइनस' शब्द से उनकी फिनीसिया नाम की उत्पत्ति हुई है' । बहुत एकता (समानता) है, इसे अस्वीकार नहीं कर पा रहा हूँ किन्तु दो–एक निवेदन भी है । प्रथम, यह कि फिनीसिय लोग जो लाल वस्त्र तैयार करते थे, उसे घर नहीं इकट्ठा किये रखते थे, उस उत्पादित कपडे को देश–विदेश मे बेचते थे । जो लोग उसे दाम दे कर खरीदते थे, वे भी लाल रग को पसन्द करते थे, संभवत यह अनुमान नितान्त असगत नहीं है । वस्तुत उस समय के लोग लाल रग का इतना अधिक समादर करते थे कि फिनीसियो की समृद्धि मुख्यत लालरग के कारोबार से ही बडी थी । वे समस्त जातियाँ जो बलिदान द्वारा देवता की पूजा करते थे, देवता को रक्तपान कराते थे, उन सबको लाल रग का इस्तेमाल प्रिय था, क्यों प्रिय था, क्यों देव–देवी को लालरग के कपडे पहनाते थे, क्यों लाल फूल, लाल जवाकुसुम, लालचन्दन आदि से उन्हें प्रसन्न करना चाहते थे, इसकी आलोचना करने जाने पर बहुत कुछ कहना पडेगा । इस प्रबन्ध में न उसका स्थान है, न उसकी आवश्यकता ही है । केवल एक मोटी सी बात इस सिलसिले मे कहकर ही मै शात हो जाना चाहता हूँ , वह यह है कि केवल यही दो जातियाँ ही गहरा लाल रग नहीं पसद करती थीं, उस समय ससार के अधिकाश लोग ही इस रग को पसद करते थे । इसके बाद रग तैयार करने की बात आती है । यह विद्या भी बहुत सभव है फिनीसियों ने कानकाटाओं से नहीं सीखी थी, कानकाटाओं ने भी फिनीसियो से नहीं सीखी थी । कानकाटा जाति के लोग अर्थात कलिगवासी खोंद किसी पेड के रस तथा तृणमूल से रग तैयार करते थे, किन्तु फिनीसिय लोग मूरे मछली (Murex-purple Shell - fish) के मास को पकाकर रग बनाते थे । सुतरा यह रग तैयार करने की विद्या एकत्र अर्जित की जाने पर उनके एक ही तरह की होने की सभावना थी । वह मछली कानकाटाओं के देश के समुद्र में भी दुष्प्राप्य नहीं है । फिर, लाल रग पसद करना भी क्या कोई तुलना की वस्तु हो सकती है ? दोनों जातियों के लोगों के चेहरे मे समानता थी या नहीं, ऐसी कोई बात नहीं उठायी गयी , बात उठायी गयी दोनो ही लाल रग पसद करते थे । इस तरह की समानतायें और भी बहुत सी हैं । दोनों जाति के लोग ही आँखे बन्द करके सोना पसन्द करते थे, हाथों में कुछ न रहने पर हाथ हिलाकर चलना पसन्द करते थे, इन सब समानताओं की अवतारणा क्यों नहीं की

उन्होंने ?

ठाकुर महाशय ने चौथी समानता दिखलायी है नाम में । यह सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण है । वे कहते हैं, 'केनानाइट वश का जो व्यक्ति इस्राइल के राजा डेविड का अगरक्षक था, उसका नाम या उडिया (Uriha) और यह उडिया नाम काकतालीभवत् नहीं था । क्योंकि, केनानाइट लोग कलिंग या उड्र देश के है, इस बात को उस समय सबलोग जानते थे । जैसे, नेपाली या भोटिया नौकर रहने पर वह अपने नाम के बदले नेपाली या भोटिया नाम से ही परिचित होता है, यहाँ पर भी वही बात हुई है । उड्र से उडिया की उत्पत्ति हुई है । इस्राइली भाषा में चाहे देश का नाम हो, चाहे व्यक्ति का नाम, "इया" अन्य शब्दों का प्रचलन बहुत अधिक है । जैसे–जोसिया, जेडेकिया, हेजेकिया, सीरिया आदि ।' इसी कारण से ही 'उड्र' शब्द पर 'इया'–अन्त शब्द लगाकर इस्राइली भाषा में उडिया बन गया है । बचपन में मुझे भी डेविड डरफील्ड, कापुरिया हिन्च -उडिया लगता था । मै अकसर सोचा करता था कि यह शख्स विलायत कैसे चला गया ? अब देख रहा हूँ कि कैसे गया था ! और भी सोच रहा हूँ कि स्केन्डेनेविया बटेविया, साइबेरिया आदि भी सभवत इसी तरह बने हैं । कारण, ये भी पूरे एक शब्द है या नहीं इसमें बहुत सदेह है । बल्कि इनका इस्राइली–'इया' प्रत्यय से निष्पन्न होना ही संगत और स्वाभाविक है । अतएव 'उडिया' एक (पूरा) शब्द नहीं है, यह 'उड्र+इया' है, यह भी जिस तरह बिना किसी सदेह के अवधारित हो गया, उसी तरह असदिग्ध भाव से यह भी स्थिर हो गया कि उस समय सब लोग जानते थे कि केनानाइट लोग उड्रदेशीय हैं । ठीक है, पर एक साधारण बात यह है कि उस उड़िया नामक व्यक्ति और भी अनेक 'उडिया' केनानाइट वहा थे । इस्राइलियों से उनका बहुत पुराना और अनेक प्रकार का सपर्क था । लडाई का तो था ही, ब्याह–शादी का भी था । निरानन्द और आनन्द - दोनों ही परिस्थितियों में । बाइबिल ग्रन्थ में अनेक बार यह नाम आया भी है किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि उसके और किसी देसवाल को 'उडिया' नाम से संबोधित होते नहीं सुना गया । सभवतः इस्राइलराज डेविड का निषेध हो । कुछ कहा नहीं जा सकता–हो भी सकता है ।

पाचवें सादृश्य की अवतरणा करके ठाकुर महाशय कहते है, 'राजा डेविड ने जो एक उड्र–सतान केनानाइट को अपने अग-रक्षक प्रहरी के पद पर नियुक्त किया था, वह बहुत-कुछ उनके जातिगत गुण देखकर । वर्तमान काल में उस केनानाइट जाति का अस्तित्व जरूर लुप्त हो गया है, किन्तु उसी एक ही बिरादरी के कन्दकाटा लोग अब भी भारत के कलिंग या उड्र देश में विद्यमान हैं । इन कदकाटाओं का सुदृढ शारीरिक गठन को देखकर ही समझा जा सकता है कि सचमुच ही ये शरीर-रक्षक पद पर नियुक्त होने के योग्य है । केवल इतना ही नहीं, किसी राजा के एक प्रहरी में जिन गुणों का होना आवश्यक है, वे सब उनकी जाति की चरित्रगत बातें हैं । कैप्टन मैकफरसन ने उनके विषय में लिखा है, "झूठ बोलना, वचन-भंग विश्वासघात–यह सब कन्द लोग अधर्म मानते हैं, और युद्ध में वीरों की तरह प्राणत्याग एव शत्रुओं का नाश करना धर्म गिनते हैं, "बडी उत्तम बात है । इसीलिये मैं भी पहले कह चुका हूँ कि खोंद जाति के लोग केनानाइटों की तरह दूसरों के बच्चे चुरा कर बलि नहीं देते थे । किन्तु खोंद लोग ही क्या केनानाइट जाति के हैं, फिनीसियन लोग नहीं ? ऋतेन्द्रबाबू ने पहले कहा है, एव मैंने भी उसका प्रतिवाद नहीं किया है कि केनानाइट लोग फिनीसियों की ही एक उपशाखा है । और इसीलिये उन्होंने लाल रंग–प्रियता, लाल रग तैयार करने की क्षमता, तालगाछ या खजूर गाछ के प्रति लगाव, 'फाइनस' शब्द आदि प्रसगों को उपस्थित करके फिनीसियों के साथ उनकी अभिन्नता प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है । वस्तुत फिनीसियों और केनानाइटों में कोई प्रभेद नहीं है । प्रबन्ध के अंत में स्वय उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है, 'फिनीसीय जाति केनानाइटों की ही–अन्यतम शाखा है ।' किन्तु इन फिनीसियों का नैतिक चरित्र

कैसा था ? स्कूल के छात्र तक जानते है कि फिनीसिय लोग चोरी-डकैती, नर हत्या, विश्वासघात आदि सब प्रकार के पापों को करने में सिद्धहस्त थे। वाणिज्य करने विदेश में जाकर अपने नाव या जहाज कहीं छिपा रखते थे, फिर अपना सामान विदेशी क्रेताओं के सम्मुख उपस्थित करते थे, और जब क्रेता असदिग्ध भाव से माल के खरीदने में मग्न रहते थे, मौका पाकर वे वणिक वेशी फिनीसीय डाकू उन पर हमला बोल कर सब कुछ लूट लेते थे तथा जिन्हे पकड पाते थे उन्हें अपने जहाज में ले जाकर पाल उठाकर चल देते थे। फिर इन्हें अन्यत्र दास के रूप में बेचकर अर्थ उपार्जन करते थे। वास्तव में, ऐसा अन्याय, ऐसा अधर्म, ऐसा निष्ठुर कार्य शायद ही कोई होगा, जिसे ये फिनीसीय, लोग नहीं करते थे। दिन में जो उनके अतिथि होते थे, रात को वे उन्हीं का गला काट देते थे। यह सब ऐतिहासिक तथ्य है, अनुमान या कल्पना की बातें नहीं। ऐसी एक दुर्नीति परायण जाति के आत्मीय होते हुए भी उडीसा के कदकाटा लोग इतने धर्मपरायण कैसे हो गये ? और यह फिनीसिय अग-रक्षक उडिया भी कैसे ऐसा युधिष्ठिर बन गया ? ऋतेन्द्रबाबू अगर थोडी सी वैज्ञानिक पद्धति का भी अनुसरण करते तो उन्हे स्पष्ट हो जाता कि फिनीसीय या केनानाइट उडीसा के खोंद जाति के लोग होने पर उनके नैतिक चरित्र में इतने आकाश-पाताल का अन्तर नहीं होता।

इसके बाद के रथ के प्रसग पर आते है। कहते है, 'इस्राइल के राजा (सालोमन) ने जिन विषयों में कलिगवासियों का अनुसरण किया था, उनमें रथ एव मदिरादि का निर्माण ही विशेष रूप से उल्लेखनीय है . कलिग देश के निवासी सदा से रथ के आडबर के प्रति आकृष्ट है, रथ की चमक-दमक और धूमधाम कलिंग में चारो ओर, दिखलाई पडती है। सालोमन के एक हजार चार सौ रथ निर्मित हुए थे। कहता कौन है कि नहीं हुए थे। राजा सालोमन ने बहुत सी लडाइयाँ करने के लिये इन रथों का निर्माण करवाया था। ऋतेन्द्रबाबू ने कहा है कि इन्हे कलिग के कारीगरों ने ही बना दिया था। यह हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। हो इसलिये सकता है कि ठाकुर महाशय का निश्चित विश्वास है कि फिनीसिय लोग उडीसा देश के है। उडीसा में जगन्नाथ का रथ है, इसलिये उडिया लोगों ने ही सालोमन के रथ बनाये थे। मुझे इस बात पर इसलिये विश्वास नहीं होता कि पहले तो फिनीसिय उडिया नहीं है इसके अलावा रथ बनाने के कारीगर अन्यत्र भी है। सालोमन के समय अर्थात ईसा के एक हजार साल पहले कलिग में रथ की धूमधाम कैसी होती थी और वहा किस तरह के रथ बनते थे, मैं नहीं जानता। दूसरा कारण यह है कि राजा सालोमन के पड़ोसी मिस्र देश के लोग बहुत पहले से सुन्दर और मजबूत रथ बनाने के लिये विख्यात थे। उन लोगों के रथ किस तरह तैयार होते थे, वे द्विविध होते थे या त्रिविध, कौन सी लकडी से पहिये बनाये जाते थे, सारथियों को क्या-क्या जागीर मिलती थी, रथ का चलाना किस तरह उन्हें जिमनास्टिक की तरह अभ्यास करना पडता था आदि अनेक बातें बचपन में मिस्र के इतिहास में पढा है। अब ये बातें याद नहीं है। याद रखने की जरूरत भी तब मैंने नहीं समझी थी। किन्तु यह बात मुझे अच्छी तरह याद है कि प्राचीन समय में मिस्र के लोग बडे सुन्दर रथ बनाते थे। और यह भी मुझे अब याद आ रहा है कि कुछ दिन पहले मैने 'The Struggle of Nations' पुस्तक के दूसरे या तीसरे अध्याय में पढा था कि एक असीरिया के राजा ने फैरो (मिस्र के राजा) से हारकर अफसोस जाहिर किया था। यदि मेरे पास उन लोगों की तरह (युद्ध) रथ होते, तो मेरी यह दुर्दशा नहीं होती।' मूल बात यह है कि उन दिनों लोग रथ की उपयोगिता समझते थे एव सालोमन जैसे बुद्धिमान तथा विश्वविख्यात नरपति ने भी इस बात को समझा था। तभी उन्होंने इतने रथों का निर्माण कराया था। किन्तु प्रश्न यह है किसने इन्हें बनाया था ? कलिगवासियों ने या मिस्रवासियों ने ?

बाइबिल ग्रन्थ में लिखा है कि राजा सालोमन ने मिस्र की राजकुमारी से शादी की थी और इस तरह मिस्र देश के राजा से आत्मीयता सूत्र में बँध गये थे ('....and Solomon made affinity with Pharaoh, King of Egypt and took Pharaaoh's daughter ...etc.' 1. Kings– 3.1.) ऐसी परिस्थिति में किस तरह निश्चित रूप से यह स्थिर किया जा सकता है कि इन रथों को आत्मीय एव पडोसी मिस्रियों ने नहीं बना दिया था, बनाया कलिग वासियों के आत्मीय केनानाइटों ने। इसके बाद ऋतेन्द्रबाबू प्रमाण देते है, 'राजा सालोमन प्रतिष्ठित नगर का नाम "ताडमर" है–यह सस्कृत मुलक कलिग नाम है। अर्थात "ताल" या ताड एक ही बात है।' यह हो सकता है। क्योंकि र–ल–ड के जोर से इससे पहले 'असेरा' 'ताड़ी' हो गया है। अब 'ताल' को 'ताड़' बनाने मे आपत्ति करने पर लोग मेरी ही निन्दा करेंगे। किन्तु मैं पूछता हूँ कि वह शब्द क्या कलिग के अलावा किसी भी तरह इस्राइली भाषा में नहीं प्रवेश कर सकता ? इसके अलावा, 'ताल' तो 'ताड' हो गया, पर यह 'मर' क्या है ? जो हो, 'ताडमर' के विषय में मेरी कोई जानकारी नहीं है, इसलिये इसका विचार भाषाविद् लोग करेगें–मैं चुप रह रहा हूँ। किन्तु अन्त में मेरा एक निवेदन भी है। वह यह है, 'कानकाटा बोले आमी तालगाछे थाकि, जे छेलेटा काँदे तार काँधटी धरे नाची'– इस ग्राम्य गीत (छडा) पर निर्भर करके ऋतेन्द्रबाबू ने खींचतान कर जिन समानताओं को एकत्रित करके बाइबिल के केनानाइटों को उडीसा का कानकाटा बना दिया है, इनमें मित्रतायें भी है। उनकी इन्हें अस्वीकार करना उचित नहीं हुआ। हो सकता है उनकी बात ही ठीक हो, मैं ही गलत होऊँ, लेकिन मेल और बेमेल जब दोनों ही है, तब दोनों ही को सामने रखकर उन्हें वैज्ञानिक सत्य पर पहुँचना चाहिये था। मैंने अब तक इसी बात को कहने की चेष्टा भर की है, और कुछ नहीं। चूँकि बँगला भाषा पर मेरा विशेष दखल नहीं है, तभी शायद मै अपनी बातों को सही ढग से नहीं कह पाया हूँ, अत ठाकुर महाशय के लिये ये न श्रुति–मधुर होंगी, न सुखपाठ्य। तो भी आशा करता हूँ कि यदि मेरा यह तुच्छ प्रतिवाद उनकी दृष्टि को आकर्षित करे तो वे निजगुण से मेरी इस त्रुटि को क्षमा करके इसे पढें, और भविष्य में पुन मुझे ऐसी त्रुटि न करनी पडे, इसकी भी व्यवस्था करने का अनुग्रह करें। ('यमुना', आषाढ, बंगला सन् १३२०)।

नारियों का लेखन

वह खर्राटे ले रहा है कह कर जगा देने पर पुरुष अप्रतिभ (वुद्धि और लज्जित) होकर करवट बदलकर फिर सो जाते है। मन ही मन शायद वह नाराज भी होता है, लेकिन जाहिर तौर पर इसे कतई मजूर नहीं करता। और दो ही तीन मिनट वाद इस वाजू जो कुछ क॰ रहा था दूसरी वाजू में भी वही शुरू कर देता है। पुरुष का यही स्वभाव है। किन्तु किसी स्त्री को ऐसा कहने पर वह आक्रमण करने को उद्यत हो जाती हे। शपथपूर्वक वह कहती है कि कभी नहीं, कोई कुछ भी कहे, यह दोष उसमें विलकुल नहीं है–खर्राटे वह ले ही नहीं सकती। इसके बाद तर्क निष्फल हो जाता है। करने पर कलह होता हे, और कुछ नहीं होता। नीद की हालत में किसी की थोडी आवाज के साथ साँस लेने पर उसे इस बात को वताना कोई तुहमत लगाना नहीं होता, इसे एक से दूसरों के सिलसिले में चाहे जितनी आसानी से समझ जाय, मगर अपने वारे में इसे विलकुल नहीं समझती। यह उन लोगों का स्वभाव हे।

सुतरा मेरा वक्तव्य यदि उनके लिये अवोध्य ही बना रहे, तो उससे मुझे विशेष आश्चर्य नहीं होगा। इसी से सम्बद्ध एक और व्यापार है–वह है अनुकरण करना। पहला शरीर का धर्म है, दूसरा मन का। इसलिये जिस तरह आदमी इच्छा न रहने पर भी खर्राटे लेता है, उसी नरह अनिच्छा से ही वह अनुकरण भी करता है। 'खर्राटे' का अर्थ जिस तरह जानवूझकर नाक से आवाज निकालना नहीं होता, अनुकरण करने का मतलव उसी तरह इच्छा पूर्वक करना न भी हो सकता है। अथच, जो व्यक्ति खर्राटे ले रहा था उसे वताने पर वह खुश नही होता, क्यो ले रहा था वताने पर भी वह कृतज्ञ नहीं होता। यह सव जानता हूँ, किन्तु थोडा सतर्क होकर करवट बदलकर सोना क्या उचित नहीं है?

अव अगर यह प्रश्न उठे कि इन दोनों के किसी पर भी जब सचमुच ही अपना कोई हाथ नहीं है तथा जानवूझ करके भी नहीं करता, और ये देह मन की अतिस्वाभाविक क्रियाये है, तव लज्जित होने की क्या जरूरत हे ? और कोई लज्जित करता भी क्यों है? यद्यपि लज्जित होना–न होना एक अलग वात है, पर लज्जित करने का अधिकार उसे ही है, जो व्यक्ति उस वक्त भी जगा है और खर्राटों के मारे बेचारे के नाको में दम होने के कारण विश्राम नहीं कर पा रहा है। इसलिये जानवूझकर या इच्छापूर्वक नहीं कर रहा हूँ कहने से ही ससार की चीजों की जवावदेही नहीं हो जाती, यह बात उसे बता देना जरूरी है जो सो रहा है और जो नकल करने में एकदम मग्न हो गया है। इच्छा से हो या अनिच्छा हो, श्वास–प्रश्वास की प्रचलित क्रम का अतिक्रमण करने और भी लोग दिक होते है, तथा अच्छी बातों का अनुकरण करना कर्तव्य और स्वाभाविक होने पर भी उसकी नियत सीमा लाँघने पर भी लोग निन्दा करते हैं। 'अच्छी बातों का अनुकरण न करो', ऐसी बात कहने का अधिकार निस्सदेह किसी को नहीं है, किन्तु, 'और नहीं, बस!' यह बात कहने का अधिकार समाज के हर समझदार आदमी को है। एक दृष्टान्त दे रहा हूँ

मिसेस विश्वास के पोशाक का काट–छाँट बहुत बढिया होता है। इस प्रकार की पोशाक में अपने को सज्जित करने में कोई हर्ज नहीं है, किन्तु उनके कमर का घेरा शायद सवा तीन हाथ है। गाऊन में साढे–दस गज कपडे लगते हैं। हूबहू नकल करने की इच्छा से अगर वे अपने लकडी जैसे सूखे शरीर पर साढे–दस गजी गाऊन लपेटकर

बाहर निकलें तब लोग तो हँसेंगे ही। अच्छी चीज का अनुकरण करने जाकर तुमने एक अच्छे काम का ही सूत्रपात किया था मानता हूँ, पर अनुकरण के नशे मे इतनी मत्त हो गयी कि तुमने अपने शरीर की ओर एक बार भी नहीं देखा। इससे तुम्हारी नकल करने का उद्देश्य ही केवल निष्फल नहीं हो गया, तुम्हारा अपना सौन्दर्य भी गया, तुम्हारे कपडे कीमत और मजदूरी भी नष्ट हो गयी। पथ के लोगों की वाहवाह तो घलुआ की चीज थी। रविबाबू की रचनायें बहुत अच्छी है। उन्हे नकल करने की इच्छा स्वाभाविक है, तथा करने की चेष्टा भी साधु। किन्तु एकदम रविबाबू ही बनेंगे, ऐसा प्रण करने पर कैसे काम चलेगा ? तुम्हे यह देखना चाहिये कि तुम्हारे शरीर वह साढे–दस गजी गाऊन सर्कस के जोकर की तरह लग रहा है। इनकी रचनाओं का चाहे इसे दोष कहो या गुण, पढते ही लगता है कि उनकी शैली बहुत सीधी है। लिखना चाहूँ तो मै भी इस तरह लिख सकता हूँ। उनकी उपमायें इतनी स्वाभाविक तथा सरल है कि देखते ही लगता है कि–वह–इन्हे तो मै भी जानता हूँ , उपमा देने की जरूरत पडने पर मै भी बिलकुल इन्हे ही देता। किन्तु भ्रान्त अनुकरण–प्रयासी लोग इस बात को कभी नहीं सोचते कि कोहिनूर की नकल नहीं बन सकती, टेट के डायमण्ड की बन सकती है। असली मिलने पर पुश्त–दर–पुश्त शाही ठाठ से रहा जा सकता है, नकली की कीमत से फकत एक दिन की सागभाजी ही खरीदी जा सकती है।

कुछ शब्दो का प्रयोग रविबाबू प्राय करते है। उन्हें, उनकी उपमाओ तथा लिखने की प्रणाली (शैली) को आजकल के साहित्य सेवी नर–नारियों ने इतना विकृत कर दिया है कि उसे देखकर कष्ट होता है। वे जिनके गुरू है, उन्हें उचित है कि वे उन्हे (रविबाबू को) समझने की चेष्टा करें, उनके प्रति श्रद्धालु हो। भीतर ही भीतर उन्हे ये श्रद्धा देते है या नहीं, यह मै नहीं कह सकता , लेकिन बाहर भौंडी नकल उतारने के मारे गुरूजी की हालत खराब हो गई है, यह मै निश्चित रूप से कह सकता हूँ। वह बेचारा, कोई कुछ भी कहे, है, व्याघ्र। उनके भक्तगण झट से आकर समझा दे जाते हैं–शार्दूल। दो–एक उदारहण दे रहा हूँ। पुरुषों की बात नहीं कहना चाहता। उनकी बात वे ही कहेंगे–और बीच–बीच मे कोई–कोई कहता भी है, बस इतना ही। वही दाहिने बाजू और बायें बाजू की बातें है। मै सिर्फ दो–एक महिला सरस्वतियों के विषय में बताकर ही चुप हो जाऊँगा।

आजकल जो बडी लेखिकायें बन उठी है उनमें श्रीमती आमोदिनी घोष जाया, अनुरूपा देवी तथा निरूपमा देवी के नाम लगभग सभी लोग जानते है। इनकी अनेक गद्य और पद्य रचनाये प्रत्येक मासिक पत्रिका में देखने को मिलती है। आज इनके विषय में ही कहता हूँ। बहुतों को श्रीमती घोष जाया की रचनायें देख कर रविबाबू की रचनाओं का भ्रम हो जाता है। अवश्य भ्रम के कुछ कारण भी हैं।

मै पहले ही कह चुका हूँ कि रविबाबू का सही अनुकरण चाहे जितना दु साध्य हो, विकृत करना बहुत सहज है। वह कुछ भी कठिन नहीं है–मेरी निम्नलिखित इस तालिका को कठस्थ करने से ही काम चल जायगा। यदि कठस्थ न हो तो बडे–बडे अक्षरों में लिखकर टेबिल के सामने लटका देकर अपनी रचनाओं में बीच-बीच में प्रवेश करा देने से ही काम हो जायगा। हरिलूट का बताशा हाथ में आये या नीचे गिरे निष्फल नहीं होगा। कठस्थ कर डालिये परिणति, विश्वमानव, देहान्वय, भूमिष्ठ, गरिष्ठ मुखर, वनस्पति, प्रयोजन हुआ है, फाँकी (धोखा), दैन्य, पुष्टिसाधन, देवता, अमृत, श्रेय, भूमा, आशीर्वाद अर्घ्य आवहमानकाल, श्रेष्ठ, वाणी, खाँटी (विशुद्ध), भारतवर्ष, निष्ठा, जाग्रत, जन्मस्वत्व, दिन आ गया है, तपश्चर्या वैराग्य, श्रद्धा, जोनाई, खाटो (छोटा), पतला, बुलावा आ गया है, मुक्ति का आंनंद और त्याग का आनद। बस, इतने ही काफी हैं। एक रचना में इन सब का उपयोग यदि कर सको तो अति उत्तम। न कर सको तो झूमा,

अर्घ्य, देवता, वैराग्य तथा भारतवर्ष—ये पाँच अवश्य रहें। अन्यथा रचना रचना ही नहीं बनेगी। अगर कोई (इस सूत्र पर) अविश्वास करके कहे 'यह कैसे हो सकता है ? जहाँ—तहाँ मनमुताबिक शब्दो को ठूँस देने पर लोग पकड लेंगे न ! इसके जवाब में मिसाल देने के अलावा मेरे लिये और कोई चारा नहीं। गत अग्राहयण मास की 'भारती' पत्रिका में श्रीमती आमोदिनी घोष जाया का आठ पृष्ठों का एक प्रबन्ध निकला था। शीर्षक था 'मनुष्यत्व की साधना'। शीर्षक (टाइटिल) देखकर ही 'बाप रे !' कह उठने से काम नहीं चलेगा। भक्तिपूर्वक पूरे प्रबन्ध को पढना पडेगा। मेरी लिस्ट के प्राय. सभी शब्द इसमे है। सुतरा यह एक अच्छी और शिक्षाप्रद रचना होगी। पर यदि कोई शब्दकोश की सहायता से पूरे प्रबन्ध को पढ़कर यह कहे कि इन आठ पृष्ठों में आठ वाक्य भी ऐसे नहीं है जिनका कुछ अर्थ निकले। तब मै चुप तो जरूर रहूँगा, लेकिन कबूल नहीं करूँगा, और मन ही मन नाराज होकर कहूँगा, 'तो भी तुम्हें शिक्षा तो मिल गई।' जो हो, मैंने कहा था कि मिसाल दूँगा, लेकिन यह नहीं कहा था कि आलोचना करूँगा। आलोचना निरर्थक होगी। मै कहूँगा, 'तुम्हारी रचना अर्थहीन है'। तुम जवाब दोगे, 'नहीं'। मैं कहूँगा, 'इस जगह तुमने बहुत बढा—चढा के लिखा है।' तुम कहोगे, 'बिल्कुल नहीं।' मै कहूँगा,' इस जगह और थोडे स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी।' तुम कहोगे,' नही। और अधिक स्पष्टीकरण आर्ट का मर्डर कर देता।' वस्तुत इस प्रकार के तर्क की मीमासा नहीं हो सकती। रचना इसी को कहते हैं—इस विवेचना के ऊपर ही लेखक का यथार्थ कृतित्व निर्भर करता है। आलोचना द्वारा गुण—दोष को दिखाकर प्रशसा या निन्दा अवश्य की जा सकती है, लेकिन और कोई काम नहीं होता।

अस्तु, जो कुछ कहना चाहता था उसे ही कहता हूँ। उपर्युक्त प्रबन्ध में श्रीमती घोषजाया कहती हैं, 'भारतवर्ष आज अकस्मात् स्वत्व से जगकर देख रहा है कि जनपद के जिस पथ पर (अब तक) वह चल रहा था वह प्रकृत नहीं है, मायावी सृष्टि मात्र है, अकस्मात् आज वह दिगन्तविहीन वाणी के भीतर न जाने कहाँ खो गया है।' वाकई भाषा है। जनपद का पथ दिगन्तविलीन वाणी के भीतर न जाने कहा खो गया। मै पूछता हूँ, रविबाबू ने क्या इस तरह कहीं 'वाणी' की अत्येष्टि की है ? कुछ दिनों पहले (इसी) लेखिका ने 'विकाश' पत्रिका में एक दस—बारह लाइन की कविता में 'व्योम' शब्द से तुक मिलाने के लिये 'शशीसूर्यसोम' लिखा था। कविता की बात नहीं तो छोडे ही देता हूँ—क्योंकि 'व्योम' के 'म' की तुक बिना 'सोम' के नहीं मिल सकती। 'शशी' शब्द को छाँट देने पर अक्षर कम हो जाते हैं। किन्तु जनपद के पथ के विषय में तो ऐसी कोई विवशता नहीं थी कि बिना उसे 'वाणी' शब्द के काम नहीं चलता। कवि पर अकुश निषिद्ध है, इसे मानता हूँ। पर तार्किक जब घर छोडकर लाठी तान कर मारने आता है, उस वक्त भी आत्मरक्षा की कोई चेष्टा नहीं करनी चाहिये, इस बात को नहीं मानता। वह काव्य था। किन्तु यह तो एक दार्शनिक प्रबन्ध है। असलबात कितनी ही है कि रविबाबू 'वाणी' शब्द का इस्तेमाल करते है, लिहाजा उसे तो रखना ही पडेगा।

यद्यपि नाटक और नावेल में ये उतने नहीं खटकते, फिर भी जब अनुरूपा देवी ने (अपने) 'पोष्यपुत्र' में लिखा, 'याद में मुखर हो उठा शब्द', तब उनका अभिप्राय निश्चय ही 'शब्द' शब्दायमान हो उठा, यह कहना नहीं था। किन्तु 'मुखर' शब्द के सही अर्थ का ज्ञान उन्हें अवश्य होना चाहिये था। जबरदस्ती निर्लज्ज भाव से अर्थ लगाने के बजाय बल्कि यह कहना अच्छा है, 'क्या करूँ, वह मुझे चाहिये ही वह महान लेखक द्वारा प्रयुक्त हुआ है .. ।,

श्रीमती अनुरूपा ने एक और स्थान पर लिखा है 'क्षेत्र कर्षित होने पर शस्यदान करता है, पतित पडे रहने पर कन्टक-गुल्म की आवासभूमि बन जाता है। सुतरा भारतवर्ष

का नैतिक क्षेत्र भी आकर्षण से कन्टक-गुल्म से आच्छन्न हो उठेगा, यह कोई स्वभाव-विरूद्ध व्यापार नही है। वनस्पति इस कानन मे पहले अवश्य विद्यमान थी, किन्तु अब वह वल्मीक तथा लतास्तूप से इस तरह ढक गया है कि फिर उसे पहचान कर बाहर निकालने का शायद कोई उपाय नही है।' थे क्षेत्र एव शस्य, आ गये कानन और वनस्पति। ठीक है, क्षेत्र वन जगल बन भी सकता है, पर किसी भी शस्य को वनस्पति बनते तो नही देखा। इधर तो नही वनता, उधर बनता है या नही नही कह सकता। इधर भी शायद नही बनता, किन्तु 'वनस्पति' तो चाहिये ही। पर मै कहता हूँ कि चाहने से पहले उन्हें इस बात को भी जानना जरूरी था कि वह वस्तु उडदमटर नही है। इसी महान् लेखक का आश्रय प्राप्त करने जाकर अनुरूपादेवी ने एक जगह लिखा है, 'भूमा के साथ भूमिका, क्षुद्र के साथ महान् का योग है यह।' अर्थात छोटी भूमि के साथ युक्त हो रही है। 'भूमा' शब्द का व्यवहार आवश्यक है, मै इसे अस्वीकार नही करता, पर कौन क्षुद्र है और कौन महत् इस बात को क्या पुस्तक लिखने से पहले जानना आवश्यक नही था?

आषाढ, वगीय सन् १३१७ की 'भारती' पत्रिका में प्रकाशित' प्राचीन भारत की पूजा नामक प्रबन्ध में श्रीमती घोष जाया ने लिखा है, आत्म सम्मान के साथ आत्मदान का एक सादृश्य है, इस सादृश्य-सकट से बचने के लिये भारतवर्ष की धर्मनीति आत्मसम्मान को दूर हटाकर रखती आयी है। फल जब पकता है, अपने ही आप वह ढेंप से अलग होकर नीचे गिर पडता है। पकाने के लिये उसे वृतहीन करने पर वह विकृत ही होता है, परिणत नही होता। मै आजतक नही समझ पाया कि उस ढेप से अलग, होने की उपमा का सम्बन्ध किससे है। मौलिक न होने पर भी स्वतंत्र रूप से यह उपमा बहुत अच्छी है मानता हूँ, किन्तु वह यहाँ किसकी अच्छाई का बोध करा रही है, वह बुद्धि के अगोचर है। 'बबूल की तरह सर्वविसारी गुल्म, की तरह 'अह' वस्तु की बारबार निन्दा करके तथा इसका परिवर्जन करके प्राचीन भारतवर्ष में जिस दिन एक विराट कार्य किया था, और उसकी प्रत्येक जाति, उसका प्रत्येक वर्ण उसके प्रशस्त राजछत्र तल मे स्थान पा रहा था, उसी समय जबरदस्ती वृन्त से तोडे इस अपरिपक्व फल को न जाने किस श्रेणी में प्रवेश करके दोष कर दिया था इस वात को समझने का कोई पथ नही छोडा है लेखिका ने। उस दिन इस प्राचीन भारत की ख्याति अपरिमित थी, सहसा इन दो- तीन साल के भीतर ही उसने कौन सा ऐसा अपराध कर दिया है कि घोष जाया महोदया ने 'मनुष्यत्व' की साधना' के बहाने उसकी आज भीषण भर्त्सना करना शुरू कर दिया है? वे कह रही है, 'बिलकुल कुछ न समझकर शुक व तोते की तरह कठस्थ करना विद्याध्ययन नही होता, यह कहना निश्चय ही बाहुल्योक्ति होगी। आजकल शिशु शिक्षा में भी ऐसी मूढ नीति प्रयुक्त नही होती। किन्तु हम लोगों का श्रद्धेय पूज्याद, ज्ञानगरिष्ठ यह भारतवर्ष अब भी अपनी तीस करोड़ नर-नारी को उसी पहले युग का पहला पाठ पढा रहा है, गभीरता पूर्वक सिर हिलाकर कह रहा है, "पूछने का तुम लोगों को कोई अधिकार नही है, आज्ञा-वह की तरह तुम लोग केवल आज्ञा का पालन करोगे, यही लोगों की मुक्ति का मूल्य है" ज्ञानगरिष्ठ भारतवर्ष के इस ज्ञान का परिचय देकर फिर लिख रही है, किन्तु प्राचीन भारत ने इस आपेक्षिकता को एकदम आश्रय नही दिया था, नशे के झोंक में असाध्य-साधन के चरम उल्लास को उसने इतना ऊँचा स्थान दे दिया था कि जीवन के छोटे-मोटे कर्त्तव्यों की उसने बिलकुल अवज्ञा कर दी थी। प्राचीन भारत ने नशे का सेवन करके क्या किया था, एव जीवन के छोटे-मोटे कर्तव्यों की अवज्ञा की थी या नहीं, इस विवाद में मै नही पड़ूँगा। विदुषियाँ जब कह रही है तब माने लेता हूँ। किन्तु पूछता हूँ, 'श्रद्धेय' पूज्यपाद' आदि इन विशेषणों का कुछ अर्थ है या ये केवल अपनी विद्वत्ता के प्रदर्शन के हेतु ही प्रयुक्त हुए हैं? अपने पिता की किसी भी भूल का प्रतिवाद करने के लिये उनके मुँह के

सामने खडे हो कर कहा जाय ।, ए मेरे पूज्यपाद ज्ञानगरिष्ठ पिता, तुम ताडी पीकर नशे के झोकें में मतवालापन क्यों कर रहे थे ?, यह सुनने में कैसा लगेगा ? एक शख्स ने बाहर कही मार खा कर अपनी औरत के सामने शेखी बघारा था, 'हाँ कान जरूर उमेठ दिये है, पर मेरा अपमान नहीं कर सका ।' घोषजाया महोदय ने भी कान तो जरूर उमेठ दिये है पर पूज्यपाद का अपमान नहीं किया है । जो हो, कलम की धनी हैं ।

एक रचना में इन्होने Evolution Theory (विकासवाद) की व्याख्या करके बाद में कहा है, प्रवृत्तिमार्ग का शासन पालन करके उसका खण्डन पूर्वक जो लोग निवृत्तिमार्ग पर चले थे, वर्तमान भारत ने उनके लुप्त पदार्थो का पुनरूद्धार न कर पाकर अन्तभगशायी अवशिष्ट चिह्नों को ही दृढरूप से ग्रहण कर लिया है और उनहें कृपण के धन की तरह जकडे हुए है । उसके पीछे जो विस्तृत अँधेरा गह्वर मुँह फैलाये हुए है, उसे वह केवल अपने असंभव प्रयास द्वारा ओट में रखना चाहता है, किन्तु उसके पैरों के तले की मिट्टी उसी के भार से नीचे धँसी जा रही है, उस ओर उसकी दृष्टि नही है ।' अर्थात 'अँधेरा गह्वर असभव प्रयास', 'पैरों के तले की मिट्टी' का नीचे धँसना आदि बातों को लगाना ही पडेगा । क्यों यह बताना बाहुल्य है । किन्तु मुश्किल यह हो गई है कि अतभागशायी चिह्नों को जकडे रहने के बीच इतना बड़ा गह्वर कहाँ से आ गया और पैरों के तले की मिट्टी क्यों नीचे धँसी जा रही है ? उस गह्वर को सिर्फ वही बेचारा नहीं देख पाया, ऐसी बात नही, कहीं मुझे भी तो किसी ओर नहीं नजर आ रहा है । और एक जगह शास्त्रों के अनेक दोष दरसाते हुए लिखती हैं, 'जीवन की अवस्थाओं के भेद से कर्तव्य एव धर्म में प्रभेद हो जाता है । पुरुष का जो धर्म है नारी का वह धर्म नहीं हो सकता । अपितु, सन्यासी अगर गृहीका धर्म ग्रहण करता है तो सन्यासी धर्म भ्रष्ट हो जाता है, एव गृही यदि संन्यासी का पथानुसरण करता है तब गृही भी धर्म से स्खलित हो जाता है । जन समाज में जब किसी अनुभूति का स्पदन घटित होता रहता है, विधान के दबाव से उसे विमर्दित नही किया जा सकता, गर्जित स्रोत तरगिनी की तरह उसके यथाशायी प्रतिबधको को विध्वस्त करके पथ उन्मुक्त करके अवतरण करता है । सुतरां गृहियों का सन्यासनुपथी होने के सम्बन्ध में प्रबल शास्त्र-प्रतिषेध के बावजूद समाज में अणुमात्र भी उसके प्रभाव का ह्रास नही हुआ है ।'

मेरा विनम्र निवेदन यह है 'सुतरां' शब्द का अर्थ है समाज के कुल गृहियों ने क्या गृहिणियों को त्याग करके वन में जाने का सकल्प कर लिया है । या छिपा कर गेरू के रग के कपडे रँगते हुये पकडे गये हैं ? ऐसा होने पर जरूर भय की बात है, हमारे यहाँ किसी में यह प्रवृत्ति नहीं नजर आती । कम से कम बडे कर्त्ता के विषय में तो मैं हलफिया कह सकती हूँ । इस 'सुतरा' शब्द से बहुत दिन पहले की एक बात याद आ गयी , एक बार गाडी से रात को घर लौट रहा था । पथ के दाहिने ओर के खेतों में चासाओं (किसानों) ने पाट, धो-धोकर सुखाने के लिये फैला दिये थे । कहीं मैं डर न जाऊँ इस आशका से हम लोगों के पचा नाम के नौकर ने गाड़ी की छत पर से मुझे हिम्मत बँधाने की गरज से कहा, 'मा- [1] ठाकरून, दाहिनी ओर थोडा नजर डालकर देखिये, सुतरा कैसे पाट सुखा रहे हैं !' उसके 'सुतरां' के प्रयोग पर मुझे बेहद हँसी आयी थी ।

रहने दो, बहुत हो गया । हाँलाकि अभी बहुत सी बातें कहने को हैं, किन्तु कोई जरूरत नहीं । इसके अलावा हाँडी का एक चावल दबाकर देखना ही काफी है । श्रीमती आमोदिनी एक शिक्षित रमणी हैं, हम लोग तो पुरान पथी, अशिक्षित और मूर्ख हैं । हो सकता है, उन्हें गलत समझा हो । लेकिन चाहे गलत हो और चाहे सही, जो कुछ समझ में आया है उसे साफ-साफ कह डाला है । यदि आवश्यक हो तो अपनी रचना का समर्थन

---

१ प्रस्तुत प्रबन्ध शरच्चन्द्र ने 'श्रीमती अनिला देवी, के छद्मनाम से लिखा है ।

वे अनायास कर सकती हैं । मगर एक बात कहे रखता हूँ । मै जानता हूँ कि औरते भी खर्राटे लेती है, लेकिन अधिक जोर से नाक से आवाज निकलना सुनकर अन्य स्त्रियाँ शायद लज्जित होती हैं । उन्हें डर लगता है कि शायद अभी चौककर घर का मर्द उठ पडेगा । तभी उत्कंठावश यदि वह थोडा निष्ठुर बनकर ही उसे जगाने की चेष्टा करे, तो उस चेष्टा में आतरिक मगलेच्छा के और कुछ नही होता निश्छल भाव से स्वीकार करता हूँ कि उनकी भाषा बहुत सुदर और मधुर है । प्रत्येक वाक्य गभीर पाण्डित्य से परिपूर्ण है । बहुमूल्य घडी के सुगठित कलकब्जे की तरह उनके शब्द - विन्यास के अद्भुत कौशल को देखकर मुग्ध हो गया हूँ । यह घडी कीमती है और चल भी जरूर रही है, पर इसमे काँटे न होने के कारण कवि पोप की तरह ठीक से समय जानने में अक्षम हुआ हूँ ।

अब श्रीमती अनुरूपा तथा निरूपमा की रचनाओं के सम्बन्ध में दो-एक बात कहूँगा । यद्यपि श्रीमती अनुरूपा के 'पोष्यपुत्र' का न आरम्भिक अश पढा है मैने, न अतिम अश । केवल बीच के कई अध्यायों के पढने का ही सुयोग प्राप्त हुआ है । और इतनी कम पूँजी लेकर कुछ कहने जाना विपज्जनक है जानता हूँ, लेकिन कहा जाता है कि एक बूढे आदमी के लिये ज्यादा पूँजी की जरूरत नही होती, तभी कहने की हिम्मत कर रहा हूँ । इनकी भाषा भी निस्सदेह अत्यन्त मधुर है कि मुँह का जायका ही खतम हो जाता है और नही निगला जाता । पर भाषा जैसी भी हो, उपमाओ का उपयोग बिना समझे ही किया गया है यह पढते ही पता चल जाता है । और एक चीज जो सबसे ज्यादा खटकने वाली है, वह है असह्य वाचालता । इस बात को कहने की मेरी इच्छा नही थी । क्यों कि यही से तर्क का सूत्रपात हो जाता है । ग्रन्थकार के प्रशसक कहने लगते है, 'कहाँ वाचालता है, दिखलाओ, मै जो कुछ दिखलाऊँगा, वे प्रतिवाद करके कहेगे—'कभी नही !, यह 'ह्यूमर है', 'वह विट है', 'वह आर्ट है', आदि वाचालता का अनुभव अतर मे होता है । पर विट कब अश्लील हो जाता है, आर्ट कब ज्यादती और भोंडापन में रूपान्तरित हो जाती है, इसे इन्सान उमर बढने पर ही समझ सकता है । इतनी उमर लेखिका की अभी नही हुई है । किन्तु मुझे आशा है कि यह दोष शीघ्र ही दूर हो जायगा ! किन्तु बिना समझे उपमाओ के उपभोग के पक्ष में कोई भी युक्ति नही है । तभी दो-एक दृष्टातो का ही केवल उल्लेख करूँगा ।

एक जगह लिखती है, 'विजन पथ पर चलते-चलते अकस्मात् पैरों के नीचे दशनोद्यत सर्प को देखकर पथिक जैसे निश्चेष्ट काठ होकर खडा हो जाता है, इत्यादि ।' हाँ ठीक । एक कपडे या रस्सी के टुकडे को देखकर उछलके निश्चेष्ट काठ बनके खडे हो जाते है । फिर, सर्प भी ऐसा-वैसा नही, एकदम दंशनोद्यत सर्प ! यह बडी किस्मत की बात है कि इन्होंने यह नहीं लिखा, 'रसोईघर में एकाएक ज्वलत आग के टुकडे को पैरों के नीचे दबाकर रसोईदारिन जैसे अवाक होकर मुँह बाके खडी हो जाती है ।'

और एक स्थान पर लिखती है, 'दीप्त सूर्यालोक के ऊपर मेघ आ जाने से वह जैसे एक ही मुहूर्त में म्लान हो जाता है, शिवानी का चेहरा वैसे ही मुहूर्त भर अधकाराच्छन्न हो गया ।' यह अलकार है या उपमा ? किन्तु दीप्त सूर्यालोक पर मेघ आ पडने पर क्या होता है ?, सफेद सा बन जाता है परिदेश । किन्तु लेखिका ने वह जो 'म्लान' कहा है यह क्या इसलिये कि अधकाराच्छन्न चेहरे से मेघाच्छन्न सूर्या लोक की तुलना कर सकें ? और एक जगह गहरे काले बादलों में बक आदि पक्षियों को उडते देखकर उन्हें लग रहा हे जैसे कि 'कृष्ण तारका', ही उडती हुई जा रही है । काले बादलों के तले बक पक्षी क्या 'कृष्ण तारका' जैसा लगता है ? इसके अलावा 'कृष्ण तार का' है क्या वस्तु ? रात को आकाश की ओर देखने पर तो कभी गहरा काला कोई नक्षत्र दिखलाई नही पडता । और यदि आँख का तारा हो, तो वह भी तो सफेद पदार्थ के बीचोबीच रहता है । काले बादल के साथ उसका सादृश्य ही कहाँ है ? प्रकृति देवी के ऊपर इस तरह के उत्पात और भी

अनेक है । इस विषय में लेखिका को थोडा होश से काम लेना चाहिये था । क्यों कि आदमी खुद जिस बात को नही जानता, उसे दूसरों को न बताना ही बुद्धिमानी है ।

जोहो मैने सुना है कि यह पुस्तक पाँच-छै सौ पृष्ठ की है । मैने तो सिर्फ पच्चीस-तीस पन्ने ही पढे है । सुतरा मुझे उम्मीद है कि जो मैंने नही पढा है उसमें अच्छा अच्छी वस्तुएँ ही होंगी । लडकी भी कह रही थी कि पुस्तक ज्ञानगर्भ है । वेद, कुरान, बाइबिल, महाभारत, रामायण, एथिक्स, मेटाफिजिक्स, रामप्रसादी, तत्र, मत्र, झाडफूँक, मारण, उच्चाटन, वशीकरण-- सब है । इनके अलावा सस्कृत, हिन्दी, अग्रेजी, कालिदास, शेक्सपीयर, टेनिसन-- जो कुछ जानना जरूरी है वह सब इसमें है । कह नही सकता कि आखिरी हिस्से में 'राजभाषा' और 'Clerks Guide' है या नहीं । अपने छोटे नाती को इसकी एक प्रति खरीद दूँगा, ऐसा सोच रहा हूँ ।

यदि मेरी राधारानी की बात सच है, तब और कई प्रश्न करके ही शान्त हो जाऊँगा। पूछता हूँ इतनी अधिक धर्मचर्चा क्यो है ? हिन्दू धर्म के इतने सूक्ष्म भेदो का दिग्दर्शन न कराया जाता तो क्या हर्ज हो जाता ? संन्यासी-फकीरों की इतनी भीड हो गई है (इसमें) कि पैर बढाने तक का उपाय नही है । किस ओर चलकर कहाँ खड़ा होऊँ, नही जानता । हर वक्त यही डर सताता रहता है कि किसी महात्मा के शरीर पर मेरा पैर न पड जाय । जिस पर अग्रेजी की बुकनी और अग्रेजी कविताओ के लबे कोटेशन ! यह बात भी सोचना जरूरी था कि यह एक बंगला उपन्यास है और लेखिका की अधिकाश बहनें (पाठिकायें) अग्रेजी नही जानती । लेखिका जानती है इसलिये क्या उसका ढिढोरा पीटना पडेगा । सुना है कि रविबाबू भी अग्रेजी जानते है, बकिमबाबू ने भी सीखी थी, किन्तु वे भी अपने उपन्यासो में इसके प्रयोग का लोभ सवरण कर सके है । इन्हे भी लोग सवरण करना चाहिये था । अन्त पुर चारिणी स्त्री होते हुए भी सर्वतोमुखी पाण्डित्य की छटा से लोगों को आश्चर्य चकित कर दूँगी, यह स्पिरिट निदनीय है । अग्रहायण मास की 'भारती' में एक भले आदमी ने इस पुस्तक की समालोचना करके लिखा है कि स्थान - अस्थान में अत्यधिक प्रकृति-वर्णन से इसमे रसभग दोष घटित हो गया है । पर मै यह नही कहता । बल्कि यह कहना चाहता हूँ कि दो-तीन पृष्ठ व्यापी प्रकृति वर्णन पढकर ही जो व्यक्ति कोई धारणा बना लेना चाहता है वही अ-रसिक है । यह चीज गया मे पिण्डदान जैसी है । पडा (पुरोहित) महाराज भी नही जानते कि क्या कहवा रहे है, यजमान भी परवाह नही करता कि क्या कह रहा है , अथच, दोनों जानते है कि काम हो रहा है-- भूत छूटा जा रहा है । इस विषय में श्रद्धा होनी चाहिये, मन में विश्वास होना चाहिये कि प्रकृति-वर्णन समझ रहा हूँ । बाजीगर का खेल नही देखा है ? बाजीगर अपनी आँख में से बतख का अडा निकालने से पहले हाथ-पैर हिलाके भानुमती के खेल की व्याख्या शुरू कर देता है-- यह भी वैसी ही बात है । लोगों को समझना चाहिये कि अब कोई आश्चर्य की बात होने वाली है, जो समझदार है वह जानता है कि अब अडा बाहर निकलेगा- मूर्ख लोग ही सिर्फ हाथ-पैर हिलाना देखते रहते है और भानुमती के खेल की व्याख्या को समझने की कोशिश करते है । मैं तो तीसवें अध्याय के शुरू में ही समझ गया था कि अब कुछ नया आने वाला है ।

लेखिका ने जन हितार्थ दयापूर्वक पेट के दर्द को दूर करने का मत्र तक सिखा दिया है

'राम लक्ष्मण सीते जान किष्किन्धेर पथे,
साथे निलेन हनुमान आर सुग्रीव मिते,
सुग्रीव बलेन मिटे आमी मतर जानी ,
पेटेर व्यथाय अव्यथा हये जाय प्राणी ।'

वस्तुत लोगों के अधविश्वास के कारण हिन्दू धर्म की अनेक अच्छी बातें लुप्त होती चली जा रही है, उसे हरगिज नही होने देना चाहिये। श्रीयुत लालबिहारी दे ने गोविन्द सामत को साँप का मतर सिखा दिया था। मैं भी पेटदर्द का एक मतर जानता हूँ, यदि किसी का उपकार हो जाय, तभी लिख रहा हूँ। मगर यह जरूर मैं नही कह सकता कि मेरा मत्र अव्यर्थ है या नही। इस घर के लोग उजड्ड किस्म के हैं, इन सब बातों पर विश्वास नही करना चाहते- तभी इसकी परख नही हो पायी है। जिस घर के लोग शान्त शिष्ट है वहाँ परख हो सकेगी। मतर यह हे

'पेट कामडानि, पेट कामडानि,

भाल हबि तो ह

नइले कामडे कामडे की गरू बाछुर

मेरे फेलबि।

रोगी के पेट पर हाथ फेरकर तीनबार कहना पडता है।

अब श्रीमती निरूपमा के बारे में कुछ कहूँगा। इनमें निरूपमा की रचनाये अनेक दृष्टिकोणों से अच्छी है। सहज, सरल तथा विनीत। पाण्डित्य का हुकार भी उनमें नही है, स्टेज-आस्फालन भी कम है। कथोपकथन स्वाभाविक हैं। लिखने में गलती न हो, ऐसी बात नही। गलती किससे नही होती, तथा होने पर ही वह महालज्जा का व्यापार नही बन जाता। यदि जानबूझ कर नही की जाती। सीधे रास्ते को छोडकर किसी अनजान रास्ते में जाकर राहभूलना कोई अच्छी बात नही होती। शरीर मे घाव हो जाना एक बात है, मगर लगातार घाव बनाना दूसरी बात है। 'खुजला कर ही एक के लिये सहानुभूति होती है, दूसरे के लिये गुस्सा आता है– तबीयत होती है कि कहे जैसा किया वैसा पाया।,' अगर तुमसे नही होता है, तो करने क्यों जाते हो ? निरूपमा से यह दोष हो जाता है, इसलिये इनकी गलती ही है, किन्तु उनकी गलतियाँ गलतियाँ तो है ही सिर्फ गलती उनके अलावा भी और कुछ है। जो लोग सीधे रास्ते पर चलकर गलती करते है, उनकी गलती (या भूल) आगे जाकर अपने आप ही सुधर जाती है। पर जो लोग टेढे रास्ते पर चलना चाहते है मगर रास्ते को नही जानते, उनका भविष्य विपज्जनक बन जाता हे। श्रीमती निरूपमा का उपन्यास 'अन्नपूर्णा का मदिर' पढते वक्त कई मामूली गलतिया नजर आयी थी, मगर अब उन सबको याद नही कर पा रहा हूँ। फिर भी, एक याद है, दृष्टान्त के रूप में यहाँ दे रहा हूँ। उन्होंने एक जगह 'सन्तरण मूढ की तरह' न लिखकर 'सतरणहीन मूढ की तरह' लिखा है। यह समझने की भूल है। बकिम बाबू ने जैसे अपने 'कृष्णकान्त के दिल' के आरभ मे 'इहलोदान्ते' न कहकर एकाधिकवार 'परलोकान्ते' लिखा है- उसी तट। किन्तु यह यदि रविबाबू का अनुकरण हो तो काम गलत हुआ है। उन्होंने 'सन्तरयमूढ रमेश सगीत के घुटनों तक के पानी मे ' आदि लिखा है, 'सन्तरणहीन' नही लिखा है। जो हो, यह कोई ग्राह्य भूल नही है। किन्तु ग्राहय भूल वह अवश्य है जिसे जाने बिना ही लिखा गया है। जेसे– सती ने अफीम और बेलेडोना दोनों को ही खाया है। एक विष है, और दूसरा प्रतिषेधक। बेलेडोना विष में डाक्टरगण मारफिन इनजेक्ट करते हैं। दोनों विष एक साथ सेवन करने पर वह अभागा अकसर मरता न हो, ऐसी बात नही। मरने पर भी इतनी जल्दी, इतने आराम से नही मरता। बहुत विलब और बहुत तकलीफ पाकर मरता है। लेखिका का यह अभिप्राय अवश्य ही नही रहा होगा। इसके अतिरिक्त दुर्घटना की आशका काफी थी। हो सकता है वह मरता ही नही, हो सकता है जलाते वक्त आँखे खोलकर देखने लगता। जोहो जब विभिन्न कार्योद्धार हो गया है तब और अधिक आलोचना निष्प्रयोजन है। किन्तु बेलेडोना जुटाने के लिये लेखिका को मालिश की दवा डाक्टर, डाक्टरखाना, गठिया (बात) वगैरह

बहुत सी अनावश्यक बातों की अवतारणा करनी पडी है। इसलिये थोडा जानबूझकर लिखने पर इतनी बेकार की मेहनत नही करनी पडती।

और नही। अब समाप्त करना हूँ। बहुत सी अप्रिय बातें लिख डाली। मुझे आशा है कि इसका अच्छा फल होगा।और यदि प्रचलित नियम के अनुसार लेखक और लेखिकायें यह कहकर सात्वना प्राप्त करने की चेष्टा करे कि चूँकि समालोचक लोग खुद नही लिख सकते इसीलिये ईर्ष्यावश छिद्रान्वेषण करते है, तब मै निरूपाय हूँ। किन्तु प्रत्येक समालोचक नही लिख पाता और लिखने मे अक्षम होने के कारण ही छिद्रान्वेषण करता है, इस बात पर आस्था रखना भी समीचीन नही।

('यमुना', फाल्गुन, बँगला सन्१३१६)

महात्मा जी

महात्मा जी आज सरकार की जेल मे है । भारतवासियो के लिए यह समाचार कैसा और क्या है, यह केवल भारतवासी ही जानता है, फिर भी सारा देश स्तब्ध हो रहा । देशव्यापी कडी हडताल नही हुई, शोक से उन्मत्त नर-नारियो के समूह सडको पर रास्तों मे नहीं निकल पडे, लाखो करोडो सभा समितियो में हृदय की गहरी व्यथा निवेदन करने कोई नही आया, जैसे कही कुछ हुआ ही नही-जैसा कल था, आज भी सब ठीक वैसा ही है, कही रत्तीभर भी उथल पुथल नही हुआ - इस तरह समुद्र तट से हिमाचल तक सब चुप हे । किन्तु प्रश्न है कि ऐसा क्यो हुआ ? इतना बडा असम्भव काण्ड किस तरह सम्भव हुआ ? नीचाशय ऐंग्लो-इडियन अखबार जो जिसके मुँह मे आता है कहते है, किन्तु हर रोज की तरह उस मिथ्या का खण्डन करने को कोई उद्यत नही हुआ । जान पडता है, जेसे उनके भाराक्रान्त हृदय की गम्भीरतम वेदना आज तर्क-वितर्क से दूर हे ।

जाने के पहले महात्मा जी अनुरोध कर गये है कि उनके लिए कहीकोई हडताल, किसी तरह की प्रतिवाद सभा, किसी प्रकार की चचलता या लेशमात्र क्षोभ न किया जाय । आज्ञा अत्यन्त कठिन है । फिर भी, सारे देश ने उनके इस आदेश को शिरोधार्य कर लिया है । यह कण्ठ-रोध, यह नि शब्द सयम, अपने को दबाकर रखने की यह कठिन परीक्षा कितना बडा दुस्साध्य काम है, इस बात को वह अच्छी तरह से ही जानते थे, फिर भी इस आज्ञा का प्रचार कर जाने मे उन्हें तनिक भी अटक नही हुई । एक-दिन जिस दिन उन्होंने विपद्ग्रस्त, दरिद्र, सताये गये और वचित प्रजा वर्ग का परम दु ख राजा की आँखो के आगे उपस्थित करने के लिए युवराज की अभ्यर्थना और स्वागत का निषेध कर दिया था - उस अर्थहीन निरानन्द उत्सव के अभिनय से सब तरह अलग रहने के लिए प्रत्येक भारतवासी को उपदेश दिया था, उस दिन भी उन्हे कोई अटक नही हुई । यह उनसे छिपा नही था कि इसके परिणाम स्वरूप राजरोष की आग कहाँ और कितनी दूर तक फैलेगी, किन्तु कोई आशका, कोई प्रलोभन उनके इरादो को बदल नही सका । इसको उपलक्ष्य करके देश के ऊपर से कितने आँधी-तूफान, कितने वज्रपात कितना ही दु ख गुजर गया, किन्तु उन्होंने जिसे सत्य और कर्तव्य ठीक किया था, युवराज के आगमनोत्सव के सम्बन्ध मे आखिरी दिन तक उन्होने अपना वह आदेश नही लौटाया । उसके बाद अकस्मात् एक दिन चौरीचौरा में भयानक दुर्घटना घटित हो गयी । निरूपद्रव होने के सम्वन्ध मे देशवासियो के प्रति उनका वह विश्वास हिल गया - तब यह बात सारी दुनिया के आगे निष्कपट भाव से मुक्त कठ होकर प्रकट करने मे उन्हे लेशमात्र दुविधा नही हुई । अपनी भूल और त्रुटि को बारम्बार स्वीकार करके, विरूद्ध राजशक्ति के साथ शीघ्र होने वाले सुतीव्र सघर्ष की सब प्रकार की सम्भावना को उन्होने अपने हाथ रोक दिया । रत्तीभर भी वह नही हिचके । सिन्धु से आसाम और हिमालय से दक्षिण के शेष प्रान्त तक सभी असहयोगवादियों का मुख हताशा और निष्फल क्रोध से स्याह हो उठा, और फौरन ही दिल्ली की अखिल भारतीय काग्रेस की कार्यकारिणी समिति की बैठक मे उनके सिर पर से गुप्त और प्रकट लाछना की जैसे एक आँधी निकल गई । किन्तु वह उन्हें विचलित नही कर सकी। एक दिन जो उन्होंने विनय के साथ अत्यन्त सक्षेप मे कहा था कि जगदीश्वर के सिवा मनुष्य से मै नही डरता, इस सत्य को केवल प्रतिकूल राज-

शक्ति के आगे ही नही, एकान्त अनुकूल सहयोगियों और भक्त अनुचरों के आगे भी प्रमाणित कर दिया। राजपुरुषों और राजशक्ति के अत्याचार की तीव्र आलोचना इस देश में निडर होकर और भी अनेक लोग कर गये हैं और उसके दण्ड का भोग भी उन लोगों के भाग्य में कुछ हलका नहीं हुआ है, तथापि उन लोगों को निर्भयता की परीक्षा केवल इसी तरफ से देनी पडी थी। किन्तु इससे भी बडी और कठिन जो एक परीक्षा थी अनुरक्त - भक्तजनों की अश्रद्धा, अभक्ति और व्यंग्य-विद्रूपका दण्ड-इस बात को लोग एक प्रकार से भूल गये हे-जाने के पहले देश के आगे इस परीक्षा को ही पास होकर उन्हें जाना पडा, अत्यन्त स्पष्ट करके दिखा जाना पडा कि मान-सम्भ्रम, मर्यादा यश यहाँ तक कि जन्म-भूमि के ऊपर भी सत्य को स्थापित कर पाये विना ऐसा कर पाना असम्भव है।

किन्तु इतनी वडी शान्त शक्ति और शुद्ध सत्यनिष्ठा की मर्यादा को धर्महीन उद्दण्ड राजशक्ति नहीं समझ सकी, उसने उन्हें लाछन लगाया, लाछित किया। महात्मा जी को उस दिन रात में गिरफ्तार किया गया। कुछ दिनों से यह सम्भावना अफवाहों में तैर रही थी, अतएव यह गिरफ्तारी आकस्मिक भी नहीं है, आश्चर्य की बात भी नहीं है। जेल की सजा होना अनिवार्य है। इसमे भी विस्मय की बात कुछ नहीं है। लेकिन सोचने की बात अवश्य है। चिन्ता व्यक्तिगत भाव से उनके अपने लिए नही है। यह चिन्ता समष्टिगत भाव से सारे देश के लिए है। जो अनन्य भाव से सत्यनिष्ठ हैं, जो मन-वाणी-काया से हिंसा को छोडे हुए हैं, स्वार्थ के नाम से जिनका कहीं भी कुछ भी नहीं है, आर्त्तों के लिये - पीडितों के लिए जो संन्यासी है,-इस अभागे देश में ऐसा कानून भी है, जिसके अपराध से इस आदमी को भी आज जेल जाना पडा। देश के कल्याण में ही राजलक्ष्मी का कल्याण है, प्रजा की भलाई में ही राजा की भलाई है-शासनतन्त्र का यह मूल तत्व आज इस देश में सत्य है कि नहीं, यहाँ देश के हित के लिये ही राज्य की परिचालना होती है कि नहीं, प्रजा का भला होने से ही राजा का भला होता है या नहीं, यह आँखें खोलकर आज देखना होगा। अपने को धोखा देकर नहीं, पराये के ऊपर मोह का विस्तार करके नहीं, हिंसा और चिढ का निष्फल अग्निकांड करके नहीं, जेल में बन्द महात्मा जी के चरण-चिन्हों का अनुसरण करके, उन्हीं की तरह शुद्ध और एकाग्र होकर और उन्हीं की तरह लोभ, मोह और भय को सब ओर से जीतकर। निरर्थक जेल जाकर नहीं-जेल में बन्द होने का अधिकार प्राप्त करके।

शायद यह अच्छा ही हुआ है। शासन-यन्त्र के नागपाश में आज वह बँधे हुए हैं। वह जिसे बहुत चाह रहे थे, उस, विश्राम की बात को न हो मैंने छोड दिया, किन्तु जब आज देश का भार देश के माथे आ पडा है, तब एक बात, जिसे वह बार-बार कह गये हैं 'कि कभी किसी के भी हाथ से दान की तरह स्वाधीनता नहीं ली जाती, लेने पर भी वह नहीं टिकती, उसे हृदय के रक्त से प्राप्त करना होता है, उसे पूरा करने का उनकी अनुपस्थिति में अपने को सार्थक करने का यह परम सुयोग शायद आज सब प्रकार से हमें नसीब हुआ है। जो लोग बाहर रह गये हैं, वे बिलकुल ही साधारण मनुष्य हैं। किन्तु जान पडता है, असाधारणता परम गौरव आज उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहा है।

और भी एक परम सत्य वह स्पष्ट कर गये हैं। कोई देश जब स्वाधीन, सुस्थ और स्वाभाविक अवस्था में रहता है, तब देशात्मबोध की समस्या भी खूब जटिल नहीं होती और स्वदेश-प्रेम की परीक्षा भी एकदम अत्यन्त कडे रूप में नही देनी होती। तब उस देश के नेतृत्व के योग्य लोगों को बडे यत्न से छाँटे बिना भी शायद काम चल जाता है। किन्तु वह देश यदि कभी पीडित, रोगी, और मरणासन्न हो उठे, तब इस ढीले-ढाले कर्तव्य का फिर अवकाश नहीं रहता। तब जो लोग इस दुर्दिन को पार कर ले जाने का भार ग्रहण करते हैं, उनको सब देशों का सारी आँखों के सामने परार्थपरता की अग्निपरीक्षा देनी होती है। बातों से, नहीं-कामों से चालाकी के मार-पेंच से नहीं-सरल

सीधे रास्ते से, स्वार्थ का बोझा लादकर नही-सब चिन्ता, सारा उद्वेग, सम्पूर्ण स्वार्थ जन्मभूमि के चरणों में पूर्णरूप से बलि देकर । इससे अन्यथा विश्वास नही किया जा सकता । हमारे इस परम सत्य को भूलने से अब किसी तरह काम न चलेगा । इसी परीक्षा को देने जाकर आज सैकड़ों-हजारो भारतवासी राजा के जेलखाने मे बन्द हैं और इसलिए कारागार को 'स्वराज-आश्रम' नाम देकर उन्होंने आनन्द को शिरोधार्य कर लिया है।

आज प्रजा के कल्याण के साथ राजशक्ति का कठिन विरोध ठन गया है । यह सघर्ष कब समाप्त होगा, यह केवल जगदीश्वर ही जानते हैं किन्तु राजा और प्रजा मे यह सघर्ष की आग प्रज्वलित करने के जो सर्वप्रधान पुरोहित हैं, वह यद्यपि आज कारागार मे बद है, तथापि इस विरोध का मूल तथ्य फिर एक बार नये सिरे से देखने का समय आ गया है । सशय और अविश्वास ही सारे सद्भाव सकल बन्धन सारे कल्याण को पल-पल में क्षय करता रहा है । शासन तन्त्र ने यह कहा । प्रजा वर्ग इसका जबाब देता है- ना, यह बात नहीं है, तुम मिथ्या कहते हो । राजशक्ति कहती है-तुमको यह देंगे, इतने दिन मे देंगे, प्रजाशक्ति आँख उठाकर सिर हिलाकर कहती है-तुम किसी दिन कुछ न दोगे-कोरी वचना कहते हो ।

"यह तुमसे किसने कहा ?"

"किसने कहा ! हमारी सब अस्थिमज्जा, हमारी सारी प्राण शक्ति, हमारा धर्म, हमारा मनुष्यत्व, हमारे पेट की सब नाडी-नसें तक ऊँचे स्वर में चिल्लाकर केवल यही बात बराबर लगातार कहने की चेष्टा कर रही हैं । किन्तु सुनता कौन है ? चिरकाल से तुम सुनने का ढोंग करते रहे हो, किन्तु सुनते नही । आज भी केवल वही पुराना अभिनय फिर एक बार नये सिरे से कर रहे हो । तुमको सुनाने की व्यर्थ चेष्टा में दुनिया के सामने हम बेहद लज्जित और हीन बने हैं । अब हममे उसकी प्रवृत्ति नही है । तुम्हारे आगे नालिश नही करेंगे । केवल और एक बार अपनी वेदना की कहानी देश के लोगों के आगे एक-एक करके व्यक्त करेंगे ।"

भूतपूर्व भारत सचिव माटेगू साहब जब उस दफा भारत वर्ष मे आये थे, तब इस बगाल के ही एक विश्व विख्यात बगाली ने उनको एक बडी-सी चिट्ठी लिखी थी और उसका एक लबा-चौडा उत्तर भी पाया था । किन्तु आदि से अन्त तक अच्छी-अच्छी निस्सार बातों के बोझ से भरी उस भारी चिट्ठी की चालबाजी के सिवा और कुछ भी याद नही है, और जान पड़ता है, ऐसी बातें याद भी नही रहती। किन्तु इस पक्ष का स्थूल वक्तव्य मुझे खूब याद है । इन्होंने बार-बार करके और विशद करके यह विश्वास-अविश्वास की बहस ही चार सफे की चिट्ठी में भरकर साहब को समझाना चाहा था कि विश्वास किये बिना विश्वास प्राप्त नही होता । जैसे इतनी बडी नूतन तत्व की बात इस भारत भूमि को छोडकर विदेशी साहब के लिए और सुनने की सम्भावना ही न थी । अथच, मुझे विश्वास है कि साहब की अवस्था कम होने पर भी यह तत्व उन्होंने पहले पहल नही सुना और पहली जानकारी भी लेकर दे नही गये । इसी से साहब को केवल ऐसी सब बातें और भाषा लिखनी पड़ी थी जो कि चिट्ठी के सफे भर देती हैं, किन्तु अर्थ कुछ नही रखती !

इस पक्ष से भी इसका प्रत्युत्तर हो सकता है कि यह उदाहरण में ही चलता है, वास्तव में नहीं चलता । कारण बिना सकोच के आत्मसमर्पण करने की भी जमानत है, किन्तु वह नहीं बढी है और उसे चिकित्सक के हृदय में बैठकर स्वय भगवान लेते हैं । उनके लेने का दिन जब आता है, तब न चकमा चलता है, न बहस चलती है । इसी से जान पडता है, सब छोड़कर महात्मा जी ने राजशक्ति के हृदय पर ही जोर दिया था ।

मार-काट, खून-खराबी, अस्त्र, शस्त्र और बाहुबल की ओर ही वह नही गये-उनका सारा आवेदन-निवेदन, अभियोग-अनुयोग इसी आत्मा के निकट है। राजशक्ति में हृदय या आत्मा का कोई झझट नही भी रह सकता है, किन्तु इस शक्ति का सचालन जो करते हैं, उन लोगो ने भी छुटकारा नही पाया। और सहानुभूति ही जब जीव के सब सुख-दुःख, सब ज्ञान, सब कर्मों का आधार है, तब इसी को जगाने के लिए महात्मा जी ने प्राणपण किया था। आज स्वार्थ और अनाचार से यह सहानुभूति चाहे जितनी मलिन, चाहे जितनी ढकी हुई क्यो न हो, एक दिन इसे वह निर्मल और मुक्त कर सकगे। यह उनका अटल विश्वास क्षण भर के लिए भी ढीला नही हुआ। लोभ और मोह से स्वार्थ को, क्रोध और विद्वेष से हिसा को निवृत्त या बद नही किया जा सकता-इस बात को महात्मा जी जानते थे। इसी से दुःख देकर नही-दुःख सहकर, वध करके नही-अकुठित चित्त से अपनी बलि देने के लिए ही वह इस धर्मयुद्ध में उतरे थे। यह थी उनकी तपस्या, इसी को उन्होंने वीर का धर्म कहकर निष्कपट भाव से इसका प्रचार किया था। सारे पृथ्वीमण्डल में यह जो उद्धत अविचार की चक्की मे मनुष्य दिन-रात पिसकर मर रहा है, इसका एक मात्र हल गोली-गोले बदूक-बारूद और तोप मे नही है, है केवल मनुष्य की प्रीति में, इसकी आत्म की उपलब्धि में इस परम सत्य पर सम्पूर्ण हृदय से विश्वास रखते थे, इसी से आहिसा-व्रत को केवल क्षणभर का उपाय मानकर नही, चिर जीवन का एक मात्र धर्म समझकर उन्होंने ग्रहण किया था। और इसीलिए उन्होंने इस भारतीय आन्दोलन को राजनीति न कहकर आध्यात्मिक कहकर समझने की चेष्टा मे दिन पर दिन प्राणान्त परिश्रम किया था। विपक्ष ने हँसी उडाई अपने पक्ष ने अविश्वास किया, पर दोनों में से कोई उन्हें विभ्रान्त नही कर सका। अँगरेजो की राजशक्ति के प्रति महात्मा जी का विश्वास जाता रहा है, किन्तु मनुष्य अगरेजो की आत्मोपलब्धि के प्रति आज भी उनका विश्वास वैसे ही स्थिर और अटल बना हुआ है।

किन्तु इस अचचल निष्कम्प दीपशिखा की महिमा समझ पाना बहुतो के लिए दुःसाध्य है। इसी से उस दिन श्रीयुत विपिन बाबू (सुप्रसिद्ध विपिन चन्द्र पाल) ने जब महात्माजी का यह कथन अहिसा की कीमत पर मैं भारत की स्वाधीनता लेना स्वीकार न करूँगा, मतलब यह कि भारत बिना अहिसा के अपनी स्वाधीनता लेना स्वीकार न करेगा, मतलब यह कि भारत बिना अहिसा के अपनी स्वाधीनता नही ग्रहण करेगा।" उद्धृत करके यह समझाना चाहा था कि 'महात्मा जी का लक्ष्य सत्याग्रह है, भारत की स्वाधीनता या स्वराज का लाभ इस लक्ष्य का एक अग हो सकता है, किन्तु मूल लक्ष्य नही है, तब वह भी इस दीपशिखा को हृदयगम नही कर सके थे। दूसरे की सम्पूर्ण स्वाधीनता के ऊपर हस्तक्षेप न करके मनुष्य की पूर्ण स्वाधीनता कितनी बडी सत्य वस्तु है और इसके प्रति द्विधाहीन आग्रह भी कितनी बडी स्वराज की साधना है, इसकी उपलब्धि वह भी नहीं कर सके। सत्य के अग - प्रत्यग जड और शाखा आदि नहीं है। सत्य सम्पूर्ण वस्तु है और सत्य ही सत्य का शेष है। और इसे चाहने के भीतर ही मानव-जाति के सब प्रकार के और सर्वोत्तम लक्ष्य की परिणति विद्यमान है। देश की स्वाधीनता या स्वराज उन्होंने सत्य के भीतर से ही चाहा है मारकाट करके लेना नहीं चाहा। इस तरह चाहा है, जिससे वह आप भी धन्य हो जाय। उसके क्षुब्ध चित्त का कृपण धन नहीं, इसके दाता के प्रसन्न हृदय का सार्थकता का दान चाहा है। ऐसा छीना झपटी का लेना तो ससार में बहुत हो गया है, किन्तु वह स्थायी नहीं हो सका-दुःख, कष्ट, वेदना का भार केवल बढता ही चला जा रहा है, कही भी तो एक तिलभर भी कम नही हुआ। इसी से वह आज उन सब पुराने परिचित' और क्षण स्थायी असत्य के मार्गो से विमुख होकर सत्याग्रही हुए थे, पण किया था कि मानवात्मा के सर्वश्रेष्ठ दान के सिवा और कुछ भी वह हाथ फैला कर नही ग्रहण करेगे।

सम्पूर्ण अन्त करण से स्वाधीनता और स्वराज्य की कामना करके वह जब अँगरेजी राज्य के सब प्रकार के ससर्ग को त्याग करने के लिए राजी नही हुए थे, तब उन्हे बहुत - सी कडवी बातें और गालियाँ सुननी पडी थीं। बहुत सी कटूक्तियो के बीच एक तर्क वह था कि अँगरेजी राज्य के साथ हम लोगो का चिर दिन के लिए अविच्छन्न बन्धन किसी तरह सत्य नही हो सकता और निरूपद्रव शान्ति के लिए इतना ही व्याकुल होने की क्या जरूरत है ? जब पराधीनता पाप है और पराई स्वाधीनता को छीनने वाला भी जब इतना वडा पापी हैं तब चाहे जिस तरह हो, इससे मुक्त होना ही धर्म है। अँगरेजो ने यहाँ निरूपद्रव मार्ग से राज्य नही स्थापित किया और उसके लिए रक्तपात करने मे भी सकोच नही किया, तब केवल हम लोगो को ही निरुपद्रवपन्थी रहना होगा, इतनी बडी जिम्मेदारी हम काहे के लिए ग्रहण करें ?"

किन्तु महात्मा जी ने इधर कान नही दिया। वह जानते थे कि यह युक्ति सत्य नही है, इसके भीतर एक भारी भूल छिपी हुई है। वास्तव मे यह बात किसी तरह सत्य नही है कि जगत् में जो कुछ एक दिन अन्याय की राह से, अधर्म के मार्ग से स्थापित हो गया है, उसे आज मिटाना या ध्वस करना ही न्याय है- चाहे जिस तरह से हो, उसे दूर करना ही, आज धर्म है। एक दिन जिस अँगरेजी राज्य को प्रतिहत करना ही देश का सर्वश्रेष्ठ धर्म था, उसे उस दिन हम रोक नही सके-इसलिए आज चाहे जिस उपाय या मार्ग से उसे नष्ट करना ही देश का एकमात्र धर्म है-यह बात किसी तरह जोर करकेनही कही जा सकती। अवाछित जारज सन्तान अधर्म की राह से ही जन्म लेती है अतएव उसकी हत्या करके ही धर्महीनता का प्रायश्चित हो सकता है, ऐसा कहना सत्य नही है ,"

वर्तमान हिन्दू–मुसलमान समस्या

कोई भी बात बहुत लोगों के बहुत जोर देकर कहते रहने पर भी केवल कहने के जोर से ही सत्य नहीं हो उठती। अथ च, इस सम्मिलित प्रबल कंठ स्वर की एक शक्ति होती है और मोह भी कम नहीं होता। वह शुद्ध चारों ओर गूँजता रहता है और इस भाप से ढँके हुए आकाश के नीचे दोनों कानों के भीतर जो प्रवेश करता है, उसी को सत्य मानकर मनुष्य विश्वास कर लेता है। प्रोपैगंडा (प्रचार) जिसे कहते हैं, वह यही चीज है। विगत् महायुद्ध के दिनों में इस असत्य को कि परस्पर एक–दूसरे का गला काटते फिरना ही मनुष्य का एकमात्र धर्म और कर्तव्य है, दोनों पक्षों ने जो सत्य मान लिया था, सो केवल अनेक लोगों की कलम और अनेक वक्ताओं के गले के मिले हुए चीत्कार का ही फल था। जो दो–एक आदमी प्रतिवाद करने चले थे, असल बात कहने की जिन्होंने चेष्टा की थी, उन्हें बेहद लाछना और निर्यातन सहना पड़ा था।

किन्तु आज वह दिन नहीं है। असीम वेदना और दुःख भोगकर मनुष्य को होश आया है कि उस दिन अनेक लोगों की अनेक बातों में ही सत्य न था।

कई साल पहले, महात्मा जी के अहिंसा असहयोग के युग में, इस देश में बहुत से नेताओं ने मिलकर ऊँचे स्वर से इस बात की घोषणा की थी कि हिन्दुओं और मुसलमानों का मिलन होना चाहिए। चाहिए केवल इसलिए नहीं कि यह चीज अच्छी है, चाहिए इसलिए कि इसके हुए बिना स्वराज की या स्वाधीनता की कल्पना करना भी पागलपन है। उस समय अगर कोई यह पूछता कि क्यों पागलपन है तो लोग क्या जवाब देते, यह तो वे ही जानें, किन्तु लेखों से, भाषणा से और चीत्कारों के विस्तार से यह बात ऐसी बड़ी और स्वतः सिद्ध सत्य हो गयी थी कि एक पागल आदमी को छोड़कर और किसी में इसके प्रति सन्देह प्रकट करने का दुस्साहस नहीं रहा।

उसके बाद इस मिलन-बायस्कोप के लिए रोशनी मुहैया करते–करते ही हिन्दुओं के प्राणों पर बन आई। समय और शक्ति कितनी व्यर्थ हो गयी, इसका तो कुछ हिसाब ही नहीं। इसी के फलस्वरूप महात्माजी का खिलाफत–आन्दोलन शुरु हुआ, इसी के लिए देशबन्धु का पैक्ट (समझौता) हुआ। अथ च भारत के राष्ट्र नीतिक क्षेत्र में इतनी बड़ी दो खोखली चीजें भी कम हैं। पैक्ट का फिर भी कुछ अर्थ समझ में आता है, कारण, उसका एक उद्देश्य था, वह चाहे कल्याणकर हो चाहे अकल्याणकर। वह उद्देश्य था समयानुसार एक समझौता करके कौंसिल के भीतर बंगाल–सरकार को हराना। किन्तु खिलाफत आन्दोलन तो हिन्दुओं के लिए केवल अर्थहीन ही नहीं, असत्य भी है। किसी भी मिथ्या का सहारा लेकर जयी नहीं हुआ जा सकता और जिस मिथ्या की भारी शिला को गले मे बाँधकर इतना असहयोग–आन्दोलन अन्त को रसातल में चला गया, वह यही खिलाफत का आन्दोलन था। स्वराज चाहिए। विदेशियों के शासन–पाश से छुटकारा चाहिए–भारतवासियो के इस दावे के खिलाफ अँगरेज शायद एक युक्ति खड़ी कर सकते हैं, किन्तु विश्व के दरबार में वह नहीं टिकती। पावें चाहे न पावें, इस जन्मसिद्ध अधिकार के लिए लड़ने में पुण्य है, प्राण जाने पर अन्त में स्वर्ग मिलता है। जगत् में ऐसा कोई नहीं है जो इसे अस्वीकार कर सके। किन्तु खिलाफत चाहिए–यह कैसी बात है? जिस देश के साथ भारत का कोई सम्बन्ध नहीं, जिन लोगों के बारे मे हम कुछ भी नहीं जानते कि वे क्या खाते हैं, क्या पहनते हैं, कैसा उनका चेहरा मोहरा है, वह देश पहले टर्की के

शासन के अधीन था, अब यद्यपि टर्की हार गया है, तथापि सुल्तान को यह लौटा दिया जाय; क्योंकि भारत के मुसलमान इसके लिए हठ कर रहे हैं—मचल रहे हैं। यह कौन–सी सगत प्रार्थना है? असल में यह भी एक समझौता है। घूस का मामला है। हम क्योंकि स्वराज चाहते हैं और तुम खिलाफत चाहते हो, अतएव आओ, हम मिलकर खिलाफत के लिए सिर फोड़ें और तुम स्वराज के लिए ताल ठोंककर अभिनय करो। किन्तु इधर ब्रिटिश सरकार ने कान नहीं दिया और उधर जिसके लिए खिलाफत थी, उस खलीफा को ही तुर्कों ने देश से निकाल बाहर कर दिया। अतः इस तरह खिलाफत–आन्दोलन जब बिल्कुल असार और अर्थहीन हो गया, तब अपने खोखलेपन के कारण यह केवल आप ही नहीं मरा, भारत के स्वराज–आन्दोलन का भी गला घोंटता गया। वास्तव में अब घूस देकर, प्रलोभन दिखाकर, पीठ ठोंककर क्या स्वदेश की मुक्ति के संग्राम में लोग भर्ती किये जा सकते हैं, और न करने से ही विजय मिलती है? नहीं, ऐसा नहीं होता और किसी दिन होगा, यह भी मैं नहीं मानता।

इस मामले में सबसे अधिक परिश्रम स्वयं महात्मा जी ने किया था। जान पड़ता है, इतनी आशा भी किसी ने नहीं की थी, और इतना बड़ा धोखा भी किसी ने नहीं खाया। उस जमाने में बड़े–बड़े मुसलमान लीडरों में से कोई महात्मा जी का दाहिना हाथ बना था, कोई बायाँ हाथ, कोई आँख, कोई कान, कोई और कुछ। हाय रे! इतना बड़ा तमाशे का काम भला और भी कहीं हुआ है! अन्त को हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाने की अन्तिम चेष्टा महात्मा जी ने लंबा इक्कीस दिन का उपवास करके दिल्ली में की। यह धर्मप्राण सरलचित्त साधु आदमी हैं। उन्होंने शायद सोचा था कि इतनी यन्त्रणा देखकर भी क्या उन लोगों को दया न आवेगी? उस बार किसी तरह उनके प्राण बच गये। भाई से अधिक, सबकी अपेक्षा प्रिय मौलाना मुहम्मद अली ही सबसे अधिक विचलित हुए। उनकी आँखों के सामने ही सब कुछ हुआ था। उन्होंने आँसू गिराकर कहा—आहा! बड़े भले आदमी हैं यह महात्मा जी? इनका कुछ सच्चा उपकार करना ही चाहिए। अतएव पहले मक्के शरीफ जाऊँ, जाकर पीर को सिन्नी चढाऊँ और वहाँ से लौटकर, कलमा पढ़ाकर यह काफिर धर्म त्याग करा दूँ, तब छोड़ूँ।

सुनकर महात्माजी ने कहा—पृथ्वी तू फट जा।

वास्तव में मुसलमान अगर कभी कहे कि हिन्दू के साथ मेल करना चाहिए तो वह छलना के सिवा और क्या हो सकता है, यह सोच पाना कठिन है।

एक दिन मुसलमानों ने लूटने के लिए ही भारत में प्रवेश किया। वे यहाँ राज्य स्थापित करने के लिए नहीं आये थे। उस समय केवल लूट करके ही वे नहीं रुके, उन्होंने देवमंदिर तोड़े, प्रतिमाओं को चूर-चूर किया, स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट किया—दूसरों के धर्म और मनुष्यत्व के ऊपर जितनी चोट की जा सकती है, उसका जितना अपमान किया जा सकता है, उतना करने में उनको तनिक भी संकोच नहीं हुआ।

देश के राजा होकर भी इस जघन्य नीच प्रवृत्ति के हाथ से छुटकारा नहीं पा सके। औरंगजेब आदि नामी बादशाहों की बात छोड़ दीजिए, जिन अकबर बादशाह के उदार होने की इतनी शोहरत है, वह भी बाज नहीं आये। आज मन में आता है कि यह संस्कार उन लोगों के अस्थिमज्जागत हो गया है। पबना के बीभत्स काण्ड के बारे में बहुतों को यह कहते सुनता हूँ कि पछाँह से मुसलमान मुल्लाओं ने आकर भोले–भाले अशिक्षित–अपढ़ मुसलमानों को भड़काकर यह दुष्कर्म किया और कराया है। किन्तु इसी तरह अगर पछाँह से हिन्दू–पुरोहितों का दल आकर किसी ऐसे स्थान में जहाँ हिन्दुओं की संख्या बहुत हो, ऐसे ही भोले–भाले अपढ़ किसानों को यह कहकर भड़काने की चेष्टा करे

कि निरपराध मुसलमान पडोसियों के घर में आग लगाना, सम्पत्ति लूटना, औरतों का अपमान और बेइज्जती करना होगा, तो उन सब निरक्षर हिन्दू किसानो का दल उसको पागल समझकर गाँव से भगा देने में घडी–भर की देर न करेगा–नहीं हिचकेगा।

किन्तु ऐसा क्यों होता है ? यह केवल अशिक्षित होने का ही फल है ? शिक्षा का अर्थ अगर लिखना–पढना जानना है, तो इस विषय मे हिन्दू और मुसलमान किसान–मजदूरों में अधिक अन्तर नहीं है। किन्तु शिक्षा का तात्पर्य यदि अन्तकरण का प्रसार और हृदय का सस्कार हो, तो कहना ही होगा कि इन दोनो सम्प्रदायों की तुलना ही नहीं हो सकती। हिन्दू–नारियो के अपहरण के मामले में देखता हूँ, अखबार वाले प्राय ही प्रश्न करते हैं कि मुसलमान–नेता लोग चुप क्यो है ? उनके सम्प्रदाय के लोग बार–बार इतना बडा अपराध करते है, तो भी वे किसलिए उसका प्रतिवाद नहीं करते ? मुँह बन्द करके चुप रहने का मतलब क्या है ? किन्तु मुझे तो जान पडता है कि इसका अर्थ बिलकुल ही स्पष्ट हे। वे केवल अत्यन्त विनय या मुलाहिजे के कारण ही मुँह फोडकर नहीं कह पाते है कि 'भैया, आपत्ति क्या करे, समय और सुयोग पाने पर इस काम में हम भी लग जा सकते हैं।'

मिलन बराबर वालों मे होता है। शिक्षा समान कर लेने की आशा और चाहे जो करे, मैं तो नहीं करता। हजार वर्षों में पूरा नहीं पडा, और–ओर भी हजार वर्ष इसके लिए काफी न होगे। और अगर इसी की पूँजी लेकर अँगरेजो को यहाँ से भगाना हो तो यह काम अभी रहने दिया जाय। मनुष्य के लिए और भी काम है। खिलाफत आन्दोलन करके, पेक्ट करके और दाहिने और बाएँ दोनों हाथो से मुसलमानों की दुम सहला कर स्वराज की लडाई लडी जा सकेगी, यह दुराशा दो–एक आदमियो के मन मे भले ही हो, किन्तु अधिकाश लोगो के मन मे नहीं थी। वे यही सोचते थे कि दु ख और दुर्दशा के समान शिक्षा देने वाला तो दूसरा कोई नहीं है। विदेशी व्यूरोक्रेसी (नौकरशाही) के निकट निरन्तर लाछना भोग करके शायद उन लोगों (मुसलमानों) को चैतन्य होगा, शायद हिन्दुओ से कधा मिलाकर स्वराज के रथ को ठेलने के लिए राजी हो जायेगे। ऐसा सोचना अन्याय नहीं है, पर उन्होंने केवल यही नहीं सोचा कि लाछना को समझने के लिए भी शिक्षा का होना जरूरी है। जिस लांछना की आग मे स्वर्गीय देशबन्धु का हृदय जलने लगता था, उससे मेरे शरीर में आँच भी नहीं लगती। ओर इससे भी बडी बात यह है कि दुर्बल के प्रति अत्याचार करने मे जिन्हें सकोच नहीं होता, सब के तलवे चाटने मे भी उन्हें ठीक उतना ही सकोच नहीं होता। अतएव इस आकाश–कुसुम के लोभ से हम अपने को काहे के लिए धोखा दें ? हिन्दू–मुसलमान–मिलन एक बडा– सा शब्द है जिससे गाल भर जाते है। युग–युग में ऐसे गाल भरने वाले अनेक वाक्यों का आविष्कार हुआ है ; किन्तु इस गाल भरने के सिवा वे और काम नहीं आये। यह मोह हम लोगो को त्याग करना ही होगा। आज बगाल के मुसलमानों को यह बात कहकर लज्जित करने की चेष्टा वृथा है कि सात पीढी पहले तुम हिन्दू थे, अतएव रक्त के सम्बन्ध से तुम हमारे जाति–भाई हो। जाति–वध महापाप है, अतएव कुछ करुणा करो–रहम खाओ। इस तरह कहकर दया की भीख माँगने और मेल का प्रयास करने जैसी अगौरव की बात मै तो और नहीं देख पाता। स्वदेश मे, विदेश मे, मेरे अनेक ईसाई बन्धु हैं। किसी के बाप–दादों ने और किसी ने स्वय धर्म–परिवर्तन किया है। किन्तु यदि वे खुद अपने परिवर्तित धर्म–विश्वास का परिचय न दें, तो आज भी उनकी किसी बात या रहन–सहन से यह नहीं प्रकट होता कि वे हमारे भाई–बहन नहीं है। मैं एक महिला को जानता हूँ जो थोडी ही आयु में इस लोक से विदा हो गयी है। इतनी बड़ी श्रद्धा की पात्री भी मैने अपने जीवन मे कम ही देखी है। ओर मुसलमान ? हमारे यहाँ एक रसोइया ब्राह्मण था। एक मुसलमानी के प्रेम में पढकर मुसलमान हो गया। एक वर्ष बाद मुझे वह दीख पडा। उसने नाम बदल लिया है, पोशाक

बदल दी है, उसकी प्रकृति बदल गयी है, भगवान की दी हुई सूरत भी ऐसी बदल गयी है कि वह पहचान नहीं पडता। और केवल यही एकमात्र उदाहरण नहीं है। निम्न श्रेणी की बस्ती के साथ जिसकी थोडी बहुत घनिष्ठता है—जहाँ यह काम बराबर हुआ करता है—उससे छिपा नहीं है कि बात ऐसी ही है। उग्रता तक में ये लोग जान पडता है कोहाट के मुसलमानों को भी लज्जित कर सकते है।

अतएव, हिन्दुओ की समस्या यह नहीं है कि किस तरह यह अस्वाभाविक मिलन सघटित होगा, हिन्दुओ की समस्या यह है कि किस तरह वे सघबद्ध हो सकेंगे और हिन्दू धर्मावलम्बी किसी भी व्यक्ति को छोटी जाति कहकर उसका अपमान करने की उनकी दुर्बुद्धि किस तरह और कब जायगी। और सबसे बडी समस्या यह है कि हिन्दू के अन्त करण का सत्य किस तरह उसके प्रतिदिन के प्रकाश्य आचरण मे फूल की तरह विकसित हो उठने का सुयोग पावेगा। जो सोचता हूँ, वह कहता नहीं, जो कहता हूँ, वह करता नहीं, जो करता हूँ, उसे स्वीकार नहीं करता, - आत्मा की इतनी बडी दुर्गति बरकरार रहते हुए समाज—देह असंख्य छिद्र—पथ स्वय भगवान् आकर भी बन्द नहीं कर सकेंगे।

यही समस्या और यही कर्त्तव्य है। हिन्दू—मुसलमान का मेल नहीं हुआ, इसके लिए छाती पीटकर रोते-झीखते फिरने की जरूरत नहीं। आप अपना रोना बन्द करेगे तभी अन्य पक्ष से रोने वाले आदमी पाये जायेंगे।

हिन्दुस्तान हिन्दुओं का देश है। अतएव इस देश को अधीनता की श्रृखला से छुडाने की जिम्मेदारी अकेले हिन्दुओं की है। मुसलमान अपना मुँह अरब और टर्की की ओर फेरे हुए है—इस देश में उनका मन नहीं है। जो नहीं है, उसके लिए दु ख अथवा क्षोभ से क्या लाभ है और उनके विमुख कानों के पीछे—पीछे भारत के जल—वायु और थोडी - सी मिट्टी की दोहाई देने से ही क्या होगा। आज यही बात अच्छी तरह समझने की जरूरत है कि यह काम केवल हिन्दुओं का है, और किसी का नहीं। मुसलमानो की सख्या गिनकर घबराने की भी आवश्यकता नहीं। सख्या ही ससार में परम सत्य नहीं है। इससे भी बडा सत्य मौजूद है, जो एक दो तीन करके सिर गिनने के हिसाब को हिसाब मे ही नही लाता।

हिन्दू—मुसलमानो के सम्बन्ध में अब तक तो मैंने कहा है, वह शायद कुछ कडवा लगेगा, किन्तु इसके लिए चौंकने की जरूरत नहीं है, मुझे देशद्रोही समझने का भी कोई कारण नहीं। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि इन दोनों पडोसी जातियां के बीच यदि एक सद्भाव और प्रीति का बन्धन होगा तो वह चीज मुझे पसन्द न होगी। मेरा वक्तव्य यही है कि यह चीज अगर नहीं ही हों और होने के कोई लक्षण अगर फिलहाल न दीख पडे, तो इसके लिए दिन—दिन आर्त्तनाद करने से कोई सुविधा नहीं होगी। और इस मनोभाव की भी कोई सार्थकता नहीं है कि न होने से ही बडा भारी सर्वनाश हो गया। अथ च, ऊपर—नीचे, दाहिने—बाएँ, चारों ओर से एक बात बार - बार सुनकर उसे हम ऐसा ही सत्य मानकर विश्वास कर बैठे हैं कि जगत् में इसके अलावा हमारी और कोई गति या उपाय है यह सोच ही नहीं सकते। इसी से करते क्या हैं ? यही कि अत्याचार और अनाचार के विवरण सब स्थानों से सग्रह करके कहते फिरते है कि यह तुमने हमें मारा, हमारे देवताओं के हाथ—पैर तोड डाले, यह हमारा मन्दिर तोड—फोड डाला, यह हमारी महिला का अपहरण किया—और यह सब तुम्हारा बडा अन्याय है और इससे हम अत्यन्त व्यथित होकर हाहाकार करते हैं। यह सब तुम बन्द न करोगे तो हम टिक नहीं सकते। वास्तव में इससे अधिक हम क्या कहते है और क्या करते हैं ? हमने नि सशय होकर यह ठीक कर लिया है कि चाहे जिस तरह हो, मिलन करने का भार हम लोगों पर

और अत्याचार निवारण करने का भार उन लोगो पर है। किन्तु वास्तव में होना चाहिए ठीक इससे उल्टा। अत्याचार निवारण करने का भार हमें खुद लेना चाहिए, और हिन्दू-मुस्लिम एकता के नाम की अगर कोई चीज हो तो उसे पूरा करने का भार है मुसलमानों के ऊपर छोड देना चाहिए।

तो फिर देश कैसे मुक्त होगा ? किन्तु मैं पूछता हूँ, मुक्ति क्या इस तरह होती है ? छुटकारा पाने के व्रत में हिन्दू जब अपने को प्रस्तुत कर सकेंगे, तब इस पर ध्यान देने की भी जरूरत न होगी कि मुट्ठी भर मुसलमान इसमें शामिल हुए या नहीं। भारत की स्वतन्त्रता से मुसलमानों को भी स्वतन्त्रता मिल सकती है, इस सत्य पर वे किसी दिन निष्कपट भाव से विश्वास नहीं कर सकेंगे। कर सकेंगे केवल तभी, जब उनका अपने धर्म के प्रति मोह कम होगा, जब वे समझेंगे कि कोई भी धर्म हो, उसके कट्टरपन को लेकर गर्व करने के बराबर मनुष्य के लिए ऐसी लज्जा की बात, इतनी बडी बर्बरता और दूसरी नहीं है। किन्तु उनके यह समझने में अभी बहुत देर है। और दुनिया भर के लोग मिलकर मुसलमानों की शिक्षा की व्यवस्था न करें तो इनकी आँखें किसी दिन खुलेंगी या नहीं, इसमें सन्देह है। और क्या देश की स्वतन्त्रता के सग्राम में देश भर के सभी लोग कमर बाँध कर लग जाते है ? क्या यह सम्भव है या इसका प्रयोजन होता है ? अमेरिका ने जब स्वाधीनता के लिए युद्ध छेडा था, तब उस देश के आधे से अधिक लोग अँगरेजों के ही पक्षपाती थे। आयरलैंड के मुक्ति-यज्ञ में वहाँ के कितने लोग शामिल हुए थे ? जो बोल्शेविक (साम्यवादी या कम्युनिष्ट) सरकार आज रूस का शासन चला रही है, उस देश की जनसख्या के अनुपात में वह तो एक प्रतिशत भी नहीं पड़ती। मनुष्य तो गऊ या घोडा नहीं है। केवल मात्र भीड का परिणाम देख कर ही सत्य-असत्य का निर्धारण नहीं होता, होता है केवल उनकी तपस्या का, उनकी लगन का विचार करके। इस एकाग्र तपस्या का भार देश के युवकों के ऊपर है। हिन्दू-मुस्लिम एकता की चाल या कौशल सोचना भी उनका काम नहीं है और जो सब प्रधान राजनीति विशारद दल इसी युक्ति या कूट-कौशल को भारत की मुक्ति का एकमात्र अद्वितीय उपाय कहकर चिल्लाते फिरते हैं, उनके पीछे जय-ध्वनि करने में समय नष्ट करके घूमना भी उनका काम नहीं है। संसार में बहुत-सी ऐसी चीजें हैं, जिन्हें छोडने पर ही उनको पाया जाता है। हिन्दू-मुस्लिम एकता भी इसी तरह की चीज है। जान पडता है, इसकी आशा बिल्कुल छोडकर काम में लग जा सकने पर ही शायद एक दिन इस अत्यन्त दुष्प्राप्य निधि के दर्शन मिलेंगे। कारण, तब मिलन केवल एक की चेष्टा से ही नहीं होगा, वह होगा दोनों की हार्दिक और सम्पूर्ण इच्छा का फल।'

सत्य और मिथ्या

पीतल को सोना कहकर चलाने से न तो सोने का गौरव बढ़ता है और न पीतल का। साथ ही पीतल की भी जाति मारी जाती है। फिर भी ससार मे इसका असद्भाव नहीं है। स्थान विशेष और समय विशेष पर सिर पर हेट लगाकर खातिर वसूल की जा सकती है, किन्तु आँखे बन्द करके थोडा देखने की चेष्टा करने से ही यह देखा जा सकता है कि एक ओर यह खातिर जैसे धोखा है, वैसे ही मनुष्य की लाछना भी अधिक है! तो भी यह चेष्टा बन्द नहीं होती। यह जो सत्य को छिपाने का प्रयास है, यह जो मिथ्या को विजयी बनाकर दिखाना है, इसका केवल तभी प्रयोजन होता है, जब मनुष्य अपने दैन्य को जानता है, अपनी कमी मे लज्जा का अनुभव करता है, किन्तु ऐसी वस्तु चाहता है, जिस पर उसका यथार्थ दावा नहीं है। यह असत्य अधिकार जितना व्यापक और विस्तृत होता जाता है, उतना ही अकल्याण का स्तूप भी प्रगाढ और घनीभूत होकर बढता रहता है। आज इस अभागे राज्य में सत्य बोलने का उपाय नहीं है, सत्य लिखने की राह नहीं है—वह सिडीशन (राजद्रोह) है। फिर भी हम देखते हैं कि बडे लाट से लेकर अदना सिपाही तक कहते हैं कि वे सत्य को नहीं रोकते, न्यायसगत समालोचना को, यहाँ तक कि तीव्र और कटु को भी मना नहीं करते। लेकिन हाँ! वक्तृता अथवा लेख ऐसा होना चाहिए, जिससे गवर्नमेंट के खिलाफ लोगों के मन मे क्षोभ न पैदा हो, क्रोध का उदय न हो, चित्त के चचल होने का कोई लक्षण न दिखाई दे। अर्थात् अत्याचार—अविचार की कहानी ऐसे ढग से कहनी चाहिए, जिससे प्रजा—पुज का चित्त आनन्द से आप्लुत हो उठे, अन्याय के वर्णन में भी प्रेम से गद्गद हो उठे और देश के दुख - दैन्य की घटनाएँ पढ़कर उसका देह मन एकदम स्निग्ध हो जाय! ठीक ऐसा न होने पर वह राज—विद्रोह है। किन्तु यह असम्भव किस तरह सम्भव किया जाय? एक दिन मैंने दो पक्के और बहुत ही होशियार एडीटरों से पूछा। एक ने सिर हिलाकर जवाब दिया —"यह तो भाग्य की बात है। भाग्य प्रसन्न हो तो सिडीशन नहीं होता, उसके बिगड़ जाने से ही होता है।" दूसरे महाशय ने सलाह दी—"एक मजे की बात कहूँ? लेख के आरम्भ में 'यदि' और अन्त में 'कि नहीं?" लगाना होता है, और ये दोनों शब्द बिना विचारे सर्वत्र बिखेर दे सकने पर सिडीशन का डर नहीं रहता।" ऐसा ही होगा' कहकर निश्वास छोड़कर चला आया। किन्तु मेरे लिए एक परामर्श जैसे दुर्बोध्य हुआ, दूसरे का उपदेश भी वैसा ही अन्धकार जँचा। लिखते—लिखते बूढा हो गया हूँ, अपने ज्ञान, बुद्धि और विवेक के माफिक ही किसी विषय के बारे में यह ठीक कह सकता हूँ कि वह न्यायसगत है या नहीं, किन्तु जिसकी आलोचना कर रहा हूँ, उसकी रुचि और विवेचना के साथ कधा मिलाने की दुस्साहय चेष्टा में कैसे लेख के आदि अन्त में 'यदि' और 'कि नहीं' बिखेर कर सिडीशन बचाऊँगा, यह जैसे मेरी बुद्धि के बाहर है, वैसे ही ज्योतिषी के पास जाकर अपना भाग्य जँचाकर तब लिखना शुरू करूँ—यह भी उसी तरह मेरे बूते का नहीं। अतएव सत्य और मिथ्या निर्णय की चेष्टा में इनमें से कोई भी इस समय भी न कर सकूँगा। लेकिन यदि जरूरत हुई तो अपने दुर्भाग्य को अस्वीकार न करूँगा।

शायद यह लेख कुछ लम्बा हो जायगा, अतएव भूमिका में यही बात और भी कुछ साफ करके कहने की जरूरत है। किसी समय यह देश सत्यवादी होने के लिए प्रसिद्ध

था, किन्तु आज इसकी दुर्दशा का अन्त नहीं है। सत्य वाक्य समाज के विरुद्ध कहना जितना कठिन है, राजशक्ति के विरुद्ध कहना उससे भी अधिक कठिन है। अगर कोई सत्य बात लिखे भी, तो छापने वाले छापना नहीं चाहते—उनका प्रेस जब्त हो जायगा। लिखना जिनका पेशा है, जीविका के लिए देश के समाचार पत्रों का सम्पादन जिन्हें करना पडता है, उन्हें असख्य आइनों के सेकडों नागपाशों से बचकर कितनी कठिनाई से, दुःख से पैर रखना होता है। जान पडता है, उन्होंने जैसे प्रत्येक शब्द सिहरते—सिहरते लिखा है। जान पडता है, राज-रोष के मारे हर एक पंक्ति के ऊपर होकर जैसे कलम के साथ उनका क्षुब्ध और व्यथित चित्त बराबर लडाई करते—करते ही आगे बढा है तो भी यदि कहीं उस अति सतर्क भाषा की संधियों या झिर्रियों में से सत्य का चेहरा झलक-जाता है तो उसकी क्षत—विक्षत विकृत मूर्ति को देखकर दर्शक की भी दोनों आँखों में पानी भर आता है। भाषा जिस जगह दुर्बल और शङ्कित है, सत्य जिस देश में नकाब डाले बिना मुँह नहीं बता सकता, लेखकों का दल जिस राज्य में इतनी बडी उञ्छवृत्ति करने के लिए बाध्य है, उस देश में राजनीति, धर्मनीति, समाजनीति सब ही यदि एक—दूसरे का हाथ पकडे केवल नीचे की ओर ही उतरती जाय तो इसमें आश्चर्य होने की क्या बात है ? जो लडका अवस्था के फेर से स्कूल में कागज—पेंसिल चुराने की चालाकी सीखने को लाचार होता है, वह एक दिन बडा होने पर अगर प्राणों के लिए सेंध लगाना शुरु कर दे, तो उसे आईन के फन्दे में डालकर जेल में डाल दिया जाता है, किन्तु इससे जो आईन का जो प्रयोग करता है, उसका महत्व नहीं बढता और उसकी निष्ठुरता क्षुद्रता को देखकर दर्शकों के मन में भी जैसे सुइयाँ चुभने लगती हैं।

मैं समझता हू, दो—एक दृष्टान्त देने से यह बात कुछ और स्पष्ट हो जायगी।

सब देशों में, सब समयों में थिएटर केवल आनन्द ही नहीं देता, लोक—शिक्षा में भी सहायता करता है, बंकिम बाबू का 'चन्द्रशेखर' एक समय नाटक के रूप में बंगाली रंगमंच पर खेला जाता था। उसमें लिखा है कि लारेंस फास्टर नाम का एक निलहा अँगरेज बडा ही कदाचारी था। उच्च अधिकारियों को अचानक एक दिन नजर आया कि इसमें क्लास हेट्रेड (वर्ग—विद्वेष) नाम की एक भयानक वस्तु है, जिसमें अराजकता फैल सकती है। अतएव फौरन ही उक्त नाटक का खेला जाना बन्द कर दिया गया। थिएटर वालों ने देखा, बडी मुश्किल हुई। उन्होंने उच्चाधिकारियों के दरवाजे पर जाकर धरना दिया। कहा—हुजूर क्या अपराध हुआ? अधिकारियों ने कहा—लारेंस फास्टर नाम किसी तरह नहीं चल सकता। यह अँगरेजी नाम है, इसलिए क्लास हेट्रेड है। थियेटर के मैनेजर ने कहा—जो आज्ञा प्रभू! अँगरेजी नाम बदलकर इस जगह एक पुर्तगीज नाम रक्खे देता हूँ। यह कहकर उसने डिक्रूज या डिसिल्वा ऐसा ही जो कुछ मन में आया, एक अद्भुत शब्द उस जगह रख दिया और कहा—यह लीजिए।

उच्चाधिकारियों ने देख—सुनकर कहा—और यह 'जन्मभूमि' शब्द भी काट दो—यह सिडीशन है।

मैनेजर ने अवाक् होकर कहा—यह क्या हुजूर! इसी देश में जो हम पैदा हुए है।

अधिकारी ने खफा होकर कहा—तुम पैदा हो सकते हो। लेकिन मैं नहीं पैदा हुआ। वह नहीं चल सकेगा।

'तथास्तु' कहकर मैनेजर उसे भी बदल कर खेल पास कराके घर लौट आये। अभिनय फिर शुरू हो गया। 'क्लास हेट्रेड' से शुरू करके 'सिडीशन' तक विदेशी राजशक्ति का जो कुछ और जितना भय था, वह सब दूर हो गया और मैनेजर फिर पैसा कमाने लगा। जो लोग पैसा खर्च करके तमाशा देखने आये, वे तमाशों के सिवा और भी थोडा—सा संग्रह करके घर लौटे। बाहर से कहीं कोई त्रुटि नहीं दीख पडी, किन्तु

भीतर-भीतर सारी वस्तु छलना और असत्य की कालिमा से काली हो गयी। लारेंस फास्टर नाम का सम्भवत कोई व्यक्ति नही था, और मेनेजर-कल्पित अद्भुत पुर्तगीज नाम भी मिथ्या है, मामता भी तुच्छ है। किन्तु इसका फल किसी तरह तुच्छ नहीं है। स्वर्गीय ग्रन्थकार की जान पड़ता है, यह इच्छा थी कि उस समय बगाल मे निलहे साहबों के द्वारा जो सब अत्याचार और अन्याय होते थे, उनका कुछ आभास दे दिया जाय। इसके अभिनय से क्लास-हेट्रेड जाग सकता है, राजशक्ति की यही आशका हुई। आशका अमूलक है या समूलक, इसकी आलोचना नहीं करनी है, अथवा अँगरजी नाम के बदले पुर्तगीज नाम रख देने से वर्ग-विद्वेष रुकता है या नहीं-यह भी मैं नहीं जानता-अँगरेजों के आईन से बच भी सकता है-किन्तु जो आईन इसके भी ऊपर है, जिसमें क्लास या 'वर्ग' नाम की कोई चीज नहीं है, उसके निष्पक्ष विचार मे एक का अपराध दूसरे के सिर थोपने से जो चीज मरती है, उसका मूल्य क्लास हेट्रेड से भी कहीं अधिक है।

उस दिन देखा, इस छोटी-सी छलना से छोटे बच्चे भी छुटकारा नहीं पा सके। उनकी साधारण पाठ्य पुस्तक में भी इस असत्य ने स्थान पाया है। नवीन ग्रन्थकार मेरी राय जानने के लिए आये थे। मैंने पूछा यह अद्भुत नाम आपने प्राप्त किस तरह किया? ग्रन्थकार ने लज्जित भाव से कहा-प्राण बचाने के लिए करना पडता है महाशय। जानता सब हूँ लेकिन गरीब आदमी हूँ, पैसा खर्च करके पुस्तक छपाई है, इससे यह चाल चलनी पड़ी। ऐसा किये बिना किसी भी स्कूल में यह किताब न चलेगी।

उनसे और कुछ कहने को जी नहीं चाहा, किन्तु मन ही मन सिर पर कराघात करके कहा- जिस राज्य के शासन तन्त्र में सत्य निन्दित है, जिस देश के ग्रन्थकार को जान-बूझकर मिथ्या लिखना पडता है, लिखकर भी सदा भय से कटकित रहना पड़ता है, उस देश मे मनुष्य ग्रन्थकार बनना ही क्यों चाहता है? उस देश का असत्य-साहित्य रसातल म न डूब जाय। सत्यहीन देश के साहित्य में इसी से आज शक्ति नहीं है, गति नहीं है, प्राण नहीं है। इसी से आज साहित्य का नाम देकर देश में ढेर कूडा-कर्कट की सृष्टि होती है। इसी से आज देश का रगमच भले आदमियों द्वारा परित्यक्त, पगु और अकर्मण्य है। वह न आनन्द ही देता है, न शिक्षा। देश के रक्त के साथ उसका योग नहीं है, प्राण के साथ परिचय नहीं है, देश के आशा-भरोसे का वह कोई नहीं है। वह जैसे किसी अतीत युग की लाश है। इसी से पाँच सौ वर्ष पहले कब किसने किस मुगल पठान को नीचा दिखाया था और कब किस मराठे ने किस राजपूत को खोचा मारा था, केवल इसी का वह साक्षी है। इसके सिवा और कुछ भी उसे देश के आगे नहीं कहना है। देश के नाट्यकारों के हृदय के भीतर से अगर कभी सत्य ध्वनित हो उठा है तो वह फौरन ही आईन के नाम से, शान्तिरक्षा के नाम पर राज सरकार द्वारा जब्त हो गया है। इसी कारण सत्य से वंचित हमारी नाट्यशाला आज देश के सामने ऐसी लज्जित, व्यर्थ और अर्थहीन है। 'रूल ब्रिटानिया' गाने से अँगरेज की छाती फूल उठती है, किन्तु 'आमार देश' गाना हमारे देश मे निषिद्ध है। यह जो आज महासागर से हिमालय तक फैली हुई भाव की बन्या कर्म और उद्यम का प्रवाह बढ रहा है, इसका तनिक भी स्पदन या जरा-सी भी आहट नाट्यशाला में नहीं पाई जाती। देश के बीच में बैठकर भी उसके सब दरवाजे और खिड़कियाँ भय और मिथ्या की अर्गला से ऐसी बन्द हैं कि देशभर में फैली हुई इतनी बड़ी दीप्ति की एक छोटी-सी किरण भी उसके भीतर जाने को राह नहीं पाती। और किस देश म ऐसा हो सकता था! आज मातृभूमि के महायज्ञ में जो लोग अपने हृदय का रक्त इस तरह ढाल दे रहे है, उनका नाम तक लेना और किस देश की नाट्यशाला में निषिद्ध हो सकता था! फिर भी यह सब कुछ देश के ही कल्याण के लिए है। देश के कल्याण के लिए ही आज देश के नाट्यकारों की कलम का पोर-पोर आईन के नागपाश मे बँधा हुआ है और ऐसी बात भी आज सत्य माननी पडती है कि देश के

कवियों, देश के नाट्यकारों के हृदय को भेदकर जो वाक्य, जो संगीत निकलता है, देश का उससे कल्याण नहीं है, शान्ति नहीं है। विदेशी राजपुरुषों के मुख से यह बात भी आज हमको मानकर चलना पड रहा है। किन्तु अब इस बिना विचारे मानकर चलने के नफे–नुकसान का हिसाब लगाने का समय आ गया है। और इसने क्या अकेले हम लोगो को ही क्षुद्र कर रक्खा है ? जो इसे चलाते हैं, वे क्या छोटे नहीं हुए ? हम दुःख पाते है, किन्तु मिथ्या को सत्य करके दिखलाने का जो दुःख-भोग है, वह क्या सदा टाला जा सकेगा ? ऋण चुकाने का दुःख है,–आज हमारी पुकार हुई है, किन्तु देना चुकाने का बुलावा जिस दिन उनके भाग्य में आएगा उस दिन भी क्या उनको हँसी आएगी ?

मामला कागज–कलम से लोगों की नजर में कैसा लगता है, मैं ठीक नहीं जानता ! शायद इस बगदेश में ही ऐसे आदमी हैं, जिनके निकट आदि से अन्त तक तुच्छ मालूम पडना भी विचित्र नहीं है, और यदि वह वही हो, तो भी–और भी ऐसी ही एक तुच्छ घटना का उल्लेख करके इस प्रसग को बन्द कर दूंगा। उस दिन युनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट में लडकों के कविता–पाठ की एक प्रतियोगिता परीक्षा थी। सर्वदेश पूजित कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'एक बार फिराओ मोरे' शीर्षक कविता पढने के लिए चुनी गई थी। परीक्षा देनेवाले लडकों में से ही एक मेरे पास दो–एक बातें जान लेने के लिए आया। उसके पास यह देखकर मैं दग रह गया कि इस लम्बी कविता की जो सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति थी–जिसमें इस दुर्भाग्य देश की दुर्दशा का वर्णन था–उसी अश को छाटकर निकाल दिया गया है। मैंने पूछा–यह कुकर्म किसने किया ?

लडके ने कहा–जी, निर्वाचन का भार जिनके ऊपर था, उन्होंने।

मैंने सोचा, ये लोग रत्न को नहीं पहचानते, इसी से शायद यह छिलका बटोरना हुआ है। किन्तु मैंने देखा, वह लडका सब जानता है। उसने मेरे भ्रम को दूर कर दिया। विनय के साथ बोला–जी, वे सब–कुछ जानते हैं। पर उसमें देश का दुःख–दैन्य की चर्चा है, इसी से वह नही पढी जा सकती–वह सिडीशन है।

मैंने कहा–किसने कहा ?

लडके ने जवाब दिया–हमारे कर्त्ता–धर्त्ता लोगों ने।

जाने दो–जान बची। तो कर्त्ता–धर्त्ता लोग इसमे भी है। अर्वाचीन–शिशुओं के मगल की चिन्ता करने के लिए यहाँ भी पक्के दिमागों का अभाव नहीं हुआ। पूछा–अच्छा, तुम लोग कविता के इस अश को सभा में पढ नहीं सकते।

उसने कहा पढ सकते हैं, लेकिन वे कहते हैं कि पढ सकना उचित नहीं है, फसाद खडा हो सकता है।

और प्रश्न करने को जी नहीं चाहा। जो देश के सर्वश्रेष्ठ कवि है, जो निष्पाप और निर्मल हैं, उनके हृदय के भीतर से स्वदेश की भलाई के लिए जो कविता निकली है, प्रकाश्य सभा मे उसका पढना सिडीशन (राजद्रोह) है–वह अपराध है ! इस सभ्य देश के लडके आज कर्तृपक्ष के निकट यही सीखने के लिए बाध्य होते हैं, और कर्तृपक्ष के निकट यही सीखने के लिए बाध्य होते हैं, और कर्तृपक्ष की न काटी जा सकने वाली युक्ति यह है कि इससे फसाद खडा हो सकता है।

क्षुद्र का गौरव

उस रात को चाँदनी की बहार थी। शुभ्र, स्निग्ध, शान्त कौमुदी दिग–दिगन्त के प्रत्येक स्तर में छिटकी हुई थी। आकाश बहुत निर्मल, बहुत नीला, अत्यन्त शोभामय था। केवल सुदूर प्रान्त में दो–एक टुकड़ा बादल खण्ड–खण्ड रूप में दिखाई दे रहे थे। वे सब बड़े लघु हृदय के हैं। पास आकर, आसपास चक्कर काटते हुए चाँद को चंचल कर देते हैं। आज वे ऐसा नहीं कर सके, इसलिए चन्द्रमा कुछ गंभीर है। इस स्थिर गभीरता के सौन्दर्य का वर्णन मैं नहीं कर सकता।

आकाश में स्थान ग्रहण करने से उसकी इस शोभा में वृद्धि नहीं होती। ऐसा लगता है जिस दिन कवि उसका रूप देखकर पहले पहल आत्मविस्मृत हुआ था, आज शायद वही रूप है। जिस रूप को देखकर विरही उसकी ओर नजर डालने के बाद अपनी प्रिया के लिए अपने आँसुओं को पोंछ डाला था, आज शायद उसी रूप में वह गगन में उदित हुआ है, और जिस रूप के मोह में भ्रांति चकोरी सुधा की आशा में पहले पहल दौड़ी थी–आज शायद वे ही सुधाकर है। निर्निमेष दृष्टि से देखने पर सचमुच ऐसा प्रतीत होता है कि कितना शांत, कितना स्निग्ध, कितना शुभ्र है! शुभ्र ज्योत्सना ने उन्मुक्त वातायन मार्ग से सदानन्द के प्रकोष्ठ में प्रवेश किया है। प्रकोष्ठ में दीपक नहीं है। सदानन्द नीचे बैठा गाँजे की चिलम पर दम लगा रहा है। रोहिणी कुमार उसकी ओर देख रहा है। दूर कहीं कोई गा रहा है–'यमुना पुलिन पर रो रही राधा विनोदिनी।'

सदानन्द ने गाँजे की चिलम को उलट कर रखा और सिर हिलाते हुए कहा–'आहा।'

उसकी आखें भर आयीं। एक बार पुन सिर हिलाते हुए उसने उस असम्पूर्ण पद की आवृत्ति की–'रो रही राधा विनोदिनी।'

कब, किस स्नेह राज्य में विरह की वेदना से पीड़ित राधा विनोदिनी यमुना तट पर बैठी प्रियतम के लिए अपने आँसुओं को पोंछती रही, उस बात को सोचते–सोचते उसकी आखें छलछला उठी। वह गाँजा पीने बैठा है, रोने के लिए नहीं। एक ग्रामीण, अति क्षुद्र असम्पूर्ण पद ने असमय में, उसकी आँखों में आँसू भर दिये।

सदानन्द के आनन पर चाँदनी की हल्की रेखा पड़ रही थी। उस प्रकाश में रोहिणी कुमार ने उसकी आँखो में आँसू देखा। पास आकर उसने कहा–"सदा, तुझे नशा हो गया है। रो क्यों रहा है?"

सदानन्द ने गाँजे की चिलम को खिड़की के बाहर फेंक दिया। रोहिणी कुमार नाराज हो गया। खड़े होकर उसने कहा–"तुझमें यही दोष है। रह–रहकर तू तिनक जाता है।"

सदानन्द को जवाब न देते देख वह नाराज होकर बाहर चिलम की तलाश में निकल गया। एक बार बाहर खिड़की से झाँककर उसने देखा–सदानन्द पहले की तरह मुँह नीचा किये बैठा है। उसका यह भाव रोहिणी के निकट नया नहीं है। उसे समझते देर नहीं लगी कि आज अन्य कोई आशा नहीं है। इसलिए उसने गंभीर होकर कहा–"सदा, अब जाकर सो जा। कल सुबह आऊँगा।"

रोहिणी नाराज होकर वापस जा रहा था, पर बीच रास्ते में अचानक उसे याद आया–वही कोमल, करुण शब्द–'आहा।' इसके बाद वह ताली बजाते हुए गाने

लगा—"यमुना पुलिन पर बैठी रो रही राधा विनोदिनी—विनो वही—विनो वही।"

कुछ देर बाद पुन वही गीत सदानन्द के कानों मे गूँज उठा। उसने हाथ जोडते हुए कहा—"दयामय, तुम वापस आ जाओ।"

राधा के दुःख का अनुभव होने के कारण वह रो रहा है। क्षुद्र कविता के क्षुद्र चरण ने उसके हृदय को मथ डाला है। वही निर्मल नील यमुना, वही पिक कुहरित ज्योत्सना—प्लावित सखी—परिवृत कुज वन, वही बकुल वृक्ष, तमाल, कदम्ब मूल, वही मृत सजीवनी वशी की पुन मान—अभिमान मिलन—इसके शतवर्णव्यापी वही सर्वग्रासी विरह। छाया की भाँति वही भातृप्रेम—मातृप्रेम—दया, धर्म, पुण्य तथा उसके सर्वनियन्ता पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण।

इतनी बातें, यह दीप्त तथा स्निग्ध भाव, इतनी माधुरी प्रणोदित करने का गौरव क्या इस असम्पूर्ण साधारण पद मे है? रचयिता की है या गायक की है? अगर यह पद "यमुना पुलिन पर बैठी रो रही राधा विनोदिनी" न होकर 'रो रहा शरत् शशी' होता तो शायद सदानन्द की आँखों में इतनी जल्दी आँसू न आते। उस वक्त वह विरह—वेदना को छोडकर पहले शरत्—शशी की वास्तविकता का निर्णय करता। शरत् शशी राधा का विशेषण हो सकता है या नहीं, इसका विश्लेषण करने के बाद अश्रुजल के बारे मे मीमासा करता। किन्तु गायक अगर यह गाता "घर के कोने मे बैठा रो रहा शरत—शशी" तो शायद करुण—रस के बदले हास्य रस की सृष्टि होती। मानो घर के कोने मे बैठे रोना राने के योग्य नहीं हो सकता अथवा शरत्—शशी का विरह नहीं हो सकता या होन पर भी उसके लिए रोना—धोना उचित नहीं हुआ। इससे यह स्पष्ट हो गया कि विरह वेदना जनित दुःख ही सदानन्द के रोने का पूर्ण हेतु नहीं है। अगर यह बात होती तो शरत्—शशी के दुःख मे आठ—आठ आँसू बहाने न पडते।

किन्तु राधा के लिए इतनी परेशानी क्यों है ? इसमे कारण है, उसे स्पष्ट कर रहा हूँ।

उत्तुग हिमालय के शिखरों का नग्न—सौन्दर्य केवल चक्षुष्मान ही अनुभव कर पाते है, अधे नहीं। अधों के निकट हिमाचल न तो अपना शरीर सकुचित करता है और न शोभा सम्पद आवृत्त रखता है, फिर भी अधे उस सौन्दर्य की उपलब्धि करने मे सक्षम नहीं होते। इस अक्षमता का कारण है, उसकी चक्षुहीनता। जो उसे यह समझाये कि हिमालय के शिखर कितने ऊँचे है, कितने महान् है, कितना गभीर है, कितने सौन्दर्य से सुशोभित है, वही तो नहीं है। जिसने एक बार भी पर्वतों की शोभा को हृदय में अनुभव किया है, सिर्फ वही दो—चार शिलाखण्डों का कृत्रिम सन्निवेश देखकर आनन्द की उपलब्धि कर सकता है। जिसने कभी देखा नहीं, वह उपलब्धि नहीं कर सकता। जिसने देखा है, उसे यही दो—चार शिलाखण्ड ही स्मृति—मदिर के राजद्वार को खोलकर पूर्वदृष्टि पर्वतों के पास ले जा सकता है, अतीत की स्मृतियों को याद दिला सकता है। यही सक्षमता ही शिलाखण्ड के गौरव है। वह तो श्लाघ्य की क्षुद्र प्रतिकृति है, महत् का क्षुद्र प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब का यही श्लाघा है—छाया का यही महत्त्व है।

भक्तों के निकट वृन्दावन के रज का एक कण भी समादर के साथ मस्तक मे स्थान प्राप्त करता है, क्या वह उस कण का वस्तुगत गुण है? क्या वह वृन्दावन का महत्त्व है? वे तो महत् की स्मृति लेकर, भक्तों की वाछित छायास्वरूपिणी होकर उनके मर्म मे उपस्थित होते है, इसीलिए उन्हें इतना सम्मान प्राप्य है, उनकी इतनी पूजा होती है।

सन्तानहीन जननी के निकट उसके मृतशिशु का परित्यक्त हस्तपदहीन कोई मृतपुतलिका भी हृदय मे स्थान प्राप्त करती है। क्यों इस तुच्छ मृत्पिण्ड का इतना गौरव है, क्या इसे भी समझाना पडेगा? हृदय में स्थान देते समय माँ यह नहीं सोचती कि यह

मिट्टी का ढेला है। उसके निकट वह उसी के मृत पुत्र की छाया है। अगर कभी पुतले की बात याद आती है तो वह केवल क्षण भर के लिए। बाद में उसका समस्त मन–प्राण, विगत्–जीवन पुत्र की स्मृति से भर उठता है। तुच्छ मृत्पिण्ड में इससे अधिक और क्या आशा रह सकती है ? इसने एक हृदय को सुख दिया है, यही उसकी श्लाघा है।

रहा राधा के विरह–व्यथा में सदानन्द के आँसुओं का प्रश्न। यमुना तीर पर बैठी विरह विधुरा श्री राधा, जब अपनी मर्मान्तिक यातना से हृदय की प्रत्येक शिरा को सकुचित करती हुई अश्रु जल विसर्जन कर रही थीं तब क्या उन्होंने सोचा था कि कब, कौन एक क्षुद्र प्रकोष्ठ बैठा सदानन्द उनके दु.ख में दुखी होकर आँसू बहायेगा ? जो ध्येय हैं, जो नित्य उपासित है, उन्हीं की छाया ने श्री राधा के हृदय पर अधिकार जमा रखा था। दूसरों के लिए वहाँ स्थान नहीं है, यही है सदानन्द के रोने का वास्तविक कारण, आकर मूल–मगर सोपान या मार्ग नहीं है। अगाध समुद्र झझावातों से टक्कर लेता है, पर इसकी घोषणा वह नहीं करता। केवल क्षुद्र, तरंगों का समूह तट पर आकर घात–प्रतिघात करते हुए पृथ्वी के वक्षस्थल को हिला कर कहता है–"देखो, मेरा कितना प्रताप है।" कुएँ का पानी ऐसा नहीं कर पाता। सागर–ऊर्मि को इसी बात का गर्व है कि अगाध शक्तिशाली समुद्र के आश्रित है। सूर्य का तेज जननी बसुमती प्रतिफलित करती हैं, इसीलिए उनके रुद्र प्रताप को हम समझ लेते हैं और उस अनन्त ज्योतिर्मयी, विश्वप्लावनी राधा प्रेम की कथा के वृन्दा, ललिता, विशाखा आदि सखियों के अलावा और कोई नहीं जानता था। जिन लोगों को मालूम हो गया था, वे महत् होगये थे, जिन लोगों ने सुना था, वे धन्य हो गये थे। इसके बाद कालक्रम से लोग इस बात को शायद भूल जाते। बिल्कुल भूल न जाने पर भी उसमें ऐसी जीवन्त मोहिनी–शक्ति न रहती। जिन लोगो ने इस माधुर्य को सुरक्षित रखा है, इस महत्त्व, नश्वर जगत् की सार वस्तु को जो लोग प्रतिफलित करते हुए जनसाधारण को उद्वेलित कर रहे हैं, वे हैं–अजर, चिरप्रिय वैष्णव कवि समुदाय। राधा के प्रेम की छाया को उन्होंने अपने हृदय में अनुभव किया और उसे ही सरस, प्रेमपूर्ण, अमृतमय छन्दों में, जगत के सामने प्रतिभात किया है।

स्वर्गीय बलेन्द्र ठाकुर ने कहा है–"इस ससार में विशेषणों की कमी नहीं है।" यह मार्के की बात है। अगर विशेषण न रहता तो विशेष्य को कौन पहचानता ? शायद इसीलिए ये अमर रचनाएँ राधा–प्रेम के विशेषणों के अलावा और कुछ नहीं है। जिसे देखने पर विशेष्य की याद आती वही है विशेषण, वहीं है प्रतिबिम्ब, वही है छाया।

जिस विरह–शोकगाथाओं को गाकर अतीत को वैष्णव कवियों ने सभी लोगों के उन्मत्त बनाया था, उसी का एक हस्तपदहीन, परित्यक्त मृत्पुत्तलिका की तरह, मृतपुत्र की छाया की तरह–यह क्षुद्र 'यमुना पुलिन पर बैठी रो रही राधा विनोदिनी' पद ने सदानन्द की आँखों मे आँसू भर दिये थे। क्षुद्र कवि का यही गौरव है–क्षुद्र कविता का यही महत्त्व है। क्षुद्र छाया सदानन्द को वशीभूत कर सकती है, पर रोहिणी कुमार के निकट नहीं जायेगी। इसमें छाया का क्या अपराध है ?

मलिन वर्षा के मौसम में, आकाश पर उड़ते निबिड जलद जाल को हवा के झोंके से उड़ते देख, उसी यक्ष की याद आती है। लगता है जैसे आज भी उसी तरह उन्मत्त यक्ष मेघों की ओर देखते हुए अपनी प्रणयिणी से बातें करना चाहता है। उसे याद आती है, मानो यक्ष वधू की विरहक्लिष्ट म्लान मुख शोभा किसी माया की देश मे देख आया है। मगर जिस मनस्वी ने इस जीवन्त मूर्ति को मानसपट में गहरे रूप में अकित किया था, जलद जाल उसी महान् प्रतिभा का छाया मात्र है। मेघों को इस बात का गर्व है कि वह अपने तन पर उस उज्जवल ज्योति का प्रतिबिम्ब लेकर चलता है। उसे इस बात का आनन्द है कि वह उसी महत् का आश्रित है।

इसीलिए पहले ही कह चुका हूँ कि समुद्र का जल जो कर सकता है, उसे कुएँ का पानी नहीं कर सकता। जिस दुख के कारण सदानन्द रो पड़ा था, उसी दुख से शरत्–शशी के लिए रो नहीं सकता था। सदानन्द इसके लिए दोषी नहीं है ; यह तो शरत्–शशी के अदृष्ट का दोष है। शरत्–शशी के दुख में रुलाने के लिए किसी अन्य मनस्वी की आवश्यकता है–क्षुद्र छाया ऐसा नहीं कर सकता। छाया का अपना कोई महत्त्व नहीं है, वह जब महत् का आश्रित होगा तभी उसका महत्त्व होगा। हो सकता है कि वह राजमार्ग का रेणु हो, पर वृन्दावन का पवित्र रज बनने की आकांक्षा करना उसके लिए असंभव नहीं है।

बातों–बातों में सदानन्द को भूल गया। उस रात को वह फिर जागा नहीं। सवेरे रोहिणी कुमार ने आकर खिड़की से झाँककर देखा–वह उसी तरह सिर झुकाये बैठा है। कुछ देर चुपचाप खड़ा रहने के बाद उसने सोचा–क्या बैठे–बैठे कोई सो सकता है ? उसने पुकारा–"सदा, सदानन्द।"

सदानन्द जाग रहा था। पूछा–"क्या है ?"

"जाग रहे हो ?"

"हाँ।"

"सारी रात जागते रहे ?"

"शायद।"

रोहिणी कुमार ने सोचा–यह कैसा नशा है ? कुछ देर बाद उसने कहा–"सदानन्द, मैं सोच रहा हूँ कि इस बुरी आदत को छोड़ दूँगा। तुम सो जाओ। मैं जा रहा हूँ। फिर मुलाकात होगी।"

श्री चट्टोपाध्याय। श्रावणी १३०८ ब० (यमुना में प्रकाशित १३२० ब०)।

मुस्लिम साहित्य-समाज

मुस्लिम साहित्य-समाज के दशम वार्षिक अधिवेशन में मुझे आप लोगों ने सभापति चुना है। यद्यपि इसका नाम आप लोगों ने मुस्लिम साहित्य समाज रक्खा है, तथापि इस चुनाव में एक बडी भारी उदारता है। आप लोगों ने यह प्रश्न नहीं किया कि मैं हिन्दू-समाज के अन्तर्गत हूँ या मुसलमान समाज के, मै बहुत देवताओं का उपासक हूँ या एकेश्वरवादी। आपने केवल यह सोचा कि मैं बगाली हूँ, बग साहित्य की सेवा में ही बूढा हुआ हूँ। अतएव साहित्य के दरबार में मेरा भी एक स्थान है। वह स्थान आपने मुझे बिना किसी हिचक खुशी से दिया है। मैंने भी कृतज्ञ चित्त से आनन्द के साथ उस दान को ग्रहण किया है। सोचता हूँ, अगर आज सभी विषयों मे ऐसा हो सकता। जो गुणी है, जो महान् है, जो बडे हैं, वह चाहे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, चाहे ईसाई, चाहे स्पृश्य हों चाहे अस्पृश्य, चाहे जो हों, बिना हिचक के विनय के साथ उसके योग्य आसन उन्हे हम दे सकते! सशय, दुविधा कहीं कोर्ट न हो सकती। किन्तु इस बात को छोडो। मैंने पहले एक पत्र में कहा था, साहित्य में तत्त्व-विचार बहुत हो गया है। अनेक मनीषी, अनेक रसिक, अनेक अधिकारी बहुत बार इसकी सीमा और स्वरूप का निर्देश कर चुके है। उस आलोचना को और चलने मे मेरी रुचि या प्रवृत्ति नहीं है। मै कहता हूँ, यह साहित्य-सम्मिलन प्रबन्ध या लेख पढने के लिए नहीं है, सुतीक्ष्ण समालोचना से किसी को धराशायी करने के लिए नहीं है, कौन कितना अक्षम है इसकी उच्च कण्ठ से घोषणा करने के लिए नहीं है, जिसने जो लिखा है उससे अच्छा क्यों नहीं लिखा, इसकी कैफियत लेने के लिए नहीं है, यह केवल साहित्यको से साहित्यिकों के मिलने का क्षेत्र है। इसका आयोजन एक के साथ दूसरे के भाव-विनिमय और तरह परिचय के लिए है। मुझे याद आता है जब अवस्था कम थी, जब इस व्रत में नया ही नया व्रती हुआ था तब बुलावा पाकर भी मैं कितनी ही साहित्य सभाओं में दुविधा और सकोच के मारे उपस्थित नहीं हो सका। मै निश्चय के साथ जानता था कि सभापति के लम्बे अभिभाषण का एक अश मेरे लिए निर्दिष्ट होगा ही। कभी नाम लेकर, कभी न लेकर। वक्तव्य अति सरल होगा। मेरी रचनाओं से देश के दुर्नीति से परिपूर्ण होने में अब कसर नहीं है और सनातन हिन्दू-समाज जहन्नुम में जाना ही चाहता है। जाने की आशका थी, अगर मैं असहिष्णु होकर नजीरें देकर उसका जवाब देता। लेकिन यह अपकर्म मैने किसी दिन नहीं किया। सोचता था, मेरी साहित्य-रचना अगर सत्य की नींव पर खडी है तो उसे एक-न-एक दिन लोग समझेंगे ही। जो कुछ हो, यह दुख मैने आप भोगा है, दूसरे को नहीं देना चाहा। मगर यह मैं बिना कपट के कह सकता हूँ कि मेरा यह अभिभाषण सुनकर आप लोगों की साहित्यिक जानकारी एक तिल भी नहीं बढेगी और जब जानता हूँ कि बढेगी नहीं, तब फिर फिजूल बातों की अवधारणा क्यों करूँ? यही समाप्त करना ही तो ठीक होता। ठीक न होता, यह बात नहीं है, लेकिन एक दिन यह बात मैने आप ही उठाई थी, इसीलिए उसी के सूत्र को पकड कर इस सम्मिलन मे और भी कुछ थोडी सी बाते कहने का लोभ होता है।

एक दिन मेरे कलकत्ते के मकान में काजी मुतहर साहब आकर उपस्थित हुए। वह साहित्य की आलोचना करने नहीं आये थे। आये थे शतरज खेलने। यह दोष हम दोनों में है। मेरी तबीयत अच्छी न थी, इससे खेल नहीं हुआ, हुई वर्तमान साहित्य के प्रसग में

थोडी–सी आलोचना। उसी का भाव मोटे तौर पर मैंने कल्याणी या जहानआरा के वार्षिक पत्र 'वर्ष–वाणी' में छापने के लिए चिट्ठी के रूप में लिख भेजा, और वहीं 'अवाछित व्यवधान' शीर्षक से 'वुलवुल' मासिक पत्र के सम्पादक श्रद्धेय मोहम्मद हवीवुल्लाह साहव ने उद्धृत किया अपनी आषाढ की सख्या में। मैंने देखा, उसका एक जवाव श्री लीलामय राय ने और दूसरा जवाव वाजिद अली साहव ने दिया है।

लीलामय के लेख में क्षोभ है, क्रोध है, निराशा है। मैंने कहा था कि साहित्य की साधना अगर सत्य है तो उसी सत्य के द्वारा एक दिन एकता आवेगी। कारण, साहित्यिक लोग परस्पर एक–दूसरे के परम् आत्मीय है। हिन्दू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों तो भी वे गैर नहीं है–अपने ही आदमी हैं। लीलामय ने कहा है–"प्रतिकार यदि है तो वह साहित्य में नहीं है, वह स्वजात्य मे है।" स्वाजात्य शब्द से उन्होंने क्या कहना चाहा है, मेरी समझ में हीं आया। उन्होंने कहा है–"ऐक्य वस्तु मन की है। हाड के साथ मास जोडने से जैसे मनुष्य नहीं होता, वैसे ही हिन्दू के साथ मुसलमान जोडने से वगाली नहीं होता, भारतीय नहीं होता।" इसके वाद कहा है–"हिन्दू और मुसलमान में समझौते के अलावा और कुछ करने को नहीं है। अतएव व्यवधान रह ही जायगा, जातीयता भी न होगी, आत्मीयता भी न होगी।" ये सव बातें क्षोभ के प्रकाश के सिवा और कुछ नहीं है। किन्तु मै कहता हूँ कि इन लोगों के श्रेष्ठ साहित्यिक, पण्डित और विचारशील लोग भी आज अगर ऐसी ही बातें कहने लगें तव तो फिर निराशा से चारों ओर अन्धकार ही देख पडेगा। यह बात क्या ये लोग नहीं जानते ? मन की कटुता से कोई मीमांसा नहीं होती, मिलन भी नहीं, होता, और ऐसी ही हताशा का भाव मोहम्मद वाजिद अली के लेख में भी प्रकट हुआ है। उन्होंने कहा है–"आज जो लोग नये सिरे से हमारे दो पडोसी समाजों के सम्बन्ध में विचार करेंगे, इस वात को लेकर जिस अद्भुत समस्या की सृष्टि हुई है, उनका बन्धन काटकर कल्याण के अभिसारी होंगे, उनका रास्ता लम्बा है, उनकी साधना कठिन है।" मै यह वात नहीं मानना चाहता। मै जो़र के साथ प्रश्न करना चाहता हूँ कि उनकी राह क्यों लम्बी होगी ? काहे के लिए उनकी साधना सुकठिन हो उठेगी ? क्यों हम एक सहज सुदर राह से इस समस्या का समाधान खोज न पावेंगे ? वाजिद अली साहव ने इसके बाद फरमाया है कि "जिनके मन में प्रबल विरोध का भाव है, हृदय में गहरी अप्रीति है, चित्त में लम्वा व्यवधान है, यह तो उन्हीं लोगों को खींच–खाँचकर पारा–पास खड़ा करना हुआ। शिष्टाचार के तकाजे से उनका हाथ से हाथ तो मिला, पर आँखें नहीं मिलीं। पर एक आदमी का हृदय दूसरे आदमी के हृदय से सौ योजन दूर रहा।" इसका कारण दिखाते हुए उन्होंने कहा है–" अपरिचित मुसलमान आया विजयी के वेष में, उसने राजा के आसन पर अधिकार किया। यह बात नहीं है कि लोग उसके अनुगत नहीं हुए या उसे राजा का सम्मान नहीं मिला। किन्तु भारतवर्ष को अपना देश स्वीकार करके भी देश के मन की मित्रता उसे नसीव नहीं हुई। इन दोनों के वीच अपरिचय का जो व्यवधान है, वह अवाछित होने पर भी किसी दिन नहीं मिटा।" किन्तु यही क्या पूरा सत्य है ? अगर सत्य है तो यह अवाछित व्यवधान मिटाकर मित्रता करने में कितने–से दिन लगेंगे ? जान पडता है, लीलामय ने बडी व्यथा के कारण ही लिखा है–"जो लोग विदेश से आये है और आज भी यह वात मन में रक्खे हुए हैं, जिन लोगों ने अब तक पानी के ऊपर तेल की तरह रहने का निश्चय कर रक्खा है, जिन लोगों को देश के अतीत के वारे मे खोज की इच्छा और वर्तमान के सम्बन्ध में वेदना का वोध नहीं है, राष्ट्र के भीतर ओर एक राष्ट्र (पाकिस्तान) की रचना करना ही जिनका स्वप्न है, उनके हम लोग कौन है, जो गले पकड कर उन्हें अमिय सत्य सुनाने जायेंगे ?"

इस वात का मतलव नहीं कि हम व्यवधान को पसन्द करते हैं, मित्रता नहीं चाहते। परस्पर की आलोचना–समालोचना छोड देना ही हमारा कर्त्तव्य है। इस कथन का तात्पर्य

क्या है, सो समस्त साहित्य–रसिक समझदार मुस्लिम समाज से ही सोचने–उस पर ध्यान देने के लिए मैं कहता हूँ, कलह– विवाद तर्क-वितर्क वाद-वितडा करके नही। कहीं भ्रम हैं, अन्याय है, कहीं अविचार छिपा हुआ है, उस अकल्याण को सुस्थ–सबल चित्त से खोज निकालने के लिए कहता हूँ और दोनों पक्षों से विनय और श्रद्धा के साथ उसे स्वीकार कर लेने के लिए। तब हम परस्पर से स्नेह, प्रेम और क्षमा अवश्य ही पावेंगे।

वाजिदअली साहब ने एक बड़ी अच्छी भरोसे की बात कही है और वह हिन्दू–मुसलमान सबको याद रखनी चाहिए। उन्होंने कहा है–"मुस्लिम साहित्य–सेवक अरबी फारसी शब्दों को बंगला भाषा के शरीर में जोडना चाहते हैं, उस पर आपत्ति–अनापत्ति अति तुच्छ बात है, क्योंकि केवल कलम चलाकर यह काम नहीं हो सकता। इसके लिए चाहिए प्रचुर साहित्यिक शक्ति, चाहिए सृष्टि करने वाली प्रतिभा। ये दोनों (शक्ति और प्रतिभा) जहाँ नहीं हैं, वहाँ भाषा–भूषण पहनने की चेष्टा में अत्यन्त सहज में ही स्वाग बना जा सकता है।

स्वाँग तो बनेगा ही। किन्तु यह ज्ञान है किसे ? जो यथार्थ साहित्य–रसिक है, उसे। भाषा से जो प्रेम करता है, निष्कपटभाव से उसके साहित्य की सेवा करता है, उसे। उसका तो मुझे भय नहीं है। मुझे भय है उन लोगों का जो साहित्य–सेवा न करके भी साहित्य के ठेकेदार बन बैठे हैं। प्रिय न होने पर भी एक दृष्टान्त देता हूँ। 'महेश' नाम की मेरी एक छोटी–सी कहानी है। बहुत से साहित्य प्रेमियों ने उसकी प्रशसा की है। एक दिन सुना गया कि वह कहानी मैट्रिक की पाठ्य पुस्तक में स्थान पा गयी है और फिर एक दिन सुन पडा है कि वह अपनी जगह से हटा दी गयी है। विश्वविद्यालय के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। सोचा, शायद ऐसा ही नियम होगा। कुछ दिन कोई चीज पाठ्य पुस्तक में रहती है, फिर निकाल दी जाती है। किन्तु बहुत दिनो बाद एक साहित्यिक बन्धु के मुख से बातों–ही–बातों में उसका असल कारण सुनने को मिला। मेरी कहानी में गो–हत्या कराई गयी है। ओहो ! हिन्दू बालकों की छाती में इससे शूल–सा लगेगा। विश्वविद्यालय के बगला–विभाग के लम्बी तनख्वाह वाले अध्यक्ष महाशय इस अनाचार को कैसे सहन कर लेते ? इसी से 'महेश' की जगह पर अध्यक्ष महाशय की स्व–लिखित कहानी 'प्रेम के ठाकुर' का शुभागमन हुआ। मेरी 'महेश' कहानी किसी–किसी ने पढी होगी, और शायद बहुतों ने नहीं पढी होगी। इसी से उसकी विषयवस्तु संक्षेप में यहा कह दूँ। एक हिन्दू जमींदार के छोटे से गाँव में, जहाँ हिन्दू ही अधिक रहते थे, गरीब किसान गफूर का घर था। बेचारे के होने के नाते था एक बहुत जीर्ण–जर्जर, बहुत से छेदों वाला फूस का घर, लगभग दस साल की लडकी अमीना और एक साँड। गफूर ने दुलार से उसका नाम महेश रख दिया था। बाकी लगान की बाबत जब उस छोटे से गाँव के उससे भी छोटे जमींदार ने उसके खेत का सब धान–पुआल रोक लिया, तब उसने रोकर कहा–हजूर मेरा धान तुम ले लो, हम बाप–बेटी दोनों भीख माँगकर खा लेंगे ; लेकिन यह पुआल मुझे दे दो। नहीं तो इस दुर्दिन में मैं अपने महेश को कैसे जीता रखूँगा ? किन्तु उसका रोना अरण्य–रोदन ही हुआ–किसी ने दया नहीं की। इसके बाद उसको कितने ही प्रकार का दुःख मिलना शुरू हुआ, कितनी ही तरह से उसे सताया जाने लगा। लडकी जब बाहर पानी भरने जाती थी, तब–तब गफूर लडकी से छिपाकर उसी जीर्ण छप्पर का फूस नोच–नोचकर महेश को खिलाता था, झूठमूठ ही कह देता था कि बेटी अमीना, मुझे आज बुखार है, मेरे हिस्से का भात तू महेश को दे दे और दिनभर आप भूखा ही रह जाता। भूख की ज्वाला से महेश कुछ अत्याचार कर बैठता था तो इस दस साल की लडकी से भी वह बेहद डरता और कुण्ठित होता था। लोग कहते थे कि गफूर, तू इस बैल को खाने को नहीं दे पाता, इसे बेच डाल। गफूर आँसू बहाता हुआ धीरे–धीरे महेश की पीठ पर हाथ फेरकर

कहता—महेश तू मेरा बेटा है। तूने सात साल मेरा प्रतिपालन किया है। खाने को न पाकर तू कितना दुबला हो गया है। तुझे आज मैं क्या दूसरे के हाथ में दे सकता हूँ बेटा ? इसी तरह जब दिन कटना नहीं चाहते थे, तब एक दिन अकस्मात् एक भीषण घटना हो गयी। उस गाँव में पानी भी सुलभ नहीं था। सूखे पोखर के बीच गढा खोदकर बहुत–सा पानी बडी मुश्किल से मिलता था। अमीना गरीब मुसलमान की लडकी होने के कारण, छू जाने के डर से, पोखर से किनारे दूर पर खडी रहकर, पडोस की औरतों से खुशामद करके माँगकर, बडी मुश्किल से, बडी देर में, अपना घडा भरकर घर लौट आयी। इतने में भूखे–प्यासे महेश ने उसे ढकेल कर घडा फोड दिया और एक साँस में जमीन से पानी सोखने लगा। लडकी रो उठी। ज्वरग्रस्त गफूर का प्यास से गला सूख रहा था। वह कोठरी से बाहर निकल आया। यह दृश्य उसे बर्दाश्त नहीं हुआ। हिताहित का ज्ञान उसे नहीं रहा। उसने सामने जो पाया—एक मोटी लकडी—वही उठा कर महेश के सिर पर जोर से दे मारी। अनशन से मुर्दा हो रहा बैल दो–एक बार हाथ–पैर फडफडाकर मर गया।

पडोसियों ने आकर कहा—हिन्दुओं के गाँव में गोहत्या ! जमींदार ने तर्करत्न पण्डित के पास इस पाप क प्रायश्चित की व्यवस्था लेने के लिए भेजा है। अब की कहीं तुझे घर–द्वार न बेचना पडे। गफूर दोनों घुटनों के ऊपर मुँह रखकर चुपचाप बैठा रहा। उस समय महेश के शोक से, पश्चात्ताप से उसका हृदय जला जा रहा था। बडी रात गये गफूर ने लडकी को उठाकर कहा—चल, हम लोग यहाँ से चलें।

लडकी आँगन के चबूतरे पर सो गयी थी। आँखें मलकर बोली—कहाँ अब्बा ? गफूर ने कहा—फुलबेडा की चटकल में काम करने।

अमीना आश्चर्य के साथ बाप का मुँह ताकती रही। इसके पहले बहुत दुःख और कष्ट मे भी उसका बाप चटकल में काम करने के लिए राजी नहीं हुआ था। वह कहता था कि वहाँ धर्म नष्ट हो जाता है, औरतों की आबरू–इज्जत पर आँच आती है—वहाँ कभी नहीं जाऊँगा। किन्तु एकाएक यह क्या कह रहा है।

गफूर ने कहा—देर न कर बेटी, चल बहुत दूर चलना होगा। अमीना पीने पानी का पात्र और बाप के भात खाने की थाली साथ ले रही थी, किन्तु बाप ने मना करके कहा—यह सब रहने दे बेटी, इनसे मेरे महेश का प्रायश्चित होगा।

इसके बाद कहानी के उपसंहार में पुस्तक में लिखा है—गहरी अँधेरी आधी रात को वह लडकी का हाथ पकड कर घर से निकल पडा। इस गाँव में उसका कोई आत्मीय नहीं था। किसी से कुछ कहने को न था। आँगन पार होकर राह के किनारे उस बबूल के पेड के तले आकर रुक कर खडे होकर वह जोर से रो उठा। नक्षत्र–खचित काले आकाश की ओर मुँह उठाकर उसने कहा—अल्लाह ! मुझे जितनी चाहे सजा देना, लेकिन मेरा महेश प्यासा मरा है। उसके चरने के लिए जरा–सी जमीन किसी ने नहीं छोडी। जिसने तुम्हारी दी हुई मैदान की घास और तुम्हारा दिया हुआ प्यास बुझाने का पानी उसे खाने–पीने नहीं दिया, उसका कसूर तुम कभी माफ न करना।

यह हुई गो-हत्या। यह पढकर हिन्दू के लडके के हृदय में शूल बिंधेगा, इसलिए उसकी अपेक्षा वह "प्रेम के ठाकुर' पढे। उससे यह लोक न सही, परलोक में तो सद्गति होगी। इन कान्तिमान् सुपरिपुष्ट प्रेम के ठाकुर से पूछने को जी चाहता है कि मुसलमान-सम्पादित पत्र में इस कहानी की जो कडी आलोचना निकली थी, उसका क्या कोई कारण नहीं है ? वह क्या एकदम मिथ्या और अमूलक है ?

इससे, मुझसे भी अवस्था में बडे व्यक्तियों से मै सम्मानपूर्वक निवेदन किये रखता हूँ कि खूब बडे होने पर भी मन में थोडी–सी विनय या नम्रता रहना अच्छा होता है। सोचना

चाहिए कि उनकी लिखी कहानी के साथ बगला के छात्र–छात्राओं का परिचय घटित न होने पर भी विशेष कोई हानि नहीं थी। मैं पाठ्य पुस्तकों से पैसा नहीं पाता–यह मेरा रोजगार नहीं है–अतएव कोई हानि–लाभ भी नहीं है–तो भी इससे क्लेश होता है। अपने लिए नहीं, अन्य कारण से। केवल सान्त्वना यही है कि अयोग्य के हाथ में भार पडने से ही ऐसी दुर्दशा होती है। जिस व्यक्ति ने कभी साहित्य–साधना नहीं की, वह कैसे समझेगा कि किसके माने क्या है। सुना है, उन्होंने मेरी 'राम की सुमति' कहानी का थोडा सा अश दिया है। अत्यन्त दया हुई। जान पडता है, इससे रामों (हिन्दू छात्र–छात्राओं को सुमति होगी) लेकिन मुश्किल यह है कि देश में रहीम लोग (मुसलमान–छात्र–छात्रा) भी हैं।

फिर केवल विद्यालय ही नहीं, 'महेश' के भाग्य में अन्य दुर्घटनाएँ भी घटित हुई है। उसका विस्तृत वर्णन यहाँ नहीं देना चाहता, किन्तु मैं नि.संशय जानता हूँ कि एक हिन्दू जमींदार ने आँखें लाल करके धमका कर कहा था कि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सहायता से छपने वाले मासिक या साप्ताहिक पत्र में देखो, इस तरह की कहानी अब न छापी जाय। इससे जमींदार के विरुद्ध प्रजा को भडकाया जाता है, अर्थात् देश का सर्वनाश होता है।

खैर, अपनी बात जाने देता हूँ।

फिर ऊपर कहे गये हिन्दू मुरब्बियों की तरह मुसलमान मुरब्बी भी हैं। सुना है, वे इतिहास को फर्माइश के माफिक लिखने का आदेश देते है। उनकी मशा है कि पाठ्य–पुस्तकों में कहीं इसका लेशमात्र भी जिक्र न रहे कि किसी इस्लाम धर्मी व्यक्ति ने कहीं अन्याय–अविचार किया है। यहाँ भी सान्त्वना यह है कि इनमें से किसी ने कभी साहित्य की सेवा नहीं की। करते तो ऐसी बात कभी जबान पर न ला सकते। सच्चे साहित्यकार के हाथ में अगर यह काम करने का भार पड़े तो मेरा विश्वास है कि न हिन्दू और न मुसलमान, किसी की ओर तनिक भी अभियोग न सुना जायगा। भाषा के प्रति, साहित्य के प्रति सच्चा दर्द उन्हें सत्य मार्ग में ही परिचालित करेगा।

वाजिदअली साहब ने एक स्थान पर कहा है–"मुसलमान के इस नवस्फूर्त आत्मप्रकाश ने, इस्लामी सस्कृति के इस बलिष्ठ जागरण ने साहित्य–क्षेत्र में शरत्चन्द्र की सी शक्तिशालिनी प्रतिभा का ध्यान अपनी ओर खींचा, यह शायद देश के अनागत (भविष्य) कल्याण का एक शुभ सकेत है। किन्तु तो भी मन सन्देह, और अविश्वास से, दुविधा और जिज्ञासा से क्यों डोल उठता है ? बुलबुल (पत्रिका) में प्रकाशित उनके पत्र में मुसलमानों के प्रति उनकी सहानुभूति का अभाव, प्रेम का अभाव और मोटे तौर पर एक अन्तर्दृष्टि का अभाव देख पड़ता है।"

मुझे पूछने की इच्छा होती है कि मुसलमानों का यह 'नवीन स्फूर्त, आत्मप्रकाश, इस्लामी संस्कृति का यह 'बलिष्ठ जागरण' किसका है ? जो नवीन हैं, जो उदार बगला भाषा को अकुंठित चित्त से अपनी मातृभाषा स्वीकार करते हैं, उनका है या जो पुरातन पथी है, उनका ? मेरा अभिमत यह है कि जो प्राचीन पथी हैं, जो पीछे के सिवा आगे देखना नहीं जानते, उनका जागरण क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सभी समाजों के लिए विघ्नस्वरूप है। हिन्दुओं के सम्बन्ध में मैं यह बात बहुत बार बहुत जगह लिख चुका हूँ, मुस्लिम समाज के सम्बन्ध में भी नि.सशय होकर कह सकता हूँ कि यह जागरण अगर नयी पीढी का हो तो वह श्रावण की पूनो के ज्वार की तरह सबको बहाता–डुबाता हुआ आवे, तो भी मैं दोनों हाथ उठाकर उसका स्वागत करूँगा। जानूँगा, इनके हाथ से सब कुछ शुभ और सुन्दर ही होगा–इनके हाथ से हिन्दू–मुसलमान किसी के भी अनिष्ट का भय नहीं है, इनके हाथ में हम दोनों ही निरापद होंगे। मुझे केवल पुरातनपथियो के सम्बन्ध में आशका है।

वाजिदअली साहब ने इसके बाद कहा–"शरतचन्द्र जैसे साहित्यिकों का सम्प्रदाय

अथवा जाति एक है, दो नहीं, यह बात सहज ही हमारी स्वीकृति का दावा कर सकती है। किन्तु और भी सहज बात की ओर मैं उनकी दृष्टि आकृष्ट करता हूँ। वह यह कि साहित्य मनुष्य के मन की सृष्टि है और मनुष्य के मन को तैयार करता है उसका धर्म, उसका समाज, उसके आसपास का वातावरण और उसकी संस्कृति। अपने को इनसे अलग करना क्या साधारण बात है ? और साधारणत: यह बात क्या सम्पूर्ण रूप से सम्भव है ?"

ये बातें केवल आंशिक सत्य हैं—सम्पूर्ण सत्य नहीं। कारण, स्थूल रूप से इतना ही जान रखना जरूरी है कि मनुष्य जब साहित्य की रचना में निविष्टचित होता है, उस समय वह ठीक हिन्दू या मुसलमान नहीं होता। उस समय वह अपने सर्वजनपरिचित 'अह' को बहुत दूर छोड़ जाता है, नहीं तो उसकी साहित्य-साधना व्यर्थ हो जाती है। इसीलिए जहाँ कुछ भी एक नहीं है, बाहर से कुछ भी मेल नहीं बैठता, वहाँ भी मैक्सिम गोर्की जैसे साहित्यक के केवल हमारे हृदय के भीतर बहुत-कुछ आत्मीय का आसन ग्रहण कर बैठे रहते हैं। यह बात मैं सभी साहित्यिकों से याद रखने के लिए कहता हूँ। किसी ने कभी कहीं असावधानी के समय कोई बात कह डाली हो तो वही उसके जीवन का परम सत्य नहीं हो जाती। केवल उसी को लेकर विचार नहीं किया जा सकता और इसीलिए वाजिदअली साहब ने अपने लेख में मेरे सम्बन्ध में जो सब कठिन उक्तियाँ की हैं, उनका जवाब मैं नहीं दूँगा। क्रोध जब शांत या कम होगा, तब आप ही उन्हें जान पड़ेगा कि मैंने सच बात ही कही थी। वाजिदअली साहब ने सबसे अधिक हृदयविदारक बात यहाँ पर कही है—"वास्तव में दो विषम अनात्मीय संस्कृतियों के संघर्ष का ही फल यह विक्षोभ है। इसके लिए आक्षेप या दु:ख करना वृथा है। हिन्दू मुसलमान को नहीं समझता, इसलिए आज चारों ओर दु:ख का विलाप गूँज रहा है। किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि उसके भारतीय धर्म, समाज और संस्कृति ने उसके मन को तंग बना दिया हो, दृष्टि को ढँक लिया हो। अपने घेरे को लाँघकर वह चल नहीं सकता। जो अपने आभिजात्य या श्रेष्ठता के गर्व में चिरकाल से डूबा हुआ है, पराजय का प्राचीन रोष जिसका आज भी दुर्जन है, बिना युद्ध के सुई की नोक भर स्थान देने में भी जिसकी आपत्ति का अंत नहीं है, उसकी बुद्धि को मुक्त कहना कठिन है। अथ च, जो मुक्त नहीं है, वह नहीं चलता, जो चल नहीं सकता, वह जड़ है। इस आत्म-केन्द्रित, पर-विमुख जडबुद्धि के परिवेश (घेरे) ने मुसलमान को अपनी वासभूमि में परवासी बना रक्खा है। भारत की मिट्टी के रस से रसायित होकर भी उसका मन जैसे भीगता नहीं।"

यह जो कहा है कि दो विषम अनात्मीय संस्कृतियों के फल से यह विक्षोभ है, सो उसके लिए आक्षेप वृथा है। हम दोनों के पड़ोसी है, हम लोगों का आकाश, हवा, धरती, जल, एक ही है। मातृभाषा का एक होना भी हम स्वीकार करते हैं। तो भी संघर्ष इतना बड़ा कठोर है कि उसके लिए आक्षेप तक करना वृथा है—यही मनोभाव यदि सचमुच समस्त हिन्दू-मुसलमानों का हो, तो मैं यही कहूँगा कि मनुष्य की इससे बढ़कर और दुर्गति नहीं हो सकती। मैं पूछता हूँ कि रवीन्द्रनाथ की बुद्धि भी क्या जड़-बुद्धि है ? उनका मन मुक्त नहीं हुआ ? यदि वह सत्य है तो वाजिदअली साहब की यह भाषा कहाँ से आई ? सहज सुन्दर ढंग से अनायास अपने मन का भाव प्रकट करने की शक्ति उन्हें किसने दी ? इस युग में ऐसा लेखक, ऐसा साहित्य सेवी कौन है, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष में रवीन्द्रनाथ का ऋणी नहीं है। साहित्य धर्म-पुस्तक नहीं है, नीति सिखाने की पोथी भी नहीं है। उसने अपना विशाल परिधि के भीतर अपने माधुर्य से सब कुछ को ही अपना कर रक्खा है। इसी से किसी ने आज भी इसका सत्य निर्देश नहीं पाया कि साहित्य क्या है, रस-वस्तु क्या है। इस विषय में कितने तर्क, कितना ही मतभेद है। इस अवांछित व्यवधान के सम्बन्ध में मिजातुर रहमान साहब ने बुलबुल मासिक पत्र की ज्येष्ठ-संख्या में

अपने लेख में एक जगह निष्कर्षरूप होकर कहा है कि "शरत बाबू ने अपने ढेर के ढेर उपन्यासों के भीतर–भीतर जगह–जगह मुसलमान–समाज के जो सब चित्र अंकित किये है, वे मुसलमान–समाज के खूब ऊँचे दर्जे के लोगों के नहीं हैं।" किन्तु मै पूछता हूँ, खूब ऊँचे–नीचे दर्जे के पात्र–पात्राओं के ऊपर ही क्या उपन्यास की उच्चता–नीचता, भला–बुरा निर्भर करता है ? अगर यही उनका अभिमत हो तो मेरे साथ उनका मत मेल न खायगा। न मेल खाया, किन्तु उपसहार में जो उन्होंने कहा है कि "शरतचन्द्र ने हिन्दू–समाज के विविध दोषो और समस्याओं को लेकर जो सब कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं और प्रतिकार के उद्देश्य से अपने समाज को जो चाबुक मारे है, उन सदिच्छा प्रणोदित निर्मम कशाघातो को भी मुसलिग समाज अम्लान वदन होकर ग्रहण करेगा–यह मैं जोर देकर कह सकता हूँ। मैं बगाल के कथा–साहित्य–सम्राट से एक बार परीक्षा करके देखने का अनुरोध करता हूँ।"

उस दिन जगन्नाथ–हाल में अपने अभिनन्दन के प्रतिभाषण में इस बात का उत्तर मैंने दिया है। हार्दिक शुभकामना को मैं लोग कैसे ग्रहण करते है यह, इस संसार से विदा होने के पहले मैं देख जाऊँगा। खैर, वह चाहे जो हो, मनुष्य केवल केवल अपनी इच्छा ही प्रकट कर सकता है, किन्तु उसके परिपूर्ण होने का भार और एक जन के ऊपर रहता है, जो वाक्य और मन के अगोचर है। उस दिन भोजन करते समय हिज एक्सेलेंसी (गर्वनर) ने मुझसे यही प्रश्न किया था। मैंने उत्तर दिया था कि मैं दोनों समाजो के आशीर्वाद के साथ अपने इरादे को कार्य रूप में परिणत करना चाहता हूँ। ठीक समाजों का नहीं, चाहता हूँ दोनों समाजों के साहित्य सेवकों का आशीर्वाद। जिस भाषा में जिस साहित्य की इतने दिन तक सेवा की है, उसके ऊपर अकारण अनाचार मुझसे सहा नहीं जाता। मेरे मन में पूर्ण विश्वास है कि मेरी तरह जिन्होंने साहित्य की यथार्थ साधना की है, वे हिन्दू या मुसलमान जो भी हों, किसी से यह अनाचार सहा नहीं जायगा। सौन्दर्य और माधुर्य के लिए अगर कुछ परिवर्तन का प्रयोजन हो–ऐसा तो कितनी ही बार हुआ है–तो कह काम धीरे–धीरे ये ही लोग करेंगे, और कोई नहीं। वह हिन्दूपन के कल्याण के लिए नहीं, मुसलमानियत के भी कल्याण के लिए नहीं। साधारणत. यही मेरी एकमात्र प्रार्थना है। मैंने कहाँ, किस रचना में मुस्लिम समाज के प्रति अविचार किया है–मेरी धारणा तो यही है कि मैंने नहीं किया–बाल की खाल निकालने वाला इसका वाद–प्रतिवाद प्रतिकार का रास्ता नहीं है, वह तो कलह–विवाद की एक और नई राह तैयार करना है।

प्रयोजन जानकर मैंने 'बुलबुल' के अनेक उद्धरण दिये है। मैं इस पत्रिका की अनवरत अखण्ड उन्नति की कामना करता हूँ। कारण, मैंने इसको जितना कुछ पढ़ा है, उससे मुझे मालूम हुआ है कि इसके सम्पादक और लेखक साहित्य की उन्नति ही चाहते हैं और मेरी भी यही कामना है। हो सकता है, उन्होंने कहीं कुछ कटूक्ति की हो, किन्तु वह याद रखने की चीज नहीं है, भूल जाने की चीज है।

किन्तु बस कहने के विषय अभी और अनेक थे, लेकिन आप लोगों के धैर्य के प्रति सचमुच मैंने अत्याचार किया है। इसके लिए क्षमा प्रार्थना करता हूँ। मेरे इस अभिभाषण में पाण्डित्य नहीं है। कारीगरी नहीं है, कहने की बातें केवल सीधे–सादे ढंग से कह सकता हूँ, जिसमें किसी को मेरा मतलब समझने में कोई कठिनाई न हो और सुनने के बाद कोई यह न कहे कि जैसी अतुलनीय शब्द सम्पद्‌ है, वैसी ही कारीगरी, किन्तु ठीक क्या कहा गया, सो अच्छी तरह समझ में नहीं आया।

बगला–साहित्य की सेवा करके मुसलमानों में जो चिरस्मरणीय हो रहे हैं, उनके प्रति मेरी असीम श्रद्धा है तो भी उनके नामों का उल्लेख मैं नहीं करता।

अन्त में कृतज्ञता प्रकट करने की एक रीति है, जैसे आरम्भ करते समय विनय प्रकट

करने की प्रथा। पहले की प्रथा का पालन मैंने नहीं किया। कारण, साहित्य-सभाओं में सभापति का काम इतना अधिक करना पड़ा है कि मुझे जान पड़ता है। इस साठ वर्ष की अवस्था में अपने नाम के साथ अनुपयुक्त, बेवकूफ इत्यादि विशेषण ठीक शोभा न देंगे। किन्तु कृतज्ञता प्रकट करने के समय यह बात नहीं है। मुस्लिम समाज के समस्त विद्वानों के निकट आज मैं अकपट चित्त से कृतज्ञता निवेदन करता हूँ। आप लोग मेरा सलाम ग्रहण करें। कहने के दोष से अगर मैंने किसी का जी दुखाया हो तो वह मेरी भाषा की त्रुटि है, मेरे अन्तःकरण का अपराध नहीं। इति।

शरत्चन्द्रिका
(शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय का जीवन-चरित्र)

पुरोवाक्

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे विश्व विश्रुत विद्वान के ६२ वर्ष के जीवन की सभी बातो का विवरण लिखना असाध्य ही नहीं, व्यय-साध्य कार्य है । बचपन से लेकर निधन के समय तक उनके जीवन में अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई हैं।

पिछले ४०-४५ वर्षों के भीतर अनेक बार देवानन्दपुर, सामताबेडा, भागलपुर, सेंथिया और कलकत्ता जाना पडा। शरत् बाबू के समकालीन लेखकों मे ऐसा कोई नही था जो उनके बारे मे सही जानकारी दे सके। जिन लोगो ने उनके बारे में सस्मरण लिखे हैं, वे व्यक्तिगत विवरण हैं। मुझे जिन बातो की तलाश थी, उसे मैं हासिल नही कर पा रहा था। सहसा एक यात्रा के दौरान देवानन्दपुर मे ही श्री शैलेन्द्र दत्तमुंशी से परिचय हुआ और एक शंका का समाधान हुआ। शेष शकाओं का समाधान हाल मे प्रकाशित श्रद्धेया श्रीमती राधारानी देवी की पुस्तक से हो गया।

इस जीवनी में उन सभी बाते का निराकरण किया गया जिसे अन्य जीवनी लेखको ने सकोचवश या प्राप्त प्रमाणों के अभाव मे नही लिखा। उदाहरण के लिए शरत् बाबू के 'श्रीकान्त' उपन्यास की राजलक्ष्मी को लीजिए। वह शरत् के साथ प्यारी पंडित की पाठशाला मे पढती थी और उनकी सहचरी थी। आगे चलकर वह पियारी बाई बनी या नही, यह नही कहा जा सकता। संभव है कि पियारी बाई काल्पनिक है। शरत् बाबू 'नारी का इतिहास' लिखते समय कलकत्ता मे खुरुट्रोड़ स्थित वेश्याओं के मकान में ठहरते थे जहाँ उन्हे सम्मान के साथ ठहराया जाता था। वही वे उन तमाम नारियो से साक्षात्कार कर उनकी जीवन-कहानी के नोट्स लेते रहे। यदि सन् १९१२ मे,उनका मकान न जल जाता तो वह पुस्तक महत्वपूर्ण कृति होती। वेश्याओ के घर ठहरने के कारण ही शरत् बाबू की अप्रतिष्ठा थी। सभ्रात परिवारों में उनका प्रवेश वर्जित था।

शरत् बाबू सहसा भागलपुर और कलकत्ता से क्यो भागे, इस सम्बन्ध में उन्होंने मौखिक रूप से जो कुछ कहा था, वही सत्य मान लिया गया। शरत् बाबू मे एक दोष था। वे अपने बारे में बहुत कम कहते थे। सत्य घटनाओं को छिपाकर अपने मन से गढ़कर कहानियाँ सुनाते थे। श्री राधारानी के बार-बार प्रश्न करने पर ही उन्होने अपने दर्द का इजहार किया था। एक साधारण घटना पर भागलपुर या कलकत्ते से भाग जाने की बात मेरे गले से नहीं उतर रही थी। अब उसका सही विवरण उपलब्ध हो गया है।

शरत् बाबू संन्यासियो के दल मे मिलकर क्या-क्या करते रहे, इसकी जानकारी किसी को नहीं हुई। इसी प्रकार मुजफ्फरपुर-प्रवास के बारे मे जीवनी-लेखको को कम जानकारी मिली है। हिन्दी में इस दिशा में श्री राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह ने किंचित प्रकाश डाला है जो अविश्वसनीय नही है।

श्री गिरीन्द्र नाथ सरकार की बहुत-सी बातों को सभी जीवनी लेखको ने स्वीकार किया है, पर उनके रूदकार-जीवन की बातों को अस्वीकार किया है, या बिना किसी टिप्पणी के उल्लेख किया है। मौसाजी की बीमारी के समय गिरीन्द्र बाबू मदद करते रहे, उनके बेकार होने पर पेगु ले जाकर नौकरी दिलाई, उनके साथ शिकार पर गये, प्रथम पत्नी के निधन पर शव का सत्कार किया, वही व्यक्ति अगर 'गायत्री-काण्ड' को लिखता है तो उसे असत्य कैसे माना जाय? स्वयं शरत् बाबू कुलीन ब्राह्मण होते हुए एक मिस्त्री की लडकी से विवाह करते हैं, एक गोसाईं भिखारी की लडकी को कलकत्ता से ले जाते हैं, वह क्यों नही एक रूपसी लड़की पर आसक्त हो सकते?

हिरण्मयी देवी को वे कलकत्ता से ले गये थे। वे शरत् बाबू की सामाजिक या कानूनी पत्नी नहीं थीं। यही कारण है कि श्री नरेन्द्र देव तथा श्री व्रजेन्द्र बनर्जी ने हिरण्मयी देवी को 'जीवन-संगिनी' या 'संगिनी' लिखा है, क्योंकि सत्य बात लिखने पर वे शरत् बाबू की तमाम सम्पत्ति से हाथ धो बैठतीं। कानूनी अड़चनों के कारण इन दोनों लेखकों ने उन्हें पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं किया। शरत् बाबू के कानूनी परामर्शदाता और प्रकाशक यह चाहते थे कि वे चुपचाप 'कोर्ट मैरेज' करवा लें, फिर भी वे राजी नहीं हुए। अन्त में अपने निधन के पाँच दिन पूर्व वसीयत में उन्होंने हिरण्मयी देवी को पत्नी के रूप में स्वीकार किया।

किशोर-जीवन में जिस लड़की पर शरत् बाबू आसक्त हुए थे, विवाहित होने पर भी उसे आजीवन भूल नहीं सके। इस बात को अधिकांश लोग जानते थे, पर एक सम्भ्रान्त परिवार की विधवा लड़की का नाम लेने में लोगों को भय और संकोच हो रहा था। अब उनका नाम प्रकट हो गया है। सम्पूर्ण शरत्-साहित्य में वे ही प्रच्छन्न नायिका के रूप में उपस्थित हैं। इन सभी तथ्यों का उल्लेख इस कृति में हैं।

इस जीवनी को लिखने में श्रद्धेया श्रीमती राधारानी देवी तथा श्री गोपालचन्द्र राय की तमाम कृतियों से भरपूर मदद ली है। इनके अलावा सर्वश्री सुरेन्द्रनाथ गांगुली, सौरीन्द्र मोहन मुखर्जी, गिरीन्द्रनाथ सरकार, सतीशचन्द्र दास, योगेन्द्रनाथ सरकार, अविनाश घोषाल के अलावा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित विभिन्न लेखकों के लेखों से सहायता ली गयी है। मैं उन सभी लेखकों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनसे मुझे मदद मिली है।

—विश्वनाथ मुखर्जी

अवतरणिका

कई बार शंखध्वनि सुनकर हेदुआ तालाब के मोड़ पर स्थित एक दुकान के सामने खड़े एक ग्राहक ने चकित होकर दुकानदार से पूछा—"क्यों रे गोविन्द, आज क्या बात है। नाटू के घर में बार-बार शंखध्वनि क्यों हो रही है?"

गोविन्द मोदी ने उत्तर दिया—"लगता है, नाटू काका के यहाँ लड़का पैदा हुआ है।"

यह घटना शुक्रवार १५ सितम्बर, सन् १८७६ ई० की है। उस दिन किसी ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि देवानन्दपुर जैसे नगण्य गाँव में जन्म लेने वाला यह बालक इस गाँव का मुख उज्ज्वल करेगा। यहाँ के निवासी उसकी स्मृति में पाठशाला बनायेंगे और उस पर गर्व का अनुभव करेंगे।

यह उन्नीसवीं शताब्दी के तृतीय चरण की बात है, जबकि गाँव की स्थिति काफी खराब हो गयी थी। शाम के बाद लोग घर से निकलने में डरते थे। लठैतों का आतंक था। वे दो-चार पैसे के लिए भी हत्या कर देते थे। आर्थिक कठिनाइयों के कारण यहाँ के निवासी रोजी-रोटी की तलाश में शहरों की ओर भागने लगे थे।

अंग्रेजी शासनकाल से पहले देवानन्दपुर की यह स्थिति नहीं थी। उन दिनों यह क्षेत्र समृद्ध था। दूर देशों के व्यापारियों के कोलाहल से मुखरित था। लोग खुशहाल थे।

कान्यकुब्ज राज्य के एक राजा प्रियवन्त थे। जिनके सात बेटे थे। इन सभी पुत्रों ने मिलकर यह निश्चय किया कि वे भौतिक सुखों का त्यागकर सन्यास ग्रहण करेंगे। कान्यकुब्ज में यह सुविधा नहीं थी। वहाँ से चलकर वे लोग बंगाल में आये। उन दिनों बंगाल जंगलों से घिरा हुआ प्रदेश था। इस क्षेत्र में आकर इन लोगों ने अलग-अलग स्थानों में अपना निवास बनाया। इन स्थानों के नाम हुए वासुदेवपुर, बाँसबेड़िया, कृष्णपुर, खामारपाडा, शिवपुर, त्रिशविघा और देवानन्दपुर। ये सभी गाँव अभी तक अपने पुराने नामों से ही जाने जाते हैं।

राजा विजय सेन ने सन् १०९७ ई० में इस क्षेत्र पर कब्जा कर लिया और अपनी राजधानी सप्तग्राम में बनायी।

सन् १२९८ मे खिलजियो के शासनकाल मे जाफर खा नामक एक सिपहसालार ने यहाँ हमला किया और सभी मंदिरो को ध्वस्त कर दिया। लोदियो के शासनकाल मे यह क्षेत्र पठानो के अधिकार मे चला गया। उन दिनों यहाँ के राजा हिरण्यदास थे। इनके छोटे भाई का नाम गोवर्धन दास था। बड़े भाई निस्संतान थे। गोवर्धन दास का एक पुत्र था—रघुनाथ दास। इस बालक का जन्म सन् १४९८ ई० मे हुआ था।

राजकुमार होने पर भी रघुनाथ बचपन से ही विरागी था। शासन की ओर से निरीह प्रजा पर क्रूरता का व्यवहार करना उसे पसन्द नही था। इस ओर से विरक्ति होने के कारण वह अपना अधिकांश समय पूजा-पाठ मे लगाने लगा। रघुनाथ की मति-गति देखकर ताऊ और पिता चिंतित हो उठे। जबरन उसे शासन के कार्यों में लगाने लगे। इससे ऊबकर एक दिन वह पुरी भाग गया। जहाँ उसकी भेट महाप्रभु चैतन्य से हुई। महाप्रभु चैतन्य की आज्ञा से वह उनके एक शिष्य गोस्वामी से दीक्षा लेकर वही साधन-भोजन करने लगा।

कुछ दिनो बाद रघुनाथ को राधाकृष्ण की युगल मूर्ति प्रदान करते हुए महाप्रभु ने कहा—"अब तुम इसे ले जाकर अपने गाँव में साधना करो।"

दीक्षा लेने के कारण रघुनाथ दास का नाम रघुनाथ गोस्वामी हो गया था। महाप्रभु के आदेशानुसार वे उस युगल मूर्ति को लेकर सप्तग्राम वापस आये और वही एक मंदिर बनवाकर पूजा करने लगे। इस मंदिर को भी मुसलमानो ने ध्वस्त कर दिया। उन दिनो रघुनाथ गोस्वामी वृन्दावन मे थे। मंदिर पर आक्रमण होने वाला है, इसकी जानकारी होते ही पुजारी ने मूर्ति को सरस्वती नदी में फेंक दिया।

जब यह समाचार रघुनाथ गोस्वामी को ज्ञात हुआ तब उन्होंने अपने शिष्य श्रीकृष्ण किंकर गोस्वामी को वहाँ भेजा। उन्होने कृष्णपुर मे एक झोपडी बनाकर पुन. उसी मूर्ति की स्थापना की। रघुनाथ गोस्वामी द्वारा स्थापित होने के कारण इस मंदिर का नाम 'रघुनाथ गोस्वामी का अखाडा' हो गया, जहाँ प्रति वर्ष १५ जनवरी के दिन गोसाइयो का मेला लगता है।

शाहंशाह अकबर के शासनकाल मे उनसे आज्ञा लेकर पुर्तगालियों ने देवानन्दपुर के समीप बेण्डेल में किला तथा चर्च बनवाया। व्यापार के साथ-साथ वे स्थानीय लोगो को ईसाई बनाने लगे। इनके अत्याचारों से जनता त्राहि-त्राहि करने लगी। जहागीर ने इस ओर ध्यान नही दिया। शाहजहां के शासनकाल में दिल्ली का सिंहासन डोला और तब पुर्तगालियो से मुगल सैनिकों का युद्ध हुआ। व्यापारिक संधि के कारण मुगल बादशाह ने इन्हे हुगली में व्यापार करने की आज्ञा दी। इसी कारण सप्तग्राम के स्थान पर हुगली नगर बन्दरगाह बना।

१५ वी शताब्दी तक सप्तग्राम से लेकर देवानन्दपुर तक प्रवाहित होनेवाली सरस्वती नदी में बडे-बडे जहाज चलते थे, क्योंकि गगा नदी का सारा जल सरस्वती नदी के माध्यम से बहता था। यहां का एक व्यापारी मुकुन्दराम सेठ व्यापार बढ़ाने के लिए कलकत्ता स्थित बडा बाजार में जाकर बस गया। मुकुन्दराम फारस, अरब, लाल सागर के मुल्को मे ही नही, बल्कि पूरे अफ्रीका का चक्कर काटकर भारतीय मसलिन लन्दन ले जाकर रानी एलिजाबेथ प्रथम को बेच आया था।

यूरोपीय लेखकों ने सरस्वती नदी को 'सातगाँ रिवर (सातगांव नदी) कहा है। यहाँ बराबर विदेशी व्यापारियों की चहल-पहल बनी रहती थी। पुर्तगालियो के आगमन के पूर्व तक सप्तग्राम राजकीय बन्दरगाह था। सन् १५४० ई० मे गंगा ने अपना मार्ग बदला और सरस्वती नदी मिट्टी तथा बालू से भर गयी। फलस्वरूप धीरे-धीरे इस नदी का महत्व घट गया।

ब्रिटिश शासनकाल मे बंगाल के प्रसिद्ध दानवीर श्री मोतीलाल शील की दादी ने रघुनाथ गोस्वामी के अखाडे को पक्का बनवा दिया। वर्तमान स्वरूप उन्ही की देन है। मंदिर में राधाकृष्ण के अलावा रघुनाथ गोस्वामी की भी मूर्ति है।

कृष्णपुर से दो मील दूर सरस्वती नदी के किनारे देवानन्दपुर गाँव बसा हुआ है। यहाँ के जमींदार वंश-परम्परा से कायस्थ हैं। इनके पूर्व पुरुष कामदेव दत्त इस क्षेत्र के जमींदार थे। मुसलमानी शासनकाल मे इन्हे 'मुंशी' की उपाधि दी गयी थी। इस उपाधि का प्रयोग दत्त परिवार के लोग आज तक करते आ रहे हैं।

सन् १७७४ ई० मे श्री रामचन्द्र दत्तमुशी को शासन की ओर से काफी जमीन दी गयी। रामचन्द्र मुशी दरबारी आदमी थे। इनके यहाँ भारतचन्द्र गुणाकर राय नामक एक युवा कवि आया और लम्बे अर्से तक मुशीजी के आश्रय मे रहते हुए उर्दू-फारसी भाषा का अध्ययन करता रहा।

अपने आश्रयदाता के आग्रह पर उन्होने सत्यनारायण कथा को छन्दोबद्ध किया था। भारतचन्द्र राय कुछ दिनो तक हीराराय नामक व्यक्ति के घर मे रहते थे। इन दोनो का नामोल्लेख वे अपनी रचना मे कर चुके हैं यथा .

देवेर आनन्दधाम देवानन्दपुर नाम,
ताहे अधिकारी राम रामचन्द्र मुनशी।
भारते नरेन्द्र राय देशे जार यश गाय,
होये मोरे कृपदाय पड़ाइल पारसी।

(देवताओ का आनन्दधाम जिसका नाम देवानन्दपुर है। यहाँ के अधिकारी रामचन्द्र मुशी हैं। भारत मे जिनका यश फैला है। आपने कृपा करके मुझे फारसी पढ़ाई।)

दूसरा छन्द है —

देवानन्दपुर ग्राम, देवेरे आनन्दधाम
हीराराय रायेर वासना।

(देवो का आनन्दधाम देवानन्दपुर है। हीराराय की इच्छा की पूर्ति कर रहा हूँ।)

इसी देवानन्दपुर मे शरत्चन्द्र चटर्जी का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम मोतीलाल और माता का नाम भुवन मोहिनी था। मोतीलाल को समवयस्क तथा वृद्धजन 'नाटू'[1] कहकर पुकारते थे।

देवानन्दपुर मोतीलाल का पैतृक निवास नही, ननिहाल था। इनके पूर्व पुरुष २४ परगना जिले के मामूदपुर गाँव के निवासी थे। मोतीलाल के पिता वैकुण्ठ नाथ चटर्जी दबग प्रकृति के थे। वे अन्याय सहन नहीं कर पाते थे। ब्रिटिश शासन काल मे राजाओ तथा जमींदारो की तूती बोलती थी। प्रजा के शोषण के अलावा हर तरह के अत्याचार किये जाते थे। किसी बात पर उनका जमींदार से टकराव हो गया। मौका खोजकर जमीदार ने उनकी हत्या करवा दी।

पति के निधन के बाद मोतीलाल को लेकर उनकी माँ अपने पीहर चली गई। देवानन्दपुर आने के कुछ दिनो बाद सन् १८५७ का आन्दोलन हुआ।

मोतीलाल के मामा प्रसन्न ठाकुर ने निराश्रिता बहन को आदर से अपनाया। अपने एक मात्र भाजे को पढ़ाया-लिखाया और भागलपुर निवासी केदारनाथ गागुली की मझली लडकी से उसका विवाह कराया। विवाहित मोतीलाल के लिए अपने घर की बगल मे जमीन दान मे देकर फूस की छाजनवाली दो कोठरियाँ बनवा दी। बाद मे जब मोतीलाल नौकरी करने लगे तब उन्होने अपने घर को पक्का बनवाया।

विवाह के पश्चात् मोतीलाल को उनके ससुर केदारनाथ ने उच्च शिक्षा देने के लिए भागलपुर बुला लिया। अपने विद्यार्थी जीवन मे ही मोतीलाल एक पुत्री के पिता बन गये थे। उनकी बड़ी लडकी का नाम अनिला था। एफ० ए० तक पढने के बाद मोतीलाल गाँव वापस आकर नौकरी करने लगे।

बचपन और शिक्षा

शरत् ऋतु में जन्म लेने के कारण दादी ने अपने प्रथम पौत्र का नाम रखा—शरत्चन्द्र। सावला रग, उन्नत ललाट और शरारती होने के कारण शीघ्र ही बालक हम-जोलियों का सरदार बन गया।

घर के पश्चिमवाली गली में गाँव के ही एक पंडित जी पाठशाला खोलकर बच्चो को पढ़ाया करते थे। उनका नाम था—प्यारीमोहन बद्योपाध्याय। प्यारी पंडित का एक ही पुत्र था—काशीनाथ।

---

[1] बगाल में पटल, आलू, चीनी, राणा, गेन्टू, मण्टू, खोका आदि अनेक घरेलू नाम रखे जाते हैं।

शरत् के अन्य सहपाठियो मे मृत्युजय, विनोद विहारी वनर्जी, रामसदन दत्तमुंशी, शैलेन्द्र चटर्जी, उपेन घोष, सतोष कुमार वनर्जी और उनके साथ छाया की भाँति घूमने वाली लड़की थी राजलक्ष्मी।

शरत् की वालसगिनी के वारे मे विभिन्न लेखको ने भिन्न-भिन्न नाम लिखे हैं। किसी ने पारू तो किसी ने धीरु। यहाँ तक कि शरत् बाबू के अभिन्न मित्र श्री सौरीन्द्र मुखोपाध्याय ने श्री द्विजेन्द्रनाथ दत्तमुशी का एक लेख पढकर 'कालिदासी' नाम लिखा है। श्री मुशी देवानन्दपुर के मुंशी परिवार के सदस्य हैं। उनकी खोज को लोगो ने सही माना। लगता है, शरत् बाबू के निधन के पश्चात् जल्दीवाजी मे वे अनेक गलत-सही बाते लिख गये थे। कालिदासी वस्तुत. रामसदन मुंशी की बडी वहन थी, जो शरत् से नाराज रहती थी। उसका ख्याल था कि शरत् के कारण मेरा भाई तमाकू पीने लगा है और दूसरो के बागो से फलो की चोरी करता है।

इसी प्रकार गोविन्द मोदी तथा अन्नदा दीदी के वारे मे भी मुशीजी ने लिखा है। गोविन्द मोदी निस्सदेह देवानन्दपुर का निवासी था जो शरत् के घर के सामने दुकान चलाता था, लेकिन अन्नदा दीदी सरस्वती नदी के उस पार मालिनपुर मे नही रहती थी। वह वास्तव मे भागलपुर शहर मे मायागंज मुहल्ले के समीप गुफा के पास, गंगा किनारे स्थित एक झोपडी मे रहती थी।

श्री मुंशी के लेख के आधार पर जब मैं मालिनपुर गाँव गया और वहाँ के सबके वृद्ध व्यक्ति ने बताया—"बेटा, यह गाँव है। यहाँ अन्नदा जैसी महिला रहती तो सौ वर्ष तक उसकी बदनामी लोगो की जबान पर नाचती रहती। या तो लोग उसे यहाँ से खदेड देते, या फिर मार डालते।

इस यात्रा मे मुंशी परिवार के एक सदस्य श्री शैलेन्द्र दत्तमुशी से भी मुलाकात हुई। वे बर्मा की नौकरी से अवकाश ग्रहण कर गाँव मे रह रहे थे। बोले—राजलक्ष्मी और सुरलक्ष्मी की माँ यही मुशी परिवार के पट्टीदार के यहाँ मंदिर मे काम करती थी। अब वह मंदिर खंडहर के रूप मे है।

आगे चलकर द्विजेन्द्रनाथ मुंशी ने जब सही तथ्यों का पता लगाया तब १९ जनवरी १९३९ ई० के दैनिक आनन्द बाजार पत्रिका में उन तथ्यो को प्रकाशित कराया। इनका उल्लेख श्रीकान्त मे हैं। आपने लिखा है—

"शरत् अपने मकान के समीप ही प्यारी पंडित की पाठशाला में पढ़ते थे। इस पाठशाला मे गाँव के अधिकांश बालक पढ़ते थे, लेकिन शरत् की घनिष्ठता विशेष दो छात्रो से थी। एक पंडित जी का पुत्र काशीनाथ और दूसरी एक याजक ब्राह्मण की भाजी राजलक्ष्मी थी। राजलक्ष्मी उम्र मे २-३ साल छोटी होने पर भी दिन-रात उनके साथ तालाबो और नदी के किनारे मछलियाँ पकडती थी। पतग उडाती, टिड्डियाँ पकडती और घुमचियो के पकने पर माला बनाकर पहनाती थी। जब दोनो मे झगडा हो जाता तब कई दिनों तक आपस मे बोलचाल बन्द रहती थी। बाद मे शरत् उसे मनाते। वह इसलिए कि राजू ही एक मात्र ऐसी संगिनी थी, जो शरत् के समस्त आदेशो को मानती थी। यही बालसंगिनी शरत्चन्द्र के 'देवदास' मे पार्वती और 'श्रीकान्त' मे राजलक्ष्मी के रूप में चित्रित हुई है। इस लडकी की बडी बहन का नाम सुरलक्ष्मी था।"

'श्रीकान्त' उपन्यास से श्रीकान्त अपनी जवानी कहता है—"मैं जब अपने गाँव मे मनसा (प्यारी) पंडित की पाठशाला मे छात्रो का सरदार था, उसी समय इसके दो पुश्त के कुलीन बाप ने दूसरा विवाह करके इसकी माँ को निकाल बाहर किया। पति-परित्यक्ता मां सुरलक्ष्मी और राजलक्ष्मी नामक दो लडकियों को साथ लिए अपने पिता (भाई) के घर चली आयी। राजलक्ष्मी की अवस्था तब आठ-नौ वर्ष की थी। सुरलक्ष्मी बारह-तेरह की थी। इसका रंग अत्यन्त साफ था, किन्तु मलेरिया और तिल्ली के कारण पेट मटके की तरह था। हाथ-पाँव पतली लकडी की तरह, सिर के बाल ताँबे के तार की तरह थे। कितने थे, सो भी गिने जा सकते थे। मेरी मार के डर से यह लडकी करौंदे के जगल मे घुसकर प्रतिदिन करौंदों (घुमचियों) की एक माला गूंथकर मुझे देती थी। माला किसी दिन छोटी हो जाने पर, उससे पुराने पाठ मैं पूछने लगता और खूब थप्पड़ लगाता था। मार खाकर यह लडकी ओंठ काटकर गुमसुम हो बैठ जाती थी। मगर किसी भी तरह यह नहीं कहती थी कि प्रतिदिन पक्के फल-संग्रह करना मेरे लिए कितना कठिन काम है। इसके बाद उसका विवाह हुआ। वह भी एक विचित्र घटना थी। भांजियों का विवाह नही हो रहा था। मामा चिन्तित थे। (चिन्ता तो पिता को होनी चाहिए थी—वास्तव में वे मामा के यहाँ रहती

थी।) दैवयोग से मालूम हुआ कि श्री विरची दत्त के यहाँ का रसोइया ब्राह्मण कुलीन है। मामा उसके पास जाकर धरना देकर बैठ गये। देखने पर बडा सीधा-सादा लगता था, पर जरूरत के समय देखा गया कि उसकी सांसारिक बुद्धि किसी से कम नही है। इकावन रुपये दहेज की बात सुनकर उसने सिर हिलाते हुए कहा—"इतने सस्ते में नही होगा महाशय! बाजार जाचकर देख ले। इकावन रुपये में तो एक जोडी अच्छा बकरा नही मिलता, फिर आप वर ढूँढ रहे हैं। एक सौ एक रुपये दीजिए। एक बार उस पाटे पर और दूसरी बार उस पाटे पर फूल छोड देता हूँ। दोनो बहनें एक साथ पार हो जाएगी। बहुत रगडने पर सत्तर रुपये पर बात तय हुई और एक रात को ही एक साथ सुरलक्ष्मी तथा राजलक्ष्मी का विवाह हो गया। दो दिनों के बाद सत्तर रुपये लेकर दो पुश्तों के कुलीन दामाद बाकुडा चले गये। फिर उन्हें किसी ने देखा नही। डेढ़ वर्ष बाद तिल्ली के कारण सुरलक्ष्मी मर गयी और बडी बहन के निधन के डेढ़ वर्ष बाद राजलक्ष्मी ने काशी मे मरकर शिवत्व प्राप्त किया।"

'श्रीकान्त' मे वर्णित यह कथा अधिकांश मे सही है। इसका प्रमाण हमें मुंशीजी के लेख मे मिल जाता है— "इनकी (राजलक्ष्मी) मा विधवा हो जाने पर अपने पीहर भाई के पास दोनों लडकियों को लेकर आ जाती है। भाई सामान्य याजक (पुरोहित) ब्राह्मण था जिसे अपना पेट भरना कठिन हो रहा था, वह कैसे इन तीन अनाहूत लोगो का भरण-पोषण करता? उसने अपनी बहन को स्थानीय एक कायस्थ परिवार मे देव-पूजा करने के लिए रखवा दिया। मा और दोनों बेटिया भोजन-वस्त्र के बदले वहाँ काम करने लगी। विवाह योग्य होने पर दोनों बेटियों का विवाह दूर के किसी गाँव में रहने वाले एक कुलीन वृद्ध ब्राह्मण से बहत्तर रुपये दहेज पर हो गया। विवाह के बाद ब्राह्मण अस्वस्थ होकर खाट पर पड गये। विवाह के कुछ दिनों बाद सुरलक्ष्मी का निधन हो गया। बीमार हो जाने के कारण सेवा करने के लिए उसने राजलक्ष्मी को बुलाया। कुछ दिनों बाद राजलक्ष्मी अपनी माँ की तरह विधवा बनकर वापस आ गयी। इस घटना के साल डेढ़ साल बाद वह अपनी मा के साथ काशी चली गयी। वहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। राजलक्ष्मी की मृत्यु की सूचना उसकी मा से प्राप्त हुई थी। राजलक्ष्मी आगे चलकर प्यारी बाई बनी या नही, यह नही कहा जा सकता।"

'श्रीकान्त' उपन्यास तथा मुशीजी के कथन में कोई विशेष अन्तर नही है। अब यह भ्रम दूर हो जाना चाहिए कि शरत् के बचपन की संगिनी अन्य कोई थी। राजलक्ष्मी ही उसका असली नाम था। राजलक्ष्मी आगे चलकर प्यारी बाई बनी, यह धारणा भी गलत है। लेखक ने कई नारियों का सम्मिलित रूप प्यारी बाई में समेटा है। इसी कुशलता के कारण श्रीकान्त उनके उपन्यासो में श्रेष्ठतम है।

द्विजेन्द्रनाथ मुशी ने अपने लेखों में अन्य कई घटनाओं का जिक्र किया है। जिसके प्रमाण शरत् बाबू के उपन्यासों में है।

देवदास उपन्यास के प्रारभ में हम देखते हैं कि देवदास पाठशाला में भोला नामक छात्र की निगरानी में पढ़ रहा है। वह एक सवाल के हल कराने के लिए भोला के पास आता है और मौका पाते ही उसे चूने के ढेर में ढकेल कर भाग जाता है। पार्वती यह दृश्य देखकर प्रसन्नता से ताली पीटती है।

वास्तविक घटना को यहां दूसरे ढंग से दिखाया गया है। शरत अपनी कक्षा में न केवल मेधावी था, बल्कि काफी शरारती था। गोविन्द (प्यारी) पंडित से छुट्टी मांगने पर उसे मार खानी पडी। कुछ देर बाद गोविन्द पंडित तमाकू पीने के लिए चिलम तैयार कर आग लेने के लिए कहीं गये। मौका पाते ही पंडितजी को परेशान करने के लिए उसने चिलम में कंकड ठूंस दिया और ऊपर तमाकू रख दिया। यह दृश्य सभी छात्र देखते रहे।

पंडितजी आग लेकर आये। चिलम को हुक्के पर रखकर गुडगुडाने लगे। देर तक कश लेने पर भी जब धुआं नहीं निकला तब उन्होने चिलम को उलट दिया। चिलम के उलटते ही सारी कारगुजारी स्पष्ट हो गयी। वे क्रोध से आग बबूला हो उठे। तडपकर उन्होंने इस काण्ड के अपराधी का नाम पूछा। शरत् से सभी डरते थे। भय के कारण सभी चुप रहे। गोविन्द पंडित ने अपने सामने बैठे एक बालक को छडी से मारा। मार खाते ही उसने शरत् का नाम बताया। शरत् ने बदमाशी की है जानकर जब पंडितजी उसे मारने आये तब वह उछलकर खड़ा हो गया और भागते समय उस बालक को दरामदे से ढकेलकर भाग गया। चोट लगने के कारण वह बालक चीखने लगा। बाद में उसे लेकर गोविन्द पंडित शरत् के घर शिकायत करने आये।

'देवदास' मे वर्णित देवदास शरत् है और पार्वती राजलक्ष्मी। गोविन्द पंडित वास्तव मे प्यारी पंडित थे और भोला नामक बालक विनोद विहारी वनर्जी था। इस दुर्घटना के बाद शरत् कृष्णपुर स्थित रघुनाथ गोस्वामी के अखाडे मे भाग गया था।

प्यारी पंडित बहुत क्रोधी स्वभाव के थे, पर वे शरत् को हमेशा मारने मे हिचकिचाते थे। वह इसलिए कि वह उनके पुत्र काशीनाथ को बहुत चाहता था। जरा भी उदास देखता तो उसके लिए सब कुछ करने को तैयार हो जाता था।

मोतीलाल को उनके मित्र और गुरुजन जिस प्रकार 'नाटू' कहकर पुकारते थे, ठीक उसी प्रकार शरत् को वचपन मे 'न्याडा' (वेलमुडा) कहकर लोग पुकारते थे। यह नाम दादी ने रखा था। उस साल देवानन्दपुर मे आम काफी हुआ था। पेड से पककर नीचे सड रहे थे। अधिक आम खाने के कारण सिर पर काफी फुंसिया हो गयी थी। इलाज के सिलसिले मे मुण्डन कराना पडा। दादी प्यार से 'न्याडा' कहने लगी तो मा उसकी शैतानी से नाराज होकर ऐसा कहती रही। सहपाठी और बुजुर्ग भी इसी नाम से पुकारने लगे। लोग यह भूल गये कि मोतीलाल के लडके का नाम शरत् है। कृष्णपुर, हुगली, काजिडागा ही नही, भागलपुर मे भी यही नाम प्रसिद्ध हो गया। स्वयं शरत् ने भी अपनी प्राथमिक रचनाओ की पाण्डुलिपि मे 'एस० सी० न्याडा' लिखते रहे।

वेण्डेल स्टेशन से एक सडक कांजिडागा होती हुई आगे जाकर ग्रैण्डट्रंक रोड से जा मिली है। इसी सडक के किनारे मुशीजी का वृहद बाग है जिसे 'गलाय दडेर बाग' कहा जाता है। 'श्रीकान्त' मे इस बाग का नाम 'खायेदेर गलाये दडेर' के नाम से उल्लिखित किया गया है। इसी बाग की बगल से एक सडक देवानन्दपुर को विभक्त करती हुई सरस्वती नदी के तट पर जाकर समाप्त हो जाती है। इसी बाग के सामने एक ठूँठा पीपल का पेड था, जिसका उल्लेख 'दत्ता' मे (न्याडा बटतला यानी मुण्डा वरगद) किया गया है, जहाँ स्कूल जाते समय तीन मित्र मिलते थे।

अन्य गॉव से शव लेकर आने वाले शववाही यही विश्राम करते थे। पास की पोखरी मे शव की कथरी आदि फेक देते थे। इस इलाके से गुजरते समय लोग डरते थे। रात को लोग इधर नही आते थे। उन दिनो वगाल मे लठैतो का आतक था। अपने जीवन की एक घटना को लेकर शरत् बाबू ने 'लठैतो की कहानी' लिखी है। नयन बाग्दी के साथ वे अपने बचपन में बसन्तपुर (हरिपुर) गये थे। वापस लौटते समय लठैतो से सामना हुआ था। नयन बाग्दी जवानी के आलम मे स्वय ही खूखार लठैत था। उसके कारण शरत् बच गया था।

शरत् के घर के सामने नदी किनारे विस्तृत जगल था। उन दिनो के बारे मे मुशीजी लिखते हैं—"गॉव मे उनका एक अड्डा था। गॉव से सरस्वती नदी की ओर जाने का जो मार्ग है, इसी मार्ग के किनारे मुंशी वाबुओ का हेदुआ नालाव का 'गडेर' जगल है। इस जगल के भीतर एक बडा-सा गड्ढा, घर की तरह शरत् ने बनाया था जहाँ वे छिप जाते थे। गॉव के वागो से वे तथा उनके साथी आम, लीची, कटहल, अनन्नास, अमरूद, केला आदि फल चोरी करके लाते और यही सग्रह करते थे। इसके बाद अपनी सुविधा के अनुसार भोग लगाते थे। छुट्टियो के दिन यहाँ दिन भर अड्डेवाजी होती थी। जमीदार साहब की नयी पोखरी मे बसी डालकर लोग मछलियाँ पकडते थे। सभी मित्रो की बंसियाँ शरत् अपने हाथ से बनाया करता था। मूड आने पर फेरी घाट से नाव लेकर उस पार या कृष्णपुर स्थित गोस्वामी के अखाडे तक चले जाते थे।"

x x x x

प्यारी पंडित की पाठशाला की शिक्षा पूरी हो गयी थी और शरत् अधिक शरारती भी हो गया था। ठीक इन्ही दिनो गॉव मे एक नयी पाठशाला की स्थापना हुई। इस पाठशाला के सस्थापक सिद्धेश्वर पंडित थे। इनके छोटे भाई का नाम सतीश था, जिससे आगे चलकर शरत् की घनिष्ठता वढ गयी थी। यही पढ़ते समय मोतीलाल की माँ का सहसा निधन हो गया।

माँ के निधन के बाद मोतीलाल की स्थिति अधिक खराब हो गयी। श्राद्ध वगैरह क्रिया कर्म मे कर्ज लेना पड गया था। सौभाग्य से इन्ही दिनो मोतीलाल की नौकरी डेहरी-आन-सोन मे लगी। एक दिन वे

सपरिवार वहाँ चले गये।

डेहरी-आन-सोन मे वे अधिक दिनो तक नही रह सके। गाँव मे जो सुविधाएँ थी, वहाँ उसके लिए रकम खर्च करनी पडती थी। दूसरी ओर वे नौकरी को गुलामी समझते थे। कवि-प्रकृति होने के कारण तन-मन से स्वतन्त्रता चाहते थे, जो नौकरी में संभव नही थी। सबसे अधिक कुढ़न मूर्खों से होती, जिनके अधीन रहकर उन्हें काम करना पडता था। काम करते समय अक्सर वे खो जाते थे।

इनके चरित्र के बारे मे सुरेन्द्रनाथ गांगुली ने लिखा है—"मोतीलाल के भीतर का व्यक्ति कभी साबालिग नही बन सका था। बचपन मा के आँचल की आड में बीता था, जिनमें दुःख-सुख के धूप-छाँह थे। इसके बाद किशोर-यौवन ससुराल की छाँह में व्यतीत हुआ। भुवन मोहिनी की सेवा पाते रहने के कारण बराबर नाबालिग बने रहे। उनका स्वभाव आसमान में उडने वाली पतग की तरह थी। अपने मन से उडना, चक्कर काटना और दन से नीचे आकर ऊपर उठ जाना। सेवा-धर्म के परेता पर रगीन तागो मे भुवन मोहिनी ने उन्हे बाँध रखा था।"

खाली समय हुक्का पीते या पुस्तक पढ़ने मे दत्तचित्त हो जाते। मूड आया तो कागज-कलम लेकर कुछ लिखने लगते। कविता, कहानी, उपन्यास आदि उन्होंने लिखे, पर किसी को सपूर्ण नही कर सके।

डेहरी आन-सोन से वापस आने के बाद देवानन्दपुर मे जम नही सके। इनके उखडे स्वभाव को जानते हुए जमीदार साहब ने भी घास नही डाली। आखिर एक दिन भुवन मोहिनी के अनुरोध पर भागलपुर चले आये।

ननिहाल आगमन

मोतीलाल के श्वसुर केदारनाथ गागुली का आदि निवास हालीशहर था। उन्नीसवी शताब्दी के प्रारभ में इनके पिता रामधन गागुली रोजी-रोटी की तलाश मे भागलपुर आये और यही बस गये। उन दिनो भागलपुर, मुगेर, धनबाद आदि शहर बगाल प्रान्त के अन्तर्गत थे जो अब बिहार के अग हो गये हैं।

सरकारी कर्मचारी होने के कारण शहर मे रामधन का काफी दबदबा था। घर मे भले ही फांका करते हों, पर बाहर अपनी रईसी का प्रदर्शन बराबर करते रहे। अपने श्रम और लगन से यश के साथ-साथ पर्याप्त अर्थ कमाया। बगाली टोला में गगातट के समीप मकान बनवाया।

इनके पाँच पुत्र हुए। केदारनाथ, दीनानाथ, महेन्द्रनाथ, अमरनाथ और अघोरनाथ। केदारनाथ मोतीलाल के श्वसुर थे। पिता रामधनी गागुली के निधन के बाद केदारनाथ परिवार के मुखिया बने। भाइयों को शिक्षित बनाने से लेकर नौकरी दिलाने तक की सारी जिम्मेदारी केदानाथ को निभानी पडी।

केदारनाथ स्थानीय कचहरी में नाजिर थे। रोब जमाने के लिए कचहरी के कुछ चपरासियो को अपने यहाँ मुफ्त में शरण दे रखा था। फाटक के समीप गोशाला की बगल में कुछ कमरे खाली पडे थे, उन्ही कमरों मे चपरासियो का दल रहता था और मुफ्त मे पहरेदारी करता था। अपने पिता की तरह केदारनाथ रूढ़िवादी के कट्टर समर्थक थे। लापरवाही, उच्छृंखलता या धर्मविरुद्ध आचरण वे कदापि सहन कर पाते थे। घर, दफ्तर तथा सस्थाओं मे इस नियम का पालन कड़ाई से करते थे। अपने पिता की तरह नगर के कई संस्थाओ से जुडे रहे। बगाली समाज के नेता होने के कारण नगर में इनका सम्मान था। सुबह शाम दरबार लगाने वाले इनके निकट आते, जहाँ तरह-तरह की बाते होती।

केदारनाथ की दो लडकिया और दो लडके थे। बडी लडकी कम उम्र में विधवा होकर बाप के यहाँ चली आयी। उसे न पति का प्यार मिला और न सतान का सुख। दूसरी लडकी का विवाह मोतीलाल से हुआ। लडकों में ठाकुरदास और विप्रदास थे, किन्तु केदारनाथ अपने सभी संतानों में भुवन से अधिक स्नेह करते थे। शायद इसी कारण अपने निकम्मे दामाद को बराबर तरह देते रहे।

मोतीलाल अजीब प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्हे घर गृहस्थी की चिन्ता नही सताती थी। कही नौकरी करने जाते तो कुछ दिनों बाद उसे छोड देते। दरअसल उन्हे गुलामी पसन्द नही आती थी।

भुवन मोहिनी के पास रूप नही था, पर वह अत्यन्त कर्मठ थी। धनाढ्य घर की लडकी होने पर भी देवानन्दपुर जैसे वज्र देहात में अभाव की गृहस्थी को हँसते-खेलते चलाती थी। घर की हालत उससे

छिपी नही थी, लेकिन इस बारे मे कभी कोई शिकवा पति, सास या पीहर के किसी सदस्य से करने नही गयी। अपने पीहर मे भी वह समान रूप मे सभी लोगो की स्नेह पात्री थी। आगे बढकर चाचा-चाचियो की सहायता करती थी। अपने इन गुणों के कारण वह लोकप्रिय थी।

नाना का रोब और कठोर व्यवहार देखकर न्याडा भयभीत हो उठा। जगल का शेर जैसे पिजडे मे कैद हो गया। सवेरे सभी बच्चो को जलपान मे जलेबी देकर पढने के लिए बैठाया जाता है और वह भी अपने बैठकखाने मे नाना स्वय यमराज की तरह सामने बैठे रहते। अगर किसी का ध्यान आसमान मे उडती पतग या बगीचे के भीतर किसी वृक्ष पर बैठे पक्षी की ओर चल जाता तो तुरत डॉट पडती। जैसे नाना थे, उसी प्रकार स्कूल के अन्य अध्यापक। एक पंडित तो कमर के पास इस कदर चिकोटी काटते कि ऑख के सामने तारे नाचने लगते। अगर स्कूल मे गलती से पिटाई होती और उसकी शिकायत की जाती तो तुरत उत्तर मिलता—"कुछ न कुछ बदमाशी किये होगे, वर्ना मास्टर को सीग थोडे ही जमी है जो बेकार मारेंगे।"

घर के बाहर खेलने जाने की सख्त मनाही थी। नानाओ का विचार था कि आवारे लडके ही बाहर सडकों पर खेलते हैं। यहाँ तक कि यमुनिया नदी के उस पार पडोस मे रहने वाले मजुमदार से सम्पर्क रखने को मना किया जाता।

गॉव की पाठशाला मे अग्रेजी के अलावा सभी विषयो कोअच्छी तरह पढ लेने के कारण शरत् को यहाँ विशेष श्रम नहीं करना पडता था। केवल अग्रेजी पढ़ना पडता था। इन दिनो के बारे मे शरत् के मामा श्री सुरेन्द्रनाथ लिखते हैं—

"स्कूल जाकर शिक्षकों की निगाह मे, गुड ब्वाय बनने मे अधिक दिन नही लगा। दूबेजी जैसे क्रोधी मास्टर को भी मैंने शरत् को प्यार करते देखा है। यहाँ तक कि उसे वे 'अपना बेटा है' कहा करते थे।

"पढाई के साथ-साथ खेल-कूद मे वह अद्वितीय था। गोली खेलने मे तो उस्ताद था। गुल्ली-डडा मे इतना तेज था कि १०-१५ हाथ की दूरी से गुल्ली को ठीक से सधाकर मारता था। घर से केवल दो गोली लेकर स्कूल जाता, आण्टा और टल। स्कूल से वापस लौटते समय उसकी दोनो जेबों मे जीत की गोलिया भरी रहती। आश्चर्य की बात तो यह है कि जीती हुई गोलियो के प्रति उसे कोई मोह नही होता था। जीती हुई सारी गोलियाँ अपने सभी मित्रो को बॉट देता था। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक उसमे यही आदत थी। किसी भी वस्तु पर उसे कभी मोह नही रहा। दाता बनने का गौरव प्राप्त नही करना चाहता था, बल्कि संचित सामग्रियो को लुटाकर, भारमुक्त होने पर प्रसन्नता का अनुभव करता रहा। लट्टू नचाने मे ऐसा कमाल दिखाता था कि उसकी कला का वर्णन करना कठिन है। उसके पास छोटे-बड़े, हर रग के लट्टू थे। उसके पास एक ऐसा जबरदस्त लट्टू था, जिसके द्वारा वह दूसरे पक्ष के लट्टू पर चोट करके नष्ट कर देता था।

"उसका स्वभाव बडा विचित्र था। एक ओर इस्पात की तरह कठोर तो दूसरी ओर मक्खन की तरह कोमल। अन्याय को सर्वदा पददलित करने की आकाक्षा रखता तो दूसरी ओर दुर्बलो के लिए आश्रयदाता था। वज्र की तरह कठोर होते हुए भी समय-समय पर सहृदय बन जाता था। इसी वजह से कुछ लोग उसके शत्रु बन जाते थे, पर स्नेही मित्रो की संख्या भी कम नही थी।

"मुझे अच्छी तरह याद है। लकडी के बक्से मे वह तरह-तरह की टिड्डियो का सग्रह करता था। रग-रूप के अनुसार किसी को राजा तो किसी को गगा कहता था। गधा टिड्डी, केरानी टिड्डी आदि नाम रखता। हमजोलियो का वह सरदार था। हम लोग उसका आदेश मानकर इन टिड्डियो के लिए घास, फूल और पत्ती आदि संग्रह करते थे।

"पतग उडाने मे वह कमाल करता था। न जाने शीशा-सरेस आदि से कैसे मँझा देता था कि बडे-बडे पतगबाज उसकी पतग को काट नही पाते थे। कभी ढील तो कभी खीच से वह अपर पक्ष की पतग काट देता था। वह पतग उडाता है, इस बात पर घर के चाचा, ताऊ बराबर सदेह करते रहे, पर कभी वह रगे हाथ पकडा नही गया। अगर वे लोग डाल-डाल चलते तो वह पात-पात चलता था।

"हमारे सरदार के तरकश मे तीर की कमी नही थी। गली के दरवाजे के पास जितने अमरूद के पेड

थे, उस पर गृह स्वामियो की कडी नजर रहती थी। यहाँ तक कि डायरी मे यह नोट किया जाता था कि किस पेड मे कितने अमरूद हैं और कितने तोडे गये हैं, लेकिन हमारे सरदार सभी की आँखो में धूल झोककर अमरूदों को गायब कर देते।"

"इस प्रकार चोरी करते वह कभी पकडा नही गया जबकि हम लोग पकड लिए जाते थे और एक विशेष कोठरी मे जेल की सजा भोगते थे। अधकारपूर्ण नमी वाला कमरा जिसमे सैकडो चमगादड और चूहे नृत्य करते थे। घर में शायद ही ऐसा कोई बालक था, जो इस कमरे मे बन्द न हुआ हो।

"हम लोगो के घर के उत्तर दिशा की ओर एक भुतहा मकान था, जिसमे कोई नही रहता था। हम लोगो ने यह निश्चय किया कि इस मकान मे अखाडा बनाकर कुश्ती लडा जाय। आगन में अखाडा बनाकर कुश्ती लडने लगे। बाल मन इससे सतुष्ट नही हुआ। मेहनत करने के लिए पैरेलल बार (सतुलन दड) चाहिए। उसी दिन शाम को बाँस काटकर बार बनाया गया। उस पर झूलने का अवसर पाकर हम सब प्रसन्न हो गये।

"इसके बाद नित्य शाम को हम लोग अखाडे मे व्यायाम करने लगे। कोई डड मार रहा है तो कोई बैठकी। कई साथी हाथ मे राड लेकर अखाडे के चारो ओर दौडते थे, लेकिन यह सारा उपद्रव चुपचाप करते थे। गृहस्वामियो को इसकी भनक नही लग पाती थी। दीपक जलने के पहले मन ही मन हम लोग 'ओ ही घुँ-घुँ रक्ष-रक्ष स्वाहा' मत्र जपते हुए घर मे पवेश करते थे। अगर कही कोई बारहदरी में दिखाई दे जाता तो चुपचाप छिपकर घर के भीतर भाग जाते थे।

"सच पूछिये तो इस क्लब की स्थापना पडोस के क्लब को देखकर की गयी थी। हम लोग उनसे पिछडकर नही रहना चाहते थे। हिसावश कभी-कभी हाथ उठाकर उस क्लब के उद्देश्य से कहते—"कभी मौका मिला तो हम तुमसे किसी हालत मे पिछडे नही रहेंगे। एक दिन अपना कमाल दिखाकर रहेंगे।

"यहाँ व्यायाम के अलावा अन्य अनेक कार्य किये जाते थे। अगर पतगबाजी का झक्क सवार हुआ तो सरदार के आदेश पर कोई सरेस पकाता तो कोई खल-घट्टे से शीशा चूर करता। सागूदाना और अडे का इन्तजाम कर नक (तागा) मे मझा दिया जाता। गीली लकडी के कारण चूल्हे से धुआँ निकलने पर मुँह से फूकना पडता था।

"राजू (राजेन्द्र मजुमदार, श्रीकान्त उपन्यास का इन्द्रनाथ) धनी परिवार का लडका था। उनके पास कीमती परेता और रेशम का नक होता था। शनिवार को हाफ छुट्टी के दिन हम पतग उडाया करते थे। हमारे सरदार नक मे ऐसा मझा देते थे कि सभी पतगो को हम काट देते थे। आसमान पर पतगो की कलाबाजी देखकर अनायास मुँह से निकल पडता—' वाह काटा, बोमी है, भग्गू है। एक दिन एक पर एक कई पतग लगातार काट देने की वजह से राजू इतना झुझलाया कि अपना परेता नदी मे फेंककर घर चला गया। तुरत पतग उडाना बन्द कर शरत् राजू के पीछे-पीछे चला गया। इसी घटना के बाद से इन दोनो मे मित्रता हुई थी।

"गाँगुली परिवार के लडके बाहरी लडको के साथ दोस्ती न करने पाये, इस ओर गृहस्वामियो की तीखी नजर रहती थी। बगीचे मे खेलने की मनाही नही थी। यहा हम गोली खेलते थे। गुप्पी बनाकर पिलाते थे। यह खेल दो प्रकार का होता था। एक गुप्पीवाला दूसरा जीत वाला।

"इस खेल को गृहस्वामी भी पसन्द करते थे। शरत 'पिलन्ता' गोली खेलना अधिक पसन्द करता था। चार-छ लोगो से गोली लेकर गुप्पी की ओर फेकता, फिर जिस गोली को मारना होता, उसे मारता या दूर गोली फेंक देता। गुप्पी मे पिल जाने वाली गोली उठा लेता। अगर कही बतायी गोली मे मार देता तो सभी गोली उसकी हो जाती।

"बहादुर दर्जी के सिले कुर्ते, बडे बडे बाल लिए पिछवाडे के पेड मे वह न जाने कहा खेलने चला जाता और जब लौटता तब उसकी दोनो जेबो मे गोलिया भरी रहती थी, जिसे वह हम लोगो को बाँट देता था।

गृहस्वामियो की जितनी कडाई होती, उतना ही वह लापरवाह हो जाता था। उनकी आज्ञा न मानना ही उसकी आदत बन गयी थी। हम शनिवार की प्रतीक्षा बेसब्री से करते। सवेरे थोडी पढ़ाई, इसके बाद

आधा दिन छुट्टी और दूसरे दिन रविवार। मजा ही मजा।

शनिवार की शाम को यमुनिया मे गेरुए रंग का पानी होता था। गगा अपने तट से कुछ हट गयी हैं। उस पार भुट्टो के झूमते हुए पौधे हमे अपने पास आने का इशारा करते थे। ऐसी हालत मे मणि और शरत् कछाडा मारकर नदी मे कूद जाते।

शनिवार के दिन अमरनाथ चाचा के बरामदे के पास दुकाने लगती। इमली, रीठी के बीज, सूखे कैंथ, गूलर तथा और भी अनेक सामग्रियो से दुकाने सजायी जाती। दूसरी ओर टकसाल मे तेजी से सिक्के तैयार किये जाते थे। खपडा, सुराही के टुकडो को गढकर घिसे जाते थे। आकार के अनुसार रुपये, अठन्नी और चवन्नी बनाये जाते थे। शिशु-राज्य के उस आनन्द का वर्णन नही किया जा सकता।

टिड्डी के बारे मे शरत् के बाद छुनी का ज्ञान सबसे अधिक था। शरत् के साथ एक अर्से तक रहने पर भी मैं टिड्डियो के बारे मे ज्ञानशून्य रहा। वह शरत् के साथ राजा टिड्डी, केरानी टिड्डी, गगा टिड्डी, गधा टिड्डी आदि का वर्गीकरण करती थी। केवल यही नही, कौन टिड्डी क्या खाना पसन्द करती है, इसकी जानकारी इन दोनो की थी। मसलन राजा टिड्डी मदार की पत्ती पसन्द करती है। गधा टिड्डी पीपल के पत्ते खाती है।

देवानन्दपुर से जब शरत् पहले पहल आया तब शायद उसे चौथी पुस्तक तक का ज्ञान था। घर पर मामा-भाँजे की शिक्षा के लिए अक्षय पडित को प्राइवेट शिक्षक के रूप मे नियुक्त किया गया था। पडितजी पूरे यमराज थे। बडी-बडी दाढी और मूछे थी। आवाज जैसे बादल गरज रहे हो। पढाने की अपेक्षा अपना बाहुबल अधिक दिखाते थे। खासकर कमर के पास इस तरह चिकोटी काटते थे कि आँखो के आगे सरसो के फूल दिखाई देने लगते थे। इतना जरूर था कि पण्डित जी के ज्ञान-दान से मामा-भाजे निरन्तर पास होते गये।

बडे नाना का सख्त आदेश था कि यमुनिया नदी के उस पार रहने वाले मजुमदार परिवार से घर का कोई भी व्यक्ति सम्बन्ध न रखे। मजुमदार यानि रामरतन मजुमदार। वे डिस्ट्रिक इजीनियर थे। उनके सात लडके थे, जिनमे पाचवे का नाम राजेन्द्रनाथ मजुमदार था। परिवार तथा सभी मित्र उसे 'राजू' के नाम से पुकारते थे। यही राजू शरत् के श्रीकान्त का इन्द्रनाथ है। 'बचपन की कहानियाँ' मे लालू तथा राजू के नाम से शरत् ने कई कहानिया लिखी है।

शरत् के छोटे नानाओ के जितने पुत्र थे, वे हम उम्र थे और सभी डरपोक थे। मित्रता मे आनन्द तभी मिलता है जब एक दूसरे के पूरक और सहयोगी हो। शरत् आदत से नटखट और निर्भीक था। रोमाच उसके लिए प्रिय था। फलत राजू के साहस ने उसे आकर्षित किया और दोनो एक दूसरे के गहरे मित्र बन गये।

गाव की तरह यहा भी अक्सर वह शरारत करता रहा। स्कूल मे जल्दी छुट्टी हो जाय, इसके लिए उसने अपने मित्रो के साथ षडयत्र करके घडी की सूई तेज कर दी। 'ससार कोश' नामक पुस्तक पढकर पीपल की जड से साप को वश मे करने का प्रयत्न किया। घर मे वह कब, कैसे गायब हो जाता और फिर कब आकर कही छिप जाता, इसकी जानकारी कुसुम नानी के अलावा और किसी को नही होती थी।

जिस दिन कुसुम नानी (अघोरनाथ की पत्नी) को भोजन नहीं बनाना पडता, उस दिन उनके कमरे मे घर के सभी बच्चे एकत्रित होते थे। वे तत्कालीन कथाकारो की पुस्तके पढकर सुनाया करती थी। इसी गोष्ठी के कुछ श्रोता आगे चलकर बगला-साहित्य के कथाकार बने। शरत्, उपेन्द्रनाथ, सुरेन्द्रनाथ, गिरीन्द्रनाथ आदि मे साहित्य का बीजारोपण इसी गोष्ठी मे हुआ था।

प्रतिभा-सम्पन्न होने के कारण शरत् पर इन कहानियो का व्यापक प्रभाव पडा। अग्रेजी के अलावा अन्य किसी विषय पर उसे मेहनत नही करनी पडती थी। खाली दिमाग मे खुराफात सूझता ही है। अचानक एक दिन पिताजी द्वारा लिखित रचनाएँ हाथ लग गयी। फिर क्या पूछना। सबकी निगाह बचाकर उन्हे पढने लगा। इस बारे मे उन्होने लिखा है—

"हमारे घर में एक टूटा पुराना बक्सा था, जिसमे फटी हुई कुछ कापिया तथा पिताजी द्वारा लिखित रचनाएँ थी। मेरे पिताजी बहुत लिखते थे। उनकी शैली मे अपनी विशिष्टता थी। पिताजी के बक्से से 'हरिदास की गुप्तकथा' और 'भवानी पाठक' निकालकर पढने लगा। गुरुजनो को दोष देना नही

चाहता। यह सब पाठ्य-पुस्तकें नही थी। आवारा लडको के लायक अपाठ्य पुस्तकें थी। इन्हे पढने के लिए गोशाला चला जाता था। यहाँ मैं बैठकर पढता जिसे उपस्थित मेरे सभी मित्र सुनते थे।"

इन्ही दिनो के बारे मे सुरेन्द्रनाथ ने लिखा है—"छात्रवृत्ति परीक्षा पास करने के बाद शरत्चन्द्र सर्वविद्या विशारद बन गया। अंग्रेजी के अलावा उसे कुछ नही पढना पडता था। तभी "हरिदास की गुप्त कथा" जैसा अमूल्य साहित्य पढने लगा। कहने की आवश्यकता नही कि इस उम्र में इस प्रकार की रचनाएँ कितनी दिलचस्पी के साथ पढी जाती हैं। मोतीलाल इस प्रकार का साहित्य चुपचाप छिपाकर लाते थे। इन सभी को शरत्चन्द्र ने चोरी से बराबर पढता रहा।

"इस तरह के साहित्य के अध्ययन का परिणाम अच्छा हुआ या खराब, इसका निर्णय सुधिजन कर सकते हैं। शरत् का विश्वास था कि खराब नतीजा नही हुआ था।"

"वर्ष के अन्त में डबल प्रमोशन मिलने पर उसके सभी शिष्य खुशी से फूले नही समाये। छोटे प्रसन्न हुए तो बडे भी शरत् के प्रति आशान्वित हुए। लोगो की आँख बचाकर साहित्य-चर्चा करने पर भी वह अध्ययन के प्रति कभी लापरवाही नही करता था।

ठीक इन्ही दिनो केदारनाथ अपने गाव से लौटे। लौटते समय बगाली टोला की मोड पर उनकी गाडी उलट गयी। विध्यवासिनी देवी घायल हो गयी। काफी दिनो तक इलाज कराने पर भी वे स्वस्थ नही हो सकी। डाक्टरो ने कहा कि इन्हे कलकत्ता ले जाइये। आखिर मे केदारनाथ ने मोतीलाल को बुलाकर कहा—"मैं भुवन की मा को लेकर कलकत्ता जा रहा हूँ। रिटायर्ड हो जाने के कारण मेरा महत्व भी घट गया है। अच्छा होगा कि अब तुम अपने गाँव लौट जाओ।"

केदारनाथ के इस आदेश को मानकर मोतीलाल सपरिवार देवानन्दपुर वापस आ गये।

जीवन की पाठशाला

परिस्थितियो मे लाचार होकर मोतीलाल देवानन्दपुर वापस आ गये। उनके आगमन से किसी को आश्चर्य नही हुआ। इस प्रकार वे कई बार गये और वापस आये।

मोतीलाल यह महसूस करते थे कि यहाँ गुमाश्तागिरी करने पर पूरे परिवार का खर्च आसानी से चलाया नही जा सकेगा। कम से कम भागलपुर मे वे इस चिन्ता से मुक्त थे। तभी भुवन ने जोर देकर नेडा को स्कूल मे भर्ती कराया। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि लडका पढ-लिखकर कमासुत बने, ताकि घर की दरिद्रता दूर हो।

गाँव की पाठशालाओ की शिक्षा समाप्त कर चुका था, इसलिए उसे सदर मे स्थित स्कूल मे भर्ती किया गया। गाँव से कई लडके नित्य सवेरे पैदल हुगली शहर के ब्राच स्कूल जाते थे। देवानन्दपुर से हुगली तीन मील दूर है।

अपने स्कूली जीवन की कठिनाइयो की चर्चा करते हुए शरत् बाबू ने लिखा है—"पक्का दो कोस रास्ता पैदल चलकर स्कूल जाया करता हूँ—विद्यार्जन करने। मैं अकेला नही हूँ और भी दस-बारह लडके हैं, जिनके घर गाँव मे हैं, उनके लडको को अस्सी फीसदी इसी तरह विद्यालाभ करना पडता है। जिन लडको को सवेरे आठ बजे के भीतर खा-पीकर, घर से निकलकर दो कोस जाना और दो कोस आना—चार कोस रास्ता तय करना पडता है—चार कोस माने आठ मील नही, उससे भी अधिक, वर्षा के दिनो मे सिर पर बादलो का पानी और पैरो के नीचे घुटनो तक कीचड तथा गर्मियो मे पानी के बदले कडी धूप और कीचड के बदले धूल के समुद्र मे तैरते हुए स्कूल तथा घर आना-जाना पडता है, उन अभागे बालको पर माता सरस्वती प्रसन्न होकर वर दे या उनके कष्टो को देखकर कही अपना मुँह छिपा ले, यह वे खुद भी सोच नही सकती।

"मलेरिया की बात नही छेडता। उसे रहने दो। मगर इस चार कोस पैदल चलने की आफत के मारे कितने परिवार बाल बच्चो को लेकर गाँव से शहर भाग जाते हैं, इसकी गणना नही। इसके बाद एक दिन लडको की शिक्षा समाप्त हो जाती है, फिर शहर का आराम छोडकर कोई गाव वापस आना नही चाहता।"

"मैं स्कूल जाता हूँ। दो कोस के बीच मे ऐसे कई गाँव पार करने पडते हैं। किसके बाग मे आम पकने लगे हैं, किस जगल मे करौंदे काफी लगे हैं, किसके पेड़ पर कटहल पकने को है, किसके घौद मे केले पक गये हैं, किसके खेत में अनन्नास का रस बदल रहा है, किसके तालाब मे खजूर के पेड से खजूर तोडकर खाने की आशा कम है, इन सब बातो का पता लगाने मे समय बीत जाता है। ऐसी हालत मे इरकुटस्क की राजधानी का नाम बताना या साइबेरिया की खान मे चांदी मिलती है या सोना--इन बातो का जवाब देना कठिन हो जाता है।"

शरत् बाबू के स्कूली जीवन का यह एक वास्तविक चित्र है। उन्नीसवी शताब्दी मे भारत के ग्रामीण क्षेत्र की क्या दशा थी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। शायद इसीलिए वे अक्सर घर से भाग जाते थे। ननिहाल मे कुछ दिनो तक सुख भोगने के बाद देवानन्दपुर का अभावग्रस्त-जीवन उन्हे बुरी तरह परेशान करता रहा।

देवानन्दपुर के माहौल से नाराज होकर नेडा कई बार घर से भाग गया था। एक बार पैदल ही पुरी (जगन्नाथ-धाम) पहुँच गया था। कृष्णपुर स्थित रघुनाथ गोसाई के अखाडे मे भागकर आने की परम्परा बचपन से ही थी।

अपने भगोडे जीवन के बारे मे शरत् बाबू ने कहा है--"मुझे ऐसे दिन गुजारने पडे हैं जब दो दिनो तक भूखा रहना पडा है। अनाहार के कारण नीद नही आयी। कधे पर गमछा रखे, एक गाँव से दूसरे गाँव तक पैदल सफर करता रहा। भूख लगने पर जब किसी घर से भोजन की मांग की तब मेरे पीछे कुत्ते को दौडा दिया गया था। ये लोग भद्र पुरुष थे। न जाने कितने डोम-चमारो के यहाँ भोजन किया है। गाँव के लोगो से मिलता, उनके दु.ख-सुख की कहानियाँ सुनता, उनके प्रति सहानुभूति दिखाता रहा। फलत उनकी जबानी उनकी दर्द भरी कहानियाँ सुनता रहा। सच पूछो तो मेरे उपन्यासो के सभी पात्र और चरित्र असली हैं। उन्हे मैंने देखा है।"

देवानन्दपुर गाँव के वर्तमान जमीदार नव गोपाल दत्त मुशी थे, जिनके यहाँ मोतीलाल गुमाश्ता थे। छोटी जमीदारी, आमदनी कम और उसी तरह मोतीलाल को सामान्य वेतन मिलता था। आय की कमी के कारण आधे से अधिक लोग गाँव छोडकर अन्यत्र चले गये थे। स्वय मोतीलाल भी इसी विवशता के कारण चले जाते थे। केवल कुछ काश्तगार शेष रह गये थे।

हुगली ब्रॉच स्कूली जीवन के बारे मे द्विजेन्द्रनाथ दत्त मुशी ने लिखा है--"देवानन्दपुर से जितने लडके हुगली पढने जाते थे, उन सभी के नेता शरत्चन्द्र थे। कुल पॉच-छ छात्र थे। कच्ची सडक, गरमी के दिनो मे गर्द और बरसात मे कीचड का कष्ट सहना पडता था। मार्ग मे अपने साथियो को मजेदार कहानिया सुनाया करते थे। गाँव के बाहर तिमुहानी पर एक ठूठा पीपल का वृक्ष था। सातगाव, कृष्णपुर आदि से जब लोग कोई शव श्मशान ले जाते थे, तब यही शव रखकर शव-वाहक विश्राम करते थे। हुगली सातगाँव के मार्ग को 'दत्ता' उपन्यास मे ठूठा पीपल को 'ठूठा बरगद' लिखा गया है। शव वाहक यहाँ सनई जलाकर फेक देते थे। पास ही मुशीजी का 'गलाय दडेर बागान' (बगीचा) के पास एक पोखरी है, जिसमे शव के अनावश्यक कथरी चद्दर आदि फेक दिये जाते थे। 'श्रीकान्त' उपन्यास के चौथे खण्ड मे 'खा का गलाय दडेर बागान' का उल्लेख है। यहाँ से गुजरते समय बच्चे भयभीत हो जाते थे। दु साहसी शरत्चन्द्र अपने मित्रो के साथ इस ठूंठे पीपल तथा 'गलाय दडेर बागान' से गुजर जाते थे।

"गाँव के भीतर जमीदार के 'हेदुआ तालाब' के पास स्थित जगल मे एक बडा गड्ढा खोदकर विभिन्न बागो से लाये फलो को छिपाकर रखते थे। अवकाश के समय मित्रो के साथ बैठकर चुराये गये इन फलो को खाते थे। छुट्टी के दिन, दोपहर को या स्कूल से गायब होने पर, गाँव मे स्थित 'नयी पोखरी' मे कटिया फेककर मछली फँसाते थे। कभी-कभी अपने हाथ से बसी बनाकर मछली पकडते थे। अगर मन मे आया तो फेरी घाट से मल्लाहो की निगाह बचाकर, नाव लेकर कृष्णपुर रघुनाथ गोसाई के अखाडा या और आगे सप्तग्राम के पुल तक चले जाते थे। कृष्णपुर स्थित वैष्णवो का अखाडा इनका प्रिय स्थान था। कभी कभी मित्रो के साथ पैदल ही चले आते थे। इस स्थान का वर्णन 'श्रीकान्त' उपन्यास के चौथे खण्ड मे 'मुरारीपुर का अखाडा' के नाम से है। मैंने स्वय अपनी आँखो से देखा है कि जब वे कभी देवानन्दपुर घूमने आते थे तब सरस्वती नदी के किनारे काफी दूर तक चले जाते थे। उनके बचपन का यही

क्रीडा-क्षेत्र रहा है।

"अपने बचपन मे वे जितने साहसी थे, उतने ही कोमल-हृदय के थे। आर्त पीडितो की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते थे। हुगली ब्राच स्कूल मे पढते समय वे एक हाथ मे लाठी और दूसरे हाथ में लालटेन लेकर, तीन मील दूर सुनसान सडक को पार करते हुए, रोगी के लिए दवा या डाक्टर को बुला लाते थे। न जाने कितने रोगियो की सेवा रात-रात भर जागते हुए करते रहे।

"एक ओर गाँव के लोग इनकी शरारत से नाराज रहते थे, दूसरी ओर इनकी सेवा, सत्साहस देखकर प्रशसा करते थे। गाँव के जमीदार मुशीजी के प्रिय पात्र रहे। जमीदार साहब के पुत्र अतुल चन्द्र दत्तमुशी इन्हे अपने साथ कई बार कलकत्ता ले गये थे। शरत्चन्द्र की कहानी कहने की प्रतिभा देखकर उन्होने कलकत्ता के रगमचो के नाटको को दिखाया था।

'देवानन्दपुर के एक अन्य कायस्थ परिवार के साथ शरत्चन्द्र की घनिष्ठता थी। इस परिवार के एक बालक के साथ शतरज खेलते थ।"

श्री मुशी ने जिस बालक का उल्लेख किया है, वह अन्य कोई नही, रामसदन मुशी था। प्यारी पडित की पाठशाला से लेकर हुगली ब्राच स्कूल तक वह शरत् का सहपाठी था। शरत् अपने बचपन मे जिस प्रकार राजलक्ष्मी पर हुकूमत चलाते थे, ठीक उसी प्रकार राससदन पर भी चलाते थे। वास्तव में राजलक्ष्मी और रामसदन दोनो शरत् के सहायक रहे। दोनो 'गडेर जगल' के भीतर अपने अड्डे पर लोगों की निगाह बचाकर हुक्का पीते थे। सहसा जब इसकी सूचना रामसदन के अभिभावकों को मिली तो उन्होने कडाई की।

अभिभावक डाल डाल चले तो उनके वशधर पात पात चलने लगे। रामसदन के घर के पिछवाडे एक पेड था। उसी के सहारे शरत् रामसदन के घर की छत पर चढ जाता और वही चाँदनी मे दोनो शतरज खेलते तथा हुक्का पीते थे।

उन दिनो शरत् अपने पास धमकाने के लिए एक छूरा रखता था। यह देखकर मुशी परिवार के किसी सदस्य ने 'डाकू-शरत्' कह दिया। हमजोलियो मे वह 'नेडा' के नाम से प्रसिद्ध रहा। अब इस नये नाम के कारण वह क्रोधित हो उठा। मुशी-परिवार को मजा चखाने के लिए एक रात उसने उनके बाग को नष्ट कर दिया। अपने बाग का सत्यानाश हुआ देखकर वे हाय-हाय कर उठे, पर प्रत्यक्ष रूप मे 'नेडा' की शिकायत नही कर सकते। पता नही आगे और क्या कर डाले।

प्यारी पंडित की पाठशाला से हटकर शरत् कुछ दिनो तक सिद्धेश्वर पडित की पाठशाला मे पढता रहा। सिद्धेश्वर पडित का एक छोटा भाई सतीश था। इस बार उससे काफी मित्रता हुई। शरत् मे सगीत का शौक पैदा करने मे सतीश का प्राथमिक हाथ था। बाद मे भागलपुर जाकर राजू से अच्छी तरह सीखा था।

हुगली ब्राच स्कूल के सहपाठियो मे काली साधन दत्तमुशी, प्रफुल्लचन्द्र दत्तमुशी, रामसदन दत्तमुशी, हृषिकेश मजुमदार, शैलेन चटर्जी और कृष्णपुर का गौहर भी था। शरत् इन सभी बालको का सरदार था। अब भी वह लोगो के बाग से फल चोरी करता रहा।

इन दिनो के बारे मे शरत् बाबू ने लिखा है—

"बचपन की बाते अच्छी तरह याद है। गाँव मे मछली पकडने, नाटको मे अभिनय करने और चुपके से नाव खोलकर सैर करने की आदत थी। जब इस मौज मे मेरा मन परिपूर्ण हो उठता तब कधे पर गमछा रखकर निरुद्देश्य यात्रा पर निकल जाया करता था। विश्व कवि के काव्य की तरह निरुद्देश्य यात्रा नही, यह यात्रा अलग किस्म की होती। आखिर एक दिन थका मादा, क्षत विक्षत पैरो को लेकर घर वापस आ जाता। आदर-अभ्यर्थना के बाद पुन मुझे स्कूल भेज दिया जाता था।"

इस बीच शरत् के दो छोटे भाइयो ने जन्म लिया। प्रभास और प्रकाश। भुवन ने अनुभव किया कि लडकी बडी हो रही है और घर की पूजी समाप्त होती जा रही है। अगर अभी कोई प्रयत्न नही किया गया तो शादी नही हो सकेगी। गाँव मे इतनी बडी बिन ब्याही लडकी एक भी नही है। इस बारे मे राजलक्ष्मी की मा कई बार कह गयी है। बार बार कोचने पर अनिला का विवाह गोविन्दपुर के पचानन मुखर्जी के साथ कर दिया गया। वे सम्पन्न काश्तकार थे।

भागलपुर से आने के बाद से शरत् मे तेजी से विकास हुआ। वय सधिकाल मे प्रत्येक किशोर-किशोरियो मे परिवर्तन होता है। इस उम्र मे अनेक दुर्दम्य कामनाएँ मन मे उत्पन्न होती हैं। अनेक रगीन सपने दिखाई देते हैं। जिस प्रकार वर्षा का जल पाकर छोटी नदियाँ मार्ग की सारी बाधाओ को ठेलती हुई उफनने लगती हैं, ठीक उसी प्रकार कच्चे दिमाग मे, यौवन के आगमन पर कुछ कर गुजरने की इच्छा बलवत् हो उठती है। इन दिनो शरत् के किशोर मन की यही स्थिति थी। भागलपुर में नानाओ के अनुशासन का भय था, पर यहाँ उसे किसी बात की चिन्ता नही थी। मुक्त विहग की तरह इस पेड से उस पेड पर कूदता फादता रहा।

देवानन्दपुर मे व्यतीत किये गये इस दिनो की छाप उनकी समस्त रचनाओ मे हैं। श्रीकान्त, पथ के दावेदार मे रगून मे व्यतीत किये गये सस्मरण हैं और चरित्रहीन मे आराकान के बारे मे थोडी-सी झलक है। शेष रचनाओ मे हुगली जिले के विभिन्न स्थानो का उल्लेख है जहाँ वे अपने भगोडे जीवन मे चक्कर काटते रहे।

'पण्डित महाशय' मे बाडल गाँव का जिक्र है। यह गाँव देवानन्दपुर से काफी दूर पश्चिम दिशा मे है। सरस्वती नदी के उस पार बारेक गाँव से आगे मालिनपुर गाँव है। इस गाँव के पश्चिम बाडल है। पण्डितजी की पत्नी कुसुम अपनी सौत के पुत्र चरण को लेकर घर के पास स्थित नदी मे नहलाने ले जाती है। यह अन्य कोई नदी नही, सरस्वती नदी है।

कुँज वैष्णवी की ससुराल का नाम है—नलडाँगा, जो कि बेण्डेल स्टेशन के समीप है। देवानन्दपुर मे सभवत कोई वैष्णवी रहती थी। एक का जिक्र 'श्रीकान्त' मे है और मुशीजी ने स्वीकार किया है कि केष्टा (श्रीकान्त मे यशोदा) वैष्णव रहता था। इसी उपन्यास मे वैद्यवाटी गाँव का उल्लेख है। यह गाँव हुगली जिले मे है और आजकल यहाँ इसी नाम से स्टेशन बन गया है।

"बैकुण्ठ का वसीयतनामा" तथा 'निष्कृति' मे चुचडा का उल्लेख है। चुचडा स्टेशन बेण्डेल से तीसरा स्टेशन है। 'बैकुण्ठ का वसीयतनामा' बाबूगज गाँव पर आधारित उपन्यास है। यह गाँव भी हुगली जिले का अग है।

'श्रीकान्त' तथा 'दत्ता' मे ठूठे बरगद और सरस्वती नदी का उल्लेख है। कृष्णपुर गाँव का जिक्र 'श्रीकान्त', 'दत्ता' और 'विराज बहू' मे है। 'विराज बहू' मे सप्तग्राम, मगरा और हुगली का उल्लेख है। इसके अलावा विराज बहू जिस पचाननतला मे मन्नत मानने गयी थी, वह देवानन्दपुर के समीप बारेकपुर मे है। इलाज के लिए वह हुगली अस्पताल मे गयी थी। पति तथा ननद से उसकी मुलाकात तारकेश्वर मे हुई थी। ये सभी स्थान हुगली जिले मे है।

'शुभदा' तथा 'बचपन की कहानिया' मे हलुदपुर, कुन्ती नदी, महेशपुर तथा नारायणपुर का उल्लेख है। 'परिणीता' का गिरीन बाकीपुर निवासी है। जबकि शरत् के गिरीन मामा कुछ दिनो तक बाकीपुर (पटना) मे थे। 'देवदास' मे पाण्डुआ, 'बिन्दो का लडका' मे उत्तरपाडा, 'अरक्षरणीया' मे हरिपाल, 'ग्रामीण समाज', 'रामेर सुमति' मे तारकेश्वर का, 'विलासी' मे कौतुला का, 'मझली दीदी' मे विशालाक्षी मंदिर तथा राजहाट का, 'बचपन की कहानियां', बिराज बहू और 'दत्ता' मे क्रमश ग्रैण्ड ट्रक रोड, त्रिवेणी सगम, हुगली और दीघडा का उल्लेख है।

'श्रीकान्त' उपन्यास एक प्रकार से शरत् बाबू की आत्मकथा हैं। १५ नवम्बर, सन् १९१५ ई० को, अपने प्रकाशक श्री हरिदास चटर्जी के नाम पत्र लिखते हुए शरत् बाबू ने लिखा है—"श्रीकान्त की भ्रमण कहानी के साथ कुछ तो मेरा सम्बन्ध रहेगा ही।'

अपने घनिष्ठ मित्र श्री कालिदास राय से वार्तालाप करते हुए शरत् बाबू ने कहा था—"मुझे अपने बारे में जो कुछ कहना है, वह सब मेरी पुस्तको मे है। इतनी अधिक आत्मकथा और अभिज्ञता अन्य किसी लेखक की कृतियो मे नही है। मेरी पुस्तके पढकर अगर कोई मेरे अन्तर्जीवन का उद्धार न कर सका तो वह मेरे बारे मे कुछ भी नही लिख सकेगा।"

कालिदास राय ने पूछा—"श्रीकान्त मे आप एक हद तक उपस्थित हैं।"

शरत् बाबू ने कहा—"सभी उपन्यास तो लेखको की आत्मकथा होते हैं, केवल चरित्रो की ही सृष्टि की जाती है। अपने अनुभवो के अलावा लेखक और क्या लिखेगा? अगर वह अपने मन से कुछ देता है तो

वह छद्मवेशी निवन्ध होगा, उपन्यास नही। मैंने श्रीकान्त के माध्यम से अपनी स्मृतिकथा को स्पष्ट किया है। गोकि सम्पूर्ण रूप से नही, पर अधिक मात्रा मे है। इसी कारण उसे उत्तम पुरुष के रूप में लिखा है। प्रारम्भ मे भागलपुर मे व्यतीत किये गये दिनो की कहानी है। यह तो तुम जानते हो कि वचपन मे मैं अपने मामा के घर रहता था।"

कालिदास राय ने कहा—"इन्द्रनाथ मे जरा एम्फीसिस दिया गया है।"

शरत् ने कहा—"विल्कुल नही। यह ठीक है कि कई वार गगा-भ्रमण कराया है। उस तरह का चरित्र अपने जीवन मे दूसरा नही देखा। सच पूछो तो उसके चरित्र को संपूर्णरूपसे चित्रित नही कर सका हूँ। नूतन दादा के चरित्र मे जरा रग चढाया है।"

कालिदास ने पूछा—"अच्छा, क्या अन्नदा दीदी वास्तव मे थी? क्योंकि वास्तविक जीवन मे इस तरह के चरित्र देखने मे नही आते।"

शरत् वावू ने कहा—"मैंने भी अपने जीवन में एक वही चरित्र देखा था, इसमे जरा भी अत्युक्ति नही है। सापो के वारे मे मुझमे अपार कुतूहल है। इस सिलसिले मे अनेक सपेरो से मिल चुका हूँ। मैं वरावर यह जानना चाहता था कि सापो को वश मे करने लायक कोई जडी-वूटी है या नही?"

कालिदास राय ने विषय को वदलते हुए पूछा—"क्या अमावस की रात को आप श्मशान भूमि गये थे?"

शरत् ने कहा—"विलकुल। यह मत भूलो कि श्रीकान्त इन्द्रनाथ का पक्का चेला रहा। उसके लिए कुछ भी असाध्य नही रहा।"

कालिदास राय ने कहा—"मैंने सोचा कि शायद राजलक्ष्मी के हृदयावेग को वढाने के लिए आपने ऐसा लिखा है।"

शरत् वावू ने कहा—"अगर वह घटना असत्य होती तो उसे पुस्तक मे स्थान न देता।"

कालिदास राय ने पूछा—"शौकिया सन्यासी-जीवन का आपने वही अन्त कर दिया।"

शरत् वावू ने कहा—"मेरा सन्यासी-जीवन तो समाप्त नही हुआ है, पर श्रीकान्त को फिर तग नही किया। पोडामाटी गाव मे डोम घराने की घटना मेरे गाव मे हुई थी। यह मेरे बचपन की वात है। विहार मे वालिका वधू की शोचनीय कहानी भी सच है। गौहर सम्पूर्ण रूप से कल्पित पात्र नही है। यही वात कमललता के वारे मे कही जा सकती है। श्रीकान्त के तीसरे खण्ड मे अग्रदानी के वारे मे चर्चा है, वह मेरे यायावर-जीवन की घटना है। गाव की सारी स्मृतियां चौथे खण्ड मे है।"

कला की दृष्टि से 'गृहदाह' शरत् वावू की अनुपम कृति है और आत्मजीवनी की दृष्टि से 'श्रीकान्त' को श्रेष्ठ माना गया है। लेकिन एक और उपन्यास है जिसके वारे मे विशेष चर्चा नही होती जवकि उपन्यास की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और वह है—चरित्रहीन।

चरित्रहीन शरत् वावू की एक ऐसी कृति है, जिसे वे लम्वे समय तक लिखते रहे। 'श्रीकान्त' मे वे छिप नही सके, पर चरित्रहीन मे उन्होने अपने आप को पूर्ण रूप से छिपाया है। इस उपन्यास को इन्होंने देवानन्दपुर रहते समय लिखने का सकल्प किया था। ज्ञातव्य रहे कि सत्रह वर्ष की उम्र मे 'काशीनाथ' लिख चुके थे और 'काकवासा' लिखते रहे। वाद मे भागलपुर आकर पुन सशोधित करके लिखा था। इस वीच 'अभिमान' इस्टलिन का अनुवाद किया। 'पाषाण' और 'ब्रह्मदैत्य' दो उपन्यास एव 'सुकुमारेर वाल्यकथा' नामक कहानी लिखी। यह सारी सामग्री गायव हो गयी। इन्हे पुन: लिखने का प्रयत्न नही किया गया, लेकिन 'चरित्रहीन' के वारे मे ऐसी वारदात नही हुई। भागलपुर से इसका लेखन प्रारभ हुआ जो कलकत्ता और रगून मे लिखा जाता रहा। ५ फरवरी, १९१२ ई० मे घर मे आग लगी और सारी पाण्डुलिपि जल गयी। क्या जरूरत थी इसे पुन लिखने की? जैसे पूर्व की रचनाए खो गयी, इसे भी खोया हुआ मान लेते।

लेकिन ऐसा नही हुआ। इसे पुन: लिखा गया। इसके प्रकाशन के लिए शरत् वावू रगून से सन् १९१४ में कलकत्ता आये। 'साहित्य' के सपादक सुरेश समाजपति से वाते हुईं, वे छापने को तैयार नही हुए। 'भारती' मे प्रकाशनार्थ देना शरत् को स्वीकार नही हुआ। 'भारतवर्ष' पत्र से इस उपन्यास को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ और अन्त मे 'यमुना' पत्रिका मे धारावाहिक रूप मे छपने लगा। इस उपन्यास

को लेकर सपूर्ण बगाल मे तूफान मचा। साहित्य सम्मेलन मे कटु आलोचनाए हुई। शरत् स्वय चरित्रहीन हैं, इस बात का तेजी से प्रचार हुआ। सभ्य घराने मे उनका प्रवेश निषिद्ध हो गया। जब उनके मित्र इस उपन्यास की चर्चा करते तब शरत् बाबू खिजलाकर कहते—"चरित्रहीन उपन्यास चरित्रहीन लेखक की एक रचना है।"

अब सवाल यह उठता है कि आखिर इस उपन्यास के प्रति शरत् बाबू मे इतना मोह क्यो था? किशोरावस्था मे कुछ ऐसी घटनाए हो जाती हैं जिसे आजीवन भुलाया नही जा सकता। सामान्य व्यक्ति बातचीत मे उल्लेख करता है, सोचता है, अपनी मूर्खता पर हंसता और कभी कभी मीठे स्वप्न देखता है। सभवत शरत् बाबू बचपन की उन घटनाओ को भुला नही सके और उसे मूर्त्त रूप दे दिया। प्रत्येक लेखक यही करता है। सशक्त लेखनी से वास्तविक घटनाए चिर स्मरणीय बन जाती हैं। 'चरित्रहीन' देवानन्दपुर की घटना है, इसका प्रमाण निम्नलिखित वार्तालाप से सिद्ध हो जाता है।

उपन्यासो की चर्चा चलाते हुए शरत् बाबू के मामा सुरेन्द्रनाथ गागुली ने 'चरित्रहीन' उपन्यास के बारे मे कहा—"मैं इस उपन्यास को सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ।"

"देखो, 'चरित्रहीन' के बारे मे तुम लोग काफी 'हो-हल्ला' कर चुके हो, पर मैं बिलकुल एडमट हूँ। तुम लोग कहानी पर ध्यान देते हो, मैं चरित्र पर ध्यान देता हूँ। चरित्रहीन मे मैंने कोई गलती नही की है, इसका मुझे दृढ विश्वास है। छप जाने दो तब एक दिन तुम्हे सारी बाते बताऊगा।"

सुरेन्द्र बाबू हँसने लगे।

"तुम्हारी हँसी मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ। आखिर बात क्या है, बताओ।"

"बात कोई महत्वपूर्ण नही है। सीधा-साधा है। तुम चालाक शैतान हो और मैं बेवकूफ शैतान हूँ। तुममे और मुझमे यही अन्तर है।"

"अरे, तुम तो पहेली बुझाने लगे।"

"यह कला तुमसे ही सीखी है।"

"मतलब?"

"तुमने अनेक बार मुझसे कहा है कि चरित्रहीन पुस्तक से हम लोगो का कोई सम्बन्ध नही है। उसमे तुम्हारी देवानन्दपुर की अभिज्ञता है। इसमे कोई आश्चर्य नही। क्योंकि जिस उम्र मे सेक्स बुद्धि जन्म लेती है, उस उम्र को तुमने देवानन्दपुर मे गुजारा है। सुरबाला के बारे मे सच-झूठ मिलाकर काफी बाते कह चुके हो। तुम पुरी क्यो भाग गये थे, इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ। सावित्री के बारे मेभी बता चुके हो, लेकिन इनमे अपनी रसिकता की बाते छिपा गये हो। यह मैं जानता हूँ कि उन बातो को खोलकर बताया भी नही जा सकता।"

"क्यो?" शरत् ने प्रश्न किया।

"यह असभव है। मनुष्य के मन मे ऐसी अनेक बाते उत्पन्न होती हैं, जिसे किसी के सामने कहा नही जा सकता। अगर मजबूरन कहना पडा तो काफी बचाव और छिपाव के साथ कहना पडता है। इस मामले मे तुम उस्ताद हो। तुमने मुझसे अनेक बार कहा है कि यह देवानन्दपुर की कहानी है। इसे मैं अस्वीकार नही करूँगा, क्योंकि अगर प्रथम पर्व मे देवानन्दपुर की घटना न होती तो तुम पैदल ही पुरी क्यो भागते। जब तुमने अनुभव किया कि सुरबाला को समझने मे तुमने गलती की है तो अपने को अपराधी समझा तब अपने इस पाप के प्रक्षालन के लिए पुरी भाग गये। मार्ग मे तुम्हारी मुलाकात सावित्री से हुई थी। ठीक कह रहा हूँ न?"

आखिर तक शरत् बाबू को स्वीकार करना पडा—"काफी हद तक तुमने समझ लिया है, पर पूर्ण रूप से पकड लेना कठिन है। देवानन्दपुर मे उसका श्रीगणेश हुआ था। पुरी भागना भी सही है। सावित्री उसका असली नाम नही है। आगे जाकर वह खो गयी, यह भी सच है, पर लेखक ने कितने कौशल से उसकी रचना की है, उसकी प्रशसा नहीं करोगे?"

उपरोक्त बातचीत से यह स्पष्ट हो जाता है कि चरित्रहीन मे देवानन्दपुर की घटनाएँ हैं। वास्तव मे शरत्-साहित्य मे अधिकतर भोगा हुआ यथार्थ है। 'देना-पावना' उपन्यास के बारे मे एक बार रवि बाबू से उन्होने कहा था कि 'देना-पावना' सत्य घटना पर आधारित उपन्यास है।

इस उपन्यास के बारे मे मनोरजन चक्रवर्ती ने प्रश्न किया था। उत्तर मे शरत् बाबू ने कहा था—"एक बार वीरभूमि गया था, जहाँ एक चण्डी का मठ है। वहाँ के जमीदार की अनेक बदनामी सुनने मे आयी। उक्त जमीदार को भी किसी की जायदाद मिली थी। देना-पावना का जमीदार वही जीवानन्द है।"

शरत् बाबू कथाकार बनने की प्रतिभा का विकास देवानन्दपुर मे हुआ। कुसुम नानी की गोष्ठी मे निरन्तर भाग लेने के कारण उन्होने लच्छेदार ढग मे कहानी कहने की कला सीखी, जिसका उपयोग अपने स्कूल के सहपाठियो के साथ करते रहे। कहा जाता है कि एक दिन जब गाँव के जमीदार के सुपुत्र अतुलचन्द्र को यह मालूम हुआ कि शरत् कहानी लिखता है तो उससे माँगकर उसकी कापी ले गये। शरत् की कहानी पढकर वे मुग्ध हो उठे। उन्होने कहा कि मेरे साथ कलकत्ता चलना। वहाँ प्राय नाटक होते हैं। उन नाटको को देखने के बाद उसकी कहानी लिखकर दिखाओगे तब समझूँगा कि तुममे कहानी लिखने की प्रतिभा है।

इस पकार शरत् मे कहानी लिखने की पतिभा अकुरित हुई। शरत् बाबू यह मानते हैं कि उनमे कहानी लिखने की जो प्रवृत्ति उत्पन्न हुई, वह पिताजी की देन है।

अपने पिताजी की इस प्रवृत्ति के बारे मे स्वय शरत् बाबू ने लिखा है—"पिताजी से मुझे अस्थिर स्वभाव तथा साहित्य के प्रति गहरी अभिरुचि के अलावा और कुछ प्राप्त नही हुआ। पितृदत्त प्रथम गुण के कारण मैं घर से भागकर यायावरो की तरह सपूर्ण भारत घूमता रहा। पिता के द्वितीय गुण के कारण मैं आजीवन स्वप्नलोक मे विचरण करता रहा। मेरे पिता मे अगाध पाण्डित्य था। छोटी कहानिया, उपन्यास, नाटक, कविता—यानि कहने का मतलब साहित्य के सभी विषयो पर कलम चलायी थी। खेद है कि वे किसी भी रचना को पूर्णता प्रदान नही कर सके थे। उनकी अधूरी रचनाएँ आज मेरे पास नहीं हैं, लेकिन इतना याद है कि बचपन मे इन अधूरी रचनाओ को लेकर घण्टो समय गुजार देता था। उन रचनाओ को वे पूरा नही कर गये, इस पर दु ख होता था। उन असमाप्त रचनाओ का अन्त क्या होना चाहिए, इस बारे मे सोचते सोचते राते गुजर जाती थी। शायद इसीलिए सत्रह वर्ष की उम्र मे मैंने लिखना प्रारभ किया था।"

श्री मुशी ने शरत् बाबू के प्राथमिक रचनाओं के लेखन के बारे मे लिखा है—"इन घटनाओ के कारण शरत् बाबू मे बचपन से ही असामान्य प्रतिभा के बीज अकुरित हुए थे। उन दिनो किसी को इस बात की कल्पना नही थी कि यह नटखट बालक भविष्य मे बगला साहित्य मे विशेष अवदान देगा। ज्ञातव्य रहे कि 'काशीनाथ' और 'काकबासा' नामक दोनो पुस्तकें देवानन्दपुर मे लिखी गयी थीं। उनके सहपाठियो की जबानी यह भी सुन चुका हूँ कि इन कहानियो को वे लोग शरत् बाबू की जबानी सुनते रहे। जो लोग यह कहते हैं कि इसकी रचना भागलपुर मे हुई है, उनकी धारणा सही नही है। मुमकिन है कि भागलपुर मे सशोधित कर पुन लिखी गयी हो।"

शरत् बाबू के अनन्य मित्र श्री सौरीन्द्र मोहन मुखोपाध्याय ने भी मुशीजी के कथन को स्वीकार किया है—"बचपन से ही उन्हे कहानी लिखने का शौक रहा यानी भागलपुर आने के पूर्व (देवानन्दपुर रहते समय) से लिखते रहे। उनकी कहानियो मे हम बगाल के विभिन्न रूप देखते हैं। खासकर देवानन्दपुर के गाँव का वातावरण। उनका एक लघु उपन्यास 'काकबासा' देवानन्दपुर मे ही लिखा गया था। देवानन्दपुर की पाठशाला के एक सहपाठी को लेकर उन्होने 'काशीनाथ' नामक कहानी लिखी थी। मौखिक रूप से कहानी सुनाने की उनमे अद्भुत क्षमता थी। इसका परिचय हमें कई बार मिल चुका है।"

किस व्यक्ति मे कब और कैसे प्रतिभा का विकास होगा, इसे बताना कठिन है। साहित्य रचना एक नशा है और इस नशे मे जो आनन्द तथा सुख है, इसकी तुलना किसी अन्य सुख से नही की जा सकती।

X X X

अनिला के विवाह के पश्चात् मोतीलाल पर मुसीबतो का पहाड टूट पडा। फीस के अभाव मे शरत् की पढाई बन्द हो गयी थी। वह आवारो की तरह घूमता रहा। कर्ज का बोझ बढ गया था। भुवन के सारे

जेवरात बिक गये। गाय पहले बिक गयी थी। सन् १८९१ मे सास तथा १८९२ ई० मे ससुर का देहान्त हो गया।

इस बीच सुरलक्ष्मी-राजलक्ष्मी का विवाह हुआ। सुरलक्ष्मी मर गयी। उसकी मा राजलक्ष्मी को लेकर काशी गयी तो वह भी वही मर गयी। सारे गाँव की सेवा करने वाली विधवा नीरू दीदी की इज्जत स्टेशन मास्टर ने लूट ली। उसे कोई सहारा देने वाला नही मिला। वह अपने ही घर मे तडप-तडप कर मर गयी। मृत्युजय मजूमदार के चाचा ने जायदाद हडपने की लालच मे अपने भतीजे को घर से इसलिए निकाल दिया कि उसने एक मदारी की बेटी से निकाह कर लिया था। नयन बाग्दी और प्यारी पडित भी इस दुनिया मे नही रहे।

अन्त मे एक दिन मोतीलाल पुन ससुराल मे आश्रय लेने के लिए भागलपुर रवाना हो गये। कम से कम वहाँ बच्चे दोनो वक्त भर पेट भोजन तो प्राप्त कर सकेगे।

भागलपुर आने के बाद भुवन दग रह गयी। उसे स्वप्न मे भी विश्वास नही था कि बाबूजी के निधन के पश्चात् गागुली परिवार में इतना बिखराव आ जायगा। सभी चाचाओ की गृहस्थी अलग अलग हो गयी है। पहले पारी पारी से घर की महिलाएँ पूरे परिवार का भोजन बनाती थी और अब सभी अलग हो गये हैं।

मोतीलाल कितने निकम्मे हैं, इसे वह जानती थी। अब ले देकर शरत् सहारा है, वह स्वय है, दो बच्चे हैं। नित्य तगादा करके किसी सूरत से उसने शरत् को कालेज में भर्ती कराया। अगर इस दिशा मे पाँचकौडी दादा सहायता न करते तो मुश्किल था। पाँचकौडी तेजनारायण जुबली कालेज के अध्यापक थे और इनके पिता बैकुण्ठ बनर्जी केदारनाथ के गहरे मित्र थे।

बडे नाना अब नही थे। घर पर विशेष कडाई नही थी। फलस्वरूप कालेज से वापस आते ही नेडा न जाने कहाँ गायब हो जाता था। दरअसल अब वह अपनी पुरानी दुनिया मे आकर बदमस्त हो गया था। लगामहीन घोडा जिस प्रकार दिशाहीन होकर दौडता है, उसी प्रकार वह चारो ओर घूमने लगा। राजू से पुन. सम्पर्क स्थापित कर उसके नैश-अभियान का सहयोगी बन गया।

बडे नाना के जीवित रहते, इस बात की मनाही थी कि यमुनिया नदी के उस पार रहने वाले मजूमदार-परिवार के किसी भी सदस्य से इस घर का कोई सम्पर्क न रखे। इस आज्ञा के पीछे एक मुख्य कारण यह था कि रामरतन मजूमदार प्रगतिशील थे। डिस्ट्रिक्ट इजीनियर होने के कारण उन्होने पश्चिमी सभ्यता को अपना लिया था। चीनीमिट्टी के बरतनो मे भोजन करते थे। टेबुल पर मोजा-जूता पहनकर खाना खाते थे। घर पर मुसलमान बेयरा के हाथ का पानी पीते थे। छोटे भाई की विधवा पत्नी से खुलेआम बात करते थे।

दूसरी ओर गागुली परिवार की महिलाएँ जेठ स बात करने को कौन कहे, सामने नही आती थी। इनके नहाने के लिए घर के पिछवाडे स्नान घाट था, जहाँ पुरुष नही जाते थे। रूढिवादी परम्परा का पालन अत्यन्त निष्ठा से किया जाता था। प्रति वर्ष घर पर जगद्धात्री पूजा होती थी।

राम रतन मजूमदार के सात लडके थे। इन सातो के लिए नगर मे उन्होने सात मकान बनवाये थे। इनका एक लडका सुरेन्द्र मजूमदार आगे चलकर डिप्टी कलक्टर, संगीतज्ञ तथा लेखक बना था। राम रतन मजूमदार का पाँचवा पुत्र राजेन्द्र मजूमदार था जिसे लोग 'राजू' नाम से पुकारते थे। शरत् की मित्रता इसी लडके से हुई थी। राजेन्द्र ही 'श्रीकान्त' का इन्द्रनाथ है।

राजू का घर केदारनाथजी के घर के सामने यमुनिया नदी के उस पार गगा किनारे था। चारो ओर बडे बडे वृक्षो से घिरा हुआ बगला। मकान के पिछवाडे एक विशाल बरगद का वृक्ष आज भी है। इस वृक्ष की एक डाल नदी की ओर काफी झुकी हुई थी। इस डाल पर कनस्तरो से घेरकर उसने अपनी एक कुटिया बनायी थी। नित्य सबेरे आकर वह इस कमरे मे बैठकर भगवान् का ध्यान करता था। उसका कहना था कि वह यहाँ अलौकिक दर्शन करता है, लेकिन क्या अलौकिक दर्शन करता है, इसे कभी किसी को नही बताया।

राजू के सभी मित्र उसकी कुटिया को हसरत भरी निगाह से देखा करते थे, पर किसी मे इतना साहस नही होता था कि उस डाल पर बनी कुटिया तक पहुँचे। डाल के नीचे स्रोतवती गगा प्रवाहित थी।

आजकल वह डाल नही है और गंगा इस वृक्ष से काफी दूर हट गयी हैं।

यद्यपि राजू अधिक दूर तक पढ़ लिख नही सका, फिर भी वह महान साहसी और अद्भुत कलाकार था। प्रत्येक कार्य मे निपुण था। शरत् बाबू तथा राजू के सम्पर्क मे आये सभी लोगो ने उसकी प्रतिभा की प्रशसा की है।

श्री सुरेन्द्रनाथ गागुली के शब्दों मे—"राजू का साथ करने का प्रधान आकर्षण था—सगीत का नशा। मेरा ऐसा ख्याल है कि इस उम्र मे गाने बजाने की ओर वह (शरत्) अधिक आकर्षित हुआ था। उसके पास कई बासुरिया थी। शरत् की देखादेखी हम लोगो ने बासुरी खरीदकर 'यमुना तीर बैठे' गीत के बोल निकालने का प्रयत्न करते थे। शरत् तो नियमित रूप से राजू के अड्डे पर जाकर गाता बजाता था।

"श्रीकान्त" के पाठको ने गहरी रात को मधुर बासुरी की ध्वनि सुनी होगी। इन्द्रनाथ जिस बाग मे बासुरी बजाया करता था, उसे 'खा का बाग' कहा गया है, पर उसका असली नाम 'रामबाबू का बाग' था। यह बाग आज भी श्रीहीन दशा मे है। रामबाबू के ससुर शिवचन्द्र खा बगाल मे यहाँ आकर बस गये थे। बाग के भीतर स्वच्छ जल का एक तालाब है। तालाब के किनारे पंक्तिवार ताड़ के अनेक पेड खड़े हैं। पश्चिम की ओर बैठने लायक कई पत्थर के बेंच हैं। सीढ़ियों का सिलसिला पानी के भीतर चला गया है जिसकी बगल में चबूतरे बने हैं जहाँ बैठकर मछली फँसाया जा सकता है। आम, जामुन, नारियल आदि के अनेक वृक्ष हैं। वृक्षो पर दिन रात कोयल पिऊ पिऊ कहती हैं। यह बाग शिशुओं की कल्पना का नन्दन बाग और उनकी लीलाभूमि थी। जब घर के मालिक आफिस चले जाते तब मछली पकडने के लिए नाना प्रकार का चारा बनाकर हम यहाँ आते। उस वक्त मछली पकडने मे बडा आनन्द आता था।"

साहित्यिक गोष्ठियो मे अक्सर शरत् बाबू से प्रश्न किया जाता—"इन्द्रनाथ की तरह कोई पात्र क्या आपके वास्तविक जीवन मे कभी आया था या यह काल्पनिक है?"

प्रत्युत्तर मे शरत् बाबू ने कहा था—"वह काल्पनिक चरित्र नहीं, बल्कि वास्तविक चरित्र है। भागलपुर मे मेरे मकान के पास ही एक प्रसिद्ध इजीनियर रहते थे—रामरतन मजूमदार। उनके एक लडके का नाम था—राजेन। हम उसे 'राजू' कहकर बुलाते थे। यही राजू ही मेरे 'श्रीकान्त' उपन्यास का इन्द्रनाथ है। राजू के बडे भाई रायबहादुर सुरेन्द्रनाथ मजूमदार डिप्टी कलक्टर थे। वे स्वय प्रसिद्ध साहित्यिक और गायक थे।।

"राजू अधिक पढा-लिखा नही था। उसी उम्र मे वह सयाना बन गया था। बदमाशों के लिए वह यमराज था। उसी प्रकार प्रत्येक अच्छे कार्य से वह पीछे कदम नही हटाता था। किसके यहाँ, कौन मर गया, उसके शव को श्मशान ले जाना है। समाचार पाते ही वह उनके दरवाजे हाजिर हो जाता था। कौन बीमार है और उसकी सेवा करने वाला कोई नही है, तुरत उसके घर पहुँचकर दवा से लेकर तीमारदारी तक करता था। तैरना, जिम्नास्टिक, पतग उडाना, हाकी-क्रिकेट आदि सभी क्षेत्रो मे वह उस्ताद था। अपने साथियो को तैरना सिखाता, चित्र बनाता, बढ़ई का काम करता, गाना गाता, नाटकों मे गजब का अभिनय करता। उसने फुटबाल के खिलाडियो की एक टीम बनायी थी। मुझे बाँसुरी बजाना उसी ने सिखाया था। हम दोनो किसी निर्जन स्थान मे चले जाते और दत्तचित्त होकर बासुरी बजाते थे। उन दिनो हम उम्र के लडकों को गाने-बजाने की मनाही थी।"

'श्रीकान्त' मे शरत् बाबू ने इन्द्रनाथ के बारे में लिखा है—"कपट तो इन्द्र मे थी नही। उद्देश्य को छिपाकर कोई काम वह करना ही नही जानता था। इसी कारण सम्भवत उसके हृदय का व्यक्तिगत विच्छिन्न सत्य किसी अज्ञात नियम के वश में पडकर उस विश्वव्यापी अविच्छिन्न निखिल सत्य का दर्शन पाकर अनायास अति सहज मे ही उसको अपने बीच आकर्षण करके ला सकता था। उसकी शुद्ध सरल बुद्धि पक्के उत्साह की उम्मेदवारी न करके ही ठीक बात को समझ जाती थी।"

इन्द्रनाथ के बारे शरत् बाबू का कहना है—"श्रीकान्त लिखते समय मुझे इन्द्रनाथ का चरित्र चित्रण करने में कल्पना का सहारा नही लेना पडा था। राजू था भी इसी तरह का। आज भी जब उसकी याद आती है तब न जाने क्यो प्राण व्याकुल हो उठता है। अन्याय उससे जरा भी बरदाश्त नही होता था।

हमेशा इसके विरुद्ध मर मिटने को तैयार रहता था। वही राजू एक दिन चुपचाप न जाने कहाँ चला गया। आज तक किसी को उसका पता नही चला। आज भी जब उसकी शक्ल आँखो के सामने नाच उठती है तब दिल मसोसकर रह जाता हूँ। वह मेरा कितना महान मित्र था—कह नही सकता। न जाने कितने देशो में घूमा, न जाने कितने व्यक्तियो को देखा, मगर राजू की तरह कोई दूसरा नजर नही आया। केवल एक निष्फल अभिमान हृदय के निम्न भाग को हिलाकर ऊपर की ओर फेन की तरह तैर आता है। हे सृष्टिकर्ता, इस अद्भुत, अपार्थिव वस्तु को रचकर क्यो तुमने भेजा था और क्यो उसे इस तरह व्यर्थ करके वापस बुला लिया? बडी व्यथा से मेरा यह असहिष्णु मन आज बार बार यही प्रश्न कर रहा है—भगवान रुपया, पैसा, धन-दौलत, विद्या-बुद्धि बहुत तो अपने अक्षय भडार से दे रहे हो, देखता हूँ, किन्तु इतने बडे महाप्राण व्यक्ति आज तक तुम कितने दे सके हो?"

राजू के अचानक गायब हो जाने पर उसके परिवार के लोग ही नही, बल्कि भागलपुर के वे लोग भी व्याकुल थे, जो राजू के सम्पर्क में आये थे। श्री हीरालाल दासगुप्त के एक लेख से यह ज्ञात होता है कि वह संन्यासी बन गया था। उनसे इस बारे मे सुरेन मुखोपाध्याय ने एक घटना की चर्चा की थी। श्री मुखोपाध्याय पटना के जज थे। उन्होने बताया—उस बार हरिद्वार मे कुभ मेला लगा था। उस कुंभ का दर्शन करने के लिए मैं हरिद्वार गया था। मेरे साथ मेरी माँ तथा कुछ अन्य लोग थे। भागलपुर मे इस बात की अफवाह फैली हुई थी कि राजू कही गायब हो गया है। सभवत् नदी मे डूबकर मर गया है। मैं राजू को अच्छी तरह पहचानता था। कुछ लोगो ने मुझे यह बताया था कि वह मरा नही, बल्कि सन्यासी बन गया है। वास्तव मे यही बात थी यानी वह सन्यासी बन गया था।

"मेले मे घूमते हुए अचानक मेरी निगाह एक युवक सन्यासी पर पडी। उसे देखकर मैं चौंक उठा—अरे यह तो राजू है। राजू यहाँ दिखाई देगा, कभी सोचा नही था। मैं सशय मे फँस गया। साथ के लोगों से सलाह की। सोचा, एक बार उसका असली नाम लेकर पुकारूँ। उसका असली नाम लेते ही उसने चौंककर हमारी ओर देखा। समझते देर नही लगी कि यह संन्यासी वास्तव में हमारा राजू है।

"वहाँ से हटकर मैंने पोस्ट-आफिस आकर राजू की मा के नाम जरूरी तार भेजा। वे आयी, हम लोग चारो ओर तलाश करते रहे, पर वह कही नही दिखाई दिया। कुछ लोगो ने सलाह दी कि यहाँ से अनेक साधु काशी चले गये हैं। आप लोग वहाँ खोजिये। काशी आकर हम कई दिनो तक तलाश करते रहे, पर पिजडे का पक्षी न जाने कहाँ गायब हो गया था। फिर कभी उसका पता नही चला।"

राजू को अमर बनाने के लिए न केवल 'श्रीकान्त' में शरत् बाबू ने इन्द्रनाथ के रूप मे अवतरित किया, बल्कि उसके गाँव को लेकर 'बडी दीदी' नामक उपन्यास भी लिखा। शरत् बाबू अपने जीवनकाल मे जहाँ जहाँ गये थे, उन सभी स्थानो का वर्णन अपनी रचनाओं मे कर चुके हैं, जिनका उल्लेख किया जा चुका है।

राजू का पैतृक निवास पाबना जिले मे था। श्री अघोरनाथ अधिकारी शरत् के कालेज के थे। वे स्वय पाबना जिले के निवासी थे। शरत् के कालेज जीवन से परिचित तथा उसकी कुशाग्र बुद्धि के प्रशसक थे। रामरतन मजूमदार भी पाबना जिले के थे। राजू के छोटे भाई शरत् मजूमदार की लडकी से अघोरनाथ के लडके का विवाह हुआ था।

'बडी दीदी' उपन्यास पढने के बाद अघोरनाथ अधिकारी ने अपने एक लेख में लिखा है—"राजू वारेन्द्र श्रेणी का ब्राह्मण है और मैं स्वयं भी इसी श्रेणी का ब्राह्मण हूँ। 'बड़ी दीदी' उपन्यास पाबना जिले के वारेन्द्र श्रेणी के ब्राह्मणो से सम्बन्धित है। श्रीकान्त का इन्द्रनाथ जो कि भागलपुर के राजेन्द्र मजूमदार हैं, इन्ही के परिवार को लेकर यह उपन्यास लिखा गया है।"

सच तो यह है कि इतनी कम उम्र का बालक जो शव के साथ सो सकता है, अभिनव ढंग से अंग्रेज को मार सकता है, दुष्टो का दमन कर सकता है, जिसे सांप का डर नही, भूत-प्रेत का भय नही, वह कितना महान् साहसी था।

दूसरी ओर विभिन्न कलाओं में निष्णात था। कंठस्वर उसका मधुर था। वायलिन, बासुरी बजाने में बेजोड था। रामबाबू के बाग से जब बाँसुरी बजाने की आवाज हवा में तैरती हुई आती तब लोग समझ जाते कि यह बाँसुरी राजू बजा रहा है। भय किस चिडिया का नाम है, वह नहीं जानता था।

राजू के पास अपनी डोंगी थी। जिस प्रकार शरत् ने राजू को अपना उस्ताद मान लिया था, ठीक उसी प्रकार शरत् के साहस और प्रतिभा को देखकर उसने उसे अपना साथी बना लिया था। रात को दोनो मछराहो के जाल मे फँसी मछलियाँ चोरी करते। उन मछलियो को बाजार मे बेचकर असहाय और जरूरतमन्दो की मदद करते रहे।

किशोर उम्र मे दुस्साहसिक कार्य करने की प्रबल इच्छा होती है। गुरुजनो के आदेशो की अवहेलना करते हुए स्वप्नवृत्ति से उस कार्य को करने मे अपूर्व आनन्द मिलता है। शरत् की देखादेखी उसके दोनो छोटे मामा भी गुरुजनो से छिपकर राजू से मिलते रहे। सच तो यह है कि राजू अपने दल का सरदार था। उसकी कृपा पाने के लिए सभी लालायित रहते थे।

बचपन से ही शरत् को सापो के प्रति दिलचस्पी रही। गाव मे जब साप के काटे व्यक्ति मर जाते थे, तब उसे अपार दु ख होता था। मृत्युजय की याद आज तक बनी हुई है। मदारियो को जहरमोहरा से विष गायब करते देखा है। उसने कई मदारियो से मिन्नत की, उन्हें पैसे देने का लालच दिया, पर वह जहर मोहरा प्राप्त न कर सका। 'ससार-कोश' में बताये जडियो का प्रयोग सफल नही हुआ। जब इस बात की जानकारी राजू को हुई तब वह एक दिन उसे साथ लेकर अन्नदा दीदी के पास आया।

अन्नदा दीदी को देखते ही वह लहमे भर मे अभिभूत हो उठा। उसे लगा जैसे सामने खडी महिला अन्नदा दीदी नही, अनिला दीदी है। दूर-मरदेश मे बैठी वह मेरी शरारतो को याद करती हुई न जाने क्या सोच रही होगी। बचपन मे वे गोद मे लेकर गाव की पगडंडियो मे घूमती रही। भूख लगने पर कौर बनाकर खिलाती रही, बीमार पडने पर तीमारदारी करती थी, माँ के मारने पर गोद मे चिपकाकर दुलार करती रही—आज वही दीदी उसके सामने खडी हैं।

अन्नदा दीदी के स्नेह को पाकर वह निहाल हो उठा। जिस प्रकार घर मे अभाव रहने पर अनिला भूख से कुम्हला जाती थी और वह दौडकर अपने गुप्त अड्डे से फल लाकर देता था, उसी प्रकार शरत् अन्नदा दीदी की सेवा करने लगा।

अन्नदा दीदी बगालिन थी। उनका सही इतिहास 'श्रीकान्त' उपन्यास के अलावा अन्यत्र कही प्राप्य नही है। चूँकि अन्नदा दीदी से केवल राजू और शरत् का ही सम्पर्क रहा, अन्य मित्र कभी भी उनके निकट नही गये, ऐसी हालत मे अन्नदा दीदी के बारे मे कोई कैसे लिखता? सभव है कि अन्नदा दीदी के सम्पर्क को दोनो छिपाते रहे हो?

यहाँ प्रसगवश एक घटना उल्लेख करना जरूरी है। श्री द्विजेन्द्रनाथ मुशी के लेख को पढकर ही मैं मालिनपुर गया था और वहाँ के सबसे वृद्ध व्यक्ति ने जो उत्तर दिया उसका उल्लेख कर चुका हूँ। शरत् जीवनी के विशेषज्ञ श्री गोपालचन्द्र राय भी इसी सत्य को मानते रहे। असफलता पर खिजला कर मैंने उन्हे पत्र लिखा। जबाब न आने पर मैं उनसे नैहाटी स्थित बंकिम स्मृतिगृह मे मिला।

बातचीत के दौरान गोपालचन्द्र राय ने कहा—"शरत् बाबू को बचपन मे एक बार साप ने काटा था और राजू मायागंज से एक ओझा को अपनी नाव से ले आया था। यह घटना आपको मालूम है?"

मेरे स्वीकार करने पर उन्होने कहा—"मैं अभी तक मायागज नही जा सका। आपका पत्र पाने के बाद बराबर विचार करता रहा। मैं यह कह नही सकता कि जहर उतारने वाले ओझा या मदारी शाह जी थे या अन्य व्यक्ति। आप वहाँ जाकर देखिये।

बात जम गयी। भागलपुर आया। मायागज के समीप का वातावरण तथा बाद मे छपे लेखो से यह बात पुष्टि हो गयी कि अन्नदा दीदी यही रहती थी। वह वास्तव मे एक श्रेष्ठ नारी थी।

[1] श्रीकान्त के नये भैया सुरेन्द्र मजुमदार थे।

मुसीबतों का पहाड़

केदारनाथ गगोपाध्याय के बडे लडके का नाम ठाकुरदास और छोटे का विप्रदास था। ठाकुरदास सहसा गबन के मुकदमे के चक्कर मे फस गये। भुवन चिन्तित हो उठी। विप्रदास पर घर की सारी जिम्मेदारी आ गयी। ठाकुरदास की मानसिक स्थिति बिगडती गयी। वे दिन रात पैरवी के लिए दौड-धूप करने लगे।

इधर सुरेन्द्रनाथ के बडे भाई मनीन्द्रनाथ तथा शरत् प्रवेशिका परीक्षा मे पास हो गये। लडका सकुशल पास हो जाय, इसके लिए भुवन ने मन्नत मानी थी। शरत् से बोली--तारकेश्वर जाकर अपना मुडन करा ले। मैंने मन्नत मानी थी कि तू अच्छे नम्बरो से पास हो जायगा तो वहाँ तेरा मुडन कराऊंगी।

मुडन का प्रस्ताव शरत् को पसन्द नही आया तब मा ने दु खी होकर कहा--"जब ठाकुर के नाम पर मंन्नत की है तब मैं स्वय जाकर अपना मुडन कराऊँगी। देवता से छल करना मुझे पसन्द नही।"

मा की दृढता देखकर शरत् पिघल गया और दूसरे ही दिन तारकेश्वर रवाना हो गया। वहाँ से वापस आने के बाद हमजोलियो के निकट एक बार पुन वही पुराने नाम से प्रसिद्ध हुआ--न्याडा।

कुछ दिनो बाद हुगली से मोतीलाल के नाम सम्मन आया--राजकुमारी देवी अपनी बकाया रकम के लिए जिला अदालत मे जीत गयी है, अब उनका मकान नीलाम किया जायगा अथवा मय खर्च के सारी रकम उन्हे दिया जाय।

मोतीलाल के लिए यह सभव नही था। उन्होने सोचा कि इससे अच्छा है कि वहा का मकान बेच दिया जाय। देवानन्दपुर की स्थिति से लोग शहर की ओर भाग रहे थे, ऐसी हालत मे उनका मकान कौन खरीदता? मामा से बातचीत करने पर उन्होने २२५ रुपये मे उस मकान को खरीद लिया। इस प्रकार मोतीलाल का देवानन्दपुर से नाता टूट गया।

इन्हीं घटनाओ के कारण भुवन बहुत अधिक चिन्तित रहने लगी। वह चाहती थी कि झटपट कक्षाए पास कर शरत् वकील बन जाय। आखिर कब तक भाई की गृहस्थी मे रहेगी? बेचारा छोटा भाई अकेला अपने, बडे दादा और मेरे परिवार का खर्च चला रहा है। सबसे बडी कठिनाई शरत् की पढाई की थी। मकान बेचने पर शायद कुछ रकम प्राप्त होगी, इस आशा मे भुवन थी, लेकिन वह आशा भी धूमिल हो गयी। ज्यो-ज्यो दिन गुजरते गये त्यों-त्यो उसकी बेचैनी बढ़ती गयी। शरत् पर उसे काफी भरोसा था। कैसे वह भर्ती होगा। भाई ने जवाब दे दिया है। अन्य चाचा कोई दिलचस्पी नही लेते। वह भीतर ही भीतर घुलने लगी।

भुवन की इस मानसिक स्थिति से कुसुम परिचित थी। रिश्ते मे मोतीलाल दामाद थे, पर वे अघोरनाथ के हमउम्र तथा सहपाठी भी थे। शरत् की शिक्षा रुक जायगी सुनकर उन्होने अभिनव उपाय सोचा। उन्होने भुवन से कहा--"शरत् की शिक्षा के लिए तुम चिन्ता मत करो। उसका सारा खर्च मैं दूँगी। बदले मे मेरे दोनो लडको--सुरेन्द्र, गिरीन्द्र को वह पढाया करेगा।"

भुवन का मुरझाया चेहरा खिल उठा। इस प्रकार शरत् तेजनारायण जुबली कालेज मे भर्ती हुआ। कालेज मे अन्य अनेक मित्रों से परिचय हुआ, जिनमें इन्दुभूषण भट्ट से अतरगता अधिक बढ गयी। बातचीत के जरिये जब इन्दुभूषण को यह ज्ञात हुआ कि शरत् शतरज का अच्छा खिलाडी है तब वह एक दिन उसे अपने घर ले गया। शतरंज के नशे ने इन दोनो को एक सूत्र मे बाँध दिया।

शरत् बाबू के शब्दों मे--"कैसे इस परिवार से मेरी घनिष्ठता हुई, यह आज याद नहीं है। शायद इसलिए कि धनाढ्य होने पर भी इन लोगो को अपने धन का घंमड नही था। मैं इस परिवार के प्रति इसलिए आकृष्ट हुआ था कि इनके यहाँ शतरज खेलने का अच्छा प्रबध था। प्रबध का अर्थ यह है कि चाय, पान और तमाकू पीने का सरजाम तैयार रहता था।"

इन्दुभूषण के पिता नफरचन्द्र भट्ट सब-जज थे। चुँचडा से तबादला होकर यहाँ आये थे। स्वभाव के कट्टर और कडे मिजाज के थे, फिर भी इनकी नजर बचाकर इनका पुत्र और उसके साथी हर तरह के उपद्रव करते रहते थे। इनके घर की बगल में एक मुसलमान का मकान खाली पड़ा था। इस घर की छत इतनी बडी थी कि आसानी से क्रिकेट खेला जा सकता था। सभी बच्चे सीढ़ी की सहायता से छत पर

चढ़कर नाटक का रिहर्सल करते थे। कोई ढोलक पीट रहा है तो कोई हारमोनियम बजा रहा है और कोई एसराज रेत रहा है। जलपान के साथ धूम्रपान भी जारी है। न कोई डाँटने वाला और न किसी का भय।

इन्हीं दिनो शरत् का परिचय एक और परिवार से हुआ। रामरतन मजूमदार की तरह वडे नाना इस परिवार को भी अछूत मानते तथा घृणा करते थे। वे थे—भागलपुर के प्रसिद्ध वकील शिवचन्द्र वनर्जी।

वच्चो को पढ़ाते समय वडे नाना वनर्जी साहव के किशोर-जीवन की कहानियाँ सुनाते हुए कहा करते थे—"खूव मन लगाकर पढ़ो। जितना पढ़ोगे, उतना ही ज्ञान वढ़ेगा। शिवचन्द्र वनर्जी को देखो। एक जमाना था जव वे पराये घर में सूखी रोटी खाते थे। पास मे इतने पैसे नहीं थे कि घर में दीपक जलाते। स्ट्रीट लाइट के नीचे खडे होकर पुस्तकें पढ़ते थे। इस प्रकार वे वकील बने और इतना उपार्जन किया कि ब्रिटिश सरकार ने इन्हें 'राजा' की उपाधि दी।

एक ओर वच्चों को शिवचन्द्र वनर्जी के श्रम तथा लगन की चर्चा करते और दूसरी ओर उनके घर जाने को मना करते थे। उनका अपराध इतना था कि अपने उन्माद रोग के इलाज के लिए लन्दन गये थे। भारतीय समाज मे समुद्र यात्रा निषिद्ध है।

अपने इस अपराध के लिए शिवचन्द्र वनर्जी एक अर्से तक समाज के कर्णधारों की मिन्नत करते रहे। ताकि प्रायश्चित करवाकर उन्हें जाति मे ले लिया जाय, पर समाजपतियो का रुख उदार नही रहा। विशेष रूप से केदारनाथ क्षमाशील नही थे। दरअसल लोग उनके ऐश्वर्य से चिढ़ते रहे। शिवचन्द्र वनर्जी नगर के अनेक सस्थाओ मे जुडे रहे।

शिवचन्द्र वनर्जी ने जव यह अनुभव किया कि समाजपतियो का दल रूढ़िवादी है तव वे इस ओर से उदासीन हो गये। उन्होंने यह मान लिया कि एक दिन वे स्वय ही उनके चरणों के निकट आयेंगे।

नाना की मनाही रहने पर भी शरत् तथा उसके कई मामा शिवचन्द्र वनर्जी के यहाँ छिपकर जाते रहे। राजू, सुरेन्द्र, गिरीन्द्र, उपेन्द्र, राजेन्द्र मुखर्जी और योगेश जाते थे।

शिवचन्द्र वनर्जी के यहाँ बच्चों को कितनी आजादी थी और वे किस आकर्षण से जाते थे, इस बारे में श्री सुरेन्द्रनाथ गागुली ने लिखा है—"शिवचन्द्र वनर्जी के घर जाने की सख्त मनाही थी। इस आदेश का पालन करना हमारे लिए कठिन था।"

"वहाँ अनुशासन का कोई झझट नही था और न गृहस्वामी कठोर प्रकृति के थे। यह जानते हुए कि हम लोग घर से छिपकर आते हैं, हमारी उपेक्षा नही होती थी, वल्कि बडे स्नेह के साथ स्वागत किया जाता था। सच तो यह है कि वे लोग बडे मौजी, उदार और दरियादिल स्वभाव के थे। बच्चों के शौक के लिए बाजार से सैकडों पतग, परेता और नख मँगाकर रख दिया जाता था। चुरुट या सिगरेट पीने के लिए कद्दू या कोंहडे की डठल से काम न चलाकर असली चुरुट पीने को दिया जाता था। अगर किसी को असली चुरुट पीते देखा जाता तो सभी लोग अट्टहास कर उठते।"

"जव देखो तव यहाँ कठपुतली के खेल या मदारी का तमाशा होता था। शतरज, कैरम खेलना, गाना-वजाना वरावर जारी रहता था। ढोलक, तवला, एसराज और वासुरी वजाने का अच्छा प्रबध था। शासन के लौह कपाट में बन्द रहने वाले किशोर यहाँ आकर मुक्त विहग की तरह आनन्द से नाचने लगते थे।"

"इस आयोजन के स्वामी जवानी के दिनों सूर्यसिद्ध होने के लिए प्रदीप्त सूर्य की ओर आँखें खोलकर देखते रहे। इस तपश्चर्या के कारण वे अधे हो गये थे। इसलिए इनके पास अखण्ड समय था। इन्होंने अपने पुत्र सतीश चन्द्र की मित्र मण्डली का नाम 'नव-हुल्लोड' (नये हुल्लडबाज) रखा था और कभी कभी हुल्लड शब्द के अर्थ का विश्लेषण करते हुए कहा करते थे—'हूँ होथा लोड यन्ति इति हुल्लड़।' इस लोकोक्ति का क्या अर्थ है, इसे आज तक समझ नहीं सका। नव हुल्लोड दिन रात उपद्रव करता था। मडली के सदस्य अपने इच्छानुसार तवला या ढोलक पीटते। कोई एसराज रेतता तो कोई हारमोनियम पर गाता। कुछ नशा जमाकर सो जाते। कोई गड़गड़ा पीकर दनादन मुँह से धुआँ उगलता। उसे खासते देख गृहस्वामी कह उठते थे—

ताम्रकूट महाद्रव्यं समस्याय पियते यदि।
टाने टाने महाफल या ता दिया महत्सुखम।

"इस वातावरण को देखकर हम मन ही मन विधाता को कोसते कि अगर हमे इस घर मे फेक देते तो तुम्हारा कौन सा नुकसान हो जाता।'

किशोर-जीवन अद्भुत आनन्द की तलाश मे छटपटाता है जब उस पर अकुश रखा जाता है तब विद्रोही बन जाता है। कुछ किशोर आज्ञाकारी बनकर रह जाते हैं जो देश समाज को केवल अनुशासन के अलावा और कोई देन नही दे पाते।

शिवचन्द्र बनर्जी के दरबार मे लडके उन्मुक्त अवश्य थे, पर शोहदा नही बन रहे थे। शरत् राजू के साथ नैश अभियान में जाता, भट्ट के यहाँ शतरज खेलता, गाना-बजाना, रिहर्सल मे भाग लेता और इसके साथ ही अध्ययन मे बराबर रुचि लेता था। भट्ट परिवार मे उनकी बडी लाइब्रेरी थी। कालेज तथा भट्ट के घर से अंग्रेजी उपन्यास तथा साइस की पुस्तके लाकर पढता था। डिकेन्स और हेनरी उड उसके प्रिय लेखक थे। शाम को सुरेन्द्र और गिरीन्द्र को पढाने के बाद वह एकाग्र चित्त से अध्ययन करता या साहित्य साधना करता था।

शरत् चुपके चुपके साहित्य साधना करता है, इसकी जानकारी सबसे पहले सुरेन्द्रनाथ को हुई थी। इसे बारे मे उन्होने लिखा है—

"एक दिन मैं उसके कमरे मे गया तो देखा कि वह हुक्का पी रहा है। यह दृश्य देखकर मैं चौंक उठा। मगर उसे कोई सकोच नही हुआ। वह चुपचाप हुक्का पीता रहा। मैं टेबुल पर रखी पुस्तको को उलटने-पुलटने लगा। एक मोटी कापी के कवर पर लिखा था—काकबासा। उपन्यास लिखने की यह प्रथम चेष्टा थी। इसे पढने का अवसर नही मिला, लेकिन मैं बराबर यह देखता रहा कि उन दिनो वह न जाने क्या-क्या बहुत लिखता रहा। बर्मा जाने के पहले अपनी सारी रचनाएँ मुझे सौंप गया था। शायद मन पसन्द न होने के कारण फेक गया था।"

उपन्यास लेखन के अलावा कोर्स की पुस्तकें वह कितनी लगन से पढता था, इसका उदाहरण एक घटना से मिलता है। नित्य की तरह एक दिन शाम के समय उसके कमरे मे मित्र मण्डली आयी। शरत् ने उन लोगो से कहा—"कल मुझे विज्ञान की परीक्षा देनी है। इस वक्त तुम लोग चले जाओ। कल सबेरे मिलना।"

इतना कहकर उसने दरवाजा बन्द कर लिया और विज्ञान की एक मोटी पुस्तक लेकर पढ़ने लगा। सभी मित्र वापस चले गये। दूसरे दिन उन लोगों ने आकर झरोखे से झाँककर देखा कि दीपक की रोशनी मे वह उसी तरह पढ रहा है।

इन लोगो का शोरगुल सुनकर शरत् ने खिजलाकर कहा—"तुम लोगो से मैंने कहा था न कि इस वक्त चले जाओ कल सवेरे आना, फिर आ गये?"

सुरेन्द्र ने कहा—"जनाब, यह तो कल शाम की बात है। दरवाजा खिडकी खोलकर बाहर आइये, देखिये सुबह हो गयी है।"

उस दिन शरत् ने विज्ञान का पेपर इतने अच्छे ढंग से लिखा कि परीक्षको को सदेह हो गया कि जरूर पुस्तक से नकल की है। उसे विज्ञान के नये प्रश्न तैयार करके दिये गये। इस बार भी वह सफल रहा। उसके ज्ञान को देखकर कालेज के अध्यापक चकित रह गये।

ठीक इन्ही दिनों एक और हादसा हुआ। नवम्बर, १८९५ ई० में भुवन की मौत हो गयी। अपने पीछे तीन पुत्र और दो पुत्रिया छोड गयी। सबसे छोटी मुनिया (सुशीला) का जन्म भागलपुर मे हुआ था।

पत्नी के निधन के पश्चात् मोतीलाल का मानसिक सन्तुलन बिगड गया। पत्नी के कारण वे अब तक ससुराल मे थे। जब वे नही रही, तब किसके जोर पर रहते। यद्यपि किसी ने उन्हें ससुराल से जाने को नही कहा, पर उन्हे यहाँ रहना पसन्द नही आया। ससुराल के अधिकाश सदस्य उन्हे नफरत की निगाहों से देखते रहे।

खजरपुर में उन्हें बहुत ही सस्ते किराये पर कमरे मिल गये। कुछ दिनो बाद वे बच्चो को लेकर यहाँ चले आये। मोतीलाल के लिए यह घटना अत्यन्त मार्मिक साबित हुई। अक्सर वे अर्द्ध पागलों की तरह व्यवहार करते रहे।

ननिहाल मे रहते हुए शरत् को लुक-छिपकर इधर आना पडता था गोकि घर के अन्य लोग शरत्

को अच्छी निगाह से नही देखते थे, पर एक अज्ञात भय उसके मन मे था। खजरपुर आने के बाद से वह इस भय से मुक्त हो गया। अब न तो नानाओ का डर था ओर न मामाओ का। पिताजी घर में रहनेवाले घोषाल परिवार के यहाँ अड्डेबाजी करते थे।

शिवचन्द्र बनर्जी का एक मात्र पुत्र सतीश था। उसकी प्रसन्नता के लिए हमेशा सब कुछ करने को तैयार रहते थे। सतीश के कारण ही उनके घर पर किशोर बालको का जमावडा होता था। इस जमावडे का कारण था—अभिनय और सगीत।

राजू के नेतृत्व मे एक शौकिया नाट्य संस्था की स्थापना हो गयी थी। विभूति भूषण भट्ट भी इस सस्था से जुड गया था। उन दिनों शौकिया नाटक खेलना अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता था। पूजा या उत्सव के अवसर पर कलकत्ते से यात्रा पार्टी या थियेटर कम्पनी वाले आकर नाटक करते थे। स्वत' अपनी ओर से नाटक नही खेलता था। नाटक मे अभिनय करने की लालसा से अनेक किशोर इस सस्था मे आये। बुजुर्गों की निगाह बचाकर अद्भुत स्थानों मे रिहर्सल होता था।

इस नाट्य सस्था के बारे मे श्री विभूति भूषण भट्ट ने लिखा है—''हम लोग जिस मुहल्ले में रहते थे, उसका नाम खजरपुर था। शरत्चन्द्र के नेतृत्व में इस मुहल्ले के बालको और युवको को लेकर एक नाट्य सस्था बनायी गयी थी, जिसके निर्देशक और व्यवस्थापक वे स्वय थे। हमें अभिनय सिखाते थे। अभिनयवाली पोशाक पहनकर हम लोगो ने एक फोटो खिचवाया था। एक अर्से तक मेरे अलबम में रहने पर वह धुंधला हो गया था। हम लोग नाटक का रिहर्सल अद्भुत स्थानों पर करते थे। नदी के किनारे (तत्कालीन नदी यमुनिया अब नही है।), मुसलमानो की कब्रगाह, मन्दिर के किनारे—कहने का मतलब कोई जगह बाकी नही थी। शेक्सपीयर के एक नाटक मे देहाती हास्य का अनुभव आज भी याद है। शेक्सपीयर पढ़ने की वह उम्र नही थी, पर विश्वकवि की जो कल्पना थी, उसे कार्य रूप में बेपरवाह शरत्चन्द्र ने परिणत करके दिखाया था।''

नाटको के प्रति शरत्‌जी का रुझान देखकर शिवचन्द्र बनर्जी के पुत्र सतीशचन्द्र ने अपने मुहल्ले के नाम पर 'आदमपुर क्लब' नामक नाट्य सस्था की स्थापना की। धनाढ्य बाप के पुत्र थे। महीने मे दो बार कलकत्ता जाकर वहाँ के रगमचो का अध्ययन करने के बाद वापस आकर अभिनय कला के बारे मे मित्रो को उसी तरह का निर्देश देते रहे।

शरत् बाबू के अभिनय के बारे में विभूति बाबू ने लिखा है—''शरत्चन्द्र का रसस्रष्टा रूप उनके प्रौढ़ जीवन मे प्रस्फुटित हुआ था। यौवनकाल मे एक ओर नट, सगीतज्ञ, यत्री, काव्य रसिक आदि नये नये रूपो मे उन्हे देख चुका हूँ। याद है, भागलपुर के आदमपुर क्लब मे श्री गिरीशचन्द्र घोष द्वारा लिखित नाटक 'जना' मे उनका अभिनय। 'जना' की भूमिका मे उन्होंने जैसा अभिनय किया था, वैसा कलकत्त के किसी भी रगमच पर किसी अभिनेत्री को करते नही देखा।''

बंकिम बाबू के प्रसिद्ध उपन्यास 'मृणालिनी' का नाट्य रूपान्तर कर मृणालिनी का पार्ट शरत् ने किया था। इसी प्रकार 'जना' मे जना तथा 'बिल्व मगल' मे चिन्तामणि का मार्मिक अभिनय किया था। राजू ने भी इन नाटको मे गिरिजाया तथा पगली की भूमिका मे अभिनय किया था।

अभिनय करने के बावजूद शरत् की असली रुझान सगीत की ओर थी। देवानन्दपुर मे सतीश तथा भागलपुर मे राजू उसका इस दिशा में गुरु था। जब कभी राजू के बड भाई भागलपुर आते तब सगीत का आयोजन होता था। उनके आगमन की सूचना मिलते ही वह तुरत वहा पहुँच जाता था। आगत अतिथियों के लिए जलपान, चाय देना, दरी-चादनी बिछाना आदि सेवाएँ करता था। इन सेवाओं के पीछे एक ही मकसद था—सुरेन्द्रनाथ के गायन की कला का अध्ययन करना। खाली समय मे वह निर्जन स्थानो में जाकर बाँसुरी या एसराज बजाने का अभ्यास करता था।

शरत् की सगीत-साधना के बारे मे श्री विभूति भूषण भट्ट ने लिखा है—''हम लोगों के मकान के पास ही एक मस्जिद थी। हम लोग हिन्दू घराने के बालक थे, वहा नही जाते थे, लेकिन यह परम साहसी, भूत कहिये या ब्रह्मदैत्य—इसके कारण हम लोग भी साहसी बन गये थे। डरना भूल गये थे। अमावस की कितनी काली राते कब्रगाहो मे व्यतीत कर चुके हैं। शरत् दादा बाँसुरी बजा रहे हैं या हारमोनियम बजाते हुए कोई गीत गा रहे हैं और हम दो-चार मित्र तन्मय होकर सुन रहे हैं। कभी कभी रात के अंधेरे

मे गुरुजनो की लाल लाल आँखे और बडे भैया की मार की उपेक्षा करते हुए नाव पर सैर करने चले जाते थे। रिहर्सल कक्ष मे सिरहाने बाँस रखकर रात गुजारते रहे। बचपन से ही वे निर्भीक थे। न्याय अन्याय की कोई बाधा उन्हे रोक नहीं पाती थी। एक अर्से तक इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करने के कारण निर्भय होकर किसी भी कार्य को वे पूरा कर लेते थे। मेरी तरह डरपोक व्यक्ति जहाँ जाकर सहम जाते थे, वही वे साहस के साथ आगे बढ जाते थे। उनकी इस प्रवृत्ति के कारण उनके सहयोगी साहित्यिक उस निर्भीकता को और भी बढ़ा चढ़ाकर फुला रहे हैं। उनकी निर्भीकता और शिशु सुलभ बेअदबीपन ने ही जीवन भर सामाजिक नियमो के विरुद्ध विद्रोही बनाया था। वे अपने जीवन मे प्राकृतिक या सामाजिक किसी भी नियम को नही मानते थे। शायद इसीलिए उनका स्थूल शरीर उन्हे क्षमा नही कर सका।"

विभूतिभूषण भट्ट की बहन श्रीमती निरुपमा देवी का कथन है—"उक्त उदासी कवि स्वभाव वाले लेखक को अपने भवन के पश्चिम दिशा की ओर जहाँ एक मस्जिद थी (सुना जाता है कि यह मस्जिद शाहजहाँ के युग की है।)' घने छाया पथ मे देखा जाता था। गहरी रात को मस्जिद के आंगन या नदी के किनारे से बासुरी की आवाज हवा में तैरती हुई जब आती थी तब मझले दादा मझली भाभी से कहते—'यह और कोई नही, न्याडाचन्द्र है।' आगे चलकर उन्हे दादा की बैठक मे गाते हुए अन्दर महल मे बैठी सुनती रही, लेकिन बैठक मे बासुरी नही बजाते थे।"

देखते-देखते वार्षिक परीक्षा का दिन पास आ गया। कालेज मे यह नियम था कि एफ० ए० प्रथम वर्ष जो लोग उत्तीर्ण हैं, वे दूसरे वर्ष की परीक्षा मे बैठ सकते हैं, लेकिन इस साल एक नया आदेश जारी हुआ। वार्षिक परीक्षा के पूर्व सभी को टेस्ट परीक्षा देनी पडेगी। जो लोग इस परीक्षा मे पास होगे, केवल वही फाइनल परीक्षा मे बैठ सकेगे। इस आदेश के विरुद्ध लड़को ने आन्दोलन करना प्रारभ किया। अध्यापक अपनी जिद्द पर अड़े रहे। अन्त मे लड़कों को हार माननी पड़ी।

शरत् प्रारंभ से ही विज्ञान में तेज था। उसने देखा कि उसके कुछ मित्र विज्ञान का पेपर ठीक से हल नही कर पा रहे हैं। वह अपनी परीक्षा देकर बाहर चला आया। कालेज के चपरासी को ईनाम देने का लालच देकर सवालो का हल क्लास मे भिजवाने लगा। सहसा एक गाइड को सदेह हो गया। शरत् रगे हाथ पकडा गया। प्रिंसिपल ने तुरत निर्णय दिया कि शरत् को छोड़कर शेष छात्र फाइनल परीक्षा दे सकते हैं।

यह बात चारो ओर फैल गयी। शर्म के कारण शरत् का घर बाहर निकलना बन्द हो गया। इधर कालेज के अध्यापको को इस बात पर अफसोस होने लगा कि एक सामान्य अपराध के कारण शरत् को इतनी बड़ी सजा देना उचित नही है। विवेक-बोध ने सभी को परेशान किया। सभी को यह विश्वास था कि शरत् प्रथम श्रेणी में पास होगा। परीक्षा पारभ होने के एक दिन पहले उसे बुलाकर कहा गया—"आज ही पन्द्रह रुपये परीक्षा शुल्क जमा कर दो। कल से तुम परीक्षा मे बैठ सकते हो। आइन्दा ऐसी गलती मत करना।"

इस समाचार से प्रसन्न होकर वह घर आया। पिताजी से कहने पर उन्होने असमर्थता प्रकट की। विप्रदास मामा अभी तक मुकदमे से परेशान थे। शेष नाना या मामाओ से आशा करना व्यर्थ है। जब वहाँ से चले आये हैं, तब किस मुँह से सहायता मागने जाये। फलस्वरूप फीस जमा नही हुई और शरत् परीक्षा नही दे सका।

परीक्षा ने दे सकने का दर्द शरत् बाबू को आजीवन सालता रहा। अपनी आत्मकथा मे उन्होने लिखा है—"मेरा शैशव और यौवन घोर दरिद्रता मे बीता है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण शिक्षा प्राप्त नही कर सका।" २४ अगस्त, सन् १९१९ के एक पत्र मे उन्होने लिखा है—"बडा दरिद्र था। केवल बीस रुपये के लिए परीक्षा नही दे सका था।" रमेशचन्द्र मजूमदार तथा श्री हरिहर सेठ से बातचीत मे इन्हीं बातो को शरत् बाबू ने दोहराया था।

शरत् बाबू के इन दिनो की स्थिति का सही चित्रण सौरीन्द्र मोहन मुखोपाध्याय ने किया है—"परीक्षा शुल्क न दे पाने के कारण वे परीक्षा नही दे सके। इस सम्बन्ध में मतभेद है। इस मतभेद का निर्णय करना कठिन है। मातृहारा, पिता से उपेक्षित, तिस पर सगी बहन का पुत्र नही, ऐसे भाजे के प्रति सचेतन रहने वाला मामा विरले ही होते हैं। धनी परिवारो में भी इस पकार के मातुल कदाचित मिलते

हैं। अपने ननिहाल मे शरत् को कितना स्नेह मिलता रहा, इसे मैंने अपनी आँखो से सन् १९०० ई० के दिनो देख चुका हूँ। उनके दिन गुजरते थे—मित्र मडली या विभूति भट्ट के घर।"

जव कभी किसी मित्र से चर्चा होती तव शरत् वावू फीस न पाने का दु:ख प्रकट करते थे। ऐसे लोगो के लेखो और वातों से परेशान होकर उपेन्द्रनाथ गागुली ने लिखा था—"फीस देने की जिम्मेदारी मोतीलाल की थी। जव वे नही दे सके, सगे मामाओं ने इनकार कर दिया, तव दूर के मामाओ से ऐसी आशा करना क्या उचित है?"

उपेन्द्रनाथ और सुरेन्द्रनाथ की एक अर्से तक यही धारणा थी कि परीक्षा के समय शरत् ने जो उपद्रव किया था, उसी के कारण उसे परीक्षा देने से रोका गया था, लेकिन आगे चलकर उनकी यह धारणा वदल गयी। उस समय वास्तव मे फीस की रकम का प्रवंध शरत् नही कर सका था।

साहित्य-साधना

शरत् को पिता की अधूरी कहानियों से ही कहानी लिखने की प्रेरणा मिली। वचपन में वह इन कहानियों को लिखकर अपनी मित्र मण्डली को सुनाया करता था। उन दिनों इस वात की कल्पना नही थी कि कभी इनका प्रकाशन होगा और वह पाठकों की दुनिया मे प्रसिद्ध होगा।

प्रारंभ देवानन्दपुर से हुआ और उसका विकास भागलपुर में हुआ जहाँ कई अन्य प्रतिभावान लेखको से सम्पर्क हुआ। प्यारी पंडित के पुत्र को नायक वनाकर 'काशीनाथ' नामक लम्वी कहानी लिखी। इसके वाद 'काकवासा' भागलपुर मे संपूर्ण किया। किशोर उम्र मे जव लिखने का नशा सवार होता है तव अनेक कथानक दिमाग में नृत्य करने लगते हैं। उन सभी को मूर्त रूप देने की तीव्र इच्छा होती है।

उसे यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि प्रतिभा का यह बीज न केवल उसमे, बल्कि अन्य मित्रो मे भी अकुरित हो गया है। शरत् को इस दिशा में कदम रखते देख सुरेन्द्र, गिरीन्द्र, उपेन्द्र आदि चुपके चुपके लिखने लगे हैं। वह इसलिए कि गांगुली परिवार मे साहित्य का प्रवेश निषिद्ध था। लिखना तो दूर रहा, पढ़ना भी अमार्जनीय था। इस परिवार का एक मात्र उद्देश्य था—उच्च अध्ययन करो, वकील वनो, अफसर वनो। शेष कार्य व्यर्थ है, इसमें समय नष्ट मत करो।

अपने परिवार के वारे मे सुरेन्द्र ने लिखा है"इस परिवार मे साहित्य की धारा जरूर बहती थी, पर फल्गु[1] की धारा की तरह प्रच्छन्न थी। अगर पकडे गये तो मुसीबतो का पहाड टूट पडता। कहने का मतलव सव छिपाकर किया जाता था। यह परम्परा भीतर ही भीतर जारी थी। सन् १८९४ ई० के दिनो शरत् को 'काकवासा' लिखते देखा है और वह भी सवसे छिपाकर। उसके मित्र मणि मामा को भी इसकी जानकारी नही थी। यहाँ तक कि हम लोगो को भी देखने का अधिकार नही था। अगर छिपकर पढ़ता तो फटकार के साथ-साथ दण्ड मिलता।

"सन् १८९६ में भुवन मोहिनी की मृत्यु के वाद खंजरपुर जाकर वह प्रकट रूप से साहित्य-चर्चा करने लगा। इसके साथ विभूति भूषण भट्ट और निरुपमा देवी थीं। इन दिनो उपेन्द्रनाथ गागुली भागलपुर में थे। वगाली टोला से खजरपुर काफी दूर रहने के कारण वे इन लोगो से मिल नही पाते थे। उपेन्द्रनाथ भी इसी समय से लिखना प्रारभ किया था। उनकी एक कविता 'सखा-सखी' पत्रिका के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित हुई थी। यह एक चमत्कारिक घटना थी। अगर इसे मैं अमूल्य कहूँ तो अत्युक्ति न होगी।"

"केवल गागुली परिवार में ही नही, वल्कि आसपास के किशोर भी साहित्य साधना मे प्रवृत्त हुए थे। विभूति, सौरीन, निरुपमा और योगेश भी लिखने लगे थे। उपेन्द्र कवि के रूप मे प्रसिद्ध हो रहा था। सौरीन भी कवि के रूप मे प्रकट हुआ था। गिरीन्द्र 'शिशु' नामक हस्तलिखित पत्रिका का सपादक, मुद्रक और प्रकाशक वन गया। विभूति दार्शनिक और वैज्ञानिक था। शेली की तरह दुर्वोध्य कविता लिखने

---

[1] गया की फल्गु नदी अतस्सलिला है।

लगा। निरुपमा भी करुणारस की कविता लिखती रही। शरत् ने इन्ही दिनो बोझा, विचार और काशीनाथ जैसी कहानियाँ लिखी।"

ठीक इन्हीं दिनो (१८९८ ई०) एक मोटी कापी लाकर शरत्चन्द्र ने अपने मणि मामा को देते हुए कहा—"इसे पढ़ियेगा।" इष्टलीन का अनुवाद किया है। प्रोफेसर ईशान बाबू ने पढने के बाद कहा है कि अच्छी रचना है।

"ईशान बाबू तेजनारायण जुवली कालेज मे अग्रेजी के अध्यापक थे। इस पुस्तक का अनुवादित नाम 'अभिमान' था। इस उपन्यास के माध्यम से शरत्चन्द्र उपन्यास लिखने पर हाथ माज रहे थे। उन दिनो उसके मन मे मान-अभिमान का द्वन्द्व चल रहा था। इस अनुवाद के दो साल बाद मेरी कोरेली का 'माइटी ऐटम' अनुवाद उन्होने किया। इस पुस्तक का नाम रखा था—'पाषाण'। यह सन् १९००-१९०१ ई० की बात है। खेद है कि ये दोनो ग्रन्थ प्रेस मे पहुँचने के पूर्व ही गायब हो गये।"

साहित्य-साधना के बारे मे शरत् बाबू के अनन्य मित्र विभूति भूषण भट्ट ने लिखा है—"शरत्चन्द्र को पहले पहल जिन दिनो देखा, उन दिनो वे तेजनारायण जुवली कालेज के छात्र थे। मेरे साथ उनकी मुलाकात सहपाठी के रूप मे न होकर शास्ता के रूप मे हुई थी—आदेशदाता के रूप मे। उन दिनो मैं स्कूल का छात्र था। मास्टर तथा बड़े भाइयो से शासित और पालित था। स्कूली छात्र होने से क्या हुआ। बचपन से ही कविता लिखने की झक सवार हो गयी थी। मैं और मेरी बहन निरुपमा दोनो ही यह अनुभव करते रहे। मेरी बहन समझदार लोगो मे ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। तब तक घर के लोगो मे मेरी कोई कीमत नही थी। मैं छिपे तौर पर अग्रेजी कविताओ का अनुवाद करता था। उन दिनो रवीन्द्रनाथ की रचनाएँ हमारे घर मे नही आयी थी। हम दोनो भाई बहन तत्कालीन कवियो की कविताओ की नकल किया करते थे। भाई तथा मास्टर लोग मेरा मजाक उडाते थे। पता नही, कब कैसे हम दोनों की कापियाँ शरत्चन्द्र के हाथ लग गयी। शायद बडे भाइयो में से किसी ने उन्हे दी थी। उन दिनो शरत्चन्द्र हम उम्र के लोगों मे 'एस० सी० ल्यारा' के नाम से प्रसिद्ध थे। हम उम्र के किशोर बालक उन दिनो इस अद्भुत व्यक्ति को दूर से, संभ्रम के साथ बडे भाई के कमरे मे आते जाते देखते थे। कभी अकेले मे पढते या शतरज खेलते थे।

'वही शरत्चन्द्र एक दिन मेरे अध्ययन कक्ष मे आकर मेरी टेबुल के पास खडे हुए। मैं संभ्रम उठकर खडा हो गया। उन्होने कापी को जोर से टेबुल पर पटकते हुए कहा—"क्या कूडा-कर्कट लिखते हो और वह भी अनुवाद? इसमे अजस्र गलतियाँ हैं। क्या तुम मौलिक चीज नही लिख सकते?"

"मैं भय से कॉपने लगा। इस घटना के बाद कब उनसे मेरी घनिष्ठता हुई और कब उनके टेबुल के पास मुझे बैठने का अधिकार मिला, यह आज याद नही है। इतना याद है कि अपनी साहित्य साधना की कुटीर मे मेरा प्रवेश सहज ही हो गया था।"

"इसके बाद याद आते हैं—सुरेन, गिरीन और उपेन। इन्हे देखने के पूर्व शरत्चन्द्र की कृपा से ये लोग मेरे अपने हो गये थे। उपेन, गिरीन की कविताओ की प्रशसा शरत्चन्द्र की जबानी सुन चुका हूँ, कैसे ये लोग आलमारी के पीछे छिपकर लिखते रहे, विद्यालय के तमाम अत्याचारो को सहते हुए काव्य देवी की उपासना करते रहे, घर के अभिभावको से कितना छिपकर साधना करते रहे। इसके बाद कब सुरेन, गिरीन के साथ परिचय हुआ, यह याद नही है। यह भी याद नहीं है कि बंगाली टोला स्थित गांगुली परिवार से मेरी घनिष्ठता कैसे हो गयी। मेरी समझ से शायद एक हस्तलिपि पत्रिका के प्रकाशन काल मे यह घटना हुई थी।"

इन्ही दिनों के बारे मे श्रीमती निरुपमा देवी ने लिखा है—"मेरे भाई उन्हे कब से जानते थे, यह मैं नही जानती। मैं उनसे तब परिचित हुई, जब मेरी कविताओ के बारे में भाइयो में चर्चा हुई। भाइयो के एक मित्र शरत्चन्द्र (मझले दादा उन्हे 'न्याडा' कहते थे।) हैं, जो भाइयो की तरह मेरी कविताओ के आलोचक हैं। पहले मेरी कविताए केवल परिवार के लोग पढते थे। मुझसे दो वर्ष बडे सहोदर भाई श्री विभूति भूषण भट्ट भी उन दिनो कविता लिखते थे। इस घटना के कुछ दिनो बाद मझली भाभी मझले दादा के पास से एक मोटी कापी ले आयी। कापी पर छोटे छोटे अक्षरों मे लिखा था—'अभिमान'। बाद मे पता चला कि दादा के उक्त मित्र शरत्चन्द्र इसके लेखक हैं। उस कहानी को पढकर हम लोग अभिभूत

हो उठे।''

''मे अजस्र कविताएँ लिखा करती थी। छोटे भैया अपनी और मेरी कापी अपने सम्मानित मित्र को पढने के लिए देते रहे। कापियो पर उनके लिखित विचार पढ़कर हम दोनो प्रसन्न हो उठते थे। एक दिन छोटे भैया की जवानी सुना, शरत् दादा ने कहा है—'अगर एक भाव और एक ही बात के अलावा तरह-तरह के भावो को लेकर बूडी (निरुपमा देवी का घरेलू नाम) लिखने का प्रयत्न करे तो काफी तरक्की कर सकती है।' उन्होने एक दिन यह भी कहा था कि अगर बूडी कोशिश करे तो गद्य भी लिख सकती है, लेकिन इस बात पर मुझे विश्वास नही हुआ।'

''इसके बाद शरत् दादा की कई कापियाँ पढने को मिली। 'काकवासा', 'बागान' (इसमे बोझा, कोरलग्राम, काशीनाथ आदि कहानिया थी), चन्द्रनाथ, शिशु, पाषाण (इस उपन्यास को फिर कभी नही देखा।)। शिशु कहानी आगे चलकर 'बडी दीदी' के नाम से प्रकाशित हुई थी।''

समान विचारधारा के साथी मिलने पर किसी भी सस्था मे सम्मिलित होने और कार्यक्रम मे भाग लेने का उत्साह उत्पन्न होता है। एक दिन शरत् ने अपनी मित्र मडली मे सुझाव रखा कि जब हम सभी कुछ न कुछ लिखते पढते हैं, तब क्यो न एक साहित्यिक सस्था बनाये, जिसमे प्रत्येक रचनाकार सदस्यो के सामने अपनी रचना का पाठ करे। उसके गुण दोषो पर विचार किया जाय और उसकी कमजोरियो पर प्रकाश डाला जाय, ताकि वह सशक्त और सुन्दर रचना का निर्माण कर सके। इससे हम एक दूसरे की प्रगति और रुचि का अन्दाजा लगा सकेगे।

इस प्रस्ताव का सभी लोगो ने अनुमोदन किया। इस मडली मे सबसे तेज तथा वय मे बडा होने के कारण लोग शरत् की बातो का समर्थन करते थे। सस्था का नाम रखा गया—''कुडी साहित्यिक'' अर्थात् साहित्यिक कलिया।

सर्व सम्मति से शरत् को इस सस्था का अध्यक्ष बनाया गया। इस प्रकार कुछ दिनो तक इस साहित्यिक सस्था की गोष्ठिया होती रही। सहसा सस्था के मत्री गिरीन्द्र गांगुली ने प्रस्ताव रखा कि केवल गोष्ठियो से आनन्द नही आ रहा है। हमारी रचनाएँ एक जगह सकलित रहना चाहिए। मेरा विचार है कि एक हस्तलिपि पत्रिका का प्रकाशन किया जाय।

सदस्यो नें इस प्रस्ताव को जब स्वीकार कर लिया तब अध्यक्ष महोदय ने कहा—''हम लोग छात्र हैं। स्कूल की पाठ्य पुस्तको तथा होमवर्क से परेशान रहते हैं। इतना मैटर लिखेगा कौन?''

गिरीन्द्र ने कहा—''मैं लिखूगा।''

उन दिनो गिरीन्द्र की उम्र दस साल थी। उसने कहा—''कुडी साहित्यिको की पत्रिका का नाम 'शिशु' रखा जाय, क्योंकि हम सब शिशु हैं।''

गिरीन्द्र का उत्साह देखकर सभी चकित रह गये। पत्रिका के नाम पर किसी ने विरोध नही किया। शिशु के सपादक-मुद्रक और प्रकाशक गिरीन्द्र गागुली बन गये।

भारत के विभिन्न भाषाओ के साहित्यकारो की साहित्य सेवा हस्तलिखित पत्रिकाओं से आरभ हुई हैं। बगला, हिन्दी, गुजराती, मलयालम के साहित्यकारो के बारे मे ऐसे अनेक सस्मरण प्रकाशित हुए हैं। इसी प्रकार कालेज-जीवन से ही लोग लेखक और कवि बनते हैं। किशोरावस्था की यह बीमारी अधिक जोर पकड़ लेती है।

इस सस्था के बारे मे शरत् बाबू ने कहा है—''मैं इस सस्था का सभापति था, लेकिन साहित्य सभा मे गुरुगिरी करने का अवसर मुझे कभी नही मिला और न ऐसी जरूरत कभी पडी। सप्ताह मे एक दिन सभी की बैठक होती थी। चीखना-चिल्लाना इस गोष्ठी का श्रेष्ठ कार्य था। वह भी अभिभावक और गुरुजनो से छिपाकर किसी निर्जन मैदान मे बैठक होती थी। यह जान लेना आवश्यक है कि उन दिनो देश मे साहित्य चर्चा गुरुतर अपराध माना जाता था। उस सभा मे कभी कभी काव्य पाठ भी होता था। कविता सुनाने मे गिरीन सबसे अच्छा था। इस कारण यह भार उस पर था, मेरे ऊपर नही। कविता के गुण दोष पर विचार होता था और उपयुक्त समझ लेने पर साहित्य-सभा की मासिक पत्रिका मे वह कविता प्रकाशित हो जाती थी, गिरीन साहित्य-सभा के मत्री थे और पत्रिका के सपादक भी। अंगुली यत्र से

अधिकाश लेख वही लिखते थे।"

जब इस गोष्ठी और पत्रिका की जानकारी सतीशचन्द्र बनर्जी को हुई तब उसने सुझाव दिया कि 'शिशु' नाम बचकाना है। पत्रिका नाम 'आलो' रखा जाय। इसे प्रकाशित भी किया जाय। सबसे पहले मैटर का निर्वाचन हो जाय तब प्रकाशन किया जायगा।

सतीश बडे घर का बेटा है। वह अपने पिताजी से कहकर पत्रिका छपवा सकता है। इस समाचार से सभी सदस्यो में बेहद खुशी हुई। अपनी रचना अब हस्तलिखित न होकर छापे के अक्षरो मे प्रकाशित होगी। सतीशचन्द्र के निर्देशानुसार मैटर तैयार किया गया। प्रेस मैटर तैयार करते ही सहसा वज्रपात हो गया। सतीशचन्द्र का असामयिक निधन हो गया। कुडी-साहित्यिको का सारा उत्साह ठडा पड गया।

X X X

शरत् को सर्वदा साहित्य, सगीत, नाटक और अड्डेबाजी करते देख मोतीलाल मन ही मन क्षुब्ध हो उठे। घर की चिन्ता उसे नहीं थी। इधर मोतीलाल को तीन छोटे बच्चो की देखभाल तथा घर की सारी व्यवस्था करनी पडती थी। दो-एक बार दबी जबान से मोतीलाल ने शरत् से कही नौकरी करने के लिए कहा, पर उसने ध्यान नही दिया।

मकान मालिक निस्सन्तान हैं। वे कृपा करके बच्चो को खिला देते हैं। शरत् मित्रो के यहाँ खा लेता है। कभी कदा घर पर भोजन की माग करने पर अगर मिला तो खा लिया वर्ना उसकी फिक्र नही।

अन्त मे एक दिन जब मकान मालिक ने कहा कि कर्ज के बोझ से लद जाने के कारण तुम्हारे पिता ने घर का काफी सामान बेच दिया है। पानी के मोल बेचते जा रहे हैं। उनका क्या, भोगोगे तुम। कब तक शोहदो की तरह चक्कर काटोगे? बडे हो गये हो, कही नौकरी वोकरी करो, वर्ना एक दिन जब यह बूढा नहीं रहेगा तब तुम्हारी गति क्या होगी। नाच गाने से आनन्द जरूर मिलता है, पर उससे पेट नही भरता।

इस सामयिक चेतावनी से शरत् को होश आया। सौभाग्य से एक साधारण नौकरी उसे शीघ्र मिल गयी। काम विशेष नही था। कुछ दिन शहर मे कुछ दिन गाँवो मे जाना पडता था।

शरत् के चले जाने के कारण कुंडी साहित्यिको की मडली ठप्प हो गयी। सभापति के अभाव मे पत्रिका का प्रकाशन और गोष्ठियो के कार्यक्रम बन्द हो गये। सभापति कभी-कभी शहर आते थे।

एक बार अपने मित्र श्री हरेकृष्ण मुखोपाध्याय से बातचीत के सिलसिले मे शरत् बाबू ने कहा था—"मैं कुछ दिनो तक बनेली स्टेट मे नौकरी करता रहा। बोलपुरसैंथिया का चक्कर काटता रहा। सथाल परगना मे उन दिनो सेटेलमेंट का काम हो रहा था। स्टेट की ओर से एक बडे कर्मचारी (शिवशंकर सहाय) स्टेट का काम देख रहे थे। उनके सहायको मे एक मैं भी था। तट के किनारे तम्बू लगाया जाता था। वहाँ राजकुमार साहब अक्सर आते थे। सेटेलमेट अफसरो के तम्बुओ मे नृत्य गीत की महफिल लगती थी।"

सुरेन्द्रनाथ ने भी कहा है—उन दिनो शरत् बनेली स्टेट मे काम करते थे। मैनेजर शिवशकर सहाय के टूर क्लर्क थे। कुछ दिन शहर में तो कुछ दिन गावो मे काम करते थे।

"उन दिनो उसके चेहरे पर हसी के फौवारे छूटते थे। शायद प्रेम का चक्कर था। इस प्रेम की नायिका कौन है, उसे समझना कठिन है। खासकर जबकि परिस्थिति अज्ञात और नयी है, लेकिन इश्क का चक्कर है, इसे समझने मे कोई कठिनाई नही हुई।

एक दिन बातचीत करते हुए उसके घर आया। उस दिन वही भोजन किया। भोजन के पश्चात् मुझे घर तक छोडने के लिए वह मेरे साथ चल पडा। चादनी रात थी। बातचीत करते हुए हम काफी दूर आये, फिर हम वापिस लौटे उसके घर की ओर। इस प्रकार कभी मेरे घर की ओर तो कभी उसके घर की ओर चक्कर काटते रहे। वह वक्ता था और मैं नीरव श्रोता। शरत् की जबान पर मा सरस्वती नृत्य कर रही थी।

उसने अपनी प्रेमिका के बारे मे कहा—उसका नाम नीरदा है। वह मुझे बेहद चाहती है और मैं उससे प्रेम करता हूँ। वास्तव मे वह सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है। बडी-बडी आँखे, सुडौल शरीर, चेहरे पर अपूर्व ज्योति। बादलों की तरह कुन्तल राशि। एक बार निगाह उठ गयी तो उसकी ओर से हटती नही। एक

दिन उससे मिलने के लिए घोडे पर सवार होकर चला। संथाल परगना का भयकर जंगल। जगली जानवरो की आवाजो से वातावरण गूज रहा था। घनी अँधियारी रात थी। मैंने उससे कहा था कि आज की रात तुम्हारे यहा व्यतीत करूगा। इसके अलावा उस वक्त मेरे मन मे और कोई बात नही थी। घोडा तीर की तरह दौड रहा था। अचानक घोडा नदी मे गिर पडा। उसके साथ ही मैं भी गिरा। चोट लगी जरूर, पर उस वक्त प्रिया से मिलने की ऐसी आतुरता थी कि कौन ऐसी चोटो का परवाह करता है? जिस प्रकार राझा-हीर आपस मे मिलने के लिए मिट्टी के घडे के सहारे नदी मे कूद पडे थे, उसी प्रकार मैं झटपट पुन घोडे पर सवार होकर चल पडा। न तन की सुध थी और न मन की। केवल अपने प्रिया के चन्द्रानन की छवि अपनी आखो से देख रहा था। जब मैं उसके यहाँ पहुँचा तो देखा कि वह मेरी प्रतीक्षा मे जाग रही है। दीपक की रोशनी मे श्रृंगर किये बैठी थी। मुझे देखते ही बोली—"अरे, तुम तो पूरी तरह भीग गये हो। ठड लग जायगी। चलो, जल्दी से कपडे बदल डालो।"

"इसके बाद उसने अपने कोमल हाथो से मेरे बदन को पोछा और स्वय सामने बैठकर मुझे भोजन कराती रही। प्रिया हो तो ऐसी हो।"

"बडे मनोयोग से मैं इस कहानी को सुनता रहा। किशोरावस्था मे मस्तिष्क प्रशस्त नही होता। उस वक्त इस घटना पर अविश्वास नही हुआ था। बाद मे विचार करने पर लगा कि यह कहानी केवल मुझे बेवकूफ बनाने के लिए सुनायी गयी थी। सारी बाते झूठ हैं, पर इतना सच है कि वह उन दिनो प्रेम के चक्कर मे था।"

कहा गया है—"बाप का बेटा, सिपाही का घोडा, कुछ नही तो थोडा-थोडा।"

मोतीलाल आजीवन नौकरी से दूर भागते रहे। मुफ्त का खाना, तमाकू पीना और गप लडाना उनके जीवन का उद्देश्य था। ठीक वही स्थिति शरत् की थी। नौकरी करने के कारण स्वतत्रता का अपहरण हो गया। साहित्य-सगीत से दूर हो जाना पडा। कहा भागलपुर मे हमजोली किशोर 'शरत् दादा' कहते थकते नही थे और कहां नौकरी मे 'जी हुजूरी' करना पड रहा है। फलस्वरूप कभी जगलो मे भाग जाता या श्मशान की ओर चला जाता। अन्त मे एक दिन नौकरी को नमस्कार कर वापस चला आया।

नौकरी छोड देने के बाद शरत् का पुन वही आवारागर्दी जीवन प्रारंभ हो गया। घर मे क्या हो रहा है, भाई, बहन, पिता कैसे जीवन बिता रहे हैं? उन्हे क्या कष्ट है, इन सभी चिन्ताओ से मुक्त होकर दिन रात नफरचन्द्र भट्ट के यहा व्यतीत करता रहा। अब सतीशचन्द्र बनर्जी का अड्डा सूनसान हो गया था।

भट्ट परिवार मे पुस्तको का विशाल संग्रह था। यहां चाय, जलपान के साथ साथ धूम्रपान की सुविधा थी। लडको के स्टडी रूम मे जज साहब नही जाते थे। निरन्तर आते-जाते रहने के कारण वे घर के सदस्य के रूप मे मान लिये गये थे, इसका प्रमाण श्रीमती निरुपमा भट्ट के आलेख से प्राप्त होता है।

निरुपमा देवी का विवाह दस वर्ष की उम मे हो गया था। यह सन् १८९३ की बात है। सन् १८९७ मे उनके पति का देहान्त हो गया। बेटी के विधवा हो जाने का दु.ख नफरचन्द्र को सालता रहा—क्यो पढ़े लिखे, ज्ञानी होकर उन्होने बाल-विवाह किया। इस दु.ख के कारण वे अक्सर एकान्त मे रोते थे। ठीक इन्ही दिनो शरत् के कारण निरुपमा देवी को लिखने-पढ़ने का शौक हुआ। यह देखकर पिता ने सोचा—जब मैं बेटी के विधवा हो जाने पर इतना दुखी हूँ तब बेटी कितना अनुभव करती होगी? अगर साहित्य-सेवा से वह अपने आप को भुला रखती है तो यह कल्याणकारी है।

निरुपमा देवी कभी भी अपने भाइयो के मित्रो के सामने नही आयी थी। १८९७ मे विधवा होने के बाद सन् १८९८ मे वार्षिक श्राद्ध का आयोजन किया गया। इसी दिन प्रत्यक्ष रूप से शरत् ने निरुपमा को देखा था।

पिण्डदान वाले दिन की चर्चा करते हुए निरुपमा देवी ने लिखा है—

"वे (शरत् बाबू) हम लोगो के कठोर अवरोध प्रथा विशिष्ट गृहान्तपुर मे आत्मजनो की तरह प्रवेश करते रहे। उस दिन मेरे स्वर्गीय पति का श्राद्ध दिवस था। यमुनिया नदी के कछार के पास, मेरे घर से काफी दूर एक ठाकुरबाडी (मंदिर) था। वही अनुष्ठान हो रहा था। मेरी एक मातृतुल्या विधवा भ्रातृजाया ने (ज्येष्ठ तात की पुत्रवधू) मुझे वहाँ ले जाकर एक आसन पर बिठायी। मैंने देखा कि मेरे भाई तथा

बहनोई कोई नही हैं। (शायद दु ख के कारण) छोटे भैया और एक सज्जन थे जो दौड-धूप कर रहे थे। बाद मे पता लगा कि वे शरत् दादा थे। श्राद्ध कार्य मे पुरोहित द्वारा चूक हो जाने के कुछ देर बाद जब मैंने सशोधन करने के लिए कहा तब उन्होने बडे भाई के रूप मे कहा—"कितनी बडी गलती हो गयी? पहले क्यो नही बतायी?" श्राद्ध के वक्त एक शहद की मक्खी ने मुझे काटा तो मैं चुपचाप बैठी रही। आसन से हिलना नही चाहिए। इस बात को सुनकर वे बहुत व्याकुल हो उठे। बार-बार छोटे दादा से क्षत स्थान पर दही और शहद लगाने का आदेश देते रहे, जबकि मेरा उनसे सामान्य परिचय था। पडोसी और दादा के मित्र के रूप मे सहायता करने आये थे। श्राद्ध के बाद भाभी के साथ घर की ओर रवाना हुई तो देखा कि शरत् दादा तेजी से दौड़ते हुए आ रहे हैं। उनके हाथ मे एक पोटली है। भाभी के हाथ देने पर देखा गया कि उसमे मेरे जेवर थे। उत्तेजना के कारण आते समय यह पोटली छोड आयी थी। उस वक्त भाभी, छोटे भैया और शरत् दादा सभी रो रहे थे। दूसरो के दु.ख मे शरत् दादा दु'खी होते हैं, यह उस दिन प्रकट हो गया।"

अब प्रकट रूप मे खुलकर राजू तथा हम उम्र के लडको के साथ उपद्रव करने के कारण शरत् को आवारा समझा जाने लगा।

शरत् को अपनी बदनामी की तनिक भी चिन्ता नही थी। वह अब दिन-रात अध्ययन मे जुट गया। इन्ही दिनो 'काशीनाथ', 'काकवासा' के अलावा 'अभिमान', 'पाषाण' अनुवाद किया। 'बागान' तीन खण्डो मे लिखा। प्रथम खण्ड में बोझा, काशीनाथ, अनुपमा का प्रेम। द्वितीय खण्ड मे कोरलग्राम (बाद छवि यानी तस्वीर नामकरण किया गया था), शिशु (बाद मे बडी दीदी के नाम से छपा) और चन्द्रनाथ। तीसरे खण्ड मे हरिचरण, देवदास और बाल्य-स्मृति। शुभदा के अलावा 'ब्रह्मदैत्य' उपन्यास का प्रारभ यही किया गया जिसे मुजफ्फरपुरनगर मे पूरा किया था।

सतीशचन्द्र के निधन के बाद 'आलो' पत्रिका की योजना ठप्प हो गयी। अब नौकरी छोडकर आने के बाद पुन साहित्यिक गोष्ठी और पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया गया। इस बार पत्रिका का नाम 'छाया' रखा गया। इसके सपादक बने योगेशचन्द्र और मुद्राकर गिरीन्द्रनाथ गागुली। 'शिशु' की तरह यह भी हस्तलिखित पत्रिका थी।

'छाया' के बारे मे सुरेन्द्रनाथ गागुली ने लिखा है—'इस निभृत साधना मे गिरीन भाई और मैं सहयोगी बना। शरत् को कब गुरु के रूप में मान लिया, यह नही जानता, पर उसका यह अधिकार हम पर बराबर बना रहा। हमारी इस सभा मे कुल छ. सदस्य थे। शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय, विभूतिभूषण भट्ट, निरुपमा देवी, योगेशचन्द्र मजूमदार, गिरीन्द्रनाथ गगोपाध्याय और मैं। इनमें निरुपमा देवी नेपथ्य मे रहकर सहयोग देती रही। यह सभा शनि और रवि को होती थी।

"सदस्य कविता या कहानी लिखते थे। सभापति विषय का निर्वाचन करते थे। सदस्यो को सात दिन के भीतर लिखकर लाना पडता था और अपनी रचना पढकर सुनाना पडता था। निरुपमा की रचना शरत् पढ़ता था। सभापति के जिम्मे एक कठिन कार्य था। रचनाओ पर विचार-विमर्श करने के बाद नम्बर देना पडता था। अधिकतर कविता मे निरुपमा को अधिक नम्बर मिलते थे।

इस सस्था तथा पत्रिका के बारे मे विभूति भूषण भट्ट ने लिखा है—"पत्रिका के प्रथम सपादक योगेशचन्द्र मजूमदार और मुद्राकर थे गिरीन्द्रनाथ। लेखक अनेक थे, पर लेखिका एक मात्र मेरी अन्त पुरचारिणी विधवा बहन श्रीमती निरुपमा देवी थी। मित्रो की दृष्टि से दूर रहते हुए वे सभी लोगो की बहन थी। उनकी रचनाओ पर जितने विचार प्रकट किये जाते थे, उन सबका विवरण घर जाकर मुझे सुनाना पडता था।"

श्रीमती निरुपमा देवी ने लिखा है—"मेरी रचनाएँ 'श्रीमती देवी' के नाम से छपती रही। कभी-कभी गद्य जब लिखती तब शरत् दादा के पाठ से मुझे शर्म आती रही। सुरेन्द्र, गिरीन्द्र और मेरे छोटे भैया के बीच काव्य प्रतियोगिता होती। विषय का निर्वाचन शरत् दादा करते थे। योगेश मजूमदार सपादक थे। वे कट्टर आलोचक थे। पता नही किसने उनके विरुद्ध निम्न लाइने लिखी थी—

ऐ कुंचित केश मार्जित क्रिटिक योगेश क्रुद्ध।
बले दीनतार छवि जत सब कवि कारागारे हबि रुद्ध।।

भागलपुर के ये बालक जिन दिनो तेजी से अपनी साहित्यिक-प्रतिभा का विकास कर रहे थे, ठीक इन्ही दिनो कलकत्ता से एक और बगाली किशोर इस नगरी मे आया। वे थे—बगला कथा-साहित्य के प्रसिद्ध लेखक श्री सौरीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय।

सौरीन्द्रमोहन कलकत्ता मे फर्स्ट इयर का छात्र था। अचानक एक बुरी बीमारी का शिकार हो गया। इलाज से लाभ नही हो रहा था। डाक्टरो ने सलाह दी कि हवा-पानी बदलना इसके लिए लाभदायक होगा। इसे पछाह के किसी शहर मे कुछ दिनो के लिए भेज दीजिए। बिना स्थान परिवर्तन किये यह ठीक नही होगा। इसी आधार पर सौरीन्द्रमोहन भागलपुर आया।

सौरीन्द्रमोहन का भागलपुर आना सोने मे सुगन्ध साबित हुआ। शरत् और सौरीन्द्र का मिलन विभूति के माध्यम से हुआ था। सौरीन्द्रमोहन ने ही शरत् का प्रथम उपन्यास छापकर बगला-साहित्य मे तहलका मचा दिया था। लेखको की दुनिया मे शरत् को स्थापित करने का श्रेय सौरीन्द्रमोहन को है।

भागलपुर में सौरीन्द्रमोहन के मौसा श्रीमुकुन्द देव मुखोपाध्याय डिप्टी कलक्टर थे। नगर मे उनका प्रभाव था। इनकी पुत्री श्रीमती अनुरूपा देवी बगला साहित्य की प्रसिद्ध लेखिका तथा विश्व विश्रुत विद्वान भूदेव मुखोपाध्याय की पौत्री थी। मौसाजी ने सौरीन्द्रमोहन का नाम स्थानीय तेज नारायण जुबली कालेज मे लिखाया।

कालेज मे आते ही विभूति भूषण भट्ट से इनकी मुलाकात हुई। दोनों एक दूसरे को देखकर चौंके। विभूति इनके बचपन का मित्र तथा सहपाठी था। वह भी कालेज के फर्स्ट इयर का विद्यार्थी था। इस प्रकार परदेश मे एक पुराने सहपाठी को पाकर उसका अकेलापन दूर हो गया।

१९०० ई० के जनवरी माह की बात है। उस दिन किसी कारण सहसा कालेज बन्द हो गया। भट्ट के घर आने पर मित्रो की सलाह हुई कि आज क्रिकेट खेला जाय।

सौरीन्द्रमोहन के हाथ मे पट्टी बधी थी। वह सरलता से खेल नही सकता था। उसने कहा—"तुम लोग तो बैट लेकर दौडोगे और मै क्या करूंगा?"

पुटू ने कहा—"रवीन्द्र ग्रथावली लेकर चलो। वही बैठकर पढना।"

सौरीन्द्र ने कहा—"इस पुस्तक की प्रत्येक लाइन कठस्थ है। दूसरी कोई पुस्तक है तो ले चलो।"

पुटू[1] ने लाइनदार एक मोटी कापी दी जिस पर लिखा था—"बागान'। इस कापी में बोझा, काशीनाथ, अनुपमा का प्रेम, सुकुमारेर बाल्यकथा नामक कहानियाँ लिखी हुई थी। अग्रेजी मे लेखक का नाम लिखा था—शरत् चन्द्र न्याडा। शरत्चन्द्र को लोग 'न्याडा' नाम से बुलाते थे।

उस समय तक सौरीन्द्रनाथ का परिचय शरत् से नही हुआ था। सभी सहपाठी क्रिकेट खेलने लगे और सौरीन्द्र उन कहानियों को पढ़ने लगा।

शाम के वक्त चलते समय पुटू ने पूछा—"कहानियाँ कैसी लगी?"

किशोरावस्था मे जैसी राय बनती है, उसी प्रकार राय सौरी द्रमोहन ने दी। सौरीन्द्र की राय पुटू के माध्यम से शरत् तक पहुँच गयी।

इस घटना के एक माह बाद पुटू के यहां आयोजित एक प्रीति गोष्ठी मे सौरीन्द्रमोहन आया। श्रीमती अनुरूपा देवी का इस परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध था। दोनों के पिता एक ही विभाग के अधिकारी थे। इसी कारण विभूति की बहन श्रीमती निरुपमा देवी से मैत्री थी। दोनो एक दूसरे की सहेली थी।

पुटू सौरीन्द्रमोहन को साथ लेकर बैठकखाने में आया। उन्होने देखा—एक शीर्णकाय व्यक्ति कुर्सी पर बैठा है। सिर पर छोटे-छोटे बाल, मुँह पर पतली दाढ़ी, पुस्तक पढ़ते हुए अपने सिर के बालो पर रह-रहकर हाथ फेर रहे हैं।

पुटू ने बडे सभ्रम के साथ पुकारा—शरत दादा?"

इस नाम को सुनते ही सौरीन्द्रमोहन समझ गये कि सामने बैठा युवक 'बागान' के लेखक शरत्चन्द्र न्याडा हैं। अपने को पुकारते सुनकर शरत् ने मुँह उठाकर देखा।

---

[1] बगाली समाज में स्कूली नामों के अलावा लडके-लड़कियों का एक घरेलू नाम होता है। पुंटू, जेंटू, मटू, पटल, आलू, बूढ़ो, बूढ़ी, खेंदी, हाबुल, मुनि, गाबल, निमू, मोना आदि। जैसे पुटू की छोटी बहन का नाम 'बूडी' (बुढ़िया) था।

पुटू ने कहा—"आप ही हैं मेरे मित्र श्री सौरीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय। रवि बाबू के कट्टर भक्त। इन्होंने ही आपकी कहानियों के बारे मे अपनी राय दी थी।"

अब शरत्चन्द्र ने सौरीन्द्रमोहन की ओर घूरकर देखते हुए पूछा—"क्या तुम भी कहानिया लिखते हो?"

"नही।"

पुटू ने कहा—"यह कवि है, कविता लिखता है।"

—कहानी क्यो नही लिखते?

—लिख नही पाता।

शरत् ने कहा—"कविता लिख लेते हो और कहानी नही लिख सकते। कोशिश करो। पुटू की जबानी अपनी कहानियों की समालोचना सुनने के बाद मुझे प्रतीत हुआ कि कहानी किसे कहते है, इसका ज्ञान तुम्हे है। उसी आधार पर कह रहा हूँ कि कहानी लिखने की आइडिया तुम्हारे पास है। अब आगे लिखना।"

आगे सौरीन्द्रमोहन ने लिखा है—"सबेरे, शाम, दोपहर जब भी पुटू के घर गया तब उन्हे उसी कुर्सी पर बैठा देखता रहा। वे अधिकतर अंग्रेजी पुस्तके पढते रहे। एक बार मैंने इन पुस्तको को देखा था। बायोलाजी, फिजालाजी और बाटनी की पुस्तके थी। उन दिनो कहानियाँ काफी लिखते थे। अब तक उनकी कहानियाँ पुटू और निरुपमा पढती थी और अब मैं भी पढ़ने लगा। उनकी 'कोरल' कहानी की याद है। वह बाद मे खो गयी। उसे छपते नही देखा। उन्होने कहा था कि यह अनूदित कहानी नही है। मौलिक है। विदेशी पात्रो को लेकर लिखा है। मेरी करोली की 'माइटी एटम' के आधार पर 'पाषाण' नामक उपन्यास लिखा था। उसे पढ़ते समय न जाने कितने आसू बहाये हैं। यह उपन्यास भी खो गया था।

'कोरल' 'पाषाण' के बाद 'बडी दीदी' तथा 'चन्द्रनाथ' लिखा था। 'बड़ी दीदी' के अन्त मे एक पंक्ति थी—'परलोक मे सुरेन्द्रनाथ के चरणो के निकट माधवी को जरा स्थान देना भगवान।'

"इस पंक्ति के विरुद्ध मैंने उनसे तर्क किया था। कहा था—"लेखक होकर तुममे यह ममत्व क्यो है? यह आवेदन हम लोगो के लिए छोड दो। इस पंक्ति को काट दो। प्रकट रूप मे किसी पात्र पात्री का पक्षधर नही बन सकते।

"दो महीने बाद उन्होंने कहा था—"यह जानकर तुम्हे खुशी होगी कि अंतिम पंक्ति को मैंने निकाल दिया।"

"बाद मे देखा कि वह पंक्ति फिर कभी प्रकाशित नही हुई।"

"इन्ही दिनो आदमपुर क्लब की ओर से 'अलीबाबा' का मचन हुआ था। शरत्चन्द्र ने कौन-सा पार्ट किया था, इस वक्त स्मरण नही है। उन दिनो नाटक खेलने का अर्थ था—आवारापन, शोहदा गिरी। मैंने डरते हुए कहा था—"नाटक करने से लोग बदनाम करेगे।"

शरत् ने हँसकर कहा था—"करने दो।"

सुना कि शरत् ने अच्छा अभिनय किया था। उस समय उसकी उम्र २३-२४ वर्ष के लगभग थी।

"१९०१ मे इण्टर पास करने के बाद कलकत्ता चला आया। आते समय शरत्चन्द्र से आज्ञा लेकर पुटू से उनकी दो कापिया लेता आया। यहाँ आते ही मैंने अपने मित्रों के सहयोग से 'छात्र समिति' के नाम से एक सस्था स्थापित की। इस सस्था मे जब शरत् की कहानिया पढ़कर सुनायी तब सदस्यो ने कहा कि ऐसी कहानिया रवीन्द्रनाथ के अलावा अन्य कोई नही लिख सकता। यह तो अद्भुत हैं। उपेन्द्र से मैंने कहा—"रिश्ते मे तो यह तुम्हारा भाजा है। तुमने कभी यह नही बताया कि वह इतना अच्छा लेखक है।"

उपेन्द्र ने कहा—"मैंने उसकी कहानिया नही पढी है। इसके अलावा शरत् आवारा हो गया है। हमारे घर से अब उसका कोई सम्पर्क नही है। सतीश और पुटू के यहां अधिकतर रहता है।"

"भागलपुर से आते समय मुझे यह पता चला था कि वे लोग 'छाया' नामक हस्तलिखित पत्रिका निकालेंगे। 'छाया' के संपादक होंगे हमारे सहपाठी, मित्रवर योगेश मजूमदार। मैंने अपनी सस्था मे प्रस्ताव रखा कि हम लोग भी एक हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशित करेगे। उसका नाम 'तरणी' रखेगे।

पत्रिका का संपादक मुझे बनाया गया।

इस प्रकार हम 'तरणी' भागलपुर भेजते और वे लोग अपनी 'छाया'। इस विनिमय का असर यह हुआ कि एक दूसरे की रचनाओं की कठोर आलोचना करते थे। प्रशंसा नहीं करते थे।

हम लोगो की इस मनोदशा को देखकर कई बुजुर्गों ने कहा—"तुम लोग लिखते हो या आपस में गाली गलौज करते हो।"

"छाया" में शरत् कभी कभी लिखते थे। एक कहानी जो याद है—'आलो और छाया'। बाद में दोनों पत्रिकाओं का प्रकाशन बन्द हो गया।

इस घटना के बाद शरत् ने हरिचरण, देवदास, बाल्य-स्मृति, शुभदा और ब्रह्मदैत्य नामक उपन्यास लिखे।

यायावरी-जीवन

शरत् बाबू का यायावरी-जीवन रहस्यमय है। घर से अचानक क्यों भागे, इस सम्बन्ध में मर्हर्षि नरेन्द्र देव का अलग मत है तो सौरीन्द्र मोहन का अलग। जबकि दोनों ही विश्वसनीय नहीं हैं। बाकी लोग इस प्रसग से बचकर आगे बढ़ गये हैं।

श्री नरेन्द्र देव ने शरत् बाबू का जीवन-चरित्र लिखा है। शरत् बाबू में एक विशेषता यह थी कि वे अपने बारे में लिखे गये लेखों के बारे मे कोई प्रतिवाद नही करते थे। न सच का समर्थन करते और न झूठ का प्रतिवाद। यही कारण है कि उनके बारे में नाना प्रकार के मत हैं। नरेन्द्र देव का एक विचार अवश्य विश्वसनीय है। उन्होंने लिखा है—

"किसी किसी व्यक्ति में अजीब तरह के शौक होते हैं। शरत् बाबू के पिताजी को तरह-तरह के पत्थरो को सग्रह करने का शौक था। इन मूल्यवान पत्थरों को वे लकड़ी के एक बक्स में जुटाकर रखते थे। शरत्चन्द्र को इसकी जानकारी थी, लेकिन इस बात की जानकारी नही थी कि वे पत्थर मूल्यवान हैं। शरत्चन्द्र इन पत्थरों मे से कुछ पिता को बिना सूचित किये, अपने किसी मित्र को उपहार में दे दिया।

"मोतीलाल को जब इस बात का पता चला तो बेहद नाराज हो गये। एक तो कितने दिनों से वे इतने सुन्दर पत्थरों का सग्रह करते आ रहे हैं, दूसरे दिन रात आवारा की तरह घूमने वाला लड़का जिसे न घर की चिन्ता और न भाई-बहन की, न जाने कहा किसे दे आया।

"जिस पिता से वे बराबर स्नेह प्राप्त करते रहे, जो उनके सहस्रों अपराध को क्षमा करते आये हैं, उनके फटकारने का दु ख उनसे सहन नही हुआ। वे चुपचाप घर से गायब हो गये।"

अनुमान किया जा सकता है कि ऐसी घटना अवश्य हुई होगी, पर मुख्य कारण मेरी समझ से यह नही था। शरत् बाबू चाहते तो अपने उस मित्र से उन पत्थरों को वापस लाकर पिताजी को दे सकते थे। मोतीलाल की निगाह मे भले ही वे पत्थर कीमती रही हो, पर शरत् बाबू ने पत्थर समझकर ही उपहार दिया था।

रहा दु:ख का प्रश्न। कालेज मे परीक्षा देने से रोका गया तब कितना दु:ख हुआ था? शिवचन्द्र बनर्जी के एक साले क्रान्तिचन्द्र जो कि कालेज में अध्यापक थे, उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी दाह-क्रिया मे शरत् ने भाग लिया था। शिवचन्द्र बनर्जी जातिच्युत थे, इसलिए उनके साले भी जातिच्युत मान लिये गये। केवल इसी अपराध के कारण शरत् का शवदाह करना समाजपतियों की निगाह में अक्षम्य अपराध हो गया। उन लोगों ने इसका बदला लिया गांगुली परिवार में आयोजित जगद्धात्री पूजा के अवसर पर।

ब्राह्मण-भोज हो रहा था। शरत् मामा के घर परिवेशन कर रहा था। सहसा उसे देखकर समाजपतियों ने विद्रोह किया—"अगर शरत् यहाँ परिवेशन करेगा तो हम लोग भोजन नही करेंगे। इसने कान्ति का शवदाह किया था।"

ब्राह्मण-भोज चौपट न हो जाय, इसलिए शरत् को परोसने के काम से रोक दिया गया। वह बुरी तरह अपमानित होकर मामा के घर मे चला आया। क्या यह अपमान पिता के फटकारने से छोटा था? इस वक्त वे नगर छोडकर क्यो नही भागे?

वास्तव मे यह सब घटनाएँ 'जले पर नमक छिडकने' के बराबर था। जलने वाली घटना दूसरी थी। वास्तव मे उन दिनो गदह पचीसी की उम्र थी। इस उम्र में नासमझी के दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

शरत् ने पहले पहले श्राद्ध के दिन जब निरुपमा को देखा तो वे उस पर आसक्त हो गये। इसकी शुरूआत साहित्यिक क्लब से हुई थी।

"कविता या कहानी लिखना ही सदस्यो का काम था। जब सभापति विषय निवार्चन कर देते थे तब सात दिन के अन्दर सदस्यो को उसी विषय पर लिखना पडता था और गोष्ठी मे सुनाना पडता था। निरुपमा की रचना वे स्वय पढ़ते थे।

"सभापति को एक और कठिन काम करना पडता था। रचनाओ पर विचार करने के बाद वे नम्बर देते थे। अधिकतर कविताओ में सबसे अधिक नम्बर निरुपमा को दिया जाता था।"

सुरेन्द्रनाथ गगोपाध्याय के उपरोक्त बातो से शरत् की कमजोरी स्पष्ट हो जाती है। स्वय निरुपमा देवी ने लिखा है—"मेरी सारी रचनाएँ 'श्रीमती देवी' के नाम से छपती रही। कभी-कभी गद्य लिखती थी तब शरत् दादा के पाठ से शर्म आती रही।"

निरुपमा की रचना उसके भाई विभूति या अन्य कोई क्यो नही पढता था? क्यो उसे अधिक नम्बर दिये जाते थे? तत्कालीन सदस्यो की रचनाएँ अगर आज अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि निरुपमा देवी की रचना उनसे अच्छी नही थी। इसी एक कमजोरी के कारण शरत् आजीवन तडपते रहे। शरत् बाबू उन दिनो अपनी रचनाओ के माध्यम से उसे आकर्षिक करते रहे। 'बडी दीदी' उसका एक प्रथम्र प्रमाण है। माधवी कम उम्र मे विधवा होकर पिता के घर रहती है। सुरेन्द्रनाथ के रूप मे स्वय को उन्होने प्रस्तुत कर यह दिखाना चाहा कि विधवा माधवी मन ही मन सुरेन्द्र को चाहने लगी है।

दूसरी कहानी है—'अनुपमा का प्रेम।' गदह पचीसी की उम्र न होती तो इस कहानी को लिखने का साहस शरत् मे न होता। कहानी संक्षेप मे यो है—

अनुपमा धनाढ्य घराने की जगबन्धु बाबू की दूसरी पत्नी की सतान है। वह कम उम्र से ही कहानी और उपन्यास पढती है। इनके पडोस मे ललित नामक एक युवक अनुपमा को मन ही मन प्यार करता है। खराब सगत के कारण वह शराब पीता है।

अनुपमा का विवाह एक युवक ये तय न हो सका तो एक वृद्ध से हो जाता है। विवाह के कुछ दिनो बाद पति तपेदिक रोग के कारण मर जाता है। अनुपमा विधवा बनकर सौतेले भाई की गृहस्थी में रहती है। यहाँ सौतेला भाई और भाभी काफी तग करते हैं। फलत एक दिन वह नदी मे डूबकर आत्महत्या करने जाती है। नदी से ललित उसे लाकर सेवा-इलाज करता है।

'अनुपमा का प्रेम' कहानी का सीधा रिश्ता निरुपमा देवी के जीवन से है। पहला प्रमाण निरुपमा के बदले अनुपमा नाम है। वह धनाढ्य नफरचन्द्र की द्वितीय पत्नी की पुत्री है। कम उम्र से ही वे उपन्यास पढती थी। उसके पति की मौत तपेदिक के कारण हुई थी। शरत् बाबू उनके पडोसी थे। विधवा होकर निरुपमा भाई की गृहस्थी में रहती थी।

दरअसल इस कहानी के माध्यम से शरत् बाबू यह स्पष्ट करना चाहते थे कि सौतेले भाई बहन की गृहस्थी मे रहने की अपेक्षा मुझसे विवाह कर लो।

उन दिनो समाज में कट्टरपन और रुढ़िवाद का जोर था। विधवा-विवाह के पक्षपाती होते हुए भी नफरचन्द्र अपनी बेटी का पुनर्विवाह करने मे असमर्थ थे। शरत् बाबू को यह ज्ञात था कि नफरचन्द्र उदार प्रकृति के हैं, इसीलिए अपनी रचनाओ के माध्यम से उसे आकर्षित करते रहे। इसके पूर्व निरुपमा देवी ने 'बडी दीदी' को पढ़ने के बाद अपनी राय दी थी—'कृपया आप अपने उपन्यासो मे बाल विधवाओ को नायिका न बनायें।'

आज की तरह बीसवी शताब्दी के अन्त मे उदार प्रवृत्ति नहीं थी। रुढ़िवादी का पालन कड़ाई से होता था। उन दिनो शरत् का जो जीवन था, उसे अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता था। वे आवारा तथा उच्छृंखल समझे जाते थे। इस बदनामी के पीछे उनके कुछ दोष भी थे। उन दिनों सम्मानित परिवार की महिलाएँ उन्हें किस दृष्टि से देखती रहीं, इसकी एक झलक श्रीमती अनुरूपा देवी के एक लेख से मिलता है।

सन् १९५१ के जनवरी माह मे जव निरुपमा देवी का निधन हुआ तव उनके वारे मे सस्मरण लिखते हुए श्रीमती अनुरूपा देवी ने शरत् वावू के वारे मे लिखा था—"वे (शरत्चन्द्र) सुविधानुसार अनेक लोगो से, अपनी मर्यादा वढाने के लिए, सिर्फ कल्पना विलास आकाश-कुसुम चयन के लिए हो या आनन्द पाने के लिए हो, विभिन्न प्रकार की वातो का प्रचार करते रहे। इन वातो के आधार पर किसी अन्य समाज मे डिफारमेशन चार्ज करके उन पर मुकदमा चलाया जा सकता था। हमारे हिन्दू समाज मे ऐसे धृष्ट व्यक्ति से वचकर रहने का उपदेश दिया जाता है। कीचड को अधिक हिलाना नही चाहिए। जिस भद्र समाज मे प्रतिष्ठित घर की महिलाओं के वारे मे, कितने सयत ढग से वाते करना चाहिए, आज के वहु सम्मानित, उस दिन के आवारा, यायावर व्यक्ति को इसका ज्ञान नही था। इसे मैं, मेरे पति और वर्तमान मे दो-एक नर-नारी प्रमाण देने को तैयार हैं। वे अपने मित्र की छोटी वहन को 'वूडी' कहते हुए उल्लेख कर सकते हें, यह कोई विचित्र वात नही है, लेकिन इससे यह प्रमाणित नही होता कि आज से अर्द्ध शताव्दी पूर्व नियमतांत्रिक घर की वाल-विधवा के साथ शरत्चन्द्र जैसे चरित्रवाले एक अनात्मीय व्यक्ति के साथ अन्तरग ढग से मेल मिलाप होता रहा।"

श्रीमती अनुरूपा देवी का यह आक्रोश भले ही पूर्ण रूप से सत्य न हो, पर एक महिला द्वारा यह आक्षेप लगाना एक हद् तक इस माने में सही है कि उन दिनो शरत् का चरित्र उज्जवल नही था। सभव है कि वे इस वात का प्रचार करते रहे हो कि निरुपमा मुझे चाहती है। गदगी का एक छीटा अपना असर दिखाता हे।

मन ही मन ख्याली पोलाव पकाने वाले शरत्चन्द्र शायद कुछ वातचीत करने के लिए भट्ट परिवार के अन्दर महल मे चले गये। उन्हे इस तरह आते देख निरुपमा देवी सख्त नाराज हो गयी। ज्योंही शरत् वावू ने पूछा-'क्या हालचाल है?' त्योही निरुपमा देवी क्रोध से कापती हुई वोली-'निकल जाइये'।

निरुपमा की उग्र मूर्ति देखकर वे चुपचाप चले आये। उनके स्वप्नों का महल धराशायी हो गया। शरत् को विश्वास था कि 'अनुपमा का प्रेम' का कुछ असर हुआ होगा, पर इस तरह अपमानित होगे, इसका विश्वास नही था। इस घटना का उल्लेख निरुपमा ने अनुरूपा देवी से किया था और इसकी जानकारी श्री सौरीन्द्रमोहन को थी।

निरुपमा देवी को शरत् के मन की वात का पता चल गया था। वे अपने प्रति काफी कठोर हो गयी। कही मेरा हृदय भी उन्मुख न हो जाय, इस भय के कारण वे पूजा-पाठ, जप-तप का कठोरता से पालन करने लगी।

सभवत, इसी घटना के वाद पत्थरो वाली घटना हुई जिसके कारण ही शरत् वावू घर से भाग खडे हुए। केवल पत्थर वाली घटना के कारण नही। उन्हे भय हुआ कि कही इस घटना के कारण कोई तूफान न आ जाये। भागलपुर मे उनका कोई मूल्य नही है। मेरा निजी मत है कि इसी भय से वे भाग गये थे।

सन्यासियो के साथ वे कव तक रहे और कैसे उनका साथ हुआ, इस वारे मे कोई प्रामाणिक तथ्य नही है। 'श्रीकान्त' में जो वर्णन है उसमे कितना सत्य है, कहा नही जा सकता। यह सही है कि सन्यासियो के किसी दल मे थे। वातचीत के मे सिलसिले, उन्होने इस सत्य को स्वीकार किया है। इस यात्रा मे वगाली-वधू से मुलाकात भी हुई थी।

शरत् वावू के वारे में हिन्दी-वगला दोनों ही भाषा के लेखको ने पूर्ण रूप से सही वातों का उल्लेख नही किया है। अपनी स्मृतियो के अलावा अन्य वातों को दूसरों के आधार पर लिखी हैं। द्विजेन्द्र दत्तमुंशी से लेकर श्री गोपालचन्द्र राय तक मे यह दोष रहा है।

शरत् वावू का यायावर जीवन कैसा रहा, इस वारे मे लेखकों को सामान्य जानकारी थी। उसी के आधार पर लोगो ने मुजफ्फरपुर के वारे मे लिखा हे।

श्री नरेन्द्रदेव को श्री प्रमथनाथ[1] ने जो कुछ वताया था, उसे उन्होंने लिखा है। प्रमथनाथ भट्टाचार्य ने कहा था—एक दिन वे अपने क्लव मे वैठे सदस्यों से वातचीत कर रहे थे। ठीक इसी समय एक युवा सन्यासी ने आकर कहा कि क्या आपके पास कलम दवात है?-क्लव के एक सदस्य ने सारा सरजाम

[1] प्रमथनाथ वर्धमान जिले के निवासी थे। मुजफ्फरपुर में अपने चाचा के पास रहकर अध्ययन करते थे। यहीं शरत् से मित्रता हुई थी।

लाकर दिया। संन्यासी अपनी झोली के भीतर से एक पोस्टकार्ड निकालकर बगला मे पत्र लिखने लगा। अक्षर बडे सुडौल थे। क्लब के सदस्यो मे उत्सुकता बढी। सभी चचल हो उठे। प्रमथनाथ जरा चालाक थे। पास आकर बातचीत करने लगे। प्रमथनाथ बंगला मे प्रश्न करते रहे और शरत् हिन्दी मे उत्तर देते रहे। यह देखकर प्रमथनाथ ने कहा—"विहारी बोली छोडकर अपनी मातृभाषा मे बातचीत कीजिए। हम लोयो को पता चल गया है *कि आप शुद्ध बगाली हैं।*"

इस बात पर शरत् हँस पडा। फिर दोनो आपस मे वगला मे बातचीत करने लगे। यही पहले पहल प्रमथनाथ से मित्रता हुई थी।

मुजफ्फरपुर आकर शरत् ने एक धर्मशाले मे डेरा डाला था। रात को मस्ती मे छत पर बैठे गीत गाया करते थे। एक दिन इसी प्रकार अपनी मौज मे गा रहे थे कि सहसा दो अपरिचित युवक आये और बातचीत होने लगी। इनमे एक का नाम निशानाथ और दूसरे का महादेव साहू था।

कई दिनो बाद निशानाथ आये और अपने घर ले गये।

इसी घटना के बारे मे निशानाथ की भाभी श्रीमती अनुरूपा देवी ने अपने सस्मरण मे लिखा है—"मुजफ्फरपुर मे मेरे एक देवर थे। उन्हें गाने-बजाने का बेहद शौक था। एक दिन घर आकर उन्होने सूचित किया कि यहाँ के धर्मशाले मे एक बगाली युवक ठहरा है जो बडा अच्छा गाता है। उसका गला बहुत मीठा है गो कि अपने को विहारी आदमी कहता है, वास्तव मे वह बगाली है। एक दिन उसे ले आऊँगा। उसका गाना सुनना। वहाँ उसे खाने-पीने की तकलीफ है। अगर उसे अपने यहा रखा जाय तो अच्छा होगा।

"अच्छे गायको के आने पर घर पर अक्सर महफिल जमती थी। निशानाथ शरत् बाबू को ले आये। इस घटना के दो माह बाद न जाने क्यो घर छोडकर चले गये। उन दिनो उनकी स्थिति अच्छी नही थी। श्री शिखरनाथ बाबू तथा उनके मित्र शरत् बाबू की बातचीत से सतुष्ट थे।"

दरअसल यहाँ रहते हुए इनका परिचय नगर के प्रसिद्ध जमीदार महादेव साहू से हो गया था। महादेव साहू काफी धनाढ्य व्यक्ति थे और इन्हे गाने बजाने का शौक था। निशानाथ के माध्यम से शरत् बाबू के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के बाद वे अक्सर अपने यहाँ ले जाते थे। महादेव साहू की महफिल मे शराब के दौर चलते थे।

एक दिन शराब के नशे मे झूमते हुए शरत् बाबू घर आये तो इनकी हालत देखकर शिखरनाथ (अनुरूपा देवी के पति) की बुआ बिगड उठी। अपनी लज्जा को छिपाने के लिए वे दूसरे दिन वहाँ से हट गये।

यहाँ से हटकर वे सीधे महादेव साहू के घर आये। महादेव साहू के यहाँ हमेशा गाने-बजाने के कार्यक्रम होते थे।

श्री राजेश्वर प्रसाद नारायण सिह ने अपनी पुस्तक 'बिहार के गौरव' मे कई सनसनी खेज तथ्य दिये हैं, जिसके बारे मे श्री गोपालचन्द्र राय को जानकारी नही है। जब मैंने इस बात की सूचना दी तो वे मेरे साथ कलकत्ता स्थित राष्ट्रीय पुस्तकालय मे आये। वही से पुस्तक लेकर मैं उन्हे ज़बानी अनुवाद करके सुनाया।

श्री गोपालचन्द्र राय शरत् जीवनी के एक मात्र विशेषज्ञ माने जाते हैं और उनकी शरत् बाबू पर असीम भक्ति है। उन्होने कहा—'सारी बातें झूठ हैं। मैं शीघ्र ही एक लेख लिखकर इसका खण्डन करूँगा, लेकिन पिछले १७-१८ वर्ष के भीतर उन्होने कही खण्डन नही किया।'

सिह जी अपने लेख मे लिखते हैं—"महादेव साहू की उन दिनो १८ साल की उम्र थी जब शरत् बाबू मुजफ्फरपुर आये थे। महादेव की मित्रता अधिकतर बंगाली लडको से थी। इसी सूत्र से उनका परिचय शरत् बाबू से हुआ। यह मैत्री ऐसी बन गयी कि शरत् बाबू महादेव साहू के लिए मन-प्राण बन गये। धीरे-धीरे सारे शहर में यह बात प्रचारित हो गयी कि एक बगाली लडके के कारण महादेव चौपट हो रहा है। अधिकतर वेश्यालयो मे पडे रहने के कारण महादेव की पत्नी से अनबन हो गयी। इनकी महफिल मे शराब के दौर बराबर चलते रहे।

"मुजफ्फरपुर मे दोनो एक साथ पुटी नामक एक वेश्या के यहाँ जाते थे। महादेव को शिकार का

बडा शौक था। शरत् वावू शराव की बोतल लेकर नदी किनारे या श्मशान की ओर चले जाते थे। मुजफ्फरपुर मे भरथुआ झील मे जाकर बत्तखों का शिकार खेलते थे।

"यही पटना की रहने वाली एक वेश्या से उनका परिचय हुआ, जिसका नाम राजलक्ष्मी था। वह साहू के महफिल मे नाचती थीं। शिखरनाथ के घर से हटकर शरत् वावू एक मेस मे रहते थे। मेस के सामने एक चिकित्सक चन्दर वावू सपत्नीक रहते थे। चिकित्सक की पत्नी राजवाला अपूर्व सुन्दरी थी। इनसे शरत् बाबू का काफी दिनो तक सम्पर्क रहा। राजवाला भी इन पर जान छिडकती थी। अगर शरत् बाबू एक दिन देर से पहुँचते थे, तव राजबाला वडी शिकायत करती थी। चन्दर वावू का देहान्त सन् १९२० ई० में हो गया। उनके मर जाने के वाद राजवाला उनके भतीजे नित्य गोपाल सिद्धान्त के नाम सब कुछ लिखकर कलकत्ता चली गयी।

"राजबाला ही श्रीकान्त की राजलक्ष्मी है और नित्य गोपाल सिद्धान्त बकू। भद्र घराने की वहू होने के कारण राजवाला नाम न देकर उसका नाम राजलक्ष्मी दिया गया है।

"शरत् वावू एक लडकी की तलाश मे मुजफ्फरपुर आये थे। उसे आवकारी के एक दरोगा ने रख लिया था। जव दरोगा को यह बात ज्ञात हुई तब उसने शरत् को पीटा था। यह तब की घटना है जब वे शिखरनाथ के घर थे। इस घटना के बाद वे शिखरनाथ के घर से हट गये। यहाँ रहते हुए शरत् बाबू ने हिन्दी सीखी और अनेक गीत कठस्थ किये।"

मुझ श्री सिह के इस लेख पर शका हुई तब मैंने उन्हे एक पत्र दिया। उन्होने ११ जनवरी, १९७६ के एक पत्र मे मुझे लिखा—"राजबाला के बारे में जो बाते मैंने अपने लेख मे लिखी हैं, वे १०० प्रतिशत सत्य हैं। मेरे नगर मे वह रही और उसके परिवार वाले मेरे परिचित थे। उन्होने तथा राजवाला की दोनों बहनो ने, जो कलकत्ता में रहती थी (उनमे एक फिल्म-जगत मे काफी प्रसिद्ध भी हुई) मुझे ये बातें बतायी थी, पर असलियत यह है कि शरत् वावू की राजलक्ष्मी कोई एक नारी नही है। कतिपय नारियों को लेकर उन्होने राजलक्ष्मी को गढा है।"

मुजफ्फरपुर के बारे मे सिवाय श्री राजेश्वर प्रसाद नारायण सिह के अन्य किसी ने इस प्रकरण को नही लिखा है। श्री सिह की लेखनी की प्रशसा श्री विमल मित्र भी कर चुके हैं।

शरत् वावू उन दिनों आदर्श पुरुष नही थे, यह निश्चित है। श्री सिह का लेख शरत् वावू के सम्पूर्ण जीवन के बारे मे न होकर केवल मुजफ्फरपुर के बारे मे है। इन घटनाओ पर अविश्वास करने का कोई कारण नही है। शान्ति देवी से विवाह करने के पूर्व भी ये ऐसी घटनाओ के शिकार हुए थे।

मुजफ्फरपुर के निवासकाल मे सहसा उन्हे यह सूचना मिली कि पिताजी का देहान्त हो गया है। पास मे पैसे नही थे। ले-देकर एक साइकिल थी। उसी पर सवार होकर भागलपुर आये।

यहा आने पर ज्ञात हुआ कि पिताजी को मुखाग्नि मणि मामा ने दी है। श्राद्ध क्रिया करने के बाद छोटे भाइयो की चिन्ता सताने लगी। पिताजी के बाद अब वही अभिभावक हो गया है। मकान मालिक सुशीला को बहुत चाहते थे। भुवन के निधन के बाद से वही पालती रही। उसने उसकी जिम्मेदारी ले ली। प्रभास को आसनसोल मे एक रिश्तेदार के यहाँ छोड़ आया। अब बचा छोटा भाई प्रकाश। उसे लेकर जलपाईगुडी चला गया, जहाँ छोटे नाना अघोरनाथ रहते थे। काफी आरजू मिन्नत करने के बाद वे प्रकाश को अपने यहाँ रखने को राजी हुए। इस प्रकार अपने सभी भाई-बहनो की व्यवस्था कर वह नौकरी तलाश मे कलकत्ता रवाना हो गया।

उसे विश्वास था कि वहाँ अनेक मित्र हैं और वह है महानगरी। कोई न कोई काम मिल जायगा। रहने के लिए कुछ दिनो तक बोम मामा (लालमोहन गगोपाध्याय) के यहाँ ठहरूँगा। आगे जो भाग्य मे है, वही होगा। उसे यह भी पता था कि आजकल उपेन्द्र अपने बडे भाई के यहा रहकर स्थानीय कालेज मे अध्ययन कर रहा है। सुरेन्द्र तथा गिरीन्द्र भी किसी मेस मे रहते हैं। प्रमथनाथ भट्टाचार्य भी कलकत्ते मे नौकरी कर रहा हैं। सबसे बडा सहायक सौरीन्द्र मोहन भी वहीं हैं।

कलकत्ते के भवानीपुर मुहल्ले मे लालमोहन वकील का मकान खोजने मे उसे दिक्कत नहीं हुई। उपेन्द्रनाथ गागुली को स्नेह से अपनाते देख उसे भरोसा हो गया।

प्रथम पुरस्कार

लालमोहन गागुली कलकत्ता के प्रसिद्ध वकील थे। इनका घरेलू नाम शायद 'बोम' था, इसीलिए शरत् इन्हे 'बोम मामा' कहा करते थे। महेन्द्र गागुली के ज्येष्ठ पुत्र और उपेन्द्रनाथ के बडे भाई थे।

उपेन्द्र को यह ज्ञात हो गया था कि शरत् यहाँ रोजी-रोटी की तलाश मे आया है। बातचीत के सिलसिले में उसने कहा—"तुम तो हिन्दी अच्छी तरह जानते हो। दादा के पास अपील के अनेक कागज हिन्दी मे आते हैं, उनका अग्रेजी मे अनुवाद कर सको तो कहो, बातचीत करू? जब तक अन्यत्र कही व्यवस्था नही कर लेते तब तक यही करो। आगे तुम्हारी इच्छा।"

शरत् ने सोचा—काम बुरा नही है और अहसान भी रहेगा। मुफ्त की रोटी खाने से अच्छा है कि यह काम करू। उसने उपेन्द्र के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। तीस रुपये मासिक वेतन पर काम करने लगा।

उन दिनो शरत् कैसे जीवन-यापन कर रहा था, सौरीन्द्र मोहन मुखोपाध्याय के शब्दो मे—

"सन् १९०३ में रिश्ते के मामा लाल मोहन गंगोपाध्याय के डेरे पर आकर वे ठहरे। भवानीपुर मे ८५ नम्बर कासारीपाडा रोड मे। उन दिनो उनके पिता का निधन हो गया था। मातृ वियोग तो इसके पहले ही हो चुका था। लाल मोहन बाबू उपेन्द्रनाथ के बडे भाई थे, हाईकोर्ट मे वकालत करते थे। शरत्चन्द्र को यही नौकरी मिली। भागलपुर से जितने अपील के केस आते थे, उन पेपरो का हिन्दी मे अनुवाद करते थे। इस काम के लिए उन्हे सामान्य वेतन दिया जाता था।

"हम लोगो की आदत थी कि शाम के पहले नित्य मैदान की ओर टहलने जाते थे। शरत्चन्द्र भी हम लोगो के साथ जाते थे।"

"लालमोहन बाबू के मकान के बाहरवाले कमरे मे उनका डेरा था—हम लोगो के इलाके मे। आज भी मुझे अच्छी तरह याद है कि उन दिनो उनका रहन-सहन सर्वहाराओ की तरह था। उन दिनो ह्वाइटवे लेडल की दुकान मे कम कीमतवाला दो तरह के कैम्बिस जूते मिलते थे। पहला रोपसोल जिसकी कीमत चौदह आने थी और रबरसोल की कीमत सवा रुपये। शरत्चन्द्र सवा रुपये वाले टेनिस शू पहनते थे। इसके साथ ही वे पहनते थे—काला सूती जापानी मोजा। बिना मोजा पहने वे बाहर नही निकलते थे। बराबर पैदल चलने के कारण जूते का रग सिन्दूरिया और मोजा धूसर वर्ण का हो गया था। जूता-मोजा के अलावा उनके पास एक और सम्पत्ति थी। वह सम्पत्ति थी पाच आने वाला एक छोटा स्पिरिट-स्टोव, टीन की एक केतली, एनामेल की दो प्यालिया और रेकाबी।

"शाम को टहलने जाने के लिए तीन-चार मित्र जब ८५ नम्बर वाले मकान मे एकत्रित होते थे तब हँसते हुए शरत्चन्द्र हम लोगो से पूछते—'चाय चलेगी?'

"हम लोग उन्हे प्रसन्न करने के लिए कहते—'जरूर बनाइये, चलेगी।'

"तब बडे आनन्द के साथ वे उसी केतली में चाय का पानी चढ़ा देते। छ आने वाला कन्डेन्सड मिल्क का डिब्बा निकालते। एक डिब्बा पन्द्रह-बीस दिन चलता था। दो प्याले चाय बनती। एक मुझे देते और दूसरा स्वय पीते थे। आजकल जिस प्रकार प्रत्येक घर मे चाय पीने की प्रथा है, गली-गली मे दुकाने हैं, पहले यह रिवाज नही था। किसी-किसी मकान मे, शाम के समय लोग चाय पीते थे। आजकल की तरह चाय न तो अपरिहार्य थी और न लोगो मे आग्रह ही था। मेरे मित्रो मे किसी को चाय का शौक नही था। मेरा भी नही था, लेकिन मेरे मन मे हीरो वर्शिप का भाव था। शरत् की संतुष्टि से मुझे तृप्ति मिलती थी।

१९०३ की बात है। सुरेन्द्र भी फोर्थ इयर में पढ रहा था। मैं उसका सहपाठी था। सत्येन्द्र (स्व० कविवर सत्येन्द्रनाथ दत्त), अजित (प्रसिद्ध समालोचक अजित कुमार चक्रवर्ती), सुरेन्द्र और मैं—इन लोगो मे ही बराबर आलोचना होती थी। शरत् हम लोगो को निरन्तर उत्साहित करते हए कहते—'कहानी लिखो, कहानी।'

"लाल मोहन बाबू के घर मे शरत्चन्द्र अत्यन्त सकोच के साथ रहते थे। कुण्ठाग्रस्थ थे । बाहर वाले कमरे तक ही वे सीमित रहे जैसे अनात्मीय आश्रितो की तरह रहते थे। सदर की बगलवाले कमरे मे

उनकी दुनिया थी। भीतर जाने पर खाँसना या आवाज देना पडता था, ताकि महिलाएँ नजर के सामने से हट जाये। इस वात की चर्चा बराबर करते हुए कहते कि मुझे आवारा-शोहदा समझा जाता है। एक बार वडे खेद के साथ एक घटना का जिक्र किया था। कहा था कि एक दिन गृहस्वामी के ब्रश से वे वाल झाड रहे थे। सहसा वे कमरे मे आये। शरत्चन्द्र ने डरते हुए ब्रश को रख दिया। गृहस्वामी ने उसे उठाकर खिडकी के रास्ते नाली मे फेंक दिया।"

"इस घटना की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था—'पराये घर में रहने की अपेक्षा सडक पर रहना कही वेहतर है। काम भी कितना गन्दा करता हूँ, वदले मे मिलते हैं सिर्फ तीस रुपये। इससे कही शरीफो की तरह रहा जा सकता है। अगर कही अच्छी नौकरी मिल जाय तो सथाल परगना के जंगल को छोड, मैं सहारा के रेगिस्तान मे भी जाकर काम कर सकता हूँ। कम से कम कोई ऐसी नौकरी चाहिए जिससे सौ रुपये मिले वर्ना शराफत से रहना कठिन हो जायगा, अगर महीने में सौ रुपये मिले तो जरा भद्र लोगो की तरह रह सकता हूँ।

लालमोहन के जीजा रगून मे एडवोकेट थे। उनका नाम था—अघोर चट्टोपाध्याय। काफी आमदनी थी। वडे दिनो की छुट्टी में सपरिवार कलकत्ता आये तो अपने साला के यहा ठहरे। हम लोग जब शरत् के पास जाते तब वे वर्मा के बारे मे रोमाचक कहानिया सुनाया करते थे। वर्मा के बारे में उनसे सारी बाते सुनने के वाद शरत्चन्द्र ने निश्चय किया कि वे भी वर्मा जायेंगे और वकालत करेंगे। चट्टोपाध्याय के जाने के एक माह बाद शरत्चन्द्र वर्मा चले गये।

जिस दिन वर्मा गये, उसके एक दिन पहले चुपचाप कुन्तलीन आफिस जाकर अपनी कहानी दे आये। जाते समय सुरेन्द्र से कहते गये—एक कहानी कुन्तलीन आफिस में दे आया हूँ। वह कौन-सी कहानी थी, हम लोग जान नही सके। हम लोगों को सुनायी नही और न सुरेन्द्र को बताया।

उस वार जव कुन्तलीन कहानी प्रतियोगिता का नतीजा निकला तो देखा गया—प्रथम पुरस्कार मिला है—श्री सुरेन्द्रनाथ गगोपाध्याय, बगाली टोला, भागलपुर। मुझे 'बऊदीर काण्ड' नामक कहानी पर केवल पाँच रुपये अतिरिक्त पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

सुरेन्द्रनाथ ने मुझसे चुपके से कहा—'भाई, वडी मुश्किल मे फस गया हूँ। वर्मा जाने के पहले शरत् ने मुझसे कहा कि मेरे नाम से कुन्तलीन आफिस में एक कहानी दे आया है, अपने नाम से नही दिया है। कहानी क्या है, नाम क्या है, कुछ भी नही वताया। अव मेरे मित्र कहानी का प्लाट और नाम पूछ रहे हैं, मैं उन्हें क्या जवाव दूँ?

इधर कुन्तलीन आफिस से छपा हुआ एक परिपत्र सभी लेखको के पास भेजा गया था। डाक से भेजने का नियम था। कालेज से लौटने पर मुझे यह परिपत्र मिला। देखा—प्रथम पुरस्कार, सुरेन्द्रनाथ गगोपाध्याय, वगाली टोला, भागलपुर को मिला है। दूसरे दिन उस परिपत्र को कालेज में सुरेन्द्र को दिखाया। सुरेन्द्रनाथ के नाम का पत्र भागलपुर गया था, इसलिए उसे नही मिला। मुझसे ही उसे पहले पहल यह समाचार मिला। इस समाचार से वेचारा प्रसन्न होने के बदले पीला पड गया। जवान सूख गयी। अजित और सत्येन्द्र उससे वार वार पूछने लगे। मैं चुप रहा, क्योंकि मैं इस द्विधा में था कि इसे अपनी कहानी 'बुडो शिव"पर मिला है या शरत् की लिखी कहानी पर पुरस्कार मिला है।

सुरेन्द्र ने फीकी मुस्कान के साथ कहा—"नही वताऊँगा, वर्ना सस्पेस नष्ट हो जायगा। जव सग्रह प्रकाशित होगा तव देखियेगा।"

कालेज से छुट्टी मिलते ही वह वहुत चंचल हो उठा। कहा—"किस कहानी पर पुरस्कार मिला है, इसका पता कैसे लगाया जाय। मेरे ख्याल में शरत् की कहानी पर ही मिला है। इतना वडा पाजी है कि कहानी का नाम तक नही बताया।"

हम दोनो कुन्तलीन आफिस गये। वहा सुरेन्द्रनाथ का परिचय देते हुए मैनेजर विपिन वाबू से कहा—'इन्हे इस बार प्रतियोगिता मे प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इन्होंने दो कहानिया भेजी थी। उनमें किस कहानी पर पुरस्कार मिला है, यह जानना चाहते हैं?'

विपिन वाबू ने कागज देखने के बाद कहा—'मन्दिर' कहानी पर मिला है।

दूसरे दिन सत्येन्द्र और अजित से सुरेन्द्र ने कहा—''कहानी नाम सुन लो—'मन्दिर'। जब वह प्रकाशित होगी तब उसे पढ़ लेना।''

कुन्तलीन की ओर से सग्रह प्रकाशित हुआ। सुरेन्द्र की जय जयकार होने लगी। मित्रो मे प्रसन्नता की लहर आ गयी। सभी प्रशसा करने लगे, लेकिन वह इस प्रशसा को ग्रहण नही कर पा रहा था। बदले मे फीकी मुस्कान बिखेरता रहा।

कुन्तलीन-पुरस्कार कैसे मिला, इस बारे मे श्री नरेन्द्र देव की पुस्तक में गलत विवरण है। इस बारे मे गिरीन्द्रनाथ की जबानी जो बाते ज्ञात हुईं, उसे श्री योगेशचन्द्र मजूमदार ने लिखा है, वही सही है। उन्होने लिखा है—

''सुरेन्द्र और गिरीन्द्र बहू बाजार के एक मेस मे रहते हुए अध्ययन करते थे। शरत्चन्द्र अक्सर मामा के पास आते थे। एक दिन दोपहर को भोजन के पश्चात् शरत्चन्द्र उनके यहा आये। गिरीन्द्रनाथ उस वक्त मेस मे थे। दोनो ही साहित्य-चर्चा करने लगे। बातचीत के सिलसिले यह बात प्रकट हुई कि कुन्तलीन-पुरस्कार के लिए आज आखिरी तिथि है। गिरीन्द्रनाथ ने शरत्चन्द्र से आग्रह किया कि वह इस प्रतियोगिता के लिए कोई कहानी लिखे। शाम तक कहानी देने से काम चल जायगा। इस आग्रह का शरत् ने क्या जवाब दिया, यह ज्ञात नही हो सका। मगर वे राजी हो गये थे और बाजार से तुरत कागज मँगाकर लिखने लगे। कहानी का नाम था—मन्दिर। शाम तक उसे पूरा करके शरत्चन्द्र और गिरीन्द्रनाथ कुन्तलीन आफिस मे गये। ठीक उसी समय दीयाबत्ती हुई थी। जब एच० बसु महाशय को पाण्डुलिपि दी गयी तब उन्होने कहा कि आखिरी दिन के अन्तिम क्षण मे यह कहानी प्राप्त हुई। यह बात सुनकर शरत् ने कहा कि अगर आपको एतराज हो तो वापस कर सकते हैं। बहरहाल, कहानी रख ली गयी। इस कहानी को उन्होने अपने नाम से न देकर अपने मामा सुरेन्द्रनाथ के नाम दिया था।''

सुरेन्द्रनाथ ने भी यही लिखा है—'रगून जाने के एक दिन पहले मेरे मेस मे आये। मुझे साथ लेकर पाथुरियाघाटा स्थित 'ठाकुरबाडी चल रहा हूँ' कहकर चल पड़े। मार्ग मे उन्होंने कहा कि मेरे नाम से एक कहानी कुन्तलीन-प्रतियोगिता मे दे आये हैं। कहानी का प्लाट उन्होने बताया था और यह भी कहा कि अगर पुरस्कार मिला तो मोहित सेन द्वारा प्रकाशित रवीन्द्र ग्रंथावली खरीदकर मुझे दे देना। मैंने यह बात सौरीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय से कही थी।'

'मन्दिर' कहानी का पच्चीस रुपये पुरस्कार सुरेन्द्रनाथ को मिला था। इन रुपयो से रवीन्द्र ग्रंथावली खरीदकर उन्होंने शरत् को भेजा था।

इस प्रतियोगिता के परीक्षक श्री जलधर सेन महाशय थे। कुल १५० कहानियो मे 'मन्दिर' कहानी को उन्होंने सर्वश्रेष्ठ घोषित किया था। यद्यपि 'कुन्तलीन पुरस्कार-१९०३' सग्रह मे 'मन्दिर' कहानी सुरेन्द्रनाथ गगोपाध्याय के नाम से प्रकाशित हुई थी तद्यपि शरत् बाबू की यही प्रथम प्रकाशित कहानी है।

दिशा हीन-यात्रा

शरत्चन्द्र अचानक बर्मा जाने को क्यो तैयार हुए, यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर कम प्रकाश डाला गया है। क्या सचमुच बहुत बडी आशा लेकर बर्मा गये थे। जिस व्यक्ति के पास अच्छे कपडे पहनने के पैसे नही, किराये का कमरा लेकर अलग रहने का सामर्थ नही बल्कि अपमानित होने पर भी पडे रहे, इतने मित्रो के होते हुए भी अपने लिए अच्छी नौकरी तलाश नही कर सके, वह व्यक्ति एक अनजाने देश मे जाने के लिए क्यो तैयार हुआ? जहा की भाषा, रीति-रिवाज का ज्ञान नही। कही बोम मामा के जीजा ने सहायता न की तो कहां रहेगा? क्या खायेगा? कैसे स्वदेश वापस आयेगा? यहाँ तो मित्र हैं, रिश्तेदार हैं, आवास भोजन की सुविधा है।

यह ठीक है कि इसके पूर्व अघोरनाथ मौसा एक बार जब भागलपुर आये थे तब उन्होने मोतीलाल को सब्जबाग दिखाया था, लेकिन इस बार तो उन्होने न तो सब्जबाग दिखाया और न यही कहा कि यहाँ

क्यों सड रहा है? चल मेरे साथ, वहां तुझे आदमी बना दूँगा। वहाँ तो दसवीं पास लोग वकालत करते हैं। तू तो उनसे अधिक पढ़ा-लिखा है। बस बर्मी भाषा का ज्ञान होते ही वकालत करने लगेगा।

दरअसल किशोर मन का प्रेम बडी तीव्र होता है। लाख कोशिश करने पर भी प्रिया का ध्यान मन से दूर नही होता। प्रेम के पीछे मजनू, राझा, जहागीर, रजिया सुलताना, जहाआरा से लेकर षष्टम जार्ज तक कितनी कुर्बानिया दे चुके हैं। वही मनोदशा शरत् की थी। निरुपमा की स्मृतियो को वह अपने मन से निकाल नही पा रहा था। इसी चक्कर में उसने एक पत्र यहां से भेजा जो शायद उसके भाइयों के हाथ लग गया। भाइयो मे से किसी ने उसका उत्तर नही दिया। बदले में बिना हस्ताक्षर का एक चिट एक दिन डाक से मिला। उसमे लिखा था—

"मेरे जीवन मे आग क्यो लगा रहे हो? जल्द इस देश से दूर चले जाओ।"

शरत् को हस्तलिपि पहचानने मे देर नही लगी। शायद घर में कोई भयंकर घटना हुई होगी वर्ना यह चेतावनी न दी जाती। भट्ट परिवार सम्पन्न ही नही बल्कि काफी पहुँच वाला है।

यह पत्र पाकर वह इतना डर गया कि तुरंत अपनी बहन के यहा आश्रय पाने के लिए चला गया। जब उसके जीजा पचानन को यह ज्ञात हुआ कि शरत् स्थायी रूप से यहाँ रहने आया है तब उन्होने इन्कार कर दिया। उन दिनो वे स्वयं मुसीबत में थे। उसके अन्तर में सुप्त भगोडा रूप सहसा जाग्रत हो उठा और उसने बर्मा जाने का निश्चय किया।

कई लेखको ने लिखा है कि बर्मा जाने का किराया उपेन्द्रनाथ ने दिया था। संभव है कि आत्मतुष्टि के लिए स्वय उपेन्द्रनाथ ने ऐसा प्रचार किया हो, यह दोनो बातें गलत हैं। उसने घर की नौकरानी से चालीस रुपये उधार लिए थे, जिसे स्वय शरत् ने स्वीकार किया है। वह बर्मा भाग रहा है, इस बात को अमरनाथ नाना के एक मात्र पुत्र देवेन्द्रनाथ गगोपाध्याय के अलावा अन्य कोई नही जानता था, क्योंकि वही भोर के समय जेटी तक पहुँचाने गया था। शरत् समझ-बूझकर ही देवेन्द्र को ले गया था, क्योंकि वे जरा बुद्धू प्रकृति के थे। स्वय कुछ नही कहते और पूछने पर भी सही बात बता नही पाते थे।

बिना हस्ताक्षर का जो चिट शरत् बाबू को प्राप्त हुआ था, उन शब्दों को हम 'पल्ली समाज' मे पाते हैं। विधवा रमा अपने बाल्य-प्रेमी रमेश से कहती है—"नही, तुम जाओ। मैं तुमसे विनती कर रही हूँ, रमेश भैया। तुम मेरा नुकसान मत करो, तुम जाओ, इस देश से चले जाओ।"

इस बात पर तनिक भी सदेह नही कि शरत् बाबू आजीवन निरुपमा देवी को मन ही मन प्यार करते रहे। विवाह के बाद भी उसे नही भूले। अपने इस दर्द का इजहार उन्होने श्रीमती राधारानी को लिखे पत्र मे किया है—

"बात यह है, तुम लोग दूसरो का मन अर्थात् पुरुषो का मन, आश्चर्य ढंग से समझ लेती हो, पर उसी आश्चर्यजनक ढग से अपने मन को समझ नही पाती। इस तथ्य को मैं इतने निस्सन्देह रूप से जानता हूँ कि तुम इसे (बडे भैया-शरत् बाबू के निकट) प्रमाणित सत्य समझ सकती हो।"

"मेरी एक बात याद रखना बहन, वास्तविक प्रेम सभी मनुष्यो के जीवन में नही आता। इस दुर्लभ का आविर्भाव जिनके जीवन में होता है, वे इसे यदि ठीक से पहचान लेते हैं तभी इसकी सार्थकता है। अति दुर्लभ हीरा को अज्ञ लोग शीशा समझकर फेंक देते हैं, इसे तुम जानती हो। यह जरूर कह सकती हो कि इस दुनिया मे नब्बे प्रतिशत लोग शीशे की चमक देखकर प्रसन्न हो जाते हैं और गले में पहनकर गर्वित होते हैं। जिस वस्तु को लेकर वे गर्व करते हैं, वह तुच्छ शीशा होता है, गोकि देखने मे वह हीरा लगता है।"

शायद यहाँ तुम यह कहना पसन्द करोगी कि बगैर जौहरी के हीरा पहचानना सहज नही है।

ठीक कहना है दीदी। अब तुम्हें हीरा और शीशे की पहचान बता रहा हूँ। जोर से जमीन पर उसे पटकने पर शीशा टूटकर बिखर जायगा, हीरा मसकता नही। हीरे से शीशे को काटा जा सकता है, पर शीशे से हीरा नही काटा जा सकता।

दुनिया में असली नकली की परख के उपाय हैं, इसी प्रकार पेम की भी परख है। अकृत्रिम प्रेम मे पात्रों के दोष गुण निरपेक्ष होते हैं। वह अपने प्रिय व्यक्ति का सब कुछ सुन्दर देखता है, आश्चर्य देखता है, महत् तथा माधुर्यमय देखता है। यह देखने का ढंग भी विचित्र है। इस सम्बन्ध मे रवि बाबू ने लिखा है—

मैंने, अपने मन का माधुर्य मिलाकर तुम्हारी रचना की है। इससे बढकर कोई सत्य नही है।

प्रेम जब हृदय मे जाग्रत होता है तब वह चाहता है—आधार या आश्रय। यह आधार हर जगह उपयुक्त या सुन्दर होगा ही, ऐसी बात नही है। प्यार अपने आप हृदय के रस से अपने पात्र की रचना कर लेता है। प्यार की प्रतिमा केवल पुआल, बांस और रस्सीकीहोती हैजिस पर मिट्टी चढायी जायगी, रंगा जायगा, तूलिका चलेगी, उस पर तेल लगाया जायगा, फिर केश रचना होगी और तब अलकार पहनाये जायेगे। इनमे अधिकतर कार्य स्वय करना पडता है।

आज एक बात कह रहा हूँ, चुपचाप सुनो। ससार मे ऐसा भी प्रेम है राधू, कि कोई जीवन भर प्यार करता आया है, पर उससे बहुत दूर, अनेक योजन दूर रहना चाहा है। उसका प्रेम ही उसे दूर रहने को मजबूर किया है। पास-पास रहने और अपने प्रेमी को देखते रहने की आकाक्षा, प्रेम की सहज प्रवृत्ति है। इस आकुलता और तीव्र प्रवृत्ति को सवरण करने की शक्ति ही शुद्ध प्रेम का प्रतीक है। शुद्ध प्रेमपात्र या पात्री को स्वस्थ और सुखी देखना चाहता है। आत्मपरितृप्ति यही है।

मेरे साहित्य मे तुम लोगो ने जो कुछ पाया है, उसे यदि अपने जीवन मे न पाता तो क्या यह साहित्य सभव होता? लिहाजा मैं तुम्हे मार्ग दिखाने का अनधिकारी नही हूँ, विश्वास कर सकती हो। तुम्हारे बूढे बडे भाई का जीवन झूठ की दीवार पर खडा नही है। कभी सभव हुआ तो तुम्हे एक कहानी सुनाऊँगा। सुनने पर कहानी उपन्यास की तरह अविश्वसनीय प्रतीत होगा, पर इससे अधिक वास्तविक सत्य मेरे जीवन मे और कुछ नही है।"

शरत् बाबू की बर्मा यात्रा के पीछे निरुपमा की स्मृतिया रही, भय रहा और उनके अन्तर मे निवास करने वाला भगोडापन भी रहा जिसने उन्हे दूर जाने के लिए प्रेरणा दी।

शरत् बाबू के पास फोर्थ क्लास का टिकट था, इसीलिए नीचे के हाल मे उन्हे सफर करना पडा। जहाज पर सवार होने के पहले डॉक्टरो ने बडी कडाई के साथ स्वास्थ्य की जाच की। दक्षिण भारत से प्लेग की बीमारी बर्मा पहुँच गयी थी। अब प्लेग के रोगी बर्मा न जाने पाये, इसके लिए कडाई हो रही थी।

चौथे दिन जहाज रंगून पहुँचा। अचानक एक नये शब्द को सुनकर शरत् चौंक उठा। वह शब्द था—करेनटीन, अर्थात् क्वारेंटिन। किसी देश के अधिकारियो को जब यह ज्ञात होता है कि अमुक देश से आने वाले यात्री अपने साथ अमुक बीमारी के विषाणु ला सकते हैं तब उन्हे कुछ दिनोंतकक्वारेंटिन मे रखा जाता है ताकि वे विषाणु-हीन हो जाये। इसके बाद ही यात्री नगर मे प्रवेश कर सकता है। इस नियम के अनुसार शरत् को जगल मे अनेक कुली यात्रियो के साथ एक सप्ताह रुकना पडा।

अघोरनाथ चटर्जी रगून के प्रसिद्ध एडवोकेट थे। उनके घर का पता मिल जाने पर शरत् सीधे उनके यहा पहुँचा। क्वारेंटिन मे जो दुर्गति हुई, उसी से उसका सारा होश उड गया था। शरत् बाबू किस दशा मे अघोर बाबू के घर पहुँचे, इस बारे मे प्रत्यक्षदर्शी अघोर बाबू के पुत्र ने लिखा है—

"उन दिनो मेरी उम्र बारह या तेरह वर्ष की थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि हम लोग लुइस स्ट्रीट स्थित अपने मकान मे रहते थे। बाहर की बैठक मे बैठा मैं पढ रहा था। सबेरे आठ या नौ बजे थे, ठीक इसी समय लगभग पच्चीस वर्ष के एक सज्जन भीतर आये और पिताजी को देखते ही हाऊ-माऊ कर रोने लगे। मेरे पिताजी कुछ दूर बैठे थे। उनके सामने दो तीन अन्य लोग बैठे थे। वे लोग कौन थे, यह स्मरण नही आ रहा है। मैंने चकित दृष्टि से देखा—आगन्तुक पिताजी को प्रणाम कर रहा है और पिताजी भी चकित होकर पूछ रहे हैं—'क्यो रे शरत्, तू कहा से आ गया?'

आँखो के आसू पोछते हुए उन्होने कहा—'मुझे क्वारेंटिन मे रखा गया था।'

पिताजी अवाक होकर बोले—'तुमने वहाँ मेरा नाम क्यो नही बताया। मेरा नाम लेकर न जाने कितने ऐरे-गैरे बच निकलते हैं और तू क्वारेंटिन मे जाकर फँस गया?'

उखडे बाल, गन्दे कपड़े, फटी कमीज, पैरो मे रद्दी चप्पल, कधे पर गमछा—यही वेशभूषा थी।

आगन्तुक ने पुन कहा—'सात दिनो तक अपने हाथ से बनाकर भोजन करता रहा।'

पिताजी ने कहा—'तू पूरा बेवकूफ है। अगर मेरा नाम ले लेता तो कोई कष्ट न होता। यहा तक कि मेरा नाम ले लेने पर राह चलते आदमी तुझे यहां तक पहुँचा जाते।"

परदेश मे साधारण मुसीबत आ जाने पर हर किसी का होश उड़ जाता है। अगर बगाल विहार होता तो हिम्मत बँधी रहती, पर अनजाने देश मे, जहां की भाषा-सस्कृति से अपरिचित रहा, वहा व्याकुलता स्वाभाविक है।

बहरहाल अघोर बाबू के यहा वह आराम से रहने लगा। अपनी पूर्व योजना के अनुसार वे शरत् को वकील बनाने के लिए तैयारी करने लगे। उसके लिए बर्मी भाषा पढाने के लिए एक अध्यापक की नियुक्ति की गयी। नगर परिदर्शन करने के लिए पूरी छूट दी गयी।

उन दिनो कलकत्ता विश्वविद्यालय से हाई स्कूल या प्रवेशिका पास करने के बाद अगर कोई बर्मी भाषा का अच्छी तरह अध्ययन कर लेता था तो उसे एडवोकेटशिप की परीक्षा मे बैठने की आज्ञा दी जाती थी। इस नियम के आधार पर उन दिनो अनेक बगाली वहा वकालत करते रहे।

बर्मी भाषा के शिक्षक की नियुक्ति होते ही वह तेजी से बर्मी भाषा सीखने लगा। खाली समय में छोटी बहन को गाना सिखाया करता। यही उसका परिचय भूपर्यटक गिरीन्द्रनाथ सरकार से हुआ, जिन्होने शरत् बाबू के जीवनकाल मे "ब्रह्म प्रवासे शरत्चन्द्र" नामक पुस्तक लिखी थी। वे बर्मा में काफी दिनो से रहते थे। ठीकेदारी करते हैं और नवागत बगालियो की हर तरह की सेवा करते हैं, इसीलिए काफी लोकप्रिय हैं। बर्मा का चप्पा चप्पा देख चुके हैं।

लगभग पाच-छ माह बाद अघोरनाथ मौसा ने आडिटर बर्मा रेलवे आफिस के एकाउण्टेण्ट श्री कृष्ण कुमार बसु से सिफारिश करके, उनके आफिस मे अस्थाई केरानी पद पर शरत् को रखवा दिया। इन नोकरी को पाकर शरत् को अपार प्रसन्नता हुई।

नौकरी के साथ साथ बर्मी भाषा की शिक्षा का क्रम कई महीने तक चलता रहा। सहसा एक दिन ज्ञात हुआ कि बेटी के विवाह के सिलसिले मे अन्नपूर्णा मौसी कलकत्ता जा रही हैं। घर पर मौसा और वह रहेगा।

मौसी के जाने के कुछ दिनो बाद अचानक अघोर मौसा अस्वस्थ हो गये। निमोनिया हो गया था। स्थिति सकटापन्न हो गयी। अभी तक परिचय का दायरा इतना बढा नही था कि किसी से सहायता ली जाय। अचानक गिरीन्द्र सरकार की याद आयी। उनसे अपनी सारी मुसीबते कहने पर वे तुरन्त सहायता के लिए चले आये।

दोनो ही व्यक्ति तीमारदारी करते रहे। रात्रि जागरण और उसकी थकावट को दूर करने के लिए कभी-कभी थोडी शराब पी लेता था, लेकिन हमेशा इस बात का ख्याल रखता कि मौसाजी उसकी इस कमजोरी को भॉप न सके। उसके जैसे दस पिद्दी को मौसाजी एक ही झापड में बेहोश करने की क्षमता रखते हैं। उन्हे दवा पिलाते समय वह बिना सरकार की सहायता लिए उठा नही पाता। बीमारी के कारण वे इतने उग्र हो गये कि नौकर को ऐसा किक् किया कि वह बिना वेतन लिए हमेशा के लिए घर छोडकर चला गया। अथक परिश्रम करने पर भी डाक्टर लोग उन्हे बचा नही सके। ३० जनवरी १९०५ ई० सोमवार के दिन वह इस दुनिया से चल बसे। शरत् के अलावा उनके सिरहाने कोई नही था। बेचारे अन्तिम समय मे पत्नी, पुत्री और पुत्र मुँह भी देख नही सके। मुखाग्नि किया—दूर की साली के लडके ने।

सूना घर भाँय-भाँय करने लगा। कुछ दिनों बाद मौसाजी के घर से हटकर शरत् अपने मित्र अन्नदा प्रसाद भट्टाचार्य के यहा चला आया। ठीक इन्ही दिनो अन्नपूर्णा देवी आयी। साथ में मनीन्द्रनाथ गंगोपाध्याय थे। शरत् को घर मे न पाकर वे आग बबूला हो गये। उन्होंने यह धारणा बना ली कि जीजाजी की बीमारी मे देखरेख ठीक से नही हुई होगी। जिस व्यक्ति ने शरत् जैसे आवारे को यहाँ पनाह दी, उसके साथ उसने अच्छा सलूक नही किया होगा। अन्नपूर्णा देवी के कहने पर भी उन्होने सही जानकारी के लिए शरत् की खोज नही की।

शरत् ने मौसाजी के निधन का समाचार भेज दिया था, पर मौसी के आने पर वह स्वयं मिलने नही गया। वह यह जानता था कि जरूरत पडने पर मौसी दफ्तर से मेरा पता लगा लेगी, लेकिन दोनों ओर के स्वाभिमान ने एक गलतफहमी की दीवार खड़ी कर दी।

मौसाजी के यहा रहने के अलावा भोजन का झझट नही था, किन्तु अन्नदा प्रसाद के यहा यह सुभीता नही थी। उनसे मुँह खोलकर कहने मे सकोच होता था। बाजार मे पर्याप्त भोजन प्राप्य है, पर उस

भोजन को देखकर मन मे घृणा उत्पन्न होती थी। अगर कभी खाया तो थाली मे ही कै करना पड जायगा। इन दिनो की स्थिति के बारे मे श्री सतीशचन्द्र दास ने 'शरत्-प्रतिभा' मे लिखा है—

'अघोर बाबू के निधन के बाद शरत् भाई निस्सहाय-सबलहीन हो गये। उन दिनो रंगून मे सामान्य वेतनभोगी लोगो का कोई समाज नही था। आडिट आफिस मे वे नौकरी जरूर करते थे, परन्तु होटल तथा अपना निजी खर्चा चलाना उनके लिए कठिन था। आडिट आफिस की बगल मे उन्होंने किराये पर एक छोटा कमरा लिया। बडे कष्ट से उन दिनो जीवन गुजार रहे थे। यहा तक कि अक्सर वे कई दिनो तक चाय पीकर ही रह जाते थे। सहसा उनके पडोस मे रहने वाले एक पुजारी से उनका परिचय हुआ। उनका कष्ट देखकर पुजारी ने शरत् के लिए अपने घर खाने-पीने का इन्तजाम किया। पुजारी के आग्रह तथा बार-बार दबाव डालने पर उनके अभाव तथा पीडा को देखकर शरत् का अन्तर रो पडा। वे ब्राह्मण के घर दोनो वक्त भोजन करने लगे।

कुछ दिनों बाद एक नया रहस्य प्रकट हुआ। पुजारी की वह पाचिका रखैल थी। एक दिन दोनो आपस मे लडने लगे, उस दिन उन्हे विचारक की भूमिका निभानी पडी।

उस दिन केवल वाद-विवाद होकर रह गया, लेकिन समझौता नही हो सका। क्रमश. यह झगड़ा बढता गया। यहा तक कि रसोई बनाना बन्द कर दिया गया।

शरत् भाई बिना खाये, चाय पीकर दिन गुजारने लगे। रगून की सडको को कौन कहे, गलियों मे भी भात, तरकारी, मछली-मास बिकते हैं। पैसा खर्च करने पर कही भी भोजन मिल सकता है, लेकिन शरत् दादा चाय-रोटी के अलावा और कुछ नही खाते थे।

सब्र की हद होती हैं। आखिर एक दिन पुजारी से शरत् दादा की भिडन्त हो गयी। पण्डित ने हरिमति को भोजन का खर्च देना बन्द कर दिया। इस परिस्थिति मे हरिमति लाचार हो गयी। वह शरत् दादा के हाथ-पाव जोडने लगी। शरत् दादा ने उसका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि स्वदेश लौटने के लिए वे हरिमति को जहाज का खर्च दे देगे।

लेकिन यह स्थिति नही आयी। दूसरे दिन उसे तेज बुखार हुआ और चौबीस घटे के भीतर वह मर गयी। शरत् दादा परेशान हो उठे। अभी तक रगून में प्लेग का जोर था।

मृतदेह को उठाने के लिए कोई तैयार नही हुआ। सभी प्लेग के कारण भयभीत थे। कुछ लोगो को शराब पिलाकर राजी किया गया। बाद मे अत्येष्टि क्रिया करने के कारण वे स्थानीय लोगो की दृष्टि मे महामानव बन गये। उस दिन छोटी जातियों की दृष्टि मे वे देवतुल्य हो गये थे। वैसा सम्मान अन्य किसी को प्राप्त नही हुआ था। यह उनके निकट चिरस्मरणीय बना रहेगा।

एकाएक इन्ही दिनों बर्मी भाषा की परीक्षा देने की इच्छा हुई। वर्तमान नौकरी से शरत् सतुष्ट नही था। शरत् को विश्वास था कि इस बार वह परीक्षा अवश्य पास करेगा। अब तक काफी पढ़-लिख चुका था, लेकिन किनारे आकर नाव डूब गयी। इस बार भी वह बर्मी भाषा की परीक्षा मे सफल नही हो सका।

शरत् ने सोचा—शायद अभी दुर्भाग्य का अन्त नही हुआ है। रहने का एक स्थान था, मौसा के निधन के बाद वह भी चला गया। मौसीजी मकान, सारा सामान बेचकर चली गयी। पुजारी महाशय दो मुट्ठी खिलाते थे, वह भी समाप्त हो गया। ऊपर से एक अनजानी महिला के पीछे काफी रकम बरबाद हो गया। मन मे खिन्नता लिए आफिस मे उदास भाव से काम करता रहा। शरत् जितना ही काम निपटाता, उतना ही उसके ऊपर लादा जाता था। इसी सिलसिले मे एक दिन बडे साहब से वाद-विवाद हो गया। इससे क्षुब्ध होकर उसने त्याग पत्र दे दिया।

इस घटना के दो-तीन दिन बाद अचानक गिरीन्द्र सरकार आये। सूखे चेहरे को देखकर उन्होने कारण पूछा। शरत् ने सारी कहानी सुना दी। गिरीन्द्र ने कहा कि पेगू अपने काम से जा रहा हूँ। वहाँ मेरे अनेक मित्र हैं। चलिये, कोई व्यवस्था हो जायगी। शरत् ने पहले ही सोच रखा था कि अकेला पेट है, क्यों हाय-हाय करू। यहा बौद्ध संन्यासियों की इज्जत है। पोस्ट आफिसो में भिखारियों के एकाउण्ट हैं। सन्यासी बनकर चक्कर काटूगा। लेकिन गिरीन्द्र के इस प्रस्ताव को वह अस्वीकार नही कर सका।

दोनो व्यक्ति पेगू आये और श्री सी० के० सरकार के यहा ठहरे। सी० के० सरकार पेगू के पी० डब्लू० डी० विभाग के सहायक इंजीनियर तथा गिरीन्द्र के जाति भाई थे। शरत् ने इनके यहा अधिक

दिनो तक रुकना पसन्द नही किया। बेमतलब किसी के यहा लम्बे अर्से तक मेहमान बने रहना उचित नही है।

शरत् की इच्छा को जानकर गिरीन्द्र बाबू अपने दूसरे मित्र श्री अविनाश चटर्जी के यहा आये। यहा आने के बाद गिरीन्द्र ने कहा—"मैं एक सप्ताह के भीतर आ जाऊगा तब तक आप अन्यत्र मत जाइयेगा। कोई न कोई व्यवस्था वापस आकर करूंगा।"

मित्रवर श्री गोपालचन्द्र राय ने शरत् बाबू के बारे मे काफी काम किया है। शरत् बाबू की जीवनी, बैठकी कहानिया, हास-परिहास, भाषण, अप्रकाशित रचनाओ का सकलन, पत्रावली आदि का प्रकाशन एव सपादन किया है। केवल यही नही, जब कभी मुझे शका हुई या उनकी गलतियों की ओर इशारा किया तब उन्होने उन गलतियो का निराकरण किया है। शरत् बाबू के बारे मे सस्मरण लिखने वाले अधिकाश मित्रो ने भ्रमपूर्ण तथ्यो को लिखा है। सर्वश्री सुरेन्द्र गंगोपाध्याय, सौरीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय, गिरीशचन्द्र सरकार, क्रान्हाई घोष, नरेन्द्र देव, उपेन्द्र गगोपाध्याय, इलाचन्द्र जोशी और ब्रजेन्द्र नाथ बद्योपाध्याय की रचनाओ मे भी गलतिया हैं। इनमे से अधिकाश बातो का निराकरण हो गया है। इस जीवनी मे भाई गोपालचन्द्र राय की रचनाओं के अलावा उपरोक्त सभी लेखको की सहायता ली गयी हे। गोपालचन्द्र राय निरन्तर खोज करते जा रहे हैं और अपनी प्राथमिक गलतियो का सुधार कर रहे हैं।

अविनाश बाबू के यहा शरत् की क्या स्थिति रही, इस बारे मे गोपालचन्द्र राय ने अपने एक लेख में लिखा है—

"गिरीन बाबू ने अपनी पुस्तक मे अविनाश बाबू कहा के रहने वाले हैं और शरत् बाबू को उन्होंने किस रूप मे ग्रहण किया, इस बारे मे कुछ न लिखने पर भी, मैंने जो कुछ पता लगाया है, वह यो है—अविनाश बाबू हुगली जिले के वैद्यवाटी गांव के निवासी थे। शरत्चन्द्र की जन्मभूमि देवानन्दपुर से १२ मील दूर यह गाव है। यही वजह है कि परदेश मे अपने जिले का आदमी समझकर उन्होंने शरत्चन्द्र को पनाह दिया था। शरत्चन्द्र अविनाश बाबू के यहा लगभग पाच-छ. माह थे। इन्ही दिनों श्री सी० के० सरकार से सिफारिश करके उनके दफ्तर मे, एक अस्थायी नौकरी उन्होंने शरत् बाबू को दिलायी थी। शरत्चन्द्र इस पद पर तीन माह तक काम करते रहे।

कुछ दिनों बाद अविनाश बाबू अस्वस्थ हुए तो उन्होंने इलाज के लिए कलकत्ता जाने का निश्चय किया। गाव से कलकत्ता आने-जाने मे सुभीता होगी, यह सोचकर वे वैद्यवाटी चले आये। आते समय मकान की देखरेख के लिए पेगू के वकील श्री नृपेन्द्र कुमार मित्र को अपने भवन मे रख आये। उन्होंने मित्र महाशय से यह भी कहा कि शरत् बाबू भी इसी मकान मे रहेगे।

आगे चलकर नृपेन्द्र बाबू शरत् बाबू से उनका परिचय पाकर प्रसन्न हुए। शरत् का व्यवहार इतना मधुर था कि वे उन्हे छोटे भाई की तरह स्नेह करने लगे। शरत् को बेकार देखकर उनके लिए नौकरी खोजने लगे। इस दिशा में सफलता प्राप्त न होने पर उन्होने नागलबिन स्थित अपने चचेरे भाई के पास धान के रोजगार मे लगा दिया। यहां एक अर्से तक काम करने पर शरत् बाबू का मन उखड गया और वे वापस पेगू आ गये। नृपेन्द्र बाबू अपने खर्चे से बर्मी-भाषा सिखाने के लिए एक गृह शिक्षक नियुक्त किया ताकि आगे चलकर शरत् बाबू को वकील बनाया जा सके, लेकिन थोडे समय मे वे बर्मी भाषा सीख नही सके। गिरीन बाबू ने इन सभी घटनाओ का उल्लेख अपनी पुस्तक मे किया है। आगे उन्होने यह भी लिखा है कि शरत् बाबू नृपेन्द्र बाबू के यहा लगभग साल भर थे।

नागलबिन मे धान का रोजगार और पेगू मे वकील न बना पाने पर, अन्त मे नगेन्द्र बाबू ने अपने दूसरे चचेरे भाई रगून के एक्जामिनर पब्लिक वर्क्स एकाउण्टेण्ट आफिस के डिप्टी एक्जामिनर मनीन्द्र कुमार से सिफारिश कर, उनके आफिस में शरत् बाबू को नौकरी दिलायी थी। शरत्चन्द्र अन्त तक इसी दफ्तर में काम करते रहे।

मनीन्द्र कुमार से शरत् बाबू का परिचय कैसे हुआ, इसका उल्लेख करते हुए गिरीन्द्र बाबू ने आगे लिखा है—

"पेगू मे नृपेन्द्र कुमार मित्र एक एडवोकेट थे। इनके चचेरे भाई मनीन्द्र कुमार मित्र बर्मा के एक्जामिनर पब्लिक वर्क्स एकाउण्टस् आफिस के डिप्टी एक्जामिनर थे। एक बार वे सपत्नीक दौरे पर पेगू आये तो अपने भाई नृपेन्द्र कुमार के यहा ठहरे। इनके सम्मान में अविनाश बाबू ने अपने यहा एक पार्टी का आयोजन किया।

बरसात का मौसम था। बाहर दादुर-ध्वनि हो रही थी। बिजली की चमक और रिमझिम पानी बरस रहा था। इस गोष्ठी में सी० के० सरकार अपनी मनोरजक कहानियो से लोगो को हसा रहे थे। एकाएक किसी ने प्रस्ताव रखा कि ऐसे माहौल मे गाना होना चाहिए। गिरीन के जरिये अविनाश बाबू को यह ज्ञात हो गया था कि शरत् बाबू लेखक होने के अलावा अच्छे गायक भी हैं। अनुरोध करते ही शरत् बाबू गाने लगे।

मनीन्द्र कुमार सगीत के प्रेमी तथा अध्ययनशील व्यक्ति थे। शरत् के गायन से प्रसन्न होकर उन्होने कहा—"कभी रंगून आयें तो मेरे यहा अवश्य दर्शन दे।"

अविनाश बाबू केवल अपने जिले का आदमी हैं, समझकर स्नेह नही करते थे। बातचीत के दौरान उन्हे यह ज्ञात हो गया कि शरत्चन्द्र का विस्तृत अध्ययन हैं और वे लिखते भी हैं। फलस्वरूप वे उन्हे निरन्तर लिखने के लिए प्रोत्साहित करते रहे। पेगू के निवासकाल मे उन्होने क्या-क्या लिखा था, इसकी जानकारी उपलब्ध नही है, परन्तु ८ फरवरी सन् १९२५ ई० मे जब वैद्यवाटी के एक समारोह मे आये थे तब उन्होने अपने स्वागत के उत्तर मे कहा था—'जलधर सेन और अविनाश चन्द्र चटर्जी अगर मेरे पीछे न पडे रहते तो मैं इतना न लिख पाता, क्योंकि मैं बहुत आलसी हूँ।'[1]

शरत् बाबू पेगू-निवासकाल मे लिखते रहे, इसका प्रमाण हमे गिरीन्द्र बाबू की पुस्तक से मिल जाता है। एक बार वे पेगू से रगून जा रहे थे, स्टेशन के प्लेटफार्म पर दो गाडिया खडी थी। गलती से रगून वाली गाडी मे न बैठकर वे नागलबिन वाली मे बैठ गये। कई स्टेशन गुजरने के बाद जब उन्हे इसकी जानकारी हुई तो दूसरी गाड़ी से पेगू काफी रात गये वापस आये।

मित्रो से इस घटना का जिक्र करने पर उन लोगो ने परिहास के स्वर मे कहा—"लगता है, किसी उपन्यास का प्लाट आप सोचते रहे तभी रगूनवाली गाडी का ख्याल नही रहा। ख्याल भी आया तो कई स्टेशन जाने के बाद।"

अविनाशचन्द्र को शिकार का बहुत शौक था। वे अपने मित्रो को लेकर अक्सर शिकार खेलने जाते थे। इस अभियान में शरत् बाबू को भी ले जाते रहे। शरत् की निशानेबाजी को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ था। अविनाश बाबू की गैर हाजिरी मे शरत्चन्द्र उनकी बन्दूक लेकर अकेले या मित्रो के साथ शिकार खेलने चले जाते थे।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि पेगू मे उनका जीवन सुचारु रूप में व्यतीत होता रहा। अविनाश बाबू शरत् को अपने घर का ही सदस्य समझते रहे।

अविनाश बाबू जब स्वस्थ होकर पुन. पेगू आये तब शरत् बाबू पेगू मे नहीं थे, लेकिन अपने आश्रयदाता को वे कभी नही भूले। पत्राचार के अलावा कभी-कभी अवकाश के समय मुलाकात करने आते रहे। पत्रों में अविनाश बाबू उन्हे बराबर लिखते रहने का परामर्श देते रहे।

शरत् बाबू में और जो खामिया रही हो, पर वे अपने चाहने वालो पर अपने व्यवहार और बातचीत से इतना प्रभाव डाल देते थे कि अपर पक्ष इनका खरीदा हुआ गुलाम बन जाता था।

नृपेन्द्र कुमार मित्र के माध्यम से इन्हे पुन: नौकरी मिली। मनीन्द्र कुमार बहुत सख्त और कर्मठ अफसर थे। आफिस के सभी कर्मचारी, यहा तक कि अग्रेज उच्चाधिकारी भी इनका सम्मान करते थे।

शरत् बाबू के रंगून आने पर मनीन्द्र कुमार ने अपने बगले में उन्हें ठहराया जो कि टमसन स्ट्रीट पर था। यहा उन्हें तीस रुपये मासिक वेतन पर रखा गया था। कुछ दिनों के बाद शरत् बाबू को पता चला कि इसी विभाग के पेगू डिवीजन में एक जगह खाली है जहां वेतन पचास रुपये मिलेंगे। शरत् रगून मे रहना नही चाहता था। न जाने क्यों इस शहर से मन उचट गया था। आफिस के जरिये पेगू में तबादला

[1] वैद्यवाटी यग मैंस असोसियेशन वार्षिक स्मारिका। सुवर्ण जयन्ती, सन् १९५८। संपादक वीरेन्द्र गुप्त।

कराकर चला आया। अढ़ाई माह बाद यहां से घबराकर चला गया।

एक बार फिर उसके हृदय में सुप्त यायावर-प्रवृत्ति ने पुन. जन्म लिया। जीवन के प्रारभ से ही घुमक्कडी आदत रही। कभी बर्मा के उत्तर तो कभी पश्चिम आराकान तक पैदल सफर करने लगा। बौद्ध भिक्षु बनने की जो लालसा मन मे उत्पन्न हुई थी, अब उसे मूर्त रूप दे रहा था।

उसने देखा—बर्मा मे बसे विदेशी यहा के निरीह जनता को किस तरह लूट रहे हैं। कितने आवारे दूसरो के घर की बहू-बेटियों को भगाकर यहा ले आये हैं। कितनी सधवाएं ससुराल की पीडा से त्रस्त होकर भाग आयी हैं और अन्य धर्मावलम्बियों के साथ घृणित जीवन बिता रही हैं। ब्राह्मण पुत्र कसाई की लडकी से निकाह कर गाय-भैंस काट रहा है। कितने बगाली पति परायण बर्मी महिलाओ के साथ छल कर रहे हैं। चोर-डाकू तथा खूनियों के लिए बर्मा शरण स्थल बन गया है। ऐसे अपराधी नाम-धाम बदलकर मुस्लिम-धर्म अपनाते जा रहे हैं।

अपनी इस अभिज्ञता के बारे मे शरत् बाबू ने श्रीमती लीलारानी गगोपाध्याय को एक पत्र मे लिखा था—"एक बार छह-सात सौ कुलत्यागिनी बगालिनो का इतिहास सग्रह किया था। बहुत समय, बहुत रुपये इसमे नष्ट हुए थे, लेकिन उससे मुझे एक विचित्र शिक्षा मिली। इस बात को असंदिग्ध रूप से जान सका कि जो कुल त्याग करके आती हैं, उनमें अस्सी प्रतिशत सधवाएं हैं, विधवाएं कम हैं। पति के जीवित रहने से क्या और कडे पहरे में रखने से क्या, और विधवा होने से क्या! दीदी, अनेक दु:खों से ही नारी अपना धर्म नष्ट करने के लिए तैयार होती हैं और जिस लिए होती हैं, वह पर पुरुष का रूप नही और किसी विभत्स प्रवृत्ति का भी लोभ नही। जब वे इतनी बडी वस्तु को नष्ट करती हैं तो बाहर जाकर किसी आश्चर्यजनक वस्तु पाने के लोभ से नही, सिर्फ किसी बात से अपने को मुक्त करने के लिए इस दु ख को सिर पर उठा लेती हैं।"

बचपन मे जिस प्रकार एक चक्कर लगाने के बाद शरत् घर वापस आ जाता था, ठीक उसी प्रकार चारों ओर से निराश, दु.खी होकर पुन. वह रगून वापस आया।

इस बार मनीन्द्र कुमार के पास जाने पर उन्होंने पहले की तरह कृपा करके पुन. आफिस मे रख लिया। साथ ही यह चेतावनी दे दी कि अब अगर आपने इसे छोड दिया तो पुन: रखना संभव नही होगा।

पहले की तरह पुन. अस्थायी क्लर्क के पद पर शरत् बाबू काम करने लगे। दफ्तर मे आते ही प्रथम दिन लोगो ने देखा—सिर पर बड़े-बडे बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी। किसी ने कहा—"आप तो बिलकुल बाउल संन्यासी लग रहे हैं।"

दूसरे ने पूछा—"कहा गायब रहे इतने दिनों तक? जेल की सजा काट रहे थे या कहीं इश्क का पेंचा लडा रहे थे?"

आफिस के मित्रों मे बगचन्द्र थे, कुमुद बाबू, त्रैलोक बसाक, योगेन्द्रनाथ सरकार , हेमेन्द्र मोहन राय[2], नगेन्द्र सेन आदि सहयोगी बाबू थे। इनमे नगेन्द्र नाथ सेन तो इनके टेबुल पर ही काम करते थे। बगचन्द्र दे विनोदी स्वभाव के थे। अग्रेजी मे काफी अध्ययन करते थे। मौज आने पर कभी-कभी अंग्रेजी पत्रो मे लेख लिखते थे।

नगेन्द्रनाथ सेन हवड़ा जिला के बेलुर नामक गांव में रहते थे। देवानन्दपुर से कुछ दूर बेलुर है। अस्वस्थ होते हुए भी सेन महाशय अत्यन्त आदर्शवादी थे। झूठ से सर्वदा परहेज करते थे। जब कभी कोई झंझट होता तो लोग सही जानकारी इनसे प्राप्त करते थे। बर्मा जैसे देश में जहां लोगों का स्वागत चाय से किया जाता है, वहीं आप चाय से दूर रहते थे। सिगरेट-पान छूते नही थे। रिक्शे की सवारी इन्हें इसलिए पसन्द नही थी कि उसे मानव खींचते हैं। इन्सान को इन्सान खीचे, उन्हें पसन्द नहीं था।

इनमें अधिकाश लोग पडोस के मेस में रहते थे। केवल शरत् मनीन्द्र कुमार के बंगले मे रहता था। अक्सर बंगचन्द्र कहता—"साहब के घर क्यों पड़ा है। हम लोगों के मेस में आ जा। कहते हैं न कि साहब की अगाड़ी और घोड़े की पिछाडी नहीं रहना चाहिए। कभी कोई बात हो गयी तो फिर नौकरी छोडकर संन्यासी बन जायगा।"

शरत् ने हंसते हुए कहा—"माफ करो बाबा, बागालो (पूर्वी बगाल के निवासी) के साथ अपना गुजर नही होगा। सूंटकी (सूखी) मछली के गध से हैजा हो जायगा। अगर वह भी न हुआ तो मिर्च की वजह से बवासीर तो होगा ही।"

बगचन्द्र ने हसकर कहा—"तेरे आते ही मछली के बदले घोघा मंगायेगे और मिर्च की जगह गुड़।"

बगचन्द्र और शरत् के इस बहस मे सभी को आनन्द आता। दोनो बुद्धिजीवी थे और ऐसा मजाक करते थे कि सारा दफ्तर अट्टहास से गूंज उठता था।

कुछ दिनो के बाद अचानक एक दिन शरत् ने देखा कि मनीन्द्र बाबू अपना सामान बँधवा रहे हैं। उसें चकित दृष्टि से देखते देख उन्होने कहा—"शरत् बाबू, यहा भी खतरा उत्पन्न हो गया है। दो दिन से चूहे मर रहे हैं। अच्छा होगा कि आप भी हट जाय। खतरे से दूर रहना ठीक है।"

बर्मा मे और खासकर रगून मे अभी तक प्लेग का खतरा दूर नहीं हुआ था। मित्र साहब के परामर्शानुसार वह भी वहां से हटकर बाबुओ के मेस मे आ गया। शरत् को आते देखते ही बगचन्द्र ने कहा—"हमारा यह मेस रोग-प्रूफ है। यहां ऐसे-ऐसे सन्त रहते हैं जिन्हे हैजा, चेचक, प्लेग वगैरह उलटकर नही देखते। स्वय बुद्धदेव इस भवन को आशीर्वाद दे गये हैं।"

इसी प्रकार के मनोरंजक वातावरण मे शरत् ने कई महीने गुजारे। यद्यपि यहा भोजन का कष्ट रहा, पर प्रसन्नता इस बात की थी कि सभी सहृदय हैं। सुबह शाम दैनिक कार्य में गुजर जाता और रात को वह 'नारी का इतिहास' को पूरा करने का प्रयत्न करता रहा। उसे यह ज्ञात था कि यह ग्रथ सपूर्ण होने पर समाज मे हलचल मच जायगी।

कई दिनो के बाद मेस मे रहने वाले अन्य लोग उसकी साहित्य साधना पर व्यग्य करने लगे। रात को जब सभी सो जाते, चारो ओर सूनसान हो जाता तब वह लिखने बैठता। पहले मेस के साथियो को उसका लिखना-पढ़ना बुरा नहीं लगता था, लेकिन अब वे उसे परेशान करने लगे। कोई कहता—'रोशनी बुझा दीजिए। दिन भर आफिस मे काम करने के बाद आराम से सोना भी आपने मुश्किल कर रखा है।'

दूसरा कहता—'क्यो नाराज हो रहे हो? वे साहित्य-साधना कर रहे हैं। कालिदास-भवभूति नही तो रवीन्द्र या बंकिम की तरह कुछ पुस्तक तैयार कर देगे।'

इसके बाद यह सिलसिला लगातार चलने लगा। कभी-कभी विवाद की स्थिति उत्पन्न हो जाती। मित्रों के व्यग्य से वह खिन्न रहने लगा। आखिर बर्दाश्त करने की एक हद्द होती है। रंगून में न तो मेस की कमी थी और न किराये के कमरे की। कई दिनो बाद वह बोटाटग मुहल्ले मे स्थित दूसरे मेस मे चला गया। यहा स्वतत्र रूप से कमरा मिल गया। अन्तर इतना ही था कि बगचन्द्र के मेस मे वह दो तल्ले मे लोगो के साथ था और यहा चौथे तल्ले मे मिला।

यहां भी सभी बगाली थे। नीचे वाले कमरे मे श्री सतीशचन्द्र दास[1] रहते थे। आप बी० आई० एस० एन० कम्पनी के कार्गो सुपरिण्टेण्डेण्ट के आफिस मे क्लर्क थे। बड़े मिलनसार और नम्र स्वभाव के थे।

---

[1] आपने 'शरत् प्रतिभा' नामक पुस्तक लिखी है। इस मेस की तीसरी मंजिल में आप और चौथे में शरत्चन्द्र रहते थे।

पतन की ओर

रंगून मे प्रवासी वंगालियो का 'बेंगल सोशल क्लब' नामक एक संस्था थी। यहां अवकाश के समय स्थानीय बंगाली अड्डेवाजी करते थे। गाना-वजाना, हास-परिहास होता था। शरत् बाबू अच्छे गायक हैं, इसकी जानकारी उनके मित्रो को थी। यह बात लोगो को उस समय ज्ञात हुई जब कविवर नवीनचन्द्र सेन के स्वागत समारोह में उन्होने पर्दे की आड में बैठकर गाया था।

उस घटना के बारे मे गिरीन्द्र सरकार ने लिखा है—"१९०५ ई० मे बंगाल के अन्यतम श्रेष्ठ कवि नवीनचन्द्र सेन अपने एक मात्र पुत्र बैरिस्टर निर्मलचन्द्र के साथ रंगून पहली बार आये। प्रवासी बंगालियों की ओर से उनके स्वागत का आयोजन किया गया। उन दिनों रंगून मे पचास हजार बंगाली थे, पर इनमे कोई भी सुगायक नही था। उन दिनो शरत् बाबू लोगो की निगाह से दूर रहते थे। उनमें साहित्यिक-प्रतिभा का विकास हुआ था या नही, इसकी जानकारी किसी को नही थी। कविवर नवीनचन्द्र के घनिष्ठ मित्र और रंगून के प्रसिद्ध बैरिस्टर श्री पूर्णचन्द्र सेन सारी जिम्मेदारी मुझ पर डालकर निश्चिन्त थे। मैं चारो ओर से परेशान होकर शरत् बाबू की तलाश करने लगा। मुलाकात होते ही उन्होंने मजाक करते हुए कहा—"तुम्हारे कवि महाशय में ऐसी दुर्बुद्धि क्यो उत्पन्न हुई जो पाण्डव-वर्जित देश सागर पार चले आये?"

मैंने कहा—"जिस कारण से भी आये हो, उससे मेरा कोई मतलब नही है। अब समस्या यह है कि बंगाल के इस श्रेष्ठ कवि का हमें सम्मान करना चाहिए। कार्यक्रम सुन्दर ढग से हो, इसीलिए आपके निकट आया हूं। कम-से-कम एक स्वागत-गीत आपको गाना पडेगा।"

उन दिनो शरत् बाबू को लोग जानते या पहचानते नहीं थे और वे लोगों से मिलने में कतराते थे। अन्त मे काफी मनाने पर वे इस शर्त पर राजी हुए कि आड में रहकर गायेगे।

'रंगून बेंगल सोसियल क्लब' के हाल में आयोजन किया गया था। शरत्चन्द्र के इच्छानुसार उनके लिए स्वतंत्र स्थान बना दिया था। अपार जनता मे वे भावाकुल भाव से मधुर कंठ में गाने लगे—

एसो कविवर एसो हे
धन्य कर ब्रह्मदेश हे।
समवेत जत स्वदेशी
तव दर्शन अभिलाषी
लये पुण्य प्रतिभा राशि
एसो काव्य-आकाश-शशी हे।
एसो सुन्दर, एस शोभन,
एसो बंग हृदय भूषण,
एसो हे प्रिय दर्शन
प्रीति पुष्पांजलि लहो हे।

"इस गीत को सुनने के बाद श्रोताओ मे हलचल मच गयी। गायक शरत्चन्द्र को देखने के लिए लोगो मे उत्सुकता उत्पन्न हो गयी। प्रवासी बंगालियो मे किस व्यक्ति ने अपने मधुर-कंठ से कवि की सम्वर्द्धना की? स्वय कविवर सेन महाशय भी उत्सुक हो उठे। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि चिडिया उड गयी है।"

बेंगल सोशल क्लब मे अधिकतर गाने-बजाने का कार्यक्रम होता था। एक दिन शरत् बाबू को योगेन्द्रनाथ पकडकर ले गये। वहा एक सज्जन का कार्यक्रम चल रहा था। लोगो को आनन्द नही मिल रहा था। तभी योगेन्द्रनाथ के एक मित्र ने कहा—"अब आप लोगो के सामने हमारे शरत् बाबू दो-एक बंगला गीत सुनायेंगे।"

इतना सुनना था कि तबला वादक नाराज होकर चल पड़ा। चलते-चलते उसने कहा—"अब आप

लोग 'आये ना अलि कुसुम तुली' गायन सुनिये।"

लोगों ने तबला-बादक को रुकने के लिए काफी अनुरोध किया, पर वे रुके नहीं, चले गये। उनके जाने के बाद शरत् बाबू "आये ना अलि कुसुम तुली' के बदले ज्ञानदास की प्रसिद्ध रचना—'तोमारि गरबे गरविनी राई, रूपसी तुमारि रूपे'—गीत गाने लगे। गाते-गाते उनकी आखें अश्रुपूरित हो गयी। इस वेदनापूर्ण गीत ने सभी के हृदय को भाराक्रान्त कर दिया।

कुछ दिनो बाद तबला वादक ही शरत् बाबू के भक्त बन गये। योगेन्द्र सरकार एक दिन उन्हे जबरन उनके घर ले गये। उस दिन शरत् ने हारमोनियम पर गीत गाया—

श्रीमुख पकज देखबो बोले हे
ताई एसेछिलाम ए गोकुले
आमाय स्थान दियो राई चरण तले
मानेर दाये तुई मानिनी
ताई सेजेछि विदेशिनी
एखन बांचाओ राधा कथा कोये
घरे जाई हे चरण छुंए
तुमि यदि ना कओ कथा,
फिरे जाब यमुना कूले
भागबो बासी त्येजबो प्राण
एई बेला तोर भागूक मान
व्रजेर सुख राई दिये जले
चरण नुपूर बेधे गले
झाप दिब यमुना जले

थोडी देर पहले जिस कमरे में लोग हास-परिहास कर रहे थे, उसी मे इस महाजनी-पद को सुनकर रोने लगे। एक तो दर्द भरा कण्ठ स्वर, ऊपर से इस करुण गीत को सुनकर कोई अपने को रोक नही सका। कभी इस गीत को किन्नर-कठ गायक देवेन दत्त मच पर गाया करते थे और आज शरत् ने गाया। इसके बाद अन्य कई गीत उस दिन शरत् को गाना पड़ा।

'शरत्-प्रतिभा' के लेखक सतीशचन्द्र दास ने लिखा है कि शरत् बाबू से मेरी मित्रता लगभग ६-७ वर्ष तक बराबर बनी रही। यहा तक कि कुछ दिनो तक हम एक ही मकान मे रहते थे। बोटाटंग क्षेत्र मे हम लोगो का मेस था। हम लोग तीन तल्ले मे रहते थे और शरत् दादा चौथे तल्ले मे रहते थे। अक्सर वे हमारे मेस मे आकर गप्प लडाया करते थे और कभी-कभी गाते थे। शरत् दादा से ही मैंने शतरंज खेलना सीखा था। शाम के वक्त तुलसी के पौधे को बेला के फूलो से सजाकर पांच-छः व्यक्तियों को लेकर कीर्तन करते थे। अक्सर जब आफिस से लौटते समय हाथ मे माला-फूल लेकर आते देखता तो पूछने पर कहते—"भगवान को चढ़ाऊँगा। आज शाम को कीर्तन होगा।"

ठीक इन्ही दिनों शरत् बाबू के जीवन मे एक विचित्र घटना हुई। यद्यपि शरत् बाबू के चरित्र को देखते हुए कुछ लोग अविश्वास करते हैं, पर शरत् बाबू देवता नही थे। पुरुष के जीवन मे कब भयानक मोड आता है, इसे विधाता भी नही बता सकते। ऐसे ही एक घटना वर्णन गिरीन्द्र सरकार ने किया है।

श्री गिरीन्द्रनाथ सरकार ने इस घटना विस्तार से चर्चा की है। संक्षेप मे यो है—

"शरत्चन्द्र का प्रणय-भाग्य अच्छा नही था। उनके प्राथमिक-जीवन की पेम कहानी की असफलता के बारे मे सभी को जानकारी है।[1] उनके एक और व्यर्थ-प्रणय की कहानी निम्न घटना से प्राप्त हो जाती है।

---

[1] श्री गिरीन्द्र सरकार का आशय निरुपमा देवी से है। सभवत शरत् बाबू ने मौखिक रूप से यह कहानी सुनायी हो।

रगून शहर मे बंगाली-समाज के नेता श्री कुंज विहारी वंद्योपाध्याय एक प्रातः स्मरणीय व्यक्ति थे। वर्मा मे जो नवागत आते थे, उनके लिए उनका भवन सराय था। आपकी पत्नी मृणालिनी देवी भी पति की तरह अशेष-गुण सम्पन्ना थी। बचपन से इनके घर आने-जाने के कारण मैं इन्हे दीदी कहता था। वे स्वय मुझे सगे भाई की तरह स्नेह करती थी। एक दिन उनके यहा दोपहर का भोजन कर ज्योंही वाहर निकला त्योंही देखा कि मकान के सामने एक गाडी आकर ठहर गयी। गाडी से दो युवक एक महिला उतरी। समझते देर नही लगी कि कलकत्ता से आये हैं और यहां अतिथि वनेगे।

कुज वावू मौजूद नही थे। दीदी को सूचना दे दी। इस अपूर्व सुन्दरी को कुलवधू समझकर आदर के साथ भीतर ले गयी। वाहर खडे एक युवक ने कहा—"हम पति-पत्नी यहां घूमने के लिए आये हैं। आप हमारे ग्रेजुएट मित्र नौकरी के सिलसिले में आये हैं।"

इस घर के नियमानुसार महिला को ऊपर तथा पुरुषो के लिए नीचे सोने की व्यवस्था कर दी गयी।

दीदी प्रारभ से गौर करती रहीं कि युवती काफी शान्त और सरल स्वभाव की है। अपूर्व सुन्दरी होने पर भी शरीर पर विशेष जेवर नही है। सर्वदा उदास रहती है और कभी-कभी रोती है। पति के पास जाने को कहने पर नही जाती जवकि माग मे सिन्दूर है। एक दिन स्नेहवश पास बैठकर दीदी ने पूछा—"तुम मेरी वेटी के बराबर हो। मुझसे कछ छिपाने की जरूरत नही है। तुम अपना कष्ट खोलकर कह सकती हो।"

उस वक्त गायत्री का हृदय दु ख से फटा जा रहा था। आचल से आसुओ को पोंछती हुई अपनी सारी राम कहानी उसने सुनाई। वह बाल-विधवा है। किशोर वयस मे शादी तो हुई, पर गृहस्थी का मुह देख नही सकी। पति-हीना होकर वह घर पर रहती थी। उसके पिता वृद्धावस्था मे नयी शादी करके विमाता को ले आये जो दिन-रात तग करती रही। साथ आया युवक उसे बहकाकर यहां ले आया है। मेरे पडोस मे रहता है। मेरा पति नही है।

यह कहानी सुनकर दीदी डर गयीं। कही यह वात फैल गयी तो मुह दिखाना मुश्किल हो जायगा। तब मुझे बुलाया गया। मैंने अतिथियो से कहा—"रगून में किराये के मकानों की कमी नही है। आप लोग जल्द यहा से चले जायें।' युवक के प्रश्न करने पर मैंने शरत् वावू के नाम एक पत्र देते हुए सहायता करने की पार्थना की।

दूसरे दिन वे लोग शरत् वावू जिस टोले मे रहते थे, वहीं चले गये। मैंने इन लोगो की सारी राम कहानी शरत् वावू को बता दी। शरत् बाबू मनोवैज्ञानिक आदमी थे। आदमी को जल्द पहचान जाते थे। उन्होंने पति का नाम हसवैण्ड तथा मित्र का नाम फ्रेण्ड रखा।

कई दिनो तक दीदी की निगरानी में रहने के कारण दोनों का आपस मे स्नेह-श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी। विदा लेते समय गायत्री ने कहा—"मा, मुझे उनके साथ मत भेजो। अपने चरणो मे रख लो।"

उसे कलेजे से लगाती हुई दीदी ने कहा—"मैं जल्द तुम्हे किसी के साथ तुम्हारे वाप के पास भेज दूँगी। अच्छा, यह बताओ कि क्या रगून तुम अपनी इच्छा से आयी हो?"

गायत्री ने कहा—"नहीं। मुझे लखनऊ मे मेरे मौसाजी के यहा ले जाने को कहकर छल से जहाज पर यहा ले आ आया है। इसकी नीयत ठीक नही है, समझते ही में जहाज मे लेडिज केबिन मे थी और अब आपकी शरण में कई दिन गुजार चुकी। अन्यत्र जाने पर मेरी अस्मत लुट जायगी। जब तक पिताजी का पत्र नही आता तब तक अपने यहा शरण दीजिए।"

दीदी ने कहा—"बात ठीक कहती हो, लेकिन मेरे यहा उस युवक ने पति-पत्नी का परिचय देकर आश्रय लिया। अब अगर सही बात मालूम हो गयी तो हम कही मुँह दिखाने लायक नही रहेगे।"

नीचे गाडी थी। इस बार गायत्री सधवा वेश छोडकर विधवा के रूप में गाडी पर बैठी। मैंने देखा कि उसके इस रूप को देखकर दोनों युवक चकित रह गये। गाडी शहर के अन्तिम छोर लोअर पोजनडंग मे आकर ठहरी।

शरत्चन्द्र की जवानी फ्रेण्ड को जब सही बात का पता चला तो वह घृणा और क्रोध से उबल पडा। उसने शरत् बाबू से कहा कि आप चिन्ता न करें। मैं गायत्री देवी की देखभाल करूगा।

एक रात को जब वह शरत् के यहा से वापस लौटा तो देखा—बन्द कमरे मे गायत्री और उसका

तथाकथित पति लड रहे हैं। वह तुरन्त शरत् बाबू के पास दौडा हुआ गया।

शरत् बाबू सहायता के लिए गिरीन बाबू के यहा गये। इसके बाद कई आदमियो के साथ लोग गायत्री के घर आये। इतने लोगो को एक साथ देखकर वह डर गया। शरत् बाबू ने कहा—"तुम्हारा भेद खुल गया है। बूढे नवीन मुखर्जी की विधवा लडकी को बहकाकर यहा लाये हो। समझे नन्ददुलाल? तुम्हारी मा की चिट्ठी हमारे पास है।"

इतना सुनना था कि नन्ददुलाल ने आगे बढ़कर शरत् के मुँह पर दनादन कई तमाचे लगाये और तभी गिरीन सरकार के आदमियो ने नन्ददुलाल की ऐसी मरम्मत की कि वह बेहोश हो गया।

दूसरे दिन सबेरे शरत् ने उसे चाय पिलाकर कहा—'तीन घण्टे बाद एक जहाज कलकत्ता जा रहा है, उसी से तुम्हे वापस जाना है। हम लोग स्वय जाकर तुम्हे जहाज पर बैठायेगे।"

जहाज जब लगर छोडने लगा तब डेक पर खडा हसबैण्ड ने शरत् को घूसा दिखाते हुए कहा—"अगर कलकत्ता मे कभी दिखाई पडे तो समझ लूगा।"

बन्दरगाह से हम लोग वापस गायत्री के पास आये। गायत्री जार-जार रो रही थी। उसे सान्त्वना देते हुए मैंने कहा—"अब मत रोओ बेटी। पाचकौडी बाबू को हम लोग फ्रेण्ड कहते हैं। आप बडे सच्चरित्र और साधु पुरुष हैं। इनके सहारे तुम्हे कुछ दिन यहा रहना होगा। मेरे एक मित्र शरत् बाबू हैं। वे भी रात को यही आकर सोयेंगे। वे भी अत्यन्त परोपकारी, शिक्षित भद्र पुरुष हैं।"

गायत्री ने पूछा—"मेरे पिताजी या मौसाजी का कोई पत्र आया है?"

मैंने कहा—'नही।'

यहा से मैं सीधे कुज बाबू के घर गया और दीदी को सारा समाचार सुनाया। दीदी ने कहा—"मैं दोनो वक्त का भोजन यहा से भिजवा दिया करूगी। एक नाइन को देखभाल के लिए कल ही भेज दूँगी। वही भोजन ले जाया करेगी और नित्य का जो समाचार होगा, मुझे बताया करेगी।"

गायत्री का दु ख दूर करने का कृत संकल्प होकर शरत्चन्द्र ने एक दिन मुझसे कहा—"अपनी दीदी से कहना, गायत्री को वापस भेजने के लिए परेशान न हो। बगाल की महिलाए जब तक घर मे बन्द रहती हैं तब तक इनकी आवाज सुनाई नही देती और जब वे घर के बाहर पैर निकाल लेती हैं तब एक ही छलाग मे दुस्साहसिकता की चरम सीमा तक पहुँच जाती हैं। गायत्री का वास्तविक मनोभाव क्या है, इसका मैं कुछ दिनों तक 'स्टडी' करना चाहता हूँ।'

मैंने कहा—'अपना सिर करना चाहते हो। काले नाग के सामने या जलते हुए अंगारे से खिलवाड करना साधारण बात नही है। यह बला मेरे सिर से दूर हो तो जान बचे। मैं इसके पिता तथा मौसा के पत्र का इंतजार कर रहा हूँ।'

शरत्चन्द्र रात को नित्य वही सोते हैं। मैं यह सुनकर जरा चिन्तित हो उठा कि इन दिनो उन लोगो मे घनिष्ठता बढ़ गयी है। समाज-विरोधी उच्छृखल यह युवक सम्प्रति गायत्री का स्टडी करना चाहता है? यह तो भयानक बात है। कितनी कठिनाई से एक पाखड के हाथो से गायत्री को बचाया, अब यह शरत्चन्द्र न जाने क्या कर बैठे। मैं जरा उत्कंठित हो उठा। गायत्री के प्रति जो श्रद्धा का भाव था, वह अन्ध प्रेम के रूप में परिणत हो गया।

ठीक इसी मौके पर एक लकडी का व्यवसायी रंगून आया। इसका नाम शशाक मोहन मुखोपाध्याय था। इन्हें एक विश्वस्त कर्मचारी की तुरत आवश्यकता थी। इन्होने फ्रेण्ड यानी पाचकौडी को पचास रुपये मासिक वेतन पर अपना कर्मचारी नियुक्त किया।

एक दिन किसी काम से शशाक बाबू फ्रेण्ड के निवास स्थान की ओर आये। दूर बरामदे मे, उदास चेहरा लिए एक अपूर्व सुन्दरी पर इनकी नजर पडी। गायत्री बाहर सडक की ओर देख रही थी। यही फ्रेण्ड का मकान है और तब उन्हे पता लगाने पर ज्ञान हुआ कि अभी वह काम पर से नही लौटा है।

शशाक बाबू घर वापस जाकर गायत्री के सौन्दर्य को भुला नही सके। उनका चित्त चचल हो उठा। यद्यपि वे चरित्रहीन नही थे, तद्यपि पवित्र भी नही थे।

इसी आधार पर उनकी गतिविधि फ्रेण्ड के घर पर बढ गयी। वे अपने हृदय की लालसा को दमन नहीं कर सके। फलस्वरूप एक दिन उन्होने धरणी की मा को गायत्री के पास भेजा। धरणी की मा

शशांक मोहन के कारखाने के मिस्त्री की रखैल थी।

धरणी की मां गायत्री के पास आकर बातचीत के सिलसिले में यह स्पष्ट कर दिया कि शशांक बाबू की कृपा दृष्टि तुम पर पड़ गयी है। केवल यही नहीं, उनकी विपुल सम्पत्ति और गायत्री के सौभाग्य की चर्चा करने के बाद वह मुस्कराने लगी। जो औरत स्वय कीचड़ में मग्न है, वह भला निष्कलंक जीवन का मर्म क्या समझती? उसकी बातों को सुनकर गायत्री भयभीत होकर रोने लगी।

इन लोगों की घनिष्ठता बढ़ाने के लिए शशांक बाबू अक्सर आम, लीची, परोरा आदि सामान जो रगून के लिए दुष्प्राप्य है, भेजने लगे। यह सारी सामग्री वे कलकत्ता से मगाते थे। मिठाई वगैरह फ्रेण्ड के घर नित्य भेजते रहे। सरल-हृदयवाला फ्रेण्ड इनमे से काफी सामग्री मेरे यहां भेज देता था और अपने मालिक की उदारता की प्रशंसा करता रहता था।

इस तमाशे का पता लगने पर शरत् बाबू मन ही मन क्षुब्ध हो उठे। वे रूप, अर्थ, सामर्थ्य, शठता आदि की दृष्टि से शशाक बाबू के समकक्ष नही थे। पिछले कई वर्षों में वे यहां के काफी लोगों से मिलते-जुलते आये हैं, पर ऐसे धूर्त से उनका अब तक पाला नही पड़ा है। एक प्रेमिका को दो प्रेमी समभाव से आकर्षित नही कर सकते।

शशांक बाबू को जब गायत्री की सारी राम कहानी ज्ञात हुई तो उन्होंने कहा—"कलकत्ता जाते वक्त मैं इन्हें ढाका के नारी आश्रम मे रखवा दूँगा।"

बाद मे उन्होने यह पता लगाया कि गायत्री देवी क्यों इस गन्दी बस्ती मे रहती है? शरत् बाबू रात को यहा क्यों सोते हैं? इन सभी बातों को सुनने के बाद शशांक बाबू ने कहा—"कारोबार को बढ़ाने के लिए इस क्षेत्र में एक ब्राच आफिस खोल रहा हूँ। एक सौ रुपये मासिक भाड़े पर टम्सन स्ट्रीट में एक मकान तय हो गया है। वहां नीचे के तल्ले में मेरा आफिस रहेगा और ऊपर गायत्री देवी आराम से रह सकती हैं। रसोइया, नौकरों की सुविधा रहेगी। आपको इस ओर से चिन्ता करने की जरूरत नही।"

दयालु मालिक की इस कृपा से गदगद होकर फ्रेण्ड यह समाचार गायत्री देवी को सुनाने गया। उसका ख्याल था कि इस खुशखबरी को सुनकर गायत्री प्रसन्न होगी। इधर गायत्री समझ गयी कि उसे अपने कब्जे में करने के लिए यह हथकण्डा अपनाया जा रहा है।

लगभग एक माह बीत गया। गायत्री इन दिनो शशांक और शरत् दोनो के लिए कामना की वस्तु बन गयी। बरसाती लता के समान शरत्चन्द्र की लालसा बढ़ती गयी। उन्होंने नाइन को बहलाकर कब्जे में किया और उसके माध्यम से अपनी प्रशंसा करवाने लगे।

एक दिन नाइन ने कहा—"हमारे शरत् बाबू बडे सज्जन और परोपकारी हैं। दिन रात पुस्तके लिखते हैं। बाहर क्या हो रहा है, इसकी खोज-खबर नही रखते। तुम्हे देखने के बाद से वे दीवाने हो गये हैं। अक्सर तुम्हारी चर्चा करते हैं। आजकल विधवा विवाह को बुरा नही माना जाता।"

सारी बाते सुनकर गायत्री चुप रही। ठीक इन्ही दिनो फ्रेण्ड बीमार पडा। डाक्टरो ने कहा कि अपेण्डिसाइटिस है। तुरंत आपरेशन करना पडेगा। मैंने उसे अस्पताल में भर्ती करा दिया। इसके बाद गायत्री देवी के घर आने पर शशाक बाबू से मुलाकात हो गयी। काफी सजधजकर आये थे। मुझे यहा देखकर वे चौंके। उन्हें यह आशा नहीं थी कि मैं यहाँ अचानक आ सकता हूँ।

बातचीत के सिलसिले मे शशाक बाबू ने अपने कर्मचारी की दुःखद स्थिति के बारे में खेद प्रकट करते हुए उसे इलाज के लिए कलकत्ता भेजने का निश्चय किया। दूसरे दिन फ्रेण्ड को जहाज से कलकत्ता रवाना कर दिया गया। गायत्री के लिए फ्रेण्ड ही एक मात्र रक्षक था। उसके जाने के बाद वह असहाय हो गयी।

ऐसे ही माहौल मे शरत्चन्द्र वहा हाजिर हो गये। उनकी पागलों की तरह मूर्ति देखकर गायत्री जल्दी से बगल के कमरे में चली गयी। शरत् की आखो में वासना की लालसा थी। उसने कहा—"इस वक्त मुझे देखकर आप अवाक् हो गयी हैं न? मगर मैं आपको बचाने के लिए आया हूँ। शैतान का पुतला शशाक कुछ आदमियों को लेकर यहां आ रहा है। वह आपको यहा से अपने आफिस में ले जायगा। आप किसी भी हालत में न जायें। मैं पड़ोसियों की सहायता से उन्हें रोकूंगा। मुमकिन है कि मारपीट और पुलिस-केस हो जाय।"

इन बातो को सुनकर गायत्री भय से थरथर कांपने लगी। अजीब-अजीब आशकाएं उसके मन में उमडने लगी।

तभी शरत्चन्द्र ने पूछा—"अब आपकी इच्छा क्या है?"

"मेरी इच्छा क्या? फिलहाल तो मैं सडक पर खडी हो गयी हूँ।"

"सडक पर जरूर खडी हो गयी हैं, पर नया घर बसाने में देर नहीं होगी।"

गायत्री ने कहा—"वह घर मां ठीक कर देगी। उसके लिए आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नही है।"

स्रोतवती नदी में जिस प्रकार खर-पतवार बह जाते हैं, उसी प्रकार प्रणयासक्त शरत्चन्द का समस्त विवेक, मनुष्यत्व, हया वह गया। उन्होंने कहा—"आपके लिए मेरे दिल में आसन बिछा हुआ है गायत्री देवी। क्या आप मुझे छोड़कर चली जायेंगी?"

इस उदासी साधक के मन मे इतना पाप है, इस बात को वह सोच भी नही सकती थी। इस घटना के कुछ देर बाद एक थाली मिठाई लेकर एक कुटनी आयी। गायत्री ने पूछा—"तुम कौन हो?"

"मुझे शशांक बाबू ने भेजा है, यह सब आपको देने के लिए।"

गायत्री नाराज होकर बोल उठी—"ले जाओ, यह सब।"

कुटनी ने कहा—"क्या कहती हो? अभी तो तुम्हें ले जाने के लिए बाबू गाड़ी भेजनेवाले हैं। अब तुम्हें यहा से जाना पडेगा।"

'"गाड़ी आ रही है, और इसके साथ जाना होगा' सुनकर बेचारी भय से पीली पड़ गयी। मन ही मन भगवान् को स्मरण करने लगी। एक ओर शरत्चन्द्र दूसरी ओर शशांक बाबू में होड लगी हुई थी गायत्री को अपने कब्जे में करने के लिए। गायत्री के मृदुल व्यवहार ने शरत् को भ्रमित कर दिया था कि वह उनके प्रति आकर्षित हो गयी है। अगर वे ऐसी कल्पना न करते तो उनकी मानसिक स्थिति खराब न होती।

शशांक बाबू गाडी लेकर आये और इधर शरत् कुछ आदमियों को लेकर बाधा डालने आया। दोनों दलों में झगडा होने लगा। इस बात की सूचना मुझे लगी। मैं तुरत कुंज बाबू के पास गया। सारी कहानी सुनने के बाद उनकी पत्नी नें कहा—"तुम तुरत जाओ और गायत्री को यहां अपने साथ लेते आओ।"

कुंज बाबू ने कहा—"नही। तुम्हारा इस तरह अकेला जाना ठीक नही है। साथ में मसीदी के यहां से कुछ आदमियों को लेते जाओ। पता नहीं, कब कौन-सी समस्या खडी हो और इसकी जरूरत हो।"

मसीदी रंगून का नामी गुण्डा था। पेशावरी मुसलमान जिसका पेशा गुण्डई करना था।

चलते समय कुंज बाबू ने अपने साले बादलू यानी चुनीलाल चट्टोपाध्याय को भी भेजा। चुनीलाल बर्मा रेलवे आफिस में काम करते हैं। बादलू भाई के साथ हम मसीदी मियां के यहां आये। उसने एक पठान पहलवान को हमारे साथ कर दिया।

मसीद के पहलवान को लेकर हम गायत्री के दरवाजे के पास आये। शशांक बाबू एक गाडी पर बैठे थे और कुछ दूर शरत्चन्द्र गली के मोड पर खडे थे। आसपास कुछ लोग खडे झगड़ा देख रहे थे। हमारे साथ लाठी लेकर पहलवान को उतरते देख सभी के होश फाख्ता हो गये।

ज्योंही हम ऊपर पहुँचे त्योंही नाइन की आवाज सुनाई दी—"अरी मा, बनर्जी बाबू की गाड़ी से मालकिन के दोनों भाई तुम्हे ले जाने के लिए आये हैं।"

हमें देखकर गायत्री बाहर आयी और चुपचाप गाड़ी पर बैठ गयी। लज्जावश शरत्चन्द्र हम लोगों के सामने नही आये। कुंज बाबू के घर पहुँचते ही गायत्री कुंज बाबू की पत्नी मृणालिनी देवी के चरणो पर गिर पड़ी। बाद में शरत्चन्द्र और शशांक बाबू के बारे में सारी रामकहानी सुनाने लगी।

दीदी ने बातचीत के दौरान पूछा—"क्यों गिरीन, यह शरत् बाबू कौन है?"

मैंने कहा—"उत्सव के अवसर पर जो सज्जन मेरे यहां आकर गीत गाते हैं।"

"शरत् बाबू इससे विवाह करना चाहते हैं और उनका कहना है कि विधवा-विवाह में कोई हर्ज नहीं है।"

मैंने कहा—"वे सनकी आदमी हैं।"

इस घटना के बहुत दिनो बाद तक शरत्‌चन्द्र ने मुझसे मुलाकात नहीं की। यह क्रोध या घृणा की नीरवता नही थी, गहरी लज्जा की बात थी।

गायत्री के मौसा श्री भवदेव भट्टाचार्य का पत्र लखनऊ से आ गया। इस पत्र को पाकर वह प्रसन्न हो उठी। इन्हीं दिनों श्री ए० सी० मुखर्जी जो बर्मी सरकार के इंजीनियर हैं, उनकी बदली पीलीभीत हो गयी थी। इसकी सूचना मिलने पर हम लोगों ने उनके परिवार के साथ गायत्री को भेज दिया।

काफी दिनों बाद शरत्‌ बाबू मेरे यहा खेद प्रकट करने के लिए आये। आते ही कहा—"जीवन में ऐसी विडम्बना कभी नही हुई। कल्पना कभी वास्तव में परिगत नही होता। भुक्तभोगी के अलावा मेरी स्थिति को कोई समझ नहीं सकता। अपरिणत स्थिति में सभी की यही दशा होता है। असंयमी मन पर प्रभुत्व करना कठिन होता है। न जाने कितने पुरुष न जाने कितनी नारियों को मन ही मन चाहते आये हैं? अपनी दीदी से कहना कि मेरी दुर्बलता को दे क्षमा कर दें। सारी बातें कुंज बाबू के कानों तक न पहुँचे।"

श्री गिरीन्द्र सरकार की यह कहानी १४ पृष्ठों में छपी है जिसका सारांश दिया गया है। इस कहानी के बारे में श्री गोपालचन्द्र राय ने अपनी ओर से कोई टिप्पणी नहीं की है जब कि शरत्‌ बाबू के दो-तीन पत्रों तथा उनके द्वारा दिये गये वक्तव्यों पर तर्क कर चुके हैं, पर उन तर्कों में एक ओर घटना को झूठ भी कहा है और दूसरी ओर यह भी कहा है कि शायद यह सच भी हो सकता है। कहने का आशय यह है कि शरत्‌ के व्यक्तित्व को देखते हुए सच-झूठ का निर्णय करना कठिन है।

मगर गायत्री काण्ड निश्चित रूप से उनके जीवन की सत्य घटना है। गिरीन सरकार से उनकी मैत्री १३-१४ वर्ष तक थी यानी अघोर बाबू के घर आने से लेकर १९१६ ई० में बर्मा छोड़ने तक। पेगू ले जाना, कविवर नवीनचन्द्र सेन के स्वागत में ले जाना। शिकार खेलने ले जाना आदि अनेक घटनाओं का उन्होंने जिक्र किया है। यहा तक कि उनकी प्रथम पत्नी के निधन और द्वितीय पत्नी हिरण्मयी के बारे में भी तरह-तरह की बातें हैं।

गिरीन्द्र बाबू ने शरत्‌चन्द्र के स्वभाव के बारे में लिखा है—"कुछ दिनों तक साथ रहने के बाद मैं यह समझ गया कि शरत्‌चन्द्र अद्‌भुत प्रकृति के व्यक्ति हैं। कभी-कभी साधारण व्यक्तियों की तरह व्यवहार करने पर भी ज्यादातर पागलों की तरह अपने में मस्त रहते थे। किसी भी नीति-विधि का नियमपूर्वक पालन नही करते थे। अगर उनके आचरण या बातों का प्रतिवाद किया जाता तो वे उस पर ध्यान नही देते थे। उनकी कार्य प्रणाली देखने से यह स्पष्ट हो जाता था कि वे अत्यन्त भावुक हैं तथा अपने में मगन रहते हैं। एक महीने तक एक साथ रहने तथा रात्रि जागरण काल (अघोर चट्टोपाध्याय की बीमारी के समय की बात है।) मे मैंने शरत्‌चन्द्र मधुर स्वभाव और सरल हृदय का अनुभव किया था। तभी से मेरी उनकी मित्रता हुई। मैं उन्हे बराबर 'शरत्‌ दादा' कहता था।"

शरत्‌ बाबू की इस प्रशंसा के बाद उसी गिरीन्द्रनाथ को गायत्री काण्ड के समय उनके बारे में लिखना पड़ा—'समाज विरोधी उच्छृंखल युवक सम्प्रति गायत्री को स्टडी करना चाहता है। . .. स्रोतवती नदी मे जिस प्रकार खर-पतवार बह जाता है, उसी प्रकार प्रणयासक्त शरत्‌चन्द्र का समस्त विवेक, मनुष्यत्व, हया बह गया।'

अगर शरत्‌ बाबू वास्तव मे मसीहा होते जैसा कि गिरीन सरकार ने प्रथम दर्शन के बाद लिखा था तो ऐसी हरकत नही करते। मान्यता है कि प्रत्येक प्रतिभावान व्यक्ति के जीवन का कोई अध्याय या एक दो पृष्ठ अवश्य काले होते हैं जो आगे चलकर उनकी प्रतिष्ठा के पृष्ठ उसे ढक देते हैं। अगर ऐसा न होता तो प्रत्येक पुरुष देवता और प्रत्येक नारी देवी बन जाती। काम प्रेरणा मनुष्य को अंधा बना देती है। निःसन्देह जीवन में जब उसकी जरूरत होती है तब इंसान हैवान बन जाता है। ससार के प्रत्येक देश में ऐसी घटनाएं होती रहती हैं। जब हमारे ऋषि मुनि तक असंयमी बन गये थे तब शरत्‌ बाबू एक साधारण प्राणी थे।

गायत्री काण्ड के दौरान वे असंयमी थे, इसका एक प्रमाण श्री विभूति भूषण भट्ट के नाम लिखे एक पत्र से मिल जाता है। यह पत्र काफी अर्से बाद शायद १९५८ के आसपास प्रकाशित हुआ था।

एस० चटर्जी
पी० डब्लू० ए०, रंगून
२२-२-०८

परम कल्याणीय पुंटू भाई,

काफी दिनो बाद तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ, प्रार्थना कर रहा हूँ कि यह पत्र तुम्हारे हाथ लगे। मेरी सारी दुष्कृतियो को भुलाकर, इसे स्नेह की दृष्टि से पढ़ना ताकि मेरा यह लिखना सार्थक हो। तुम लोगों को पत्र लिखने मे शर्म आ रही है। डर लग रहा है कि कही हिज्जे मे गलतिया देखकर हँस पडोगे और सोचोगे कि बचपन मे इसके लेखो को कैसे पसन्द करता था।

सब भूल गया हूँ, भाई! बगला के अक्षर कलम से नही निकलते, न जाने क्यो अटक जाते हैं। सचमुच माफ करना भाई, वर्ना आखिर तक पहुँच नही पाओगे।

कह रहा हूँ कि मेरा ऐसा भाग्य है जो इतने दिनो तक यानी चार माह कलकत्ता मे रहने पर भी तुम लोगो को देख नहीं सका।[1] तुम भी कलकत्ता आये, पर ऐसी गलती की कि मुलाकात न हो सकी।[2] लगता है, अब कभी मुलाकात नही होगी। एक बार सोचा कि 'आशु' के साथ तुम्हारे यहा हो आऊँ, पर न जाने सकोच अनुभव हुआ।

पुंटू, मेरा जीवन ही दुर्भाग्यमय है। ऐसा अर्थहीन, निष्फल, नीरस दिन, महीना और वर्षों का बोझ क्यो ढो रहा हूँ, समझ में नही आ रहा है। भगवान ने जब बुद्धि दी है तो थोडी सद्‌बुद्धि भी दे देते। अगर नही देना था तो इतना प्रेम करना क्यो सिखाया? प्रेम करने के लिए अगर कोई एक पात्र[3] मुझे दे देते तो क्या उनके विशद राज्य में लोगों की कमी हो जाती? पता नही, यह कैसा न्याय है।

मैं समझता हूँ कि अपने रिश्तेदारों तथा मित्रो की दृष्टि में घृणा का पात्र हूँ। यह दर्द कितना मर्मान्तिक है, इसे बताने पर तुम समझ नही सकोगे। मैं यह भी जानता हूँ कि विश्वास का कोई भी मार्ग मैंने खुला नही रख छोडा है, चिर प्रवासी, दु.खी, कुत्सित-आचारी हूँ। मैं किसी के सामने खड़ा नही हो सकता, पर पुंटू, क्या सारा दोष मेरा ही है? मेरी पतग के नीचे लग्घड नही है, मेरे तीरो मे फाल नहीं है, मेरी नाव में डाड नही है, इन दिनों ठीक से नही चल रहा हूँ, इसलिए मुझे दोनो हाथो से ढकेल दे रहे हो, क्या सारा दोष मेरा ही है। मैं साधु बनने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि पंकिल जीवन मे साधुता शोभा नही देगा, पर तुम लोग तो शरीफ हो, फिर तुम लोग इतने निष्ठुर क्यो हो गये?

---

[1] सन् १९०७ के नवम्बर माह में तीन महीने की छुट्टी लेकर हाइड्रोसिल का आपरेशन कराने आये थे। सभव है कि गायत्रीकाण्ड का क्षोभ मिटाने आये हों।

[2] विभूति बाबू भागलपुर से हटकर इन दिनों जिला मुर्शिदाबाद के बहरमपुर में रहते थे और प्राय: कलकत्ता आते थे।

[3] यह इशारा निरूपमा की ओर है। विभूति बाबू को ज्ञात हो गया था कि शरत् निरूपमा को चाहते हैं।

यह मत सोचना कि मैं किसी की खबर नही लेता। छपी हुई रचनाओं से पता लग जाता है। भले ही हाथ का लिखा मैटर नहीं मिलता। अन्य लोगो को जो मिलता है, उसी को मैं भी ग्रहण करता हूँ।[1] तुम पत्र नहीं देते, पर मैं अन्तर में अनुभव करता हूँ कि तुम स्वस्थ होगे।[2] बूडी[3] का समाचार मिलता है, उसे मन ही मन आशीर्वाद देता हूँ, कितना गौरव अनुभव करता हूँ, इसे मैं जानता हूँ। वह जो कुछ लिखती है, उसके कुछ अशों को मन ही मन गुनगुनाते हुए नदी के किनारे बैठा कामना करता हूँ कि जीवित रहते हुए और भी अच्छी चीजे प्राप्त कर सकू।

पता नही, बूडी की कापी कितनी मोटी हो गयी है। इच्छा होती है कि एक बार पढ़ने को मिले। अच्छा, क्या फटी-कटी रफ कापी नही है? अगर चुपचाप छिपाकर भेज सको तो मैं पढ़ने के बाद तीन चार दिन के भीतर वापस भेज दूँगा। अगर वह तुरत खोजने लगे तो कहना कि एक आदमी पढ़ने के लिए ले गया है। वह आदमी अच्छा है।

अब मेरा इतिहास सुनोगे। रंगून आकर दाम्पत्य चर्चा करने पर अचानक मालूम हुआ कि मैं पूर्ण गृहस्थ बन गया हूँ। डेढ़ वर्ष तक गहराई से सोचा नही। एक दिन मधुर कलह हुआ, मान-भंजन के पूर्व ही देखा कि मेरी गृहणी ने नाराज होकर किसी और के गले में वरमाला डाल दी है। फलत: मैं बोरिया बिस्तर लेकर ३६ न० की गली के चार तल्ला वाले भवन के एक कमरे में, बिस्तर बिछाकर चित्त लेटकर चुरुट फूंकने लगा।

यह सब अचानक कैसे हो गया, इसकी मीमांसा आज तक नही कर सका। पत्नी ब्रह्मदेशिनी नही थी, खांटी स्वदेशी थी। जब पता चला कि वे तो रजक कन्या थी तब नाक कान पकडकर इरावती में जाकर डूबकी लगा आया। दूसरे दिन मेडिकल सार्टिफिकेट देकर, विरह ज्वाला शान्त करने के लिए हागकांग चला गया। वापस लौटते समय कलकत्ता गया था। सुना है, चण्डीदास ने इसी प्रकार माथुर लिखा था। मैंने भी निश्चय किया है कि एक अर्सा पहले 'चरित्रहीन' लिखना प्रारंभ किया था, उसे अब समाप्त करूगा।

देश जाकर सुखी नही हो सका। हैजा हुआ, अस्पताल मे आपरेशन कराने की वजह से रुकना पडा। सबसे अधिक तग किया कन्यादायग्रस्त पिताओ ने। नोचकर खा जाना चाहते थे। जिन दिनों मैं मुसीबत में था, उन दिनो ये लोग कहा थे, पता नही। आज जब आराम से दिन गुजार रहा हूँ तब पता नही, दल के दल न जाने कहा से चले आ रहे हैं।

मैं गृही-गृहिणी, प्रणय और विरह का भोग पिछले अट्ठारह माह मे भोग चुका जिसे हजम करने में कम से कम अट्ठारह वर्ष लगेगे। इसके बाद अगर जीवित रहा तो उधर देखूंगा, पर अभी नही।

पिछले छ माह से शराब नही पी, अब शरीर स्वस्थ है। अगर आगे न पिया तो शायद पूर्ण रूप में ठीक हो जाऊगा।

यद्यपि इस पत्र को पूर्ण रूप से उद्धृत नहीं कर रहा हूँ, केवल काम की बातो का उल्लेख कर रहा हूँ।

इस पत्र के उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि अपने चरित्र-दोष के कारण वे परिवार के लोगों की दृष्टि में नहीं, मित्रो के निकट भी घृणा के पात्र थे। गोकि उनका भ्रम था। मित्र इन्हे प्यार करते थे, परन्तु बदनामी काफी थी। सभ्य-घराने मे इन्हे बुलाया नही जाता था। यह स्थिति बर्मा से वापस आने तथा साहित्य मे प्रतिष्ठित होने के बाद भी थी।

शराब पीने की आदत भागलपुर से प्रारभ होकर बर्मा तक थी। इस बारे मे शरत् बाबू अपने मित्र हरिदास शास्त्री को कहानिया सुनाई हैं। एक बार शराब के चक्कर मे जब एक बर्मी मित्र की मौत हो गयी तब उन्होने शराब पीना बन्द कर दिया।

शराब पीने की चर्चा करते हुए शरत् बाबू के घनिष्ठ मित्र सौरीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय ने लिखा है—शरत्चन्द्र कुछ दिनो तक शिखर बाबू के यहा थे। उन दिनो वे नशा मे पोख्ता हो गये थे। सुयोग तथा

---

[1] श्री विभूति भूषण भट्ट तथा उनकी बहन निरूपमा की रचना पढ़ते थे।
[2] शरत्चन्द्र अक्सर पत्र भेजा करते थे।
[3] निरूपमा देवी का घरेलू नाम।

मित्रो का साथ मिलने पर जमकर पीते थे। नशे की हालत मे ही घर आते थे। एक दिन गहरी रात को नशे मे बे-अख्तियार होकर आये तब शिखर बाबू की बुआ ने फटकारा। शिखर बाबू ने उन्हे चेतावनी दी। इस चेतावनी को सुनते ही वे गायब हो गये। शर्म के कारण।"

नरेन्द्र देव ने जिन्होने शरत्चन्द्र के जीवितकाल में ही उनकी जीवनी लिखी थी वे अपनी पुस्तक 'शरत्चन्द्र' में लिखते हैं—'रंगून में वे कुछ दिनों तक अत्यन्त उच्छृंखल जीवन गुजार चुके हैं। इस जीवन का साथी था—बंगचन्द्र दे जो कि पक्का शराबी था। अपने साथ-साथ शरत्चन्द्र को भी शराबी बनाया था।'

पुटू के नाम लिखे पत्र में भी वे यह स्वीकार करते हैं कि पिछले दो माह से शराब नही पी।

शराब छोडने के बाद ही उन्होंने अफीम-सेवन प्रारंभ किया था। जिसे मृत्युकाल तक बराबर खाते रहे। कई बार अफीम छोडने का प्रयत्न किया, परन्तु हर बार शरीर में कोई न कोई शिकायत पैदा हो जाती थी।

कहा जाता है, खाली दिमाग शैतान का घर होता है। बत्तीस वर्ष की अवस्था हो गया, पर गृहस्थी नही बसा सके जबकि उनके ही टोले में न जाने कितने मिस्त्री, दुकानदार घृणित जीवन बिताते हुए सपत्नीक रहते थे। यही वजह है कि वे गायत्री को अपनाने के लिए बेचैन हो उठे थे, जबकि उनके अन्तर मे निरुपमा कब्जा जमाये बैठी थी। उसे वे भूल नही पा रहे थे।

गायत्री को न पाने के बाद संभवत: इन्हीं दिनों उन्होंने विभूतिभूषण भट्ट और निरुपमा को पत्र लिखा था जिसका उल्लेख गोपालचन्द्र राय की पुस्तक में है। यह विवाह का प्रस्ताव था। इस पत्र का उत्तर उन्हें नही मिला। सामान्य पत्राचार अवश्य होता रहा।

इस पत्र मे रजकिनी नारी की चर्चा है, मेरी दृष्टि मे शरत् बाबू ने परिहास किया है। खासकर निरुपमा देवी को यह बताने के लिए कि तुम्हारे कारण एक धोबिन को पत्नी बनाना पडा। आज मेरी जो हालत है, वह सब तुम्हारे कारण है।

गायत्री काण्ड के बाद जब उनमे मर्यादा की भावना जागी तब वे इस मेस से हटकर बोटाटंग लैंस डाउन स्ट्रीट में चले आये। यहा दो तल्ले में किराये पर एक कमरा लेकर रहने लगे।

यहां की स्थिति के बारे में गिरीन्द्र सरकार ने लिखा है—'शहर से दो मील दूर शरत्चन्द्र जहां रहते थे, उस इलाके का नाम था—बोटाटंग और पोजोनडग। रंगून में जितने धान के कारखाने, लकडी के कारखाने, डक यार्ड और ढलाई के कारखाने हैं, वहां जितने फीटर, वाचमैन, ढलाई मिस्त्री काम करते थे, उनमें अधिकतर बंगाली थे। अनेक, शिक्षित ब्राह्मण, कायस्थ भी यह काम सीखकर दैनिक तीन-चार रुपये कमा लेते थे। सभी कामगार मिल जुलकर सपरिवार इसी इलाके मे रहते थे। इन लोगों के लिए पंक्तिवार लकड़ी के बैरक और मकान बनवाये गये थे। इसी इलाके में कम किराये पर कमरा लेकर शरत्चन्द्र एक अर्से तक रहते रहे। इस इलाके को 'मिस्त्री पल्ली' कहा जाता था, पर मैं 'शरत् पल्ली' कहता था। इस पल्ली में शरत्चन्द्र जितना पढ़ा-लिखा कोई व्यक्ति नही था। किसी प्रकार का आत्माभिमान न रहने के कारण वे मिस्त्रियो के साथ काफी घुलमिल गये थे। उनकी नौकरी का दरख्वास्त लिखते, छुट्टी का आवेदन पत्र लिखते, झगड़ा झञ्झट होने पर समझौता कराते, बीमार पड़ने पर होमियोपैथी दवा देते, सेवा शुश्रूषा करते, विवाह आदि मे सहयोग देते और मुसीबत के समय मदद देते थे। इन्ही गुणो के कारण स्थानीय लोगो की दृष्टि में वे श्रद्धेय बन गये थे। वहा के लोग अत्यन्त श्रद्धा के साथ उन्हे 'बामुन देवता' (ब्राह्मण देवता) के नाम से संबोधन करते थे। उनका शरत् दादा पर इतना विश्वास था कि रुपये पैसे का सारा लेन देन इनकी मार्फत होता था। इन लोगो की एक कीर्तन पार्टी थी। छुट्टियो के दिन ब्राह्मण देवता के संयोजकत्व मे मृदग, करताल, झांझ आदि के साथ कीर्तन होता था।"

शरत् बाबू कीर्तन के बडे प्रेमी थे, इसका उल्लेख सतीशचन्द्र दास ने भी किया है—

"शाम के समय तुलसी के पौधे को बेला फूलो से सजाकर पांच-सात व्यक्तियों के साथ सकीर्तन करने मे उन्हे आनन्द मिलता था। अक्सर रास्ते मे मुलाकात होने पर देखता कि हाथ में बेला फूलो की माला लेकर जा रहे हैं। बाजार से खरीदकर ले जाते थे। मेरे पूछने पर कहते—"भगवान् को चढ़ाऊंगा। शाम को आना. हरि नाम होगा।"

मिस्त्री पल्ली मे आने का एक कारण और था। यहा व्यग्य करने वाला कोई नही था। लोगो में हार्दिकता थी और यहा के मकानो का किराया सस्ता था। शिक्षित व्यक्तियों की अपेक्षा कामगार कहीं अधिक उन्हे सम्मान देते थे।

अज्ञातवास

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे उत्थान-पतन, उतार-चढ़ाव दोनो आते हैं। मिस्त्री पल्ली मे आने के बाद शरत् के जीवन मे तेजी से परिवर्तन हुआ। इन्सान का नग्न रूप, उसकी दरिद्रता, असहाय अवस्था को उन्होने निकट से देखा। ठीक इन्ही दिनो सुरेन्द्रनाथ गागुली का एक महत्वपूर्ण पत्र आया।

इसके पूर्व सुरेन्द्रनाथ कुन्तलीन पुरस्कार से प्राप्त रकम से रवि बाबू की पुस्तके भेज चुके थे, फिर लम्बे अर्से तक पत्र व्यवहार नही किया, क्योकि वे स्वय स्थायी रूप से कहीं नही थे। अब स्थायी रूप से नौकरी करने के कारण सुरेन्द्रनाथ को पत्र दिया था। उनके मित्रों मे केवल सुरेन्द्रनाथ ही जानते थे कि बर्मा में वे किस पते पर हैं। शरत् स्वत· प्रवृत्त होकर अज्ञातवास कर रहा था।

सुरेन्द्रनाथ के इस पत्र को पाकर वह आनन्द से विभोर हो गया। उन्होने लिखा है—'सौरीन एक झझट मे फस गया है। तुम्हारी इच्छा जानने के लिए यह पत्र दे रहा हूँ। जवाब जल्द देना। तुम्हे यह मालूम ही है कि वह जिन दिनो भागलपुर था, उन दिनो तुम्हारी 'बडी दीदी' की प्रतिलिपि करके ले गया था। इधर वह श्रीमती सरला रानी देदी चौधुरी द्वारा सपादित 'भारती' पत्रिका का सहायक सपादक बना है। उसने मुझे बिना सूचना दिये 'भारती' के दो अको मे बडी दीदी को छाप दिया। पूछने पर बताया कि अन्तिम अक मे नाम छापूँगा। दुर्भाग्यवश शेषांश उससे कही खो गया है। अब दनादन पत्र दे रहा है कि मैं शेषांश की प्रतिलिपि उसे भेज दूँ। अगर तुम अनुमति दो तो भेज दूँ वर्ना वह वास्तव मे मुसीबत में फस जायगा। पुंटू और बूडी का भी पत्र मेरे पास इस आशय का आया है।

एक बात है, तुम्हारी इस रचना की काफी प्रशसा हो रही है। लोगो का कहना है कि इस तरह की रचना रवि बाबू के अलावा बगला कथा-साहित्य मे दूसरा कोई लिख नही सकता। इस प्रशसा को सुनते-सुनते मेरे कान बहरे हो गये हैं। तुम क्या अनुभव करोगे, इसका अन्दाजा लगा रहा हूँ। तुम कही नाराज न हो जाओ, इसलिए अनुमति माग रहा हूँ। पुटू और निरुपमा भी तुम्हारा पता पूछ रहे थे। लगता है, सौरीन ने सभी को तुम्हारा पता जानने के लिए पत्र लिखा है। वे दोनों भी तुम्हे पत्र देगे।'

उसके उपन्यास को लेकर इतनी हलचल मचेगी, इसका अनुमान शरत् को नही था। मन ही मन उसने गर्व का अनुभव किया। उसने सुरेन्द्रनाथ को तुरत पत्र लिखकर शेष अश भेजने की अनुमति दे दी। यह अक्टूबर १९०७ ई० की घटना है।

बात यह हुई कि 'भारती' पत्रिका की सपादिका सरला देवी चौधुरानी अपने सहायक सपादक श्री सौरीन्द्र मोहन मुखोपाध्याय को सपादन भार देकर लाहौर चली गयी। पिछले साल पत्रिका का अक छप नही पाया था। ग्राहक टूटते जा रहे थे। ठाकुर परिवार से रचना मागने पर सभी लोगो ने टका सा जवाब दे दिया। सभी की यह शिकायत थी कि पहले पत्रिका का प्रकाशन नियमित करिये तब रचना दूँगा।

इधर कविता, कहानी, लेख आदि का प्रबध हो गया था। पत्रिका मे जब तक धारावाहिक कोई उपन्यास नही छपता तब तक पाठकों मे उत्सुकता उत्पन्न नही होती। सौरीन्द्र को अचानक याद आया कि उसने शरत् के 'शिशु' उपन्यास की प्रतिलिपि तैयार की थी। उस उपन्यास को उसने पढने के लिए सरला देवी को दिया।

उसे पढ़ने के बाद सरला देवी ने कहा—"बहुत बढिया उपन्यास है। इसे 'भारती' मे छापो। एक ही अक में नही, तीन-चार अको में छापो। लेखक का नाम पहले मत छापना। अन्तिम अक मे छापना। यह कमर्शियल स्टण्ट है, समझे। लोग सोचेगे कि रवीन्द्रनाथ लिख रहे हैं। इस उपन्यास के माध्यम से हम अपने पिछडेपन का दोष दूर कर देगे।"

सौरीन्द्र मोहन ने कहा—"कम-से-कम इसके प्रकाशन के लिए लेखक से अनुमति ले लेनी चाहिए।"

"तो ले लो। पत्र लिख दो।"

"मगर उसका पता नही मालूम। केवल इतना ज्ञात है कि बर्मा में हैं। काफी अर्से से अज्ञातवास कर रहा है। कभी भूलकर पत्राचार नही करता।"

सरला देवी ने कहा—"कही भी रहे जब यह उपन्यास छपना प्रारंभ हो जायगा तव किसी न किसी व्यक्ति की जबानी उन्हे पता लग जायगा। क्या बिना आज्ञा लिए नही छाप सकोगे?"

सौरीन्द्र मोहन ने कहा—"क्यो नही छाप सकूँगा? उसे प्रचार पसन्द नही। उसका कहना है कि लिखने से आनन्द मिलता है। तुम लोग पढते हो, यही काफी हैं। क्या जरूरत है जो छपवाया जाय। इसके अलावा किसे गरज पड़ी है जो मेरी कहानी पढ़े।"

सरला देवी ने कहा—"यह बहुत ही शक्तिमान लेखक है। यह भावना उसके लिए उचित नही है। तुम इसकी जिम्मेदारी लेकर छापना शुरू करो।"

वैशाख, ज्येष्ठ के बाद आषाढ़ अक की कापी प्रेस मे देते समय सौरीन्द्र मोहन को ज्ञात हुआ कि हडवडी मे पाण्डुलिपि का अन्तिम भाग गायब है। घबराकर उसने सुरेन्द्रनाथ गागुली को पत्र लिखा। सुरेन्द्र ने लिखा कि शरत् की अनुमति बिना मैं दे नही सकता। आज ही रगून पत्र भेज रहा हूँ। इसके प्रकाशन से जो हलचल मची है, उससे मैं प्रसन्न हूँ। विश्वास है कि वह आज्ञा दे देगा। अगर उसने न भी दिया तो मैं शेष प्रतिलिपि भेज दूगा।

अन्त मे प्रतिलिपि आ गयी और उपन्यास पूर्ण हुआ। नये स्वाद मे परिमार्जित भाषा का उपन्यास पढकर सभी सोचने लगे—कौन है यह शरत्चन्द्र?

इधर एक घटना और हो गयी थी। 'भारती' मे जब प्रथम किशत छपा तब 'बग दर्शन' के संपादक श्री शैलेश मजूमदार रवि बाबू के पास जाकर बोले—'आपने कहा था कि अब कुछ दिन विश्राम करूंगा। कुछ भी नही लिखूगा। इधर आप गुमनाम से 'भारती' में 'बडी दीदी' लिख रहे हैं। आखिर हमने कौन-सा अपराध किया है जो यह उपन्यास आपने हमें नही दिया?"

रवि बाबू ने कहा—"मैंने 'भारती' को कुछ भी लिखकर नही दिया है। 'भारती' का अंक ले आओ। देखू, शायद मेरा कोई पुराना उपन्यास नये नाम से तो नही छाप रहे हैं।"

'भारती' में प्रकाशित प्रथम किशत को पढ़कर रवि बाबू ने कहा—"यह उपन्यास मेरा नहीं है। जिसने भी लिखा है, वह बहुत ही शक्तिशाली लेखक है। ऐसे लेखक को अज्ञातवास करना उचित नही है।"

अन्त मे बात काफी बढ गयी। सौरीन्द्र मोहन के मित्र मणिलाल गांगुली अवनीन्द्र ठाकुर के दामाद थे। उनसे सारी कहानी सौरीन्द्रमोहन को ज्ञात हुई। जब शरत् का परिचय अवनीन्द्र ठाकुर को ज्ञात हुआ तब उन्होने कहा—"रवि काका लेखक का परिचय जानने के लिए व्याकुल हैं। तुम मेरे साथ चलो, वही लेखक के बारे में सारी बाते बताना।"

अवनीन्द्र तथा मणिलाल के साथ तुरत महाकवि रवीन्द्रनाथ के निकट सौरीन्द्रमोहन को जाना पड़ा। वहा जाते ही मणि ने कहा—"आसामी को पकड लाया हूँ दादू। इसी व्यक्ति के कारण शैलेश बाबू ने आपको उलाहना दी थी। 'भारती' मे प्रकाशित 'बडी दीदी' कहानी के लेखक शरत् चटर्जी इन्ही के मित्र हैं। इन्होंने ही उस कहानी को भारती में छापा है।"

रवीन्द्रनाथ तरह-तरह के सवाल पूछने लगे। सौरीन्द्रमोहन ने भागलपुर वाली सारी रचनाए तथा शरत् की प्रतिभा के बारे मे सारी बाते विस्तार पूर्वक सुनायी।

सारी बातें सुनने के बाद रवि बाबू ने कहा—"उसकी रचनाएं अप्रकाशित क्यों रख छोडा है? सारा मैटर छापो। साहित्य का कल्याण होगा।"

सौरीन्द्र ने कहा—"शरत् की रचनाएं जिस व्यक्ति के पास हैं, वे छापने के लिए देना नही चाहते। उनका कहना है कि शरत् की अनुमति बिना मैं नही दे सकता।"

रवि बाबू ने पूछा—"शरत् का भी क्या उद्देश्य यही है? उसे पत्र लिखो और मजबूर करो।"

"वे बर्मा मे नौकरी करने अपने मौसा के यहां गये थे। मौसा के निधन के बाद कहां हैं, पता नहीं।"

रवीन्द्रनाथ ने कहा—"चाहे जैसे भी हो, उनका पता लगाकर सारी अप्रकाशित रचनाएं मंगवाकर छाप डालो बल्कि उनसे निरन्तर लिखवाओ। बंगला साहित्य में ऐसा दूसरा कोई लेखक नहीं है।"

'भारती' मे 'बड़ी दीदी' का छपना शरत् बाबू के लिए अद्भुत घटना थी। 'साहित्य' के सम्पादक सुरेश समाजपति ने सौरीन्द्र मोहन से शरत् बाबू का पता पूछा। चाहे जैसे हो, जहां से हो, मुझे इस लेखक का पता चाहिए। बर्मा में वे कहां, किस शहर में हैं, यह पता लगने पर मैं उनसे लिखवाऊंगा। मैं तो बर्मा से उन्हें यहां खींच लाऊंगा।

इसके बाद अन्य पत्र-पत्रिका वाले भी परेशान करने लगे। सुरेन्द्रनाथ गागुली को बार-बार पत्र लिखने पर भी उन्होंने शरत् का पता नही दिया। तभी पाण्डुलिपि खो गयी और तब सौरीन्द्र मोहन को पुनः सारी घटनाएं लिखकर गिडगिड़ाना पड़ा।

ठीक इन्ही दिनों शरत् को हाईड्रोसिल आपरेशन की जरूरत महसूस हुई। लोगों ने सुझाव दिया कि सरकारी अस्पताल की अपेक्षा किसी प्राईवेट डाक्टर से आपरेशन करा लो। शरत् को यह राय पसन्द नही आयी। अघोर मौसा के समय डाक्टरों की लापरवाही वह देख चुका था। कहीं मर गया तो परदेश में कौन पूछेगा। उसने कलकत्ता जाने का निश्चय किया।

यहा आकर वह एक अस्पताल में भर्ती हो गया। अस्पताल से निकलने के बाद उसकी इच्छा हुई कि एक बार सौरीन्द्र तथा अन्य मित्रों से मिल ले, पर न जाने क्यों संकोच हुआ। भाइयों के बारे में पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि प्रकाश अघोर नाना के पास ही है। आजकल मुनिया (सुशीला) को भी उन्होंने रखा है। अब वह बडी हो गयी है। घोषाल जी के यहां से उसे लोग ले गये हैं। प्रभास रेलवे की नौकरी से त्यागपत्र देकर रामकृष्ण मठ में ब्रह्मचारी बन गया है।

भागलपुर जाने की इच्छा रहते हुए वह वहां नहीं गया। सारा समाचार प्रभास से मिल गया। प्रभास को संन्यासी वेश में देखकर न जाने क्यों उसकी आंखें छलछला आयी। शायद बड़े भाई के कर्त्तव्यबोध ज्ञान हो गया था। अब वह प्रभास नहीं, स्वामी वेदानन्द हो गया है। गेरुए रंग की लुंगी, कुर्ता और कनटोप पहने हुए था। सामने से गुजरने वाले नर-नारी उसका चरण-स्पर्श कर रहे थे। ऐसे सन्त का वह बडा भाई है।

चलते समय शरत् ने कहा—'बाजार में भारती' के पुराने अंकों की खोज की, पर कहीं नहीं मिला। तुम बालीगज में ३ न० सानी पार्क में चले जाना। वहां से जिन अंकों में "बड़ी दीदी" धारावाहिक रूप में छपी है, रंगून के पते पर रजिस्ट्री से भेज देना।"

रंगून वापस आते ही मित्रो की शिकायत सुनने में आयी—"क्यों जनाब, आप तो छिपे रुस्तम निकले। चुपचाप साहित्य साधना करते हैं और गुमनाम छपवाते हैं।"

शरत् को यह विश्वास नही था कि इतनी जल्दी रगून के मित्रों को यह बात मालूम हो जायगी। उसने आश्चर्य के साथ कहा—"सचमुच मुझे कुछ भी नही मालूम। बचपन में लिखने-पढ़ने का शौक था, पर इस मगरपुरी में आकर सब कुछ भूल गया।"

इस घटना के बाद शरत् जीरो से हीरो बन गया। लोग सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। क्लब की गोष्ठियो में उन्हें उच्चासन दिया जाने लगा। खासकर आफिस के सहकर्मी इस बात पर गर्व करने लगे कि उनका एक सहयोगी लेखक है, जिसकी रचनाएँ पत्रिकाओं में छपती हैं।

मित्रों की प्रशसा से शरत् का हृदय गर्व से फूल उठा। आफिस से निकलने के बाद उसे लाइब्रेरी जाकर पुस्तकों की दुनिया में खो जाने में अपार आनन्द मिलता। वहा से रात गये लौटता तो नीचे के तल्ले का दृश्य देखकर आखों में करुणा झलक उठती। अधिकतर कामगार रहते थे। नित्य शराब पीकर शोरगुल उपद्रव करना इनके जीवन का अंग बन गया था। कभी-कभी इतने बदमस्त हो जाते कि काम पर जा नही पाते। दूसरे दिन वे दरख्वास्त लिखवाने आते। इस टोले मे ब्राह्मण देवता ही इन सबके मुहर्रिर थे। शरत् उन्हें समझाता। कुछ वादा करते और दो दिन बाद भूल जाते।

उस दिन लाइब्रेरी से वापस आने पर देखा—दरवाजा भीतर से बन्द है। उसे आश्चर्य हुआ। कई बार दरवाजा ढकेलने के बाद उसने पूछा—"कौन है भीतर? दरवाजा खोलो वर्ना तोड दूंगा।"

धमकी काम कर गयी। दरवाजा खुला और झट कोई काली मूर्ति उसके पैरो के पास गिर पडी। वह चौंक उठा—"कौन हो तुम?"

"धीरे बोलिये, ब्राह्मण देवता। मैं शान्ति हूँ।"

"तुम! और मेरे कमरे मे? क्या बात है?"

"मुझे बचाइये। मेरे कसाई बाप के हाथ से बचाइये।"

शरत् स्तंभित हो गया। पूछा—"आखिर हुआ क्या? नशे में मारते रहे क्या?"

इस क्षेत्र मे अधिकाश मिस्त्री शाम को कारखाने से वापस आने के बाद मित्रो तथा पड़ोसियों के साथ बैठकर शराब पीकर बदमस्त हो जाते हैं तब उन्हे यह होश नही रहता कि वे कर क्या रहे हैं। पत्नी तथा बच्चो को अकारण मारना, गालिया देना इनका रोजमर्रे का काम है। दूसरे दिन नशा उतरने पर सब भूल जाते हैं या अस्वस्थ होने पर कई दिन कारखाना नही जाते।

शान्ति ने कहा—"नहीं। आपने पिताजी के मित्र घोषाल को देखा होगा। चण्डुल खोपडी वाला, उससे पिताजी ने काफी कर्ज लिया है। वह रुपयो का तगादा करते-करते तंग आ गया। आज आकर उसने कहा कि रुपये वापस करो वर्ना अपनी लडकी मुझे दो। मैं इसे अपनी घर वाली बनाकर रखूंगा। पिताजी ने कहा कि ठीक है ले जाओ। मुझे भी छुट्टी मिल जायगी। इतना सुनते ही बूढ़ा घोषाल दोनो हाथ फैलाये मुझे पकड़ने आया। मैं उसे ढकेलकर बाहर भाग गयी, लेकिन जाती कहां। वापस आकर यहा छिप गयी। मुझे बचा लीजिए ब्राह्मण देवता। मैं आपके पैर पडती हूँ। आप बडे दयालु हैं, मुझे बचा लीजिए।"

शरत् कुछ देर तक मौन खडा रहा। उसकी समझ मे नही आया कि वह कैसे इसकी रक्षा करे। बीमार की तीमारदारी या आर्थिक कठिनाई वालो को अर्थ की मदद दी जा सकती है। थोड़ी देर बाद उसने कहा—"इस वक्त तुम्हारे बाप होश में नही है। सबेरे तक उसका नशा उतर जायगा तब उसे समझाऊगा फिलहाल तुम यही रहो। मैं अन्यत्र रात बिताकर सवेरे आजाऊंगा।"

इतना कहकर वह चला गया। दूसरे दिन वापस आकर शान्ति के पिता चक्रवर्ती को समझाने लगा।

चक्रवर्ती ने कहा, "क्या करूँ, घोषाल का मेरे ऊपर कर्ज काफी हो गया है। न तो मेरे पास इतने रुपये हैं और न कोई सामान। इसके अलावा बूढ़ा पैसे वाला है। लडकी वहां सुख से रहेगी।"

शरत् ने कहा—"अगर मैं तुम्हारा कर्ज चुका दूँ तो कैसा रहेगा? बाप के उम्र वाले व्यक्ति से विवाह कर दोगे तो लोग क्या कहेगे। ऐसी हालत मे जैसे वह भाग गयी है, उसी तरह कही भाग जायगी।"

चक्रवर्ती ने कहा—"माना कि तुम कर्ज वापस कर दोगे, पर लडकी की शादी तो मुझे करनी पडेगी। इतनी रकम कहां से लाऊगा?"

सहसा इस प्रश्न का जवाब शरत् नही दे सका। गोकि उसे ज्ञात था कि मिस्त्री पल्ली मे साधारण ढंग से विवाह होते हैं। बारात नही निकलती, बाजे नही बजते, भोज नही दिया जाता और न कोई हलचल होती है। चटगॉव के पण्डित आकर केवल एक नाटक करते हैं और विवाह हो जाता है। इसी मकान मे न जाने कितने लोग पति-पत्नी के रूप मे हैं, सभी समझौता वाला विवाह जिसे रखैल कहा जा सकता है, करके जीवन गुजार रहे हैं। जब पति से नही पटती तब पत्नी दूसरा घर बसा लेती है। इस कार्य मे वे शर्म महसूस नही करती। पुरुषो के अमानुषिक व्यवहार के कारण कई औरतो को धर्म परिवर्तन करते उसने देखा है।

तभी चक्रवर्ती ने एक ऐसा प्रश्न छेड़ा जिसे सुनकर शरत् अवाक् रह गया। उसने कहा—"जब मेरी लडकी पर इतनी दया-माया है तब तुम क्यो नही उससे विवाह कर लेते। कर्ज चुका रहे हो, कन्यादाय से भी मुक्ति दिला दो।"

चक्रवर्ती के सुझाव को सुनते ही वह तड़ाक से खडा हो गया और चुपचाप ऊपर अपने कमरे मे चला आया।

"क्या हुआ?" शान्ति ने प्रश्न किया।

गौर से शान्ति को देखने के बाद शरत् ने कहा—"बूढ़ा मान नही रहा है। तुम यही आराम से रहो। शाम को आने पर कोई व्यवस्था करूंगा।"

दिन भर ऊहापोह करने के वाद शाम को आफिस से वापस आने के वाद शरत् ने कहा—"शान्ति, तुम्हारे पिता तो राजी नही हो रहे हैं। मैं उनका कर्ज चुकाने को तैयार हो गया तो उन्होने कहा कि आखिर उसका विवाह करना ही है मैं लडका कहा ढूँढने जाऊ? अव तुम्हारा क्या विचार है?"

शान्ति मौन होकर खडी रही। कुछ देर वाद शरत् ने कहा—"समस्या तुम्हारी शादी की है। अगर तुम किसी से शादी करना चाहो तो मैं उसका प्रवंध कर सकता हूँ।"

शान्ति ने सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी।

कुछ देर मौन रहने के वाद शरत् ने पूछा—"वूढ़ा वर तो तुम्हें पसन्द नही, पर क्या मेरी तरह रग-रूप और उम्र वाला वर पसन्द करोगी?"

शान्ति ने शर्म से सिर झुका लिया। शरत् ने कहा—"शर्माने से काम नही चलेगा। यह जीवन की सवसे कठिन समस्या है। जवाव दो?"

शान्ति मुंह से कुछ न कहकर सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दे दी। शरत् देर तक उसे एक टक देखता रहा।

फिर धीरे से कहा—"अगर मैं यह कहूँ कि क्या तुम मुझसे विवाह करना पसन्द करोगी तो क्या ..।"

इतना सुनते ही शान्ति तेजी से आकर शरत् के चरणो पर आकर गिर पडी। आंसुओं से उसके पैर भीगने लगे।

इस प्रकार शरत् का विवाह हुआ। न वाजा वजा ओर न शख ध्वनि हुई। चक्रवर्ती कन्यादाय से मुक्त हो गया। शरत् के जीवन मे नये प्रभात की सृष्टि हुई।

दर्यामिनी

जब कोई पुरुष विवाहित हो जाता है तव उसे घर-गृहस्थी की समस्या समझ में आती है और उसे अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए मजवूर होना पडता है। पत्नी के आने के कारण शरत् मे कई परिवर्तन हुए। पीने की आदत छूट गयी। अव शराव के बदले एक मित्र की सलाह पर अफीम खाना शुरू कर दिया। मित्र मण्डली तथा पुस्तकालय से देर से लौटने तथा अड्डेवाजी की आदत छूट गयी। अभी कुछ दिन पहले एक अग्रेजी की लाईब्रेरी नीलाम मे खरीदकर घर ले आया था। काफी पुस्तकें थी। अव केवल अध्ययन और लेखन कार्य मे उसने अपने को डुवो दिया। मित्रो के नाम लिखे पत्र में उसने लिखा था—"इधर मैंने फिजियोलाजी, वायोलाजी एण्ड साइकोलाजी ही नही, वल्कि इतिहास की अनेक पुस्तको का अध्ययन किया है।"

एक अग्रेज की लाइब्रेरी खरीदने के कारण हाथ तग हो गया था। वेतन के अलावा अन्य कोई आमदनी का जरिया नही था। एक दिन उसने सोचा—क्यो न एक चाय की दुकान खोली जाय।

चाय की इस दुकान के वारे मे सतीशचन्द्र दास ने लिखा है—"एक वार उन्होने चाय की एक दुकान खोलने के वाद हमारे आफिस मे आकर सूचना दी कि मैंने चाय की दुकान खोली है। चलो दिखाऊ। पहले तो हमारे मित्रो ने इस वात पर विश्वास नही किया, लेकिन आफिस से छुट्टी होने के वाद वे हम लोगो को जवरन पकडकर अपनी दुकान तक ले गये। उनके घर से कुछ दूर, एक लकडी वाले मकान मे हम लोगो ने देखा कि चाय की एक दुकान खुल गयी है।

मेरे मित्र ने कहा—"अव तो आपको अपनी नौकरी छोडनी पडेगी, शरत् वाबू। अगर आप चाय की दुकान पर नही बैठेगे तो दो दिन मे दीवाला निकल जायगा।"

"अरे नही भाई, मुझे बैठने की जरूरत नही है। मैंने सारा इन्तजाम कर रक्खा है। एक डिब्बे दूध मे कितनी चीनी लगेगी, उससे कितनी प्याली चाय बनेगी, इसका हिसाब लगा लिया है। दिन भर मे कितने डिब्बे खत्म हुए, इसका पता लगाने पर हिसाब लग जायगा। चिन्ता की कोई बात नही।"

रगून मे गाय का दूध उन दिनो कही नही मिलता था। यहा चाय का रोजगार काफी मुनाफा देने वाला माना जाता था। एक चाय की दुकान की कीमत तीन हजार रुपये तक थी। इसी से चाय के महत्व का अन्दाजा लगाया जा सकता है। सवेरे पांच बजे से लेकर रात ग्यारह बजे तक दुकान चालू रहने पर दैनिक बिक्री दो-तीन सौ रुपये तक हो जाती थी।

पहले वह घर से बराबर गायब रहता था। इस पल्ली मे क्या होता है, इसकी जानकारी नही थी। अब आफिस से आने के बाद अधिक समय घर मे रहना पड़ता था। नीचे कामगार शराब के नशे मे आकर काफी उपद्रव करते। कोई बीवी को मारता तो कोई अपने बच्चे को। आपस मे झगडना तो लगा ही रहता था। समझाने-डॉटने का कोई असर नही होता।

एक दिन एक मिस्त्री जब छुट्टी का आवेदन पत्र लिखवाने आया तो शरत् ने उसे फटकार दिया। उसके मिन्नत करने पर आवेदन पत्र लिखते हुए उससे कहा—"अब आज के बाद फिर कभी आओगे तो मैं आवेदन पत्र नही लिखूंगा।" उस वक्त गरज वश सभी शरत् की बात मान लेते, पर शाम को पुन: नशे मे चूर हो जाते, लेकिन शरत् निराश नही हुआ। उसके समझाने पर कुछ लोगों ने धीरे-धीरे शराब छोड दी।

इन कामगारो की मदद के लिए उसने एम० भट्टाचार्य की पुस्तक खरीदकर होमियोपैथी दवा देनी शुरू की। बस्ती के अधिकाश लोगों के निकट इस सेवा के कारण वह 'दादा ठाकुर' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

कामगारो के बच्चो को पढ़ाने के लिए लैंसडाउन स्ट्रीट मे एक पाठशाला खोली। उसके मित्र खाली समय मे आकर वहा पढ़ाने लगे। कुछ दिनो बाद एक शिक्षक की नियुक्ति कर दी गयी। जिस दिन शिक्षक नही आता, उस दिन वह स्वयं जाकर पढ़ाता। लोग पूछते—"इससे क्या लाभ होगा?" शरत् कहता—"कम-से-कम इनमे अपराधी प्रवृत्ति जन्म नही लेगी।"

खाली समय मे अध्ययन के अलावा वह अन्य कार्य करना पसन्द नही करता था। शरत् बाबू के अध्ययन के बारे मे योगेन्द्रनाथ सरकार ने लिखा है—"कुछ दिनो बाद पुस्तको का पार्सल आ गया। उसे पाकर वे फूले नही समाये। जब उन पुस्तको का उन्होने अध्ययन कर लिया तब किसी ने पूछा—"आप रवि बाबू के उपन्यासो को पढ चुके?"

तुरत उत्तर मिला—"मेरी तरह रवि बाबू का साहित्य किसी ने पढा नही होगा। मैं तो यहा तक बता सकता हूँ कि किस डायलाग के बाद कौन-सा डायलाग है।"

इन दिनो वे गहरे मे अध्ययन करते रहे। मेरे द्वारा यहा की एक दुकान से एमील जोला की कई पुस्तके मगवाकर पढ़ी। कुछ दिनो बाद हम लोगो द्वारा प्रतिष्ठित नये क्लब 'बेगल क्लब' की लाइब्रेरी को सभी पुस्तके उन्होने दान मे दे दी। बातचीत के सिलसिले मे उन्होने कहा—"मुझे अग्रेजी उपन्यासकारो मे डिकेन्स सबसे अधिक पसन्द हैं। इसके बाद हेनरी उड का नम्बर आता है। बचपन मे बंकिम बाबू की पुस्तके बडे चाव से पढता था और अब मेरे प्रिय लेखको मे रवि बाबू हैं।"

इन्ही दिनो शरत् बाबू को कुछ मानसिक कष्ट सहन करना पडा था।[1] फलस्वरूप उन्होने रवि बाबू की प्रसिद्ध पुस्तक 'चयनिका' से लेकर कुछ अन्य पुस्तके दान स्वरूप 'बेगल क्लब' को दी थी। जब वे किसी साहित्यिक गोष्ठी मे आते तो बडी देर तक बहस करते रहते थे। याद है, एक बार वे श्री कुमुदनाथ के साथ देर तक बहस करते रहे। कुमुदनाथ रस्किन के प्रेमी थे, इसलिए उसकी रचनाओ की जय-जयकार करते रहे और इधर शरत्चन्द्र डिकेन्स के भक्त थे। वे डिकेन्स की प्रशसा मे लगे रहे।

बहस के दौरान शरत्चन्द ने कहा—"देखिये, कुमुद बाबू! रस्किन ऊँचे दर्जे का लेखक है, इस बात से मुझे कोई इनकार नही है, मगर हजार भी हो, रस्किन महज एक क्रिटिक (आलोचक) है। दूसरी ओर

[1] शायद इन्ही दिनो पत्नी का निधन हुआ था।

थे। बाबाजी कभी-कभी जब दर्शन की बातें कहने लगते तब लोग चकित रह जाते थे। अक्सर वे श्मशान-गीत मधुर कठ से गाते रहते थे।

शव के साथ केवल हम दोनो को देखकर शायद हमारी असहाय अवस्था का उन्हें अनुमान हो गया। उन्होंने अपने हाथ से चिता तैयार की। शरत्चन्द्र और मैंने मिलकर उस चिता पर शव को रखा। इसके बाद शरत्चन्द्र ने आग लगायी। थोडी ही देर मे आग भभग उठी। इसके बाद बाबाजी नदी से गगरी में पानी भरकर चिता बुझाने लगे और साथ ही गाते रहे—

खेलार छले हरि ठाकुर,
गडेछेन एई जगत् खाना।

(भगवान् ने लीला करने के लिए इस ससार का निर्माण किया है।)

शरत्चन्द्र को अत्यधिक अधीर होते देख बाबाजी ने कहा—"बेटा, विराट का चिन्तन करा, इससे सात्वना मिलेगी—जातस्य हि ध्रुव मृत्यु। जन्म लेने पर मरना ही पडता है, अमर कौन है?"

इस प्रकार कुछ देर बाबाजी का प्रवचन सुनने के बाद शरत्चन्द्र का हृदय शान्त हुआ, पर अन्तर-ज्वाला से दग्ध हृदय लेकर वापस लौटे।

उस रात की स्मृति आज तक मेरे हृदय को रह-रहकर कुरेदती है। मैं उस कारुणिक दृश्य को भुला नही पा रहा हूँ। अपनी पत्नी के असामयिक निधन के कारण शरत्चन्द्र काफी दिनो तक शोकाच्छन्न रहे। बाद मे उन्होने पत्नी का श्राद्ध किया था।

कुछ दिनो बाद पता चला कि उनकी पत्नी भी शरत्चन्द्र की तरह सेवा परायण थी। पडोस के किसी दरिद्र परिवार के यहां प्लेग की रोगी की सेवा करती थी। उसी परिवार से वे अपने साथ रोग के विषाणु लाई और स्वय रोग से पीडित हो गयी।

इस घटना से शरत्चन्द्र इतने मर्माहत हो गये थे कि कुछ दिनो बाद इस तोताचश्म पडोसियो की बस्ती छोडकर अन्यत्र जाकर रहने लगे।"

शान्ति देवी के साथ-साथ शरत् बाबू का एक मात्र पुत्र भी चल बसा था। अब वे पुन. एकाकी जीवन व्यतीत करने को बाध्य हुए। पत्नी के निधन पर वे एक तरह से टूट गये थे। इसका असर पडा उनके दिल पर। डाक्टरो ने कहा कि अब आप सावधान रहें। आराम अधिक करें।

साहित्य से मन उचाट हो गया था। एक दिन लाइब्रेरी से चित्रकला की पुस्तक उठा लाये। गहरा अध्ययन किया। फलत. चित्रकला की ओर झुकाव हो गया। अपने एक मित्र के साथ एक दिन वे रगून के एक चित्रकार बाथिन के पास गये। इसके बाद अक्सर वहां जाने लगे।

श्री सतीशचन्द्र दास के साथ एक दिन बाथिन के पास गये थे। वह एक गदी गली मे लकडी के बने एक मकान में रहता था। वहा के लोग शराब पीकर चबूतरे, सडक की नालियों में लुढ़के रहते थे। बड़ा ही घृणित दृश्य था। सतीश बाबू को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उनका मित्र शरत् ऐसी गली के एक निवासी के यहा गया और उसके साथ एक टेबुल पर बैठकर भोजन भी किया। काफी अनुरोध करने पर सतीश बाबू ने चाय के साथ बिस्कुट लिया।

इसी बाथिन को नायक बनाकर शरत् बाबू ने 'छवि' (तसवीर) कहानी लिखी, गोकि इसी पटभूमि पर 'कोरल' नामक कहानी वे भागलपुर रहते समय लिख चुके थे। उस कहानी के सभी पात्र विदेशी थे और पटभूमि इगलैण्ड थी। बाद मे 'साहित्य' पत्रिका के सपादक सुरेश समाजपति ने जब इनसे कहानी मागी और न देने पर धमकी दी तो पास में कोई कहानी न रहने पर 'कोरल' को स्मृतियों के आधार पर 'छवि' कहानी लिखकर दे दी। 'कोरल' का नायक साहित्यिक था और 'छवि' मे चित्रकार बनाया गया। अगर 'कोरल' के नायक-नायिकाओ की बातचीत पर ध्यान दिया जाय तो कही-कहीं दोनो के सवाद एक से मिलेगा। आलोचको की राय में 'छवि' से 'कोरल' कहानी श्रेष्ठ है।

'शरत्-प्रतिभा' में सतीशचन्द्र दास ने लिखा है—'जिन लोगो ने शरत्चन्द्र की 'छवि' कहानी पढ़ी है, उन्हे बाथिन नाम स्मरण होगा। उनकी कहानी में एक साधारण चित्रकार का नाम अमर हो गया है। बर्मा में चित्रकला की शिक्षा बाथिन से प्राप्त कर स्वय वे चित्र बनाते थे।"

श्री योगेन्द्रनाथ सरकार ने शरत् बाबू की चित्रकला के बारे में लिखा है—"एक दिन शरत् दादा मुझे पुस्तकों की दुकान में ले गये और पूछा—"आज क्या खरीदूँगा, जरा बताओ?"

मैं अवाक् होकर उनकी ओर देखने लगा। उन्होंने कहा—"यह देखो, आज क्या खरीदने आया हूँ।" कहने के पश्चात् उन्होंने दुकान पर रखे रंग-ब्रश आदि को खरीदा।

मैंने चकित भाव से पूछा—"यह झक कैसे सवार हो गयी? क्या करेंगे यह सब लेकर?"

उन्होंने कहा—"परसों रविवार है। मेरे घर आना। वहां आने पर अपनी आंखों से सब देख लोगे।"

अगले रविवार को उनके घर गया। गोकि उनका मकान छोटा था, पर अच्छा था। पोजुनडांग की खाड़ी, सामने विस्तृत मैदान, चारों ओर अपूर्व दृश्य था।

आवाज देते ही बाहर बरामदे में निकलकर बोले—"कौन? सरकार? आओ भाई। यहां तक आकर मकान खोजने मे कोई दिक्कत तो नही हुई?"

सीढ़ी पर चढ़ते समय देखा—सामने रेलिंग वाले बरामदे पर एक गमले में तुलसी का पौधा है। दूसरे में अपराजिता की लता है। पूछा—"यह सब आपने क्या लगा रखा है?"

"अरे भाई, यह हिन्दू ब्राह्मण का घर है।" कहने के साथ ही वे मेरा हाथ पकड़कर कमरे मे ले आये।

कमरे के भीतर प्रवेश करते ही देखा—सामने एक इजेल पर फ्रेम मे कैनवास रखा है। उस पर पेन्सिल तथा रंग के पोच है। समझने में कठिनाई नहीं हुई। पूछा—"इस विद्या का गुरु कौन है, शरत् दादा?"

"इसका गुरु मैं स्वयं हूँ।" इतना कहने के बाद वे किस रंग के बाद कौन रंग प्रयोग करने से चित्र मे जान आ जाती है, उसका सही एफेक्ट क्या होगा, आदि के बारे में मुझे बताते रहे। यह सब बाते मेरी समझ मे नहीं आयी।

बातचीत के दौरान उन्होने प्रश्न किया—"वर्ल्ड का सबसे बडा पेण्टर कौन है, जानते हो?"

"रैफेल।"

नही। रैफेल से श्रेष्ठ है—माइकेल एंजेल, लेकिन कला के आलोचक तिसियान को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

सौभाग्य से उन दिनों मैं "विडसन मैगजिन" पढ़ता था। सर जान एवरेस्ट मल और टर्नर के बारे मे जानकारी थी। इन दोनों की चर्चा करते ही उन्होंने कहा—"आधुनिक चित्रकारों में मिल और टर्नर की काफी चर्चा है, इसमें कोई सन्देह नही। दोनों ही अग्रेज हैं। सर जोशुया रेनाल्ड्स और गेइन्सबर के बाद इनकी ख्याति अधिक है।"

मैंने विषय बदलने की गरज से कहा—"लेकिन मुझे लैण्डस्केप अधिक पसन्द है।"

उन्होने कहा—"लैण्डस्केप पेंटिंग से ह्युमैन पेंटिंग करना अधिक कठिन कार्य है। अगर एनाटमी (शरीर-विज्ञान) की जानकारी न हो तो ह्युमैन पेंटिंग बनाया नही जा सकता। तुमने शायद रैफेल का 'मेडोनो' देखा होगा? बाजार में काफी नाम होने पर भी वह चित्र समालोचको की दृष्टि में थर्ड क्लास का चित्र है। तिसियान के निकट वह खड़ा नहीं हो सकता।"

शरत् दादा का प्रथम चित्र 'रावण-मन्दोदरी' न जाने क्यो अस्पष्ट-सा बना था। जब पूर्ण रूप से तैयार हुआ तब वास्तव में दोष-रहित बन गया। मगर प्रकाश मे काफी उज्ज्वल नही था। उसमें प्रकाश और छाया का एक ऐसा सम्मिश्रण था जो साफ रूप में स्पष्ट हो गया था। उसमें एनाटमी का ज्ञान, पर्स्पेक्टिव तथा बैकग्राउण्ड की आइडिया मौजूद थी। शिल्पी का वर्णज्ञान तेज रहा—मेरा यह मतलब नहीं है, किन्तु सब मिलाकर एक निसर्ग-चित्र और मानव-चित्र मिलाने पर जैसा दिखाई देता है, वैसा ही था। 'तपस्विनी महाश्वेता' का यह सुन्दर चित्र शरत् दादा की तूलिका से जीवन्त हो उठा था।

बरसात का मौसम, नदी किनारे धुंधलापन, उस पार झुके हुए बादल, आकाश का रंग अस्पष्ट, बगल में संकोच से झांकता सूरज, तीर पर वृक्ष के नीचे सद्यस्नाता तपस्विनी महाश्वेता बालों को फैलाये रोरुद्यमाना प्रकृति देवी का एक जीवन्त चित्र था।

अंधेरे कमरे के एक ओर यह चित्र इस तरह रखा था कि दरवाजा खोलते ही उसके प्रकाश से चित्र की

झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी।

शरत् बाबू अपने इस चित्र की व्याख्या करने लगे। समझते देर नही लगी कि चिर सुन्दर को वे आनन्दघन रस की मूर्ति में विकसित करने की साधना कर रहे हैं। उदार दृष्टि से देखने पर कुत्सित चीज भी सुन्दर दिखाई देती है। यद्यपि शरत् बाबू का यह चित्र नग्न सौन्दर्य का चित्र नही था। नग्न होने पर भी इसे कुत्सित नही कहा जा सकता। इस चित्र के चारो ओर प्राकृतिक सौन्दर्य का चमत्कार था।"

शरत् के चित्रों का वर्णन तथा इस कला से सम्बन्धित ज्ञान को देखते हुए यह अनुमान लगाने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि चित्रकला के बारे में उन्होंने गहरा अध्ययन किया था। पत्नी के निधन के बाद अगर वे हृदय-रोग के शिकार न हुए होते तो शायद साहित्य के लेखन से ही जुड़े रहते। संसार के कई लेखक साहित्य लेखन के साथ-साथ चित्र भी बनाते थे। खेद है कि शरत् बाबू के बनाये कोई चित्र प्राप्य नहीं हैं।

साधक की साधना

चित्रकला से जब मन ऊब जाता तब रात के सन्नाटे में चुपचाप अपनी अधूरी रचनाओं को पूर्ण करने लगता था। शरत् के किसी भी मित्र को इस बात की जानकारी नहीं थी कि वह छिपे रूप से साहित्य-साधना करता है। एक बार आफिस का बाबू बंगचन्द्र दे बुरी तरह बीमार पड़ा तो उसे घर उठा लाया। लगातार उसकी सेवा की। इन्हें भी भनक नहीं लगी। यह देखना कि रविवार को सुबह एक वृद्ध माडल के रूप में आता और चला जाता था। शेष लोगों में अधिकतर बस्ती के लोग आते थे। कोई दवा लेने तो कोई आवेदन-पत्र लिखवाने। दो-चार उधार पैसा मांगने आते। इस दरवाजे से कभी कोई निराश नही लौटा। हमारे दादा ठाकुर फरिश्ता हैं।

शरत् की मौन-साधना की चर्चा करते हुए योगेन्द्र नाथ सरकार ने लिखा है—"मैं शरत् बाबू के भीतर का परिचय जानने का बराबर प्रयास करता रहा। एक दिन उनका चित्रांकन देखते समय मैंने एक आविष्कार किया। वह आविष्कार था—चरित्रहीन की पाण्डुलिपि। मलाट चढ़ी हुई एक मोटी कापी में मोतियों जैसे अक्षर में कई अध्याय लिखे हुए थे। उन अध्यायों का वर्तमान छपी चरित्रहीन पुस्तक से कोई मेल नहीं है। कौतूहलवश पृष्ठ पर पृष्ठ उलटता गया। लगभग ८-९ अध्याय लिखा गया था। उसे पढ़ते समय इतना अच्छा लगा जिसका वर्णन करना कठिन है।

अभी हाल में ही महाकवि रवीन्द्रनाथ की 'गोरा' नामक पुस्तक बाजार में आयी है। 'गोरा' के बाद इतना सुन्दर उपन्यास अन्य कोई पढ़ने में नही आया। प्रथम पृष्ठ पर कुछ लोगों के नाम लिखे हुए थे। मैंने पूछा—"यह सब किसके नाम हैं, शरत् दादा?"

जवाब मिला—"ये सब मेरे मित्र हैं।"

"मतलब?"

"भागलपुर में हम लोगों का एक साहित्यिक क्लब था। ये लोग उसके सदस्य थे। पुंटू, बूड़ी, उपीन मामा, सुरेन मामा, गिरीन मामा, सौरीन मुखर्जी आदि।"

इन नामों में मैं सौरीन मुखर्जी के नाम से परिचित था, क्योंकि इनकी 'शेफाली' नामक पुस्तक पढ़ चुका था। इस पुस्तक में संग्रहीत कहानियों में 'निर्बन्ध' कहानी जब 'भारती' में प्रकाशित हुई थी तब श्रीमती स्वर्ण कुमारी देवी के सम्पादकत्व में 'भारती' ने नवकलेवर धारण कर, लोगों को आकर्षित किया था। हम लोग इस कहानी को पढ़कर धन्य हो गये थे। चारो ओर इस कहानी की चर्चा होते देख शरत् बाबू ने पूछा था—"क्यो सरकार, आज किसकी कहानी की इतनी प्रशंसा हो रही है?"

पत्रिका तथा लेखक का नाम सुनकर उन्होंने कहा—"भागलपुर में जितने लोग थे, सभी अच्छा लिखते हैं। सौरीन और बूड़ी तो पद्य भी अच्छा लिखते हैं।"

यहा एक बात बता देना चाहता हूं कि शरत् बाबू कविता को पद्य कहते हैं। अक्सर जब कोई यह पूछ बैठता कि आप कविता को पद्य क्यो कहते हैं? तब वे प्रत्युत्तर मे कहते—"जनाब, आप लोग जिसे

कविता कहते हैं, उसे मैं पद्य कहता हूँ। कविता और पद्य में अन्तर कहां है, यह मेरी समझ मे नहीं आता। रवि बाबू ने स्वय लिखा है—

कलकताए ऐसेछि सद्य।
बसे बसे लिखछी पद्य।।

इतने बडे कवि जब पद्य कहते हैं तब मेरे कहने में दोष कहां है?"

इस प्रकार वे देर तक तर्क करते। उनके तर्क के आगे हम लोग हार मान लेते। मैं उनके 'चरित्रहीन' को पढ़ने मे डूब जाता था।

कैसे व्यक्ति आत्मानुशीलन द्वारा समाज मे प्रसिद्धि प्राप्त करता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण शरत्चन्द्र के जीवन से प्राप्त होता हैं। जो व्यक्ति आपात दृष्टि से बिलकुल मनमौजी या देखने मे सनकी के अलावा और कुछ प्रतीत नही होता था, वही व्यक्ति लोगो की दृष्टि के अन्तराल में अपनी साहित्य-साधना के द्वारा धीरे-धीरे कौशल के साथ निरन्तर अग्रसर हो रहा था, वास्तव मे यह प्रणिधान करने लायक विषय है।

चरित्रहीन की पाण्डुलिपि को आविष्कार करने के बाद मेरे मन मे यह दृढ विश्वास हो गया कि यह असम्पूर्ण उपन्यास कला की दृष्टि से अपूर्व ग्रथ है। इसे कोई भी अस्वीकार नही कर सकता। जितनी साफ-सुथरी भाषा है, उसी प्रकार इसके अध्याय सजाये गये हैं। पढते वक्त मानो सारी घटनाए आखो के सामने प्रकट होती जाती हैं।

मैंने कहा—"शरत् दादा, जब आप इतना सुन्दर लिख लेते हैं तब बराबर क्यो नही लिखते?"

शरत् बाबू ने उत्तर दिया—"कहा सुन्दर लिख पाता हू?"

"यह सब तो आप ही का लिखा हुआ है।"

"अरे सरकार भाई, तुम भी अजीब हो। अपने मन से कहानी गढ़कर बहुत लोग लिख सकते हैं।"

उन दिनो प्रसिद्ध कथाकारो मे प्रभात बाबू (श्री प्रभात कुमार मुखोपाध्याय) के अलावा दो-चार अन्य लेखको की कहानियो की ख्याति हो रही थी। मैंने जिस लेखक की चर्चा की, वे 'भारती' के लेखक थे। इसके पूर्व उनकी कई कविताए स्वदेशी-आन्दोलन पर प्रकाशित हुई थी। उनकी रचनाए पढकर मुझे इस बात का भरोसा हो गया था कि इस लेखक के भीतर प्रच्छन्न-शक्ति है, अगर इन्हें ठीक से नियंत्रित किया जाय तो बगला-साहित्य में इनका एक स्थान अवश्य बन जायेगा।

जब इस लेखक की पुस्तक छपकर बाजार में आयी तब एक दिन बातचीत के सिलसिले मे मैंने शरत् बाबू से कहा—"शरत् बाबू, 'शेफाली' नामक एक पुस्तक बाजार मे आयी है, बहुत ही उत्तम है।"

शरत् बाबू ने कहा—"सौरीन की बात कर रहे हो। वह बहुत अच्छा लिखता है। अगर उससे पूछोगे तो मुझे ही अपना गुरु बतायेगा।"

मैंने हँसकर कहा—"जरूर। यानी शिष्य विद्या गरियसी।"

शरत् बाबू ने हँसकर उत्तर दिया—"अरे भाई, मैं भी कोई बुरा नही लिखता। अगर लिखने लगू तो अनेक लोगो से अच्छा लिख सकता हूँ।"

"अच्छा, आपको लिखने की प्रेरणा कैसे मिली?"

"बचपन से ही मन मे वासना थी कि बाहर जो कुछ तरह-तरह की बाते, घटनाए देखता-सुनता हूँ, उन्हे एक रूप नहीं दे सकता? अचानक एक दिन लिखना शुरू किया। गोकि पहले चोरी करके लिखता था। बंकिम तथा रवि बाबू की रचनाओ से नकल करता था। बिना अभिज्ञता के अच्छी रचना नही लिखी जा सकती। अभिज्ञता प्राप्ति के लिए बहुत कुछ करना पडता है। अति भद्र, शान्तशिष्ट जीवन व्यतीत करने पर अभिज्ञता प्राप्त नही होती। घर मे आरामकुर्सी पर बैठे रहने से साहित्य सृष्टि नही होती। केवल अनुसरण किया जा सकता है। जब तक मानव-जीवन को नही देखोगे तब तक साहित्य नही लिख सकोगे। कुछ लेखक पुस्तको से कैरेक्टर लेकर उसमे कुछ अदल-बदल करके नये प्रकार कैरेक्टर बना लेते हैं। इन्सान क्या है बगैर उसे देखे इन्सान को समझा नही जा सकता। मैंने अत्यन्त कुत्सित गदगी के भीतर भी मनुष्यत्व देखा है जिसकी कल्पना नही की जा सकती। ऐसी अनेक अभिज्ञताए मेरे मन मे हैं। मैं

बराबर मनुष्य का भीतरी रूप देखता हूँ। उसने यह कहा, उसने यह कहा, दूसरों के मुँह की सुनी बातों पर ध्यान देकर उनकी अभिज्ञता को ग्रहण नही करता। यह आदत मुझमें नही है। वास्तविक जीवन को देखने के लिए नाक-भौंह सिकोड़ने से काम नही चलेगा। कॅक्रिट रचना के लिए अपनी अभिज्ञता नितान्त आवश्यक है।''

मुझे तब तक यह ज्ञात नही था कि हजरत चित्र बनाने के अलावा चुपचाप उपन्यास आदि भी लिखते हैं। 'चरित्रहीन' जो कि उन दिनो असम्पूर्ण था, उसे पढ़ने के बाद मेरी धारणा बदल गयी। पहली बार उनकी कृति से परिचित हुआ।

बातचीत से यह ज्ञात हो गया कि यह आग अधिक दिनों तक दबी नही रहेगी। सहानुभूति और प्रोत्साहन की हवा पाते ही तेजी से जल उठेगी। आगे चलकर मेरी यह धारणा सत्य के रूप में परिणत हो गयी।

रंगून में 'बेंगल सोशल क्लब' नामक एक संस्था थी जहां अधिकतर गाना-बजाना आदि होता था। हम लोग वहां के वातावरण से ऊबकर अलग हो गये और 'बेंगल क्लब' के नाम से एक नयी संस्था को जन्म दिया जहां साहित्यिक आयोजन होता था। हमारी इस सस्था मे बंधुवर कुमुदनाथ लाहिडी एक रसज्ञ व्यक्ति थे। आपकी रचनाओं मे मौलिकता की छाप रहती। आप निबंध, कहानी, कविता, आलोचना आदि लिखते थे। इस क्लब मे हम लोगों के अग्रज सम प्रफुल्ल बाबू (कुमुदनाथ के ज्येष्ठ सहोदर), विपिन बिहारी दास, योगेन्द्र लाल सेन, पेमानन्द सेन आदि अपनी-अपनी रचनाएं पढ़ते थे।

एक बार शरत् दादा ने घोषणा की थी कि इस सस्था को कुछ पुस्तके उपहार मे दे दूँगा। जो लोग यहां रचना पाठ करेगे, उनमे जिनकी रचना सर्वश्रेष्ठ होगी, उन्हे यह पुरस्कार मिलेगा। सर्वप्रथम रवि बाबू की 'चयनिका' दूँगा।

उन दिनो इलाहाबाद स्थित इंडियन प्रेस से रवि बाबू की चुनी हुई कविताओ का सग्रह 'चयनिका' नाम से प्रकाशित हुई थी। वह पुस्तक अभी हाल मे ही बाजार में आयी थी। शरत् बाबू ने चार रुपये वाली इतनी महगी पुस्तक खरीदकर क्लब को उपहार मे दी। हम लोगों ने आपस मे यह निश्चय किया था कि सस्था के पुस्तकालय को समृद्ध करना है। रचनाओ की प्रतियोगिता हुई और मित्रवर कुमुदनाथ विजयी घोषित किये गये। इस प्रकार संस्था को एक अच्छी पुस्तक प्राप्त हो गयी। 'चयनिका' के अलावा अन्य कई पुस्तकें हमे शरत् दादा से प्राप्त हुई थी।

इस घटना के बाद शरत् दादा नित्य हमारे क्लब मे आने लगे। बातचीत के सिलसिले मे मैंने एक दिन उनसे निवेदन किया कि जब आप इतना अच्छा लिख लेते हैं तब एक रचना लिखकर एक दिन सभा में पढ़िये। उन्होंने तुरत इनकार कर दिया। मैं बराबर उनसे अनुरोध करता रहा। अन्त मे हारकर चुप हो गया।

वे नित्य आते, गप लड़ाते, गीत गाते, हसी-मजाक करते, पर रचना पढने से कतराते थे। एक दिन मित्रों ने जब व्यग्य किया तब उन्होने कहा—''मैं इस सभा मे पाठ करने के लायक एक निबंध लिख रहा हूँ जब वह पूर्ण हो जायगा तब एक दिन पढ़ूगा। उसका नाम है—'नारी का इतिहास।'

मैं अक्सर रविवार के दिन उनके घर जाता था। बातचीत के सिलसिले मे मैंने पूछा—''एक बात मैं जानना चाहता हूँ। आपने यह जो उपन्यास लिखा है, क्या इसका प्लाट पहले से बना लेते हैं या किसी घटना को लेकर चलते हैं?''

शरत् बाबू ने कहा—''मेरे लिखने का ढग अलग तरह का है। बहुत से लेखको को जिस बात की कठिनाई होती है जैसे उन्हे प्लाट नहीं मिलता। मुझे प्लाट के बारे में तनिक भी चिन्ता नही करनी पड़ती। मैं पहले कुछ चरित्रो को ठीक कर लेता हूँ, उनको चित्रित करने के लिए जो आवश्यक बातें हैं, वे अपने आप आ जाती हैं। मन का स्पर्श एक चीज है उसमे प्लाट कुछ भी नही रहता। असल चीज है—कुछ चरित्र। उनको उभारने के लिए, स्पष्ट करने के लिए प्लाट की जरूरत होती है तब उन्हे पारस्परिक अवस्था मे लाकर जोड़ देना पड़ता है, यह कार्य अपने आप हो जाता है। आजकल जो लोग लिख रहे हैं, उनकी दृष्टि प्लाट पर नही रहती, यह मैं देख रहा हूँ। चरित्रो को चित्रित करने के लिए उनके मुख से बहुत सी बातें निकलती हैं, उनका दुःख, उनकी व्यथा-वेदना, उनका आनन्द इस रीति से प्रकट

होता है कि कहानी मे जो कुछ रहता है, उसमे रुकावट नही पडती।"

इस प्रकार की बाते अक्सर शरत् दादा से होती रहती। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा कि अब मंत्रीजी को सूचना दे दीजिए। मेरा लेख तैयार है। मगर मैं उसे नही पढ़ूंगा। इसके लिए वे किसी को तैयार कर लें। मैंने काफी अनुरोध किया कि लेख जब आपका है तब दूसरा क्यो पढ़ेगा। आप पढ़िये हम लोग सुनेगे।

शरत् दादा ने कहा—"लेख पढ़ने की एक टेकनिक है। स्वर को कही मद, कही तेज करना पडता है। विवरणो में उतार-चढ़ाव रहता है। इस ढग से मैं पढ़ नही पाता। मेरे ख्याल से अगर आप इस लेख को पढ़े तो अच्छा रहेगा।"

मैंने कहा—"क्या यह उचित होगा? अपनी रचना पढ़ने मे कठिनाई नही होती, पर दूसरो की भाषा पढ़ने में होती है।"

लेकिन मेरे सारे तर्क बेकार हो गये। बरसात का मौसम था। पक्का डेढ़ मील कीचड मे परेशान होकर हम उनके घर गये। दरवाजा खटखटाने पर एक बालक ने कहा कि वे नही हैं। उसे सारी बात समझाने पर उसने कमरे के भीतर जाकर नत्थी किया हुआ कागजो का एक पोथा लाकर मेरे हाथ पर रख दिया। निबध का रग-रूप देकर मेरे होश हवाश गायब हो गये। चीटी की तरह के अक्षरो मे लिखा यह महाभारत मुझे पढ़ना पडेगा? हाय भगवान, अब क्या होगा? मुझसे तो यह पढ़ा नही जायगा, और कोई पढ़ना चाहे तो भले ही पढ़े।

इस निबंध को सभा में पढ़ने के लिए कोई राजी नही हुआ, फलस्वरूप मुझे ही यह महाभारत पढ़ने के लिए बाध्य होना पडा। सबसे बडी मुश्किल की बात यह रही कि पढने के पहले एक बार निरीक्षण करने का मौका नही मिला। ऐसी हालत मे खचिया भर कोटेशन वाले पोथा को पढ़ने के लिए मजबूर होना पडा।

ठीक इन्ही दिनो 'भारती' पत्रिका मे श्रीमती निरुपमा देवी का उपन्यास 'अन्नपूर्णा का मन्दिर'[1] धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो रहा था। मेरे पूछने पर उन्होने कहा—'बूडी बहुत अच्छा लिखती है, सरकार। उसके पद्यो को तुमने पढ़ा नही है, वर्ना मुग्ध हो जाते। बूडी के दादा पुटू दार्शनिक व्यक्ति हैं। दोनो भाई-बहनो के अलावा उपीन मामा, सुरेन मामा, गिरीन मामा और सौरीन मुझे लेखक समझकर मेरी कद्र करते हैं। आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि इनकी रचनाएं छप रही हैं और वह भी कलकत्ता के प्रतिष्ठित पत्रो मे।"

तुरत मैंने पूछा—"एक बात बताइये, शरत् दादा। इन लोगो की रचनाए प्रकाशित हो रही हैं और आप इन सभी के गुरु होकर भी निश्चेष्ट क्यो हैं?"

शरत् बाबू ने जो उत्तर दिया, उससे उनमें आत्म मर्यादा का परिचय प्राप्त हुआ। बोले—"देखो भाई, अगर मेरी रचनाएं अच्छी होगी तो पत्र-पत्रिका के सपादक आग्रह के साथ मांगेंगे। इसके अभाव मे मैं निश्चेष्ट रहना अधिक पसन्द करूंगा।"

अगर आप लिखेंगे नही, पत्रों के संपादकों को देगे नही तो उन्हे कैसे ज्ञात होगा कि आप लेखक हैं और अच्छा लिखते हैं?"

"मैं कर ही क्या सकता हूँ भाई? इस ओर से तो मैं निरुपाय हूँ। इसे मैं देख रहा हूँ। नये लेखक जिस तरह अपनी रचना छपवाने के लिए धरना देते हैं, उसे देखकर उन बेचारो पर तरस आती है। काफी मिन्नत-खुशामद करने पर अगर किसी की एक कविता, लेख या कहानी छप गयी तो सपादक की

---

[1] ज्ञातव्य रहे कि श्रीमती निरूपमा देवी के इस उपन्यास पर पूर्ण रूप में शरत् बाबू के 'शुभदा' उपन्यास की छाप है जिसे लेखिका ने भी स्वीकार किया है। 'शुभदा' की पाण्डुलिपि भागलपुर में थी। जब 'अन्नपूर्णा का मन्दिर' पुस्तकाकार रूप में छपी तब शरत् बाबू ने शुभदा को न छपवाने का निश्चय किया। अपने भाजे को पाण्डुलिपि देकर जला देने की आज्ञा दी। भाजा श्री रामकृष्ण मुखोपाध्याय ने उसे जलाया नही, बल्कि छिपाकर रख दिया और फालतू कागज जला दिया। बाद में शरत् बाबू ने रामकृष्ण की चालाकी पकड ली। इस बारे में वे इतने सजग थे कि 'शुभदा' की पाण्डुलिपि किसी को पढ़ने के लिए भी नही दिया। उनके निधन के बाद इसका प्रकाशन हुआ था।

खैरियत बिगड जाती है, तुरत वह खंचिया भर रचना भेज देता है। अगर वह स्थानीय लेखक हुआ तो क्या कहने, राह-घाट मे भी सपादक का पीछा करने लगता है। अगर उनके निकट दाल नहीं गलती तो वहा से रचनाए वापस लेकर अन्यत्र किसी रद्दी पत्र-पत्रिका से छपवाने का प्रयत्न करता है। इस तरह रचना छपवाने के बाद वह अस्वीकृत करने वाले सपादक के नाम तबर्रा पढ़ना शुरू कर देता है जो किसी भी दशा मे शोभनीय नही कहा जा सकता। यही है साहित्यिक वातावरण की स्थिति। तुम्हारे शरत् दादा ऐसी आवहवा से बाहर रहने मे अपना कल्याण समझते हैं। तुम लोगों के सामने कविता के स्थान पर पद्य कहने पर जब नाराज हो जाते हो तब तुम लोग न जाने कितनी कविताए लिखते हो, मुझे बता सकते हो कि इनमे कितने लोग दिलदार कविता लिखते हैं? वास्तव मे जब तक कलेजा लगाकर कुछ न लिखी जायेगी तब तक रचना जानदार नही बनेगी। कभी मुझे भी कविता लिखने की सनक थी। मैं 'गाथा' लिखा करता था। लेकिन वह सब कहा गायब हो गये, पता नही। जबकि सुरेन्द्र मामा के नाम से 'मन्दिर' कहानी कब लिखकर दे आया हूँ, इसकी याद बनी है। असली बात यह है कि इस ससार में विशुद्ध हृदय वाली चीजें स्थायी बनी रहेगी, कृत्रिम चीजे नही टिक सकती। शेक्सपीयर के युग मे न जाने कितने साहित्यिक हुए थे, पर उस युग के अन्य लोगो के नाम बता सकते हो। उतनी दूर भी जाने की जरूरत नहीं है। हम बंकिम-युग को लें। बंकिम बाबू की देखादेखी न जाने कितने साहित्यिक साहित्य के अखाडे मे उतरे, शायद उनमे से कुछ के नाम जानते होगे। लेकिन वे लोग हृदय के जोर पर नही, बंकिम की नकल करने के लिए लिखने लगे थे। क्या आज वे लोग टिके हुए हैं? अगर उनमे से कुछ मौजूद हैं तो वे पुस्तकों की दुकानो मे हैं—साहित्य के राज्य में नही हैं। शायद दो-चार साल बाद वे बाजार से गायब हो जायेंगे। वर्तमान समय के रवि बाबू को लो। गद्य तथा पद्य में न जाने कितने लोग उनकी नकल कर रहे हैं, इसका कोई लेखा-जोखा है? अगर कोई जीवित रहेगा तो केवल रवि बाबू रहेंगे। उदाहरण के लिए रवि बाबू की एक रचना को लो। देखो वे कितनी तेजी से आकर्षित करते हैं—

एक सात महल भवने आमार चिर जनम भिटाते।
स्थले जले आमि हाजार बाँधने बाधा जे गिठाते गिठाते।
तबू हाय भूले जाई बारे-बारे दूरे ऐसे चाइ घर बाँधिबारे।
आपन बाँधा घरेते कि परे घरेर वासना मेटाते?"
प्रवासीर वेशे केन फिरि हाय चिरजनम भिटाते।[1]

ऐसी अनेक कविताएं रवि बाबू की हैं। कविता की जड में उद्भट कल्पना का होना आवश्यक है, ऐसी बात नही है। जड मे तो सत्य स्वरूप की उपलब्धि होनी चाहिए। इसके बाद साहित्य-साधना, चाहे पद्य मे करो या गद्य में। अनुशीलन तथा मर्म के सहयोग के बिना साधना मे सफलता नही मिलती भाई।"

इतना कहकर वे चुप हो गये।

आफिस मे लौटते समय मार्ग में एक बडे मिया को पक्षी बेचते देख शरत् बाबू कौतूहलवश पास आये। एक सिगापुरी नूरी पक्षी पसन्द आने पर उसे घर ले आये। इस पक्षी का शरीर लाल रग का था और दोनो पंख हरे रग के थे।

निस्सतान लोगों मे एक कमजोरी होती है। वे पशु-पक्षी अवश्य पालते हैं। अपने पुत्र-पुत्री की प्यास उसे अपना स्नेह देकर बुझाते हैं। नूरी पंक्षी का नाम रखा गया—'बाटू बाबा।' अर्थात् बाटू बेटा। प्रथम दिन उसे पिजडे मे रखा गया। बाद मे पीतल के दो डण्डे और साकल लाये। दिन भर बाटू बाहर बरामदे में पीतल के डण्डे पर बैठा रहता। उसके पाँव साकल से बँधे रहते। रात को उसे कमरे में भीतर ले जाते थे।

---

[1] रवि बाबू की यह कविता शरत् बाबू को इसलिए प्रिय थी कि उनके खानाबदोशी जीवन का वास्तविक चित्रण इसमें है। यही उनका जीवन-दर्शन था जिसे वे सोचते रहे।

अब पढ़ना लिखना बन्द करके शरत् उसे पढ़ाने लगे। धीरे-धीरे वह पक्षी शरत् को 'बाबा' कहकर पुकारने लगा। उसके लिए हमेशा राजसी भोजन दिया जाता था। एक कटोरी में पिस्ता, बादाम, दूसरे मे अगूर या किशमिश, तीसरे में अनन्नास या अन्य फलो के टुकड़े रहते थे।

'चरित्रहीन' के साथ-साथ शरत् ने 'नारी का इतिहास' नामक एक वृहद निबंध लिखा जिसे योगेन्द्रनाथ सरकार ने 'बेंगल क्लब' में पाठ किया था। इस निबंध मे ५००-७०० महिलाओं की करुण कहानिया थी। खासकर ऐसी महिलाओ का विवरण था जो अपने पति या सुसराल के अत्याचारों से ऊबकर घर से भाग आयी थी। बाद मे मजबूर होकर वे अन्य धर्मावलम्बियों को पति बनाकर जीवन के दिन गुजार रही थी अथवा कुटनियो के चक्कर मे पड़कर वेश्या बन गयी थी। नारी-जीवन का इतना गहन-अध्ययन तत्कालीन लेखको मे किसी ने नही किया था।

ठीक इन्ही दिनो शरत् के स्वप्नो का महल एकाएक जलकर धराशायी हो गया।

५ फरवरी, सन् १९१२ ई० की रात को सहसा नीचे से आने वाले शोरगुल को सुनकर शरत् हड़बडा कर जाग उठा। नीचे आने पर ज्ञात हुआ कि उसके कमरे के नीचे वाले तल्ले मे रहने वाले धोबी के घर मे आग लग गयी है। लोग तेजी से अपना सामान बाहर निकाल रहे थे। वह अपना सामान निकालना भूलकर नीचे वालो की मदद करने लगा।

तभी किसी ने कहा—"आप जल्दी से ऊपर जाकर अपना सामान नीचे फेंकिये। यह आग बुझने वाली नही है।"

इस चेतावनी को सुनते ही वह अपने कमरे को दौडा। दनादन ऊपर से सामान नीचे फेंकने लगा। तब तक उसके कमरे मे आग की लपट पहुँच गयी थी। अब कमरे के भीतर जाना कठिन हो गया।

नीचे आने पर देखा—धोबी छाती पीट-पीटकर रो रहा है। अपने गधे को तो वह बाहर निकाल ले आया था पर बकरी का एक बच्चा भीतर रह गया था। इतना सुनते ही शरत् तेजी से कमरे के भीतर गया और बकरी के बच्चे को गोद में लेकर बाहर निकला। तभी ऊपर वाली मंजिल जलकर नीचे गिर पडी।

देखते-देखते अग्नि शिखा ऊपर की ओर बढ़ती गयी। चारो ओर प्रकाश के साथ-साथ लोगो के चीखने की आवाज गूंजने लगी।

श्री सतीशचन्द्र दास उस समय दूर कही अपनी मित्र मडली के साथ टहल रहे थे। आग की लपट और चीखें सुनकर वे दौडे हुए आये। उन्हे यह मालूम था कि शरत् बाबू यही रहते हैं। शायद उनके यहा यह दुर्घटना हुई है। पास आने पर उनका अनुमान सही निकला।

—यह आग कैसे लगी?

—पता नहीं।

क्षण भर बाद सतीशचन्द्र ने पूछा—"कुछ बचा पाये आप?"

शरत् ने थके स्वर में कहा—"नहीं। मेरा सब कुछ जल गया।"

सारे चित्र, उपन्यासों की पाण्डुलिपियां, पूरी लाइब्रेरी जल गयी थी। शरत् के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी थी जिसे वे आजीवन भुला नहीं सके।

दिशा की खोज

ठीक इन्हीं दिनों प्रमथनाथ भट्टाचार्य का एक पत्र आया। उसके जवाब में २२-३-१९१२ को शरत् ने लिखा—प्रमथ,

तुम्हारा पत्र पाकर आज ही जवाब लिख रहा हूँ, ऐसा तो नहीं होता। जो मेरा स्वभाव जानते हैं, उनके निकट इससे अधिक कुछ कहना व्यर्थ है।

अनेक बार मेरी याद तुम्हें आयी, इसे मैं जानता हूँ। क्योंकि जिनको याद करने की जरूरत नहीं है, वे भी जब याद करते हैं तब तुम तो करोगे ही।

मेरे भाग्य विधाता ने मेरी समस्त शास्ति से बड़ी यही शास्ति जन्मकाल से ही शायद मेरे भाग्य में लिख दिया था। आज यदि मैं यह सोच सकता कि मेरे सभी परिचित, आत्मीय स्वजन, मित्र मुझे भूल गये हैं तो मैं सुखी होता, शान्ति पाता। लेकिन यह होने वाला नहीं है। जो लोग मुझे खोजेंगे वे मेरा पता जानना चाहेंगे, विचार करेंगे और बराबर मेरे पतन पर दुःखी होकर लम्बी सांस लेंगे। मेरे मर्मान्तिक दुःख के बोझ को अक्षय बनाकर रखेंगे। लोगों ने मुझसे क्या आशा कर रखी थी, क्या नहीं पाया और क्या होने पर मुझे मुक्ति दे सकते हैं, यह यदि मुझे बता दें तो मैं हमेशा उनका कृतज्ञ रहता।

तुम दुःखी मत होना। .... मेरे सम्बन्ध में कुछ जानना चाहते हो, वह संक्षेप में यों है—

१—शहर के बाहर एक छोटे-से मकान में रहता हूँ।

२—नौकरी करता हूँ। ९० रुपये वेतन मिलता है और १० रुपये भत्ता। एक छोटी चाय की दुकान है। किसी तरह गुजर हो जाती है। पूंजी कुछ भी नही है।

३—दिल की बीमारी है। किसी क्षण .....

४—पढ़ा बहुत है। लिखा प्रायः कुछ भी नहीं है। पिछले १० वर्षों में शरीर विज्ञान, जीव विज्ञान, मनोविज्ञान और कुछ इतिहास पढ़ा है। शास्त्र भी पढ़ा है।

५—आग में मेरा सब कुछ जल गया है। पुस्तकालय और 'चरित्रहीन' उपन्यास की पाण्डुलिपि भी। 'नारी का इतिहास' लगभग चार-पाच सौ पृष्ठ लिखा था, वह भी जल गया। इच्छा थी, इस वर्ष छपवाऊंगा। मेरे द्वारा कुछ हो, यह शायद होने का नहीं, इसलिए सब कुछ स्वाहा हो गया। फिर शुरू करूं, ऐसा उत्साह नहीं हो रहा है। चरित्रहीन ५०० पृष्ठों में प्रायः समाप्त हो गया था। सब कुछ गया।

तुम्हारे क्लब की बात सुनकर अत्यन्त आनन्द हुआ। कैसे, क्या होता है, बीच-बीच में सूचित करते रहना। तुम्हारा जैसा स्वभाव है, उसी से तुम इतने लोगों से परिचित हुए हो, इसमें विचित्र बात नहीं है।

हमारी पुरानी साहित्य-सभा की एक मात्र सदस्या निरुपमा देवी साहित्य चर्चा चला रही हैं और लोगों ने छोड़ दिया है। यही न?

मेरी कोई पुरानी रचना मेरे पास नही है। कहा है, है या नहीं, इसे मैं नहीं जानता। और जानना भी नहीं चाहता।

एक और समाचार तुम्हें देना बाकी है। लगभग तीन वर्ष पहले हृदय-रोग के प्रथम लक्षण प्रकट हुए थे। तब मैंने आयल पेंटिंग प्रारभ किया था। पिछले तीन सालों में कई चित्र बनाये थे। सब जल गये। केवल अंकन के सामान रह गये।

अब मुझे क्या करना उचित है, यदि बता दो तो तुम्हारे कथनानुसार कुछ दिन प्रयत्न करूंगा। नावल, हिस्ट्री या पेंटिंग, कौन-सा शुरू करूं?"

श्री प्रमथनाथ भट्टाचार्य से शरत् का परिचय मुजफ्फरपुर मे हुआ था। भट्टाचार्यजी को उन्हीं दिनों यह ज्ञात हो गया था कि शरत् एक लेखक है। 'चरित्रहीन' का कुछ भाग तथा 'ब्रह्मदैत्य' उपन्यास यहीं रहते शरत् ने लिखा था। कलकत्ता निवासकाल में जिन दिनों प्रमथ बाबू पाथुरियाघाट के ठाकुर परिवार के यहां व्यक्तिगत सचिव थे तब शरत् से काफी घनिष्ठता हुई थी। इसी सिलसिले में प्रमथ बाबू ने शरत् का पता लगाकर यह जानना चाहा कि आजकल वह क्या कर रहा है। साहित्य-सेवा कर रहा है या नही।

इस खोज के पीछे एक राज था। प्रमथ बाबू के सहपाठी हरिदास चट्टोपाध्याय अपनी प्रकाशन संस्था से एक मासिक पत्रिका प्रकाशित करने की योजना बना रहे थे। वे बंगाल की प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्था 'गुरुदास चट्टोपाध्याय' के संचालक थे। प्रसिद्ध नाट्यकार श्री द्विजेन्द्र लाल राय इस पत्रिका के संपादक बनने को तैयार हो गये थे। पत्रिका के संयोजक श्री प्रमथनाथ भट्टाचार्य ने सपादकजी को यह आश्वासन दिया था कि वे अच्छे लेखकों की एक टीम बनायेंगे। इसी सिलसिले में प्रमथ बाबू को अपने बाल्य मित्र शरत् की याद आयी। वास्तव में यह पत्र शरत् के लिए 'दिशा की खोज' प्रमाणित हुआ।

सब कुछ जल जाने के बावजूद शरत् निराश नहीं हुआ। पुन. स्मृतियों के सहारे 'चरित्रहीन' लिखना प्रारभ किया। 'भारती' में प्रकाशित मित्रों की रचनाएँ देखकर उसके मन में ललक उत्पन्न होती थी। जिन्हें कलम पकडकर उसने लिखना सिखाया, वे अब साहित्य में प्रतिष्ठित हो रहे थे। दूर मार्गों के देश

में उनकी रचनाओं की चर्चा हो रही थी। उसने निश्चय किया कि इस बार पूजा की छुट्टियों में कलकत्ता जाकर वह भी अपना भाग्य आजमायेगा। कलकत्ता में कुछ दिन रहने पर 'नारी का इतिहास' का मैटर पुनः तैयार कर सकता है।

इस निश्चय के बाद वह अक्टूबर, १९१२ को कलकत्ता रवाना हो गया। रंगून से चलते समय ही शरत् ने निश्चय किया था कि वह किसी के घर नहीं ठहरेगा। उसे 'नारी का इतिहास' लिखने के लिए बदनाम बस्ती में रहना पडेगा। एक तो संकोच के कारण लोग वहाँ आना पसंद नही करेगे, दूसरे, दिन के समय स्टडी करने का मौका मिलेगा।

हवडा के खुरुट रोड में आकर उसने डेरा जमाया, जहाँ लोग दिन के समय आने में हिचकते थे। यहाँ आने के बाद एक दिन उपेन्द्रनाथ गागुली के घर गया। उस वक्त उपेन्द्रनाथ घर पर नही थे। नौकर को एक पत्र देकर वह चला आया।

आगे की घटना उपेन्द्रनाथ के शब्दों में—"एक दिन शाम को घर वापस आने पर देखा कि मेरी गैरमौजूदगी मे एक संक्षिप्त पत्र शरत् लिखकर चला गया है। पत्र मे लिखा था—'प्रिय उपेन, कई दिन हुए मैं बर्मा से कलकत्ता आया हूँ। तुमसे मुलाकात करने आया था, भेट नहीं हुई। फिर किसी दिन आऊगा।—तुम्हारा शरत्।

पत्र पढकर प्रसन्न हुआ और दुखित भी। शरत् से मुलाकात होगी, इस बात की प्रसन्नता हुई, पर कैसे होगी, इस बात की चिता से नाराज भी हुआ। पत्र मे न तो इसका निर्देश था और न समय की सूचना। बहरहाल मैंने घर के नौकर तथा अपने परिवार के लोगो से कहा कि मेरी अनुपस्थिति में अगर वह आये तो उससे उसका पता अवश्य पूछ लेना। इस निर्देश का भी कोई असर नहीं हुआ। पहली बार की तरह इस बार भी वह बिना घर में प्रवेश किये, एक बच्चे को पत्र देकर चला गया। पत्र में लिखा था—'प्रिय उपेन, आज भी मुलाकात नहीं हो सकी। जल्द बर्मा वापस चला जाऊंगा। शायद मुलाकात नही होगी।—तुम्हारा शरत्।

अब मैं खिजला उठा। विचित्र आदमी है। हमेशा सनक में रहता है। जब कोई पता-ठिकाना दे तब मुलाकात भी हो। कलकत्ता आया है और उससे मुलाकात भी न हो, इस बात की कल्पना नहीं कर सकता। अब मैं बैठकर यह सोचने लगा कि कैसे उससे मुलाकात की जाय?

अचानक उसके मझले भाई प्रभास की याद आयी। इन दिनो वह स्वामी वेदानन्द के रूप में बेलुड़ मठ में रहता है। दूसरे दिन उसके यहां जाकर मैंने पूछा-'शरत् कलकत्ता आया है, सुना है?' उसने कहा-"सुना ही नही, जानता हूँ। दादा दो दिन तुम्हारे यहा गये थे, तुमसे मुलाकात नही हो सकी।' मैंने कहा—'तुम्हारे दादा की जैसी बुद्धि है, उससे कैसे मुलाकात होगी। पत्र लिखा, पर समय-दिन नहीं और न अपना पता लिखा। अगर तुझे उसका पता मालूम हो तो बता।"

प्रभास से पता और शरत् के ठहरने के स्थान का निर्देश लेकर दूसरे दिन खुरुट रोड स्थित एक भवन मे आया। उस वक्त वह अपने कमरे में बैठा न जाने क्या लिख रहा था। चारों ओर कागज और रंग-बिरंगे स्याही वाले फाउण्टेन पेन फैले हुए थे। मुझे देखते ही उसने चौंककर कहा—"अरे, तुम? कैसे यहाँ आ गये?"

मैंने कहा—"कैसे आया, यह तो बाद मे बताऊगा, 'फिर आऊंगा एक दिन' लिखकर कागज दे आये, पर उसमें दिन-समय नही लिखा। आखिर पत्र लिखने का यह कौन-सा तरीका है?"

हमारा यह विवाद थोडी देर मे समाप्त हो गया। मैंने देखा कि शरत् 'चरित्रहीन' का अष्टम या नवम परिच्छेद लिख रहा है। उसके यहां दो घंटा रहने के बाद वापस चला आया। आते समय 'चरित्रहीन' की पाण्डुलिपि जहां तक वह लिख चुका था, लेकर मैंने कहा—"परसो मेरे यहां आओ। दोपहर को मैं इन्तजार करूंगा।"

उसने कहा—"ठीक है, आऊंगा।" बाद मे मुझे सड़क तक ट्राम पर बैठाने आया था।

घर आकर एक ही बैठक में चरित्रहीन को पढ़ गया। खुशी से मन तृप्त हो गया। गजब की लेखनी और अपूर्व है रचनाभंगी। उस समय तक बंगाल के पाठक शरत् की प्रतिभा से अपरिचित थे। यद्यपि इसके पूर्व इसकी 'बड़ी दीदी' ने हलचल मचायी थी, परन्तु लम्बे समय तक पुनः कुछ न आने के कारण

लोग उस बात को भूल गये थे।

दूसरे दिन चरित्रहीन की पाण्डुलिपि लेकर मैं श्यामपुकुर स्थित रामधन मित्र की गली में, 'साहित्य' पत्रिका के सुयोग्य सपादक सुरेशचन्द्र समाजपति के घर आया। सुरेशचन्द्र की गणना उन दिनों प्रख्यात साहित्य-जौहरियों में होती थी। वे निर्भीक, तीक्ष्ण कटुभाषी समालोचक थे। उनकी प्रशंसा की आशा तथा निन्दा-भर्त्सना के आतंक से समस्त लेखक निरन्तर शंकित रहते थे। मैंने सोचा कि शरत की रचना की परख इनसे करवा लूं।

उद्विग्न भाव से उन्हे पाण्डुलिपि देते हुए मैंने कहा—"शरत्चन्द्र का प्रारंभ किया यह नवीनतम उपन्यास है। मुझे तो बहुत अच्छा लगा, कृपया एक बार आप इसे पढ़ने का कष्ट कीजिएगा।"

"कौन शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय?"

"बड़ी दीदी के लेखक।" इसके बाद मैंने पूर्ण विवरण दिया। उन्होंने कहा—"अच्छा, रख दो। कल किसी वक्त आकर पाण्डुलिपि ले जाना।"

दूसरे दिन मैं समाजपति के यहां हाजिर हुआ। उन्होने कहा—"अद्भुत प्रतिभावान लेखक हैं—शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय। बहुत सुन्दर है चरित्रहीन की पाण्डुलिपि। लेकिन इसके प्रकाशन से लोभ और भय दोनों ही हो रहा है। बहरहाल किसी दिन लेखक को मेरे पास ले आओ।"

उसी दिन तीसरे पहर आने का वायदा करके मैं खुशी से वापस चला आया और दोपहर को शरत् के यहा जाकर कहा—"समाजपति महाशय ने तुम्हें बुलाया है। चलो, चले।"

यह बात सुनते ही शरत् का मुँह सूख गया। उसने कहा—"क्यों? क्या मेरी पाण्डुलिपि उन्हे पढ़ाया था?"

"हाँ।"

चिन्तित भाव से उसने कहा—"यह काम अच्छा नहीं किया है। वे बहुत कडवे आदमी हैं। कुछ कडी बाते सुनायेंगे।"

वास्तविक घटना को छिपाकर मैंने कहा—"चलो, देखा जाय आखिर वे क्या कहते हैं, कम-से-कम सुन तो लिया जाय। जब तुमने लिखना प्रारभ किया है तब तो निन्दा-स्तुति सुननी पडेगी।"

श्री उपेन्द्रनाथ गांगुली ने यहा तक का विवरण तो ठीक लिखा है, इसके आगे की घटना का उन्होंने उल्लेख न करके अपनी प्रसन्नता जाहिर की है। इससे शरत् के स्वाभिमान की झलक नही मिलती और 'चरित्रहीन' उपन्यास के आतंक का विवरण नही मिलता।

वहाँ जाने पर समाजपति ने बडे आदर के साथ शरत् बाबू का स्वागत किया था। उन्होंने कहा—"आपकी रचना पढ़कर मैं मुग्ध हो उठा हूँ। यह नयी शैली में सिद्धहस्त लेखक की रचना है।"

शरत् ने कहा—"यह तो मामूली रचना है। आश्चर्य है कि आपको कैसे अच्छी लगी।"

"नही, नहीं। रचना मामूली नहीं है। आपकी लेखनी मे गजब का जादू है। यह रचना पाठकों को प्रभावित करेगी। आपकी रचना सरसरी तौर पर पढ़ने पर भी अन्त तक बिना पढ़े रहा नही गया।"

इसके बाद सुरेश बाबू ने उपेन बाबू से कहा—"चरित्रहीन" को साहित्य मे प्रकाशित करने की चर्चा कल तुमसे की थी। बाद में मेरा विचार बदल गया। साहित्य में इसका प्रकाशन नही हो सकता। अगर इसे अपनी पत्रिका में प्रकाशित करूंगा तो 'साहित्य' का भट्ठा बैठ जायगा। गोकि मैं साहित्यकारों को फ्री कापी भेजता हूँ, वे लोग छीना झपटी करके चरित्रहीन को पढ़ेंगे। लेकिन ग्राहक 'साहित्य' मंगाना बन्द कर देगे। पैसा खर्च करके जो लोग पत्र-पत्रिका खरीदते हैं, वे मेस की नौकरानी को हजम कर सकें, ऐसी पाचन-शक्ति उनकी नहीं है।"

शरत्चन्द्र ने मृदु स्वर में कहा—"उनकी पाचन-शक्ति कमजोर है या नही, इसकी परीक्षा के लिए मेस की एक नौकरानी चाहिए, सुरेश बाबू। बाजरे की रोटी हम पचा सकते हैं या नही, इस समस्या के समाधान के लिए पहले बाजरे की रोटी तैयार करनी होगी। इसके बाद उस रोटी को हमें खाना चाहिए।"

—आपकी युक्ति मे कोई त्रुटि नही है। आप शक्तिवान साहसी शिल्पी हैं, आपने उत्कृष्ट बाजरे की रोटी बनायी है। अगर हम अपनी परिपाक शक्ति की दुर्बलता का अनुमान करते हुए उस रोटी को खाने से डरें तो यह हमारे लिए कम दुर्भाग्य की बात नही है। मेरा तो यह कहना है कि जब आप बाजरे की

इतनी अच्छी रोटी बना सकते हैं तब क्यो नही गेहू के आटे से पूरी बनाते। इसे हम भरपेट खा लेगे।

—मगर इसके पहले आप बाजरे की रोटी खा चुके हैं।

—कब, कहाँ?

—कृष्णकान्त की वसीयत के रोहिणी के चरित्र से।

—बंकिमचन्द्र की रोहिणी चरित्र के साथ आपकी सावित्री के चरित्र मे थोड़ा प्रभेद है। पहली बात रोहिणी ब्रह्मानन्द की भतीजी है, समाज मे उसके लिए प्रतिष्ठा की कमी नही थी। उसका एक मात्र अपराध यह था कि विधवा होकर उसने गोविन्द लाल से प्रेम करना शुरू किया था। आपकी सावित्री के चरित्र की वैसी सामाजिक प्रतिष्ठा नही है। दूसरे रोहिणी और गोविन्द लाल के बीच प्रेम उत्पन्न करने के लिए लकडी-कोयले का प्रबंध करना पड़ा था। लज्जा और निराशा से मुक्ति पाने के लिए ही रोहिणी वारुणी तालाब मे डूबकर आत्महत्या का प्रयास करने गयी थी और अचानक गोविन्द लाल ने उसे बचा लिया था। रोहिणी गोविन्द लाल के प्रेम मे सामाजिक दृष्टि से एक कैफियत है। आपकी सावित्री और सतीश के प्रेम मे ऐसी कोई कैफियत नहीं है। एक घटना क्रम से, दूसरा इच्छा क्रम से है।''

इसी प्रकार के तर्क दोनों व्यक्तियो मे चलते रहे। बाद मे वर्षा के बारे मे बाते होने लगीं चलते समय पाण्डुलिपि वापस करते हुए सुरेश बाबू ने कहा—यह पाण्डुलिपि आपको इस शर्त पर वापस कर रहा हूँ कि शीघ्र ही आप मुझे अपनी कोई अन्य रचना देगे।''

शरत् बाबू ने हसकर कहा—''पहले पूरी तलने का अवसर दीजिए।''

''तलना शुरू कर दीजिए शरत् बाबू। देर मत करिये और न आलस्य। अगर आपके भंडार मे पूरी है तो बासी होने पर भी मैं लेने को तैयार हूँ।''

दीपावली के दिन शरत् बाबू अचानक सौरीन्द्र मोहन मुखर्जी के यहाँ पहुँचे। उस वक्त वहा फणीन्द्र पाल, गोलक, श्याम रतन और उपेन्द्रनाथ गागुली बैठे हुए थे। शरत् को देखते ही सभी लोगो ने आदर से स्वागत किया।

बातचीत के सिलसिले मे शरत् बाबू असत्य बात कह गये—''अब लिखने-पढ़ने का मन नही करता। ऐसे मुल्क मे चला गया हूँ जहा कमाने-धमाने में सारा समय गुजर जाता है। तुम लोगो की रचना 'साहित्य' तथा 'भारती' मे पढ़ता हूँ। अच्छा लगता है।''

सौरीन ने कहा—''तुमने लिखना बन्द क्यों कर दिया? समझ में नही आता। तुम अभी तक यह समझ नही सके हो कि तुम्हारे कारण बगला-साहित्य कितना समृद्ध होगा। 'बडी दीदी' के कारण हलचल मच गयी थी।''

इसके बाद जितनी घटनाए हुई थी, सारी बाते सौरीन ने सुनाईं।

बाद में शरत् ने कहा—''अरे भाई, जरा 'बड़ी दीदी' को पढ़कर सुनाओ। आखिर ऐसा क्या लिखा है जिसके कारण इतना तूफान आ गया। मुझे तो उसकी कहानी भी याद नही है।''

दीपावली का मौसम। बाहर गली मे लडके पटाखे छोड़ रहे थे। शरत्चन्द्र रह-रहकर झल्ला उठते थे। दो-तीन बार बोले—''सड़क पर इस तरह पटाखा बजाना उल्लूपना है।''

चौकी पर शरत् लेट गया। बोला—''तुम पढ़ो, मैं सोये-सोये सुनता रहूंगा।''

सौरीन कहानी पढ़ने लगा और रह-रहकर शरत् अभिभूत होने लगा। सहसा कह उठा—''जरा ठहरो।'' उसकी दोनो आखो मे आसू भर आये। बोला—''सचमुच इसे मैंने लिखा है? रचना कोई बुरी नही है। कहानी पढ़कर कलेजा हिल जा रही है। इस कहानी को मैंने लिखा है, आश्चर्य है!''

सौरीन ने कहा—''जो व्यक्ति इस तरह की रचना लिख सकता है, अगर वह लिखने से हाथ समेट ले तो उसके इस अपराध के लिए क्षमा नहीं किया जा सकता। अगर तुमने पुन: लिखना शुरू नहीं किया तो समझ लूंगा कि तुमने आत्महत्या कर ली है। रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि अगर तुमने लिखना प्रारंभ न किया तो निष्ठुरता होगी।''

'बडी दीदी' का वह प्रसंग जहा सुरेन्द्रनाथ बीमार होकर खाट पर पड़ा है और अपनी पत्नी शान्ति से कह रहा है, दीवार पर सुरेन्द्रनाथ की तस्वीर टगी है, उस ओर इशारा करते हुए कहा—शांति, क्या चार ब्राह्मणों के कधे पर उस फोटो को लादकर श्मशान में जला सकती हो? इस प्रसंग को पढ़ते ही शरत्

पागलों ५. तरह खाट पर उठ वैठा और सौरीन का हाथ पकडकर वोला—"चुप हो जाओ।"

शरत् . वाज भारी हो गयी थी। सौरीन ने देखा—शरत् की आंखों से आंसू वह रहे हैं। काफी देर चुप रहने के बाद शरत् ने कहा—"अव पढ़ो।"

पूरी कहानी समाप्त होने के वाद शरत् ने कहा—"वहुत सुन्दर लिखा है। हा .... लिखूंगा, जवकि तुम लोगों को यह विश्वास है कि मैं अच्छा लिख लेता हूँ।"

थोड़ी देर वाद सौरीन ने फणीन्द्रपाल का परिचय देते हुए कहा—"आप बी० ए० पास कर चुके हैं। सरकारी नौकरी मिल रही थी, उसे ठुकरा दिया। अव 'यमुना' नामक पत्रिका प्रकाशित करने जा रहे हैं। इनके पत्रिका में तुम्हें लिखना होगा।"

शरत् ने कहा—"जरूर लिखूगा, वशर्ते तुम सव लिखो यानी बूडी, सुरेन, पुंटू, तुम, तुम्हारी दीदी, उपेन आदि तव मैं भी लिखूगा।"

इसके वाद उन्होंने कहा—"एक महत्वपूर्ण कृति तैयार की थी—नारी का इतिहास। फुलिस्केप ५०० पृष्ठों की पाण्डुलिपि थी। मकान जल जाने के कारण वह जल गया। वह कहानी—उपन्यास से भी महत्वपूर्ण था। अनेक इतिहास, पुरातत्त्व तथा अनेक जिन्दगियों का अध्ययन करके लिखा था। उसके जल जाने से मेरा दिल टूट गया।"

—क्या कुछ भी याद नही है?

—हैं, थोडा-थोडा।

—जितना है, स्मृतियों के सहारे उसे लिख डालो।

—लिखूगा। एक उपन्यास लिख रहा हूँ। अभी तक चौथाई हिस्सा लिखा है। काफी वडा उपन्यास होगा। पढ़कर देखना चल सकता है या नहीं। गोकि अभी तक नायिका किरणमयी उपन्यास में नहीं आयी है। इस उपन्यास की नायिका किरणमयी है। उपन्यास के लिए एक नयी नायिका।

सौरीन ने कहा—"इस उपन्यास को ले आओ। 'भारती' में छापूगा। याद रखना कि 'भारती' का अधिकार सवसे ऊपर है। अगर 'यमुना' को दोगे तो काफी समय लग जायगा, क्योंकि उसका कलेवर छोटा है।"

'चरित्रहीन' की पाण्डुलिपि स्वय पढ़ने के वाद सौरीन ने उसे उसने श्रीमती स्वर्ण कुमारी देवी को पढ़ने के लिए दिया।

स्वर्ण कुमारी देवी ने कहा—"उपन्यास तो वहुत सुन्दर है। पता नही कितना वडा होगा। वहरहाल मैं इसके प्रकाशन के लिए एक सौ रुपये देने को तैयार हूँ।"

शरत् वावू ने कहा—"नहीं। 'भारती' में यह उपन्यास नहीं छपेगा, क्योंकि महिला द्वारा संपादित पत्र में 'चरित्रहीन' छापने से अप्रतिष्ठा होगी। जवकि नायिका अभी तक रंगमच पर नहीं आयी है।"

चरित्रहीन

'भारती' और 'साहित्य' पत्रिका में 'चरित्रहीन' नही छप रहा है सुनकर उपेन्द्र गांगुली तुरत यमुना कार्यालय पहुँचे। दरअसल वे इस तरह कोशिश-पैरवी करके स्वयं साहित्य में स्थापित होना चाहते थे। उन्हें यह ज्ञात था कि इन लोगों की अपेक्षा शरत् पर मेरा अधिकार अधिक है। जब वह वेसहारा था तब मैंने उसे आश्रय दिया, मेरे जीजा ने ही उसे बर्मा में सहारा दिया और मैं ही उसका सबसे बडा सहायक हूँ। इसके अलावा रिश्ते में मामा हूँ।

फणी बाबू को यह सब बातें उपेन्द्र से मालूम हो गयी थीं। इसके अलावा 'भारती' में प्रकाशित 'बडी दीदी' पढ़ने के बाद उन्हें शरत् की प्रतिभा का ज्ञान हो गया था।

उपेन्द्र ने कहा—"कल शाम को शरत् मेरे घर आ रहा है। तुम भी वहीं चले आना। वहीं इस बारे में वातचीत कर लेंगे।"

दूसरे दिन उपेन्द्र के घर बातचीत हुई। दोनों व्यक्तियों ने शरत् पर दबाव डाला कि 'चरित्रहीन' उपन्यास धारावाहिक रूप मे 'यमुना' को छापने दिया जाय। अगत्या शरत् राजी हो गया। उस दिन वहीं भोजन करके वह वापस चला आया।

दो दिन बाद एक झंझट हो गया। इन्ही दिनों 'गुरुदास चट्टोपाध्याय एण्ड संस' की ओर से 'भारतवर्ष' नामक पत्रिका के प्रकाशन का प्रयत्न चल रहा था। अपने मित्र प्रमथनाथ से शरत् ने 'चरित्रहीन' की चर्चा की थी। इस बात की चर्चा चलाने पर फणीन्द्रनाथ का मुँह सूख गया। 'यमुना' अभी तक खड़ी नहीं हुई थी और 'भारतवर्ष' एक बड़े पूंजीपति की पत्रिका थी।

सौरीन ने कहा—"यह गलत प्रक्रिया है। 'यमुना' में छपने का जब वायदा कर चुके हो तब उसे अन्यत्र देना उचित नहीं है। तुमने भरोसा दिया तो उसने 'यमुना' की पृष्ठ संख्या में वृद्धि की है। भारतवर्ष पूंजीपति का पत्र है। वे अपनी पत्रिका के लिए काफी रकम खर्च कर सकते हैं।"

शरत् ने कहा—"डरो मत। मैं पैसे का गुलाम नहीं हूं। अपनी रचनाओं का पारिश्रमिक लेने की प्रवृत्ति आगे होगी या नहीं, यह नहीं जानता, पर फिलहाल नहीं है। मैं 'यमुना' में लिखता रहूंगा, इस ओर से निश्चिन्त रहो। 'चरित्रहीन' प्रमथ ने पढ़ने के लिए मांगा है। अभी मैं नहीं दूंगा, क्योंकि असली नायिका जब उपन्यास में आयेगी तब उसे दूंगा। इस वक्त मैं इसे साथ ले जा रहा हूं ताकि आगे लिखना जारी रहे।"

सौरीन ने कहा—"एक बात कहना भूल गया था। फणी तुम्हारी 'बड़ी दीदी' को पुस्तकाकार रूप में छापना चाहता है। फायदे के लिए नहीं, यों ही। अगर तुम अनुमति दो तो वह छाप सकता है।"

शरत् ने कहा—"अच्छी बात है। मैं भी इस पुस्तक के लिए पुरस्कार या पारिश्रमिक लेना पसंद नहीं करूंगा। अगर कुछ लाभ हुआ तो फणी बाबू ले लें।"

इस घटना के कई दिनों बाद शरत् रंगून चला आया। जेटी तक सौरीन पहुँचाने आया था।

रंगून वापस आने के बाद शरत् नयी रचनाएं लिखने मे व्यस्त हो गया। इन दिनों की स्थिति के बारे में योगेन्द्र सरकार के शब्दों में—

"कलकत्ता से वापस आने पर शरत् बाबू ने मुझे ७-८ पुस्तकें भेंट कीं। सभी कथा-साहित्य की थी। बोले—"इन्हें बेंगल क्लब लाइब्रेरी में दे दीजियेगा। सभी पुस्तकें सौरीन्द्र मोहन मुखर्जी की लिखी हुई थीं।"

रंगून आकर वे 'रामेर सुमति' कहानी लिखने लगे। नित्य जितना लिखते थे, उसे आफिस में लाकर मुझे दिखाते थे और मैं अपना काम-काज छोड़कर पढ़ने लगता था। इस प्रकार ८-१० दिन में कहानी का आधा भाग लिखा गया। एक अंक के लायक उपयुक्त मैटर समझकर उन्होने 'यमुना' संपादक को भेज दिया। पत्र मे सूचित किया कि बाकी अंश अगले माह भेज देंगे।

पता नही क्यो मुझे यह कहानी बेहद पसंद आयी थी। आफिस मे चर्चा करने पर लोग मेरा मजाक उड़ाने लगे। केवल पोस्ट आफिस के विभूति बाबू ने शरत् बाबू की प्रतिभा पर आस्था प्रकट की। उन्होंने कहा—"शरत् बाबू के भीतर ऐसा कुछ है, इस बात का सदेह मुझे बहुत दिनो से रहा। मैं तुम्हारी बात पर विश्वास करता हूँ। वास्तव मे उनके चित्रो को ही देखकर समझ गया था कि यह आदमी कलाकार है।"

जो लोग 'रामेर सुमति' कहानी की मेरे द्वारा की गयी प्रशसा पर व्यग्य करते रहे, उन्ही लोगो ने आगे चलकर जब वह कहानी छपकर आयी तब प्रशसा की। उनमे से कई लोगों ने स्वीकार किया कि मैंने उत्तम चीज की प्रशसा की है।

लेकिन इस बीच एक विचित्र घटना हुई। 'साहित्य' पत्रिका में 'हरिचरन' तथा 'बाल्य स्मृति' नामक दो कहानियां छपीं जो हमे पसद नही आयी।

शरत् बाबू इन कहानियों के प्रकाशन से सख्त नाराज हो गये। उन्होने कहा—"'साहित्य' जैसी पत्रिका मे बचपन की लिखी कहानिया छपी है। पता नहीं, किसने मुझसे बिना आज्ञा लिए छपने भेज दिया। अभी तो चन्द्रनाथ, देवदास, काशीनाथ आदि हैं। इनमे चन्द्रनाथ मुझे अधिक पसद है। इसके अलावा हेनरी उड की 'इष्टलीन' का अनुवाद मैंने 'अभिमान' के नाम से किया है।"

इसी बीच 'यमुना' के तीन अंको मे 'बोझ' कहानी छप गयी। जब 'यमुना' और 'साहित्य' की प्रतिया

रंगून पहुची तव उन्होंने सुरेन्द्रनाथ और उपेन्द्रनाथ को कडा पत्र दिया। दरअसल उपेन्द्रनाथ सुरेश चन्द्र समाजपति को प्रसन्न कर 'साहित्य' मे स्वय अपनी प्रतिष्ठा बनाना चाहते थे। सुरेन्द्रनाथ को बहकाकर दोनो रचनाए ले जाकर उन्होने समाजपति को दे दिया था। इधर सौरीन्द्रनाथ ने 'यमुना' की प्रतिष्ठा बढाने के लिए दो कहानियां छाप दी। साथ ही प्रत्येक अक मे यह विज्ञापन छापने लगे कि शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय का महान उपन्यास 'चरित्रहीन' शीघ्र ही 'यमुना' मे धारावाहिक रूप में प्रकाशित होने जा रहा है।

यह सूचना पढ़ते ही प्रमथनाथ ने एक व्यग्यपूर्ण पत्र शरत् के नाम लिखा। इस पत्र को पढ़कर शरत् चिढ़ गया। एक तो 'साहित्य' के सपादक सुरेशचन्द्र समाजपति से तर्क-वितर्क हो गया था, दूसरे घनिष्ठ मित्र प्रमथ ने जली-कटी सुनायीं।

शरत् ने प्रत्युत्तर मे लिखा—"चरित्रहीन तुम्हे पढ़ने के लिए दे सकता हूं, पर छापने के लिए नही। यह उपन्यास एक 'चरित्रहीन' द्वारा लिखा चरित्रहीन है। तुम लोगो की रुचि मे बाधा पहुँचेगी जो एक अशोभनीय बात होगी। अगर मेरे बारे मे तुम लोगो की धारणा अच्छी हो और मेरी रचना छापना पसद करो तो जरूर दूगा, पर अभी नही।

एक बात बता दूं कि मुझसे अच्छा उपन्यास-कहानी रविबाबू के अलावा दूसरा कोई नहीं लिख सकता जिस दिन इस बात का ज्ञान हो जाय, उस दिन निबध, कहानी या उपन्यास के लिए अनुरोध करना। ४/४/१९१३"

इस पत्र को पाकर प्रमथ का मिजाज कुछ ठडा पड गया। लेखक के गर्व पर कुठाराघात करने का असर देखकर उन्होने नरम पत्र भेजा। प्रत्युत्तर मे शरत् ने लिखा—'तुम्हारा पत्र मिला। बहरहाल अब तक जितना लिखा है, पढ़ने के लिए भेजूगा। अगले सप्ताह की डाक मे तुम्हे मिल जायगा। पढने के बाद पाण्डुलिपि वापस कर देना। उसका कारण यह है कि इसके लिखने का ढंग तुम्हे पसंद नही आयेगा। पसद करोगे, इसमें भी मुझे सदेह है। अतएव इसे छापना मत। समाजपति महाशय ने बडे आग्रह से मांगा है, क्योंकि उन्हें पसद आ गया है। १७/४/१९१३ ई०

सुरेशचन्द्र समाजपति महाशय पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के नाती थे। लेकिन रूढ़ीवादी पाठकों के भय से पहले उन्हे यह उपन्यास छापने का साहस नही हुआ, इसीलिए उन्होंने इनकार कर दिया था। बाद मे जब 'यमुना' में जोरदार विज्ञापन छपते देखा तो उसे छापने को तैयार हो गये।

इसी बीच प्रमथनाथ का एक तीखा पत्र शरत् बाबू के पास आया—

२१ अप्रैल, १९१३

माई डियर शरत्,

मैं नित्य ही तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करता हूँ, पर हताश हो जाता हूं। तुम्हारे चरित्रहीन के लिए हम लोग जितना परेशान हो रहे हैं, उतना ही तुम निर्दय रूप मे उदासीन हो रहे हो।

प्रारंभ से ही तुमसे रचना ले लूगा, कहकर सभी के सामने डींग हांक चुका हूं, अगर उन्ही लोगो के सामने झूठा साबित होऊं तो कैसे इन लोगों को मुँह दिखाऊंगा? तुम्हारे स्नेह और प्रेम पर भरोसा करके मैंने डींग हांकी थी। क्या मैं गलत कह रहा हूँ?

यमुना संपादक फणीन्द्र बाबू कौन हैं, इन्हें मैं नही जानता। मगर उनका तुम पर मुझसे अधिक जोर हो तो उनके प्रति मन मे ईर्ष्या उत्पन्न हो रही है। बहरहाल 'यमुना' के लिए तुमने जो संकल्प किया है, उसमे बाधक बनना नही चाहता। मगर 'यमुना' के प्रेम के पीछे पुराने लोगो को भुला देना उचित नही है। मैं अपनी स्थिति पहले के पत्रों मे स्पष्ट कर चुका हूँ। मुझे 'चरित्रहीन' चाहिए। निश्चित रूप से। 'यमुना' इतनी छोटी पत्रिका है कि वह 'चरित्रहीन' को कायदे से प्रकाशित नही कर सकती। ऐसी हालत में मेरा आग्रह क्यो नहीं स्वीकार करोगे? .. .. प्रमथ।

इस पत्र को पाकर शरत् की स्थिति विचित्र हो गयी। मुजफ्फरपुर के प्रवासकाल मे प्रमथ उसे 'चरित्रहीन' लिखते देख चुका है, फिर एक बडी पत्रिका का व्यवस्थापक भी है।

इस बारे में उसने अपने २६ अप्रैल के पत्र मे उपेन्द्र गांगुली को लिखा—'भारतवर्ष' के लिए प्रमथ 'चरित्रहीन' बराबर माग रहा है। वह मेरा पुराना मित्र है। मेरे कारण उसने कई कथाकारो के उपन्यासो

को अस्वीकार कर चुका है। वही 'भारतवर्ष' का मुख्य कार्यकर्ता है। आजकल उस पर हरिदास और द्विजू बाबू दबाव डाल रहे हैं। इधर 'यमुना' में विज्ञापन छप रहा है। समाजपति रजिस्ट्री पर रजिस्ट्री भेज रहे हैं। क्या करूं समझ नही पाता। उधर प्रमथ इस बात का रोना रो रहा है कि मेरे कारण उसका मुँह दिखाना कठिन हो रहा है। मेरी अजीब हालत है।"

'चरित्रहीन' को पढ़ने के बाद द्विजेन्द्र लाल राय तथा हरिदास चटर्जी दोनो व्यक्तियो ने उसे छापना नापसंद किया। संपादक और प्रकाशक की अस्वीकृति के आगे प्रमथ बाबू की दाल नही गली।

इधर फणीन्द्रनाथ को यह ज्ञात हो गया था कि चरित्रहीन की पाण्डुलिपि 'भारतवर्ष' के पास आ गयी है। उसे इस बात का भय हुआ कि कहीं उसे लोग छापना स्वीकार न कर ले। वह बराबर सौरीन को तंग करने लगा। सौरीन शरत् से तगादा करने लगा। कहने का मतलब इस उपन्यास को लेकर अच्छा तमाशा हो गया। जबकि शरत् फणीन्द्र को अपने लिखे पत्रो मे बराबर आश्वासन देता रहा।

'भारतवर्ष' मे अस्वीकृत होने के बाद एक घटना और हो गयी। एक गोष्ठी में सौरीन की मुलाकात प्रमथ से हो गयी। छूटते ही सौरीन ने कहा—"आप शरत् को 'चरित्रहीन' क्यो नही वापस कर देते? मेरे पास शरत् का पत्र आया है कि आपसे पाण्डुलिपि वापस ले लू। उसने आपको भी पत्र लिखा है।"

सौरीन का उलाहना सुनते ही प्रमथ बाबू तुरत घर गये और 'चरित्रहीन' की पाण्डुलिपि लाकर वापस करते हुए उन्होने कहा—"द्विजू बाबू (द्विजेन्द्रलाल राय) ने कहा है कि यह अश्लील रचना है। किसी सभ्य पत्रिका में नही छप सकती। भद्र-समाज के लोग इसे नही पढ़ेगे।"

इतना सुनना था कि दूसरे ही दिन सारी बाते लिखकर सौरीन ने शरत् को पत्र दिया। पत्र के उत्तर मे द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों के बारे मे बहुत ही तीखी आलोचना करके शरत् ने पत्र भेजा जो आज तक प्रकाश मे नहीं आया, क्योंकि पत्र पढने के बाद फाड देने का निर्देश दिया गया था। स्वय प्रमथ ने जब एक पत्र मे यह सुझाव दिया कि इस उपन्यास को अपने नाम से नही, किसी दूसरे नाम से छपवाओ तब शरत् तिलमिला उठा। उसने लिखा—"तुमने इसे दूसरे नाम से छपवाने का जो सुझाव दिया है, इससे मुझे चोट पहुँची है। क्या मैं इतना हीन हूँ?"

... सुरेन का पत्र आया है कि हरिदास बाबू ने उन्हे बताया है—यह उपन्यास इतना इमारल है कि किसी भी पत्र में नही छप सकता। शायद बात सही हो। आखिर तुम लोग मेरे शत्रु नही हो जो मिथ्या दोषारोपण करोगे। मैंने तुम लोगों के विचार फणी को भेज दिया था, फिर भी वह उसे छापने पर तुला हुआ है। उसे यह विश्वास है कि मैं इमारल कुछ भी नही लिख सकता इसलिए मैं उसके अनुरोध को अस्वीकार नही कर सका। मैं अपने नाम की जरा भी चिंता नहीं करता।

एक बात और है। सावित्री को मेस की नौकरानी बनाकर नहीं रखा है। लोग पहले से ही उसे अश्रद्धा की दृष्टि से देखें, यह उपाय कर दिया है। इस तरह का नावेल न होने पर ग्राहक नही मिलते। भले ही लोग निन्दा करे, पर उसे पढ़ने के लिए उत्सुक रहेंगे।"

शरत् के साथ इसी प्रकार की एक और घटना हुई थी। इस घटना से यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन समाज कितना दकियानूसी विचारधारा का था।

सन् १९०६ में एक बार भागलपुर के मुन्सफ श्री ज्ञानचन्द्र बंद्योपाध्याय के सामने सुरेन्द्रनाथ गांगुली ने 'बड़ी दीदी' को पढ़कर सुनाया। ज्ञानचन्द्रजी 'प्रवासी' के मान्य लेखक थे। कहानी सुनकर वे मुग्ध होकर बोले—"मैं 'प्रवासी' के सपादक श्री रामानन्द बाबू से सिफारिश करूंगा कि इस उपन्यास को छापे।"

सुरेन्द्रनाथ ने प्रतिलिपि बनाकर उन्हे दे दी। 'प्रवासी' की ओर से पत्र आया कि रचना स्वीकृत है। बाद से वापस आ गयी। वह इसलिए कि उपन्यास में एक पात्री का नाम एलोकेशी था। केवल इस देहाती नाम के कारण रचना वापस आ गयी।

'यमुना' मे 'रामेर सुमति' (राम की सुमति) के छपते ही पुनः पाठको की दुनिया मे हलचल मच गयी। 'यमुना' जैसी अख्यात पत्रिका के ग्राहकों की सख्या ने तेजी से वृद्धि हो गयी। अगले अक में 'रामेर सुमति' का शेषांश और 'नारी का लेखन' नामक लेख छपा। इसके बाद क्रमश: 'कानकाटा' तथा 'नारी का मूल्य' नामक शोधपूर्ण वृहद् लेख छपा। लेकिन इस लेख मे शरत् ने अपना नाम न देकर अपनी बहन

अनिला का नाम दिया था।

इस लेख के कारण तत्कालीन विद्वानों में काफी हलचल मच गयी थी। समाज के कोढ़ पर ढके पर्दे को उन्होंने उधेड़ दिया था। जहां कुछ लोगों ने इस लेख की प्रशसा की, वही विभूति भूषण भट्ट ने सौरीन को सूचित किया—"शरत् दादा के 'नारी का मूल्य' ने परेशान कर दिया। स्वय महिला नाम से 'नारी का लेखन' लेख लिखता है। ऐसे शिखण्डी या मेघनाद की तरह आड में रहकर युद्ध करनेवालों से कैसे लडा जाय। कारण युद्ध में नारी, गाय और पीठ दिखानेवाले आश्रयार्थी से लडा नही जा सकता। एक ओर इस लेख का उत्तर नही दे पा रहा हूँ और भीष्म की तरह वाक्यवाण सहन भी नहीं हो रहा है। .... मैंने बूडी से कहा है कि इस स्त्री नामधारी उद्धत महापुरुष 'डान क्विकजोट' को उसके लेख का उत्तर दे।"

विभूति के इस पत्र को सौरीन्द्रनाथ ने तुरत शरत् के पास भेजा। प्रत्युत्तर में शरत् ने लिखा—"तुम लोगों ने 'नारी का मूल्य' लेख की अजस्र प्रशंसा की और दूसरी ओर पुंटू ने चाबुक लगाया है। अब आगे कोई मूल्य नहीं लिखूंगा। इस बारे में आगे जो कुछ कहना है, उसे मैं अपनी कहानियों, उपन्यासों और निबधों में कहूंगा। पुंटू को मैंने पत्र लिख दिया है कि बूडी इस बारे में कोई लेख न लिखे। अपने लेख का प्रतिवाद मुझसे बर्दाश्त नही होता। गाली जैसा लगता है। अगर मेरी रचना के बारे मे कुछ कहना है तो जबानी कहना। इससे यह सुविधा होगी कि हम परस्पर अपनी गलतियों को सुधार लेंगे। इससे वास्तव में उपकार होता है।"

'भारतवर्ष' मे 'चरित्रहीन' अस्वीकृत होने के कारण शरत् ने नाराज होकर प्रमथनाथ को एक पत्र में लिखा—" .... अगर धारावाहिक कोई उपन्यास अपनी पत्रिका में छापना तो उसमें संन्यासी, फन्नासी, जप-तप, कुण्डलिनी आदि रखने का प्रयत्न करना। इससे बाजार में नाम होगा। कथा के अन्त में दो-चार का मरना आवश्यक है (कम-से-कम दो-एक को जहर पीना चाहिए) या अचानक सभी पात्र एक जगह आकर मिल जाय। इस तरह का अन्त देखकर सभी पाठक प्रशंसा करेंगे। अगर यह न कर सको तो पकौडी-फुलौरी, मलगजा कैसे बनाया जाता है, उसमें क्या-क्या डाला जाता है, छापो। 'बंग दर्शन' में जब रवि बाबू का 'नौका डूबी' और 'आख की किरकिरी' उपन्यास छपते थे तब लोग उत्सुकता के साथ उसकी प्रतीक्षा करते थे। पत्रिका के आते ही घर में लोग छिना-झपटी करते थे। ...... तुमने लिखा है कि विधवा बिना कहानी नहीं जमती (मजाक किया है) शायद बात ठीक है। बंकिम बाबू जैसे सर्वश्रेष्ठ लेखक ने 'कृष्णकान्त की वसीयत' और 'विष वृक्ष' मे उसे हटा नही सके। लगता है, 'पथ निर्देश' कहानी अच्छी नहीं लगी। मेरा उपदेश है कि भविष्य में उपन्यास-कहानी पढ़ना बन्द कर दो।"

इस बात मे तनिक भी संदेह नही कि 'चरित्रहीन' उपन्यास को लेकर एक भयकर तूफान मचा था। 'यमुना' में धारावाहिक रूप में छपना प्रारंभ हुआ तो फणीन्द्रनाथ को भी तरह-तरह की शिकायतें सुनने को मिली। उन्होंने इस बारे मे एक पत्र शरत् को लिखा। प्रत्युत्तर में शरत् ने लिखा—"इमारल हो या मारल, पढ़ने के बाद पाठको को यह कहना ही पडेगा कि रचना जोरदार है। इसमें आपकी बदनामी क्यों होगी? बदनामी मेरी होगी। इसके अलावा मैं गीता का भाष्य नही लिख रहा हूँ। इसका नाम ही है—'चरित्रहीन'। पाठकों को पहले सूचित कर दिया कि यह 'सुनीति सचारिणी सभा' के लिए नही है और न स्कूलो के लिए पाठ्य पुस्तक।"

वंगीय साहित्य-सम्मेलन मे साहित्य सभापति ने कहा था—"आजकल साहित्य मे सती सावित्री नही, बल्कि मेस की नौकरानी सावित्री जन्म ले रही हैं। ऐसे वल्गर साहित्य से देश-समाज की हानि हो रही है।"

वास्तव में 'चरित्रहीन' को लेकर एक भयकर तूफान उन दिनों उठा था। पुस्तक के प्रकाशक की स्थिति भी चिन्तनीय हो गयी थी। इस बारे में स्वयं प्रकाशक श्री सुधीरचन्द्र सरकार ने लिखा है—

"चरित्रहीन के बारे में लोगों में कुछ गलतफहमियां हैं, इस विषय पर मैं कुछ कहना चाहता हूँ। सन् १९१३ (अक्टूबर या नवम्बर) से लेकर जनवरी १९१४ तक 'यमुना' पत्रिका मे, आशिक रूप मे चरित्रहीन उपन्यास प्रकाशित हुआ था। बाद में ग्रंथ के रूप मे इसका प्रकाशन ११ नवम्बर, सन् १९१७ ई० को हमने किया। जितना अश 'यमुना' में छपा था, उतना छापने में हमे दिक्कत नही हुई। बाकी अश प्रकाशित करने मे हमें छठी का दूध याद आ गया। शरत् बाबू उन दिनों हवडा में रहते थे।

प्रतिदिन मुझे कापी लेने के लिए उनके यहां जाना पडता था।"

... रचना लेने के लिए जो लोग उनके पास जाते थे, वे लोग जानते हैं कि उनसे लेख पाना कितना कठिन काम था। शरत् बाबू बहुत धीरे-धीरे लिखते थे। कभी-कभी मैं केवल एक स्लिप लेकर वापस आता था। इस प्रकार दो वर्ष मे 'चरित्रहीन' छापा गया था।

सन् १९१७ मे जब चरित्रहीन प्रकाशित हुआ तब उसकी कितनी माग थी, यह प्रथम दिन ज्ञात हो गया। उस दिन साढे चार सौ कापी बिक गयी।

शरत्चन्द्र के युग में कट्टरपंथियों ने उनकी रचनाओ को अश्लील करार दिया और लोगो को पढ़ने से मना किया। आज की तुलना मे गौर करे तो ज्ञात होगा कि अब अश्लीलता कहा तक पहुँच गयी है।

हम लोगो के यहाँ से 'चरित्रहीन' प्रकाशित होने के कारण हमारी संस्था[1] अश्लील पुस्तको का प्रकाशक वन गयी। उन दिनो कई अश्लील पुस्तके हमारे यहा से प्रकाशित हुई थी। पंकतिलक, प्राचीर और प्रान्तर, वेद और शुभा। उन दिनो इन पुस्तको को कालेज, स्कूल और लाइब्रेरी मे नही रखी जाती थी।"

स्वयं शरत् बाबू ने स्वीकार किया है कि इस पुस्तक के कारण एक अर्से तक मेरी अप्रतिष्ठा थी। लोग मुझे सभा-समितियो मे ही नही, बल्कि अपने घर मे भी नही बुलाते थे।

उन दिनो शरत् बाबू की कितनी अप्रतिष्ठा थी जिसका उदाहरण एक घटना से मिल जाती है। शरत् बाबू के युग मे 'विदूषक' पत्र के सपादक, प्रकाशक, मुद्रक और हाकर (पत्र-विक्रेता) थे—श्री शरत्चन्द्र पण्डित। अत्यन्त स्वाभिमानी, सर्वजन आदृत और क्रांतिकारी। एक गोष्ठी मे शरत्चन्द्रजी बैठे थे। इतने मे शरत्चन्द्र पण्डित आये तो उन्होने कहा—"आइये विदूषक शरत् चन्द्रजी।"

छूटते ही शरत्चन्द्र पण्डित ने कहा—"क्या हालचाल है चरित्रहीन शरत्चन्द्रजी।"

इस प्रकार की कई घटनाएँ हुई थी। शरत् बाबू का नाम लेने पर लोग पूछते—"कौन शरत्चन्द्र? चरित्रहीन या पण्डित?"

नीड़ का निर्माण

शरत्चन्द्र ने अपना विवाह शांति देवी से किया था और उनसे एक पुत्र भी हुआ था। यह विवाह किस ढग से हुआ, कैसे हुआ? इन प्रश्नो का उत्तर खोजना बेकार था, क्योंकि शांति देवी का निधन हो गया था। किंतु शरत् बाबू की द्वितीय पत्नी के बारे मे अब सही तथ्य सामने आया है, जो अब तक अप्रकाशित रही। इस रहस्य को शरत् बाबू की शिष्या श्रीमती राधारानी देवी ने हाल मे ही प्रकट किया है। अब तक इस रहस्य को क्यो छिपाया गया था, उसके कारणो पर भी प्रकाश डाला गया है।

श्रद्धेया श्रीमती राधारानी देवी के पति आदरणीय श्री नरेन्द्रदेव ने भी शरत् बाबू की जीवनी लिखी है। वे शरत् बाबू के विवाहित जीवन की घटनाओ से परिचित थे, अतएव उस रहस्य को उन्होने प्रकट न करके अपने ढंग से लिखा। इस रहस्य को न केवल नरेन्द्र देव बल्कि शरत् बाबू के परिवार के सदस्य; 'गुरुदास चटर्जी एण्ड सस' के मालिक हरिदास चटर्जी तथा मित्रो मे सौरीन्द्र मोहन मुखोपाध्याय, प्रमथनाथ भट्टाचार्य आदि भी जानते थे।

अब क्रमश. यहाँ सभी के विचारो का उल्लेख कर रहा हूँ। सर्व प्रथम गिरीन्द्र सरकार को लीजिए। उन्होंने लिखा है—

"इस घटना (शान्ति देवी के निधन से मतलब है) के बाद शरत्चन्द्र के जीवन मे अनेक परिवर्तन हुए थे। वे उस गदी बस्ती से हटकर शहर मे कई मित्रो के पास आकर रहने लगे। दो साल बाद छुट्टी लेकर वे कलकत्ता गये और द्वितीय बार विवाह कर सपत्नीक रगून आकर मेरे घर के पास ३६ नम्बर की गली मे, किराये के मकान में रहने लगे। उन्हे कोई बच्चा नही हुआ था।"

[1] एम सी सरकार एण्ड सन्स

गिरीन्द्र बाबू के बयान से साफ जाहिर है कि शरत् बाबू का दूसरा विवाह बर्मा में नही हुआ था, बल्कि सन् १९१२ मे जब वे कलकत्ता आये थे तब सपत्नीक रगून आये। उस उक्त अपना पुराना निवास बदलकर सरकार के घर के पास नये मकान में रहने लगे।

शरत् बाबू के पत्रो का प्रकाशन हुआ है। उसमे मकान नं० ५४ तथा गली न० ३६ का उल्लेख है।

श्री नरेन्द्र देव ने इस विवाह के बारे मे लिखा है—

"बीच-बीच मे कुछ दिनो के लिए बगाल मे आकर अपने भाई-बहनो का हालचाल पूछते, आत्मीय-स्वजनो से मिलते और फिर वापस चले जाते थे। इसी प्रकार के आवागमन काल में हिरण्मयी देवी नामक एक असहाय दरिद्र ब्राह्मण रमणी को उन्होने दूसरी बार 'संगिनी' के रूप में ग्रहण किया था। आप मेदिनीपुर निवासी (स्व०) कृष्णदास अधिकारी की कन्या हैं।"

श्री नरेन्द्र देव भी गिरीन्द्र बाबू की बातो का समर्थन करते हैं और पत्नी तथा श्वशुर का नाम भी बता देते हैं। अन्तर इतना है कि 'पत्नी' शब्द का प्रयोग न करके उन्होने 'संगिनी' लिखा हे। 'संगिनी' का एक अर्थ पत्नी भी होता है।

श्री ब्रजेन्द्रनाथ बद्योपाध्याय ने अपनी पुस्तकों मे 'जीवन संगिनी' शब्द लिखा है। पत्नी शब्द का प्रयोग नही किया है।

सर्वश्री योगेन्द्रनाथ सरकार, सतीशचन्द्र दास ने इनकी पत्नी का कोई उल्लेख ही नही किया है। अन्य अधिकाश लेखको ने हिरण्मयी देवी के बयान के आधार पर यह लिखा है कि उनका विवाह रगून मे हुआ है जबकि यह बात गलत है। उनके विवाह के बारे मे लोगो ने इतने सवाल पूछे हैं कि सन् १९५० के बाद वे किसी भी बाहरी व्यक्ति से बात करना दूर मिलती भी नही थी। इनमें एक भुक्तभोगी इन पंक्तियों का लेखक भी है।

श्री गोपालचन्द्र राय को शरत्-विशेषज्ञ माना जाता है। आपने शरत् बाबू के बारे मे चार पुस्तकें लिखी हैं। उनके बारे मे काफी जाँच-पडताल की है। लोगो से मिले हैं। हिरण्मयी देवी की जबानी जो तथ्य मिले, उसे आपने वेदवाक्य समझकर लिखा। बात ठीक भी है। अगर कोई अपने बारे मे झूठा बयान दे तो कोई लेखक क्या कर सकता है।

बेहाला के जमीदार ने स्वय हिरणमयी देवी से उनके विवाह के बारे मे प्रश्न किया था। इस बारे में उन्होने 'वसुमती' (१९५४-अक्टूबर) मे लिखा है—'पता नही किस दुर्बल क्षण मे एक असगत प्रश्न मैंने भाभीजी से किया—'भाभीजी, आपका विवाह कहाँ हुआ था? रगून मे या यहाँ? इस बारे मे पाठको को यह बता दूं कि एक अर्सा पहले मैंने यही प्रश्न दादा से किया था। उस वक्त उन्होने जवाब दिया था कि जब वे मेदिनीपुर थे तब एक अति दरिद्र ब्राह्मण की एक असुन्दरी अरक्षणीया कन्या से उन्होने विवाह कर के उस ब्राह्मण को कन्यादाय से मुक्त किया था। इनसे अधिक मैंने उनसे कोई प्रश्न नही किया था।

भाभीजी ने कहा—वे मेदिनीपुर की लडकी हैं और दादा ने वही विवाह किया था। इसके बाद उन्हे साथ लेकर रगून गये थे। मेरे पिता बडे गरीब थे। तुम्हारे दादा विवाह के बाद रगून से प्रति माह मनिआर्डर भेजकर मेरे पिताजी की सहायता करते थे। मै पढ़ी-लिखी नही हूँ। मनिआर्डर कूपन पर पिताजी का हस्ताक्षर वापस जाता तो सोचती कि वे अच्छी तरह हैं। काफी दिनो तक यही क्रम चलता रहा। बाद मे एक दिन मनिआर्डर वापस आया तब पता लगा कि पिताजी इस ससार मे नही हैं। मुझे अच्छी तरह याद है, उस दिन मैं बहुत देर तक रोती रही। चौदह वर्ष की उम्र मे तुम्हारे दादा विवाह करके मुझे लाये थे। एक लम्बे अर्से तक पिताजी को नही देखा था। केवल कूपन पर पिताजी के हस्ताक्षर को देखती थी। बार-बार रसीद देखती और सोचती थी कि मेरे पिताजी अच्छी तरह हैं। मुझे अति प्रसन्नता होती थी। एक दिन वह भी समाप्त हो गया।"

न केवल गोपालचन्द्र राय, बल्कि अन्य कई लोगो को हिरण्मयी देवी ने अपना बयान गलत दिया था। शरत् बाबू और उनके घर वाले यह अनुभव कर चुके थे कि इस मामले मे निस्सदेह लोगो मे उत्सुकता होगी और वे पूछताछ करेगे। इस सत्य को छिपाने के लिए शरत् बाबू ने निस्सदेह रूप से यह कह दिया होगा कि अब अगर कोई पूछे तो तुम यही कहना—हमारा विवाह रगून मे हुआ था।

हिरण्मयी अत्यन्त सीधी और सरल प्रकृति की महिला थी। कही किसी के घर वे सत्य बात कहें न

बैठे, इसलिए सभा-सोसायटी दूर की बात, शरत् बाबू उन्हे किसी के घर जाने नही देते थे। विवाह या अन्य किसी उत्सव मे वे नही जाती थी। शरत् बाबू उन्हे अपने साथ लेकर कही नही जाते थे। इस ओर से सर्वदा सावधान रहते थे। उन्हे यह ज्ञात था कि कलकत्ता के अधिकाश मित्रो को असली रहस्य मालूम है।

बर्मा से जब वे हमेशा के लिए वापस आये तब हवडा स्थित बाजे शिवपुर मुहल्ले में किराये के एक मकान मे रहने लगे। यह अप्रैल, १९१६ ई० की बात है। उन्ही दिनो 'भारतवर्ष' मे उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'श्रीकान्त' धारावाहिक रूप मे छप रहा था जिसमें राजलक्ष्मी का जिक्र था। इधर तब तक हिरण्मयी के बारे मे यह अफवाह फैल गयी थी कि वे शरत् बाबू की विवाहित पत्नी नही, उपपत्नी है।

राजलक्ष्मी ही शरत् बाबू की पत्नी है जो पटना की प्रसिद्ध बाईजी हैं। बगाल के गावो मे कट्टरता अधिक है। इस अफवाह को हवा देने मे वहा के जमीदार मोहिनी मोहन घोषाल का विशेष हाथ रहा।

सामताबेडा मे कई बार जाने का अवसर मिला है। सन् १९७६ मे जब मै गले के कैंसर से पीडित था तब वहा जाने पर मेरी मुलाकात ऐसे युवक से हुई जो जबरन मुझे पकडकर अपने घर भोजन कराने ले गया। उसने भी बताया कि मोहिनी मोहन घोषाल ने यहा इस बात को प्रचारित किया था कि शरत् बाबू की पत्नी राजलक्ष्मी ही है जिसे हिरण्मयी के नाम से प्रचारित कर रहे हैं। यकीन न हो तो 'भारतवर्ष' पत्रिका पढ़ो। उसमे साफ लिखा है। वे ब्राह्मण की लडकी नही है।"

इस प्रचार का इतना व्यापक असर हुआ कि उन्हें जातिच्युत कर दिया गया। केवल यही नही, शरत् बाबू जब सामताबेडा मे निजी मकान बनवाकर रहने लगे तब भी समाजपतियो ने उन्हे स्वीकार नही किया था। अक्सर उनके मित्र इन झूठी अफवाहो का प्रतिवाद करने को कहते तो वे जवाब देते—"मुझे क्या गरज पडी है। यह मेरी जिम्मेदारी नही। जो लोग इस तरह की बातो का प्रचार कर रहे हैं, उनसे जाकर कहिये। मैं अपने विगत जीवन के प्रति उदासीन हूँ। मैं जानता हूँ कि इस बारे मे लोगो की धारणा, विचार विचित्र हैं, पर मेरे निर्विकार आलस्य को यह सब बाते विचलित नही कर सकती।"

इसमे सदेह नही कि शरत् बाबू अपने बारे में प्रचलित अनेक बातो का प्रतिवाद नही करते थे। अपनी प्रशसा और अप्रतिष्ठा वाली बातो पर तनिक भी ध्यान नही देते थे। लेकिन यह सत्य है कि गाव के समाजपतियो ने उनका एक अर्से तक बहिष्कार कर रखा था। यहा तक कि उनकी सगी बहन अनिला देवी भी हिरण्मयी देवी को 'विवाहिता भाभी' नही मानती थी।

शरत्चन्द्र को प्रति माह घर चलाने के लिए १२० रुपये दिये जायेंगे, इसका लिखित आश्वासन देने पर वे बर्मा की नौकरी छोडकर यहां चले आये थे। शरत्चन्द्र संबंधी लिखित अनेक पुस्तको में इस बात का जिक्र नहीं है जबकि शरत्चन्द्र स्वदेश लौटने का यही प्रधान तथ्य है। 'शरत्चन्द्र के पत्र' नामक पुस्तक में इस बात के कई प्रमाण मिल सकते हैं।

'गुरुदास चटर्जी एण्ड संस' के स्वामी थे—श्री हरिदास चट्टोपाध्याय। हरिदास चटर्जी के पुत्र श्री सरोज कुमार चटर्जी ने श्रीमती राधारानी देवी के कथन का समर्थन करते हुए लिखा है—

"गुरुदास चटर्जी एण्ड सस के अन्यतम स्वत्वाधिकारी तथा 'भारतवर्ष' मासिक पत्रिका के प्रकाशक तथा स्वत्वाधिकारी अपने पिता स्वर्गीय हरिदास चटर्जी की जबानी लम्बे अर्से तक मैं यह सुनता रहा कि हिरण्मयी देवी शरत्चन्द की विवाहिता पत्नी नहीं थी। इस बारे मे पिताजी ने विशद रूप मे बताया था—अपने अंतरग मित्र प्रमथनाथ भट्टाचार्य को जो शरत्चन्द्र के भी घनिष्ठ मित्र थे।

प्रमथ बाबू की सहायता से मेरे पिता के लिए यह सभव हुआ कि शरत्चन्द्र को बर्मा से यहाँ स्थायी रूप मे रहने के लिए बुलाया गया। प्रमथ बाबू ने ही पिताजी को सलाह दी कि उनके कर्ज तथा जहाज के किराये की रकम भेज दी जाय। शरत्चन्द्र को बार-बार चले आने की द्विधा के सशय को दूर करने मे प्रमथ बाबू सहायक हुए थे। इस बारे में हुई चर्चा तथा सभी तर्क-वितर्कों को मैं सुनता आया हूँ।

मैं बराबर गुरुदास चटर्जी एण्ड संस की दुकान पर पिताजी की बगल में बैठा रहता था। श्री गोपालचन्द्र राय जिन दिनो 'भारतवर्ष' कार्यालय मे नौकरी करते थे, उन दिनो शरत् बाबू का स्वर्गवास हो गया था।

श्रीमती राधारानी देवी के प्रति।

हिरण्मयी देवी कम उम्र मे विधवा होकर मेदिनीपुर के साधारण गांव से कलकत्ता आयी थीं। सन् १९१२ में जब शरत्चन्द्र छुट्टी लेकर कलकत्ता आये थे तब मुक्ताराम स्ट्रीट में हिरण्मयी देवी से परिचय हुआ था। बर्मा में उनकी गृहस्थी चलाने लायक सेवा परायण महिला की कमी होने के कारण, वे इस असहाय हिरण्मयी देवी को, बर्मा जाते समय अपने साथ ले गये थे। इस वारे में प्रमथ वावू ने स्पष्ट रूप से सारी वाते मेरे पिताजी को बतायी थी। शरत्चन्द्र ने इस वारे में कभी भी मेरे पिता के निकट प्रतिवाद नही किया था, वल्कि भविष्य मे, अपनी गैर मौजूदगी में हिरण्मयी देवी के लिए कौन-सी व्यवस्था की जाय, इस वारे में परामर्श करते थे। पिताजी के परामर्शानुसार अपने जीवितकाल मे कई पुस्तकों का अधिकार हिरण्मयी देवी को दे दिया गया था। उन पुस्तकों की बिक्री का हिसाव अलग से हिरण्मयी देवी के खाते में लिखा जाता था और अलग से ही हिरण्मयी देवी के नाम भेजा जाता था। यह सब शरत्चन्द्र के जीवित काल मे ही होता था।

शरत्चन्द्र को इस वात की चिता सताती थी कि उनके निधन के पश्चात् जो लोग उनके कानूनी-उत्तराधिकारी हैं, वे लोग हिरण्मयी देवी को निराश्रिता वना सकते हैं। उनके निधन के पश्चात् हिरण्मयी देवी को किसी के आश्रय मे रहने के लिए मजबूर न होना पडे, इस वारे मे वे जिन लोगों से सलाह करते थे, उन लोगो को मैं जानता हूँ। इनमे मेरे पिता हरिदास चट्टोपाध्याय तथा एटर्नी निर्मलचन्द्र चन्द्र प्रधान थे। स्वर्गीय जलधर सेन और कवि नरेन्द्र देव को इस वारे मे चर्चा करते और सलाह देते देख चुका हूँ। ये लोग भीतरी वातो से परिचित थे, पर वे प्रकट रूप से कभी इस विषय की चर्चा नही करते थे।

कानूनी सलाहकार निर्मलचन्द्र ने शरत् वावू को यह सलाह दी थी कि वे अपनी सारी-सम्पत्ति हिरण्मयी देवी के नाम अपने जीवितकाल मे वसीयत कर दे। इससे यह लाभ होगा कि कोई कभी उन्हें चोट नही पहुँचा सकेगा। लेकिन वसीयत में 'वाइफ' शब्द लिखना आवश्यक होगा, वर्ना अगर किसी ने आपत्ति दाखिल की तो वसीयत वेकार हो जायगी। वह इसलिए कि हिरण्मयी की ओर से लडनेवाला कोई भी व्यक्ति उस वक्त नही था। वे स्वय डरपोक और अनभिज्ञ स्वभाव के थे।

शरत्चन्द्र को मैरेज रजिस्ट्रेशन की सलाह, चुपचाप करने के लिए निर्मल चन्द्र चन्द्र और मेरे पिता देते थे, यह मेरे सामने की वात है। निर्मलचन्द्र चन्द्र ने यह भी कहा था—जीवनकाल मे उत्तराधिकारिणी हिरण्मयी देवी शरत्चन्द्र के कनिष्ठ भ्राता प्रकाशचन्द्र को पावर आव एटर्नी देगे, फलस्वरूप सम्पत्ति और रुपये का हिसाव प्रकाशचन्द्र के पास पहुंचेगा, तब वे हिरण्मयी देवी के अधिकार या अनधिकार का झगडा खडा नही करेगे। ये लोग न तो सम्पत्ति नष्ट कर सकेगे और न किसी को दान दे सकेगे। हिरण्मयी देवी ठीक से रकम प्राप्त कर रही है या नहीं, इस ओर प्रकाशक और एटर्नी वरावर ध्यान देते रहेगे।

शरत्चन्द्र के विल मे 'वाइफ' शब्द को लेकर काफी वहस होते सुना था। निर्मलचन्द्र चन्द्र विल मे उस शब्द को लिख चुके थे और लिखना पडेगा, यह भी कहा था। अगर इस शब्द को न लिखा गया और किसी ने वसीयत पर आपत्ति की तो वह रद्द हो जायेगी। यह सलाह इसलिए दी गयी, क्योंकि शरत् वावू के सभी आत्मीय जन यह जानते थे कि हिरण्मयी विवाहिता नही हैं।

शरत्चन्द्र के निर्देशानुसार हिरण्मयी देवी के पिता को मेदिनीपुर गाँव मे, हमारी प्रकाशन संस्था की ओर से कुछ रुपये मासिक सहायता के रूप भेजी जाती थी जो शरत्चन्द्र के हिसाव से काट लिया जाता था।"

शरत् वावू ने वास्तव मे विवाह किया था या नही इस वारे मे श्रीमती राधारानी देवी ने विस्तार से लिखा है। शरत् वावू का कलकत्ते वाला मकान इन लोगो के घर के पास था जहा अक्सर जाकर वे अड्डा जमाते थे। श्रीमती राधारानी विधवा थी और नरेन्द्र देव को प्यार करती थी। इसकी चर्चा शरत् वावू से करने पर उन्होने आपस मे विवाह करने की सलाह दी और इनके लिए स्वय उन्होने आगे वढकर प्रयत्न किया था। दोनो पति-पत्नी शरत् वावू के प्रति असीम श्रद्धा रखते थे और गुरु तरह मानते थे।

शरत् वावू अपने जीवन के अनुभव तथा साहित्य के वारे में इनके यहा आकर वरावर चर्चा करते थे। श्रीमती राधारानी ने शरत् वावू की अन्तिम रचना 'शेषेर परिचय' पूर्ण किया है, क्योंकि आगे वे क्या लिखेंगे और किसका किस रूप मे चित्रण होगा, इसकी चर्चा करते थे। एक प्रकार से दोनो पति-पत्नी

शरत् बाबू के अन्तरग थे और इस बात को तत्कालीन साहित्यिक ही नही, वर्तमान समय के अधिकांश लेखक जानते हैं। अपने गुरु तथा एक प्रतिभावान लेखक के प्रति कोई कुरुचि पूर्ण बाते नही लिखेगा।"

श्री गोपाल चन्द्र राय ने अपने तर्कों तथा प्राप्त मैटरो के आधार पर शरत् बाबू की जीवनी तैयार की है। मैंने आगे चर्चा की और पुन. उसकी पुनरावृत्ति कर रहा हूँ कि भागलपुर की यात्रा किये बिना ही उन्होने बहुत-सी बातें लिखी हैं। शरत् बाबू को सत्यनिष्ठ, महान् व्यक्तित्व वाला व्यक्ति बनाने की जिद्द मे उन्होने गलत तर्को का सहारा लिया है।

उदाहरण के लिए मुजफ्फरपुर मे किस तरह की जिन्दगी गुजारते थे, इसका जिक्र कही नहीं है। जो है, वह केवल श्रीमती अनुरूपा देवी का वर्णन है। बाकी बाते सुनी सुनाई हैं। मुजफ्फरपुर के बारे मे, वह भी सुनी सुनाई विवरण श्री राजेश्वर प्रसाद नारायण सिह ने प्रस्तुत किया है। जब इन घटनाओ की चर्चा मैंने उनसे की तब वे मेरे साथ नेशनल लाइब्रेरी आये। पुस्तक निकालकर मैंने हिन्दी मे सारा विवरण सुनाया। वे इतने उत्तेजित हो उठे कि तुरत बोले—"मैं इस लेख का 'कोचू काटा' (छीछालेदर) करूगा।" लेकिन वे ऐसा नही कर सके। कारण उनके पास कोई तथ्य नही था। आज भी भागलपुर तथा मुजफ्फरपुर मे ऐसे लोग हैं जो उनका नाम लेने पर नाक सिकोडते हैं। वे ऐसा क्यों करते हैं, इसे स्पष्ट नही करते।

श्री मती राधारानी देवी ने नरेन्द्र देव तथा ब्रजेन्द्रनाथ वर्णित संगिनी, जीवन संगिनी के बारे मे तर्क पेश करते हुए लिखा है—'तत्कालीन बंगाली-समाज के लिए यह भेद खोलने मे कानूनन अडचन थी। उन दिनो हिरण्मयी देवी जीवित थी। इस असामाजिक सम्पर्क के बारे मे उच्चस्वर मे प्रमाणित करते हुए लिखने पर शरत्चन्द्र की वसीयत के पक्ष मे तथा हिरण्मयी देवी की सामाजिक अवस्थिति के बारे मे यथेष्ट हानि होती, इसीलिए इन लोगो ने सप्रमाण कुछ नही लिखा। गोकि उनके सभी इष्ट-मित्र इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि हिरण्मयी के साथ उनका विधिवत विवाह नही हुआ है। गोपाल बाबू (गोपालचन्द्र राय) को शायद यह नही मालूम है कि किसी भी दिन अनिला देवी ने हिरण्मयी देवी का स्पर्श किया हुआ अन्न नही खाया है। इस बात के साक्षी आज भी मौजूद हैं। अब वे इस सत्य को अस्वीकार कर दे तो मैं लाचार हूँ।

हिरण्मयी को असुविधा हो सकती है, इसी भय के कारण ब्रजेन बाबू और नरेन्द्र देव ने उन दिनो सप्रमाण स्पष्ट रूप से हिरण्मयी को अपरिणीता नही लिख सके। कही इसी आधार पर वे सम्पत्ति से वंचित न हो जाये। उन्हे यह भी मालूम था आगे कभी न कभी यह सत्य प्रकट हो ही जायगा।

गोपाल बाबू ने अपने तर्कों के द्वारा पत्नी घोषित किया है, ठीक है। क्योंकि उस समय सही बात लिखने पर—लोग यह सोचते कि एक अपरिणीता के साथ वे अपनी जिन्दगी गुजार गये। शायद लोगों के मन मे घृणा होती। इस बात को बचाकर गोपाल बाबू उन्हे श्रद्धेय बना गये हैं।

क्या कभी किसी ने शरत्चन्द्र की जबानी यह सुना है—मैंने आनुष्ठानिक विवाह किया है? मैं इस बात को अच्छी तरह जानती हूँ कि कभी किसी के सामने उन्होंने इस बात की चर्चा नही की है? इस ओर से वे सतर्कता बरतते रहे।

उनका बर्मा मे विवाह हुआ था और एक बच्चा भी था, इसका प्रचार हुआ था और शरत्चन्द्र ने इस बात को कहा भी था। शरत्चन्द्र के निधन के बाद जब नरेन्द्र देव पुस्तक लिखने लगे तब वे द्विधाग्रस्त हो गये। इस समस्या के बारे मे जलधर बाबू औ हरिदास बाबू के साथ परामर्श करने लगे। इसके बाद शरत्चन्द्र के छोटे भाई प्रकाशचन्द्र से सलाह की गयी कि इस तथ्य को पुस्तक में दिया जाय या नहीं। प्रकाश बाबू इस सत्य से परिचित थे। संतान और शांति देवी की मृत्यु प्लेग मे हुई थी, इस बात को प्रकाश बाबू, सुरेन्द्रनाथ गगोपाध्याय आदि लोग जानते थे।

प्रकाश बाबू ने कहा था—"यह बाते आगे चलकर गायब हो जायगी, आप इसे जरूर लिखिये। मैं इस तथ्य को जानता हूँ। मैं स्वय आपकी पुस्तक मे यह बात अपने हाथ से लिख दूगा।"

उन्होंने आगे नरेन्द्र देव की पुस्तक मे लिखा था—"नरेन्द्र बाबू हमारे परिवार के पुराने मित्र हैं। दादा की जो संक्षिप्त जीवनी इन्होने लिखी है, उसे मैं पढ चुका हूँ। इसमे कही भी असत्य या अतिरंजन नही है।" हस्ताक्षर—प्रकाशचन्द्र चट्टोपाध्याय।

जब यह प्रसग लिखा जा रहा था तब प्रकाश बाबू ने कहा था—"उन्होंने कभी विवाह नही किया था, वे वैचलर थे, इस बात को आप सभी लोग अच्छी तरह से जानते हैं। लिखित रूप में वे विवाहित थे, इस बात का प्रचार करना मिथ्याचार होगा जबकि वे विवाहित नही थे, यह बात हम किसी भी रूप मे नही कह सकते। कहा भी नही जा सकता। क्यो नही कह सकता, इसे आप लोग अच्छी तरह से समझ सकते हैं। इस बारे मे उनका विवाहित होना, हमारे लिए उचित और अच्छा है, क्योंकि मुझे अपने पुत्र-पुत्रियो का विवाह करना है। हॉ, वर्मा मे उनका विवाह नही हुआ था, इस बात का उल्लेख करने से कोई हानि नही होगी।"

शरत्चन्द्र वर्मा मे जिस बस्ती मे रहते थे, वहा एक प्रकार का अलिखित नियम-कानून प्रचलित था। अगर पति-पत्नी के रूप मे नर-नारी प्रकट भाव से कुछ दिन रहते हैं तो वे अपने सभी परिचितो के निकट पति-पत्नी मान लिए जाते हैं। शांति को जिस अत्याचारी पिता के हाथ से उन्होने बचाया था, वह इन्हे छोडकर अन्यत्र जाने को राजी नही हुई थी। वह अपने निधन तक शरत्चन्द्र के साथ सुखी थी। यह सब बाते मैं शरत् दादा की जबानी सुन चुकी हूँ। इसके अलावा इस कहानी को अन्यत्र भी वे सुना चुके हैं। शांति देवी को एक पुत्र भी हुआ था।

हिरण्मयी देवी के पिता कृष्णदास अधिकारी मधुकरी वृत्तिजीवी बोस्टम (गोसाईं) थे। कधे पर झोली लेकर मजीरा बजाते हुए वे मधुकरी (पका हुआ अन्न) के लिए निकलते थे। उनका अपना कोई रिश्तेदार नही था। हिरण्मयी १४-१५ वर्ष की उम्र में अपने गाव से कलकत्ता चली आयी थी। उन्हे कलकत्ते तक उनके पिता ने पहुँचाया था या नही, अथवा किसी और व्यक्ति के साथ आयी थी, इसका पता नही चला। उनकी माता का कोई पता नही था। वे मर गयी थी या अन्यत्र कही चली गयी थी, इस बारे में कुछ सुनने मे नही आया। कृष्णदास की पत्नी नही थी। इन बातो की चर्चा स्व० प्रमथनाथ 'इवनिंग क्लब' मे तथा 'गुरुदास चटर्जी एण्ड संस' की दुकान पर हरिदास बाबू तथा नरेन्द्र देव के सामने कई बार कहते रहे। मैंने इन लोगों की जबानी इस कहानी को सुनी है।

शरत्चन्द्र का आनुष्ठानिक विवाह या कानूनी विवाह हिरण्मयी के साथ नही हुआ है, इस बात की जानकारी मुझे एक और सूत्र से हुई थी। निरन्तर हरिदास बाबू और 'भारतवर्ष' के सपादक जलधर सेन शरत्चन्द्र को समझाते थे कि एक मैरेज रजिस्ट्रेशन में हस्ताक्षर कर हरिदास बाबू के पास सुरक्षित रखवा दे। इस बारे मे ये लोग बराबर मिन्नत करते रहे, इस दृश्य को भी मैंने देखा है। उन लोगो ने कहा था—मैरेज रजिस्ट्रार को किसी भी दिन रात के वक्त आपके घर ले आयेगे और हस्ताक्षर के बाद उसे कस्टडी मे हिफाजत से रख देगे। भविष्य मे आपके निधन के पश्चात् अगर कोई हिरण्मयी देवी को मुसीबत मे फसाना चाहेगा तो ऐसा नही कर सकेगा। प्रकाशक शरत्चन्द्र की इच्छा को कानून के द्वारा सुदृढ कर रखेगे। आपके निधन के पश्चात् आपकी पुस्तको की सारी रायल्टी हिरण्मयी देवी प्राप्त करेंगी। उस हालत में कोई उनकी उपेक्षा नहीं कर सकेगा।

आश्चर्य का विषय यह है कि इतना अनुरोध करने पर भी उनसे इकरारनामा पर हस्ताक्षर नही कराया जा सका। इस बात के जीवित गवाहों में गुरुदास चटर्जी एण्ड सस के वर्तमान मालिक स्व० हरिदास चटर्जी के पुत्र श्री सरोज कुमार चटर्जी मौजूद हैं।

इस बात को अधिकाश लोग जानते थे, पर इसके कारण कभी किसी ने हिरण्मयी देवी का असम्मान नही किया। न हम कभी इस बात को उछालते रहे। हम दोनो पति-पत्नी हिरण्मयी देवी को भाभी का पूर्ण सम्मान देते थे और आदर करते थे। वे भी हमे अपना अकृत्रिम स्नेह देती रही।

हिरण्मयी देवी को शरत्चन्द्र परिणत उम्र मे अपने भोजन, दैनिक कार्य, रसोई तथा गृहस्थी के कामों के लिए सन् १९१२ को कलकत्ता से वर्मा ले गये थे। जब वे ले गये तब वे बिलकुल अकेली, निराश्रय और असहाय थीं। वे ब्राह्मण कन्या थी, यह सच है। मेदिनीपुर मे उनका घर था, यह भी सत्य है। शरत्चन्द्र जिन दिनो शिवपुर में रहते थे, उन दिनों 'गुरुदास चटर्जी एण्ड सस' फर्म से प्रति माह हिरण्मयी देवी के पिता के नाम मनिआर्डर भेजा जाता था।

वास्तव में उनके निःसग एकाकी जीवन के लिए एक संगिनी या सेवा करने वाली की जरूरत थी जो उनकी देखरेख कर सके। हिरण्मयी देवी अपनी सेवाओ से उन्हें सतुष्ट रखती रही। घर-गृहस्थी के

झझटों से वे मुक्त थे। शरत्चन्द्र के चिन्ताजगत की संगिनी या मनन जगत की शुश्रूषाकारिणी कभी नही थी।"

शायद इसीलिए हिरण्मयी देवी को शरत् बाबू बहुत चाहते थे। यहा एक उदाहरण देना मैं पसंद करूगा।

सन् १९१५ मे 'पल्ली समाज' पूर्ण हो गया था। 'पल्ली समाज' उपन्यास मेदिनीपुर से २३ मील दूर घाटाल महकमा मे कुयापुर नामक एक गाव है। इस उपन्यास मे इसी गाव का वर्णन है। हिरण्मगी देवी की दो अन्य बहनो का विवाह इसी गाव मे हुआ था। यहां कुछ दिनो तक शरत् बाबू थे। मेदिनीपुर काफी पिछडा इलाका है। कलकत्ता के सेठो के यहां काम करनेवाली अनेक किशोरी, प्रौढ़ा महिलाएँ मेदिनीपुर की हैं।

दीप्तिमान शिल्पी

'रगून गजट' मे श्री द्विजेन्द्र लाल राय के निधन का समाचार पढकर शरत् चौंक उठा। 'भारतवर्ष' के वे मनोनीत सपादक ही नही, बल्कि बगला-साहित्य के रत्न थे। अब क्या होगा? क्या हरिदास बाबू पत्रिका का प्रकाशन स्थगित कर देगे या किसी अन्य को सपादक बनायेगे? राय बाबू जैसा कोई विद्वान तो इस समय नही है।

इस बात की जानकारी के लिए उसने प्रमथनाथ को पत्र लिखा। द्विजेन्द्र बाबू के निधन के साथ ही शरत् के हृदय से हरिदास, प्रमथनाथ और द्विजेन्द्र लाल के प्रति जो आक्रोश था, वह समाप्त हो गया। उसके मन मे इच्छा हुई कि कहीं वह कलकत्ता रहता तो शायद उसे संपादक बनने का अवसर मिलता।

उसने लिखा—"अगर इस समय मैं कलकत्ता रहता तो भारतवर्ष के लिए काफी काम कर सकता था। किसी प्रसिद्ध सपादक का सहयोगी बनकर पत्रिका को अच्छी तरह चला सकता था। मैं केवल पद्य नही लिख पाता। इसके अलावा अन्य सभी प्रकार की सामग्रियाँ आसानी से लिख लेता हूँ। संपादक का जो प्रधान कार्य है यानी अन्य पत्र-पत्रिकाओ मे जितने लेख, कविता तथा कहानियां छपती हैं, उन्हे पढने के बाद एक समालोचनात्मक लेख भी तैयार कर सकता हूँ। मगर जब कलकत्ते मे नही हूँ, तब यह सब सोचना बेकार की बात है।"

इधर दफ्तर मे बेहद परेशानिया बढ गयी थी। यहा के वातावरण से ऊबकर वह कही भाग जाना चाहता था। अगर हिरण्मयी को साथ न लाता तो शायद एक बार फिर पोगी बन जाने मे हिचक नही होती।

दफ्तर मे 'न्यूमार्च' नामक एक गोरा साहब आया है। वह क्लर्कों पर रोब जमाता है। एक साल के भीतर ३७ क्लर्को की पदावनति कर दी। अगर कोई क्लर्क पत्रोत्तर देने या डिस्पैच करने मे देर करता तो उसे डिसमिस कर देता। इनके आतंक के कारण डिप्टी एकाउण्टेण्ट जनरल चेण्टर साहब, डिप्टी एकाउण्टेण्ट जनरल श्री निवासन अय्यर, असिस्टेटण्ट एकाउटेट जनरल सुन्दरम्, असिस्टेण्ट एकाउण्टेण्ट जनरल मैसेट आदि एक महीने का मेडिकल सार्टिफिकेट देकर गायब हो गये। जहा लोग चाय या टिफिन करने जाते तो देर से लौटते थे, वहा नादिरशाही की हुकूमत जारी हो गयी थी। लोगो के जिम्मे दूना काम लाद दिया गया था। आफिस का टाइम अब बढ़ाकर १०-३० से ६-३० कर दिया गया। यह भी नियम बनाया गया कि किसी पत्र के बारे में अगर कही से रिमाइंडर आया तो सबंधित बाबू पर दस रुपये जुर्माना किया जायगा।

यहां तक कि आफिस के बाबू भी मेडिकल सार्टीफिकेट देकर जब भागने लगे और काम ठप्प होने लगा तब उसने सिविल सर्जन को पत्र लिखा कि जब तक किसी के बारे मे इस आफिस से पत्र न जाय तब तक उसे मेडिकल सार्टीफिकेट न दिया जाय। इस प्रकार लोग मेडिकल सार्टीफिकेट देकर भागने से वंचित रह गये। अगर इस पर भी कोई मेडिकल सार्टीफिकेट पेश करता तो उसके 'सर्विस बुक' मे यह दर्ज कर दिया जाता था कि इस बाबू ने झूठा सार्टीफिकेट दाखिल किया है।

इस चक्कर मे शरत् भी फंस गया। अचानक उसके किसी पत्र का रिमाइडर आया। काम के बोझ के कारण छोटे काम पर ध्यान नही दे सका था। गोकि यह गलती सब आडिटर भौमिक बाबू और पेरिया स्वामी की गलती थी, पर इसकी जिम्मेदारी उसने ले ली। जवाब दिया कि मेरा ही ओवरसाइट है। इधर क्रोध मे आकर उसने त्यागपत्र भी लिखकर रखा। उसे यह विश्वास हो गया था कि दस रुपये गये। कुल जमा नब्बे रुपये की नौकरी और इस तरह जुर्माना देने से अच्छा है कि गोली मारो ऐसी नौकरी को। जहा इस तरह अपमानित होकर नौकरी करनी पडे, वहा से हट जाना उचित है।

लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस बारे मे दिन भर मे उससे एक भी सवाल न पूछा और न उसे अपने कमरे मे बुलाया गया। सारा दिन ऊहापोह में बीत गया। चलते समय त्यागपत्र फाडकर फेक आया।

लेकिन मन बहुत खिन्न रहा। उन दिनो मनीन्द्र कुमार मित्र कलकत्ते मे छुट्टी मना रहे थे। उन्हें उसी दिन पत्र लिखा कि न्यूमार्च साहब की वजह से मेरा यहा नौकरी करना असंभव है। आप कलकत्ते मे कही नौकरी मेरे लिए ठीक कर दे। मैं तुरत त्याग पत्र देकर चला आऊँ। यह कमबख्त इतना बड़ा हरामजादा है कि आवेदन पत्र को आगे फारवर्ड नही करता। अनेक पाजी लोगों को उसने देखा है, पर इस साले की तरह किसी को नही पाया।

धीरे-धीरे शरत् का मन इस आफिस से इतना उखड गया कि प्रमथ को लिखा—"साहित्य सेवा के जरिये जीविका चलाने मे शर्म महसूस हो रही है। अगर कलकत्ते में ४०-४५ रुपये की नौकरी दिला दो तो चला आऊँ। सरकारी नौकरी के प्रति अब कोई दिलचस्पी नही है। यहा की नौकरी तो कुलीगिरी से गया गुजरा है।"

प्रत्युत्तर में प्रमथ ने लिखा—"मैं तुम्हारे लिए यहां नौकरी की तलाश कर रहा हूँ।"

इस मानसिक स्थिति मे भी उसका लेखन-कार्य जारी रहा। शरत् ने एक बार फणी बाबू को एक पत्र में लिखा था कि मेरे तीन नाम हैं—

आलोचना, निबध आदि—अनिला देवी।

छोटी कहानिया—शरत्चन्द्र चटर्जी।

बडी कहानिया—अनुपमा।

इन नामो मे शरत् बाबू ने 'अनुपमा' नाम का प्रयोग कभी नही किया। फणीन्द्र पाल ने एक कहानी मे 'अनुपमा देवी' का नाम अपने मन से छापा था। वह भी इसलिए कि 'बिन्दो का लल्ला' कहानी पर वायदे के अनुसार अनुपमा का नाम न देकर शरत् बाबू ने अपना नाम दिया था। इसी बीच 'छाया' मे प्रकाशित 'विचार' नामक कहानी मिली तो अपनी बुद्धि खर्च कर लेखिका—श्रीमती अनुपमा देवी कर दिया। शरत् बाबू को इसकी जानकारी कहानी छपने के बाद हुई थी।

'भारतवर्ष' का प्रथम अंक वी० पी० के जरिये शरत् के पास आया। सपादक थे—जलधर सेन। इन्होंने ही 'कुन्तलीन पुरस्कार' का प्रथम पुरस्कार शरत् को 'मन्दिर' कहानी पर दिया था। 'भारतवर्ष' का अक देखकर शरत् सहम गया। 'यमुना' मे रचना बराबर छपते रहने के कारण बगाल के विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ, साधारण पत्र, रजिस्टर्ड पत्र और तार तक उसके पास रचना के लिए भेज रहे हैं, इधर इस पत्रिका ने, जो कि १२० पेज तक छपने वाली थी, १५२ पृष्ठ छापने के बाद भी यह सूचना छापी है कि हमारे पास इतनी रचनाएँ आ गयी है, जिसे छापने मे कई महीने लग जायेंगे। हम १५ की जगह १९ फर्मा छापने पर भी सभी लेखकों को स्थान नही दे सके।

इसका अर्थ यह है कि बंगाल मे जिस प्रकार पत्र-पत्रिकाओं की कमी नही है, उसी प्रकार लेखकों की कमी नही है। मैं व्यर्थ ही अपने पर गुमान करता रहा। इसी बीच प्रमथ का पत्र आया कि वह सुरेन्द्र से 'देवदास' उपन्यास लेकर छापना चाहता है।

शरत् की इच्छा नही थी कि किशोरावस्था में लिखी गयी रचनाए उसी अवस्था में प्रकाशित हों। उसने तुरत लिखा—"उसे मत छापो। वह इमारल रचना है। बोतल पर बोतल पीकर लिखा है। बहुत ही बेकार रचना है। मेरी पुरानी रचनाएं चाहे तुम्हारी पत्रिका में हो या फणी के, मैं छपवाना नहीं चाहता।

"'बिन्दो का लल्ला' तुम्हें पसंद आयी, सुनकर खुशी हुई। कुछ लोग 'रामेर सुमति' और 'पथ

निर्देश' से अच्छा कह रहे हैं।

एक बात बताओ, भाई, इतनी पत्र पत्रिकाए प्रकाशित हो रही हैं, क्या कोई मुझे सहायक सपादक नहीं बना सकता? मैं बहुत काम कर सकता हूँ। धारावाहिक उपन्यास, लम्बी कहानी, एक निबंध, पत्र-पत्रिकाओं की समालोचना लिख सकता हूँ। इसके अलावा रचनाओं का संशोधन, गीतों की स्वरलिपि की गलतियां, विज्ञान तथा साहित्य की आलोचना कर सकता हूँ। पुरातत्व पर कलम नही चला सकता। अगर कोई इस कार्य कें लिए रखना चाहे तो बात करना। इस बात का आश्वासन देता हूँ कि उस पत्रिका को देखकर कोई छिः-छिः नहीं करेगा। मुझे यह नौकरी पसंद है। मगर नौकरी स्थायी हो। ऐसा न हो कि कुछ दिन बाद निकाल दिया जाऊँ। दरअसल बर्मा अब पसंद नहीं आ रहा है। यहां एक न एक बीमारी लगी है।''

प्रमथ की ओर से निश्चयपूर्वक कोई उत्तर न पाने पर शरत् ने फिर कोई आग्रह नहीं किया। अब वह अपनी प्रतिभा को दिखाने के लिए 'यमुना' को सर्वांगीण सुन्दर बनाने में जुट गया। यमुना के कई अकों मे गड़बड मैटर छपते देख, शरत् ने सुझाव दिया कि आगामी अको मे छपने वाले मैटर रंगून भेज दिया जाय। अच्छी तरह से सपादन करके मैं भेज दिया करूंगा। इस आदेश को पाते ही फणीन्द्र पाल प्रति सप्ताह मैटर भेजने लगा।

'भारतवर्ष' का जोरदार स्वागत होने के कारण फणीन्द्र भयभीत हो उठा। यद्यपि बार-बार उसके भय को दूर करने के लिए शरत् पत्रो मे आश्वासन देता रहा, पर वह अपना भय दूर नही कर सका। शरत् से बिना अनुमति लिए फणीन्द्र ने एक अंक मे विज्ञापन छापा—'यमुना' के पाठको को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अगले अंक से बंगाल के ख्यातिप्राप्त कथाकार श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय इस पत्रिका का सपादन भार ग्रहण करेगे।

फणी बाबू को यह पता चल गया था कि प्रमथ बाबू शरत् को अपनी पत्रिका के लिए प्रलोभन दे रहे हैं। कही यमुना को उन्होने त्याग दिया तो बडी कठिनाई होगी। इस विज्ञापन को छापकर मैंने कोई गलत काम भी नही किया है। आजकल सारा मैटर वही देख रहे हैं।

शरत् को प्रसन्न करने के लिए फणीन्द्र पाल हरचन्द कोशिश करते रहे। इसी बीच 'बड़ी दीदी' पुस्तक छापकर उन्होने रगून भेज दी। यही नहीं, शरत् जब कई बार अपनी बीमारी का उल्लेख करते हुए लिखने-पढ़ने मे रुचि नही है, लिखते थे तब फणीन्द्र ने लिखा था कि आप कलकत्ता चले आइये। मेरे घर आकर रहिये। मैं आपकी बड़े भाई की तरह सेवा करूगा।

शरत् को यह विश्वास नही था कि कभी उसकी पुस्तक छपेगी। 'बडी दीदी' की प्रतिया पाकर वह बहुत खुश हो गया। योगेन्द्र सरकार तथा कुमुद बाबू को पुस्तके भेंट मे दी। ठीक इन्ही दिनो से 'यमुना' मे 'चरित्रहीन' का प्रकाशन प्रारंभ हो गया।

इस बात पर सदेह नहीं कि 'यमुना' में प्रकाशित कहानियो ने न केवल संपादको को, बल्कि पाठको को काफी प्रभावित किया था। 'यमुना' जैसी साधारण पत्रिका की प्रसार सख्या तेजी से बढ गयी थी। कई महीने तक सर्व साधन सुलभ पत्रिका 'भारतवर्ष' 'यमुना' से होड़ नही ले पा रही थी। यह देखकर प्रमथ और हरिदास ने निश्चय किया कि चाहे जैसे भी हो शरत् को अपने कब्जे में करना चाहिए।

इस निश्चय के बाद इन लोगो ने शरत् के पास प्रस्ताव भेजा कि 'यमुना' में प्रकाशित आपकी तीनों कहानिया 'बिन्दो का लल्ला', 'राम की सुमति' और 'पथ निर्देश' को पुस्तकाकार के रूप में, गुरुदास चटर्जी एण्ड संस की ओर से हम प्रकाशित करना चाहते हैं।

अभी तक शरत् को यह विश्वास नही था कि उसकी पुस्तके पाठक खरीदकर पढ़ेगे। उसने छापने की अनुमति दे दी।

'मंदिर' शरतु बाबू की प्रथम प्रकाशित कहानी है, गोकि कुन्तलीन कार्यालय द्वारा प्रकाशित संग्रह मे श्री सुरेन्द्रनाथ गांगुली का नाम छपा था। पुस्तक के रूप में सर्व प्रथम पुस्तक 'बडी दीदी' है जिसका प्रकाशन काल ३० सितम्बर, १९१३ ई० है। 'बडी दीदी' उपन्यास सर्व प्रथम 'भारती' पत्रिका में १९०७ ई० में अप्रैल -मई-जून के अको में प्रकाशित हुआ था।

'विराज बहू' पौष, माघ, १३२० बंगाब्द (१९१३-१४) में 'भारतवर्ष' पत्रिका में छपा और पुस्तक

के रूप मे २ मई, १९१४ को प्रकाशित हुआ। इसके बाद ही 'बिन्दो का लल्ला' के नाम मे पुस्तक छपी। ३ जुलाई, १९१४ ई०। इस पुस्तक मे बिन्दो का लल्ला, राम की सुमति और पथ निर्देश कहानियाँ थीं। तीनों कहानिया इसके पूर्व 'यमुना' मे छप चुकी थी।

"विराज बहू" लेखन काल की स्थिति के बारे मे योगेन्द्र नाथ सरकार ने लिखा है—" 'भारतवर्ष' मे प्रकाशित उपन्यासो मे 'विराज बहू' उनकी प्रथम रचना थी। सभी के निकट यह इतना अच्छा लगा था कि विराज का सामयिक अध पतन किसी को बर्दाश्त नही हुआ। पाण्डुलिपि पढ़ने के बाद मैंने अपनी आपत्ति जताई।

शरत् बाबू ने कहा—"ससार मे कुछ भी असभव नही है। जिन लोगों ने शेक्सपीयर की रचनाएँ पढ़ी हैं, वे इस बात का प्रमाण दे सकेगे। शेक्सपीयर से अधिक किसी लेखक ने नर-नारियों के बारे में अभिज्ञता प्राप्त नही की है।"

इस उदाहरण के आगे कुछ कहने का साहस नही हुआ। 'विराज बहू' लिखने में लगभग एक माह लगा था। काफी काटीकूटा की गयी। उन्होने कहा था—"जब तक एक्सप्रेशन सहज और सरल नहीं लगता तब तक मुझे तृप्ति नही मिलती। रात की लिखी गयी रचना दिन को गलत मालूम होती है।"

'विराज बहू' लिखने के बाद एक दिन शरत् बाबू ने पूछा—"इस उपन्यास का क्या नाम रखा जाय?"

मैंने कहा—"विराज मोहिनी।"

"नही जी। विराज बहू नाम मुझे अधिक पसद है। मोहिनी नाम ठीक नही है।" इतना कहकर उन्होने नीले पेन्सिल से बडे-बडे अक्षरो मे 'विराज बहू' नाम पाण्डुलिपि पर लिखा। नीचे लिखा—कहानी।

मैंने प्रतिवाद किया—"यह आपने क्या लिखा? प्रमथ भट्टाचार्य के पत्र की बाते याद नही हैं। लिखिये—उपन्यास।"

अब उन्होने कोई आपत्ति नही की। कहानी शब्द को काटकर उपन्यास लिखा।

बातचीत के सिलसिले मे शरत् बाबू ने कहा—"हरिदास अगर अपने साथ रहे तो लाभ है।"

मैंने कहा—"बात ठीक है। बडे प्रकाशक के माध्यम से फुटपाथी लेखक भी भद्र-समाज के पास पहुँच जाते हैं। आप तो अनेको मे श्रेष्ठ हैं। एक काम करियेगा जब तक तगादा न आये तब तक तगादे पर कोई रचना मत भेजियेगा।"

शरत् बाबू ने हसकर कहा—"एक तो भारतवर्ष के तगादे से परेशान हूँ, यमुना तो है ही, तिस पर ढाका से भी अनुरोध आ रहे हैं।"

'ढाका रिव्यू' मे शरत्चन्द्र ने कुछ लिखा था या नही, यह स्मरण नही आ रहा है, परन्तु वहा से कई महीने तक फ्री कापी बराबर आती रही। यह उस समय की बात है जब वे 'गुरु-शिष्य संवाद' नामक लेख लिख रहे थे। जितना लिखते थे, उसे लाकर मुझे दिखाते थे। एक दिन उन्होने कहा—"इस लेख का शेषार्द्ध तुम्हे लिखना है।"

लेख को पढने के बाद मैंने कहा—"इस लेख को पढने के बाद लाग गालिया देगे।"

—देगे तो देने दो।

यह लेख 'यमुना' मे अनिला देवी के नाम से प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'ढाका रिव्यू' ने जमकर इस लेख की भद्रा की। शायद उन्हे यह मालूम था कि अनिला देवी के छद्मनाम से शरत् बाबू ने इसे लिखा है। मुमकिन है कि 'ढाका रिव्यू' को कोई लेख शरत् बाबू ने कभी नही दिया, इसलिए उसने आक्रोशवश कडी आलोचना की।

इस आलोचना को पढने के बाद शरत् बाबू ने हंसकर कहा—"इन बातो पर ध्यान नही देना चाहिए। न जाने कितने लोग कितनी तरह की बाते कहेंगे।"

—लेकिन रगडा है कसकर।

—वह तो रगडेगा ही। जब मैंने रगडा है तब इसे सहन करना ही पडेगा। तिलमिलाने से काम नही चलेगा।"

समझते देर नही लगी कि अनिला देवी के नाम से 'यमुना' मे इधर कई लेख प्रकाशित हुए है, एक ओर जहा पाठको को उसे पढकर आनन्द मिला है, वही दूसरी ओर कुछ लोग नाराज हुए हैं। खासकर 'नारी का लेखन' लेख को पढकर। इस लेख मे उन्होने अधिकाश महिला लेखिकाओ की आलोचना की थी। इन लेखिकाओ के भी प्रिय पाठक थे। गनीमत यह रही कि 'ढाका रिव्यू' के अलावा अन्य किसी पत्रिका ने इस पर ध्यान नहीं दिया।"

उस दिन १३ मार्च, सन् १९१४ ई० था। आफिस से लौटते समय अचानक उनकी निगाह एक कुत्ते पर पडी। कुत्ते में कोई विशेषता नही थी, पर उसकी चाल मे मस्ती थी। यह देखकर उस कुत्ते को आठ आने मे शरत् ने खरीद लिया। घर आकर पत्नी से कहा—"बडी बहू, देखो आज क्या लाया हूँ। दिन भर तुम अकेली रहती हो। अब यह घर पर पहरा दिया करेगा।"

इसके बाद 'बाटू' की ओर देखते हुए शरत् ने कहा—"अब आज से तेरा एक और साथी हो गया। तू तो पिजडे मे रहती है और यह बाहर रहेगा। अच्छा, एक बात बताओ बडी बहू। इसका नाम क्या रखा जाय?"

हिरण्मयी ने कहा—"वंशी बदन।"

शरत् ने हसकर कहा—"हट, यह सब नाम कही पशुओ के रखे जाते हैं? कुत्तो के नाम टाम, टामी, शेर, बबर, भेलो . बिलकुल उपयुक्त नाम मिल गया। आज से इसे 'भेलो' नाम से पुकारेगे।" देर तक कुत्ते को गोद मे लेकर शरत् उसे सहलाता रहा।

दूसरे दिन शाम को शरत् आफिस से आते ही बोले—"बडी बहू, भेलो कहा गया? ले आओ उसे। आज उसे आलूचाप, काटलेट, आमलेट खिलाऊगा। हमारा 'भेलो' केवल कुत्ता नही, बल्कि पोष्यपुत्र है।"

इतना कहकर शरत् झोला हिरण्मयी को देने के पश्चात् कुत्ते को लेकर उसे चूमने लगा। पति के इस रूप को देखकर हिरण्मयी अवाक् रह गयी। पूछा—"क्या बात है, आज बडे खुश नजर आ रहे हो?"

—बडी बहू, कल तुमसे मैंने कहा था न, कि भेलो हमारा पोष्यपुत्र है। आज वह प्रमाणित हो गया। भेलो हमारे घर आया और अपने साथ हमारा सौभाग्य ले आया। देख लेना, अब हमे कभी कोई कष्ट नही होगा। कल इसे खरीदा और आज कलकत्ते से दो सौ रुपये का मनिआर्डर आ गया। आफिस से चलते समय यही सोचता रहा कि इस रकम को तो बहुत पहले आ जानी चाहिए थी, पर आज क्यो आया? अगर कल भेलो हमारे यहा न आता तो पता नही कब आता, इसीलिए मैं बहुत प्रसन्न हूँ। भेलो के लिए काटलेट, चप, आमलेट खरीदकर लाया हूँ। सब इसे खिला दो। और देखो, कल से इसके लिए स्पेशल चीज बनाना। हमारा भेलो राजा बेटा है। एक बाटू बेटा, दूसरा भेलो बेटा।"

'भेलो' शरत् बाबू के जीवन का अग बन गया था। तत्कालीन सभी साहित्यिको ने इसके बारे मे लिखा है। भेलो के लिए स्पेशल बिछौना था। बीमार पडने पर उसे अस्पताल मे भर्ती किया जाता था। गोश्त, मछली, काटलेट, आमलेट आदि महगे भोजन उसे खिलाया जाता था। जहा कही वे जाते उसे अपने साथ ले जाते थे। उसका रग रूप अच्छा नही था, पर गरिष्ठ-भोजन करने के कारण भेलो काफी तगडा हो गया था। शरत् बाबू की अनुपस्थिति मे कोई भी व्यक्ति उनके कमरे मे जाने को कौन कहे, बैठ नही पाता था। भेलो के बीमार होने पर शरत् बहुत दु.खी हो जाते थे।

कुछ दिनो बाद शरत् बीमार हो गया। आफिस मे गलतियां होने लगी। उन्होने सोचा कि कुछ दिनों के लिए छुट्टी लेकर वर्मा के किसी अन्य शहर मे जाकर रहे, पर पत्नी ने आग्रह किया कि बर्मा की जगह कलकत्ता चला जाय। आफिस से छ माह की छुट्टी लेकर वे १९१४ के जून माह मे कलकत्ता रवाना हुए। साथ मे हिरण्मयी, भेलो और बाटू बाबा भी थे। कलकत्ता आकर वे किसी मित्र या रिश्तेदार के यहां अतिथि न बनकर चोर बागान मे किराये के कमरे मे रहने लगे।

दिशा की खोज में

'विराज बहू' और 'विन्दो का लल्ला' शरत् ने गुरुदास चटर्जी एण्ड सस को २०० रुपये में कापीराइट पर बेच दिया था। वास्तव मे उन दिनो वे अत्यन्त आर्थिक कष्ट मे थे। ये चार सौ रुपये उनके निकट चार हजार के बराबर थे।

चोर बागान मे ठहरने के बाद वे सबसे पहले अपने भाई-बहनों के बारे मे पता लगाने गये। प्रभास (स्वामी वेदानन्द) की जबानी ज्ञात हुआ कि मुनिया (सुशीला देवी) का विवाह मामा ने आसनसोल के कोयला व्यापारी रामकिकर बाबू से कर दिया है। प्रकाश पढ़ रहा है। दीदी का भी समाचार अच्छा ही है।

एक दिन शाम को फणीन्द्र पाल के यहां गये। बातचीत के सिलसिले मे शरत् ने कहा—"मैं तुम्हें अपना पता दे रहा हूं, पर सौरीन, सुरेन आदि किसी को मेरा पता मत बताना। बहुत आवश्यक होने पर मेरे घर जाना वर्ना मैं नित्य स्वय तुम्हारे आफिस मे आया करूगा।"

इन दिनो के बारे मे सौरीन्द्र मोहन मुखोपाध्याय के शब्दों में—"इस बार अधिक दिनों की छुट्टी लेकर शरत् दा आये। नित्य तीसरे पहर पाच बजे फणीन्द्र पाल के साथ जोडा बागान स्थित कचहरी के सामने आते थे। फणीन्द्र पाल कचहरी के भीतर जाकर उनके आने की सूचना देता। अगर कोई जरूरी काम नही रहता तो तुरत उनके साथ बाहर आ जाता। अगर काम मे फंसा रहता तो तब तक वे कचहरी के सामने टहलते रहते। फणीन्द्र पाल कभी कचहरी के भीतर और कभी बाहर आते-जाते रहते। मुझे जल्द काम निपटाने के लिए बिगडते और उधर शरत्चन्द्र को कहते—'मैं अभी आया। जरा इन्तजार कीजिये।'

इसके बाद हम तीनों पैदल नीमतला घाट स्ट्रीट आते, वीडन स्ट्रीट, मानिकतला स्ट्रीट का चक्कर काटते हुए कार्नवालिस स्ट्रीट स्थित यमुना आफिस में। यमुना आफिस मे नित्य एक और व्यक्ति आते थे। वे थे—श्रद्धेय कथाशिल्पी, कवि एव अमायिक सरल हृदय सुधीन्द्रनाथ ठाकुर महाशय। सुधीन्द्रनाथ ठाकुर की दृष्टि मे शरत्चन्द्र हीरो थे। शरत्चन्द्र के चलने, बोलने, बैठने, खडे होने तथा गप लड़ाने आदि सभी आदतो मे उन्हे अपार आनन्द मिलता था। शरत्चन्द्र के साथ अक्सर आता था—उनका प्राणप्रिय कुत्ता भेलो। उस कुत्ते को देखकर कभी-कभी सुधीन्द्रनाथ चौंक उठते थे। तभी शरत्चन्द्र कहते—"डरिये नही, इतना निरीह कुत्ता हे कि शायद कुत्तो के नस्ल में अब तक इसकी तरह दूसरा पैदा नही हुआ है।"

शरत् के साथ-साथ भेलो की भी इज्जत फणीन्द्रनाथ करते थे। सभी के लिए जिस प्रकार चाय, जलपान आदि आता, उसी प्रकार भेलो के लिए आता। स्वयं शरत्चन्द्र इसके लिए आदेश देते थे। एक दिन शरत्चन्द्र ने प्याली मे चाय उडेलकर भेलो को पीने के लिए दिया तो सभी लोग 'हाँ-हाँ' कर उठे तभी शरत्चन्द्र ने कहा—"मैं चाय पीता हूँ और यह जिस तरह देखता है, उसे देखकर मेरे मन मे ममता उत्पन्न होती है, शायद यह भी पीना चाहता है। यही वजह है कि जब मैं चाय पीता हूँ पिरीच मे थोड़ी-सी चाय दे देता हूँ।'

यह सुनकर फणीन्द्र ने कहा—"आपने पहले क्यों नही बताया? इसके लिए एक प्याली चाय आ जाती।"

"आज रहने दो। इसी में पीने दो। आगे से इसके लिए अलग से ले आना।" शरत् ने जवाब दिया।

यह पहले कह चुका हूँ कि नित्य तीसरे पहर शरत्चन्द्र कचहरी के पास आ जाते थे। उन दिनों वे चोर बागान में कही ठहरे थे। फणी को पता मालूम था। शरत् ने उन्हे पता बताने को मना किया था। फणीन्द्र ने इस वायदे को निभाया था। मैंने भी उनसे कभी पता नही पूछा।

कचहरी के पास आकर शरत्चन्द्र टहलते रहते या कभी सामने की दुकान पर बैठकर चाय पीते। चायवाला या उसके ग्राहकों को यह मालूम नही होता था कि यह कौन व्यक्ति है। उन दिनो सशक्त लेखक के रूप मे इनकी ख्याति थी। अपना परिचय देने के मामले में वे उदासीन थे। वेश-भूषा, चाल-चलन में अत्यन्त साधारण मनुष्य लगते थे। भीड में आगे बढ़ जाना या अपना प्रचार करना उन्हे

पसद नही था। अत्यन्त कुण्ठाग्रस्त तथा निर्विकार सारल्य के आवरण मे अपने को छिपाकर रखते थे। गहरे पानी मे रोहू-मागुर मछलिया शात रहती हैं। छिछले लेखक ही अपने को जाहिर करने के लिए आत्म प्रचार करते हैं।

एक दिन की घटना याद है। बहस करने के बाद कचहरी से निकला। एक सजायफ्ता कैदी को दो साल की सजा हो गयी। कचहरी सूना हो रहा था। बाहर जेल की गाडी खडी थी। इसमे कैदियो को जेल ले जाया जायगा। मेरा मुवक्किल सजायफ्ता की रखैल रोती हुई मेरे पैरो को पकडकर बोली—"उन्हे बचा लीजिए।" वह अपने प्रणयी की विदाई देखने के लिए गाड़ी के पास आ गयी थी। उसने कहा—"आज मैं रुपये लेकर रात को आपके पास आऊंगी। आप अर्जेण्ट नकल लेकर हाईकोर्ट में अपील करने का इन्तजाम कीजिएगा।"

मैंने उसे समझाया—"अपील से कोई लाभ नही होगा। तुम्हारे रुपये पानी मे बेकार चले जायेगे।"

फिर भी वह अपनी जिद्द पर अडी रही। बोली—मैं अपने सारे जेवर बेचकर रुपये लाऊंगी। आप कोई बडा वकील ठीक कर लीजिए। मैं चुप नही रहूगी।"

उसे काफी देर तक समझाता रहा कि ऐसे प्रमाण मिले हैं, ऐसी गवाहियां हुई हैं जिसकी वजह से उसे बचाया नही जा सकता। इसी बीच उसका प्रणयी आया। उसने भी कहा—"अपील के चक्कर मे मत पडना, वर्ना तू खायेगी क्या? दो साल कोई लम्बा अर्सा नही है।"

गाडी चली गयी, पर वह महिला मेरे पीछे लगी रही। मैंने मना किया, उसके आशिक ने मना किया, फिर भी वह रुपये लेकर आयेगी।

सारा दृश्य फणीन्द्र तथा शरत्चन्द्र देख रहे थे। सारी घटना सुनने के बाद उन्होने कहा—"बडी अच्छी महिला है। इसके मन का परिचय पा गये न? समाज की दृष्टि मे ये घृणित, वेश्या हैं, पर इसके अन्तर मे जो मनुष्य विराज रहा है, वह कितना महान है? अनेक साध्वी महिलाए भी पति की इस मुसीबत मे इतना विचलित होकर अपना सर्वस्व त्याग नही कर सकती। दूसरी ओर यह पतिता नारी है। आखिर इन्हे कब साहित्य मे स्थान मिलेगा?"

मैंने देखा कि इस महिला की घटना से शरत्चन्द्र काफी विचलित हो उठे हैं। उनके मन मे प्रबल दर्द था। मानव की चमड़ी देखकर वे उसे ग्रहण या त्याग नही करते। उसके भीतर का मनुष्यत्व देखते थे, उसे प्यार करते थे, श्रद्धा करते थे। ऊपर की खाल तो तुच्छ वस्तु है। उनके हृदय का परिचय अक्सर हम छोटी-छोटी घटनाओ मे पाते थे। आगे चलकर उनके साहित्य मे ऐसी घटनाओ के अनेक उदाहरण मिले।

इस प्रसग मे उन्होने एक बर्मी महिला के बारे मे एक कहानी सुनाई थी—

एक तरुण बगाली जो शायद नैहाटी के आसपास का निवासी था, कलकत्ते मे काम करता था। रेस खेलने की उसे बुरी आदत थी। इसके कारण कर्ज मे डूब गया। तगादा तथा काबुलीवाले की लाठी के डर से बर्मा भाग गया। उन दिनो बर्मा मे ऐसे अनेक अपराधी शरण लेते थे। उसका नाम मान लो दुलालचन्द था। वह बर्मा आकर मडाले मे नौकरी की तलाश करने लगा। एक लकडी के व्यवसायी के यहा मुनीमी करने लगा। हिसाब किताब करने की अच्छी जानकारी उसे थी। मालिक के परिवार मे वह स्वय, उसकी लडकी और दामाद थे। दामाद निकम्मा था। केवल बाबू बनकर घूमता था। अपने काम से मालिक को दुलालचद ने प्रसन्न कर लिया। हालत यह हो गयी कि हर काम मे मालिक दुलालचंद से सलाह किए बिना नही करता था। इसी प्रकार सारा काम-काज ठीक चल रहा था। छुट्टियों के दिन दुलालचद मालिक के घर अतिथि बनता। बातचीत होती, मालिक की कन्या के साथ हसी-मजाक होता। तीन-चार साल बाद दामाद का निधन हो गया। लडकी या श्वशुर को कोई विशेष शोक नही हुआ। साल भर बाद मालिक भी चल बसे। इस घटना के दो-तीन माह बाद मालिक की लडकी ने स्वयं उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखा। दुलालचद को स्वर्ग मिला। विवाह हो गया। अब तो वह मालिक है और पत्नी उसकी मुट्ठी मे। चार साल बाद उसने कहा कि बगाल मे मेरी काफी जमीन है, मकान है। उन्हे बेचकर चला आऊँ। वहा मेरी बूढी मा और विधवा बहन भी है। उनके लिए कुछ इन्तजाम करना होगा।

दुलालचन्द यह छिपा गया कि वह विवाहित है। उसके बच्चे हैं। पति को विदा करते समय बर्मी महिला ने तीन-चार हजार रुपये दिये। दूसरी ओर व्यवसाय से कैशबाक्स तोडकर दस हजार रुपये वह पहले ही गायब कर चुका था। सारी रकम लेकर वह चलता बना। स्टीमर घाट पर विदा के क्षण घडियाली आँसू बहाये गये। जाते समय उसने कहा, "दो-एक माह बाद आ जाऊगा।"

आगे शरत्चन्द्र ने कहा—"फिर कभी वह लौटकर बर्मा नही आया। उसके दिये पते पर महिला ने काफी खोज की थी, पर पता नही चला। कई वर्ष तक वह पति के वापस आने की प्रतीक्षा करती रही, पर वह नही लौटा। इस तरह की चार-पॉच घटनाए मैं जानता हू।"

सन् १९१३ ई० के आषाढ़ मास मे 'भारतवर्ष' पत्रिका का जन्म हुआ। उसके सचालक हरिदास चट्टोपाध्याय के घनिष्ठ मित्र प्रमथनाथ भट्टाचार्य थे। दोनो व्यक्ति मिलकर यह प्रयत्न कर रहे थे कि 'यमुना' से शरत्चन्द्र को भारतवर्ष मे खीच लाया जाय। प्रमथनाथ पर कितना ही प्रेम शरत् का क्यो न रहा हो, लेकिन फणिन्द्र नाथ से वायदा करने के कारण उसे खीचकर नहीं ले जा सके।

पिछली बार जब आये थे तब उन्होंने कहा था—"मेरे लिए कलकत्ते मे कोई जगह जल्द ठीक करो, तभी मे जीवित रह सकूगा वर्ना बर्मा मे पडे रहने पर किसी दिन सुनोगे कि शरत् चटर्जी तपेदिक रोग मे मर गये। हम लोग उन्हे आश्वासन नही दे सके, पर यह भरोसा दिया था कि भरसक प्रयत्न करूगा। यह भी कहा था कि अगर नौकरी छोडकर चले आओगे तो कोई न कोई व्यवस्था जरूर किया जायगा।

'भारती' या 'यमुना' कार्यालय मे शरत्चन्द्र न आने पावे, इस ओर से प्रमथनाथ होशियारी बरतते थे। केवल वे ही नही, 'भारतवर्ष' पत्रिका के सभी लोग समान रूप से सतर्क रहते थे। यहा तक कि धीरे-धीरे उनका दर्शन दुर्लभ हो गया। फणीन्द्र पाल के विरुद्ध उनको पट्टी पढाया गया कि शरत्चन्द्र की रचनाए छापकर फणीन्द्रनाथ काफी रकम पैदा कर रहे हैं, दूसरी ओर शरत्चन्द्र को सामान्य लाभ पाकर सतोष करना पड रहा है। अगर गुरुदास चटर्जी फर्म से आपकी पुस्तके छपे तो रेवडी की तरह बिकेगी। फणीन्द्र पाल ने 'बडी दीदी' छापकर अब तक कितनी प्रतिया बेच सका है?

व्यक्ति को जब आर्थिक सकट होता है तब उसकी मति मारी जाती है। दूसरो की सलाह वेद वाक्य जैसा प्रतीत होता है। इसी प्रकार शरत्चन्द्र ने एक ऐसा गन्दा काम किया जिसके कारण तत्कालीन साहित्यिको की दृष्टि मे बडा घृणित रहा। यह ठीक है कि जब उन्हे ज्ञात हुआ कि मेरा यह कार्य बहुत अनुचित रहा तब वे बार-बार क्षमा मागते रहे, पर गलती तो हो चुकी थी। उसे वापस नही किया जा सकता था।

एक दिन रात को फणीन्द्र पाल ने, शरत् तथा अपने सबसे बडे सहायक वकील सौरीन्द्र मोहन मुखोपाध्याय के पास जाकर कहा—"मेरे कार्यालय की अलमारी मे दो-तीन सौ प्रतिया 'बडी दीदी' पुस्तको की थी। उस वक्त मैं घर पर था। आफिस में मेरे एक रिश्तेदार मात्र थे। आज बारह बजे दिन के समय शरत् बाबू मेरी गैर मौजूदगी मे, एक झाबावाले को साथ लेकर मेरे आफिस मे आये और मेरे रिश्तेदार से बोले—'आलमारी खोलकर 'बडी दीदी' की सारी प्रतिया दे दीजिए। वह मेरी पुस्तक है, मैं ले जाऊगा।"

मेरे रिश्तेदार ने कहा—"आलमारी की चाबी मेरे पास नही है, फणी बाबू के पास है। उन्हे आने दीजिए तब पुस्तके ले जाइयेगा।"

इस जवाब पर उन्होने कहा—"मै इन्तजार नही कर सकता। अगर आप चाबी नही देगे तो आलमारी तोडकर सब ले जाऊगा। गुरुदास की दुकान पर अभी सब पुस्तके बिक जायेगी।"

इतना कहने के बाद उन्होने चाड लगाकर आलमारी को तोड डाला और सारी पुस्तके मजदूर के सिर पर लादकर, सीधे गुरुदास की दुकान पर ले गये।"

फणीन्द्र पाल ने आगे कहा—"पुस्तक छापने के पहले मेरी उनसे बातचीत हुई थी। उन्होने कहा था कि उन्हे पैसे की जरूरत नही है, फिर भी अगर वे मुह खोलकर कहते तो मैं उन्हे उनका पावना चुका देता। वे जितना मांगते, उतना देता। ऐसा न करके इस तरह पुस्तके उठा ले गये। क्या यह उनका उचित काम था? वे अपनी इच्छा से ऐसा कभी नही कर सकते थे। मेरे विचार मे किसी ने उन्हे भडकाया है।"

सारी बाते सुनने के बाद सौरीन्द्र मोहन ने कहा—"काम तो गलत हुआ हे। कल मै शरत्चन्द्र से इस

बारे मे बाते करूगा।"

दूसरे दिन सौरीन्द्र मोहन 'भारतवर्ष' के आफिस मे जाकर शरत् को बाहर बुला लाये। उन्होने कहा—"तुमने जो काम किया है, वह क्रिमिनल है, कानून के विरुद्ध, चोरी। वह पुस्तके फणीन्द्र पाल की सम्पत्ति है। उन्होने छपवाया है, कागज, दफ्ती, बाईण्डिग सारा खर्चा उनका है। तुमने उनके साथ कोई लिखा-पढी नही की है। अगर फणीन्द्र पाल दावा कर दे तो चोरी करने के अपराध मे तुम्हारे नाम सम्मन जारी हो सकता है। तुम्हारी कोई भी सफाई अदालत स्वीकार नही करेगी। अगर तुम्हे पैसो की जरूरत थी तो तुम फणी से कहते। उस पुस्तक के लिए जो भी रकम तुम मागते, वह देता। देने के लिए फणी बराबर प्रस्तुत था।"

कुछ देर तक सन्न रहने के बाद शरत् ने कहा—"यह बात दिमाग मे नही आयी। कृपया तुम फणी से कहना कि छपाई वगैरह मे उसे जितना खर्च करना पडा है, मैं सारी रकम वापस कर दूगा। मैं उसका नुकसान करना नही चाहता।"

सौरीन ने कहा—"फणी को रुपये नही चाहिए और पुस्तके उठा लाये हो, इसके लिए उसे कोई कष्ट नहीं है। मगर अब तक फणी जिस तरह तुम्हारे साथ पेश आया है यानी जब तुम्हे कोई नही पूछता था तब फणी ने तुम्हें अपने सिर पर बैठाया था। तुम्हारी कितनी इज्जत और खातिर वह और उसके घर वाले करते रहे, मगर तुम?"

इस प्रकार की अनेक बाते होती रही। शरत्चन्द्र ने कहा—"शास्त्र मे लिखा है—दारिद्य दोषो गुण-राशिनाशी। जो लेखक अन्य काम नही करते, लेखन से जीविका चलाते हैं, उनकी तरह अभागा कोई नही होता। अब मुझे तुम लोगो ने ऐसे जगह पर खडा किया है, जहां से अपनी इच्छा होने पर भी सभी जगह नही जा पाता। सबसे मिल नही पाता। गोकि इसके लिए किसी की मनाही या रोक टोक नही है। घटनाचक्र ऐसा चलता है कि भेट मुलाकात नही कर पाता।"

इस प्रकार फणी बाबू और शरत्चन्द्र के बीच खाई बढ़ती गयी। उन दिनो 'यमुना' मे धारावाहिक रूप से 'चरित्रहीन' छप रहा था। शरत्चन्द्र समय पर कापी नही दे पा रहे थे जिसके कारण पत्रिका के प्रकाशन में देर हो रही थी। यहां तक कि एक दिन ख्याति के शिखर चढी पत्रिका अनियमित हो गयी।

इधर शरत्चन्द्र के उदासीन होने पर फणीन्द्र पाल ने नये ग्रूप के लोगों को लेकर मित्र मडली बनायी थी। इनमें पुस्तकों के एक प्रकाशक (एम० सी० सरकार एण्ड सन्स) सुधीरचन्द्र सरकार 'यमुना' के अड्डे पर नित्य आते थे।

एक दिन सभी लोग 'यमुना' आफिस मे बैठे इस बात की शिकायत कर रहे थे कि शरत् बाबू समय से चरित्रहीन की कापी नही दे रहे हैं, इसलिए प्रकाशन में देर हो रही है। नये ग्राहक बन नही रहे हैं। शायद अगले साल पुराने ग्राहक भी नही रहेगे। इसमे भारतवर्ष वालों का हाथ है।

इस तरह जोरदार शब्दो मे आलोचना हो रही थी कि एक सज्जन दरवाजे के पास आकर खडे हो गये। सुधीरचन्द्र की तब तक शरत्चन्द्र की शिकायत जारी रही। वे शरत्चन्द्र को पहचानते नही थे। सभी लोगो को दरवाजे की ओर देखते देख सुधीरचन्द्र ने आगन्तुक से पूछा—"आपकी तारीफ?"

शरत्चन्द्र ने कहा—"मेरा नाम शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय है।"

अब सुधीरचन्द की हालत 'काटो तो खून नही' जैसी हो गयी। उन्होने आगे बढकर शरत् का स्वागत किया और आदर के साथ एक कुर्सी पर बैठाया।

शरत्चन्द्र ने कहा—"मैं आप लोगो की शिकायत सुन चुका हूँ। क्या करू, बताइये। मेरा स्वास्थ्य आप लोग देख रहे हैं। यही वजह है कि ठीक समय पर मैं कापी नही दे पा रहा हूँ। मैं यह समझता हूँ कि इससे आप लोगों को परेशानी हो रही है। कृपया आप लोग यह सूचना छाप दे कि अस्वस्थता के कारण लेखक कापी देने मे देर कर रहे हैं।"

सुधीरचन्द्र ने कहा—"बहरहाल, आप १५ तारीख तक अगर दे दे तो बडी कृपा होगी। भले ही २-३ पृष्ठ हो। समय से पत्रिका न मिलने पर ग्राहक झल्लाते हैं।"

शरत्चन्द्र ने कहा—"ठीक है, कोशिश करूगा।"

सुधीरचन्द्र सरकार से शरत् बाबू का इसी घटना के बाद से परिचय हुआ। सुधीर बाबू यहा नित्य

आते थे। फणीन्द्र पाल ने मौका देखकर एक तिकडम किया। उसने देखा कि 'भारतवर्ष' में एक के बाद एक रचना छप रही है, केवल 'चरित्रहीन' की कापी देने मे वहाना कर रहे हैं। गुरुदास के यहां से 'विराज वहू' और 'विन्दो का लल्ला' छप चुकी थी। फणीन्द्र पाल ने षडयन्त्र करके सुधीर को राजी किया कि यमुना तथा भारतवर्ष मे अब तक प्रकाशित पुस्तको के प्रकाशन का कंट्राक्ट कर लो। कापीराइट न लेकर रायल्टी पर लो ताकि हरिदास की मुनाफाखोरी में चोट पहुँचे।

यह ऐसा लोभनीय प्रस्ताव था जिसे शरत्चन्द्र इनकार नही कर सके। इसके अलावा उन्हें रुपयों की जरूरत थी। 'परिणीता', 'पण्डित महाशय', 'चन्द्रनाथ', 'काशीनाथ', 'नारी का मूल्य' और 'चरित्रहीन' नामक पुस्तकों के प्रकाशन का अधिकार सुधीरचन्द्र को दे दिया गया। 'परिणीता' 'चन्द्रनाथ' और 'नारी का मूल्य' यमुना मे छप चुके थे। 'काशीनाथ' 'अनुपमा का प्रेम', 'बाल्य स्मृति,' 'हरिचरन' कहानिया साहित्य में 'आलो ओ छाया', 'बोझा' 'यमुना' मे तथा 'मंदिर' कहानी कुन्तलीन पुरस्कार मे छपा था। 'चरित्रहीन' अभी 'यमुना' मे छप रहा था।

दुर्भाग्य से उन दिनों हरिदास चटर्जी देवघर मे स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे। वहा से वापस आने पर जब उन्हे यह समाचार मिला तब उन्होंने अपना माथा पीट लिया। तिस पर २५ प्रतिशत रायल्टी? लेकिन अब कोई चारा नही था।

शरत् ने कहा—"आप चिन्तित मत होइये! दूसरे संस्करण से आप.ही छापियेगा। प्रथम सस्करण बहुत जल्द समाप्त हो जायगा।"

इस घटना से शरत्चन्द्र को एक लाभ यह हुआ कि अब वे अपनी कोई पुस्तक कापी राइट बेचने को तैयार नही हुए। सभी पुस्तकें २५ प्रतिशत रायल्टी पर गुरुदास चटर्जी एण्ड संस छापने को मजबूर हुआ।

अचानक आफिस से तार आया। फलस्वरूप जल्दी मे शरत्चन्द्र पत्नी और भेलो को छोडकर चले गये। इन लोगों को बाद मे प्रमथ ने भेजा था।

बर्मा से प्रत्यावर्त्तन

कलकत्ता से वापस आने के बाद शरत्चन्द्र अपने अधूरे उपन्यासो को पूर्ण करने मे जुट गया। इन्ही दिनो 'गृहदाह', 'चरित्रहीन' और 'ग्रामीण समाज' को पूर्ण करना पडा। उसे समझते देर नही लगी कि उसकी रचनाओ के पाठक हैं और साहित्य मे उसकी कीमत है। समय का सदुपयोग करना उचित है।

ठीक इन्ही दिनों स्वदेशी आन्दोलन के प्रमुख नेता सुरेन्द्रनाथ सेन रगून आये। बंगाल का इतना बडा नेता आया है जानकर रगून का बगाली-समाज उनके स्वागत के लिए उठ खडा हुआ। खासकर 'बेंगल सोशल क्लब' के सदस्यो में उत्साह की लहर उत्पन्न हो गयी। उन लोगो ने समारोह की जिम्मेदारी योगेन्द्र सरकार को सौंप दी। सभी लोग यह जानते थे कि इस कार्य को सरकार ठीक से कर लेंगे। शरत् बाबू की इनसे घनिष्ठता है।

योगेन्द्र सरकार ने शरत् से समारोह की अध्यक्षता करने के लिए निवेदन किया। सरकार जितना आग्रह करते, उतना ही वे इनकार करते रहे। अन्त में शरत् को राजी होना पडा। शर्त यह हुई कि योगेन्द्र को अध्यक्ष के पास बैठना पडेगा। अगर अध्यक्षीय भाषण पढ़ने में नर्वस हो गया तो उनका भाषण सरकार को पढ़ना पड़ेगा।

समारोह मे शरत् की स्थिति विचित्र हो गयी। अच्छा लेखक कभी भी अच्छा वक्ता नही हो सकता। मालाओं का अम्बार गले मे पहनकर खडा होना दूर, वे ठीक से बैठ नही पा रहे थे। बड़ी कठिनाई से उस दिन उनका भाषण पूरा हुआ। केवल यही समारोह नही, बल्कि जीवन मे आगे भी वे सभाओं मे भाषण देने से बराबर कतराते रहे। अधिकाश जगह लिखित भाषण पढ़ते थे।

इस समारोह की अध्यक्षता करने के बाद शरत् ने यह महसूस किया कि इन फजूल के कामो मे केवल समय नष्ट होता है। इस घटना के बाद से जब कभी वे किसी गोष्ठी या सभा मे जाते तो थोडी देर बाद यह

कहकर चल देते—"घर पर कुछ जरूरी काम है। मुझे छुट्टी दीजिए। मैं जा रहा हूँ।"

लोगों को समझते देर नही लगती कि वे वास्तव में लिखने के लिए जा रहे हैं। पहले केवल दिन को लिखते थे और अब रात को भी लिखते हैं।

ग्रामीण समाज, वैकुण्ठ की वसीयतनामा, अरक्षणीया और श्रीकान्त उपन्यास लिखे जाने लगे। 'यमुना' से सम्पर्क बिगड जाने के कारण अब सारी रचनाए 'भारतवर्ष' पत्रिका मे छपने लगी। बगला-साहित्य मे शरत् का विजय-डंका बजने लगा।

इधर साहित्य मे वे दिग्विजय प्राप्त करने लगे, पर स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान न देने के कारण नाना प्रकार के रोगो के शिकार बनते गये। सन् १९१५ ई० के जनवरी माह से जिन लोगो को शरत् बाबू ने पत्र भेजा सभी के निकट अपनी बीमारी की सूचना देते रहे। कभी बवासीर, कभी हाथ का दर्द और कभी पैर फूलने की शिकायत रही। यहा तक कि बर्मा से चले जाने की इच्छा प्रकट करते रहे।

जब किसी ओर से आश्वासन नही मिला तो उन्होंने निश्चय किया कि एक साल की छुट्टी लेकर चला जाऊ। उन्होने छुट्टी के लिए आवेदन पत्र दिया।

बार-बार आर्थिक कठिनाइयो वाला पत्र पाने के बाद हरिदास चटर्जी ने लिखा—"जब आप काफी अस्वस्थ हैं तब वहां क्यो पडे हैं। कलकत्ता चले आइये। आपके लिए एक सौ रुपये मासिक प्रकाशन सस्था की ओर से देने की व्यवस्था करूंगा। आपके आने से मुझे भी सतोष रहेगा। मेरा दाहिना हाथ प्रमथनाथ बीमार होकर छतरपुर इलाज के लिए चला गया है।"

इस पत्र को पाते ही शरत् को भरोसा हो गया कि हरिदास उनका सबसे बडा सहायक हो गया है। हरिदास से यह बात तय हो गयी थी कि 'भारतवर्ष' मे निरन्तर लिखते रहने के लिए पचास रुपये दिये जायेगे। पुस्तक का सस्करण समाप्त होने पर शेष रकम एक मुश्त मे दी जायगी।

इसी बीच आफिस मे एक दुर्घटना हो गयी। इस बारे मे श्री सतीशचन्द्र दास ने लिखा है—

"फरवरी, सन् १९१६ मे शरत् दादा की हालत नाजुक हो गयी। अब किसी का इन्तजार किये बिना ३ अप्रैल को इस्तीफा देकर बगाल चले गये। शायद ११ अप्रैल को वे रवाना हुए थे। पाठक-पाठिकाओ को निश्चित तारीख नही बता पा रहा हूँ, क्योंकि त्यागपत्र देने के बाद कुछ दिनो तक वे बर्मा मे थे।

"लगभग अप्रैल के प्रथम भाग में वे कलकत्ता रवाना हुए। इस बार जाने के बाद वे फिर कभी बर्मा वापस नही आये।"

इस पत्र से साफ जाहिर है कि शरत् बाबू अपनी बीमारी की वजह से इस्तीफा देकर रवाना हुए थे। गिरीन्द्रनाथ सरकार और योगेन्द्र सरकार ने लिखा है कि अफसरो से मारपीट करने के बाद उन्होने इस्तीफा दिया था।

सतीशचन्द्र दास ने भी लगभग इन्ही बातो को दोहराया है—"कुछ दिनो से शरत् बाबू का काम-काज मे मन नही लग रहा था। आफिस मे काम का अम्बार लगता रहा। जाच करने के बाद आफिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उन्हे फटकारा था। यह उनकी पहली फटकार नही थी। इसके पूर्व भी उन्हे दो-तीन बार फटकारा गया था। लेकिन इस बार अधिक कडाई की गयी। गाली-गलौज से लेकर मारपीट तक हो गयी।"

अपने मित्र योगेशचन्द्र मजुमदार के प्रश्न करने पर शरत् बाबू ने अपने त्याग पत्र के बारे में कहा था—"आफिस मे नियुक्त होने के बाद से मेरी वहां प्रतिष्ठा बढ गयी थी। प्रतिष्ठा बढने का परिणाम भयकर हो सकता है, इसकी कल्पना मुझे नही थी। मैं जिस विभाग मे काम करता था, उस विभाग के सारे कठिन कार्य मेरे मत्थे पटक दिये जाते थे। मैं काम करने मे लापरवाही नही करता था। मन लगाकर श्रमपूर्वक सभी का निपटारा कर देता था। एक बार चटगाँव के बन्दरगाह को लेकर बर्मा और बगाल सरकार के बीच विवाह हुआ जो न जाने कितने वर्षों से चलता आ रहा था। यहा तक कि हमारा रेलवे बोर्ड भी उसमे फसा था। उन दिनो मैं वहा कार्यरत था। कई वर्षों मे यह केस काफी बडा हो गया था। कब इसका निपटारा होगा, समझ मे नही आ रहा था। यहा तक कि जिस व्यक्ति के जिम्मे यह काम था, अपने कर्म जीवन के बीच प्रारभ कर रिटायर्ड भी हो गया, पर इस केस का निपटारा नही हुआ। बाद मे पचतत्र में वर्णित चक्रधारी व्यक्ति की तरह वह कार्य मेरे मत्थे पटका गया। काफी श्रम कर मैंने उसे

[illegible] किया था।

लेकिन उनके बड़े साहब को निकालने के बाद भी, उन्हें कोई प्रमोशन तक नहीं मिली। बदले में एक दिन ऑफिस देर से पहुंचे तो कड़ी बातें सुनने को मिलीं। मैंने भी उलटकर जवाब दिया। बहस के बाद मारपीट हुई। सुपरिन्टेन्डेन्ट का [illegible] खून से [illegible] हो गया। दोनों व्यक्ति एकाउन्टेन्ट जनरल के पास शिकायत लेकर पहुंचे तो वह बहुत नाराज हुआ।

वहां से वापस अपने टेबल पर आकर तुरन्त मैंने त्याग-पत्र लिखा और ऑफिस से बाहर चला आया।

कलकत्ता आने का निश्चय शरत् बाबू काफी पहले ही कर चुके थे। दरअसल वे इलाज के लिए आने वाले थे और एक साल की छुट्टी के लिए आवेदन पत्र भी दे चुके थे।

लेकिन इस बीच यह घटना हो गयी। उन्हें तब यह भरोसा हो गया कि इतना ही वेतन तो कलकत्ते में रहकर जब साहित्य-सेवा से सम्मानपूर्वक प्राप्त कर सकता हूं तब विदेशी शासन की नौकरी क्यों करूं' इस घटना के कई दिन पूर्व तीन सौ रुपये तार मनिआर्डर से उन्हें प्राप्त हो गया था।

बर्मा की भूमि को सदा के लिए नमस्कार कर वे ११ अप्रैल को वहां से रवाना होकर कलकत्ता चले आये।

रवाना होने के काफी पहले ही उन्होंने अपने छोटे भाई प्रकाशचन्द्र को पत्र लिखकर सूचना दे दी थी कि मैं कलकत्ता आ रहा हूं सस्ते किराये पर तीन कमरे का कोई मकान या फ्लैट ठीक करके रखना।

प्रकाशचन्द्र ने अपनी बहन से कहा कि भाई साहब भाभी को लेकर आ रहे हैं। उनके लिए मकान चाहिए। शरत् बाबू की बड़ी बहन के मझले देवर की लड़की का विवाह हवड़ा स्थित बाजे शिवपुर में हुआ था। जब उनसे यह समाचार कहा गया तो उनके एक रिश्तेदार ने ६ नं० बाजे शिवपुर में उपयुक्त मकान ठीक कर दिया जहां आकर शरत् बाबू सपत्नीक रहने लगे।

बाजे शिवपुर में

हवड़ा शहर में 'बाजे शिवपुर' मुहल्ले में शरत् बाबू जब अकेलापन महसूस करने लगे तब अपनी बहन अनिला देवी को पत्र लिखा। अनिला देवी अपने पति पचानन मुखर्जी के साथ भाई से मिलने आयी। अग्रद्वीप से प्रकाशचन्द्र को बुला लिया। वेदानन्द स्वामी को सूचना दी गयी। आसनसोल से सुशीला को भी बुला लिया।

बंगला में 'बाजे' का अर्थ बेकार होना है। इस दृष्टि से 'बाजे शिवपुर' मुहल्ले के नाम को लेकर लोग विनोद करते थे। दरअसल शिवपुर का यह नाम इसलिए हुआ कि यहां अधिकतर घरों में लोग संगीत की साधना करते रहते थे। हमेशा गाना-बजाना होता था। बजाना यानी बजता रहता था, इसीलिए 'बाजे' नाम हुआ।

एक दिन किसी घर मे संगीत की साधना हो रही थी। बाहर खड़े शरत् बाबू उस संगीत का आनन्द ले रहे थे। इतने मे सामने से एक आदमी को आते देख उन्होंने पूछा—"माफ कीजिएगा। आपका नाम शायद अक्षय बाबू है? मेरा नाम शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय है। अभी हाल में बर्मा से आकर इस मुहल्ले मे बस गया हूँ।"

अक्षय बाबू इस नाम से परिचित थे। बड़े उत्साह के स्वागत करते हुए वे शरत् बाबू को अपने घर ले गये। इसी प्रकार पड़ोस के भूतनाथ बाबू से उनका परिचय हुआ जिनके बैठका में रात को शरत् बाबू शतरंज खेलते थे। भूतनाथ बाबू का बैठका काफी साफ-सुथरा और बड़ा था। कई आलमारियो मे पुस्तके थी। इन्ही अक्षय बाबू को अपने 'शेष प्रश्न' उपन्यास मे शरत् बाबू ने एक प्रमुख पात्र बनाया है।

साहित्यकार या कलाकार जब तक आर्थिक कठिनाइयो में रहता है तब तक वह तेजी से कार्य करता है। सम्पन्नता आते ही उसकी गति मन्द हो जाती है और उसका ध्यान दूसरी ओर चला जाता है। हवड़ा-निवासकाल मे शरत् बाबू की कुल आमदनी एक सौ रुपये थी। २०-२२ रुपये किराये मे देने के

वाद शेष रकम से गृहस्थी चलानी पडती थी। अफीम के खर्च के अलावा मेहमानो के आने पर भी व्यय करना पड़ता था।

इन्ही कारणो से वे तेजी से लिखते रहे। 'भारतवर्ष' मे जितनी रचनाए छपती, उसके बाद वह पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हो जाती थी। यहा रहते हुए वैकुंठ का वसीयतनामा, अरक्षरणीया, श्रीकान्त, देवदास, निष्कृति, एकादशी का वैराग्य, दत्ता, गृहदाह, देना-पावना, नव-विधान आदि 'भारतवर्ष' पत्रिका के लिए लिखा।

इसके अलावा साहित्य, नारायण, भारती, पूजा वार्षिकी, बंगवाणी, पल्लीश्री, बसुमती आदि पत्रिकाओ मे क्रमश. स्वामी, विलासी, मुकदमे का नतीजा, छवि, महेश, अभागी का स्वर्ग. हरिलक्ष्मी और परेश नामक कहानियां लिखी। ज्ञातव्य रहे कि यहां रहते हुए उन्होने पथेर दावी लिखना प्रारभ किया था।

इसी बीच शरत् बाबू ने अपने छोटे भाई प्रकाशचन्द्र का विवाह भागलपुर जाकर कराया। इस विवाह में पुरोहित बने थे—प्रसिद्ध कथाकार श्री शरदिन्दु बनर्जी।

काफी रचनाए छपने के बाद शरत् बाबू की लेखनी मे शिथिलता आने लगी। 'भारतवर्ष' की ओर से जलधर सेन, रेडियो पत्रिका की ओर से नलिनीकान्त सरकार, बगवाणी की ओर से रमाप्रसाद मुखर्जी रचना के लिए तगादा करने आते। उन दिनो बगला साहित्य मे शरत् बाबू की धूम मची हुई थी। जिस पत्रिका में उनकी रचना छपती, उस पत्रिका की ग्राहक संख्या तेजी से बढ जाती या बाजार मे आते ही उस पत्रिका के अक की लूट हो जाती थी।

'पथेर दावी' (पथ के दावेदार) उपन्यास के पीछे एक बडी घटना हो गयी थी। जिस प्रकार चरित्रहीन, पल्ली समाज को लेकर शरत् बाबू पर दोष लगाया गया था, ब्राह्मण की बेटी पढ़कर रूढिवादी ब्राह्मण नाराज हुए थे, गृहदाह के कारण ब्राह्म समाज के लोग नाराज हुए थे, ठीक उसी प्रकार 'पथ के दावेदार' उपन्यास के कारण एक तूफान पैदा हो गया था।

शरत्-साहित्य की धूम देखकर सर आशुतोष मुखोपाध्याय के सुपुत्र रमा प्रसाद मुखोपाध्याय, श्यामा प्रसाद मुखोपाध्याय और उमा प्रसाद मुखोपाध्याय अक्सर रचना मांगने उनके निकट जाते थे। 'बगवाणी' का प्रकाशन रमा प्रसाद मुखोपाध्याय कर रहे थे।

एक बार रमा प्रसाद बाबू जब रचना मागने गये तो देखा—शरत् बाबू गडगडा पी रहे हैं। रमा प्रसाद बाबू ने कहा—"बगवाणी के लिए कोई रचना दीजिए।"

शरत् बाबू ने कहा—"कोई रचना नही है। एक तो मैं 'भारतवर्ष' के लिए नियमित लिख नही पा रहा हूँ तब दूसरों को क्या दूँ?"

यह बात सुनकर रमा प्रसाद बाबू शरत् बाबू के टेबिल के पास जाकर यह देखने लगे कि कोई रचना लिखकर रखी तो नही है। अचानक उनकी निगाह एक कापी पर पडी जिसमे अपूर्ण रचना थी। उस कापी को देखते ही उन्होने कहा—"आपने कहा कि कोई रचना नही है। इस कापी पर तो आपने कुछ लिखा है।"

शरत् बाबू ने कहा—"इस उपन्यास को आप छाप नहीं सकेगे। केवल आप ही नही, बल्कि किसी को भी छापने का साहस नही होगा। जब कोई छापेगा नही तब लिखने से लाभ? यही वजह है कि उतना लिखकर छोड दिया। इधर एक अर्से के कुछ नही लिखा।"

रमा प्रसाद बाबू ने कहा—"आपकी जो रचना कोई छापने का साहस नही कर सकेगा, उसे हमे दीजिए। हम छापेगे।"

"छापोगे? छापने पर सजा होगी?"

"सजा होगी तो होगी। मुझे दीजिए, मैं इसे 'बगवाणी' मे छापूगा।"

"ठीक है तब तुम्हें दूगा। यह एक बडा उपन्यास होगा। इसका नाम है—पथ के दावेदार। तुम्हारी पत्रिका मे लगातार काफी दिनो तक छपेगा।"

इसके बाद 'बगवाणी' मे 'पथ के दावेदार' धारावाहिक रूप मे छपने लगा। लम्बे अर्से तक उस पत्रिका मे यह उपन्यास छपता रहा। इस उपन्यास की पाण्डुलिपि लेने के लिए बगवाणी के मैनेजर कुमुद

बाबू जाते थे। यहा तक कि रमाप्रसाद बाबू, श्यामा प्रसाद बाबू और उमाप्रसाद बाबू को भी आना पडता था।

काफी दिनो तक जब धारावाहिक रूप मे यह उपन्यास छपा तब एम० सी० सरकार एण्ड सन्स की ओर से यह समाचार आया कि इस उपन्यास को हम अपनी संस्था से प्रकाशित करना चाहते हैं। इसके लिए एक हजार रुपये अग्रिम भेज रहे हैं।

शरत् बाबू ने कुमुद बाबू से कहा—"अब तक यह उपन्यास जितना छप गया है, इसकी फाइल ठीक करके आप एम० सी० सरकार को दे दीजिए। वे लोग पुस्तक छापेंगे।"

कुमुद बाबू ने फाइल तैयार कर प्रकाशक के पास भिजवायी। एक दिन कुमुद बाबू और रमा प्रसाद बाबू शरत्चन्द्रजी के निवास स्थान पर बैठे आपस मे बातचीत कर रहे थे, इतने मे अपने साथ एक वकील को लेकर एम० सी० सरकार प्रतिष्ठान के मालिक वहां हाजिर हुए। उन्होने शरत्चन्द्र के सामने बगवाणी की फाइल रखते हुए कहा—"शरत् बाबू, मेरे वकील का कहना है कि बंगवाणी में प्रकाशित उपन्यास को हुबहू छापने पर हम परेशानी मे फंस जायेगे। इसीलिए इस फाइल मे कई जगह स्याही से निशान लगाया गया है ताकि आप इन स्थानो पर परिवर्तन कर दे।"

शरत् बाबू ने कहा—"मैं अपने उपन्यास मे एक शब्द भी बदलना पसन्द नही करूंगा। चाहे तुम लोग छापो या न छापो।"

—तब तो हम लोग इसे नही छाप सकेगे।

—ठीक है। तुम लोगो को छापने की जरूरत भी नही है। तुमने जो रकम दी है, उसे मैं लौटा दूंगा।"

इन लोगो के जाने के बाद रमा प्रसाद बाबू ने कहा—"अगर इस उपन्यास को कोई छापने को तैयार न हो तो आप हमे दे दीजिए। हम छापेगे।"

शरत् बाबू ने कहा—"ठीक है, तुम्ही छापो।"

पुस्तक छपने के साथ ही शरत् बाबू हवडा से अपनी बहन के गाव के पास बनवाये नये मकान मे चले आये थे। पुस्तक के प्रकाशक का नाम था—उमा प्रसाद मुखोपाध्याय।

अचानक एक दिन कलकत्ता पुलिस कोर्ट के पब्लिक प्रासिक्यूटर सर तारकनाथ साधु रमाप्रसाद बाबू के पास आकर बोले—"बगवाणी पत्रिका पर सरकार की नजर पड गयी है। इसमें प्रकाशित 'पथ के दावेदार' के बारे मे एडवोकेट जनरल बी० एल० ने सरकार को रिपोर्ट दी है कि राजद्रोह के मामले मे आप पर मुकदमा चलाया जाय।

इसी बीच 'पथ के दावेदार' उपन्यास छपकर बाजार मे आया और कई दिनो के भीतर तीन हजार प्रतिया बिक गयी।

तारक बाबू को जब मुकदमा चलाने के लिए तैयारी करने को कहा गया तब उन्होने सरकार को सूचित किया—इस पुस्तक के लेखक बगाल के सर्वजन प्रिय लेखक हैं और इस पुस्तक के प्रकाशक सर आशुतोष मुखर्जी के सुपुत्र हैं। अगर इन्हे सजा दी गयी तो इसमे सरकार का अहित होगा। मेरा सुझाव है कि इसके बदले इस पुस्तक को जब्त कर लिया जाय। यही सम्मानजनक कार्य होगा।

इस सुझाव को पढ़ते ही सरकारी तन्त्र चौंक उठा। सुझाव ठीक था। तुरत पुस्तक जब्त करने का आदेश दिया गया। रमा प्रसाद बाबू को यह पहले से ही ज्ञात हो गया था कि पुस्तक जब्त होगी। पुलिस के आने के पहले ही शेष पुस्तकें पुस्तक विक्रेताओ तथा विभिन्न शहरो मे भेज दी गयी थी। छापे के समय पुलिस को एक भी पुस्तक नही मिली। यहा तक कि उस वक्त प्रकाशक महोदय भी उपस्थित नही थे।

पुलिस ने कहा—"आपके मकान की तलाशी कैसे लूँ। पुस्तके जितनी हैं, दे दीजिए।"

रमा प्रसाद बाबू ने कहा—"यहा एक भी नही है।"

—तब कहा है?

—लगता है सब बिक गयी।

—जुमा-जुमा आठ दिन नही हुए और सब बिक गयी? कम-से-कम एक प्रति आप अवश्य दे ताकि सरकार को जवाब दिया जा सके।

इस आग्रह पर रमा प्रसाद बाबू ने अपनी बहन के यहा से एक प्रति मगाकर दे दी।

जब्ती के इस आदेश से न केवल बगाल बल्कि भारत के विभिन्न शहरो मे तहलका मच गया। उमा प्रसादजी ने आगे 'पथ के दावेदार' उपन्यास को नही छापा, परन्तु जनता मे बढती हुई माग को देखकर अज्ञात प्रेसो ने खूब छापा। तीन रुपये की पुस्तक १०० रुपये मे बिक गयी थी। यहा तक कि लोग उसकी कापी उतारकर पढते थे।

काफी दिनो बाद पुलिस कमिश्नर कलसन साहब ने एक बार शरत् बाबू से कहा था—"शरत् बाबू, आपने इस पुस्तक को लिखकर हमे परेशान कर डाला। हम विप्लवियो को पकडने के लिए जिस-जिस अड्डे पर गये, वही 'पथ के दावेदार' की प्रति देखी। इस उपन्यास के पीछे सभी विप्लवी जैसे दीवाने हैं।"

'पथ के दावेदार' जब्त हो जाने के कारण शरत् बाबू काफी क्षुब्ध हो उठे थे। दरअसल बाजे शिवपुर मे रहते समय देशबन्धु चित्तरंजन दास के अनुरोध पर वे काग्रेस मे आये थे। हवडा काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष भी थे, परन्तु वे काग्रेस के कुछ सिद्धान्तो को नही मानते थे। चरखा कातने या अहिसा से स्वराज्य होगा, इस पर विश्वास नहीं करते थे। विप्लवियो के प्रति उनकी आन्तरिक श्रद्धा थी। सामतावेडा मे रहते हुए न जाने किंतने विप्लवियो की सहायता करते रहे।

उन्होने सोचा कि अगर रवि बाबू सरकार के इस अनैतिक कार्य के विरुद्ध कुछ लिख दे तो सरकार 'पथ के दावेदार' पर से प्रतिबध हटा लेगी। इस आशा से उन्होने पथ के दावेदार की एक प्रति तथा अपना निवेदन रवि बाबू के पास भेजा।

पुस्तक पढने के बाद रवि बाबू ने निम्न पत्र शरत् बाबू के पास भेजा था—

कल्याणीयेषु,

शान्ति निकेतन

तुम्हारा 'पथ के दावेदार' पढ चुका। यह पुस्तक उत्तेजक है और अग्रेज शासन के विरुद्ध पाठको के मन को अप्रसन्न कर देता हैं। लेखक के कर्त्तव्य के अनुसार भले ही यह दोष न हो, क्योंकि अगर लेखक अग्रेज-राज गर्हणीय समझता है तो वह चुप नही रह सकता। परन्तु चुप न रहने पर जो विपदा है, उसे स्वीकार करना चाहिए। अग्रेज हमे क्षमा कर देगे, इस जोर के आधार पर हम उनकी निन्दा करे, इसमे पौरुष नही है। मैं विभिन्न देशो की यात्रा कर आया हूँ, इससे जो अभिज्ञता हुई, उससे यह देखा कि एक मात्र ब्रिटिश सरकार को छोडकर स्वदेशी या विदेशी प्रजा के वाक्य या व्यवहार मे विरुद्धता इतने धैर्य के साथ सहन नही करता। अपनी ताकत के भरोसे नही, मगर दूसरो की सहिष्णुता के बल पर अगर हम विदेशी शासन के बारे मे मनमानी आचरण दिखाने का साहस दिखाते हैं तो हमारे लिए पौरुष का विडम्बना मात्र होगा, इससे अग्रेज-राज के प्रति हम अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं, अपने प्रति नही। राज्य-शक्ति के पास ताकत है, उसके विरुद्ध कर्त्तव्य के निमित्त यदि खडे होते हैं तो दूसरे पक्ष के पास चारित्रिक-शक्ति अर्थात् आघात के विरुद्ध सहिष्णुता का जोर रहने चाहिए। लेकिन हम इसी चारित्रिक-शक्ति का दावा अंग्रेज-राज से करते हैं, अपने निकट नही। इससे यह प्रमाणित होता है कि मुह से जो चाहे, कह ले, अपने अगोचर हम अग्रेजो की पूजा करते हैं, अग्रेजो को गाली देकर किसी भी सजा की आशा न करने के द्वारा उसी पूजा का अनुष्ठान करते हैं। शक्तिमान की ओर से देखने पर तुम्हे कुछ न कहकर तुम्हारी पुस्तक को जब्त कर लेना, क्षमा-दान करना है। अन्य कोई प्राच्य या प्रतीच्य विदेशी राजा के द्वारा यह सभव न होता। अगर हम राजा होते तो ऐसा नही होता, इसके उदाहरण हमारे भारतीय जमीदारों और राजाओ के बहुविध व्यवहार मे नित्य देखने को मिलते हैं। इसका यह अर्थ नही कि हमे कलम बन्द कर देना चाहिए? मैं यह नही कहना चाहता—सजा को स्वीकार करते हुए कलम चलाते रहना चाहिए। जब किसी देश मे राजशक्ति का वास्तविक टकराव प्रजाशक्ति से हुआ है, वहा ऐसी घटनाए हुई हैं—राज-विरुद्धता आराम से निरापद रूप मे नही रह सकता—यह बात जानते हुए घटनाए हुई हैं।

अगर तुम किसी पत्र-पत्रिका मे यह बात लिखते तो इसका प्रभाव स्वल्प और क्षणिक होता, मगर तुम्हारी तरह का लेखक कहानी के माध्यम से जो कुछ लिखेगा, उसका प्रभाव निरन्तर बना रहेगा—देश-काल में उसकी व्याप्ति की विराम नही होगी—अपरिणत वय के बालक-बालिका से लेकर वृद्ध भी उसके प्रभाव मे आ जायेगे। ऐसी हालत मे अग्रेज-राज तुम्हारी पुस्तक का प्रचार बन्द न कर देता तो यह समझ लेने मे कठिनाई न होती कि साहित्य मे तुम्हारी शक्ति तथा देश मे जो प्रतिष्ठा है, उसके

प्रति अवज्ञा या अज्ञता उसे है। शक्ति को आघात पहुँचाने पर उसके प्रतिघात को सहने के लिए तैयार रहना ही पडेगा। इसी वजह से उस आघात का मूल्य, आघात के गुरुत्व को लेकर विलाप करने पर उस आघात के मूल्य को चौपट कर देने के बराबर होगा। इति २७ माघ, १३३३ बंगाब्द।

तुम लोगों का
श्री रवीन्द्रनाथ टाकुर

इस पत्र को पढ़कर शरत् बाबू तिलमिला गये। महाकवि ने अपने मन के सत्य को लिखा था। सत्य सर्वदा कडवा होता है। इस पत्र के कारण शरत् बाबू इतने क्षुब्ध हो गये कि उन्होंने तुरत उमा प्रसाद मुखोपाध्याय को पत्र लिखा और फिर रवि बाबू के पत्र का उत्तर लिखा।

शरत् बाबू का पत्र पाते ही उमा प्रसाद बाबू तुरत आये। रवि बाबू के नाम लिखे पत्र को पढ़ने के बाद देर तक दोनो व्यक्ति आपस में विचार-विमर्श करते रहे। अन्त में यह तय हुआ कि रवि बाबू के नाम लिखे पत्र को न भेजा जाय। रवि बाबू का तथा शरत् बाबू का जवाब वाला दोनों पत्र लेकर उमा प्रसाद बाबू वापस चले आये।

बाजे शिवपुर में शरत् बाबू किस स्थिति मे रहते थे, इसकी चर्चा करते हुए श्री मनोज रंजन बंद्योपाध्याय ने लिखा है—"सिर पर बडे-बडे बाल, छोटी दाढ़ी लिए वे शरतचन्द्र शीट की मोदी वाली दुकान पर आकर खडे हुए। दुकानदार शरतचन्द्र शीट ने सोचा—शायद कोई मुसलमान ग्राहक है। पूछा—"कहिये, क्या चाहिए?"

—महीन चावल है?

—दादखानी?

—नही, दूसरा कोई महीन चावल।

—महाशय का नाम?

—मुझे शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय कहते हैं।

प्रणाम। आइये, बैठिये। हुक्का पीते हैं?

—जी हां।

बस एक ही दिन मे दुकानदार से शरत् बाबू की घनिष्ठता हो गयी। यहा तक कि नित्य अधिक रात तक उसके साथ ताश खेलते थे। आगे चलकर शरतचन्द्र शीट गर्व से कहा करता था—"अजी जनाब, इस मुहल्ले मे जब वे आये तो सबसे पहले मुझसे मित्रता हुई थी। उन्हें ताश खेलने का बेहद शौक था। कभी कभी तीसरे पहर आते और आधी रात तक जमे रहते थे। हम लोग ऊब जाते थे, पर वे लोग खेलते रहते थे। हुक्का बहुत पीते थे। पूछने पर वे कहते—"अफीम, चाय और हुक्का बिना मेरा दिमाग नही खुलता। नया-नया आया हूँ, किसी से परिचय नहीं है। आखिर कहां अड्डा जमाऊ, इसीलिए तुम्हारी दुकान पर आता हूँ।"

यह आश्चर्य की बात है कि मुहल्ले के मोदी के साथ उनकी इतनी घनिष्ठता हो गयी थी, पर अन्य लोगो से परिचय तक नही हुआ था। मैंने बराबर गौर किया है कि वे जरा शर्मीले थे। आख मे आख मिलाकर बात नही कर पाते थे। हमेशा आखे झुका लेते थे। बाजे शिवपुर मे अभी तक गाव की संस्कृति का वास है। यही वजह है कि 'नामगोत्रहीन' इस किरायेदार के प्रति परिचय प्राप्त करने की इच्छा किसी को नही थी। इनके बारे मे तरह-तरह की अफवाहे थी। शरत् बाबू को जब कोई अपने यहाँ निमंत्रित करता था तब वे उनके यहा जाते जरूर थे, पर कही भोजन नही करते थे। शहर में इस आदत को भले ही बुरा नही माना जाता, पर गाव के लोग इसे पसन्द नही करते थे।

शरत् बाबू जिस मकान मे रहते थे। उसके कमरे बहुत छोटे थे। आगन भी छोटा था। वे अपने पडोसी हरिचरण या भूतनाथ बाबू के बैठका मे अधिकतर बैठते थे। इनके घरो मे सदस्य कम थे, मकान काफी निर्जन और साफ-सुथरा था। बैठका या बाहर चौतरे पर एक बेंच रखकर आधा लेट जाते थे। कभी फरशी पीते या कोई पुस्तक पढ़ते रहते। कभी-कभी मित्रो के साथ बातचीत करते थे। हरिचरण बाबू का स्थानीय साहित्यिको से परिचय था। इसी कारण इन लोगो मे काफी घुटती थी।

'शायद इन्ही दिनो 'वसुमती' कार्यालय के श्री सतीश मुखर्जी ने ग्रथावली छापने का प्रस्ताव रखा। इससे उन्हे काफी लाभ हुआ।

हमारी घनिष्ठता इतनी बढ गयी कि उन्होने अपनी पुस्तक 'अरक्षणीया' की भूमिका मुझसे लिखवायी थी।

इंगलैंड के 'टाइम्स' पेपर मे इनकी पुस्तको की प्रशसा प्रकाशित हुई थी। यहा तक कि कुछ पुस्तको के अनुवाद की चर्चा हुई थी।''

इन दिनो शरत् बाबू की आर्थिक स्थिति काफी सुदृढ़ थी। ग्रथावली के प्रकाशन तथा कहानियो की फिल्म से इतनी आमदनी हुई कि उन्होने सामता गॉव मे जमीन खरीदकर मकान बनवा लिया।

कभी-कभी बुद्धिमान व्यक्ति भी घमण्ड में आकर गलती कर बैठते हैं। हवडा मे रहते समय शरत् बाबू से एक ऐसी गलती हो गयी थी। अगर उस समय घमण्ड मे आकर वे वह गलती न करते तो शायद बगाल के अधिकांश लेखको के साथ-साथ उनका भी भला होता। इस घटना के बारे मे श्री सौरीन्द्र मोहन मुखोपाध्याय ने लिखा है—

''सन् १९१७-१८ की बात है। बंधुवर प्रेमाकुर आतर्थी एक अर्से से बेकार थे। मन लायक नौकरी उन्हे नही मिल रही थी। एक दिन वे 'भारती' आफिस मे आए। बडे प्रसन्न थे। हाथ मे 'गोल्ड फ्लेक्स' सिगरेट का एक डिब्बा था। आते ही बोले—''आज की आमदनी अच्छी रही। पूरे पचास रुपये नगद मिले।'

मैंने पूछा—''कहा से मिले?''

प्रेमाकुर ने कहा—''बाजीकर'' पुस्तक क्रो कापी राइट बेच दिया—गुरुदास चटर्जी एण्ड सस को। उसके लिए पूरे पचास रुपये मिले।

यह बात सुनकर मैं चौंक उठा—एक पुस्तक को पचास रुपये पर कापी राइट बेच दिया।

बाद मे इस बारे मे रवीन्द्रनाथ जी के साथ बाते हुईं। उन्हे सभापति बनाकर 'आथर्स असोसियेशन' संस्था बनाने की योजना बनायी। यह तय हो गया कि इस सस्था के सभापति रवि बाबू होगे और उपसभापति शरत्चन्द्र तथा मत्री होगे—चारुचन्द्र बनर्जी। शेष लोग कार्य समिति के सदस्य होगे। साथ ही यह भी निश्चित हो गया कि कोई भी लेखक इस सस्था का सदस्य बन सकता है। लेकिन सदस्य बैलेट पेपर के आधार पर बनाया जायगा ताकि अयोग्य लेखकों को सदस्य न बनाया जा सके। दो रुपये मासिक चन्दा देना पडेगा और प्रवेश फीस पचासरुपये होगा। प्रवेश फीस पाच महीने के भीतर पाच किश्तो मे चुकाना पड़ेगा। अगर बीच मे कोई किश्त चुकाने मे चूक हो गयी तो सारी रकम जब्त। उस सदस्य को पुन. नये सिरे से सदस्य बनना पडेगा। असोसियेशन से सदस्यो द्वारा लिखित पुस्तको का निर्वाचन कर उसे प्रकाशित किया जायगा। सदस्य को १५ प्रतिशत रायल्टी दी जायेगी। प्रकाशन के पूर्व कम-से-कम पचास रुपये अग्रिम दी जायेगी। जब सस्करण समाप्त होगा तब हिसाब साफ करते समय इस रकम को काट लिया जायगा।

सारी व्यवस्था हो गयी। एटर्नी आफिस मे ले जाकर इसे पक्का कराना था। ठीक इन्ही दिनो एक दिन शरत्चन्द्र 'भारती' आफिस मे आये और कहा—प्रवेश फीस १०० रुपये करनी होगी और इसे दो किश्तो मे चुकानी पडेगी। अगर यह नियम बनाओगे तो मैं तुम लोगो के असोसियेशन मे रहूगा, वर्ना मैं इसमे कोई सहयोग नही दूगा।''

यह बात सुनकर हम लोग उनसे बहस करने लगे। कहा—''आज गुरुदास चटर्जी एण्ड सन्स के कारण अपनी गरीबी भूल गये हो वर्ना १०० रुपये की क्या कीमत है—एक दिन इसका अनुभव करते थे।''

उन्होने कहा—''मैं तुम लोगो से बहस नही करना चाहता। मैंने जो कहा, अगर इसे तुम लोग नामजूर करते हो तो मैं इस असोसियेशन से कोई सम्पर्क नही रखना चाहता।''

इतना कहकर वे चले गये।

उनके जाने के बाद हम लोग रवीन्द्रनाथ के पास गये। सारी घटना कहने के बाद मैंने क्रोध के साथ कहा—''शरत सदस्य नही बनना चाहता हो न बने। उसे छोड़कर हम अपना असोसियेशन चलायेंगे।''

रवीन्द्रनाथ ने कहा—''पागल हो गये हो क्या? आम लोगो को क्या जवाब दोगे। लोग क्या सोचेंगे? 'आथर्स असोसियेशन' बना रहे हो और उस असोसियेशन मे शरत् न रहे? जब वे अपनी जिद्द पर अड़े हैं तब तो लाचारी है।''

केवल इसलिए हम अपना 'आथर्स असोसियेशन' नही बना सके वर्ना हम प्रकाशकों के शोषण से बच सकते थे। आज की तरह हमारा शोषण न होता। अनेक लेखक शरीफो की तरह जिन्दगी गुजारते।''

शरत् बाबू ने किसी के बहकावे मे आकर या मन स्थिति खराब रहने के कारण अपने मित्रों को नाराज कर दिया जबकि वे अत्यन्त सवेदनशील व्यक्ति रहे। किसी का कष्ट देखकर उसकी सहायता के लिए दौड जाते थे। भागलपुर से बर्मा तक उनके बारे मे ऐसी अनेक कहानियां हैं जिसके बारे में उनके मित्रो ने लिखा है।

बाजे शिवपुर मे वे लोगो को बराबर आर्थिक सहायता देते रहे। मुफ्त मे लोगो की चिकित्सा करते रहे और पथ्य के लिए जेब से पैसे देते थे। स्वभाव के अत्यन्त विनोदी थे। ऐसे व्यक्ति से क्यों ऐसी घटना हो गयी, इसका उत्तर किसी ने नही दिया।

हावडा मे रहते समय उनकी मित्रता देशबधु चित्तरंजन दास से हुई। देशबन्धु के कारण वे राजनीति मे आये, पर उसमे अपने को हमेशा अयोग्य पाया।

कांग्रेस में योगदान

राजनीति मे आने के पूर्व श्री चित्तरजन दास बगाल के मूर्धन्य बैरिस्टर और कवि थे। उन दिनों वे 'नारायण' पत्रिका के संचालक थे जिन दिनों शरत्चन्द्र ख्याति के शिखर पर चढ़ रहे थे।

चित्तरजन दास ने अपनी पत्रिका के लिए शरत्चन्द्र से एक कहानी मागी। उन्होने लिखकर भिजवाते हुए सूचित किया कि कहानी का शीर्षक आप अपनी इच्छा के अनुसार रख लें। यह कहानी चित्तरजन दास को इतनी पसन्द आयी कि उन्होने एक ब्लैंक चेक हस्ताक्षर सहित भेजते हुए लिखा कि इस कहानी की कीमत आक नही सका। आप अपने इच्छानुसार रकम लिखकर इस कहानी का पुरस्कार ग्रहण करे। कहानी का शीर्षक मैंने 'स्वामी' रखा है।

इसी सूत्र से चित्तरजन दास से शरत् बाबू का परिचय हुआ और क्रमश आपस मे मैत्री बढती गयी।

सन् १९२१ ई० मे महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन प्रारभ किया। स्कूल-कालेज छोडकर लड़के, सरकारी नौकरी छोडकर कर्मचारी और अदालत छोडकर वकील-बैरिस्टर बाहर चले आये। इन लोगों ने गाधीजी के आन्दोलन मे सहयोग दिया।

अपने मित्र चित्तरजन दास को काग्रेस मे शामिल होते देख शरत् बाबू भी साहित्य-सेवा छोडकर आजादी की लडाई मे कूद पडे। चित्तरजन जी तब तक देशबधु नही हुए थे। चित्तरजन दास को अपना नेता मानकर शरत् बाबू उनकी बगल मे आ खडे हुए।

देशबधु चित्तरजन दास ने बगाल का नेतृत्व ग्रहण किया। उनकी सलाह पर शरत्चन्द्र ने हवडा जिला मे काग्रेस के सगठन और प्रचार का नेतृत्व ग्रहण किया।

शरत्चन्द्र तन-मन-धन से कागेस के कार्य मे लग गये। हवडा जिले के अधिकांश लोग आपके साथ हो लिए। यही नही, वे हवडा जिला काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष बने। आगे चलकर बगाल प्रात तथा अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सदस्य निर्वाचित हुए। उनका महत्व काग्रेस मे काफी बढ गया।

देशबधु के सहयोगियो मे डा० यतीन्द्र मोहन दास गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस, हेमन्त कुमार और निर्मल चन्द्र थे। काग्रेस कमेटी मे जब कोई कठिन समस्या आ जाती तब सभी सदस्य अपना सिर धुनते रहते। उस वक्त शरत्चन्द्र चाय की प्याली का श्राद्ध करते हुए बर्मी चुरुट पीते रहते। एकाएक उनकी समस्या का हल बता देते। यही वजह है कि देशबधु उन्हे बहुत चाहते थे।

मीटिंग से वापस लौटते वक्त रात हो जाती। ट्राम-बस मिलती नही थी। किराये की टैक्सी पर

थके-मादे लेटे हुए घर वापस आते। उन्हें टैक्सी पर इस हालत मे आते देखकर लोग कहते—"आज कलवरिया मे नेताजी ने छककर पेग चढ़ाया है।"

इस तरह के व्यग्य वे स्वय सुनते पर कोई जवाव नही देते थे। अपनी बदनामी की तनिक भी चिन्ता उन्हे नही थी।

शरत् वाबू को राजनीति मे उतरते देख कई साहित्यिक मित्रो तथा शुभकाक्षियो नें मना किया था। उन्होने कहा था—"आप जैसे प्रतिभावान व्यक्ति राजनीति मे जाकर चौपट हो जायगा। यह बडी गंदी जगह है। एक साहित्यिक को साहित्य छोड़कर राजनीति मे नही जाना चाहिए।"

शरत्चन्द्र ने कहा था—"आप लोगो का ख्याल गलत है। वर्तमान समय मे प्रत्येक भारतीय को राजनीति मे भाग लेना चाहिए। जबकि हमारा देश पराधीन है। इस देश का आन्दोलन मुक्ति आन्दोलन है। इस आन्दोलन मे प्रत्येक साहित्य-सेवी को भाग लेना चाहिए।"

दरअसल काग्रेस मे आने के पहले ही वे स्वतत्रता आदोलन मे भाग ले चुके थे। ६ अप्रैल सन् १९१९ के दिन 'रोलेट एक्ट' पास होने के विरुद्ध देशव्यापी हडताल का आह्वान किया गया था। इस दिन कलकत्ता में जो जुलूस निकला था, उसमे शरत्चन्द्र ने भाग लिया था। इनके साथ चलने वाले कई लोग पुलिस की गोली से मर गये। इस बारे मे उन्होने स्वय लिखा है—"६-७ आदमी 'जान गया' कहते हुए गोली खाकर मर ग्ये, मगर मैं भागा नही। मुझे गोली नही लगी थी। इसके बाद एक अर्से तक सोचता रहा कि मशीनगन की गोली मुझे क्यो नही लगी?"

शरत् बाबू राय बहादुर, राय साहब, सर आदि उपाधियो से बहुत चिढते थे, क्योंकि यह उपाधिया ब्रिटिश सरकार देती थी। एक बार देशबधु चित्तरजन दास ने कहा था—"रवीन्द्रनाथ ने जब नाइटहुड की उपाधि ली तब मैं काफी रोया था।" जालियावाला बाग का हत्याकाण्ड के बाद जब उन्होने उस उपाधि को त्याग दिया तब शरत् बाबू बडे प्रसन्न हुए थे, पर उन्हे इस बात का कष्ट था कि आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय ने अपनी उपाधि को नही छोडा।

स्वतत्रता-आन्दोलन के समर्थन के लिए शरत् बाबू एक बार रवि बाबू के पास गये थे। रवि बाबू ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार नही किया। शरत् बाबू नाराज होकर चले आये। मित्रो से उन्होने रवि बाबू के बारे मे कुछ कहा था जिसके कारण असंतोष की सृष्टि हुई।

शरत् बाबू को जब यह मालूम हुआ कि रवि बाबू के विरुद्ध उन्होने जो बाते कही थी, सुनने वालो मे से किसी ने जाकर रवि बाबू की चुगली कर दी है तब उन्हें बहुत दुःख हुआ।

शरत् बाबू ने तुरत महाकवि के नाम पत्र लिखा—"लडकी की जबानी सुना कि आप मुझ पर अत्यन्त असतुष्ट हैं। उत्तेजना के वक्त क्रोध मे आकर आपके बारे में कुछ झूठी बाते मुह से निकल गयी होगी, पर जो व्यक्ति आपके पास शिकायत लेकर गया था, उसने भी कम अपराध नही किया है।"

. इग्लैण्ड से वापस आने के बाद आप बहुत बदल गये हैं तथा बगाल के नागरिकों के प्रति वह स्नेह नही है। चरखा, नान को आपरेशन के प्रति आपकी आस्था और विश्वास नही है।

शायद इन्ही बातों को मैंने कहा था। शायद मेरे मन मे यही भाव था। लोग गलत समझते हैं तो समझा करे।

आपके निकट मैंने अपराध किया है। यह मेरी पहली गलती है, कृपया क्षमा कीजिएगा। आपके अलावा मैं अन्य किसी बडे आदमी के घर बिलकुल नही जाता। मेरा इस दरवाजे पर अपनी गलती के कारण जाना बन्द हो जायगा, जानकर दुःख हो रहा है।

मैं आपके शिष्य की तरह हूँ। आज तक मैंने कोई गलती नही की। पता नही, ऐसी दुर्बुद्धि मुझे क्यो हुई?"

हवडा काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहते हुए शरत् बाबू ने चरखा-आन्दोलन, विदेशी वस्त्रो का बायकाट, असहयोग प्रचार, नारी कल्याण आदि कार्यों को तेजी से किया। उन दिनो साहित्य-सेवा को तिलाजलि देकर इन कार्यो के पीछे दीवाने हो गये थे। सपादक आते, मिन्नत करते, पर उन्हे रचना नही मिलती थी। बेचारे निराश होकर लौट जाते थे।

केवल यही नही, शतरंज खेलना, मछली पकडना, साहित्यिक अड्डेबाजी भी बन्द हो गयी।

सामतावेड़ा में अपनी दीदी के यहां जाना बन्द कर दिया।

श्री शचीनन्दन चट्टोपाध्याय जो कि शरत् बाबू के सहयोगी अनुगत थे, उन्होने लिखा है—"असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के पहने वे काफी शराब पीते थे। शराब पीने की आदत और दक्षता दोनों उनमें थी। देशी ठर्रा से कीमती विदेशी शराब तक में समान रुचि थी।सुरापानभी विचित्र था। गिलास मे, बोतल मे मुंह लगाकर, दाल की तरह भात में मिलाकर पीते थे। कभी कटोरी या कसोरे में रखकर पाइप से पी जाते थे। लेकिन असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने पर शराब पीना उन्होंने बन्द कर दिया।"

'गया कांग्रेस' मे देशबन्धु ने अध्यक्ष की हैसियत से यह प्रस्ताव रखा कि हमें कौंसिल में प्रवेश करना चाहिए जिसका जोरदार विरोध हुआ। बारिशाल काग्रेस मे तत्कालीन 'बंगाल कांग्रेस कमेटी' के अध्यक्ष श्री श्याम सुन्दर चक्रवर्ती ने देशबन्धु के साथ असभ्य व्यवहार किया तब शरत् बाबू इतने नाराज हो गये कि चक्रवर्ती को पिस्तौल या बम फेककर मारने के लिए कहते रहे। देशबन्धु उनका क्रोध देखकर हसने लगे।

देशबन्धु ने कहा—"शरत् बाबू काग्रेस छोड दीजिए। आप लेखक आदमी हैं। हम लोगों की तरह आपकी चमडी मोटी नही है।"

एक बार देशबन्धु ने आग्रह किया कि आप हवडा क्षेत्र से चुनाव में खडे हो जायं, पर वे राजी नही हुए बोले—"मैं ठहरा लेखक। मैं कौंसिल में जाकर क्या करूगा? मैंने देश के लिए किया ही क्या है? न जेल गया, न बैरिस्टरी छोड़ा और न कोई कष्ट उठाया। मैं तो काग्रेस में केवल आपसे मित्रता होने के लिए हूँ। मैं अपनी साहित्य-सेवा को राजनीति का मूलधन नही बनाना चाहता। आप मुझे बख्श दीजिए।"

देशबन्धु के अधिकाश भाषणों को शरत् बाबू लिखते रहे। उनकी 'स्वराज्य पार्टी' मे सहायक रहे, मगर स्वय कभी कोई श्रेय लेना उन्होने पसन्द नही किया। देशबन्धु जब जेल से छूटकर आये तब उन्होने उनका जोरदार स्वागत किया। उनके सम्मान में उनका अभिनन्दन पत्र लिखा।

देशबन्धु के घर बराबर आने-जाने के कारण बंगाल के अनेक क्रान्तिकारियों से उनका सम्पर्क हुआ। इनके प्रति शरत् बाबू की असीम श्रद्धा थी। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी विपिन बिहारी गागुली इनके मामा थे। अधिकांश क्रान्तिकारियों को वे गाहे-बगाहे आर्थिक मदद देते थे।.इसी कारण सरकार इनके प्रति सतर्क दृष्टि रखती थी।

श्री शचीनदत्त चटर्जी ने एक महत्वपूर्ण सूचना दी है। जिन लोगो का ख्याल है कि 'पथेरदावी' उपन्यास के डाक्टर साहब का चित्रण सुभाषचन्द्र बोस, रासबिहारी बोस या यदुगोपाल मुखर्जी के जीवन के आधार पर लिखा गया है, वह गलत है।

आप लिखते हैं—"कई विप्लवी नेताओं की छाया सव्यसाची पर पडा है। दुर्जय साहस, असाधारण शारीरिक शक्ति, असीम स्नेह प्रवणता और क्षमाशीलता के गुण लिया है—स्वर्गीय यतीन मुखर्जी से, छद्मवेश धारण करने की असाधारण निपुणता और गिरीश महापात्र रूपी सव्यसाची का लगडाकर चलने का गुण लिया है—डा० यदुगोपाल मुखर्जी के जीवन से, ससार के विभिन्न देशों की यात्रा करना और क्रान्तिकारियो का सघटन करने का गुण लिया है—श्री रास बिहारी बोस तथा नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य (एम० एन० राय) के जीवन से विभिन्न देशो के विश्वविद्यालयों से डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त करने का श्रेय लिया है—डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त और तारकनाथ के जीवन से, दोनो हाथों से समान रूप मे पिस्तौल चलाने का गुण लिया है सतीश मुखर्जी तथा अन्य लोगों से। तिल-तिल भर करके जिस प्रकार सौन्दर्य का आहरण कर तिलोत्तमा की सृष्टि हुई थी, ठीक उसी प्रकार सव्यसाची के चरित्र में अनेक क्रान्तिकारियों की छाप हैं। सव्यसाची का चरित्र कल्पना के आधार पर नही बनाया गया है। जो लोग यह सोचते हैं कि सव्यसाची शरत्चन्द्र की काल्पनिक सृष्टि है, यह उनका भ्रम है। पथेरदावी का प्रत्येक चरित्र वास्तविक और ऐतिहासिक है। बगाल तथा भारत के टेररिस्ट आन्दोलन से शरत्चन्द्र ने इन्हे ग्रहण किया था।

यद्यपि शरत् बाबू कभी जेल नही गये, पर जेल जाने वाले क्रान्तिकारियो की तन-मन-धन से बराबर मदद करते रहे। जिन दिनो वे हवड़ा काग्रेस कमेटी के सभापति थे, उन दिनों चारों ओर आन्दोलन के कार्यकर्ताओ की गिरफ्तारिया हो रही थी। हजारो की तायदाद कांग्रेस कार्यकर्ता जेल जा रहे

थे। शरत् बाबू ने हेमन्त सरकार से पूछा—"क्यो जी, जेल में अफीम खाने को देते हैं?"

हेमन्त सरकार ने कहा—"नही।"

"तमाकू पीने देते हैं?"

"जी नहीं, यह भी नही देते।"

"तब तो भाई मैं जेल नही जा सकूगा।"

देशबन्धु ने पूछा—"क्या मतलब?"

शरत्चन्द्र ने कहा—"मारिये गोली। जेल मे शरीफ आदमी नहीं जाते। मुझसे यह सब नही होगा। सरकार अगर गोली तोप छोडे तो मैं उसके सामने जाकर खडा हो सकता हूँ, पर उस मवेशीखाने मे जाकर छत की धरन गिनना मुझसे नही होगा।"

इसी प्रकार एक बार जब सुभाषचन्द्र बोस ने उनसे कहा था—"शरत् बाबू, एक बार आपको जेल जाना चाहिए।"

शरत् बाबू ने कहा—"मेरी इच्छा तो होती है और मैं इसके लिए तैयार भी हूँ, पर कठिनाई यह है कि जेल मे मुझे अफीम खाने को नही मिलेगा। अफीम बिना मैं रह नही सकता।"

सुभाष बाबू ने कहा—"इसके लिए आप बेफिक्र रहे। मैं इन्तजाम कर दूगा।"

शरत् बाबू ने कहा—यह कोई जरूरी है कि तुम हर वक्त वहा मेरे साथ रहोगे? अगर मुझसे पहले वहा से चले आये तो क्या होगा? देखो, इच्छा रहते हुए जेल जाना अफीम के कारण नही हो रहा है, यह कम दु ख की बात है?"

कुछ दिनो बाद देशबन्धु का निधन हो गया। गाव-गांव मे यह बात फैल गयी। अगर सबसे अधिक दु खी कोई हुआ तो वह थे—शरत्चन्द्र। लगातार कई दिनो तक रोते रहे। एक प्रकार से उन्हें राजनीति से वितृष्णा हो गयी। अब वे अपना ध्यान लिखने पढ़ने मे लगाने लगे। उन दिनो 'पथ के दावेदार' उपन्यास लिख रहे थे।

सन् १९२४ मे अनेक राजबन्दियो को जेल से मुक्ति मिली। जिन लोगो का अपना मकान था, वे अपने घर चले गये। जिनके माता-पिता जीवित थे, उन्हे मां-बाप ने अपना लिया। बाकी लोगो के लिए कठिन समस्या उत्पन्न हुई। भाई-बहन, स्वजनो के दरवाजे उनके लिए बन्द हो गये। होटल-धर्मशाला, मेस मे उन्हे जगह नहीं मिली। अगर इन्हे इनमे से कोई आश्रय देता तो दिन-रात पुलिस और सी० आई० डी० वाले तंग करते। किसी भी आफिस, कारखाना, फैक्टरी, दुकान मे इन्हें नौकर रखने में लोग हिचकिचाने लगे। एक प्रकार से इनका जीना हराम हो गया।

ठीक इसी समय शरत् बाबू के मन मे न जाने कहाँ से ऐसी प्रेरणा उत्पन्न हुई। लगा जैसे कालभैरव का नर्तन उनके मन पर हो गया था। उन्होने अपने कार्यकर्ताओ को बुलाकर निर्देश दिया कि सभी मुक्त राजबन्दियो का हवडा के मैदान में अभिनन्दन-स्वागत किया जायगा। इसके लिए उचित व्यवस्था करे। देश की आजादी के लिए जिन लोगों ने त्याग किया, उनसे लोग डरेंगे, पनाह नही देंगे? सिर्फ इसलिए कि पुलिस और छिपकली सी० आई० डी० के डर से? यह कार्य बंगाल कांग्रेस कमेटी को करना चहिए था लेकिन जब यह नही हुआ तब हम करेंगे।

सारी तैयारियां होने लगी। स्वागत समिति के चेयरमैन स्वयं शरत्चन्द्र बने। आज वे लेखक नही, प्रलयकारी शिव थे, भाव गगा को लाने वाले भगीरथ थे। सभा में स्वय शरत्चन्द्र ने अभिनन्दन पत्र पाठ किया। नतीजा यह हुआ कि सभा मे उपस्थित नागरिकों ने सभी को तिलक लगाया, माला पहनायी और गले से लगाकर उनका स्वागत किया। उस दिन हवडा मैदान में तिल रखने का स्थान नही था। जो उपेक्षित थे, आज वे पूज्यनीय बन गये। उन्हें आदर के साथ लोगों ने अपनाया। शरत्चन्द्र जो चाहते थे, वही हुआ।

शरत्चन्द्र खद्दर पहनते थे, सूत कातते थे, चरखा आन्दोलन के समय कारीगर रखकर काम करवाते थे, परन्तु चरखा के प्रति उन्हें श्रद्धा नही थी। इस विषय पर देशबन्धु से भी वे बहस के वक्त झगड गये थे। एक बार जब बंगाल के सभी मूर्धन्य नेता महात्मा गांधी के पास बैठे उनके सामने चरखे पर सूत कात रहे थे तब बंगाल कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष का सूत मोटा और शरत्चन्द्र का महीन बन रहा था।

यह देखकर महात्मा गाधी ने शरत् बाबू की प्रशसा की। किसी ने कह दिया कि चरखा आन्दोलन के प्रति शरत् बाबू का प्रेम नही है। महात्मा गाधी के प्रश्न करने पर उन्होंने वही उत्तर दिया था—"इससे देश को कोई लाभ नहीं होगा। यह फिजूल का काम है। जो काम मशीन कम खर्चे में करके हमारी जरूरत पूरी करे, इसके लिए वक्त जाया करके करना बुद्धिमानी का काम नहीं है।"

सुभाष बाबू जेल से रिहा होकर आ गये थे। एक दिन दिलीप कुमार राय के मकान में सुभाषचन्द्र वसु, किरण शकर राय आदि बैठे बातचीत कर रहे थे। सुभाष बाबू का स्वास्थ्य खराब था।

दिलीप कुमार राय ने कहा—"इधर तुम्हारा स्वास्थ्य काफी खराब हो गया है। मेरा विचार है कि अब तुम कुछ दिन विश्राम करो।"

सुभाष बाबू ने कहा—"उपाय भी तो नही है। काग्रेस मे उपयुक्त व्यक्ति कहां हैं।" फिर जरा हसकर बोले—"अगर शरत् बाबू बगाल काग्रेस की जिम्मेदारी लें तो मैं कुछ दिन विश्राम कर सकता हूँ।"

यह बात सुनते ही शरत् बाबू ने कहा—"देखो सुभाष, मैं देखने में जरूर बेवकूफ लगता हूँ, परन्तु मैं बेवकूफ हूँ नहीं। तुम सोच रहे कि बगाल प्रान्तीय काग्रेस कमेटी की गद्दी पर बैठाकर अपने बदले मुझे जेल भेजना चाहते हो, इस तिकड़म मे शरीक नही हो सकता।"

सुभाषचन्द्र ने कहा—"आपको जेल क्यो जाना पडेगा। मैं वायदा करता हूँ कि आपको कोई नही पकडेगा।"

शरत् बाबू ने कहा—"तुम यह कहकर छुट्टी पा गये। इसके बाद जब हथकडी पहनाकर मुझे जेल ले जायेंगे तब तुम अपने शागिर्दों को लेकर आओगे। उस वक्त बहुत करोगे, एक माला पहनाकर कहोगे—वन्दे मातरम् शरत् बाबू। तुम्हारे मुह से वन्दे मातरम् सुनने के लिए तथा एक सूखे माला के लिए पांच साल जेल मे जाकर सजा काटने को राजी नही हूँ।"

'पथेर दावी' उपन्यास को सरकार ने जब्त कर लिया। ठीक इन्ही दिनों शरत् बाबू बाजे शिवपुर से सामताबेड चले आये। सामताबेड़ से समीप गोविन्दपुर गाव है। इनकी बडी बहन अनिला देवी सपरिवार वहीं रहती थी। रूपनारायण नदी किनारे कच्चा मकान बन गया था।

'पथेर दावी' के साथ-साथ रेवरेण्ड जी० टी० सुन्दरलेण्ड की एक पुस्तक जब्त हुई थी। इसके विरुद्ध श्रद्धेय रामानन्द बाबू ने मुकदमा चलाया था। तब शरत् बाबू ने भी 'पथेर दावी' के विरुद्ध मुकदमा चलाने का निश्चय किया। उन्होने अपने मित्र तथा प्रसिद्ध एटर्नी निर्मलचन्द्र चन्द्र को इस सम्बन्ध मे पत्र लिखा।

निर्मलचन्द्र चन्द्र ने उन्हे सुझाव दिया कि मुकदमा चलाने मे कोई लाभ नही होगा। मेरा सुझाव है कि आप मुकदमा न चलाये। रामानन्द बाबू मुकदमें मे हार गये थे।

'पथेर दावी' के जब्त होने के कारण शरत् बाबू बहुत दु खी थे। रवि बाबू ने भी इस दिशा में कोई मदद नही की। इन बातों की चर्चा आगे की जा चुकी है।

चौबीस घंटे का साथी

राजनीति मे आने के पहले शरत् बाबू तेजी से लिखते रहे। बचपन तथा बर्मा मे लिखे गये उनके अधिकाश उपन्यास हवडा आने के पहले प्रकाशित हो चुके थे। बडी दीदी, विराज बहू, मझली दीदी, विन्दो का लल्ला, ग्रामीण समाज, परिणीता और चन्द्रनाथ।

बाजे शिवपुर निवासकाल में जब तक वे काग्रेस के सक्रिय सदस्य नही बने तब तक बराबर लिखते रहे।

सन् १९२३ में आपकी साहित्य-सेवा से प्रभावित होकर कलकत्ता विश्वविद्यालय ने एक श्रेष्ठ साहित्यिक मानते हुए आपको 'जगतारिणी सुवर्ण पदक' दिया था।

ठीक इन्ही दिनों एक दुर्घटना हो गयी। एलायन्स बैंक फेल हो गया। शरत् बाबू की सारी पूजी इस

बैंक मे थी। उन्हे अपने रुपयो के लिए उतना दुःख नही हुआ जितना कि दूसरो के रुपयों को खो देने से हुआ। इनके पास गाँव तथा पडोस के लोग रुपये जमा करते थे, उनकी सारी रकम डूब गयी। हाथ तग हो जाने के कारण जो लोग इनके सहारे जीवन-यापन कर रहे थे, उनकी स्थिति खराब हो गयी।

इसी बीच 'श्रीकान्त' का अग्रेजी अनुवाद का काम सरोज कुमार गगोपाध्याय के जरिये होने लगा था। इस कार्य मे श्री के० सी० सेन तथा श्रीमती थियोडेसिया टमसन जुटे हुए थे।

एक ओर जहा इनके उपन्यासो की कडी आलोचना और निन्दा हो रही थी, वही दूसरी ओर उन्हे जगह-जगह बुलाकर सम्मानित किया जा रहा था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बाद बंगाल के साहित्यकारों मे शरत् बाबू ही एक ऐसे लेखक थे जिन्हे अपने जीवितकाल मे प्रचुर सम्मान मिला। शरत् बाबू को इस बात का अफसोस रहा कि बंगाल ही नही, भारत के विभिन्न प्रान्त के निवासियो ने मुझे सम्मानित किया, परन्तु रवीन्द्रनाथ ने कभी नही पूछा।

शरत् बाबू की यह धारणा गलत थी। शरत् बाबू की प्रतिभा तथा जनप्रियता से रवि बाबू अच्छी तरह परिचित थे। उन्होने सन् १९२६ मे दिलीप कुमार राय के नाम ऐक पत्र मे लिखा था—"शायद तुम जानते होगे कि शरत् के सबंध मे मैंने कभी अश्रद्धा प्रकट नही की है (साहित्य के सबध में)। प्रारभ से ही मैं उसका प्रशंसक रहा। अनेक लोग कहानी-कला के बारे मे शरत् को मुझसे श्रेष्ठ कहते हैं, इससे मैं चिन्तित इसलिए नही हूँ कि काव्य-रचना के सबध मे मैं शरत् से श्रेष्ठ हूँ और यह बात बडे-से-बडा निन्दक भी अस्वीकार नही कर सकता।—"

केवल यही नहीं, शरत् बाबू नारियों के प्रति कितने सवेदनशील थे, इस बात का प्रमाण उनका साहित्य है, इसे रवि बाबू जानते थे। शरत् बाबू से एक साधारण महिला विनती करती है—

आमि अन्त पुरेर मेये
चिनबे ना आमाके।
तोमार शेष गल्पेर बईटि पडेछि शरत् बाबू,
बासी फूलेर माला
तोमाके दोहाई दिइ,
एकटि साधारण मेयेर गल्प लेखो तु मि।
बडो दु.ख तार।
किंतु तुमि जार कथा लिखबे
ताके जितिये दियो आमार हये—
पडते-पडते बुक जेन उठे फूले।
फूल-चन्दन पडुक तोमार कलमेर मुखे।

(मैं अन्त.पुर की लडकी हूँ, आप मुझे नही पहचानेगे। आपकी आखिरी कहानी की पुस्तक मैं पढ़ चुकी हूँ, शरत् बाबू। बासी फूलों की माला। दुहाई दे रही हूँ, एक साधारण लडकी की कहानी तुम लिखो। उसे बहुत दुःख है। मगर तुम जिसके बारे मे लिखोगे, उसे मेरी ओर से विजयी बना देना। पढते समय गर्व से छाती फूल जाय। तुम्हारी कलम पर फूल-चन्दन की वर्षा हो।) यह कविता कवि गुरु की रचना है।

सन् १९३६ ई० मे बेलघाटा स्थित एक भवन मे शरत् बाबू का अभिनन्दन हुआ था, उस समारोह मे रवि बाबू स्वय अभिनन्दन पत्र लिखकर लाये थे और पढ़ा था।

इस घटना से शरत् बाबू के मन मे कविवर रवीन्द्रनाथ के प्रति जो क्षोभ था, वह दूर हो गया था। एक तो 'षोडशी' नाटक मे उन्होने गीत नहीं लिखा, दूसरे 'पथेर दावी' के बारे मे जो पत्र लिखा था, इन दोनों घटनाओ के कारण वे नाराज थे। बाद मे अपने मित्र कविशेखर कालिदास राय से उन्होने कहा था—'कालिदास, कवि पर मेरा कोई क्षोभ नही है। आज मैं धन्य हो गया।'

शरत् बाबू के घर का पहरेदार भेलो नामक कुत्ता था। परिचित-अपरिचित अचानक कोई पहुँचता तो उसके हमले के भय से अपनी जगह से तब तक हिल नही पाता था जब तक शरत् बाबू आकर उसे डाटते नही थे।

इस कुत्ते को शरत् बाबू अपने लड़के की तरह प्यार करते थे। ढाका के एक सम्मेलन मे गये हुए थे। वहां से वापस लौटते समय मार्ग मे अपशकुन देखने के कारण उनके मन मे संदेह उत्पन्न हुआ। जरूर कही कोई दुर्घटना हुई है। घर पर आने पर पता चला कि भेलो अस्पताल में भर्ती है। तुरत गाड़ी लेकर गये और उसे वहा से घर ले आये। मालिक को देखकर वह आत्महारा हो गया। लेकिन बीमारी के कारण उसने खाना-पीना बन्द कर दिया। भेलो मर गया। इस बारे मे उन्होने अपने मामा सुरेन्द्रनाथ गांगुली को लिखा—

सात दिन, सात रात खाया नही, नीद नहीं आयी, अगले गुरुवार को सवेरे छह बजे वह मर गया। . .. उस दिन रात के समय मेरे गले के पास मुँह रखकर बहुत रोता रहा। सवेरे उसका रोना बन्द हुआ।

मेरा २४ घटे का साथी, इस ससार में केवल वही मुझे पहचान सका था।"

अपनी डायरी मे शरत् बाबू ने लिखा—

भेलू
निधन तिथि
१० वैशाख, वृहस्पतिवार, १३३२
सवेरे ६ बजे—२३ अप्रैल, १९२५ ई०
समाधि—दिन ९ ३० बजे
बाजे शिवपुर, हवड़ा।

उसकी लाश को शिवपुर मे गड्ढा खोदकर गाड़ दिया गया था। भेलो को वे कितना प्यार करते थे, इसे उनके मित्रों ने देखा है। उसके लिए अलग चौकी, गद्दा, तकिया रहता था। उसके भोजन के बरतन अलग थे। लगभग १६ वर्ष तक भेलो शरत् बाबू के पास था। बाद में सामताबेड़ा मे उन्होंने एक अन्य कुत्ता पाला था। उसका नाम रखा था—बाघा।

पागल सियार के काटने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी थी। अब केवल बाटू शेष रह गया था। बाटू का निधन सामताबेड़ा में ही हुआ था। यह सन् १९३१ ई० की घटना है। बाटू के निधन के बारे में शरत् बाबू ने अपनी डायरी में लिखा—

आज रात १०-४५ पर
बाटू का निधन हुआ।
मंगलवार, २४ फाल्गुन, १३३८ (बंगाब्द)
सामताबेड़, हावड़ा।

बंधन से केवल वही नहीं मुक्त हुआ, बल्कि मुझे भी मुक्ति दे गया। प्रभास (मझला भाई) की बगल में उसे समाधि दे दी। बाकी रह गया केवल एक।

इस एक का मतलब है—बकु। उसका नाम उन्होंने 'स्वामीजी' रखा था।

सामताबेड़ा का जीवन

शरत् बाबू की हार्दिक इच्छा थी कि अपनी जन्मभूमि देवानन्दपुर जाकर बसेगे, जहा की सोंधी मिट्टी का बास अभी तक उनके तन-मन पर है। इसी उद्देश्य से वे देवानन्दपुर गये भी थे। लेकिन वहा के कट्टरपथी समाजपतियो का दल उन्हे अपनाने को तैयार नही हुआ। हिरण्मयी का कलंक यहां तक पहुँच गया था। इस रहस्य का ज्ञान होते ही वे जन्मभूमि को हमेशा के लिए नमस्कार कर चले आये। शायद अपने अनजाने उन्होने कहा होगा—'मा, मैं तो तेरी गोद में आने को तैयार था पर तेरी संतानो ने मुझे दूर कर दिया। जब मेरे पिता को तुमने भगा दिया तब उसकी सतान को क्यो अपनाओगी।'

अपने मित्र श्री असमजस मुखोपाध्याय से भी उन्होने कहा था—'देवानन्दपुर वाला मकान खरीदकर या अलग से वहा मकान बनवाकर रहूगा। तुम भी वही चलकर रहना।'

आखिर मे मजबूर होकर उन्होने सामताबेडा मे मकान बनाने का निश्चय किया। यहा दीदी हैं, उनका पूरा परिवार है। कम-से-कम दु.ख-सुख में वे मदद देने को दौडे आयेंगे। देवानन्दपुर में समाजपतियो के भय से कोई नही आता। नीरू दीदी इसीलिए मर गयी। मृत्युंजय को इसीलिए गांव छोडना पडा।

देवलटी स्टेशन से दो मील कच्ची सडक पार करने के बाद सामताबेड़ा गाँव है। उसकी बगल में गोविन्दपुर गाव है जहां अनिला दीदी रहती हैं। दीदी के यहां बराबर कलकत्ता से आते-जाते रहने के कारण यह स्थान शरत् बाबू को विशेष रूप से पसद आ गया था। रूपनारायण नदी के किनारे एक कच्चा मकान बनवाने लगे। प्रकाशक हरिदास ने सहायता के रूप मे रुपये दिये। उन दिनो शरत् बाबू को रायल्टी के रूप में प्रतिमाह ६-७ सौ रुपये मिलते थे। सामतावेड़ा मे मकान बनवाने के अलावा उन्होने खेती करने लायक कई बीघा जमीन खरीद लिया। घर के सामने एक बड़ा तालाब, बगीचा, गोशाला आदि बनवाया।

फरवरी, १९२६ ई० में सपरिवार यहा आकर रहने लगे। गाव के आदमी थे, शहरी कोलाहल से दूर आने पर उन्हें प्रसन्नता तो जरूर हुई, पर देवानन्दपुर के समाजपतियों की तरह यहा के समाजपति भी इनके विरोधी रहे। मुसीबत के समय गाव के किसान, मजदूर और गरीब लोग मदद के लिए आते थे, पर सम्पन्न लोग कभी भी सामाजिक कार्यक्रम में इन्हें बुलाते नहीं थे। शरत् बाबू को इसकी चिता नही थी। उनका घर कलकत्ता के तमाम साहित्यिको के लिए तीर्थ था। नित्य दो-चार व्यक्ति अतिथि बनते थे।

अपनी जमीन में धान हो रहा है, मकान के भीतर लगाये गये सब्जियो से सब्जी प्राप्त करते, सामने के तालाब से नौकर मछली पकड़ लाता, घर मे कई गायें थीं, दूध मिल जाता था। उन्हे किसी बात की चिता नही थी। परिवार मे हिरण्मयी के अलावा छोटा भाई प्रकाशचन्द्र, उसकी पत्नी तथा दो बच्चे थे। दीदी के यहा से बराबर लोग आते-जाते थे। यहा तक कि अक्सर क्रांतिकारी लोग भी आते थे। उनका दरवाजा सभी के लिए खुला रहता था।

कुछ दिनो बाद मझला भाई स्वामी वेदानन्द (प्रभासचन्द्र) बर्मा से अस्वस्थ होकर अपने बडे भाई के पास आया। शरत् बाबू इतने करुणाशील थे कि पशु-पक्षी की मौत भी उनसे सहन नही होता था, फिर प्रभास तो सगा भाई था। प्रभासचन्द्र के निधन के बारे में श्रीमती लीलारानी गगोपाध्याय के एक पत्र मे उन्होंने लिखा—

परम कल्याणीयासु,

मेरा मझला भाई सन्यासी था, शायद सुना होगा। कई दिन पहले बर्मा की यात्रा से मेरे घर आया। मंगलवार को बीमार पड़ा। बार-बार वह यही कहता रहा—'यह शरीर अब अपटु हो गया है। इसका परित्याग करना चाहिए।' दूसरे दिन बिछौने से उठकर मेरे पास आया और मेरी छाती पर सिर रखकर चल बसा। उस वक्त वहा दीदी, मैं, प्रकाश और बहू थे।",

वेदानन्द की मृत्यु की सूचना उन्होने अपने तत्कालीन कई मित्रो को दी।

स्वामी वेदानन्द के निधन के बाद घर के पास ही उन्होंने उसकी समाधि बना दी। वेदानन्द के निधन का समाचार जब बेलुड़ मठ पहुँचा तब वहां से एक दिन एक सन्यासी सामतावेडा आया और शरत् बाबू से बोला—"स्वामी जी का ठीक से सत्कार नही हुआ है। मैं बेलुड मठ के अध्यक्ष की आज्ञा से उनका चिताभस्म लेने आया हूँ।"

स्वामीजी की बाते सुनकर शरत्चन्द्र अवाक् रह गये। उन्होने कहा—"मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप उसके कौन हैं जो चिता भस्म लेने आये हैं। मैं दू भी क्यों? भले ही वह सन्यासी बन गया था, पर था तो मेरा सगा भाई। अगर वह आपके यहा मरता तो मैं चिता भस्म लाने का अधिकारी था।"

स्वामी ने कहा—"मुझे चिताभस्म ले आने की आज्ञा दी गयी है। कृपया दे दीजिए।"

यह बात सुनकर शरत्चन्द्र का विनोदी रूप जाग उठा। उन्होने तुरत आवाज दी—"स्वामीजी, अरे स्वामीजी, जल्दी आओ।"

इस आवाज को सुनते ही एक बकरा दौडा हुआ आया। उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए शरत् बाबू ने कहा—"तुम्हे अपने साथ ले जाने के लिए बेलुड मठ से सन्यासी महाशय आये हैं।" इसके बाद आगन्तक

स्वामीजी से उन्होने कहा—"आप अपना गेरुआ चादर इसे पहनाकर अपने मठ में ले जाइये। आप लोगो के दल में मिल जायेगा।"

इस व्यग्य को सुनते ही स्वामीजी पलायित हो गये।

शरत्चन्द्र पशु-हत्या पसद नही करते थे। एक दिन टहलते हुए जा रहे थे। एकाएक इनकी नजर कुछ लोगो की भीड पर पडी। बातचीत से मालूम हुआ कि एक खसी इन लोगों ने खरीदा है। इसे मारकर लोग आपस मे गोश्त के बटवारे का हिसाब किताब कर रहे हैं। इतने अच्छे खसी को लोग मारकर खा जायेंगे, सोचकर वे करुणा से भर उठे।

शरत् बाबू ने कहा—"आप लोग इस खसी को मत मारिये। जितने मे आप लोगो ने खरीदा है, उससे कुछ अधिक रकम लेकर मुझे दे दीजिए।"

गाव के लोग शरत् बाबू को अच्छी तरह पहचानते थे। बीमार पडने पर मदद लेते थे, इसलिए इनके प्रति लोगो की श्रद्धा थी। उन लोगो ने खसी जितने मे खरीदा था, उसी कीमत पर बेच दिया।

इस खसी को लाकर शरत् बाबू पालने लगे। इसी का नाम उन्होंने 'स्वामीजी' रखा था। इस खसी में कई खूबिया थी। कभी वह किसी के पेड़-पौधे मे मुँह नही लगाता था। 'स्वामीजी' नाम सुनते ही पुकारने वाले के पास चला आता था। सन् १९३३ मे उसकी मृत्यु हुई थी। दिन मे ११ बजकर ३ मिनट पर। शरत् बाबू ने अपनी डायरी मे इस बात को नोट किया था।

'पथ के दावेदार' के जब्त होने के कारण बराबर उदास और झुझलाहट में रहने लगे। इधर वेदानन्द की मौत ने उन्हे अधिक विचलित कर दिया। जो व्यक्ति एक पालतू कुत्ते की मौत पर आठ-आठ दिन आसू बहाता है, वह अपने सगे भाई की मौत को कैसे भुला सकता है।

शरत् बाबू न ठीक से खाते थे और न किसी से विशेष बातचीत करते थे। बाहर बरामदे मे गुडगुडी की नली मे मुँह लगाये बैठ रहते। धुएं की लकीर नही निकलती और तमाकू जल जाता था। भैया की यह दशा देखकर प्रकाश ने सुरेन्द्र मामा को पत्र लिखा। मझले भैया की मौत की सारी घटनाएं लिखने के बाद उन्होंने लिखा—बडे भैया को कुछ दिनों के लिए आप भागलपुर ले जायें। आपको दादा बहुत मानते हैं। स्थान परिवर्तन होने से शायद इनमें सुधार हो जाय वर्ना जिस घुटन मे वे जी रहे हैं, देखकर भय हो रहा है कि कही बीमार न हो जायें।

यह पत्र पाते ही सुरेन्द्रनाथ गागुली तुरत सामताबेडा आये। देर तक शरत्चन्द्र को समझाने बुझाने पर वे भागलपुर जाने को राजी हुए।

भागलपुर शहर से बारह मील दूर रामचन्द्रपुर नामक एक गाव मे सुरेन्द्रनाथ की कुछ जमीन थी जहा वे खेतीबारी करते थे। यों वे स्कूल के हेडमास्टर थे। शरत् बाबू को शहर वाले मकान में रखने पर लोगो का आना-जाना बराबर जारी रहता। ऐसी स्थिति मे शांति की जगह मन और अशांत हो उठता। यही वजह है कि उन्हें देहात में ले गये ताकि सामताबेड़ा का परिवेश मिले और कोलाहल से कुछ दूर रहे। इतना करने पर भी यहा परिवार के लोग बराबर आते जाते रहे।

सुरेन्द्र नाथ मामा थे। उनके लड़कों में से किसी ने प्रश्न किया—"गांव के वातावरण मे कोई कष्ट तो नही हो रहा है?"

शरत् बाबू ने कहा—"कष्ट किस बात का। गाव में जन्मा, बडा हुआ, आज भी शहर से दूर हटकर गाँव में रह रहा हूँ। गाँव मे समय गुजारने में मुझे कोई कष्ट नही होता। टहलने निकल जाता हूँ। देखता हूँ—मछराहे मछली पकड़ रहे हैं। आगे बढने पर देखा-गाव के लडके ताश खेल रहे हैं, उनमें से दो-एक को चाल बताया। जरूरत हुई या मन हुआ तो स्वय उनके साथ बैठकर ताश खेलने लगा। माहिष्य बुढ़िया भरसाईं में लाई भून रही है, उसके साथ कुछ देर बातें करने लगा। एक मुट्ठी लाई लेकर चबाते हुए लोहार की दुकान के पास खडे होकर लोहा पीटने का ढग देखा, चिनगारियों को छिटकते देखा। इसी तरह कही गाय को दूहना देखा, कही नाले की सफाई देखा, कही किसी के मकान की दीवारें बनते या मडई छाते देखा। इस तरह के दृश्य देखते-देखते दिन गुजर जाता है। अपने गाव का मैं 'दादा ठकुर' हूँ। तरह-तरह के झगडे लेकर लोग आते हैं, उनका फैसला करता हूँ। पति-पत्नी की किचकिच को समझाता हूँ। चौरा भाई के श्रृंगार के लिए चन्दा जुटाना, किसी के घर आग लग गयी तो उसे बुझाना,

रोगियो के घर जाकर दवा देना, शादी के लिए मंध्यस्थता करना, विवाह या श्राद्ध वाले घरो मे जाकर परोसने मे सहायता करना आदि अनेक कार्य करता हूँ।"

इन दिनो के बारे मे शरत् बाबू के ममेरे भाई श्री सौमेन्द्रनाथ गगोपाध्याय ने लिखा है—"शरत्चन्द्र इस बार जगद्धात्री-पूजा के तीन-चार दिन पहले आये।

उन दिनो शचीन्द्रनाथ द्वारा सपादित हस्तलिखित पत्रिका 'मालती' और इनकी देखादेखी छोटे बच्चो की हस्तलिखित पत्रिका 'माला' नियमित प्रकाशित होती थी। मालती और माला के संपादक शरत्चन्द्र को अपनी पत्रिका दिखाने के लिए बडे उत्सुक थे। वे पत्रिकाओ को गौर से देखने लगे। थोडी देर बाद हँसते हुए अपने बचपन की पत्रिका 'छाया' की चर्चा करने लगे। हमारे घर मे उस समय 'छाया' के कई अक मौजूद थे। उन्हें लाकर मैंने दिखाया।

पत्रिका के पृष्ठो को उलटते हुए बोले—"देखो, कितने सुन्दर अक्षर हैं, गिरीन के। छाया मे प्रकाशित कविता, कहानी, निबध विशेष खराब नहीं होते थे। तुमलोग भी प्रयत्न करो। लिखते-लिखते लिखना सीख लोगे। आगे चलकर लेखक बन जाओगे। बिना श्रम के कुछ होता नही।"

बातचीत के सिलसिले मे जगद्धात्री पूजा की बात छिड गयी। तुरत उन्होंने पूछा—"इस बार पूजा के अवसर पर कौन-सा नाटक कर रहे हो?"

शचीन्द्रनाथ ने कहा—"शारदोत्सव।"

—उसे बच्चो को करने दो। तुमलोग बडे हो, कुछ करो।"

—क्या करू बताइये?

—डी० एल० राय के चन्द्रगुप्त को करो। गिरीन,

—क्या है?

गिरीन काका आये।

—चन्द्रगुप्त नाटक क्यो नही करते। तुम हो, प्रफुल्ल है, शची है। कई लोग हो।

—अब वक्त कहाँ है?

—बहुत समय है। कोई एक सीन करो। आज से रिहर्सल शुरू कर दो। तुम चाणक्य, प्रफुल्ल कात्यायन, शची भिक्षुक का पार्ट करेगा। शची का गला अच्छा है, वह गीत गायेगा। देविन कहा गया, उसे प्रमटर बना दो।

तुरत रिहर्सल प्रारभ हो गया। अभिनयवाले दिन अपार भीड हुई। शरत्चन्द्र बरामदे पर बैठे। उनके आसपास घर के बुजुर्ग लोग बैठे थे। स्टेज के बिलकुल सामने।

पहले छोटे बच्चो का शारदोत्सव हुआ। दर्शको ने काफी प्रशसा की। इसके बाद बडो का चन्द्रगुप्त प्रारभ हुआ। अंध भिक्षुक का पार्ट देखकर शरत्चन्द्र का स्थिर होकर बैठना कठिन हो गया। कई बार उठकर वे कमरे के भीतर चले गये। अपने आसुओ को वे रोक नही पा रहे थे। बार-बार आखे पोछकर बाहर आ जाते थे। बाद मे बरामदे के एक कोने मे खडे होकर नाटक देखने लगे।

अभिनय समाप्त हो जाने के बाद शचीन्द्रनाथ को बुलाकर उन्होने कहा—"तू तो बहुत अच्छा अभिनय करता है, शची। मेरे साथ कलकत्ता चल। मैं तुझे शिशिर (शिशिर भादुडी—बगाल के प्रसिद्ध रगमच के अभिनेता) की पार्टी मे रखवा दूगा। शिशिर मुझसे अक्सर कहा करता है कि दादा, अच्छा गाना गाता हो और अच्छा अभिनय करता हो, ऐसे कलाकार नही मिलते। तेरी शक्ल अच्छी है, अभिनय भी अच्छा करता है और गीत तो बहुत अच्छा गाता है। शिशिर तो तुझे लपककर लेगा।"

लेकिन कई कारणो से शचीन्द्र के लिए यह सभव नही हो सका।"

शरत् बाबू बचपन से ही नाटको के प्रेमी थे। उनके 'पल्ली समाज' उपन्यास का नाट्य रूपान्तर श्री हरिदास ने किया था। यह उन दिनो की बात है जब वे कालेज के विद्यार्थी थे। बाद मे शरत् बाबू ने इसमे किंचित परिवर्तन कर सन् १९२८ मे 'रमा' नाम से प्रकाशित कराया था।

आगे चलकर हरिदास बाबू ने 'आर्ट थियेटर लिमिटेड' के नाम से थियेटर कम्पनी खोला था। हरिदास बाबू की इच्छा हुई कि शरत् बाबू के 'दत्ता' उपन्यास का नाट्य रूपान्तर रंगमच पर प्रस्तुत किया जाय। सन् १९३६ ई० में 'विजया' नाम से इसे प्रस्तुत किया गया था।

इसके पूर्व श्री शिवराम चक्रवर्ती ने 'लेन देन' उपन्यास का नाट्य रूपान्तर 'षोडशी' के नाम से किया था। बाद मे जब 'भारती' मे प्रकाशन की बात चली तब सौरीन्द्र मोहन ने सुझाव दिया कि मूलत: इसके लेखक शरत् बाबू हैं। वे स्वय इस नाटक को देखकर पास कर दे तभी छापा जा सकता है, अन्यथा कापीराइट का पचडा खडा होगा।

शरत् बाबू के पास पाण्डुलिपि भेजने के बाद लोगो ने इसके प्रकाशन की अनुमति मांगी। थोडा-सा परिवर्तन करने के बाद उन्होने प्रकाशन के लिए दे दिया।

जब इस नाटक की छपी हुई प्रति रवि बाबू के पास गयी तब उन्होने शरत् बाबू की प्रतिभा की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए लिखा—

'तुम्हारी षोडशी मिली। बगला-साहित्य मे नाटक की तरह नाटक नही है। अगर मुझमे यह शक्ति होती तो मैं प्रयत्न करता, क्योंकि नाटक भी साहित्य का एक श्रेष्ठ अग है।

मेरा विश्वास है कि तुममे नाटक लिखने की प्रतिभा है। भीतर की प्रकृति और बाहर की आकृति जब ये दोनो सही ढग से मिलते हैं तब चरित्र-चित्रण शुद्ध होता है—मेरा विश्वास है कि तुम्हारी कलम ठीक ढग से चली तो इस रूप के साथ भाव मिलकर तैयार हो सकता है, क्योंकि तुममे देखने की दृष्टि है, सोचने की स्थिति है, इसके अलावा इस देश की लोकयात्रा के बारे मे तुम्हारी अभिज्ञता का क्षेत्र प्रशस्त है। अगर तुम वर्तमान काल के अधिकार और लोगो की अभिरुचि को न भुला सकोगे तो तुम्हारी शक्ति बाधाग्रस्त हो जायगी। सभी बडे साहित्य की पारस्पेक्टिव है, वह दूरव्यापी है, उसकी ठीक से रक्षा करने पर वह साहित्य में स्थान प्राप्त कर लेता है।''

रवि बाबू से शरत् बाबू ने 'षोडशी' नाटक मे कुछ गीत लिखने का अनुरोध किया था। उनके इनकार कर देने के कारण शरत् बाबू बहुत नाराज हो गये थे और दो-तीन साल तक उन्होने कोई सम्पर्क नही रखा।

शरत् बाबू ने कई लोगो से जबानी कहा था कि कविवर न जाने कितने लोगो को उत्साहवाणी, आशीर्वाद स्वरूप कुछ लिख देते हैं। न जाने कितनी दम्पतियो के बच्चो का नानकरण किया, पर मेरे अनुरोध को उन्होने ठुकरा दिया।

शरत् बाबू के जितने नाटक हैं, उनके मूल रूपान्तर करने वाले अन्य व्यक्ति थे। शरत् बाबू खेलने या देखने के शौकीन जरूर थे, पर लिखने के प्रति उनकी रुचि नही थी। इस बात को उन्होने स्वीकार भी किया है—

तुम्हारे प्रश्न के उत्तर मे पहली बात यह है कि मै नाटक क्यो नही लिखता—इसका कारण है मेरी अक्षमता। दूसरी बात अपनी अक्षमता को स्वीकार करते हुए अगर मैं नाटक लिखने लगू तो मजदूरी मे घाटा होगा। आर्थिक दृष्टि से यह बात नही कह रहा हूँ, जीवन मे इसकी जरूरत तो होती है, पर यही एक जरूरत है इस सत्य को कभी नही भूलता। उपन्यास लिखने पर मासिक पत्र के सपादक दौडे हुए आयेगे। उपन्यास के प्रकाशन के लिए प्रकाशको की कमी नही होगी, कम-से-कम आज तक तो नही हुई और उपन्यासो के पाठक बराबर मुझे प्राप्त होते रहे हैं। कहानी लिखने की कला जानता हूँ, इसके लिए किसी के दरबाजे पर कभी नही गया। लेकिन नाटक? रगमच के कार्यकर्ता ही इसके हाईकोर्ट हैं। अगर वे सिर हिलाते हुए कह बैठे—इस जगह एक्शन कम है, दर्शक पसद नही करेगे या यह नाटक नही चलेगा, इसका मचीकरण नही हो सकता तब उसका कोई उपाय नही है। उनकी राय आखिरी बात है, क्योंकि वे इसके विशेषज्ञ हैं। टिकट खरीदकर आने वाले दर्शको की रुचि वे जानते हैं। फलस्वरूप इस आफत मे पडने मे मेरी रुचि नही होती।

नाटक मैं लिख सकता हूँ। नाटक के लिए जो आवश्यक है, अगर वह अच्छा नही हुआ तो दर्शक का हृदय स्पर्श नहीं करता। ऐसे डायलाग लिखने की क्षमता मुझमे है। बात को किस तरह कहना चाहिए, कितने सीधे ढग से कहने पर मन पर असर पडता है, इसका कौशल जानता हूँ। चरित्र और घटना की सृष्टि भी करना जानता हूँ, फिर भी मन लिखने का नही करता।''

नाटक लिखने मे शरत् बाबू की कोई अभिरुचि नही थी, परन्तु जब उन्हे उनके नाटको के बदले एक बार प्रचुर अर्थ मिला तो वे चौंक उठे—

अपने एटर्नी श्री निर्मलचन्द्र को उन्होने अपने एक पत्र लिखा—"कल रात को एक व्यक्ति के मार्फत तुम्हारा पत्र और मदन साहब (कलकत्ता के सबसे प्रसिद्ध 'मैडान थियेटर के मालिक मैडान साहब। आप पारसी थे) का कंट्राक्ट फार्म मिला। साहब का औदार्य देखकर आखो मे आसू आ गये। नगद पाँच सौ रुपये और भविष्य मे दो सौ रुपये मिलेगे, यह रकम साधारण नही है। यह ब्राह्मण सतान की सम्पदा है। मेरी पुस्तके पन्द्रह साल के लिए उनके अधिकार मे रहेगा—यह कोई बडी बात नही है।"

दरअसल मैडान साहब ने नाटको के लिए नही, बल्कि फिल्म बनाने के लिए अधिकार लिया था। इसके पूर्व शरत् बाबू 'आधारे आलो' (अधकार मे प्रकाश) नामक कहानी पर निर्वाक फिल्म सन् १९२२ मे बन गयी थी। इसके बाद 'इस्टर्न फिल्म्स सिण्डिकेट' कम्पनी ने सन् १९२७ मे 'देवदास' फिल्म बनायी। यह भी निर्वाक फिल्म थी। सन् १९३३ मे 'विजया' फिल्म सवाक् बनी थी। इस फिल्म को 'न्यू थियेटर्स कम्पनी' ने बनायी थी। प्रेस शो वाले दिन शरत् बाबू गये थे।

कम्पनी के अनुरोध पर उन्होने निम्न शब्दो मे अपने विचार प्रकट किये थे—

"कल रूपवाणी मे अपने 'विजया' का चित्राभिनय देख आया। श्रीमान अमर मल्लिक रासबिहारी की भूमिका मे अवतरित हुए थे। अच्छा अभिनय किया था। मुझे लगा जैसे शायद लिखते समय इसी प्रकार की कल्पना मैंने रासबिहारी के चरित्र मे की थी। फिल्म मे इन लोगो ने 'विजया' नाटक और 'दत्ता' उपन्यास दोनो का उपयोग किया है। इसके कारण रसबोध में आनन्द मिला। नीचे अनेक दर्शक समवेत कलरव मे आनन्द प्रकट कर रहे थे जिससे यह ज्ञात हो गया कि उन्हे फिल्म बहुत पसद आयी और उसे उन्होंने आदर के साथ ग्रहण किया है। मेरी अधिकतर कहानिया 'न्यू थियेटर्स कम्पनी' के माध्यम से दर्शको के निकट प्रसिद्ध हुई हैं। फलस्वरूप मैं यह आशा करता हूँ कि यह फिल्म भी सफल होगी।"

इसके बाद सन् १९३६ मे चन्द्रनाथ बनी। शरत् बाबू के निधन के बाद तो उनकी प्रत्येक कहानियो पर फिल्मे बनी और स्टेज पर नाटक खेले गये। रवीन्द्रनाथ के बाद शरत् बाबू ही एक ऐसे लेखक थे जिन्हे अपने जीवितकाल मे प्रचुर अप्रतिष्ठा और प्रतिष्ठा दोनो प्राप्त हुई। ये दोनो महान् लेखक आज भी साहित्य मे जीवित हैं, पाठको के निकट समाहृत हैं, इनके समकालीन सभी लेखक काल के गर्भ मे विलीन हो गये।

भागलपुर मे किशोर-जीवन व्यतीत करने के कारण शरत् बाबू बार-बार यहा आते थे। स्टेशन से बरारी तक उनकी क्रीडाभूमि थी। कभी यहा बदनाम थे और आज ख्याति के शिखर पर आरूढ होने के कारण विगत् जीवन के उनके सारे दोष कर्पूर की तरह उड गये थे। जब कभी आते तब सुरेन्द्रनाथ गागुली के घर मजमा लग जाता था। वे यहा आराम करने आते थे, पर बदले मे अशाति मिलती थी।

एक बार इस बात का उलाहना उन्होने पत्र मे दिया था—"सुरेन, कैसे, क्या करू, कहा जाऊ—जहा उपद्रव न हो, अपनी इच्छा के विरुद्ध कार्य न करना पडे, मैं आजकल यही सोचता हूँ। अब मुझे यह दुनिया अच्छी नही लगती। पिछले दो माह से मैं यही सोच रहा हूँ। तुम्हारे वहा भी शाति नही मिलती। मेरे जाने पर वहा परेशानिया बढ जाती हैं। अगर इस बात की जानकारी होती तो बार-बार न जाता। अब इच्छा नही होती।"

भागलपुर मे कुछ दिनो तक निवास करने के बाद एक दिन पुन सामतावेडा चले आये।

सार्थक

शरत् बाबू जिस गाव मे जाकर रहने लगे थे, उसका वास्तविक नाम था—सामता। 'सामतावेडा' नाम शरत् बाबू ने रखा था। बात यह हुई कि उन्होंने अपने भवन के लिए जिस जमीन का चुनाव किया, वह गोविन्दपुर और सामता के सीमा पर थी। उसका आधा हिस्सा गोविन्दपुर मे था जो कि कल्याणपुर यूनियन बोर्ड के अन्तर्गत था और आधा भाग सामता मे थी जो मेल्लक यूनियन बोर्ड के अन्तर्गत था। दो गाव के दो सीमा पर घर बना लेने पर घर का क्या पता लिखना चाहिए, यह सोचकर उन्होने किनारे

यानी वेडे लगाकर 'सामतावेडे' नाम रखा। दरअसल सामतावेडा नामक कोई गाव यहा नही है। सभी सामना के अन्तर्गत है।

शरत् वावू का सामतावेडा वाला मकान जिन लोगो ने देखा है, (चाहे पचास-साठ वर्ष पहले या आज कल) उन्होने देखा होगा कि उनके वैठका की वगल मे अध्ययन कक्ष है। इसकी वगल मे नारायण मूर्ति है। इस मूर्ति को देशवन्धु ने शरत् वावू को दिया था। मंदिर की वगल से ऊपर दो तल्ले मे जाने की सीढी है।

कमरो के सामने तथा वगल मे वरामदा है जहा शाम के समय आराम कुर्सी पर वैठे गडगडा पीते थे, रोगियो को दवा देते थे और मित्रो से गपशप करते थे। मकान के दोनो ओर वाग हैं। इस वाग को उन्होने अपने हाथ से वनाया था। वाग मे एक वडा जामुन का वृक्ष था। इसी पेड की वगल मे माधवी लता और चमेली के लतर थे। मौसम के समय इन पौधो मे फूलो के गुच्छे लगते थे। वही मोसिमी का एक वृक्ष था। जव इस वृक्ष मे फूल खिलते तव उसकी भीनी महक खिडकी के रास्ते कमरे के भीतर आकर अठखेलिया करती थी। पूरे वाग को उन्होने इस तरह सजाया था कि देखते वनता था। कही मालती तो कही अपराजिता, कही वकुल तो कही कृष्णकलि।

वाग इस तरह सजाने का कारण यह था कि वे अपने अध्ययन कक्ष मे अकेले रहते थे। दूसरे गाव के समाजपतियो से विरोध रहने के कारण हमेशा चौकन्ना रहना पडता था। आत्मरक्षा के लिए वन्दूक और पिस्तौल पास ही रखते थे।

रात को वहुत देर तक लिखते-पढ़ते थे। वगल के कमरे मे नौकर खाना ढाककर रख देता था। कभी खाते थे और कभी उसी तरह ढका पडा रहता था। लिखते-लिखते थक जाने पर पास ही रखी आरामकुर्सी पर सो जाते थे।

सामतावेडा मे आपने 'शेष प्रश्न,' 'श्रीकान्त चौथा भाग,' 'विप्रदास,' 'शेषेर परिचय' तथा 'आगामी काल' जैसे उपन्यास, 'अनुराधा', 'सती,' 'परेश,' कहानियो के अलावा 'वचपन की कहानियां' लिखी। नाटको मे 'रमा,' 'षोडशी' और 'विजया'। निवधो मे 'तरुणो का विद्रोह,' 'सत्य और मिथ्या,' 'वाल्य स्मृति,' 'नूतन प्रोग्राम,' 'वर्तमान राजनीतिक प्रसग,' 'उभय सकट' लिखे।

सामतावेडा निर्जन स्थान था और वातावरण रुचि के अनुकूल था, परन्तु गाव के झगडे, समाजपतियो के तिकडमों से परेशान रहते थे। अगर गांव की परेशानिया न होती तो शायद वे साहित्य को और रचनाए देते। कम-से-कम वे अपनी अधूरी रचनाए जरूर पूरी करते।

शरत् वावू में एक विशेष खूवी थी। वे रद्दी कागज पर कभी नही लिखते थे। उनका कहना था कि मा सरस्वती (विद्या की देवी) की पूजा श्रद्धा से श्वेत कागजो पर करनी चाहिए। कलमों के तो वे वेहद शौकीन थे। पचासों कलम उनके टेवुल पर पडे रहते थे। शरत् वावू के कुछ मित्र इनके इस झक से परिचित थे। इन्हे प्रसन्न करने के लिए कीमती कागज और कलम खरीदकर उपहार में देते थे। अपने मित्रो द्वारा दिये गये ऐसे उपहारो को वे अत्यन्त प्रसन्नता के साथ ग्रहण करते थे। वैंक पेपर पर लिखना उन्हे विशेष रूप से पसद था।

शरत् वावू को एक झक और था। वे लिखनेवाले कागजो तथा पैड पर डाभ का मनोग्राम छपवाते थे। एक वार किसी ने प्रश्न किया था—"डाभ का मनोग्राम वनवाकर उसमे 'शरत्' शव्द लिखने का क्या तुक है?"

शरत् वावू ने कहा था—"शरत् ऋतु मे डाभ (हरा नारियल) पीने से लाभ होता है और इन दिनो काफी मिलता है। जव कि मैं शरत् ऋतु मे पैदा हुआ हूँ, नाम भी शरत् है तो मनोग्राम भी वैसा है।"

कीमती कागजों पर पत्राचार करने के कारण ही आज तक विभिन्न लोगो के नाम लिखे अधिकाश पत्र सुरक्षित हैं। शायद शरत् वावू ही एक ऐसे लेखक है जिनके पत्रो के कई सकलन अव तक छप चुके हैं।

जिस प्रकार वे कागज-कलमो के शौकीन थे, उसी प्रकार रग-विरगी स्याहियो का उपयोग करते थे। व्लू, व्लेक, वैगनी, लाल, काली और हरा। जिस प्रकार स्वय दूसरों से कलम पाने पर आनन्दित होते थे, उसी प्रकार वे जिस व्यक्ति पर प्रसन्न होते, उसे कलम उपहार में देते थे। विभूति भूषण तथा

निरूपमा देवी को बर्मा से सोने का फाउण्टेन पेन भेजा था। सुरेन्द्र नाथ गागुली, योगेश मजुमदार, सौरीन्द्र नाथ आदि मित्रो को कलम भेंट कर चुके थे।

एक प्रकार से लेखको मे कोई न कोई झक होता है। कोई रगीन कागज पर लिखना पसद करता है तो कोई एक तरफ छपे कागजो पर। अखबारो के दफ्तरो मे अधिकतर संपादक रफ कागज पर समाचार लिखते हैं।

शरत् बाबू अपनी रचनाओ मे काफी काटीकूटा और सशोधन करते थे। तेजी से लिखने का उन्हे अभ्यास नही था। जो लोग बहुत सोच समझकर लिखते हैं, वे धीरे-धीरे लिखते हैं। शरत् बाबू के बाद श्री राजशेखर बसु "परशुराम" भी इसी प्रकार लिखते थे। लिखते समय वे एकाग्र हो जाते थे। उस समय वे अपने आसपास निर्जनता अधिक पसद करते थे। कभी कुर्सी टेबुल पर तो कभी फर्श पर बैठे डेस्क के ऊपर पैड रखकर लिखा करते थे। गडगडा तो हर वक्त पीने की आदत थी। अक्सर जब कलम रुक जाती तब चिन्तन की मुद्रा मे टहलने लग जाते थे।

कुछ झक और थे। कीमती से कीमती जूता पहनते थे। घर पर बीस जोडे जूते हैं, पर बाजार मे नये फैशन का जूता या चप्पल देखते तो बिना खरीदे रह नही पाते थे। कोई भी नयी सामग्री जो पसद आ गयी, उसे जरूर खरीदेगे।

शरत् बाबू अपने साहित्य के लिए जितने लोकप्रिय थे, उससे अधिक अपनी सहनशीलता, उदारता और मानवता के लिए थे। अगर इन गुणो से वे सम्पन्न न होते तो उनके मित्र तथा गाव के पिछडे लोग उनके अध भक्त न होते। साहित्य के क्षेत्र मे उन्हे सर्व श्री सजनीकान्त दास, यतीन्द्र मोहन सिह, अन्नदा शकर राय और प्रबोध कुमार सान्याल उखाडने पर लगे हुए थे। लेकिन उनकी सारी चेष्टाए असफल हो गयी। साहित्य के क्षेत्र मे कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो दूसरो की लोकप्रियता को सहन नही कर पाते। आलोचको के उछालने से कोई महान् लेखक नही बनता जब तक कि उसमे प्रतिभा न हो। रवि बाबू के युग मे नजरूल इस तरह उदय हुआ जैसे धूमकेतु। रविबाबू को भी उसकी प्रतिभा को स्वीकार करनी पडी।

शरत् बाबू के कई मित्रो तथा पाठकों ने प्रतिवाद में जितने लेख लिखकर उन्हें दिखाये, उसे उन्होने पढ़ने या सुनने के बाद जला दिया अथवा फाड़ दिया। दरअसल वे अपनी आलोचना की परवाह बचपन से ही नही करते थे।

श्री प्रबोध कुमार सान्याल बंगला-साहित्य के मूर्धन्य कथाकार हैं। आपने भी शरत्-साहित्य की तीव्र समालोचना की थी। शरत् बाबू के निधन के बाद उन्हे इतनी आत्मग्लानि हुई कि शव-यात्रा के दिन उन्होंने कधा लगाया। उस दिन शरत् बाबू के मित्रो की विषमयी दृष्टि उन्हे बुरी तरह परेशान करती रही। कुछ लोग तो व्यंग्य बाण छोड़ते रहे। केवल यही नही, शरत् बाबू के निधन के बाद जितनी शोक-सभाए हुईं और प्रतिवर्ष मनाये जाने वाले जन्म दिवस के अवसर पर उन्हे १९६४ ई० तक नहीं बुलाया गया। इससे बडी सजा या उपेक्षा सभवत. किसी साहित्यकार को प्राप्त नही हुई है।

शरत् बाबू महिलाओ के पक्षपाती रहे, उनके ऊपर होने वाले अत्याचारो के प्रति करुणाशील रहे। यही वजह है कि महिलाए इन्हें देव तुल्य समझती रही। यहा उनके जीवन की दो घटनाओ का उल्लेख कर रहा हूँ, इससे उनकी लोकप्रियता और अप्रतिष्ठा के चित्र मिलेगे।

कलकत्ते मे वीणा देवी सरस्वती नामक एक महिला लेखिका थी। उच्च शिक्षिता, भद्र परिवार की कुलवधू। शरत् बाबू की रचनाओ को पढ़ने के कारण इनके प्रति मन मे असीम श्रद्धा थी। शरत् बाबू उन दिनो कलकत्ता वाले मकान मे रहते थे यानी सन् १९३४ के बाद की घटना है। वीणा देवी अक्सर शरत् बाबू के घर उनसे मिलने आती थी। उन्हे 'दादा' कहकर बुलाती थी और स्वय शरत् बाबू भी उसे छोटी बहन की तरह स्नेह देते थे। इसी प्रकार का स्नेह वे श्रीमती लीलारानी गगोपाध्याय और श्रीमती राधारानी देवी को भी देते रहे।

एक दिन वीणा देवी के मन मे आया कि दादा को अपने यहा भोजन के लिए निमत्रण दू। वीणा देवी के निमत्रण को स्वीकार करते हुए शरत् बाबू ने कहा—"अगर तुम मेरी रुचि का भोजन खिला सकोगी तभी मैं आऊंगा। मैं सिगी मछली का रसेदार तरकारी और भात खाता हूँ। मजूर हो तो आऊ?"

वीणा देवी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

निश्चित दिन वीणा देवी ने घर के लोगों से सिगी मछली मगवाकर रसेदार तरकारी बनायी। छुट्टी का दिन न होने के कारण घर के सभी पुरुष भोजन के पश्चात् अपने-अपने आफिस चले गये।

पुरुषो के जाने के बाद वीणा देवी की ननद जो अशिक्षिता थी, मा के पास जाकर बोली—"मा, क्या तुम्हे मालूम है कि भाभी ने आज किसे अपने यहां भोजन करने के लिए बुलाया है?"

मा ने कहा—"नही, मुझे नही मालूम। कौन है?"

ननद ने कहा—"अरे वही लेखक शरत् चटर्जी जिसकी वडी वदनामी है। शरावी, चरित्रहीन है। लोगों का कहना है कि वह अधिकतर रंडी के कोठाओं पर रहता है।"

वेटी की तरह मां भी पुराणपथी थी। पढ़ना-लिखना जानती नही थी। वेटी की वातें सुनते ही वे आग वबूला हो गयीं। तुरत वहू के पास आकर वोली—"बहू, तुम एक भले घर की बहू हो, आखिर यह क्या तमाशा कर रही हो? अगर मुझे यह सब मालूम होता तो लडको को मछली लाने को मना कर देती। कान खोलकर सुन लो, उस आदमी को इस घर में किसी भी हालत मे नही ला सकती।"

सास का आदेश सुनकर वीणा देवी सन्न रह गयी। उन्होने सास से कहा—"मा, केवल आज के लिए अनुमति दे दो। इसके वाद फिर कभी उन्हें नही बुलाऊगी। यह मेरी प्रतिष्ठा का प्रश्न है। अगर उन्हें भोजन न कराया गया तो उनका अपमान होगा।"

सास किसी तरह राजी नही हुई। वहू के काफी अनुनय-विनय करने पर उन्होने सलाह दी कि इसी वक्त उनके यहा चली जाओ। उनसे कहो कि सास सख्त वीमार हो गयी है, इसलिए आज आपको भोजन खिला नहीं सकती।"

इसके वाद भी वीणा देवी काफी मिन्नत करती रही, पर सास टस से मस नही हुई। लाचारी मे वीणा देवी शरत् वावू को अपने यहां आने के लिए मना करने गयी।

शरत् वावू को उन्होंने सास की वीमारी की वातें न कहकर सारी वाते सही रूप में कह दी। उन्होने यह भी कहा—"अगर मेरे पति या भसुर कोई घर पर रहता तो यह बात न होती। वे मां को समझा सकते थे।"

शरत् वावू ने गभीर होकर कहा—"इस वात के लिए दु खी होने की जरूरत नही है। मैं भी वुरा नही मान रहा हूँ। लोग अपनी गलत धारणा के कारण मुझे गलत समझते हैं। मेरे बारे मे तरह-तरह की अफवाहें हैं। उदाहरण के लिए अपनी भाभी को लो। मैंने इनसे धार्मिक रूप से विवाह किया है, फिर भी लोग कहते हैं कि यह मेरी रखैल है।"

दूसरी घटना यो है जिसे स्वय शरत् वावू ने 'प्रवर्तक सघ' के सदस्यों की गोष्ठी मे सुनाई थी—

"उन दिनों मैं शिवपुर में रहता था। एक दिन आरामकुर्सी पर आंखे वद किये वैठा था। ठीक इसी समय मोटर के हार्न की आवाज आयी। साथ ही आगन मे जूते की खट-खट आवाज सुनाई दी।

आँखे उठाकर देखा—सामने एक फिटफाट सज्जन खडे थे। शक्ल-सूरत अच्छी थी। उम्र चालीस के लगभग थी। पहनावे तथा अदव-कायदे से वडे घराने का मालूम होता था। पास आकर उसने प्रणाम किया।

पास ही रखी कुर्सी पर मैंने उसे वैठने को कहा। वैठने के साथ ही उसने कहा—"मैं आपके निकट एक अनुरोध लेकर आया हूँ जिसे आपको स्वीकार करना ही पडेगा। एक वार आपको मेरे घर पदधूलि देनी पडेगी। मेरी पत्नी आपकी भक्त हैं। वहां जाने पर इसे आप समझ जायेंगे। उसके आकुल अनुनय के कारण मैं आप के निकट प्रार्थना लेकर आया हूँ। आपको कब सुविधा होगी, कृपया मुझे वताये। मैं उस दिन स्वय आकर आपको ले जाऊगा।"

कुछ क्षण सोचने के वाद मैंने एक दिन वताया।

निर्दिष्ट दिन उक्त सज्जन आये। लेकिन अस्वस्थ रहने के कारण उस दिन जा नही सका। इस प्रकार चार वार उन्हे टालता रहा और वे वापस जाते रहे। अन्त में पाचवी वार जाना पडा। सकोचवश इस बार टाल नहीं सका।

वहुत बड़ा मकान, दरवाजे पर दरवान बन्दूक लेकर पहरा दे रहा था। भीतर जाकर देखा—ऊपर

जाने वाली सीढी के किनारे दो कदली वृक्ष खडे हैं। जड के पास मगल कलश, उस पर आम की पत्तिया और उसके ऊपर डाभ रखा है। मार्बल की सीढियो पर नीचे से ऊपर सफेद चद्दर विछाया गया था। मैंने सोचा—शायद इनके यहा कोई पूजा वगैरह है।

बहरहाल उक्त सज्जन के साथ चलकर मैं एक कमरे मे जाकर बैठ गया। थोड़ी ही देर मे बगल के कमरे से एक महिला आयी, गले मे आचल डालकर भूमिष्ठ हो, प्रणाम किया। उम्र लगभग पच्चीस साल थी। सुस्निग्ध देवी मूर्ति। मधुर मुस्कान के साथ बोली—"बहुत दिनो की आकांक्षा की पूर्ति आज हुई। आप यहा आयेगे, इस सौभाग्य की कल्पना मैंने नही की थी।"

मेरे शत आपत्ति करने पर भी वह दोनो पैरो को धोकर अपने आचल से पोंछने लगी। इसके बाद अपने हाथ से बनाया भोजन खिलाकर वह बहुत खुश नजर आयी। इस तरह का आहार और स्वागत मेरे लिए विचित्र घटना थी।

आहार और विश्राम के बाद वह लड़की मुझे एक छोटे कमरे मे ले गयी। धूप-दीप से सुशोभित किसी देव-मंदिर में जैसे मैंने प्रवेश किया। मैंने आश्चर्य के साथ देखा—मेरी सभी पुस्तके सजिल्द वेदी पर बडे यतन से सजाकर रखी है। केवल यही नही, नित्य इन पुस्तको का पाठ होता है।

उस सूनसान कमरे मे महिला ने अपनी जीवन कहानी सुनाई। यह उक्त सज्जन की पत्नी नही, रखैल थी। चाहे जो हो, इस भक्ति को देखकर मैंने सोचा कि मेरा लिखना सार्थक हो गया।"

शरत् बाबू के जीवन मे इस तरह की अनेक महिलाए आयी थी। बनारस मे एक युवती से मुलाकात हुई थी जिस पर 'चरित्रहीन' का प्रभाव पडा था। उस उपन्यास को पढने के बाद वह अपने प्रेमी के साथ घर से नही भाग सकी। बर्मा मे कई ऐसी महिलाओ को देखा था। लेकिन उनका पैर कही नही फिसला। उनके मानस-मंदिर मे केवल एक देवी की मूर्ति विराजमान थी। वह थी—निरुपमा देवी। उसे वे जीवन भर भुला नही सके। हिरण्मयी देवी को वे बहुत चाहते थे। उसकी साधारण बीमारी मे व्याकुल हो उठते थे। बिना उनकी अनुमति के कही नही जाते थे, पर अन्तर मे केवल निरुपमा की पूजा करते थे।

चातक की तृष्णा

गालिब ने एक शेर मे इश्क के बारे मे लिखा है—

> इश्क पर जोर नही, है ये वो आतिश गालिब ।
> कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।।

शरत् बाबू के इश्क की यही कहानी रही। जीवन मे चाहे जो कुछ किया हो जैसा कि उन्होने अपने मित्रो को जवानी कहा है या पत्रो मे लिखा है, पर वे प्यासे चातक की तरह किशोरावस्था की उस प्रेमिका को आजन्म नही भुला सके जिसे अपना हृदय चुपचाप सौंप चुके थे। वह थी—श्रीमती निरुपमा देवी।

निरुपमा से प्यार के बदले प्यार नही मिला। इस दिशा मे वे असफल रहे। इस बात की चर्चा वे अक्सर अपने कई मित्रो से कर चुके हैं।

श्री गिरीन्द्रनाथ सरकार ने इस बारे मे अपनी पुस्तक मे लिखा है—"शरत्चन्द्र का प्रणय-भाग्य कत्तई अच्छा नही था। उनके प्रथम-जीवन की प्रणय-घटित नैराश्य की कहानी से सभी लोग अवगत हैं।"

इस बात से स्पष्ट है कि शरत् बाबू ने किशोरावस्था के प्रेम का जिक्र गिरीन्द्रनाथ से किया था। दूसरी ओर सरकार को यह विश्वास हो गया था कि मेरी तरह अन्य लोग भी इस बात को जानते होगे।

बर्मा मे रहते समय १३ फरवरी, १९१३ ई० को एक पत्र फणीन्द्रनाथ पाल के नाम भेजते हुए शरत् बाबू ने लिखा था—'मेरे तीन नाम हैं—अनिला, शरत्चन्द्र चटर्जी और अनुपमा।'

निरुपमा के बदले उन्होने 'अनुपमा' नाम ग्रहण करने का विचार किया था। यद्यपि इस नाम से उन्होंने कोई रचना नही लिखी। फणीन्द्रनाथ पाल ने सुरेन्द्र नाथ गागुली से उनकी बचपन की लिखी

कुछ रचनाए प्राप्त की थी जिसमे 'विचार' नामक कहानी को अनुपमा देवी के नाम से छाप दिया था। इस बात की जानकारी शरत् बाबू को नही थी। यह कहानी नवम्बर १९१३ ई० के 'यमुना' पत्रिका मे छपी थी।

'शरत्चन्द्रेर जीवनेर एक दिक' नामक पुस्तक के पृष्ठ ८१ मे सुरेन्द्रनाथ गागुली ने लिखा है—'निरुपमा थी—बूडी—इनका उपनाम था—अनुपमा। आजकल इनका साहित्य में रूपान्तर होकर निरुपमा हो गया है।'

सुरेन्द्रनाथ गागुली के इस कथन का प्रतिवाद करते हुए विभूति भूषण भट्ट ने उन्हे एक पत्र मे लिखा—"बूढे हो गये हो, उम्र का दोष है, मन मे जो अल्लम-गल्लम आया, बक देते हो, खासकर बूडी को लेकर—बूडी का नाम हमेशा से निरुपमा है, अनुपमा कभी नही था।"

इस पत्र को पाने के बाद सुरेन्द्र गागुली ने अपनी गलती के लिए खेद प्रकट किया था।

डा० सुकुमार सेन ने 'बागला साहित्येर इतिहास' के चौथे खण्ड मे लिखा है—"इनका असली नाम है—अनुपमा। सन् १९०८ ई० (बगाब्द १३१५) के माघ महीने से (भारती—शेफालिका) निरुपमा नाम गृहीत हुआ था। कुन्तलीन पुरस्कार १३११ (बगाब्द) तथा भारती (१३१५ ब. भाद्रपद-अग्रहायण) मे प्रकाशित कहानियो मे अनुपमा नाम मिलता है।"

आगे चलकर शरत् बाबू ने 'अनुपमा का प्रेम' कहानी लिखी थी। यह घटना भागलपुर मे हुई थी जब निरुपमा देवी विधवा होकर जप-तप मे व्यस्त रहती थी। कहानियां तथा कविताए लिखती थी। इस कहानी की चर्चा आगे की गयी है। एक प्रकार से इस कहानी के माध्यम से निरुपमा को यह सलाह दी गयी थी कि विधवा-जीवन व्यतीत करने से अच्छा है कि अपने प्रेमी से विवाह कर लो। शरत् बाबू का आशय निरुपमा देवी समझ गयी थी। आगे चलकर यह कहानी 'साहित्य' पत्रिका के अप्रैल अक मे (१३२० ब० चैत्र) छपी थी।

इसके पूर्व भागलपुर तथा कलकत्ता से भागने के कारणो पर प्रकाश डाला जा चुका है। अब सुदूर बर्मा मे बैठे उन्हे निरुपमा की याद कितनी सताती रही, उसकी झलक उनके पत्रो मे मिल जाती है—

२२ फरवरी, सन् १९०८ को विभूति भूषण भट्ट के पत्र मे उन्होने लिखा है—न जाने बूडी की कापी कितनी मोटी हो गयी होगी। एक बार पढने की इच्छा होती है। चुपचाप उसे भेज दो। पढकर जल्द वापस कर दूगा। अगर वह इस बीच खोजे तो कहना कि एक भला आदमी पढने के लिए ले गया है।'

२२ मार्च, १९१३, प्रमथ के नाम—'साहित्य-सभा की सदस्या निरुपमा लिख पढ़ रही है।'

फणीन्द्र नाथ के नाम—'सौरीन, सुरेन, गिरीन, उपेन के जरिये निरुपमा से कविता क्यो नही मांगते? उसके बडे भाई विभूति को पहचानते होगे। उन्हे लिखने पर रचना पा सकते हैं।'

१२/२/१३—निरुपमा अगर आपको रचना देती है तो बहुत अच्छा होगा। कविता लिखने की उसमे अपूर्व क्षमता है।'

२८/३/१३—'निरुपमा को खुश रखकर उससे अधिक से अधिक रचना पाने का प्रयत्न कीजिएगा।'

अप्रैल, १९१३—'निरुपमा को अपनी पार्टी मे लेने का प्रयत्न कीजिएगा। वह वाकई अच्छा लिख लेती है।'

३/५/१९१३—'निरुपमा देवी की कोई रचना मिली? अगर उसे कोई जिम्मेदारी दे दें तो अच्छा हो।'

श्रीमती लीलारानी गगोपाध्याय के नाम—'अनेक सुन्दर जीवन समाज मे विधवा-विवाह का प्रचलन न रहने के कारण हमेशा के लिए व्यर्थ हो गया है। इससे अधिक अपने बारे में कुछ कहने को नही है।'

'अन्नपूर्णा का मंदिर', 'दीदी' उपन्यासो की लेखिका निरुपमा जब १६ वर्ष की उम्र मे विधवा हो गयी तब मैंने उसे बार-बार समझाया था कि बूडी, विधवा होना नारी-जन्म की न तो चरम दुर्गति है और न सधवा रहना सर्वोत्तम।'

कलकत्ता आने के पश्चात् श्रीमती लीलारानी और राधारानी के नाम भेजे पत्रो मे उन्होंने अपने दिल

दर्द को व्यक्त किया है।

२९/७/१९१९—लीलारानी के नाम—'तुमसे एक प्रश्न करना चाहूगा। जो विधवा अपने पति को जान नही सकी, पहचान नही सकी .

मगर जो एक बार जान चुकी है, पहचान चुकी है, अर्थात् सोलह वर्ष की उम्र मे विधवा हो गयी है, अपने लम्बे जीवन मे और किसी से क्या प्रेम या विवाह नहीं कर सकती? जरा-सा कोशिश करने पर देखोगी कि इसमे केवल यही संस्कार छिपा है कि पत्नी पति की सामग्री है। स्त्री का नारी-रूप मे अपनी कोई सत्ता नही है।

जबकि मैंने उपन्यासो मे कही भी विधवा विवाह नही कराया है। इस पर तुम्हे आश्चर्य हो सकता है।

१८/४/१९१९—'जितनी घटनाए होती हैं, सभी को लिखना नही चाहिए। कुछ तो परिस्फुट कर कहना चाहिए, कुछ इशारे बताना चाहिए और कुछ पाठको की जबानी कहलाना चाहिए।'

२३ वैशाख, श्रीमती राधारानी के नाम—'तुम लोगो को आज भी पहचान नही सका। अपने जीवन की कठोर-वेदना मे केवल इसी अभिज्ञता को प्राप्त कर सका हूँ, राधू। अपने जीवन को बूद-बूद गलाते हुए अन्त मे चुपचाप जलाकर जिस अभिज्ञता को मैंने वास्तविकता से आरोहण किया है, अब ऐसा लगता है कि मेरे साहित्य मे वही बारम्बार मेरी जानकारी और अजानकारी मे प्रस्फुटित हुआ है। चूकि यह अकृत्रिम सत्य के ऊपर प्रतिष्ठित है, इसलिए शायद इतने सहज मे वह हर छोटे-बडे के निकट लोकप्रिय है।''

'वास्तविक गहरा प्रेम, कल्याण-बुद्धि के प्रकाश के चिर विच्छेद मे ही कही सार्थक होता है और कही सार्थक होता है—चिर मिलन के अन्तर्गत। विच्छेद के जिस क्षेत्र मे प्रेम का कल्याण आता है, वहीं सयम के अभाव मे मिलन होने पर सर्वनाश होता है। दूसरी ओर जहा मिलन मे प्रेम का कल्याण है, वहा बलिष्ठता के अभाव मे विच्छेद होने पर ठीक उसी प्रकार सर्वनाश होता है।

मेरे साहित्य मे जो कुछ तुमने पाया है, अगर जीवन मे मुझे वह न मिला होता तो क्या ऐसा साहित्य लिख पाता?'

२० वैशाख, १३३२ (बगाब्द)—'मेरे एक गार्जियन थे। उनकी तरह कडा-तगादगीर ससार मे कम हैं और वही थी मेरे साहित्य की सबसे कठोर आलोचक। उनके तीक्ष्ण तिरस्कार के कारण मैं आलस नही कर पाता था और न चालू या भरान वाली चीजे लिख पाता था। उनकी निगाह से एक भी ऐसी लाइन नही चूकती थी। मगर आजकल वे धर्म-कर्म मे व्यस्त हैं। गीता-उपनिषद के अलावा कुछ नही पढती। कभी खोज खबर भी नही लेती, इसीलिए मैं डाट सुनने से वंचित हूँ।''

इन सभी पत्रो मे प्रकट तथा अप्रकट रूप मे श्रीमती निरुपमा के बारे मे जिक्र किया गया है। सच तो यह है कि इस चातक-तृष्णा के कारण ही शरत् बाबू एक सफल लेखक हो सके।

अगर सपूर्ण शरत्-साहित्य का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि इनकी रचनाओ मे एक न एक पात्री विधवा है जो निरुपमा का प्रतीक है।

'मंदिर' शरत् बाबू की प्रथम प्रकाशित कहानी है। अपर्णा विधवा है। नायक शक्तिनाथ जब उसे इत्र की शीशियां भेट दे देता है तब वह जल उठती है। एक सामान्य पुजारी की यह हिम्मत? वह जवाब देती है—''पण्डितजी, तुम्हारे मन मे यह सब है? अब तुम यहा मत आना, मंदिर की छाया से दूर रहना। जाओ—''

निरुपमा देवी के पत्र का यही आशय था। दरअसल अपने उपन्यासो और कहानियो के माध्यम से वे अपना अव्यक्त प्रेम तथा निरुपमा देवी के रूढ़ व्यवहार को स्पष्ट करते गये हैं। 'पल्ली समाज' मे रमेश कहता है—

''कोई बात तुम्हे बिना बताये, तुम्हारी छाया तले बैठकर अपने जीवन का सारा कार्य करता जाऊगा।''

''वह सब घटनाए इतनी पुरानी नही हुई हैं जो तुम्हे याद न हो। अगर अपनी सुविधा के लिए चले जाने को कहो तो मैं वह भी कर सकता हूँ।''

सन् १८९३ मे निरुपमा देवी का विवाह हुआ था। उन दिनो वे दस वर्ष की थी। सन् १८९७ ई० मे विधवा हो गयी। विवाह चुचडा मे रहते हुआ था और भागलपुर आने के बाद वे विधवा हुईं।

'चरित्रहीन' मे सतीश सोचता है—सरोजिनी का हृदय पाने की आकाक्षा अचानक उसके मन मे कब उदय हुआ था, इस बात को वह स्मरण नही कर सका। यह सच है, पर मन के भीतर आकाक्षा तो थी वर्ना ऐसी घटना कैसे होती? यह अमृत सजात कौन-सी सिन्धु मन्थन करके हुआ था? सावित्री को खोकर इस सत्य को पाया था कि युवती-रमणी का मन पाना एक बात है और उसे पाकर उपयोग मे लाना अलग बात है, क्योंकि यह पाना नर-नारी के निभृत हृदय मे चुपचाप नि.शब्द से सम्पूर्ण होता रहता है।"

"एक का प्यार जहा असीम है, दूसरा उसको ग्रहण करने का रास्ता ढूढ़ने पर क्यो नही पाता?"

श्रीमती राधारानी देवी ने शरत् बाबू के हृदय की वेदना का गहरा अध्ययन किया है और उनकी ऊहापोह की स्थिति का चित्रण बखूबी किया है। शायद आप ही एक ऐसी महिला हैं जिन्होंने बडी गहराई से शरत् बाबू के सवेदनशील हृदय को पहचान ली हैं। निरुपमा से शरत् बाबू आजीवन प्रेम करते रहे और अपनी सारी घुटन को उन्होंने स्पष्ट रूप मे जबानी कहा है तथा कुछ पत्रों में व्यक्त किया है।

इस सम्बन्ध मे श्री राधारानी देवी ने लिखा है—"शरत्चन्द्र के हृदय के आकाश मे उन दिनो एक अदृश्य तर्जनी उनकी इच्छा और साहित्य को नि शब्द रूप में नियंत्रित करती थी। जिस नियत्रण को शरत्चन्द्र का हृदय किसी भी दिन अस्वीकार नही कर सका। उस नियत्रण के कारण शरत्चन्द्र का जीवन और उसी प्रकार उनका साहित्य भी दिशा बदलकर भिन्न मार्ग पर प्रवाहित हुई। अपने प्रारभ के जीवन मे अपने शिल्प को जिस प्रकार दूसरो की रुचि का ख्याल करके शिल्पी ने जो असामान्य त्याग किया है, आवारा-यायावर होने के कारण ऐसा सभव हुआ है। इस आत्म-समर्पण का कोई प्रतिदान उन्हे तमाम जिन्दगी मे कभी नही मिला। इसके लिए उनके हृदय मे वेदना थी। फिर भी प्रश्नहीन रूप मे यह विद्रोही युवक एक अन्त पुर मे रहने वाली विभ्रान्त चित्त के व्यथित निर्देश को सिर नवाकर स्वीकार करता आया। विध्य पर्वत की तरह अपना समुन्नत तेज और यौवन की विद्रोही सत्ता को, एक अदृश्याचारिणी के सम्मान मे झुका रखा था।

भागलपुर और कलकत्ता से वे किसी को कुछ बिना बताये क्यो भाग गये थे?

अनावश्यक होने पर भी मैं कहना चाहूगी। वह इसलिए इसी दिन मुह खोलकर उन्होंने निरुपमा के बारे मे बहुत सी बाते बतलायी थी। उस दिन उनके मन की गाँठ परत-दर परत खुलती गयी थी।

एक दिन बरसात के मौसम मे मैंने अचानक उनसे आग्रह किया कि दादा, आप भागलपुर से अचानक क्यो गायब हो गये थे, जानने की बडी इच्छा है। कलकत्ता से भी आप बिना कारण अचानक गायब हो गये थे। आखिर क्यो? आपके अन्तरग मित्रो को भी इसकी भनक नही लगी।

शरत्चन्द्र ने कहा—"अगर वे लोग जान जाते तो मेरा भागना पण्ड हो जाता। कोई जाने नही देता।"

—सुरेन मामा की जबानी पता चला कि उन्ही दिनो किसी नाटक का आयोजन किया गया था। एक दिन काक पक्षी को भी पता नही चला और आपके बक्स, कपडे, यहा तक कि बासुरी भी गायब हो गये।

—सारा सामान बेचकर हनुमानजी की तरह समुद्र लाघ गया।

मैंने व्यग्र होकर पूछा—"आखिर क्यो? सच-सच बताइयेगा। मुझे धोखा देने की कोशिश मत कीजिएगा। बनाकर भी नही। न बताना चाहे तो मत बताइये। मुझे कोई कष्ट नही होगा। अगर झूठ कहेगे तो कष्ट होगा। आखिर सारा सामान आपने क्यो बेच दिया?"

करुण स्वर मे जवाब मिला—"अब मैं पदातिक सैनिक नही, जल सैनिक था। पद यात्रा मे पैसे नही लगते। समुद्र यात्रा मे लगते हैं। इसीलिए सारा सामान बेच दिया, फिर भी एक नौकरानी से उधार लेना पडा। गोकि एक वर्ष के भीतर उसके कर्ज को वापस कर दिया था।"

इसके बाद वे बहुत देर तक चुप रहे। जैसे अतीत की गहराई मे खो गये थे। मैं उद्विग्न भाव से उनकी ओर देखती रही।

—एक चिट आया था—डाक से। कुछ लाइने थी।

"यहा से कोई सम्पर्क न रखे—कभी नहीं। आप बहुत दूर चले जाइये। मुझे सांस लेकर जीने दीजिए।"

बस, एक छलांग मे सागर पार कर गया। गोकि मैं पहले से ही जाने को सोच रहा था। दियासलाई जैसे भक् से जल जाती है, ठीक उसी तरह कई लाइनें थीं। दो-तीन दिन के भीतर गायब। देर नही की।"

भागलपुर से वे क्यों अचानक भाग गये थे, इस बारे में कई लोगों के पूछने पर उन्होने भिन्न-भिन्न उत्तर दिये थे। कभी बताया—पिताजी द्वारा संग्रहीत दुष्प्राप्य पत्थरो को बाट देने के कारण पिताजी ने फटकारा था, इसलिए भागा। किसी को बताया कि मामा के यहां जगद्धात्री-पूजा के समय कट्टरपंथियो ने उन्हें उच्छृंखल कहते हुए कहा था कि अगर शरत्चन्द्र भोजन परोसेगा तो हम लोग नही खायेगे। इस अपमान से पीडित होकर वे संन्यासियो के साथ घूमते रहे। इसके अलावा भी दो-एक कारण बता चुके हैं।

एक दिन उनका मूड बहुत खराब था। अत्यन्त गभीर मुद्रा मे अपने आप बडबडाते हुए घर मे आकर मेरे कमरे की ओर बढ़ते दिखाई दिये।

अपने आप बकते जा रहे थे—"यह मैंने अद्भुत तरह से देखा है और जीवन भर देखा है, इसकी जडे कहा हैं, आज तक खोज नही सका। मनुष्य अपने मनुष्यत्व को, अपनी सहज प्रकृति को, अपने शरीर के रक्त-मास को इस तरह अस्वीकार करते हुए एक नकली गुब्बारे की तरह जिन्दगी गुजार देता है? अगर औरतों को ठीक से न देखता तो विश्वास न करता।"

मैं भय से सिहर गयी, पर बढ़ती बेचैनी को दबाकर पूछ बैठी—किसके बारे में कह रहे हैं, बडे दादा?"

—जिसकी बात पर तीन घटे के भीतर देशत्यागी हो गया था।

—सच?

—हा, एक छोटा-सा चिट आया था—आप यह देश छोडकर चले जाइये। अब यहां न आयें। मुझे इस तरह नष्ट न करे।

—आपने चन्दननगर में यही कहा था कि आप एक पत्र पाकर वर्मा चले गये थे। पहली बार पिताजी पर नाराज होकर घर से गायब हुए थे।

—नही। दूसरी बार मुझसे एक गलती हो गयी थी। मैंने एक पत्र उसके नाम लिखा था। वह पत्र निर्मल और निर्दोष था, पर वह पत्र दूसरे के हाथ लग गया था। यह लिखना ही मेरा मौलिक अपराध था। यहा अच्छे-बुरे का प्रश्न नही है। फलस्वरूप—डाक से निर्वासन दण्ड मिला।"

आज शरत् दादा के अन्तर में उथल-पुथल मची हुई थी। ऐसी हालत में कोई प्रश्न न कर मैं उद्विग्न भाव से उनकी ओर देखती रही। प्रश्न करने की अपेक्षा चुप रहना बेहतर है। एक दिन मुझे यही बात कह चुके हैं। भागलपुर से वे क्यो भागे, इस बात को निरुपमा के अलावा अन्य कोई नहीं जानता था।

चिट पर लिखे गये वे अक्षर शरत् दादा के अस्थि पिंजर पर आग की अक्षरों में उत्कीर्ण हो गये थे। इनके साहित्य में बार-बार शुद्धाचारिणी बाल-विधवा के मुंह से यही बातें निकली हैं। उनके मंदिर कहानी मे, कठोर स्वर में अर्पणा कहती है—"अब तुम मेरे सामने मत आना।" अपनी चम्पक अंगुली से बाहर का रास्ता दिखाती हुई कहती है—'जाओ।'

'बडी दीदी' की अन्तःपुरिका बाल-विधवा माधवी सुरेन्द्रनाथ को अपने हृदय में अनधिकार प्रवेश करते देख भय से व्याकुल होकर घर से बाहर निकाल देती है। दुखिनी माधवी सुरेन्द्रनाथ को अपने निकट से उसे दूर हटा देती है।

इसके बाद आती है—पल्ली समाज की रमा। संभ्रम पराधन हिन्दू बाल-विधवा रमा। रमा की तरह तीक्ष्ण बुद्धिमती, विचार-शक्तिशालिनी महिला के मुंह से भी यही वचन निकलती है—"आपके जाने से मुझे कोई लाभ नहीं होगा, पर न जाने पर नुकसान होगा। मैं विनती कर रही हूं रमेश भैया, मुझे चारो ओर से नष्ट मत करो। तुम जाओ, इस देश से चले जाओ।'

'पथ निर्देश' की हेम स्वभाव से विद्रोहिणी है। वह भी हिन्दू बाल विधवा है। वह भी गुणीन्द्र का प्रत्याख्यान करती है।

भागलपुर मे एक चिट पाते ही शरत्चन्द्र गायब हो गये थे, यह सच है। शरत्चन्द्र के हृदय मे प्रतिष्ठित इस नारी के जीवन में 'नष्ट करना' या 'नष्ट होना' अकल्पित बात है। शरत्चन्द्र ने किसी भी दिन उनकी इच्छा पर अपनी इच्छा प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न नहीं किया है और न करना चाहा है कभी। जब कि केवल यही भय, एक ही चिन्ता 'पथ निर्देश' मे हेम की जबानी प्रकट होता है—

"समझकर ही कह रही हूँ। तुम घुमा फिराकर जो कह रहे हो, उसे स्पष्ट रूप से मैं तुम्हारे मुंह पर कह रही हूँ। तुम मुझे नष्ट करना चाहते हो। विधवा का विवाह कैसा गुणी दादा?"

यही 'नष्ट करना' शब्द तीर की तरह उनके अन्तर मे बिंध गया था। निरुपमा को सामाजिक अर्थ में 'नष्ट करना' उनकी कल्पना के बाहर की बात थी।

निरुपमा उनके निकट प्रारभ से ही बराबर मूल्यवान एक पवित्र आधार थी। उसके बारे में चिन्ता तक वे अत्यन्त सावधानी से करते थे। कही टूट न जाय, कही हाथ की गंदगी से मैला न हो जाय, कही कोई त्रुटि न रह जाय। प्रियजन के इस दुर्लभ, दुर्मूल्य अनुभव को यथायथ मूल्य का निर्णय या मान-निर्णय निरुपमा देवी कर सकी थी या नही, समझना कठिन है। शायद एक सामान्य माने देखकर साधारण मन से समझकर, गलती से छोटे दायरे मे निरुपमा आबद्ध हो गयी थी। शायद इसीलिए वे डरती थी। शरत् का बाहरी रूप आमतौर पर साधारण ही था। कुछ बदनाम भी थे। निरुपमा ने उनकी ज्योतिर्मय सत्ता को बाहर के तुच्छ आवरण को धुधले रूप में देखा था, क्या? जैसे उनके निकट 'धर्म' और 'धर्म-कर्म' एक तरह का हो गया था। शरत्चन्द्र हजार प्रयत्न करके भी इन दोनों में जमीन-आसमान का फर्क है, इसे समझा नही सके थे। ठीक उसी प्रकार उनका स्नेह-प्यार मौलिक अर्थ मे प्रकट न होकर कामना के रूप मे प्रकट होने के कारण उन्हे शंकित किया था। शरत्चन्द्र के स्वभाव में 'देना' प्रधान था, क्या यह उनके अगोचर रहा? दे सकना ही उनका आनन्द था, लेने की ओर उनकी दृष्टि नही थी। दे पाने पर मानो पाने की तृप्ति अनुभव करते थे। क्या कभी कुछ उनसे मागा था? याद नही आती। उन्हे देने के अधिकार से वंचित रहना पडा था—यही उन्हे पीडा होती थी—ऐसा मेरा विश्वास है।

कही प्रतिदान का बदला न देना पड जाय, इस आशका मे निरुपमा कुछ भी नही ले पाती थी। सिर्फ चोट पहुँचाकर दूर ढकेल देती थी।

उन्हे पत्र लिखने के अपराध मे (अगर वह पत्र दूसरे के हाथ,न लगता तो कोई झमेला न होता) भागलपुर से कलकत्ता पत्र भेजना, मेरी दृष्टि मे भय का द्योतक है। प्रथम बार भागलपुर से भागने वाली घटना अनुचित नही थी। उन दिनो शरत्चन्द्र बिना लगाम के थे, उनका बधन-हीन जीवन था। निरुपमा देवी के लिए वे पारिवारिक तथा मानसिक सुरक्षा नष्ट करने वाले प्रमाणित हो सकते थे। निरुपमा हमेशा सतर्क रहती थी ताकि किसी भी गलती से बदनामी न हो।

शरत् बाबू के निधन के पश्चात् श्रीमती निरुपमा देवी ने उनके सम्बन्ध मे एक सस्मरण लिखा था जिसमे वे लिखती हैं—

"उक्त उदासी कवि स्वभाव का विशिष्ट लेखक हमारे घर के पिछवाडे जहा एक मस्जिद था, वहा घने वृक्षो के नीचे दिखाई देता था। कभी गहरी रात को मस्जिद के ऊँचे आंगन से गीत गाने की आवाज आती, कभी गगा के कछार की ओर से बासुरी बजाने की आवाज आती तब मझले भैया मझली भाभी से कहते—यह न्याडाचन्द्र है। हमारे दल ने एक दिन हवा मे तैरकर आते गीत के बोल की एक लाइन आविष्कार किया—

मैं दो दिन नही आया, दो दिन नही देखा
त्योही बन्द कर लिया अपनी पलके—

इस स्मृतिचारण मे लेखिका ने यद्यपि बहुवचन का प्रयोग किया है, पर गौर करने की एक बात है। इस घटना को बीते हुए तीस-चालीस वर्ष पहले की स्मृतियो से ले आती हैं, कभी हवा से तैरती हुई किसी गीत की कडिया। उनके द्वारा वर्णित 'दल' के किसी को भी ऐसी याद बनी रहे—सभव नही है। इससे यह अनुमान लगाने मे कठिनाई नही होनी चाहिए कि कडे अवरोध मे बन्दिनी तरुणी के शिल्पी-हृदय मे उस उदास तरुण की बासुरी की आवाज ने स्पर्श किया था। साहित्य-शिल्प की अन्तस्पर्शिता ने गहरी रेखा

खीची थी। वे तीस-चालीस वर्ष पूर्व हवा मे तैरती हुई आने वाले गीत की लाइनो को भूल नही गयी थी।

आगे आप लिखती हैं—"दादा के बैठका मे उनके कठ से हम लोगो ने अन्य गीत सुने हैं। मगर ऐसे बैठको मे वे बासुरी कभी नही बजाते थे। नवकृष्ण भट्टाचार्य द्वारा रचित एक गीत उन्हे अधिक पसन्द था—

गोकुले मधु फुराये गेल
आधार आजि कुजवन"।
(गोकुल मे शहद समाप्त हो गया। आज कुंज वन मे अंधेरा है।)

इन स्मृतियो को सजोये रखना क्या प्रमाणित करता है, इसका अनुमान आज लगाने मे अडचन नही है।

शरत्चन्द्र की जबानी सुन चुकी हू कि बूडी को कविता छोडकर गद्य तथा उपन्यास लिखना मैने सिखाया है। इसका अर्थ यह है कि अन्दर महल से रचनाए लिखकर बाहर आती थी जिसका सशोधन शरत्चन्द्र करते थे। उसके साथ ही हासिये मे अपने विचार लिख देते थे। निरुपमा अनुगता छात्री की तरह उन्हे ग्रहण करती थी। जन-समाज मे प्रकाशित शरत्चन्द्र द्वारा लिखित रचनाओ के बारे मे निरुपमा अपनी राय देती थी—यह एक जरूरी तथ्य है।

शरत्चन्द्र बर्मा आदि जगहो से विभूति भूषण भट्ट को पत्र लिखते थे। उसके साथ ही निरुपमा की रचनाओ के बारे मे अपनी राय लिखकर निरुपमा को भी पत्र देते थे। एक बार निरुपमा के नाम लिखे गये पत्र को लेकर परिवार मे असतोष उत्पन्न हो गया था। इसके बाद ही एक संक्षिप्त पत्र कलकत्ता आया जिसके कारण शरत्चन्द्र को डेरा-डडा उठाना पडा।

"यमुना" और "भारतवर्ष" मे प्रकाशित शरत्चन्द्र की रचनाओ के बारे मे निरुपमा अपनी राय पत्र मे लिखती रही। इसके पहले भी भागलपुर मे शरत्चन्द्र की कापियो मे अपनी राय लिखती रही। शरत्चन्द्र अपनी रचनाए निरुपमा को पढने के लिए भिजवाते थे। यही से निरुपमा का साहित्य-बोध के सम्बन्ध मे शरत्चन्द्र मे श्रद्धा का उद्भव हुआ था। सभी लोगो की निगाह बचाकर दोनो तरुण-तरुणी का साहित्य को अवलम्ब बनाकर, बन्धन-हीन हृदय की ग्रथना भागलपुर से ग्रंथित हुआ था।

निरुपमा ने शरत्चन्द्र को उनकी रचनाओ के बारे मे उच्छ्वसित प्रशसा और अभिनन्दन जताया था—बर्मा भेजे गये पत्रो मे। शरत्चन्द्र के लिए इन पत्रो का उत्तर देने का कोई उपाय नही था। वे अपने मन की बात उपन्यासो मे ही खोलते थे। साहित्य के अन्तर्गत उनकी चिन्ता, आकाक्षा, सुख-दु:ख रहता था। यह सब यथा स्थान पहुँचता था।

बधनहीन, विद्रोही, लापरवाह रहने वाला जो व्यक्ति उच्छृंखलता के स्रोत मे अपने को किशोरकाल मे बहाया था, वही व्यक्ति स्थिर धैर्य-जीवन को नियंत्रित करता रहा, एक व्यक्ति के सुन्दर-सयम को स्मरण करते हुए। वास्तव मे निरुपमा कडी तगादगीर थी। समालोचक भी थी, क्योंकि प्रत्येक पुस्तक प्रकाशित होते ही पढने के पश्चात् अपनी राय स्पष्ट रूप से लिखकर शरत्चन्द्र के पास भेजती थी। लेखक की साहित्य सृष्टि का यही सबसे बडा पुरस्कार था। शरत्चन्द्र का ख्याल था कि निरुपमा से उत्कृष्ट कोई समझदार नही था। उसकी साहित्य-रस ग्रहण-शक्ति के प्रति, इनकी गहरी आस्था थी।

एक बार बातचीत के सिलसिले मे श्रद्धेय प्रमथ चौधुरी ने शरत्चन्द्र के बारे मे कहा था—"लगता है जो जीवन रुचिविगर्हित था, जिस मार्ग को वे घृणित मानते थे, उसी मार्ग की ओर अपने को ले गये थे। बचपन से यौवनकाल तक गलत राह की ओर चलते रहे। जब उन्हे होश आया तब तक वे आहत हो चुके थे। अपने इस सर्वनाश को वे आजीवन क्षमा नही कर सके। अपनी कलंक-कहानी सुनकर उदास रहना, नशा करना, निषिद्ध बस्ती मे रहना और उसकी कहानी कहना—एक प्रकार से आत्मधिक्कार है।'

यह मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया है। दरिद्रता मे सहज प्रकृति नही मिलती थी जबकि उन्हे दरिद्रता मे पलना पडा। आत्म सभ्रम उनका सहजात था, फिर भी बाप-मा को मामा के घर कुंठित-जीवन व्यतीत करते उन्होने देखा था। इसीलिए वे लापरवाह हो गये, अपने को बचपन से ही बिखेर दिया। स्वय जो कुछ बन गये थे, वह उनके पसन्द की नही थी, इसीलिए हमेशा अपने ऊपर व्यग्य करते थे।"

एक बार उन्होने मेरी उत्सुकता को दबा देने के लिए एक पत्र लिखा था— "... इस उपदेश को

कभी मत भूलना कि पृथ्वी मे कौतूहल का मूल्य ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से चाहे जितना वडा हो, उसे दमन करने का पुण्य ससार में कम नही है।

जिस वेदना का प्रतिकार नही है, शिकायत करने पर जिसका पक ऊपर उभर आता है, वह अगर स्थिर हे तो रहने दो। आखिर वहा है क्या? अगर हम न जाने तो कौन-सा नुकसान हो जायगा? ..

ससार मे कुछ ऐसी भी वाते होती हैं जिसे किसी के सामने व्यक्त नही किया जा मकना। करने पर कल्याण की अपेक्षा अकल्याण होता है। जव कि यह नीरवता की सजा अतिशय कठिन है।"

अपने यौवन काल मे जिसे उन्होने प्यार किया था, हमेशा के लिए उसमे अपने को दूर रखा—अपनी सामाजिक अयोग्यता के कारण। अपने हृदय मे उनके सान्निध्य का निर्माण कर साहित्य के माध्यम से उसे स्पष्ट करते रहे। लेकिन वहा भी उन्हे वंचित रहना पडा है। शिल्पी को अपना दायां अगूठा काटकर चुपचाप प्रेम के नि शर्त दक्षिणा देना पडा था।

अक्सर एक वात मेरे मन को कचोटती हे। यद्यपि कहना उचित नही हे, फिर भी कह रही हूं। शिल्प के लिए कभी-कभी नियति की निष्ठुरता आशीर्वाद वन जाती हे। मैं सोचती हूँ कि अगर निरुपमा देवी शरत्चन्द्र की अभिज्ञता मे उदित होकर उन्हे उद्‌वुद्ध कर कुछ दिनों वाद अस्त हो जाती तो शायद शरत्चन्द्र की शिल्पी-आत्मा मुक्त रहती। कोई जिम्मेदारी उन्हें स्पर्श न करती।

रवीन्द्रनाथ के शिल्प जीवन में कादम्वरी देवी की तरह निरुपमा देवी शरत्चन्द्र की शिल्पयात्रा के प्रारंभ मे अन्तर्हिता होती तो शरत्-साहित्य प्रवाहित होता अन्य क्षेत्र की ओर, भिन्न दिशा की ओर, भिन्न धारा मे, स्वच्छन्द मुक्त रूप मे। क्योंकि शरत्चन्द्र की शिल्पी सत्ता में गृह वधन, समाज वधन विलकुल नही था। अन्तरालवासिनी निरुपमा का जीवित अस्तित्व शरत्चन्द्र को जिस प्रकार ऐश्वर्य मंडित किया था, उसी प्रकार उनकी पूर्ण शक्ति के विकास मे वाधा उत्पन्न की थी। लोक निन्दा और सामाजिक भय के कारण अनेक वडे-वड़े शिल्पी अपनी लेखनी का मार्ग मोड़ चुके हैं।

शरत्चन्द्र को स्वगत कहते सुन चुकी हूँ, वे अपनी शिल्प-शक्ति निरुपमा तक पहुँचा देने मे समर्थ हो गये हैं। उनका साहित्य पढ़कर वह विस्मय से दीप्त हो उठी है, आनन्द से उज्जवल हो गयी है, कठोर परदे के भीतर से इन दोनों का शिल्प विनिमय होता और एक दूसरे के शिल्प से परिचित होते थे। शरत्चन्द्र समझ गये थे कि उनकी रचनाए निरुपमा के हृदय को स्पर्श कर चुकी हैं। वहुत योजन दूर रहते हुए इसकी उपलव्धि उन्हे हो गयी थी। साहित्य ही इन दोनो के मन का सयोग सूत्र था।

इसी साहित्य के जरिये शरत्चन्द्र निरुपमा से बातें करते थे। खासकर अपने मन की सारी वाते वे 'श्रीकान्त' के तीसरे भाग मे अधिकतर कह गये हैं।

'वडी दीदी' पढने के पश्चात् निरुपमा ने उन्हे लिखा था कि आप अपनी कहानियों मे वाल विधवा का चित्रण न करें।

प्रत्युत्तर में शरत्चन्द्र ने लिखा था—कलम की नोक पर जो आ जाता है, उसे रोकना मैं उचित नही समझता। मगर डरने की जरूरत नही, मैं अव ऐसी कोई वाल-विधवा का चित्रण नंही करूगा जो तुम्हारे मन को चोट पहुँचाये।

शरत्चन्द्र जवानी कहा था—"महिलाएं अपने सुख-दु ख को अपने स्वार्थ से और कुछ वडा अनुभव नही करती। 'वूडी' ने साहित्य-चर्चा विलकुल छोड दी। जीवित रहकर उसने आत्महत्या कर ली। अगर वह लिखना वन्द न करती तो वगला-साहित्य को देने लायक कुछ दे सकती थी। कलम फेककर केवल गीता-उपनिषद और जप की माला लेकर मोक्ष प्राप्ति के लिए दौडी है। अन्त मे उसे क्या मिलेगा, इस वात को उसके गुरु अच्छी तरह जानते हैं।"

हिरण्मयी देवी और निरुपमा देवी शरत्चन्द्र के जीवन मे विलकुल विपरीत नारी हैं। एक दूसरे से विपरीत हैं। एक उनके वास्तविक जीवन के दैनिक प्रयोजनों मे केवल सेविका की भूमिका निवाहती थी। शरत्चन्द्र के चिन्ताजगत या शिल्प भावना का सहयोगी वनने की कोई सभावना नही थी। शिल्पी शरत्चन्द्र का लेखक अस्तित्व हिरण्मयी के निकट गहरे अधकार की तरह था। वे पुस्तक लिखते हैं, इसलिए लोग उनका सम्मान करते हैं, रुपये देते हैं, कुल जमा इतना ही वे समझ सकी थी, इससे अधिक नही।

हिरण्मयी की आत्म समर्पित सेवा परायणता को शरत्चन्द्र ने कृतज्ञता के साथ स्वीकार किया था। अबोला प्राणी के प्रति उनकी जो बहु प्रसिद्ध ममता थी, उसी प्रकार की ममता हिरण्मयी के प्रति थी। इस विद्या-बुद्धिहीन, सरल, सहज, महिला के विश्वस्त आत्म निवेदन में उनके प्रति स्नेह-कर्त्तव्य की त्रुटि कभी देखने मे नही आयी।

निरुपमा से उन्हे प्राप्त हुआ था—'शिल्पसत्ता की स्वीकृति, सम्मान और अभिनन्दन। निरुपमा ने उन्हे दिया था—आत्म विश्वास, आत्म श्रद्धा, जब वे शिल्पलोक की यात्रा कर रहे थे। उनकी श्रद्धा, उनका विश्वास शरत्चन्द्र को स्वयं अपने बारे में विश्वासी और श्रद्धाशील बनाया। निरुपमा शरत्चन्द्र के मनोजगत में आराध्या बनकर दूर रहती हुई अपना जीवन गुजारती रही। पत्राचार के अलावा उनका आपस मे कोई सम्पर्क नही था। पास आना कल्याणप्रसु नही है, इस बात को निरुपमा ही नही, शरत्चन्द्र भी अच्छी तरह जानते थे। फलस्वरूप एक धर्म, पूजा, कठोरता पूर्वक करने लगी और दूसरा अपने प्रति वीतरागी होकर, साहित्य-साधना छोडकर परदेश मे यायावर की तरह नये मार्ग की तलाश मे लग गया।"

सन् १९४७ ई० मे यात्रा के सिलसिले मे श्री नरेन्द्र देव पूरे परिवार के साथ घूमते हुए वृन्दावन आये। नरेन्द्र देव को यह ज्ञात था कि निरुपमा देवी आजकल यही रहती हैं। उन्हे पता भी मालूम था। उनके घर अपनी पत्नी राधारानी, बेटी नवनीता तथा श्रीमान सरोज को लेकर गये।

समाचार पाते ही वे नीचे आयीं। सिर पर छोटे-छोटे बाल, निराभरण, दुबली-पतली, तन पर सफेद धोती थी। इन लोगो को देखते ही उनका आनन प्रसन्नता से चमक उठा। आगे बढकर वे अप्रत्याशित रूप से दोनों हाथों को फैलाती हुई, राधारानी को कलेजे से लगाकर फफककर रोने लगी। सभी लोग अवाक् रह गये। इन लोगो ने इस बात की कल्पना नही की थी कि वे इतना विचलित हो उठेगी।

फिर रुधे स्वर मे बोली—"तुम लोग आये हो? तुम लोग मुझे देखने के लिए कलकत्ता से आये हो? तुम लोग मेरे आदर के पात्र हो। तुम लोग मेरे शरत् दादा के राधू-नरेन हो। शरत् दादा तुम लोगो को कितना चाहते थे।"

अब जाकर इन लोगो को समझ मे आया कि सहसा निरुपमा देवी इतना क्यो विचलित हो गयी थीं। शरत् बाबू के निधन के नौ वर्ष बाद यह मुलाकात हुई थी। क्या हम लोगों को देखकर उन्हे शरत् दादा की बात याद आ गयी। क्या उन्होंने यह अनुभव किया कि हम लोग शरत् दादा के आदमी हैं और उनके यहा से आ रहे हैं। देर तक वे रोती रही। लौटते वक्त सभी चुपचाप थे। अपने मन के भीतर इस घटना का मथन करते रहे।

जिस प्रकार हिरण्मयी देवी के बारे मे, सही बात कहने मे लोग हिचकते रहे कि कही कोई कानून विवाद उत्पन्न न हो जाय, ठीक उसी प्रकार शरत् बाबू अपनी किशोरावस्था के प्रेम की चर्चा नही करते थे, क्योंकि उनके समकालीन सभी साहित्यिक उनका आदर करते थे। शरत् बाबू का स्वभाव ऐसा था कि उनसे सम्पर्क रखने वाला प्रत्येक नर-नारी उनके बारे में अप्रतिष्ठा वाली बात नही कहना चाहता था।

जिन लेखको ने उनके पत्रों तथा मौखिक बातो के आधार पर निरुपमा देवी के प्यार की चर्चा की है, वे भी 'एक साहित्यिक महिला' के नाम से उल्लेख करते रहे। शेष लोग इस प्रसग से कन्नी काटते हुए आगे बढ़े गये हैं। वह इसलिए कि एक तो भट्ट परिवार अत्यन्त प्रतिष्ठित तथा धनाढ्य परिवार था। उनकी तुलना मे शरत् बाबू का ही नहीं, उनके ननिहाल के लोगो का कोई मूल्य नही था। इसके अलावा एक बाल-विधवा को कीचड मे घसीटना किसी भी विवेकशील लेखक के लिए उचित नही था।

बगाल मे जहां महिलाओ की बडी दुर्गति होती है, वही उनका बेहद सम्मान किया जाता है। मा, मौसी कहने पर वे दयार्द्र हो जाती हैं। भले ही वह धोखेबाज हो, पर उसे स्नेह-ममता मिल जाते हैं।

शरत् बाबू विवाहित होते हुए भी आजन्म चातक-तृष्णा की भांति निरुपमा के प्रति सवेदनशील रहे। मन मे उसकी पूजा करते रहे। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण 'शुभदा' नामक उपन्यास की घटना है।

'शुभदा' उपन्यास उन्होने भागलपुर रहते समय लिखा था। भागलपुर मे वे जितनी रचनाएं लिखते थे, उन्हे निरुपमा देवी को पढ़ने के लिए देते थे। वे उसमें अपनी राय लिखती थीं।

वर्मा से वापस आने के बाद शरत् बाबू ने निरुपमा देवी वा प्रथम उपन्यास 'अन्नपूर्णा का मन्दिर' पढा तो चौंक उठे। इस उपन्यास पर उनके 'शुभदा' की छाप स्पष्ट है। अगर वे शुभदा छपवाते तो निरुपमा देवी की स्थिति खराब हो जाती। उनकी वह रचना मौलिक न मानकर चोरी की मानी जाती, क्योंकि तब तक अधिकाश लोगों को यह ज्ञात हो गया था कि शरत् बाबू की बचपन की लिखी कुछ रचनाए अप्रकाशित हैं। इसके अलावा तब तक साहित्य के क्षेत्र में वे प्रतिष्ठित हो चुके थे। उनके आगे निरुपमा का कोई महत्व नही था।

इस बात को स्वय निरुपमा देवी ने अपने एक लेख मे स्वीकार किया है—"मगर मैं एक बात स्वीकार करने के लिए बाध्य हूँ कि इस कहानी (अन्नपूर्णा का मन्दिर) को लिखते समय शरत् दादा के 'शुभदा' उपन्यास का आभास इसमे आ गया है, यह पूर्ण सत्य बात है।"

"शुभदा" उपन्यास को उन्होने अपने जीवितकाल मे छापने के लिए नही दिया। १६ जनवरी, १९३८ ई० को उनका निधन हुआ और जून १९३८ मे 'शुभदा' का प्रथम प्रकाशन हुआ था।

शरत् बाबू के एक घनिष्ठ मित्र थे—श्री अविनाश चन्द्र घोषाल। आप शरत् बाबू के निकट इतने प्रिय थे कि 'भेलो' के निधन के पश्चात् इनके नाम पर दो लाइन की कविता लोग आपस मे सुनाया करते थे। एक दिन बातचीत के सिलसिले में अविनाश बाबू ने कहा—"दादा, मैने सुना है कि आपका 'शुभदा' नामक उपन्यास है, अब तक उसे छपवाया क्यो नही?"

—बचपन की लिखी रचना है। उसमे कुछ दोष आ गया है। कभी अवकाश मिला तो संशोधन करके छपवाऊगा।

अविनाश बाबू ने कहा—"पता नही, कब नौ मन तेल होगा और कब राधा नाचेगी। पाण्डुलिपि मुझे दे दीजिए। मैं पढूगा। बचपन मे आपकी बुद्धि की कितनी दौड रही, अन्दाजा लग जायगा।"

इसके बाद अविनाश बाबू शरत्चन्द्र के पीछे पड गये। आखिर एक दिन उन्हे कहना पडा—"अमुक दिन को आना। खोजकर निकालूगा।"

शरत्चन्द्र ने सोचा कि अब कोई उपाय करना चाहिए ताकि हमेशा के लिए झंझट समाप्त हो जाय। उन्होंने अपने भाजे रामकृष्ण मुखोपाध्याय को बुलाकर काफी रद्दी कागजो के साथ 'शुभदा' की पाण्डुलिपि दी और कहा—"यह सब जला दो।"

कागजो को जलाते वक्त रामकृष्ण ने देखा कि इन कागजों मे एक सजिल्द मोटी कापी है जिसमें कुछ लिखा है। उन्होने पूछा—"मामा, इस कापी को क्यो जला रहे हो?"

उत्तर मे शरत् बाबू ने कहा—"उसे जला देना पडेगा। अगर मेरी यह पुस्तक प्रकाशित होगी तो एक लेखक को हेय होना पडेगा।"

रामकृष्ण बाबू ने सभी कागजो को जलाया, पर उस पाण्डुलिपि को मामा की नजर बचाकर छिपा दिया। शरत् बाबू की आलमारी के पीछे पुस्तकों के बीच रख दिया। शरत् बाबू ने बाद में पूछा—"क्यो रे, सारा कागज जला दिया न?"

—मोटी कापी को भी?

—जी हाँ।

इस प्रसग मे अविनाश बाबू ने लिखा है—"शुभदा के बारे में नाटकीय घटना हुई थी। उसके बारे मे बिस्तृत विवरण न देकर सक्षेप में कहना चाहूंगा। 'शुभदा' की पाण्डुलिपि पढ़ने के लिए बराबर दादा को तग करता रहा। अन्त मे वे पढ़ने को देने के लिए राजी हो गये और एक दिन सामतावेडा आने के लिए बुलाया। मैं जब पहुँचा तब विमर्श रूप मे बोले—"अविनाश, सब समाप्त हो गया।"

उन्होने अपनी बाते इस ढग से कही कि जैसे मैं उनके किसी बीमार पुत्र को देखने आया हूँ जिसकी मौत अभी-अभी हुई है। बगल के कमरे से बिस्कुट का एक डिब्बा लाकर बोले—"तुम विश्वास नही करोगे, इसलिए जले हुए कागजों को तुम्हे दिखाने के लिए रख छोडा है। सब जल गया।"

इसके बाद मैं क्या कहता? मैंने उनकी जबानी सुना है कि हरिदास चटर्जी उसे छापने के लिए मागते रहे, पर उन्हे नही दिया। अन्य लोगों के अनुरोध को वे ठुकरा चुके थे।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद शरत् बाबू को अपनी आलमारी में पाण्डुलिपि मिल गयी। रामकृष्ण ने

उसे जलाया नही, बल्कि छिपाकर रख दिया है जानकर मुस्करा उठे। एक दिन उन्होने रामकृष्ण को बुलाकर कहा—"आलमारी से सारी किताबे निकालकर धूप मे रखो। मुझे सब देखनी है।"

रामकृष्णजी समझ गये कि इसी तिकडम से मामा मेरे अपराध को पकडना चाहते हैं। वे सारी पुस्तके बाहर निकालकर गायब हो गये। इसके बाद वे ८-१० दिन मामा के सामने नही आये। शरत् बाबू ने सोचा—जब यह पाण्डुलिपि जली नहीं तब इसे नष्ट करने से क्या लाभ? कुछ परिवर्तन करके नये सिरे से लिखूंगा। यही सोचकर उन्होंने 'शुभदा' की पाण्डुलिपि नष्ट नही की जो उनके निधन के कुछ दिनो बाद प्रकाशित हुई।

यह है निरुपमा के प्रति उनकी सहानुभूति की एक घटना। आज उनके बारे मे परत-दर परत सारा रहस्य खुलता जा रहा है।

सहृदयता

बचपन से ही शरत् बाबू मित्र वत्सल थे। देवानन्दपुर मे अपने सभी सहपाठियो की मदद करते रहे। भागलपुर में भी अधिकाश मित्रो को साहित्य-क्षेत्र मे अग्रसर होने के लिए सहायता देते रहे। बर्मा मे सामान्य वेतन पाने पर भी अभावग्रस्त मित्रो की सेवा करने में कभी हिचक नही हुई।

श्री सुरेन्द्र नाथ मान्ना ने लिखा है—"मैं शरत् बाबू को सन् १९०८ से जानता था। यहा तक कि एक ही मकान में हम रहते भी थे। मैं उनका दोहार (सकीर्तन मे साथ-साथ गीत दोहराने वाले) था। यद्यपि वे सकीर्तन की पदावली और सूर का संयोजन करते थे, पर गाते नही थे। जिस दिन उन्हे सकीर्तन की सूचना या पत्र मिलता, उस दिन कहते—"अरे सुरेन, जल्द तैयार हो जाओ। सकीर्तन मे जाना है, पत्र आया है।"

अपने घर मे अक्सर कीर्तन करते थे। हम लोगो की एक सकीर्तन पार्टी थी। होली, दीवाली, कृष्णा-जन्मोत्सव आदि शरत् बाबू मनाया करते थे। इस प्रकार पांच-सात वर्ष बाद रगून स्थित बर्मा आयल कम्पनी से मेरी नौकरी छूट गयी। मैं परेशानी मे फस गया। मेरे कुछ मित्र बर्मा के गोल्ड माइन मे नौकरी करते थे। उनसे पत्र व्यवहार करने पर मेरे एक मित्र ने मुझे लिखा—'नामटू गोल्ड माइन' में आने पर नौकरी मिल जायगी।

इस बात की सूचना दो-चार दिन के बाद शरत् बाबू को मिली। उन्होने कहा—"देर मत करो। तुम नामटू चले जाओ। यहा तुम्हें नौकरी नही मिलेगी।"

उस वक्त मैं कदर्यहीन था। यहां तक कि वेणी बाबू नामक एक सज्जन से एक सौ रुपये उधार ले रखा था।

तीन-चार दिन बाद मुलाकात होने पर शरत् बाबू ने पूछा—"अभी तक नामटू नही गये? क्या बात है?"

मैं अपनी स्थिति छिपा नही सका। कहा—"दादा ठाकुर, कैसे जाऊँ? मेरे हाथ मे एक पैसा नही है। जिस होटल मे खाता हूँ, वहां बकाया है, फिर वेणी बाबू से सौ रुपये उधार लिये हैं।"

सारी स्थिति समझकर वे चुप रह गये। दूसरे दिन मुझे बुलाकर उन्होने कहा—"इधर आओ।"

जब उनके सामने जाकर खड़ा हो गया तो उन्होने पूछा—"नामटू जाने का रास्ता मालूम है? सबसे पहले तुम्हे मांडले मेल से माडले उतरना पडेगा। वहा से लासिओ की गाड़ी पर सवार होना पडेगा। मार्ग में नामिओ स्टेशन मिलेगा। यहां उतरकर रात भर स्टेशन पर ठहरना पड़ेगा। दूसरे दिन सबेरे माइनवाली गाडी मिलेगी। यद्यपि यह गाडी यात्री नही लेती। यदि तुम अपने मित्र का पत्र उन्हे दिखा दोगे तो वे तुम्हे बैठा लेगे। रेल किराया कुल मिलाकर पन्द्रह रुपये लगेगे। यह खर्च मैं तुम्हें दे रहा हूँ। अब बिना देरी किये तुम चल दो।"

वेणी बाबू के कर्ज की चर्चा करने पर उन्होने कहा—"उसकी चिन्ता छोडो। उन्हे मैं जवाब दे दूगा। जाडे के दिन हैं, वहा कड़ी सर्दी पडती है। अगर कपडों की जरूरत हो तो बताना।"

गुजारती थी। शरत् बाबू उसके चरित्र का अध्ययन कर चुके थे। हिरण्मयी देवी से उन्होंने कह रखा था—"इस बूढ़ी मां से मेरे लिए लाई खरीदना। जब आये तब इससे जरूर लाई खरीदना। मुझे गरम-गरम लाई खाने मे अच्छा लगता है।"

शरत् बाबू ने हिरण्मयी देवी को यह नही बताया कि इसी बहाने मैं इस बेचा की सहायता करता हूं और न वह बेचा ही इस बात को भाप सकी। अक्सर शरत् बाबू कहते—"आज जो लाई खरीदी गयी है, उसमें से थोडा देना।" केवल यह जानने के लिए कि आज बुढ़िया से लाई खरीदी गयी है, या नही। थोडी-सी लाई खाने के बाद बाकी कुत्तों को दे देते थे।

अनिला देवी की देवरानी के दो लडको का गांव पर यज्ञोपवीत होने वाला था। उन दिनों शरत् बाबू बाजे शिवपुर में रहते थे। बहनोई के भतीजे का यज्ञोपवीत है, जाना पडा।

परिवार में तब तक अलगाव नही हुआ था। काफी धूम-धडाके से आयोजन किया गया था। दूर-दूर से सभी रिश्तेदार आये थे। अनिला देवी के पति पचानन मुखर्जी गांव के सबसे बडे काश्तकार थे। सभी रिश्तेदार अपने सामर्थ्य के अनुसार बटुक को उपहार दे रहे थे।

शरत् बाबू को कुछ न देते देख अनिला देवी ने पूछा—"क्यों रे शरो, तू क्या देगा? कुछ तो लाया नही है, क्या रुपये देगा?"

शरत् बाबू ने कहा—"मैं तो गरीब लेखक हूं, मैं भला क्या दूंगा। मुखर्जी बाबू बडे आदमी हैं, यहां के जमीदार हैं। इनके यहां उपहार न देने से भी काम चल जायगा।

—क्या कहता है। ऐसा कहीं होता है। तेरा कितना नाम है, अगर तू कुछ अच्छी चीज नहीं देगा तो मेरा मुह दिखाना मुश्किल हो जायगा।

"अच्छा तो दे दूंगा।" इतना कहकर शरत् बाबू वहा से हट गये।

अन्त मे पता चला कि दोनों लडको को शरत् बाबू ने एक-एक अधेला (सबसे छोटा सिक्का जो उन दिनां चालू था।) दिया है।

इस घटना को सुनकर सभी रिश्तेदार हसने लगे। अनिला देवी शर्म से गड गयी। क्रोध मे भरकर वे अपने भाई को खोजने लगीं।

इधर शरत् बाबू इस ओर से बेफिक्र होकर पंचानन बाबू से पुआलो का सौदा करने लगे। पचानन बाबू के खलिहान मे पुआलो का अम्बार लगा था। शरत् बाबू ने पूछा—"आप इतना पुआल रखकर क्या करेंगे? अपनी गायो को खाने भर का रखकर इधर वाला हिस्सा मुझे बेच दे।"

पचानन मुखर्जी ने चौंककर पूछा—"तुम पुआल खरीदकर क्या करोगे?"

—जरूरत है। इधरवाला हिस्सा मुझे बेच दीजिए। कितने का होगा?

—एक सौ रुपये मे बेचूगा। लेकिन तुम करोगे क्या?

—यह लीजिए सौ रुपये। कहने के साथ ही शरत् बाबू ने सौ रुपये का नोट मुखर्जी बाबू को दिया।

इसके बाद वहा से चलकर वे पिछडी जातियो की बस्ती मे आये। वहा जाकर उन्होने कहा—"तुम लोगों की झोपडी पर पुआल नही है। मुखर्जी महाशय से एक बडा ढेर तुम लोगों के लिए खरीदा है। अब तुम लोग जाओ और उसे लाकर आपस में बाट लो।

दुले, कहार जाति के लोग शरत् बाबू की उदारता से परिचित थे। इसके पूर्व भी ये लोग इनसे सहायता प्राप्त कर चुके थे। सभी गोल बनाकर पचानन बाबू के पास आये और अपना निवेदन सुनाया।

पचानन बाबू ने हंसकर कहा—"जा, ले जा।"

इसके बाद पंचानन बाबू घर के भीतर जाकर अपनी पत्नी से बोले—"शरत् ने क्या तमाशा किया, मालूम है?"—कहने के पश्चात् सारी कहानी सुनाई।

अनिला देवी ने हसकर कहा—"शोरो बचपन से ही नटखट है।"

जो लोग 'अधेला' दक्षिणा मे देते देख आपस में उनका मजाक उडा रहे थे, अब वही चकित भाव से एक दूसरे की ओर देखने लगे।

शरत् बाबू के इस चरित्र के बाद राधारानी देवी ने ठीक ही लिखा है—"शरत्चन्द्र बचपन से समाज के निकट कभी आदर प्राप्त नही कर सके थे। उन्हें मिला था—उपदेश, तिरस्कार, भर्त्सना या करुणा।

इसे वे सहन नही कर सके। समाज के विरुद्ध निरन्तर विद्रोह प्रकट करते रहे—किशोरावस्था मे लेकर यौवनकाल तक। वर्णाश्रम ब्राह्मणो के विरुद्ध उन्होने जेहाद बोल दिया था। शूद्रों के घर बराबर आते-जाते थे। केवल यही नही, शूद्रो का शव कधे पर उठाया था, उनके मृत शरीर का दाह-सस्कार किया था—समाज के सामने। समाज जिसे घृणित समझता है, ऐसे लोगो से उनका बराबर मिलना जुलना रहा। निन्दित व्यक्तियो का मित्र बनकर उनकी निन्दा का हिस्सा निर्भीक रूप में स्वय ग्रहण किया था। समाज के विभिन्न स्तर के लोगो के साथ कभी नाटको मे, कभी मदारियो के साथ, कभी सन्यासियो के गिरोह मे भर्ती होकर घूमते रहे। शरत् दादा की जबानी सुन चुका हूँ कि बाग्दियों (खूखार जाति) की बस्ती मे, जब चेचक की महामारी फैली थी तब उनकी सेवा करना, दवा-पानी देना और मर जाने पर गगा मे शव को फेकने का कार्य उन्होने किया था। उन दिनों लोग इन्हे व्याकुल रूप से अपने पास बुलाते थे। वे लोग यही सोचते थे कि भगवान् ने शरत् दादा को स्वय ही हमारे पास भेजा है। वे स्वय भी यही सोचते थे। एक बार शरत् दादा 'बाउरी' जाति के घर मलेरिया से पीडित होकर छह-सात दिनों तक बेहोश पडे रहे। हालत इतनी खराब हो गयी थी कि जब घर आये तो इनकी शक्ल देखकर कोई इन्हें पहचान नही सका।"

बचपन, किशोरावस्था और यौवन मे यायावरी जीवन व्यतीत करने के बाद वे प्रौढ़ावस्था में सामाजिक मनुष्य बन गये थे। गरीब, असहाय लोगो के प्रति इनके अन्तर मे दर्द था। लोगो की सहायता करने के लिए तडप उठते थे। इस बारे मे स्वय उन्होंने कहा है—"मेरी शक्ति कम है, फिर भी मैंने अपनी मातृभूमि को प्यार किया है। मेरी इस बात मे कोई प्रवचना नही है, यथार्थ रूप में प्यार किया है। इसकी मलेरिया, दुर्भिक्ष, इसकी जलवायु, इसके दोष-गुण, त्रुटि, दलबन्दी, आदि जो कुछ कहिये, सभी के साथ मेरा सम्पर्क हुआ है, सभी को मैंने तहेदिल से प्यार किया है, विभिन्न परिस्थितियो मे भिन्न-भिन्न लोगो से मिला हूँ। इन्सान को रत्ती-रत्ती भर देखने का प्रयत्न किया है। अगर उसे ठीक से देखा जाय तो उसमे से बहुत कुछ निकल सकता है और तब उसके दोष-त्रुटि के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है।

मैंने पापियो का चित्रण किया है। शायद इन लोगो ने पाप किया हो। इसका यह अर्थ नही कि खूनी आसामी की तरह इन्हे फासी दे दी जाय। मनुष्य की आत्मा का मैं अपमान नही कर सकता। किसी भी व्यक्ति को काले हृदय का सोचने का जी नही चाहता। मैं यह सोच नही सका कि एक आदमी बुरी तरह खराब है, उसका कोई 'रिडीमिग फीचर' नही है। अच्छा और बुरा प्रत्येक मे हैं। हाँ, कुछ लोगों मे खराब भाव अधिक स्पष्ट हो जाता है। लेकिन इसके लिए उससे हम नफरत क्यों करें? मेरा यह कहना है कि पाप अच्छा है। पाप के प्रति मैं मनुष्य को प्रलुब्ध करना नही चाहता। मेरा कहना यही है कि उसमे भी भगवान की दी हुई मनुष्य की आत्मा है। उसका अपमान करने का अधिकार हमे नहीं है।

मैंने इन लोगो मे ऐसी चीजे देखी है जो बडे आदमियो में नही है। महत्व-वस्तु गुच्छे का गुच्छा कही नही रहता। उसे खोज निकालना पड़ता है। मनुष्य जब महत्व की तलाश करना भूल जायगा तब वह अपने को छोटा बना लेगा।"

शरत् बाबू के इस कथन का प्रमाण उनके जीवन की घटनाओ से मिल जाता है। अगले अध्याय मे उनके भोगे हुए यथार्थ घटना का विवरण है। गांव की जिन्दगी का असली रूप इस घटना मे दिखाई देगा। क्यो हमारा ग्रामीण-समाज तथाकथित जमींदारो के छल-कपट और स्वार्थ के चगुल मे फंसता रहा। अगर शरत् बाबू जैसे दबंग व्यक्ति गाव मे न रहते तो इस घटना का परिणाम क्या होता?

नहले पर दहला

वर्तमान समाज अनेक दकियानूसी विचारों तथा बधनों से मुक्त हो गया है, परन्तु आज से ७०-८० वर्ष पूर्व यह स्थिति नही थी। देश मे विदेशी शासन था तो समाज मे चौधरियो की हुकूमत चलती थी। प्राचीनकाल में भारतीय व्यापारी सुदूर पूर्वी एशिया के देशो मे ही नही, अफ्रीका महाद्वीप का चक्कर

काटकर इग्लैण्ड तक समुद्र यात्रा करते रहे। उसी भारत के निवासियो के लिए समाजपतियों ने समुद्र यात्रा निषिद्ध कर दिया। जो लोग इस आज्ञा का उल्लंघन करते थे, उन्हे जाति च्युत कर दिया जाता था। विदेशी शासन से कही अधिक समाजपति तानाशाही करते थे।

सामताबेडा मे शान्ति से निवास करने के लिए ही शरत् बाबू ने यहा मकान बनवाया। इसके पूर्व उनकी इच्छा देवानन्दपुर मे मकान बनवाकर रहने की थी। लेकिन वहा के लोगो की कट्टरता देखकर उन्होने अपनी जन्मभूमि मे बसने का विचार बदल दिया। इस सम्बन्ध मे उन्होने अपने घनिष्ठ मित्र असमजस मुखोपाध्याय से कहा था।

सामताबेडा के निवासियो ने यहा बसने पर उनका विरोध तो नही किया, परन्तु इन्हे अपनाया नही। बराबर जातिच्युत बनाये रखा। शरत् बाबू स्थानीय समाजपतियो की उपेक्षा और दलबन्दी देखते, पर वे इसकी परवाह नही करते थे। सोचते अपना क्या जाता है? मेरा कोई बेटी-बेटा है नही जिसके विवाह के लिए नाक रगडना पडेगा। मूडन-शादी मे जाना नही है।

समाजपतियो ने देखा कि शरत्चन्द्र कब्जे मे नही आ रहा है, अब क्या किया जाय। उन लोगो ने कहलाया—"अगर स्थानीय पानीत्रास स्कूल के लिए दो सौ रुपये चन्दा आप दे तो आपको हम लोग अपनी बिरादरी मे शामिल कर सकते हैं।"

इस सूचना को पाते ही शरत्चन्द्र बौखला उठे। समाजपतियो की क्षुद्रता से चिढकर उन्होने कहा—"मैं स्कूल को दो सौ नही, दो हजार दे सकता हूँ, पर जहा इतनी क्षुद्रता है, वहा एक पैसा नही दूगा। जिसे जो करते बने कर ले। मैं ऐसे लोगो की बिरादरी मे जाने की अपेक्षा जातिच्युत रहना पसन्द करूगा।"

शरत् बाबू के इस उत्तर को सुनकर वे लोग तिलमिला उठे। उन्हे अपनी कमजोरी ज्ञात थी। जिस दरबार मे नित्य बडे लोग आते हैं, सम्मान देते हैं, गाव के गरीब, असहाय जय-जयकार करते हैं, जिसे अपने बेटा-बेटी का विवाह नही करना है, उसे यहा से उखाड देना सहज नही है।

कुछ दिनो बाद समाजपतियो को एक सुनहला मौका मिला। गाव मे आशुतोष चटर्जी नामक एक सम्पन्न व्यक्ति रहता था। उसकी मा का निधन हो गया। समाजपतियो ने उससे कहा—"मा के श्राद्ध मे पाच गाव के ब्राह्मणो को न्यौता देना चाहिए। सामतावेडा, पानीत्रास, गोविन्दपुर आदि गावो को न्यौता भेज दो। सामतावेडा जाकर तुम शरत्चन्द्र को स्वय निमत्रण देना। सपरिवार आने के लिए अनुरोध करना। अगर वे जातिच्युत बहाना करे तो कहना कि समाजपतियो ने यह प्रतिबध हटा लिया है। आपको बिरादरी में ले लिया गया है।"

आशुतोष को यह मालूम था कि यहा के समाजपतियो के कारण शरत् बाबू किसी के घर नही जाते। जब यही लोग यह बात कह रहे हैं तब हर्ज क्या है। उन्होने शरत् बाबू को भी निमंत्रित किया।

इस समाचार को सुनकर समाजपतियो का गिरोह फूला नही समाया। अब देखेगे कि वे क्या करते हैं? अगर भोज मे आये तो भोजन पर बैठने के बाद हम लोग उन्हे 'जातिच्युत' कहकर पात से उठा देगे और उन्हे अपमानित करेगे। अगर नही आये तो हमे यह कहने का मौका मिल जायगा कि पचग्रामी ब्राह्मणो का उन्होने अपमान किया है।

इधर शरत् बाबू को समझते देर नही लगी कि इस निमत्रण के बहाने उन्हे अपमानित करने की चाल चली गयी है, यह विचार मन मे आते ही न तो वे स्वय गये और न हिरण्मयी, प्रकाश या बहू को भेजा।

अपनी चाल असफल हो गयी जानकर समाजपतियो ने काफी उछल कूद मचायी, पर इसका कोई प्रभाव शरत् बाबू पर नही पडा।

शरत् बाबू के जीवन मे एक ऐसी घटना हो गयी जिसकी वजह से वे गरीब, निस्सहाय तथा सामान्य लोगो के निकट श्रद्धेय बन गये। इस घटना के बारे मे श्री गोपालचन्द्र राय ने पूर्ण विवरण दिया है। संक्षेप यों है—

शरत् बाबू के घर से अनिला देवी का मकान पांच मिनट का रास्ता है। यह गाव रूपनारायण नदी और बाध के बीच मे स्थित है। गोविन्दपुर में एक बड़ी पोखरी है जो विरामपुर पोखरी से सटी हुई है।

बरसात के दिनो में जब रूपनारायण मे बाढ आती है तब विरामपुर पोखरी से होता हुआ पानी बहुत

दूर तक चला जाता है। इस बाढ़ के साथ-साथ काफी मछलिया आती हैं और दोनों पोखरियों मे भर जाती हैं।

गोविन्दपुर की बगल मे एक गाव है—मेल्लक। इस गाव के जमीदार प्रसिद्ध धनाढ्य मोहिनी मोहन घोषाल थे। उन्होने गोविन्दपुर की जमीदारी को खरीदने के पश्चात् निश्चय किया कि वर्षा के समय अगर इन दोनो पोखरियो की मछली का ठीका मछराहो को दे दिया जाय तो काफी आमदनी हो सकती है। उन्होने गोविन्दपुर के दो राजवशी प्रजा केष्ट बाग और दुर्लभ मण्डल को मछली का ठीका दे दिया।

नये जमीदार की इस कार्यवाही से गोविन्दपुर के किसान परेशान हो गये। अब तक वे इस मौसम मे मछलिया पकडते आये। ठीका दे देने के कारण वे इस सुविधा से वंचित हो गये।

एक दिन गाव के काफी लोग मिलकर जमीदार मोहिनी घोषाल के यहां गये और कहा—"हम लोग वश परम्परा से इन पोखरियो की मछलिया बराबर खाते आये हैं। आपने हमारी इस सुविधा को क्यो वंचित कर दिया? आपके पहले जो महाशय जमीदार थे, उन्होने कभी इन पोखरियों का ठीका किसी को नही दिया था। आखिर आपने क्यो दिया? इसके अलावा दोनो पोखरियो की जमीन देवोत्तर है। जमीदार के यहा से माफीनापा वाली जमीन।"

जमीदार ने कहा—"आगे कौन क्या करता था और क्या नही करता था, इससे मै कोई मतलब नही रखता। इस वक्त मैं जमीदार हूँ, इसे मैंने खरीदा है। जिस काम से मेरी आय बढ़ेगी, वही करूगा। दोनों तालावों की मछलिया बराबर ठीके पर दी जायेंगी। मैं इसे बन्द नहीं कर सकता।"

गोविन्दपुर के अधिवासी निराश होकर लौटे। गाव आकर तरह-तरह के उपाय सोचने के बाद उन लोगो ने निश्चय किया कि अगर गाव के निवासियो मे से कोई ठीका न ले तो दूसरे गाव से आकर कोई नही लेगा। इस निश्चय के बाद सभी लोग केष्ट बाग और दुर्लभ मण्डल के पास गये। इन लोगो ने सारी बाते समझाते हुए कहा कि तुम लोग ठीक मत लो।

गोविन्दपुर की राजवशी जाति के यही दोनो सरदार थे। राजवशी जाति के लोग मछली पकड़ते तथा बेचते हैं। उन्होने सोचा कि इस ठीके से उन्हें पर्याप्त आमदनी होगी। वर्ष भर की कमाई कैसे छोड दिया जाय? दोनो ठीकेदारो ने गाव वालो का प्रस्ताव स्वीकार नही किया। मोहिनी घोषाल का दरदहस्त होने के कारण वे शेर बने रहे।

राजवंशियो के अलावा गाव के अनेक सभ्य लोग भी केष्ट और दुर्लभ के यहा यह अनुरोध लेकर गये थे। उन लोगो ने इन दोनो के इनकार पर अपने को अपमानित समझा। क्रोधित होकर इन लोगो ने कहा—"हम लोग तुझे ठीका लेने नही देगे। जमीदार के शह देने पर इतना साहस बढ़ गया है। अब हम भी देखेगे, क्या करता है। अभी जाकर हम तेरा जाल आदि सरंजाम उठाकर फेक दे रहे हैं।"

इस चेतावनी के बाद सभी लोग पोखरी के पास रखे राजवंशियो के जाल-कांटा, दौरी उठा-उठाकर फेंकने लगे। केष्टा और दुर्लभ उन्हे बाधा देने लगे। इसी पर सभी से हाथा-पाई हुई। इस घटना के बाद दोनो जमीदार के पास नालिश करने आये। सारी घटना कहने के बाद दोनो ने रोते हुए कहा—"गाव के लोगो ने हमे बुरी तरह मारा है।"

मोहिनी घोषाल क्रोध से आग बबूला हो गये। किसानो ने उनका अपमान किया था। उन्होने कहा—"घबराओ नही, मैं सभी को ठीक करता हूँ। इस मौके पर कौन-कौन था, उन सभी के नाम बताओ। न हो, अभी मेरे साथ उलुबेडा कोर्ट तक चल। अभी सभी के नाम फौजदारी का मुकदमा दायर कर देता हूँ। सभी ठडे पड जायेगे। अभी तो दिन के ग्यारह बजे हैं, चल मेरे साथ।

केष्ट और दुर्लभ को अपने साथ लेकर मोहिनी घोषाल उलुबेडा कचहरी की ओर रवाना हो गये। वहा उन्होने घटना मे मौजूद २६ व्यक्तियो के नाम मुकदमा दायर किया। इस मौके पर जो लोग नही थे उनमे से भी कुछ लोगो के नाम लिखवाया गया। इन आसामियो मे एक नम्बर के आसामी थे--पाचकौडी मुखोपाध्याय।

पाचकौडी मुखोपाध्याय अनिला देवी के सझले देवर के पुत्र थे। आप ओडफूली एम० ई० स्कूल के हेडमास्टर थे। शरत् बाबू नित्य शाम को टहलते हुए अपनी बहन के घर आया करते थे। उस दिन जब आये तब उन्हे सारी बाते मालूम हुई। बाद मे उन्होने सही घटना की जानकारी के लिए अन्य लोगो से

बातें की।

सारी घटनाएं सुनने के बाद बिना किसी को कुछ सलाह दिये वे एक दिन मोहिनी घोषाल के घर आये। बातचीत के जरिये घोषाल को समझाते हुए शरत् बाबू ने कहा—"गाव की बात है। आप जमींदार हैं, नाहक परेशान हो रहे हैं और किसान भी परेशान होगे। इन गरीबों पर से आप कृपया मुकदमा उठा लें।"

मोहिनी घोषाल को अपने ऐश्वर्य का घमण्ड था। भला वे कैसे झुकते? अवज्ञा के साथ उन्होंने कहा—"मैं किसी का उपदेश सुनने को बाध्य नही हूं। मैं जो अच्छा समझूगा, वही करूगा। गोविन्दपुर के लोगो को ठडा करना है। सुना है कि आप उन लोगो के परामर्शदाता हैं। अब उन्हे जाकर अपना परामर्श दीजिए। मैं किसी से डरनेवाला नही हूँ।"

लाचारी में खाली हाथ शरत् बाबू लौट गये।

मुकदमें के दिन सभी लोगो की पेशी हुई। जिन लोगो के नाम अभियोग था, उन लोगों ने मारपीट से इनकार किया। एक ने कहा—"हुजूर, अगर हम सब मिलकर इन दोनो को मारते तो क्या ये जिन्दा बचते? यह ठीक है कि हम लोगो ने इनकी मछली पकडने वाली चीजे नदी मे फेंक दिया है। वास्तव मे वह जमीन देवोत्तर है। माफीनामा। जमीदार से उस जमीन का ठीक नही लिया जा सकता और न ज़मीदार को देने का हक है।"

इस आपत्ति को सुनने के बाद जज ने फैसला दिया—"तब आप लोग पहले दीवानी मुकदमा दाखिल करिये। पहले यह प्रमाणित हो कि वह जमीन देवोत्तर है या नही। इसके बाद ही फौजदारी के मामले मे फैसला किया जायगा। तब तक के लिए मैं यह आर्डर करता हूं कि उस स्थान पर दोनो पक्षो के लोगो मे से कोई भी न जाय।"

गोविन्दपुर के राजवंशियो को छोडकर समस्त लोगो ने जमीदार के विरुद्ध मुकदमा दायर किया। फौजदारी मुकदमा स्थगित रहने पर दीवानी मुकदमा चलता रहा। लम्बी तारीखे पडने के कारण समय गुजरता गया।

धीरे-धीरे चैत्र मास आ गया। इस महीने मे शिव का गाजन (एक उत्सव) होता है। धूमधाम से जुलूस निकलता है। इस अवसर पर बहुत से लोग संन्यासी बने। यहा तक कि सभी लोगों की उपेक्षा कर केष्ट और दुर्लभ भी संन्यासी बने।

गोविन्दपुर के खास लोगों ने निश्चय किया कि गाव के लोगों की उपेक्षा करके केष्ट और दुर्लभ ने ठीका लिया है, इसलिए हम लोग उसे शिव के गाजन में शामिल नहीं करेगे। संक्रान्ति के कुछ दिन पहले यह फैसला किया गया।

केष्ट और दुर्लभ राजवंशियो के सरदार थे। अन्य राजवंशियो में जितने लोग सन्यासी थे, वे सहर्ष गाजन मे भाग ले सकते थे, पर अपने सरदार को छोड़ना उनके लिए कठिन हो गया। फलस्वरूप गांव के प्रधान भी अजीब मुसीबत मे फंस गये।

केष्ट और दुर्लभ इस मुसीबत को देखकर मोहिनी घोषाल के पास गये। मोहिनी बाबू अपर गाव के निवासी थे। वे गोविन्दपुर के ग्राम प्रधानो के काम में हाथ नही डाल सकते थे, इसलिए उन्होंने तिकडम से काम लेने की कल्पना की।

मोहिनी बाबू सम्पन्न जमीदार होने के अलावा यूनियन बोर्ड के अध्यक्ष भी थे। बागनान थाना के दरोगा तथा उलुबेडिया तहसील के एस० डी० ओ० के साथ उनकी घनिष्ठता थी। मोहिनी बाबू ने इन लोगों की सहायता से एक दिन पहले वहां दफा १४४ जारी करवा दिया। कहीं दंगा-फसाद न हो जाय, इसलिए गांव के प्रत्येक मोड़ तथा देवस्थान के समीप पुलिस का पहरा बैठा दिया।

चारो पुलिस का पहरा देखकर गांव वाले सहम गये। लेकिन वे अपने निश्चय पर अटल रहे। केष्ट और दुर्लभ को गाजन में शामिल नहीं होने देंगे। पुलिस की आज्ञा भी नही मानेंगे। धर्म के मामले मे पुलिस का हस्तक्षेप क्यों बर्दाश्त करेंगे? जरूरत हुयी तो पुलिस से भी मोर्चा लिया जायगा। इसके लिए वे तैयारी भी करने लगे।

दरोगा केवल कुछ सिपाहियों के साथ यहां पहरे पर था। जब उसे यह मालूम हुआ कि गांव के लोग

लाठी-गंडासा लेकर मारेंगे तब वह भी डर गया। तुरत उसने एस० डी० ओ० तथा सब डिविजनल अफसर के नाम पत्र लिखते हुए सशस्त्र सिपाही भेजने का अनुरोध किया।

इधर गांव मे यह सब उपद्रव होते देख कुछ लोग शरत् बाबू से सलाह लेने आये। सारी घटनाए सुनकर वे चिन्तित हो उठे। उन्हे समझते देर नही लगी कि गाव के लोगों को इस स्थिति में रोकना मुश्किल हो जायगा। उधर मोहिनी घोषाल के भडकाने के कारण पुलिस भी नाराज थी। उन्होंने लोगों को सलाह दी कि आप लोग शान्त रहें।

इसके बाद विना किसी को कुछ सूचना दिये शरत् बाबू सीधे हवडा के मैजिस्ट्रेट के पास गये। उस वक्त दिन के १२ बजे थे। मैजिस्ट्रेट को सारी कहानी उन्होंने सुनाई।

गांव के एक झगडे के लिए बंगाल के सर्वश्रेष्ठ लेखक मेरे यहां आये हैं, देखकर मैजिस्ट्रेट भी व्यस्त हो उठा। तुरत उन्होने हवडा के पुलिस सुपरिण्टेण्डेंट को बुलाया। एस० पी० ने आकर जब शरत्चन्द्र को देखा तो वे चकित रह गये। अब मैजिस्ट्रेट ने स्वयं ही एस० पी० साहब को सारी बातें बताई और यह भी कहा कि आप तुरत शरत् को एक ऐसा पत्र लिख दीजिये जो वहां कोई भी पुलिस अफसर रहे, वह कोई उज्र किये विना वहा से रवाना हो जाय। ऐसी हालत मे शरत् बाबू स्वय ही गांव का गाजन सकुशल सम्पन्न करा देगे।

मैजिस्ट्रेट के आदेशानुसार एस० पी० शरत् बाबू को वहीं बैठाकर तुरत अपने आफिस में आये। एक पत्र लिखने के बाद उस पर सील-मोहर किया। इसके बाद मैजिस्ट्रेट को दिखाकर उसे शरत् बाबू को दे दिया।

मैजिस्ट्रेट को धन्यवाद देकर शरत् बाबू चल पडे। मैजिस्ट्रेट के आफिस के समीप हवडा स्टेशन था। स्टेशन आते ही घर जाने वाली गाडी मिल गयी। उसी गाडी से वे घर की ओर रवाना हुए।

शरत् बाबू सेकेण्ड क्लास में सफ़र कर रहे थे। उलुबेडिया स्टेशन पर गाडी के रुकते ही सब डिविजनल पुलिस अफसर सशस्त्र पुलिसों के साथ गाडी पर सवार हुआ। कुछ अन्य यात्री भी सवार हुए। शरत् बाबू एक कोने में बैठे हुए थे।

उलुबेडिया से जितने लोग सवार हुए थे, उनमें से एक सज्जन ने पुलिस अफसर को सशस्त्र सिपाहियों के साथ देखकर पूछा—"कहिये भुवनेश्वर बाबू (पुलिस अफसर का नाम था)। सदल बल लेकर कहा जा रहे हैं?"

भुवनेश्वर बाबू ने जवाब दिया—"मत पूछिये जनाब, गांव के लोगों की हिम्मत बढ़ गयी है। देउलटी स्टेशन से कुछ दूर गोविन्दपुर नामक गाव है। वहा गाजन के मौके पर दगा-फसाद होने की आशका से दफा १४४ लगाया गया है। बागनान थाने के दरोगा वहां कुछ सिपाहियो के साथ पहरा दे रहे हैं। अब गांव के लोग दरोगा को पीटने की योजना बना रहे हैं। गाजन के वक्त लाठी-गंडासा लेकर मारेंगे। दरोगा ने डर के कारण खबर भिजवाया है। एस० डी० ओ० ने आर्डर दिया कि कुछ सिपाही ले जाकर गाव के लोगों को जरा ठंडा कर आइये। इन लोगों का मन बहुत बढ़ गया है। उन्ही लोगो को जरा ठडा करने जा रहा हूँ।"

भुवनेश्वर बाबू की बात ज्योंही समाप्त हुई त्योंही जो सज्जन उनसे प्रश्न कर रहे थे, उनकी नजर शरत् बाबू पर पडी। उन्हें देखते ही उक्त सज्जन ने कहा—"नमस्कार शरत् बाबू। इस वक्त आप कहा से आ रहे हैं?"

प्रश्न करने वाले सज्जन बागनान में रहते हैं। वे शरत्चन्द्र को अच्छी तरह पहचानते थे। शरत् बाबू के घर कई बार जाने के कारण इन्हें भी वे पहचानते थे।

शरत् बाबू ने कहा—"भुवनेश्वर बाबू की जबानी सारी बातें आपने सुन लीं। मैं भी इसी वजह से मैजिस्ट्रेट के पास गया था। मगर गोविन्दपुर के निवासियों को ठंडा करने के लिए नही, उन्हें बचाने के लिए गया था।"

ट्रेन की बोगी छोटी थी, इसलिए एक की बात सभी आसानी से सुन पा रहे थे। भुवनेश्वर बाबू ने कभी शरत् बाबू को प्रत्यक्ष रूप से देखा नही था। बगल में बैठे एक सज्जन से पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यही हैं—उपन्यास सम्राट शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय।

भुवनेश्वर बाबू स्वयं शरत् बाबू के उपन्यासो के एक भक्त थे। परिचय पाते ही वे अपने स्थान से उठकर खड़े हो गये। हाथ जोड़ते हुए नमस्कार किया और तब पास आकर बैठते हुए बोले—"बात क्या है, शरत् बाबू?"

आदि से अन्त तक सभी घटनाएं शरत् बाबू ने संक्षेप मे सुनाईं।

शरत् बाबू की जबानी विवरण सुनने तथा एस० पी० का आदेश-पत्र उनके हाथ में देखकर वे चकित रह गये। मोहिनी घोषाल दरोगा और एस० डी० ओ० को कब्जे मे कर किस तरह का षडयन्त्र कर रहे हैं, यह समझने मे उन्हे देर नही लगी।

देउलटी स्टेशन पर भुवनेश्वर बाबू तथा उनके सशस्त्र सिपाहियों ने शरत्चन्द्र को अकेला जाने नहीं दिया। शरत्चन्द्र के साथ सबसे पहले सभी लोग उनके घर आये। वहां चाय-जलपान हुआ। इसके बाद शरत् बाबू पूरी पलटन के साथ गोविन्दपुर रवाना हुए।

शरत् बाबू के घर से देवस्थान तक जिस मार्ग से जाना पड़ता है, रास्ते मे कई मकानो के पिछवाडे से होकर जाना पडता है और जगह-जगह मोड है। भुवनेश्वर बाबू और उनके सिपाहियो से काफी आगे शरत् बाबू चल रहे थे। एक मोड़ पर उन्हें आते देख मोहिनी घोषाल के अनुचरो ने जो दरोगा के पास खडे थे, दरोगा से कहा—"शरत् बाबू आ रहे हैं।"

यह बात सुनकर दरोगा ने उपेक्षा के साथ कहा—"रहने दे अपने शरत् बाबू को। दो-चार किताब लिखा है तो क्या हुआ? यहां उनकी दाल नहीं गलेगी। अपमानित होकर लौटेंगे।"

दरोगा को जिन लोगो ने यह समाचार दिया था, उन्होने केवल शरत् बाबू को देखा था। भुवनेश्वर बाबू अपनी पलटन के साथ आ रहे हैं, मोड के कारण दिखाई नहीं पडे थे। कुछ ही क्षण मे जब उन्हे आते देखा तब दरोगा को इस बात की सूचना दी गयी।

देवस्थान के समीप ही वह मोड था, इसलिए यहां पर हुई कोई भी बातचीत कुछ दूर तक सुनाई दे जाती है। दरोगा बाबू ने शरत्चन्द्र के आने की बात सुनकर जो व्यग्य किया था, उसे भुवनेश्वर बाबू ही नहीं बल्कि साथ के सिपाहियों ने भी सुना। भुवनेश्वर बाबू शरत्-साहित्य के प्रेमी थे, इसके अलावा शरत् बाबू के बारे में बिना कारण इस तरह व्यंग्य को सुनकर वे तिलमिला उठे। कुछ ही क्षणों में वे मंदिर के पास आ गये।

काफी क्रुद्ध होकर भुवनेश्वर बाबू ने दरोगा से कहा—"जरा भी तमीज नही है? बगाल के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार के बारे में श्रद्धा के साथ बातें करनी चाहिए, इतना ज्ञान भी नही है? जमीदार से घूस खाकर यहा यही सब कर रहे हैं? तुरत यहा से चले जाइये। जहा-जहा सिपाहियों को पहरे पर लगा रखा है, सभी को लेकर चले जाइये। जब तक मैं न आऊ तब तक पास के पानीत्रास स्कूल मे मेरा इन्तजार करिये।"

भुवनेश्वर बाबू की फटकार सुनकर दरोगा की हालत खस्ता हो गयी। मोहिनी घोषाल के अनुचर भी कांपने लगे।

जहा-जहा सिपाहियों को लगा रखा था, उन सभी को लेकर वे चले गये। मोहिनी बाबू के सभी गण पहले ही खिसक गये थे। दरोगा बाबू चले गये और वहां भुवनेश्वर बाबू से शरत्चन्द्र बातचीत कर रहे हैं, सुनकर गाव के लोग धीरे-धीरे आने लगे। शरत्चन्द्र और भुवनेश्वर बाबू के अनुरोध पर गांव प्रधानों ने केष्ट और दुर्लभ मण्डल को गाजन में भाग लेने की अनुमति दे दी।

शरत्चन्द्र और भुवनेश्वर बाबू की मौजूदगी में गाजन-उत्सव सकुशल समाप्त हो गया। शरत् बाबू को धन्यवाद देकर भुवनेश्वर बाबू दरोगा के साथ सभी सिपाहियों को लेकर चले गये।

इस घटना के कई दिनों बाद की बात है। सवेरे के वक्त बरामदे पर बैठे शरत् बाबू गडगडा से धूम्रपान कर रहे थे। इसी समय एक सज्जन सपत्नीक आये। दोनों ने ही भक्तिभाव से शरत् बाबू को प्रणाम किया। शरत् बाबू ने कहा—"जीते रहो। कहिये, कहा से आप लोग आ रहे हैं?"

उक्त सज्जन ने कहा—"इस वक्त धोती कुरता पहनकर आया हूं, इसलिए शायद आप पहचान नहीं पा रहे हैं। मैं ही बागनान थाने का ओ० सी० हूं और ये हैं मेरी पत्नी।"

—कैसे आना हुआ?

—आपके निकट क्षमाप्रार्थी होकर आया हूं।

—हुआ क्या है जो क्षमा माग रहे हो?

—उस दिन गाजन मेले के अवसर पर आपके प्रति मैंने अश्रद्धापूर्ण उक्ति कहकर अपराध किया है, उसी के लिए आज प्रायश्चित्त करने आया हूँ। आप मुझे क्षमा कर दे। अब तक मैं एस० डी० पी० ओ० से न जाने कितनी गालिया खा चुका हूँ और अभी तक खाता जा रहा हूँ। शायद यही कारण है, मगर जमीदार से घूस लेने के अपराध में मुझे सस्पेण्ड कर दिया गया है। मेरी नौकरी खतरे मे है। अगर नौकरी छूट गयी तो मेरे बाल-बच्चे भूखों मर जायेंगे।"

ठीक इसी समय दरोगा की पत्नी शरत् बाबू के दोनों पैर पकडकर कातर स्वर में रोती हुई क्षमा मागने लगी। सारी स्थिति को समझने के बाद शरत् बाबू ने कहा—"गाजन मेले मे क्या कहा था, यह तो मैं भूल ही गया था। उस दिन तो तुम्हें भुवनेश्वर बाबू डाटते रहे। अब क्यो बिगड रहे हैं? इसके अलावा तुमने ऐसा क्या कहा था जो क्षमा मागने आये हो?"

—आपको क्षमा करना ही पडेगा।

—अच्छा, अच्छा। बताओ क्या करना है?

—मेरी नौकरी समाप्त न किया जाय, इस आशय का एक पत्र एस० डी० पी० ओ० के नाम लिख देने की कृपा करें।

—ओह, यह बात है। अच्छा अभी पत्र लिख देता हूँ।

इतना कहकर शरत् बाबू कमरे के भीतर से पैड-कलम लाकर पत्र लिखने लगे। पत्र समाप्त करने के बाद उसे देते हुए बोले—"पढ़ लो। सब ठीक है न?"

दरोगा तथा उनकी पत्नी ने शरत् बाबू की पदधूलि लेते हुए कहा—"आपने मुझे क्षमा कर दिया, मैं निश्चिन्त हो गया।"

शरत् बाबू ने कहा—"अब आप दोनों कृपा करके मुझे निश्चिन्त करें। दोपहर का वक्त है। यही स्नान-भोजन कर लें वर्ना यहा से जाने नहीं दूगा। वक्त भी काफी हो गया है।"

शरत् बाबू के पत्र को पढ़ने के बाद भुवनेश्वर बाबू को संतोष हो गया, पर बागनान थाने से उन्हें हटा दिया गया। बाद में भुवनेश्वर बाबू के प्रयत्न से गोविन्दपुर के निवासी मुकदमे मे विजयी हुए थे। देवोत्तर जमीन और लगान माफीनामा पोखरी की स्थिति यथावत बनी रहेगी।

कलकत्ता-प्रवास

निर्जनता की इच्छा से ही शरत् बाबू ने सामताबेड़ा मे रहने का निश्चय किया था। शहर का कोलाहल, नित्य कांग्रेस कमेटी का झगड़ा, संपादकों के तगादे से वे ऊब गये। लेकिन यहां भी उन्हें अशान्त जीवन अपनाने को बाध्य होना पडा। नित्य कोई न कोई झगडा-टटा लगा रहता था। इससे अच्छा तो शहर है जहा के लोग समझदार हैं। बात को समझते हैं, सलाह मानते हैं।

सामताबेड़ा मे एक कठिनाई का सामना उन्हें अक्सर करना पडता था। प्रसिद्धि होने के कारण उनका घर मित्रों-साहित्यिकों के लिए तीर्थ बन गया था। दूसरे साहित्य-सम्मेलन तथा संस्थाओं मे लोग पकडकर ले जाते थे। इसके अलावा आवश्यक सामग्री खरीदने के लिए शहर जाना पड़ता था। उनके प्रकाशक कलकत्ता मे थे। प्रूफ देखना, पाण्डुलिपि पहुँचाना आदि झंझट लगा रहता था। पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख तो तुलसी चट्टोपाध्याय के हाथ भिजवा देते थे। वह लोकल गाड़ी से नित्य अपने आफिस कलकत्ता जाता था, परन्तु शेष कार्यों के लिए शरत् बाबू को स्वयं जाना पड़ता था। इन्हीं दिनों बवासीर भी कष्ट दे रहा था। इन सारी परिस्थितियों को सोचकर उन्होंने निश्चय किया कि कलकत्ते में अपना एक छोटा-सा मकान बनवाया जाय। गांव के जीवन से जब घबराहट या बेचैनी महसूस हो तो वहां जाकर रहेंगे।

हिरण्मयी भी यहां अक्सर बीमार हो जाती थी। गांव में ले-देकर रमेश मुखर्जी एक डाक्टर हैं। वह भी साधारण रोगों की चिकित्सा कर पाते हैं। पानीत्रास में रहते हैं, अक्सर जब वे मरीज देखने दूसरे गांव

चले जाते हैं तब परेशानी होती है। रोग जब कठिन ज्ञात होता है तब नुन्टे से डा० गोपीकृष्ण चक्रवर्ती को बुलाना पड़ता है। यद्यपि यह कार्य स्वयं रमेश डाक्टर ही करते हैं। डाक्टर चक्रवर्ती की फीस भी कम नहीं है। पूरे आठ रुपये लेते हैं। वह भी क्या करें। सामताबेड़ा से ९ मील दूर रहते हैं। यहां तक आने जाने मे काफी दक्त लग जाता है। खासकर बरसात के दिनो में काफी कष्ट होता है। ले-देकर एक ही रास्ता है। बाध के किनारे-किनारे पालकी वाले चलते हैं। चिकनी मिट्टी पर पालकी वाहको के पैर अक्सर फिसल जाते हैं। उस वक्त ऐसा लगता है जैसे पालकी सहित जल समाधि लेनी पड़ेगी।

इन सभी कारणो से कलकत्ते मे मकान बनवाने का पूर्ण निर्णय शरत् बाबू ने ले लिया। कलकत्ता के कई मित्रो को जमीन देखने के लिए पत्र दिया। कुछ दिनो बाद बालीगंज में पी ५६६ मनोहर पुकुर रोड पर इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट की जमीन मिली।

एक ठीकेदार को मकान बनाने का ठीका दे दिया। अक्सर कलकत्ता जाने पर देखरेख के लिए वहा चले जाते थे। कलकत्ता के मनीन्द्रनाथ राय और हरेन्द्रलाल घोष बराबर आकर मिस्त्रियो का काम देखा करते थे। जब कई रोज ठहरना पड़ता था तब शरत् बाबू पड़ोस के श्री अपरूप चटर्जी के घर ठहर जाते थे।

शरत् बाबू का यहा रहना न तो प्रकाशचन्द्र को पसन्द था और न नरेन्द्र देव को। वह इसलिए कि शरत् बाबू अपनी आदत के अनुसार मजदूरो के पास जाकर अड्डेबाजी करते थे। उनसे दुःख-सुख की बाते पूछते, घर का हालचाल, बीबी-बच्चो की जानकारी प्राप्त करते। नतीजा यह होता कि वे काम करने के बदले गप लड़ाने लगते। अब शरत् बाबू को डाटना भी कठिन था। प्रकाशचन्द्र और नरेन्द्र देव किसी न किसी बहाने से उन्हे मजदूरो के पास से हटा देते थे।

एक दिन नरेन्द्र देव आये तो देखा—दो-तीन राज मिस्त्रियों को सामने बैठाकर कहानी सुना रहे हैं। उसी कमरे में मोजायक करना था। जगह खाली न रहने के कारण कोई खैनी मल रहा था तो कोई पैर फैलाये आराम से वर्मा की कहानी सुन रहा था। बाहर बरामदे में भी यही हालत थी।

अब बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। ठीकेदार के लेन-देन के बारे मे। किसे कितनी मजदूरी मिलती है, कौन किस चीज में उस्ताद है। वे सब भी बड़े आग्रह से सुना रहे थे। भला ऐसा श्रोता कहां मिलेगा जो ठीकेदारों की तानाशाही को दिलचस्पी के साथ सुने।

नरेन्द्र देव ने शरत् बाबू की ओर देखते हुए कहा—"मिस्त्रियों को आप काम करने देंगे या नही। आप दो घण्टे से इनके साथ अड्डेबाजी कर रहे हैं। यहा की हालत देखकर बाहर भी मजदूर लम्बी तानकर सो रहे हैं। यह सब क्या तमाशा है।

नरेन्द्र देव की देखरेख में मकान बन रहा था। सभी मिस्त्री उठकर अपने-अपने काम में लग गये। तभी प्रकाशचन्द्र ने धीरे से नरेन्द्र देव को कहा—"मेरे दादा भी विचित्र हैं। मिस्त्रियों के साथ ऐसा गप लड़ा रहे हैं कि क्या बताऊं। दो घण्टे से सारा काम बन्द है। एक बार छोटला यही बात कहने आया तो उसे मारने उठे थे। इसी सकोच के कारण हम लोगों ने इनसे कुछ नही कहा। अच्छा हुआ, आप आ गये वर्ना यह दरबार कब भंग होती पता नहीं।"

केवल कलकत्ता वाले मकान में ही नही, बल्कि सामताबेड़ा मे भी यही हरकत शरत् बाबू करते रहे। यद्यपि नरेन्द्र देव और राधारानी से इनका परिचय काफी दिनों से था। दोनों ही लेखक और कवि थे। दोनो ही शरत् बाबू से श्रद्धा करते थे। अक्सर सामताबेड़ा वाले मकान में अतिथि बनते थे। ज्ञातव्य है कि इस युगल दम्पति का विवाह शरत् बाबू के प्रयत्नो से हुआ था।

शरत् बाबू के सामताबेड़ा स्थित मकान के चारों ओर चौहद्दी बनाने के लिए कुछ मजदूर बांस चीरकर खपच्ची बना रहे थे। पास ही एक पेड़ के नीचे रखे कुन्दे पर बैठे शरत् बाबू मजदूरों को मछली पकड़ने की कला पर भाषण दे रहे थे।

नदी में किस तरह मछलियां फंसाई जाती हैं, चारा कैसा होना चाहिए। बातचीत के बीच में कुछ अजीब शब्द इस्तेमाल हो रहे थे। जैसे रुसुई, टेंग्रा, खापसा, कैंपा, बायड़, चुंचकेचिया, आंकर, आवाल, गडुई, चायल, चाकुहा आदि।

शरत् बाबू को यह आभास नहीं हुआ कि उनके पीछे पीछे नरेन्द्र देव चुपचाप दबेपांव आकर खड़े

हो गये हैं। सभी मजदूर काम रोककर मालिक के शिकार की कहानी सुन रहे थे। यह दृश्य देखकर नरेन्द्र देव ने शरत् बाबू के कान में धीरे से कहा—"शरत् दादा, ये लोग काम करते समय बीड़ी पीते हैं। आपने धूम्रपान बन्द कर रखा है।"

यह चेतावनी सुनते ही शरत् बाबू परेशान होकर बोले—"अरे, इसका ख्याल ही नहीं था। रहीम भाई, तुम लोग बीडी-सीडी आराम से पी सकते हो। मुझे कोई असुविधा नहीं होगी। यह देखो, मेरी मोटी स्पेशल बीडी है।"

इतना कहने के बाद उन्होंने बगल में रखे चमडे के बेग से एक मोटा चुरुट निकालकर मुंह से लगाया।

शरत् बाबू के इस भोलेपन से नरेन्द्र देव ने माथा पीट लिया। वे इसी बहाने उन्हें यहां से हटाना चाहते थे और कहां हजरत राहभागी बन रहे हैं। उन्होंने कहा—"मेरा यह मतलब नही था आपको हटाने के लिए यह बात कही थी। इन लोगों के साथ धूम्रपान में प्रतियोगिता करने के लिए नहीं कहा था। अब कृपया उठिये। हम लोगों को पांच बजे वाली गाडी से वापस जाना है।"

—अच्छा-अच्छा चलो।

यह है शरत् बाबू के स्वभाव का एक रूप। सामताबेडा आने के बाद से वे अड्डेबाज अधिक हो गये थे। जहां मौका मिलता, वहीं जम जाते थे। अनिला दीदी के यहा महिलाओं की भीड़ में बैठकर तरह-तरह की कहानिया सुनाया करते थे।

कलकत्ता के मकान में आने के बाद बहुत अधिक अड्डेबाजी करने लगे। 'रसचक्र' गोष्ठी के अध्यक्ष थे। जहा इस सस्था की गोष्ठी होती, वहां जाते थे। इसके अलावा 'भारती', 'यमुना', 'बंगवाणी', 'भारतवर्ष' कार्यालयों में जाते थे। नरेन्द्रदेव तथा कवि शेखर कालिदास राय के घर भी चले जाते थे।

श्रीमती राधारानी देवी शरत् बाबू की मुहबोली बहन थी। यही एक ऐसी महिला है जिसे अपने जीवन की कहानिया सुना चुके थे। राधारानी बाल-विधवा (अभी जीवित हैं।) थी। नरेन्द्र देव के ताऊ के साले की लडकी हैं। नरेन्द्र देव से प्रेम हो जाने के कारण वे विवाह के मामले में असमजस स्थिति में फस गयी। पता नहीं समाज के लोग, खासकर नरेन्द्र देव के परिवार के सदस्य इस रिश्ते को पसन्द करेंगे या नही। वे स्वयं प्रतिभावान साहित्यिक थी और नरेन्द्र देव तो कवि थे।

इसी ऊहापोह की स्थिति में राधारानी देवी ने एक बार शरत् बाबू से अपने विवाह के बारे मे परामर्श चाहा। जबकि नरेन्द्रदेव भी इस विवाह के लिए तैयार थे तब शरत् बाबू ने लिखा—

"तुमने मुझसे उपदेश चाहा है। पत्र मे कोई उपदेश नही दे सकता, बहन। सिर्फ अकुठ कल्याण कामना भेज सकता हूँ। जिस दिन तुमसे मुलाकात होगी, उस दिन सब जान लूगा। आज केवल इतना ही कहूगा कि जो लोग दुःख सहने से डरते नही, यह उनके लिए नही है।"

शरत् बाबू हृदय से विधवा-विवाह के समर्थक थे और निरुपमा देवी से विवाह करने की इच्छा रखते थे, पर यह असभव कल्पना थी। शायद इसीलिए वे अपने उपन्यासों तथा कहानियों मे किसी भी विधवा का पुनर्विवाह नही करा सके। इनकी नायिकाए प्रेम तो करती हैं, पर लोक लाज के भय से नायक से विवाह नहीं करती। साहित्य में जो सभव नही हो सका, उसे उन्होंने राधारानी देवी के जीवन मे कराया। नरेन्द्र देव और राधारानी देवी के विवाह का समर्थन ही नही, सहयोग तथा आशीर्वाद भी दिया था।

इस बारे में श्रीमती राधारानी देवी ने लिखा है—"हम लोगों के विवाह के समय दुर्भाग्य से एक दुर्घटना हो गयी थी। इसकी वेदना तमाम जिन्दगी सहती आ रही हूँ। उन दिनों इसके लिए हम दोनों बहुत विचलित हो उठे थे। सौभाग्य की बात यह हुई कि शरत्चन्द्र ने उस आक्षेप और दुःख की आबहवा को अपने करुणार्द्र सान्निध्य के द्वारा स्नेह देकर दूर कर दिया था। उनके अकपट प्रेम के कवोष्ण धूप मे हम लोगों के आहत-मन का मेघ दूर हो गया था। लेकिन इसके पहले आया था भयंकर अभिमान की आधी।

त्रुटि हमारी ओर से हुई थी। शरत्चन्द्र की प्रेरणा, उत्साहित परामर्श और देखरेख मे हम लोगो का विवाह निश्चित हो गया। शरत्चन्द्र की मौजूदगी में परेशनाथ के बाग में दिन भी तय हो गया था। मुझे लेकर मेरा दादा विभूति भूषण घोष (वे अभी तक जीवित हैं।) वहा उपस्थित हुए थे, शरत्चन्द्र आये थे

मेरे पति के साथ। उस दिन शरत्‌चन्द्र ने मेरे दादा विभूति बाबू से पूछा था—"क्या तुमने भी प्रेम-विवाह किया था?"

शरत्‌चन्द्र ने यह प्रश्न इसलिए पूछा था कि हमारे इस विवाह में उनकी सहमति थी। आज भी मेरे दादा इस बात का उल्लेख करते हैं।

कही इस विवाह में कोई विघ्न न आ जाय, इसलिए काफी पहले से इस बात का प्रचार करने को उन्होने मना कर रखा था। कहा था—"निमंत्रण-पत्र मत छपवाना। स्वयं लोगो के घर-घर जाकर जबानी निमंत्रित कर आना। आत्मीय-कुटुम्ब सभी को निमंत्रित करना। कौन विवाह मे सहयोग देता है और कौन नही देता है, यह तब समझ में आयेगा जब समर्थक-असमर्थक की जानकारी होगी।"

मेरे पति ने विस्मित होकर पूछा—"मैं ठहरा अकेला आदमी। घर-घर जाकर निमंत्रण देने के लिए इतना वक्त कहा मिलेगा? ऊपर से आप यह कह रहे हैं कि काफी पहले से इस बात का प्रचार मत करना। कोई बाधा दे सकता है। मैं सोचता हूँ कि चन्द लाइने लिखकर हस्ताक्षर कर दूँ और लोगो के द्वारा बटवा दूँ, यही अच्छा होगा। अब वक्त कहा रह गया?"

शरत्‌चन्द्र ने सिर हिलाते हुए कहा—"वक्त निकालना पडेगा, चाहे जैसे भी हो। लोगो के द्वारा नही, स्वय जाना होगा।"

शरतचन्द्र ने निमंत्रितो की एक सूची तैयार की थी जिन्हे आमंत्रित करना था। उन्होने कहा था—"ढेर योगियो से मठ उजाड़ हो जायगा। बाहरी लोगो मे केवल दैनिक पत्रो के सभी संपादको को निमत्रित करना। नही तो वे सब नाराज होकर उलटा राग गाने लगेगे। जिन लोगो के साथ हमेशा उठते-बैठते हो, उन्हे भी बुलाना। काफी विस्तार के साथ निमत्रण मत देना। सम्हाल नही सकोगे। उस वक्त तुम नौशा बने बैठे रहोगे। जलधर दादा और मैं सारी देखरेख करूंगा। सब मिलाकर सौ से अधिक आदमी न हो। इससे भी कम हो तो अच्छा है। पांच तरह के व्यक्ति जहा एकत्रित होते हैं, उनमे तरह-तरह के तर्क-वितर्क होते हैं। एक गिरोह दूसरे गिरोह पर व्यंग्य कसता है। उस वक्त एक अप्रिय वातावरण की सृष्टि होगी। हमारे यहां आज भी ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो विवाह या श्राद्ध सभा मे नये विचार वालो को चोट बिना पहुँचाये शान्त नही रह पाते। प्राचीन लोगो को सन्तुष्ट रखना। जिन्हे नही बुलाया गया, उन्हे फुरसत से आगे बुला लेना। तब उनके मन का क्षोभ दूर हो जायगा।"

'कल्लोभ-ग्रूप' को नही बुलाया गया। केवल "भारती-ग्रूप" को निमंत्रित किया गया। बाद मे कल्लोल-ग्रूप के सभी साहित्यिक दादा पर बरस पडे थे, परन्तु आगे चलकर वही सबसे अधिक प्रफुल्लित हुए थे। कल्लोल-ग्रूप मे सर्व श्री प्रेमेन्द्र मित्र, अचिन्त्य कुमार सेनगुप्त, बुद्धदेव बसु, अजित दत्त, युवनाश्व, नृपेन्द्र कृष्ण चट्टोपाध्याय आदि थे। समाचार पाकर वे बडे प्रसन्न होकर दौडे हुए आये थे—अचिन्त्य बाबू और प्रेमेन्द्र बाबू। सबसे पहले यही आये थे। इनके बाद नृपेन्द्र कृष्ण। दीनेश राजन बाबू नृपेन्द्र कृष्ण के साथ आये थे। इनकी प्रसन्नता में मिलावट नही थी, बल्कि ये लोग वास्तव मे उल्लसित थे। बुद्धदेव ने आनन्द प्रकट करते हुए तीन पैराग्राफ का पत्र लिखा था। बुद्धदेव ढाका स्थित 'प्रगति' आफिस मे मेरे स्वामी को बराबर पत्र भेजा करते थे।

शरत्‌चन्द्र को सबसे अधिक डर था ऐतिहयवादी देव परिवार से। यहां से प्रतिवाद की आंधी उठने की अधिक सम्भावना थी। लेकिन इस विवाह मे मेरी सास माता मृणालिनी देवी और बडी ननद सरला सुन्दरी ने उपस्थित होकर समस्त कर्त्तव्यो का निर्वाह करती हुई मेरा वरण किया था। वे सचमुच बहुत आनन्दित थी। देव-परिवार के जो लोग प्रधान थे, उनमे से प्रत्येक व्यक्ति बडे आनन्द के साथ अतिथियो का स्वागत करते हुए अपने कर्त्तव्य का यथारीति पालन कर रहे थे। न कही कोई गोलमाल हुआ और न कोई त्रुटि। रिश्तेदारो मे दो-एक को छोडकर सभी आये थे।

आये नही तो केवल शरत्‌चन्द्र। मेरे पति कहा करते थे—"जिन्हे सबसे अधिक खुशी होने की बात थी, केवल वही इस विवाह मे नही आ सके। मेरे पति के मन में आजीवन इस बात का कष्ट था।"

एक जटिल दुर्घटना के कारण वे इस विवाह मे उपस्थित नही हो सके। जिस बालक के हाथ मेरे पति ने इस विवाह की तिथि और समय लिखकर सामताबेडा भेजा था, वही बालक अचानक अपने पिता के हैजे की बीमारी की बात सुनकर जेब मे पत्र लेकर अपने गाव चला गया था। उसके पिता की मृत्यु तक

वह पत्र यथास्थान पहुँचाया नहीं जा सका था। शरत् दादा के पास वह पत्र नहीं पहुँचा, यह समाचार मेरे पति को मालूम नहीं हो सका। विवाह के दिन सवेरे से ही वे उद्विग्न होकर शरत् दादा की बेसब्री से इन्तजार करते रहे। आगत साहित्यिक भी उनकी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। सवेरे से ही 'देवालय' में लोगों का आना प्रारंभ हो गया था और रात को देर से लिलुआ स्थित इस भवन से कलकत्ता वापस गये थे।

सवेरे से सभी लोग शरत् दादा की प्रतीक्षा में प्लेटफार्म पर खड़ी होनेवाली प्रत्येक अप गाड़ी की आवाज सुनते ही देखते रहे। धीरे-धीरे तीसरा पहर बीत गया। आया गोधूलि लग्न। कलकत्ते से नेमन्त्रितों में से कोई न कोई प्रत्येक गाड़ी से आ रहा है, केवल शरत्चन्द्र नहीं आये।

दुर्भावना के कारण सभी का हृदय आक्रान्त हो उठा। लोगों ने अनुमान लगाया कि जरूर वे अस्वस्थ हो गये होंगे।

शरत्चन्द्र को जब सूचना नहीं मिली तब वे आते कैसे? जून की पहली तारीख को सभी समाचार पत्रों में बड़े शीर्षक में विवाह का विवरण प्रकाशित हुआ।

३१ मई, सन् १९३१ ई० में मेरी शादी हुई थी।

मेरे पति ने १८ ज्येष्ठ को एक पत्र डाक के जरिये भेजा जिसमें सामताबेड़ जाने की सूचना दी और यह पूछा कि क्या आप वहां जाना चाहेंगे। यह पत्र इसलिए लिखा गया कि वे मेरे लिए दादा पालकी स्टेशन पर भेजते थे। २३ ज्येष्ठ को लिखा गया उनका पत्र हमें इस आशय का मिला—

सामताबेड़ा, पानीत्रास
जिला-हावड़ा

कल्याणीयषु,

समाचार पत्रों में देखा कि तुम लोगों का विवाह हो गया है। बाद में तुम्हारा पत्र पाकर संदेह नहीं रहा कि यह समाचार सही है।

उस दिन तुम्हारी नयी गृहस्थी देखने जाने की इच्छा थी, पर इधर जरूरी कामों को निबटाने में सवा आठ बज गये। उस वक्त लिलुआ जाकर फिर सवा नौ बजे वाली गाड़ी पकड़ना संभव नहीं था, इसलिए अपना संकल्प पूरा नहीं कर सका। बहरहाल, मैं आशीर्वाद देता हूं तुम दोनों सुखी रहो।

शुभाकांक्षी
श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

जो लोग शरत् दादा को अच्छी तरह से नहीं पहचानते, वे इस पत्र में विद्यमान उनके दुःख और क्रोध का अनुमान नहीं लगा सकते। जबकि पत्र के अन्त में उन्होंने अपने क्रोध का चेहरा स्पष्ट किया है। हम लोगों के पत्र में हमेशा वे 'बड़े दादा', 'बड़दा', 'शरत् दा' शब्दों में हस्ताक्षर करते थे।

हमारे विवाह के बाद हम दोनों के नाम लिखा उनका यह प्रथम पत्र था जिसमें श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय हस्ताक्षर था। एकदम शीतल सुदूर असम्पृक्त भाषा में अत्यन्त संक्षिप्त पत्र—लिलुआ न आने का कारण लिखा गया है। यह कितनी नाराजगी की कैफियत थी—इसे समझने में हमें देर नहीं लगी।

मेरे पति ने बाद में काफी समझाया, बुझाया और एक अन्य व्यक्ति की मध्यस्थता में उनका मानभंजन किया था। हमारे मन का दुःख उनसे अधिक था, उसे समझने में काफी समय लगा था। जब वे अच्छी तरह समझ गये तब हमें निरन्तर सान्त्वना देते रहे।

शरत्चन्द्र जिस दिन पहली बार 'देवालय' आये, उस दिन उनके मन में उत्ताप और नाराजगी को दूर करने में मेरे पति को पर्याप्त श्रम करना पड़ा था। श्रद्धेय जलधर सेन महाशय उस दिन वहां उपस्थित थे। उन्होंने शरत् दादा को समझाया कि यह दायित्वहीन त्रुटि नहीं, कर्त्तव्य की लापरवाही भी नहीं, बल्कि अकल्पनीय दुर्घटना के कारण गड़बड़ी हुई थी।

उस दिन शरत् दादा की बातचीत में लड़कपन के भाव थे। बाद में हंसते हुए बोले—"मेरी किस्मत में ही यह लिखा है कि सामाजिक मामले में मुझे जातिच्युत का अपराधी बने रहना पड़ेगा। ठीक वक्त पर बायकाट हो गया। तुम्हारे विवाह में प्रथम बौछुरी से लेकर न जाने कितने लोग आये, सभी आनन्द मना

गये। गुरुदेव अगर कलकत्ता रहते तो वे भी आते और तुम दोनों को आशीर्वाद देते, केवल एक मैं अछूत रह गया। इसी को कहते हैं—भाग्य का दोष।"

हम लोगों के विवाह में अनुपस्थित रहने का खेद उनके मन में बना रहा। छोटी-छोटी घटनाएं या बातें उनके अनुभूति प्रवण मन में कितना मूल्यवान बन जाता है, इससे समझ में आता है। दूसरा कोई होता तो सत्य की जानकारी के बाद इस बात को भुला देता, फिर कभी स्मरण न करता।"

राधारानी की तरह शरत् बाबू अपने घनिष्ठ मित्र श्री प्रमथनाथ भट्टाचार्य को भी काफी आदर देते थे। अगर वह जीवन में सहायक न बनता तो न तो 'भारतवर्ष' पत्रिका से सम्बन्ध होता और न वे इतना लिख पाते। इस दिशा में प्रमथ ने कितना उत्साहित किया था, इसे वे आजीवन भूल नहीं सके।

प्रमथ बाबू कलकत्ता में हरिदास चटर्जी के सहपाठी थे। कलकत्ते में 'इवनिंग क्लब' नामक एक क्लब था। इस क्लब के अध्यक्ष थे—बंगला नाट्यकार तथा कवि श्री द्विजेन्द्रलाल राय और मंत्री थे—श्री प्रमथनाथ भट्टाचार्य। हरिदास चटर्जी साधारण सदस्य थे।

प्रमथनाथ ने ही एक दिन यह प्रस्ताव रखा कि क्लब की ओर से एक पत्रिका का प्रकाशन होना चाहिए। किसी पत्रिका का संचालन करना साधारण कार्य नहीं है, यह कहकर सदस्यों ने प्रमथनाथ के प्रस्ताव को नापास कर दिया। तब हरिदास बाबू ने कहा—"अगर श्री द्विजेन्द्र लाल राय पत्रिका का संपादन भार ले तो वे अपनी संस्था की ओर से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन कर सकते हैं।' जब द्विजेन्द्र लाल राय ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया तब 'भारतवर्ष' नाम से पत्रिका का प्रकाशन करने की योजना बनी।

इन दिनों शरत् बाबू रंगून में थे। प्रमथ बाबू शरत् के व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं तथा प्रतिभा से परिचित थे। उन्होंने हरिदास बाबू को आश्वासन दिया था कि शरत्चन्द्र से उत्तम कोटि की रचनाएं लिखवायेंगे।

कालेज की शिक्षा समाप्त करने के बाद प्रमथ बाबू पाथुरिया घाटा के राजा श्री सौरीन्द्र मोहन ठाकुर के यहां उनके प्राईवेट सेक्रेटरी का कार्य करते रहे। इसके बाद पोर्ट हेल्थ आफिस में नौकरी करने लगे। यहां काम करते रहने पर वे अस्वस्थ हो गये। स्वास्थ्य सुधारने के लिए यहां की नौकरी छोड़कर मध्य भारत स्थित छत्तरपुर चले गये थे। दरअसल उन्हें यक्ष्मा हो गया था। छत्तरपुर में रोग ठीक न होते देख वे भुवाली सेण्टोरियम चले आये थे।

इन दिनों शरत् बाबू रंगून में थे। अपने मित्र के स्वास्थ्य की चिन्ताजनक स्थिति सुनकर उन्होंने तुरत हरिदास चटर्जी को लिखा कि मेरी पुस्तक काशीनाथ की रायल्टी का सारा अधिकार मैं प्रमथनाथ भट्टाचार्य को सौंप रहा हूँ। अब उस पुस्तक की सारी रायल्टी प्रमथनाथ की चिकित्सा आदि में खर्च किया जाय। शरत् की इस उदारता का समाचार पाकर प्रमथनाथ ने हरिदास बाबू को लिखा—

प्रियवरेषु,

हरिभाई, कल शाम को आपका पत्र पाने के बाद से मैं कितना आत्महारा हो गया हूँ, इसे व्यक्त करने में असमर्थ हूँ। जीवन में इस तरह की सहानुभूति और सहायता पाने की आदत नहीं रही और किसलिए किस योग्यता के आधार पर लोग मुझे सहायता देंगे? अब देख रहा हूँ कि अयोग्यता भी एक विशेष गुण है। शरत् के सभी कार्य विचित्र होते हैं जिस दिन से उससे परिचय हुआ, उसी समय से यह बात देखता आ रहा हूँ। उसकी बात उसी पर लागू होती है—उसकी तुलना नहीं। इस अप्रत्याशित, अनचाही सहानुभूति पाने का मैं किसी भी दृष्टि से योग्य नहीं हूँ।

... शरत् का तमाशा है। उसने इस पृथ्वी को नये रूप में दिखाया। शरत् को भला क्या कह सकता हूँ। . . मैं जीवन भर श्रम करके अपने परिवार के भविष्य के लिए जो नहीं कर सका, आज तुम लोगों ने वही किया। .. तुम लोगों को कोटि-कोटि नमस्कार। तुम दोनों मेरे लिए दाता हो, मैं ग्रहीता हूँ।"

'काशीनाथ' नामक संग्रह में काशीनाथ, प्रकाश और छाया, मन्दिर, बोझा, अनुपमा का प्रेम, बाल्य-स्मृति और हरिचरण नामक कहानियां थीं।

श्री अश्विनी कुमार वर्मन नामक एक व्यक्ति कुछ दिनों तक असहयोग-आन्दोलन में भाग लेने के कारण जेल गये थे। जेल से बाहर आने के कुछ दिनों बाद उन्होंने 'आर्य पब्लिशिंग हाउस' के नाम से एक

प्रकाशन संस्था स्थापित की। आर्थिक कठिनाइयो के कारण वे लेखकों से पुस्तके मंगाने में असमर्थ हो गये। घर की हालत खराव होने लगी। अश्विनी वावू के वारे में यह समाचार पाते ही शरत् वावू ने 'स्वदेश और साहित्य' नामक पुस्तक दान में दे दिया। यह सन् १९३२ ई० की वात है। केवल यही नही, अश्विनी कुमार अपने पैरों खडे हो सकें, इसलिए उन्होंने आगे चलकर 'तरुणों का विद्रोह' नामक पुस्तक भी प्रकाशन के लिए दिया था।

शरत् वावू की उदारता की इन घटनाओं का यहा जिक्र करने का खास वजह यह है कि एक प्रतिभावान लेखक जो अपने वचपन से यौवनकाल तक अभाव की दुनिया में पला, वही व्यक्ति अपने अभावग्रस्त मित्रो की किस तत्परता से सहायता के लिए आगे आया। शरत् वावू के चरित्र के सभी पहलुओं को दर्शाने के लिए इन घटनाओं का उल्लेख जरूरी था। इससे उनकी उदारता, सौजन्यता पर प्रकाश पडता है।

विचार-दर्शन

राजनीति के साथ-साथ शरत् वावू साहित्यिक गोष्ठियो में भी वरावर भाग लेते रहे। लेकिन किसी भी सभा में अध्यक्ष बनने से कतराते रहे। एक वार उन्हे मजवूर होकर जव सभापति वनना पडा तव उनका ऐतिहासिक भाषण हुआ था।

घटना यो है—कविवर सत्येन्द्रनाथ के निधन के पश्चात् एक शोक सभा का आयोजन किया गया था। सभापति थे—शरत् वावू। टेवुल पर कार्यक्रम एक कागज पर लिखकर रख दिया गया था। उसे पढ़कर शरत् वावू ने कहा—"नजरूल गाना शुरू करो।"

कवि नजरूल के बाद कई लोगो के भाषण हुए। सभापति का भाषण इस ढंग से हुआ, मानो वे घर पर किसी व्यक्ति से वात कर रहे हैं। उन्होंने भाषण दिया—

"आज आप लोग कविवर सत्येन्द्रनाथ दत्त के निधन पर शोक प्रकाश करने आये हैं, अच्छा किया। वड़े आदमी के मर जाने पर कुछ लोग इस तरह का आयोजन करते हैं, आप लोगों ने भी किया। अच्छा किया। सत्येन्द्र वावू प्रतिभावान कवि थे, उनके प्रति श्रद्धा होगी ही, उनके अभाव मे दु ख होगा ही। हम लोग उनकी कमी महसूस कर रहे हैं। साहित्यिक को श्रद्धा ज्ञापित की जाती है, उनके पुस्तको को पढ़कर। अगर आप लोग खरीदकर पढ़े होंगे तो उनके जीवितकाल में ही उन्हे श्रद्धा दे चुके हैं। सत्येन्द्र वावू की रचना पढ़कर आप लोग समझ गये होंगे कि वे कितने वडे कवि थे। कुछ लोगों ने यहां भाषण दिये, इन लोगों ने भी पढ़ा होगा। लोगों के भाषण भी अच्छे हुए। नजरूल ने गीत गाया, अच्छा गाया। नलिनी अव तुम गाना शुरू करो, अच्छा ही होगा।"

इतना कहकर अध्यक्ष महोदय अपनी कुर्सी पर वैठ गये।

तभी कवि शशांक मोहन ने विनोद मे पूछा—"शरत् वावू आपका भाषण सवसे सुन्दर रहा। इसे तैयार करने मे कितने दिन लगे थे?"

शरत्चन्द्र ने हसकर कहा—"जवरदस्ती अध्यक्ष वनाने का यही नतीजा है। मेरा कोई दोष नही है।"

धीरे-धीरे सभाओ मे भाग लेते रहने पर उनका धडका खुल गया और वे भाषण देने के अभ्यस्त हो गये। साहित्य-सम्मेलनों मे वे अधिकतर अपना भाषण लिखकर ले जाते थे। कही-कही जहा अपने वारे में कहना होता था अपने साहित्य के वारे में चर्चा करनी पडती थी, वहा मौखिक रूप से जवाब देते थे।

सभा के वारे मे उनका कहना था—सभापतित्व करना मुझे अच्छा नही लगता। कई घंटे वैठना पडता है। गाव के लोगों से न परिचय होता है और न कोई वातचीत। सभाओ मे निवंध पढ़ने से क्या लाभ होता है, आज तक समझ नही सका। श्रोताओं में वहुत कम लोग सुनते हैं। उससे कही अच्छा छोटी गोष्ठियां होती हैं जहां हम आपस मे परिचय प्राप्त करते हैं, एक-दूसरे का विचार समझते हैं।

२१ अक्टूबर, सन् १९३० मे एक बार इसी प्रकार की गोष्ठी मे शरत् बाबू ने खुलकर भाग लिया था। वहा की सभा मे वे ठीक से बोल नही पाये थे, गोष्ठी मे अपने बारे मे तथा अपनी रचना प्रक्रिया के बारे मे हृदयग्राही विवरण दिया था।

गोष्ठी के प्रारभ मे शरत् बाबू के बारे मे श्री चारुचन्द्र राय ने सक्षेप मे परिचय देते हुए कहा—"आज अज्ञात अभिज्ञता के अधिकारी, साहित्य-रस के प्रस्रवण हमारे बीच हैं। आप लोग इसी प्रस्रवण से अपना-अपना कुभ भर ले जाइये। आप लोग साहित्य, समाज आदि विषयो पर प्रश्न कीजिए। जिस प्रकार अभिमन्यु का घेराव किया गया था, उसी प्रकार हम सब प्रश्न-जाल से इनका घेराव करे। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि शरत् बाबू अभिमन्यु की तरह व्यूहभेद करेगे, भागेगे नही।"

शरत् बाबू ने कहा—"आप लोगो के यहा आने की इच्छा काफी दिनो से थी। तरह-तरह के झझट तथा अस्वस्थता के कारण आना सभव नही हुआ। भाषण मैं दे नही पाता। साधारण बाते कहना भी कठिन हो जाता है। पर इच्छा यह थी कि कुछ लिखकर और कुछ कहकर अपनी बात समाप्त करूगा। यह भी सभव नही हुआ। बचपन मे एक बार यहा आया था। उन दिनो मेरी उम्र चार या पाच साल की थी। दादी घर से नाराज होकर यहा आयी थी। मैं भी उनके साथ आया था। यह आज से पचास वर्ष पहले की बात है। एक मजिल का मकान, पास ही बडा तालाब था। वही कुण्डू बाबू का मकान था। बस, इतना ही याद है। इस ओर से आप लोगो के साथ एक प्रकार की आत्मीयता है। चारु बाबू ने प्रश्न करने की जिम्मेदारी आप लोगो को दी है। सभी के प्रश्नो का उत्तर दे सकूगा या देने के लिए बाध्य हूँ, ऐसी बात नही है, पर प्रयत्न अवश्य करूगा।"

श्री वसन्त कुमार बनर्जी ने पूछा—"आप अपने वश का परिचय दीजिए और अपने साहित्य की पृष्ठ भूमि बताने की कृपा करे।

शरत् बाबू ने कहा—"वश का कोई गौरव मैं नही रखता। उसका परिचय देने से क्या लाभ है? पुरानी चीजो पर गौरव करने से कोई काम नही होगा। जो लोग प्राचीन इतिहास की मिट्टी खोदकर बाहर निकाल रहे हैं और कह रहे हैं—यह देखो, हमारे पास यह था, वह था, मैं उनकी बातो से प्रसन्न नही होता। इससे मस्तक ऊचा नही होता। मैं कहता हूँ—मेरे पास कुछ नही था। हमे जिन चीजो की जरूरत है, उसका निर्माण कर लेगे। इन्सान निरन्तर आगे बढता जा रहा है, अपनी ताकत से अपना निर्माण कर रहा है। आज से दो हजार साल पहले क्या था, इसे जानने के लिए पत्थर तोडने की आवश्यकता नही है और यह सब सुनाने की भी जरूरत नही है। अपना गौरव कैसे बढ सकता है, इस ओर ध्यान दीजिए। जाति के बारे मे भी यही सवाल है, जाति न रहे, न सही, अपनी ताकत से प्रतिष्ठा बनाइये। वश-परिचय न रहे। स्वय सक्सेशफूल सार्थक-जीवन बनाने का प्रयत्न करो। मैंने अपने उपन्यास 'शेष प्रश्न' मे इस सवाल को उठाया है, चर्चा की है। वर्तमान मे जो कुछ हो रहा है, उस पर कटाक्ष किया है, चोट भी किया है। पुस्तक अभी समाप्त नही कर सका हूँ। कुछ दिन के भीतर समाप्त कर दूगा। धर्म के बारे मे मेरे वश की एक विशेष ख्याति है। हमारे वश मे आठ पुश्त से एक न एक व्यक्ति सन्यासी बनता है। मेरा मझला भाई सन्यासी है। मेरे नाना कट्टर धार्मिक थे। मैं स्वय सन्यासी बनकर चक्कर काटता रहा। अच्छे सन्यासी जितने कर्म करते हैं अर्थात् गाजा पीना आदि, यह सब भी किया है। आजकल वह सब मन से दूर चला गया है। मोती बाबू (प्रवर्तक सघ के गुरु श्री मोतीलाल राय) जिस लाइन को लेकर चल रहे हैं, उसके बारे मे कुछ कहना यहा अशोभन नही होगा। इसे मैं अच्छा नही समझता। आपके लेखो को मैं ध्यानपूर्वक पढता हूँ। मेरे ख्याल से आप प्राचीन-धर्म की नीव पर पुन एक नयी जाति का निर्माण कर रहे हैं। आनफरचुनेटली मेरा मन विपरीत दिशा की ओर चला गया है, धर्म-साधना के सम्बन्ध मे दिलचस्पी नही होती। अगर हम लोगों का सब कुछ था, अगर हम लोग सब कुछ जानते थे तो हमारी यह दशा क्यो हुई? ससार की अन्य जातियो को जब हम देखते हैं तब वे अपना परिचय देने लायक अपनी प्रतिष्ठा को बना लिया है, ऐसा पाते हैं। और हम? जिनके पास सब कुछ था, कभी पठान कभी मुगल और इस बार अग्रेजो के जूते के नीचे क्यो पीसे जा रहे हैं? हम अपने आध्यात्मिक जीवन की काफी प्रशसा करते हैं, पर बाहरी लोग इस बात पर विश्वास नही करते। धर्म के भीतर बडी गल्ती है। मूल सूत्र त्याग के भीतर से जा रहा है। त्याग के भीतर क्या है, तलाश करने पर नही मिला। गलती है कहा, तलाश

करने पर नही मिलता, इन प्रश्नो की चर्चा मैं 'शेष प्रश्न' मे कर चुका हूँ।

हम लोगो की यह दशा क्यो हुई, अगर इसका कारण कोई खोज निकाले तो मुल्क की बडी भलाई होगी। हजारो वर्षो मे जो दुरावस्था है, इसे सवारने का कोई उपाय नजर नही आ रहा है और आशा भी नही है। मेरा जो विचार है, इस पुस्तक मे व्यक्त किया है और साथ ही इस बात के लिए आह्वान किया है कि आइये, बताइये कि गलती कहा है? बताइये कि किस जगह गलती हुई जिसकी वजह से हम यह दण्ड भोग रहे हैं। हम लोग बहुत बडे थे जबकि रिजल्ट शून्य है। हम लोगो के पास सब था, इससे क्या आता-जाता है? मैं कहूगा कि हम लोगो के पास कुछ नही था। हम सभी चीजो को छोटा करके देखेगे। सोच रहा हू, जितने दिनो तक जीवित रहूगा, अब ध्वस करने का काम करूगा। विनय पूर्वक यह स्वीकार कर लूगा कि हमारे पास कुछ नही था। हजारो साल पहले जो लोग थे, उनके साथ हमारा कोई मेल नही है, अगर है तो केवल इतना ही कि हम दोनो एक ही देश मे निवास करते आये। अगर इसे आप मेल मानते हैं तो ठीक है। आज से बारह-तेरह वर्ष पूर्व लोगो द्वारा मेरी निन्दा हुई थी कि मैंने साहित्य को चौपट कर दिया, ऐसे विषयो का अवतरण किया है जिससे ध्वस कर दूगा। केवल बालक-युवको ने कहा कि आपका मार्ग ठीक है, हम लोग आपकी बात मानेगे। यह जानता हू कि जिस मार्ग की ओर मैं अग्रसर हो रहा हू उसका प्रतिवाद किया जा रहा है। अगर आप यह कहे कि यह मार्ग ठीक नही है तो बताइये क्यो ठीक नही है, अगर आप इसे बता देते हैं तब पुन सोचकर देखूगा। मैं सस्कारो का पक्षपाती नही हूँ। पुरानी चीजो को अदल-बदल लू, यह मुझे पसन्द नही। सस्कार का क्या अर्थ है,' इसे मैंने 'पथ के दावेदार' मे स्पष्ट किया है। जो खराब चीज है वह अधिक दिनो तक चलने पर घिस जाता है, गडबड चलता है, उसकी मरम्मत होनी चाहिए। मरम्मत करने पर कभी अच्छा नही बनता, बल्कि अचल चीज को और मजबूत बनाकर कायम की जाती है। जिसे नेगलेट करने पर नष्ट हो सकता था, उसे पुन करना पडता है। मोती बाबू धर्म को सस्कार बनाकर उसे झाडने-पोछने के बाद पुन खडा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। मेरा कहना है कि अब मरम्मत करने की जरूरत नही है। वह अचल हो गया है, उसे फेक दो। उसे मरम्मत करके पुन खडा करने का प्रयत्न मत करो। हजारो साल बीत जायेगे, हजारो चीजो की मरम्मत करने मे। इस बारे मे मोती बाबू स्वय ही प्रकाश डाले। हम लोग उनकी बात सुनने को तैयार हैं।"

मान्य अतिथि की बाते सुनकर मोतीलाल राय परेशान हो गये। अपने विचारो के बारे मे थोडी-सी बाते कहने के पश्चात् उन्होने कहा—"आज यहा हम शरत् बाबू के विचारो को सुनने के लिए एकत्रित हुए हैं। हम इनकी बाते सुनेगे। मैं इनके विचारो से कष्ट अनुभव कर रहा हूँ, मगर मैं अपनी बाते यहा समझा नही सकता। मैं आपके साथ तर्क करूगा। जैसे आपका एक विश्वास है, उसी प्रकार मेरा भी एक विश्वास है। 'शेष प्रश्न' के बाद आपको शेष लेखनी पकडेनी पडेगी। उसमे कहना पडेगा—ध्वस करने के बाद मैंने क्या दिया।' आज हम आपके महामूल्य उपदेशो को सुनने के लिए उत्सुक हैं। आप केवल अपने विचारो को कहिये।"

शरत् बाबू ने कहा— "मुझे अपनी बातो का उत्तर मोती बाबू के जवाब से नही मिला। सभवत आप मेरे विचारो को ठीक से पकड नही सके। मैं कुछ महामूल्य उपदेश नही देने जा रहा हूँ, परन्तु एक बात कह सकता हूँ। ससार की सभी जातिया बडी होती जा रही हैं, सभी लोग प्रतिष्ठित हो रहे हैं और हम जूते के नीचे आखे बन्द कर पडे है, इसमे सुख नही मिलता, पूर्व गौरव स्मरण करके भी नही। रोम की तरह पाच सौ बाद पुन वही गौरव प्राप्त करूगा, इस सोच मे तृप्ति नही मिलती। मैं ध्वस करके जाऊगा। डर किस बात का? इस मार्ग पर मैं अकेला नही हूँ। ध्वस होने पर एक नये दल का जन्म होगा। राजनीति से हट आया हूँ, उस झमेले मे रास्ता नही बना सका। काफी वक्त बरबाद हुआ। काश, उतना वक्त चौपट न करता। बहरहाल थोडी अभिज्ञता प्राप्त हुई। अब आगे से अपना लेखन-कार्य लेकर व्यस्त रहूगा।"

इसी समय श्री ब्रजेन्द्रनाथ गोस्वामी ने प्रश्न किया- "आपने अभी बताया कि हम लोगो के पास कुछ नही था। आखिर आप कहना क्या चाहते हैं? मान लीजिए कि मेरे पिता- पितामह बडे आदमी थे, बडे धूमधाम से होली-दीवाली का उत्सव मनाते थे, आज मैं गरीब हो गया हू तो क्या मुझे यह कहना पडेगा

कि मेरे पिता-पितामह ने होली-दीवाली का उत्सव नही मनाया था? क्या यह सत्य होगा?"

शरत् बाबू ने उत्तर दिया- "मैं यह नही कहूगा, मगर यह कहूगा कि उन लोगो ने अपनी होली-दीवाली के जरिये हमे इस स्थिति तक पहुँचाया है।"

गोस्वामीजी ने कहा— "आप भले ही यह सब बाते कहे, पर आपकी रचनाओ को पढने पर साफ मालूम पडता है कि आपने सनातन-धर्म की हानि नही की है। जब हम 'चरित्रहीन' मे यह देखते हैं कि स्टीमर मे एक ही बिस्तर पर एक बालक के साथ सोने पर भी उसने अपने देह को नष्ट नही किया। ऐसी स्थिति मे हम कैसे मान ले कि आप सनातन-धर्म को नही मानते। आपके अन्तर का धर्म-विश्वास क्या उस औरत की चरित्र-रक्षा का कारण नही है?"

शरत् बाबू ने कहा—"आपने मेरे उद्देश्य को ठीक से समझा नही है। आपने जो कहा, मैंने उस तरह कुछ भी नही किया। अगर वह औरत अपने शरीर को नष्ट कर देती तो मेरा कोई नुकसान नही होता, पर वह चरित्र नष्ट हो जाता। इतनी सुशिक्षित महिला जो एक बालक के साथ अपनी जिद्द के कारण भाग आयी, उसे अपदार्थ शिशु कहा जायगा। जिसे किसी ओर से भी अपने समकक्ष नही समझती, उससे अपना शरीर नष्ट कर लेती तब तो वह चरित्र ही नष्ट हो जाता।"

विवाद बढते देख चारु बाबू ने कहा—"अब आप अपने साहित्यिक-जीवन के बारे मे कुछ सुनाइये। कैसे आप असाहित्यिक से वर्तमान समय मे विश्व विश्रुत साहित्यिक की श्रेणी मे आ गये, इस बारे मे क्रम विकास इतिहास बताने की कृपा करे।"

शरत् बाबू ने कहा—" मै कैसे साहित्य-जीवन मे बढता आया हूँ, इसकी जानकारी मुझे भी नही है। बचपन मे ही लिखने-पढने की ओर मेरा झुकाव था। मन मे एक वासना उत्पन्न होती रहती थी कि बाहर जो तरह-तरह की अवस्थाएँ देख रहा हूँ, उनका क्या कोई एक रूप नही दिया जा सकता? अचानक एक दिन मैंने लिखना शुरू किया। प्रारभ मे अवश्य इधर-उधर से चोरी करके अधिकतर लिखता था। अभिज्ञता न रहने से कोई भी अच्छी रचना नही लिखी जा सकती। अभिज्ञता प्राप्ति के लिए बहुत कुछ करना पडता हे। अति भद्र-शात-शिष्ट जीवन रहे और सभी अभिज्ञताएँ प्राप्त हो जाय, यह नही हो सकता। इच्छा से या अनिच्छा से ही सही, मुझे चार-पाँच बार सन्यासी बनना पडा था। अच्छे-अच्छे साधु जो कुछ करते हैं, वह सब भी मै करता रहा। गाँजा-मालपुआ कुछ भी नही छूटा। इन विद्याओ मे पारंगत न होने पर कुछ सीखा नही जा सकता। बीस वर्ष इसी मे बीत गये। उन्ही दिनो कुछ पुस्तके मैंने लिख डाली। देवदास १८-२० वर्ष की उम्र मे लिखा था। इसके बाद गाना-बजाना सीखने लगा। पाँच साल इसमे गुजर गये। उसके पश्चात् पेट की ज्वाला से विभिन्न स्थानो मे घूमता रहा। मेरी प्रचण्ड अभिज्ञता इसी से हुई। ऐसे बहुत से काम करने पडते थे, जिनको ठीक या उचित नही कहा जा सकता। लेकिन मेरी यह सुकृति थी कि उसमे मैं डूब नही गया। मैं देखता रहता था—सभी छोटी बडी बातो को ढूँढता फिरता था। अभिज्ञता जमती जाती थी। बर्मा, जावा, बोर्निओ, घूमता फिरता था। उन देशो के लोग अच्छे नही हैं। वे स्मगलर हैं। इन्ही अभिज्ञताओ का फल है—'पथ के दावेदार'। घर मे बैठे रहने या आरामकुर्सी पर लेटे रहने मे साहित्य का निर्माण नही होता। इस तरह तो केवल अनुकरण किया जा सकता हैं। किन्तु सत्य के रूप मे मनुष्यो को न देखने से साहित्य नही बनता। ये लोग क्या करते हैं कि किसी एक करेक्टर को लेकर उसमे कुछ अदल-बदलकर एक नये करेक्टर की सृष्टि करते हैं। इन्सान क्या है, उसका बिना अध्ययन किये नही समझा जा सकता। अत्यन्त कुत्सित दुराचार के भीतर भी मैंने ऐसा मनुष्यत्व देखा है जिसकी कल्पना नही की जा सकती। ये सभी अभिज्ञताए मेरे मन के भीतर असर डालने लगी। मेरी स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी है। बचपन से ही इन्टैक्ट है। जानने की इच्छा मेरे मन मे बराबर बनी रहती है। मनुष्य के भीतर जो सत्ता है, उसे 'रिलाइज' करना मेरा उद्देश्य है। जिसका थोडा स्खलन हो गया, उसको मनुष्य एकदम छोड देगा—यह कैसी बात हुई? उसके भीतर क्या है, देखने की जरूरत नही है? दूसरो की जबानी सुनना, दूसरो की अभिज्ञता को अपना बना लेना—यह आदत मुझमे कभी नही थी। वास्तविक जीवन देखने के लिए कूप मण्डूक बनना नही चाहिए। जिस अभिज्ञता की वजह से टालस्टाय, शेक्सपीयर मे कूप मण्डूकता नही थी। ककृट (वस्तु मूलक) रचना के लिए कल्पना मे काम नही चलता। दूसरो का साहित्य मैंने कम पढा है। मुझे अच्छा भी नही लगता। मेरे घर मे जितनी

पुस्तके हैं, वे सब विज्ञान की हैं। शायद इसीलिए मेरी पुस्तको मे तर्कों का अवतरण या सिन्थेटिक रिजल्ट (सश्लेषणात्मक परिणति) अधिक है। सौन्दर्य का वर्णन तो है ही नही। इन बातो को चन्द लाइनों मे समाप्त कर देता हूँ। अन्तर की जो वस्तु है, जो सत्ता है, वह मनुष्य के भीतर है। उसकी उपलब्धि के लिए प्रचण्ड अभिज्ञता की जरूरत होती है। मैंने अपनी अभिज्ञता को कैसे सचय किया है, इसका विवरण व्यापक रूप से देने की जरूरत नही है। सभी बाते कहने योग्य भी नही हैं। मनुष्य सस्कार वश या दुर्बलता के कारण उसे बरदाश्त नही कर पाता। बहुत से लोग कहा करते हैं और ठीक ही कहते हैं—आपके चरित्रो को पढने पर ऐसा लगता है जैसे वे कल्पना के पात्र नही हैं। मेरे चरित्रो का आधार नब्बे प्रतिशत सत्य है। लेकिन यहा स्मरण रखना होगा कि जितने भी सत्य है, वे सभी साहित्य की सामग्री नही हैं। ऐसे अनेक सत्य हैं जो साहित्य नही बन सकते। सत्य की नीव पर इमारत न खडी करने से चरित्र जीवन्त नही बन पाते। मैंने जिन चरित्रो को देखा है, उन्ही के बारे मे लिखा है। अगर लोग उन्हे अस्वाभाविक कहेगे तो मैं नही मानूगा।"

चारु बाबू ने प्रश्न किया—"आप अपनी भाववस्तु को कैसे रूप प्रदान करते हैं। आपकी मौखिक भाषा से आपकी पुस्तको की भाषा मेल नही खाती, न यह 'पथ के दावेदार' की भाषा है और न अन्य किसी पुस्तक की भाषा है।"

शरत् बाबू ने कहा—"मेरे लिखने का ढग आमलोगो से अलग है। यह पहले ही कह चुका हूँ कि मेरी स्मरण-शक्ति काफी तीक्ष्ण है। यद्यपि जो कुछ देखा है, सुना है, वह सब सर्वदा स्मरण रहता है, ऐसी बात नही है, पर जरूरत के वक्त अपने आप याद आ जाती है। पहले मैं अपने चरित्रो को ठीक कर लेता हूँ। एक, दो, तीन के क्रम से। उनकी अवतारणा या चित्रण करना मेरे लिए सहज है। कुछ लोग कहते हैं—'हमे प्लाट नही मिलता, इसलिए हम नही लिखते।' मैं यह सुनकर अवाक् रह जाता हूँ। इतनी बडी प्रकाण्ड पृथ्वी पडी हुई है और इन्हे प्लाट नही मिलता! इसका कारण यह है कि ये लोग इन्सान को नही खोजते, कहानी को लेकर परेशान रहते हैं, कैसे लोगो का मनोरजन करू। मैं वैसा नही करता। मेरी भाषा विज्ञान पढने के कारण ऐसी बन गयी है। लोगो को क्यो अच्छा लगता है, पता नही। जो कुछ समझाना चाहता हूँ, उसे याद रखता हूँ—इसके लिए काफी परिश्रम करता हूँ। भाषा को भी काफी माजता हूँ, स्वत झरने की तरह वह नही निकलता। मौखिक बातचीत की तरह लेखनी मे भी काफी असलग्न बाते रहती हैं।इस ओर नजर रखनी चाहिए। मैं इधर-उधर करके काम को टालता नही, इसीलिए भूमिका बनाकर मुझे कुछ भी समझाना नही पडता। मेरी किसी भी पुस्तक मे भूमिका नही है। चार सौ पृष्ठ की पुस्तक पढकर अगर किसी की समझ नही आयी तो वह चार पृष्ठ की भूमिका पढकर क्या समझेगा? मैं पुस्तको के भीतर ही समझाने का प्रयत्न करता हूँ—कोई भी बात द्वयर्थक न हो, इसका ध्यान रखता हूँ। मेरे विचारो से भले ही लोगो के विचार न मिले, पर कोई यह नही कह सकता कि आपकी चीज समझ मे नही आयी। साहित्य-रचना के कुछ नियम हैं। यह देखना पडता है कि रस-वस्तु अश्लीलता की श्रेणी मे न आ जाय। श्लीलता-अश्लीलता के बीच एक सूक्ष्म रेखा है जिसके एक इच इधर आने पर सब नष्ट हो जाता है। जरा पैर फिसला कि बचना कठिन हो जाता है। यद्यपि मैं यह बात रसिक लोगो के लिए कह रहा हूँ, मनोरजन के लिए कभी नही कहूगा कि यह बात वास्तव मे मैं नही करता। गालिया बहुत सुन चुका हूँ। कठोर-समालोचना के तीर तीक्ष्ण रूप से बेधते रहे। ग्रथकार, कवि, चित्रकारो का जीवन साधारण लोगो से जरा भिन्न होता है। यहा के लोग इसे नही जानते। यह भी नही जानते कि स्नेह का प्रश्रय देकर ही इनको जीवित रखना पडता है। लोग चाहते हैं—इन्हे अभिज्ञता मिले और हम लोगो की तरह शात, शिष्ट, भद्रजीवन व्यतीत करे। ऐसा नही हो सकता। खेद की बात है कि हमारे यहा की समालोचनाओं मे व्यक्तिगत इगित बारह आने रहते हैं। ऐसी समालोचनाए लेखक की होती हैं, पुस्तक की नही। इसीलिए बहुत से लोग डर जाते हैं। 'ब्राह्मण की लडकी' नामक मेरी एक पुस्तक है, अनेक लोगो ने शायद उसे नही पढा है। लिखते समय रवीन्द्रनाथ से बातचीत हुई थी। उनसे मैंने कहा कि मैं एक ऐसी पुस्तक लिखना चाहता हूँ। इस सबध मे मेरे अनेक अनुभव हैं। उन्होने कहा—"अब तो कौलीन्य-प्रथा नही है। किसी के १०० विवाह अब नही होते, इसे उभाडने से क्या लाभ? अगर साहस है तो लिखो, पर असत्य का सहारा मत लेना।' गडे मुर्दे को उखाडना मेरा उद्देश्य

नही रहा। कौलीन्य-प्रथा का मुझे कडा अनुभव हो गया था। जो लोग ब्राह्मण होने पर भारी गौरव अनुभव करते हैं और सोचते है—ब्राह्मण का रक्त अविमिश्रित है, यह उनकी गलत धारणा है। अग्रेजी मे जिसे 'ब्लू ब्लड' (रक्ताभिजात्य) कहा जाता है, अब नही है। कौलीन्य को लेकर जितना गोलमाल देखा है, यह इतिहास की बात नही है जो देखा है, उसे लिखा है। एक-दो नही अनेक। ऐसे एक घर मे निमत्रण भी खा आया हूँ। कौलीन्य अच्छा है या बुरा, इस पर मैं विचार नही करता। यह बात कहता भी नही हूँ। मैं यह भी नही कहता कि वैद्य के साथ कायस्थ का विवाह होने दो। कितु ऐसा यदि कोई करता है, कल्चर मिलता है तब मैं कहूगा—उसे बाधा मत दो। उसने अच्छा किया या बुरा किया, यह मैं नही कहता। कम-से-कम वह मिथ्याचारी नही है। कुछ लोग मौखिक रूप से कहते हैं—विधवा-विवाह होने दो। कितु ज्योही अपनी लडकी विधवा हो जाती है त्योही कहने लगते हैं—देखिये, मैं यह काम नही कर सकता। मुझे और भी पाँच लडकियो का विवाह करना है, इत्यादि इत्यादि। इस प्रकार के मिथ्याचार को मैं पसद नही करता। रवीन्द्रनाथ भी यही कहते हैं—लिखो, पर झूठी बात लिखकर किसी को प्रसन्न करने के लिए मत लिखो। झूठ के द्वारा चरित्र-गठन नही हो सकता। जहा गठन होता है, वहा अस्वाभाविक हो जाता है। जब पुस्तक छपकर बाजार मे आयी तब मुझ पर भी भीषण आक्रमण हुआ। अगणित बैरग पत्र आने लगे।"

नारायण चन्द्र ने कहा—"वर्तमान राजनीति के बारे मे कुछ कहिये।"

शरत् बाबू ने कहा—"इस बारे में मैं कुछ कह नही सकता।"

इसके बाद कुछ फुटकर प्रश्न पूछे गये। अन्त मे शरत् बाबू ने कहा—"आज आप लोगो से मिलकर प्रसन्नता हुई। इस प्रकार की गोष्ठियो की आज आवश्यकता है जहा लेखक-पाठक एक साथ बैठे। पाठक प्रश्न पूछे और लेखक अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे मे उत्तर दे। आजकल अनेक लोग लिख रहे हैं, पर उन्हे लेखक नही कहा जा सकता। ऐसी गोष्ठिया करके वर्तमान साहित्य पर विचार विमर्श किया जाय तो एक दिशा मिलेगी।"

सर्वोच्च सम्मान

सन् १९३२ की घटना है। ३१ भाद्रपद (१५ सितम्बर) के दिन शरत् बाबू का ५७ वा जन्म दिन मनाने का निश्चय उनके मित्रो ने किया। इस समारोह मे सभापतित्व करने के लिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर से आग्रह किया गया। इस आयोजन के आमत्रणदाताओ मे सर्वश्री विधानचन्द्र राय, मनीन्द्रनाथ राय, किरण शकर राय, तुलसी गोस्वामी, निर्मलचन्द्र चन्द्र जैसे लोग थे।

जिस प्रकार वर्तमान समय राजनीतिक पार्टियो मे दलबन्दी और उधमबाजी है, उसी प्रकार की स्थिति उन दिनो भी थी। इन पार्टियो मे एक का नाम था—एडवास और दूसरे का फारवर्ड। एडवास पार्टी के नेता थे—यतीन्द्र मोहन सेनगुप्त और फारवर्ड के सुभाषचन्द्र वसु। शरत् बाबू का सुभाषचन्द्र से मैत्री थी और वे इनकी पार्टी के थे। आयोजको मे फारवर्ड पार्टी के लोगो को सहयोग देते देख एडवास पार्टीवाले अप्रसन्न हो गये। उन लोगो ने सभा को पड करने का षड्यत्र करना शुरु किया।

उन्हे पड करने का मौका भी मिल गया। १५ सितम्बर के कई दिन पहले साम्पदायिक बटवारे के विरुद्ध महात्मा गाधी ने आमरण अनशन की घोषणा की। इस सकल्प के कारण सर्वश्री कवि यतीन्द्र मोहन बागची, कालिदास राय, सावित्री प्रसन्न चट्टोपाध्याय आदि अन्य कई साहित्यकारो ने यह घोषणा की कि शरत्-जयन्ती ऐसी स्थिति मे बन्द कर देना उचित होगा। जब यह वक्तव्य अखबारो मे प्रकाशित हुआ तब शरत्चन्द्र नाराज हो गये।

ठीक इसी समय एक घटना और हुई। १५ सितम्बर के दिन हिजली जेल मे बन्द दो राजनीतिक बन्दियो का मृत्यु-दिवस था। कुछ लोगो ने उनकी स्मृति मे जहा शरत् बाबू का अभिनन्दन होनेवाला था, उसी टाउनहाल के मैदान मे सभा करने की घोषणा की। एक ही जगह दो सभाओ के आयोजन के

कारण नाना प्रकार के उपद्रव हुए। अभिनन्दन-सभा के दरवाजे तक आकर शरत् बाबू वापस लौट गये। अत मे सभा को स्थगित करनी पडी।

सभा को पड करने मे प्रमुख हाथ सजनीकान्त दास का था जो 'शनिवारेर चिट्ठी' पत्र के सपादक थे। आप हमेशा रवीन्द्रनाथ, शरत्चन्द्र या ऐसे किसी भी लेखक के पीछे पड जाते थे जिन्हे आप पसद नही करते थे। शरत् बाबू के साहित्य तथा भाषणो को लेकर इनसे अधिक अन्य किसी ने व्यग्य नही किया था।

इस समारोह की अध्यक्षता करने स्वय कविवर रवीन्द्रनाथ आनेवाले थे, पर अपनी अस्वस्थता के कारण नही आ सके। जब उन्हे सारी घटना ज्ञात हुई तब उन्होने शरत्चन्द्र को एक पत्र मे लिखा—

कल्याणीयेषु,

तुम्हारे प्रति जो अत्याचार हुआ है, उसका विवरण सुनकर मैं अत्यन्त लज्जित हुआ हूँ। लेकिन यह सत्य है कि देश के लोगो के हृदय पर तुमने अधिकार प्राप्त कर लिया है। इस प्रेम से बढकर मूल्यवान अर्ध्य और कुछ नही है। यह जो प्रेम तुम्हे प्राप्त हुआ है, उसके लिए तुम्हे चोट तो सहन करना ही पडेगा। केवल यश प्राप्त करते, इसे लेकर किसी के मन मे कुछ विरोध न होना तो इस यश का कोई गौरव न होता। तुम्हारी प्रतिष्ठा जितनी बढती जायगी, उतना ही दु ख भी बढता जायगा। इसके लिए मन को कठोर बना लो। पूजा की छुट्टी पर विश्वविद्यालय मे भाषण देने के लिए कलकत्ता जाना पडेगा। उस वक्त तुमसे मुलाकात हो सके, इसके लिए प्रयत्न करूगा। मेरा शरीर थका हुआ है, वक्त नही मिलता।

तुम्हारा

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

इस घटना के दूसरे दिन मनीन्द्र नाथ राय के मकान पर तथाकथित देश-प्रेमियो की देश-भक्ति की चर्चा चलने लगी।

इस दुर्घटना के पीछे कई कारण थे। शरत् बाबू का सुभाष की पार्टी मे रहना, कम समय मे अपने समकालीन साहित्यिको मे शरत् बाबू का तेजी से लोकप्रियता अर्जित करना, विरोधियो के प्रयत्न करने पर भारतीय भाषाओं मे उनकी रचनाओ का अनुवाद होना था। इसके अलावा कुछ व्यक्तिगत कारण थे। यतीन्द्र मोहन बागची भी समारोह को पड करने मे सहायक थे। बागची महाशय मनीन्द्रनाथ राय से व्यक्तिगत रूप मे नाराज थे। पिछले कई माह से वे इनसे दो हजार रुपये माग रहे थे, पर मनीन्द्रनाथ राय इन्हे बराबर टरकाते रहे। जबकि इस आयोजन के प्रमुख मनीन्द्र नाथ राय थे। केवल यही नही, 'आनन्द बाजार पत्रिका' के सपादक श्रीप्रफुल्लचन्द्र सरकार कीभूमिका भी अच्छी नही रही। वे भी शरत् अभिनन्दन स्थगित रखने का अपने पत्र मे समर्थन कर चुके थे।

इस आलोचना के बीच एक सज्जन ने कहा—"महात्माजी के अनशन तथा हिजली के शहीदो की स्मृति मे केवल शरत् दादा के अभिनन्दन को पड करना था। वह इसलिए कि यह कलकत्तावासियो के लिए शोक-दिवस था जबकि कलकत्ता के अन्य अनुष्ठान स्थगित नही किये गये। एडवास पत्रिका के लिए सतोष मित्र ने क्या नही किया था। (जेल मे गोल मार दी गयी थी।) उसी पत्र के मालिक काग्रेस नेता जे० सी० सेनगुप्त के यहा साहब-मेमो को पार्टी दी गयी थी जहा पड करने वाले सज्जनवृन्द भी उपस्थित थे।"

तभी शरत् बाबू ने कहा—"तुम लोग औरतो की तरह क्यो किचकिच करने लगे? तुम लोगो का ख्याल है कि जन्म-दिवस समारोह पड हो जाने के कारण मैं मनस्ताप कर रहा हूँ, कत्तई नही। कल से सिर्फ यही सोच रहा हूँ कि महिलाओ पर इतना अत्याचार कैसे किया गया? अगर यह सच है कि महिलाओ के जेवर लूट लिये गये हैं तो समारोह का बन्द हो जाना उचित ही हुआ। बडा अच्छा हुआ जो इस समारोह मे रवीन्द्रनाथ नही आये। छात्रो का यह व्यवहार देखकर वे अत्यन्त मर्माहत होते। तुम लोग कह रहे हो कि इस उपद्रव मे नलिनाक्ष की पार्टी मे चारु भी था, इस पर विश्वास करने का जी नही चाहता। बहरहाल तुम लोगों से मेरा अनुरोध है कि इस विषय को लेकर अब कोई बातचीत मत करो।"

इस घटना के एक दिन बाद पुन नये सिरे से शरत् बाबू जन्म दिवस समारोह मनाया गया। विरोधी पार्टी वालो का मनोबल टूट चुका था, इसलिए इस दिन वे कुछ कर नही सके। कवि गुरु का काफी बडा

सदेश पढा गया जिसमे उन्होने शरत् बाबू को उत्साहित करते हुए यह शुभ सूचना दी कि आज के इस अवसर पर मैंने अपनी नवीन कृति 'कालेरयात्रा' नाटिका तुम्हे समर्पित किया है। आशा है, यह दान तुम्हारे लिए अयोग्य नही है।

काल की रथ-यात्रा की सारी बाधाए दूर करने का महामत्र तुम्हारी लेखनी मे सार्थक हो, इसी आशीर्वाद के साथ मैं तुम्हारे दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

इस घटना के कुछ दिनो बाद शरत् बाबू का विस्फोटक उपन्यास 'शेष प्रश्न' का प्रकाशन हुआ। कमल जैसी विद्रोही नायिका की मुखरता को लोग हजम नही कर सके। 'चरित्रहीन,' 'ब्राह्मण की बेटी' की तरह यह उपन्यास पुराणपन्थियो के निकट विष का प्याला प्रमाणित हुआ।

शरत् बाबू को यह ज्ञात था कि 'शेष प्रश्न' उपन्यास को लोग पसद नही करेगे और विरोधी आलोचक इसका श्राद्ध करेगे। हुआ भी वही। 'शेष श्राद्ध' शीर्षक से इस उपन्यास की कटु आलोचना हुई। दूसरी ओर 'वेणु' पत्रिका के सपादक स्वाधीनता सेनानी श्री भूपेन्द्र किशोर रक्षित ने जब इस पुस्तक की प्रशसा करते हुए पत्र लिखा तब शरत् बाबू ने उन्हे एक पत्र मे लिखा—

'शेष प्रश्न' उपन्यास तुम्हे अच्छा लगा, इससे मन प्रसन्न हुआ। इसमे अनेक सामाजिक प्रश्नो की चर्चा है, लेकिन समाधान करने की जिम्मेदारी तुम लोगो पर है। भविष्य के सुकठिन दायित्व की सभावना ने ही तुम्हे आनन्दित किया है। जबकि मेरा ख्याल है कि अनेक लोग इस पुस्तक के अध्ययन मे निराश होगे, उन्हे कोई आनन्द नही मिलेगा। एक तो इसमे कहानी का अश कम है, तिस पर सोच-सोचकर पढना पडता है। सर-सर कर वक्त काटने या नीद बुलाने के लिए या आराम से आधी आखे खोलकर पढने लायक नही है। यह अच्छा लगने की बात नही है, फिर भी मैंने इसे लिखा। यह सोचकर लिखा कि शायद कुछ लोग इसे समझ सकेगे, इससे मेरा उद्देश्य पूरा हो जायगा। सभी प्रकार के रस सभी के लिए नही होते। अधिकारी-भेद को मैं मानता हूँ।

एक बात और मन मे आयी थी, वह है अति आधुनिक-साहित्य। सोचा था कि इधर एक इशारा कर जाऊगा। बूढा हो गया हूँ, लिखने की शक्ति कम हो गयी है, फिर भी भावीकाल के तुम सब इस आभास को प्राप्त करोगे कि गदगी बिना फैलाये अति आधुनिक लिखा जा सकता है। केवल कोमल, पेलव रसानुभूति नही, इन्टेलेक्ट का बलकारक आहार परोसना भी आधुनिक काल के रस-साहित्य का एक महान् कार्य है। इसके बाद जब तुम लोग लिखोगे तब तुम लोगो को काफी पढ़ना पडेगा। केवल मनोरजन के लिए लिखकर छुटकारा नही पा सकोगे।"

श्रीमती राधारानी देवी तथा नरेन्द्र देव के विवाह मे शरत् बाबू सम्मिलित नही हो सके, परन्तु अपने यहा रहने वाली दुर्गा नामक विधवा बालिका का विवाह उन्होने हिन्दू मिशन के जरिये कराया था। प्रतुल कुमार मुखर्जी का इस लडकी से प्रेम हो गया था। विवाह के बाद प्रतुल कुमार के घर वालो ने उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया। नयी नौकरी थी, बेचारी दुर्गा कहा रहती? इस समस्या का हल शरत् बाबू ने कर दिया। उसे सामताबेडा ले आये। यहा वह हिरण्मयी देवी की देखरेख मे घर का सारा काम करती रही। फुरसत के वक्त शरत् बाबू उसे लिखना-पढना सिखाते थे। जब प्रतुल कुमार व्यवस्थित हो गया तब एक दिन आकर उसे ले गया।

इसके बाद शरत् बाबू गाव आकर रहने लगे। शहरी जीवन उन्हे पसद नही था। जब शहर के कोलाहल से घबरा जाते तब सामताबेडा चले जाते थे। कलकत्ता रहते हुए वे साहित्यिको की गोष्ठी मे बराबर भाग लेते रहे।

एक दिन 'बगवाणी' कार्यालय मे गये तो वहा उमा प्रसाद मुखोपाध्याय ने एक मजेदार कहानी सुनाई। उनके घर मे एक दामाद रहते थे। बडे सीधे और सरल स्वभाव के थे। एक दिन नहाने जाते समय उन्होने देखा कि उनका गमछा गायब है। गमछा क्या गायब हुआ, उनके मन पर गम छा गया। आफिस से आते समय एक नया गमछा ले आये। सर आशुतोष मुखर्जी के घर मिलने-जुलने वालो का ताता लगा रहता है। उन्होने सोचा कि आनेवालो मे से ही किसी ने चोरी की है।

उस दिन नीचे आकर उमा बाबू से कहा—चोरी क्यो होती है, पता लग गया।

—क्या गमछा मिल गया?

—गमछा कहा मिलेगा। नया खरीदकर लाना पडा। जहां टागकर रखता हूँ, वही अधेरे मे एक आदमी चुपचाप खडा देखकर मैंने उन्हे विगडते हुए कहा—"यहा अधेरे मे चुपचाप क्यो खडे हैं। किसी से भेट करनी है तो नीचे जाइये। आजकल यहा से नित्य घर के सामान चोरी चले जा रहे हैं।"

—ऐसा कहा आपने? कौन था?"

—पता नही कौन था। अधेरे मे चेहरा देख नही सका। लम्बी दाढी और कमर मे लुगी जरूर देखा। दरवान को भेजकर पता लगाओ कौन था।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कहा—"दरवान को भेजने की जरूरत नही, वह पहले ही चला गया है। वे आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय हैं। पिताजी से मिलने आये हैं।"

—अरे वाप रे , पी० सी० राय आये हैं तव तो आज ही मैं घर से निकाल दिया जाऊगा। अब मैं चला।"

इतना कहकर वे बिना स्नान किये वे गायब हो गये। इधर आचार्य प्रफुल्लचन्द्र ने पिताजी से इस घटना की कोई चर्चा नही की।"

इस कहानी को सुनने के बाद शरत् वाबू ने कहा—"एक वार मेरे साथ भी प्रफुल्लचन्द्र की मजेदार घटना हुई थी। मेरा उनके प्रति असीम श्रद्धा है। लेकिन प्रत्यक्ष रूप से कभी दर्शन करने का अवसर नही मिला था। एक दिन उनका एक छात्र आया और उनसे मिलाने के लिए मुझे ले गया।

उन दिनो आचार्यजी साइंस कालेज के ऊपरवाले कमरे मे रहते थे। उनके कमरे मे आकर देखा—एक छोटी खटिया के ऊपर बैठे वे काम कर रहे थे। चारो ओर कागज, फाइल रहने के कारण वैठने लायक स्थान कही नही था, इसलिए खटिया के एक कोने पर बैठ गया।

सहसा प्रफुल्लचन्द्र उत्तेजित होकर वोल उठे—"अरे, अरे यह क्या? बिस्तर पर मत वैठो।"

मैं चौंककर खडा हो गया। साथ आया छात्र भी शर्म से गल गया। तुरत एक कुर्सी ले आया। मैं उस पर बैठ गया।

अब सहज भाव से उन्होने पूछा—"आजकल क्या कर रहे हो?"

मैंने कहा—"यही थोडा-बहुत लिखता हूँ।"

—ठीक है, ठीक है। लिखते रहो। मगर जल्दबाजी में कुछ छपवाने मत जाना।

समझते देर नही लगी कि प्रफुल्लचन्द्र मुझे भी छात्र समझ रहे हैं। मैंने भी उनकी गलतफहमी को दूर नही की। मजा लेने के लिए विनीत भाव से कहा—"छपवाने लायक कुछ नही है। बस, कोशिश कर रहा हूँ।"

इसी तरह की बाते चल रही थी। उधर छात्र बेचैनी अनुभव कर रहा था। उसने पास जाकर मेरा वास्तविक परिचय दिया। छात्र की बाते सुनते ही प्रफुल्लचन्द्र ने चश्मे के भीतर से मुझे घूरकर देखा। इसके बाद खटिया से उठकर तेजी से कमरे के दरवाजे की ओर बढे और बरामदे मे जाकर अपने प्रिय छात्रो के नाम लेकर बुलाने लगे।

तुरत बाहर भीड एकत्रित हो गयी। सभी छात्रो के साथ वे कमरे के भीतर आये जैसे कोई सेनापति अपनी सेना का कमान लेकर आ रहा हो। इसके बाद मेरी ओर इशारा करते हुए बोले—"सामने कौन वैठा है, तुम लोग जानते हो? आप हैं—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय। इनकी सारी पुस्तके मेरी आलमारी मे हैं। चलो, तुम सब इनके चरण स्पर्श करो।"

इसके बाद वे मेरे पास आकर बैठे और फिर तरह-तरह की बाते होने लगी। मैं उनकी सरलता पर मुग्ध हो उठा।"

श्रावण महीने मे शरत् बाबू के पास एक पत्र आया जिसमे गिरीन मामा के निधन का समाचार था। दिन भर शोकाकुल हृदय लिए घर बैठे रहे। दूसरे दिन उन्होने सुरेन्द्रनाथ को पत्र दिया कि अभी पन्द्रह दिन नही हुए तुम, गिरीन और मैं एक साथ यहा भोजन करते रहे। आज वह नही है। पता नही, मेरा यह शुभ दिन कब आयेगा?

अपने स्वास्थ्य के कारण शरत् बाबू भीतर ही भीतर टूटते जा रहे थे। दूसरी ओर उनके साहित्य के कारण उनकी लोकप्रियता मे वृद्धि होती जा रही थी। कालेज, विश्वविद्यालय, प्रवासी बगाली समाज,

साहित्य-सम्मेलन वाले अपने यहा बुला रहे थे।

सन् १९२२ मे श्रीकान्त का प्रथम भाग अग्रेजी मे अनुवाद हुआ था जिसे अक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने छापा था। बाद मे 'निष्कृति' उपन्यास का अनुवाद श्री दिलीपकुमार राय ने किया। इस पुस्तक का नाम रखा गया—डेलिवारेन्स। पुस्तक की भूमिका महाकवि रवीन्द्रनाथ ने लिखी। इस पुस्तक को पढकर महर्षि अरविन्द ने काफी प्रशसा की और कही-कही कलम चलाया।

श्री बशीश्वर सेन की अमेरिकन पत्नी ने 'निष्कृति' को पढने के बाद कहा कि इसकी एक प्रति मुझे देने की कृपा करे। मैं अप्रैल मे जब अमेरिका जाऊगी तब वहा से इसे प्रकाशित कराऊगी। अनेक प्रकाशकों से मेरा परिचय है।

शरत् बाबू के अधिकाश उपन्यासो के अनुवाद उन दिनो भारतीय भाषा मे प्रकाशित हो गये थे। हिन्दी मे ७४, तमिल मे ३५, तेलगू मे ४७, कन्नड मे ६९, गुजराती मे ५२, मराठी मे ४२, मलयालम मे ११, उर्दू मे १६, उडिया मे १, गुरुमुखी मे १, अग्रेजी मे ४, फ्रासीसी मे १, इतालवी मे १, रूसी भाषा मे २ पुस्तको के अनुवाद हो चुके थे।

शरत् बाबू के अनूदित उपन्यासो को पढकर फ्रांसीसी विद्वान रोम्या रोला ने उन्हे विश्व का श्रेष्ठ कथाकार ही नही माना, बल्कि 'कल्लोल' पत्रिका के सपादक दिनेश रजन दास को एक पत्र भेजते हुए लिखा—हम लोग शरत् बाबू की रचनाओ का फ्रासीसी भाषा मे अनुवाद करके छपवाये तो फ्रास तथा वगाल के चिन्तनधारा मे आत्मीयता स्थापित हो सकती है।

दिनेश बाबू ने शरत्चन्द्र से इस विषय पर जब बातचीत की तब उन्होने कहा—'उन लोगो से अभी हमे बहुत कुछ ग्रहण करना है, हम उनका अनुकरण भी नही कर पाते। उनमे इतनी उदारता कहा से आयी? कहा बगाल का एक लेखक जो निन्दा के बोझ से जर्जरित है, उस देश के साधारण लेखक के बराबर भी नही है और उसी शरत्चन्द्र को लेकर वे परेशान है। किस बात पर? वह यह कि लेखन के भीतर अन्तर का परिचय प्राप्त करेगे। सोचो, कितने बडे साहित्यिक ने इस बात को कहा है?

उन्हे लिख दो कि बगाल की रचनाए किसी बगाली के द्वारा फ्रासीसी भाषा मे अनुवाद करवाने की मेरी इच्छा नही है। किसी भी भाषा का पूर्ण रस दूसरी भाषा मे नही आ पाता। रवीन्द्रनाथ को स्वय अग्रेजी का अध्ययन करके अग्रेजी मे लिखना पडा था। उन्होने स्वय ही कहा है—'ओ मेरे आमो की मजरी' इसका अनुवाद दूसरी भाषा मे कैसे होगा? इन शब्दो मे आम्र मुकुल का ताजा गध है।''

कुछ देर ठहरकर बोले—''उदाहरण के लिए अगर कोई लेखक गाव का चित्रण करते हुए लिखता है—तालाब के किनारे शोभा स्वरूप कई अति उच्च नारिकेल के वृक्ष हैं। एक सकीर्ण घाट है जहा एक तरुणी अपना कलश पूर्ण करने आयी है। उसकी छाया जल पर पड रही है। लगता है जैसे कोई लीला रसमय पानी के भीतर छिपा हुआ है जो उस रमणी के साथ केलि कर रहा है। चारो ओर घोघा, अरबी और कास के जगल हैं। उसी की आड में एक पैर पर खडे बगुले मछली के शिकार मे ध्यान लगाये हैं। कई नौकाए कुछ दूर पर बधी हैं। नाव के छाजन पर मल्लाहो के रगीन वस्त्र सूख रहे है। क्या इस रस का निरूपण दूसरी भाषा मे हो सकता है?''

दिनेश बाबू ने कहा—''आपके कहने का आशय यह है कि किसी भाषा मे दूसरी भाषा का साहित्य ठीक मे अनुवाद न होने की वजह से नही करना चाहिए?''

—देखिये, मैं आपको ठीक से समझा नही पा रहा हूँ। एक भाषा में जो रस है, वह दूसरी भाषा मे उसी तरह अनुवाद नही हो सकता। जैसे बगाल की मूर्खा मर्छलिया, गोबर पाथना आदि दूसरी भाषा मे गदगी फैलायेगे।''

शरत् बाबू अनुवाद से असतुष्ट इसलिए हो गये थे कि 'चरित्रहीन' का अग्रेजी मे अनुवाद प्रति सप्ताह लदन से जो पाण्डुलिपि आ रही थी, वह उन्हे पसद नही आ रहा था। अग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक श्री भवानी भट्टाचार्य को श्रीकान्त का चौथा भाग अनुवाद करने को दिया तो कुछ दिन बाद उन्होने कहा—''इसका अनुवाद मुझसे नही होगा। वही हाल दिलीप कुमार राय का था।

भारतीय भाषाओ मे उनकी पुस्तके अनूदित होती रही, पर विदेशी भाषाओ से शंकित रहते थे। जर्मनी में इन दिनो डा० कानाई गागुली रहते थे। उन्होने जर्मन भाषा मे 'श्रीकान्त' का अनुवाद किया।

प्रकाशक ने कहा कि लेखक को एक बार जर्मनी आना पड़ेगा। शरत् बाबू ने पता लगाया तो उन्हे ज्ञात हुआ कि यहा हिटलर का राज्य है। अफीम यहा नही मिलती और न यहा लेकर आ सकते है। इस सूचना से वे इतने मायूस हुए कि जर्मनी जाने का विचार छोड दिया। जर्मन भाषा मे उनकी रचनाओ का अनुवाद नही हुआ।

शरत् बाबू की देन से प्रभावित होकर ढाका विद्यालय ने उन्हे सम्मानित करने के लिए डी लिट की उपाधि देने की घोषणा की। यह सूचना शरत् बाबू को उस समय ज्ञात हुई जब वे किसी काम से कलकत्ता वाले मकान मे आये। उन्ही दिनो समाचार पत्रो मे प्रकाशित इस सूचना को उन्होने देखा। उन्हे इस बात पर विश्वास नही हुआ। उन्होने ढाका स्थित अपने मित्र चारुचन्द्र बनर्जी को पता लगाकर सही सूचना देने के लिए पत्र लिखा।

चारुचन्द्र बनर्जी की सूचना से उन्हे यह विश्वास हो गया कि यह समाचार सही है। मजाक नही किया गया है। दरअसल उन दिनो शरत् बाबू को लेकर पर्याप्त व्यग्य किया जाता था।

२९ जुलाई, सन् १९३६ ई० को ढाका विश्वविद्यालय ने अपना समावर्तन-समारोह मनाया। इस अवसर पर उसने बगाल के तत्कालीन गवर्नर सर जान एण्डरसन, न्यायपालिका के अध्यक्ष सर अब्दुर रहीम को डाक्टर आफ ला, आचार्य जगदीश बसु और आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय को डी एस-सी तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर मुहम्मद इकबाल, शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय और यदुनाथ सरकार को डी लिट की उपाधिया दी।

इस अवसर पर शरत् बाबू को ढाका मे कई जगह भाषण देना पडा जहा उन्होने कुछ उर्दू शब्दो का प्रयोग किया था। नतीजा यह हुआ कि शरत् बाबू के विरोधियो ने काफी करारा व्यग्य किया। फलस्वरूप अनेक शरत्-प्रेमी क्षुब्ध हुए।

इसी प्रकार का व्यग्य उनके विदेश-यात्रा के सबध मे किया गया था। शरत् के मित्रो ने उन्हे राय दी कि बिना योरोप का चक्कर लगाये आपको विश्वख्याति नही मिलेगी। रवि बाबू को भी अपने विचार-दर्शन पर भाषण देने तथा विश्व के साहित्यकारो से मिलने जाना पड़ा था।

मित्रो के इस सुझाव को उन्हाने स्वीकार कर लिया। इस आयोजन के सयोजक थे—सर्वश्री दिलीप कुमार राय, कानाई गागुली और बुद्धदेव बाबू। पासपोर्ट बन गया। इसमे इग्लैण्ड, फ्रास जर्मनी, बेलजियम, इटली, डेनमार्क, आस्ट्रिया, नार्वे, स्वीडेन, हगरी, हालैण्ड, स्विटजरलैण्ड आदि देशो के नाम दर्ज थे। दिनाक २५ जुलाई, १९३५ के दिन पासपोर्ट पर मेजिस्ट्रेट ने हस्ताक्षर किया था।

लेकिन यह यात्रा नही हो सकी। असली कारण अस्वस्थता थी। लेकिन इस प्रसग को लेकर विरोधी पत्रो ने व्यग्य किया—शरत्चन्द्र नोबुल पुरस्कार प्राप्त करने के चक्कर मे विदेश यात्रा करने जा रहे हैं। इस तरह के व्यग्य करने वालो मे 'आनन्द बाजार' पत्र का भी हाथ था जिसके प्रधान सपादक श्री प्रफुल्ल कुमार सरकार थे।

इसी अफवाह के आधार पर एक अग्रेजी पत्र का सवाददाता साक्षात्कार करने आया। बातचीत के सिलसिले मे शरत् बाबू ने कहा—"सारी बाते मनगढत हैं। यह ठीक है कि मैं मित्रो के अनुरोध पर विदेश घूमने जा रहा था, पर क्या नोबुल पुरस्कार सिफारिश पर मिलता है? आप मेरी हालत देख रहे हैं, इस शरीर को लेकर विदेश-यात्रा सभव है?"

इस घटना के बाद 'आनन्द बाजार पत्रिका' के सपादक एक मुसीबत मे फस गये। उस वक्त उन्हे अपनी तथा शरत् बाबू की कीमत मालूम पडी। शरत् बाबू के घनिष्ठ मित्रो मे सर्वश्री सुरेन्द्रनाथ गागुली, सौरीन्द्र मोहन मुखर्जी, असमजस मुखर्जी, मनीन्द्रनाथ राय, नरेन्द्र देव, श्रीमती राधारानी, अविनाश घोषाल थे। अविनाश घोषाल से घनिष्ठता अधिक बढ गयी थी। इनसे एक दिन प्रफुल्ल बाबू ने कहा—"मैं एक मुसीबत मे फस गया हूँ। आपको मेरी सहायता करनी होगी।"

अविनाश बाबू ने कहा—"बात क्या है सो बताइये।"

—कुछ दिन हुए शरत् बाबू के साथ हमारे यहा एक अप्रीतिकर घटना हो गयी है। आपको यह मालूम ही होगा। इस घटना के लिए वास्तव मे मैं बहुत दुखित हूँ। अब गलती तो हो चुकी है। इधर मेरे लिए एक नयी मुसीबत उत्पन्न हुई है। शरत् बाबू 'विचित्रा' मे एक नया धारावाहिक उपन्यास लिखना प्रारभ

किया है। उन्होने अपने उपन्यास का जो नाम रखा है, उसी नाम से मेरा एक उपन्यास बाजार मे बिक रहा है। अब इस हालत मे उनका उपन्यास बाजार मे आ गया तो मेरा बटाधार हो जायगा। उनके आगे मुझे कौन पूछेगा। अगर आप कोई उपाय कर सके तो अच्छा हो।

—आप क्या चाहते हैं?

—आपके साथ किसी दिन शरत् बाबू के पास चलने की इच्छा है। उनसे निवेदन करूगा कि वे इस उपन्यास का नाम बदल दे।

—आपको जाने की जरूरत नही है। पहले मैं जाकर भूमिका बनाऊ। देखू, क्या कर सकता हूँ।

शरत् बाबू से चर्चा करने पर उन्होने आश्चर्य के साथ कहा—"अनागत के नाम से उनका कोई उपन्यास है, मुझे मालूम नही था।"

अविनाश बाबू ने कहा—"वे चाहते हैं, आप अपने इस उपन्यास का नाम बदल दे।"

—ठीक है। प्रफुल्ल से कह देना कि इसके लिए मेरे पास आने की जरूरत नही है। अगली किश्त मे इस उपन्यास का नाम बदल दूगा।"

'विचित्रा' अगले अक मे शरत् बाबू की ओर से यह सूचना छपी—

"श्री प्रफुल्ल सरकार महाशय का 'अनागत' नामक उपन्यास इसके पूर्व छप गया है। इसकी जानकारी मुझे नही थी। कथावस्तु मे बिना परिवर्तन किये—किसी भी रचना का नाम बदल जा सकता है। 'अनागत' का बदलकर 'आगामी काल' करने की सूचना सपादक जी को दे रहा हूँ।

महाप्रयाण

बचपन मे गरीबी मे बीता तो जवानी यायावरी मे गुजरी और प्रौढावस्था ख्याति तथा अर्थ के सिहासन पर आरूढ हुए। दाने-दाने को मोहताज रहे तो सम्राट विक्रमादित्य की अर्थ लुटाया और परोपकार किया। जीवन के सघर्षो से कभी नही घबराये। इन्ही कारणो से शरत् बाबू का स्वास्थ्य टूटता गया। हाथ पैर फूलना, बवासीर से पीडित हुए अत्यधिक शराब पीने और बाद मे अफीम के सेवन से आतो की बीमारी हुई।

जब हालत चिन्तनीय होने लगी तब उन्होने अपने सबसे बडे हितैषी सुरेन्द्र मामा को सहायता के लिए बुलाया। सुरेन्द्रनाथ जब गाव मे आये तब शरत् की हालत देखकर चौंक उठे। मुँह से कुछ नही कहा।

बाद मे कहा—"गाव मे रहकर इलाज कराना ठीक नही होगा। चलो, कलकत्ता मे सारी व्यवस्था हो जायगी।"

कलकत्ता रवाना होने के पहले रामकृष्ण के नाम तार कर दिया गया। वह कलकत्ता वाले मकान मे रहते हुए कालेज मे पढता था। अब आगे का वर्णन सुरेन्द्रनाथ के शब्दो मे—

"भोजन के वक्त वह (रामकृष्ण) आया। शरत् ने पूछा—"कहा गायब था?"

"जिन्दगी का मजा लेने गया था।"

इस उत्तर को सुनकर हम सब अवाक् रह गये। ऐसा जवाब सुनकर कौन नही नाराज होगा? होदल बाबू (रामकृष्ण) को दूसरे दिन कुली बुलाकर सारे सामानो के साथ अन्यत्र चले जाना पडा।

यहा यह बता दू कि 'जिन्दगी का मजा' का अर्थ है—सगीत चर्चा। उसका ख्याल था अगर वह तानसेन के जमाने मे पैदा होता तो तानसेन को डाउन कर देता। पता नही, उस दिन शरत् ने 'जिन्दगी का आनन्द लेने' का क्या अर्थ समझा था, पर इस छोटे-से अपराध के लिए उसे कडा दण्ड दिया गया था।

शरत् जब नर्सिंग होम मे भर्ती था तब उसने जाकर उन्हे कहा था—"तुम्हारे मामा, तुम्हारे मकान को बधक रखकर तुम्हारा इलाज करवा रहे हैं।"

शरत् के पूछने पर मैंने जवाब दिया—"शरत्, कलकत्ते मे ऐसे बेवकूफ नही हैं जो मेरे कहने पर मकान गिरवी रखकर रुपये दे। पागलो की बात ध्यान मत दो।"

कलकत्ता आने के बाद शरत् घर वापस जाने के लिए व्याकुल हो गया। यह देखकर मै चुपचाप डा० कुमुद के पास गया। उनसे मैंने कहा—"आप शीघ्र विधान बाबू को ले आइये वर्ना शरत् गाव चला जायगा।"

कुमुद बाबू ने कहा—"शाम को पॉच-छ बजे आऊगा। घर पर रहियेगा। मैं उन्हे अपने साथ ले आऊगा।"

वापस आने पर शरत् ने पूछा—"कहा गये थे?"

—डाक्टर के पास।

—विधान आकर कहेगा कि मलेरिया हुआ है।

उसी दिन शाम के पहले डा० कुमुद ने आकर कहा—"आज रात को ८ या ८ ३० बजे विधान बाबू आपको देखने आयेगे। कही चले मत जाइयेगा।"

—आप भी साथ मे आयेगे, न?

—जरूर।

इतना कहकर डा० कुमुद चले गये।

विधान बाबू समय के इतने पक्के हैं कि घडी भी उन्हे देखकर चकित रह जाती है। ठीक साढे आठ बजे गाडी की हार्न बजी। ड्राइवर के साथ दोनो डाक्टर ऊपर आये।

—क्या बात है, शरत् बाबू? क्या हो गया?

शरत् ने कहा—"मलेरिया या टाइफायड।"

—क्यो? क्या खाते थे?

—तपसे मछली।

—किसी डाक्टर को न बुलाकर अकेले खाते रहे। चलिये कुरता खोलिये।

चारो ओर पेट दबाने के बाद डाक्टरो ने कहा—"किंकिंस।' जब तक हम इसका अर्थ समझे, उसके पहले ही दोनों गायब हो गये।

शरत् ने पूछा—"इसका अर्थ क्या है?"

—पता नही।

कुछ देर बाद शरत् ने कहा—"अब खैर नही है। लगता है, अब जाने की बारी है।"

मुझे यह बात समझते देर नही लगी। सिवाय छिपाने के और कुछ कर भी नही सकता था। प्रकट रूप मे कहा—"पहले इस शब्द का अर्थ जानना चाहिए, बाकी बाते होती रहेंगी।"

ठीक इसी समय नरेन्द्र देव आये। शरत् ने इनसे पूछा—"किंकिस का क्या अर्थ है?"

—पता नही।

शरत् ने कहा—"जरा डिक्शनरी ले आओ। देखू, इस शब्द का अर्थ है या नही?"

डिक्शनरी मे इस शब्द का अर्थ मिला—आतो की बीमारी, आतो का उलझना।

—तब तो एक्स-रे होगा?

—यह तो होगा ही।

शरत् ने घबडाकर कहा—"तब चलो, घर वापस चले।"

मैंने कहा—"पागलपन मत करो। यह भी तुम्हारा ही घर है।"

इन्हीं दिनो मद्रास मे कोई कान्फ्रेस हो रहा था जहा सभी डाक्टर चले जा रहे थे। मद्रास जाने के पहले डाक्टरो की बैठक शरत् के घर हुई। शरत् जिद्द करने लगा कि मेरा आपरेशन विधान बाबू करेगे। अगर मरना पडा तो इनके हाथ मे मरूगा।

विधान बाबू हसकर कहा—"तब आप सो जाइये। काम तमाम कर दू।" कहने के साथ ही पास ही रखी कुल्हाडी को उन्होने उठा लिया। यह दृश्य देखकर सभी हस पडे।

एक्स-रे के समय रुपयो की चर्चा चल पडी। 'एम० सी० सरकार एण्ड सस' ने इलाज के लिए एक हजार देना स्वीकार किया। बदले मे उसे 'बच्चो की कहानिया' नामक पुस्तक छापने का अधिकार दिया गया।

बात समझते देर नही लगी। शरत् के कमरे मे कोई भी नर्स नही आना चाहती। रात को काफी झगडा हुआ था। तुरत उन्हे दूसरे नर्सिंग होम मे ले जाया गया। सौभाग्य से इसका मालिक मेरा रिश्तेदार निकला। वहा से कुमुद बाबू को फोन पर सूचना दे दी।

इस नर्सिंग होम मे आने के बाद शरत् ने कहा—"सुनो, यहा की दोनो नर्से अग्रेजी मे बाते करती हैं, इनसे बातचीत करने मे बडा स्ट्रेन होता है। डा०सुशील से कहकर किसी बगाली नर्स का इन्तजाम कर दो।"

यह इन्तजाम हो गया। शरत् बाबू नर्सिग होम मे भर्ती हैं, समाचार सुनकर लोगो का आना-जाना प्रारभ हो गया। यह देखकर शरत् ने मुझसे कहा—"इस हालत मे सभी से बातचीत करने पर मुझे बडा कष्ट होता है। अगर सभी मेरे कमरे मे न आये तो अच्छा होगा। एक बात और विलास दो कैनरी पक्षी देने को कहा था। उसे समाचार दे देना। शायद लेता आये।"

विलास को समाचार दिया गया। वह दो चिडिया लाया तो शरत् के कमरे मे रख दिया गया। दिन भर दोनो गाती थी। चुपचाप शरत् उनका गाना सुनता था।

एक दिन विधान बाबू ने कहा—"अब आपरेशन करना जरूरी होगा।"

मैंने कहा—"आपरेशन करना होगा? लेकिन रुपये का सवाल है। ललित बाबू १२-१३ सौ माग रहे हैं।"

विधान बाबू ने कहा—"उसकी चिन्ता छोडो। मैं उन्हे चार सौ पर राजी कर लूगा।"

जिन लोगो ने सहायता देने का वायदा किया था, अब वही बगले झाकने लगे। अविनाश घोषाल के साथ कई जगह चक्कर लगाने पर पता चला कि शरत् बाबू की पुस्तको का सिनेमा कापी राइट बेचने पर छह हजार रुपये मिल सकते हैं। यह बात शरत् से कहने का साहस मुझे नही हुआ। अब हरिदास बाबू के पास जाना पडा।

वे इस शर्त पर राजी हुए कि तीन हजार रुपये वे दे सकते हैं, पर हस्ताक्षर प्रकाशचन्द्र को करना पडेगा। बाद मे प्रकाशचन्द्र को लेकर गया और रुपये ले आया।

आपरेशन-खर्च के अलावा जिन सामग्रियो को खरीदने की सूची डा० कुमुद बाबू ने दी, उसमे काफी रुपये खर्च हुए। आपरेशन के बाद ज्ञात हुआ कि यकृत बिलकुल सड गया है। सामयिक रूप से काम चलाने के लिए रबर की नली लगाकर उसके जरिये तरल खाद्य देने की व्यवस्था हुई। यहा भी काफी रकम लग गयी।

ललित बाबू ने कहा—"अब नर्सिग होम मे रखकर क्यो रुपये नष्ट कर रहे हैं। इन्हे घर ले जाइये।" ज्ञातव्य रहे कि ललित बाबू ने आपरेशन का चार्ज नही लिया था।

घर आकर नीचे के कमरे मे शरत् के रहने का इन्तजाम किया गया। रात दस बजे ललित बाबू ने आकर कहा—"कल सबेरे एम्बुलेन्स गाडी भेज दूगा।"

एक दिन मुकुल बाबू डा० मैक को ले आये। उन्होने कहा—"इनका इलाज घर पर नही हो सकता। तुरत नर्सिंग होम मे भेजिये।"

रुपये का प्रबध करने के बाद शरत् को हम लोग नर्सिंग होम मे ले आये। यहा का रगढग देखते ही समझ मे आ गया कि शरत् की मौत निश्चित है। ज्यो ही शरत् ने सिगरेट मुँह मे लगाया त्यो ही एक नर्स क्षिप्र गति से आकर उसे मुँह से निकाल कर बोली—'दिस इज नाट एलाउड।'

इतना कहना था कि शरत् क्षुब्ध हो उठे। कुछ देर बाद मैक साहब ने कहा—"मुलाकात के लिए निर्धारित समय के बाद अन्य समय यहा किसी को आने नही दिया जायगा।" मुलाकात का समय लिखा था। उनके कहने का आशय हम सब समझ गये।

जहा तक याद है, इस नर्सिंग होम को लम्बी रकम दी गयी थी। शाम को जाने पर देखा—शरत् यहा के नर्सो के व्यवहार से बहुत अप्रसन्न है। उसने कहा—"मैं यहा नही रह सकता। गोरी नर्से एक नेटिव की सेवा नही कर सकती।"

दूसरे दिन मैक साहब ने कहा—"इस रोगी को हम यहा नही रख सकते। इन्हे जल्द से जल्द यहा से ले जाइये।"

सारा इन्तजाम करने के बाद मैंने शरत् से कहा—"सारा इन्तजाम हो गया है। कल सवेरे तुम्हें घर ले जायेंगे। एक बात याद रखना कि मुह से कुछ मत खाना।"

शरत् ने कहा—"तुम तो यह जानते हो कि बिना कोई कारण बताये मैं किसी का उपदेश ग्रहण नही करता। मुझे समझाओ कि क्यो नही खाऊगा?"

—अगर मुँह मे कुछ खाओगे तो कै होगी। कै होने पर पेट के सभी धागे टूट जायेंगे और तब फिर कुछ करने का उपाय नही रहेगा।"

शरत् ने आदर के साथ कहा—"तब जाने के पहले मुझे खिलाते जाओ।"

ट्यूब के जरिये अगूर का रस पिलाकर मैं घर चला आया। बडी बहू से कहा—"कल सवेरे शरत् को घर ले आयेंगे।'

रात को दो बजे फोन की घटी बजी।

—हलो कौन?

—रायटर।

अग्रेजी मे प्रश्न हुआ—"चटर्जी साहब का क्या हाल है?"

—ठीक है।

—आप कहा से बोल रहे हैं?

—घर से।

बडी बहू घबराकर दौडी हुई आयी। पूछा—"किसका फोन था? क्या हुआ है?"

—कुछ नही। अखबार वाले समाचार पूछ रहे थे।

सान्त्वना देने के बाद भी न जाने क्यों मन मे सदेह उत्पन्न हुआ। तुरत नर्सिंग फोन किया। जवाब आया—"डा० चटर्जी कै कर रहे हैं।"

तुरत दौडा हुआ नर्सिंग होम आया। आकर देखा-शरत् कै कर रहा है। पास ही मृत्युजय खडा था। मुझे देखते ही सटक गया। पूछा—"यह कैसे हुआ?"

—मुह मे अफीम का पानी लिया था।

यह बात सुनते ही मेरी आखो के सामने अधेरा छा गया। डा० सुशील आये, कुमुद बाबू आये। इधर कै पर कै होती रही। अन्त मे सब समाप्त हो गया।"

यह दिन था—रविवार १६ जनवरी, सन् १९३८ ई०। दिन के दस बजे विश्व साहित्य का एक श्रेष्ठ कथाकार अनन्त यात्रा की ओर चला गया। उस दिन उनकी उम्र थी—६१ वर्ष ४ माह।

उनके निधन के ७ मिनट बाद फोन पर रेडियो, समाचार पत्रो तथा अन्यत्र समाचार गये। ससार के अन्य रेडियो ने भी इसे प्रसारित किया। समाचार पाते ही स्थानीय अग्रेजी-बगला के पत्रो ने दो घटे के भीतर क्रोड पत्र प्रकाशित किया।

नर्सिंग होम मे उस वक्त कई डाक्टर और मित्र थे। बाद मे उनका शव २४, अश्विनी दत्त रोड स्थित उनके मकान मे लाकर सामने के बरामदे पर रख दिया गया। रेडियो और समाचारपत्रो के जरिये समाचार पाकर दर्शनार्थी आने लगे।

सवा तीन बजे शोक यात्रा प्रारभ हुई। इस शोक यात्रा का सचालन की जिम्मेदारी दक्षिण कलकत्ता काग्रेस ने ली थी। 'वन्दे मातरम्', 'शरतचन्द्र की जय' ध्वनि के साथ लोग केवडातला महाश्मशान पर आये। सवा पाँच बजे चिता मे प्रकाशचन्द्र ने आग लगायी।

महाश्मशान और घर पर जो लोग आये थे, उनमे विशिष्ट लोगो मे मेयर सनत् कुमार रायचौधुरी, माननीय सत्येन्द्रचन्द्र मित्र, शरत्चन्द्र बसु, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, किरण शकर राय, रमा प्रसाद मुखर्जी, नलिनी रजन सरकार, ज्योतिर्मयी देवी, जे० सी० गुप्त, निर्मलचन्द्र चन्द्र, राजा क्षितीन्द्र देव राय साहब, ज्ञानाजन नियोगी, कुमार बहादुर देव राय साहब, के० अहमद, श्री तथा श्रीमती मुकल दे, रायबहादुर जलधर सेन, यतीन्द्र मोहन बागची, कालिदास राय, कुमुदरजन मल्लिक, चारुचन्द्र बनर्जी, शैलजानन्द मुखर्जी, प्रबोध कुमार सान्याल प्रमुख थे।

फिर भी शरत्-प्रेमियों को इस बात की बराबर शिकायत बनी रही कि लोकप्रियता की दृष्टि से

उतनी भीड़ नहीं हुई जितनी आशा की गयी थी।

इसके बाद शोक संदेशों का तांता लग गया। भारतीय तथा विदेशो से संवेदना के अनेक तार-पत्र आये।

शरत् बाबू का चित्र।
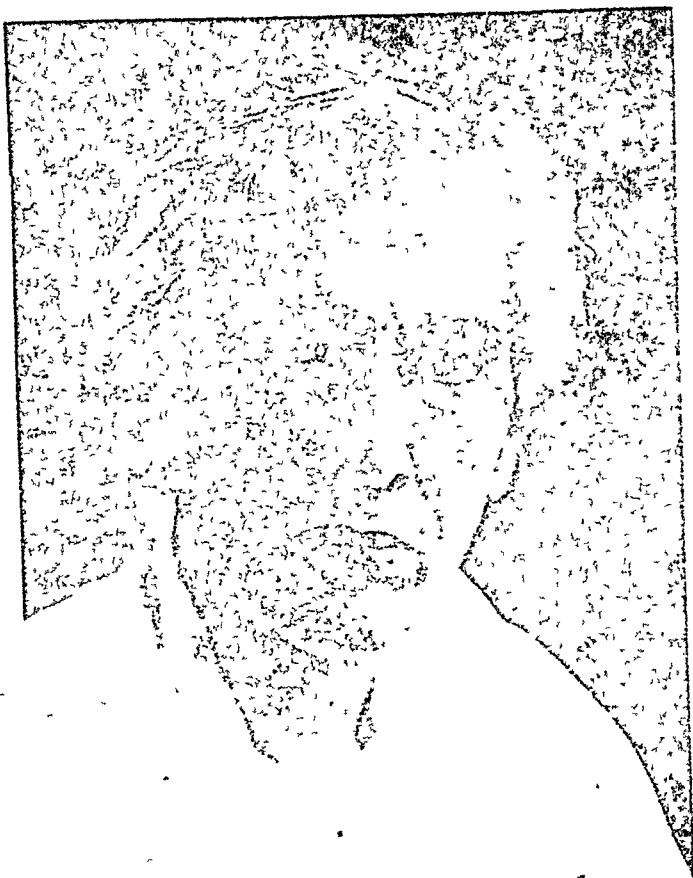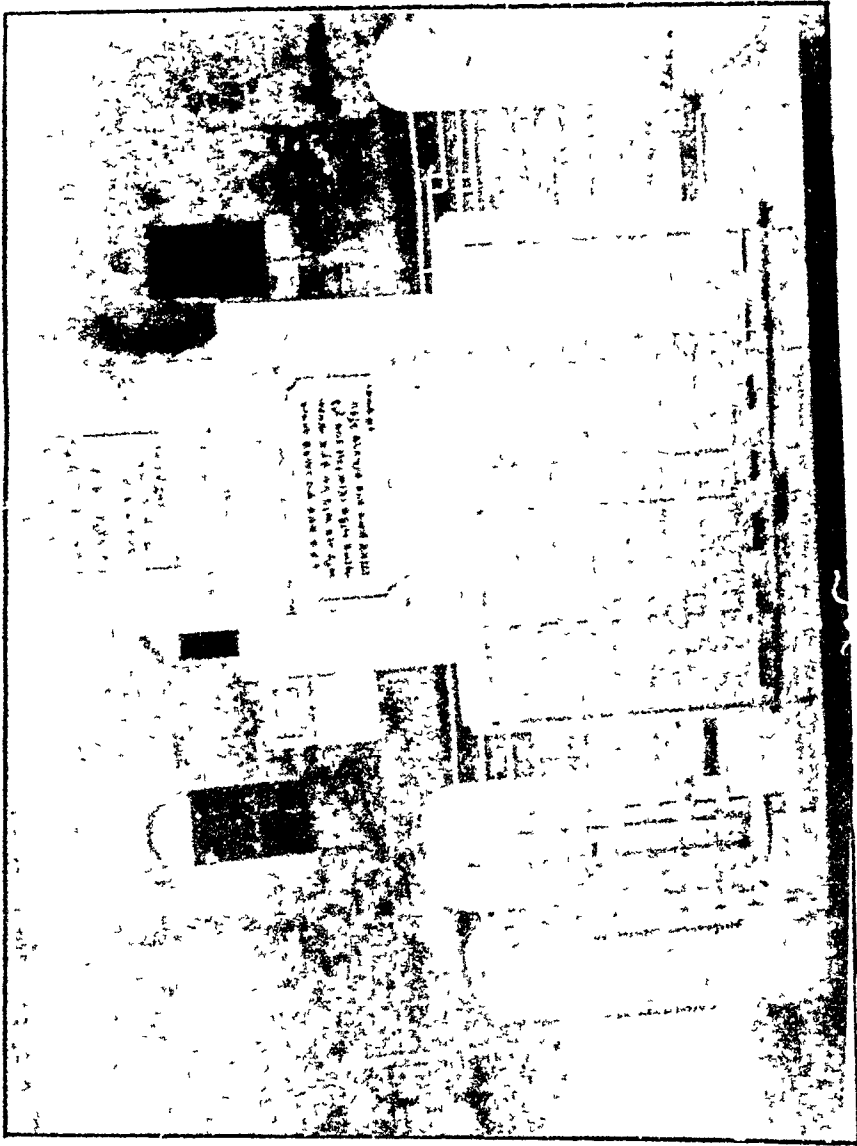
शरत् बाबू का पैतृक मकान देवानन्दपुर वाला ।
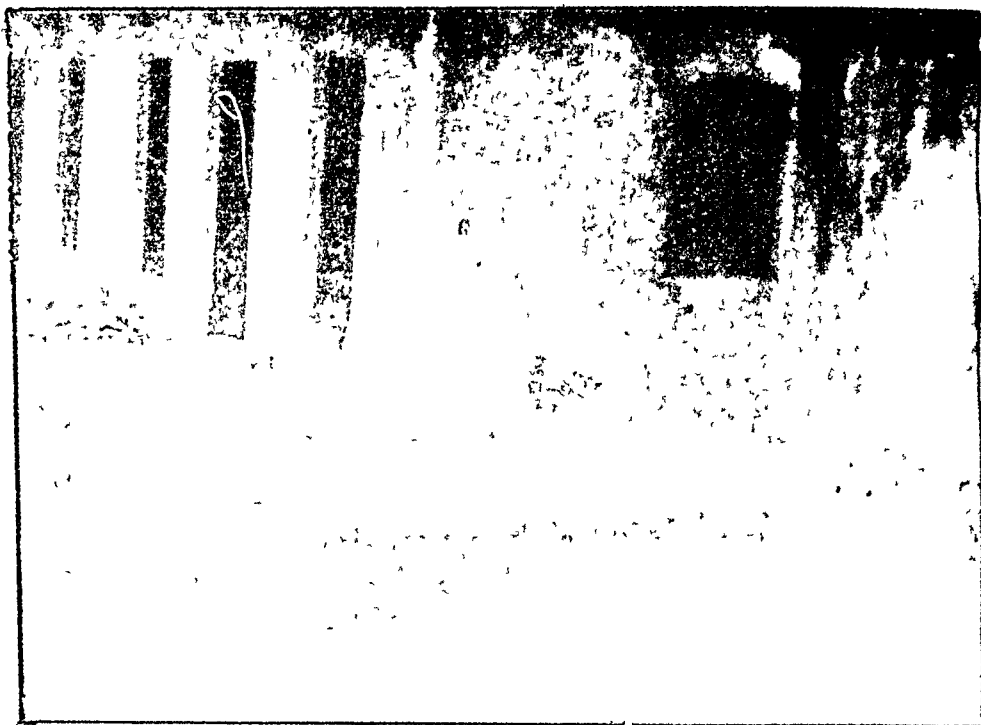
देवानन्दपुर वाला भवन का भीतरी भाग। इसी कमरे में उनका जन्म हुआ था।

प्यारी पंडित की पाठशाला। बचपन मे उनकी प्रारंभिक शिक्षा यहीं हुई थी।
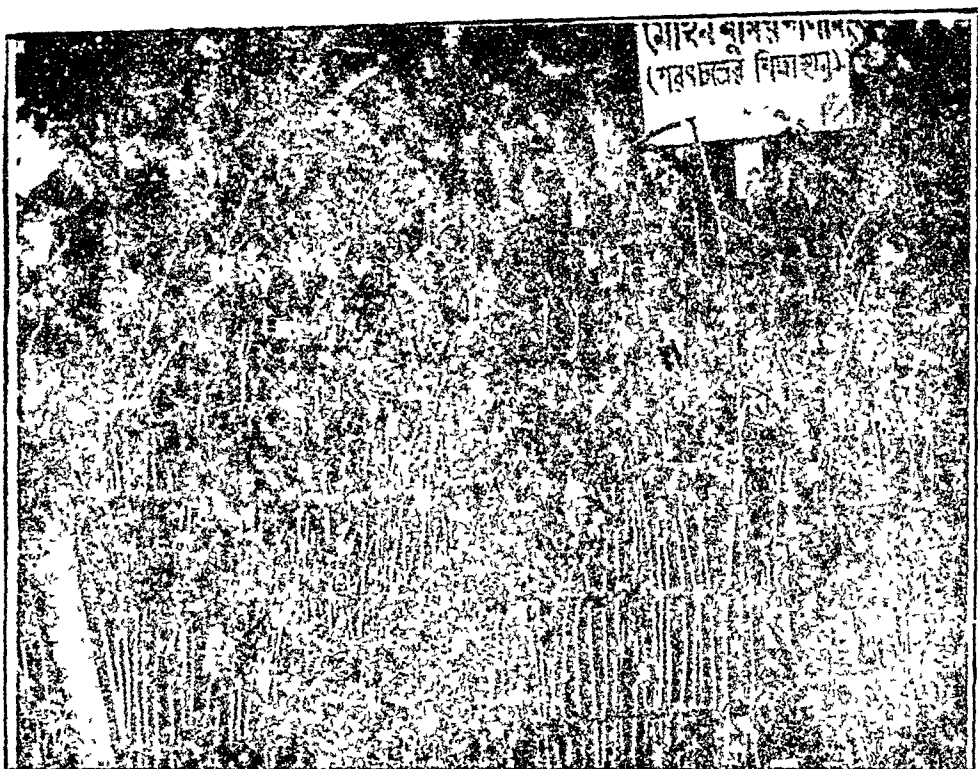
मोहन मुशी का दालान । बाद मे शरत् यहाँ पढते थे ।

नेडा (मुण्डा) वटतला । यही सभी मित्र आकर एकत्रित होते थे । पास ही मुंशीजी का तालाब है । गाँव के निवासी यही शव रखकर विश्राम करते थे ।
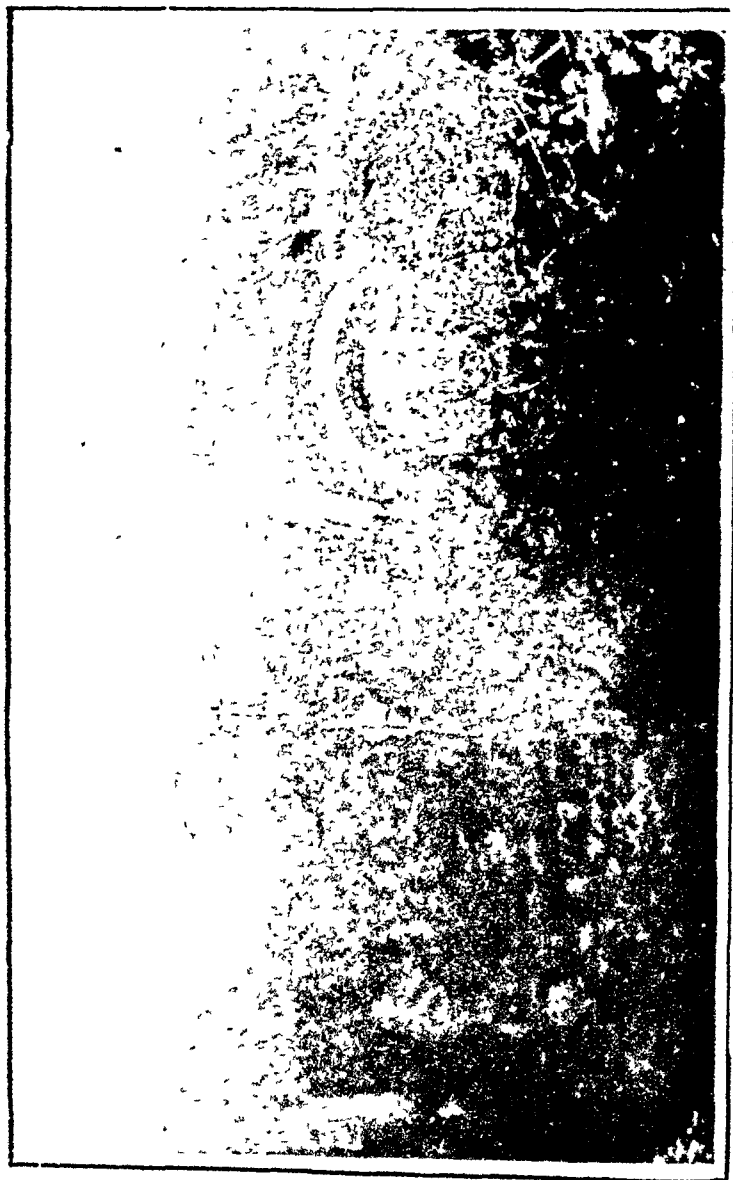
सुरलक्ष्मी तथा राजलक्ष्मी की माँ इसी मंदिर मे पुजारिन का काम करती थी ।

शरत् स्मृति मंदिर। शरत् बाबू के नाम पर गाँव के निवासियो ने पुस्तकालय, उनके चित्र तथा व्यवहृत सामग्रियों का संग्रह किया है।

कृष्णपुर का अखाडा जिसे रघुनाथ गोस्वामी के शिष्य ने स्थापित किया था।
श्रीकान्त में इसे मुरारीपुर का अखाड़ा कहा गया है।
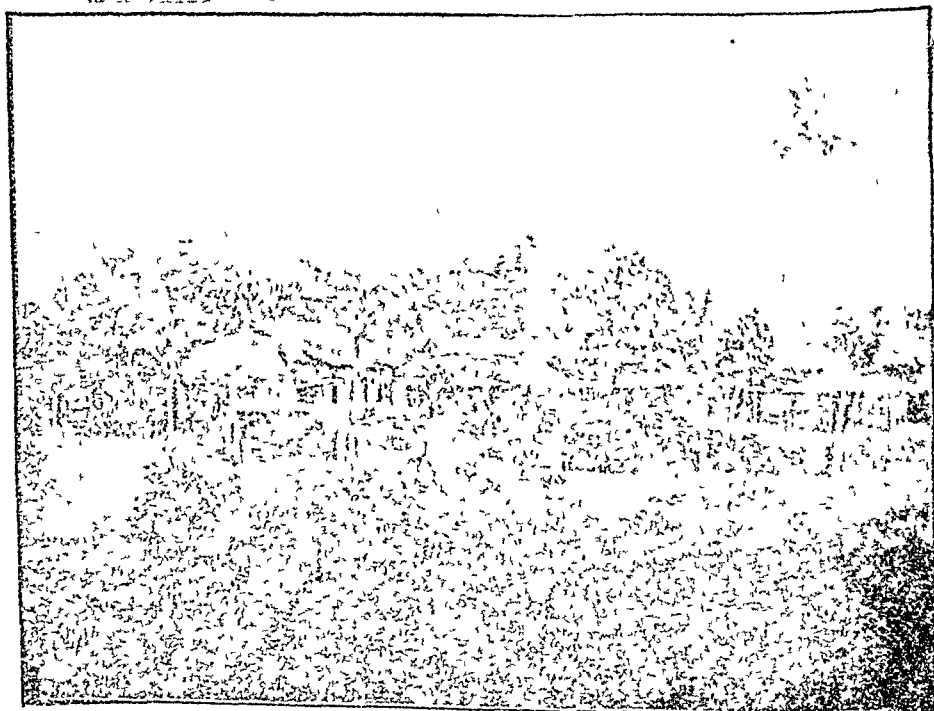
गफूर (गौहर) का गाँव।
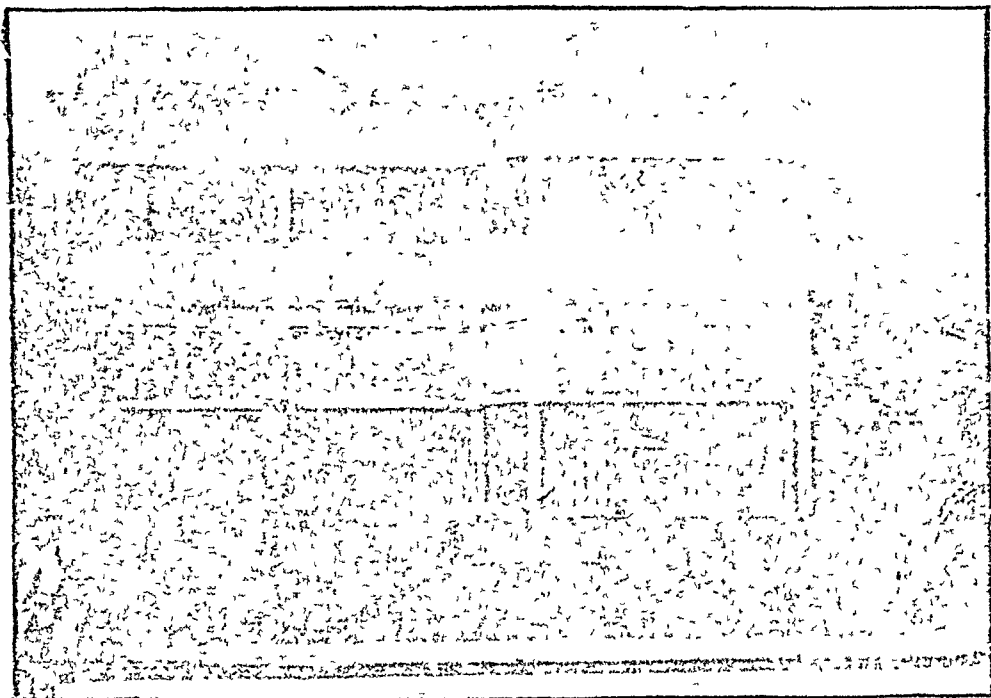
शरत् बाबू का कलकत्तेवाला भवन ।
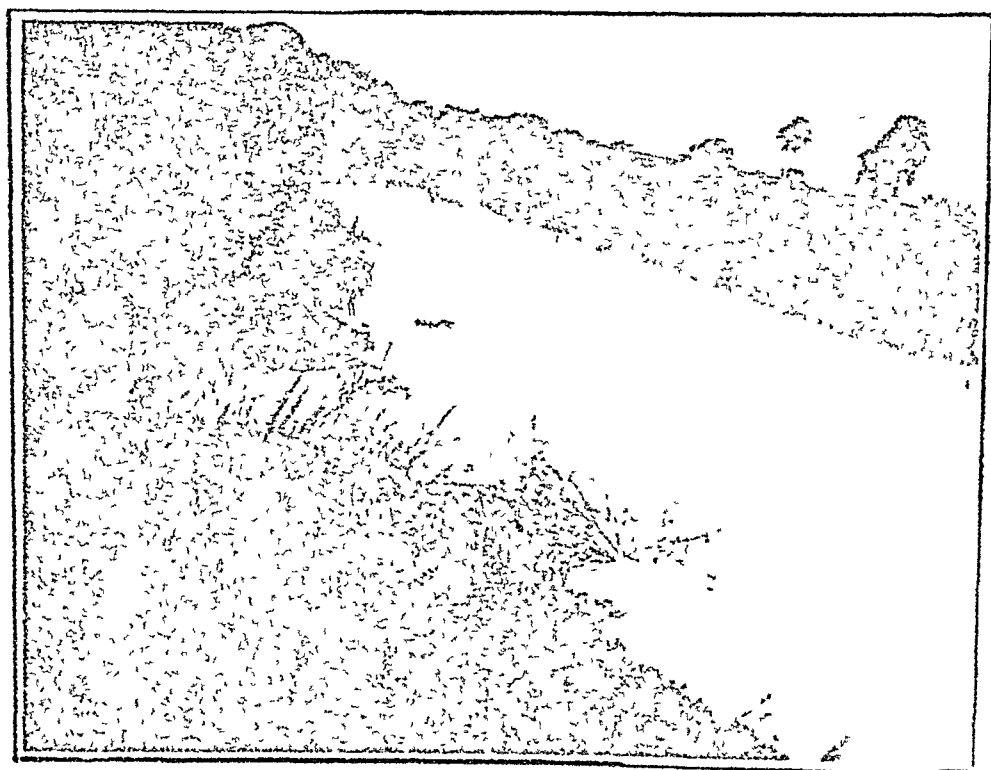
सरस्वती नदी ।
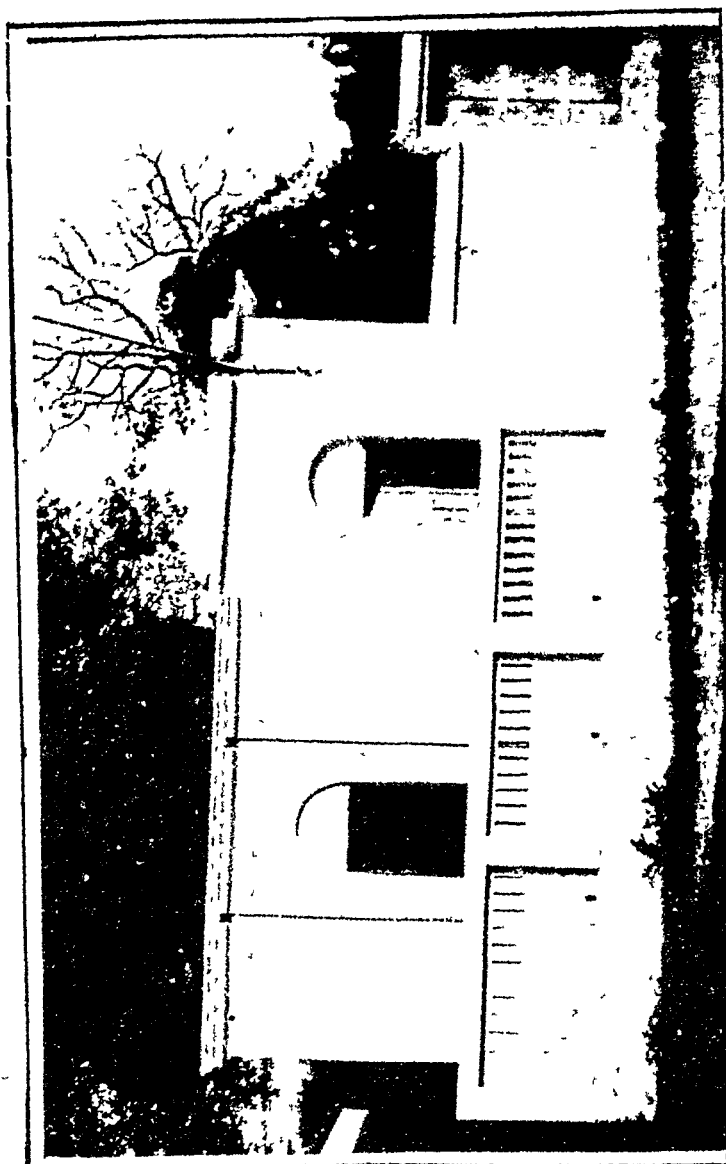
शरत् बाबू का ननिहाल। गांगुली परिवार का निवास स्थान।

यह वही बरगद का पेड है जिस पर राजू अपना कमरा बनाकर साधना करता था।
अब गंगा काफी दूर हट गयी है।
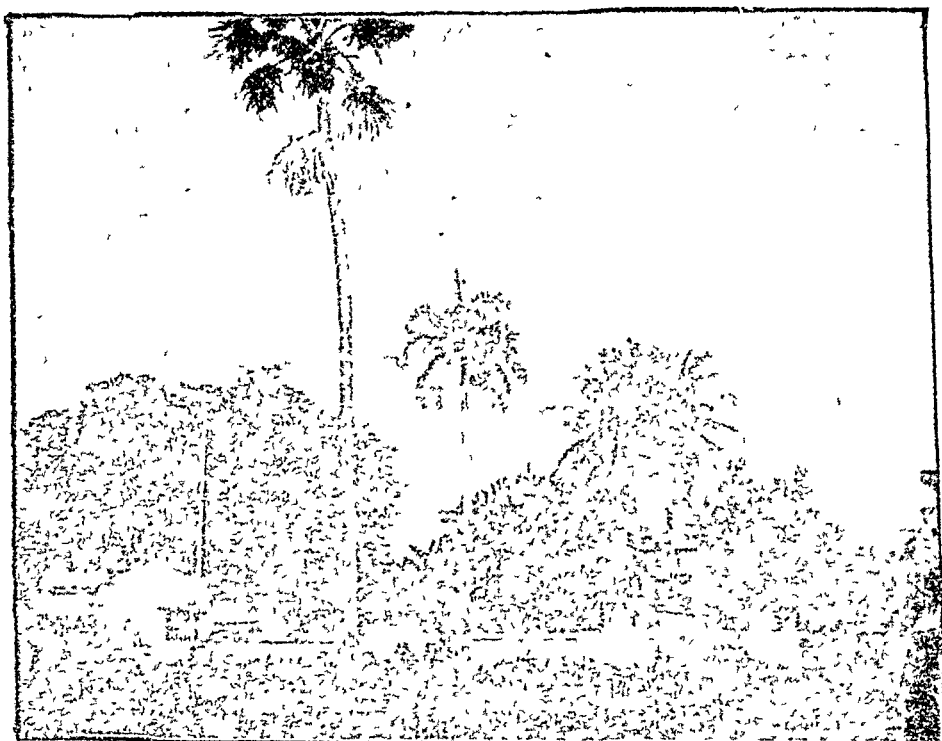
राजेन्द्रनाथ मजुमदार (श्रीकान्त का इन्द्रनाथ) का मकान।

सामताबेड शरत्‌चन्द्र हाईस्कूल।
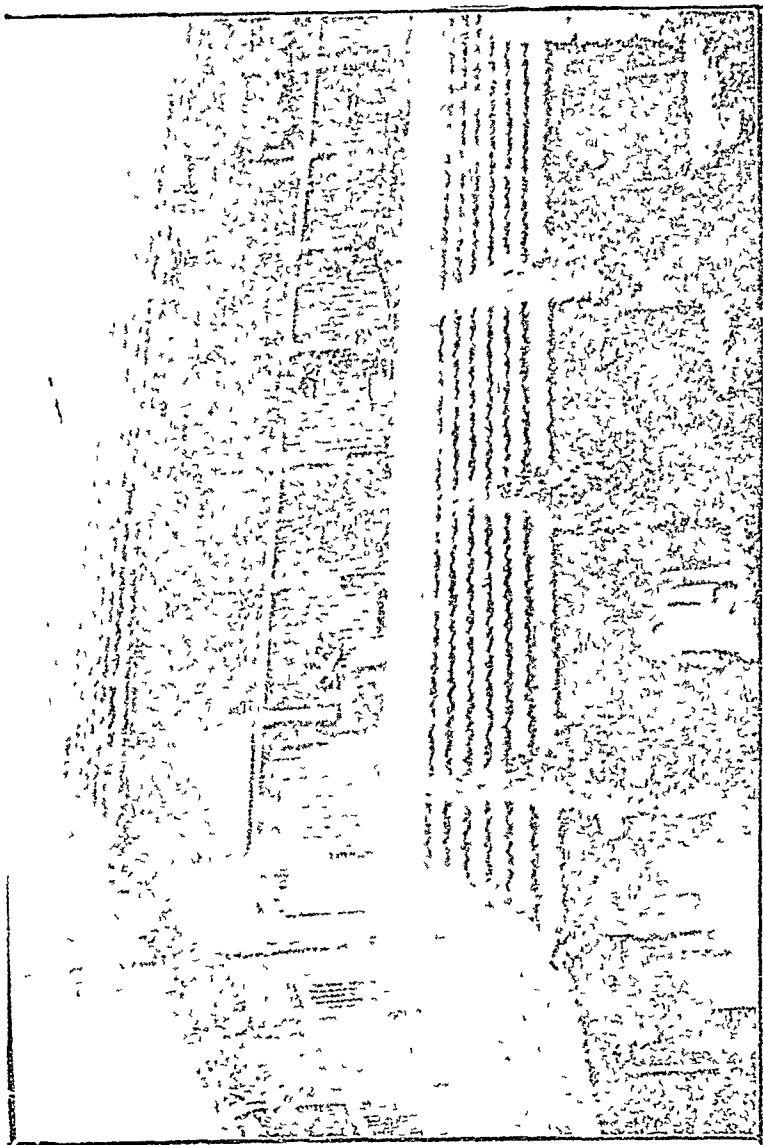
सामताबेड स्थित शरत् बाबू का निजी भवन ।
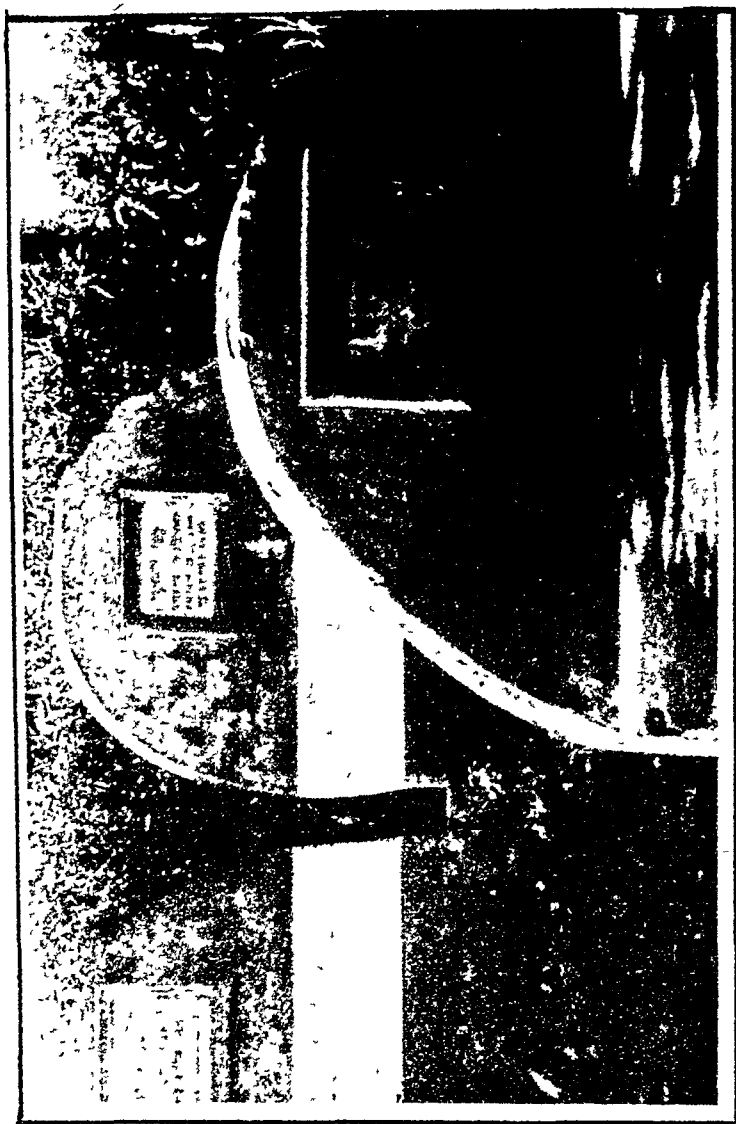
शरत् बाबू, स्वामी वेदानन्द (प्रभासचन्द्र) की समाधियों के आगे श्रीमती हिरण्मयी देवी की समाधि है। सामताबेड़ स्थित भवन के पास ही है।
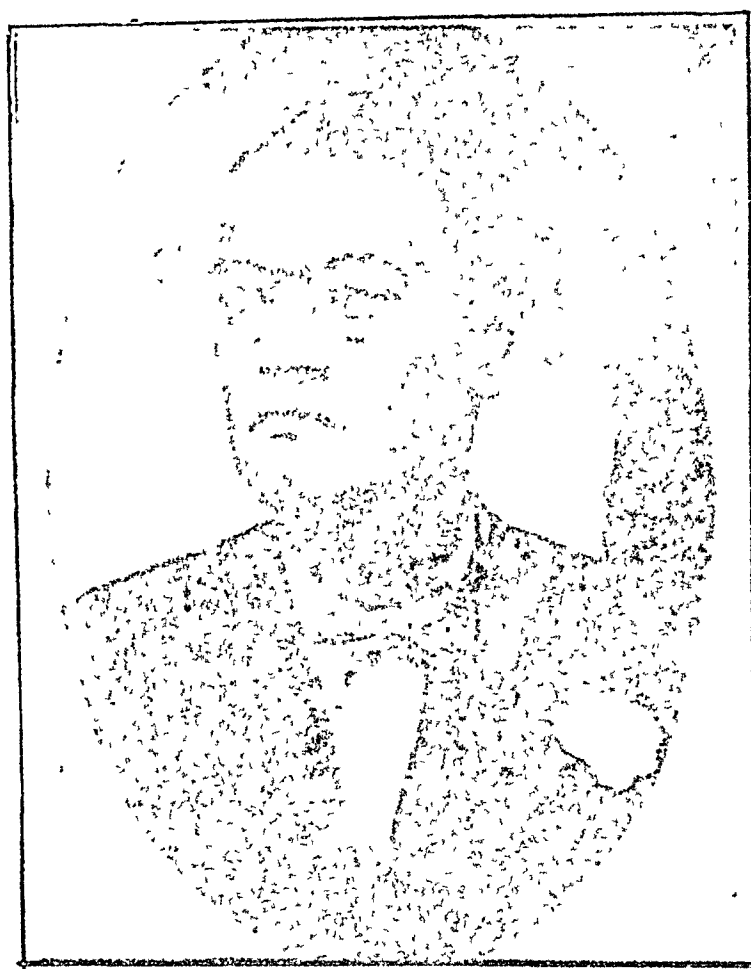
मुजफ्फरपुर के महादेव साहू जिनके यहाँ शरत् बाबू रहते थे ।

राधारानी।

श्रीमती निरूपमा देवी।